श्री रविशंकर शुक्ल
अभिनंदन ग्रंथ

पण्डित रविशकर शुक्ल

रवि से ले प्रकाश शंकर से
जन-शिव का उद्देश्य विमल,
अपनी हृदय-शुक्लता से है
जिनका यश सुश्वेत कमल।
उन विभूति के चरणों में
अर्पित यह पत्र-पुष्प अभिराम,
चिरजीवी हों प्रेय हमारे
श्रेय हमारे श्रद्धा धाम ॥

—श्री उदयशंकर भट्ट

सम्मानपूर्वक समर्पित

दिनांक २ अगस्त १९५५

७वीं
जन्म-तिथि

मुद्रक

रगीन चित्र
न्यू जेक प्रिन्टिग वर्क्स, बम्बई

मुख-पृष्ठ और दुरगे पृष्ठ
शिवराज फाइन आर्ट लिथो वर्क्स, नागपुर

कलेवर
सुबोध सिन्धु प्रेस, नागपुर
शासन मुद्रणालय, नागपुर
(सम्पूर्ण विविध खण्ड, साहित्यखण्ड के पृष्ठ
१५५ से २०६ सम्पूर्णसन्देश और
पृष्ठ ५१ से शेष जीवन खड)

सहायक मुद्रक
सुरुचि प्रेस, नागपुर

श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ

सम्पादन समिति—

रंगीन चित्र सूची

शुक्ल
अभिनंदन-ग्रंथ

श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ

दानदाताओं की सूची

क्र.	नाम	स्थान	राशि
१	श्री सेठ किरोडीमल जी व सेठ पालूराम जी	रायगढ़	७१०१ रुपये
२	श्रीमती रानी साहिबा	सारगढ़	२१०० ,,
३	श्री एन के डूगाजी	रायपुर	१५०१ ,,
४	एक मित्र हस्ते श्री बियाणी जी	नागपुर	१५०१ ,,
५	राजा वीरेन्द्र बहादुर सिंह जी	नागपुर	१५०० ,,
६	श्री परमानन्द भाई पटेल	जबलपुर	१००१ ,,
७	मे वागमल बीरमल	रायपुर	१००१ ,,
८	सेठ खुशालचन्द जी डागा	नागपुर	१००१ ,,
९	श्री नरसिंहदासजी मोर तथा श्री दुर्गाप्रसादजी सराफ	नागपुर	१००१ ,,
१०	श्री पी बी काले, प्राविन्शिअल ओटोमोबाइल क	नागपुर	१००१ ,,
११	मे नागपुर इलेक्ट्रिक लाइट एण्ड पावर कम्पनी	नागपुर	१००१ ,,
१२	एक मित्र हस्ते श्री बियाणी जी	नागपुर	१००१ ,,
१३	मे एम पी स्टेशनरी इम्पोरियम, माउन्ट रोड,	नागपुर	५०१ ,,
१४	मेसर्स करमचन्द थापर एण्ड ब्रदर्स, (दि बल्लारपुर पेपर एण्ड स्ट्रा बोर्ड लि)	नागपुर	५०० ,,
			१६,७११ रुपये

यह क्यों ?

मानव की महानता दो रूपों में प्रगट होती है। कहीं किसी गुण विशेष की अतिशयता में महानता है तो कहीं विविध और अनेक गुणों के संविकास की जीवन-शक्ति में महानता का दर्शन होता है। आदरणीय पण्डित रविशंकरजी शुक्ल का जीवन दूसरे प्रकार की महानता का उदाहरण है। उनमें अनेक गुणों का समुच्चय है और जीवन के अनेकविध पहलुओं में उनका जीवन विकसित हुआ है। मध्यप्रदेश में आज उम्र के नाते उनका अपना स्थान है, स्वास्थ्य-सम्पत्ति में इस अवस्था में भी उनकी अपनी विशेषता है, कार्यक्षमता में तरुणों को भी लज्जित करने की क्रियाशीलता है, विचारों की दृढ़ता है, कार्य की लगन है, बालकों के समान हंसी की पवित्रता है और कभी-कभी उनकी दृढ़ता में कठोरता के दर्शन हो जांय तब भी उसके भीतर प्रेम का प्रवाह है और अहिंसा का स्रोत है। उनका हृदय उनके शरीर के समान ही विशाल है और गहन है जिस में साथियों के स्वल्प अपराधों को समा लेने की शक्ति है। किसी के कन्धे पर हाथ रखते ही या किसी के हाथ को दृढ़ता से पकड़ लेते ही उनके प्रेम का स्रोत मानों वह उठता है और एक अनोखी निकटता का अनुभव होता है। उन्हें साहित्य में रस है। संगीत से प्रेम है। इस अवस्था में भी नवीन विचारों को ग्रहण करने की वृत्ति तथा जन-सेवा और जन-कल्याण की उत्कट अभिलाषा है। उनकी ज्ञानपिपासा आज भी प्रखर है।

राजकर्त्ताओं में उनकी उम्र के कारण उनकी खास विशेषता है और वे उनमें Grand old man की श्रेणी में अग्रणी है। उनके समस्त गुणों का वर्णन करना कुछ कठिन है और जितनी उनकी निकटता में मनुष्य जाता है, उतना ही उनके विशिष्ट गुणों का उस पर असर पड़ता है, छाप पड़ती है और वह सदैव के लिए उनका बन जाता है। मनुष्यों को और साथियों को निकट रखने का उनमें अजीब जादू है और इसी कारण समस्त मध्यप्रदेश में वे आज इतने लोकप्रिय हैं और उनका जितना व्यक्तिगत परिचय है उतना और किसी का नहीं है।

हिन्दी भाषा की शुक्ल जी ने आजीवन सेवा की है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते उन्होंने मार्ग दर्शन किया है। हिन्दी की प्रगति के लिए उनका सतत परिश्रम रहा है। मध्यप्रदेश में हिन्दी को राजभाषा का जो स्थान मिला है इसका सारा श्रेय उनकी दृढता और हिन्दी प्रेम को ही है। मध्यप्रदेश में हिन्दी भाषा के क्षेत्र में व्यापक सेवा के नाते यदि किसी का सर्व प्रथम स्थान है तो वह आदरणीय शुक्ल जी का। अत साहित्य सम्मेलन उन्हें यह अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर अपने कर्तव्य का पालन ही कर रहा है।

नागपुर
दिनांक, २ अगस्त १९५५

ब्रिजलाल बियाणी
अध्यक्ष,
म प्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

निवेदन तथा आभार

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १६ वे दुर्ग अधिवेशन मे छत्तीसगढ़ के साहित्य-सेवी मित्रों ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भावना व्यक्त की कि सम्मेलन की ग्रोर से प्रान्त के वयोवृद्ध अग्रणी पं. रविशंकर शुक्ल को अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जावे। तत्पश्चात् सम्मेलन की कार्यकारिणी ने अपनी दिनाङ्क २८ नवम्बर १९५४ की सभा में इस विषय में विचार किया और यह निश्चय किया कि श्री शुक्ल जी की हिन्दी सम्बन्धी दीर्घ तथा विशिष्ट सेवाओं को दृष्टिगत रखते हुये उन्हें सम्मेलन की ओर से उनके आगामी ७९ वें जन्म-दिवस पर "अभिनन्दन ग्रन्थ" अर्पित किया जावे। यह ग्रंथ उसी निश्चय की पूर्ति है।

पं. रविशंकर जी शुक्ल का नाम समस्त देश में सुपरिचित है। उनकी सेवायें सुदीर्घ तथा विविध हैं। वे इस प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में उस समय आये, जब हमारे देश की चेतना ने जागृति की प्रथम बलवती करवट ली और तब से, देश की राजनैतिक प्रगति एवं राष्ट्रीय बल-वृद्धि के साथ, उनकी सेवायें सम्बद्ध रही हैं। राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक, तीनों क्षेत्रों में उन्होंने बन्दिनी माता का उत्पीड़न अनुभव किया और इन तीनों क्षेत्रों में, जो हमारे देश की जागृति की साधक व पारस्परिक पूरक प्रवृत्तियां रही हैं, उनकी सेवाओं का योग महत्त्व-पूर्ण रहा है। पं. रविशंकर जी शुक्ल को वर्तमान में प्रान्त का सर्वोपरि व्यक्तित्व का गौरव प्राप्त है और यह उनकी लोकप्रियता का मेरुदण्ड है। प्रान्तीय क्षेत्र मे स्वाधीन शासन की प्रथम झलक के समय सन् १९३७ में खरे काण्ड के बाद ही वे प्रान्त के प्रधान मंत्री निर्वाचित हुये और पश्चात् दोनों चुनावों में अपना स्थान अक्षुण्ण रख वे प्रान्त के मुख्य मन्त्री की धुरी आज भी ओजपूर्वक सम्हाले हैं। इस बीच राजनैतिक उतार-चढ़ावों से यह प्रान्त मुक्त नही रहा, तथापि श्री शुक्ल जी अपने व्यक्तित्व व विशेषताओं—जिनमें बढ़ती उम्र की लोक-श्रद्धा का ही हाथ नही, उनके अपने मस्तिष्क की शक्ति, हृदय का माधुर्य और शारीरिक कार्य-निष्ठा सभी का प्रचुर प्रमाण सम्मिलित है, यदि सबका सम्मान प्राप्त करते हुये इस पद के अधिकारी बने रहे, तो यह उनके व्यक्तित्व के समय की कसौटी पर खरा सिद्ध होने का स्वयं प्रमाण है।

परन्तु उनके कर-कमलो में यह अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने का कारण उनका उक्त पद नही, यद्यपि वह स्वयं भी उसका अधिकारी कहा जा सकता है। ग्रन्थरूपी यह श्रद्धा-सुमन तो उनकी विशिष्ट हिन्दी सम्बन्धी सेवाओ को दृष्टिगत रख के ही प्रदान किया जा रहा है। पं. रविशङ्कर जी शुक्ल इस प्रान्त के हिन्दी संगठन के जनक कहे जा सकते हैं। उनके उद्योग से ही सन् १९१८ में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। आपने प्रान्त में भ्रमण कर उसे सफल बनाने का उद्योग किया। इसके बाद भी वे प्राय: प्रत्येक सम्मेलन मे उपस्थित रह संस्था को सक्रिय बनाने में सहायता देते रहे। उनकी इन सेवाओं के सम्मान स्वरूप ही सन् १९२२ के पंचम नागपुर अधिवेशन का अध्यक्ष पद आपको प्रदान किया गया। उनका हिन्दी सम्बन्धी दृढ अनुराग और राष्ट्र-निर्माण के लिये उसकी चरम उपयोगिता किस आस्था और आत्मविश्वासपूर्ण शब्दों मे बोलती रही है, यह उनके अध्यक्ष पद से दिये गये प्रथम

भाषण से ही व्यक्त होता है। हिन्दी की एकान्त साधना उनका लक्ष्य रहा है—जो चाहे साहित्य की कृतियों में न हो, परन्तु हिन्दी के पुरस्कार की उनकी प्रवृत्तियों और ध्वनियों में बोलता रहा है। भारत की सविधान सभा में उन्होंने प्रबल वेग के साथ हिन्दी का समर्थन किया, जो स्मरणीय रहेगा। लखनऊ के नागरी लिपि सम्मेलन में भी उनकी हिन्दी और नागरी लिपि सम्बन्धी आस्था उतनी ही तीव्रता से अभिव्यक्त हुई। अंग्रेजी के स्थान में इस प्रान्त की प्रादेशिक भाषाओं—हिन्दी-मराठी को राज्यभाषा घोषित करने और शासन का प्राय सभी कार्य, कुछ अपवादों को छोडकर, हिन्दी में करने का निर्धारण, उनका भारत में राज्यभाषाओं को उनका स्वाभाविक अधिकार प्रदान करने का प्रथम साहसपूर्ण निश्चय है। इस कदम के द्वारा उन्होंने राज्य भाषाओं का गौरव उन्हें पुन प्रदान किया और हिन्दी की चिरसाधना की पूर्ति की, जिसे इस प्रदेश की बहुसंख्यक जनता की मातृभाषा होने का ही श्रेय प्राप्त नहीं है, बल्कि जो सविधान में उद्घोष के बाद अब राष्ट्र की निर्विवाद राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है। इसके पूर्व मध्यप्रदेश सरकार की ओर से डा रघुवीर को सम्मानपूर्ण आश्रय प्रदान कर शब्द निर्माण के क्षेत्र में भारत में प्रथम व्यापक प्रयास भी कम उल्लेख का विषय नहीं है। डॉ रघुवीर के हिन्दी सम्बन्धी इस महान प्रयत्न की पार्श्वभूमि का महत्त्व तो सदा रहेगा, चाहे उसका मूल्य आज अधिक या न्यून नापा जाता हो। श्री शुक्ल जी की हिन्दी सम्बन्धी निष्ठा उनके उद्गारों में सदैव बोलती रही है और उस निष्ठा को ही यह श्रेय प्राप्त है कि वे देश में हिन्दी के दो-चार प्रमुख परम्परकर्ताओं में से एक माने जाते है। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा उन्हें 'अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पित करने के निश्चय की यही भूमिका है। इस निश्चय द्वारा सम्मेलन उनकी हिन्दी सेवा की प्रशंसा कर रहा है, उनका ऋण चुकाना तो प्रान्त के लिये सभव नहीं।

परन्तु शुक्ल जी की हिन्दी सेवाओं के साथ उनकी अन्य उतनी ही महत्वपूर्ण सेवाओं का विस्मरण या उनकी उपेक्षा सभव नहीं और यही कारण है कि ग्रन्थ सम्पादन समिति ने यह उचित समझा कि ग्रन्थ की सामग्री मध्यप्रदेश के सभी उच्छ्वासों का प्रतिनिधित्व कर—वह मध्यप्रदेश का प्रतिनिधि चित्र पाठकों के सम्मुख रखे। इसी कल्पना से प्रेरित हो ग्रन्थ को चार खण्डों में विभाजित किया गया है जिनमें भूतकाल का चित्र, वर्तमान का विवरण और भविष्य की झाकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु यह निश्चय इतना विशाल था कि ग्रन्थ में उसकी यदि झलक मात्र दिखलायी पडे तो यह आश्चर्यजनक नहीं। तथापि वह मध्यप्रदेश की गति और प्रगति का सबल चित्र सिद्ध होगा—मध्यप्रदेश के निर्माण में जिनका महत्त्वपूर्ण हाथ है, उन श्री शुक्ल जी के बलशाली चरित्र की भाति ही, इसमें कोई सदेह नहीं।

इस ग्रन्थ के आलेखन और सम्पादन में सम्पादन समिति के मित्रों के साथ विविध उपसमितियों के सयोजकों तथा अनन्य मित्रों का सहयोग रहा है। अत्यल्प समय में यदि यह ग्रन्थ मूर्तिमान रूप धारण कर रहा है तो वह इसी सहयोग के बल पर। डॉ बलदेवप्रसाद मिश्र, श्री विनयमोहन शर्मा तथा डॉ हीरालाल जी जैन ने ग्रन्थ के सम्पादन का विशेष भार वहन किया है। श्री प्रयागदत्त जी शुक्ल का सहयोग हर विभाग की सामग्री जुटाने में, उनकी दीर्घ साहित्य साधना की भाति ही, विशेष प्रशस्त रहा है। श्री कालिकाप्रसाद जी दीक्षित ने प्रान्त की भूमिका से उतने परिचित न होते हुए भी सतत उद्योग द्वारा साहित्य, कला और सगीत सम्बन्धी सामग्री सम्मुख लाने में बडी लगन का परिचय दिया है।

श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति ने जीवनी-विभाग के आलेखन व संग्रह तथा ग्रन्थ की छपाई आदि का लगनपूर्वक भार सम्हाला है। श्री शिवनारायण जी द्विवेदी तथा श्री राजेन्द्रप्रसाद अवस्थी ने प्रूफ देखने में सहायता दी है। सम्मेलन के स्थायी कर्मचारी श्री रेवाशंकर परसाई ने सम्मेलन के अन्य कार्यों की भांति ही इस कार्य के प्रति भी लगन का परिचय दिया है। सुबोध सिन्धु प्रेस के संचालक श्री एन. एल. प्रयागी तथा शासन मुद्रणालय के श्री वी. के. अय्यर का भी मैं आभारी हूं, जिन्होंने असुविधाओं के बावजूद अल्पकाल में मुद्रण का कार्य पूर्ण किया। शिवराज फाइन आर्ट लिथो वर्क्स के अधिपति श्री बाबूराव धनवटे व न्यू जैक प्रिंटिंग वर्क्स, बम्बई के संचालक श्री सेकसरिया बंधु के प्रति भी मैं आभार प्रदर्शित करता हूं, जिन्होंने मुखपृष्ठ तथा भीतर के रंगीन चित्रों की छपाई में अच्छा सहयोग दिया। श्री मुलगांवकर, श्री आठवले और श्री कुलकर्णी आदि कलाकारों ने ग्रंथ को सजाने में सहायता दी है। ग्रन्थ का कलेवर जिनकी सामग्री से पुष्ट हो रहा है उन लेखक-मित्रों का महत्त्व तो स्वयं सिद्ध ही है—मैं इन्हें क्या धन्यवाद दूं?

अन्त में, मैं श्री शुक्ल-अभिनन्दन ग्रन्थ समिति के सदस्यों तथा ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले सज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, जिन्होंने अपने सहयोग तथा सहायता से इस ग्रन्थ के निर्माण का निश्चय पूर्ण होने में मदद दी है।

सम्मेलन के अध्यक्ष श्री ब्रिजलाल जी बियाणी को धन्यवाद देना तो संभवतः मेरी मर्यादा के बाहर होगा, जिनकी सतत प्रेरणा और सक्रिय अभिरुचि से ही ग्रन्थ की योजना इतने शीघ्र मूर्त्त रूप धारण कर सकी है।

सम्मेलन कार्यालय
२ अगस्त, १९५५

रामगोपाल माहेश्वरी
प्रधान मंत्री, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा
प्रधान संयोजक, शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

कार्य का संक्षिप्त विवरण

मध्यप्रदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की दिनाक २८ नवम्बर १९५४ की काय-समिति की बठक में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुआ —

"प रविशकर जी शुक्ल सम्मेलन के ज मदाताओ में से है तथा उनकी हिन्दी सम्ब धी सेवायें, जिनमें मविधान सभा में हिन्दी के सम्ब ध में प्रयत्न, नागरी लिपि सुधार सम्मेलन में विशिष्ट योग, शासकीय काय में प्रा तीय भाषाओं का समावेश आदि कदम अत्यन्त उल्लेखनीय ह। इन सेवाओ तथा आपकी वृद्धावस्था को देखते हुए सम्मेलन यह आवश्यक समझता है कि आगामी ज म दिवस पर आपको अभिनन्दन ग्र थ भेंट किया जाय।"

इस काय के लिए सम्मेलन ने ९ सज्जनो की एक उपसमिति गठित की। इस समिति को अधिकार दिया गया कि वह इस सम्ब ध में प्रान्त के अ यान्य विशिष्ट सज्जनो को समिति में सम्मिलित कर ले। इस उपसमिति की बठक दिनाक १६ जनवरी १९५५ को हुई जिस में यह निश्चय किया गया कि वर्तमान सदस्यो को मिलाकर कुल ३१ सदस्यो की शुक्ल अभिनन्दन-ग्र थ-समिति गठित की जाय। तदनुसार गठित समिति की नामावलि इस प्रकार निश्चित हुई —

श्री ब्रिजलाल बियाणी	अध्यक्ष
प माखनलाल चतुर्वेदी	सदस्य
डा बलदेव प्रसाद मिश्र	,,
श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी	,,
प कुजीलाल दुबे	,,
महन्त लक्ष्मीनारायण दास	,,
श्री लोचनप्रसाद पाडे	,,
डा हीरालाल जन	,,
श्री प्रयागदत्त शुक्ल	,,
श्री नन्ददुलारे वाजपेयी	,,
डा वेणीशकर झा	,,
महामहोपाध्याय व्ही व्ही मिराशी	,,
ब्योहार राजेन्द्रसिंह	,,
श्री विनयमोहन शर्मा	,,
श्री वि रा ओक	,,
श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री	,,
श्री रामेश्वरप्रसाद शुक्ल 'अचल'	,,

श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी	सदस्य
श्री शेषराव वानखेड़े	"
श्री मनोहरभाई पटेल	"
श्री नर्मदाप्रसाद खरे	"
श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित "कुसुमाकर"	"
श्री नरसिंहदास मोर	"
रानी पद्मावती देवी	"
श्री परमानन्दभाई पटेल	"
श्री किरोड़ीमल अग्रवाल	"
श्री सूरजमल सिंघी	"
श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	"
श्री उमाशंकर शुक्ल	"
श्री खुशालचन्द डागा	"
श्री रामगोपाल माहेश्वरी	प्रधान संयोजक

समिति की इसी बैठक मे ग्रन्थ की सम्पादन समिति का भी निर्वाचन हुआ। यह भी निश्चय किया गया कि ग्रंथ में चार खण्ड रहे जो निम्न सामग्री के अनुसार विभक्त हों :—

१. जीवनी एवं संस्मरण।
२. प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व।
३. मध्यप्रदेश का साहित्य।
४. विविध—जिसमे मध्यप्रदेश के सिंहावलोकन के ढंग की सामग्री भी रहे।

उक्त विषयों के आधार पर सामग्री के संकलन हेतु निम्न उपसमितियां गठित की गई।

१. **जीवनी एवं संस्मरण :—**	डा. वेणीशंकर झा
	श्री हृषीकेश शर्मा
	श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति (संयोजक)
२. **साहित्य :—**	श्री विनयमोहन शर्मा
	श्री रामेश्वर शुक्ल "अंचल"
	श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री
	श्री नर्मदाप्रसाद खरे (संयोजक)
३. **मध्यप्रदेश का प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व :—**	डा. हीरालाल जैन
	श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय
	महामहोपाध्याय श्री व्ही. व्ही. मिराशी
	श्री प्रयागदत्त शुक्ल (संयोजक)

४ सिहावलोकन (मुख्य समिति) डा बलदेवप्रसाद मिश्र
श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी
श्री व्योहार राजेन्द्रसिह
प कालिकाप्रसाद दीक्षित "कुसुमाकर"
(सयोजक)

५ कला एव प्राकृतिक सौदय — व्योहार राजेन्द्रसिह
श्री ईश्वरसिह परिहार
श्री गोपाल शर्मा
श्री जगदीश चतुर्वेदी

६ सावजनिक जीवन — डा बलदेवप्रसाद मिश्र
श्री उमाशकर शुक्ल

७, प्राकृतिक एव आर्थिक साधन —प्राचाय पन्नालाल बरदुआ
श्री खुशालचन्द डागा
श्री रामानद झा

८ मराठी साहित्य — श्री आर जी सर्वटे
श्री व्ही आर ओक
श्री नि गो देशमुख

अभिनदन-ग्रथ के प्रकाशन सम्बधी अनुमानित व्यय-पत्र भी स्वीकार किया गया।

समिति की दूसरी बठक दिनाक ६ फरवरी १९५५ को हुई जिसमें ग्रथ की सामग्री के सम्बध में विस्तृत विचार हुआ।

इस बीच विभिन्न उपसमितिया एव सम्पादन समिति अपने काय में जुटी रही। समय की अत्यल्पता को देखते हुए पचमढी में सम्मेलन का एक विशेष शिविर एक माह के लिए आयोजित किया गया। सम्पादन समिति की बैठकें भी इस काल में होती रही। सम्पादन समिति की अन्तिम बैठक १० जुलाई को हुई।

श्री शुक्ल अभिनदन ग्रथ समिति की दि २२ जुलाई की बैठक में समारोह के सम्बध में विचार हुआ।

ग्रथ के प्रकाशन काय के लिए जिन सज्जनो से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई उसकी सूची अलग दी जा रही है।

विषय सूची

साहित्य खण्ड—चालू

विविध खण्ड

श्री शंकराचार्य भारती कृष्णतीर्थ स्वामी

आशिष :

मध्यप्रदेशंसचिवव्रजशीर्षमध्य-
रत्नायितेन रविशंकरनैजनाम्ना ।
शुक्लाभिधान्वयसमुद्भवविग्रहेण
प्रेम्णोद्यमेन सततं प्रचुरप्रचारम् ॥ १ ॥

हिन्दी गिरः साधु विधीयमानं
तदीयनैसर्गिकभावसिद्धान् ।
तद्व्यक्तितातत्कृतिपाटवादीन्-
स्वीयानुभूत्या विदितान्विचिन्त्य ॥ २ ॥

मध्यप्रदेशस्थितराष्ट्रभाषा-
सम्मेलनस्वामिध संस्थयाद्य ।
कृतज्ञतापूर्वमतीव राष्ट्र-
भाषाप्रचारप्रवणैकबुद्धया ॥ ३ ॥

अभिनन्दननिजलक्ष्य-
ग्रन्थसमर्पणकृते प्रेम्णा ।
विरचितमुत्सवमेनं
ज्ञात्वात्यन्तप्रमोदभरभरिताः ॥ ४ ॥

आशिषं : प्रयुञ्ज्महेऽभ्यर्थयाम ईश्वरान्-
सर्वदांश्च सर्वदानन्दपूरपूरितम् ।
दीर्घमायुरामयैर्हीनमेव सर्वतो
दातुमस्य निर्मलं भुक्तिमुक्तिसाधनम् ॥ ५ ॥

यो देवः सर्वसाक्षी यमिवरनिकरायं भजन्तेऽनुघस्त्रं
येन व्याप्ता त्रिलोकी विदधति मनुयश्चापियस्मैनमांसि ।
यस्माद्विश्वं प्रजातं जगति जनियुता अंशवो यस्य सर्वे
यस्मिन्बोभूयते च प्रसृमरकृपया पात्विमं सर्वरूपः ॥ ६ ॥

वाणी हिरण्यगर्भौ
कमलाकमलेक्षणौ शिवाशम्भू ।
निखिला निर्जरनिकराः
क्रियासुरस्यानिशं श्रेयः ॥ ७ ॥

अभिनन्दनपद्यमालिकेयं
रचितास्माभिरनन्तभव्यसिद्धयै ।
रविशंकरशर्मशुक्लनाम्नो
ऽखिलकल्याणकृते लसत्वजस्रम् ॥ ८ ॥

मध्यप्रदेश के जननायक पं० रविशंकर जी शुक्ल, राष्ट्र प्राण श्री नेहरू के साथ।

सन्देश

शुभ संदेश

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजी

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली।
१२ जुलाई '५५.

वहुत वर्ष हुए श्री रविशकर जी शुक्ल से काग्रेस के कार्य के सम्बन्ध में मेरी मुलाकात हुई थी। कालान्तर मे हमारा परिचय घनिष्ठता में परिणत हो गया। श्री शुक्ल जी जनसाधारण की सेवा और अपनी लगन के लिए शुरू से ही प्रसिद्ध है। वे चतुर ही नही, एक निर्भीक कार्यकर्ता है। जब कभी मौका आया उन्होंने इन गुणों का पूरा परिचय दिया। उदाहरण के रूप मे, एक समय जब वे जेल मे थे, अधिकारियों ने सब कैदियों के अगूठे का निशान लेने का नियम बनाया। इनसे भी अंगूठे का निशान देने के लिए कहा गया, परन्तु इन्होने देने से इन्कार कर दिया। अन्त तक ये अपनी वात पर डटे रहे यद्यपि जबरदस्ती निशान लेने में इनके साथ बड़ी सख्ती की गई।

सार्वजनिक कार्य मे अथवा प्रशासन के काम में जब कभी भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, शुक्ल जी धैर्य और बुद्धिमत्ता से काम लेते है और अपनी सूझबूझ से हर समस्या का कोई न कोई हल निकाल लेते हे। ७९ वर्ष की अवस्था मे भी वे किसी से कम शारीरिक परिश्रम नही करते। दफ्तर के काम के अलावा, दौरों आदि का काम भी वराबर करते रहते है। उनके परिश्रम और व्यस्त जीवन से नवयुवक भी प्रेरित हुए बिना नही रह सकते। दीर्घ अवस्था और भरपूर अनुभव के अतिरिक्त शुक्ल जी के दूसरे व्यक्तिगत गुणों के कारण सभी लोग उन्हे आदर की दृष्टि से देखते है।

श्री रविशंकर जी शुक्ल मध्यप्रदेश के मुख्य मत्री और उस राज्य के प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्ता ही नही हैं, वल्कि उच्च कोटि के साहित्य-सेवी भी है। अपनी विद्वता, कार्य-शैली और साहित्यानुराग द्वारा इन्होंने साहित्य की, विशेष रूप से हिन्दी भाषा की, जो सेवा की है वह वड़े महत्त्व की है। ऐसे वयोवृद्ध विद्वान्, अनथक कार्यकर्ता और अनुभवी प्रशासक के आदरार्थ जो प्रयास मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन द्वारा किया जा रहा है, उसका मै स्वागत करता हू और सहर्ष श्री शुक्ल-अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए अपनी श्रद्धांजलि भेजता हूं।

—राजेन्द्रप्रसाद

उपराष्ट्रपति डॉ राधाकृष्णन्

नई दिल्ली।

२९ जून '५५

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि प रविशकर जी शुक्ल उन्नासीवे वर्ष मे प्रवेश कर रहे है। यह योग्य ही है कि आप अभिनन्दन ग्रन्थ भेट कर इस प्रसग का समारोह मनायें। भारत के स्वातन्त्र्य-सग्राम मे एव स्वतन्त्रता के पश्चात् की उनकी सेवायें सुविदित है। अपनी अवस्था के बावजूद वे मन की स्फूर्ति एव उल्लेखनीय कार्यशक्ति का परिचय दे रहे है। वे चिरायु हो और आने वाले दीर्घकाल तक देश-सेवा में रत रहे।

—एस राधाकृष्णन्

मध्यप्रदेश के राज्यपाल डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या

राजभवन,
नागपुर।
२७ जुलाई '५५.

मुझे हमारे आदरणीय मुख्य मंत्री पं. रविशंकर जी शुक्ल के जन्म-दिवस के उपलक्ष में संदेश भेजते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। देश इस बात से परिचित है कि हमारे मुख्य मत्री, जो इस पद पर प्रथम सन् १९३७ मे अधीष्ठित हुए थे और जिन्होंने उस पद से अक्टूबर १९४० मे, युद्धारम्भ के बाद त्याग-पत्र दे दिया था, किस प्रकार तीसरी बार इस पद का भार निवाह रहे है। दूसरी बार में उनका राज्य का यह नायकत्व १९४६–१९५२ के बीच, लगभग ६ वर्ष का रहा। न केवल अपने निर्वाचन-क्षेत्र में, बल्कि समस्त राज्य में उनकी सतत लोकप्रियता एवं उनके प्रति विश्वास ही के कारण राज्य के राज्यपाल द्वारा उन्हें तीसरी बार मंत्रिमण्डल बनानें के लिए आमत्रित किया गया।

हम सबको यह विदित ही है कि वे अब अपना ७८ वां वर्ष पूर्ण कर रहे हैं, तथापि उनकी मानसिक अथवा शारीरिक शक्ति के शैथिल्य का कही परिचय नहीं मिलता। उन्हें सुस्वास्थ्य तो प्राप्त है ही, साथ ही प्रसन्न मुद्रा के कारण, एक बार अपना मंत्रिमंडल बनाने के बाद वे अपनी समस्त 'टीम' की सुसम्बद्धता बनाये है और इस प्रकार सुशासन की दृढ़ और सच्ची नीव रख रहे है। अपनी माधुर्ययुक्त कार्यप्रणाली, हँसमुख स्वभाव, साथ ही प्रमाणयुक्त दलीलों द्वारा वे अपने विरोधी को भी जीत लेते है। इस प्रकार उनकी अवस्था के प्रति श्रद्धा तो पैदा होती ही है, साथ ही उनकी बुद्धिमत्ता और व्यक्तित्व भी बरबस आकर्षण पैदा करते है।

हमारी भावी पीढ़ी के लिए वे एक ज्वलंत उदाहरण है और उसकें जीवन-संग्राम एवं संशय-ग्रस्त बुद्धि के बीच उनका व्यक्तित्व प्रकाश की भांति रहेगा।

हमारे मुख्य मंत्री का जीवन उन वर-पात्रों की भांति नही है जो ऐश्वर्य के बीच आगे बढ़े हो। वे आजीवन एक विश्वस्त सैनिक रहे है और राष्ट्र के उतार-चढ़ाव मे उनकी निष्ठा सदैव एक-सी रही है, प्रसग के अनुसार आज्ञा देने अथवा आज्ञा मानने को सदैव तत्पर। आज के पद के उपभोग के पूर्व उन्होंने एक युग तक ब्रिटिश साम्राज्य की जेलो की यातना सहनकर अपनी पात्रता सिद्ध की है। शासन की समस्याओ का निजी अनुभव प्राप्त करने के लिए इस अवस्था मे भी वे जिलों, तहसीलों और ग्रामों मे भ्रमण करने में आनन्द अनुभव करते हैं और यह उनका सौभाग्य है कि अपना व्यक्तित्व और वैशिष्ठ्य कायम रखते हुए भी अपने साथियों के साथ संहयोग की भावना से काम करते है। वास्तव मे भारत का प्रजा-प्रतिनिधि शासन, जिसके पीछे साढ़े सत्रह करोड़ मतदाताओं की मुक्त

इच्छा है, विज्ञान की अपेक्षा कला का ही अधिक रूप रखता है और शासन की सफलता राजकीय समस्याओ की सकीण व्याख्या अथवा नियमो, उपनियमो के कडे निर्बन्ध की बजाय शासन के नायक के व्यक्तित्व पर ही अधिक निर्भर करती है। व्यक्तित्व की खूबी न केवल सही धारणा और वस्तुस्थिति के योग्य विचार पर ही निर्भर है बल्कि औचित्य, प्रमाण और प्रभाव से प्रेरित सही भावना का विकास उसका आधार होना चाहिए। क्या मैं यह कहने का साहस करू कि ये गुण ही हमारे मुख्य मत्री जी की सफलता के आधार है ? सैन्य-अश्व की भाति सघर्ष मे वे और भी उभरते है। विरोध से उनकी शक्ति और भावनाए और जागृत होती है। राजनीतिज्ञ अथवा योद्धा—दोनो ही अवस्थाओ मे वे अपने मे निपुण है। मध्यप्रदेश की प्रगति और उत्थान का, चाहे वह कृषि के क्षेत्र में हो, अथवा उद्योग के, श्रेय उनके ही अध्यवसाय को है।

—बी पट्टाभि सीतारामय्या

श्री चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य

मद्रास।
१७ जुलाई '५५.

यदि किसी को अभिनन्दन-ग्रन्थ मिलना चाहिए, तो वे है वीर-वृद्ध रविशंकर शुक्ल—हमारे जी. ओ. एम. (भीष्म-पितामह)।

—सी. राजगोपालाचार्य

आचार्य विनोबा भावे

उड़ीसा पड़ाव।
१० जुलाई '५५.

मुझे जानकर खुशी हुई, हमारे वयोवृद्ध आदरणीय नेता पंडित रविशंकरजी शुक्ल के जन्म-दिवस के उपलक्ष में हमारे भाइयों ने उन्हें कुछ प्रेमोपहार समर्पण करने का तय किया है। उनका देश-प्रेम, त्याग और सेवा सबको मालूम है। बहुत से कार्यकर्त्ताओं और सेवकों के लिये वे एक पितृस्थान हैं।

"अमानी मानद:" इस कोटि के भक्त तो वे नहीं है, पर "स्वाभिमानी मानद:" इस कोटि के युक्त पुरुष हैं और लोक-नेता के लिये यह गुण-समुच्चय शोभादायक भी है। आशा करता हूं "जीजीवीषेत् शतं समा:" इस श्रुति का वे यथाशक्य समादर करेंगे।

—विनोबा के प्रणाम

गृह-मंत्री पं. गोविन्दवल्लभ पन्त

नई दिल्ली।
१९ जुलाई '५५.

यह जानकर कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन रविशंकरजी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर रहा है, मुझे खुशी हुई। रविशंकरजी ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में जो-जो काम किये है उसे मध्यप्रदेश का बच्चा-बच्चा जानता है। उनकी सरलता, मृदु स्वभाव और सहृदयता सबका मन बरबस अपनी ओर खीच लेती है। कांग्रेस मंत्रिमण्डल की बागडोर सम्भालने के बाद भी उन्होने मध्यप्रदेश को जिस प्रगति के रास्ते पर बढ़ाया वह सदा के लिए मध्यप्रदेश के इतिहास मे अंकित रहेगा। उनकी विद्यामंदिर शिक्षा-प्रणाली ने देश की शिक्षा-पद्धति को एक नया रास्ता दिखाया। कांग्रेस मे भी उनका कार्य हमेशा ठोस रहा। हिन्दी की प्रगति में रविशंकरजी का कार्य सराहनीय रहा है। इन सब प्रयत्नों का फल है कि मध्यप्रदेश में हिन्दी की उनके कार्यकाल मे सर्वांगीण उन्नति हुई है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे ताकि देश को उनका पथ-प्रदर्शन मिलता रहे।

—गो. व. पन्त

प्रतिरक्षा-मन्त्री डा कैलाशनाथ काटजू

नई दिल्ली।
२ अगस्त '५५

आज, जो पडित रविशकर शुक्ल का जन्म-दिवस है, मध्यप्रदेश एव वाहर के अगणित लोग यह प्रार्थना करेंगे कि वे दीर्घकाल तक मातृभूमि की निष्ठापूर्ण सेवा के लिये हमारे बीच रहें। उनका व्यक्तित्व अनोखा है। उनमे प्रवल आकर्षण है और वे अपने प्रति शत्रुत्व पैदा नही कर सकते। जो उनके सम्पर्क में आते हैं, वे उनके हो जाते है और उनकी सख्या महती है। उन्होने मध्यप्रदेश को जनता की मन, वचन और कर्म से सेवा की है। नि सदेह नव-भारत के राष्ट्र-निर्माताओ में उनका भी नाम गिना जायगा। मेरा उनका दीर्घकाल से परिचय है और मैने उन्हे अपना मार्गदर्शक, परामर्शदाता और मित्र माना है। हम इस समय भारत के महान विकास के पथ मे खडे है, और उनका मार्गदर्शन हमारे लिये वहुमूल्य होगा। हम दीर्घकाल तक वह प्राप्त रहे।

—कैलाशनाथ काटजू

मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मगलदास पकवासा

वम्वई।
१ जुलाई '५५

मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध तथा आदरणीय नेता का इस मौके पर आप सव लोगो के साथ दिल से अभिनन्दन करते हुए मुझे वहुत खुशी होती है। आपके द्वारा विभिन्न क्षेत्रो में की गयी सेवाओ से लोग भलीभाति परिचित है। राष्ट्रभाषा के प्रति आपका प्रेम सब लोगो को मालूम है और वे उसकी कदर करते है। हिन्दी को प्रशासन मे दाखिल कराने तथा उसका जनता में प्रचार करने की कोशिशो में मध्यप्रदेश आगे रहा है और पीढियो वाद जनता को पहली वार सरकार से अपनी भाषा में सीधे सम्वन्ध स्थापित करने का मौका मिला है। मेरी भगवान से प्रार्थना है कि वे आपको मातृभूमि की सेवा के लिये आरोग्य तथा दीर्घायु वनाये रहे।

—मगलदास पकवासा

भारतीय लोक सभा के अध्यक्ष श्री मावलकरजी

सेवा कुटीर,
अहमदावाद।
५ जुलाई '५५

पडित रविशकर जी शुक्ल के ७९वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से उनको अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट होनेवाला है, यह जानकर आनद हुआ। सम्मेलन को हार्दिक धन्यवाद।

पडित रविशकर जी उन अग्रगण्य नेताओं मे है जिन्होने देश की आजादी के लिए सारा जीवन देशकार्य में लगाया और आजादी के वाद देश की नवरचना के लिए जिन्होंने अपनी पूरी शक्ति और समय अर्पण किया है। साहित्य क्षेत्र में भी उनकी सेवाए देश को मिल रही है, यह हमारा सद्भाग्य है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु और आरोग्य प्रदान करे यही मेरी हार्दिक शुभ कामना है।

—ग वा मावलकर

उत्तरप्रदेश के मुख्य-मन्त्री श्री सम्पूर्णानंदजी

नैनीताल।
४ जुलाई '५५.

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने २ अगस्त १९५५ को पडित रविशंकर शुक्ल जी को उनकी उन्नासिवीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया है। यों तो शुक्लजी हिन्दी के पुराने सेवक और समर्थक हैं परन्तु उन्होंने जिस दृढ़ता के साथ मध्यप्रदेश में हिन्दी को राजभाषा बनाने के काम को अपने हाथ में लेकर सफलतापूर्वक सम्पादन किया है उससे सभी हिन्दी प्रेमियों को नैतिक बल मिला है। मैं इस अवसर पर हिन्दी लेखक के नाते उनके प्रति अपना समादर प्रकट करता हूं।

—सम्पूर्णानन्द

बिहार के मुख्य-मंत्री श्री श्रीकृष्णसिंह जी

रांची।
जुलाई २०, ५५.

मुझे यह जानकर अतीव हर्ष हुआ कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से मित्रवर पंडित रविशंकर शुक्ल को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने का आयोजन किया जा रहा है। शुक्ल जी भारतीय कांग्रेस के अग्रणी नेताओं में से हैं और राष्ट्र के लिए जो त्याग और बलिदान उन्होंने किया है उससे कांग्रेस-जनों को बड़ी प्रेरणा प्राप्त होती रही है। मुख्य-मंत्री के रूप में शुक्ल जी ने जिस खूबी के साथ मध्यप्रदेश की समस्याओं को संभालते हुए उसे प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाया है वह उनकी संगठन शक्ति एवं प्रशासन-कुशलता का उदाहरण है। राजनीतिक जीवन की जटिलताओ में रहते हुये भी उन्होंने जनजीवन के सांस्कृतिक पक्ष को ओझल नहीं होने दिया है। हिन्दी के उन्नयन में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है और "विद्या-मन्दिर योजना" शिक्षा के क्षेत्र में उनकी एक मौलिक देन है। आज के इस संक्रमण-काल में जब राष्ट्र दासता के बंधनों से मुक्त होकर निर्माण के महान प्रयोग में संलग्न हो रहा है शुक्ल जी के जैसे नेताओं की देश को बड़ी आवश्यकता है। मैं अभिनन्दन ग्रंथ के आयोजकों को इस शुभ कार्य के लिये बधाई देता हूं।

—श्रीकृष्ण सिंह

मद्रास के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश जी

प्रवास कोटलिम् ।
२५ जुलाई '५५

यह जानकर अन्य वहुत से मित्रो और महयोगियो के माथ-माथ मुझे भी वहुत आनन्द हुआ कि मध्यप्रदेश के मुख्य-मत्री पडित रविशकर जी शुक्ल की ७९ वी वपगाठ के शुभ अवसर पर प्रादेशिक हिन्दी साहित्य मम्मेलन की तरफ से उन्हे अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन हो रहा है। मै इस पुनीत उत्सव के ममय अपने वयोवृद्ध आदरणीय मित्र और नेता को हार्दिक बधाइ देता हू, और मेरी यही शुभ कामना है कि वे अभी वहुत दिनो तक हमारे वीच रहकर हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें और अपने कुशल हाथो मे प्रदेश का नियत्रण रख मकें।

पाठको को मभवत यह जानकर आश्चय होगा कि शुक्ल जी का और मेरा मपर्क मन् १९१० से है जव वे रायपुर मे वकालत करते थे और मैं काशी के अन्य विद्यार्थियो के माथ मैर करता हुआ वहा पहुचा था और उनका अतिथि था। स्वतत्रता-सग्राम के आरम्भ मे ही मुझे उनके माथ काय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वडे-वडे आन्दोलनों का उन्होने नेतृत्व किया है। हर्ष है कि उनके सत्कार्यों का परिणाम हमें अपनी आखो के सामने देखने का मौभाग्य मिला है। यह वडी प्रमन्नता की बात है कि वे इस अवस्था में भी शरीर और मस्तिष्क मे मवथा स्वस्थ हैं, और हममे से कितने ही जो उनमे आयु में छोटे है, यही चाहते हैं कि हमम भी उनकी ही तरह आतरिक शक्ति होती जिससे हम भी अपना मव काम उनकी ही तरह निर्भीकता, प्रमन्नता और कुशलता के साथ कर मकते।

राजनीतिक काय के साथ-माथ शुक्ल जी ने हिंदी भाषा और साहित्य की भी वहुत सेवा की है और ऐसे समय जव अगरेजी का साम्राज्य चारो तरफ फैला हुआ था और हिन्दी भाषा का लोग निरादर कर रहे थे, उस ममय उन्होंने उसकी आवश्यकता बतलाई, और अपने उदाहरण से उसका महत्त्व सिद्ध किया। शुक्ल जी ऐसे साहित्यिको के ही उत्साह और आयाम का यह फल है कि आज हिन्दी भाषा देश की राष्ट्रीय भाषा मानी गयी। जब और प्रदेश इस सबध मे सकोच कर रहे थे, उस समय शुक्ल जी ने अपने प्रदेश में इसको शासन के कार्या के लिए सफलता सहित प्रचलित कर दिया। यह भी प्रशसा की बात है कि उनके ऊपर दुराग्रह अथवा सकीर्णता का अभियोग नही लगाया जा सकता और उन्होने शासनीय कार्यो में अपने प्रदेश मे मराठी भाषा को भी पर्याप्त पद दे रखा है। यह उनकी विशेषता है कि उनसे किसी को कोई द्वेष नही है और सभी भाषा-भाषी उन्हें अपना ही मानते हैं। इस सबध में मध्यप्रदेश का उदाहरण सभी प्रदेशो के लिए अनुकरणीय है।

ईश्वर मे प्रार्थना है कि पडित रविशकर जी शुक्ल सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहें और चिरजीवी होकर अपने आचार और विचार से हम सव लोगो को भी ठीक मार्ग पर रखें, सवको समुचित रीति से वल प्रदान करें और सबको ही देश, भाषा और समाज की सेवा की तरफ प्रवृत्त और उत्साहित करते रहें।

—श्रीप्रकाश

भारतीय परिवहन मन्त्री श्री जगजीवनरामजी

नई दिल्ली।
५ जुलाई '५५.

यह कहना कि राष्ट्रभाषा हिन्दी भारतीय राष्ट्रीयता की देन है संभवत. सर्वमान्य न हो, लेकिन यह तो निर्विवाद है कि हिन्दी भाषा के विकास और प्रसार मे हमारी राष्ट्रीयता का वहुत वड़ा हाथ रहा है। भारत के उन राष्ट्रनायकों मे, जिन्होंने राजनीतिक संघर्ष के नेतृत्व के साथ-साथ हिन्दी भाषा को विकसित करने तथा उसे समृद्धशाली बनाने के प्रयत्नों का भी नेतृत्व किया है, मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध तथा आदरणीय मुख्य मंत्री पंडित रविशंकरजी शुक्ल का स्थान बहुत ऊंचा है।

मध्यप्रदेश के सचिवालय तथा अन्य सभी सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के द्वारा ही कार्य करने की पद्धति का समावेश करके उन्होंने हिन्दी की महान सेवा की है। इस कार्य के लिए जिस तुलनात्मक कोष की रचना हुई है उसका श्रेय शुक्लजी को है। ये कार्य उनकी हिन्दी-सेवा के महान स्मारक रहेगे।

मेरी हार्दिक कामना है शुक्ल जी दीर्घायु हों जिसमे हिन्दी भापा को अधिकाधिक परिष्कृत तथा समृद्धशाली बनाने के अपने प्रयत्नो को निर्दिष्ट सीमा तक शीघ्रातिशीघ्र पहुंचा सके।

——जगजीवनराम

हैदराबाद के मुख्य-मंत्री श्री बी. रामकृष्णराव

शाह मंजिल,
हैदराबाद दक्षिण।

मुझे यह जानकर अत्यत प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से, मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध आदरणीय मुख्य मत्री पंडित रविशंकर शुक्ल जी के ७९ वें जन्म-दिवस के शुभ अवसर पर उनकी हिन्दी भापा के प्रति जो सेवाएं है, उनके आदरार्थ उन्हें अभिनंदन ग्रथ भेट करने का निश्चय किया है।

हिन्दी भाषा के प्रति पंडित शुक्ल जी की सेवाएं इतनी अधिक है कि अभिनदन ग्रथ की परिधि मे उन्हे बांधना सरल काम नही। परन्तु यह स्वाभाविक है कि जनता अपने जननायक का आदर करे। इसलिए मैं इस आयोजन का हृदय से स्वागत करता हूं और शुक्लजी को श्रद्धांजलि भेंट करनेवालों की पंक्ति मे सहर्ष सम्मिलित होता हूं। ईश्वर से प्रार्थना है कि यह दिन वार-वार आए।

——रामकृष्णराव

मध्यभारत के मुख्यमंत्री श्री तख्तमलजी जैन

ग्वालियर।
१८ जुलाई '५५.

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने राज्य के मुख्य मंत्री पंडित रविशंकरजी शुक्ल को उनके ७९ वे जन्म-दिवस पर एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेट करने का निश्चय किया है। शुक्लजी देश के एक यशस्वी और वयोवृद्ध नेता है। उन्होने समस्त देश की, और विशेष कर राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो सेवाये की है वे सर्वविदित है। इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूं।

——तख्तमल

लोकनायक माधव श्रीहरि अणे

पूना।
१९ जुलाई '५५

पंडित रविशंकर जी शुक्ल के ७९ वें जन्म दिवस पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाओं के साथ उनका अभिनन्दन करता हूं। भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम और उत्थान में उन्होंने गौरवपूर्ण योग दिया है। मध्यप्रदेश में शासक के नाते भी उनकी सेवायें कम उल्लेखनीय नहीं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनमें सदा दृढ़ अनुराग रहा है। उत्तम स्वास्थ्य कायम रखते हुए, अपनी वृद्धावस्था के बावजूद प्रान्त की सेवा करने की उनकी भावना आज भी उतनी ही प्रबल है। मध्यप्रदेश और मातृभूमि की सेवा के लिए मैं उनके दीर्घजीवन और सुख की कामना करता हूं।

शतम्‌जीव शरदो वर्धमान
शतम् हेमन्तान् शतमु वसन्तान्। (ऋग्वेद)

—एम एस अणे

विंध्यप्रदेश के मुख्य-मंत्री श्री शम्भूनाथजी शुक्ल

रीवा।
१९ जुलाई '५५

पूज्य रविशंकरजी शुक्ल की ७९ वीं वर्षगांठ के अवसर पर अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जानेवाला है, इस शुभ समाचार से मुझे बड़ी खुशी हुई। लगभग २० वर्षों से मेरा तथा उनका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। मैंने उनको बहुत निकट से भी देखा है। उन्होंने अपने जीवन में जो उतार-चढ़ाव देखे हैं, शायद बहुत कम लोगों ने देखा होगा। उनका देश-प्रेम अत्यन्त ही सराहनीय रहा है। उन्होंने देश की आजादी की लड़ाई में जो सक्रिय सहयोग दिया वह किसी से छिपा नहीं है। जिन आंधी-तूफानों का धैर्य से मुकाबला करते हुए उन्होंने मध्यप्रदेश के शासन को सचालित किया है उसकी सराहना सभी करते हैं। इतनी अवस्था होने पर भी आज जिस अदम्य उत्साह से वे अपने कर्त्तव्य-मार्ग में आगे बढ़ रहे हैं उससे नवयुवकों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

मेरी यही शुभ कामना है कि पूज्य शुक्ल जी बहुत दिनों तक स्वस्थ तथा प्रसन्न रहकर अपने कर्त्तव्य मार्ग पर डटे रहें ताकि हमारे ऐसे लोगों को उनके जीवन से स्फूर्ति तथा प्रेरणा मिलती रहे।

—शम्भूनाथ शुक्ल

भोपाल के मुख्य-मन्त्री डा. शंकरदयाल शर्मा,

भोपाल।
२ जुलाई '५५,

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भारत के वयोवृद्ध नेता, पंडित रविशंकर शुक्ल को उनकी ७९ वी वर्षगांठ पर एक अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित कर रहा है।

पंडित रविशंकर शुक्ल भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे है। श्री शुक्ल जी ने अंग्रेजी शासन के दमन और आतंक से अविचलित रहकर और कांग्रेस के आदर्शों पर चलकर भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अनथक परिश्रम किया है। उनके बलिदानी साहस ने स्वतंत्रता संग्राम के सैनिकों को सदैव प्रेरणा दी है।

हिन्दी के लिए पंडित रविशंकर शुक्ल के हृदय में अटूट प्रेम है। आपने सर्वदा हिन्दी को वढ़ाने का प्रयास किया है। संविधान परिषद् में श्री. शुक्ल जी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में पूरी कोशिश की और आज मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री के रूप में हिन्दी के साहित्यकों को प्रोत्साहित करके तथा हिन्दी के विविध शव्दकोष बनवाकर हिन्दी को समृद्धशाली बनाने मे दत्तचित्त है।

मध्यप्रदेश के सर्वतोमुखी विकास के जो कार्य श्री. शुक्ल जी के मुख्य-मंत्री काल मे हो रहे हैं उनके लिए मध्यप्रदेश की जनता उनकी सदैव आभारी रहेगी और मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित अभिनन्दन में निश्चय ही सम्पूर्ण मध्यप्रदेश की जनता की शुभ कामनाएं सम्मिलित है।

मै भी श्री शुक्ल जी को उनकी ७९ वी वर्षगांठ के अवसर पर अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह जनसेवा और मार्गदर्शन के लिए अनेक वर्ष तक श्री शुक्ल जी को हमारे मध्य रखें।

—शंकरदयाल शर्मा

अजमेर के मुख्य मंत्री श्री हरिभाऊजी उपाध्याय

अजमेर।

२० जुलाई '५५

माननीय पंडित रविशंकर शुक्ल की गणना हमारे देश की उन गिनी-चुनी विभूतियों में है जिन्होंने भारत के आधुनिक इतिहास के निर्माण में सक्रिय योग दिया है और आज ७८ वर्ष की आयु में भी नौजवानों की तरह क्रियाशील हैं। संसदीय कार्य से उनका सम्बन्ध सन् १९२३ से रहा है जबकि वे स्वराज्य पार्टी के टिकट पर तत्कालीन प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये। अतः इस कार्य का उन्हें पूरा अनुभव है और यही कारण है कि उनके मुख्य-मन्त्रित्व में मध्यप्रदेश ने सर्वांगीण उन्नति की है।

गांधी जी की बुनियादी शिक्षा प्रणाली के अनुसार १९३७ में आपकी चलाई हुई विद्यामंदिर योजना का काफी विरोध हुआ था, परन्तु शुक्ल जी ने उसे सफल करके दिखा दिया। उस समय भारत में इस प्रणाली का सबसे पहले (शायद) यही प्रयोग किया गया था।

आपने विविध स्थितियों में रहकर अपनी प्रतिभा तथा योग्यता का परिचय दिया है। प्रारम्भ में ३ वर्ष तक खैरागढ़ हाइस्कूल में प्रधानाध्यापक रहे। स्वतंत्रता के आंदोलन में कई बार कृष्णमंदिर (जेल) को आपने सुशोभित किया। अपने प्रान्त के प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमंडल के मुख्य-मन्त्री और कांग्रेस के प्रधान स्तम्भ बनकर आपने मध्यप्रदेश को आगे बढ़ाने में अपने जीवन का प्रायः सारा भाग अर्पण कर दिया। ऐसे बहुमुखी प्रतिभाशील नेता आज हमारे बीच मौजूद हैं यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है।

उनकी ७९ वीं वर्षगांठ पर हम सबकी यही मनोकामना है कि भगवान् शुक्ल जी को चिरायु करें और देश को उनकी बुद्धि तथा उनके परिपक्व अनुभव का लाभ प्राप्त होता रहे।

—हरिभाऊ उपाध्याय

भारत सरकार के कृषिमन्त्री श्री पंजाबराव देशमुख

नई दिल्ली।

दि. १८ जुलाई '५५

उद्भट् देशभक्त और प्रसिद्ध नेता पं. रविशंकर जी शुक्ल के जन्म दिवस समारोह में अपनी शुभकामना द्वारा मैं भी सम्मिलित हो रहा हूं। शुक्लजी ने अपनी उच्च ख्याति और जनता की कृतज्ञता अपने त्याग और निःस्वार्थ सेवा द्वारा अर्जित की है। हिन्दी के उत्थान में उनका योग प्रसिद्ध है। मैं उनकी दीर्घायु की कामना करता हूं ताकि आगे आनेवाले अनेक वर्षों तक वे राष्ट्र और मध्यप्रदेश की उपयोगी सेवा करते रहें।

—पी. एस्. देशमुख

आचार्य श्रीमन्नारायणजी, महामन्त्री, अ. भा. कॉं. कमेटी

७, जन्तर-मन्तर रोड,
नई दिल्ली—१

दि. २२ जुलाई, १९५५.

जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से दिनांक २ अगस्त को "रविशकर शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित हो रहा है। पं. शुक्ल जी ने मध्यप्रदेश की इतने लम्बे अरसे तक जो सेवा की है वह किसी से छिपी नही है। आज भी ने इस उम्र मे मध्यप्रदेश के उत्थान के लिए अथक प्रयत्न कर रहे है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे।

—श्रीमन्नारायण

श्री एस. के. पाटिल, अध्यक्ष, बम्बई प्रां. कां. कमेटी

बम्बई।

दि. १९ जुलाई १९५५.

आदरणीय पं. रविशंकरजी शुक्ल के ७९ वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर हिन्दी भाषा के प्रति जो उनकी सेवाएं है उनके आदरार्थ मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें अभिनंदन ग्रंथ भेंट करने का निश्चय किया है, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रस्तुत योजना के लिए मै सम्मेलन का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

पं. शुक्ल जी से मेरा घनिष्ट संबंध रहा है। देश, समाज और हिन्दी साहित्य के प्रति उन्होंने जो सेवाएं प्रदान की है, वे नि:संदेह आदरणीय, अप्रतिम एव स्मरणीय है। पं. शुक्ल जी स्वभावत: अत्यंत मिलनसार, सेवापरायण, त्यागी, साहित्यप्रेमी एवं कुशल शासक होने के नाते उनका समुचित जीवन नवोदित समाज के लिए प्रेरक और अनुकरणीय रहेगा, ऐसी मेरी मनोभावना है।

लोककल्याणार्थ, परमेश्वर उनके शेष जीवन में उन्हे अधिक मांगल्य एवं आरोग्य सम्पन्नता प्रदान करे, यही मेरी उसके प्रति विनम्र प्रार्थना है।

—स. का. पाटिल

आचार्य शंकरराव देव

आश्रम सासवड़ (पूना)

दि. १३ जुलाई, ५५.

पंडित रविशंकरजी शुक्ल के ७९ वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर उनकी हिन्दी भाषा के प्रति जो सेवायें हैं, उनके आदरार्थ उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने निश्चय किया है, यह पढ़कर खुशी हुई। पंडितजी हमारे पुराने दोस्त है। शुक्लजी पुराण-पुरुष है। उन्होंने अपने देश की और समाज की दीर्घकाल के लिए सेवा की है। लेकिन पुराण-पुरुप होते हुए भी जो दुर्दम्य उत्साह है वह नवयुवकों को भी शरमिन्दा करनेवाला है। इस वात में वे आदरणीय हैं। उनको दीर्घ-आयु और आरोग्य का लाभ हो यह हमारी इच्छा है।

—शंकरराव देव

महाकोशल प्रां को क के अध्यक्ष बाबू गोविन्ददासजी

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्री शुक्लजी को उनके ७९ वे जन्म दिवस पर अभिनन्दन-ग्रंथ अर्पित कर रहा है यह जानकर प्रसन्नता हुई।

श्री शुक्लजी के और मेरे कुटुम्ब का पीढ़ियों का संबध है। यह संबध इतना पुराना और घनिष्ट है कि हमारे कुटुम्ब के विषय में जितनी जानकारी उन्हें है उतनी मुझे भी नहीं। उनके हमारे इस संबध को देखते हुए मैं उनके संबंध में क्या लिखू?

श्री शुक्लजी मध्यप्रदेश के सर्वप्रमुख कार्यकर्ताओं और जन-सेवकों में से एक हैं। उनकी सेवा में विविधता से सभी परिचित हैं। मैं श्री शुक्लजी चिरायु हों यह मनोकामना प्रगट करता हूं।

—गोविन्ददास

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

लगभग ढाई महीने की रोग शय्या पर से माननीय श्री रविशंकर जी शुक्ल के अभिनन्दन में मैं अपना हार्दिक अभिनन्दन अर्पित कर रहा हूं। प्रार्थना है, उनकी सक्रियता का लाभ दूर-दूर तक जनता को मिलता रहे।

—मैथिलीशरण

महाकवि श्री निराला

श्री शुक्ल अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए मेरी हार्दिक बधाइयां। कुछ लिख कर भेजता किन्तु अस्वस्थ हूं, फिर बुढ़ापे का शरीर—रुग्ण एवं जर्जर। सिवाय इसके कि शुक्लजी के दीर्घायु होने की मंगलमय से कामना करूं, और कर ही क्या सकता हूं।

वे मध्यप्रान्त की कीर्ति-कौमुदी को भविष्य में भी भासमान रखें।

—निराला

विहार लोक सेवा-आयोग के अध्यक्ष डॉ अमरनाथ झा

मैं इसको अपना सौभाग्य समझता हूं कि मैं वर्षों से श्री शुक्लजी से परिचित हूं और उनकी कृपा मुझपर सदा रही है। जब कभी मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला है, मैं उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ हूं। शासन कार्य में उनकी कुशलता समस्त देश में प्रसिद्ध है। जिस सफलता से उन्होंने मध्यप्रदेश का शासन इतने दिनों से चलाया है, जो सहयोग उनको जनता से प्राप्त हुआ है, जो आधिपत्य उनका राज्य के सभी अंगों पर है, इससे भी देश का प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। मध्यप्रदेश के सभी भागों की समस्याओं को सुलझाना और लोकप्रिय निर्णय करना केवल उन्हीं का काम है। इस अवस्था में भी जितना परिश्रम शुक्लजी करते हैं, वह युवकों के लिये भी कठिन है। जो कोई शुक्लजी से मिलता है उनकी सहृदयता और सरलता से मुग्ध हो जाता है और यह स्मरण रखना कि इतने बड़े प्रदेश के वे शासक हैं और इतनी बड़ी जनता के नेता हैं सुलभ नहीं होता। उनका प्रसन्न-चित्त और उनकी विनोदप्रियता विशेषरूप से सब को आकर्षित करती है। उन्होंने अपने शासन काल में मध्यप्रदेश की बहुत उन्नति की है और प्रदेश प्रगति के मार्ग पर बढ़ता जा रहा है। देश का हित चाहनेवाले सभी की ईश्वर से यह प्रार्थना है कि शुक्लजी स्वस्थ और दीर्घायु हों। मैं बड़े हर्ष से अपनी श्रद्धांजली अर्पित करता हूं।

—अमरनाथ झा

मध्यप्रदेश विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्त

पं. रविशंकर जी शुक्ल से मेरा सम्बन्ध लगभग सन १९११ से है जब कि मैंने गुरूकुल कांगडी (हरिद्वार) से अपनी सेवाओ के पश्चात् अपने पैतृक गृह दुर्ग मे आकर कार्य आरम्भ किया। विलासपुर मे स्वर्गवासी श्री राघवेन्द्र राव जी और रायपुर मे पं. रविशंकरजी शुक्ल हमारे नेता थे। रायपुर, दुर्ग और विलासपुर तीनो जिलो का कार्य प्रायः एक सूत्र से हुआ करता था। श्री राघवेन्द्र राव जी मे यदि राजनीति की कुशलता थी तो हमारे शुक्ल जी में कार्य करने के लिये चट्टान की दृढता और साहस था। एक वार कोई कोई कार्यक्रम निश्चित हो जाने पर कोई ताकत नही थी जो कि शुक्ल जी को उसे कार्यान्वित करने से रोक सके। रायपुर की परिषद् का मुझे स्मरण है जब कि अपने घर के सामने पुलिस कोतवाली की हिरासत मे वन्द होकर भी शुक्ल जी ने निश्चित कार्यक्रम को कराया।

हिन्दी के वे सदा से ही परम भक्त रहे है और जिन जिन सस्थाओं मे वे रहे उन सब मे ही हिन्दी की प्रगति क्रियात्मक रूप से करते रहे, क्या डिस्ट्रिक्ट कौसिल, क्या म्युनिसिपालिटी और क्या लोक सभा जहा भी उनसे वन पडा राष्ट्र भापा हिन्दी के लिये उन्होने पूरा यत्न किया। मुझे स्मरण है, वर्ष का ठीक स्मरण नही, परतु वहुत वर्प हो गये जव नागपुर विश्वविद्यालय के कोर्ट की वार्षिक वैठक मे नागपुर विश्वविद्यालय मे मातृभाषा हिन्दी और मराठी को शिक्षा का माध्यम वनाने के लिये एक प्रस्ताव मैने प्रस्तुत किया था तो पं. शुक्ल जी के प्रवल समर्थन का यह परिणाम हुआ कि उसके लिये एक समिति नियुक्त हुई और विश्वविद्यालय मे मातृभापा को शिक्षा का माध्यम वनाने के लिये इस पैमाने मे किसी शासकीय विश्वविद्यालय मे प्रयत्न होना भारतवर्ष मे सर्वप्रथम था।

संविधान सभा मे भी हिन्दी-हिन्दुस्थानी और हिन्दी-अंग्रेजी के झगडे मे हिन्दी को जो विजय प्राप्त हुई उसमे वहुत थोडे अन्य व्यक्तियों के साथ श्री शुक्ल जी का प्रमुख हाथ था।

पं. शुक्ल जी का एक वाक्य मे यदि मै अभिनन्दन करू तो वह इस प्रकार होगा :—

"पं. शुक्ल जी निर्भीक और निश्चय के पक्के है, निश्चित कार्य को करने मे कोई विघ्न वाधा उनके आडे नही आ सकती और लडाई से भय खाकर वे पराङ्मुख होने वाले व्यक्ति नही है।"

—घनश्यामसिंह गुप्त

नागपुर हाईकोर्ट के प्रमुख न्यायाधिपति श्री हिदायतउल्ला

पं. रविशकर जी शुक्ल के ७९ वें जन्म-दिवस के अवसर पर प्रस्तावित अभिनंदन-ग्रथ के आयोजकों के साथ राष्ट्र के अभिनन्दन-स्वर मे अपना स्वर मिलाते हुए मुझे वास्तविक तथा हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकश. पुनरावृत्ति हो। राष्ट्र के प्रति की गई उनकी सेवाएं जितनी दीर्घकालीन है उतनी ही उज्वल भी हैं। इस राज्य की शासन-नौका के कर्णधार रहते हुए उन्होने जनता के उत्थान तथा नैतिक एव आर्थिक सुधार के क्षेत्र में अनुकरणीय तथा आदर्श कार्य किया है। राष्ट्र भाषा के प्रति की गई उनकी सेवाए चिरत्व की आशा के साथ फलवती हो रही है। मै कामना करता हू कि वे शतायु हों तथा इस राज्य की जनता के कल्याण के लिये सतत प्रयत्नशील रहे।

—म. हिदायतउल्ला

मध्यप्रदेश के शिक्षा मन्त्री श्री भगवतराव जी मंडलोई

मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध नेता हमारे मुख्य मंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल जी के प्रति जब भी हम विचार करते हैं तो हमारे हृदय में सहज ही उनके प्रति श्रद्धा और आदर उत्पन्न होता है। उनके व्यक्तित्व में एक अजीब आकर्षण है। इस उमर में भी उनका शरीर सुदृढ़ है और उनमें काम करने की अद्भुत क्षमता है। जहां एक ओर उनमें सरलता, सादगी और सहृदयता है वहां उनमें कार्यरत होने की शक्ति और अपने निश्चय की दृढ़ता भी है। आशा और उत्साह भरे मुस्कराहट चेहरे से तेज टपकता है।

देश के स्वातंत्र्य संग्राम में उनका विशेष स्थान है। स्वतंत्रता के प्रत्येक आंदोलन का उन्होंने सफल संचालन किया है। गत ४० वर्षों से प्रांत की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उथल पुथल में उनका हाथ रहा है। इस तरह गत कई वर्षों का प्रदेश का इतिहास उनके कार्यों का विवरण हो गया है।

जब से प्रदेश के शासन की बागडोर उनके हाथों में आई है तब से इस प्रदेश की बहुमुखी उन्नति हुई है। मध्य प्रदेश जो कि एक पिछड़ा हुवा प्रदेश समझा जाता था, आज कई कार्यों में देश में अगुआ समझा जाता है। इसका विशेष श्रेय शुक्लजी को है। वे हमेशा प्रदेश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी हार्दिक इच्छा यही है कि हमारा प्रदेश सभी तरह से सुखी व सम्पन्न बने।

श्रद्धेय शुक्लजी की ७९ वी वर्षगांठ के शुभ अवसर पर इन शब्दों के साथ मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं व ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें दीर्घायु प्रदान करे ताकि इस राष्ट्र निर्माण के युग में हमें उनका मार्गदर्शन प्राप्त होवे।

—भ. अ. मंडलोई

मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री श्री कन्नमवार जी

मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध आदरणीय मुख्य मंत्री पंडित रविशंकर जी शुक्ल के, दिनांक २ अगस्त १९५५ को ७९ वे जन्म दिवस पर उनके आदरार्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट करने का निश्चय किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

उनके जीवन के विषय में कई वर्षों के राजनैतिक क्षेत्र में और मंत्रित्व काल में मुझे जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है वह निवेदन करूंगा। शुक्लजी में अध्ययनशीलता, विचारशीलता, सहनशीलता, दूरदर्शिता, लोक संग्राहकता, समयसूचकता और राजनैतिक कुशलता ये प्रमुख गुण हैं। उनका जीवन बुद्धिमत्ता, सहृदयता और व्यवहारिकता का सुंदर त्रिवेणी संगम है। वे तोड़ना नहीं जानते, जोड़ना ही जानते हैं। "सामावी बहुताची अंतरे। भाग्य येते तदनंतरें"। समर्थ स्वामी रामदास के इस वचनानुसार वे किसी का दिल नहीं दुखाते। निराश हुआ व्यक्ति उनसे मिलकर सांत्वना पाता है। सब के प्रति महानुभूतिपूर्ण और सहृदयशील बर्ताव से उन्होंने असंख्य व्यक्तियों का प्रेम संपादन किया है।

वे जितने हृदय से कोमल हैं उतने ही कर्तव्य कठोर भी हैं। सारे पहलू से विचार करने पर उनका जो निश्चय हो जाता है उसकी पूर्ति करने में वे *जमीन आसमान एक* कर देते हैं। उनका मस्तिष्क कभी अशांत नहीं रहता। समतोल दृष्टि से वे हरएक समस्या पर विचार किया करते हैं।

एक समय एक समस्या और वही विचार—यह उनकी कार्यप्रणाली रहती है। जब उनके सामने कोई एक समस्या आ जाती है तब वह सुलझाने में वे अपना सारा दिल और दिमाग लगा देते हैं। कोई भी सुखदायी या दुखदायी घटना उनको कर्तव्यपरायणता से हटा नहीं सकती। उनकी स्मरणशक्ति इतनी उम्र में भी अवर्णनीय है।

उनकी सहनशीलता सफलता की कुंजी है। बातचीत के दौरान में प्रतिपक्षी उनसे कितने ही तेजी से पेश आवे वे अपना संतुलन नहीं खोते। शांतता से बार बार अपनी बात समझाकर विरोधी के दिल पर काबू कर लेते हैं। कुछ दिन पूर्व की एक घटना है। विरोधी व्यक्तियों के समूह ने करीब तीन घंटे तक कुछ बातों के विषय में उनसे बहस की। वही बात बार बार दुहराने पर भी शुक्लजी भी पहले दिया हुआ जवाब दुहरा दिया करते थे—पूर्ण प्रसन्नता और शांतता पूर्वक। इस प्रकार तीन घंटे बीत गये। उनके साथियों को भी इस समूह के बारे में चिढ़ पैदा हुई परन्तु शुक्लजी हिमालय पर्वत की भांति अटल रहे। अन्त में उस समूह के नेता ने चिढ़कर अपमानजनक शब्द निकाले उस पर हंसते हुए पंडितजी ने बड़ी शांति से जवाब दिया, "अच्छा भाई मेरी बात झूठ और आपकी सच ऐसा ही मान लो, और मुझे छुट्टी दो।" इसका असर सब पर हुआ और समूह के नेता विदा लेते समय शुक्लजी से गले मिले।

शुक्लजी का जीवन महान है—वे दीर्घायु हों यह प्रभु से प्रार्थना है।

—मा. सा. कन्नमवार

मध्यप्रदेश के समाज कल्याण मंत्री श्री दीनदयाल जी गुप्ता

आदरणीय मुख्य मंत्री पडित रविशंकर जी शुक्ल का स्थान हमारे प्रदेश के ही नही भारत के भी सामाजिक और राजनैतिक जीवन में अग्रगण्य है। उन्होनें अपने वात्सल्य प्रेम से नई पिढी का हृदय हमेशा के लिये अपनी ओर आर्कापित कर लिया। इस प्रदेश मे उनका स्थान हम नयी पीढीवालो के लिये पितृतुल्य है। समाज की सर्वागीण उन्नति के लिये उनके अथक परिश्रम एवं लगन हमारे लोगो के लिये सदा स्फूर्ति और प्रेरणा के स्रोत रहेगे। उनका अभिनन्दन यह हमारे प्रदेश की जनता का एक अनिवार्य कर्तव्य है। वह पूरा होता देख प्रदेश का हर व्यक्ति आनन्द से परिप्लुत हो जावेगा। प्रदेश के राजनैतिक जीवन मे हिन्दी को राजभापा घोपित करने मे उनके प्रयत्न हिन्दी के लिये एक अभिमान की और गौरव की स्मृति वनकर रहेगे इसमें सन्देह नही। उनके अभिनन्दन में मेरा हृदय सम्मेलन के साथ है। मै आशा करता हू कि यह ग्रथ हमारे प्रदेश की जनता के लिये एक गौरव की चीज वन कर रहेगा।

—दीनदयाल गुप्ता।

मध्यप्रदेश के स्वायत्त शासन मंत्री श्री पु. का. देशमुख

मुझे हर्ष है कि २ अगस्त १९५५ को मध्यप्रदेश के सम्मान्य वयोवृद्ध मुख्य मत्री पं रविशंकर जी शुक्ल के ७९ वे जन्म-दिवस के पुनीत अवसर पर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा उन्हे अभिनन्दन-ग्रथ भेट किया जा रहा है।

हिन्दी को अपनी मातृभापा कहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नही है ; परन्तु हिन्दी के प्रति मुझे सदैव वडा अनुराग और रुचि रही है। फलस्वरूप, मै पितामह-तुल्य शुक्ल जी की हिन्दी सेवा से परिचित रहा हू। उनकी सर्वोपरि विशेषता यह है कि वे जिस कार्य मे हाथ लगाते है, उसे वात्सल्य प्रेम से पूर्णरूपेण निवाहते हैं। हिन्दी भापा को उनके इस गुण का लाभ मिला ही है, परन्तु उनके वात्सल्य की परिधि विशाल है और उसमें राष्ट्र-निर्माण के अन्य सभी महत्वपूर्ण कार्यो को भी उसी प्रकार फूलने फलने का पूर्ण अवसर मिला है। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि इस अवस्था मे भी हमें उनकी सेवाएं पूर्ववत् उपलब्ध हैं। मुझे इसका व्यक्तिगत ज्ञान है कि पूज्य पंडित जी के सदैव प्रयत्नशील रहने के कारण ही राष्ट्रभाषा हिन्दी इस देश मे उच्चतम गौरव प्राप्त कर सकी। यह सर्वथा स्वाभाविक एवं उचित है कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस अभिनदन-ग्रंथ द्वारा उनका आदर करे। उनके चरणो मे इस भेट को समर्पित करके सम्मेलन तथा समस्त हिन्दी प्रेमी कृतार्थ हो रहे है।

मै कामना करता हूं कि आदरणीय पंडित जी का जीवनकाल सुदीर्घ एवं मंगलमय हो और राष्ट्र उनकी सेवाओ का पूर्ण लाभ उठा सके।

—पु. का. देशमुख।

मध्यप्रदेश के कृषि मंत्री श्री शंकरलाल जी तिवारी

पंडित रविशंकर जी शुक्ल जन्म-जात नेता है। हजारो की भीड में वे अलग दिख जाते है। उनका अपूर्व तेज, अदम्य साहस और विशाल करुणामय हृदय उनकी विशेषताए है, जो उन्हे सहज ही महान् जन-नायकों की श्रेणी में ला रखती हैं। वे निर्भीक नेता हैं। जहां तूफान हो वहीं कूदना जानते हैं। कठिनाइया जितनी वडी हों, उतन ही वे ऊंचे उठते जाते है। परीक्षा-काल मे उनके गुण और भी उभर आते है। प्रान्त की विच्छिन्न शक्तियो को उन्होंने एकत्रित किया है और उसे व्यक्तित्व और प्रेरणा दी है। ऐसे नेता को पा कौन धन्य न मानेगा? ईश्वर उन्हे चिरायु वनावें।

—शंकरलाल तिवारी।

राजाबहादुर वीरेन्द्रबहादुर सिंह जी, उप मंत्री, मध्यप्रदेश

खैरागढ़ एक ऐसी छोटी-सी बस्ती है जहां लगभग सब निवासी एक-दूसरे से स्नेह-बंधन में बंध जाते हैं। जो वहां कुछ दिन का ही प्रवास करते हैं, वे भी खैरागढ़ निवासियों की स्मृति में सुरक्षित रहते हैं। यह तो साधारण निवासियों की बात है। जिन असाधारण व्यक्तियों ने वहां कुछ दिन निवास किया है, वे कथा-गाथा या पूर्वोतिहास के रूप में सदा सर्वदा विद्यमान रह जाते हैं।

पंडित जी खैरागढ़ के लिए इसी पूज्य कोटि के एक प्रातःस्मरणीय पात्र हैं। मैं ने सर्वप्रथम अपने बड़े-बूढ़ों से उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता तथा भव्यता की अनेकानेक गाथाएँ सुनी थीं। वे खैरागढ़ हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक के रूप में कुछ वर्ष वहां निवास कर चुके थे। उनके शिष्यों में अनेकों ने अपने जीवन में अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में विशेष सफलता प्राप्त की। खैरागढ़ के भूतपूर्व सुपरिन्टेन्डेन्ट स्व. श्री हरप्रसाद वर्मा, राजनांदगांव के भूतपूर्व दीवान स्व. श्री बेनीप्रसाद तिवारी, सरस्वती के स्वनामधन्य सम्पादक श्री पदुमलाल जी बख्शी तथा उनके अग्रज श्री धनलाल जी बख्शी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

मेरे पिता, राजा लालबहादुर सिंह जी ने भी खैरागढ़ में उनसे शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में राजकुमार कालेज, रायपुर में फिर उनसे कानून तथा राज्य शासन की शिक्षा प्राप्त की। अतएव पितृगुरु के नाते वे मेरे पितामह तुल्य हैं।

कार्यव्यापार हाथ में लेने पर मुझे पंडित जी के दर्शन होने लगे थे। पिताजी के निधन के बाद मेरी माता जी बहुधा उन से अपने कार्य-कलाप के सम्बन्ध में सलाह लिया करती थीं। ऐसे समय मुझ से कुछ वार्तालाप होता था। जैसे-जैसे आयु बढ़ती गई, सम्पर्क भी बढ़ता गया। उनके परामर्श से मैंने सदैव लाभ उठाया।

राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद जब कभी मुझे किसी कठिन समस्या का सामना करना पड़ा, तब मुझे पंडित जी की सहायता प्राप्य रहती थी। तत्कालीन शासन की हमारे सम्बन्ध पर वक्रदृष्टि रहती थी परन्तु जब पंडित जी कृष्णमंदिर में रहते थे, तब भी हमारा पत्र-व्यवहार चलता ही रहता था।

एक मनोरंजक घटना यह है कि एक बार पंडित जी मेरी अदालत में वकील के रूप में उपस्थित हुए। मुझे बड़े संकोच का अनुभव हो रहा था, परन्तु उन्होंने अपने व्यवहार से ऐसा वातावरण उपस्थित कर दिया कि मेरा कार्य भली प्रकार सम्पादित हो सका। बाद में उन्होंने मेरे शासन के सम्बन्ध में पूछताछ की और अपना सन्तोष प्रगट किया। यह लगभग सन १९३६-३७ की घटना है। इस के बाद ही वे प्रान्तीय मंत्री-मंडल में आ गए।

जब मध्यप्रदेशीय रियासतों का प्रदेश में विलीनीकरण हुआ तब तो क्या मेरा, क्या अन्य राजाओं का उनसे राज रोज का सम्पर्क होने लगा। सरदार पटेल तो इस प्रकरण के नायक थे ही, मुझे यह स्वीकृत करने में कोई संकोच नहीं कि पंडित जी के कारण राजाओं तथा उन की प्रजा के भविष्य पर सहानुभूतिपूर्वक विचार हुआ और दोनों का उपकार हुआ। इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि पंडित जी राजाओं और उन की प्रजा की समस्याओं से पूर्णरूप से परिचित थे।

पंडित जी के अधीन कार्य करने में मैं अत्यन्त गौरव का अनुभव करता हूँ। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है पंडित जी का पथप्रदर्शन हमें सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहे।

—वीरेन्द्रबहादुर सिंह।

विदर्भ प्रा. कां. क. के अध्यक्ष श्री गोपालराव जी खेडकर

यह जानकर हर्ष हुआ कि मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन माननीय शुक्ल जी के ७९ वें जन्मदिन के अवसर पर अभिनन्दन-ग्रंथ प्रकाशित कर रहा है। आज मध्यप्रदेश में ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष में पं. रविशंकर जी शुक्ल ने अपनी सेवाओं द्वारा अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है और उन्हें सभी आदर की निगाह से देखते हैं। इस प्रदेश में तो वासियों के कुटुम्ब के वे प्रपितामह गिने जाते हैं। जगदीश्वर पूज्य पण्डित जी को आयुरारोग्य प्रदान करे।

—गोपालराव खेडकर।

पंडित जी हमारे सूबे के वयोवृद्ध पुरुष है। मै, पंडित जी को सार्वजनिक क्षेत्र में, स्वर्गीय राघवेन्द्र राव, स्वर्गीय पूज्य मालवीय जी के सम्पर्क मे था, तब से जानता हूं। काग्रेस प्रवेश के वाद से तो नजदीक से केवल जानता ही नहीं हू वल्कि साथ में कार्य करने का तथा जेलो मे साथ रहने तक का सम्वन्ध आया और आज तक वढता ही रहा।

पडित जी अनेको उथल-पुथल में भी स्थिर रहे ; यहा तक कि खरे काड का मुकाविला करना पड़ा और पंडित मिश्र जी जैसे परम मित्र तक को त्यागना पड़ा किन्तु डिगना तो दूर रहा पंडित जी अपने सिहासन पर अक्षुण्ण रहे।

सम्मेलन उन्हे अभिनंदन ग्रंथ, उनके ७९ वें-जन्म-दिवस पर भेट कर रहा है तथा इस प्रकार उचित रूप से उनका सत्कार कर रहा है——मै उसके साथ हूं।

——पूनमचंद रांका।

भूतपूर्व न्यायाध्यक्ष श्री भवानी शंकरजी नियोगी

दिनाक २ अगस्त को ७९ वे वर्ष में पदार्पण करनेवाले पं. रविशंकर जी शुक्ल को मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से आदर-श्रद्धापूर्वक जो "अभिनन्दन ग्रन्थ" समर्पित किया जा रहा है, इस मांगलिक अवसर पर मै शुक्ल जी का अत्यंत प्रसन्नता, उत्सुकता और शुभकामना पुरस्सर अभिनन्दन करता हू। मै आपको पूरी गत अर्ध शताव्दी से जानता हूं और वरावर देख रहा हूं कि वे अपनी तरुणाई के साथ ही देश सेवा के अनेक रचनात्मक कार्यो मे आत्म-समर्पण के साथ संलग्न है। शुक्लजी मे अदम्य उत्साह, अखंड राष्ट्रभक्ति, वुद्धिचातुरी, कार्यपटुता, हृदय की विशालता, धीरोदात्त नेतृत्व तथा ईश्वरनिष्टा पूर्णतया भरी हुई है।

ईशावास्य उपनिषद मे एक जगह पर "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवेत् शतं समा" ऐसा वचन है। जन-सेवा के विविध कार्यो मे प्रतिक्षण जागरूक रहकर आत्म-वलिदान करने के लिये मै अपने चिर परिचित महाभाग को "शतं जीव शरदो वर्धमान:" इस मंत्र के साथ अपनी शुभ कामना अर्पित करता हूं। वे स्वस्थ, सक्षम वने रहकर दीर्घायु हों।

——भवानीशंकर नियोगी।

राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ के सर सघ संचालक श्री गोळवलकर जी

आदरणीय पंडित रविशंकर जी शुक्ल के सम्मान हेतु अभिनन्दन ग्रन्थ उन की ७९ वी वर्ष गाठ पर समर्पित करने का विचार अत्यंत स्तुत्य है। मान्यवर शुक्लजी का संपूर्ण जीवन राष्ट्र विमोचनार्थ व्यतीत हुआ है और अग्रेजो के यहा से जाने के उपरान्त अपने प्रान्त का शासन-भार संभालने मे पिछले ८ वर्ष आपको अतीव परिश्रम के होते हुए भी आपने यह भार अतीव योग्यता से निभाया है, यह सर्वविश्रुत है। जिस अवस्था मे साधारण व्यक्ति कार्यभार से निवृत्त हो विश्राम की कामना करता है उस परिपक्व वृद्धावस्था मे अनेकविध समस्याओ से जटिल वने शासन के दायित्वपूर्ण कार्य को इतनी योग्यता से चलाना कोई सामान्य वात नही है। परन्तु मान्यवर पडित जी के जीवन मे जो धर्मश्रद्धा तथा तदनुरूप नियमपूर्वक आचरण करने की दृढता है उसीके कारण मन शान्त, सतुलित रखकर श्रेष्ठ सफल-कर्मी का जीवन निभाकर महान दायित्व पूरा करने की शक्ति उनमे प्रकट हुई है। श्री परमात्मा की उपासना——वैध या विधि-निषेध के परे होकर कैसी भी हुई तो सद्य: फलदायिनी सिद्ध होती है इसका माननीय पंडित जी का जीवन प्रत्यक्ष उदाहरण है——ऐसा मै मानता हूं। आपका यह परिश्रम से भरा कर्मी-जीवन, देश के हेतु सर्व प्रकार के कार्यो मे अविरत रूप से व्यस्त जीवन, आज की तरुण पीढी मे अध्यवसायी वृत्ति, श्रम करने का उत्साह, कर्तव्य-पथ पर अडिग् रहने का धैर्य प्रदान करने मे समर्थ है। मै आशा करता हूं कि इन गुणो का तथा धर्म-प्रेम एव आचरण का यह आदर्श अपनाकर देश का युवक-वर्ग अपने आप को योग्य राष्ट्र-सेवक के रूप में उपस्थित करने मे यत्नशील होगा।

व्यक्तिश: मेरे लिये यह मंगल अवसर अतीव आल्हाद देनेवाला है। श्रद्धेय पंडित जी के सहाध्यायी तथा एक ही पाठशाला के छात्र के रूप मे मेरे पूज्यपाद् चाचाजी तथा पूजनीय पिताजी थे इस कारण मै आपको अपने इन गुरुजनो की भांति ही अति प्रेमास्पद एवं आदरणीय मानता हू। अत मान्यवर पंडित जी की इस ७९ वी वर्ष गाठ के पुण्य अवसर पर उन्हे श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हुआ परमकृपालु परमात्मा के चरणो मे नम्र प्रार्थना करता हू कि माननीय पडित रविशकर जी शुक्ल को उत्कृष्ट स्वास्थ्य, सुखपूर्ण दीर्घ-जीवन प्राप्त हो जिससे कि देशवासी बाधवों के सम्मुख यह श्रेष्ठ आदर्श प्रत्यक्ष देखकर अपना जीवन योग्य वनाने की चिरकाल प्रेरणा मिलती रहे।

——मा. स. गोळवलकर।

शक्तिनरेश श्री लीलाधर सिंह जी

भारतीय कांग्रेस के प्रौढ़तम सेनानी, एवं देश के सच्चे गौरव, आदरणीय पण्डित रविशंकर जी शुक्ल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों में सदैव प्रथम पंक्ति के वीर रहे हैं तथा अपने त्याग, शौर्य एवं दृढ़ संकल्प से भारत मां की दासता के बंधनों को काटने में आपने अकथनीय योग दिया है। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में आप का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायगा।

आप से मेरा अनेक दिनों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है अतः एव आप को पास से देखने का मुझे पर्याप्त अवसर मिला है। अपने जीवन के प्रभात काल में ही आप ने देशभक्ति की शपथ ले, विश्ववंद्य बापू के निर्देशन में अपना सर्वस्व त्याग, देश सेवा का पथ अपनाया। अनेक बार आप ने कठोर कारावास यातना एवं अन्य कष्ट सहे, किन्तु आपने अपनी देशभक्ति के व्रत में तनिक भी आंच न आने दी। ज्यों ज्यों आप तपते गये, त्यों त्यों कंचन की नाईं और भी निखरते गये। धीरता विद्वत्ता, गंभीरता, कार्य-परायणता, नीतिमत्ता आदि अनेक सात्विक गुणों का, एक अद्वितीय संग्रह आपके विशाल मानस में हुआ है। इतना ही नहीं अपने समय के आप एक कुशल खिलाड़ी भी रहे हैं। इस प्रकार नैतिक, बौद्धिक एवं शारीरिक गुणों का आपमें एक अद्भुत सामंजस्य है। अनेक दिनों तक आप मध्यप्रदेश के "शिक्षण मंत्री" रहे तथा एक कुशल शिक्षक के अनुभव से आपने 'विद्यामंदिर' पद्धति को जन्म दिया, जो भारतीय संस्कृति, उद्योग तथा कला कौशल्य का सुन्दर नमूना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से आप मुख्य मंत्री के पद को सुशोभित कर रहे हैं। किन्तु फिर भी दम्भ आपको छू तक नहीं पाया है। अपने हृदय की आर्द्रता तथा वाणी की कोमलता से आप कोटि कोटि जन के हृदय हार बने हुए हैं।

आप हिन्दी भाषा के कट्टर समर्थकों में से हैं तथा हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में आप का सक्रिय सहयोग एवं बहुत बड़ा हाथ रहा है। साथ ही साथ ज्ञान की गरिमा तथा सद्भावों की महिमा से आपका अन्तर आप्लावित है। आप अपने नामानुरूप ही शुभ्र हृदययुक्त ऐसे कल्याणकारी "शंकर" हैं जिनके शीर्षभाग में "रवि" का तेज विराजमान है। आप आज अपने जीवन के ७१ वर्ष समाप्त कर चुके हैं। सप्तर्षियों का सौम्य तथा नवग्रहों का तेज आप में अभी भी विद्यमान है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका यश अनादिकाल के वक्षस्थल पर अमिट चिन्ह बनकर रहेगा।

मैं आप के प्रति अपनी शतशः शुभकामनाएं व्यक्त करता हूं तथा परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आपको दीर्घायु प्रदान कर आपके जीवन का पथ मंगलमय बनावें।

'जीवेत शरद शतम्'

—लीलाधर सिंह।

वीर वामनराव जी जोशी, अमरावती

आदरणीय पं० रविशंकर जी शुक्ल के आगामी जन्म-दिवस के शुभ अवसर पर उनको "अभिनन्दन-ग्रंथ" समर्पित किया जाने वाला है, यह जानकर मुझे संतोष हुआ।

पं० शुक्ल जी के विषय में एक विस्तृत लेख लिखने की मेरी इच्छा थी। परंतु अस्वास्थ्य के कारण वह पूरी नहीं हो सकी। ईश्वरेच्छा।

उनसे मेरा घनिष्ट स्नेह संबंध है एवं मैं स्वानुभव से यह निश्चित कह सकता हूं कि ऐसा मित्र मिलना एक बड़ा सौभाग्य है।

परमेश्वर उनको दीर्घआयुरारोग्य प्रदान करे, यही मेरी प्रार्थना है।

—वामन गोपाल जोशी।

विदर्भ साहित्य संघ के अध्यक्ष श्री बाबासाहेब खापर्डे

पं. रविशंकर जी शुक्ल से मेरा घनिष्ठ संबंध बहुत वर्षो से है। आपके राज्यशासन, सामर्थ्य और कौशल के विषय मे मेरे हृदय मे समादर सदा ही रहा है। इस प्रान्त का यह सौभाग्य है कि आप जैसा मुख्य मत्री यहा है। मै ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि पडितजी शतायु होकर भी अधिक वर्षो तक निरामय जीवन व्यतीत करे।

—बा. ग. खापर्डे।

विद्वद्रत्न श्री दप्तरी जी, नागपुर

मुझे आज होम्योपैथी के प्रचार के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नही अतः मै उसी दृष्टि से लिख सकूगा। मै होम्योपैथी बोर्ड की तरफ से उनका आभारी हू कि उन्होने मुझे होम्योपैथी बोर्ड का अध्यक्ष बनाकर एक समिति का भी गठन किया एवं भारत सरकार के विरोध के बावजूद दो वर्षो का होम्योपैथी अभ्यास का छोटा पाठ्क्रम निश्चित करने एवं उसे मान्यता दिलाने का धैर्य दिखलाया। अभी ही उन्होने नवेगाव मे डा. सेन द्वारा स्थापित होम्योपैथी आरोग्य-धाम शासन के अधीन ले लिया जिसके लिये रोगी उन्हे आशीष देगे। हमारे अनुरोधपूर्ण आग्रह पर उन्होने होम्योपैथी महाविद्यालय का उद्घाटन करके होम्योपैथी को प्रोत्साहन दिया है इसलिये हमारी शुभकामना यही है कि होम्योपैथी के उत्कर्ष के सहाय्य के सामर्थ्य मे दिन प्रतिदिन वृद्धि हो।

—के. ल. दप्तरी।

'तरुण भारत' के सम्पादक श्री माडखोलकर जी

मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध आदरणीय मुख्यमंत्री पं रविशंकर जी शुक्ल के आगामी जन्म-दिवस पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन अभिनन्दन ग्रंथ भेट कर रहा है यह बहुत आनन्द की बात है और यह जितने आनन्द की बात है उतनी ही उचित भी ; कारण प. रविशकर जी शुक्ल ने हिन्दी भाषा के प्रसार एव अभिवृद्धि का जितना निरन्तर प्रयास निष्ठा एव दृढता के साथ किया है, उतना अन्य किसी राज्य के मंत्री ने नही किया। व्यवहारोपयोगी शोध रचना से लेकर ग्रंथकारो को प्रोत्साहन तक भाषा एवं साहित्य की प्रगति के जितने उपक्रम इस राज्य मे हुए है अथवा शासकीय कार्य-व्यवस्था मे अंग्रेजी भाषा का प्राधान्य एकदम हटाकर हिन्दी तथा मराठी को इस राज्य की राज्य-भाषा घोषित करने तक की श्रृंखला मे मध्यप्रदेश अग्रणी रहा है एवं उसका समस्त श्रेय भी शुक्लजी के स्वाभिमान को है। राज्य-भाषा विधेयक के संबंध मे मेरा कुछ मतभेद हुआ तो भी उनकी सर्वसामान्य नीति हिन्दी के साथ मराठी को भी प्रोत्साहन देने की है, इसमें मुझे सन्देह नही। मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद उनकी साहित्याभिरुचि की मूर्तिमान स्मृति है।

पं. रविशंकर शुक्ल का साहित्य विधायक कार्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही उनका सास्कृतिक कार्य भी। उनके द्वारा मूर्तरूप धारण करनेवाली विद्या मन्दिर योजना, आदिवासी समुदाय के लिये किये गये उनके विविध प्रयत्न, समाज शिक्षा, विधायक कार्य एवं भारतीय सस्कृति के अभिमान की भावना से हिन्दी एव मराठी के साथ ही सस्कृत भाषा को दिया गया प्रोत्साहन, आयुर्वेद जैसी प्राचीन विद्या के पुनर्जीवन के लिये स्थापित सस्थाए उनकी सांस्कृतिक दृष्टि के उदाहरण है। गत १५ वर्षो के कार्यो का यह सिलसिला "कुलपति" शब्द के सम्बोधन से ही यथार्थतः व्यक्त हो सकता है।

उनके सास्कृतिक दृष्टिकोण के अनुरूप ही उनके सौहार्द एवं औदार्य के गुण है। इस कारण मुद्रण स्वातंत्र्य मे भी मध्यप्रदेश अग्रसर रहा है। तरुण-भारत के सम्पादक के नाते मुझे मध्यप्रदेश के मंत्रिमंडल एव पं. रविशंकर जी शुक्ल की निजी नीति पर टीका करने का अनेक बार प्रसंग आया है। इसमे पत्र की कर्तव्य भावना ही प्रमुख रही है। इसके बावजूद शुक्ल जी की सहृदयता मे मैंने कोई अन्तर नही पाया। इस देश मे प्रजातन्त्र प्रणाली के विकास के लिये यह आवश्यक है कि शासकीय प्रमुख पक्षोपपक्षो से समदृष्टि एवं उदार-वृत्ति का व्यवहार करे। पं. शुक्ल जी का औदार्य में मध्यप्रदेश के लोकाभिमुख शासन का लोकोत्तर भूषण समझता हूं।

परमेश्वर उन्हे दीर्घायु दे एवं प्रान्त पुनर्रचना के बाद भी उनके प्रौढ़ अनुभव का जनता को लाभ मिले, यह मेरी कामना है।

—ग. त्र्यं. माडखोलकर।

महाकोशल प्रा० का० क० के उपाध्यक्ष महंत लक्ष्मीनारायणदास जी, रायपुर

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने की प्रेरणा तो मुझे स्वर्गीय पं० माधवरावजी सप्रे के जीवन-काल में ही मिली थी परन्तु मेरे राजनैतिक जीवन का यथार्थ प्रारम्भ सन् १९१८ में ही हुआ जब कि मेरी आयु १८ वर्ष की थी। मेरे राजनैतिक जीवन के मुख्य निर्माता पं० रविशंकरजी शुक्ल हैं। सन् १९२० के पूर्व उनके साथ मेरा तीव्र मतभेद रहा परन्तु उसके बाद जो मतैक्य स्थापित हुआ वह आज तक कायम है क्योंकि मैं उनकी महानता से प्रभावित हो गया। इनके निकट सम्पर्क में मैं सन् १९२२ में हूं।

आदरणीय पं० शुक्लजी रायपुर जिले के सार्वजनिक जीवन तथा राष्ट्रीय कार्यों के प्राण हैं। आपकी राजनैतिक सामाजिक तथा धार्मिक सभी प्रकार की सेवाओं को जनता कभी नहीं भूल सकती।

आप सन् १९२६ से सन् १९३७ तक रायपुर की डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के चेयरमैन रहे। उस अवधि में आपके द्वारा समूचे जिले भर में राष्ट्रीय जागृति के जो-जो और जैसे-जैसे कार्य हुए वैसे भारतवर्ष में बहुत थोड़े नगरों में हुए होंगे। वह हृदयहीन विदेशी शासन का जमाना था। मगर वे उन दिनों में रायपुर की डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल के निजी छापाखाने ने जिले की जागृति और संगठन में बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा विशेष कार्य किया। दृढ़ संगठन के कठिन कार्य में वार्षिक ग्राम-शिक्षक सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। यह आपकी ही नीतिमत्ता और अपूर्व सेवा का परिणाम है कि मध्यप्रदेश में रायपुर जिला प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य में तभी से अग्रगण्य रहता आया तथा अब भी वैसा ही है। गत तीन साल से मुख्य मंत्री पद आपकी लोकप्रियता का स्वयं प्रमाण है।

आपकी सेवाओं से प्रभावित होकर रायपुर जिले की जनता ने तारीख ८ अगस्त १९४७ को आपकी ७१ वीं वर्ष गांठ मनाने का निश्चय किया था। उस समय आपके सम्मानार्थ एक लाख छिहत्तर हजार रुपये एकत्रित किये गये थे। इस थैली की भेंट एक आम सभा में की गई थी। इन रुपयों में से शुक्लजी ने महाकोशल शाखा के भारत सेवक समाज को एक लाख रुपये, जबलपुर के शहीद स्मारक कार्य को पचास हजार रुपये और रायपुर के खादी विद्यालय को दस हजार रुपये दिये हैं। इस तरह भेंट की सारी रकम राष्ट्रीय कार्यों में व्यय की जा रही है।

यह आपके ही प्रभाव का परिणाम था कि गांधी स्मारक निधि के रूप में प्रान्त भर में ग्यारह लाख रुपये एकत्रित हुए जिनमें से ५,०३,७४८-/-० केवल रायपुर जिले से प्राप्त हुए थे। इससे आपकी धन-संग्रह शक्ति का कुछ परिचय मिलता है।

माननीय शुक्लजी के जीवन में निस्वार्थ और निष्काम सेवा करने के अनेक अवसर आये हैं परिणामस्वरूप आपकी कई बार अग्नि परीक्षा भी हुई है। उनमें एक सफल सेनानी की तरह उत्तीर्ण होकर आपने सभी मोर्चों पर विजय प्राप्त की है। आपका हृदय विशाल है जिससे आप किसी के क्रोध को प्रेम एवं सहयोग से जीत लेते हैं और अपने विरोधियों को उनके हित की रक्षा कर अपना कर लेते हैं। वयोवृद्ध शुक्लजी का यह सिद्धान्त-सा बन गया है जो मेरे लिये कांटे बोता है उसके लिये मैं फूल उत्पन्न करना चाहता हूं। इनका हिन्दी प्रेम और निष्ठा तो सब पर विदित ही है।

स्थान और समय के अभाव में यह सम्भव नहीं कि कार्य-कुशल शुक्लजी के यशस्वी जीवन की घटनाओं और अनेक राजनैतिक सफलताओं का पूरा-पूरा वर्णन किया जा सके। उनका जीवन क्रम आरम्भ से अभी तक एक-सा रहता आया है, मैं उनका आज्ञाकारी सहयोगी रहा हूं और अभी भी हूं। मेरे हृदय में उनके प्रति बड़ा आदरभाव है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे दीर्घायु हों और वे दीर्घकाल तक हमारे पथदर्शक का काम करें।

—लक्ष्मीनारायणदास।

लोकसभा सदस्य श्री रामरावजी देशमुख, बार एट-लॉ

मेरे मित्र पं० रविशंकर शुक्ल के आगामी जन्म-दिवस पर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया जाने वाला है, उसका मैं हार्दिक स्वागत करता हूं एवं ईश्वर उन्हें भरपूर आयु दे उसकी कामना करता हूं।

मैं ईश्वर से यह भी प्रार्थना करता हूं कि उन्होंने जिस तरह इस राज्य का आज तक कार्यभार सम्हाला है वे उसे उसी प्रकार संचालित करते रहें एवं ईश्वर उन्हें उनके कार्यों की पूर्ति एवं संकल्पित योजना को पूर्ण करने के हेतु दीर्घ आयु एवं शक्ति दे।

उनके द्वारा प्रकट मनोरथों के अनुसार उनके कार्यकाल में ही उन्हीं के हाथों मराठी प्रान्त का विलीनीकरण एवं नए राज्य की स्थापना हो, यह मेरी शुभेच्छा है।

—रामराव देशमुख।

नागपुर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं विधान सभा सदस्य श्री मदनगोपाल अग्रवाल

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदरणीय पंडित रविशंकरजी शुक्ल को उनके आगामी जन्म-दिवस पर अभिनंदन ग्रंथ भेट कर रहा है। पंडितजी ने अपनी दीर्घकालीन सेवाओ द्वारा इस प्रान्त की प्रगति मे सबसे ज्यादा हाथ बटाया है। स्वतत्रता की लडाई में भी वे अग्रणी रहे और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश को प्रगति पथ पर ले जाने मे भी उन्होने पूरा हाथ बटाया। मुझ सरीखे नौजवानों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि किस तरह वे दिन-रात कार्य करते रहते हैं।

उनकी भव्य आकृति, मृदुल स्वभाव, और सौजन्य-पूण व्यवहार किसी को भी मुग्ध किये बिना नही रह सकता। जब वे प्रेम से हमारे कंधों पर हाथ रख देते है तो हम अपना विरोध भूल जाते है मानों उन्होने हमारे ऊपर कोई मोहिनी कर दी हो।

उनका जीवन हम नौजवानो के लिये अनुकरणीय है। ईश्वर उन्हे दीर्घायु करे जिससे वे देश की व इस प्रांत की जनता की अधिकाधिक सेवा कर हमे मार्ग दर्शन कर सकें।

—मदनगोपाल अग्रवाल।

अकोला के प्रमुख व्यापारी श्री गोपालदासजी मोहता

मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध, आदरणीय मुख्य-मंत्री प. रविशंकरजी शुक्ल के ७९ वे जन्मदिवस के शुभ अवसर पर मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन उन्हे "अभिनन्दन ग्रथ" भेट कर रहा है, यह जानकर खुशी हुई। इस शुभ अवसर पर मैं अपनी शुभ कामनाये प्रकट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि वे उन्हे दीर्घ आयुरारोग्य प्रदान करे, और उनके तथा सम्मेलन के द्वारा हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी की अधिक से अधिक सेवाए उत्तरोत्तर बनती रहे।

—गोपालदास मोहता।

भू. पू. संसद सचिव श्री रामगोपालजी तिवारी

पं. रविशंकर शुक्ल प्रांत में आज सर्वश्रेष्ठ सम्माननीय पुरुष हैं। यह श्रेष्ठता उन्हें सहज एवं स्वाभाविक रूप मे प्राप्त है। वे बड़ा दिल रखते है और उनके सब काम बड़े होते है। राष्ट्रीय, सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों मे उनकी लगन बोलती रही है एवं रायपुर मे उनके द्वारा संस्थापित अनेक संस्थाएं इसका प्रमाण है। सभी प्रवृत्तियों मे वे प्रमुख रहे है—वकालत में वे अग्रगण्य रहे और स्वातंत्र्य-संग्राम मे भी उनकी प्रखरता उसी प्रकार सामने आयी। रायपुर जिला कौन्सिल के द्वारा ग्रामीण-क्षेत्रो तक राष्ट्रीयता के अंकुर प्रस्फुटित करने मे उन्होने दूरदर्शिता का परिचय दिया है। प्रान्त की प्रगति का उन्होंने सर्वांगीण प्रयत्न किया है। वे बाधाओं से कभी डिगते नही और जो संकल्प कर लेते है, उसे पूरा करने मे सम्पूर्ण एकाग्रता के साथ भिड़ जाते है, प्रान्त का जीवन-स्तर उठाने मे उनके नायकत्व मे प्रशंसनीय कार्य हो रहा है।

स्व. श्री वल्लभभाई पटैल के रियासतो के विलीनीकरण के कार्य में मध्यप्रदेश में भी शुक्लजी ने योग दिया। छत्तीसगढ़ में शुक्लजी का जो सम्मान, एवं राजाओं पर उनका जो प्रभाव था उसी के फलस्वरूप नरेशो ने उनकी बात मानने में ही अपना कल्याण समझा।

मैं शुक्लजी के चरणो मे उनके जन्मदिवस के अवसर पर सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता हू।

—रामगोपाल तिवारी।

साहित्य अकादमी के सहायक सचिव, श्री प्रभाकर माचवे

प रविशकरजी शक्ल हिन्दी के बहुत बड सेवक और तप हुए राष्ट्रकर्मी ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध सज्जन है। उनके नि मेरे मन म आदर भाव ह। उन्ह अभिनदन-ग्रथ देकर सम्मेलन अपने प्रदेश का एक बडा ऋण अन्तत चुका रहा ह।

वे बहुत मिलनसार ह, सहज स्मितयुक्त मुद्रा मे, सब लोगो से समान भाव से मिलते है। वे शब्द निर्माण के विषय म उदार-चेतस ह। हिन्दी का हित उनके मन में सर्वोपरि ह।

एसे सच्चे अर्थो म 'महानुभाव' के दीर्घायु-आरोग्य का चिन्तन करते हुए म अभिनदन-ग्रथ की सफलता की शुभ-कामना करता हू।

—प्रभाकर माचवे।

राष्ट्र-सन्त श्री तुकडोजी महाराज

पडित रविशकरजी शुक्ल का इतनी उमर में इतना कठिन परिश्रम करने को म उनकी अजीब शक्ति का द्योतक समझता हू। जब जब मन उनसे मुलाकात की ह वे किसी न किसी काय में व्यस्त मिले ह। उनको देखने के बाद मेरी यही धारणा हो गई ह कि राजकीय कायभार भी सेवा का पवत ह। इस उमर में भी वे याद के इतने पक्के ह कि हरएक व्यक्ति के स्वभाव का नक्शा उनके सामने रहता ह। हर आदमी का पूण समाधान करना और अपनी बात को नही छोडना यह उनका खास ढग ह। उनकी धार्मिकता का भी मुझे परिचय हुआ ह। जब वे शकर की 'मूर्ति-स्थापना' की पूजा मे रहते थ तब दो-दो तीन-तीन बज तक भी मुह में पानी नही लेते थे। सारे आदमी भोजन करके चले गये किन्तु व पूजन पर ही बठे रहे—यह उनकी ही निष्ठा ह। वे अपनी सावधानी के लिये हमेशा तयार रहते ह। प शुक्लजी स मेरा काफी दिनो से परिचय ह। म उनके प्रति एक सेवक की भावना रखता हू। सारे काम अपने ढग स ही चले, यह उनकी अपनी दृष्टि ह मगर व समाज का दिल भी नही तोडते, ऐसे भोले भी ह। जो उनके नाम का सबध शकर के नाम में रखाता ह, वह गलत नही। मने कभी उनसे राजकारण पर चर्चा नही की। हम तो चाहते ह कि व देश सेवा के हित और भी काफी वष तक जिए और आजीवन आलीशान काम करने और ईश्वरनिष्ठा से सब पर प्रेम रखने का लाभ इनसे छोटी उमर वालो को और भी मिले।

—तुकडलादास।

सागर विश्वविद्यालय के कुलपति, श्री रामप्रसादजी त्रिपाठी

पडित रविशकरजी शुक्ल के दर्शन मुझे सवप्रथम प्रयाग में हुए थे। उस समय म उनको दूर से ही देख सका, किन्तु उनके व्यक्तित्व और सौम्य स्वभाव का मुझपर तुरत प्रभाव पडा। उसके उपरान्त सागर विश्वविद्यालय में उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब से आज तक, जहा तक मैं उन्हें समझ सका और देख सका, उनकी शिष्टता, उनकी दयालुता, उनकी उदारता और बन्धुता के प्रति मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढती ही गई ह। मध्यप्रदेश का सौभाग्य ह कि ऐसा महान् व्यक्ति यहा का मुख्य मत्री ह। जिस ओर म देखता हू, उनके व्यक्तित्व की झलक दिखलाई पड रही ह। ईश्वर स प्रार्थना ह कि शुक्लजी को दीर्घ जीवन और यथेष्ट स्वास्थ्य प्रदान करे जिससे वे इस प्रदेश की सेवा अनेक वर्षों तक करते रह।

—रामप्रसाद त्रिपाठी।

शिक्षा-शास्त्री श्री लज्जाशंकर जी झा, जबलपुर

हमारे प्रांत के मुख्य मंत्री माननीय पं. रविशंकर शुक्ल ७८वां वर्ष समाप्त कर दिनांक २ अगस्त १९५५ को ७९वां वर्ष आरंभ करेंगे। इतनी उम्र पा लेना कुछ कम महत्व की वात नही है; पर मेरे मत से विशेष महत्व इस वात का है, कि इस अवस्था मे भी स्वस्थ है, जमकर नवयुवको के समान काम करते है और देश की सेवा कर रहे है। फुर्ती भी काफी है। मुझे तो विशेष संतोष यह देखकर होता है, कि प्रभुता पाकर भी उनमें मद नही आया, इन्सानियत पहले सरीखी वनी है। वेदों में एक प्रार्थना है कि—

शतंजीवेम शरदः सवीराः।

यही प्रार्थना उनकी ओर से ईश्वर से करता हूं कि वे सौ वर्ष जियें।

—लज्जाशंकर झा।

"नागपुर टाइम्स" के भूतपूर्व और "ज्वाला" के वर्तमान संपादक श्री नारायणन्

अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पण के सुखद अवसर पर चरित्रनायक के अभिनन्दन पात्र में मुझे भी अपने पत्र-पुष्प के योग का अवसर मिला है। शुक्लजी ने चुनौतियो का आव्हान किया है एवं जव वे ७९ वर्ष के तरुण है तव भी पौरुषपूर्ण होकर सभी को चुनौती दे रहे है। प्रभावशाली स्वास्थ्य एवं झुर्रियांविहीन उनका मस्तिष्क हमारे इस लघु विश्व में उन्हे सर्वदा जीवनमय जीवन की प्रेरणा देते रहते है।

उन्होने भीष्म-पितामह की भांति स्वातन्त्र्य युद्ध का नेतृत्व किया है। स्वाधीन भारत में संसद सदस्य, राजनीतिज्ञ, मुख्य मंत्री एवं अग्रणी कूटनीतिज्ञ के रूप मे उनके परिचय की आवश्यकता नहीं है। आज हम जिनका अभिनन्दन कर रहे है, वे माननीय गुणो, विनम्रता, हास्य-स्मित मे अनुपम एवं अजेय है। स्वाधीन भारत में मध्यप्रदेश के इस शिल्पी के व्यक्तित्व मे समाविष्ठ मानव उनके शासक से भी ऊपर है। सत्य तो यह है कि वह उच्च व्यक्तित्व है—शव्दों एव शरीर मे। एवं व्यक्तित्व का आकर्पण पुष्प में सुगंध-सा रहना चाहिये। शुक्लजी में वह सुगंध अनन्त है। वह दीर्घकाल तक सजीव रहें।

—के. पी. नारायणन्।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के मंत्री, श्री मोहनलाल जी भट्ट

पण्डित रविशंकर शुक्ल-अभिनन्दन-ग्रन्थ श्रद्धेय शुक्लजी को अर्पण करने का आपका निर्णय अभिनन्दनीय है। शुक्लजी की सेवाएं महान् और अनुकरणीय है। भारत के निर्माण में—विशेपकर मध्यप्रदेश के निर्माण कार्यो मे उनका वहुत वडा योग रहा है। निर्माण के सव पहलुओं पर वे पूरा ध्यान दे रहे है। राजकार्य में हिंदी को उसका उपयुक्त स्थान दिलाने मे भी उन्होंने वड़ा परिश्रम किया है। मध्यप्रदेश ही एक ऐसा द्विभाषी प्रदेश है कि जिसके शासनकार्य मे हिन्दी तथा मराठी सर्वप्रथम अपनाई गई है और अंग्रेजी के स्थान पर उनका उपयोग होने लगा है। यह वड़ी प्रसन्नता की वात है कि उनके नेतृत्व में हिन्दी तथा मराठी का समान रूप से व्यवहार हो रहा है तथा ये दोनों भापाएं एक दूसरे की समृद्धि तथा विकास में सहायक हो रही है।

मुझे स्वयं तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति एवं उसके कार्यकर्ताओ को श्रद्धेय शुक्लजी मे सम्पूर्ण श्रद्धा है। समिति को उनका प्रेम तथा सहानुभूति सदा मिलते रहे है। हिन्दी का पारिभाषिक कोश, शासनोपयोगी शव्दों तथा प्रयोगों को तैयार कराने में उन्होंने वहुत श्रम किया है और कराया भी है। हिन्दी जगत् सदा-सदा इसके लिए उनका ऋणी रहेगा।

देश को अभी श्री शुक्लजी की सेवाओं की वड़ी आवश्यकता है। देश का निर्माण-कार्य अभी आरंभ ही हुआ है। ऐसे अवसर पर श्री शुक्लजी सदृश कर्मठ, दूरदर्शी तथा अनुभवी नेता का मार्गदर्शन देश के लिए वहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

मंगलमय परमात्मा से प्रार्थना है कि वे शतायु हों और देश को समृद्ध तथा स्वावलम्वी वनाने में सहायक हों।

—मोहनलाल भट्ट।

तुमसर के प्रमुख व्यवसायी श्री नरसिंहदास जी मोर

श्रद्धेय प रविशकर जी शुक्ल मध्यप्रदेश के गौरव और भारत राष्ट्र की विभूति है। उनका समस्त जीवन राष्ट्रोत्थान और लोक-कल्याण के काय में व्यतीत हुआ है। मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय जीवन के तो वे सवस्व ही हैं। उनके मुख्य-मत्रित्वकाल म मध्यप्रदेश न चहुँमुखी प्रगति की है और देश की समृद्धि तथा प्रगति में महत्वपूर्ण योग दिया है। गत ३५ वर्षो से वह ऋषि की भाति जनता जनादन की सेवा मे सलग्न है। राष्ट्र देवता की आराधना के साथ साथ उन्होने अपनी सस्कृति एव राष्टभारती हिन्दी की भी अनन्य सेवा की है। मध्यप्रदेश में आज हिन्दी को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिय जो भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा ह, वह श्री शुक्ल जी की ही प्रेरणा का फल है। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष पद को श्री शुक्ल जी ने ही अलकृत किया था। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूण पद पर आसीन कराने म भी श्री शुक्ल जी का बहुत बडा हाथ है। इसके लिये उन्होंने सविधान सभा में राजर्षि टडन जी के साथ मिलकर जो अथक श्रम किया वह सदा स्मरणीय रहेगा।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आदरणीय शुक्ल जी को उनकी ७९ वी वषगाठ के अवसर पर २ अगस्त को अभिनदन-ग्रथ भेंट करने का जो निश्चय किया ह वह अत्यत प्रशसनीय है। इस आयोजन के द्वारा हिन्दी जगत श्री शुक्ल जी के प्रति किंचित रूप में अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर सकेगा। म इस शुभ अवसर पर श्रद्धास्पद शुक्ल जी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए उनके दीघ एव स्वस्थ जीवन के लिये मगल कामना करता हू।

—नरसिंहदास मोर।

आयुर्वेद वृहस्पति पं. गोवर्धन शर्मा छांगाणी

पंडित रविशंकर शुक्ल मे सेवा, संयम तथा सहिष्णुता आपाद-मस्तक समाये हुए है। उनका कार्यक्षेत्र भी वड़ा व्यापक है। मुख्य मंत्री ही क्या, वे आज मध्यप्रदेश के सर्वेसर्वा है। आपके जीवन काल मे ही मध्यप्रदेश को विशाल-रूप प्राप्त हुआ है। इसकी प्रगति, उन्नति, समृद्धि और विकास के लिये शुक्लजी के हाथों अनेक संस्थाओ को जन्म मिला और वे भले भाति फूली और फली भी।

सस्कृत, हिन्दी और नागरीकी उन्नति मे, उन्हें उनके उचित स्थान दिलाने मे शुक्लजी सदा एक निष्काम तथा कर्मठ कर्मयोगी वने रहे है। भारत की विभिन्न भाषाए भी आपकी दृष्टि मे अत्यधिक आदरणीय है। अपनी प्रादेशिक हिन्दी-मराठी भाषाओ का भी आप सदैव हृदय से उत्कर्ष चाहते है।

आयुर्वेद की उन्नति मे भी श्रीमान शुक्लजी ने हमारा समय समय पर हाथ वटाया। मध्यप्रदेश मे आज जो कुछ आयुर्वेदीय चिकित्सापद्धति को राज्य का प्रश्रय प्राप्त है इसका पूर्ण श्रेय आपको ही है। संक्षेप मे मै शुक्लजी को सदा इस रूप मे देखता आया हू :—

नही सतप्त वैसे ही कभी भी सर्द ही देखा। रफा हो दर्द यो सवका सदा हमदर्द ही देखा ॥
स्वच्छ इक रंग में देखा, न स्याहो जर्द ही देखा। सदा गिरिराजसा इनको जवानो मर्द ही देखा ॥

मेरी हार्दिक शुभाकांक्षा है कि शुक्लजी सौ से भी अधिक चिरायु प्राप्त करे और सर्वथा सुखी रहे।

—गोवर्धन शर्मा छांगाणी

जबलपुर के रईस व्योहार रघुवीरसिंहजी

अत्यंत आनन्द का विषय है कि श्री शुक्लजी को उनकी महान सेवाओं और कार्यों के लिये अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने का आयोजन किया गया है। श्री शुक्लजी तो मेरे भाई की तरह रहे है। मै कालेज मे उनका सहपाठी रहा हूं एवं उनके साथ मेरी घनिष्ठ आत्मीयता रही है। सन् १९३३ मे जव महात्मा गान्धी मेरे निवास स्थान पर ठहरे तव शुक्लजी मेरे साथ थे। वह पुनीत एवं मधुर स्मरण मुझे कभी न भूलेगा। मै और वे करीव करीव एक ही आयु के है। उनका स्वास्थ्य और कार्यकुशलता देखकर मुझे वहुत हर्ष है। मुझे गौरव है कि आज वे इस प्रदेश के मुख्य मंत्री पद को सुशोभित कर रहे है।

इस मंगल अवसर पर श्री शुक्लजी को समस्त हार्दिक शुभ कामनाएं भेज रहा हूं।

—व्योहार रघुवीरसिंह

मध्यप्रदेश के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व मंत्री श्री घनश्याम प्रसाद "श्याम"

सन् १९३९ में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवा अधिवेशन रायपुर मे हुआ। इसके अध्यक्ष रायगढ नरेश स्व. चक्रधरसिह जी थे। इस सम्मेलन का उद्घाटन माननीय पं. रविशकरजी शुक्ल ने किया था। अपने भाषण में पडित शुक्ला ने घोषित किया था कि वह समय अव दूर नही है जवकि हिन्दी समस्त देश की राजभाषा के सम्मान को प्राप्त करेगी। अतएव हिन्दी के प्रति उसके लेखकों को जागरूक होकर उस मे ठोस निर्माण की ओर अग्रसर होना चाहिये। नई पीढी के लिय उन्होने अध्ययन का जोर दिया था और कहा था कि साहित्य हृदय और मस्तिष्क दोनो की उपज है जो विचार द्वारा मन्थन होकर शव्द द्वारा व्यक्त होकर अकारो द्वारा उतर आता है।

अन्य समारोहों के अवसरो पर भी शुक्लाजी ने अपने विचार प्रकट किये जिन में उन्होंने हिन्दी के प्रति आस्था ही नही कर्त्तव्यनिष्ठा को व्यक्त किया और साहित्य और साहित्यकारो के प्रति सदैव ही उन्होंने अगाध प्रेम प्रदर्शित किया। मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन को वे सजीव संस्था के रूप में देखने के इच्छुक थे यह वात ईश्वर की कृपा से सफल सिद्ध हो गई। उनके ७९ वे जन्मदिवस के अवसर पर मै उनके दीर्घजीवन की कामना करता हूं।

—घनश्याम प्रसाद "श्याम"

महात्मा भगवानदीनजी

शुक्लजी से मेरा पुराना परिचय है। हिन्दुस्तान की आजादी के सिपाही की हैसियत से हम दोनों साथ काम कर चुके है।

शुक्ल जी के चेहरे पर सदा सच्ची प्रसन्नता खेलती रहती है। प्रसन्नता से पहिले 'सच्ची' शब्द मैं सोच समझ कर और जान बूझ कर जोड रहा हूं। प्रसन्नता सदा सच्ची नहीं हुआ करती, बनावटी भी हुआ करती है। सच्ची प्रसन्नता उसीके चेहरे पर खेल सकती है, जो बहुतों का भला चाहता हो। भला चाहने का यह गुण शुक्लजी में है।

मुख्य मन्त्री में जो एक गुण होना जरूरी है और जो बहुत कम मुख्य मन्त्रियों में पाया जाता है, वह शुक्ल जी में है। उस गुण से उनके दुश्मन भी इन्कार नहीं कर सकते। वह गुण है, उनका खुले दिल मिलनसार होना। उनसे मिल कर शायद ही कोई उदास लौटे। अगर कोई उदास ही लौटना है तो इसमें शुक्ल जी का कोई दोष नहीं रहा होगा।

शुक्ल जी को मै 'हुकूमत की घोडी' का पक्का शहसवार मानता हूं। 'हुकूमत की घोडी' अपने सवार को कदम कदम पर गिराने के लिये तयार रहती है। रानो का पक्का ही उस पर टिका रह सकता है। 'हुकूमत की घोडी' जब चिराग पा जाती है, तब सवार के साथी तक घबरा उठते है, पर शहसवार के माथ पर जरा बल नहीं पडने पाती। उन्यासी की उमर में इस अडियल घोडी की कूद फांद को सम्भाल लेना क्या कम तारीफ की बात है?

इस सफलता के लिये बधाई और मेरा प्रणाम।

—भगवानदीन

श्रीमती जानकीदेवीजी बजाज, वर्धा

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हमारे प्रान्त के वयोवृद्ध कार्यकर्त्ता एवं देशभक्त के लिए यह आयोजन किया गया है। श्री शुक्लजी सब प्रकार से अभिनन्दन के योग्य है।

भारतीय राजनीति में मध्यप्रान्त का महत्व रहा है और मध्यप्रान्त में शुक्लजी की सेवाएं सदैव सराहनीय रही है। स्वतन्त्रता के लम्बे युद्ध से लेकर आज तक शुक्लजी ने देश की गतिशील शक्तियों का साथ दिया है। ऊपर मैने उनके लिए 'वयोवृद्ध' विशेषण दिया है, परन्तु उनकी कार्यक्षमता को देखकर कई युवक भी चकित रह जाते होंगे। बापूजी कहा करते थे कि 'भगवान् को सेवा लेनी है तो १२५ वर्ष तक लेंगे' इसी तरह, मै चाहती हूं कि शुक्लजी की सेवा भी देश को चिरकाल तक प्राप्त होती रहे।

श्री शुक्लजी जब जब बजाजवाडी मे आते थे, उनके लिये अपवाद रूप से पान का विशेष प्रबन्ध किया जाता था, क्योंकि बजाजवाडी से पान का वातावरण ही उठ गया था। शुक्लजी को पान की विशेष आदत है और उनके कारण सबके मुख लाल हो जाया करते थे। जब जब घर मे पान आते, तभी समझ लिया जाता कि शुक्लजी आए है अथवा आनेवाले है।

इस शुभ अवसर पर मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं कि शुक्लजी चिरायु हों और अन्य सेवाओं के साथ अपना अधिकांश समय गोवंश की वृद्धि और विकास के निमित्त प्रदान करते रहें।

—जानकीदेवी बजाज

डॉ॰ रामकुमारजी वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय

माननीय शुक्लजी के अभिनन्दन का संवाद प्रान्त ही के लिए नहीं वरन् देश भर के लिए स्फूर्तिदायक है। माननीय शुक्लजी केवल राजनीति के आचार्य ही नहीं—वे भाषा और साहित्य के समर्थ महारथी भी है। उनके अभिनन्दन पर कृपया मेरी श्रद्धांजलियां स्वीकार कीजिए।

—रामकुमार वर्मा

अखिल भारतीय बिडी निर्माता संघ के अध्यक्ष श्री परमानंदभाई पटेल

शुक्लजी की ७९ वी वर्षगांठ के अवसर पर वधाई देने में मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। भारतवर्ष के इस निर्माण काल मे उन्होने जिस लगन से अथक परिश्रम किया है उसके लिये हम सव सदैव उनके आभारी रहेगे। इस प्रदेश की दलगत राजनीति एवं वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा को मर्यादित रख कर उन्होंने इस प्रदेश के शासन मे जो दृढता एवं प्रगतिशीलता स्थापित की है वह स्तुत्य है। मै उनका सादर अभिनन्दन कर कामना करता हूं कि मध्यप्रदेश को गौरवशाली बनाने के लिये वे भविष्य मे भी अनेक वर्षो तक हमारा मार्ग प्रदर्शन करते रहे।

—परमानंद पटेल

रायगढ़ के ख्यातनामी सेठ पालूरामजी धनानियां

यह जानकर अत्यत प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन मध्यप्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री पं. रविशंकरजी शुक्ल को उनकी ७९ वी वर्षगांठ के सुअवसर पर अभिनन्दन ग्रंथ भेंट कर रहा है।

श्रद्धेय शुक्लजी की सार्वजनिक सेवाओं की चर्चा करना सूर्य को दीपक दिखालाने के समान है। मा भारती की शृंखलाओं को छिन्न-विछिद्ध करने मे शुक्लजी सदैव प्रथम पंक्ति में रहे है। त्याग, तपस्या, सेवा, उदार हृदयता के कारण समस्त मध्यप्रदेश मे उनकी गणना सार्वाधिक लोकप्रिय एव श्रद्धेय नेताओं मे होती है। इस आयु में श्रद्धेय शुक्लजी की कठोर दिनचर्या नवयुवकों को नतमस्तक करनेवाली है।

शुक्लजी राष्ट्रभाषा हिदी के वडे हिदायती है। मध्यप्रदेश मे ही नही. वलिक भारतवर्ष मे हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा बनाने में उनके प्रयत्न स्वर्णिभ अक्षरों मे अंकित किये जाने के योग्य है.

ऐसे महामनीषी का अभिनन्दन कर हिदी साहित्य सम्मेलन ने स्वयं को गौरवान्वित किया है। प्रभु से करवद्ध प्रार्थना है कि शुक्लजी को चिरायु बनाये ताकि राज्य और देश की सेवा अधिकाधिक उनके द्वारा होती रहे।

—पालूराम धनानियां

मध्यप्रदेश मिल मालिक संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष सेठ मथुरादासजी मोहता, हिंगणघाट

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आदरणीय मुख्य मंत्री पंडित रविशकरजी शुक्ल की ७९ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर उन्हे अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया जा रहा है। पंडितजी की सेवायें देश के लिये चिरस्मरणीय है। सन् १९२० के नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन से लगातार आज तक की आपकी सेवाये मध्यप्रदेश के लिये ही नहीं किन्तु सारे भारतवर्ष के लिये गौरवमय है। नागपुर विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा वनाने के जो साहसयुक्त कदम आपने उठाया उसे शिक्षण एवं हिन्दी साहित्य का इतिहास कभी नही भुला सकता। वयोवृद्ध होते हुए भी आप जिस स्फूर्ति और लगन से शासन एवं सामाजिक कार्यो मे रत रहते है वह स्फूर्ति तरुणो मे भी कतिपय ही लक्षित होती है। जव से आपने मध्यप्रदेश के शासन की बागडोर सम्हाली है तव से तो पंडितजी में शक्ति और स्फूर्ति और भी विशेष रूप से दिखाई दे रही है—कई वार देखा जाता है कि रात्रि मे प्रवास करने के उपरान्त दिन मे पुन शासन कार्य में व्यस्त हो जाते है। इस अवस्था मे यह लगन एवं शक्ति कोई मामूली वात नही है—यह ईश्वर की देन है।

हमारे सारे देश मे शासन की वागडोर सम्हालने वालो की "टीम्स" मे पडित रविशंकरजी शुक्ल सव में अधिक वयोवृद्ध है। यही नही, आपकी सफलताये भी विशेष महत्व रखती है। जो कार्य आप हाथ में ले लेते है उसे पूर्णरूपेण सफल कर दिखलाते है। भिलाई मे निर्माण किये जाने वाला इस्पात का कारखाना इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। मध्यप्रदेश के सूत कपडा मिल असोसियेशन के चेअरमन एव सदस्य की हैसियत से वैठकों में और अन्य कार्यो के लिये मुझे पडितजी से वारवार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिस कारण से पडितजी के सरल स्वभाव की जानकारी मुझे मिलती रही है। उनकी ७९ वी वर्षगाठ के अवसर पर मै परमेश्वर से कामना करता हूँ कि पडितजी शतजीवी होकर राष्ट्र सेवा मे संलग्न रहे और उनकी सेवाओ से मध्यप्रदेश आलोकित होता रहे।

—मथुरादास मोहता

गोंदिया के प्रमुख व्यवसायी श्री मनोहरभाई पटेल

हमारे प्रांत के लोकाग्रणी वयोवृद्ध आदरणीय मुख्य मंत्री पंडित रविशंकरजी शुक्ल के ७९ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर उन्हें उनकी इस प्रांत के साहित्यिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, सामाजिक व हर प्रकार के दूसरे क्षेत्रों में जो बहुमोल सेवायें की है उस सम्बन्ध में मध्यप्रांत हिंदी साहित्य सम्मेलन ने अभिनंदन ग्रंथ समर्पित करने का निश्चय किया है उसका हार्दिक स्वागत करते हुये मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें शतायु कर हमारे प्रांत का गौरव बढाने में समर्थ करें।

पूज्य पंडितजी इस प्रांत के एकमात्र धुरंधर राजनीतिज्ञ व अत्यंत लोकप्रिय नेता ही नहीं परन्तु अग्रगण्य जनसेवक भी हैं। उनकी देश सेवा व स्वार्थत्याग अतुल है। उनका चरित्र महान पवित्र व गौरवशाली है। परिणाम स्वरूप इस प्रांत की जनता उनको बडी श्रद्धा व आदर से देखती है। मैं उनके प्रति अपना हार्दिक अभिनंदन प्रगट करता हूं।

—मनोहरभाई

मध्यभारत के व्यवसायी श्री हुकमचंद पाटनी

मेरा जन्म स्थान सिवनी (मालवा), जिला होशंगाबाद होने के कारण मध्यप्रदेश और वहां के प्रमुख राजनीतिक कर्णधारों के प्रति मेरे हृदय में आकर्षण होना स्वाभाविक है। बचपन में अखबार पत्र पत्रिकाओं में मैं प्रान्त के दो प्रमुख कर्णधार माननीय पंडित रविशंकरजी शुक्ल का चित्र भी देखा करता था और इनके बारे में नाना कल्पनाएं किया करता था किन्तु विधि विधान के कारण मेरी शिक्षा-दीक्षा ही इन्दौर में नहीं हुई वरन मेरा स्थायी निवास भी इन्दौर हो गया। सिवनी आना जाना तो मेरा प्रायः होता ही रहता है परन्तु शुक्लजी के प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य सन् १९५३ में जब इन्दौर में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन हो रहा था तब प्राप्त हुआ। इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए शुक्लजी पधारे थे और उनके साथ मध्यप्रदेश के वित्त मंत्री आदरणीय श्री त्रिलोकचन्दजी सियाणी भी थे। जब मैं शुक्लजी से मिला और उन्हें यह मालूम हुआ कि मैं भी उनके प्रान्त का ही रहने वाला हूं तो उनका सहज स्नेह मेरी तरफ उमड पडा और उन्होंने मेरी प्रार्थना पर मेरे निवास स्थान पर स्वल्पाहार के लिए आना स्वीकार कर लिया, यद्यपि उन्हें इन्दौर से महू जाना था तथा वहां के एक विशेष कार्यक्रम में भाग लेकर सटका की गाडी भी पकडनी थी।

शुक्लजी का मध्यप्रदेश के निर्माण में बहुत बडा हाथ है। उन्होंने प्रांत की उन्नति के लिए लड झगड कर भी भिलाई में लोहे का विशाल कारखाना स्थापित करवाया है जो प्रान्त का आर्थिक ढांचा ही बदल देगा। जीवन में कितने ही अनेक राजनीतिज्ञों, धर्माचार्यों एवं साहित्यकारों से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है किंतु कहना नहीं होगा कि शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति शीतलता देनेवाले शुक्लजी का व्यक्तित्व अपनी अलग ही विशेषता रखता है।

उपर्युक्त अवसर के बाद जब कभी शुक्लजी से जब व इधर से कहीं आते जाते होते हैं तब मिलने का मौका मिल जाता है उस अल्प समय की मुलाकात का क्षण भी अत्यन्त आनन्ददायक तथा सुखकारी हो जाता है।

—एच सी पाटनी

महाराष्ट्र के सम्पादक श्री ढवळेजी

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में अथ शताब्दि तक अग्रणी और आज भी नवभारत निर्माण में अपना सम्मानपूर्वक स्थान रखनेवाले पं. रविशंकरजी शुक्ल ७० वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। उनका जीवन हम जैसे उनसे छोटी अवस्था वालों के लिये आदर्श है। दीर्घोद्योग, साहस, अविश्राम कार्य शक्ति आज उनकी उतरती अवस्था में भी एकदम हमारी आंखों के सम्मुख आते हैं। उनका मन उनके भव्य शरीर की भांति ही विशाल और उदार है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्वाभिमान और आत्म प्रतिष्ठा कायम रखना, सूक्ष्मबुद्धि और अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणित करने के उनके गुण उनके अन्य अनेक गुणों के साथ उल्लेखनीय हैं। वे भारतीय परम्परा और भारतीय तत्वों की रक्षा करने की उत्कट भावना रखते हैं। उनके व्यक्तित्व में एक साथ अनेक विशेषताओं का समुच्चय है। मैं उनके जन्म दिवस पर उनका हृदय से अभिनन्दन करता हूं।

—पुरुषोत्तम दिवाकर ढवळे

मध्यप्रदेश के भूतपूर्व गवर्नर श्री तांबे

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन श्री रविशंकरजी शुक्ल को उनकी ७९ वें जन्म-दिवसपर "अभिनदन ग्रन्थ" भेट कर रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। मैंने श्री शुक्लजी का साहित्य तो नही पढा, तथापि इस प्रान्त में हिन्दी भाषा का मान बढाने और उसका उत्कर्ष बढाने मे उन्होने ४० वर्ष से निरन्तर प्रयत्न किया है। अत. हिन्दी साहित्य सम्मेलन उनका जो सम्मान कर रहा है, वह उचित ही है। मैं ७९ वें जन्म-दिवस के अवसर पर श्री शुक्लजी का अभिनंदन करता हुआ ऐसी अनेक तिथियां आयें यह कामना करता हूँ।

—श्रीपाद बलवंत तांबे.

नागपुर प्रांत कांग्रेस कमेटी के भूतपूर्व उपाध्यक्ष श्री चतुर्भुजभाई जसानी, गोंदिया

श्रद्धेय श्री रविशंकर शुक्ल हमारे देश के महान् राजनीतिज्ञ पुरुषो मे से एक है। एक ही संस्थाके साथी होने के कारण हमें कई मर्तबा उनके सम्पर्क मे आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कुछ बातों में कभी कभी उनके साथ मेरा मतभेद भी रहा है।

श्री शुक्लजी ने विरोधीओं को जीतने की अद्भूत कला हस्तगत की है। जब कोई विरोधी भावसे उनके पास पहुंचता है तब वे वात्सल्यभाव और मुस्कराहटसे विरोध करने वालेकी पीठ पर हाथ रखकर उसे शान्त कर देते है। विरोध करने की इच्छा से आनेवाले के हृदय मे उनके प्रति पितृतुल्य भावना जाग्रत होती है। मुझे इसका कई दफा अनुभव हुआ है।

श्री शुक्लजी की ७९ वी वर्षगांठ के उपलक्ष मे हिन्दी साहित्य संमेलन में उन्हे अभिनंदन ग्रन्थ भेट करने का निश्चय किया है वह सराहनीय है।

श्री शुक्लजी के समान राजनीतिक पुरुष हमारे बीच सौ साल तक रहकर हमारा मार्गदर्शन करते रहे यही हमारी शुभ कामनाएं हैं।

—चतुर्भुज वि. जसानी

श्रीमती राधादेवीजी गोयनका, एम.एल.ए.

माननीय पंडित रविशंकरजी शुक्ल हमारे देश के उन वयोवृद्ध नेताओ मे से है, जिन्होंने अपने जीवन का अधिकाश भाग स्वातंत्र्य संग्राम के वीर सैनिक के रूप मे विताया है। उन्होने मुख्य मन्त्री का पद ग्रहण करके मध्यप्रदेश की बहुमुखी उन्नति करने का संकल्पमय सफल प्रयास किया है। हमारे प्रदेश का यह सौभाग्य है, जो हमे माननीय शुक्लजी के समान त्यागी, प्रतिभासम्पन्न, प्रभावशाली, व्यवहारकुशल, तथा कर्मठ व्यक्ति शासन की बागडोर सभालने के लिये उपलब्ध हो सका है। शुक्लजी कर्म-कठोर हैं। उनके जीवन में, कई क्षण ऐसे भी आये है, जब उन्हे अपने निकटतम मित्रो को छोडकर अपना मार्ग अकेले बनाना पडा है। किन्तु मित्रों से अधिक प्रिय अपने सिद्धातो को मानकर चलने वाले शुक्लजी का व्यक्तित्व समय के थपेडो से और भी उज्जवल होकर ऊंचा उठा है। कठिनाइयो ने मानो उन्हे हताश करने के बदले सम्बल देने का कार्य किया है। आपकी हिन्दी सेवायें तो बहुत उल्लेखनीय है ही। "स्त्री-उन्नति" के सम्बन्ध मे भी उनके विचार बहुत सुलझे हुए है। वे न तो आजकल की पाश्चात्य सभ्यता मे ही बहना स्त्रियो के लिए उचित समझते है और न उनका परदा, अशिक्षा, दहेज आदि से घिरा हुआ कूपमण्डूक जीवन ही पसन्द करते है। यद्यपि कान्यकुब्ज ब्राम्हणों मे पर्दा-प्रथा प्रचलित है तथापि शुक्लजी के परिवार में कोई भी बहूबेटी परदे की जेल मे नही है। जब कभी महिला-उत्कर्ष के कार्य मे सहयोग मागा जाता है तो वे सदा उसके लिए तैयार रहते हैं। गुण्डो के हथकंडो से स्त्रियो की रक्षा हो सके तथा वेश्यावृत्ति समाप्त हो—इन हेतुओ से तो उन्होने कानून बनवाये ही है, साथ ही मध्यप्रदेश मे "द्वि-विवाह प्रतिबन्ध" कानून बनाने मे भी शुक्लजी की अत्यधिक मदद रही है।

मैं दीर्घ जीवन की कामना के साथ उनका हृदय से अभिनन्दन करती हूँ।

—राधादेवी गोयनका

डॉ बाबूराम सक्सेना, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

अठारह वर्ष पहले की बात है। उस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति सेठ जमनालाल बजाज थे और मैं उनका प्रधान मन्त्री। सम्मेलन की स्थायी समिति का अधिवेशन वर्धा में बजाजवाड़ी में हुआ। अधिवेशन के उपरान्त हम लोग प्रयाग लौटे जा रहे थे। साथ में श्रद्धेय राजर्षि टंडन जी थे। नागपुर में राजर्षि जी से मिलने एक सज्जन आए—गौर वर्ण, श्वेत वस्त्र, लम्बा कद, ऐसी आकर्षक आकृति कि बरबस आप उनकी ओर खिंच जायं। भवभूति की यह उक्ति याद आ गई—

आद्वामस्नेहसक्तीनामिमामायतनं महत्।

मेरे हृदय को सन्तोष और शान्ति मिली। यह थे श्रद्धेय पंडित रविशंकरजी शुक्ल। उस समय से मैं उनके सम्पर्क में हूँ और मुझे उनका स्नेह प्राप्त है। यह स्नेह मेरी अमूल्य निधि है। संस्कृत की एक सूक्ति है—"यत्र कृतिमन्तः गुणा वसन्ति"। शुक्लजी आर्य संस्कृति के श्रेष्ठ उदाहरण हैं जिस में अन्य संस्कृतियों के उत्तम गुणों को आत्मसात करके अपने व्यक्तित्व को कायम रखने की अद्भुत शक्ति है।

संस्कृत के शुक्लजी भक्त हैं और यथा शक्ति उसके प्रचार-प्रसार और अध्ययन-अध्यापन में दत्तचित्त हैं पर वह संस्कृत का हिन्दी की जगह आरूढ़ करने के विरोधी हैं। संस्कृत विश्व परिषद के नागपुर अधिवेशन में उन्होंने प्रथम बार दृढ़तापूर्वक घोषणा की कि यदि परिषद् संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाना चाहती है तो उनका सहयोग उसे प्राप्त न हो सकेगा। तब से ही परिषद के भीतर संस्कृत के राष्ट्रभाषा होने की चर्चा समाप्त हुई।

हिन्दी के शुक्लजी निष्ठावान सेवक हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को उनका पूरा बल प्राप्त है। मुझे जब कभी भी उनके दर्शन करने का अवसर होता है, शुक्लजी की स्नेहसरिता आप्लावित कर देती है और मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। सचमुच ही शुक्लजी हैं—

आद्वामस्नेहसक्तीनामिमामायतनं महत्।

—बाबूराम सक्सेना

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ धीरेन्द्र वर्मा

पूज्य शुक्ल जी का स्नेहभाजन होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके व्यक्तित्व में ऐसी सरलता और सहज आकर्षण है कि उनके संपर्क में आने ही व्यक्ति उनका हो जाता है। देश के नेताओं में शुक्लजी उन गिने चुने व्यक्तियों में हैं जिन्हें भारतीय संस्कृति से सच्चा अनुराग है। हिन्दी की सेवा तो वे प्रारंभ से ही करते रहे हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे कम से कम सौ वर्ष तक इसी प्रकार देश की सेवा करते रहें। सादर मंगल कामनाओं सहित—

—धीरेन्द्र वर्मा

महर्षि जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग

पण्डित रविशंकर शुक्लजी यों तो भारतीय भाग्याकाश के एक समुज्ज्वल ग्रह हैं, किन्तु मध्यप्रदेश इधर के ६० वर्षों से उनके उद्योग, परिश्रम और कर्तव्यप्रेरणा से अधिक प्रभावित होता रहा है। इधर स्वराज्य प्राप्ति के समय से तो मध्यप्रदेश के मुख्य मन्त्री के रूप से आप प्रधान भाग्य विधाता हैं। मध्यप्रदेश की उन्नति, मध्यप्रदेश की गौरव वृद्धि, एक भारतीय प्रदेश के रूप में उसका प्रभाव विस्तार, मध्यप्रदेश के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में कर्तव्य प्रेरणा और उत्साह की विजली भरने वाले आप प्रधान केन्द्रीय शक्ति के स्वरूप में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। मध्यप्रदेश को एक वन्य प्रदेश गोंडवाना के रूप से बदल कर गौरवपूर्वक महाकोशल के पद को चमकाने पर उसे सांस्कृतिक गौरव मिला है वह आपके सतत उद्योगों का फलस्वरूप परिणाम है।

शुक्लजी से मेरा परिचय सन १९०१ से है। मैंने शुक्लजी को उदारचेता, कर्तव्यनिष्ठ और साहित्यिक हृदयवाला पाया। अतएव आपस में सुहृद भाव हो गया। तबसे मैं आपका प्रशंसक हूँ। साहित्यिक प्रसंगों में, राजनैतिक अवसरों में और कान्यकुब्ज सभा सम्बन्धी सामाजिक क्षेत्रों में जब जब मुलाकात हो जाती है तब तब पुराना परिचयात्मक स्नेह उमड़ उठता है और मुझे अनुपम सुख और सन्तोष की प्राप्ति होती है। आप जैसे अडिग और साहसी निष्ठा के सज्जन का अभिनंदन ग्रंथ समर्पित करने का निश्चय कर सम्मेलन ने स्तुत्य कार्य किया है।

श्री शुक्लजी दीर्घायु हों और मध्यप्रदेश विजयशाली हो यही मेरी शुभकामना है।

—जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

पंडित रविशंकर जी शुक्ल, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के
अध्यक्ष श्री ब्रिजलाल जी बियाणी के साथ

श्री रविशंकर जी शुक्ल अपनी धर्मपत्नी श्रीमती भवानी देवी शुक्ल के साथ

जीवन
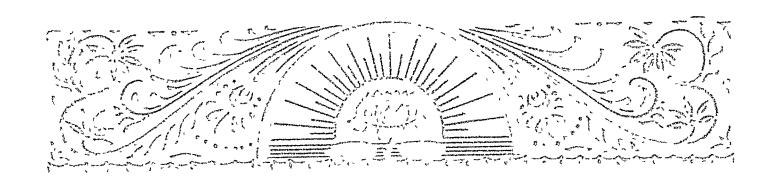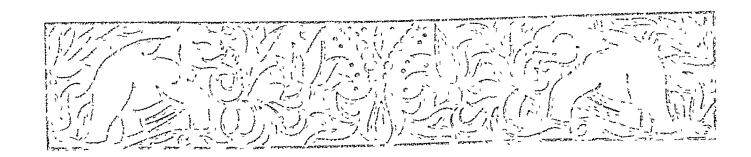
बुद्ध्याचक्ष्मश्रुणा क्षान्त्या विद्यया राष्ट्रसेवया,
भाषयाभूषयाशुक्लः शुक्लः ख्यातिपद्गतः ।
रविशङ्करशुक्लो वै प्रधानमन्त्री सुधीः,
ज्ञान–विद्या–वयोवृद्धः शतायुर्भवतु ध्रुवम् ॥

—श्री गंगाविष्णु पाण्डे

श्री पं. रविशंकर जी शुक्ल

(संक्षिप्त जीवन–चरित्र)

शुक्ल जी के पूर्वज उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के "टेढा बीघापुर" स्थान के निवासी थे। वहां से शिवदीन *तथा गंगादीन नाम के दो भाई आजीविका की खोज मे निकले थे। ये दोनो भाई पहले ग्वालियर पहुंचे। उन दिनों अंग्रेजी व मराठी सेनाओं मे उत्तरप्रदेश के निवासियों तथा गोरखों को सैनिक कार्य के लिये विशेष योग्य समझा जाता था। ग्वालियर में दोनों भाई विभिन्न कार्य करते रहे उसके वाद वे मध्यप्रदेश के सागर नगर पहुंचे। अंग्रेजों के उदय एवं मराठा शासन के अन्त की सन्धिवेला मे शुक्ल जी के पूर्वज इस नगर मे आये थे। इन दोनों मे से एक भाई श्री शिवदीनजी का विवाह सम्वन्ध रहेली मे हुआ था। उन्ही का यह वंश प्रचलित है। इनके पुत्र गणेश शुक्ल थे। उन दिनों सागर नगर एक वड़ी व्यापारिक लेनदेन की मण्डी थी। मध्यभारत की विभिन्न रियासतों, भोपाल, भोंसला, निजाम आदि के सिक्कों का विनिमय इसी नगर मे होता था। यहां पर सराफे की एक प्रसिद्ध दुकान का संचालन श्री गणेश शुक्ल करते थे। सन् १८१७ मे अंग्रेजों ने सागर का राज्य वाजीराव पेशवा से छीन लिया था। इस प्रकार सागर की सूवेदारी का अन्त होने पर सागर की पुरानी टकसालो को बन्द कर दिया गया। उस समय अंग्रेजों की ओर से गणेश शुक्ल को कार्य करने का आश्वासन दिया गया था जिसे उन्होने स्वीकार नही किया। उनका निश्चय था कि वे अंग्रेज सरकार की नौकरी नही करेगे। इसके कुछ दिनों वाद ही इनका स्वर्गवास होगया। गणेश शुक्ल के दो पुत्र थे—मणि शुक्ल और रामचन्द्र शुक्ल। इन दोनों ने अपने पैत्रिक व्यवसाय के अनुसार कई रजवाड़ो के सिक्को के विनिमय, कर्ज तथा सराफे का कार्य शुरू किया। उन दिनो विहारी दुवे (गयाप्रसाद दुवे इन्ही के पुत्र थे) सागर के एक प्रसिद्ध व्यवसायी व रईस थे। विहारी दुवे के साथ मिलकर मणि शुक्ल साझे मे कार्य करने लगे और जल्दी ही इस कार्य में वड़ी उन्नति होगयी।

१८५७ के प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध के विफल हो जाने पर जव अंग्रेजों ने सागर नगर पर पुनः अधिकार कर लिया तो विहारी दुवे की उक्त दुकान पर एक लाख रुपये का तावान लगाया गया। उस समय तक मणि शुक्ल सागर छोड़कर जा चुके थे, तावान लगनेपर विहारी दुवे भी चले गये। उन दिनो रामचन्द्र शुक्ल दुवे जी की जायदाद के मुख्य प्रवन्धक वनाये गये। शुक्ल जी के दादा रामचन्द्र शुक्ल शारीरिक सम्पत्ति की दृष्टि से वहुत ही सवल थे। ये एक ही दिन मे करेली से सागर घोड़ेपर पहुंच जाते थे। ये वड़ी ही लगन से सारी जायदाद का काम देखा करते थे और गाव-गांव जाकर लगान की वसूली किया करते थे। वे छः फायर की पिस्तौल अपने साथ रखते थे और वड़े ही दवंग थे। जायदाद के ८० गांवो मे वे चक्कर लगा आते थे।

---

*प्रयाग के वालकराम सालिगराम (हाथी के निशान वाला) पण्डा के यहां उनकी पुस्तको मे शुक्ल जी के जन्म से तीन वर्ष पूर्व का निम्न व्यौरा मिला है। इससे शुक्ल जी के परिवार, वंश एवं पूर्वजो के नाम की जानकारी होती है:—कान्यकुब्ज व्राह्मण शुक्ल, गोत्र भारद्वाज, वासी सागर, ठिकाना खुशीपुरा, श्री प्रयाग आए। शिवदीन जी के वेटा, नाती गणेश जी के, लडका मन्नीलाल। भाई रामचन्द्र, व लड़का गजाधर व हरी शंकर, व भतीजा जगन्नाथ जी। आगे जो कोई हमारे वंश को आवे, पुरोहित सालिगराम वालकराम के जी, अर्जैन, हाथी निशान वाले को मानै पूजा।

मितीः पूष सुदी, सत्तमी, संवत् १९३१। मन्नीलाल जी आए थे। इनके दस्तखत वही सागर, पुरानी, पन्ना ३२७ मे है।

शुक्ल जी के पिता प जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल तथा उनके चाचा प गजाधरप्रसाद जी शुक्ल के समय सागर नगर में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ था। दोनो भाइयो ने श्री आधारसिंह गौर के साथ मैट्रिक की परीक्षा दी। उन दिनो सागर में कुश्ती का बडा रिवाज था। सब विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से कुश्ती सिखायी जाती थी। सभी अखाडे में जाकर व्यायाम करते थे। प जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का विवाह गुडा सग्राम के दुबे वंश में हुआ था। इनकी पत्नी का शरीर बडा सुपुष्ट एव सबल था। उनका रग उज्ज्वल गौरवर्ण का था और वे बडी ही कार्यक्षम और सशक्त थी। मैट्रिक तक पढाई पूरी करने के बाद प जगन्नाथप्रसाद शुक्ल रायली ब्रदर्स के यहा सब एजेण्ट होगये और उनके चचेरे भाई प गजाधर प्रसाद शुक्ल राजा गोकुलदास मिल्स के सेक्रेटरी बन गये। बाद में इनके प्रयत्नो से राजनादगाव की सी पी मिल्स की स्थापना हुई। सागर तथा नागपुर के राज्यों पर अधिकार करने के बाद अंग्रेजी कम्पनी ने "मध्य प्रदेश" नामक एक नवीन प्रान्त की स्थापना की थी। अंग्रेजी शासन के अग्रदूत के रूप में अंग्रेज व्यापारी हमारे देश में छा गये थे। उस समय विभिन्न अंग्रेज व्यापारिक सस्थायें देश भर में अपने राष्ट्र की तिजारत फैला रही थी। रायली ब्रदर्स नामक ऐसी ही एक व्यापारिक सस्था में शुक्ल जी के पिता प जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल सब एजेण्ट थे। कम्पनी के काय के सिलसिले में आपको मध्यप्रदेश के विभिन्न स्थानो में रहने का अवसर मिला।

बालक रविशकर का जन्म सागर नगर के रविवार वार्ड (पुराना नाम चमेली चौक, मुशीपुरा) मोहल्ले के एक दोमजले पैतृक गृह में बृहस्पतिवार श्रावण कृष्ण अष्टमी विक्रमी सम्वत् १९३४ तदनुसार २ अगस्त १८७७ ई के दिन सिंह लग्न में हुआ था। बालक रविशकर की बाल्यावस्था के दिन सागर ताल के चारो ओर बसे मोहल्लों में व्यतीत हुए थे। बालक रविशकर शुक्ल की हिन्दी की शिक्षा प सुन्दरलाल गुरु की पाठशाला में हुई। उन दिनों शिक्षकों को वेतन नाम मात्र का दिया जाता था। प्रति अमावस्या-पूर्णिमा को सब विद्यार्थी अपने-अपने घरो से सीधा एव दक्षिणा का सामान ले जाकर गुरुजी को दे आते थे। सीधे में आटा-दाल, चावल, हल्दी, नमक, मसाला आदि सब सामान होता था। सुन्दर गुरु की पाठशाला प्रान्त की उन पहली छ पाठशालाओं में से एक थी जिन्हें अंग्रेजो ने प्रान्त में स्थापित किया था। सन् १८८५ में ८ वर्ष की आयु में बालक रविशकर ने प्रायमरी की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। किशोर रविशकर का निरन्तर दो-तीन वर्ष तक १० वर्ष की आयु तक अपने पिता के साथ होशगाबाद, टिमरनी, पिपरिया आदि स्थानो पर रहना पडा, इसलिये वह अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण नही कर सका, फलत किशोर रविशकर शुक्ल को उनके पितामह प रामचन्द्र शुक्ल ने शिक्षा की दृष्टि से सागर अपने पास बुलवा लिया। यहा पर १८९१ तक आपकी व्यवस्थित रूप से अंग्रजी की शिक्षा हुई। दादा प रामचन्द्र शुक्ल के स्वर्गवास पर मिडल के बाद रविशकर जी नान्दगाव में अपने पिताजी एव पितृव्य प गजाधर प्रसाद शुक्ल के पास आ गये। उन दिनो प गजाधर प्रसाद जी सी पी मिल्स के एजेण्ट व मुख्य भागीदार थे। बम्बई की अंग्रेज व्यापारिक सस्था मैकबेथ ब्रदर्स कम्पनी की सचालक थी। मैकबेथ ब्रदर्स ने कम्पनी शावालिस को बेच दी थी। इस नयी कम्पनी ने मिल का नाम बगाल नागपुर काटन मिल्स रखा था और मिल का प्रधान कार्यालय कलकत्ता में स्थानान्तरित कर लिया था, फलत कम्पनी का रायपुर दफ्तर बन्द कर दिया गया।

शुक्ल जी की माध्यमिक शिक्षा रायपुर में हुई। राजनान्दगाव व रायपुर में शुक्ल जी को क्रिकेट तथा व्यायाम का शौक था। स्कूल जीवन के सहपाठियो में ठाकुर हनुमानसिंह, गोविन्दलाल पुरोहित व रेवतीमोहन सेन थे। ये तीनों ही शुक्ल जी के आजीवन मित्र रहे। युवक रविशकर शुक्ल ने मैट्रिक की परीक्षा सन् १८९५ में रायपुर हाईस्कूल से उत्तीर्ण की। दो वर्ष बाद उन्होने जबलपुर के सरकारी कालेज से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी ए की स्नातक परीक्षा के अध्ययन के लिये आपको नागपुर जाना पडा और यहा के हिस्लाप कालेज में आपके सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश हुआ। आप जिस समय तृतीय वर्ष के विद्यार्थी थे आपका सम्पर्क कालेज के प्रोफेसर स्व लाला भगीरथप्रसाद से हुआ। वे कालेज में एक लोकप्रिय प्रोफेसर के अतिरिक्त काग्रेस कमेटी के मन्त्री भी थे। नागपुर में होने वाले गणपति उत्सव इस समय सार्वजनिक रूप में मनाये जाने लगे थे। इन

उत्सवों ने तथा शिवाजी एवं लोकमान्य तिलक के चरित्र ने शुक्ल जी तथा उन जैसे युवको के हृदय पर बड़ा प्रभाव डाला था। इन दिनो नागपुर के सभी कालेजो के विद्यार्थी अपने को तिलक की विचारधारा के अनुगामी मानते थे। लोकमान्य का यह वाक्य विद्यार्थियो के हृदय पर अंकित हो गया था कि 'ब्रिटिश हकूमत ताम्र-पत्र के ऊपर पट्टा लिखा कर नही आयी है।' इन्ही दिनो राजद्रोह के अभियोग मे श्री बाल-गंगाधर तिलक पर एक मुकदमा किया गया था। इस मुकदमे की कार्रवाई ने विद्यार्थियो के मन पर इतना अधिक प्रभाव डाला था कि 'तिलक ट्रायल' नामक पुस्तक के आधार पर शुक्ल जी तथा उनके साथी विद्यार्थियों ने लोकमान्य तिलक के मुकदमे का एक प्रहसन खेला था। इस प्रहसन में प्रभु नामक विद्यार्थी तिलक बना था, श्यामाचरण दुबे जस्टिस स्ट्रेची बने थे और श्री मूलचन्द तिवारी पब्लिक प्रासीक्यूटर बने थे। जब जूरी से मुकदमे के दौरान में अभि-युक्त के विषय मे पूछा गया कि 'वह अपराधी है या निरपराधी'—तो जूरी ने उत्तर दिया—'निरपराधी'। तिलक के इस मुक-दमे के प्रहसन ने वोर्डिग मे रहने वाले छात्रों तथा कालेज के अधिकारियों में बड़ी सनसनी पैदा कर दी। शुक्ल जी तथा उनके साथियों मे राष्ट्रीय कार्यो के प्रति दिलचस्पी बढ़ती गयी। शुक्ल जी अपने कुछ सहपाठियों के साथ जिनमें मूलचन्द तिवारी आदि सम्मिलित थे, प्रो. भगीरथप्रसाद जी की अध्यक्षता मे स्वयसेवक बन कर अमरावती कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिये गये थे। हिस्लाप कालेज के विद्यार्थियों मे राष्ट्रीय वृत्ति प्रेरित करने मे प्रो. भगीरथप्रसाद जी का बड़ा हिस्सा था। सन् १८९७ में अमरावती की १३ वी कांग्रेस मे प्रो. भगीरथप्रसाद के नेतृत्व मे विद्यार्थियों के जाने से कालेज के अधिकारी बडे विक्षुब्ध हो गये थे, उन्होने प्रो. साहब को कालेज छोड़ने का आदेश दे दिया। प्रो. साहब एक आदर्श शिक्षक थे। वे केवल ५०) मासिक मे अपना सारा गुजर-बसर कर लेते थे। वे 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। १८९९ मे शुक्लजी ने बी. ए. की उपाधि कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त की। इन दिनों शुक्ल जी के सहपाठियों मे श्री भगवतीचरण दुबे, श्री मूलचन्द तिवारी, श्री प्यारेलाल मिश्र और माधवराव सप्रे आदि थे। इन्ही दिनो एम. ए. की श्रेणियों में श्री सीताचरण दुबे आदि विद्यार्थी थे। इन सब बन्धुओं के साथ शुक्ल जी ने विद्यार्थी जीवन के बाद भी अपना स्नेह-सम्बन्ध स्थिर रखा। ये सभी बन्धुगण शुक्ल जी के सार्वजनिक एवं गृहस्थ जीवन में भी सदा स्नेही मित्र बने रहे। विद्यार्थी जीवन के इन प्रारम्भिक संस्कारों ने ही शुक्लजी के भावी सार्वजनिक जीवन की नीव रखी थी।

कार्यक्षेत्र में :—बी. ए. की परीक्षा के बाद शुक्ल जी छः महीने के लिये हिस्लाप कालेज मे फैलो हो गये और छः महीने कानून की श्रेणियों में सम्मिलित हुए। इन्ही दिनों सरकार दुर्भिक्ष के विषय मे विशेष अधिकारी नियत कर रही थी। हिस्लाप कालेज का कार्यकाल पूर्ण हो जाने पर शुक्ल जी ने दुर्भिक्ष की अफसरी के लिये प्रान्त के चीफ कमिश्नर सर फ्रेजर को सीधे एक पत्र लिखा। यह पत्र शनिवार के दिन चीफ कमिश्नर को मिला। सर फ्रेजर व्हाई. एम. सी. ए. के साप्ताहिक अधिवेशनों में नियमपूर्वक जाते थे। उस अवसर पर उन्होंने प्रिंसिपल से शुक्ल जी के विषय मे पूछा। प्रिंसिपल रेवरेन्ड विटन ने शुक्ल जी को सोमवार के दिन चीफ कमिश्नर से मिलने के लिये कहा। सोमवार के दिन चीफ कमि-श्नर ने शुक्ल जी से मिलने पर प्रसन्नता प्रकट की और नौकरी के सम्बन्ध मे चीफ सेक्रेटरी से मिलने के लिये कहा। इस सम्बन्ध मे चीफ सेक्रेटरी से जब शुक्ल जी मिले तो अंग्रेज चीफ सेक्रेटरी ने शुक्ल जी से पूछा कि तुम चीफ कमिश्नर के पास सीधे कैसे पहुच गये? इस पर शुक्ल जी ने अपने प्रिंसिपल का हवाला दिया। चीफ सेक्रेटरी ने कहा कि ५०) मासिक की एक जगह खाली है। उन दिनों चीफ कमिश्नर के दो क्लर्क होते थे—एक सीनियर क्लर्क होता था और दूसरा उसका असिस्टेन्ट होता था। इस असिस्टेन्ट की जगह खाली थी। शुक्ल जी ने उस काम को करने की स्वीकृति दे दी। शुक्ल जी डेढ़ मास तक इस स्थान पर कार्य करते रहे, इस जगह पर विशेष काम न था, हां, नगदी सम्भालने की जिम्मेदारी अवश्य थी। विशेष कार्य न होने से शुक्ल जी इन दिनो सरकारी गोपनीय (कॉन्फिडेन्शल) फाइले देखते रहते थे जो कि उन दिनों चीफ कमिश्नर के पास रहती थीं। शुक्ल जी ने देखा कि इन फायलों मे किसी अफसर को बहुत ही ईमानदार लिखा होता था तो उसी को कहीं बहुत ही भ्रष्टाचारी लिखा रहता था। शुक्ल जी को फायलों का यह अध्ययन व निरीक्षण बहुत ही दिलचस्प लगता था।

चीफ कमिश्नर के सेकण्ड कैम्प क्लर्क का काम करते हुए भी जब शुक्ल जी को अपना वेतन नहीं मिला तो उन्होंने चीफ सेक्रेटरी को लिखा कि उनके वेतन के बारे में क्या बात है ? इस पर चीफ सेक्रेटरी की टिप्पणी लिखी आयी कि इस जगह पर पुराने कमचारी को ५०) मिलते थे, आपको इस काम के लिये ३०) ही रुपये मिल सकते हैं। यह कागज मिलते ही शुक्ल जी के सिर से पैर तक आग लग गयी वे तुरन्त चीफ कमिश्नर के पास गये और उन्होंने वह पुर्जा उनके सामने रख दिया। चीफ कमिश्नर ने कागज को देखा और परिस्थिति समझ कर कहा कि इस पर लिख दो कि यह मुझे मंजूर है और मैं जल्दी ही तुम्हारे लिये काम दिलवा दूंगा। शुक्ल जी ने चीफ कमिश्नर के कहने पर उस कागज पर अपनी स्वीकृति लिख दी। सप्ताह भर के अन्दर ही शुक्ल जी को दुर्भिक्ष के विशेष अफसर की नियुक्ति का आज्ञा पत्र मिल गया।

सेवा-कार्य में—शुक्ल जी ने रायपुर से ४४ मील की दूरी पर (सरायपाली की ओर) सिरपुर स्थान से ८ मील दूर कोन्दा कम्प में दुर्भिक्ष के विशेष अधिकारी के रूप में काम किया। यहां काम करते हुए आपने एक उदार कर्मठ सेवा-भावी नवयुवक के रूप में काम किया। उस समय सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ प्रदेश अकाल की भीषण विभीषिका से झुलसा जा रहा था, परन्तु काम करने वाले अफसर व ठेकेदार दुर्भिक्ष पीड़ित जनता के हितों पर ध्यान देने के स्थान पर अपना-अपना घर भरने में लगे हुए थे। सरकारी नियमों के अनुसार ठेकेदार सामान नहीं देते थे, भ्रष्टाचारी अफसर ऐसे ठेकेदारों से हिस्सा लेकर उनके बिल मंजूर कर देते थे। शुक्ल जी ने अकाल-पीड़ित क्षेत्र में पहुंच कर यह परिस्थिति देखी। उन्होंने ठेकेदारों के बिल नामंजूर कर दिये, इस पर ठेकेदारों ने बड़ा शोर मचाया परन्तु शुक्ल जी अपने रास्ते पर डटे रहे। सरकारी व्यवस्था के अनुसार शुक्ल जी को जो भी सामान मिलता था वे उसे पूरा का पूरा दुर्भिक्ष शिविर के बच्चों को खिला देते थे। इससे शिविर के बच्चे बहुत ही हृष्ट पुष्ट हो गये। शिविर बन्द होने पर शुक्ल जी को दुर्भिक्ष सम्बन्धी विशेष अधिकारियों में प्रथम संख्या का (नम्बर वन) अधिकारी घोषित किया गया। सिरपुर में दुर्भिक्ष सम्बन्धी काम करते हुए ही शुक्ल जी ने यहां की सामान्य जनता से सुना कि यहां पर एक समय बड़ा नगर था जो कि महाकोशल की राजधानी थी। महाकोशल की प्रसिद्ध राजधानी श्रीपुर की किम्वदन्ती सुन कर शुक्ल जी के मन में इस भूगर्भ स्थित अतीत के गौरव-चिह्नों की खुदाई की बात घर कर गयी।*

दुर्भिक्ष के विशेष अधिकारी के रूप में काम करने के बाद कुछ समय तक शुक्ल जी स्व. डा. हीरालाल के साथ गजेटियर बनाने के काम में लगे रहे। इस समय आपके सहकारी के रूप में स्व. पं. प्यारेलाल मिश्र भी कार्य कर रहे थे।

शिक्षा-क्षेत्र में—कुछ समय तक आप मर्दुमशुमारी विभाग में भी काम करते रहे। इस सरकारी विभाग में शुक्ल जी ने युवकोचित लगन से काम किया परन्तु उन्हें जल्दी ही अनुभव हो गया कि सरकारी नौकरी उनकी रुचि के अनुकूल नहीं है इसलिये जब उक्त सरकारी विभागों में आपके काम को देखते हुए आपको नायब तहसीलदारी की जगह का अवसर मिला तो उसे ठुकराते हुए आपने विद्याध्ययन एवं अध्यापन के मार्ग को अपनाना ही श्रेयस्कर समझा। मुंसिफी के काम के लिये शुक्ल जी को दमोह में नियुक्त किया गया था। शुक्ल जी इस काम के निमित्त घर से चले परन्तु रेल के सफर में उन्हें सरकारी नौकरी से इतनी अधिक विरक्ति हुई कि कटनी स्टेशन पर उन्होंने सरकारी नौकरी न करने का संकल्प कर लिया और दमोह न जाकर जबलपुर चले गये। जबलपुर में शुक्ल जी अपने जीवन के भावी मार्ग प्रदर्शन के लिये अपने पिताजी के मित्रों-श्री बिहारीलाल खजांची, देवीप्रसाद चौधरी व राजा गोकुलदास जी आदि से मिले। इस प्रकार १९०१ में मुंसिफी की जगह ठुकराते हुए शुक्ल जी ने एक शिक्षक की वृत्ति धारण की।

---

*सन् १९५३-५५ में मध्यप्रदेश राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में श्री रविशंकर जी शुक्ल ने सिरपुर के ऐतिहासिक एवं पुरातत्व के स्मारकों की खुदाई प्रारम्भ करवायी। यहां पर पुरातत्व के अमूल्य स्मारक प्राप्त हुए हैं। अभी इस स्थान की खुदाई प्रचलित है। इस स्थान का उल्लेख गजेटियर में भी है।

सन् १९०१ में श्री शुक्ल जी ने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और आपने अपनी कानून की पढाई प्रचलित करने के लिये जबलपुर रहने का निश्चय किया। कानून की पढाई प्रचलित रखने के लिये उन्होंने जबलपुर के हितकारिणी हाईस्कूल के प्रबन्धकों के आमन्त्रण पर हाइस्कूल मे अध्यापन कार्य भी स्वीकार कर लिया। शुक्ल जी की योग्यता तथा उनके पढ़ाने के ढंग से पं. रघुवरप्रसाद त्रिवेदी बहुत ही सन्तुष्ट थे। हितकारिणी संस्था मे शुक्ल जी एक सफल अध्यापक सिद्ध हुए। जबलपुर में रहते हुए शुक्ल जी का दूसरा विवाह १९०२ के जून मास में हुआ था। विवाह के छः महीने ही व्यतीत हुए होंगे। उन दिनो शुक्ल जी कानून की श्रेणियों मे नियमपूर्वक जाते थे। दिसम्बर का महीना था। जबलपुर नगर मे प्लेग की महामारी फैल गयी। १६ दिसम्बर की दोपहर को चूहे की घटना हुई। उन दिनों शुक्ल जी अन्धेरदेव की सड़क पर एक बंगाली द्वारकानाथ सरकार के किराये के मकान में रहते थे। शुक्ल जी के चाचाजी जिन दिनो गोकुलदास मिल के सेक्रेटरी थे उन दिनों भी उनका परिवार इसी मकान के साथ के एक बड़े मकान मे रहता था। मध्यप्रदेश के प्रमुख शिक्षाविज्ञ पं. लज्जाशंकर जी झा भी शुक्ल जी के पडोस के मकान मे रहते थे। इनके मकानों के पीछे कुछ झोंपड़ियां थी। पहले इन झोपडियों मे रहने वाली निर्धन जनता (कुजड़े) ही प्लेग की शिकार बनी। उन दिनो जबलपुर नगर में प्रतिदिन प्लेग से मरने वालों की गिनती बहुत अधिक थी। घटना के दिन एक छोटी सी चुहिया शुक्ल जी के मकान मे पिछली झोपड़ियो से आयी और ठीक रसोई के बीच मे आ गिरी। शुक्ल जी खाना खाकर कानून पढ़ने कालेज जा चुके थे, पीछे घर पर उनकी नवविवाहिता अबोध धर्मपत्नी थी। रसोई मे चुहिया को छटपटाते व चक्कर खाते देखकर शुक्ल जी की पत्नी ने सोचा कि शायद चुहिया भूख प्यास से व्याकुल होकर छटपटा रही है। उन्होने उस चुहिया के पास आटा बिखेर दिया और पास में पीने के लिये पानी रख दिया, परन्तु चुहिया फिर न उठी और छटपटा कर मर गयी। थोड़ी देर मे बरौनी चौका साफ करने आयी। उसने मरी चुहिया उठा कर बाहर फेक दी और चौका साफ कर दिया। दो दिन बाद शुक्ल जी की पत्नी को तेज बुखार चढ़ गया। इस समय शुक्ल जी के पडोस मे पं. लज्जाशंकर झा के घर मे भी प्लेग ने एक आहुति ली। शुक्ल जी के घर मे भी प्लेग अपने भीषण रूप मे परीक्षा लेने लगी। शुक्ल जी रात-दिन हिम्मत रख कर पत्नी की सुश्रूषा करने लगे। आपने उन दिनों अपनी पत्नी की आयुर्वेद तथा एलोपैथी दोनों ही प्रकार की चिकित्सा करवायी। बहुत अधिक कमजोरी हो जाने से डाक्टर ने शुक्ल जी को सलाह दी कि रोगिणी का स्वास्थ्य सुरक्षित रखने के लिये उसे मास के शोरबे का पौष्टिक पदार्थ दिया जाना आवश्यक है। परम वैष्णव कुल में जन्म लेकर एवं निरन्तर कट्टर शाकाहारी भोजन करने पर भी अर्धाङ्गिनी की प्राण-रक्षा के लिये शुक्ल जी ने उस आपद्धर्म के प्रयोग को उचित समझा और 'ब्रान्ड्स एसन्स आफ मटन्स् एण्ड चिकन्स' बन्द डिब्बो से लेकर देने लगे। रोग दूर करने एवं हृदय की गति को ठीक रखने के लिये, वैद्य की सलाह के अनुसार आप अपनी पत्नी को समय-समय पर अभ्रक भस्म भी देते रहे। प्लेग की गांठ को दबाने के लिये एलोपेथी दवाइयों के लेप बेकाम सिद्ध हुए। हिन्दुस्तानी आयुर्वेदिक दवाई के एक थोड़े से नुस्खे ने बड़ा काम किया। शुक्ल जी भिलवा, फिटकरी और अफीम को समान मात्रा में लेकर चन्दन के समान घिस कर लेप बनाते थे। फिर इसे गरम कर गांठ पर लगाते थे। इसे कण्डे की आग पर सेकते थे। इसे निकालते नही थे, उसी गांठ पर बार-बार लगाते थे। इससे गले की गाठ बैठ गयी परन्तु जांघ की गांठ को चीरना पड़ा। इन बीमारी के दिनों मे घर की बरौनी मर गयी, घर मे दूध लाने वाला भी जाता रहा और दूसरे पास-पड़ोस वाले भी मोहल्ला छोड़ कर चले गये परन्तु शुक्ल जी अपने आत्मीय श्री गयाप्रसादजी अवस्थी (जो उन दिनों विद्यार्थी थे) के साथ रोगिणी की परिचर्या पर डटे रहे। स्वयं भोजन बनाते, चिकित्सा करते और रात-दिन परिचर्या करते अन्त मे पत्नी को रोग–मुक्त कर पूरे एक महीने ५ दिन के जीवन–मृत्यु के संग्राम मे सफलतापूर्वक जूझ कर आप २० जनवरी को नादगांव पहुंचे। पत्नी के रोगमुक्त होने पर आपने शोरबे के टिनों की माला उन्हे पहना दी और बतलाया कि किस प्रकार प्राण-रक्षा के लिये उन्हें यह पौष्टिक पदार्थ विवश होकर देना पड़ा।

प्रभाव डाला था। देशभक्तों के लिये उन दिनों स्वदेशी, विदेशी बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा राष्ट्रीयता के मूलमन्त्र बन गये थे। उन दिनों स्वतन्त्र आजीविका एवं चिन्तन के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रणी के रूप में डाक्टर एवं वकील वर्ग ही आ रहे थे। १९०७ में सूरत कांग्रेस के अवसर पर राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस नरम एवं गरम दलों में विभाजित हो गयी थी। रायपुर में भी दोनों ही विचारधाराओं को मानने वाले लोग थे। डा. हरिसिंह गौर, रायबहादुर देवेन्द्रनाथ चौधरी और बैरिस्टर सी. ए. ठक्कर नरम विचारों के पक्षपाती थे तो श्री रविशंकर शुक्ल, श्री वामनराव लाखे, ठाकुर हनुमानसिंह और श्री लक्ष्मणराव उदगीरकर की गिनती लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के समर्थक गरम विचार-धारा को मानने वालों में थी। लोकमान्य तिलक एवं श्री अरविन्द के लेखों को छापने एवं दूसरे अभियोगों पर इस प्रदेश में भी सरकार ने कुछ मामले चलाये और प्रदेश की नवजात चेतना को कुचलने का प्रयत्न किया। प्रदेश के चीफ कमिश्नर सर रेजिनाल्ड क्रेडॉक ने राष्ट्रीय चेतना को कुचलने का पूरा प्रयत्न किया परन्तु यह प्रयत्न पूर्ण तरह सफल नहीं हो सका।

सार्वजनिक क्षेत्र में शुक्ल जी ने वकालत के पेशे को अपनाने के साथ-साथ विविध राजनैतिक आन्दोलनों में भी अधिकाधिक भाग लेना आरम्भ कर दिया था। वे सांस्कृतिक परम्पराओं की बुद्धिगत व्याख्या के लिये थियासाफिस्ट विचारधारा से प्रभावित हो रहे थे तो दूसरी ओर वे देश की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन के लिये तिलक की प्रणाली को उचित मानते थे। इसी के साथ उनकी यह भी धारणा थी कि राष्ट्रीय जागरण के लिये सामाजिक सुधारणा आवश्यक है। समाज की समस्याओं का सुधार कर ही हम देश की सर्वाङ्गीण प्रगति कर सकते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति उन दिनों बड़ी व्यापक थी। राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और स्व. रानडे ने सामाजिक सुधारणाओं के माध्यम से ही देश की राष्ट्रीय क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया था। हमारे प्रदेश में स्व. जमनालाल जी बजाज, सेठ गोविन्ददास, श्रीकृष्णदास जाजू आदि का सम्बन्ध भी प्रारम्भ में अग्रवाल व माहेश्वरी सभाओं से था। इसी प्रकार शुक्ल जी भी जातीय एवं सामाजिक सुधारों के द्वारा व्यक्ति व समाज को राष्ट्रीय कार्यों के उपयुक्त बनाना चाहते थे। सन् १९१० में प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन था, उसके अध्यक्ष श्री वेडरबर्न थे। शुक्ल जी इस कांग्रेस में एक प्रतिनिधि के रूप में गये थे। इस कांग्रेस के अवसर पर शुक्ल जी का सम्पर्क महामना मदनमोहन मालवीय जी से हुआ था। इस अवसर पर कान्यकुब्ज महासभा का अधिवेशन भी हुआ था। शुक्ल जी महासभा के इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। इस कांग्रेस से लौटकर आपने अपने प्रदेश में कान्यकुब्ज महासभा स्थापित करने का प्रयत्न किया था जिसके फलस्वरूप नागपुर में २९-३० मार्च सन् १९१२ में प्रान्तीय कान्यकुब्ज सभा की स्थापना हुई। इस अधिवेशन के सभापति 'भारतमित्र' सम्पादक पं. अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेई थे। सभा का दूसरा अधि-वेशन रायपुर में हुआ और तीसरा अधिवेशन जबलपुर में हुआ था। इन सभी अधिवेशनों को प्रत्येक दृष्टि से सफल बनाने में शुक्ल जी ने बड़ा योग दिया था। प्रान्तिक कान्यकुब्ज सभा के संचालन में शुक्ल जी १९२० तक निरन्तर योग देते रहे। उन दिनों सभा में कार्य करनेवाले राष्ट्रीय भावना के कार्यकर्ता शुक्ल जी आदि कुछ इने गिने कार्यकर्ता थे। सभा के प्रारम्भिक दिनों में शुक्ल जी के प्रयत्नों से एवं उनके नेतृत्व में सभा की मुख्य प्रवृत्तियाँ ऊँच नीच की प्रथा को दूर कर विवाहादि सम्बन्ध में समता का व्यवहार, ठहरौनी की परम्परा को नष्ट करना एवं स्थान-स्थान में कान्यकुब्ज सभाओं एवं नवयुवक सभाओं की स्थापना का प्रयत्न था। शुक्ल जी के प्रयत्नों से रायपुर में एक कान्यकुब्ज छात्रावास की स्थापना हो गयी जिसमें ८० विद्यार्थियों के निवास की व्यवस्था की गयी थी। प्रगतिशील एवं संगठित कान्यकुब्ज समाज की आवाज को बलवती करने के लिये "कान्यकुब्ज नायक" नामक एक मासिक पत्र की स्थापना की गयी जिसका सम्पादन भी श्री रविशंकर जी शुक्ल ने किया। सन् १९१९ तक शुक्ल जी कान्यकुब्ज समाज की उन्नति में बड़ा योग देते रहे। १८ अप्रैल सन् १९१९ के दिन मध्यप्रदेश बरार की प्रान्तीय सप्तम कान्यकुब्ज सम्मेलन की खण्डवा में अध्यक्षता करते हुए पं. रविशंकर जी शुक्ल ने जो भाषण दिया था वह सामाजिक कुरीतियों एवं उनके सुधारों का एक विस्तृत विवेचन था। ऊँच-नीच की प्रथा को नष्ट करना, समाज में संघ-शक्ति

शुक्लजी का जीवन–विकास

[१] विद्यार्थी अवस्था में १८९६ [२] अध्यापक १९०१-२ [३] मध्य में १९३६-३७ के समय

[४] वकालत १९२२ [५] पिताजी की मृत्यु के समय १९२४

माता पिता के साथ शुक्ल परिवार

ऊपर—शुक्लजी की माताजी श्रीमती तुलसीदेवी एवं पिताजी पं. जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल

बीच में—पितामह पं. मन्नीलालजी शुक्ल

नीचे—शुक्लजी के चाचाजी श्री पं. गजाधर प्रसादजी शुक्ल

और दूसरे चाचाजी पं. हरिशंकरजी शुक्ल

शुक्ल-परिवार
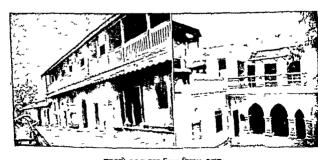
शुक्लजी अपने पुत्र श्री ईश्वरीचरण व श्री विद्याचरण तथा पौत्रों के बीच

शुक्लजी का रायपुर स्थित निवास-स्थान

दूसरे चित्र में ऊपर जो कमरा दिखलाई पड़ रहा है उसी में महात्माजी और अन्य नेता ठहरा करते थे

का निर्माण करना, स्त्रियों की बिगड़ी दशा को सुधारना, ठहरौनी की परम्परा को समूल नष्ट करना, समाज के शैक्षणिक, औद्योगिक एवं आर्थिक स्तर को समुन्नत करना आदि सुधारो का विवेचन करते हुए शुक्ल जी ने अपने उक्त भाषण मे कहा था—"इस प्रकार अनेक कुरीतियों और विघ्न बाधाओं के रहते हुए भी यदि हम लोग इस बात का निश्चय कर लेवे कि देशोन्नति के अपने परम उद्देश्य की पूर्ति के लिये जाति सम्बन्धी अपने कर्त्तव्य का पालन करना परम धर्म है, तो मेरा विश्वास है कि यह कान्यकुब्ज जाति भारतमाता की सेवा करने का वह गौरव फिर भी प्राप्त कर सकती है, जो उसे पूर्व-काल मे प्राप्त था।" भाषण को समाप्त करते हुए शुक्ल जी ने कहा था—"मै परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि जातिसेवा का पवित्र भाव हमारे सब कान्यकुब्ज भाइयो में जागृत हो जाय।"

समाज-सुधार एवं भारत माता की सेवा के विषय में सन् १९१९ के प्रारम्भ में शुक्ल जी के विचार "समाज सुधार' के विषय मे केन्द्रित हो गये थे परन्तु असहयोग आन्दोलन एवं गान्धी की आन्धी आते ही केवल एक वर्ष में ही सन् १९२० मे शुक्ल जी के समाज सुधार सम्बन्धी विचारों मे क्रान्तिकारी परिवर्तन आगया।

विविध दिशाओं मे कान्यकुब्ज समाज को समुन्नत करना भी जल्दी ही शुक्ल जी के लिये गौण बात हो गयी। शुक्ल जी को अपने सामाजिक संघटन की सीमाओं मे रहना अच्छा नही लगा, फलतः उन्होंने अपने मानसिक चिन्तन की प्रतिध्वनि के रूप मे बम्बई प्रान्तीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिषद् के अमलनेर (खानदेश) मे १९२० मे हुए वार्षिक अधि-वेशन की अध्यक्षता करते हुए कहा था—"ठहरौनी आदि बुराइयाँ समाज की जड़ काटने वाले भयकर कीट है और उनसे जितने शीघ्र समाज मुक्त हो जाय उतना ही अच्छा, तथापि उन बुराइयो से हमारे लक्ष्य या आदर्श का बोध नही होता। ठहरौनी दूर हो गई, जितने सुधार हम चाहते है सब हो गये, उसके बाद क्या हमारे कर्त्तव्य की इतिश्री हो जाती है? नही, वे तो गौण सुधार है। हमारा लक्ष्य राष्ट्र का उत्थान अत्यन्त महान् है और उसकी प्राप्ति समय, श्रम, एकाग्रता, दृढ़-निश्चय और स्वार्थत्याग की अपेक्षा करता है। अबतक जातीय सभाओ ने उस लक्ष्य को विपद रूप से प्रकट नही किया। समय आगया है कि हम उस आदर्श को अपने सामने रखकर कार्य करे।" इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने अपने भाषण में आगे कहा—"दस पाच ग्रेजुएटों की सृष्टि से, केवल मात्र वार्षिक जल्सों से और मनबहलाव के लिये लिखे गये सामयिक पत्रो के लेखो से जाति मे उस शिक्षा और उस चारित्र्य का आवेश नही हो सकता, जिसकी इस महान समय मे नितान्त आवश्यकता है। वह आर्थिक स्वाधीनता और निश्चिन्तता नही प्राप्त हो सकती जो मौलिक विचारो की उत्पादक और सभ्यता के विकास के लिये अनिवार्य है। राष्ट्र की मांग है कि प्रत्येक भारतवासी मनुष्य बने। मानवी शक्तियों की महत्ता और पवित्रता का उसे पूर्ण ज्ञान हो और मानवी स्वत्वों की रक्षा, उपयोग करने की आकांक्षा और बल हो। वह यह समझे कि हम संसार की एक शक्ति है और ससार मे हमारा न्यायोचित और महत्वपूर्ण स्थान है। वह निर्भय हो। हमारा उद्योग होना चाहिये कि इस माग की हम पूर्ति करे।"

इस प्रकार सामाजिक सुधारो को राष्ट्रीय उत्थान के महान् लक्ष्य के लिये सामान्य साधन मानते हुए शुक्ल जी असहयोग एवं राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्रवृत्त हो गये।

राजनीति में :— मध्यप्रदेश मे दूसरे प्रान्तो की अपेक्षा इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में राजनीतिक प्रगति पर्याप्त मन्द रही है। सन् १९०८—९ मे लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द के लेखों व भाषणो के छापने पर सरकार ने कुछ मुकदमे चलाये थे। श्री माधवराव जी सप्रे द्वारा क्षमा-याचना कर जेल से मुक्त होने की घटना ने प्रदेश के राज-नीतिक जीवन में पर्याप्त निराशा का संचार कर दिया था। सप्रे जी को अपने कार्य पर बड़ा पछतावा हुआ था और वे रायपुर में जाकर एकान्त निवास करने लगे। यहा पर ये मधुकरी मागकर बहुत ही सादगी और तपस्या का जीवन व्यतीत करने लगे। १७ जून सन् १९१४ को लोकमान्य तिलक जेल से मुक्त कर दिये गये। उनकी मुक्ति का जनता द्वारा देश भर मे स्वागत किया गया और इस प्रदेश के नवयुवको मे भी नवीन उत्साह का संचार हो गया। इस उत्साह एवं परिवर्तित समय का लाभ उठाकर प्रयत्न किया गया कि प्रदेश मे नरम व गरम पक्षवालो के मध्य जो मतभेदों की

दरार है उसे पाट दिया जाय। श्री जी एस खापर्डे, डा मुंजे, प विष्णुदत्त शुक्ल और प रविशंकर शुक्ल गरम विचारों के प्रतिनिधि थे तो सर गंगाधरराव चिटनवीस, श्री मुधोलकर और डा गौर नरम विचारों के पक्षपाती थे। दोनों विचारधाराओं के प्रतिनिधियों को एकत्र करने के लिये १६-१७-१८ नवम्बर सन् १९१५ को रा ब प विष्णुदत्त शुक्ल की अध्यक्षता में नागपुर में मध्यप्रदेश की राजनैतिक परिषद् हुई। इस परिषद में मध्यप्रदेश के कुछ प्रमुख शिक्षा अधिकारियों ने दर्शक के रूप में भाग लिया था। श्री भवानीशंकर जी नियोगी ने इस परिषद् में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा विषयक एक प्रस्ताव रखा था। प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प रविशंकर जी शुक्ल ने सरकारी रिपोर्ट के आधार पर कुछ आंकड़े उपस्थित किये थे। इस पर शिक्षा विभाग के संचालक की ओर से कहा गया था—"शुक्ल जी द्वारा रखे आंकड़े ठीक नहीं है।" इस अभियोग का उत्तर देते शुक्ल जी ने संचालक को कहा था—"यदि सरकारी रिपोर्ट गलत है तो मैं आपकी बात मान लूंगा"। इस पर संचालक महोदय मौन रह गये।

श्री रविशंकर जी शुक्ल कांग्रेस की गरम विचार धारा को मानने वाले थे। वे प्रारम्भ से ही लोकमान्य तिलक की विचारधारा के समर्थक थे, सांस्कृतिक दृष्टि से शुक्ल जी श्रीमती एनी बीसेण्ट की विचारधारा से भी बड़े प्रभावित थे। इतने पर भी जहा तक राजनीति का सम्बन्ध था, वे एनी बीसेण्ट की होमरूल लीग के सदस्य नहीं बने थे और जब लखनऊ कांग्रेस से पूर्व बेलगांव में २९ अप्रैल १९१६ को लोकमान्य तिलक ने होमरूल लीग की स्थापना की तो शुक्ल जी उसकी रायपुर शाखा के एक प्रमुख संघटनकर्त्ता बन गये थे। इन दिनों शुक्ल जी की राजनैतिक विचारधारा के समर्थकों एवं सहायकों में प प्यारेलाल मिश्र बार-एट-ला, श्री वामनराव लाखे, प माधवराव सप्रे और प विष्णुदत्त शुक्ल आदि के नाम उल्लेखनीय थे। सन् १९०५ से शुक्ल जी भारतीय कांग्रेस कमेटी के नियमित सदस्य तो नहीं रहे थे परन्तु वे यथा सम्भव प्रतिवर्ष कांग्रेस अधिवेशनों में जाते रहते थे। सन् १९१५ में कांग्रेस का अधिवेशन सर सत्येन्द्र प्रसन्नसिंह (लार्ड सिन्हा) की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ था। शुक्ल जी इस कांग्रेस में गये थे। सौभाग्य से इस कांग्रेस में शुक्ल जी और मध्यप्रदेश के प्रतिनिधियों को मारवाड़ी सीताराम विद्यालय में ठहराया गया था। इसी विद्यालय की निचली मंजिल में गांधी जी, कस्तूरबा गांधी और साबरमती आश्रम के विद्यार्थी ठहरे हुए थे। शुक्ल जी को इस कांग्रेस के अवसर पर गांधी जी को समीप से देखने-सुनने का अवसर मिला। गांधीजी की प्रातःकालीन प्रार्थनाओं, उनकी दैनिक दिनचर्या और रहन सहन का शुक्ल जी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

हिन्दी के प्रसार में योग —शुक्ल जी राष्ट्रीय संघटन के निर्माण में राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के महत्त्व को प्रारम्भ से ही अनुभव करते थे। इस दृष्टि से उन्होंने प्रदेश में राष्ट्रभाषा एवं प्रादेशिक भाषा के रूप में हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति के लिये निरन्तर प्रयत्न किया। अ भा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रदेश में हुए १९१६ तथा १९३६ में हुए दोनों अधिवेशनों में आपने योग दिया था। सन् १९१६ में अ भा हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सातवां अधिवेशन जबलपुर में प रामावतार शर्मा की अध्यक्षता में हुआ था। इस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष प विष्णुदत्त शुक्ल थे और प रविशंकर जी शुक्ल स्वागत समिति के उपाध्यक्ष थे। अ भा सम्मेलन का सफल अधिवेशन हो जाने पर इस प्रयत्न से उत्साहित होकर शुक्ल जी तथा सप्रे जी आदि ने मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्राण प्रतिष्ठा की। प्रदेश के पुराने नेता रा ब प विष्णुदत्त शुक्ल ने संस्था के संघटित करने के सुझाव का स्वागत किया। ३० मार्च सन् १९१८ को रायपुर में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन म प्र विधान सभा के सदस्य एवं सुलेखक प प्यारेलाल मिश्र बार-एट-ला की अध्यक्षता में हुआ। इस प्रथम अधिवेशन तथा सम्मेलन के अगले अधिवेशनों में शुक्ल जी ने बड़ी दिलचस्पी ली।

म प्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पाचवां अधिवेशन ४ मार्च १९२२ को प रविशंकर शुक्ल की अध्यक्षता में नागपुर में हुआ। इस अवसर पर शुक्ल जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा बनाने के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था—'प्रश्न यह उठता है कि एक विदेशी भाषा हमारी जातीय आकांक्षाओं एवं जातीय मनोवृत्ति को यथार्थ रूप से प्रकट करने में कहां तक सहायक हो सकेगी? इसके स्थान में हम किसी एक

सबसे व्यापक और उपयुक्त भारतीय भाषा को स्थानापन्न करना ही होगा।" अपनी इस सुनिश्चित सम्मति को व्यक्त करते हुये शुक्ल जी ने हिन्दी एवं हिन्दी का प्रचार करने वाली संस्थाओं की महती उत्तरदायिता को स्पष्ट करने मे भी कोई संकोच नही किया। आपने सन् १९२२ मे अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था—"मेरी व्यक्तिगत राय है कि भारतीय राष्ट्र निर्माण के इस कठिन प्रसंग में यदि हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्राचीन संकीर्णताओं को स्वीकार किए हुए देश की वर्तमान परिस्थितियो से उदासीन बना रहेगा तो वह देश का सच्चा कल्याणकारी कभी नही हो सकता, इसलिये प्रत्येक हिन्दी साहित्य प्रेमी को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जवाबदारी का विराट प्रश्न उपस्थित है तो वह हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के सामने है। इस विषय की समस्या को हल करने के लिये हमे दूरदर्शिता, बुद्धि और हृदय की उदारता और कार्य-तत्परता, इत्यादि अनेक गुणों की आवश्यकता है क्योकि आपको यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि हमारे सामने हिन्दू राष्ट्र स्थापित करने का प्रश्न नही है। यदि प्रश्न इतना ही होता तो वह कोई बड़ी बात नही थी। प्रश्न हमारे सामने भारतीय राष्ट्र स्थापित करने का है और इसी कारण हमारे लिए राष्ट्र संघटन का काम अत्यन्त कठिन हो रहा है। चाहे जो हो, यदि हम संसार में जीना चाहते है तो हमे यह काम अवश्य करना पड़ेगा।"

हिन्दी की क्षमता के विषय में शुक्ल जी ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा था—"मेरे कहने का आशय यह नही है कि हिन्दी अपने स्वरूप को इतना परिवर्तित कर दे कि उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जाय और अपने वर्तमान की सारी विशेषता वह खो बैठे। जिस समय मैं यह कह रहा हूँ कि हिन्दी को उन्नतिशील होते हुए परिवर्तनशील और उदार होना चाहिये, उस समय मै यह आशय प्रकट करना चाहता हूँ कि उसमे एक जीती-जागती और प्रौढ़ भाषा की विशेषताये आ जानी चाहिये। इससे उसके व्यक्तित्व के नष्ट हो जाने की आशंका जरा भी नही है, प्रत्युत उससे शालीनता और प्रभुता के बढ़ जाने की ही सम्भावना है।"

पांचवे अधिवेशन के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन मे सभी कार्यकर्त्ताओ के संलग्न हो जाने से अगले १२ वर्ष तक प्रादेशिक सम्मेलन सुषुप्त रहा। सन् १९३६ मे नागपुर में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की गतिविधि मे फिर तीव्रता आयी। नागपुर अधिवेशन में शुक्ल जी स्वागत समिति के उपाध्यक्ष थे। राजनीतिक कार्यो मे व्यस्त रहने के कारण शुक्ल जी प्रादेशिक सम्मेलन की हलचलो मे प्रत्यक्ष भाग तो नही ले सके, परन्तु राष्ट्रभाषा एवं प्रादेशिक भाषा के रूप में हिन्दी भाषा व साहित्य एवं देवनागरी लिपि की समुन्नति करने मे शुक्ल जी ने जो सक्रिय योग दान किया है, उसका विशेष महत्त्व है। शासन-सूत्र सम्भाल कर एवं भारतीय संविधान परिषद् में शुक्ल जी ने इस विषय में उल्लेखनीय कार्य किया है, जिसका यथासमय ग्रन्थ के अगले पृष्ठो मे उल्लेख किया जा रहा है।

असहयोग के युग में—प्रथम विश्व महायुद्ध के दिनों मे बढ़ते हुए भारतीय असन्तोष को शान्त करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने भारत मे तत्कालीन भारतमन्त्री श्री मान्टेग्यू को भारत की स्थिति का निरीक्षण करने के लिये भेजा था। उन दिनों ब्रिटिश सरकार के समक्ष लोकमत को प्रकट करने के लिये स्थान-स्थान पर सभाये की जाती थीं। इसी प्रकार की एक सभा २६ अगस्त १९१७ को रायपुर मे माननीय सी. एम. ठक्कर के सभापतित्व मे हुई थी। इस सभा मे श्री रविशंकर जी शुक्ल ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया था—"कांग्रेस और लीग ने शासन प्रबन्ध के विषय में जो सुधार शासन के सामने रखे है, उसके बिना देश का उत्कर्ष नही होगा और उसके अभाव में उपनिवेश की भांति भारत स्वयं शासन के योग्य नही हो सकेगा। इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिये जब-जब स्वार्थत्याग करने का अवसर उपस्थित हो, तब-तब देश का प्रत्येक नागरिक सत्कार्य समझ कर आनन्द से करे।"

एक ओर भारतमन्त्री मान्टेग्यू बढ़ते हुए भारतीय असन्तोष को दबाने के लिये चिकनी-चुपड़ी बात कर रहे थे, तो दूसरी ओर देश के जाग्रत लोकमत को कुचलने के लिये विदेशी सरकार ने काले रोलट कानून को प्रचलित किया। इस कानून के स्वीकार हो जाने से देश भर में भीषण असन्तोष व्याप्त हो गया। केन्द्रीय धारा सभा में मध्यप्रदेश की ओर से

निर्वाचित एवं प्रतिनिधि रा व पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल ने इस असन्तोष का व्यक्त करने के लिये केन्द्रीय धारा सभा की सदस्यता से त्याग पत्र द दिया। रालट कानून के विरोध में जाग्रत पजाब को कुचलने के लिये जब अंग्रेजों ने जलिया वाला बाग में खून की होली खेली तो गाधी जी के नेतृत्व में काग्रेस ने असहयोग का बिगुल बजा दिया। कलकत्ता में हुए सन् १९१९ के काग्रेस के विशेष अधिवेशन में शासन से असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

माटेग्यू चेम्मफोड योजना के अन्तगत तारीख २४ दिसम्बर १९१९ को मध्यप्रदेश का शासन चीफ कमिश्नर के हाथ से लेकर गवनर तथा उसकी शासन परिषद को सौंपा गया। योजना के अन्तगत प्रदेश में द्वध शासन (डायर्की) की स्थापना की गयी। इस योजना के अन्तगत प्रान्तीय विधान सभा के सदस्यो की सख्या २७ से ७० की गयी तथा सभा का अध्यक्ष भी सरकारी व्यक्ति के स्थान पर गर सरकारी होने लगा। सरकारी सुधार नाम-मात्र के थे, इन से जनता की वास्तविक मागो की पूर्ति नहीं होती थी, इनसे केवल कुछ असन्तुष्ट व्यक्तियो को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने रोलट एक्ट भी प्रचलित किया, जो स्वातन्त्र्य सघष का एक चुनौती थी। महात्मा गाधी जी ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि अपने नतिक साधनो के द्वारा रालट कानून के विरुद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। सत्याग्रह के आदोलन ने देश भर में एक अपूव क्रान्ति का वातावरण प्रस्तुत कर दिया। विद्यार्थियो ने सरकारी कालेज छोड दिए, वकीलो एव डाक्टरो न देश सवा अपना मुख्य धधा बना लिया। श्री शुक्ल जी इस समय से पूव अपना समय सामाजिक, जातीय एव सास्कृतिक कार्यो में लगाते थे पर इस गाधी की आधी म उनका भी काया-कल्प होगया। उन्हान अपने शौक के सुदर एव महीन कपडो को तिलाजलि दे दी और खद्दर के मोटे कपडे पहनने प्रारम्भ कर दिये। शुक्ल जी न अपन बड परिवार एव विविध सामाजिक कार्यो की जिम्मेदारी को निबाहने के लिये दूसरी किसी आमदनी का सहारा न होन से वकालत तो नहीं छोडी परन्तु वे अपने तन-मन धन सभी साधनो एव शक्तियो के साथ वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सलग्न हो गये। देश की राजनीतिक परिस्थिति पर विचार करने के लिये सितम्बर सन् १९१९ में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता म काग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। इस विशेष काग्रेस में शुक्ल जी और पण्डित विष्णुदत्त जी शुक्ल भी गये हुए थे। दोनो ने मध्यप्रदेश की ओर स काग्रेस क अगल अधिवेशन क लिये निमन्त्रण दिया था। प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के सम्मुख यह विचारणीय विषय रखा गया कि प्रस्तावित अधिवेशन नागपुर में हो, अथवा जबलपुर में। इस समय नागपुर क सदस्यो न तीन रुपये वाल बहुसख्यक सदस्य बना कर कमेटी म अपना बहुमत कर लिया और बहुमत स निश्चय किया गया कि अगला अधिवेशन नागपुर में किया जाय। हिन्दी मध्यप्रदेश के सदस्यो ने यह निश्चय स्वीकार तो किया, परन्तु खिन्न मन से। नागपुर के विशेष अधिवेशन में असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस अधिवेशन म काग्रेस के विधान म भी परिवर्तन किया गया। महात्मा गाधी ने यह प्रस्ताव रखा था। भाषा के आधार पर अखिल भारतीय काग्रेस सघटन २१ प्रान्तो में विभक्त किया गया। इसी विधान के अनुसार मध्यप्रदेश का हिन्दी भाषी विभाग नागपुर और विदर्भ के मराठी-भाषी विभाग से पृथक् हो गया। प्रारम्भ में हिन्दी प्रदेश को हिन्दुस्तानी या हिन्दी सी पी कहा जाता था, परन्तु १९३० में रायपुर में हुई राजनीतिक परिषद् क प्रस्ताव के अनुसार इसे महाकोशल नाम दे दिया गया। नागपुर काग्रेस के अवसर पर एक दुखद प्रसङ्ग भी हुआ, पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल के स्वर्गवास से प्रदेश का एक कमठ नेता सदा के लिये उठ गया।

कलकत्ता तथा नागपुर काग्रेस स नव सदेश लेकर शुक्ल जी ने अपने जिले तथा प्रान्त की सक्रिय राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। वे सन् १९१४ से ही रायपुर नगरपालिका के सदस्य थे और इस पद पर सन् १९२८ तक बने रहे। सन् १९२१ से आप काग्रेस के भी नियमित सदस्य बन गये और अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति के सदस्य चुन लिये गये। तब से वे आज तक इसके निरन्तर सदस्य बने रहे। सन् १९२१ से आप जिला कौंसिल के सदस्य चुने गये और सन् १९३६ तक इस सस्था के भग होने की अवधि को छोड कर सन् १९३६ तक इस स्थान पर सफलतापूर्वक काय करते रहे। सन् १९२१ में नवीन विधान के अनुसार रायपुर में काग्रेस का प्रथम चुनाव हुआ।

शुक्ल जी जिला कांग्रेस के मन्त्री थे। शुक्ल जी के विरोध में कई शक्तियां एकत्र हो गयी थी, कुछ सरकार परस्त लोग, कुछ व्यक्तिगत विरोधी और कुछ कांग्रेसजन। शुक्ल जी ने भी अपना पक्ष सुदृढ किया। शुक्ल जी इससे पूर्व रायपुर तथा समीपस्थ क्षेत्रों मे तिलक स्वराज्य कोश के लिये धन-संग्रह का कार्य कर चुके थे, और पांच दिन में ही २१ हज़ार रुपया एकत्र कर चुके थे, इसलिये उनका परिचय पर्याप्त व्यापक हो गया था। मन्त्री के रूप मे शुक्ल जी ने दोनों पक्षों को ख़ूब रसीद वहियां दी। दोनों पक्षो ने ख़ूब सदस्य बनाये। रायपुर शहर मे पहली वार हज़ारों की गिनती में कांग्रेस के सदस्य वने। दोनों पक्षों ने व्यापक प्रचार-कार्य किया। सारे चुनाव को पूर्ण व्यवस्थित वनाने के लिये व्यवस्थित मतदाता सूची वनायी गयी, पूरे रजिस्टर भरे गये, इस वढ़े हुए कार्य को पूरा करने के लिये दस अतिरिक्त क्लर्क रखे गये थे। चुनाव मे, जो कि पहली वार प्रजातान्त्रिक पद्धति से लड़ा गया था, शुक्ल जी को सर्वाधिक मत मिले। शुक्ल जी हिन्दी सी. पी. कांग्रेस में भी चुने गये। कौंसिल के वहिष्कार की असहयोग विषयक नीति को भी आपने अपनाया। आप न तो स्वयं कौंसिल मे गये और न आपने स्वर्गीय रा. व. चौधरी और स्वर्गीय सी. एम ठक्कर, वैरिस्टर, आदि अपने सहयोगियो को ही कौंसिल मे जाने दिया। तारीख २६ मई सन् १६२० ई. की प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् मे शुक्ल जी ने हिस्सा लिया था। आपकी उपस्थिति से परिषद् के विचार विमर्श मे एक प्रकार की गम्भीरता आ गयी थी—इस घटना का उल्लेख करते हुए "कर्मवीर" ने लिखा था—"जहां दादा साहव खापर्डे, डॉ. मुजे, वैरिस्टर राव, श्री उमाकान्त घाटे, वाबू नाथूराम और अन्य वीसियो प्रतिनिधियों ने परिषद् को गरम वनाया था, वहा पण्डित रविशंकर शुक्ल, पण्डित मनोहर पन्त गोलवलकर और पण्डित प्यारेलाल मिश्र, आदि सज्जनों ने अपनी उपस्थिति से उदारता ला दी थी।"

शीघ्र ही शुक्ल जी रायपुर तथा प्रान्त की राजनीतिक प्रवृत्तियो मे अधिकाधिक भाग लेने लगे। तारीख़ २ जुलाई सन् १६२१ ई. को विलासपुर के दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) ने कर्मवीर सम्पादक पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी को आठ मास की सख़्त सजा दी थी। मजिस्ट्रेट ने दण्ड देते हुए अपने निर्णय मे लिखा था—"जो व्यक्ति जनता की दृष्टि मे सरकार की प्रतिष्ठा को गिराता है, वह राजद्रोह के अपराध में दण्डनीय है।" यह दण्ड सुनाने के दिन ही जनता का विरोध प्रदर्शित करने एवं माखनलाल जी के कार्य का अभिनन्दन करने के लिये एक वड़ी सार्वजनिक सभा की गयी। इस सभा के अध्यक्ष थे—पण्डित रविशंकर जी शुक्ल और प्रधान वक्ता के रूप मे वैरिस्टर राघवेन्द्रराव ने व्याख्यान दिया। अध्यक्षीय भाषण देते हुए शुक्ल जी ने माखनलाल जी के कार्य एवं तपस्या की सराहना करते हुए काग्रेस के कार्यक्रम का समर्थन किया।

शुक्ल जी की गिरफ्तारी—सन् १६२२ के मई मास मे रायपुर मे छिन्दवाड़े के श्री घाटे वकील की अध्यक्षता मे रायपुर जिला राजनीतिक परिषद् का आयोजन किया गया। इस परिषद् का आयोजन करने के लिये शुक्ल जी की अध्यक्षता में एक स्वागत समिति का निर्माण किया गया था। परिषद् के कारण रायपुर की जनता मे एक अभूतपूर्व उत्साह का वातावरण व्याप्त हो गया था। सरकार ने स्थिति का नियन्त्रण करने के लिये पूरी तैयारी कर ली। राजनीतिक परिषद् में क्या होता है, यह देखने के लिये जिलाधीश और पुलिस कप्तान ने शुक्ल जी से परिषद् में प्रवेश पाने के लिये पांच नि.शुल्क प्रवेश-पत्र (पास) मागे थे। स्वागत समिति ने यह नियम वनाया था कि परिषद् मे प्रवेश-पत्र या टिकट के विना कोई प्रविष्ट नही हो सकेगा। स्थानीय सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रवेश-पत्र मांगे जाने पर शुक्ल जी ने उन्हे सूचित किया कि वे टिकट ख़रीद कर ही परिषद् मे प्रवेश पा सकते है। स्वागत समिति का यह निर्णय मालूम होने पर सरकारी अधिकारियो ने शक्ति-प्रयोग कर परिषद् मे घुसने का निर्णय किया। घटना के दिन, दोपहर से ही शहर भर मे यह खवर फैल गयी थी कि शुक्ल जी गिरफ्तार कर लिये जायेगे। परिषद् के ठीक समय पण्डाल के सामने स्वयंसेवकों की तीन-तीन कतारे खड़ी हुई थीं—इनके सामने शुक्ल जी और श्री लाखे खडे थे। मजिस्ट्रेट, सिटी कोतवाल के साथ पण्डाल के प्रवेश द्वार पर पहुँचे। ये मजिस्ट्रेट खैरागढ के भूतपूर्व दीवान खा. व. मौलवी मोहम्मद हुसैन के पुत्र एवं एक समय खैरागढ़ हाई स्कूल मे शुक्ल जी से पढ़े हुए श्री आले हसन रिजवी थे। पुलिस अधिकारियो ने पण्डाल के भीतर जाना चाहा। शुक्ल जी ने कहा कि टिकट दिखला दीजिये और अन्दर चले जाइये। शुक्ल जी और श्री लाखे ने एक दूसरे

का हाथ पकड़ लिया और पुलिस अधिकारियों का अन्दर जाने से रोका। ज्यों ही पुलिस अधिकारियों ने यह विरोध देखा, उन्होंने शुक्ल जी के हाथों में हथकड़ी डाल दी। रायपुर में पुलिस कोतवाली या चावड़ी घटनास्थल के निकट ही है। पुलिस शुक्ल जी को गिरफ्तार कर हथकड़ी के साथ ही रास्ते में प्रदर्शन करती हुई ले गयी और हवालात में बन्द कर दिया। शुक्ल जी की गिरफ्तारी की खबर कुछ ही मिनटों में रायपुर शहर भर में फैल गयी। खबर सुनते ही परिषद की कार्यवाही अगले दिन के लिये स्थगित कर दी गयी। हजारों के उत्तेजित जन-समूह ने एकत्र होकर पुलिस कोतवाली में घुसने का प्रयत्न किया। इस अवसर पर सर्वश्री माधवराव सप्रे, ई. राघवेन्द्रराव व वामनराव लाखे ने उत्तेजित जनता को नियंत्रण में रखा, अन्यथा इस अवसर पर गोली चल जाती, क्योंकि सशस्त्र पुलिस के सिपाही समीपस्थ एक मकान में लाकर रखे गये थे। जनता देर तक खड़ी होकर पुलिस इन्स्पेक्टर को बाहर निकलने के लिये ललकारती रही।

अगले दिन प्रातः स्वयंसेवकों की एक रैली की गई। इस अवसर पर पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी ने एक बहुत ही जोशीला व्याख्यान दिया। चतुर्वेदी जी दो चार दिन पहले ही जेल से छूट कर आये थे। राजनीतिक परिषद् की स्वागत समिति ने एवं महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी ने श्री ई. राघवेन्द्र राव की अध्यक्षता में बैठ कर सारी परिस्थिति पर विचार किया और एक पत्र लिख कर जिला अधिकारियों से पूछा कि किस सरकारी कायदे के अनुसार सरकारी अधिकारी प्रत्येक खासगी जगह पर टिकट या प्रवेश पत्र के बिना घुसना चाहते हैं। इस विषय में दोनों पक्षों का दिन भर पत्र व्यवहार होता रहा। अधिकारियों ने स्वीकार किया कि वे किसी कायदे के अन्तर्गत ऐसा नहीं कर रहे परन्तु इस विषय में शासन अधिकारियों के जो आदेश (एक्जीक्यूटिव इन्स्ट्रक्शन्स) हैं, उन्हीं का पालन किया जा रहा है। इस पर कांग्रेस एवं राजनीतिक परिषद् की ओर से जवाब दिया गया कि वे एग्जीक्यूटिव इन्स्ट्रक्शन्स मानने के लिये तैयार नहीं हैं और कानून को अपना कार्य करने का अवसर देना चाहिये (लेट दि लॉ हैव इट्स ऑन कोर्स)।

उस दिन प्रातः से सायंकाल तक नगर के छोटे व बड़े २०० से अधिक व्यक्तियों ने अपना नाम उन लोगों की सूची में लिखाया, जो पुलिस वालों को रोक कर गिरफ्तार होने के लिये तैयार थे, इस सूची में केवल कांग्रेस वाले ही नहीं थे, परन्तु शहर के आनरेरी मजिस्ट्रेट तक सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त सदर बाजार के अनेक प्रतिष्ठित सेठ-साहूकार व शुक्ल जी के मोहल्ले के बहुत से महाराष्ट्रीय सज्जन एवं नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति इस सूची में शामिल थे। इन २०० व्यक्तियों में से पहले दिन के लिये दस व्यक्ति चुने गये, जिनमें सर्वश्री माधवराव सप्रे, राघवेन्द्रराव, वामनराव लाखे, नारायणराव मेघा, पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र (जो उस समय कालेज के एक विद्यार्थी थे), आदि व्यक्ति सम्मिलित थे। इन दस स्वयंसेवकों के नेता श्री माधवराव सप्रे थे।

जब सभा प्रारम्भ होने का समय हुआ तब जिलाधीश श्री सी. ए. कनाक, अंग्रेज पुलिस कप्तान जोन्स के साथ सभा-स्थान पर आये। इन्होंने दरवाजे के सामने खड़े सप्रे जी से कहा कि वे भीतर जाकर स्वागत समिति के पदाधिकारियों से बात करना चाहते हैं। पण्डित सप्रे ने कहा कि "वे उन्हें बिना टिकट या प्रवेश पत्र के अन्दर जाने की अनुमति नहीं दे सकते हैं।" उन्होंने एक स्वयंसेवक से कहा कि वह परिषद् के मंत्री और गवर्नर को बुला लाये। यह सुन कर जिलाधीश ने कहा—"यह दूसरा गवर्नर कौन है?" ("हू इज़ दिस सैकण्ड गवर्नर?") सप्रे जी ने उत्तर दिया—प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री राघवेन्द्रराव (प्रेजीडेन्ट ऑफ प्राविन्शियल कांग्रेस, मि. ई. राघवेन्द्रराव)। थोड़ी देर में स्वयंसेवक मंत्री को बुला लाया और सप्रे जी को कहा कि राघवेन्द्रराव कहते हैं कि मैं अपनी ड्यूटी पर तैनात हूँ, इसलिये नहीं आ सकता (आई एम एट माई पोस्ट, आई कैन नाट कम।)। इस पर सप्रे जी ने कहा कि उन्हें बुला लाओ और कहो कि सप्रे उन्हें बुला रहे हैं। इस बीच परिषद् के मंत्री ने अधिकारियों से कहा कि आप लोग अन्दर जा सकते हैं, परन्तु यदि कोई समझौता नहीं होता, तो उन्हें बाहर आना पड़ेगा और बाजाब्ता प्रवेश करना होगा। अधिकारियों ने यह बात मान ली और वे अन्दर गये। पण्डाल में अन्दर जाकर इन अधिकारियों ने परिषद् के अधिकारियों से बात चीत की और टिकट लेकर अन्दर जाना मान लिया। इन अधिकारियों ने श्री राघवेन्द्रराव से कहा कि वे अभी रुपया

नही लाये हैं, पर वे टिकट खरीदने के लिये तैयार है। श्री राव ने कहा—"आपका कथन हमारे लिये खरे सोने के बराबर है" (योर वर्ड इज एज गुड एज गोल्ड) और सबको अन्दर जाने दिया। दो दिन तक शुक्ल जी जेल मे रहे। टिकटों का मामला सुलझने पर शुक्ल जी को जेल में रखना कठिन हो गया। इस पर उन पर से मुकदमा उठा लिया गया और दोपहर के तीन बजे उन्हे छोड़ दिया गया। इन दो दिनों में पुलिस की हवालात में शुक्ल जी से एक खतरनाक अपराधी की नाई व्यवहार किया गया। उनके एक हाथ मे हथकड़ी पकड़े सिपाही खड़ा रहता था और उसी स्थिति मे उन्हें शंका-समाधान करना पड़ता था। शुक्ल जी की इस गिरफ्तारी से रायपुर और प्रान्त की जनता मे बडा विक्षोभ उत्पन्न हो गया था और श्री मुजे तथा श्री नारायणराव, आदि कार्यकर्त्ता रायपुर आ गये थे। इस घटना का एवं जनता के उत्साह एवं देशभक्ति का रायपुर की सशस्त्र पुलिस के सिपाहियों पर बहुत अधिक असर पड़ा था। इनमें से १६ सिपाहियों ने त्याग-पत्र दे दिये। इस घटना से स्पष्ट था कि पुलिस व अफसरो की भी आन्तरिक सहानुभूति जनता के साथ थी।

उक्त गिरफ्तारी तथा पुलिस कार्रवाई के विषय मे समाचार-पत्रो मे खूब चर्चा हुई। इस सम्बन्ध मे असन्तुष्ट लोकमत को व्यक्त करने के लिये भारत लोक सेवा समिति (सर्वेन्ट आफ इण्डिया सोसायटी) के सदस्य श्री अप्पाजी नटेश द्रविड़ ने मध्यप्रान्त व बरार की धारासभा मे एक स्थगित प्रस्ताव रख कर मांग की कि घटना की जाच करने के लिये सरकार एक निष्पक्ष जाच समिति नियुक्त करे। सर्वश्री काशीप्रसाद पाण्डे, सेठ शिवलाल, श्री रामराव देशमुख, श्री पचोरी व श्री जायसवाल, आदि सदस्यों ने इस माग का समर्थन किया और जोरदार भाषण किये। इस पर तत्कालीन गृहमन्त्री सर मोरोपन्त जोशी ने बहस का उत्तर देते हुए स्वीकार किया—"निस्सन्देह शुक्ल जी के समान प्रभावशाली नागरिक के साथ पुलिस ने खेदजनक व्यवहार किया। यह वस्तुतः एक दुखद घटना है, तिस पर भी घटना में सरकारी कर्मचारियो ने कोई विशेष भूल नहीं की। उन्हे परिस्थिति से बाध्य होकर ही ऐसा करना पड़ा। घटना को छ. मास हो चुके हैं; अब उसकी जांच कराने का कोई लाभ नही होगा"। सरकार के मुख्य सचिव श्री नेल्सन तथा प्रमुख परामर्शदाता (एडवायजर) सर टण्डन ने भी इसी प्रकार के उत्तर दिये थे।

प्रान्त की राजनीति में—सन् १९२२ के दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में पटना मे देशबन्धु चितरंजनदास की अध्यक्षता मे कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस के अधिवेशन मे कौसिल मे प्रवेश के प्रश्न पर बड़ा तीव्र वाद-विवाद हुआ, परन्तु इसका कोई निर्णय नही हुआ। अधिवेशन समाप्त होते ही, दिनाक ३१ दिसम्बर सन् १९२२ ई. को विभिन्न प्रान्तो के प्रतिनिधियो ने कांग्रेस के अन्तर्गत ही "स्वराज्य पार्टी" नामक एक संस्था को जन्म दिया। देशबन्धु चितरंजन दास इस पार्टी के अध्यक्ष तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू, विठ्ठलभाई पटेल, चौधरी तथा खलीकुज्जमा मन्त्री चुने गये। कौसिल मे प्रवेश कर उन्हें भंग करना, इस नवीन दल का उद्देश्य था। महाकोशल मे इस नवीन दल का संगठन कार्य एवं नेतृत्व सेठ गोविन्द दास, बैरिस्टर राघवेन्द्रराव व पण्डित रविशंकर शुक्ल कर रहे थे। प्रारम्भ में पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, आदि अपरिवर्त्तनवादी सदस्यों ने प्रान्तीय कांग्रेस में कौसिल प्रवेश के कार्य का विरोध किया। श्री चतुर्वेदी ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री राव एवं कांग्रेस संघटन के विषय मे एक प्रस्ताव रखा, जो स्वीकृत होगया। कांग्रेस जनों का कौसिल प्रवेश के प्रश्न पर विरोध अधिक दिनों तक नही चला। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से प्रान्तीय कांग्रेस समितियों से कौसिलो मे प्रवेश के विषय मे सम्मति मागी गयी थी। इस पर प्रान्तीय कांग्रेस ने विचार कर एक घोषणा-पत्र द्वारा कौसिल प्रवेश का समर्थन किया। इस पत्रक पर हस्ताक्षर करने वाले प्रमुख व्यक्तियो मे सर्व श्री राघवेन्द्रराव, पण्डित रविशंकर शुक्ल, बाबू गोविन्द दास, श्रीखण्डे, घाटे, छेदीलाल, वामनराव खानखोजे, मुहम्मद अकबर, अब्दुर क़ादिर, वासुदेवराव सूबेदार, आदि सम्मिलित थे। सन् १९२३ में दिल्ली मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर विचार करने के लिये किया गया। इस अधिवेशन मे स्वराज्य पार्टी को कौंसिल प्रवेश की अनुमति दे दी गयी। इस प्रकार स्वराज्य पार्टी के उम्मीदवारों को कांग्रेस का अधिकृत

समर्थन प्राप्त हुआ। मध्यप्रदेश में स्वराज्य पार्टी के संघटन को सुदृढ करने मे जिन प्रमुख व्यक्तियों का योग रहा, उनके नाम ये हैं —स्वर्गीय बैरिस्टर अभ्यंकर, डा मुंजे, पण्डित रविशंकर शुक्ल, बैरिस्टर श्री ई राघवेन्द्रराव, श्री ताम्बे, श्री माधवराव श्रीहरि अणे, सेठ गोविंददास, श्री दुर्गाशंकर मेहता और बैरिस्टर छेदीलाल आदि।

सन १९२४ में प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचन हुए। इस निर्वाचन में सम्पूर्ण मध्यप्रान्त और बरार में स्वराज्य पार्टी के उम्मीदवारों को बडी सफलता मिली। कौंसिल के निर्वाचित ५४ सदस्यों में से ३९ सदस्य स्वराज्य पार्टी के तथा ३ स्वराज्य पार्टी द्वारा सहायता प्राप्त सदस्य थे। इस प्रकार स्वराज्य दल के ४२ सदस्य थे। धारा सभा के कुल ७० सदस्यों में सरकारी सदस्य १६ थे और स्वतन्त्र १२ थे। इन ४२ स्वराज्य दलीय सदस्यों में से पण्डित रविशंकर शुक्ल भी एक प्रमुख सदस्य थे। व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचनों में सम्पूर्ण देश की दृष्टि से मध्यप्रान्त में स्वराज्य दल की विजय बहुत महत्त्वपूर्ण थी। यहां स्वराज्य दल को सभा में निर्णायक बहुमत प्राप्त हो गया था, फलत प्रान्त के राज्यपाल (गवर्नर) सर फ्रैंक स्लाय ने धारा सभा में स्वराज्य दल के नेता डा मुंजे को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये निमन्त्रित किया किन्तु दल का लक्ष्य पद-ग्रहण न होने से उन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस अवसर पर स्वर्गीय देशबन्धु चितरञ्जनदास और पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्वय नागपुर पधारे और उन्होंने व्यवस्थापिका सभा के स्वराज्य दल सदस्यों को आवश्यक परामर्श दिया। गवर्नर ने एक अल्प-दलीय मन्त्रिमण्डल बना कर कार्य प्रारम्भ किया। स्वराज्य दल की ओर से इस मन्त्रिमण्डल पर अविश्वास का प्रस्ताव रक्खा गया, जो कि २४ मतों के विरुद्ध ४८ मतों से स्वीकार कर लिया गया। विदेशी माल के बहिष्कार, सरकारी बजट अस्वीकृत करने एवं मन्त्रिमण्डल के वेतन को अस्वीकृत करने विषयक स्वराज्य दल के प्रस्ताव २२ मतों के विरुद्ध ४० मतों के भारी बहुमत से स्वीकार कर लिये गये। बजट के कटौती प्रस्ताव पर शुक्ल जी ने बहुत ही जोशीला भाषण दिया था। जिन दिनों जब मध्यप्रदेश में स्वराज्य पक्ष की विजया से समस्त राष्ट्र का ध्यान इस प्रान्त की ओर आकर्षित हो रहा था, स्वराज्य दल द्वारा मन्त्रिमण्डल के कार्य में सहयोग न देने एवं अडङ्गे की नीति प्रचलित रखने की घोषित नीति के बावजूद महाराष्ट्र में श्री न चि केलकर एवं जी जयकर एवं मध्यप्रान्त बरार में श्री अणे और डा मुंजे पदग्रहण के पक्षपाती हो गये थे। इस प्रकार स्वराज्य पार्टी में आन्तरिक फूट हो गयी। पण्डित रविशंकर शुक्ल और बैरिस्टर अभ्यंकर ने पदग्रहण के समर्थक सदस्यों को बहुत समझाया।

इसी बीच प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के नव निर्वाचन के अनन्तर नवीन अध्यक्ष के निर्वाचन का प्रश्न उपस्थित हुआ। उस समय स्वराज्य पक्ष का बहुमत चाहता था कि पण्डित रविशंकर शुक्ल, सभा के अध्यक्ष पद पर चुने जाय, परन्तु पद-ग्रहण के पक्षपाती लोग अपना व्यक्ति इस पद पर चाहते थे। हिन्दी सी पी, नागपुर और विदर्भ-तीनों प्रान्तों के तीन नेता थे और सम्पूर्ण दल के संयुक्त नेता डा मुंजे थे। अध्यक्ष पद के उम्मीदवार के चुनाव के लिये स्वराज्य दल ने एक दिन नियत किया था। अध्यक्ष पद के लिये दल के बहुसंख्यक हिन्दी भाषी सदस्य शुक्ल जी का नाम रखना चाहते थे, परन्तु उन्हें रायपुर में जिला कौंसिल के आवश्यक चुनाव मे भाग लेना था। सी पी हिन्दी वालों की ओर से मांग की गयी कि दल की संयुक्त बैठक दूसरे दिन के लिये स्थगित की जाय, परन्तु बैठक उसी दिन हो गया और श्री ताम्बे व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष पद के लिये उम्मीदवार चुन लिये गये। दूसरे दिन हिन्दी सी पी वाले आये, इन्होंने इस प्रश्न पर पुनर्विचार के लिये सुझाव भी दिया, परन्तु बहुमत होते हुए भी कोई बल नहीं दिया। पदग्रहण के पक्षपातियों का बहुमत नहीं हुआ फल यह हुआ कि श्री ताम्बे अध्यक्ष चुन लिये गये, उनके चुनाव में सरकारी पक्ष का समर्थन मिला और वह बहुत प्रसन्न हुआ और हिन्दी सी पी वाले मौन रहे। कुछ समय बाद गृहमन्त्री सर मारोपन्त जोशी ने गृहमन्त्री का पद छोड दिया। इस पद पर स्वराज्य दल के श्री ताम्बे कौंसिल की अध्यक्षता छोड कर आसीन होगये। श्री केलकर और जयकर ने ताम्बे के चुनाव पर उन्हें बधाई दी। स्वराज्य दल को इस घटना से बड़ा धक्का लगा। तत्कालीन स्थिति पर विचार करने के लिये तारीख ८ नवम्बर १९२५ ई को नागपुर में अखिल भारतीय स्वराज्य दल की एक बैठक हुई जिसमें बैरिस्टर अभ्यंकर द्वारा प्रस्ताव उपस्थित करने पर श्री ताम्बे की भर्त्सना की गयी और प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

शुक्लजी कवर्धा और बस्तर के राजकुमारों का अध्यापन करते हुए

शुक्लजी कान्यकुब्ज सभा के अधिवेशन के समय

शुक्लजी का सिवनी जेल से छूटने पर स्वागत

शुक्लजी मीरा बेन के साथ रायपुर में। चित्र में अन्य—डा. प्यारेलाल
महंत लक्ष्मीनारायणदास एवं सुन्दरलाल त्रिपाठी
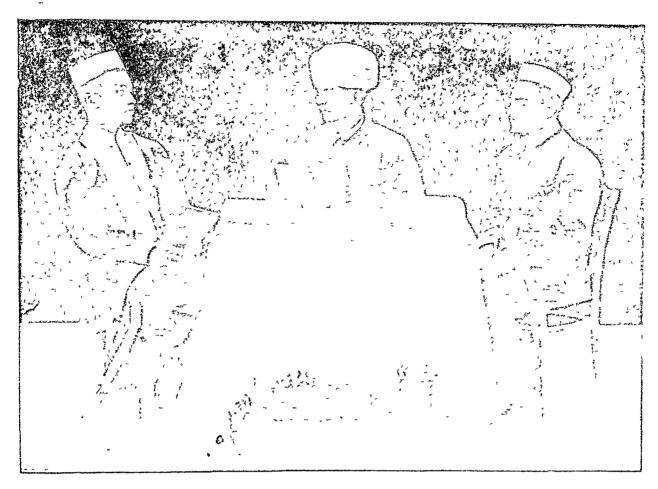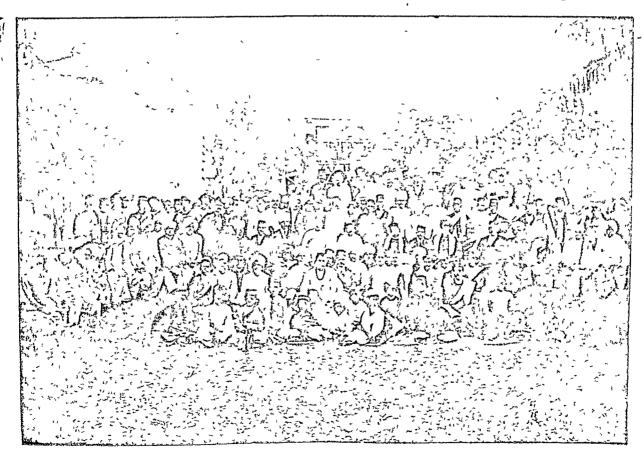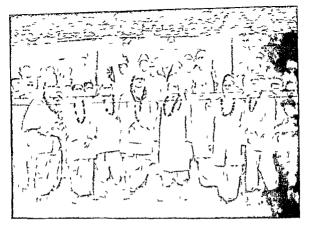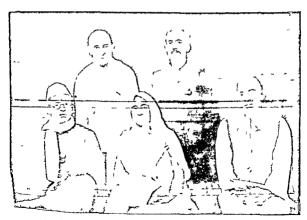
ताम्बे काण्ड से मध्यप्रदेश की राजनीति बड़ी विक्षुब्ध रही। श्री ताम्बे के वाद श्री यादव माधव काले व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष वन गये। स्वराज्य दल मन्त्रियो का वेतन एवं सम्पूर्ण वजट की मांगे अस्वीकृत कर कौसिल के वाहर चला गया। इन दिनों श्री ई. राघवेन्द्रराव और डा. मुजे पदग्रहण के पक्ष में थे। इस परिस्थिति में तारीख ८ मार्च सन् १९२५ ई. को स्वराज्य दल के नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू ने श्री राव को एक तार भेज कर आदेश दिया कि वे कानपुर काग्रेस के आदेशानुसार कार्य करें। इस तार से स्वराज्य दल की वैठक मे खलवली मच गयी। इस सभा मे भाषण देते हुए पण्डित रविशंकर शुक्ल ने परामर्श दिया था—"हमें प्रत्येक हालत में श्री नेहरू के आदेश का पालन करना ही होगा।" स्वराज्य दल के सदस्यों ने वहुमत से अपनी पूर्व नीति रखी और पद-ग्रहण की नीति का विरोध किया।

इन्ही दिनों राष्ट्र की राजनीतिक परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन आ गया था। महात्मा गान्धी जेल से छूटने पर अपने साथियों के साथ सावरमती आश्रम में विधायक कार्यक्रम पूर्ण करने मे संलग्न हो गये थे। मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक नीति भी पनपने लगी थी, उसके मुकावले मे पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द "हिन्दू संगठन" का कार्य करने लगे थे। ताम्बे प्रकरण से सारा महाराष्ट्र कांग्रेस की कौसिल मे विरोध की नीति से असन्तुष्ट हो गया था। नागपुर की वैठक मे "एक प्रति सहकार दल" (रिस्पान्सिव कोआपरेशन पार्टी) की स्थापना हो चुकी थी। सन् १९२५ ई. के अप्रैल मास में कांग्रेस दल और प्रति सहकार दल मे सावरमती मे एक समझौता भी हुआ परन्तु तुरन्त भंग हो गया, फलत. दोनों दलों ने पृथक् चुनाव करने का निर्णय किया। तारीख १६ मार्च सन १९२५ ई. को गवर्नर द्वारा प्रान्तीय धारा सभा भंग किये जाने पर नवीन निर्वाचन हुआ। इस चुनाव में कांग्रेस के विरोध में मराठी जिलों में डा मुजे और श्री अणे के नेतृत्व मे प्रति सहकार दल (रिस्पान्सिव कोआपरेशन पार्टी) ने चुनाव लड़ा, मराठी क्षेत्र मे स्वराज्य दल के नेता श्री अभ्यंकर थे। महाकोशल में स्वराज्य दल के नेता सेठ गोविन्ददास थे। यहा पर एक स्वतन्त्र काग्रेस दल का संघटन किया गया। इस दल के नेता श्री ई. राघवेन्द्र राव थे। कौसिल के नवीन निर्वाचन मे स्वतन्त्र कांग्रेस दल के प्रचार कार्य के लिये महामना मदनमोहन मालवीय जी रायपुर पधारे। ये पण्डित रविशंकर जी शुक्ल के घर पर ही ठहरे। मालवीय जी के आग्रह करने पर शुक्ल जी ने स्वतन्त्र कांग्रेस की ओर से खड़ा होना स्वीकार कर लिया।

कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन मे कांग्रेस द्वारा स्वराज्य दल को पूर्ण सहयोग देने के निश्चय से काग्रेस संघटन की सारी शक्ति स्वराज्य दल के पक्ष मे लग गयी। रायपुर मे शुक्ल जी की परिस्थिति बड़ी विचित्र हो गयी। वे एक ओर रायपुर कांग्रेस के मन्त्री थे, काग्रेस संस्था की विज्ञप्तियो में काग्रेस की वोट देने के लिये कहा जा रहा था और स्वयं शुक्लजी स्वतत्र काग्रेस के उम्मीदवार थे। शुक्ल जी ने इस विचित्र परिस्थिति मे भी अपने पूरे मानसिक सन्तुलन का परिचय दिया। उनका घर पहले की तरह स्वराज्य दल एवं कांग्रेस पक्ष के कार्यकर्त्ताओं व नेताओ का शिविर वना रहा। उनके निवासस्थान की पहली मंजिल पर स्वराज्य दल के सेठ गोविन्ददास जी, पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र और उनके सहयोगी ठहरे हुए थे। नीचे स्वतन्त्र कांग्रेस के श्री ई. राघवेन्द्रराव तथा शुक्ल जी के दूसरे सहयोगी ठहरे हुए थे। दोनों पक्ष अपने-अपने कार्य मे लगे रहते थे और सर्वत्र शोर मचा रहता था। इसे देख कर उस समय के एक प्रेक्षक ने कहा था—'कुछ हूल सी मची है, त्रिपुरारि के तवेले मे'।

चुनाव हुआ, स्वराज्य पक्ष के सेठ शिवदास डागा विजयी हुए और शुक्ल जी असफल हो गये। शुक्लजी ने परिणाम निकलते ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सेठ गोविन्ददास को एक वधाई का तार भेजा। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति में शुक्ल जी अपनी व्यक्तिगत मजवूरियों के वावजूद राष्ट्रीय सिद्धान्तों के प्रश्न पर सदा सुदृढ़ रहे। उनकी यह स्थिति उस समय के निष्पक्ष प्रेक्षक भी स्वीकार करते थे। 'कर्मवीर' सम्पादक पं. माखनलाल चतुर्वेदी श्री राव की राजनीति के विरुद्ध थे पर साथ ही वे शुक्लजी की व्यक्तिगत सिद्धान्तवादिता में भी विश्वास करते थे। इस निर्वाचन के अवसर पर चतुर्वेदीजी ने घोषित किया था 'कर्मवीर' और 'देशवन्धु' में शुक्ल जी के विरुद्ध कुछ

भी न छपेगा और न उनके विरुद्ध आन्दोलन के लिये रायपुर ही जाऊँगा।" चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' में लिखा था—"शुक्ल जी ने राजनैतिक विरोधों के कारण कभी किसी पर नाराजी प्रकट नहीं की। सजग राजनैतिक मतभेदों के बीच इस पीढ़ी के मित्रों का बन्धुत्व ही महाकोशल के निर्माण में और कांग्रेस की दृढ़ता के लिये श्रेष्ठ साबित हुआ।" शुक्ल जी ने इस समय से श्री राव से अपना राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और वे कांग्रेस कार्यों में पूरी तरह जुट गये। वैसे तो वे १९२२ से ही अखिल भारतीय कांग्रेस के निरन्तर सदस्य रहे हैं परन्तु सन् १९२६ से वे उसके एक प्रमुख स्तम्भ बन गये।

नागपुर विश्वविद्यालय में १९२३ के लगभग नागपुर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। इससे पूर्व प्रान्त के कालेज प्रयाग व कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। नागपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर बिपिन कृष्ण बोस थे। सन् १९२६ में प्रान्त के शिक्षामंत्री श्री ई. राघवेन्द्रराव ने शुक्ल जी को विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति का सदस्य नियत किया। शुक्ल जी सन् १९२६ से लेकर सन् १९२९ तक नागपुर विश्वविद्यालय के कोर्ट तथा कार्यकारिणी के सदस्य बने रहे। अपने कार्यकाल में शुक्ल जी ने एक प्रस्ताव द्वारा माग की थी कि नागपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाय। इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिये प्रो. हंटर के संयोजकत्व में एक समिति की नियुक्ति की गयी। इस समिति ने श्री शुक्ल जी के प्रस्ताव के मूल सिद्धान्त को उचित बतलाया परन्तु प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों को बाधक बतलाया।

जिला कौंसिल के माध्यम से राष्ट्रीय सेवा-कार्य

सन् १९२१ से ही पं. रविशंकर शुक्ल रायपुर जिला कौंसिल के सदस्य चुन लिये गये। प्रारम्भ से ही इन स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में प्रवेश करने एवं उन पर अधिकार करने के विषय में श्री शुक्ल जी का विश्वास था कि स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से स्वराज्य की ओर बढ़ा जा सकता है (फ्रीडम थ्रू लोकल बॉडीज)। इसी के साथ इन संस्थाओं के द्वारा वे शिक्षा-प्रसार एवं राजनीतिक जागरण के लक्ष्य को पूर्ण करना चाहते थे। सन् १९२२ से सरकार ने जिलों की ग्रामीण शालाओं के प्रबन्ध का भार जिला कौंसिलों को सौंप दिया था। इस परिवर्तन से इन विद्यालयों को चलाने की आर्थिक जिम्मेदारी तो जिला कौंसिलों पर आ गयी, परन्तु उनके निरीक्षण, प्रबन्ध एवं परीक्षा सम्बन्धी नियन्त्रण शिक्षा विभाग के स्कूल इन्सपेक्टरों के हाथ में रहा। प्रारम्भ में शुक्ल जी ने इन सभी विद्यालयों के शिक्षकों से सम्पर्क स्थापित करने के लिये एवं उनमें सार्वजनिक राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने के लिये एक शिक्षक सम्मेलन आयोजित किया, सम्मेलन का लक्ष्य शिक्षकों की उन्नति, ग्रामीण शिक्षा में सुधार एवं शिक्षा तथा शिक्षकों को अधिक उपयोगी तथा लोकप्रिय बनाना था।

जिला कौंसिल के अन्तर्गत विद्यालयों की गिनती ३१० थी, जिनमें २९७ प्रायमरी या प्राथमिक विद्यालय थे और १३ माध्यमिक (मिडल) शालायें थीं। इन विद्यालयों के अध्यापकों की गिनती ६०० के लगभग थी। विद्यालयों में प्रतिवर्ष २०,००० के लगभग विद्यार्थी पढ़ा करते थे। शुक्ल जी ने जिले के शिक्षकों से सम्पर्क तथा सहयोग स्थापित करने के लिये प्रतिवर्ष 'अध्यापक सम्मेलन' करने की नवीन परम्परा का सूत्रपात किया। इन सम्मेलनों में शिक्षा प्रणाली की उन्नति, शारीरिक स्वास्थ्य सुधार, स्वच्छता और राष्ट्रीय जाग्रति के प्रश्नों पर चर्चा की जाती थी।

शुक्ल जी रायपुर जिला कौंसिल के अध्यक्ष पद पर जेल यात्रा के दिनों को छोड़ कर १९२७ से १९३७ तक लगातार कार्य करते रहे। इस पद पर कार्य करते हुए शुक्ल जी ने रायपुर जिले भर में पाठशालाओं का जाल फैलाया, उनमें प्रचलित पाठ्यक्रम के मान दण्ड को ऊंचा करने, पाठशालाओं की आर्थिक स्थिति आदि सुधारने के कार्य किये। इन पाठशालाओं पर अपना सीधा एवं कारगर नियन्त्रण स्थापित करने के लिये शुक्ल जी ने जिला कौंसिल के निरीक्षक (सुपरवाइजर) नियत किये। जिलाधीश ने प्रान्तीय सरकार की ओर से जिला कौंसिल के इस कार्य का निषेध किया कि विद्यालयों में शिक्षा, परीक्षा एवं प्रबन्ध आदि कार्यों का निरीक्षण प्रान्तीय शिक्षा विभाग एवं सरकार करेगी, इस

कार्य के लिये निरीक्षक नियुक्त करना जिला बोर्डो के अधिकार-क्षेत्र से बाहर की बात है। इस पर जिला कौसिल ने अपने निरीक्षकों का नाम व्यायाम शिक्षक रखा और शारीरिक स्वास्थ्य निरीक्षण एवं बालकों के स्वास्थ्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिये उन्होने व्यायाम-शिक्षक नियत करने प्रारम्भ किये। प्रमुख व्यायाम शिक्षक के पद पर जिला कौसिल ने डा. खूबचन्द बघेल को नियत किया। इस पर प्रान्तीय सरकार ने जिलाधीश के माध्यम से जिला कौसिल की आर्थिक मदद की वृत्ति या ग्रान्ट का ⅛ देना बन्द कर दिया। तब शुक्ल जी के नेतृत्व मे जिला कौसिल ने टीका लगाने के लिये दिये जाने वाले धन का देना बन्द कर दिया। कौसिल की ओर से लिखा गया कि हमारे पास पैसा नही है अतः हम टीका लगाने वालो को पृथक् करते हैं। सरकार ने इस पर कौसिल भंग कर दी। चुनाव में पुरानी कौसिल ही चुनी गयी।

१९२२ से १९३७ तक के कार्य-काल में शुक्ल जी के नेतृत्व में जिला कौसिल ने जो उल्लेखनीय कार्य किये और जिन से उन्होंने जिले में राष्ट्रीय जागरण एवं स्वातन्त्र्य संग्राम के लिये वातावरण उत्पन्न किया, उनका संक्षिप्त व्यौरा इस प्रकार है:—

१ शुक्ल जी के नेतृत्व में जिला कौसिल ने सबसे प्रथम कार्य अपनी कार्यवाही का समस्त व्यौरा हिन्दी में रखना प्रारम्भ किया। कौसिल के कार्यालय की ओर से कार्यवाही का विवरण हिन्दी मे तैयार कर भेजा जाने लगा जिसे जिलाधीश वापस कर देते थे और माग करते थे इसका अंग्रेजी अनुवाद करवा कर भेजा जाय इस पर शुक्ल जी ने कौसिल की ओर से उत्तर लिखा कि आपके यहां अनुवादक है उनसे ही यह कार्य करा लिया जाय। जिलाधीश ने इसका उत्तर दिया था, हमारे पास अनुवादक अवश्य हैं, पर वे ठीक अनुवाद नहीं कर सकते। शुक्ल जी की ओर से उत्तर में कहा गया जब आपकी यह स्थिति है तब हम भी विवश हैं।

सरकार के निरन्तर विरोध के बावजूद जिला कौसिल ने शुक्ल जी के पथ-प्रदर्शन में अपनी सम्पूर्ण कार्यवाही हिन्दी मे करने की परिपाटी को स्थिर रखा।

२ शुक्ल जी के नेतृत्व मे जिला कौसिल ने यह नियम बना दिया था कि विद्यार्थियो मे प्रतिदिन अध्ययन एवं विशिष्ट कार्यक्रमों के अवसर पर प्रारम्भ में हमेशा झण्डा वन्दन एवं 'वन्दे मातरम्' गायन अवश्य किया जाय। इस विषय मे शुक्ल जी ने कौसिल के अधीन समस्त विद्यालयों के नाम एक परिपत्र* भी प्रचारित किया। जिलाधीश की ओर से झंडावन्दन तथा 'वन्दे मातरम्' गान पर आपत्ति की गयी। इस पर शुक्ल जी की ओर से लिखा गया कि जब आपके गवर्नर श्री गावन 'वन्दे मातरम् गान' के अवसर पर खड़े होते है† तब आपको उस पर आपत्ति नही होनी चाहिये।

---

* आपके पास 'वन्देमातरम्' और राष्ट्रीय झण्डे की वन्दना की एक-एक प्रति भेजी जाती है। इन्हें पुट्ठों पर चिपका कर हिफाजत के साथ रखिये कि आपके शाला के दैनिक कार्यों के आरम्भ मे विद्यार्थी 'वन्दे मातरम्' और राष्ट्रीय झण्डे के गीत गाया करे और राष्ट्रीय झण्डे को प्रणाम किया करे। तैयार होने पर झण्डे प्रत्येक शाला मे भिजवा दिये जायेंगे और उनका मूल्य शाला से वसूल किया जायेगा। यह भी स्मरण रहे कि आपकी शाला मे किसी समय कोई प्रतिष्ठित सज्जन, निरीक्षक, पदाधिकारी अथवा सरकारी अफसर आवे तो उनका अभिवादन अथवा स्वागत 'वन्देमातरम्' गायन तथा राष्ट्रीय झण्डे के प्रणाम द्वारा ही किया जावे। प्रत्येक सुपरवायजर, हैडमास्टर तथा स्काउट मास्टर को इस सूचना-पत्र के ठीक पालन कराने का ध्यान रखना चाहिये— रविशंकर शुक्ल, अध्यक्ष डिस्ट्रिक्ट कौसिल (समस्त विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों के नाम ४४९९ संख्या का आदेश)

† एक बार तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर श्री गावन की उपस्थिति में 'वन्दे मातरम्' गान गाया था। अपने राष्ट्रीय गीत 'गाड सेव दि किंग' के समय खड़े होने की परिपाटी के अनुसार श्री गावन इस अवसर पर तुरन्त खड़े हो गये थे।

३ जिला कौंसिल के अध्यक्ष के रूप में श्री शुक्ल जी ने समस्त अधीनस्थ विद्यालयों के शिक्षकों को राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने का आदेश दिया था। शुक्ल जी का यह कार्य जिलाधीश एवं प्रान्तीय सरकार को बहुत आपत्तिजनक लगा था। उन्होंने इस विषय में कौंसिल से स्पष्टीकरण की मांग की थी। शुक्ल जी ने अपने पत्र-व्यवहार में * बड़ी निर्भीकता के साथ राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संघर्ष में भाग लेना प्रत्येक राष्ट्रीय प्रजाजन का परम कर्त्तव्य घोषित किया था।

४ कांग्रेस द्वारा लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति का राष्ट्रीय लक्ष्य घोषित किये जाने पर एवं २६ जनवरी १९३० के दिन स्वतन्त्रता दिवस मनाने एवं उस दिन स्वातन्त्र्य प्रतिज्ञा करने का निश्चय करने पर रायपुर जिला कौन्सिल ने शुक्ल जी के नेतृत्व में समस्त विद्यालयों को यह राष्ट्रीय दिवस पूर्ण समारोह के साथ मनाने का अनुरोध किया था। इस अवसर पर शुक्ल जी ने प्रधानाध्यापकों को राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा फहराने एवं कांग्रेस की सूचना के अनुसार कार्यक्रम सम्पन्न करने के लिये भी सुझाव दिया था।† शुक्ल जी द्वारा हेडमास्टरों को स्वतन्त्रता दिवस मनाने के विषय परिपत्र प्रसारित करने पर रायपुर के जिलाधीश ने आपत्ति एवं विरोध प्रकट किया था परन्तु शुक्ल जी ने बड़ी स्पष्टता

---

* रायपुर के जिलाधीश डिप्टी कमिश्नर श्री व्हाई एन सुकठणकर इस्क्वायर, आई सी एस के नाम डिस्ट्रिक्ट कौंसिल रायपुर के कार्यालय से शुक्ल जी ने जो कई पत्र लिखे थे उनमें से एक का मुख्य भाग दिया जाता है—
(२३ फरवरी १९३० का पत्र)

I am in receipt of your D O letter dated the 14th inst regarding the greeting of revenue officers by school boys with the National Flag and national songs I feel sure you must be realising that National Flag is an embodiment of the most patriotic sentiments of a nation, whether dependent or independent or whether within the British Empire or outside it A flag is said to be necessity for all nations It is a dire necessity for India, where we have to cultivate in our children the same sentiments towards our National Flag which the unfurling of the Union Jack evokes in the English breasts When even the honourable ministers of the Crown and along with highly placed European revenue officers have received such greetings and have in true English spirit stood up in all reverence when the national song was sung, it is too late in the day for you and any one else to object to such greetings by National Flag and by national song As administrative head of the District Council I have issued instructions to greet all visitors, official or non-official with National Flag and national song Revenue officers are not the only persons to be greeted There is no resolution of the District Council but if you require one I shall place the matter before the District Council and send you a copy of the resolution

† ७ जनवरी १९३० के दिन रायपुर डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल के अध्यक्ष के नाते श्री रविशंकर शुक्ल ने समस्त हेडमास्टरों को यह परिपत्र भेजा था —

आपके पास मन्त्री, जिला कांग्रेस कमेटी रायपुर की ओर से भेजा हुआ सूचना-पत्र पहुंचा होगा, जिसमें कांग्रेस का सन्देश बतलाया गया है। २६ तारीख इतवार को पूर्ण स्वराज्य-महोत्सव यानी पूर्ण स्वतन्त्रता दिवस मनाने का निवेदन किया गया है। आशा है कि आप उस पत्र पर पूरा-पूरा ध्यान देंगे और अपने तथा हो सके तो अपने पड़ोस के गांव में नीचे लिखे कार्यक्रमों का प्रबंध करें।

१ २६ जनवरी रविवार को प्रातःकाल ठीक ८ बजे राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और तिरंगे झण्डे का गीत गाकर अभिवादन किया जाय।

पं. रविशंकरजी शुक्ल सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ
रायपुर के अपने भवन में
(२५ नवम्बर १९३६)

प॰ रविशंकरजी शुक्ल प॰ जवाहरलालजी नेहरू के साथ

(१५ नवम्बर १९३६)

पं. रविशंकरजी शुक्ल देशरत्न बाबू राजेंद्र प्रसाद के साथ
(११ दिसम्बर १९३५)

महात्मा गांधी प. रविशंकरजी शुक्ल की विद्या मंदिर
योजना के प्रथम विद्यामंदिर का शिलान्यास करते हुए

के साथ राष्ट्रीय भावनाओं के अनुकूल का उत्तर देते हुए कहा था राष्ट्रीय झण्डा फहराना एव राष्ट्र की स्वतत्रता के विषय मे सोचना कोई पाप की बात नही है। *

५. जिला कौसिल के अन्तर्गत समस्त विद्यालयों के भवनों के अन्दर नेताओं के चित्र लगाये गये थे। शिक्षको को आदेश था कि ये चित्र शालाओं में सुरक्षित रखे जाँय। सरकारी अधिकारियों द्वारा झण्डा वन्दन बन्द करने एवं नेताओं के चित्र उतारने के प्रयत्न किये गये, परन्तु कौसिल तथा शिक्षको ने दोनो की मर्यादा को यथासम्भव सुरक्षित रखा।

६. शुक्ल जी ने डिस्ट्रिक्ट कौसिल के अन्तर्गत एक प्रेस की व्यवस्था की थी। इस प्रेस में डिस्ट्रिक्ट कौंसिल की सारी छपाई का कार्य तो किया ही जाता था, साथ ही यहा बाहरी जॉब की छपाई का कार्य भी किया जाता था। इस बाहरी जाब के कार्य के सिलसिले मे डिस्ट्रिक्ट कौसिल के प्रेस में कांग्रेस की समस्त सूचनायें एवं परिपत्र छापे जाते थे और इन्हें वितरित किया जाता था। सरकार की ओर से डिस्ट्रिक्ट कौसिल के प्रेस द्वारा फुटकर छपाई का कार्य करने पर आपत्ति की गयी थी और प्रेस चलाने की पूर्व अनुमति न लेने की शिकायत की गयी थी। परन्तु शुक्ल जी ने दृढता-पूर्वक अपनी नीति प्रचलित रखी।

७. डिस्ट्रिक्ट कौसिल के अन्तर्गत ग्राम्य विद्यालयो मे सर्वत्र डाकखाने स्थापित थे। इन मे शिक्षक लोग ही पोस्ट मास्टर का कार्य करते थे। जिला कौसिल के प्रेस मे कांग्रेस एवं राष्ट्रीय आन्दोलन की सूचनाये छापी जाती थी और वे जिला कौसिल के ३२५ विद्यालयो के हेडमास्टरो द्वारा गाव-गाव मे वितरित कर दी जाती थी। इस प्रकार से ये विद्यालय जिले मे राष्ट्रीय जागरण एवं संघर्ष के केन्द्र बन गये थे।

८. डिस्ट्रिक्ट कौसिल की ओर से प्रतिवर्ष ग्राम शिक्षा सम्मेलन किये जाते थे। इन सम्मेलनो मे चुने हुए विद्वानों व शिक्षाशास्त्रियों के व्याख्यान होते थे। कौसिल ने अपने समस्त व्यवहार के लिये हिन्दी को अपनाया था। कौसिल की ओर से 'उत्थान' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। यह पत्र कई वर्ष तक निरन्तर प्रकाशित होता रहा। पत्र का सम्पादन पं. सुन्दरलाल त्रिपाठी करते थे। इस पत्र मे शुक्ल जी ने 'आयरलैण्ड का इतिहास' भी क्रमिक रूप में प्रकाशित करवाया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों मे विद्यार्थी और शिक्षक लोग आयरलैण्ड के इतिहास में शहीद हुए वीर

---

२. राष्ट्रीय झण्डा फहराने के बाद एक जलूस धूमधाम से निकाला जाय जिसमे मन्त्री जिला काग्रेस कमेटी के बताये हुए कार्यक्रम का पालन कराया जाय।

३. इस सूचना के अनुसार आप जो कुछ काम करे उसकी रिपोर्ट उसी दिन फार्मो पर लिख भेजिये। एक व्यौरा मन्त्री जिला काग्रेस कमेटी के नाम पर और एक मेरे पास भेज दीजिये।

४. अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा काग्रेस कमेटी से कोई कार्यक्रम निकले तो उसका पालन किया जाय। आशा है कि सूचनाओं का पालन सावधानी के साथ किया जावेगा।

* २३ फरवरी १९३० के दिन शुक्ल जी ने रायपुर के जिलाधीश को यह पत्र भेजा था :—

I am in receipt of your D. O. letter dated the 14th inst. regarding the teachers and boys of the District Council Schools taking part in the Independence Day celebrations on the 26th January last. Yes, they took part under my directions. A copy of my circular letter is herewith sent as desired. I issued that letter on my own authority but if you desire a resolution of the District Council I shall place the matter before the council and send you a copy of its resolution. I may, however say, it is futile for anyone to present the irresistible march of events under the present political circumstances and it is certainly no sin for any one to think of Independence of his country.

उत्साह से गाते थे कि सुनने वाले मन्त्रमुग्ध एवं उत्साहित हो जाते थे। चुने हुए युवक विद्यार्थियों की एक टोली राष्ट्रीय गान के लिये तयार की गयी थी। चुने हुए दस विद्यार्थी केसरिया बाना पहने रायपुर से प्रचार करते हुए जबलपुर तक गये थे। गाडी रुकते ही ये प्रत्येक स्टेशन पर जोशीले राष्ट्रीय गान गाते थे, स्टेशनो पर ये जब्त साहित्य की बिक्री करते थे। इन लडको ने रायपुर मे जबलपुर तक धूम मचा दी थी। इन दिनो मध्यप्रदेश के राष्ट्रीय नेता अपने अपने नगरों से बाहर राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व व सचालन कर रहे थे। तारीख २८ और २९ अप्रल के दिन प्रान्त के सभी प्रमुख नेता प्रान्तीय सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। पण्डित रविशंकर शुक्ल बालाघाट से लौटते हुए गोन्दिया स्टेशन पर तारीख २८ अप्रल को गिरफ्तार कर लिये गये। अगले दिन तारीख २९ अप्रल को जबलपुर में पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, सेठ गोविन्ददास, पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र और श्री विष्णुदयाल भार्गव प्रान्तीय सरकार के आदेश से गिरफ्तार कर लिये गये। जबलपुर की जेल में अंग्रेज मजिस्ट्रेट लिली की अदालत में इन पाचो नेताओ पर मुकदमा चलाया गया। (ये लिली मजिस्ट्रेट ही प्रथम काग्रेस मन्त्रिमण्डल बनने पर शुक्ल जी के सचिव (सेक्रेटरी) बने थे)। जेलर ने शुक्ल जी से पूछा कि आपका पेशा क्या है—शुक्ल जी ने उत्तर दिया "कानून बनाने वाले का परन्तु इस समय कानून भग करने वाले का (ला मेकर, बट नाउ ए ला ब्रेकर)। मजिस्ट्रेट ने श्री भार्गव को एक वर्ष की कैद की सजा, परन्तु शेष नेताओ को दो-दो वर्ष की सजा दे दी।

अंगूठे के निशानों की घटना—शुक्ल जी प्रारम्भ में जबलपुर जेल में रखे गये, परन्तु जल्दी ही उन्हें सिवनी जेल ले जाया गया। इस जेल में शुक्ल जी के अतिरिक्त लोकनायक माधव श्रीहरि अणे तथा विदर्भ के नेता श्री वामनराव जोशी भी रखे गये थे। कई महीने तक शुक्ल जी इस जेल मे रहे। इस अवसर पर उन्हें जेल जीवन की ज्यादतियों के विरुद्ध पर्याप्त सघर्ष करना पडा। सिवनी जेल में ही अंगूठे तथा अंगुलियो के निशान के छाप लेने की भी स्मरणीय घटना घटित हुई, जिसमे शुक्ल जी ने अपने अदम्य साहस, दृढता तथा स्वाभिमान का परिचय दिया। उन दिनो जेल में यह परिपाटी या नियम सा बन गया था कि प्रत्येक बन्दी की पहचान के लिये उसकी अंगुलियो के निशान ले लिये जाय। जेल अधिकारियो ने एक दिन श्री वामनराव जोशी को बुलाया और उनके अंगूठे तथा अंगुलियो के निशान ले लिये। जब ये अपने साथियो के पास लौटे तो उनके काले हाथ देख कर शुक्ल जी आदि ने पूछा, कि क्या बात है? श्री जोशी ने बतलाया कि जेल वालो ने उनके निशान लिये है। सन् १९०७ के बन्दी जीवन में भी उन्होने ये निशान दिये थे। तीसरे दिन शुक्ल जी को जेल अधिकारियो ने दफ्तर में बुलवाया, और उन्हें अंगूठे व अंगुलियो के निशान देने के लिये कहा, शुक्ल जी ने ये निशान देने से इन्कार किया और जेल मेनुअल निकाल कर दिखला दिया कि सुपरिटेंडेंट को इसका कोई अधिकार नही है। सरकार की ओर से जेल नियम भग करने के अभियोग में शुक्ल जी पर मुकदमा चलाया जाने वाला था। इन्होंने अपने कानूनी सलाहकारो से परामर्श मागा और १०० से अधिक कानून की पुस्तको की सूची दे कर उन्हें मगाने की अनुमति मागी। जब सरकार ने देखा कि इनसे पार पाना कठिन है, तो उसने मामला चलाने का विचार छोड दिया। शुक्ल जी ने इस विषय में पुलिस अधिकारियो से कोई बात करने से भी इन्कार किया। सिवनी पुलिस अधिकारी इस विषय में उन पर कारवाई करना चाहते थे, परन्तु उन्हें जबलपुर के पुलिस अधिकारियो ने लिखा कि उन्हें शुक्ल जी पर मुकदमा चलाना अभीष्ट नही है, वे उनके निशान चाहते है। इस विषय में आवश्यक हो तो जिलाधीश की सहायता भी ली जाय। अन्त में इस कार्य के लिये एक मजिस्ट्रेट बुलाया गया। शुक्ल जी ने बिना किसी अभियोग के मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होने से इन्कार किया। इस पर जेल व तहसील के वार्डर, खलासी, चपरासी, इस कार्य के लिये एकत्र कर लिये गये। इस पर शुक्ल जी ने वक्तव्य दिया कि वे अपनी इच्छा के विरुद्ध अंगूठे तथा अंगुलियो के निशान नही देंगे और इस कार्य का विरोध करेंगे और यदि उनको कुछ क्षति पहुँची तो उसकी समस्त जिम्मेदारी सरकार की होगी। इतने पर भी अधिकारी बलपूर्वक निशान लेने के लिये तुले हुए थे। अधिकारियो ने शुक्ल जी को जमीन पर गिरा कर जबरदस्ती निशान लेने का प्रयत्न किया। शुक्ल जी ने पूरी इच्छा शक्ति और दृढता से
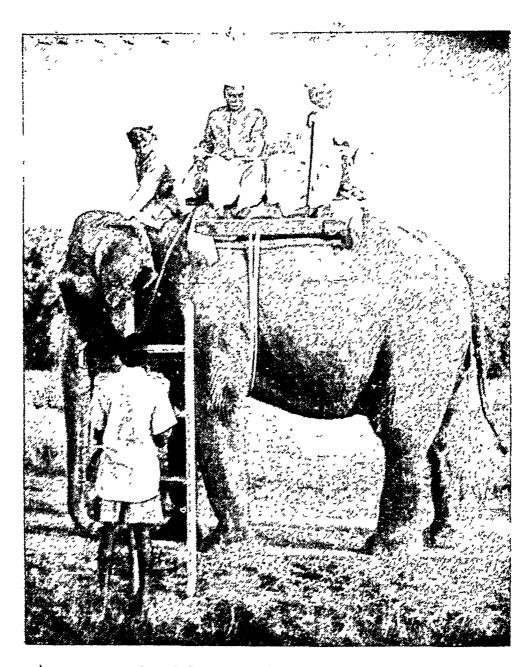
कान्हा किसली के आदिवासी क्षेत्र के जंगलों में
राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के साथ शुक्ल जी
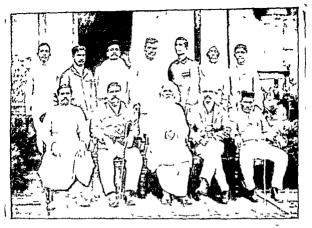
जीवन के प्रारंभिक काल में थियोसीफिकल चित्र समूह में
शुक्ल जी श्री नारायण स्वामी आदि के साथ

शुक्लजी ज्योतिष सीखते हुये

इस कार्य का विरोध किया। शुक्ल जी कर्मचारियों से पूरे ३५-४० मिनट जम कर संघर्ष करते रहे। इन कर्मचारियों ने शुक्ल जी को बुरी तरह दबा दिया। इनके दोनों हाथ वार्डरों के नाखूनों के निशान से भर गये। बड़ी कठिनाई से जैसे-तैसे शुक्ल जी के अँगूठे तथा अगुलियो के निशान लेने का प्रयत्न किया पर वे ठीक तरह से नही ले सके। इसका फल यह हुआ कि शुक्ल जी के दोनों हाथ बुरी तरह सूज गये थे और काफ़ी चोट आ जाने से उन्हे बुखार भी आ गया था। शुक्ल जी द्वारा इस प्रतिरोध का परिणाम यह हुआ कि घटना के चार दिन बाद ही नागपुर से प्रान्त भर मे आदेश प्रसारित हो गये कि जब तक पुलिस के डिप्टी इन्स्पेक्टर-जनरल का आदेश न हो, किसी राजबन्दी की अँगुलियो के निशान न लिये जायें। जेल से छूटने पर शुक्ल जी ने सरकार के विरुद्ध दस हजार रुपये की क्षतिपूर्ति का दावा किया और माग की कि उनके साथ जेल नियमों का भंग करते हुए सरकार ने दुर्व्यवहार किया था। नीचे की अदालत से यह दावा खारिज हो गया था, जिसके विरुद्ध शुक्ल जी ने नागपुर हाईकोर्ट में अपील की थी। नागपुर हाईकोर्ट ने यद्यपि उनकी अपील स्वीकार नही की, परन्तु हाईकोर्ट के एक न्यायाधीश ने उनकी माग को अपनी अल्पमतीय सम्मति मे उचित कहा था। फिर भी इस विषय मे दोनो न्यायाधीशो में मतभेद था। इस सम्बन्ध मे शुक्ल जी प्रिवी कौंसिल मे अपील करना चाहते थे, पर सम्बन्धित अधिकारी रिटायर हो चुके थे और शुक्ल जी शिक्षामन्त्री बन गये थे, फलतः उन्होने मामला आगे नही बढ़ाया। ब्रिटिश शासन मे न्याय के लिये लड़ कर अपने स्वाभिमान की रक्षा की उक्त घटना उल्लेखनीय है।

फिर सत्याग्रह :—सन् १९३१ के प्रथम चरण मे गान्धी इर्विन समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार सविनय अवज्ञा भग आन्दोलन के सब कैदी छोड़ दिये गये। प्रान्त के दूसरे राजबन्दियो के समान शुक्ल जी तारीख १३ मार्च के दिन छोड़े गये। रायपुर की जनता ने शुक्ल जी का राजसी स्वागत किया। अप्रैल मास मे सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में काग्रेस का अधिवेशन कराची मे हुआ। महात्मा गांधी से हुए समझौते के बावजूद सरदार भगतसिह को उनके दो साथियों के साथ फांसी दे देने पर राष्ट्रीय भारत का मन बेचैन हो गया था, फिर भी महात्मा गांधी गोलमेज परिषद् मे भाग लेने लन्दन चले गये। उनके भारत लौटने से दो दिन पूर्व ही बम्बई जाते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार कर लिये गये। नये भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर ने शासन सूत्र सम्भालते ही अपना दमन-चक्र पूरी तेजी से चला दिया था। इस बार ब्रिटिश सरकार ने पूरी शक्ति लगा कर काग्रेस को शक्तिहीन करने का प्रयत्न किया। सन् १९३२ ई. के जनवरी मास के प्रथम सप्ताह में ही सरकार ने अनेक काग्रेस संस्थाओ को अवैध घोषित कर दिया। तारीख ४ जनवरी को महात्मा गांधी भी गिरफ्तार कर लिये गये और सारे देश में गिरफ्तारियों का तांता लग गया। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के विरोध मे जबलपुर, सागर, रायपुर, नागपुर, आदि मे सभायें हुई, जिन्हें तितर-बितर करने के लिये पुलिस ने लाठियां चलायी और नेताओ को गिरफ्तार कर लिया। तारीख १४ जनवरी के दिन जबलपुर में शुक्ल जी आन्दोलन के डिक्टेटर नियत किये गये। आपने दो मास तक सारे प्रान्त में युद्ध समितियों का संघटन सुदृढ़ किया। अप्रैल मास में शुक्ल जी गिरफ्तार कर लिये गये। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राजद्रोह करने के अभियोग मे आपको धारा १२४ "अ" के अन्तर्गत दो वर्ष की सजा तथा जुर्माना कर दिया गया। रायपुर जेल मे सब राजबन्दियो को सुपरिन्टेन्डेन्ट के आने पर अपनी-अपनी तख्ती लेकर खड़े होने के लिये कहा जाता था। जेल अधिकारियों ने शुक्ल जी से भी खड़े होने के लिये कहा। इस पर शुक्ल जी ने उत्तर दिया कि वे कोई खूनी या अपराधी नही है। जल्दी ही शुक्ल जी नागपुर जेल मे भेज दिये गये। वहां उनकी सब सुविधायें बन्द कर एकान्त कालकोठरी की सजा दे दी गयी। मुलाक़ात के लिये यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि जाली के भीतर से भेंट करो। इस पर शुक्ल जी ने किसी से भी भेट करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने घर पत्र लिखना तक बन्द कर दिया क्योकि उनकी चिट्ठी सेन्सर की जाती थी। अन्त में सरकार ने सब प्रतिबन्ध उठा लिये। इस समय श्री ई. राघवेन्द्रराव गृहमन्त्री थे।

महात्मा गांधी का हरिजन दौरा—ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री रामजे मैक्डानल्ड के करार के अनुसार हरिजनों को हिन्दुओ से पृथक् करने के निर्णय की घोषणा किये जाने पर महात्मा गाधी ने यरवदा जेल में अपना ऐतिहासिक उप-

काम प्रारम्भ कर दिया था। इस पर देश भर के हिन्दू एवं हरिजन नेता एकत्र हुए और उन्होंने हिन्दुओं के स्थानों में अन्तर्गत हरिजनों को अधिक स्थान देने के विषय में एक समझौता किया। ब्रिटिश सरकार ने यह समझौता मान्य कर हरिजनों को चुनाव की दृष्टि से हिन्दुओं का एक अंग मान्य कर लिया। महात्मा गांधी ने यह निर्णय होने पर अपना अनशन भंग कर दिया। जल्दी ही सरकार ने महात्मा गांधी को जेल से मुक्त कर दिया। महात्मा गांधी ने पूरा एक वर्ष हरिजन कार्य में लगाने का निश्चय किया। नौ महीने तक महात्मा गांधी ने सारे देश का दौरा किया और हरिजन कार्य के लिये आठ लाख रुपये के लगभग धनराशि एकत्र की। इस दौरे के कार्यक्रम में महाकोशल एवं झांसी तक के क्षेत्र में दौरे की व्यवस्था एवं कोश संग्रह का सारा कार्य ठक्कर बापा ने शुक्ल जी को सौंप दिया था। शुक्ल जी अपने चुने हुए स्वयंसेवकों के साथ सारे दौरे के कार्यक्रम की व्यवस्था करते थे। सन् १९३३ के नवम्बर मास के तृतीय सप्ताह में महात्मा जी ने महाकोशल में प्रवेश किया। छत्तीसगढ़, सिवनी, छिन्दवाड़ा, बैतूल, जबलपुर, सागर, बालाघाट के क्षेत्र में महात्मा गांधी ने शुक्ल जी के साथ ६०० मील से अधिक का दौरा किया। इन दिनों ७४,००० रुपये से अधिक धनराशि छत्तीसगढ़ व महाकोशल में गांधी जी को मिली थी। अकेले रायपुर में ही १४॥ हजार रुपये मिले थे। सम्पूर्ण प्रदेश में रायपुर धन-संग्रह में अग्रणी रहा था।

तारीख ७ अप्रैल सन् १९३४ ई० को महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित करने का आदेश दे दिया। इसी बीच बिहार प्रान्त में भयंकर भूकम्प आ गया था। इससे बिहार की जनता बेघर, निराश्रित तथा अन्न-वस्त्र हीन हो गयी थी। इस अवसर पर भी शुक्ल जी ने छत्तीसगढ़ क्षेत्र से अन्न- वस्त्र व धन की बड़ी मदद बिहार को भिजवायी थी। जल्दी ही सरकार ने कांग्रेस का पुनः वैध घोषित कर दिया। पटना एवं वर्धा में महात्मा गांधी के परामर्श को मान कर कांग्रेस कार्यकारिणी ने कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम को मान्यता दे दी। केन्द्र तथा प्रान्तों में चुनाव के कार्यक्रम को व्यवस्थित एवं एकसूत्र में लाने के लिये सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड की स्थापना की गई।

जेल में बन्दी रूप में रहते हुए भी दिनाङ्क २४ अक्तूबर सन १९३० ई० को शुक्ल जी रायपुर डिस्ट्रिक्ट कौंसिल द्वारा अध्यक्ष चुन लिये गये। इस पर दिनाङ्क १९ नवम्बर सन् १९३० ई० के दिन प्रान्तीय सरकार ने रायपुर जिला कौंसिल को असाधारण गजट की घोषणा द्वारा तीन वर्ष के लिये सरकारी नियन्त्रण में ले लिया। सरकारी शासन के अन्तर्गत शुक्ल जी के नेतृत्व में चल रहे कौंसिल के समस्त राष्ट्रीय कार्य बन्द करवा दिये गये। दिनाङ्क ८ मार्च सन् १९३४ ई० को कौंसिल का प्रबन्ध पुनः शुक्ल जी को सौंपा गया। शुक्ल जी ने सरकारी शासन के अन्तर्गत बन्द हुए कार्यों का पुनः प्रारम्भ करवाया।

प्रान्त में राष्ट्रीय जागरण के कार्य को व्यवस्थित एवं संघटित करने के लिये सन् १९३५ ई० में शुक्ल जी ने नागपुर से साप्ताहिक हिन्दी पत्र 'महाकोशल' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। एक वर्ष बाद इसे रायपुर में स्थानान्तरित कर दिया गया। यह पत्र पिछले कई वर्षों से छत्तीसगढ़ के एकमात्र हिन्दी दैनिक के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

कांग्रेस द्वारा विधायक एवं वैधानिक कार्यक्रम पर पुनः बल देने पर शुक्ल जी ने रायपुर जिला कौंसिल के संघटन को फिर सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया। तारीख ९, १० और ११ दिसम्बर सन १९३५ ई० को कौंसिल के तत्त्वावधान में रायपुर के पाचवें वार्षिक शिक्षक सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी ने किया और सम्मेलन के अन्तिम दिन कांग्रेस के अध्यक्ष राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद पधारे थे। सम्मेलन के अवसर पर बालचर प्रदर्शन, स्वदेशी प्रदर्शनी एवं व्यायाम प्रतियोगितायें भी की गयी, जिनमें जनता ने बड़ी दिलचस्पी ली। बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने राष्ट्रीय झण्डा फहराया। शिक्षक सम्मेलन के बाद शिक्षा-ग्रामोद्योग व खादी प्रदर्शनी का उद्घाटन भी राष्ट्रपति ने किया।

डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल के माध्यम से रचनात्मक कार्य :—रायपुर के शिक्षा सम्मेलन का सातवां वार्षिक अधिवेशन, दिनाङ्क १५ और १६ दिसम्बर सन् १९३६ को आयोजित किया गया था। इस अवसर पर कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू पधारे थे। कौसिल की ओर से राष्ट्रपति का अभिनन्दन करते हुए शुक्ल जी ने कहा था—"प्रान्तीय शासन द्वारा अधिकृत किये साढे तीन वर्ष के समय को छोड़ कर यह कौंसिल निरन्तर राष्ट्रीय सेवा के कार्य में लगी रही है। कौंसिल इस समय भी स्थानीय कांग्रेस के नियन्त्रण मे कार्य कर रही है। इस जिले के प्रत्येक देहाती स्कूल पर राष्ट्रीय झण्डा फहराता है और नियमानुकूल अभिवादन किया जाता है। कौसिल की शालाओ मे राष्ट्रीय नेताओं के चित्र लगे हुए है और सर्वत्र राष्ट्रीय भावों के उद्बोधक सन्देश वाक्य भी लगाये गये है। विद्यालय के कार्य के अतिरिक्त शिक्षक जन-सेवा के राष्ट्रीय कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते है। कौसिल के सैकड़ों शिक्षक व हजारों विद्यार्थी खादी की कला को जीवन मे अपना रहे हैं। कौसिल ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिये प्रयत्नशील है। शिक्षा, रचनात्मक कार्यक्रम, कृषि आदि क्षेत्रों मे शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का स्थायी पथ-प्रदर्शन करने के लिये कौसिल "उत्थान" मासिक पत्र प्रकाशित कर रही है। प्रत्येक विद्यालय मे "हरिजन सेवक" पत्र मंगाया जा रहा है। डिस्ट्रिक्ट कौसिल प्रति वर्ष शिक्षक सम्मेलन, व्यायाम प्रदर्शन, खादी एवं औद्योगिक प्रदर्शनी कर ग्रामीण जनता मे उद्योग, शिल्प तथा कला का प्रचार कर रही है।

शुक्ल जी ने नेहरू जी का अभिनन्दन करते हुए विगत दस वर्षो मे रायपुर जिला कौसिल द्वारा किये कार्यो का सिंहावलोकन किया और कहा—"प्रान्त की हकूमत कौसिल के कार्य को कड़ी नजरों से देखती है। क़ानूनी प्रतिबन्ध डाल कर नामज़द तथा सरकारी सदस्यों की अधिक संख्या का लाभ उठा कर सरकार इस प्रकार के क़ानून बना रही है, जिनसे ये स्वायत्त संस्थाये पराधीन हो कर निरुपयोगी बन जाये, परन्तु जनता निकट भविष्य मे इसका योग्य उत्तर देगी। शुक्ल जी ने नवीन चुनाव के बाद प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल में शिक्षा तथा कृषि मन्त्री का पद स्वीकार करने पर जिला कौसिल की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया और उनका स्थान रायपुर के कर्मठ कार्यकर्त्ता महन्त लक्ष्मीनारायण दास ने ग्रहण किया।

प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल—कांग्रेस द्वारा कौंसिल प्रवेश का कार्यक्रम स्वीकार करने पर सन् १९३५ ई. मे केन्द्रीय धारा सभा का निर्वाचन हुआ। इस चुनाव के फलस्वरूप केन्द्र मे कांग्रेस दल सबसे संघटित एवं बड़ा दल बन गया। महाकोशल, नागपुर व विदर्भ सर्वत्र कांग्रेसी उम्मीदवार विजयी हुए। जल्दी ही सन् १९३६ मे प्रान्तीय धारासभाओं का भी निर्वाचन हुआ। दूसरे छः प्रान्तों के समान मध्यप्रान्त और बरार मे कांग्रेस को धारासभा मे निर्णायक बहुमत प्राप्त हुआ। सरकार द्वारा मन्त्रिमण्डल के दैनिक कार्यो में अनुचित हस्तक्षेप न करने का आश्वासन मिलने पर सात कांग्रेसी प्रान्तो में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल निर्मित हुए। मध्यप्रदेश मे स्थिति कुछ विचित्र थी। पहले मुख्य नेताओं मे पद-ग्रहण के विषय मे एकमत न था। लखनऊ कांग्रेस द्वारा पदग्रहण करने के निश्चय एवं सरकार द्वारा हस्तक्षेप न करने के आश्वासन पर विचारणीय विषय यह हो गया कि प्रान्त मे धारासभा दल का नेता कौन चुना जाय? चुनाव से कुछ समय पूर्व ही बैरिस्टर अभ्यंकर के स्वर्गवासी हो जाने से प्रान्त का एक सर्वमान्य नेता सदा के लिये उठ गया था। प्रान्तीय धारासभा मे नागपुर-विदर्भ तथा महाकोशल तीनों क्षेत्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। संख्या बल की दृष्टि से महाकोशल का नेता प्रान्त के पार्लमेण्टरी दल का नेता बन सकता था, परन्तु महाकोशल में दो दल हो गये थे। एक दल श्री ई. राघवेन्द्रराव से पण्डित रविशंकर जी शुक्ल की पुरानी मैत्री का ख्याल कर उन्हे सन्देह की दृष्टि से देखता था। यद्यपि पिछले ९ वर्षो में शुक्ल जी का श्री राव से पूर्ण राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका था और शुक्ल जी ने प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संकट की घड़ी मे सदा मातृभूमि एवं देशवासियों की सम्मान-रक्षा के लिये अपनी तथा परिवार की आहुति दी थी। कुछ मित्र इस समय शुक्ल जी को नेता बनाना चाहते थे, परन्तु महाकोशल के आन्त-रिक विरोध को देखते हुए शुक्ल जी ने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़ने का संकल्प कर लिया। तारीख १४ जुलाई सन् १९३७ ई. को व्यवस्थापिका सभा के कांग्रेस दल की सभा मे शुक्ल जी ने स्वयं डा. नारायण भास्कर खरे को कांग्रेस दल का नेता बनाने का प्रस्ताव रखा, जो स्वीकार कर लिया गया।

तारीख १४ जुलाई सन १९३७ ई० को डा० खरे के नेतृत्व में प्रान्त में प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो गयी। डा० खरे मुख्य मन्त्री थे तथा पण्डित रविशंकर शुक्ल, पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र, श्री रामराव देशमुख, श्री पुरुषोत्तम बलवन्त गोखले, श्री दुर्गाशंकर मेहता और बैरिस्टर मुहम्मद यूसुफ शरीफ मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्य थे। तारीख ३० जुलाई को नव निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा का प्रथम अधिवेशन 'वन्देमातरम्' के गान से प्रारम्भ हुआ। सभा के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्त चुने गये। तारीख २१ सितम्बर को कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल की ओर से रखा गया यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया—'भारतीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति कांग्रेस के मौलिक अधिकार विषयक प्रस्ताव द्वारा भली प्रकार होती है। विधान सभा इसलिये सन् १९३५ ई० के भारत शासन कानून को हटा कर कांग्रेस निर्मित विधान स्वीकार करने की सिफारिश करती है।" मध्यप्रदेश विधान सभा का प्रस्ताव जनता के स्वभाग्य-निर्णय में अधिकार का समर्थन था।

विद्यामंदिर की योजना—शिक्षा एवं कृषि मन्त्री का पद सम्भालते ही पं० रविशंकर शुक्ल ने प्रान्त की शिक्षापद्धति में मौलिक परिवर्तन करने के लिये एक नवीन कार्यक्रम रखा। शुक्ल जी का विश्वास था कि अंग्रेजो के १५० वर्षों के शासन में शिक्षा की दूषित नीति के कारण केवल मुट्ठी भर लोग ही शिक्षित हुए हैं। जो शिक्षा जनता के संस्कार नहीं सुधारती जिससे वह जीवन का सदुपयोग करना नहीं सीख सकती और जिस शिक्षा पद्धति से स्वावलम्बन की समस्या हल नहीं होती, शुक्ल जी की सम्मति थी कि ऐसी शिक्षा पद्धति बदली जानी चाहिये। सन् १८३६ में ५८ प्रतिशत भारतीय जनता साक्षर थी, १०० वर्ष से अधिक समय बाद सन् १९४१ में जनता की साक्षरता का प्रतिशत ८ हुआ। एक शताब्दी में भारतीय जनता की साक्षरता में केवल २ २ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। अशिक्षित जनता से जनतन्त्र व्यवस्था की प्रगति नहीं हो सकती, इस तथ्य का अनुभव कर शुक्ल जी ने स्वावलम्बन के आधार पर शिक्षा प्रसार के एक राष्ट्रीय कार्यक्रम पर विचार किया। इस विषय में शुक्ल जी ने पहले प्रान्त के कई जिलो की यात्रा की। इस योजना को जन-सम्मति के लिये प्रचारित किया गया। जनमत के आधार पर पुष्ट योजना शिक्षा विभाग के इन्स्पेक्टरो के सामने रखी गयी। इन्होने बहुमत से योजना को उचित कहा। शिक्षा विभाग की स्थायी समिति ने भी योजना के औचित्य को स्वीकार किया। योजना को प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण कर शुक्लजी ने अपने विद्यामन्दिर विषयक शिक्षा कार्यक्रम को कांग्रेस धारासभा दल के सामने रखा। मिश्र जी ने योजना का समर्थन किया, कांग्रेस दल ने सर्वसम्मति से योजना को मान्य कर लिया। इस प्रकार विशेषज्ञों तथा कांग्रेस दल से समर्थित विद्यामन्दिर योजना शुक्ल जी ने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख रखी। प्रान्त के तत्कालीन वित्त सचिव श्री चिन्तामण देशमुख ने वित्तीय दृष्टि से योजना को अच्छा कहा और इसका समर्थन किया परन्तु मुख्यमन्त्री डा० खरे ने योजना को विफल करने का प्रयत्न किया। उन्होने कहा योजना को एक परीक्षण के रूप में अपनाया जाय परन्तु शुक्लजी का आग्रह था कि योजना सरकारी योजना के रूप में कार्यान्वित की जानी चाहिये। प्रारम्भ में योजना प्रचलित करने के लिये १०० विद्यालय खोलने का निश्चय किया गया। इन विद्यालयों के लिये भूमिदान के निमित्त ३०० प्रार्थनापत्र आये थे जिन में से केवल ८३ स्वीकार किये गये।

विद्यामन्दिर योजना का मूलमन्त्र शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना है। इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये बालको की शिक्षा का प्रारम्भ किसी उपयोगी कार्य से करने की व्यवस्था की जाय जिससे वे पढाई के साथ कुछ पैदा भी कर सकें। इस प्रकार शिक्षा संस्थायें स्वावलम्बी बनायी जा सकती हैं। शुक्ल जी ने अपनी अध्यक्षता में एक समिति बना दी थी जिसने ३१ अगस्त १९३७ को विद्यामन्दिर की योजना प्रस्तुत कर दी। म० गांधीजी ने योजना में अपनी बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त सम्मिलित होने से योजना को अपना आशीर्वाद दिया। १४ दिसम्बर के दिन प्रान्तीय धारासभा ने भी योजना स्वीकार कर ली। योजना स्वीकृत होते ही शुक्ल जी ने योजना के अनुकूल पाठ्यक्रम बनाने के लिये जमिया मिलिया के श्री जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त कर दी थी। सम्बन्धित समितियों में डा० मुहम्मद अशरफ, श्री आर्यनायकम, श्री डिसूजा, डा० वेणीशंकर झा, बैरिस्टर छेदीलाल आदि सदस्य थे। समिति

ने योजना के पाठ्यक्रम मे कताई, बुनाई, गृह-शिल्प, कृषि, सामाजिक शिक्षण, सामान्य विज्ञान, गणित, भूगोल, मातृ-भाषा, संगीत एवं ड्राइंग आदि विषयो का प्रारम्भिक ज्ञान आवश्यक रखा था।

योजना रखी जाने पर कांग्रेस के कई राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता भी विद्यामन्दिर नाम बदलना चाहते थे परन्तु मध्यप्रदेश की जनता का एवं राष्ट्रीय नेताओं का समर्थन देख कर उन्होंने योजना को अपनी सम्मति दे दी। मुस्लिम लीग ने इस योजना के विरुद्ध सत्याग्रह करने की धमकी दी थी। उसे मन्दिर नाम रखने मे ही आपत्ति थी। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल एवं शुक्ल जी ने मुस्लिम लीग के महामन्त्री मियां लियाकत अली खा और उनके साथियों को योजना की सभी बाते विस्तार से समझायी जिससे वे पूर्ण सन्तुष्ट हो गये और आन्दोलन बन्द करने का निर्णय किया।

शुक्ल जी की विद्यामन्दिर योजना म. गांधी की बुनियादी शिक्षा योजना से मिलती-जुलती थी। शुक्ल जी अपनी योजना द्वारा प्रान्त भर में शिक्षा को स्वावलम्बन के आधार पर व्यापक बना देना चाहते थे। योजना से म. गांधी बड़े प्रभावित हुए थे, उन्होने विद्यामन्दिर ट्रेनिंग स्कूल के शिक्षकों को प्रमाण-पत्र दिये थे। इन शिक्षको ने भारत लोक सेवा समिति के सदस्यो की तरह सेवा, स्वावम्बन के आधार पर शिक्षा प्रसार के लिये तन-मन न्योछावर करने के लिये म. गांधी के सामने प्रतिज्ञा की थी। म गांधी ने ही विद्यामन्दिर के पाठको के अभ्यास के लिये एक प्राथमिक भवन का शिलान्यास किया था।

डा. खरे का विद्रोह—डा. खरे के मन्त्रिमण्डल मे प्रारम्भ से ही ऐक्य न था। मन्त्रिमण्डल में दो दल बन गये थे। मुख्यमन्त्री (जो उस समय प्रधानमन्त्री कहलाता था) डा. खरे मन्त्रिमण्डल के सहयोगियों की अपेक्षा बाहरी व्यक्तियो से घिरे रहते थे। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का आपसी मनमुटाव इतना अधिक बढा कि अन्त में कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड को हस्तक्षेप करने के लिये विवश होना पड़ा। २४ मई १९३८ के दिन यह आपसी मनमुटाव दूर करने के लिये कांग्रेस धारासभा दल के सदस्य पचमढी मे आमन्त्रित किये गये। इस समस्या को सुलझाने के लिये कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड के प्रधान सरदार पटेल एवं दूसरे प्रमुख नेता मौलाना आजाद तथा श्री जमनालाल जी बजाज भी पचमढ़ी पहुंच गये थे। कांग्रेस हाई कमाण्ड के नेताओं ने दोनों पक्षों की बात सुनकर एक समझौता दोनो पक्षो मे करवा दिया। डा. खरे ने इस समझौते का पालन नही किया उल्टे बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी के परामर्श को न मानते हुए महाकोशल के तीन मन्त्रियो से त्यागपत्र मांगा। पं. शुक्ल, पं. मिश्र तथा श्री मेहता ने केन्द्रीय पार्लमेण्टरी बोर्ड की स्वीकृति के बिना त्याग-पत्र देना स्वीकार नही किया। इस पर डा. खरे तथा उनके दो साथी मन्त्रियों ने २० जुलाई १९३८ को गवर्नर के पास जाकर त्याग-पत्र दे दिया। गवर्नर ने यह त्यागपत्र स्वीकार करते हुए महाकोशल के उक्त तीनों मन्त्रियों को पदच्युत (डिसमिस) कर दिया और कांग्रेस दल के नेता के रूप मे डा. खरे को नया मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये कहा। डा. खरे ने महाकोशल के उक्त मन्त्रियो के स्थान पर तुरन्त तीन नये सदस्य नियत कर दिये।

डा. खरे का उक्त कार्य कांग्रेस संस्था के अनुशासन की दृष्टि से अनुचित था। गवर्नर के सहयोग से पार्लमेण्टरी बोर्ड की उपेक्षा कर डा. खरे ने जो कार्य किया था उस पर सर्वत्र कड़ी टीका हुई। केन्द्रीय कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड ने डा.खरे पर अनुशासन-भंग का अभियोग लगा कर उन्हें पद-त्याग करने का आदेश दिया। स्थिति पर विचार करने के लिये २१ से २३ जुलाई तक वर्धा में बाबू सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता मे कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई। मौलाना आजाद, सरदार पटेल और बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने घटना का विवरण एवं कांग्रेस के दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया, इस पर डा खरे ने अपनी भूल स्वीकार कर ली और पदग्रहण के तीन दिन के बाद उन्होने इस्तीफा देना स्वीकार कर लिया। डा. खरे ने टेलिफोन द्वारा गवर्नर को नवीन मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र दे दिया, इसे गवर्नर ने स्वीकार कर लिया।

कांग्रेस कार्यकारिणी ने डा. खरे के विषय मे निर्णय किया कि मध्यप्रदेश के गवर्नर ने कांग्रेस में फूट कराने का प्रयत्न किया और डा. खरे व उनके साथियों ने गवर्नर से षड्यन्त्र कर कांग्रेस की प्रतिष्ठा को क्षति पहुचाने का यत्न किया. इसलिये वे कांग्रेस संस्था मे रहने के पात्र नही है। २६ जुलाई को

वर्धा में बाबू सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता म धारा सभा के काग्रेस दल की बैठक अपना नवीन नेता चुनने के लिये हुई। दल ने प रविशकर शुक्ल को अपना नेता चुन लिया।

उक्त काण्ड के बाद डा खरे ने 'माई डिफेन्स'— मेरी सफाई-नामा से अपना एक स्पष्टीकरण प्रकाशित किया था जिसके उत्तर में तत्कालीन काग्रेस अध्यक्ष सुभाष बाबू ने तथ्यो एव घटनाचक्र का पूरा ब्यौरा देते हुए पुस्तिका में डा खरे के अभियोगो को निराधार सिद्ध किया था। २५ सितम्बर को अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति में कार्यकारिणी के डा खरे सम्बन्धी प्रस्ताव को डा पट्टाभि सीतारामैया ने रखा और उसका समर्थन श्री शकरराव देव ने किया। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

मुख्य मन्त्री के रूप में— धारासभा काग्रेस दल द्वारा नेता चुन लिये जाने पर प रविशकर जी शुक्ल को प्रान्त के गवर्नर ने अपना मन्त्रिमण्डल बनाने का कार्य सौंपा। वे पुनर्घटित मन्त्रिमण्डल के भी प्रधान हुए और सर्वश्री प द्वारकाप्रसाद मिश्र, प दुर्गाशकर मेहता, सभाजीराव गोखले और छगनलाल भारूका उनके मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्य हुए। यह मन्त्रिमण्डल अगस्त १९३८ से नवम्बर १९३९ के प्रथम सप्ताह तक निर्विघ्न कार्य करता रहा। इस एक वर्ष में हरिपुरा काग्रेस में शुक्ल जी द्वारा प्रान्त की ओर से दिये निमन्त्रण के फलस्वरूप काग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता म सम्पन्न हुआ। त्रिपुरी का अधिवेशन विचित्र परिस्थिति में हुआ। त्रिपुरी काग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये म गाधी जी डा पट्टाभि सीतारामैया को चाहते थे परन्तु श्री सुभाष बोस उनके विरुद्ध खडे हो गये और बहुमत से विजयी हो गये। राजकोट के ठाकुर के वचन-भग के विषय में म गाधी अपना आमरण अनशन राजकोट में कर रहे थे इसलिये वे त्रिपुरी काग्रेस में नही आ सके। इस अधिवेशन के बीच श्री सुभाष बोस ज्वर से पीडित हो गये, त्रिपुरी का अधिवेशन बडे गम्भीर वातावरण में हुआ। काग्रेस महासमिति द्वारा प पन्त का प्रस्ताव मान्य कर लने पर यह भी विदित हुआ कि महासमिति का बहुमत म गाधी म विश्वास रखता है। यह परिस्थिति देख कर श्री सुभाष बोस ने त्यागपत्र दे दिया और सकटमोचक के रूप में श्री राजेन्द्रबाबू स्थानापन्न काग्रेस अध्यक्ष बने। जहा तक त्रिपुरी काग्रेस के अधिवेशन का प्रश्न है, वह उपस्थिति, व्यवस्था एव विचारणीय विषयो की दृष्टि से सफल रहा। इसमें देश के हजारो प्रतिनिधि तथा लाखो दर्शक आये। इस अवसर पर मिश्र से आये एक प्रतिनिधि-मण्डल ने भी अधिवेशन की कारवाई देखी।

इस समय तक प्रान्त में एक भी काग्रेसी विचारधारा का लोक प्रिय अग्रेजी दनिक पत्र नही था। इस अभाव को अनुभव करते हुए शुक्ल जी ने एक लिमिटेड कम्पनी का निर्माण कर 'नागपुर टाइम्स' को काग्रेसी राष्ट्रीय विचारधारा का पत्र बनाया। इस पत्र को आन्दोलन के दिनो में शुक्ल जी के जेलजीवन में सब प्रकार के आर्थिक सकट एव शासन का कोप सहन करना पडा। पत्र को कई बार जमानतें देनी पडी, परन्तु पत्र ने काग्रेस समर्थक राष्ट्रीय नीति प्रचलित रखी। दुबारा मुख्यमन्त्री बनने पर शुक्ल जी ने पत्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ होते हुए भी राष्ट्रीय हितो की दृष्टि से अपना व्यक्तिगत नियन्त्रण त्याग कर एक सार्वजनिक कम्पनी को पत्र का सचालन सौंप दिया था।

१ सितम्बर १९३९ को जर्मनी ने पोलैंण्ड के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। दो ही दिन में यह युद्ध विश्वव्यापी बन गया। अग्रेज वायसराय ने भारतीय प्रान्तो तथा केन्द्र की व्यवस्थापिका सभा के मतामत पूछे बिना युद्ध में भारत को सम्मिलित कर दिया। काग्रेस ने इस नीति का विरोध किया और अन्य काग्रेसी प्रान्तो की तरह मध्यप्रदेश में शुक्ल जी के नेतृत्व में काग्रेस मन्त्रिमण्डल ने नवम्बर १९३९ के प्रथम सप्ताह में त्यागपत्र दे दिया और युद्ध विरोधी आन्दोलन में योग देने के लिये पुन मैदान में आगया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा भारत छोडो आन्दोलन

युद्ध के प्रश्न पर सरकार से किसी प्रकार का समझौता न होने पर सन् १९४० में म गाधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की घोषणा की। यह सत्याग्रह पव आन्दोलनो से सर्वथा भिन्न था। देश भर की काग्रेस कमेटियो से ऐसे व्यक्तियो

की सूची म. गांधी ने ली थी जो अहिंसा का पालन करते हुए स्वेच्छा से कानून भंग सत्याग्रह करने को उत्सुक हों। यह सत्याग्रह सामूहिक न होकर पूरी तरह व्यक्तिगत था। म. गांधी द्वारा स्वीकृत एक-एक सत्याग्रही ग्रामों मे युद्ध विरोधी प्रचार करता हुआ तब तक पैदल बढ़ता था जब तक उसे गिरफ्तार न कर लिया जाय। कुछ ही महीनों में यह व्यक्तिगत सत्याग्रह बड़ा व्यापक होगया। अप्रैल महीने तक देश मे २० हजार व्यक्ति गिरफ्तार किये जा चुके थे। इसी मास मे शुक्ल जी भी भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिये गये। भारतीय जनता का असन्तोष बढ़ते देखकर एवं जर्मनी व जापान की विजयों को देखकर ब्रिटिश सरकार ने भारत विषयक नीति मे परिवर्तन करना आवश्यक समझा। उसने सत्याग्रहियों को उनका अपराध केवल सांकेतिक होने के कारण मुक्त कर दिया। शुक्ल जी आदि प्रान्त के सभी राजबन्दी मुक्त कर दिये गये। कांग्रेस महासमिति ने क्रिप्स योजना पर विचार किया। उसने मांग की कि भारत मे अंग्रेजी राज्य का अन्त हुए बिना देश आत्म-रक्षण में समर्थ न हो सकेगा। वर्धा मे कांग्रेस कार्यसमिति ने 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया। ८ अगस्त १९४२ को बम्बई मे काग्रेस महासमिति ने यह 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दूसरे ही दिन प्रातः म. गांधी तथा देश के प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये। गांधी जी एवं नेताओं के गिरफ्तार होते ही शुक्ल जी मध्यप्रदेश में "करो या मरो" आन्दोलन संघटित करने के लिये अपने साथियों के साथ प्रान्त की ओर चल पड़े। पुलिस इनकी निगरानी कर रही थी, ज्यों ही शुक्ल जी आदि प्रान्तीय नेता ११ अगस्त को मलकापुर स्टेशन पर पहुचे उन्हे पुलिस ने भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया। शुक्ल जी गिरफ्तार हो कर अपने साथियों के साथ मद्रास प्रान्त की वेलोर जेल मे भेज दिये गये। यहा शुक्ल जी के साथी साहित्य निर्माण के कार्य मे लगे रहे। इस जेल-यात्रा मे शुक्ल जी को नासिका रोग के कारण बड़ा कष्ट रहा। महीनो लिखा-पढ़ी के बाद इन्हे अस्पताल भेजा जाता था। नासिका व्रण को दूर करने के लिये कई बार आपरेशन किये गये परन्तु कोई विशेष लाभ नही हुआ। सब प्रकार का शारीरिक कष्ट होने पर भी सरकार ने उन्हे जेल से नही छोड़ा। तीसरी बार नाक का आपरेशन होने पर उन्हे नासिका सम्बन्धी कष्ट नही हुआ और यह रोग पूरी तरह दूर होगया। इस बार पूरे तीन वर्ष तक शुक्ल जी जेल में रहे।

१९४२ के अन्त तक देश में ६० हजार व्यक्ति गिरफ्तार किये जा चुके थे और ६० लाख रुपया जुर्माने के रूप में वसूल किया जा चुका था। प्रान्त में भी ५००० से अधिक व्यक्ति गिरफ्तार किये गये थे और दर्जनों स्थानो पर ब्रिटिश सरकार को गोलियां चलानी पड़ी थीं। शक्ति के द्वारा यद्यपि ब्रिटिश शासन ने भारतीय जनमत को कुचलने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता न मिली। अन्त मे विश्व की परिस्थिति को देखते हुए एवं विक्षुब्ध भारतीय लोकमत को सन्तुष्ट करने के लिये लार्ड वैवल ने शिमला मे सब प्रान्तों के मुख्य मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन मे भाग लेने के लिये शुक्ल जी मण्डला जेल से १३ जून १९४५ को छोड़ दिये गये। दूसरे ही दिन आप शिमला सम्मेलन में भाग लेने के लिये गये।

शिमला सम्मेलन ब्रिटिश सरकार की भेदपूर्ण नीति के कारण सफल न हुआ। इसी बीच यूरोप मे मित्रराष्ट्र विजयी हो गये थे और ब्रिटेन में मजदूर दली सरकार आम चुनाव में जीत कर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। भारत मे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारासभाओं के निर्वाचन किये गये। १९४५ में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन मे कांग्रेस को पहले ही की तरह सफलता मिली। १९४६ मे प्रान्तों में हुए आम-निर्वाचन मे भी काग्रेस को अभूतपूर्व सफलता मिली। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के ११२ स्थानों में कांग्रेस को ९४ स्थान प्राप्त हुए और उसे निर्णायक बहुमत प्राप्त होगया।

अन्त मे २७ अप्रैल १९४६ को भारत सरकार के कानून की ९३ धारा के अन्तर्गत स्थापित गवर्नर के निरङ्कुश शासन का अन्त हुआ और पं. रविशंकर जी शुक्ल के नेतृत्व में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल ने पदग्रहण किया। युद्ध काल मे प्रदेश-प्रदेश मे एवं सम्पूर्ण भारत मे भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी बढ गयी थी। उस समय बंगाल के भीषण अकाल के बाद देश भर मे भीषण अन्नाभाव भी व्याप्त होगया था, इतने पर भी पुराने कानून के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकार के पास

मध्यप्रदेश विधान सभा (१९३९) के सदस्य

(शुक्ल जी प्रथम मंत्री मण्डल में मंत्री, उनके अलावा सर्वश्री द्वारकाप्रसाद मिश्र, दुर्गाशंकर जी मेहता, छगनलाल जी भारुका एवं सभाजीराव गोखले चित्र में दिखाई दे रहे हैं । विधान सभा के अध्यक्ष श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त बीच में)

स्वाधीनता के बाद मध्यप्रदेश का प्रथम मंत्रिमण्डल सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ
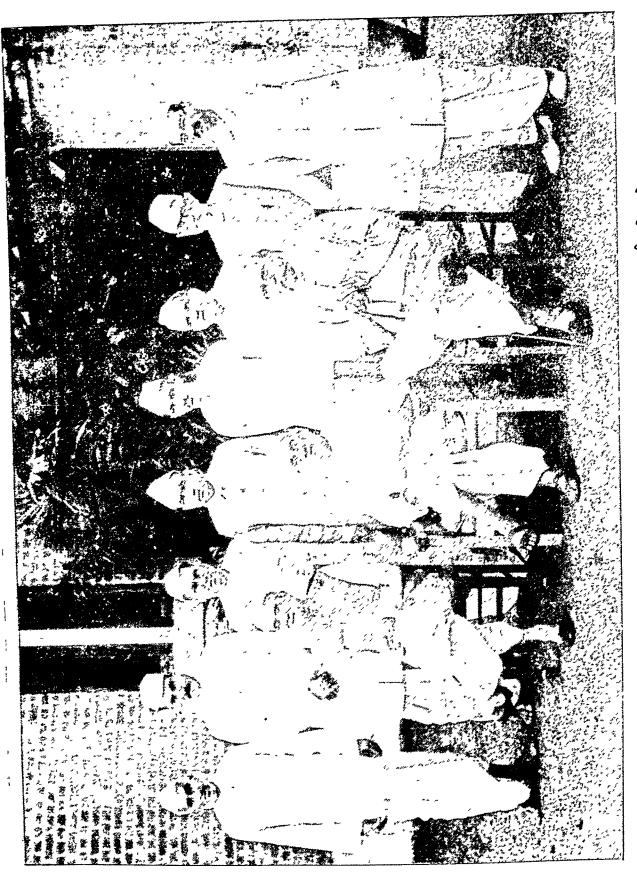
बैठे हुए–(१) शुक्लजी (२) सरदार वल्लभभाई पटेल (३) भू. पू. राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा

खड़े हुए–(१) पं. द्वारका प्रसाद मिश्र (२) पं. दुर्गाशंकर मेहता (३) श्री संभाजीराव गोखले

पचमढ़ी राज-भवन के उद्यान में राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसादजी और
डॉ. पट्टाभि सीतारामैया के साथ शुक्लजी

शुक्लजी अपने तृतीय मंत्रिमण्डल के साथ

(बाईं ओर से) श्री मा. सा. कन्नमवार, श्री ब्रिजलाल बियाणी, श्री दुर्गाशंकर मेहता, [बैठे हुए] श्री रविशंकरजी शुक्ल एवं डॉ. पट्टाभि सीतारामैया; श्री भगवन्तराव मण्डलोई श्री शंकरलालजी तिवारी, राजा नरेशचंद्र, श्रीमती प्रभावती जकातदार [उपमंत्रिणी], श्री दीनदयाल गुप्ता; श्री पी. के. देशमुख

निगेरियन सद्भावना मंडल के नेता डॉ अनोरिनो के साथ
प रविशंकरजी शुक्ल

इसी समय हैदराबाद के चुने हुए २०० राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता भी प्रान्त के होमगार्ड संघटन में लिये गये और इन्हें तीन महीने में ही पूर्ण शिक्षित कर दिया गया। इन होम गार्डस् का शस्त्रागार बहुत ही अच्छा था।सीतावर्डी किले मे इन्हे पूर्ण शिक्षित किया गया। होमगार्ड संघटन को सुदृढ़ करने मे कर्नल गांगुली का बड़ा हिस्सा था। वे एक सच्चे देशभक्त थे।

जिन दिनों देश की आन्तरिक स्थिति संकटपूर्ण थी, जब अंग्रेज भारत छोड़ने का निश्चय कर चुके थे पर गये नहीं थे उस समय हमारे प्रान्त तथा राष्ट्र के लिये बड़ी संकट की घड़ियां उत्पन्न हो गई थी। निजाम हैदराबाद वाले बस्तर के विस्तीर्ण क्षेत्र पर अधिकार करना चाहते थे। बस्तर मे बहुत अधिक खनिज पदार्थ एवं प्राकृतिक सम्पदा भरी हुई है। निजाम इस प्रदेश पर अधिकार कर अपने को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप मे स्थापित करना चाहता था। बस्तर पर अधिकार कर रियासत का गोदावरी का समुद्र से निकटस्थ भाग भी निजाम को एक खुले बन्दरगाह के रूप में शेष संसार से सम्बन्ध स्थापित करने में मदद दे सकता था। इस समय शुक्ल जी को किसी तरह इस षड्यन्त्र का भेद लगा। उन्होंने इस विषय में सरदार पटेल का ध्यान खींचा। इसके बाद शुक्ल जी ने बड़े प्रयत्न से छत्तीसगढ़ की १४ रियासतों को मध्य-प्रदेश में विलीन करवा लिया। इससे जहां प्रान्त के क्षेत्रफल मे ३१,५८८ वर्ग मील क्षेत्र की वृद्धि हुई और ३० लाख जनसंख्या तथा २ करोड रुपया आय बढ़ी वहां इन रियासतों से भारतीय राष्ट्र को होने वाले संकट को दूर कर दिया गया।

संकट की इन घड़ियों मे शुक्ल जी ने हमारे प्रान्त तथा राष्ट्र को किन बड़े संकटों से बचाया इसकी पूरी कहानी अभी भी अज्ञात है। राष्ट्रीय-रक्षा भेद एवं गोपनीयता की दृष्टि से उनकी चर्चा नही हो सकती फिर भी इतना कहा ही जा सकता है कि मध्यप्रदेश एवं राष्ट्र को संकट के इन क्षणो मे कई भीषण षड्यन्त्रो एवं आपत्तियों से शुक्ल जी ने बचाया था। सरदार पटेल ने शुक्ल जी के इन कार्यो को बहुत ही अधिक सराहा था। इस कार्यो का पूरा विवरण भविष्य के इतिहास के पन्नों में कभी प्रकाशित हो सकेगा।

७२ वीं वर्षगांठ : जनता का प्रेम:—१९४७ के अगस्त मास में रायपुर में शुक्ल जी की ७२ वी वर्षगांठ धूमधाम से मनायी गयी। इस अवसर पर जनता की ओर से शुक्ल जी को १ लाख ७१ हजार रुपयों की थैली भेंट की गयी थी। इस मे शुक्ल जी ने ५० हजार रुपये जबलपुर के शहीद स्मारक के लिये, २१ हजार रुपये खादी विद्यालय, रायपुर को, चालीस हजार रुपया समाज सेवा आश्रम शंकर नगर, रायपुर को समर्पित कर दिये। शेष धनराशि जनता के ट्रस्टी एवं पंचों के नेता महन्त लक्ष्मीनारायणदास को सार्वजनिक कार्य के लिये दे दी गयी। इस जयन्ती के अवसर पर महासमुन्द की जनता ने शुक्ल जी को चान्दी की मुद्राओं से तोलकर तुलादान किया। शुक्ल जी ने यह सारी चान्दी काँग्रेस संस्था को दे दी। उक्त घटनाये जहां शुक्ल जी की लोकप्रियता की साक्षी हैं वहां इनसे उनकी त्यागवृत्ति का भी परिचय मिलता है।

म. गांधी का बलिदान:—३० जनवरी १९४८ को राष्ट्रपिता म. गांधी की निर्मम हत्या एक हिन्दू युवक द्वारा कर दी गयी। इससे सारे देश के साथ हमारा प्रान्त विक्षुब्ध होगया। म. गान्धी नौआखाली की यात्रा के बाद पहली बार मध्यप्रदेश लौट रहे थे। शुक्ल जी के नेतृत्व मे प्रान्त की जनता उनका हार्दिक स्वागत करना चाहती थी परन्तु दुर्भाग्य से यह अवसर कभी न मिला। शुक्ल जी ने इस दु:खद अवसर पर कहा था :—"हमारी आंखें चोधिया गयी हैं, हम काँप उठे हैं, किन्तु इस शोकार्त वेला में हमें नहीं भूलना चाहिये कि गान्धी जी शान्ति और सद्भावना के लिये जीवित रहे और इसी के लिये शहीद होगये।"

सागर विश्वविद्यालय:— शुक्ल जी के मुख्य मन्त्रित्व मे सागर विश्वविद्यालय की स्थापना भी एक उल्लेखनीय घटना है। डा. हरिसिंह गौर ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये अपनी अधिकांश सम्पत्ति दे दी थी। जबसे सागर विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है, शुक्ल जी उसके कुलपति बने हुए हैं। १९५२ से विश्वविद्यालय का शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो गया है।

हिन्दी के लिये विविध ठोस कार्य —प्रान्त के मुख्य मन्त्रित्व के कार्य के साथ शुक्ल जी भारतीय सविधान परिषद् के सदस्य भी चुने गये थे। भारतीय सविधान की विविध महत्त्वपूर्ण धाराओं के निर्माण, सशोधन एव परिवर्द्धन में शुक्ल जी का बडा योग रहा। सविधान सभा में शुक्ल जी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्र-भाषा सम्बन्धी परिच्छेद में भाग लेना था। सविधान परिषद में १३ सितम्बर १९४९ के दिन राष्ट्र की मुख्य राजभाषा का प्रश्न उपस्थित था। उस अवसर पर प जवाहरलाल नेहरू ने भाषा सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को व्यक्त किया। नेहरू जी के भाषण के तुरन्त बाद प रविशकर जी शुक्ल ने भारत की राष्ट्रभाषा एव हिन्दी के प्रश्न पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। इस भाषण का इतना अधिक प्रभाव हुआ कि श्री एन गोपालस्वामी आयगर ने एक समझौते का ऐसा प्रस्ताव रखा जिसमें राष्ट्रभाषा सम्बन्धी मतभेदो को दूर करने के लिये एक मध्यवर्ती मार्ग निकाला गया था। शुक्ल जी ने अपने भाषण में तथ्यों, प्रमाणों, युक्तियों के आधार पर हिन्दी का पक्ष रखा था, इसमें किसी तरह की कटुता, सकीर्णता तथा सकुचित स्वार्थ की गध न थी। उसमें राष्ट्रीय एव भाषा सम्बन्धी आधार पर हिन्दी का पक्ष रखा गया था, फल यह हुआ कि राष्ट्र-भाषा सम्बन्धी प्रस्ताव में हिन्दी की स्थिति सुदृढ होगयी। सविधान परिषद् में दिये शुक्ल जी के भाषण का आवश्यक भाग शुक्ल जी के "विचार सम्बन्धी भाग" में प्रकाशित किया जा रहा है।

सविधान परिषद में भाग लेकर भारतीय सविधान में हिन्दी को उसकी गौरवपूर्ण स्थिति प्राप्त कराने के कार्य का अभिनन्दन करने के लिये प रविशकर जी शुक्ल अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३७ वें हैदराबाद अधिवेशन का उद्घाटन करने के लिये निमन्त्रित किये गये थे। २४ दिसम्बर १९४९ के दिन सम्मेलन के अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए शुक्ल जी ने कहा था —"भारत की ३२ करोड जनसख्या में १८ करोड की मातृभाषा होने एव लगभग २२ करोड द्वारा सरलतापूर्वक समझी जाने के कारण जनता ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में तो पहले ही वरण कर लिया था, किन्तु सविधान सभा का निश्चय एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। राज्य मान्यता तो यात्रा का प्रारम्भ मात्र है। अभी एक और लम्बी तथा कठिन मजिल तय करना है। सविधान सभा के लम्बे वाद विवाद और विचार-सघर्ष तो केवल हमारी अग्रेजी की दासता से मुक्ति पाने की अधीरता के द्योतक थे, क्योंकि यह निश्चित था कि जबतक राष्ट्र-भाषा का प्रश्न तय नहीं होता अग्रेजी ही भारत की आत्मा को जकडी रहती। म गाधी की पारदर्शी दृष्टि ने यह बात पहले पहल समझी थी और इसीलिये उन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रश्न को स्वराज्य से कम महत्त्वपूर्ण नही माना था हिन्दी जनभाषा से राष्ट्रभाषा होने जा रही है, वह केन्द्र और प्रान्त, प्रान्त और प्रान्त के परस्पर व्यवहार की भाषा होगी। हिन्दी के लिये यह गौरव का विषय है। किन्तु यह स्मरण रहे कि यह विजयोल्लास का कारण नही हो सकता है, यह तो है केवल आत्म निरीक्षण का कारण

शुक्ल जी ने इस अवसर पर कहा था कि "हिन्दी प्रेमियो से प्रार्थना है कि वे भारतीय विधान के राष्ट्रभाषा सम्बन्धी परिच्छेद के प्रत्येक मद का, उसकी धाराओ और उपधाराओ का ध्यानपूर्वक मनन कर लें। तब उन्हें जान पडेगा कि अपने अभीष्ट उद्देश्य तक पहुचने के लिये उन्हें कौन-कौन से सोपान पार करने है। हिन्दी का यह ठोस कार्य का युग है। देवनागरी अको के लिये अभी सब द्वार बन्द नही हुए है। १५ वर्ष के भीतर ही सम्भवत और नही तो उसके बाद भी, नागरी अको के पुनरुद्धार के लिये विधान में स्थान है किन्तु यह हृदय-परिवर्तन के मार्ग द्वारा ही सम्भव है।" शुक्ल जी ने कहा था—"आजतक हिन्दी का क्षेत्र कथा, कहानी, नाटक, उपन्यास, भक्ति और दर्शन शास्त्र तक ही सीमित रहा है। शासन, कला और विज्ञान में अग्रेजी का साम्राज्य रहा है। अग्रेजी राज्य की समाप्ति पर और हिन्दी राजभाषा घोषित होने पर हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम हिन्दी को अग्रेजी का स्थान लेने योग्य बनायें। इन १५ वर्षों में उसके सारे अभावो की पूर्ति कर दें।"

शुक्ल जी ने हिन्दी के क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय ठोस कार्य किये है। हिन्दी की शब्दावली प्रामाणिक एव सम्पूर्ण देश में व्यवहार्य बनाने के लिये आपने नागपुर में प्रमाणीकरण परिषद् का आयोजन किया था। इसमें विविध शासनो, सरकारो एव सस्थाओ के चुने हुए प्रतिनिधियो के अतिरिक्त विषय के विशिष्ट विद्वान भी आये थे। शुक्ल जी

ने डा रघुवीर तथा दूसरे विद्वानों की मदद से शासन शब्दकोष का निर्माण कर उसे शासन में व्यवहृत किया। शुक्ल जी ने देवनागरी लिपि को यन्त्रों की दृष्टि से अधिक सक्षम बनाने के लिये लखनऊ मे हुई लिपि परिषद् में भी भाग लिया। मध्यप्रदेश मे हिन्दी तथा मराठी को राजभाषा के रूप मे प्रचलित कर आपने उल्लेखनीय कार्य किया। आपकी इन विशिष्ट सेवाओं को देखते हुए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी न हीरक जयन्ती पर आयोजित साहित्य परिषद् के उद्घाटन करने का सम्मान आपको प्रदान किया था।

मध्यप्रदेश के निर्माता :—मध्यप्रदेश एवं राष्ट्र के विविध क्षेत्रों मे शुक्ल जी की देन का पूरा लेखा-जोखा देना कठिन है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से मध्यप्रदेश की प्रगति का इतिहास शुक्ल की जीवनी का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। दूसरे प्रदेशो मे मध्यप्रदेश का नाम स्मरण करते ही उसके वयोवृद्ध, अनुभवी एवं मिलनसार मुख्यमन्त्री की विशाल मूर्ति सम्मुख आ जाती है। पिछले वर्षो मे मध्यप्रदेश की शैक्षणिक, आर्थिक, औद्योगिक एवं विविध क्षेत्रों में हुई प्रगति में शुक्ल जी का उल्लेखनीय योग रहा है। युद्धोत्तरकालीन विकास योजनाये, जिनसे गांवों मे वसे असली भारतवर्ष का कायाकल्प हो रहा है, सदा उनकी व्यक्तिगत दिलचस्पी से पनपी है। पिछले ८ वर्षो मे प्रान्त मे जो नवीन औद्योगिक चेतना उत्पन्न हुई, गांव गांव, नगर-नगर मे जो औद्योगिक जागरण हो रहा है उसमे शुक्ल जी तथा उनके सहयोगियों का यशस्वी भाग है। जब देश भर मे अन्नाभाव का संकट मंडरा रहा था तब शुक्ल जी ने प्रान्त में इस प्रकार की अन्न की नीति रखी कि यहां प्रदेश में कभी अन्नाभाव अनुभव नही हुआ, उल्टे हमारे प्रदेश ने अन्न देकर अपनी जिम्मेदारी निबाही। खापरखेड़ा का विद्युत कारखाना, नेपा का पहला अखवारी कागज का कारखाना तथा प्रान्त भर में फैले दूसरे नवीन छोटे-वडे उद्योग शुक्ल जी और उनके सहयोगियों के कर्तृत्व के प्रतीक वन गये है।

भिलाई का कारखाना :—इन सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण दुर्ग नगर के समीप भिलाई स्थान पर १ अरव रुपयों की लागत से वनने वाला लोहे एवं फौलाद का कारखाना शुक्ल जी के अदम्य उत्साह तथा कर्तृत्व का जीता जागता स्मारक वनने जा रहा है। दो लाख की आवादी का भिलाई का यह बड़ा कारखाना जब अगले तीन-चार वर्षो में अपना पूरा उत्पादन प्रारम्भ कर देगा तो प्रान्त के औद्योगिक जीवन मे कायाकल्प ही आ जायेगा। दस लाख टन तैयार लोहा प्रस्तुत करने वाले कारखाने के निर्माण से मध्यप्रदेश के आर्थिक जीवन का स्वरूप ही बदल जायेगा।

विभिन्न संस्थाओ के भव्य भवन, रायपुर, नागपुर, जवलपुर तथा सागर के विविध महाविद्यालयों की प्रगति, निर्माण एवं विस्तार मे शुक्ल जी का योग रहा है। उन्होंने विद्यामन्दिर योजना के द्वारा प्रान्त में शिक्षा प्रसार की एक क्रान्तिकारी योजना प्रस्तुत की थी। एक शिक्षक से अपना जीवन प्रारम्भ कर शुक्ल जी एक लोकप्रिय, सफल शासक सिद्ध हुए है उनका नेतृत्व मध्यप्रदेश को वर्षो तक मिले। वे प्रदेश, राष्ट्र एवं सर्वत्र अपने महान् गुणों की देन देते हुए चिरायु हो।

शुक्ल जी आयु से राष्ट्र के सवसे वयोवृद्ध मुख्यमन्त्री होते हुए भी अपने कार्यो से चिर युवा वने हुए हैं। ब्राह्म-मुहूर्त्त में प्रातः ५ वजे से उठकर रात्रि मे १०–११ वजे तक निरन्तर विविध क्षेत्रों में कार्य करते हुए युवा के अदम्य उत्साह से संलग्न रहते है। वे समाज, प्रदेश एवं राष्ट्र की समुन्नति एवं प्रगति मे सदा प्रवृत्त रहते हैं। भगवान से प्रार्थना है कि वह प्रदेश के यशस्वी नेता शुक्ल जी को दीर्घायु करे।

———

मेरे कुछ संस्मरण

श्री रविशंकर शुक्ल

मेरे जीवन के इन ७८ वर्षों की कहानी काफी लम्बी है। विभिन्न संघर्षों, संकटों और उतार-चढावों में यह मेरा जीवन व्यतीत हुआ है। इसलिये इस सम्पूर्ण जीवन की कहानी सुनाने के लिये तो इस समय अवकाश नहीं है परन्तु अपने इस दीर्घ जीवन में मैंने जिन आत्मीय जनों से कुछ सीखा, जिन महापुरुषों के सम्पर्क-सहयोग से मैं आगे बढ़ा और जिन ग्रन्थों ने मुझे प्रेरणा दी उन सबके विषय में कतिपय पृष्ठों में अपनी स्मृतियों को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

हमारे दादा प. रामचन्द्र जी शुक्ल प. गयाप्रसाद दुबे की जायदाद के जनरल मनेजर थे। वे ७०-८० गावो का प्रबन्ध देखते थे। मैं अपने दादाजी (आजा) के साथ वहा जाया करता था। हमारे दादा की कान्यकुब्ज समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। उनके साथ की एक-दो घटनाओ की याद आज भी ताजी है। मैं उनका अकेला नाती था इसलिये मैं उनके साथ ही रहता था। उस जमाने में शादी विवाह में हसी-मजाक बहुत हुआ करते थे, इन अवसरो पर कई बार बडे दिलचस्प मजाक भी हो जाते थे। उन दिनो बरात का भोजन रात को अधिक हुआ करता था। सागर के बुन्देलखण्डी जिले में रीति रिवाज बहुत मनोरजक है। आजकल तो हमे दूध देखने को नही मिलता है परन्तु उस जमाने में घी-दूध की बडी प्रचुरता थी। एक बार किसी बरात में रात के समय पक्का भोजन कराया गया। भोजन के अन्त में दूध, शक्कर और मैदा की पूरिया परोसने का रिवाज था। बडे आग्रह से इन्हें परोसा जाता था। मुझे स्मरण है कि जब रात को दूध परोसने का समय आया तो एक बडा गज जिसमें दस-बारह सेर दूध था उनके सामने लाकर रख दिया गया। यह घटना सम्भवत रहली की थी। दूसरी बात मुझे उनके साथ अपनी बुआ के लडके कन्हैयालाल दीक्षित की बरात में जाने का अवसर मिला था। यह विवाह आजन्दा गाव (जिला होशगाबाद) में हुआ था। हम लोगो का डेरा एक अमराई में था। उन दिनों गर्मी का मौसम था। मैं तो बहुत छोटा था। छोटे बच्चो को बरात में जाने का शौक रहता है। मुझे इस अवसर पर लू लग गयी थी तो आजा ने मेरी बडी सेवा-सुश्रूषा की। वे मुझे आम का शरबत पिलाते थे इसे देह में लगाते थे और इसे ही सूप में लगा कर उससे हवा करते थे। एक-दो रोज में ही मैं अच्छा होगया और उनके साथ हाथी पर बैठकर लौटा।

हमारे दादा (आजा) बडी दृढ प्रकृति के थे। उनकी शारीरिक सम्पत्ति भी बहुत अच्छी थी। उनका देहान्त सन् १८६१ में ६२ वर्ष की अवस्था में हुआ। उस समय भी वे ३०–३२ मील घोडे पर सवार होकर जाते थे। वे घोडे के पक्के सवार थे। उन दिनो उनके साथ दौरे पर सदा ४–६ सिपाही रहते थे। ये सिपाही इतने हट्टे-कट्टे और मजबूत रहते थे कि कधोपर लट्ठ रख कर घोडे के साथ पैदल दौडते थे। अगर कोई आदमी दौडने के साथ जाने में कम निकलता था तो नौकरी से अलग कर दिया जाता था। घर के नौकरो को तनख्वाह के रूप में ४–५ रुपये ही दिये जाते थे परन्तु खाने को भरपूर दिया जाता था। उन दिनो कोई ऐसा नौकर न था जो २–३ सेर अनाज से कम खाता हो। मुझे मातावदल नामक एक बहुत ही सबल नौकर की भी याद है। यह बहुत ही हट्टा-कट्टा और मजबूत था। वह एक बार में पाच सेर आटा और पाव-पाव भर घी खा जाता था। यह व्यक्ति असाधारण था। उस जमाने में कोई असामी चीं-चपड करता था तो यह आदमी उसे ठीक कर लौट आता था।

उस जमाने मे जव मै छोटा था तो घर के नौकर केवल नौकर की हैसियत से न रहते थे, वे घर के अंग की दृष्टि से देखे जाते थे, उनमे हिन्दू और मुसलमान का कोई भेद नही रहता था। हमारे घर मे वरौआ, धोवी, मेहतर आदि को सव काका-वावा कहते थे और वेसे ही वे वड़े प्रेम से हमारे साथ बरताव करते थे। हमारे यहां हिन्दू-मुसलमान का ऐसा कोई मतभेद नही था जैसे कि आजकल है, हां, धार्मिक आचार-व्यवहार मे कट्टरता अवश्य थी। हमारे यहां एक मुसलमान नौकर था। उस नौकर ने एक वार मुझे नर्मदा में डूवने से वचाया था। उस समय मेरी उम्र डेढ़-दो वर्ष की थी। वह नौकर इतना अधिक विश्वासपात्र था कि जहा घर की वहू-वेटियाँ जाती थी उनके साथ जाता था। एक वार वैलगाड़ियों में हम माता जी के साथ जवलपुर जा रहे थे। नर्मदा जी के पाट पर रेती पर गाड़ी खड़ी कर हम सव लोग चैन से सो रहे थे। इतने मे रात को नर्मदाजी का पूर आगया। उस विश्वासपात्र नौकर वहादुरखाँ ने हम सवको वचाया। वह हम सवको तथा सारे सामान को किनारे पर ऊपर ले आया और सवको वचा लिया। यह घटना वर्मान घाट पर हुई थी। मुझे यह भी स्मरण है कि जव मै कुछ वड़ा हुआ तो यह घुटनों तक की धोती पहनकर हमे खिलाया करता था।

मै अपनी माता का इकलौता लड़का था। यद्यपि मेरी तीन सगी वहनें थी परन्तु वचपन से ही माता जी का मेरे ऊपर विशेष प्रेम था। जव मेरी अवस्था लगभग ७–८ वर्ष की थी तव मुझे और मुझ से छोटी वहन को भी मियादी वुखार या टायफायड होगया। दोनों अलग-अलग कमरे मे रखे गये थे और दोनो को डिलीरियम (उन्माद) होगया। इन दिनो मै निरन्तर अचेतनावस्था मे रहता था। ८–१० दिन के वाद जव मुझे होश आया तो मुझे सवसे पूर्व अपनी स्नेहमयी मां के दर्शन हुए। मैंने देखा कि वे मेरे पास वैठी हुई हैं। उन दिनों मुझे डाक्टर की दवा दी जाती थी और मेरी वहन को वैद्यक की (वैद्य दुर्गाप्रसाद द्वारा)। टायफायड की वीमारी में और वीमारी दूर होने पर हम भाई-वहनों की कमजोरी के दिनो मे माता जी ने जिस अपूर्व स्नेह एवं ममता से हमारी सेवा की है उसका चित्र मेरे हृदय-पटल पर आज भी मौजूद है, उस चित्र को मै कभी भी भूल नही सकता। वैद्य की दवा से मेरी वहन तो वहुत जल्दी नीरोग हो गयी और जैसा कि कहा जाता है कि टायफायड की वीमारी से उठने के वाद व्यक्ति सामान्यतया मोटे-ताजे हो जाते हैं, मेरी वहन तो नीरोग हो जाने के वाद जल्दी ही हृष्ट-पुष्ट होगयी परन्तु मुझे स्मरण है कि डाक्टर द्वारा साल भर तक पोर्ट वाइन नियमित रूप मे दिये जाने पर भी मै उतना मोटा-ताजा नहीं हो पाया जितनी मेरी वहन।

जवतक मै अपने आजा की मृत्यु के पश्चात् राजनांदगांव नही आया तवतक मेरा सम्पर्क पिताजी से वहुत कम रहा। माताजी का स्वास्थ्य वहुत अच्छा था, उनमे शक्ति भी विशेष थी और काम करने की इच्छा भी। घण्टो का काम मिनटों में पूरा करने की उनकी क्षमता थी। परोपकार करने की उनकी विशेष लगन थी। किसी पड़ोसी के यहां कोई वीमारी हो जाने या कठिनाई उत्पन्न हो जाने पर वे सदा उसकी सहायता के लिये रात-दिन तैयार रहती थी। माताजी में धार्मिक भावना तो थी ही परन्तु उन्हे कान्यकुब्जों की सामाजिक परम्परा का भी वड़ा गर्व था। जवतक वे जीवित रही और स्वस्थ रहीं तवतक रिश्तेदारों को छोड़कर अन्य किसी का रसोईघर मे प्रवेश असम्भव नही तो कठिन अवश्य था। वे वड़े जतन से रसोई का सारा काम सम्भालती थी। उनके काम मे मेरी पत्नी उनका हाथ वटांती थी। उन दिनों रसोई मे कोई नौकर नही रखा जाता था; कुछ समीप के रिश्तेदारो को छोडकर कोई दूसरा व्यक्ति हमारे यहां रसोई नहीं वनाता था। घर की इस परम्परा का मेरे ऊपर भी वडा प्रभाव रहा और जवतक सत्याग्रह में भाग लेकर जेल जाने का निश्चय मैंने नही किया तवतक मै भी उस कट्टरता का पक्षपाती वना रहा। इन वन्धनों को तोड़ने का निश्चय मैंने उस समय किया जव मैंने इस वात का निश्चय कर लिया कि मुझे गान्धी जी के नमक सत्याग्रह में भाग लेने पर जेल जाना पड़ेगा। पहली वार मैंने वम्वई के सरदारगृह मे ये जातीय वन्धन तोड़े वहां सरदारगृह मे वना भोजन किया। वम्वई से हम म. गान्धी की डाण्डी यात्रा के कार्यक्रम मे दो स्थलों पर सम्मिलित होने के लिये गये। मेरे साथ सेठ गोविन्ददास और पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र थे। इस ऐतिहासिक राष्ट्रीय यात्रा के अवसर पर मैंने इन सव वन्धनों को तिलांजलि दे दी।

हर बार जब मैं जेल जाता था तब मेरी मा मुझ से कहा करती थी—"भैय्या ! पता नही तुमसे अब भेंट होगी या नही ?" मैं उन्हे सदैव आश्वासन देता था कि "मेरे लौट कर आने तक तुम जीती रहोगी।" १९३० में एक बार वे मुझ से मिलने बीमारी की हालत म सिवनी जेल गयी थी। फिर, १९३० से ४० तक के दस वर्षो में वातरोग के कारण वे चाहते हुए भी मुझ स मिलने जेल न जा सकी थी। १९४० में जब मैं सिवनी जेल में था तब उनकी मृत्यु होगयी। मध्यप्रदेश सरकार ने इस घटना की सूचना मिलते ही, मुझ से विना पूछे ही कि मैं जाना चाहता हूँ या नही, मुझे छोडने का आदेश सिवनी जल सुप्रिन्टेन्डेन्ट को पहुँचा दिया था। परन्तु इस आदेश में एक बडी दिलचस्प बात यह थी कि उस समय के चीफ सेक्रेटरी ने जो कि एक हिन्दू थे—मुझे केवल दस दिन की मोहलत जेल से जाने के लिये दी थी। तेरहवी के लिये मुझे पूरे तेरह दिन का समय तथा आने-जाने के लिये दो दिन-कुल मिलाकर पन्द्रह दिन का अवसर चाहिये था। इस सम्बन्ध मे मैंने चीफ सेक्रेटरी को पत्र लिखकर पन्द्रह दिन की मोहलत चाही, जिसके लिये मुझे अनुमति मिल गयी। पन्द्रह दिन की अवधि समाप्त होने पर जब म सिवनी जेल के दरवाजे पर गया तो मुझ पर दूसरा नजरबन्दी का आदेश लागू किया गया। यह नजरबन्दी का आदेश पहले से ही तैयार था और यह दरवाजे पर मुझे दिया गया था। कानून की दृष्टि से जेल से एक बार छोडे जाने पर पुराने नजरबन्दी आदेश के अनुसार मुझे पुन जेल में रखा नही जा सकता था फलत मुझे नवीन आदेश के अन्तगत नजरबन्द किया गया।

मेरी माता जी म अतिथि सत्कार की भावना बहुत अधिक थी। वे बहुत प्रेम से घर में आये मेहमानो तथा अतिथियो का सत्कार किया करती थीं। उनमे धार्मिक प्रवृत्ति बहुत अधिक थी, वही धार्मिक प्रेरणा मेरी धमपत्नी में भी है जो पुरातन पारिवारिक सास्कृतिक परम्पराओ को बडी निष्ठा और श्रद्धा से निबाहती रहती है। धमप्राण परिवार में जन्म लने के कारण बचपन से ही मेरे जीवन पर धार्मिक सस्कारो का बडा प्रभाव रहा है। मेरे चाचा श्री गजाधर-प्रसाद जी शुक्ल के पिता प्रतिदिन पार्थिव पूजन किया करते थे, वे प्रतिदिन प्रार्थिव शिवलिंग बनाते थे और सूय का पूजन करते थे। उनके सस्कारो का ऐसा प्रभाव हुआ है कि वे जिस मुद्रा में बठकर पूजा करते थे लगभग उसी प्रकार की स्थिति एव मुद्रा में म भी भक्तिभाव से पूजापाठ किया करता हू।

मेरे पिता जी (प जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल) और चाचा जी (प गजाधरप्रसाद शुक्ल) दोनो की ही शारीरिक सम्पत्ति बहुत अच्छी थी। उनके जमाने में खाने-पीने की चीजें और दूध-घी बहुत सस्ता था। मेरे बचपन में रुपये का सोलह सेर दूध मिलता था और घर में कभी दूध-घी की कमी नही रहती थी। उन दिनो सागर के हर मोहल्ले में अखाडे होते थे और हमारे पिता व चाचा अखाडे में कुश्ती लडते थे। दोनो के शरीर पहलवानो के समान गठीले और सुन्दर थे।

मुझे स्मरण है कि हमारे खेलने और व्यायाम करने के लिये घर में ही एक अखाडा बना दिया गया था। हमारे चाचा जब सागर आते थे तो मोहल्लेवाले पटा-बनेटी आदि के एक से एक अच्छे खेल दिखाते थे। वे बहुत ही अच्छा प्रदशन किया करते थे। मुझे यह भी स्मरण है कि जबलपुर में जब मेरे चाचा गोकुलदास मिल के सेक्रेटरी थे तब उन्होने गोकुलदास के वतमान महल के पीछे की तरफ एक बडा अखाडा बनवाया था। यह अखाडा इतना बडा था कि इसमें ५०—१०० आदमी दण्ड-बैठक कर सकते, मुगदर घुमा सकते और कुश्ती लड सकते थे। मेरे चाचा अपने साथ मुझे भी अखाडे में ले जाते थे। उन दिनो म उनके साथ रहता था। एक बार का मुझे स्मरण है कि मैं और सेठ गोविन्ददास के पिता श्री जीवनदास जी जाघिया लगा कर इस अखाडे में कुश्ती लडे थे। परम्परागत मिली सुन्दर पत्रिक शारीरिक सम्पत्ति, अच्छे घी-दूध और व्यायाम के शौक से मुझे यह इतना सुन्दर शरीर मिला हुआ है। वकालत के दिनो में नियमपूवक दण्ड-मुगदर करता रहा, क्रिकेट तथा दूसरे खेल भी बडे शौक से खेलता रहा।

चाचा के देहान्त के पश्चात् और राजनादगाव की सी पी मिल्स का स्वामित्व शा वालिस को हस्तान्तरित होने के बाद भी हमारे पिता जी को मिलवाला ने अपनी नौकरी पर कायम रखा था। जब मैं नागपुर के हिस्लाप कालेज

म पढ़ता था या जब मैं खैरागढ़ मे हैडमास्टर था तब अनेक बार राजनांदगांव मे कई दिनों तक रहने का अवसर मिलता था। राजनांदगाव में रहने वाले कुछ प्रमुख अफसर पुतलीघर के मैदान मे क्रिकेट खेला करते थे। वहां पिताजी के साथ मै भी जाया करता था। जब मै कालेज में विद्यार्थी था उन दिनो राजनांदगांव मिल्स मे एक बंगाली मुसलमान डाक्टर थे। उनसे मेरे पिताजी की घनिष्ट मित्रता थी। डाक्टर साहब को भी कसरत का अच्छा शौक था, और वे डम्बल्स करते थे। डाक्टर साहब कसरती नवजवान थे, वे डम्बल्स करने से सुपुष्ट अपनी मांस पेशियाँ सबको दिखाया करते थे। एक दिन की बात है कि डाक्टर साहब ने सबको चुनौती दी कि जो कोई चाहे उनसे कुश्ती लड़ ले। डाक्टर साहब मेरे पिताजी से उलझ पड़े। पिताजी तो अखाड़े मे कुश्ती लड़े हुए थे। पिता जी ने उन्हे उठा कर एक दॉव मारा तो डाक्टर साहब चारो खाने चित्त होगये। पांच–छः साल के बाद फिर एक बार क्रिकेट के मैदान पर ऐसा ही मौका आगया डाक्टर साहब दुबारा पिताजी से भिड़ गये। पिताजी ने उन्हे फिर दे मारा और डाक्टर साहब से कहा कि अब फिर मेरे पास आने की हिम्मत न करना।

जब मै रायपुर मे वकालत करने लगा तो पिता जी ने नौकरी छोड़ दी और वे मेरे साथ ही रहने लगे। जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तब पिताजी इस बात के विरुद्ध थे कि मै वकालत छोडू। उनकी आज्ञा का पालन कर मैंने वकालत छोड़ने की घोषणा तो नही की क्योकि मै जानता था कि मेरे पास इतना धन नही है कि मैं कुटुम्ब का पालन वकालत छोड़ कर भी कर सकूं, इसलिये मैंने वकालत तो नही छोड़ी किन्तु मेरा अधिक समय कांग्रेस के कार्य में लगता रहा। मई १९२२ मे रायपुर जिला राजनीतिक परिषद् के अवसर पर जब मुझे गिरफ्तार किया गया तब पुलिस अधीक्षक (सुप्रिन्टेण्डेन्ट) तथा जिलाध्यक्ष दोनों अंग्रेज अधिकारियों ने मेरे पिता जी को बुला कर कहा कि यदि वे व्यक्तिगत मुचलका दे दें तो इन्हे छोड़ दिया जायगा। उस समय पिताजी ने स्पष्ट शब्दों मे कह दिया था—"मैं अपने लड़के की मर्जी के खिलाफ कुछ नही कर सकता। मै अपना कर्त्तव्य पालन करता हूँ, वह अपना कर्त्तव्य पालन करता है।" तब वे दोनों अंग्रेज अधिकारी पिता जी को मेरे पास ले आये। उनकी आपसी बातचीत को जाने बिना मैंने पिता जी से कहा था—"मै अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूँ। आप अपने कर्त्तव्य का पालन करें।"

उन दिनों जिला राजनीतिक परिषद् के सिलसिले मे मेरे घर पर श्री राघवेन्द्रराव तथा परिषद् के दूसरे बहुत से प्रतिनिधि ठहरे हुए थें। पिताजी ने इन लोगों से भी कहा कि आप लोग किसी संकोच मे न पड़िये। आप अपना काम कीजिये। मेरी अनुपस्थिति मे पिता जी ने उन लोगो का आतिथ्य-सत्कार मुझ से ज्यादा किया और उन लोगों को यह मालूम न होने दिया कि मेरी गिरफ्तारी से उन्हे किसी बात की चिन्ता है।

इस घटना के दो वर्ष बाद सन् १९२४ मे उनका स्वर्गवास होगया।

* * *

मेरे जीवन मे कुछ पुस्तकों ने भी विशेष प्रभाव डाला। शैशव एवं बाल्यावस्था मे सबसे पूर्व मेरे जीवन पर प्रभाव डालने वाली पुस्तक रामायण थी। यह ग्रंथ भारत की अमूल्य सांस्कृतिक थाती है। इसने कोटि-कोटि भारतीय-जनों के जीवन को सुख, शान्ति और सन्तोष प्रदान दिया है। गांव-गाव की चौपालों में, मोहल्ले-मोहल्ले और घर-घर में प्रतिदिन श्रद्धा-भक्ति से रामायण की चौपाइयाँ गायी जाती है। मै कह सकता हूं कि जीवन के प्रभात में मिली इस पुण्य प्रेरणा ने अनजाने ही मेरी शक्ति और साधना के आदि स्रोत का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। समय-समय पर आज भी अनेक चौपाइयां आकर मेरे स्मृति-पटल पर मंडराने लगती है और मेरे मानस को एक नई स्फूर्ति और चेतना दे जाती हैं। मुझे अपने जीवन मे आयी प्रत्येक उलझन का सामना करने के लिये रामायण से प्रेरणा मिली है और संकट के क्षणों में अपना मार्ग बनाने व आगे बढ़ने में इससे उत्साह मिला है।

बाल्यावस्था के संस्कार जीवन भर स्थिर रहते है। मेरे बचपन के धार्मिक संस्कार मेरे जीवन मे आज भी स्थिर हैं। हम उन दिनों रामायण पढ़ते थे। तुलसीकृत रामायण तो घर में पढी जाती थी, साथ ही मैं बड़े मनोयोग से गद्य मे रामायण की कथा भी पढ़ा करता था। रामायण के संस्कारो ने मुझे रामलीलाओं और कृष्णलीलाओं

के प्रति भी आकर्षित किया। कृष्णलीला की रुचि ने मुझे 'प्रेमसागर' पढने में प्रवृत्त किया। रामायण से यदि मुझे जीवन का आदर्श समझने की सीख मिली तो गीता में मुझे जीवन का वास्तविक दर्शन हुआ। लोकमान्य तिलक के 'गीता रहस्य' के पढने व अध्ययन का अवसर मिलने के पूर्व ही मै लखनऊ के नवलकिशोर छापाखाना की छपी गीता का प्रतिदिन पाठ किया करता था। मै इन ग्रन्थो को जितना गुनता था उतना ही रस मुझे मिलता था। इन्ही दिनो मुझे अपने मित्र स्व श्री माधवराव सप्रे द्वारा अनूदित लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की प्रसिद्ध कर्मयोगिनी टीका "गीता रहस्य" को पढने और समझने का अवसर मिला। मेरा विश्वास है कि गीता का जीवन-दर्शन प्रत्येक जाति, धर्म, देश और काल को अमर सदेश देता है। यह ग्रन्थ-रत्न मानव समाज की अक्षय सम्पत्ति है।

किशोरावस्था में मैंने रामायण और महाभारत से मन देख लिया था। यौवन के प्रारम्भ में ही मै हिन्दू जीवन की बुद्धिमङ्गत व्याख्या ढूढने के लिये लालायित हो उठा। इन्ही दिनो मेरे हाथो में थियोसाफिकल सोसायटी की अग्रेजी मासिक पत्रिका "आर्य बाल बोधिनी" (Arya Bal Bodhini) आयी। एनी बीसेण्ट की प्रभावशालिनी लेखनी ने जल्दी ही मुझे मुग्ध कर दिया और मै इस मासिक पत्रिका का नियमित पाठक बन गया। उनकी "आइडिया आफ हिन्दू यूनिवर्सिटी" शीर्षक लेखमाला से मुझे हिन्दू दर्शन का नवीन वैज्ञानिक स्वरूप देखने और समझने का अवसर मिला। उन दिनो विदेशी दासता में जकडे हम भारतीय अपने हीन भाव के कारण अपनी प्रत्येक भारतीय परम्परा व रीति को तिरस्कृत एव हीन समझने लग गये थे। एनी बीसेण्ट की लेखमालाओ ने मेरे तथा मेरे जैसे जिज्ञासु व्यक्तियो की आखें खोल दी और हम लोग अपने देश और सस्कृति के प्रति गर्व करने लगे। लेडबिटर की "हिडन साइड आफ थिंग्ज "—"वस्तुओ का अदृष्ट पक्ष" तथा "एन्शियेन्ट विजडम"—'पुरातन ज्ञान' नामक एनी बीसेण्ट की पुस्तको ने मुझ पर विशेष प्रभाव डाला। रामायण और गीता का पाठ करते हुए जिन सिद्धान्तो की शिक्षा मैने ग्रहण की थी उन्ही की बुद्धिमङ्गत व्याख्या पढ कर मुझे हार्दिक प्रेरणा मिली। इन्ही दिनो मुझे कई दूसरी थियोसाफिकल पुस्तकें पढने का अवसर मिला। इन पुस्तको में एनी बीसेण्ट द्वारा हिन्दू कालेज के लिये लिखी गयी प्राइमरें, एल्काट और मैडम ब्लेवेट्स्की की "सिक्रेट डाक्टरिन," डा भगवानदास की "लाज आफ मनु इन दि लाइट आफ थियासोफी" नामक पुस्तको ने मेरे ऊपर इतना अधिक असर डाला कि मै सन् १९०३ में थियोसाफिकल सोसायटी का सदस्य भी बन गया। सोसायटी के एक लेख "व्हाट इज हप्पीनेस कनसिस्ट इन" में बतलाये इस सिद्धान्त को कि 'इन थॉट, वर्ड एण्ड डीड, बी लीस्ट हार्मफुल एण्ड मोस्ट हेल्पफुल टू आल लिविंग बीइङ्ग्स' अर्थात् मन, वाणी और क्रिया से सभी जीवित प्राणियो के लिये न्यूनतम हानिप्रद और अधिकतम सहायक बनो।"— मैने अपने जीवन का गुरुमन्त्र स्वीकार कर इसके अनुसार स्वय को ढालने का प्रयत्न किया। भारत के राष्ट्रीय एव बौद्धिक जागरण में एनी बीसेण्ट तथा थियोसाफिकल विचारधारा का विशेष महत्त्व रहा है। इस बौद्धिक जागरण की पृष्ठभूमि में एनी बीसेण्ट और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के "होमरूल" आन्दोलन का जन्म हुआ और परिणामस्वरूप राष्ट्र में उस अदम्य राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ जिससे स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य में बडी सहायता मिली।

मेरी सास्कृतिक एव धार्मिक विचारधारा को इस प्रकार बुद्धिसगत व्याख्या मिली और राष्ट्रीय जागरण के लिये उचित प्रेरणा। इसी समय एक बहुत ही प्रभावपूर्ण पुस्तकमाला पढने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। रेवरेण्ड डी आल्टन की आठ जिल्दो में लिखी गयी ऐतिहासिक पुस्तक 'हिस्ट्री आफ आयरलैण्ड' का मेरे ऊपर विशेष प्रभाव पडा। एक छोटे तथा अदम्य भावना वाले राष्ट्र के अपूर्व त्याग की रोमाचक कथा मेरे हृदय पर सदा के लिये अङ्कित होगयी। इस अपूर्व ग्रन्थ का अध्ययन करने के बाद मुझे अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण का निर्माण करने के लिये दो मौलिक तत्त्व प्राप्त हुए। पहला मौलिक तत्त्व मुझे यह मिला कि कोई राष्ट्र अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिये दूसरे राष्ट्र को अपनी अधीनता में रखने के लिये कितने अत्याचार कर सकता है, वह अपने इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये विजित देश की भाषा, सस्कृति और धर्म का अपहरण कर पूर्णतया उसे आत्मसात् करना चाहता है। देश की भाषा, सस्कृति और धर्म को नष्ट कर अग्रेजो ने आयरलैण्ड पर ऐसे-ऐसे विचित्र व भयकर अत्याचार किये, जिन्हें पढ-सुनकर रोमाच हो जाता है।
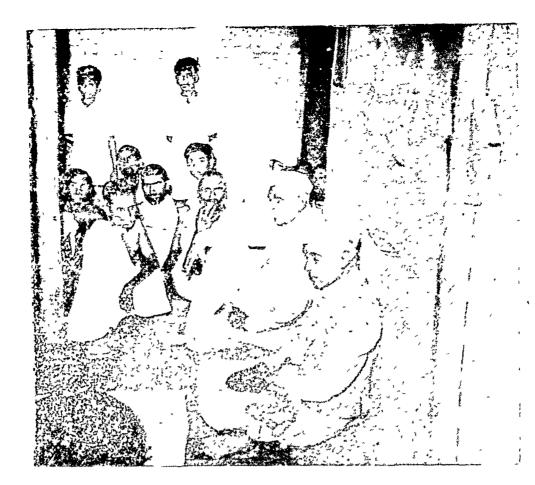
शुक्लजी महात्माजी के निधन के पश्चात्
सेवाग्राम की कुटिया में पंडित नेहरू के साथ

शुक्लजी तिलवारा घाट में महात्माजी की अस्थियों का विसर्जन करते हुये
प्रांताध्यक्ष बाबू गोविंददास जी के साथ

जनभारत ग्रन्थालय के उद्घाटन प्रसंग पर सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ शुक्लजी और अन्य कार्यकर्ता
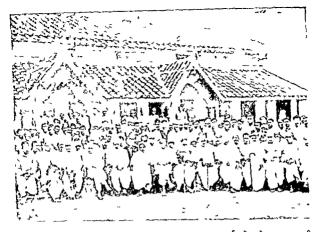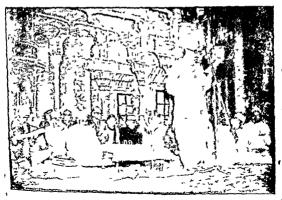
शुक्लजी नागरी प्रचारिणी सभा की हीरक जयंति के अवसर पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन का उद्घाटन भाषण करते हुए

कुछ विशिष्ट प्रसङ्गों में शुक्लजी

गोल्फ खेलते हुए

राज्यपाल डा. पट्टाभि के साथ मंत्रियों की क्रिकेट टीम के कैप्टन के रूप में

पौत्र के साथ मनोरंजन
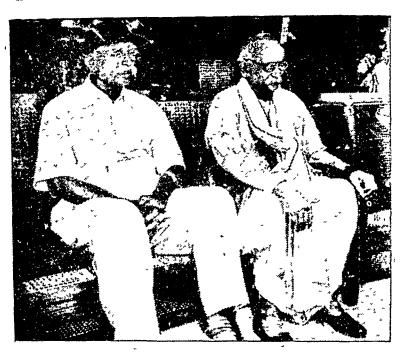
पिस्तौल के साथ

शुक्लजी गोंदिया में महात्मा गाधी की मूर्ति का अनावरण करते हुए

शुक्लजी भारत के तत्कालीन सेनापति जनरल करिअप्पा के साथ

आयरलैण्ड का रोमांचक इतिहास पढ़ कर दूसरा तत्त्व मुझे यह प्राप्त हुआ कि पराधीन राष्ट्र के लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये कितने असीम कष्ट सहन कर सकते है। आयरलैण्ड का ७५० वर्षो का स्वातंत्र्य प्राप्ति का इतिहास इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है। आयरिश जनता ने अपूर्व देश-प्रेम, मनोबल, त्याग और शौर्य का प्रदर्शन किया था। आयरिश जनता का स्वतन्त्रता का आन्दोलन हम भारतीयों के लिये अमेरिकन क्रान्ति से भी अधिक प्रेरणादायक बन गया था। उसने हमे सिखाया कि बड़े से बड़ा पशुबल भी किसी राष्ट्र की जनता के मनोबल या निष्ठाबल को नही झुका सकता। मुट्ठी भर आयरिश जनता ने ऐसे कष्ट सहन किये जिनकी आज कल्पना नही की जा सकती। आयरिश स्वातन्त्र्य-योद्धाओं का उदाहरण अनुकरणीय था और हमारे लिये पथ-प्रदर्शक बन गया था। उनका संगठन और अनुशासन विलक्षण था। सारे देश में एक ही लगन थी, एक ही धुन थी कि विदेशी सत्ता से अपने को कैसे मुक्त किया जाय। हर आयरिश बालक प्रत्येक क्षेत्र मे इसी लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये दीवाना बन उठा था।

अपने राष्ट्र, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिये उन्होने सारे देश में अलख जगा दी थी और सब सम्भव उपायों का अवलम्बन कर उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता, सस्कृति, धर्म और भाषा की सुरक्षा की। आयरलैण्ड में रोमन कैथोलिक अपने धर्म का प्रचार नही कर सकते थे। आयरिश पादरी यूरोप में अपनी धार्मिक शिक्षा पूर्णकर देश मे आते थे और बढ़ईगिरी, लुहारी आदि के विविध उद्योग-धन्धे करते थे। साथ ही मौका पाते ही वे अपने धर्म का प्रचार भी किया करते थे। जासूसों के डर से वे खुली सभाओं मे अपना प्रचार नही कर सकते थे, तीन ओर से पर्दे खड़े कर के पर्दे की ओट मे वे खेल के मैदान मे सभा कर के भाषण देते थे। मरने से पूर्व रोमन कैथोलिक लोग पादरी के सम्मुख अपने पापों को स्वीकार (confession) करते है। यह कार्य आयरलैण्ड में कानून द्वारा निषिद्ध था। बहुत बार ऐसे व्यक्ति को पकड़ने पर उसे टीन के डामर भरे जूते पहनाते, सिर पर गरम डामर भरी केटली रख और उसके पैरों के नीचे आग जला कर तपाते—जब पैरों का मांस गल-गल कर हड्डी रह जाती तब ऐसे देशसेवक को अपना अपराध मानने के लिये कहा जाता, पर इस पर भी जब वह नही मानता, तो भीषण कालकोठरी मे रख कर उसे फांसी की सजा दे दी जाती थी। इतना सब करने पर भी आयरिश लोगो की धर्म की भक्ति ऐसी अटूट थी कि जब अंग्रेजो ने गणना करवायी, तो उन्हे मालूम हुआ कि उन दिनों उस छोटे से देश मे ३,००० धर्म-प्रचारक कार्य कर रहे थे। अंग्रेजों ने देश पर अंग्रेजी भाषा लादने की भी भगीरथ चेष्टा की भी और सन् १९१० मे स्थिति ऐसी आ गयी थी कि केवल २१,००० व्यक्ति ऐसे थे, जो केवल आयरिश भाषा जानते थे, और शेष द्विभाषाभाषी हो गये थे। परन्तु आयरिश देशभक्तों ने अपनी मृतप्राय भाषा का पुनरुद्धार किया और अन्त मे देश को भी स्वतन्त्र किया। इस आन्दोलन में नवयुवकों का बड़ा हाथ था। बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान उनके लिये बड़ा नही था। आयरिश जनता ने अपने त्याग और बलिदान से संसार भर के पराधीन राष्ट्रो के सामने एक श्रेष्ठ उदाहरण रख दिया है। हमारे जैसे प्राचीन और विशाल राष्ट्र की जनता को, जो कि सात समुद्र पार के अंग्रेजो की राजभक्ति की प्रतिज्ञा लिया करती थी, आयरलैण्ड के उदाहरण ने आत्म-ग्लानि से भर दिया और आत्म-निरीक्षण की प्रेरणा दी। आयरलैण्ड के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास से मैने अनेक पाठ सीखे और अपने क्षेत्र मे उनके सफल प्रयोग का प्रयत्न किया।

* * *

महापुरुषों से प्रेरणा—मेरे जीवन में जहां तक उक्त महान ग्रन्थों ने प्रेरणा दी, वहा कुछ महापुरुषों ने भी मेरे जीवन को अपने व्यक्तित्व तथा सन्देश से अनुप्राणित किया है। जब मैं नागपुर मे बी. ए. की पढ़ाई करने के लिये १८९५ में गया तब वहां गणेशोत्सव देखा। उस समय गणेशोत्सव केवल धार्मिक उत्सव नही रह गया था। गणेशोत्सव को सामूहिक व सार्वजनिक रूप से मनाने का प्रचार नागपुर मे ही नही समस्त महाराष्ट्र व समीपस्थ प्रदेशों मे किया जा रहा था। इस प्रकार के गणेशोत्सव को जब मैंने पहली बार देखा और उसमे चाचर के डण्डों से क्रमबद्ध होकर खेलते एवं जोशीले तथा उत्साहवर्द्धक राष्ट्रीय गाने गाते हुए बालकों की टोलियों को देखा तो सहसा मेरा युवक हृदय उनकी ओर खिंच गया। इन जोशीले गानों में स्वदेशाभिमान की भावनायें उत्पन्न करने की शक्ति थी। इन गानों मे बतलाया जाता था कि जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी ने देश मे स्वतन्त्र

राष्ट्र कायम करने का प्रयत्न किया, उसी प्रकार देश के युवकों को भी सन्नद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिये। इन उत्सवों एव नवयुवकों के प्रदर्शनों ने मेरे युवक मन पर विशेष प्रभाव डाला। गणेशोत्सव को सामूहिक राष्ट्रीय उत्सवों के रूप में उदलने का श्रेय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को ही था। कुछ दिनों के बाद लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक पर सरकार ने राज-द्रोह का मुकदमा चलाया। मुकदमा अग्रेज न्यायाधीश स्ट्रेची के सामने पेश था। इस मुकदमे का मेरे तथा मेरे जैसे विद्यार्थियों के समाज पर बहुत गहरा असर पड़ा। रानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के उत्सव पर पूना में रण्ड और अयस्ट की हत्या के अभियोग में चाटू व युग्रो पर जो मुकदमा चला, उसने भी हम सब का ध्यान खींचा। लोकमान्य तिलक के पत्र "केसरी" के लेखों ने भी मेरे तथा युवकों के मानस को बड़ा प्रभावित किया। स्वर्गीय माधवराव सप्रे द्वारा अनूदित लोकमान्य तिलक के प्रसिद्ध ग्रन्थ "गीता रहस्य" तथा स्वदेशी आन्दोलन व बहिष्कार सम्बन्धी श्री सप्रे के ग्रन्थों ने हमारे हृदयों को विशेष आकृष्ट किया। बगाल के बगभग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन का भी इस जन-जागरण में विशेष योग रहा।

बगभग आन्दोलन के दिनों में मेरे ऊपर प्रसिद्ध भारतीय विचारक योगी श्री अरविन्द द्वारा 'देशवासियों के नाम' लिखी अपील का भी विशेष प्रभाव पड़ा था। उक्त आन्दोलनों एव विचारों से हम लोग क्रमश स्वातन्त्र्य आन्दोलन में दिलचस्पी लेने लगे थे। उन दिनों हम लोगों की मनोवृत्ति भी हिंसा की तरफ अधिक झुकी थी। युवावस्था में थियोसाफिस्ट विचारकों व प्रचारकों से भी प्रभावित हुआ। महामना पण्डित मदनमोहन जी मालवीय से भी मेरा सम्पर्क सुदृढ हुआ। सन् १९१५ की बम्बई काग्रेस के अवसर पर दो दिन तक विषय निर्धारिणी समिति में उनके साथ सम्पर्क का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ। बाद में जब मेरे तथा निकटस्थ सम्बन्धियों के बच्चों ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करनी प्रारम्भ की तो मुझे महामना मालवीय जी से निकट सम्पर्क का सुयोग मिला। मैं उनकी विद्वत्ता, सरलता, सघटन-शक्ति और भारतीय सस्कृति के प्रति उनकी अपूर्व निष्ठा से बहुत अधिक प्रभावित रहा हूँ। गोहाटी काग्रेस में मुझे पुन उनके साथ घनिष्टता बढ़ाने का सुयोग मिला। उस अवसर पर मैं उनकी आत्मीयता से विशेष प्रभावित हो गया था। काग्रेस के मच पर पण्डित मदनमोहन मालवीय के भाषण सुन कर हम लोग मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे।

मेरे जीवन पर जिन महापुरुषों के व्यक्तित्व एव सन्देश ने सबसे अधिक और चिरस्थायी प्रभाव डाला है, उनमें महात्मा गाधी प्रमुख है। जहा तक मुझे स्मरण है कि सन् १९०४ की बम्बई की काग्रेस में मुझे पहली बार बैरिस्टर गाधी जी के दर्शन हुए थे। वे काग्रेस में दक्षिण अफ्रीका से आये थे और दक्षिण अफ्रीका की परिस्थिति के विषय में कुछ कहना चाहते थे। उन दिनों माइक्रोफोन थे ही नही, गाधी जी का भाषण बहुत कम लोगों को सुनाई दिया, बड़ा हल्ला-गुल्ला हुआ, उन्हें अपना भाषण बन्द करना पड़ा। उनकी काली अचकन, शेरवानी और शिमले वाली काली पगड़ी की मूर्ति मेरी आखों के सामने आज भी मौजूद है। मुझे जहा तक स्मरण है, उस समय गाधी जी ने लोगों से कहा था कि "अभी तुम मुझे सुनो या न सुनो, पर एक समय आयेगा, जब तुम्हें सुनना पड़ेगा।"

उसके पश्चात् मैंने गाधी जी को सन १९१५ में बम्बई में ही काग्रेस के अधिवेशन के समय फिर देखा। उन दिनों मारवाडी विद्यालय के ऊपर की मजिल के कमरों में उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश के अनेक सूट-बूट धारी प्रतिनिधि ठहरे हुए थे और नीचे के एक कमरे में साबरमती आश्रम के अनेक छोटे-छोटे बच्चों के साथ गाधी जी और श्रीमती कस्तूरबा ठहरी हुई थी। हम लोग ८ बजे सुबह उनके भजन सुनते थे। हम यह भी देखते थे कि कस्तूरबा खाना बना कर बड़े प्रेम से बच्चों को खिलाती थी और गाधी जी कच्छी पगड़ी लगाये, बारह बण्डी और धोती पहने हुए फर्श पर बैठे रहते थे और जिन्हें मिलना होता था, वही उन से मिलते रहते थे।

सन् १९२० की कलकत्ता की विशेष काग्रेस से पूर्व महात्मा गाधी रायपुर आये थे। इससे पूर्व मैं कोट पतलून पहनता था, हैट नही लगाता था, फेंटा बाधता था। मैंने अपने अग्रेजी लिबास को बदल कर हिन्दुस्तानी लिबास पहना—शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा। पर यह वेष बहुत दिनों तक नही चला। सन् १९२० के दिसम्बर मास

मे कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में हुआ। उसके पश्चात् तो खादी की वात चल पड़ी और मैंने पायजामा, शेरवानी छोड़ कर खादी की धोती, कुरता और कोट तथा खादी का फैंटा पहनना प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों मेरे पहनने के लायक धोती तो मिलती ही नही थी,इसलिये वीच मे जोड़ कर धोती वनानी पड़ती थी और वह धोती भी इतनी मोटी होती थी कि डर होता था कि कही खिसक न जाय, क्योंकि उसने तो ढाका की मलमल और अहमदावाद की पतली धोतियों का स्थान लिया था। एक अंग्रेज़ ने जो कि राजनान्दगांव मिल का मैनेजर था और जिसके साथ हम क्रिकेट, आदि खेलते थे, एक वार मुझे खादी की वेषभूषा पहने देख कर कहा था—"तुम इसे कैसे पहन सकते हो?" उस समय मैंने उत्तर दिया था—"यह तो देश की स्वतन्त्रता मिलने का वाना है और जब तक देश से तुम्हारा राज़ नही उठ जाता तब तक यह वेषभूषा नहीं बदल सकती।"

सन् १९२१ मे गांधी जी की वेषभूषा मे बड़ा परिवर्तन आ गया था। उन्होने घुटनों तक की छोटी धोती, और गाधी टोपी पहननी शुरू कर दी थी। अहमदावाद की कांग्रेस मे उन्होंने स्वतन्त्रता का विगुल फूका था, इससे हम देश-वासियों मे नवीन उत्साह का संचार हो गया था। देश के सविनय अवज्ञा भंग आन्दोलन (असहयोग) का नेतृत्व ग्रहण करने वाले प्रस्ताव को रखते हुए गांधी जी ने कहा था—"यह सत्ता को उद्धत चुनौती नहीं है, परन्तु यह औद्धत्य (घमण्ड) से परिपूर्ण सत्ता को एक विनम्र चुनौती है।" (This is not an arrogant challenge to authority; it is an humble challenge to authority enshrined in arrogance.)

राजनीतिक जीवन में मै जितनी तेजी से आगे वढ़ रहा था, उतनी तीव्रता से गाधी जी से मेरा सम्पर्क वढ़ता गया। वैसे तो गाधी जी से सम्पर्क एवं भेट के वहुत से अवसर मिले, परन्तु १९३३ की हरिजन यात्रा के समय उनके साथ यात्रा की कुछ ऐसी मधुर स्मृतियां है, जो आज भी मेरे हृदय-पटल पर अंकित हैं। महात्मा गाधी जी के महाकोशल मे हरिजन कोष संग्रह सम्वन्धी सारे दौरे की जिम्मेदारी ठक्कर वापा मेरे ऊपर डाल कर दिल्ली चले गये। समय कम था और गांधी जी की मांग थी कि उन्हें प्रतिदिन ३ हजार रुपये मिलने चाहिये। प्रयत्न करने पर अकेले रायपुर मे ही १४।। हजार रुपये एकत्र किये गये और समस्त महाकोशल मे ७४ हजार रुपये एकत्र कर हमने गांधी जी की मांग को पूरा कर दिया। इसी हरिजन दौरे के सिलसिले मे जव गांधी जी सागर जिले के वरमान घाट पर पहुंचे तो वहां हुई एक घटना वड़ी स्मरणीय है।

बरमान घाट पर नौका चलाने वाले मल्लाहों ने गांधी जी को उस समय तक नौका पर चढाने से इन्कार कर दिया जव तक गांधी जी अपने पैर उन लोगों से न धुलवा लें। गाधी जी ने कहा कि वे ऐसा काम नही कर सकते, पर मल्लाह भी अड गये और उन्होंने गांधी जी के चरण धुलाये विना उन्हे नौका पर चढ़ाना स्वीकार नही किया। अन्त मे, हम लोगों ने भी गांधी जी से प्रार्थना की कि जव इन सरल व सीधे सादे लोगो का इतना अधिक आग्रह है, तो आप इन से पैर धुलवा लीजिए। लाचार होकर गांधी जी को इन मल्लाहों से अपने पैर धुलवाने पड़े। वरमान घाट की इस घटना से मेरी आंखो के सामने श्री राम के पैर धुलवा कर ही नौका पर गंगा जी पार करने देने की रामायणकालीन केवट की कहानी वरबस याद आ जाती है।

इसी हरिजन दौरे के समय की एक दूसरी घटना है। वर्णाश्रम स्वराज्य संघ का स्वामी लालनाथ हम लोगो का पीछा करता था। वह जगह-जगह हमारे रास्ते पर अपने आदमियों को लेटा देता था। इसके इस दुराग्रह की रोक-थाम करने के लिये हम गांधी जी के आगे पीछे एक-एक मोटर मे ५-५ स्वयंसेवक रखते थे जो स्वामी लालनाथ व उनके साथियो द्वारा रास्ता रोकने पर उन्हें उठा कर रास्ते से हटा देते थे। हम इन लोगो की गड़बड़ से दौरे के कार्यक्रम को लगभग निर्विघ्न रखने में सफल हो गये थे। जवलपुर में अवश्य एक दुर्घटना होते-होते वच गयी। वहां पर गांधी जी को जिस ठिकाने पर ठहराया गया था, उसका रास्ता बहुत तंग था (श्री ब्योहार राजेन्द्र सिह जी का साठिया कुआँ के समीप वाला घर), वहां पर भी स्वामी लालनाथ ने लौटते समय अपना विरोध प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया था। हमारे सौभाग्य से महात्मा गांधी की मोटर पहले ही निकल चुकी थी और वे स्टेशन पहुँच गये थे। कुछ उत्तेजित लोगों

न स्वामी लालनाथ को मारा जिससे उनके सिर से थोड़ा खून बह निकला। स्वामी लालनाथ इसी भेस में सीधे स्टेशन पहुँच गये। मैं लालनाथ को अलग डिब्बे में ले गया और उनका वक्तव्य लेकर उस पर दस्तखत ले लिये। उनसे पूछा कि उनको मारने वाला में क्या कांग्रेस जन थे? उन्होंने उत्तर दिया, नही। हम लोगो ने बड़े प्रयत्न से इस सकट का निवारण किया। जैसे-तैसे महात्मा गाधी की यह यात्रा बड़ी ही निर्विघ्न एव परिणाम में सन्तोषजनक रही। बापू का दौरा भाभी तक मेरे सुपुर्द कर ठक्कर बापा दिल्ली पहिले ही चले गये थे। इस दौरे में १५ दिन २४ घण्टे साथ रहते रहते बापू के स्नेह का बन्धन बहुत बढ़ गया था। जब मैंने उन्हें भाभी में रेल में बैठाया तब उन्होंने बड़े स्नेहपूर्वक अपनी प्रसन्नता प्रकट की। कुमारी मीरा बेन तथा स्वर्गीय ठक्कर बापा ने इस दौरे की सफलता पर हमें बधाई दी। इस दौरे में हमें जहा प्रान्त भर में जन-सम्पर्क का सुनहरा अवसर मिला, वहा हम लोगो को रात दिन महात्मा जी के साथ रहने से उनके महान् गुणो एव विशेषताओं को देखने व समझने का भी अवसर मिला। मैंने देखा कि उनका जीवन घटी के काटा की तरह नियमित एव व्यवस्थित चलता है। वे प्रात ४ बजे उठ जाते थे और प्रार्थना से पहले और पीछे आवश्यक पत्रो का जवाब लिखते या लिखवा देते थे। वे आये हुए पत्रो का सामान्यतया सक्षेप में उत्तर लिखा दिया करते थे। आवश्यक एव महत्त्वपूर्ण पत्रो का ही वे विस्तार में उत्तर लिखा करते थे, अन्यथा वे सक्षेप में अपना पत्र-व्यवहार करते थे। हमने यह भी देखा कि वे प्रत्येक आयी हुई चिट्ठी को पढते थे और उसके महत्त्व को देखते हुए उसका बड़ी सावधानता से जवाब लिखाते थे। मैंने महात्मा गाधी जी में दूसरी बात जो देखी, वह यह थी कि वे अपना सारा सामान बहुत ही व्यवस्थित रखते थे। उनके आवश्यक कागजपत्र एव निजी पोर्टफोलियो एक थैले में समाये रहते थे। दिन के समय वह थैला उनका चलता फिरता दफ्तर था और रात के समय वही थैला उनके तकिये का काम करता था। इसी के साथ हमने यह भी देखा कि महात्मा गाधी जी और उनके दल वाले बहुत ही कम चीजो से अपना काम चला लेते थे। स्वच्छता, मितव्ययता और व्यवस्था उनके जीवन में एक रस हो गयी थी। तीसरी बात हमने यह देखी कि महात्मा गाधी ने अपने शरीर को इतना अधिक नियमित एव नियन्त्रित कर लिया था, यहा तक कि उनका नीद पर बड़ा नियन्त्रण हो गया था। काम करते-करते अथवा सफर करते-करते ५—१० मिनट का समय पाकर एक झपकी ले लिया करते थे। इस झपकी के बाद वे पूरी ताजगी के साथ अपने काम में लग जाते थे। वे जितने मिनट के लिये सोते थे, उतने मिनट बाद बिना किसी की मदद के या अलार्म के उठ जाया करते थे और अपने काम में पूरे दत्तचित्त हो कर लग जाते थे।

महात्मा गाधी के उच्च जीवन से मैंने बहुत कुछ सीखा, उनका 'सरल जीवन और उच्च विचार' मुझे सदा प्रेरणा देते थे। मन्त्री बनने के बाद मेरा उन से सम्पर्क अधिक घनिष्ट ही होता गया। यह मेरा सौभाग्य था कि महात्मा गाधी का हेड क्वार्टर वर्धा एव सेवाग्राम में था। हम लोगो को जब भी जरूरत होती थी, अथवा हमें किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पडता था, तो हम उनके पास पहुँच जाते थे। मुझे उन तक पहुँचने के लिये किसी कठिनाई का सामना नही करना पडता था। वे मुझे सदा उपयोगी, स्पष्ट परामर्श देते थे। बड़े से बड़े सकट में मुझे उनकी सलाह बड़ी उपयोगी सिद्ध होती थी। उनका व्यवहार बड़ा मृदु, बोल बड़े मधुर और सीख बड़ी गहरी होती थी। जब तक वे सेवाग्राम रहे मुझे सदा उनका सहारा मिलता रहा। सन् १९३७ ई० में महात्मा जी ने अपनी नयी तालीम (Basic Education) की घोषणा की। लगभग उसी समय मेरी विद्यामन्दिर की भी घोषणा हुई। मैंने महात्मा गाधी की योजना का लाभ विद्यामन्दिर योजना के लिये उठाया और डा० जाकिर हुसेन के सभापतित्व में एक समिति नियुक्त की, जिसने विद्यामन्दिर का पाठ्य क्रम बना दिया। महात्मा जी ने मेरी योजना को पसन्द किया था। मुझे वह दिन याद है जब महात्मा जी ने विद्यामन्दिर के पाठक-विद्यार्थियो को आशीर्वाद दिया था। जब विद्यार्थियो ने उनके सम्मुख शपथ ली थी कि वे २१ वर्ष तक विद्यामन्दिर के पाठक का काम करेंगे। बापू ने उन्हें चेतावनी दी थी कि वे शपथ लें तो उसका पालन करें। उसी समय जहा तक मेरा ख्याल है विद्यामन्दिर की एक प्राथमिक शाला (प्रक्टिसिंग स्कूल) की नींव वर्धा नार्मल स्कूल के समीप बापू ने डाली थी। खेद है कि हम लोगो के मन्त्रिपद से त्याग पत्र देने के पश्चात् ही ब्रिटिश शासन ने उसका नाम व निशान भी मिटा दिया।

पं. रविशङ्करजी शुक्ल मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल
श्री मंगलदास पकवासा को विदा देते हुये
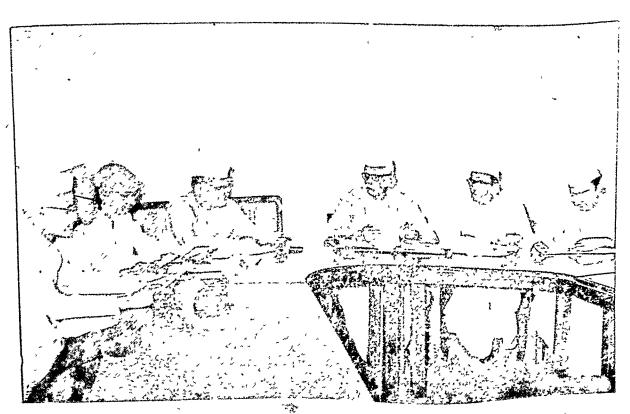
बैठक में मुख्यमंत्री पं. रविशङ्करजी शुक्ल
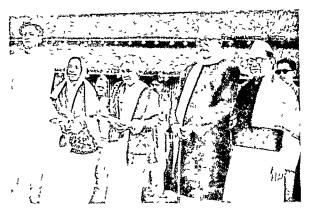
शुक्लजी सेवाग्राम में श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित, श्रा०श्रीमन्नारायण एव जानकीदेवीजी बजाज के साथ

"शुक्लजी "ायगढ में क्रिराडीमल ट्रम्ट के विविध शिल्प विद्यालय का शिलान्यास करते हुए
सेठ क्रिरोडीमलजी एव पाटूरामजी के साथ

राजनीतिक जीवन में कांग्रेस के अध्यक्ष एवं प्रधान मन्त्री के रूप मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू से सम्पर्क के बहुत अवसर मिले हैं। उनके निकट सम्पर्क से उनकी विद्वत्ता, उनकी शालीनता एवं दृढ़ चरित्र का परिचय हुआ। वैसे तो दर्जनों बार उनके साथ रहने तथा यात्रा करने का सुयोग मिला है, परन्तु उनके साथ की दो प्रारम्भिक यात्राओं की स्मृति हृदय पर आज भी अंकित है। पहिली यात्रा पहिले चुनाव प्रचार के सिलसिले मे हुई थी। फ़ैजपुर कांग्रेस के बाद उन्होंने मुझे सूचित किया था कि वे चुनाव प्रचार के लिये महाकोशल में दो दिन के लिये आना चाहते है उन दिनो विन्ध्यप्रदेश के कप्तान अवधेशप्रतापसिंह महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। हमे केवल ४ घंटे मे ही सब प्रबन्ध करना था, इस बीच मैंने इटारसी, होशंगाबाद, पिपरिया, मटकुली, छिन्दवाड़ा होते हुए यथासम्भव अधिक स्थानों पर दौरे के कार्यक्रम की व्यवस्था की। दूसरे स्थानों के लिये मैंने फोन या तार द्वारा सब आवश्यक प्रबन्ध करवाया। मैंने दौरे के लिये इटारसी से एक मोटर टैक्सी का प्रबन्ध किया था, पर पहले ही दिन के मेरे तूफानी दौरे से ड्राइवर घबरा गया और उसने दूसरे दिन के लिये चलने से इन्कार कर दिया। होशगाबाद पहुंच कर मुझे पता लगा कि श्री शालिग्राम द्विवेदी, वकील के यहां नयी मोटर है। मै उनके यहां गया। वे पूजा कर रहे थे, मै सीधे उनकी पूजा की जगह पर ही चला गया। उन्होंने पूछा कैसे आये ? मैंने उनसे कहा कि एक विशेष काम से आया हूं। वायदा करो कि उसे पूरा करोगे। उन्होंने कहा कि क्या चाहिये? मैंने उन्हें नेहरू जी के दौरे का हाल सुनाते हुए अपनी कठिनाई बतलाई और उनकी मोटर मागी। उन्होने सहर्ष अपनी मोटर देने का वचन दिया। मोटर आने मे थोड़ा विलम्ब था इसलिये टैक्सीवाला मोटर लेकर चला। शोभापुर पहुंचे। पण्डित जी व्याख्यान देने लगे कि ड्रायवर ने आगे मोटर ले चलने से इन्कार कर दिया मैंने उस ड्रायवर की बड़ी खुशामद की, उसे सब तरह से मनाने की कोशिश की पर वह किसी भी हालत मे आगे चलने के लिये तैयार नहीं हुआ। ऐसे समय मै बहुत ही असमंजस मे पड़ गया कि अब क्या होगा ? पण्डित जी का व्याख्यान समाप्त होने को था, साथ आया हुआ टैक्सी ड्रायवर आगे चलने के लिये तैयार नही था, वहां बस्ती में भी किसी गाड़ी के मिलने की उम्मीद नही थी। मै मन मे बहुत ही परेशान हो रहा था, इतने मे ही शालिग्राम जी की मोटर लेकर शम्भूदयाल मिश्र आगये। मेरा जी ठिकाने आगया। अब हम इस नयी मोटर से आगे चले।

तामिया के पास बीच बियावान जंगल मे मोटर की लाइट खराब हो गयी। देरी होने से पण्डित जी बेचैन होने लग गये। कड़ी ठण्ड के दिन थे, फिर तामिया ठण्डी जगह, सुनसान बियावान रास्ता, मोटर बीच रास्ते मे ठप्प हो गयी। पण्डितजी की बेचैनी बढ़ रही थी, पर मोटर का ड्रायवर होशियार था, उसने कुछ ही मिनटों मे फ्यूज ठीक कर बत्ती की रोशनी ठीक कर दी। हम रात को १२ बजे छिन्दवाड़ा पहुंचे। उस ठण्ड के मौसम मे भी जनता बैठी हुई पण्डित जी की प्रतीक्षा कर रही थी। पण्डित जी ने अपना भाषण दिया, भोजन कर हम लोग सो गये। सुबह ५ बजे हम सब फिर उठ गये और पण्डित जी के साथ दौरे पर आगे चल पड़े। इस यात्रा की दो उल्लेखनीय बाते हैं। हम लोग मुगेली जा रहे थे। रास्ते मे कांग्रेसी उम्मीदवार श्री कुंजबिहारीलाल अग्निहोत्री चुनाव के सम्बन्ध में कुछ निराशाजनक बात करने लगे। उनकी बात सुनते ही नेहरूजी ने कहा—"आप लोगों ने कैसा उम्मीदवार खड़ा किया है। कांग्रेस की ओर से एक वालण्टियर चुनाव में खड़ा कर दो, वह जीत जायेगा।"

मुंगेली से पहले रास्ते में एक पुल पड़ता है। हमारी मोटर आते देख कर गजाधर साव नाम का एक आदमी मोटर के रास्ते मे लेट गया। मोटर रुकते ही साव को रास्ते में लेटा देख कर पण्डित जी कूद पड़े। हम सब किंकर्त्तव्यविमूढ़ से थे, हमारे साथ स्वयंसेवक थे। इससे पूर्व हम कुछ करते पण्डितजी दौड़ पड़े और साव की छाती पर चढ़ गये और बोले—'तू क्या चाहता है ?' बद-तमीज! तू कराची में आया था, वहां भी गडबड़ किया था फिर इलाहाबाद में आया था वहां से भी दो दिन मे भगा दिया गया था। अब फिर आ गया है।" स्वयंसेवकों द्वारा साव को रास्ते से हटा कर फिर हम आगे बढ़ गये। सोहागपुर के पास चुनाव सभा का एक और अनुभव भी हुआ। यहां रास्ते

में एक जगह चुनाव सभा की व्यवस्था की गयी थी। सभा में उपस्थित जनता नेहरू जी का स्वागत करने के लिये एक फलाग दूर सडक पर चली गयी थी, इसलिये जब हम लोग सभास्थान पर गये तो वहा सभा में कोई उपस्थित नही था। थोडी देर में सभा के प्रबन्धक और जनता वहा आगयी परन्तु नेहरू जी ने उस सभा में भाषण करना स्वीकार नही किया। इस अनुभव से हम लोगो को सीख मिल गयी। आगे की सभाओ के लिये हमने यह व्यवस्था की कि अवधेशप्रतापसिंह कुछ पहले अगली सभा में चले जाय और वे उस सभा में भाषण करने लगें। इस अग्रिम दल की व्यवस्था करने से नेहरू जी को बाद मे सब सभायें व्यवस्थित मिलने लगी और नेहरू जी ने इस व्यवस्था से अपना समय बचने के कारण बहुत सन्तोष प्रकट किया।

राष्ट्रपति डा राजेन्द्रबाबू से मेरा सम्बन्ध असहयोग आन्दोलन के समय से आया, विशेषत गया काग्रेस से। डा राजेन्द्रबाबू हमारे यहा जिला राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करने आये थे। सम्मेलन की अध्यक्षता स्वीकार करने पर डा राजेन्द्र बाबू को रायपुर की विभिन्न सस्थाओ की ओर से बहुत से मान-पत्र दिये गये थे। एक मान-पत्र मेरे बडे लडके अम्बिकाचरण ने दिया था। उसने रायपुर नगर हिन्दू सभा के अध्यक्ष की हैसियत से एक ताम्रपत्र पर मानपत्र प्रस्तुत कर सास्कृतिक धरातल पर श्री राजेन्द्रबाबू को मानपत्र दिया था। जब यह मानपत्र दिया गया तो राजेन्द्रबाबू का बडा विचित्र अनुभव हुआ। सभा खतम होने पर राजेन्द्र बाबू ने कहा कि "रायपुर में हिन्दू महासभा काग्रेस की पाकेट में है या काग्रेस हिन्दू महासभा की पाकेट मे ?" तब मैने उत्तर दिया था कि नगर में काग्रेस की पाकेट मे हिन्दू महासभा है। असल में बात यह थी कि कालेपानी से लौट कर भाई परमानन्द रायपुर आये हुए थे और उन्होने हम लोगो को चुनौती दी थी कि वे वहा पर हिन्दू महासभा की स्थापना करके ही जायेंगे। वे दो-तीन दिन रहे और उन्होने हिन्दू महासभा के सदस्य बनाने प्रारम्भ कर दिये। उनके इस अभियान को नष्ट करने के लिये बहुत से काग्रेस से सहानुभूति रखने वाले और कुछ काग्रेस जन भी हिन्दू महासभा के सदस्य बन गये थे। परिणाम यह हुआ कि अम्बिकाचरण शुक्ल भी हिन्दू महासभा के सदस्य एव अध्यक्ष बन गये और उन्होने सभा की ओर से श्री राजेन्द्रबाबू को मान-पत्र दिया।

बिहार भूकम्प के समय रायपुर से हमने पर्याप्त धनराशि एकत्र कर डा राजेन्द्रबाबू के पास भिजवायी थी। इस अवसर पर भी रायपुर और छत्तीसगढ ने अपनी शानदार परम्परा के अनुसार धन-सग्रह में बडा योग दिया था जिसे बाबू साहब और बिहार के दूसरे कार्यकर्त्ताओ ने बडा सराहा था। इसके बाद बाबू साहब के काग्रेस अध्यक्ष बनने के बाद हम सबका सम्पर्क बढता ही गया। जब-जब काग्रेस सघटन में अध्यक्ष पद सकटाकीर्ण हुआ तब डा राजेन्द्रबाबू ही सकटमोचक सिद्ध हुए है और उन्होने यह पद सम्हाला है। इस प्रकार हमारा और उनका सम्पर्क निरन्तर बढता ही रहा। उनके सरल, मृदु और शालीनता भरे व्यवहार का मेरे ऊपर बहुत ही अधिक प्रभाव हुआ है। उनके त्याग और सादगी का असर बिना पडे रह ही नही सकता। वे बहुत ही निष्कपट एव साधु व्यक्ति है, उन्होने जिस स्नेह और प्रेम के साथ हम लोगो को अपनाया उससे हमारा एक दूसरे पर स्नेह और विश्वास बढ गया, जो न केवल अभी तक स्थिर है वह निरन्तर बढता चला है। सकट एव बाधाओ के उपस्थित होने पर आपका सत्परामर्श मुझे बडा ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। सकट की कई घडियो में जब कभी मुझे अपना कोई सहारा नही दिखता था तब एकमात्र वे ही मुझे अपने अवलम्ब मालूम हुए और ऐसे अवसरो पर जब मैने उनके सामने अपनी स्थिति सच्चे हृदय से खोल कर रख दी, उन्होने मुझे अपनी अमूल्य सलाह दी और अवसर पडने पर मेरे सम्बन्ध में उठी भ्रान्ति को दूर किया है। सक्षेप में कहा जाय तो वे मेरे मित्र, उपदेष्टा और पथप्रदर्शक (फ्रेण्ड, फिलोसोफर एण्ड गाइड) सिद्ध हुए है।

हमारे देश के स्वतन्त्रता सग्राम में अग्रणी और गुलामी से मुक्त कराने वाले साहसी व्यक्तियों में महात्मा गाधी प्रमुखतम व्यक्ति थे। हमारा यह दुर्भाग्य था कि स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही उनका देहावसान हो गया। ऐसे समय इस नौका की पतवार को सम्भालने के लिये अन्य शक्तिशाली और दृढ निश्चय व्यक्ति मौजूद थे जिन्होने दृढतापूर्वक सुरक्षित रीति से इस नया को पार लगाया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जो व्यक्ति उत्तरदायी थे या समझे जा सकते है उनमें सरदार

पटेल का नाम प्रमुख है। यदि महात्मा गान्धी सत्याग्रह विचारधारा के पिता तथा अहिंसात्मक प्रतिरोध की सम्पूर्ण कला के जनक थे तो सरदार पटेल उन सिद्धान्तों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने मे एक कुशल सेनानी थे। १६२३ मे नागपुर के झण्डा सत्याग्रह की उल्लेखनीय सफलता से अहिंसात्मक सत्याग्रह के उपयोग की दिशा में सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रेरणादायक नेतृत्व का सबसे पहला उदाहरण देखने को मिला। नागपुर से बारदोली तक उन्हे अधिकाधिक सफलता प्राप्त होती गई। इस समय तक सरदार गुजरात के कर्णधार बन चुके थे और महात्मा गान्धी ने आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिये बारदोली को ही अपना तूफानी केन्द्र चुना था। चौरीचौरा काण्ड के कारण आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। १६२८ मे यह आन्दोलन फिर से आरम्भ हुआ और इसका सचालन वल्लभभाई पटेल को सौंपा गया। यहा यह दिख पड़ा कि किस तरह वल्लभभाई पटेल ने मिट्टी के पुतलो मे जीवन फूक दिया और बतला दिया कि संगठन में क्या शक्ति है। ब्रिटिश सरकार और उसके कर्मचारियो ने नर-नारियो पर बेतहाशा अत्याचार किये पर वहां योद्धा पटेल नेतृत्व कर रहे थे, उनकी बात ग्रामीणों के लिये ब्रह्म-वाक्य थी। आन्दोलन इतने अच्छे ढंग से संचालित किया गया कि ब्रिटिश सरकार को मालूम होने लगा कि इसका शासन बारदोली में डगमगा रहा है। सरकार को यह भी अनुभव होने लगा कि बिना जनता के सहयोग के कानून और व्यवस्था नही रह सकती। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने वल्लभभाई पटेल से समझौते की बातचीत की। इस प्रकार यह संग्राम समाप्त हुआ और तब महात्मा गान्धी ने उस महान् किसान वल्लभभाई को 'सरदार' की उपाधि से विभूषित किया। तब से कांग्रेस की शक्ति दृढतर होती गई। बारडोली से डांडी और डांडी से अहमदनगर तक सरदार ने नवजाग्रत राष्ट्र के एक अजेय सेनानी के रूप मे स्वतन्त्रता संग्राम को चलाया। वे एक महान् अनुभवी सेनानी थे। महात्मा गान्धी के प्रेरणात्मक नेतृत्व मे वे बहादुरी से लड़े और हंसते-हंसते सब कष्ट झेलते रहे। यह तो सरदार की संगठन शक्ति और पं. नेहरू की अपार लोकप्रियता ही थी जिसके कारण सन् १६३६ और १६४६ के चुनावो मे कांग्रेस को सबसे अधिक मत प्राप्त हुए थे। सरदार चुनाव की तैयारी मे हर कदम का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे अर्थात् उम्मेदवारो के चुनावों से लेकर मत-दान की वास्तविक व्यवस्था तक का पूरा हाल वे जान रखते थे। जब कभी, देश के किसी भी कोने से दल की शक्ति तथा अनुशासन के विरोध मे किन्ही भी तत्त्वों द्वारा हानि पहुंचाने का उपक्रम किया जाता था तो सरदार का बलिष्ट हाथ उन्हे तुरन्त समाप्त कर देता था। इस राज्य मे डा. खरे के अल्पकालीन मन्त्रिमण्डल के मामले मे उन्होंने जो कार्रवाई की वह उदाहरण मुझे आज भी स्मरण है। सरदार पटेल की इस अनुशासनप्रियता से तत्कालीन राज्यपाल सर फ्रांसिस वाइली तक, जो एक कट्टर तानाशाह थे, प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन्होंने तब कहा था कि सरदार ने यह कार्य करके अपने राजनीतिक स्तर को कई गुना बढ़ा दिया है।

जब स्वतन्त्रता के साथ-साथ विभाजन के फलस्वरूप असंख्य दु:खदायी कठिनाइयाँ भी आ गयी तो सरदार पटेल के भव्य व्यक्तित्व का दूसरा पहलू अर्थात् उनमें कुशल प्रशासक तथा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के भी दर्शन हुए। उन्होने विभाजन के पश्चात् देश मे फैली हुई लगभग ६०० रियासतों को विलीन कर भारत का एकीकरण किया। यह एक ही कार्य उन्हे इतिहास मे अमर रखेगा। वे इस महान् उद्देश्य की ओर दृढता तथा सहानुभूति के साथ अग्रसर हुए। मुझे स्मरण है कि किस प्रकार उन्होंने यहां नागपुर में पूर्वीय एजेन्सी की छत्तीसगढ रियासतो के राजाओं को एक साथ बुलाया तथा उनसे नम्रता से परन्तु साफ-साफ बातचीत की। उन में से तब एक राजा ने कहा कि जिस प्रकार उन्हे ब्रिटिश सरकार द्वारा सरक्षण प्रदान किया जाता था और जिनके वे सदा सच्चे अनुयायी रहते थे उसी तरह यदि अब भी राष्ट्रीय सरकार द्वारा संरक्षण प्रदान किया जावे तो उनके भी वे सच्चे अनुयायी रहेगे। इस पर सरदार का उत्तर था कि हम निश्चय ही आपका संरक्षण करेंगे परन्तु यदि आपकी जनता ही आपके विरोध मे उठ खड़ी हुई तब? इसका कोई उत्तर नही था और दूसरा दिन निकलने से पूर्व ही राजाओ ने विलीनीकरण समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये थे।

कुछ लोगों ने सरदार पटेल की बिस्मार्क से तुलना की है। दोनों ने अपने देश में एकता का सूत्रपात किया परन्तु इन दोनों के कार्यों में अन्तर है। सरदार पटेल ने ऐसे देश का एकीकरण किया जो बिस्मार्क के देश से कई गुना बड़ा था। सरदार पटेल ने भारतीय संघ के अंतर्गत लगभग ७ लाख वर्गमील क्षेत्र का समावेश किया जो सम्पूर्ण जर्मनी की अपेक्षा बहुत बड़ा है। सरदार बिस्मार्क से कहीं विशाल पैमाने पर कार्य करनेवाले शिल्पकार थे। ऊपर से कठोर दिखाई देते हुए भी वे अन्दर से स्नेहमय और मानवीय संवेदना से लबालब थे। अवसर पड़ने पर युद्ध या शान्ति दोनों समय वे एक कुशल सेनानी और दृढ़ नेता थे, जो संकटों से और भी अधिक साहसी बन जाते थे। वे जन्मजात नेता, स्वतंत्रता के महान सेनानी, यथार्थवादी स्वप्नद्रष्टा, देश के निर्माता और निर्णायक थे। गांधीजी उन्हें अपना पुत्र सा समझते थे, जवाहरलाल जी उन्हें शक्ति का स्तम्भ मानते थे। बारदोली के सरदार से वे भारत के सरदार बन गये। उनकी स्मृति से भावी पीढ़ियों को भारत की श्रीवृद्धि के लिये प्रेरणा मिलती रहेगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। अपने जीवन में मैंने उनसे अनुशासनप्रियता, दृढ़ता तथा सचाई के गुण सीखे हैं।

सत्याग्रही शुक्लजी

श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र

अपनी वारह वर्ष की आयु से मैं श्रद्धेय पडित रविशंकर शुक्ल से परिचित रहा हू। इन ४२ वर्षो मे उनके सम्पर्क मे आने का मुझे जितना अवसर मिला है उतना शायद ही किसी दूसरे जनसेवी को प्राप्त हुआ हो। उनके सम्वन्ध के अगणित सस्मरण मेरे मानस-पटल पर अकित है जिन्हे लेखवद्ध करने से एक पोथी ही तैयार हो जावेगी। इस लेख मे मैं केवल स्वातत्र्य-सग्राम-सम्वन्धी कुछ सस्मरणो को ही दे रहा हू।

सन् १९२२ की वात है। मैं कुछ ही समय पूर्व कलकत्ते से 'अमृतवाजार पत्रिका' से पत्रकारिता का कुछ अनुभव प्राप्त कर रायपुर वापिस लौटा था। वहा रायपुर जिला राजनीतिक परिषद् होने जा रही थी। किसी को तनिक भी ख्याल न था कि इस अवसर पर किसी भी प्रकार की अशान्ति होगी। परिषद् के प्रारभ होने के कुछ ही घंटो पूर्व मुझे एक विश्वस्त सूत्र से पता चला कि सरकार ने शुक्ल जी को गिरफ्तार कर परिषद् को समाप्त कर डालने का निश्चय किया है। मैंने यह समाचार स्वर्गीय पण्डित माधवराव सप्रे तथा शुक्ल जी को दिया। पहले तो किसी को विश्वास ही नही हुआ, परन्तु अत मे हम सवने भी अपनी तैयारी कर ली। परिषद् प्रारभ होते ही विवाद इस वात पर हुआ कि पुलिस तथा जिले के अन्य अधिकारी विना प्रवेश-टिकिट खरीदे परिषद मे प्रवेश कर सकते है या नही। पुलिस ने विना टिकिट खरीदे परिषद् के कम्पाउण्ड मे घुसने का प्रयत्न किया। शुक्ल जी के रोकने पर सिर्फ उन्हे गिरफ्तार ही नही किया गया वल्कि उनके हाथो मे हथकड़ी भी डाल दी गयी। रात को भोजन आदि लेकर जव हम लोग कोतवाली पहुचे तो शुक्ल जी को सीकचो के अन्दर पाया। पिजरवद्ध केसरी की सी शुक्ल जी की वह मूर्ति आज भी मेरे मानस पर ज्यो की त्यो अकित है। चूकि सप्रेजी के नेतृत्व में हम सव पुलिस को परिषद् मे जाने से रोकने के लिये सत्याग्रही प्रहरी वन गये, अतएव अग्रेजी सरकार को अत मे झुकना पड़ा और शुक्ल जी को भी मुक्त करना पड़ा।

१९३० के सत्याग्रह आन्दोलन मे शुक्ल जी ने प्रमुख भाग लिया। जिन दिनो वापू अपने साथियो को लेकर डाडी की ओर जा रहे थे, उन्ही दिनो अहमदावाद मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की वैठक हुई। अहमदावाद जाते हुए मार्ग मे हम लोग वम्बई ठहरे। वम्वई मे सरदार-गृह मे टिके, जो लोकमान्य तिलक के वही स्वर्गवास होने के कारण समस्त भारतवर्ष मे ख्याति प्राप्त कर चुका था। अव तक "आठ कनौजिया नौ चूल्हे" की कहावत के अनुसार शुक्लजी खानपान मे पूरे परम्परावादी थे, सदा रसोइया लेकर साथ चलते थे। लखनऊ मे मैंने स्वय उन्हे भोजन वनाने मे अपने रसोइया की सहायता करते देखा था। सरदार-गृह मे मैंने उनसे कहा—अव तो जेल-यात्रा करनी ही होगी और वहा न जाने किस-किस के हाथ का खाना होगा, अतएव अव आप सरदार-गृह मे महाराष्ट्र व्राम्हणो के वनाये हुये भोजन को ग्रहण करने की कृपा करे। इसी सिलसिले मे अपनी वातचीत मे शुक्लजी ने वताया कि एक मुवक्किल की ओर से उनका इंगलेड जाना तय हो गया था, परन्तु जेल जाने के लिए ही उन्होने उसकी कई सहस्र रुपयो की फीस भी वापिस कर दी। उन्हे सरदार-गृह मे भोजन करने की मेरी वात पट गई और इस तरह खान-पान के सम्वन्ध मे उनके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, जिसकी पूर्णाहुति तव हुई जवकि सन् १९४२ मे वेल्लोर जेल मे उन्होने और उनके साथी महन्त लक्ष्मीनारायणदास जी ने कैदी अव्दुला के हाथ का पकाया हुआ भोजन किया। मैं इसे देश को स्वतन्त्रता के लिए महान् त्याग मानता हूं क्योकि शारीरिक कष्ट भोगने से भी अधिक महत्ता वैचारिक परिवर्तन की होती है।

अहमदावाद की वैठक समाप्त हो जाने के पश्चात् हमलोग डाडी की ओर जाते हुये वापू से मिले। इसके पश्चात् प्रान्त-प्रान्त मे सत्याग्रह का आन्दोलन छिड गया। अनेक वर्षो के पश्चात् फिर रायपुर मे महाकोशल की राजनीतिक परिषद् हुई। पुलिस को चुनौती देकर यही पर नमक वनाने के रूप मे महाकोशल के सत्याग्रह का प्रारंभ किया गया। नमक वनाने वाले पाच सत्याग्रहियो मे शुक्ल जी अग्रगण्य थे। इसके पश्चात् महाकोशल की राजधानी जवलपुर मे हमलोगो ने कई सरकारी कानून तोड़े। उधर शुक्ल जी ने रायपुर मे राष्ट्रीय स्कूल के कुछ विद्यार्थियों को राष्ट्रीय-गीत सिखाये। मेरे द्वारा सम्पादित "लोकमत" में "रणभेरी" शीर्षक एक गाना छपा था। यह गाना किसी अज्ञात कवि ने, जो कि उत्तर-प्रदेश निवासी थे, "लोकमत" मे प्रकाशनार्थ भेजा था। मेरे किसी

सहायक सम्पादक ने उसे अस्वीकृत कविताओं के बंडल में बाँधकर रख दिया था। इसी बीच में माधव कालेज, उज्जैन से स्वर्गीय श्री रमाशंकर शुक्ल "लोकमत" के मेरे प्रथम सहायक सम्पादक होकर आये। वे स्वयं सुकवि थे और उन्होंने इस कविता को ढूंढ निकाला। श्रद्धेय पंडित रविशंकर जी शुक्ल ने उसे देखते ही इतना पसन्द किया कि विद्यार्थियों को उसे सिखाया ही नहीं प्रत्युत उनके लिए केसरिया-वस्त्र भी बनवा दिये। वे इन विद्यार्थियों को लेकर एक बार जबलपुर आये। जबलपुर की तिलक भूमि की आम-सभा में जब केसरिया वस्त्र धारण किये हुये विद्यार्थियों ने अपने परिष्कृत कण्ठ से—

रणभेरी बज चुकी वीरवर,
पहिनो केसरिया बाना।

गाया, तब सभा में उपस्थित तीस हजार जनता मन्त्र मुग्ध हो गई। दूसरे दिन जबलपुर नगर की गली गली में साधारण जनता के कंठ से यह गाना फूट पड़ता सुनायी दिया। इसके पश्चात् यह महाकौशल के नगरों में ही नहीं गाँवों में भी प्रवेश पा गया। कहना न होगा कि इस गायन के कारण सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन को अभूतपूर्व प्रगति प्राप्त हुई। यह गीत शुक्ल जी के उस ओज का द्योतक था जो कि जब तक स्वातन्त्र्य-संग्राम चलता रहा, तब तक मैंने शुक्ल जी में सभी परिस्थितियों में पाया।

यह असम्भव था कि सरकार बहुत दिनों तक हम लोगों को कानून पर कानून तोड़ने देती। आखिर वह दिन आ ही गया जबकि एक रात को सूर्योदय के पहिले सेठ गोविन्ददास जी, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, श्री विष्णुदयाल भार्गव तथा मैं—ये चार व्यक्ति गिरफ्तार कर जबलपुर जेल में पहुंचा दिये गये। प्रातःकाल जब हमलोगों ने देखा कि हमारी बैरक के सामने चार के बदले पाँच कुर्सियाँ रखी हुई हैं, तभी हमलोगों का माथा ठनका कि कोई पाँचवा गिरफ्तार कर लाया जाने वाला है। कुछ ही घंटों में हमलोगों ने शुक्ल जी को मुस्कराते हुये अपनी बैरेक के कम्पाउंड में प्रवेश करते देखा। सब लोगों से वे गले मिले और हम लोगों को बताया कि वे बालाघाट जा रहे थे, परन्तु मार्ग में ही उन्हें वारन्ट दिखाकर गिरफ्तार किया गया और जबलपुर पहुंचा दिया गया। वहीं जबलपुर जेल में हम लोगों का मुकदमा हुआ और तीन "अपराधों" के लिए दो-दो साल की सजा मिली। इसके पश्चात हमलोग अलग अलग जेलों में भेज दिये गये। कुछ समय के पश्चात् सरकार के दिमाग में आया कि साधारण कैदियों के समान हमलोगों के भी अगूठे के निशान लिये जावें। हम लोगों को एक दूसरे से दूर रहने के कारण सलाह करने का कोई अवसर नहीं था, परन्तु सभी ने स्वतन्त्ररूप से सरकार की आज्ञा पालन करने से इन्कार कर दिया। अन्य जेलों के अफसर और जिलाधिकारी समझदार सिद्ध हुये और कुछ दिनों के बाद हम लोगों का पीछा छोड़ दिया गया। परन्तु सिवनी के अधिकारी, जहाँ की जेल में शुक्ल जी कैद थे, बर्बर सिद्ध हुये और उन्होंने शुक्लजी पर कई मातहतों को बन्य मनुष्यों के समान छोड़कर बल प्रयोग किया। शुक्लजी के लिए यह असह्य था अतएव उन्हें भी शारीरिक बल का प्रयोग करने के लिए बाध्य होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि इतनी नृशंसता के बाद भी उन्हें शुक्लजी के अगूठे का निशान न प्राप्त हो सका। कहना न होगा कि आज भी अंग्रेजी सरकार का यह दुष्कृत्य जब याद आता है तब हृदय क्षोभ से भर आता है। सन् १९३२ के आन्दोलन में तो हम सब लोग इतने शीघ्र अपने-अपने नगरों में पकड़े गये कि सत्याग्रह की तैयारी करने का भी हमें अवसर प्राप्त न हुआ। उस आन्दोलन के पश्चात धारा सभाओं में प्रवेश करने का युग आया और १९३७ से १९३९ तक मैं शुक्ल जी के साथ मध्यप्रदेश के प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमंडल में रहा। १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के आरंभ होने के पश्चात् हम लोगों ने त्यागपत्र दिया और देश में फिर सत्याग्रह का वातावरण आ उपस्थित हुआ। रामगढ़ के कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात् १९४० के नवम्बर मास में फिर गिरफ्तारियाँ हुईं और मुझे अधिकांश समय शुक्लजी के साथ सिवनी जेल में बिताने का अवसर आया। सिवनी जेल में रहते समय ही रायपुर में शुक्ल जी की वृद्धा माता का देहान्त हुआ। कुटुम्ब के लोगों ने उन्हें तार दिया कि वे परोल पर छूटने की दरख्वास्त दें और बाहर आकर अपनी माता की अंत्येष्टि-क्रिया अपने हाथ से करें। शुक्ल जी के लिये एक बड़ी ही विकट समस्या उपस्थित हुई। एक ओर माता के अंतिम दर्शन करने की बलवती अभिलाषा और दूसरी ओर सरकार से किसी भी प्रकार की प्रार्थना न करने का उनका वीर-व्रत। तथापि मैंने देखा कि निर्णय करने में उन्हें कुछ ही क्षण लगे और उन्होंने किसी भी प्रकार का प्रार्थनापत्र भेजने से साफ इंकार कर दिया। परन्तु ईश्वर ने सरकार को सुबुद्धि दी और उसने सीमित समय के लिये उन्हें आप ही आप छोड़ दिया।

सन् १९४२ का आन्दोलन एक प्रकार से कांग्रेस द्वारा चलाया हुआ आन्दोलन न होकर अंग्रेजी-सरकार द्वारा प्रारंभ किया हुआ आन्दोलन था। हम सब लोग अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के लिए बम्बई गये हुए थे और सदा के अनुसार सरदार गृह में ही ठहरे थे। जिस समय रात को बापू के भाषण के पश्चात् कमेटी का अधिवेशन

समाप्त हुआ उसी समय हम लोगों को कुछ-कुछ आभास हो गया था कि इस बार सरकार अचानक आक्रमण करेगी। फिर भी हम लोगो ने यह कभी न सोचा था कि कांग्रेस कार्यकारिणी के साथ बापू उसी रात को गिरफ्तार कर लिये जावेंगे। दूसरे दिन प्रात काल ज्योंही हम लोगो की नीद खुली उसी समय सारे सरदार-गृह मे कोलाहल मचा हुआ था कि वह अकल्पित घटना रात को ही घट गई। बम्बई नगर हर सत्यागृह आन्दोलन में अन्य नगरो का नेता रहा है। हम लोग स्नानादि से निवृत्त भी न हो पाये थे कि बम्बई के नागरिको ने सम्पूर्ण नगर मे हड़ताल कर दी। हमे बम्बई के सत्यागृह के दृश्य देखने का अवसर प्राप्त हो गया। एक मित्र की मोटर मे हम लोग शहर घूमने के लिए निकल पड़े। थोड़ी ही दूर जाकर देखा कि बम्बई की सड़कें कांग्रेस के वालन्टियरो के कब्जे मे है। क्या मजाल थी कि कोई भी मोटर किसी भी रास्ते से निकल सके। परन्तु ज्योंही हम लोगो ने महात्मा गाधी का जय-घोष किया त्योंही हमारी मोटर के चारों ओर कांग्रेसी वालन्टियर एकत्रित हो गये। शुक्लजी की मूछे भारत प्रसिद्ध है और पल में ही वालन्टियरों ने उन्हे पहिचान लिया। उन्होने शुक्लजी के नाम का नारा लगाया और बड़े उत्साह से हम लोगो की मोटर को आगे बढ़ने दिया। इसके बाद बापू और कांग्रेस का जयघोष करते हुए शुक्लजी आगे बढ़े। हम लोगो ने कुछ ही घन्टो मे सारा शहर मथ डाला। जिस-जिस मार्ग से हम लोग निकले उसी-उसी मार्ग पर जनता ने शुक्लजी को घेर कर नया उत्साह प्रकट किया। यदि मै यह कहू तो अत्युक्ति न होगी कि उस दिन कुछ घन्टों के लिए शुक्लजी बम्बई नगर के नेता बन गये।

शाम को दादर के शिवाजी पार्क मे श्रीमती कस्तूरबा गाधी का भाषण होनेवाला था। हम लोग भी उसी ओर गये। पुलिस ने बा को तो मार्ग मे ही गिरफ्तार कर लिया और पार्क मे एकत्रित अगणित जनसमूह को अश्रुगैस से तितर-बितर करने का प्रयत्न किया। शुक्लजी ने उस सभा मे भी भाग लेने की इच्छा प्रकट की परन्तु चूकि मेरे हृदय मे अभी भी मध्यप्रदेश पहुंचने की कुछ आशा थी अतएव मैने अपने प्रदेश के सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता की दृष्टि से उन्हे रोक लिया। इस पर शुक्लजी ने कहा कि यदि सभा मे भाग नही लेना है तो सरदार-गृह वापिस जाना चाहिए, क्योंकि उनसे जनता पर अश्रुगैस का प्रहार देखा नहीं जा सकता। उनके इस कथन को आज भी याद कर मुझे उन लोगो पर हंसी आती है जो कि शुक्लजी को भावुक न मानकर ठंढे दिमाग का राजनीतिज्ञ मानते है।

सरदार-गृह मे अनेक प्रान्तों के कांग्रेसी नेता तथा कार्यकर्ता उपस्थित थे। हम सभी ने भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे परस्पर अनेक चर्चाये की। सभी का यही मत था कि किसी भी प्रकार अपने-अपने प्रान्त मे पहुंचकर आन्दोलन को प्रगति दे। परन्तु उधर बम्बई की पुलिस भी सतर्क थी और शायद सभी प्रान्तो की सरकारो से उसके टेलीफोन चल रहे थे। हम लोग जब विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर पहुंचे तो साथ मे मध्यप्रदेश के करीब २५-३० लोग थे। शुक्लजी सभी की ओर से टिकिट खरीदने के लिए जब जा रहे थे तब मेरे मुह से निकल गया कि शायद हम लोग अपने प्रदेश की प्रथम स्टेशन मलकापुर मे गिरफ्तार कर लिये जावेगे। शुक्लजी ने मेरी बात पकड़ ली और सिर्फ मलकापुर तक के लिए सभी के टिकिट खरीदे। दूसरे दिन प्रातःकाल मेरी नींद ठीक मलकापुर स्टेशन पर खुली। सामने देखा कि प्लेट फार्म पर पुलिस कतार बांधकर खड़ी है। जो सो रहे थे वे जगाये गये। जब हम सब प्लेटफार्म पर उतरे तो बुलढाना जिले का अंग्रेज पुलिस कप्तान बहुत खुश नजर आया। हम लोगों को ऐसा लगा मानों वह हम लोगो को अचानक गिरफ्तार कर लेने के लिए अपने को बधाई दे रहा है। शुक्लजी ने अपनी जेब से सबके टिकिट निकाले और उसके सामने करते हुए कहा—टिकिट सिर्फ मलकापुर तक के है अतएव बहुत खुश होने की जरूरत नही है। इस पर मैने व्यंग किया—दि रेस्ट ऑव दि जर्नी एट गवर्नमेंट कॉस्ट (आगे का सब सफर सरकारी खर्च पर)।

हम लोगों को मलकापुर से ले जाकर बुलढाना की जेल में २-३ दिन रखा गया और उसके बाद नागपुर भेजने के लिए उसी अंग्रेज कप्तान की निगरानी मे पुलिस लारी मे बैठाया गया। मार्ग में उसने शुक्लजी के साथ कुछ राजनीतिक चर्चा छेड़ने की मूर्खता की। सत्याग्रह की भावना से अपरिचित वह अंग्रेज जब अनाप-शनाप बकने लगा तब शुक्लजी ने कुछ रोष मे आकर उससे कहा—"यदि मै सत्याग्रही न होता तो गिरफ्तारी से बचकर अपने जिले रायपुर में पहुंच जाता और यदि मुझमें तोड़फोड़ (सैबोटाज) की भावना होती तो मै जिले भर के पुलिस-थानों में आग लगवा कर पूरे जिले को विद्रोही बना देता।" जान पड़ता है कि शुक्ल जी के इतना कहने पर भी वह सत्याग्रहियो के दर्शन-शास्त्र को न समझ पाया क्योकि कुछ समय के पश्चात् जब टॉटनहेम सरक्यूलर प्रकाशित हुआ तब उसमे देश के अन्य प्रमुख कांग्रेसी नेताओ के साथ-साथ शुक्लजी पर भी आरोप किया गया कि उन्होंने बुलढाना के डी. एस. पी. से यह कहा था कि यदि वे अचानक न पकड़ लिये गये होते तो उन्होंने रायपुर जिले के सब पुलिस थाने जलवा दिये होते!

कुछ हफ्ते नागपुर मे रखे जाने के बाद हम लोग मद्रास प्रदेश के वेल्लोर जेल में भेज दिये गये। इधर एक-दो वर्षों से शुक्लजी नासिका-रोग से पीडित रह थे। वेल्लोर मे धीरे-धीरे उन्हे ज्वर रहने लगा और कभी-कभी १०१ डिग्री तक पहुच जाता। जेल के अग्रेज सुपरिटेंडेंट ने, जो कि भला आदमी था, मद्रास सरकार को इसकी सूचना दी। मद्रास सरकार ने उन्हे मद्रास शहर के मेडिकल कालेज में ले जाकर आपरेशन करवा देने का प्रस्ताव किया परन्तु साथ ही कुछ शर्ते भी लगा दी। शुक्लजी को ये शर्ते अपमानजनक प्रतीत हुईं परन्तु श्री दुर्गाशकर मेहता ने उन्हे स्वीकार कर लेने की सलाह दी। इस पर शुक्ल जी को रोष हो आया। मैंने अनेक बार देखा था कि शुक्लजी के हृदय में श्री मेहता जी के सम्मति के लिए कभी कोई स्थान नही रहा और इस बार भी ऐसा ही हुआ। इसके बाद शुक्लजी का स्वास्थ्य गिरता ही गया। अन्त मे मद्रास की सरकार को लाचार होकर उन्हे मद्रास के मेडिकल कालेज मे बिना किसी शर्त के आपरेशन के लिए ले जाना पडा। शुक्लजी के मद्रास चले जाने के पश्चात हम शेष बदी अपने प्रदेश की जेलो में वापिस भेज दिये गये। मै मडला की जेल में रखा गया और आपरेशन के पश्चात शुक्ल जी भी वही आ गये।

ऊपर मैने जिन घटनाओ का उल्लेख किया है उनसे यह सहज ही समझा जा सकता है कि आज जो शुक्ल जी मध्यप्रदेश के पुनर्निर्माण के सूत्रधार होकर अपनी रचनात्मक शक्ति का परिचय दे रहे है, वही शुक्लजी सत्याग्रह के दीर्घकालीन आन्दोलन मे उत्साह तथा वीरत्व से भरे हुए थे। मध्यप्रदेश के कुछ लोगो को तो अवश्य ही पता होगा कि शुक्लजी ने आयरलैंड के स्वाधीनता के इतिहास का गम्भीर अध्ययन किया है। मेरा ऐसा ख्याल है कि इस अध्ययन ने उनकी मातृभूमि तथा मातृभाषा की उस भक्ति को और भी प्रबल कर दिया है जो कि उन्हे ईश्वर की देन के रूप में जन्म से ही प्राप्त हुई थी।

पण्डित रविशंकर शुक्ल : एक दृष्टि

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

यों तो ससार की जनगणना संख्या मे अधिक हुआ करती है किन्तु जनगणना की सख्या की अपेक्षा 'उचित संख्या' की जनगणना करे तो वह सख्या वहुत छोटी हो जायगी। प्रजासत्ता मे वाहुवल की अपेक्षा वहुवल ही प्रतिनिधित्व करता है, और इस तरह से पडित रविशंकर जी शुक्ल इस प्रान्त के वहुवल के, वहुमत के प्रतिनिधि है जो निस्संदेह परम गौरव की वात है ; किन्तु चिन्तन की आखो के सामने अठहत्तर वर्ष के शुक्लजी इसलिए जन-जीवन मे आगे है कि वे परिस्थिति, देश की आवश्यकता और अपनी क्षमता के आरपार देखने मे अपनी शक्ति रखते है। कभी-कभी कार्य-संचालक को अपने कार्य मे वहुत भय, वहुत घवड़ाहट, वहुत चिन्ता होने लगती है। सच तो यह है कि कठिनाइयां वही विजयनी होती है जहा समूह, समाज अथवा व्यक्ति का विश्वास कमजोर पड़ जाता है।

कुछ लोग ऐसे होते है जिनके उपद्रव को आधार नही चाहिए। वे लोग अपनी अवस्था ऐसी वनाए हुए है कि अपनी सारी गड़वड़ों मे, गड़वड़ो के परिणामस्वरूप, जिनके पास खोने के लिए कुछ नही है, केवल गड़वड़ से जो पा जाय वही उनके लिए लाभ है। एक समय कमजोर विश्वास के आदमी के लिए भयभीत होने का यह होता है।

दूसरा समय वह होता है जव वह ऐसे लोगो से घिर जाता है जिन्हें केवल परिवर्तन चाहिए। परिवर्तन की अच्छाई-बुराई द्वारा निश्चित भविष्य का जिनके पास कोई ज्ञान नही। वे तो परिवर्तन करके मानेंगे। तुलसीदास के वताये वर्ण, अर्थ-सघ, रस, छन्द अर्थात् अक्षर अथवा समूह, ग्रन्थ अथवा जाति-संगम, साहित्य के नवरस अथवा जगत के छः रस और अर्थ को अपने मे छुपाकर वैठने वाला साहित्य, अर्थ को अपने मे छुपाकर वैठने वाली कविता अथवा इरादों को अपने मे छुपा कर वैठने वाली विश्व की नृप-नीति, तुलसीदास की धारणा मे इन सवका कार्य मंगल करना होना आवश्यक है। कुछ को प्रारम्भ से मगल कार्य होना चाहिए, कुछ को मगल कार्यो की गौरव वृद्धि करना चाहिए और शेष को मंगल परिणामो की जननी होना चाहिए। किन्तु परिवर्तन करने के हठी पागल को समाज के मंगल-अमंगल से कुछ लेना-देना नही है। वह तो किसी भी मूल्य पर वर्तमान मे परिवर्तन चाहता है, भले ही भाग्य-वशात् उससे मगल हो जाय, भले ही वह चिर अमंगल का कारण वने।

तीसरे वे होते है जो भावनारहित योजना के वड़े पक्षपाती होते है यद्यपि वड़ी से वडी देशव्यापी और विश्व-व्यापी योजना को अपनी सफलता के लिए जन-जीवन के सम्मुख वार-वार घुटने टेकने पड़ते है और जन-जीवन के सद्भावो को जागरण देना होता है ; किन्तु वाहर से योजना की आदत उधार लेनेवाला आदमी योजना ही को सम्पूर्ण मानता है,—योजना ही को सम्पूर्ण मानने का अभ्यासी हो जाता है। वह योजना का घायल, योजना का वीमार है। राष्ट्रनायक जवाहरलाल जी की कोमलता की उपेक्षा कर योजना के वीमार अपनी नन्हीं नन्ही योजनाओ को ही सव कुछ समझते है। वे ईमान की निर्मलता और भावना की समर्पणशीलता को भूल जाते है।

चौथे वे होते है जिन्हे शहीद वनने या शहीद होने मे मजा आता है। रावण के खिलाफ राम का झण्डा उठे तो वे शहीदो मे नाम लिखा लेग , किन्तु यदि राम के खिलाफ रावण का झण्डा खड़ा हो तो उन्हे आप रावण की सेना मे भी देख सकेंगे। न वे राम के है न रावण के, वे तो अपनी शहीद होने की प्रवृत्ति के प्रति ही ईमानदार है। जिस तरह राजनैतिक गाली-गलौज करनेवाली कलम, यदि राज अथवा राष्ट्र मे गाली-गलौज की जगह न मिले, तो विश्व की घटनाओ की गाली-गलौज मे हिस्सा वटाने लगती है, उसी प्रकार शहीदाना तन्तुओ से भरा हुआ, विधायकता से रहित व्यक्ति, अपनी शहीद प्रवृत्ति के लिए देश, काल और पात्र की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता के लिए नही ठहरता।

पाचवें वे लोग है, जो कभी भी कोई निश्चित निर्णय नही कर पाते। उनके लिए यदि रूस के प्रधान मंत्री वुलगानिन कहते है तो ठीक कहते है ; किन्तु अमेरिकन राष्ट्रपति आइसनहावर कहते है वे भी ठीक कहते है और पण्डित

जवाहरलाल नेहरू कहते हैं वह भी—हाँ, ठीक ही तो कहते हैं। इस अनिश्चित वृत्ति के लोगों की संख्या किसी भी देश के किसी भी समाज में कम नहीं हुआ करती। अतः इनके समर्थन या विरोध के मूल्य पर काम करना कठिन होता है।

छठवें वे व्यक्ति होते हैं जो चरम आज्ञाकारी हैं—परम आज्ञाकारी हैं! उनकी दृष्टि में जीता हुआ डाकू भगवान का अवतार है और हारा हुआ अवतार, डाकू से भी भयंकर अपराधी। वे यह जहमत लेते ही नहीं कि इसकी भलाई या उसकी बुराई अथवा इसका सम्मान और उसका निरादर अपने सिर पर लेते फिरें। अतः वे निरीह सब अवस्थाओं में खप जाते हैं किन्तु उनके विश्वास के बल पर राष्ट्र-संचालन नहीं होता।

सातवें वे होते हैं जिन्हें केवल क्रान्ति चाहिए। क्रान्ति वह नहीं जो किसी रचना के एक हिस्से की अपेक्षा दूसरे को उन्नततर बनाने में लग जाय। इनके लिए तो वही क्रान्ति है जो स्थापित व्यवस्था के हर कील-काँटे को उखाड़कर फेंक दे। इनका धंधा है—इनका प्रथम कार्य है कि इसको गिरा, उसको नष्ट कर, उसे होते हुए काम को बंद कर और अमुक समाज रचना में लकवा उत्पन्न करें। क्योंकि जन-जीवन का असंतोष इनका मूलधन होता है और उस असंतोष को उत्पन्न कर चुकने के पश्चात् इन्हें समाज या देश से कुछ लेना-देना नहीं है। विरोध के गर्म तवे पर इन्हें तो अपनी रोटियाँ सेकनी हैं!

ये सात अवस्थाएँ तथा ऐसी ही कुछ और अवस्थाएँ हैं। विश्व में कुछ ऐसे क्षण होते हैं जब समाज व्यवस्था का ईमान डाँवाडोल होने लगता है। समाज के व्यवस्थापक भयभीत, भीरु और क्षीणमना होने लगते हैं। जब संकट साम्प्रदायिक, धार्मिक अथवा विशुद्ध स्वार्थ का विपरीत रूप धारण करके आते हैं तब समाज के—प्रजाशासन के—नियमन करने वाले तंत्र को यह भय होने लगता है कि वे जहर के इन कडुवे प्यालों को पीने में असमर्थ हैं। ऐसे समय के लिए हमें उस कार्यकर्त्ता की आवश्यकता होती है जिसके लिए कहा गया है कि—

नरपति हितकर्ता द्वेष्यताम् यातिलोके,
जनपद हितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्र,
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने,
नृपति जनपदानाम् दुर्लभ कार्यकर्ता।

ऐसा ही कार्यकर्त्ता समाज के हित को अपने हित से ऊपर रख सकता है।

मैं यह कह सकता हूँ कि विरोध अथवा समर्थन की भूमिका ले चुकने के पश्चात् पंडित रविशंकर जी शुक्ल को उल्लिखित सामाजिक विकृतियों के बीच मैंने कभी डाँवाडोल नहीं देखा। मुझे तो यह चिन्ता है कि समर्थन और विरोध के बीचाबीच इस निर्भयता से खड़े रहने वाले व्यक्तियों को मैं अपने बीच इस राज्य में 'बहुत कम' पा रहा हूँ—जो भाई शुक्लजी की सी क्षमता व्यक्त कर सकें। कार्लाइल के कथनानुसार यदि हम जीवन को ऐसा 'अवसर' मान लें जो दूसरी बार नहीं मिलेगा, तो हममें से कितने हैं जो गुण, स्वभाव, वस्तुओं को समझने की शक्ति और उच्च रुचि के माप पर यह कह सकें कि हमारा जीवन-समय वृक्ष से गिरे हुए पत्तों की ढेरी नहीं, किन्तु यथार्थ में साँस लेता हुआ प्राणवान और परम पुरुषार्थमय अस्तित्व है। नन्हें बच्चों की तरह यह कहना कि प्राप्त अवसर केवल दुःख है अथवा सुख है, अधूरा है। भले ही ऐसी बात कहते समय हम वेदान्त की दुहाई देते हों किन्तु यह है हमारा निरा पागलपन ही। सुख और दुःख तो उत्तरदायित्व निबाहते समय व्यक्त की जाने वाली हमारी क्षमता अथवा क्षमताहीनता ही के नाम हैं। हम भारतीय लोग, दार्शनिक दृष्टिकोण से मुक्त नहीं हो सकते। हम अपने कार्यों में, अपने विश्वासों को अन्तरात्मा की लगन और आराधना के बीच में जब व्यक्त करते हैं तब हम अपनी कृति को अपने अन्तःकरण और घर से बाहर भेजते हुए सन्तोष का अनुभव करते हैं। मैं इस बात से सदा सुखी हुआ हूँ कि पंडित रविशंकर शुक्ल में भगवान के प्रति अटूट विश्वास है और अपने कार्यकौशल के प्रति अमित श्रद्धा है। वे अधीर नहीं होते, भयभीत नहीं होते, डाँवाडोल होते भी प्रायः नहीं देखे जाते।

मेरा परिचय पंडित रविशंकर जी शुक्ल से सन् १९१६ में हुआ जब वे अड़तीस वर्ष के थे। ऐसे कितने ही क्षण आये हैं, जब मैं समस्याओं को रविशंकरजी की दृष्टि से नहीं देख सका अथवा वे समस्याओं को मेरी दृष्टि से न देख पाये। किन्तु मैंने उनमें ऐसा पारिवारिक व्यक्तित्व पाया, जिससे लड़कर भी जिसके हाथों में मनुष्य अपने को अत्यन्त निश्चिन्तता से सौंप सकता है।

कदाचित् बहुत कम लोग यह जानते है कि मध्यप्रदेश के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जन्मदाता पंडित रविशंकर शुक्ल और उनके तत्कालीन साथी ही हैं। पहला सम्मेलन जहां तक मुझे याद है सन् १९१६-१७ मे रायपुर ही में हुआ था जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय पडित प्यारेलाल मिश्र, बार एट लॉ हुए थे। पंडित रविशंकर जी में दो विरोधी भावनाओ का विचित्र सामन्जस्य है। वे सोचते बहुत ठण्डे हैं, इतने ठण्डे कि लगभग पन्द्रह वर्षो तक मैं उन्हे ज्वलन्त राष्ट्रीय दल का आदमी ही नही मानता था। सन् १९२० की सागर मे होने वाली प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के समय जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय डॉक्टर मुजे थे, मैंने अपने दो प्राणप्रिय मित्रों को अर्थात् पंडित रविशंकर जी शुक्ल और स्वर्गीय पंडित मनोहर कृष्ण गोलवलकर को 'कर्मवीर' के अग्रलेखो मे नरम दल का लिखा था। उन अग्रलेखो को पढ़कर पूज्य पंडित माधवरावजी सप्रे ने मुझसे कहा था कि रविशंकरजी के विषय मे तुम्हे अपना मत बदलना पड़ेगा। हां, तो मैं कह रहा था कि रविशकरजी मे विचारों की ठण्डक बहुत है। किन्तु दूसरी ओर सिपाही की बहादुरी भी उनकी ऐसी अद्भुत है कि ब्रिटिश सरकार से लोहा लेते समय जिन्होंने उन्हें अटल और अडिग देखा है तथा राजनैतिक परिषदों के समय और रायपुर मे भी उन्हे तरुणो की सेना का सगठन करते हुए देखा है वे उनकी सिपहगिरी का गुणगान किये बिना नही रह सकते। पश्चिम मे तो ज्यो-ज्यो उम्र पकती है त्यो-त्यो मनुष्य अधिक विवेक और सावधान क्रियाशीलता के लिए योग्य माना जाता है। पूरब भी इसका अपवाद नही रहेगा। पडित रविशंकरजी मे अपने युग के प्रति व्यवहार करने मे एक अद्भुत सहानुभूति है। मेरे नम्र विचार से वे या तो व्यक्ति को ग्रहण करना जानते हैं या छोड़ देना। उपयोगिता की फी सदी से उपयोग करने की जोड़-बाकी करने वे नही बैठते। यह बात इस देश के सर्वोच्च अथवा विश्व के सर्वोच्च राजनीतिज्ञो मे भी पाई जाती है। इस प्रान्त मे सेवा करते हुए पडित रविशंकरजी तथा उनके और साथी भी द्विभाषी मनोवृत्ति के रहते रहे हैं। स्वय रविशंकरजी ने जब रायपुर मे काम शुरू किया तब उन्होंने रायपुर के महान् कार्यकर्त्ता स्वर्गीय भाई वामनरावजी लाखे को अपने साथ लिया। लोग यह बहुत ही कम जान पाते थे कि लाखेजी के बिना शुक्लजी और शुक्लजी के बिना लाखेजी कोई काम करना स्वीकृत करेगे। शुक्लजी गृह-जीवन मे अत्यन्त पारिवारिक हैं। एक बार मै रायगढ़ के तत्कालीन दीवान पडित बलदेवप्रसादजी मिश्र के आमंत्रण पर रायगढ जा रहा था। मार्ग मे शुक्लजी के पास रायपुर ठहरा। उन दिनो पंडित रविशंकर शुक्ल की माताजी बीमार थी। शुक्लजी के बड़े पुत्र चिरजीव श्री अम्बिकाचरण की उम्र उस समय बीस वर्ष से कम न होगी। हां, तो शुक्लजी की माताजी बीमार थी। मैं भी उन्हें देखने पंडित रविशकरजी शुक्ल के भवन मे ऊपर के कमरे में गया। उस समय मां जितने कड़े शब्दों में अपने इकलौते पुत्र की खबर ले रही थी और पुत्र जिस श्रद्धा और स्नेह से खिलखिला कर मा की नाराजी को शान्त करने मे व्यस्त था, उसे देखकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया। मित्र चाहे कोई स्वर्गीय हों या आजकल के कोई और, जो भी शुक्लजी के विश्वास का हो जाता है, शुक्लजी की इसी निर्मलता के कारण वह उन पर अतिरेकमय रूप से छाने की कोशिश करता है। किन्तु यह सब थोड़े ही दिनो के लिये हो पाता है। जब शुक्लजी का निर्मल और कोमल व्यक्तित्व शीघ्र ही उभर उठता है तब लोग उनकी निर्मलता से प्रभावित हुए बिना नही रहते। हिन्दी और मराठी के इस प्रान्त मे समान स्थान दिये जाने के लिये शुक्लजी ने विश्वासो की जिस निर्मलता को व्यक्त किया है उस भावना से इस राज्य की बड़ी से बड़ी समस्याओ को सुलझाया जा सकता है। जब गांधीजी ने यरवदा जेल के अपने महान् उपवास के पश्चात् हरिजन आन्दोलन को उठाया तो मध्यप्रदेश मे उन्होने पंडित रविशंकरजी को अपने साथ लिया और लोग जानते हैं कि उसका कितना सुन्दर परिणाम हुआ।

जब सन् १९२३ में नागपुर में झण्डा सत्याग्रह हुआ तब शुक्लजी स्वराज्य पार्टी में थे। स्वराज्य पार्टी झण्डा सत्याग्रह का समर्थन नही कर रही थी। नागपुर के स्वराज्य दल के मित्रों ने तो उसका कितनी ही बार खुला विरोध भी किया था किन्तु विदेशी ताकत से लड़े जाने वाले किसी भी आन्दोलन मे शुक्लजी विरोधी हो सके यह बात संभव ही नहीं थी। ऐसे समय शुक्लजी पहले 'ईमानदार राष्ट्रीय' रहे है और फिर कुछ और। मै झण्डा सत्याग्रह के संचालक के नाते जब रायपुर गया तब शुक्लजी ही के भवन में बैठकर नागपुर के झण्डा सत्याग्रह में जाने वाले स्वयं-सेवको का संगठन किया गया और शुक्लजी की ही मोटर लेकर जिले में जहां-तहा भ्रमण किया गया। सच पूछिये तो शुक्लजी के व्यक्तित्व को इस प्रान्त के जन-जीवन ने कभी अपना रहने ही नही दिया। जब खादी का आन्दोलन लेकर प्रान्तव्यापी संगठन किया गया और स्वर्गीय भाई गणपतरावजी टिकेकर के साथ मै रायपुर गया तब शुक्लजी का व्यक्तित्व, रायपुर का राष्ट्रीय स्कूल और रायपुर के नागरिक ऐसे अद्भुत ढंग से काम मे लग गये कि खादी की सबसे अधिक बिक्री महाकोशल मे उस समय रायपुर में हुई। उस जमाने की अर्ध-सरकारी सस्थाओ को सरकार के हाथ में से व्यवहारतः छीनकर सर्वथा राष्ट्रीय बना लेने की क्षमता उस समय पडित रविशकरजी मे ही देखी गयी। उन्होंने डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल के अध्यापको और कर्मचारियों को मानों स्वराज्य की सेना मे काम करने वाले सेवक ही बना डाला था।

शुक्लजी इस समय ७८ वर्ष के हैं। मेरी प्रभु से प्रार्थना है वे इतने ही दृढ रह कर खूब जियें और इस प्रान्त को उत्तरोत्तर उन्नत बनावें। नागपुर और सागर दोनो विश्वविद्यालय चल रहे हैं, बौद्धिक और आर्थिक योजनाएं खूब काम में लाई जा रही हैं, यह देखकर सुख होता है। किन्तु मेरे मन में इस अवसर पर प्रान्त वासियों से कुछ कहने की इच्छा है—

(१) शुक्लजी तथा उनके साथियों ने महात्मा गाधी के नियन्त्रण, सचालन और मार्गदर्शन में शिक्षण प्राप्त किया है अत यह याद रखना अत्यन्त आवश्यक है कि अपने सामने हम एक ऐसी पीढी निर्माण कर दें जो आज के कार्यों का सफल सचालन करके ले जा सके। इसमें जो कठिनाइया हों उन्हे स्वीकार करना ही होगा।

(२) इस प्रदेश के जिन लोगों ने गाधी युग मे पहले यत्रणा सही है उन क्रान्तिवादी परिवारों की खोज-खबर ली जाय और इस बात की सावधानी ली जाय कि उन त्यागी परिवारों की ओर केवल इसलिये दुर्लक्ष न हो कि उनके वरिष्ठसम्बन्धी अभिभावकों ने ब्रिटिश विरोध में पिस्तौलों का या षड्यत्रों का सहारा लिया था। ऐसे परिवार अन्य राज्यों की तरह इस राज्य में भी हैं और उनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

(३) कला के क्षेत्र में—(अ) इस प्रदेश के गायक, वादक आदि कलाकारों का उत्तरदायित्व केवल रेडियो सस्था पर न छोड दिया जाय। जिन्होंने साधनापूर्वक कला की सेवा और रक्षा की है शासन की सबलभुजा उनकी सुध ले।

(आ) जो साहित्य सेवी स्वर्गवासी हो गये हैं, उनके परिवारों और अप्रकाशित साहित्य की ओर हमारी दृष्टि जा सके। स्वर्गीय विनय कुमार, स्वर्गीय मगलीप्रसाद सूबेदार तथा स्वर्गीय इन्द्रबहादुर खरे आदि कितने ही साहित्यिकों की रचनाएं पडी हैं कि जिनकी ओर ध्यान देते ही एक नया काम हमारी साहित्यिक गतिविधि में हो सकेगा।

(इ) समस्त देश में और उसी प्रकार इस प्रदेश में साहित्य लिखने वालों की दुर्दशा है। इस श्रेणी में जो लोग शिक्षा विभाग में अथवा किसी सरकारी विभाग में नौकरी पा गये उनके सिवाय जो लोग केवल मनस्क्रिप्ट लिखकर ही जीना चाहते हैं उन्हे जीवन-दान मिलना चाहिये। १९३९ के पहले उदासीन ब्रिटिश शासन के सिवाय उनका शत्रु वह गरीबी रही है जो प्रकाशक की उस लाचारी से पैदा होती थी जो कहता था कि "हम तुम्हारी पुस्तके कैसे छापें, कहीं से कोई माग भी तो हो"। युद्ध के दिनों में प्रकाशक ने कह दिया कि "हम तुम्हारी पुस्तके कैसे छापें, कहीं से कागज भी तो मिले!" युद्धोत्तरकाल में—नये स्वराज्य में—प्रकाशक ने कहा "तुम्हारी पुस्तके छापने के बजाय हमें तो स्कूली किताबें छापना है, तुम्हारी किताब कैसे छापें?" इस तरह इस देश के और इस प्रदेश के भी मैनस्क्रिप्ट राइटर को मार डालने और मर जाने पर उसके पुन पैदा न होने देने का षडयन्त्र बजाने ही कुछ ऐसा मच गया है कि कोई मैनस्क्रिप्ट राइटर होकर जीने का साहस नहीं करता। हमारे अनन्त प्रयत्नों में ऐसा न हो कि हमारे ज्ञान पर मैनस्क्रिप्ट राइटर के मरण के खून के दाग लगें। हमें उसे जीवित करना चाहिए और जीवित रहने देना चाहिए। हमारे प्रयत्नों में भाषा-भेद और किसी की नाराजी-खुशी के भेदों का कोई जगह नहीं होनी चाहिए।

(ई) इस राज्य के तथा साहित्य जगत के रोगी और अपाहिज कलाकारों की ओर भी हमारी दृष्टि जानी चाहिए। मौसम में दूध निकालकर फिर कसाईखाने में बेची जाने वाली गाय की तरह उनके प्रति दुर्लक्ष नहीं होना चाहिए, क्योंकि साहित्य और कला की पीढियां तभी पनप सकती हैं जब सामाजिक व्यवस्था उनका ध्यान रखे। हम यह भी देखें कि क्या ऐसा वातावरण हम दे सके हैं कि स्वदेश में अथवा विदेशों में जाकर साहित्य और कला की इकाइयां, सौन्दर्य, पहुच, और चिरन्तनता के क्षेत्र में—नई पीढियां, मध्य जीवन की पीढियां तथा परिपक्व अनुभव की पीढियां—प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकें। बाहर का लेखक अपनी रचनाओं में बडी सरलता से चीन का और स्विटजरलैण्ड का अपनी पुस्तक के एक ही पृष्ठ पर उदाहरण दे देता है, भारतीय लेखक उसे टुकुर-मुकुर देखकर पढ लेता है। साहित्यिकों को लम्बे उपदेश देने वाले असाहित्यिक इस बात को अनुभव ही नहीं करते कि साहित्यिक को भूख लगती है, उसकी ज्ञान पिपासा में उसे दूर और पास जाने और मानव-मन तथा प्राकृतिक विविध व्यवस्थाओं को समझने देखने की आवश्यकता है।

मैं इन बातों का विस्तार नहीं करता, केवल एक दिशा की तरफ सकेत मात्र करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। कभी-कभी वे फेहरिस्तें उठाकर देखने की आवश्यकता है कि किन राज्यों के लेखकों की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ सरकारी रीति से हमारे राज्य में चलती हैं और हमारे राज्य का साहित्य उन राज्यों में नहीं चल पाता। यदि इस बात की

तरफ ध्यान देने वाला कोई न होगा तो अन्य प्रान्तों की टेक्स्ट-बुक कमेटीज तथा सरकारी विभाग इन बातों पर ध्यान न दे पायेंगे। एक दो लेखन के धनी तो अपने लिए स्थान बना ही लेते हैं किन्तु हमें समूचे राज्य के लेखकों और कलाकारो के हित-अहित पर दृष्टि रखनी पड़ेगी।

मैने ये सब बाते इसलिए लिख दी कि पडित रविशकर शुक्ल के युग मे इन बातो की ओर अधिक ध्यान दिया जा सकता है। राज्य के अन्दर भी और बाहर भी। यदि शासक, नेता अथवा अग्रगामी अपने स्वयं के लिखे साहित्य को आगे बढाने का मोह न छोड़ सके तो वे समाज के साहित्य और कला अग की निस्वार्थ-सेवा करने मे सफल नही हो सकते। पडित रविशकर जी ने इस प्रान्त की नन्ही पीढियों को गोद खिलाया है अत. मैं इन उत्तरदायित्वों की ओर इस सुअवसर पर उनका ध्यान खीचना चाहता हूं।

यह हमारे भूल जाने की वस्तु नही है कि राष्ट्रभापा प्रचार का देशव्यापी कार्यालय हमारे ही राज्य मे है तथा नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन अथवा और भी कुछ सस्थाएँ अखिल भारतीय आधार पर राष्ट्रभाषा के उत्तरदायित्व के निर्माण-कार्य मे लगी हुई है। मुझे हर्ष है कि हमारे प्रान्त का, रविशकर जी के अधिनायकत्व में, उन सब बातो की ओर लक्ष्य है। पडित रविशकरजी को यह गौरव है कि केन्द्रीय शासन और अनेक राज्यीय शासन जिस हिन्दी का प्रयोग करने जा रहे है उसका निर्णय और निर्माण इन वर्षो मे अधिकतर मध्यप्रदेश मे ही हुआ है। किन्तु भाषा का क्षेत्र ऐसा है कि सास, व्यापार, और सूझ की तरह इनकी यात्रा वन-वे ट्रैफिक की तरह नही होती। अत. हमारे शासन की शक्ति बढ़ाये रखने के लिये आदान-प्रदान की परम्परा को सबल बनाये रखना आवश्यक है। मराठी भाषा के साथ हिन्दी का बन्धु-भाव बहुत पुराना है और पडित रविशकर शुक्ल ने उस बन्धुत्व की रक्षा करने मे जो कुछ किया है, उस भाव-भूमि पर आगे बढ़कर हमें—हम मराठी और हिन्दी भाषियों को—दक्षिण भारत की भापाओ के मधु-सचय को अपने साहित्य के रस-घट मे भर-भर कर निहाल होना चाहिए।

पंडित रविशकर शुक्ल की भुजाओ पर नर्मदा की निर्मलता, ताप्ती का अखण्ड सौन्दर्य और महानदी की गौरव-गरिमा शोभित रहे, और कपास, ज्वार और गेहू के लहलहाते पौधे उनकी भुजा के संरक्षण पर गर्व कर सके तथा हमारी खदाने, हमारे जन-जीवन के नरनारी इस बूढ़े तरुण के अन्त करण में अपने विश्वासो को सँजोकर रखते रहे—यह मेरी भगवान से प्रार्थना है।

शुक्लजी की विशेषताएँ

श्री दुर्गाशकर मेहता, उद्योग-मत्री, मध्यप्रदेश

लम्बे अरसे की बीमारी से काफी शिथिलता आ गई थी। ऐसी अवस्था में कुछ भी लिखना जी पर आ रहा था। वियाणीजी का पत्र मिलने पर भी और इच्छा होते हुए भी लाचारी मालूम हो रही थी कि तारीख १५ का रामगोपालजी का पत्र जिसमें लाल स्याही से 'जरूरी' टँका हुआ था, तारीख २० को आ ही धमका। बूढ़े-नेता का ऋण और मित्रों का आग्रह एक बार फिर जाग उठा और हिम्मत करके दो-चार टूटे-फूटे शब्दों की श्रद्धाजलि अर्पित करने को बैठ ही गया।

दिसबर १९०९ की बात है। मैं और मेरा छोटा भाई मित्रवर श्री करुणाशकर दवे के साथ कलकत्ता पहुचे थे कि वहा शुक्लजी से भेंट हो गई। उसी धर्मशाला में, जहा हम ठहरे थे, वे भी ठहरे थे। मैं मुसीबत का मारा छोटे भाई की मेडिकल कालेज में पढाई की चिन्ता में था। शुक्ल जी आये थे जी बहलाने। चिन्ता के बीच भी थोड़ा-बहुत चित्त बहलाने का अवसर कौन नही निकाल लेता। खैर, शुक्लजी की तीव्र इच्छा थी आपेरा (Opera) देखने की। मैं भी साथ हो लिया। यह थी मेरी पहली भेंट। फिर कई दिनो तक उनसे भेंट नही हुई, क्योकि मैं था पडित सुन्दरलाल के केम्प में और शुक्लजी थे श्री राघवेन्द्रराव के केम्प में। अन्तत श्री राव ने जादू का हाथ शुक्लजी पर फेरा ही पर मुझपर उनका मत्र बेकार सावित हुआ यद्यपि डा मुजे भी उनके सहयोगी थे। श्री राव, शुक्लजी और मैं अपने-अपने जिले की डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के सभापति थे। इस तरह का हमारा दूर का सम्बन्ध था जरूर, परन्तु सन् १९२१ के झण्डा-सत्याग्रह के ये दोनो विरोधी थे और मैं उसमें डूब चुका था। यद्यपि बाद में १९२३ में हम तीनों श्री चित्तरजनदास की स्वराज्य पार्टी में शामिल हो गए तो भी मेरी और शुक्लजी की कार्य पद्धति में फर्क था। जहा वे डिस्ट्रिक्ट कौंसिल को काग्रेस की सहचरी बनाने में सलग्न थे, मैं उस नीति को अनीति मानकर इस सस्था को काग्रेस से अलग रखना चाहता था। परतु सन् १९३० के सत्याग्रह में रायपुर के स्कूल मास्टरो ने काग्रेस का साथ देकर मेरी धारणा को असत्य ठहराया। इसी अवसर पर मैंने शुक्लजी की सगठन-शक्ति का नमूना पाया और वह शक्ति उनके कार्यों में आज तक पाई जाती है। यदि कहीं मेरा मतभेद आया तो उनकी अपनी मुर्गी की एक टाग की दलील से। हम लोग १९४२ के आदोलन में एक ही जेल में नजरबद थे। रात्रि में शुक्लजी जब बुलढाना से नागपुर लाए जा रहे थे, मैं भी साथ था। वे आदोलन के विषय में डीग मारने बैठ गए और पुलिस इस्पेक्टर जो मुसलमान था, उसके सामने कह बैठे कि रायपुर में जेल की दीवार ढा देने का वे पूरा-पूरा प्रबध कर चुके थे। एक दिन का समय मिलता तो "डाइनामैंट" लगाकर दीवार तोड दी जाती। इसका परिणाम तत्काल तो कुछ भी नही हुआ परन्तु जब वेलोर जेल में हम लोग बद कर दिए गए तब बात आई हम लोगो को कम्पाउड के भीतर खुले रहने की। तब आई जी जेल्स के सामने यह चर्चा निकली कि यदि बँदी यह वचन देवे कि वे बाहर निकलने का प्रयत्न नही करेगे तो खुले रह सकते हैं। शुक्लजी अपनी आदत के अनुसार दमक कर बोले कि हमको मौका मिले तो हम आज दीवार फाँदकर निकल जाने पर आमादा हैं। गनीमत थी कि वहा का जेल सुपरिटेंडेंट अग्रेज था। उसने बात सँभाल ली और यह कह आई जी को शात किया कि सारी जिम्मे-दारी उसकी है और वह इस जिम्मेदारी को अपने आप पर झेलने को तैयार है।

दूसरी बात जो मैंने पाई और जो शुक्ल जी के स्वभाव की खासियत है वह है उनकी कार्यपरता की। काम स्वय अपने हाथो करने की आदत जो उनकी विशेषता है वह सराहनीय अवश्य है, परतु इस तरह का अविश्वास जो दूसरो के किए हुए काम पर उत्पन्न होता है और जो औरो की कामपरता की क्षति करता है उनके स्वय के ऊपर पड़े हुए बोझ को कई गुना बढाता है और कार्य की प्रगति में बाधक होता है। हर काम में दिलचस्पी लेना एक बात है और उसे अपने ही हाथो करने की इच्छा रखना दूसरी। जब काम कम हो तब तो बात सध जाती है परतु जहा काम की प्रचुरता हो वहा तो काम बाट लेना आवश्यक हो जाता है।

यह सब होते हुए भी शुक्ल जी की काम करने की शक्ति की सराहना करनी होगी कि वे दिन-रात समय का विचार बिना किए काम करते रहते हैं। भोजन का समय टल भले ही जावे, सोने का समय भी खत्म हो जाव, इन सब बातो को बरदाश्त कर काम में लग रहना, स्वास्थ्य का विचार न रखते हुए कुतूहल उत्पन्न करने वाला है। इतनी अवस्था में, इस तरह दौड-धूप के साथ साथ, काम करने की उनकी शक्ति अद्भुत है। इतना होकर भी वे अपने आपको विचल नही होने देते। जब भी मिलो उनका हृदयहारी स्मित उनके वदन पर खेला ही करता है। चारो ओर से विरोधी गण उन्हें भले ही विचल करने का प्रयत्न करते हो तब भी वे अचल और निर्भीकता से काम में लगे रहते है। यह है उनके स्वभाव की विशेषता।

गुरुदेव

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

खैरागढ़ के छोटे-बड़े सभी लोगों के लिये हमारे प्रान्त के मुख्यमंत्री पं. रविशंकरजी शुक्ल गुरुदेव हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति नही होगा जिसकी सच्ची श्रद्धा और गुरु की तरह आदर के पात्र वे न हों। जब वे खैरागढ़ मे हेडमास्टर होकर आये तब मैं बिलकुल छोटा था। परन्तु उन्ही दिनों मैं हिन्दी कथा-साहित्य के मायालोक मे प्रविष्ट हो चुका था। सन् १९०३ कितनी ही बातों के लिये मेरे लिये चिरस्मरणीय वर्ष है। इसी वर्ष खैरागढ मे पहिली बार प्लेग का आगमन हुआ। मेरे एक सहपाठी तत्कालीन दीवान साहब के सबसे छोटे पुत्र थे। उन्ही पर सबसे पहले प्लेग का आक्रमण हुआ। सभी लोग खैरागढ छोडकर भाग निकले। सुना कि हम लोगो के हेडमास्टर शुक्ल जी ही उस लड़के की सेवा के लिये रुक गये। उस लड़के की तो मृत्यु हो गई परन्तु खैरागढ़ के सभी लोगों के हृदय-सिंहासन पर शुक्ल जी अनायास ही अपने उसी एक कृत्य से आसीन हो गये।

उस समय खैरागढ मे राजा कमलनारायण सिंह जी शासन करते थे। साहित्य और संगीत दोनो की ओर उनकी विशेष अभिरुचि थी। खैरागढ़ मे मैंने साहित्य का एक विशेष वातावरण अपने बाल्यकाल मे पाया। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि आजकल खैरागढ मे शिक्षा और सभ्यता की विशेष वृद्धि हो गई है तो भी अब साहित्य का वह विशुद्ध वातावरण नही रहा। उस समय के अधिकाश लोगो मे मैंने साहित्य के प्रति एक विशेष अनुराग पाया। उसका एक कारण यह है कि राजा साहब के कारण कितने ही लब्ध-प्रतिष्ठ विज्ञ लोग खैरागढ आया करते थे। यह भी एक सौभाग्य की बात थी कि शुक्ल जी हेडमास्टर होकर आये और उनके कारण स्कूल मे ही नही नगर मे भी ज्ञान का एक विशेष वातावरण हो गया। आजकल भी प्राय सभी स्कूलो मे एक डिबेटिग सोसाइटी रहती है। उसमे मास्टर और छात्र सभी लोग सम्मिलित होकर कितने ही विषयो पर विचार किया करते है। परतु शुक्ल जी के समय में विक्टोरिया हाई स्कूल मे डिबेटिग सोसाइटी की बैठक एक महत्वपूर्ण बात थी। उसमे मास्टर और छात्र ही नही उपस्थित रहते थे परन्तु नगर के कितने ही विज्ञ-जन सम्मिलित होते थे। लगभग तीन बजे से बैठक प्रारम्भ होती थी और आठ-नौ बजे रात्रि तक उसकी समाप्ति नही होती थी। मै इतना छोटा था कि विवाद के विषय को समझ नही सकता था। जब और लोग ताली पीटते थे तब मैं भी ताली पीटता था। पर मन मे एक विस्मय और कौतूहल का भाव अवश्य उत्पन्न होता था सोचता था कि इन वक्ताओं मे ज्ञान की वह कैसी गरिमा होगी जिसके कारण इतने लोग यहां मंत्र-मुग्ध बैठे है। प्राय. सबसे अत मे शुक्लजी बोलते थे। उनके बोलने की एक विशेषता उस समय मैंने अवश्य लक्षित की थी। वे जब खड़े होते थे तब हाथ मे एक पेन्सिल अवश्य रखे रहते थे और उस पेन्सिल को अपनी टेबिल से दबाये रखते थे। उनकी वाणी मे एक गम्भीरता थी। ऐसा जान पडता था कि मानों वे किसी बात का अंतिम निर्णय दे रहे है। उसमे उनके विश्वास की एक दृढता लक्षित होती थी। वे कभी विक्षुब्ध प्रतीत नही हुए। आवाज स्पष्ट होने पर भी कभी कर्कश नही होती थी।

उन दिनों स्कूल की कुछ दूसरी ही नीति थी। लडकों के लिये बेतो की सजा अत्यत साधारण बात थी। छोटे से छोटे लड़के से लेकर बड़े से बड़े लड़के तक को बेत की सजा दी जाती थी। बेत की गणना स्कूल मास्टरों के लिये सबसे अधिक आवश्यक वस्तुओ मे होती थी। ऐसा कोई भी मास्टर नही था जो बेत लेकर नही जाता था और कदाचित् ऐसा कोई भी मास्टर नही था जिसको दूसरे दिन फिर नई बेत की आवश्यकता न पड़े। स्कूल से भाग जाने वाले विद्यार्थियों के लिये एक चपरासी भी नियुक्त था। उसका काम था खोज-खोज कर विद्यार्थियो को पकड़ लाना। सारे स्कूल मे ५० से अधिक विद्यार्थी रहे भी नही। इसीलिये छोटे-बड़े सभी छात्रो पर मास्टरों और हेडमास्टर की दृष्टि रहती थी। अभाग्यवश या सौभाग्यवश उन दिनो मैं देवकीनन्दन खत्री के मायाजाल मे बद्ध हो चुका था। स्कूल के पाठ मुझे अत्यंत नीरस प्रतीत होते थे। अवसर पाते ही मैं घर से 'चन्द्रकान्ता सतति' का कोई भाग लेकर भाग जाता था। पर कभी न कभी म पकड़ा भी जाता था। तब मैं हेडमास्टर के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। कम से कम छ. बेतों की सजा तो मुझे अवश्य ही मिलती थी। उसके बाद क्लास के भीतर भी मैं खूब पिटता था। एक बार शुक्ल जी ने पूछा कि तुम स्कूल आते क्यो नही ? मैंने कहा 'एक टोनही के कारण मैं स्कूल नही आ सकता।" शुक्ल जी खूब हंसने लग गय ; परन्तु उन्होने कहा कि मैं तुम्हारी टोनही को बेतो की मार से भगा दूगा। यह बात

वे अभी तक नही भूल सके। जब कभी वे खैरागढ आये तब उन्होने इस बात का उल्लेख अवश्य किया। यथार्थ में किसी चुडैल के माया-पाश से कही अधिक दृढतर पाश खत्री जी का मायाजाल था। मैं यह नही समझता था कि मैं "भैरोंसिंह" नही हो सकता। मैं टूटे-फूटे घरो में अवश्य घूमने जाया करता था। मैं खेतो में जाकर उस आसमानी रग के फूल की खोज करता था जिसके रस से जगनाथ ने वीरेन्द्रसिंह को चैतन्य किया था। मैं तो छोटा था पर मेरे इस काम में सहायक जो गजराज बाबू थे वे ऊची कक्षा में पढते थे। यह सच है कि वे स्कूल से नही भागते थे। पर अवसर मिलते ही वे भी मेरे साथ घूमा करते थे। चन्द्रकान्ता सतति के मायाजाल में वे भी आबद्ध हो चुके थे। एक बार हम लोगो ने बडे परिश्रम से एक बेहोशी की दवा तैयार की। हमें विश्वास था कि तम्बाकू के साथ किसी को वह दवा पिला देने से वह बेहोश हो जायेगा। हमने उसे एक व्यक्ति को दिया। वह गजेडी था। उसे पीकर वह बडा प्रसन्न हुआ। परन्तु वह बेहोश नही हुआ।

कुछ दिनो के बाद शुक्ल जी चले गये। उनके स्थान में एक दूसरे वयोवृद्ध विद्वान हेडमास्टर होकर आये। उनका नाम था श्री बिहारीलाल जी शास्त्री। उनकी बडी प्रशसा थी। तब तक अज्ञात रूप से म हिन्दी साहित्य से विशेष परिचित हो गया था। उस समय आर्यसमाज के शास्त्रार्थों की विशेष चर्चा हमारे नगर में होती थी। बिहारीलाल जी शास्त्री मध्यप्रान्त के पहिले ग्रेजुएट माने जाते थे। परन्तु स्कूल में वह आतक नही रहा जो शुक्ल जी के समय में था।~ कुछ समय के बाद बिहारीलाल जी तत्कालीन युवराज दिवगत राजा लालबहादुरसिंह के प्राइवेट ट्यूटर हो गये और उनके स्थान में फिर शुक्ल जी नियुक्त हुए। मैं तब तक सेकण्ड क्लास में पहुच गया था और मेरी गणना अब साधारण अच्छे लडको में होने लगी थी। उन्होने जब ट्रासलेशन का पेपर जाचा तब उसमें मुझे सबसे अधिक मार्क्स् मिले। इस पर उन्होने फिर मझे बुलाकर कहा "देखो तुम्हारी वह चुडैल किस तरह भाग गई।" फिर साल-डेढ साल बाद वे एल एल बी की परीक्षा पास कर रायपुर चले गये और वही वे रहने लगे।

शुक्लजी के प्रति मेरे हृदय में जो एक आतक का भाव था वह अभी तक विलुप्त नही हुआ है। मैं अभी तक उनके समक्ष खडा नही हो सकता। यह मेरे लिये असभव बात है कि वे मुझे कुछ आज्ञा दें और उसे मैं तुरन्त ही न करू। मैं हिन्दी के कितने ही मार्मिक पत्रो में १९११ से लेख लिखता आ रहा हू। यह बात उनसे छिपी नही थी। मेरी उन्नति से उन्हे सतोष ही हुआ। जब मैं 'सरस्वती' का सम्पादन छोडकर नादगाव में मास्टर हुआ, तब वे रायपुर की डिस्ट्रिक्ट कौसिल में चेयरमेन थे। एक बार उन्होने शिक्षको का जो सम्मेलन कराया उसमें उन्होने मुझे भी व्याख्यान देने के लिये बुलाया। उसके पहिले दो-चार स्थानो में मैं व्याख्यान दे चुका था। मेरे लिये सबसे कठिन समस्या यह हुई कि मैं उनकी उपस्थिति में कैसे बोल सकूगा। परन्तु जब मैंने उस अवसर को टालना चाहा तब फिर उनकी आज्ञा आई और मुझे जाना पडा। पहिली बार उनकी उपस्थिति में मैंने उस शिक्षक-सम्मेलन में व्याख्यान दिया। पर उसका यह परिणाम अवश्य हुआ कि अब किसी की भी उपस्थिति में मैं बोलने का साहस कर सकता हू।

साहित्य के क्षेत्र में काम करने के कारण म कितने ही स्थान गया और कितने ही लोगो से मिला भी पर शुक्ल जी के विशेष सम्पर्क में मैं कभी नही आया। एक बार उन्होने मुझको अपने एक साप्ताहिक पत्र में काम करने के लिये भी बुलाया परन्तु मैं नही जा सका। मैं बम्बई चला गया। वहा से लौटकर मैं जबलपुर आया। जबलपुर से जब म खैरागढ लौटा तब मुझे यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि जिस थर्ड क्लास के डिब्बे में मैं बैठा हुआ था वही शुक्लजी ठाकुर प्यारेलालसिंह के साथ आकर बैठ गये। मुझसे भी बाते करने लगे। बम्बई में उन्ही दिनो सेठ गोविंददास जी के 'धुआधार' नामक चल-चित्र का प्रदर्शन हो रहा था। उसके सबध में भी चर्चा हुई। मैंने यह देखा कि शुक्लजी सभी बातो की ओर अनुराग रखते थे और सभी तरह की बात जानने के लिये उत्सुक रहते थे। उसके बाद फिर भेंट नही हुई। जब खैरागढ में सोशल गेदरिंग की रजत-जयन्ती मनाई गई तब विशेष रूप से उन्हे निमत्रण दिया गया। मैं भी विक्टोरिया हाईस्कूल में मास्टर था। उस समय उन्होने बडा ही प्रभावशाली व्याख्यान दिया। उसका प्रभाव अभी तक मुझपर है।

समय चला जाता है। परिस्थिति भी बदल जाती है। मैं उनके सामने कभी बालक था। अब मैं स्वय वृद्ध हो गया हू। अतीत काल की सभी बाते स्पृहणीय हो जाती है। काल की गति की सबसे बडी विशेषता है कि उसमें भावो की तीव्रता नही रह जाती। मैं आज यह स्पष्ट अनुभव कर रहा हू कि मेरे जीवन में जिस एक व्यक्ति का सबसे अधिक प्रभाव अलक्षित रूप से विद्यमान रहा वे पडित रविशकर जी शुक्ल है। वे मेरे शिक्षा-गुरु नही रहे परन्तु शिक्षा-गुरुओ के द्वारा मैंने जो कुछ भी शिक्षा प्राप्त की उससे कही अधिक प्रभावोत्पादक शुक्ल जी का व्यक्तित्व मेरे लिये रहा। इसीलिये आज मैं उनको अपना सच्चा प्रणम्य गुरुदेव मानकर अपने हृदय की सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित कर अपने को कृतकार्य समझ रहा हू।

शुक्लजी का व्यक्तित्व

पंडित कुंजीलाल दुबे, अध्यक्ष, विधान सभा, मध्यप्रदेश

यह हमारे राज्य का सौभाग्य है कि उसे देश की स्वतंत्रता के प्रथम दशक ही में पंडित रविशंकर जी शुक्ल सरीखे राष्ट्र-व्रती और सुघड़ शासक की सेवाएं मुख्य मत्री के रूप मे, प्राप्त हुई है।

शुक्लजी मध्यप्रान्त के राजनैतिक जीवन के नेता और निर्माता दोनों ही रहे हैं। इतिहास में तीन प्रकार के नेता होते आये हैं—(१) वे जिन्हे नेतृत्व की शक्ति प्रकृति से प्राप्त होती है, (२) वे जिन्हे परिस्थिति नेता बना देती है, और (३) वे जिनके नेतृत्व का आधार केवल उनकी आत्म-कल्पना ही होती है। कहने की आवश्यकता नही कि इन तीन कोटियो मे से शुक्ल जी किस कोटि के नेता है। उनके व्यक्तित्व की शुभ्रता, उसकी गठन और ओज, मुख की मुस्कुराहट और मूछो की फर्राहट,—ये सभी पुकार-पुकार कर कहते है कि यहा जनता का एक जन्मजात नेता मौजूद है।

उच्च कोटि के नेता और शासक होने पर भी उनका सब कार्य मानवीय धरातल पर ही चलता है। कायदा-कानून की भूल-भुलैय्यों मे वे यह कभी नही भूलते कि राज्य और राजनीति का सारा खेल, सुख-दु:ख और इच्छा-द्वेष के उन केन्द्रों के लिये है जो मनुष्य कहलाते है। यही दृष्टिकोण सदा उनके सन्मुख रहता है और इसीलिये उनकी सहज मैत्री की सरल मुद्रा के सन्मुख, अपनों का और दूसरों का, दोनो ही का विरोध, आप ही आप गलित होने लगता है। अपनों से सख्ती की और विरोधियों से स्नेह की आवाज मे बोलने की कला के उनके सरीखे प्रकृति-प्रवीण कलाकार विरले ही मिलेंगे।

सिद्धान्त, कानून और सहज बुद्धि इन तीनों का परस्पर सम्बन्ध और तीनो के क्षेत्र की इयत्ता शुक्ल जी खूब समझते हैं। मित्र, अमित्र और उदासीन, सभी पर उनकी स्कंध-स्पर्शिनी अच्युत सम्मोहन-शक्ति की सफलता का यही रहस्य है।

भारत के प्राचीन नीति-शास्त्रियो ने मंत्रियों के जिस आदर्श का विशद वर्णन किया है, आधुनिक युग में हमें उसकी झांकी शुक्ल जी के व्यक्तित्व मे मिलती है।

शुक्ल जी ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे, मध्यप्रदेश की जो सेवा की है, आज उसका यथार्थ मूल्य आंकना सम्भव नहीं। हमारे प्रदेश के इस राजनैतिक भीष्म-पितामह का योगदान अभी भी प्रदेश की राजनीति ही का अंग है, इतिहास का नहीं। प्रदेश के राजनैतिक क्षेत्र के प्राय: सभी नेताओ के व्यक्तित्व मे शुक्ल जी के व्यक्तित्व की छाप है—फिर चाहे वह उनके सहयोग से पड़ी हो, चाहे उनके विरोध से।

पर हाल में उन्होंने हमारे प्रदेश की जो दो प्रमुख सेवाएं की है, वे अवश्य ही उल्लेखनीय हैं— एक आर्थिक क्षेत्र में, दूसरी सांस्कृतिक क्षेत्र में। अपने सतत् प्रयत्न से भिलाई मे लोहे का बड़ा कारखाना स्थापित कराकर उन्होंने जो अपने राज्य और अपने राष्ट्र की सेवा की है, उसके आर्थिक फल की विशालता, कुछ काल के पश्चात् पूर्ण रूप से दृग्गोचर होगी। और मेरा विश्वास है कि हिन्दी और मराठी को राज्य की राजभाषा बनाकर शुक्ल जी ने जो हमारी संस्कृति और आत्म-गौरव के लिये कार्य किया है, उसका प्रभाव न केवल मध्यप्रदेश के शासन और संस्कृति पर, किन्तु देश के अन्य राज्यों के शासन और संस्कृति पर भी, बहुत कल्याणकर सिद्ध होगा। आयर्लैन्ड के इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप, शासन और शिक्षा में भाषा का महत्व शुक्ल जी ने जितना हृदयंगत किया है उतना हमारे देश के बहुत कम शासक अभी कर सके है। इस विषय में हमारे प्रदेश को अग्रणी होने का अभिमान है।

शुक्ल जी शतायु-सहस्रायु हों, इस अवसर पर मंगलमय भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है।

प्रेरणास्रोत या प्रकाशस्तंभ

डॉ बलदेव प्रसाद मिश्र

श्रद्धेय श्री पडित रविशकर जी शुक्ल प्राय रायपुर मे रहते रहे है और मै राजनादगाव में। हम दोनो की आयु का अन्तर भी प्राय वही है जो सामान्यत पिता और पुत्र के बीच हुआ करता है। परन्तु जिस तरह पिता और पुत्र में एक नैसर्गिक निर्हेतुक आकर्षण हो जाया करता है, कुछ उसी तरह का आकर्षण हम दोनो के बीच रहता आया है। अलग-अलग स्थानो में रहने का व्यवधान इस भाव में बाधक होने ही नहीं पाया। श्री शुक्ल जी के चाचा राजनादगाव की सूती मिल के पहिले मैनेजर रहे है और मेरे पिताजी के चाचा उस मिल के प्रथम निर्माता (इमारती ठेकेदार)। दोना घरानो में तब से स्नेह-सम्बन्ध चला आ रहा है। परन्तु हम दानो के पारस्परिक आकर्षण का कारण केवल उतना ही नही है। मान्यवर शुक्ल जी में कुछ गुण ही ऐसे है कि हम सरीखे न जाने कितने व्यक्ति ऐसी ही आत्मीयता के साथ उनकी ओर आकृष्ट हुए होगे।

लोग कहते है कि खाद्य पदार्थों में सम्मिलित किया जाने वाला बडा भी बडा तब बनता है जब वह सारे जल को सोख लेने की शक्ति रखे, पत्थर के सिल लोढे के प्रहार भलीभाति सह सके और स्नेह (तेल या चिकनाई) में अच्छी तरह पक उठने की क्षमता लिये हुए हो। तभी वह लोगो की जिव्हा का आकर्षण बन पाता है। मनुष्य का बडप्पन भी तभी निखरता है जब वह खारे आसूओ को पी जाने की पूरी क्षमता रखे, अपनी निजी व्यथा की कही चर्चा तक न करे, परिस्थितियो के शिला-सघर्ष को भलीभाति सह सके, किसी भी प्रकार की बाधा या विपत्ति में अपनी आशावादिता, अपना धैर्य, अपनी शक्ति न खोवे और बडी से बडी विपत्ति का प्रसन्नतापूर्वक साहस और सफलता के साथ मुकाबिला करे। परन्तु यह सब होते हुए भी उसका हृदय इतना स्नेहसिक्त रहे कि न केवल समूची मानव-जाति को ही किन्तु अखिल प्राणिवर्ग को भी वहा तक पहुचने पर स्निग्धता का अनायास भान हो जाय। श्री शुक्ल जी में कुछ ऐसा ही बडप्पन है जिसके कारण हृदय मे बरबस उनके प्रति एक श्रद्धापूर्ण आत्मीय भावना-सी जाग्रत हो उठती है। हमने ऐसे अनेक व्यक्ति देखे है जो तीव्र आलोचक-भावना अथवा विरोध भावना लेकर श्री शुक्ल जी के पास पहुचे है, परन्तु उनके स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व से कुछ ऐसे प्रभावित होकर लौटे है कि फिर उनके पास श्री शुक्ल जी की प्रशसा के अतिरिक्त और कोई शब्द ही नही रह गये।

राजनादगाव की पाठशाला के छात्र की हैसियत मे मै श्री शुक्ल जी का वही रूप देखा करता था जो एक अच्छी खासी फीस की रकमें बटोरने वाले भव्य वेषभूषाधारी उस जमाने के वकील का हो सकता था। ईश्वर ने उन्हें नेतृत्व के योग्य शरीर-सम्पत्ति भी अच्छी दी है। बलिष्ठ श्री शुक्ल के प्रभावशाली गौर मुखमण्डल पर विजय-वैजयन्ती-सी फहराती मूछें दूरदर्शिनी और सूक्ष्मदर्शिनी शक्तियो से भरी हुई आकर्षक तेजस्विनी आखें और सक्रामक उन्मुक्त हास्य से भरी उज्ज्वल दन्तपक्ति तथा इन सबके साथ बढिया से बढिया फैशनेबल कपडे और फिर उत्तम से उत्तम सवारी इत्यादि, इत्यादि। मैने जब कालेज में प्रवेश किया तब हिदी की रचनाए आरम्भ कर दी। श्री शुक्ल जी ने मुझे एकदम प्रोत्साहित करना प्रारम्भ कर दिया। बडा प्रेमपूर्ण सम्मान देते हुए वे मेरी रचनाए सुनने का आग्रह करते। जिसकी भव्यता के आगे एक नवयुवक दबा दबा सा रहे वही यदि उस नवयुवक के मानसिक धरातल पर उतर कर उसे प्रोत्साहन देने लग जाय तो अनायास कितना बल प्राप्त हो जाता है यह भुक्तभोगी ही जान सकते है।

सन १९२०-२२ के आन्दोलन के दिनो मे राजनादगाव के बन्धुओ की यत्किचित सेवा करने के बाद जब मै अपनी वकालत की तख्ती टागने रायपुर पहुचा, तब श्री शुक्ल जी ने मुझे तुरन्त अपना सहकारी नियुक्त कर लिया और दो ऐसे मूलमन्त्र बताए जो आज तक मेरे लिये प्रेरणास्रोत रहे है। पहिली बात तो उन्होने यह बताई कि वकीलो की श्रेणी में अनेक लोगो को विद्यमान् देखकर मुझे यह कदापि नही समझ लेना चाहिये कि नवागन्तुक के लिये क्षेत्र नही है। क्षेत्र सदैव शिखर पर रहा करता है न कि पदतल पर (देयर इज आल्वेज वेकेन्सी एट दी टॉप)। नवागन्तुक इसी भावना से ऊपर चढने का उत्साह रखे। दूसरी बात उन्होने अपने ही जीवन की घटनाओ का आधार

देते हुए यह बताई कि संघर्ष का अवसर आने पर चाहे वह वकालत के ही मैदान मे क्यों न हो, अपना 'प्रतिद्वन्द्वी' जितना प्रबल होगा उतना ही अपने लिये उत्तम अवसर मानना चाहिये। क्योंकि ऐसे ही अवसर पर तो मनुष्य की सोई हुई शक्तियां जागती और उसे अपने जौहर दिखाने का मौका देती हैं, जिससे न केवल उसका नाम वढ़कर चारो ओर फैल उठता है किन्तु भविष्य के लिये उसकी धाक भी अच्छी जम जाती है। ऐसे द्वन्द्व मे यदि हार भी हुई तो वह कोई लज्जा की वात नही होती और यदि जीत हुई, जिसकी सदैव आशा रखनी चाहिये, तव तो फिर कहना ही क्या है। इस दूसरी वात के सम्वन्ध मे उनका मनोवल इतना प्रवल रहा है कि वे न केवल व्यक्तियो के संघर्ष ही सफलतापूर्वक झेल सके हैं किन्तु परिस्थितियों और दैवी व्याधियो के संघर्ष मे भी विजयी होकर आगे बढे है। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जिस दिन वे उग्र ज्वर के भीषण ताप से कराहते जाते और घण्टो-घण्टों मे ली जाने वाली खूराकें मिनटों मिनटों ही मे साफ करते चले जारहे थे, किन्तु एक पेचीदे मामले की भारी मिसल का अध्ययन छोड़ नही रहे थे। उनका दृढ़ निश्चय था कि वे दूसरे ही दिन उस मुकदमे की लम्वी वहस निपटा देंगे। आखिर यही हुआ। वुखार को भाग जाना पड़ा और दूसरे दिन अपनी सहज प्रसन्न मुद्रा मे श्री शुक्ल जी घण्टों खड़े-खड़े उस मुकदमे पर अपनी वहस करते रहे और प्रतिपक्षी को करारे उत्तर देते रहे।

राजनैतिक क्षेत्र मे उतरने के पूर्व भी श्री शुक्ल जी मे लोकसेवा की लगन पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान् थी। जो भी व्यक्ति उनके पास नेक सलाह के लिये गया वह विमुख नही लौटा। जहा-जहा उन्होंने समझा कि उनकी सेवाओ की आवश्यकता है वही-वही वे नि:सकोच आगे वढ़ गये। हिन्दी के लिये उनके मन मे पहिले ही से वहुत लगन थी और वे न केवल अपने प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रह चुके है किन्तु उसके जन्मदाताओं मे से भी एक है। जाति के लिये—कान्यकुब्ज समाज के लिये—तो उन्होंने इतना किया है जितना इस भारत भर मे शायद ही किसी अन्य कान्यकुब्ज सज्जन ने किया हो। कान्यकुब्ज सभा का सस्थापन, 'कान्यकुब्ज नायक' नामक सुयोग्य मासिक पत्र का संचालन, अनेकानेक छात्रवृत्तियो का व्यवस्थापन और इन सवसे वढ़कर कान्यकुब्ज छात्रावास के भव्यभवन का निर्माण, जिसमे उन्होंने अपनी ओर से भी हजारो रुपये लगा दिये, उनके इस दिशा मे उल्लेखनीय कार्य है। फिर भी उन्होंने जाति को राष्ट्र से वढकर महत्ता कभी नही दी। अपने भाषणो मे उनका सदैव यही कहना रहा कि जाति को राष्ट्र का एक अंग मानकर ही उसकी सेवा की जाय और जव कभी जातीय स्वार्थ तथा राष्ट्रीय स्वार्थ के वीच द्वन्द्व उपस्थित होने की संभावना दिखाई दे, उस समय नि.संकोच राष्ट्रीय स्वार्थ के हित मे जातीय स्वार्थ की वलि दे देनी चाहिये।

राजनैतिक क्षेत्र मे उनकी सफलता के अनेक कारणों मे से एक कारण यह भी रहा है कि वे 'किस व्यक्ति से कौन सा काम लिया जा सकता है' इसकी परख करने मे और तदनुसार उससे काम ले लेने मे वड़े दक्ष है। रायपुर मे राजनैतिक कान्फरेन्स होने वाली थी और पंडित जवाहरलाल नेहरू उसका अध्यक्षत्व करने आने वाले थे। वह धर-पकड का जमाना था। मैने उसके पूर्व ही रायपुर छोड़कर रायगढ़ मे मुलाजिमत कर ली थी। एक दिन अपने काम से रायपुर आया और सहज ही श्रद्धेय शुक्ल जी के दर्शन करने भी चला गया। उन्होंने तुरन्त निश्चय कर लिया कि मुझसे उक्त कान्फरेन्स के लिये एक जोशीला पद्य लिखवा लिया जावे। उन्हे इस वात की झिझक नही रही कि मै तो अव मुलाजिमत में चला गया हूं। उन्हे पद्य ऐसा चाहिये था जो आग भडका दे, फिर भले ही उसके लिये चाहे उन्हें और उनके साथियों को जेल जाना पड़े। उन्होने श्री. महन्त लक्ष्मीनारायणदास जी को मेरा पहरेदार वनाया और अपना मनचाहा पद्य लिखा ही लिया। आज भले ही उसमें आग न दिखाई पडे परन्तु उस जमाने के लिये वही पर्याप्त था। श्री शुक्ल जी ने कोई विशेष पैतृक सम्पत्ति नही पाई थी। जो कुछ था वह प्राय. सवका सव उनका स्वत: अर्जित द्रव्य था और न केवल उनका शानदार रहन-सहन, किन्तु उनके विशाल आतिथ्य-सत्कार के कारण दस-पांच सज्जन उनके यहां नित्य रहे ही आया करते थे। जव राष्ट्रीय आन्दोलनों मे भाग लेते रहने के कारण उन्हे जेल पर जल जाना पड़ा और वकालत ठप्प पड़ गई तव उन्हें और उनके कुटुम्वियो को जिस आर्थिक संकट से होकर गुजरना पड़ा है उसका आभास मनस्वी शुक्ल जी ने अपने समीपी मित्रो तक को नही दिया। ऐसे ही एक अवसर पर स्वर्गीय ई. राघवेन्द्रराव ने, जवकि वे इस प्रान्त के गृह मंत्री थे, एकान्त में मुझसे कहा "मिश्र जी, आप जानते है कि श्री शुक्ल जी से मेरा कितना स्नेह-सम्वन्ध है और आपको शुक्ल जी की कौटुम्विक जिम्मेदारियों और आर्थिक स्थिति का भी पता है। अतएव मेरी ओर से समझाकर कहिये कि से इस समय जान-वूझकर आग में न कूदें। उनके नाम वारंट कटा हुआ रखा है। यदि वे उत्कट सक्रियता छोड़कर कुछ दिनों के लिये थोड़ी तटस्थता का भाव स्वीकार कर लेगे तो मै वचन देता हूं कि उन्हें जेल न जाना पड़ेगा"। शुक्ल जी ने इसका उत्तर मुझे जो दिया वह इस प्रकार था "मै संघर्ष-सागर के उस छोर तक पहुंच चुका हूं जहां जानवूझकर मैने अपनी सव नावें डुवो दी है। अव मेरे कदम किसी प्रकार भी पीछे नही पड़ सकते। भगवान् की जो इच्छा होगी वह होगा"।

भगवान् की इच्छा हुई और श्री शुक्ल जी तीन-तीन बार इस प्रान्त के मुख्यमंत्री बने। मुख्यमंत्री पद में श्री शुक्ल जी गौरवान्वित हुए हों ऐसा मानने के बदले मैं तो यही समझता हूँ कि प्रदेश का मुख्यमंत्री पद ही श्री शुक्ल जी के व्यक्तित्व से गौरवान्वित हो उठा है। परम्परा-विरोधी तत्वों को अपना कर आगे बढ़ा ले चलने की जैसी क्षमता उनमें है वैसी प्रांत के किसी विरले ही व्यक्ति में होगी। व्यक्ति के लिये वे प्रखर प्रेरणास्रोत हैं और शासन-शक्ति के लिये सुदृढ़ प्रकाश-स्तंभ। यह सब होते हुए भी उनमें आस्तिक्य की विनम्रता इतनी है कि हाल ही के मेरे पचमढ़ी प्रवास के अवसर पर वे पूर्ण श्रद्धापूर्वक लगातार इक्कीस दिनों तक मानस के "सुन्दर काण्ड" की कथा सकुटुम्ब सुनते रहे और सहयोगियों ही को नहीं, किन्तु राज्यपाल और राष्ट्रपति तक को सुनाते रहे। धर्म निरपेक्षता के युग-प्रवाह में ऐसा वही कर सकता है जो धर्म-निरपेक्षता को सही अर्थों में समझ सकता हो तथा जिसके पास अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त मनोबल हो। कदाचित् उनके इस विनम्र आस्तिक्य का ही प्रभाव है कि राष्ट्रपति भी उनके स्नेह-बंधन में आबद्ध होकर पचमढ़ी को मनचाहा महत्व दे रहे हैं और भारतीय-शासन भी भिलाई सरीखे उनके प्रस्तावों को शिरोधार्य करता जा रहा है। भगवान् करे कि यह प्रेरणास्रोत और यह प्रकाशस्तंभ उत्तरोत्तर व्यापक उपयोगिता के लिये वार्धक्य में भी सुदीर्घ यौवन की शक्ति बनाये रखे।

ग्रहयोग

ज्योतिषाचार्य श्री सूर्यनारायण व्यास

विक्रम संवत् १९३४ शके १७९९ श्रावण मासीय तिथौ गुरुवासरे होरा यंत्रतः समय घ. ८ मि. ५ ईष्टम घ. ५ प. ४० दिनम् ३२/४०, नक्षत्र भरणी ५३-३६, सूर्य भोग ३।१७।३०, सूर्यकांतिः उत्तरा १८।२ लग्नम् ४।१७, जन्म स्थानम् सागर, (मध्यप्रदेश)।

जन्मचक्र

चलित कुण्डली
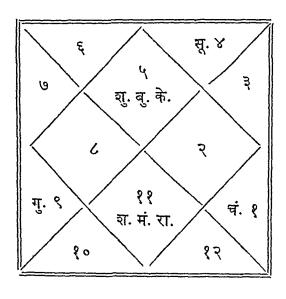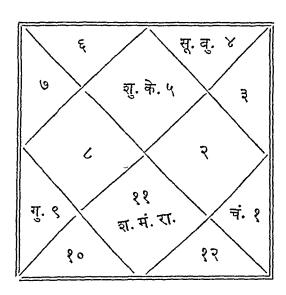
श्री रविशंकर शुक्लजी से मुझे मिलने का कभी सद्भाग्य प्राप्त नही हुआ, न मै उनके व्यवहार, स्वभाव, आदि से ही परिचित हो सका हू। यही जानता हूं कि वे मध्यप्रदेश के मुख्य मत्री हैं और एक विशिष्ट व्यक्ति। जव मुझे उनकी पत्रिका पर अपने विचार व्यक्त करने को कहा गया तव क्षण भर यह सोचना पडा कि आखिर क्या लिखूं ? किन्तु ज्योतिर्विज्ञान एक ऐसा विषय है कि प्राय. अपरिचितो का चरित्रण उसकी ग्रह स्थिति की गहराई देखकर किया जा सकता है। जन्मकाल में जिस प्रकार के ग्रहयोग हों उसी प्रकार मानव की शरीर रचना, स्वभाव, व्यवहार, उत्थान, पतन, आदि संभव होते हैं।

संयोगवश श्री शुक्लजी की जन्म कुण्डली मुझे प्राप्त है। उनके ग्रहयोगों की सूक्ष्म स्थिति की जानकारी के लिए उनका गणित भी मेरे समक्ष है। ऐसी स्थिति में शुक्लजी का भौतिक व्यक्तित्व मेरे समक्ष न भी हो तो उनकी शरीर और मनोरचना के वे तात्विक कारण मेरे निकट प्रत्यक्ष है जिनसे शुक्लजी के व्यक्तित्व ने विकास किया है। आज तो शुक्लजी का उन्नति की चरम सीमा को स्पर्श करने वाला स्वरूप इस देश के समक्ष है। यदि वर्षो पूर्व उनकी कुण्डली के ग्रहयोग देखने का किसी विज्ञ व्यक्ति को अवसर मिलता तो वह नि.सकोच शुक्लजी के इस रूप का चित्रण ग्रहों के माध्यम से अवश्य कर सकता था। कौन जानता था, आज से १५--२० वर्ष पूर्व कि पडित जवाहरलाल नेहरू इस देश के इतने महान् व्यक्ति वन जाएंगे, किन्तु जव उनकी सास ने १९३६ में मेरे पास उनकी कुण्डली भिजवाई तो मै उनके तेजस्वी ग्रह देखकर चौक गया था और १९३७ के अनेक पत्रो मे मैने ग्रहयोगो के कारण उनके प्रचण्ड व्यक्तित्व का विश्लेषण कर स्पष्ट प्रकट किया था कि १९४६ के वाद वे भारतवर्ष के लेनिन माने जाएगे। उस समय शायद यह किसी ने विश्वास भी न किया हो, परन्तु आज यह कितना स्पष्ट और प्रत्यक्ष है। ठीक यही वात शुक्लजी की कुण्डली के तेजस्वी तारको को देखकर कभी भी कही जा सकती थी।

शुक्लजी की कुण्डली बुद्धिप्रधान व्यक्ति की है। उनके अपने घर में बैठे हुए पचम गुरु और राज्य के स्वामी शुक्र को देखकर सहज ही उनके तेजस्वी राजयोग को बतलाया जा सकता था। इसी प्रकार शनि-मगल की युति भी उनको शासक निर्माण करनेवाली है। यद्यपि शुक्लजी का शुक्र ग्रह उनको सात्विक, सयमी और प्रचार प्रवृत्ति से पराङ्मुख बनानेवाला सकोची—एकान्तप्रिय रखने वाला है, किन्तु श म रा की युति उन्हें उतना ही साहसी, दृढ-निश्चयी और तेजस्वी बना देती है। एक बार काम हाथ में लेकर वे विपत्ति की ओर परिणाम की परवाह किए बिना बढे जाते है। आरभ में वे सघर्षप्रिय नही, अपनी साधना और कर्म में रत रहनेवाले व्यक्ति है—किन्तु टक्कर आने पर वे समस्त शक्ति से जूझना भी जानते है—पीछे नही रह सकते। शुक्लजी स्वभावत अध्यात्मप्रिय, विवेकशील और सरल पथगामी है, किन्तु उनका गुरु (प्रज्ञा) और शुक्र (प्रतिभा) तथा शनि-मगल से प्रेरित उनका हठवादी शासक जागृत हो जाता है—तो उनकी तीखी प्रतिभाप्रेरित (कूटनीतिक) तत्काल चमक उठती है और तर्क की तलवार में अपना मैदान हाथ कर लेती है। शनि-राहु उनके जीवन में उनके उत्थान के लिये प्रतिस्पर्धा और सघर्षों को ही कारण बना देते है। चाहे वकालत का क्षेत्र हो, चाहे राजनीति, उनमें स्पर्धा और सघर्ष ने तेजस्विता प्रेरित की है और परिणाम में यश हाथ लगता गया है। वस्तुत वे बुद्धिप्रधान, सहृदय, सात्विक, विवेकशील, आचरण और चरित्रशील व्यक्ति है। उनका स्वभाव उनकी सरलता, सीधापन, वकालत के अनुकूल नही है, किन्तु शनि-मगल की पर प्रेरित सजगता ही उन्हे सफल वकील बनाने का कारण बन गई है।

शुक्लजी की राजनीति भी समान-धर्म साथियो की स्पर्धा-सघर्ष से चमकने का अवसर पाती रही है और परिस्थितियो की विवशता ने ही उन्हे उत्तरदायित्व कधे पर वहन करने को बाध्य बनाया और वे उसमें भी ऊपर उठते गए व सफल शासक बने। सघर्ष उनके जीवन का एक अग रहा है और अतिम निराशा के क्षणो में भी शुक्लजी की कुशलता, आत्मविश्वास, स्थिरता, दृढता, अचल रही है। यह शनि-मगल युति का कारण है जो कुसुम-कमनीयता रखते हुए वज्र-दृढता प्रदान करती है। साथ ही राहु के कारण घर और बाहर सघर्षों को पोषित करती रहती है। शुक्लजी कुलीन वश में उत्पन्न होते है। प्रतिष्ठित परिवार उनका जन्मस्थान बनता है। आरम्भ में सीमित स्थान होता है, साधारण नगर या ग्राम उनका जन्मस्थल होता है और ज्ञान-साधना विभिन्न स्थानो में होती है और व्यवसाय उनसे स्वतन्त्र सुदूर प्रदेश नगर में होता है, किन्तु चद्र के दशाकाल में उनकी व्यवसाय रुचि जागृत होती है। भौम का दशाकाल उनको प्रतिस्पर्धा में लाकर खडा कर देता है और मुकाबले में वे चमकने की प्रेरणा प्राप्त करते चलते है। यश, लाभ उनके साथ चलने लगते है। सहयोग मिलता है। सहयोग में ही स्पर्धा जन्म लेती है और वही प्रकाश में लाती है। आरभ से दुर्बल, सकोची शुक्लजी २८ वर्ष वय के पश्चात् धीरे-धीरे आकर्षक सबल व्यक्तित्व वाले बनते जाते है। वुद्धि और बल के साथ उनकी तेजस्विनी प्रज्ञा भी चमत्कार बतलाने लगती है। सुन्दर व्यक्तित्व भी प्रभावोत्पादक बन जाता है। विशाल परिवार, व्यापक उत्तरदायित्व और सीमाबद्ध लाभ ने शुक्लजी को वैभवशाली न बनने दिया, किन्तु यश, प्रतिष्ठा और प्रभाव ने वर्चस्व प्रतिष्ठित किया होगा, और शुक्लजी प्रगति करते ही गए होगे। जब वस्तुत इनका वैभव की दृष्टि से उर्जित काल आ रहा था शुक्लजी के समक्ष यह समस्या प्रस्तुत रही होगी कि वे शासक के साथी बने और अधिकारारूढ हो या विद्रोह का झडा लेकर वैभव को तिलाजलि दें। तब गुरु-प्रभावित शुक्लजी के विवेक, विचार-ज्ञान ने ब्राम्हणत्व (त्याग) को जागृत किया होगा और लोभ के पथ से मोडकर सघर्ष की सीढी पर उतार दिया होगा।

राहु दशाकाल उनका सघर्ष की कसौटी का समय रहा है और गुरु के समय से ही शुक्लजी आदर, प्रतिष्ठा और गौरवभाजन बनकर निरतर ऊपर उठते गए है। यह इनके जीवन का महत्वपूर्ण काल ही है, जिसने त्याग तप के बल पर शुक्लजी का बहुत गौरवपूर्ण व्यक्तित्व बनाने में योगदान किया और बडी बडी शक्तिओ ने चाहे शासकीय हो, सबल स्नहियो की हो, टकराकर शुक्लजी को कचन की तरह उज्ज्वलतर बनाया।

वैसे तो गुरु में मगल के समय से शुक्लजी के निकट शासन चक्कर काटता रहा, अधिकार आधीनता वतलाता रहा, परन्तु शनि ने उन्ह शक्तिसम्पन्न, साधनसम्पन्न और प्रान्त का विधाता बनाकर स्थिरता प्रदान की। चूकि शुक्लजी अपनी एक आस्थावाले व्यक्ति है, विश्वास-सम्पन्न है, मित्र-वत्सल है, इसलिये वे आत्मीय और परकीय म भी निश्छलता आरोपित कर लेते है। किन्तु उनका सौम्य ग्रह बुध व्ययगामी होकर निर्बल हो गया है। उनकी इस स्वाभाविक निश्छलता का दूसरे लाभ उठाने का प्रयत्न कर बैठते है, और शुक्लजी की स्थिति को भी डगमगा देते है। तथापि उस समय शुक्लजी सहज सतर्क बन सकते है। उनका गुरु उनके विवेक को जागृत कर सतुलन बना देता है और उसमें से भी शुक्लजी को सहसा ऊपर उठा देता है। यह क्षमता उनके सबल गुरु और सुन्दर शुक्र में है। सहज

विश्वासी शुक्लजी समय पर जागरूक बनकर अपने को ऊपर उठा लेने की क्षमता रखते हैं। फिर भी शुक्लजी कूट-नीतिज्ञ या धूर्त राजनीतिज्ञ नही हैं। वे सच्चे सज्जन, नीतिवान, सहिष्णु किन्तु गरिमाशाली राजनीति-निपुण एक उच्च ब्राम्हण ही हैं।

शुक्लजी के ग्रहयोगों से उनके विचार-कार्य-नैपुण्य, संचालन-क्षमता पर बहुत कुछ विचार-विश्लेपण किया जा सकता हैं। उनके पारिवारिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला जा सकता है जिसकी दुर्बलता ने शुक्लजी के मन की स्वस्थता को यथावत् सुरक्षित नही रखा, किन्तु व्यक्तिगत विपयो के लिये न तो यह स्थान है, न अवसर है। तथापि जहा तक उनके व्यक्तित्व का प्रश्न है शुक्लजी को गुरु, शुक्र, शनि ने भरा बना दिया है। श्री शुक्लजी दीर्घजीवी हो, यही हमारी कामना है।

शुक्लजी

(एक रेखा चित्र)

श्री 'ईश'

सैकडो की भीड में शुक्लजी सहज ही अलग दिखलायी पड़ेंगे। उनका ढाचा सेनापतियो और सरदारो का है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, अखाडो की मिट्टी में सना कसरती शरीर, ऊचा-पूरा कद, विशाल कधे और गज भर की छाती, लबे डग भरते मजबूती से जब वे चलते है तो ऐसा जान पडता है कि रौब का आलम चल पडा हो! इस उम्र में भी उनकी रीढ सीधी और सीना सिंह-सा तना। वे जहा भी हो, उनको देखकर कोई अनदेखा कर जाय, यह सभव नही। उनके भव्य शुभ्र व्यक्तित्व पर उनकी दुग्धश्वेत मूछें और बाल श्रृंगार-सा शोभते है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक ऐसी अनोखी आभा है, ऐसा तेज है कि बरबस ध्यान आकर्षित हुये बिना नही रहता और ढग, बनावट, आवाज, रग-रूप उनका सब कुछ साधारण से भिन्न है।

वे एक जन्म-जात नेता है। सच्चे नेता की तरह आफत और तूफान से पहले स्वय ही जूझना जानते है। खतरा देख वे अपना लोभ सवरण नही कर सकते। परन्तु उनके वज्रादपि शरीर में कुसुमादपि उनका हृदय है, करुणा से ओत प्रोत। पराये दुख के सामने उनका मन पसीज उठता है। उनका यदि कही साहस टूटता है, तो वह किसी की आंखो में आसू देखकर ही। उनके विशाल हृदय में सबके लिये स्थान है। उनकी क्षमाशीलता असीम है। कल का कैसा भी विरोधी क्यो न हो—जानता है कि शुक्लजी सद्‌भाव के अवसर पर अपने विकार सामने न आने देंगे। अपूर्व मोहक उनका व्यक्तित्व है।

शुक्लजी के नेतृत्व की झलक पाने के लिये इस प्रात के गौरव का इतिहास जानना होगा। एक इतिहास के विद्यार्थी ने तो उन्हे प्रान्त-पिता ही कह दिया। अनेक तरह से आज के मध्यप्रदेश के वे निर्माता है। मध्यप्रदेश नामकरण भी विधान-सभा में उन्ही का प्रस्ताव था। प्रात के बिखरे टुकडो के बीच की वे सुनहरी कडी है। प्रात के मानस का वे शिलाधार है। प्रात को उन्होने व्यक्तित्व दिया है, देश मे उसका स्थान बनाया है। जब इतिहासकार लेखा करेगा तो उसके सामने समस्या होगी कि वह उनकी सफलताओ को किस क्रम से रखे। पर शायद वह सब में बेजोड मानेगा, हिन्दी-मराठी जन भाषा को उनका सम्मानित स्थान देने के उनके महान सुधार को। अनोखी अतदृष्टि और अप्रतिम साहस के बिना यह सभव नही था। दिन और वर्ष बीतने पर कही इस अनजान मनोविज्ञानिक क्राति का स्वरूप पहचान में आयेगा। आज का मध्यप्रदेश उनके सबल व्यक्तित्व की छाया में निर्मित हो रहा है और उसका कल का रूप निश्चय ही उनके स्वप्नो में चित्रित हो रहा है।

श्री शुक्लजी के कुछ महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विचार

मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री पं. रविशंकर जी शुक्ल द्वारा समय-समय पर दिये कुछ महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विचार यहाँ दिये जा रहे हैं। प्रत्येक विचार के अन्त में दी गयी टिप्पणी में इन विचारों के समय, स्थान आदि की जानकारी दी गयी है। यहाँ केवल शुक्ल जी के महत्वपूर्ण साहित्यिक एवं भाषा सम्बन्धी विचारों का ही संकलन व प्रकाशन किया जा रहा है। दूसरे विविध क्षेत्रों में दिये उनके विस्तीर्ण भाषणों को चाहते हुए भी देना सम्भव नहीं हुआ।

हिन्दी राजभाषा: उसका दायित्व

अभी हमने, सदन के अनेक प्रमुख सम्माननीय सदस्यों के भाषण सुने। अपने देश के ऐसे प्रख्यात व्यक्तियो का विरोध करने मे कभी कभी परेशानी होती है किंतु राष्ट्रो के इतिहास मे ऐसे अवसर आते है जबकि अपनी बात कह देने के अतिरिक्त, हमारे पास अन्य कोई विकल्प नही बचता। मै केवल विरोध के लिये विरोध नही कर रहा हूं। इस ऐतिहासिक अवसर पर मै अपना मत प्रस्तुत करने के लिये उपस्थित हुआ हूं।

इस प्रश्न के संबंध मे दो दृष्टिकोण है। एक दृष्टि उनकी है जो यह चाहते है कि इस देश मे अग्रेजी-भाषा, जितने अधिक समय और जितनी दूरी तक संभव हो, जारी रहे ; और दूसरा दृष्टिकोण उनका है जो चाहते है कि जितनी जल्दी संभव हो अंग्रेजी के स्थान पर एक भारतीय भाषा का उपयोग हो। माननीय श्री. गोपालस्वामी आयगार द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर हम इन दो दृष्टिकोणों से विचार करते है। मेरे द्वारा प्रस्तुत समस्त सशोधन, द्वितीय दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत किये गये है। यदि मै यह पाता कि अध्याय १४-अ मे समावेष्टित अनुच्छेद इस प्रकार के है जो हमारे उद्देश्य को क्षति नही पहुंचाते है, तो मै यहां बोलने के लिये कभी नही आता। यह ठीक है कि हमने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को एक उच्चासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। अको के सबध मे, मै बाद मे बोलूंगा।

इतना कहने के बाद मै इस अध्याय के प्रवर्ती भाग पर आता हूं जिसमे कि इच्छित उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रस्तावित रीति और उपाय दर्शाये गये है। हिंदी भाषा को राष्ट्र भाषा देश की प्रशासकीय भाषा होना है और देवनागरी लिपि इस भाषा की लिपि होगी। यह सब स्वीकार करने के बाद, क्या यह ठीक नही है कि हम इसे सभव बनाने के तरीके और उपाय खोजे ? यदि हम इस अध्याय के विभिन्न भागों पर दृष्टिपात करे, तो हमे ऐसा लगेगा कि उद्देश्य यह है ही नही। इस अध्याय मे प्रस्तुत विभिन्न बाधाओं को देखने से हिन्दी के यथाशीघ्र आगमन को रोकना ही उद्देश्य प्रतीत होता है। यदि इन बाधाओं को पार नही किया जाता, यदि इन बाधाओं को हटाया नही जाता और हिंदी को अपनाना आसान नही बनाया जाता है तो हमारे मार्ग में बहुत बडी कठिनाइयां है। जब आप अध्याय के उस भाग पर आते है जिसमे आयोग और समिति का उल्लेख किया गया है, उसके एक प्रावधान में बहुत कुछ ऐसा कहा गया है कि केन्द्र और राज्यो मे भी पाच वर्षो तक अंग्रेजी को ही प्रशासकीय भाषा के रूप में जारी रखना होगा तथा अध्याय के अन्य भागों में और भी बाधाये उपस्थित की गई है। आप देखेंगे कि प्रांतों में शीघ्रातिशीघ्र हिंदी को प्रचलित करना हमारे लिये कठिन होगा।

सदन के अनेक सदस्यो का कथन है कि यह एक ऐसा प्रस्ताव है जिस पर उनके ही दृष्टि कोण से विचार किया जाना चाहिये। प्रांतों मे हम इसे कठिन पाते हैं। हम अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी कैसे लायेगे ? यही हमारे सामने प्रस्ताव है। केन्द्र मे जो कुछ भी किया जावे, प्रांतो में हमें इस समस्या का मुकाबला करना पडेगा। हमारे मार्ग मे बहुत बडी कठिनाइयां हैं। जब हमने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली, हमने ऐसे विभागों की स्थापना का प्रयत्न किया जो हिन्दी का प्रचलन शीघ्रातिशीघ्र सम्भव बना सके। अपने प्रान्त में, मैंने लोक भाषा प्रचार विभाग की स्थापना

की ह। तात्पय यह नि हमने एसे व्यक्तियो को नियुक्त किया है जो पुस्तको का अनुवाद करेंगे। ममस्त वैज्ञानिक कार्यो के ल्यि चौवीम हजार शद्वा—पारिमापिक शद्वो का कोश है। हमारे प्रान्त में इटरमीजिएट स्तर तक मान्य दोना भाषाओ—हिन्दी और मराठी में अनुदित वैज्ञानिक पुस्तकें ह तया सामग्री एकत्र कर ली गई हैं जिसमे नि वी ए स्तर तक की मौलिक विज्ञान, रसायन शास्त्र तथा अय मत्र विषयों, जोकि कठिन और तात्त्विक हैं, की पुस्तको का हिन्दी और मराठी में अनुवाद किया जा मके। वहा मत्र कुछ तैयार है, किन्तु यहा प्रस्तावित अनुच्छेद के कारण उनका उपयोग सम्भव नहीं होगा।

शिक्षा का माध्यम—दूमरा मुद्दा जो मै पेश करना चाहता हू वह यह है कि मेरे प्रान्त में दो विश्व विद्यालय है। उनमें मे एक में तय किया हैं कि महाविद्यालयो में इस वर्ष या अगले वर्ष से शिक्षा का माध्यम हिन्दी और मराठी होगा और दूसरे विश्वविद्यालय ने तय किया है कि सन १९५२ मे हिन्दी का शिक्षा के माध्यम के रूप म उपयोग प्रारम्भ करेगा। हमने अपने प्रान्त में शिक्षा के माध्यम के रूप में अग्रजी का उपयोग पूर्णत बन्द कर दिया ह और सन १९४६ से हमारी उच्चशालाओ म हिन्दी और मराठी के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। हमारे प्रान्त में दोनो भाषाओ को मान्यता प्राप्त हैं। जिन शालाओ, उच्च शालाओ मे शिक्षा का माध्यम बगला, उदू या अय कोई भाषा है, उन्ह हम अनुदान देते हैं। इसीलिये मेरे प्रान्त में, तीन वर्ष बाद विश्वविद्यालयो से उत्तीर्ण स्नातक यदि अग्रेजी भाषा के ज्ञाता नही हुए तो उनका राष्ट्र द्वारा उनका उपयोग नही किया जावेगा और प्रान्त बडी विचित्र स्थिति में पड जावेगा।

प्रात और भाषा का व्यवहार—मैं समझता हू कि इस सविधान में ऐसी व्यवस्था करना हमारे ऊपर ही निर्भर है जिससे कि जहा तक सभव हो हम आगे प्रगति कर सके। मेरा मत ह कि देवनागरी लिपि में हिन्दी राष्ट्र भाषा या प्रशासकीय भाषा होने का प्रावधान करने वाले अनुच्छेद के अनुरूप विकास करने के लिये प्रातो को स्वतत्र रहने दिया जाना चाहिये।

यदि आप प्रावधानो का सावधानी के साथ अध्ययन करेगे तो आप पायेंगे कि प्रान्त ऐसा करने के लिये स्वतत्र नही हैं। मूल सशोधन क्रमाक ६५ में कहा गया हैं कि "अनुच्छेद ३०१-डी और ३०१-ई के प्रावधानो की सीमाओ मे राज्य अधिनियम द्वारा कोई भी भाषा अपना सकती है।" यदि आप अनुच्छेद ३०१-डी और ३०१-ई को देखेंगे तो आप पर लगाई गई आपको मालूम होगी। अनुच्छेद ३०१-डी में कहा गया है "सघ के शासकीय कार्यो के लिये फिलहाल प्राधिकृत भाषा ही दो राज्यो के बीच तथा राज्य और सघ के बीच परस्पर सचार की शासकीय भाषा होगी।" फिर आगे आप पायेंगे, "परन्तु यदि दो या अधिक राज्य सहमत हो कि हिन्दी भाषा इन राज्यो के बीच परस्पर सचार की शासकीय भाषा होनी चाहिये तो वह भाषा परस्पर सचार के लिये प्रयुक्त हो सकती है।" जहा तक उस भाग का सबध है यह मूल प्रारूप में सुधार ह परन्तु जहा तक किसी राज्य में शासकीय भाषा का सबध हैं वह अनुच्छेद ३०१-डी से नियत्रित होता हैं। उस कार्य के लिये शासकीय भाषा ही राज्यो के बीच तथा राज्य और सघ के बीच परस्पर सचार की भाषा होगी। सभी कार्यो के लिये आपको अग्रेजी भाषा का उपयोग करना पडेगा। प्रावधान किया गया ह कि जहा दोनो राज्य हिन्दी भाषा का उपयोग स्वीकार कर केवल तभी उसका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु जहा तक अन्य राज्यो का सबध हैं तथा विभिन्न राज्यो व राज्य और सघ के बीच परस्पर सचार का सबध ह केवल अग्रेजी भाषा का ही उपयोग किया जा सकता हैं। इसलिये मैं कहता हू कि भाषा का उपयोग करने की हमारी स्वतत्रता कम की जा रही ह। उस हद तक मुझे इस प्रावधान मे आपत्ति है।

न्यायालयो मे अग्रेजी—इस प्रारूप में म जिस प्रावधान को सर्वाधिक खतरनाक समझता हू वह है न्यायालयो और उच्च न्यायालयो में अग्रेजी भाषा का उपयोग। जब तक न्यायालयो—उच्च न्यायालयो की भाषा नही बदलती है हमें कोई आशा नही ह।

जहा तक निचले न्यायालयो का सबध हैं हिन्दी और मराठी ही हमारे न्यायालयो की भाषाए ह ये न्यायालयो की मान्य भाषाए ह। जहा तक न्यायालयो का सबध है निस्सदेह हम अपने दावे और लिखित वक्तव्य हिन्दी में पेश कर सकते ह किन्तु हो यह रहा है कि न्यायाधीश गवाही अग्रेजी में ही दर्ज करते ह और अग्रेजी म ही फैसला देते ह। इसलिए वास्तविकता यह है कि समस्त कार्यों में अग्रेजी भाषा का ही उपयोग हो रहा है और जब तक इन व्यक्तियो का स्थान लेने के लिये हमें लोग नही मिलते, प्रान्त की भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाना बहुत कठिन है।

अग्रेजी प्रावधान—इसलिए, सभी प्रावधानो को मै इस दृष्टिकोण से देख रहा हू। जितनी जल्दी हो सके सभी विभागो में और सभी स्तर पर हिन्दी लागू करने के लिये हमें तैयार होना चाहिये। उस दृष्टिकोण से मैं कहता हू कि हम पर लगे बधन हटा लिये जाना चाहिये। जहा तक केन्द्र का सबध है इसका प्रावधान किया जा चुका है

और उस पर कोई बंधन नही है। जहां तक राज्यों का संबंध है एक अनुच्छेद मे उन्होंने लिख दिया है कि वे अपने समस्त अधिनियम, विधेयक, नियम और उपनियम और सभी कुछ अंग्रेजी भाषा मे रखने के लिये आवद्ध है। तात्पर्य यह कि जव तक वहा अंग्रेजी है तव तक हमे अपनी सभी वातें भी अंग्रेजी मे ही रखना पडेगी। मेरा निवेदन है कि इस सम्वन्ध मे प्रान्तो को स्वतंत्र रहने दिया जाना चाहिये। जहां तक सघ का संवध है संसद निश्चय कर सकती है। किन्तु यदि राज्य विधान सभा इन वातों को राज्य की भाषा मे ही रखने का निश्चय करती है तो उन्हे इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये। मैंने अपने संशोधन मे प्रावधित किया है कि राज्य विधान सभा द्वारा पारित किये जाने वाले विधेयक और अन्य वाते राज्य की भाषा मे ही हो किन्तु उनके साथ ही प्राधिकृत और प्रमाणिक अनुवाद भी रहे।

आयरलैण्ड का उदाहरण—मैं सदन के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूं। विश्व इतिहास में इस सम्वन्ध मे एक ही उदाहरण है। यह आयरलैण्ड मे है। ब्रिटिश सरकार से सधि के वाद सन १९२१ मे पहली वात जो अपने संविधान मे उन्होने रखी वह यह थी कि आयरिश राष्ट्रभाषा होगी और अंग्रेजी को द्वितीय शासकीय भाषा रखा। मैं इस के कारण वताऊगा। अग्रेज सरकार ने अपने शासन-काल मे आयरलैण्ड मे आयरिश भाषा सीखना प्रतिवन्धित कर दिया था और परिणाम यह हुआ कि प्राथमिक से महाविद्यालयीन स्तर तक अंग्रेजी भाषा ही पढाई जाती थी और पूरी १९ वी शताब्दि के लिए आयरिश भाषा लुप्त प्राय हो गई थी और प्रत्येक आयरलैण्डवासी अग्रेजी ही वोलता था। १९१० की जनगणना मे ३० से ४० लाख की जनसंख्या मे केवल २१ हजार व्यक्ति ही आयरिश भाषा जानते थे। सविधान मे आयरिश भाषा को राष्ट्रभाषा उन्ही आयरलैण्डवासियो ने घोषित की जोकि आयरिश भाषा नही जानते थे। केवल २१ हजार ही आयरिश जानते थे और शेष अग्रेजो से भी अधिक अंग्रेज थे। अग्रेजी को एकदम वहिष्कृत करना संभव नही होने के ही कारण उन्हे अग्रेजी को द्वितीय भाषा के रूप मे रखना पडा। किन्तु प्रस्तुत किए जाने वाले सभी विधेयक, देश की ही भाषा आयरिश मे ही पेश किए जाते थे। और उसका एक अनुवाद साथ रहता था। दोनो के बीच विवाद की स्थित मे आयरिश भाषा का मूलपाठ ही प्राधिकृत और प्रामाणिक माना जाता था। इसीलिए मैंने अपने सशोधन मे प्रावधित किया है कि हमे अपने राज्य की भाषा—हिन्दी अथवा मराठी—मे अधिनियम वनाने दिए जावे और उसके साथ ही एक अग्रेजी भाषा मे भी प्रामाणिक पाठ हो। विवाद की स्थिति मे जहा अग्रेजी आवश्यक हो, अग्रेजी का मूल पाठ ही प्रामाणिक माना जावे, शेष सभी कार्यो के लिए राज्य-भाषा का मूलपाठ ही प्रामाणिक माना जावे। इसलिए मै समझता हू कि हमे स्वतत्र छोड दिया जाय। इस उद्देश्य के लिए अपनी भाषा का प्रयोग करने से प्रान्तो को नही रोका जाना चाहिए। यदि हम हिन्दी चाहते है तो हमे हिन्दी का प्रयोग करने दिया जाना चाहिये। हमारी स्वतत्रता कम न कीजिए।

अंको का प्रश्न—जहा तक अको का सम्वन्ध है, पिछले कुछ समय से पूरे सदन में इस प्रश्न पर उत्तेजना रही है। हमने पंडितजी के भाषण में सुना कि जहा तक अतर्राष्ट्रीय अको का सम्वन्ध है—विभिन्न कारणोवश वे आवश्यक हैं—जिन मे से कुछ का उन्होने उल्लेख भी किया। कुछ सदस्य जिन मे मैं भी एक हू—सोचते है कि वे (अतर्राष्ट्रीय-अक) आवश्यक भी हैं। इसीलिये हमने इस आशय का भी एक सशोधन प्रस्तुत किया है कि कुछ कार्यो के लिये अग्रेजी अको का उपयोग किया जाता रहे—जैसे लेखाकन, अधिकोषण आदि व्यापारिक मामलो तथा शासकिय कार्य जिन के लिये वे जरूरी हों। १४-अ. अध्याय के प्रस्तावक द्वारा यह स्वीकार कर लिया जाता है तो हमारी कठिनाइया हल हो जानी चाहिये। भाषा के प्रश्न के साथ उन्हे भ्रामक ढग से सम्वन्ध नही किया जाना चाहिये। हम सव समझते हैं—इसे समझना कठिन नही है। हिन्दी अको का हिन्दी भाषा के अविभाज्य अग के रूप उपयोग होने दिया जावे और जिन कार्यो के लिये अग्रेजी अंको का उपयोग आवश्यक हो, वहा स्वतत्र रूप से उनका उपयोग किया जावे। उन के सम्वन्ध मे कोई कठिनाई नही है और मैंने अपना सशोधन को इसी दृष्टि से निर्मित किया है। मेरा कहना है कि उनका उपयोग राष्ट्रपति द्वारा निर्देशित कार्यो के लिये किया जा सकता है। इसीलिये यदि आप अग्रेजी अको को हिन्दी से निकाल लेते है तो कोई भ्रान्ति नही रह जावेगी और मै समझता हूँ कि इस विषय पर यहा उपस्थित सभी सहमत हो सकेगे। इससे प्रश्न टल जावेगा, किन्तु सभी के मन मे यह विचार चल रहा है कि अग्रेजी अको को राष्ट्रभाषा—हिन्दी—के अविभाज्य अग के रूप मे समावेष्टित किया जा रहा है। इस सदन मन्तव्य यह नही है। अग्रेजी अको का, जिन कार्यो मे आवश्यक हो प्रयोग किया जा सकता है—उन से हमारा कोई झगडा नही है और जिन प्रान्तों की भाषा मे अग्रेजी अंको का ही प्रयोग किया जाता है उनसे भी हमारी कोई लडाई न ी है—वे उन का उपयोग जारी रख सकते है। किन्तु यदि उन के द्वारा इस वात पर जोर दिया जाता है कि सघ की शासकीय भाषा—हिन्दी मे भी अग्रेजी अंको का ही प्रयोग किया जावे तो मैंने अपने संशोधन मे प्रावधित किया है कि जहा शासकीय पत्र-व्यवहार एवं परस्पर-संचार के लिये अग्रेजी अको का उपयोग आवश्यक हो वहां उन प्रान्तों के साथ परस्पर-संचार मे अग्रेजी अकों का उपयोग किया जा सकता है किन्तु शेष भारत पर जहा उन की आवश्यकता नही है, उन्हे लादा नही जाना चाहिये। जहां तक

हिन्दी प्रान्तो का सम्बन्ध ह उनसे परस्पर सचार में हिन्दी अको का ही प्रयोग किया जावेगा किन्तु देश के जिन भागो की भाषाओ में अग्रेजी अको का ही उपयोग होता है वहा हिन्दी के साथ अग्रेजी अक भेजे जावे—उनसे मेरा कोई झगडा नही ह क्योकि मै उससे सम्बन्धित नही हू।

हिन्दी और प्रान्तों की स्थिति—एक माननीय सदस्य ने पूछा है "यदि कोई प्रात हिंदी नही चाहता तो क्या आप उसे स्वतन्त्रता देंगे?" इस विषय में मेरा निवेदन है कि यह अखिल भारतीय सघ ही कह सकता है कि आप इसे चाहते ह या नही। यदि आप कहते ह कि देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी ही सघ की भाषा होगी और यदि केन्द्र अथवा ससद यह निणय करती ह कि आप को हिन्दी भाषा द्वारा ही समूचित किया जावे तो आप को केन्द्र द्वारा हिन्दी भाषा में ही ससूचित किया जावेगा। हम प्रान्त वालो का जहा तक सबध है हमारे और आपके बीच मे कुछ नही है। आप अपना मामला केन्द्र से निपटा सकते ह। हमारा कथन है, आप चाहें तो अग्रेजी अक रखें, या हिन्दी अक रखें और जो दोनो रखना चाहें उन्हे दोनो रखने दें, किन्तु जहा तक हिन्दी भाषी प्रान्तो का सम्बन्ध है—जहा की राज्य भाषा हिन्दी है वहा अग्रेजी अको का उपयोग करने के लिये तब तक बाध्य न करे जब तक की ये प्रान अग्रेजी अको को अपनी भाषा के अविभाज्य अग के रूप में स्वीकार करने का निर्णय न कर लें।

उत्तर या दक्षिण—इसीलिये मने सशोधन में दो धाराएँ ऐसी रखी हैं जिनके अनुसार अग्रेजी अको का इस प्रकार उपयोग किया जा सकता ह। यदि सशोधन के प्रस्तावक द्वारा यह स्वीकार कर लिया जावे तो अको का प्रश्न हल हो जावेगा। इस प्रश्न का हल यही है और उत्तर और दक्षिण के बीच कोई सघष नही है। मैं सदन का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हू कि भाषा के प्रश्न को उत्तर या दक्षिण की दृष्टि से नही देखा जाना चाहिये। हिन्दी भाषा जब तक केन्द्र या सघ द्वारा स्वीकार नही कर ली जाती तब तक वह एक प्रान्तीय भाषा ही है। आप प्रशासकीय अथवा राष्ट्र भाषा के रूप में किसी भी भाषा को स्वीकार कर सकते हैं चाहे वह हिन्दी हो या हिन्दुस्तानी, बगला अथवा मराठी —और ये सब भाषा में प्रस्तावित भी की गई है किन्तु एक बार राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार कर लिये जाने के बाद आप उसे प्रान्तीय भाषा न कहें। मैं आप से आग्रह करता हू कि एक बार सघीय भाषा के उच्चासन प्रतिष्ठित होने के बाद वह आप की भी भाषा हो जाती है और मेरी भी तथा वह एक प्रान्तीय भाषा नही रह जाती है। वह एक प्रातीय भाषा नही रह जाती है और आप का और मेरा समान रूप से यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उसे अधिकाधिक सम्पन्न बनावें।

शब्दों का प्रयोग—अनेक माननीय सदस्यो ने कहा है कि एक ही अथ के लिये विभिन्न शब्दो का प्रयोग किया जाता है। उनका कथन है कि एक ही अर्थ के लिये पण्डित सुदरलाल भिन्न शब्दो का प्रयोग करते हैं, जब कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मेरे मित्र सेठ गोविन्ददास दूसरे शब्द का, इत्यादि। शब्दो का कोई अन्त नही है। यदि आप किसी भी भाषा के शब्द कोष के पन्ने पलटें तो आप पायेंगे कि एक ही अथ के अनेक पर्याय मिलते हैं और लोगो को अपनी इच्छानुसार किसी भी शब्द का प्रयोग करने की छूट होती है। सस्कृत में भी "अमर कोष" है, जिसमें अनेक पर्यायवाची शब्द दिये गये है। इसी प्रकार एक ही अर्थ के सस्कृत, हिन्दी, फारसी और बगाला में भिन्न भिन्न शब्द हो सकते है, किन्तु ये सब एक ही भाषा के अभिन्न अग हो सकते है और शब्द कोष में उनके सम्मिलित किये जाने के बाद हम सब उनका उपयोग कर सकते ह।

राष्ट्रभाषा सब की सहमति से—अत मेरा निवेदन है कि आप यह न समझें कि हम इस भाषा को किसी पर बलपूर्वक लाद रहे है। सदन किसी भी भाषा को चुनने के लिये स्वतन्त्र है और एक बार जब आप उस भाषा को चुन लें तो यह न समझें कि वह आपके ऊपर हमारे द्वारा लादी गई है। आपने उसे अपनी भाषा के रूप में स्वीकार किया ह और वह समान रूप से मेरी और आपकी भाषा हो जाती है। इसके बाद कोई प्रश्न अथवा कोई विवाद नही उठाया जा सकता। जैसा कि बतलाया गया है और मुझे भी इसका दृढ विश्वास है कि देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी भाषा को ही सदन के द्वारा सघ की भाषा स्वीकार किया जावेगा। अन्तर्राष्ट्रीय अको का उपयोग सघ के लिये आवश्यक सभी कार्यों में हिन्दी भाषा से पृथक रूप में किया जा सकता है। किन्तु यदि कुछ प्रान्ता को सन्तुष्ट करने के लिये आवश्यक समझा जावे तो उनके लिये सघ अग्रेजी अका का प्रयोग कर सकता है। किन्तु शेष भारत के लिये, जहा हिन्दी भाषा ही उपयोग में लाई जाती है और जहा इन अको की आवश्यकता नही है, वहा हिन्दी को अमिश्रित रूप में—अग्रेजी अको से पूणतया पृथक् जारी रहने दें।

हिन्दी का व्यवहार.—हमारे पास, पन्द्रह वर्षो की अवधि है। मै अपने दक्षिण के मित्रो से कह सकता हूं कि यथाशीघ्र हिन्दी सीखना उनके ही श्रेष्ठ हित मे होगा। क्योकि यदि वे शीघ्र ही हिदी नही सीखते पर वे पिछड जा सकते हैं। जहां तक मेरे दक्षिण भारतीय मित्रो का सबध है मैं कह सकता हूं कि वे अत्यधिक वुद्धिमान हैं। साथ ही वे वहुत परिश्रमी भी होते है तथा मैने अपने प्रात मे देखा है कि जिन विभागो मे मद्रासी मित्र काम कर रहे हैं वे अन्य हिन्दी भाषियों के समान ही अथवा उनसे भी अधिक सक्षम है। वस्तुस्थिति यह है। मै अपने दीर्घकालीन प्रशासकीय अनुभव के आधार पर यह कह रहा हूं और मै समझता हूं कि मै उत्तर दायित्व-पूर्ण विचार व्यक्त कर सकता हूं। मेरे प्रात में अनेक दक्षिण भारतीय है। मेरे प्रांत की सेवाओ मे रहे हुए एक मित्र यहां हैं जो हिन्दी और सस्कृत किसी भी अन्य व्यक्ति के समान सुन्दर ढंग से वोल सकते है। मेरा कहना है कि मेरे यहां मद्रासी नागर अधिकारी भी है और प्रातीय अधिकारी भी तथा मैं आम को वताऊं कि मेरे प्रांत में एक ऐसा विभाग भी है जिसमे सभी जगह हिदी मे ही कार्य होता है चाहे वह मराठी जिला हो, चाहे हिदी जिला और उस विभाग मे मराठी भाषी लोग है और तेलगू भाषी भी। उस विभाग मे पजावी, वंगाली सभी व्यक्ति कार्य करते है तथा गत पच्चीस वर्षो से इस विभाग के छोटे-वडे समस्त अधिकारी हिन्दी मे ही कार्य कर रहे हैं। यह विभाग पुलिस विभाग है। इन कर्मचारियो द्वारा विभागीय भापा हिन्दी में सारा कार्य इच्छित क्षमतापूर्वक किया जा रहा है। मेरी समझ मे नही आता कि यहां मेरे मित्र हिन्दी सीखने से भयभीत क्यों होते हैं।

इस झिझक के मूल मे यह भय है कि उनके लिये कुछ वाधाये उत्पन्न न हो जाये। इसीलिये मेरा कहना है कि आप हिन्दी सीखने मे जितनी शीघ्रता करेगे उतना ही आपके लिये, हमारे लिये और सारे देश के लिये हितकर होगा क्योकि तव आपके मार्ग मे कोई कठिनाई उत्पन्न नही होगी और आप सारा सदा के समान ही हमारे साथ रह सकेगे। यह न समझे कि हिन्दी को यथासभव शीघ्रता से लाने मे हमारा मन्तव्य किसी के लिये कठिनाई उत्पन्न करना है।

इस समय मेरे पास एक पुस्तिका है जो सदन के ही एक सदस्य मित्र ने मुझे दी है और जिसमे कहा गया है कि सन् १८७४ वंगाल के महान समाज सुधारक, श्री. केशवचन्द्र सेन, का एक लेख "सुलभ समाचार" नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इस लेख मे कहा गया था कि यदि भारत के लिये एक भापा के अभाव मे एकता असभव है तो इस प्रश्न का हल क्या है। इसका एक मात्र इस समस्त देश मे एक ही भापा का प्रयोग है। भारत मे प्रचलित विभिन्न भापाओ हिन्दी मिश्रित है और हिन्दी का प्रचलन लगभग हर स्थान पर है। यदि हिन्दी को भारत की सामान्य भाषा वना दिया जावे तो यह कठिनाई आसानी से हल की जा सकती है।

यह लेख सन् १८७४ मे लिखा गया था और यह एक प्रकार की भविष्यवाणी ही थी क्योकि आज हम इसी प्रश्न पर विचार कर रहे हैं।

भाषा का निर्माण जनता द्वारा.—इस सम्वन्ध मे हिन्दुस्तानी, संस्कृत अथवा अन्य किसी भाषा का प्रश्न हो उपस्थित नही होता। जहां तक हिन्दी का सम्वन्ध है मै केवल यह कह सकता हू कि इस अध्याय के निर्माता ने भली भाति समझ लिया था कि हिन्दुस्तानी हिन्दी भाषा की ही एक शैली है। अध्याय मे दी गई अनुसूची मे उन्होने हिन्दुस्तानी को भाषा के रूप मे सम्मिलित नही किया है। उन्होंने निर्देशक धारा मे हिन्दुस्तानी को हिन्दी की ही एक शैली कहा है और इससे हमारा कोई मतभेद नही। हम उसे अपनायेगे और हर सम्भव उपाय से उस का उपयोग करेगे। जैसा कि दावा किया गया है भाषा सविधान स्वीकार करने से ही निर्मित नही हो सकती। उसके प्रति आस्था रखने वाले व्यक्ति ही उस का निर्माण करते है। हम लोग यहां पर भाषा का निर्माण नही करते, किन्तु सदन के वाहर जन साधारण ही उसका निर्माण करेगा हम सविधान चाहे जो भी स्वीकार कर लें।

अतः मेरा निवेदन है कि इन चार आधारों पर मेरे संशोधन स्वीकार किये जावें। प्रथम तो भाषा का प्रश्न और दूसरे अंकों के प्रश्न को हल करना ही मेरे संशोधन का लक्ष है। प्रातो को स्वय ही अपने भापा का निर्माण करने दीजिये और विभिन्न "किन्तु" "परंतुको" तथा शर्तो द्वारा उनका मार्गावरोध न करे तथा उन्हे आत्म विकास की स्वतन्त्रता दे। हम आपको वता देगे कि हमारे प्रान्त मे दक्षिण भारतीय मित्र पांच वर्षो में ही हिन्दी भलीभाति सीख लेंगे। हमारे यहां सामग्री भी है और कार्य करने वाले अनेक मित्र भी। जो विभाग हमने अपने प्रांत मे खोला है उसमे उन के मद्रासी मित्र भी कार्य कर रहे है। इसी लिये मेरा कहना है कि उच्च-न्यायालय की भाषा भी राज्य भापा

ही हो और भले ही अन्य स्थानों पर यह भाषा अंग्रेजी हो—हमें स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये कि हम अपनी विधान सभा में अपने विधेयक अपनी राज्य भाषा में ही स्वीकार करें। इन चार आधारों पर मैंने अपने संशोधन प्रस्तुत किये हैं और आशा है कि सदन के द्वारा उन्हें स्वीकार किया जावेगा।

अंकों के संबंध में जहां तक लेखाकन का प्रश्न है कि मैंने अन्तिम उपाय के रूप में इस समझौते को स्वीकार कर लिया है कि कुछ विशेष कार्यों में अंग्रेजी अंकों का उपयोग पन्द्रह वर्ष की अवधि के बाद भी किया जा सकता है, किन्तु मेरा मूल संशोधन यह है कि अनुच्छेद ३०१-अ की धारा ३ को निकाल दिया जावे।

इस सदन के हम सब सदस्य जो कांग्रेस के भी सदस्य हैं, कांग्रेस का ही अनुसरण करते आये हैं। कांग्रेस ने निर्णय किया है कि हम १५ वर्ष की अवधि से आगे जाने की आवश्यकता नहीं है। अतः हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि पन्द्रह वर्षों के बाद क्या होगा। हम अब पीढ़ियों के लिये प्रावधान न करें और उन्हें किसी बन्धन में न बांधें। पन्द्रह वर्षों बाद जब हमारे प्रतिनिधि मिलेंगे तब वे निर्णय करेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिये। जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम पन्द्रह वर्षों के लिये निर्णय करते हैं। कांग्रेस ने हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग का आदेश दिया है और मेरे द्वारा प्रस्तुत संशोधनों से इसे सम्भव बनाया जा सकता है तथा पन्द्रह वर्षों के अन्दर ही हम इसे कर सकते हैं। मेरा प्रस्ताव है कि दस वर्षों के अन्दर हम आयोगों और समितियों का सारा कार्य समाप्त कर दें। संसद इस बात का निर्णय करेगी कि पन्द्रह वर्षों की अवधि के अन्दर ही किन साधनों और उपायों से हिन्दी को अपनाया जा सकता है। कांग्रेस कार्य समिति के प्रस्ताव की भाषा के ठीक-ठीक अनुरूप ही मैंने अपने संशोधनों का निर्माण किया है तथा आशा है कि सदन उन्हें स्वीकार करेगा। जहां तक कांग्रेस कार्यकारिणी के प्रस्ताव का सम्बन्ध है मैं नहीं समझता कि "हिन्दुस्तानी" शब्द का उसमें प्रयोग किया गया है। उसमें कहा गया है कि देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी भाषा ही हमारी शासकीय हो।*

देवनागरी लिपि में सुधार संबंधी सुझाव

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय संविधान की ३४३ वीं धारा के अनुसार देवनागरी लिपि में हिन्दी, भारतीय संघ की राज भाषा घोषित की गई है। अब इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये उपयुक्त कदम उठाना हमारा काम है। यह सच है कि इस परिवर्तन के लिये संविधान ने हमें १५ वर्षों का समय दिया है, फिर भी इसके लिये आखिरी घड़ी तक ठहरना सर्वथा अनुचित होगा। यह तो मानना ही होगा कि जब तक हम देवनागरी लिपि को टाइपराइटर, मोनो टाइप, लाइनो टाइप तथा टेलीप्रिंटर के अनुरूप न बना लें तब तक हिन्दी का शीघ्र प्रचार संभव न होगा। इस युग में इन्हीं यन्त्रों के अधिक से अधिक उपयोग पर ही किसी भी देश की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति निर्भर है। यह समस्या और भी कठिन इसलिये हो जाती है कि ये यन्त्र मुख्यतः रोमन लिपि की आवश्यकता को ध्यान में रख कर बनाये गये हैं और रोमन लिपि की तथा देवनागरी लिपि की आवश्यकताएं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि हमारी लिपि की विशेषताओं के अनुसार ही इन यन्त्रों में सुधार किये जायं। साथ ही, जहां अनिवार्य हो, अपनी लिपि में भी यथानुसार परिवर्तन कर दिये जायं। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि नागरी लिपि मूलतः एक वैज्ञानिक लिपि है तथा ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। किन्तु गति, यान्त्रिक सुविधा और सुगमता के युग में हमारी लिपि को एक चुनौती सी है। रोमन लिपि इन सब दृष्टियों से खरी उतरी है, विशेष कर व्यवसाय, पत्रकारिता और शिक्षा के क्षेत्रों में। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि देवनागरी भी बिना किसी मूलभूत परिवर्तन के केवल थोड़े ही सुधारों से इस चुनौती का सामना कर सकती है। मैं इस सिद्धान्त को काफी महत्त्व देता हूं कि लिपि में किसी तरह के मूलभूत परिवर्तन न किये जायं, क्योंकि हर देश के लोगों की भाषा और लिपि उनकी विशेषताएं व्यक्त करती हैं और उनकी जन्मजात प्रतिभा ही इनका आदि स्रोत है। इस दिशा में जापान के प्रयासों के संबंध में हमें जो कुछ मालूम है उससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। जहां तक हो सके, हमें मशीन को अपनी लिपि के अनुरूप बनाना है, लिपि को मशीन के अनुरूप नहीं। देवनागरी लिपि सुधार के प्रश्न पर हमें इसी पृष्ठ भूमि को ध्यान में रख कर विचार करना होगा। संविधान सभा तथा बम्बई और उत्तर प्रदेश की सरकारोंने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये अलग अलग समितियां स्थापित की थीं जिनके कार्यक्षेत्र में थोड़ा बहुत अन्तर था। इनमें से पहली दो समितियां के

---

*दिनांक १३ सितम्बर १९४९ ई० को भारतीय संविधान सभा में प्रधानमन्त्री, श्री जवाहरलाल नेहरू, के भाषण के बाद श्री पण्डित रविशंकर शुक्ल द्वारा दिया भाषण।

प्रधान श्री. काका कालेलकर थे और अंतिम के आचार्य नरेन्द्रदेव। शव्दावली, वर्ण विन्यास, व्याकरण तथा लिपि की दृष्टि से हिन्दी को प्रामाणिक वनाने के लिये मध्यप्रदेश सरकारने १९५० मे एक अखिल भारतीय सम्मेलन आमन्त्रित किया था जिसका उद्घाटन संविधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, के हाथों हुआ था। इस सम्मेलन मे देवनागरी लिपि से संबधित अनेक प्रश्नो पर विचार किया गया और यह निश्चय किया गया कि इसे प्रामाणिक वनाने के लिये प्रचलित चिन्हो और परम्पराओं को, जहा तक हो सके, यथावत् रखा जावे तथा साथ ही जहां आवश्यक हो, उनमें इस प्रकार परिवर्तन किया जावे कि छपाई और टाइप करने की आधुनिक मशीनो पर उन्हे ज्यो का त्यो लिया जा सके अथवा उनमे ऐसा ही फेर बदल किया जावें जो कम खर्च में सुविधापूर्वक हो सके। सम्मेलन ने यात्रिक सुधार आदि पर वारिकी से विचार नही किया वरन् दोनों समितियो की रिपोर्टो की प्रतीक्षा करना ही श्रेयस्कर समझा। सम्मेलन ने केवल यह स्थिर किया कि केवल यात्रिक सुविधाओ के लिये नागरी लिपि की प्रकृति और स्वरूप का परित्याग न किया जावे।

इन समितियों की रिपोर्ट अव प्रकाशित हो चुकी है। कालेलकर समिति ने हिन्दी शीघ्रलेखन (शार्ट हैन्ड) पर भी विचार किया है जो कि सभवतः इस सम्मेलन के विचार का विषय नही है। लिपि को सुधार कर यंत्रो के उपयुक्त वनाने की समस्या के प्राय. प्रत्येक पहलू पर नरेन्द्रदेव समिति ने विचार किया है। मुझे प्रसन्नता है कि नागपुर के भाषा प्रमाणीकरण परिषद् द्वारा स्वीकृत मूल सिद्धान्तो से यह समिति सहमत है। नरेन्द्रदेव समिति की सिफारिशों पर हमारे सुझाव निम्नलिखित है :—

(१) लिपि के गुण, स्वरूप अथवा चिन्हो मे किसी भी प्रकार के मूलभूत परिवर्तन से हमारी आने वाली पीढिया नागरी लिपि मे निहित हमारी महान् वौद्धिक तथा सांस्कृतिक विरासत से वचित रह जायेंगी। अतः ऐसा परिवर्तन स्वीकार नही किया जा सकता। नागरी लिपि के सुधार के विषय मे समिति के इस दृष्टिकोण से हम सहमत हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तावित लिपि संवंधी परिवर्तनो से हम सहमत नही है।

(२) उपर्युक्त कारण से ही, हमे काका कालेलकर की 'अ' की स्वराखडी स्वीकार नही।

(३) जहां तक छोटी 'इ' की मात्रा और 'र' का प्रश्न है, यह सत्य है कि उनके सुधार से टाइप करने की गति मे सुविधा होगी, किन्तु ये परिवर्तन सर्वथा आवश्यक नही जान पडते। नागरी लिपि के मूल रूप को न वदलने के सिद्धान्त के अनुसार इन दोनो को अपवाद स्वरूप मूल रूप मे रखना अधिक अच्छा होगा यद्यपि इनके कारण कुछ असुविधा होगी।

(४) 'अ', 'छ', 'झ', 'ण', 'म', 'ल' और 'ह' के लिये सुझाये रूप हमे मान्य है। साथ ही शुद्ध अनुस्वार के स्थान पर भी हमे स्वीकार है।

(५) हम इससे सहमत है कि 'क्ष' और 'त्र' सयुक्ताक्षर 'ष' तथा 'त' के रूप मे लिखे जाय, यद्यपि अच्छा तो यह होता कि हम इन्हे उनके रूप मे वनाये रख सके।

(६) शिरोरेखा वाली देवनागरी का आधुनिक रूप यथावत् रखा जावे किन्तु साथ साथ लिखावट की नागरी लिपि विना शिरोरेखा के भी लिखने की अनुमति हो।

(७) यह सुझाव कि स्वतंत्र संयुक्ताक्षरो के वदले हलन्त का प्रयोग किया जावे, हमे मान्य है। साथ ही 'अ' 'ओश्म' तथा 'ल' अक्षर भी स्वीकार किये जा सकते है।

(८) जहा आवश्यक हो, नई ध्वनियो के लिये नये चिन्हों की अपेक्षा ध्वनि भेद दर्शानेवाले चिन्हो का प्रयोग किया जावे। किन्तु सरलता वनाये रखने के लिये फिलहाल ध्वनि भेद दर्शानेवाले चिन्हो के उपयोग को प्रोत्साहन न दिया जावे।

(९) रोमन लिपि मे प्रचलित विराम तथा अन्य चिन्ह जैसे इत्यादि स्वीकार कर लिये जावें।

(१०) 'ड' और 'ढ' के लिये भी व्यवस्था करना आवश्यक प्रतीत होता है।

नागरी टाइपरायटर.—श्री. अजितसिह द्वारा प्रस्तुत नागरी टाइपराइटर योजना के सिद्धान्त नरेन्द्र देव समिति के सुझावो के साथ हमे ठीक मालूम होते है. इस सम्वन्ध मे समिति की सिफारिशो से हम सहमत है. नागरी टाइप ढालते समय उनकी सुन्दरता का भी ध्यान रखना चाहिए.

यद्यपि नरेन्द्रदेव समिति द्वारा मात्राओं में जो परिवर्तन सुझाये गये हैं उनके सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु श्री प्रयागी की (अलग से वितरित) योजना को देखने से यह स्पष्ट हो जावेगा कि इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं। श्री प्रयागी ने देवनागरी अक्षरों को पाईयुक्त और पाई रहित ऐसी दो श्रेणियों में बाटा है। उन्होंने आधे अक्षर का मूल माना है और उसे खड़ी पाई द्वारा पूरा किया है। जिन अक्षरों के अन्त में पाई नहीं है उनसे संयुक्त अक्षर बनाने के लिये उन्होंने हल्न्त का उपयोग सुझाया है। पाई का प्रयोग कर उन्होंने मात्राओं की भी ऐसी व्यवस्था की है कि वे पाई के साथ ही होगी। इस प्रकार 'इ' 'ई', 'ऊ', 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ' की मात्राएं आवश्यकतानुसार कभी एक और कभी दो खड़ी पाई के साथ और अलग से भी लगाई जा सकेंगी। इस प्रकार 'लाइनो' अथवा 'हैंड कम्पोजिंग' दोनों ही दिशाओं में, जैसा कि सुझाया गया है, मात्राओं को कुछ दूरी पर अलग से रखने की आवश्यकता नहीं रह जावेगी। श्री प्रयागी ने इसी आधार पर हिन्दी 'लाइनो टाइप' के लिये सफलतापूर्वक एक 'की बोर्ड' भी प्रस्तुत किया है।

श्री अजितसिंह ने भी अपने प्रस्तावित 'की बोर्ड' में इस सिद्धांत को आधार माना है। श्री प्रयागी द्वारा सुझाये गये सुधार श्री अजितसिंह के 'की बोर्ड' में शामिल किये जा सकते हैं या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करना उचित जान पडता है।

हिंदी लायनोटाइप—जहा तक हिन्दी लाइनो टाइप का प्रश्न है हम आज कल की ९० चैनल वाली लाइनो के उपयोग का सिद्धांत स्वीकार करते हैं और हम चाहेंगे कि सम्मेलन श्री एन एल प्रयागी द्वारा प्रस्तुत ९० प्रमुख तथा ३० सहायक 'कीज' की योजना पर विचार करे।

हस्त संग्रथन (हैंड कम्पोजिंग)—नागरी हैन्ड कम्पोजिंग को सुधारने और सरल बनाने के सम्बन्ध में डॉ गोरखप्रसाद की योजना तथा नरेन्द्रदेव समिति द्वारा प्रस्तुत सुझावों को हम सैद्धांतिक रूप से स्वीकार करते हैं। इस संबंध में श्री प्रयागी के सुझाये हुये सुधारों पर भी विचार किया जाय।

अंत में, मैं एक बात फिर से कह देना चाहता हूं। देवनागरी आधुनिक यंत्रों के अनुरूप नहीं है, इसलिये कई लोग यह सोचने लग जाते हैं कि लिपि में आमूल सुधार करना ही इस समस्या का सब से सीधा हल है। किन्तु हमारा तो यह मत है कि यह हमारे कौशल की परीक्षा है। विज्ञान की प्रगति के इस युग में, मशीनों में ही ऐसा सुधार करना कठिन न होना चाहिये कि जिनसे हमारी लिपि में कोई मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता मिट जाय। यदि हम अपनी लिपि को विकृति से बचा कर अपनी सांस्कृतिक परम्परा को अविछिन्न रखना चाहते हैं, तो यह हमारा परम कर्तव्य होगा कि इस दिशा में ईमानदारी से जुट जाय। इस सम्मेलन के निर्णयों से हमारे भविष्य का गहरा संबंध है। इसलिये मेरा यह अनुरोध है कि एक ऐसे अन्वेषण केंद्र की स्थापना की जाय जो नागरी लिपि की विशेषताओं के अनुरूप यांत्रिक साधनों का आविष्कार करने का प्रयास करे। यदि इस दिशा में कोई संस्था प्रयत्नशील हो तो उन्हें भी सरकारी सहायता दी जाय।*

मध्यप्रदेश शासन की भाषा सम्बंधी नीति†

आज से लगभग तीन माह पूर्व हमने मध्यप्रदेश भाषा अधिनियम, १९५०, के अनुसार राज्य में राज्य-भाषाओं के रूप में हिन्दी तथा मराठी का उपयोग आरम्भ करने का ऐतिहासिक निश्चय किया था। स्थिति पर पूरी तरह विचार करते हुए यह ज्ञात होता है कि हमने जो महत्वपूर्ण निश्चय किया था, उसके लिये हमें गर्व होना चाहिए। जनतंत्र में इससे बढ़ कर और कोई दयनीय विरोधाभास नहीं हो सकता कि राज्य का कार्य ऐसी भाषा में सम्पादित हो जो जनता की भाषा नहीं है। हमारी भाषा कितनी ही अविकसित क्यों न हो, यदि हमें सही अर्थों में जनतंत्र स्थापित करना है तो अन्त में हमें अपनी ही भाषा को अपनाना होगा। सच तो यह है कि जनतांत्रिक सत्ता स्थापन करने की प्रणाली में, मैं, वयस्क मताधिकार के बाद प्रशासन में अंग्रेजी के स्थान पर जनता की भाषाओं के उपयोग को दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान दूंगा। अतः कोई कारण नहीं है कि हम अपने उस निश्चय पर खेद करे। इस निश्चय द्वारा पहिले ही मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार हो चुका है। जनता तथा जनता की सरकार को पृथक् करनेवाली विदेशी भाषा की विशाल दिवाल

---

* दिनांक २८ और २९ नवम्बर १९५३ को लखनऊ में हुये देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन में दिया भाषण।

† दिनांक २४ नवम्बर १९५२ का एक पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन में मध्यप्रदेश की भाषा सम्बंधी नीति पर प्रकट किये विचार।

अन्ततोगत्वा ढह गई है। अंग्रेजी भाषा के कारण लगभग दो वर्ग बन गये थे—पहिला वर्ग उन लोगों का था जो अंग्रेजी जानते थे तथा दूसरा वर्ग सर्वसाधारण जनता का था, जो अंग्रेजी नही जानती थी। दोनों वर्ग अब तक एक दूसरे से पृथक सीमा मे रहे हैं। अब इन सीमाओं को हटाने का कार्यारम्भ किया गया है। मुझे आपसे यह कहते हुए हर्ष होता है कि राज्य के सभी भागों मे इस परिवर्तन के फलस्वरूप उत्साहजनक प्रतिक्रिया हुई है। जिलों, तहसीलों, आदि से जो समाचार मिले है, उनसे ज्ञात होता है कि सामान्यतः सर्वसाधारण जनता ने व्यापक रूप से तथा विस्तृत कर्मचारी दल ने विशेष रूप से परिवर्तन का स्वागत किया है। वे जो कहना चाहते है, अब वही लिख भी सकते हैं और ऊपर की हिदायतें भी अब सही तौर पर समझ जाते है। जिला कार्यालयों के कार्य के स्तर मे सुधार दिखने लगा है।

परिवर्तन में सुविधा.—मेरे इस कथन से कृपया आप एक क्षण के लिए भी यह न समझ ले कि मै उपस्थित होनेवाली कठिनाइयों की गुरुता कम कर रहा हूँ। कठिनाइयां तो है ही तथा उन्हे दूर होने में कुछ समय भी अवश्य लगेगा। पिछले पत्रकार सम्मेलन मे मैंने आपको इस परिवर्तन मे सुविधा पहुँचाने के लिए शासन द्वारा किये जाने वाले तात्कालिक उपाय बताये थे। उस समय जो कार्य हाथ मे लिये गये थे, उनमे अन्य बातो के अलावा हिन्दी या मराठी टाइपिस्टो तथा स्टेनोग्राफरो का प्रशिक्षण, जो लोग हिन्दी या मराठी या इनमे से कोई भी भाषा नही जानते, उन्हे इन भाषाओं को सिखाना, प्रशासनिक पारिभाषिक शब्दों का अग्रेजी-हिन्दी-मराठी तथा हिन्दी-मराठी-अंग्रेजी शब्दकोष तैयार करना तथा विभिन्न विभागो के नियमो तथा उनमे उपयोग मे आने वाले फार्मो का अनुवाद कार्य शामिल था। विभागो में उपयोग मे आने वाले फार्मो के अनुवाद का कार्य पूरा हो चुका है। प्रशासनिक पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी-हिन्दी-मराठी शब्दकोष सभी कार्यालयों को भेज दिया गया है तथा हिन्दी-मराठी के पारिभाषिक शब्दों का एक दूसरा अंग्रेजी शब्दकोष छप रहा है और वह शीघ्र ही प्रकाशित हो जावेगा। टाइपिस्टो तथा स्टेनोग्राफरों के प्रशिक्षण के लिये नागपुर, जबलपुर, रायपुर तथा अमरावती मे दिनाक १ सितम्बर से प्रशिक्षण कक्षाएँ आरम्भ की जा चुकी हैं। इनमे लगभग ५० प्रतिशत सरकारी नौकरीवाले टाइपिस्ट और स्टेनोग्राफर प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। इस अल्पकाल के अनुभव से ही हमें ज्ञात होता है कि प्रशिक्षणार्थी शीघ्र ही हिन्दी-मराठी टाइपिंग तथा स्टेनोग्राफरी सीख ले रहे हैं और वह दिन दूर नही है जब हिन्दी तथा मराठी टाइपिस्टों तथा स्नेटोग्राफरो की कमी भूतकाल की बात हो जावेगी। जो कर्मचारी हिन्दी या मराठी नही जानते उन्हे इनमें से कोई भी एक भाषा सिखाने के लिये और भी वर्ग खोले जा रहे हैं। एक मार्गदर्शिका भी अलग से तैयार की जा रही है, जिसमे आदर्श टिप्पणिया, ज्ञाप, अर्ध-सरकारी पत्र, आदेश, सारांश, आदि, हिन्दी तथा मराठी मे दिये रहेगें ताकि विभागो को हिन्दी और मराठी से कार्य करने मे सुभीता हो। इनके सिवा, विभागीय पुस्तिकाओ के अनुवाद का कार्य भी हाथ मे ले लिया गया है तथा कई पुस्तिकाओ का तो अनुवाद पूरा हो भी चुका है।

शब्दों का निश्चित स्वरुप.—प्रशासनिक शब्दावली का कोष इसलिये तैयार किया गया है कि प्रशासन के उपयोग मे आने वाले ऐसे शब्दो को निश्चित रूप दिया जावे, जिनका एक निश्चित अर्थ होता है, उदाहरणार्थ, पारिभाषिक शब्द, कार्यालयो के नाम, आदि. आप सहमत होंगे कि यदि ऐसा न हुआ तो चारो तरफ भ्रम उत्पन्न हो जावेगा। आपको शब्दकोष से पता लगेगा कि इन शब्दों के एक से अधिक समानार्थी शब्द दिये गये है, जिनमे सामान्य उपयोग मे आने वाले शब्द भी शामिल है। किसी शब्द को निश्चित स्वरूप देने की दृष्टि से और हमेशा उपयोग मे आने वाले शब्द न मिलने पर, जहां कोई शब्द आवश्यक हुआ वहां संविधान के आदेशों के अनुसार मूल संस्कृत के आधार पर नया शब्द बनाया गया है। संविधान के अनुच्छेद ३५१ में स्पष्टतया कह दिया गया है कि—

"हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता मे हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्थानी और अष्टम अनुसूची मे उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओ के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा, जहा आवश्यक या वाछनीय हो वहा, उसके शब्द भाडार के लिये मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओ से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।"

यह संविधान द्वारा स्वीकृत एक सुदृढ सिद्धान्त है, क्यो कि संस्कृत अधिकांशतः सब भारतीय भाषाओं की जननी है। इसके अलावा, सरकार ने सदा ही सरल और जनता की भाषा के उपयोग को प्रोत्साहन दिया है। अनेक ज्ञापो द्वारा समय समय पर सरकार ने इस प्रश्न की ओर कर्मचारियो का ध्यान आकर्षित किया है कि हिन्दी को राज्य भाषा का रूप देने का अर्थ सरकार और जनता के बीच विचारो के आदान-प्रदान को सरल तथा सुगम बनाना है और साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया है कि तान्त्रिक नामो को छोड कर शेष बातों में जनता की भाषा का उपयोग करना ही उचित होगा। अंग्रेजी मुहवारो को अक्षरशः हिन्दी मे अनुवाद करने या कृत्रिम भाषा का उपयोग करने की प्रवृत्ति

की सरकार ने स्पष्ट शब्दों में निन्दा की है। यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया गया है कि भाषा में सब प्रचलित शब्दों का उपयोग, उनका उद्गम चाहे जहा से भी हुआ हो, किया जा सकता है। हमने यहा तक भी सुविधा दी है कि सरकारी कार्य में अंग्रेजी शब्दों को भी नागरी में लिखा जा सकता है।

सरल और सुबोध भाषा—शासकीय कार्यों में लिखी जाने वाली भाषा जहा तक हो सके सरल और सुबोध हो। विधिविषयक पारिभाषिक शब्दों तथा उन शब्दों को छोड़कर जिनके गलत उपयोग से राज्य-कार्य में अव्यवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना है, दूसरे सभी शब्द प्रचलित भाषा से ही लिए जायें। यदि अंग्रेजी के किसी शब्द या भाव के लिए कोई हिन्दी या मराठी शब्द या अभिव्यक्तिया न मिलें, तो कुछ समय तक, अंग्रेजी के शब्द या अभिव्यक्तिया लिखने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

समस्त देश के लिये हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों के एक सामान्य शब्द-संग्रह की आवश्यकता का हम अनुभव करते है। इस दिशा में भारत सरकार कदम उठा रही है और जब राज्यों के परामर्श से भारत सरकार द्वारा यह शब्द-संग्रह बना लिया जावेगा, तब वह अन्तिम हो जावेगा और स्वाभाविक है कि वह समस्त देश को स्वीकार होगा।

हमारी भाषाओं में नये नये विचारों और कार्यों का समावेश हो रहा है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि इन भाषाओं का इतना विकास हो जावेगा कि वे नवीन कार्य के उपयुक्त सिद्ध होंगी और शीघ्र ही सुगमता से इन भाषाओं में कार्य सम्पादित होने लगेगा। मै समस्त भाषा-भाषियों के सहयोग की कामना करता हूँ कि वे इस कार्य में यथाशक्ति योग-दान दें ताकि हम विदेशी भाषा पर अवलम्बित होने के कलंक से मुक्त हो सकें।

राष्ट्रभाषा हिन्दी . कुछ समस्यायें

संविधान सभा का ऐतिहासिक निश्चय—भारत की ३२ करोड़ जन-संख्या में से १८ करोड़ की मातृभाषा होने और लगभग २२ करोड़ द्वारा सरलतापूर्वक समझी जा सकने के कारण जनता ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा तो पहिले ही वरण कर लिया था, किन्तु संविधान सभा का निश्चय एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। राज्य-मान्यता तो यात्रा का आरम्भ मात्र है। अभी एक और लम्बी और कठिन मंजिल तय करना है। हिन्दी का अपना कोई पक्ष नहीं, न उसकी उसे कभी कोई आवश्यकता ही रही या है। कोई पक्ष हो भी कैसे जब कि उसकी किसी अन्य भाषा से प्रतिस्पर्धा नहीं! संविधान सभा के सब वाद-विवाद और विचार-संघर्ष तो केवल हमारी अंग्रेजी की दासता से मुक्ति पाने की अधीरता के द्योतक थे क्योंकि यह निश्चित था कि जब तक राष्ट्र-भाषा का प्रश्न तय नहीं होता, अंग्रेजी भारत की आत्मा को जकड़े रहती। महात्मा गांधी की पारदर्शी दृष्टि ने यह बात पहिले पहल समझी थी और इसीलिए उन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रश्न को स्वराज्य से कम महत्वपूर्ण नहीं माना था। भाषा, देश और समाज का प्रतिबिम्ब होती है। उसमें राष्ट्र के उत्थान पतन, गौरव-ग्लानि, गीत विलाप, सुख-दुःख की कहानी अंकित होती है, राष्ट्रीय आत्म-सम्मान गुथा होता है, राष्ट्र की आत्मा निहित रहती है। तब यह प्रश्न राष्ट्र के जीवन-मरण के प्रश्न से क्योंकर कम हो सकता था? जिस तरह हो, अन्त में प्रश्न ने हल पाया। हिन्दी जनभाषा से राष्ट्रभाषा होने जा रही है। वह केन्द्र और प्रान्त, प्रान्त और प्रान्त के परस्पर व्यवहार की भाषा होगी। राज्य प्रासाद में इसकी प्रतिष्ठा हुई है। हिन्दी के लिए यह गौरव का विषय है। किन्तु स्मरण रहे कि यह विजयोल्लास का कारण नहीं—हो सकता है तो केवल आत्मनिरीक्षण का कारण। हमें भूल न जाना चाहिए कि हिन्दी की यह प्रतिष्ठा बिना इतर भाषा-भाषियों की सदभावना के संभव न थी। इसलिए अब हिन्दी चाहे भी तो अपने सकुचित दायरे में नहीं रह सकती। उसे एक कुटुम्ब के नायक की तरह औरों की इच्छा-अनिच्छा, आवश्यकताओं, कठिनाइयों का पहिले ध्यान रखना पड़ेगा। इसलिए, आइये, हम हिन्दी के इस नये उत्तरदायित्व से अवगत हो लें।

भारती भक्तों का उत्तरदायित्व—सारे हिन्दी प्रेमियों से मेरी प्रार्थना है कि वे भारतीय विधान के राष्ट्र-भाषा-संबंधी परिच्छेद के प्रत्येक पद को, उसकी धाराओं और उपधाराओं को ध्यानपूर्वक मनन कर लें तब उन्हें ज्ञात होगा कि अपने अभीष्ट उद्देश्य तक पहुचने के लिये उन्हें कौन-कौन से सोपान पार करना है। हिन्दी का यह ठोस कार्य का युग है। देवनागरी-अंको के लिए अभी सब द्वार बन्द नहीं हुए है। १५ वर्ष की अवधि के भीतर ही सम्भवत, *और नहीं तो उसके बाद भी, नागरी अंको के पुनरोद्धार के लिए*

विधान में स्थान है। किन्तु यह हृदयपरिवर्त्तन के मार्ग द्वारा ही संभव है। अनेक राष्ट्रभाषा-प्रेमियों को १५ वर्ष की अवधि कभी-कभी व्याकुल बना देती है। समय आ गया है कि हिन्दी-मां के सारे लाल जुट जाय और अपने आराध्य को राष्ट्र-मन्दिर की प्रतिमा के योग्य वना दे। आज तक हिन्दी का क्षेत्र कथा-कहानी, नाटक, उपन्यास, भक्ति और दर्शनशास्त्र तक ही सीमित रहा है। शासन, कला और विज्ञान में अंग्रेजी का साम्राज्य रहा है। अंग्रेजी राज्य की समाप्ति पर और हिन्दी राजभाषा घोषित होने पर हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान लेने योग्य बनाये। इन १५ वर्षो मे उसके सारे अभावों की पूर्ति कर दे। विज्ञान और कानून की सार्वत्रिक मूलभूत वौद्धिक एकता को विना ठेस पहुंचाये राष्ट्रभाषा को उनका साधन वना सकें और उसे वाजार और शिवालयों से लेकर धारा-सभा, प्रयोग-शालाओं और न्यायालयों तक पहुंचा दें। मा-भारती का भडार इस तरह लवालव भर दें कि वह सर्वोच्च शिक्षा, अनुसधान, ज्ञान-विज्ञान, कानून इत्यादि, संपूर्ण राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन की विविध और जटिलतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके. हिन्दी के सभी लेखकों, कवियो, विचारको, शव्दकारों, भाषा-शास्त्रियों, वैय्याकरणो, संकलनकर्त्ताओं, निर्माताओं को यह एक वडा आव्हान है। मुझे आशा और विश्वास है कि सम्मेलन हिन्दी की सारी विखरी शक्तियो को वटोरकर उन्हें इस दिशा मे अनुप्रेरित कर उनका सफल मार्ग-संचालन करेगा। हिन्दी-हितों की रक्षा के लिए सच्चा आन्दोलन आज यही हो सकता है। और हिन्दी के लिए—तुलसी और सूर, कवीर और नानक, दयानन्द और गाधी की हिन्दी के लिए—यह कार्य दुस्तर नही। यह जनता की वाणी है, भारत की वाणी है ; और भापा का वल जनता मे समाई उसकी जडे होती है। हिन्दी मे राष्ट्रभाषा का आसन सुशोभित करने की सारी क्षमता विद्यमान है ; उसे केवल विकसित करने की आवश्यकता है।

इतर भाषा-भाषियों से निवेदन.—किन्तु इसका यह कदापि अर्थ नही कि अन्य प्रातीय भाषाए हिन्दी से किसी तरह हीन हैं। सच मे तो वगला और तामिल जैसी भाषाओ से हिन्दी को वहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। हिन्दी की ऐसी महत्वाकाक्षा नही कि प्रातीय भाषाओं का स्थान ले। राष्ट्रभाषा और प्रातीय भाषाओ में कोई प्रतिस्पर्धा नही, दोनो का अलग-अलग क्षेत्र और अलग अलग स्थान है : सच मे तो अखिल भारतीय दृष्टिकोण से वे एक दूसरे की परस्पर विरोधिनी नही, पूरक है। और राष्ट्रभापा आज प्रांतो के लिए विदेशी या गैर तो रही नही, वह सव की एक सी हो गई है। हमारा यह उत्तरदायित्व भी हो गया है कि हमारे इतर भापा-भाषी वन्धुओ के मन का अनावश्यक भय और सन्देह दूर करे और उनका अधिकाधिक सद्भाव संचय करे। विना एक उदार और सहनशील वृत्ति के हम कभी अपनी कल्पना के राष्ट्रीय भापा-मन्दिर का निर्माण नही कर सकते। अन्य भापा-भापियो से भी मेरी अपील है कि वे हिन्दी को शीघ्र अपनाने लगे। जव हम सात समुद्र पार से आई अग्रेजी को इस तरह गले लगा सके, तव हिन्दी, जो भारतभूमि मे ही जन्मी, वढी और फली-फूली, उसका यह भय और विरोध कैसा ! मैं विशेषकर अपने दक्षिणी वन्धुओ से कहना चाहता हू—उनके मानसिक चिन्तन की शक्ति और परिश्रमशीलता विख्यात है ; इसी के द्वारा अग्रेजी पर उन्होने मातृभापा-सा अधिकार पा लिया है। एक वार वे हिन्दी की ओर आमुख हो जायं, फिर तो आश्चर्य नही कि भविष्य मे हमे ही कही उनसे हिन्दी न सीखनी पड़े। अन्य भापाओ के साहित्यको से मै निवेदन करूगा कि वे राष्ट्रभाषा के नवनिर्माण में योगदान दें और उसके सुयश मे भागीदार हो।

समान शव्दावली की आवश्यकता—यह सर्वमान्य है कि शासन, कला, उद्योग, वाणिज्य और विज्ञान के क्षेत्रों मे भारतवर्ष की एक ही शव्दावली होनी चाहिये। शव्दावली हिन्दी की हो अथवा किसी अन्य भाषा की हो, हमारे सामने वास्तव मे यह प्रश्न उठता ही नही। हिन्दी की शव्दावली प्राय संस्कृत की शव्दावली होगी और वही शव्दावली अन्य भाषाओं की भी होगी। इसलिए जव भारत की राज्य भापा हिन्दी घोपित की गई तो इसका व्यवहार में अर्थ यही है कि साहित्य और विज्ञान की विद्यमान शव्दावली तथा भविष्य मे वनने वाली शव्दावली भी समान होगी। अत. आवश्यक हो गया है कि एक ही दिशा के अनेक प्रयत्नो का एकीकरण किया जावे और एक प्रामाणिक अखिल-भारतीय पारिभाषिक शव्दकोष की रचना की नीव डाली जावे। इसी तरह हिन्दी के व्याकरण और उच्चारणों मे भी अखिल भारतीय दृष्टिकोण से यथोचित सुधार करने की आवश्यकता है। हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भावी हिन्दी के निर्माण मे हम अव अन्य भाषा-भाषी वन्धुओं का प्रभाव न रोक सकेंगे। सच में तो हमे इसका स्वागत करना चाहिए। आदान-प्रदान से भाषा जीवन्त वनती है, समृद्धिशाली होती है। हमें चाहिए कि देश की सव महान् प्रांतीय भाषाओ के साहित्यकारो को निमंत्रित करे कि वे राष्ट्रभापा के भावी भवन के निर्माण मे योग दें। नागरी लिपि को आधुनिक छपाई के यत्रों, तार और टेलीप्रिंटर के अनुरूप सुगम

बनाने की भी आवश्यकता है ताकि इस यन्त्रों के युग में हमारी राष्ट्रभाषा और देश की भाषाएं मे पीछे न रह जाय। इसी से संबंधित हिन्दी में शीघ्रलिपि और टाइपिंग का प्रश्न है।*

†हिन्दी के राजभाषा घोषित होने का वास्तविक अर्थ तो यही है कि निश्चित अवधि में हिन्दी भारतीय संघ के समस्त सरकारी कारबार की तथा अहिंदी भाषी प्रांतो में भी अखिल-भारतीय संबंधवाले सरकारी कार्यों की भाषा हो जाय प्रांत और केन्द्र दानो म जहा तक भाषा का सम्बंध है, सरकारी व्यवहार जिनमें होता है वे है—संसदों की भाषा, न्यायालयों की भाषा, केन्द्र और प्रान्त के बीच की तथा अंतर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा, केन्द्रीय नौकरियों की परीक्षा की भाषा, सरकारी दफ्तरों की भाषा, अनुसंधान और गवेषणा की भाषा, तथा शाला, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में शिक्षा-माध्यम की भाषा। इस प्रांत और केन्द्र के अधिकार-क्षेत्र स्पष्ट रूप से निर्धारित करना होगा। भाषा का प्रश्न लाख-लाख जनता की भावना से संबंधित होता है। इसलिये यहां हर कदम सतर्कता से उठाया जाना आवश्यक होता है। पर हिन्दी और अन्य प्रांतीय भाषाओं या एक प्रांतीय भाषा और दूसरी के बीच किसी विरोध की आवश्यकता ही नहीं। हरएक का अपना-अपना निर्दिष्ट, अलग क्षेत्र होगा। हिन्दी केन्द्र की भाषा होगी, किन्तु प्रांतो में तो प्रांतीय भाषा या भाषाओं का ही एकछत्र अधिकार होगा—वहां के संसद्, सरकारी दफ्तर, हाईकोर्ट के अतिरिक्त अन्य अदालतों और शिक्षा का माध्यम इन सबकी भाषा उस प्रांत की एक या अनेक भाषाएं होंगी। कहीं-कहीं अहिंदी भाषा भाषी भाइयों के मन में यह संदेह हो गया है कि हिन्दी प्रांतीय भाषाओं को पदच्युत कर देगी। यह संदेह निराधार है। भारत की सारी प्रांतीय भाषाओं का समान दर्जा है। हिंदी का जो स्थान है, वह केवल समान दर्जे-वालियों में पहली (Prime Inter Pares) के सिवा कुछ नहीं। आखिर, आज तक लगभग १५० वर्षों से, अंग्रेजी हम पर लदी रही, तो क्या उसने हमारी प्रांतीय भाषाएं कुंठित हो गईं? क्या धुआंधार अंग्रेजी की चकाचौंध तुलसी और कबीर, चंडीदास और चैतन्य, नरसी मेहता और तुकाराम के बोल धूमिल कर सकी? मैं यह कभी मानने को तैयार नहीं कि हमारी प्रांतीय भाषाओं को जो ऐसे प्राणघाती विदेशी प्रहारों को सह सकी अपनी ही सहोदरा हिंदी से किसी प्रकार का भय हो सकता है। अखिल भारतीय क्षेत्रों और सम्बन्धों में अवश्य हिंदी को, उस पर जो दायित्व सौंपा गया है, उसका निर्वाह करना ही होगा, किंतु प्रांतीय भाषाओं से उनके क्षेत्रों में उसकी कोई स्पर्धा नहीं, कोई संघर्ष नहीं। तो फिर विद्वेष का प्रश्न उठता ही कहां है? जो हो, इतर-भाषा-भाषियों के मन में बसे अकारण भय को हमें अपनी उदार भावना, संयत वाणी और सहनशील वृत्ति के द्वारा निर्मूल करना होगा। हमें याद रखना होगा कि देश भर की सद्भावना और स्नेह पाकर ही राष्ट्रभाषा का पौधा किसी दिन लहलहा सकेगा।

किन्तु साथ ही, राजभाषा और प्रांतीय भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रों और उनके पारस्परिक संबंधों की एक स्पष्ट भूमिका भी सदा ध्यान में रखना होगी। अंततः केंद्रीय संसद और सुप्रीम और हाईकोर्टों में राष्ट्रभाषा प्रस्थापित होगी ही—देश भर के कानून और न्याय की हिंदी भाषा होगी। केंद्र और प्रांत, और प्रांत और प्रांत के व्यवहारों का वह माध्यम होगी। केंद्रीय दफ्तरों की वह भाषा होगी। केंद्रीय नौकरियों की परीक्षाओं की वह भाषा होगी और देश की बौद्धिक इकाई अक्षुण्ण बनी रहे, इसलिये उच्च-शिक्षा और अनुसंधान का भी वह माध्यम हो जायगी। संघीय राजभाषा का तो यही गौरव और गुरुतर दायित्व होता है। पर क्या हिंदी इस दायित्व के लिये तैयार है? क्या समय आने पर देश के कारबार को बिना ठेस पहुंचाए वह अंग्रेजी का स्थान ले लेगी? शायद ये आशंकाएं उठती ही नहीं, यदि अंग्रेजी का प्रभुत्व हम पर इस तरह न छाया होता। आखिर अंग्रेज और अंग्रेजी आने के पहिले देश का कारबार तो चलता ही था और तब हमारी अपनी भाषाओं के सिवा और कौन सी भाषा थी? अभी अभी विलीनी-करण के पहिले तक मध्यभारत और राजस्थान की देशी रियासतों में हाईकोर्ट तक की भाषा हिन्दी ही तो थी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं, कि हिंदी को किसी तरह की तैयारी की कोई आवश्यकता नहीं। आज के युग के विज्ञान, कानून, शासन, व्यवसाय और अन्य क्षेत्रों की नित नई आवश्यकताओं के लिये उसे भरपूर उतरना होगा। अखिल भारतीय स्तर का निर्वाह कर सकने के लिये उसे सुसज्जित होना होगा। अंग्रेजी का स्थान पूरी तरह लेने के लिये उसे अंग्रेजी की चुस्ती, गठन और गति भी पाना होगी।

---

*दिनांक २४ दिसम्बर १९४९ ई० को हैदराबाद (दक्षिण) में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३७ वे अधिवेशन में पंडित रविशंकरजी शुक्ल द्वारा दिये उद्घाटन भाषण के कुछ आवश्यक अंश

†काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हीरक जयन्ती उत्सव पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन और गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए दिया गया भाषण।

परिवर्तन की कठिनाईयां—अंग्रेजी से राष्ट्रभाषा के परिवर्तन मे अवश्य अनेक व्यावहारिक कठिनाइया आयेगी। कोई सरल यात्रा नही। शताब्दियो से अंग्रेजीके पाश मे हम ऐसे वधे हैं कि हमे अपनी वेड़ियों से ही मोह हो गया है। इसीलिये, यहां वहां अनाहूत क्षेत्रों से, कभी कभी अग्रेजी के विछोह की चीख भी सहसा सुन पड जाती है। अग्रेजी से हमारा विद्वेष नही। उसके हम कई तरह से ऋणी रहेगे। वह एक महान् भाषा है और अपने अंतर्राष्ट्रीय संवधो मे हमें वहुत कुछ उसका सहारा लेना होगा। किन्तु अपने प्रजातत्र मे उसका सारा कारोवार प्रजा की भाषा मे न होकर, एक विदेशी भाषा मे हो, इस विडम्वना को तो हमे मिटाना ही होगा। जव तक यह स्थिति रहेगी, दुनिया के सामने हम पर एक तरह से लाछन वना रहेगा। हमारे प्रजातत्र की नींव भी तव तक अधूरी ही रहेगी। हिंदी के राजभाषा घोषित होने के पश्चात् सच में तो, यह विवाद उठता ही नही। फिर भी जव तक अग्रेजी के वधन शिथिल नही होते, हर वार यह वात दुहरा देना श्रेयस्कर ही होगा। पैर पीछे लौटाने की कोई वात ही नहीं। अग्रेजी से हिंदी के परिवर्तन-काल की व्यावहारिक कठिनाइयों का हमे सामना करना ही होगा—साहस से, सूझवूझ से और दृढ़तापूर्वक। यह एक दिन का या एकवारगी करने का काम नही। वडी तैयारी के वाद, कई चरणो मे ही यह सपन्न हो सकेगा। पर तैयारी तो आज ही से करनी पडेगी। नही तो, अगले १० वर्षो मे हिंदी अपना स्थान कैसे लेगी? मध्यप्रदेश मे हमने यह प्रयोग शुरू कर दिया है। दिनाक १ सितम्वर १९५३ से, कुछ वातो को छोड़, समस्त सरकारी कारवार सेक्रेटेरियट से लेकर गांव-गांव तक वहां की प्रातीय भाषाओ हिंदी और मराठी मे होने लगा है। जनता और शासन के वीच अंग्रेजी अव भेद की दीवार वन कर नही खड़ी है।

पारिभाषिक शब्दावली—राष्ट्रभाषा के विकास का एक महत्त्वपूर्ण किन्तु जटिल पहलू है—टेक्निकल और पारिभाषिक शव्दावली। इसमे तो कोई दो मत नही कि वौद्धिक इकाई बनाए रखने के लिये देश भर में ऐसी एक ही शव्दावली का उपयोग होना चाहिए। अभी इस दिशा मे भिन्न भिन्न प्रान्तों मे अलग अलग प्रयोग हो रहे हैं। समय आ गया है कि केंद्रीय सरकार यह कार्य स्वयं अपने हाथो ले ले और एक अखिल-भारतीय शव्दकोप का निर्माण करे जो सर्वमान्य हो। यह एक वडे पैमाने का और अत्यत महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसका देश के भविष्य से गहरा सम्वन्ध है।

संस्कृत ही भारत की प्रमुख भापाओं का आदि-स्रोत रही है। उसी के अक्षय भंडार से प्रान्तीय भापाओं का पोषण हुआ है। संस्कृत के लगभग ४०-५० सहस्र शव्द भारत की लगभग सभी भापाओं के साहित्य मे उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक प्रचलित हैं। इसलिये सस्कृत-प्रधान शव्दावली ही सर्वमान्य हो सकती है। हमारा यह आशय नही कि प्रचलित शव्दों का उन्मूलन किया जाय। भापा यदि जीवित रहना चाहे, तो यह सभव नही। यहां तो हमे एक उदार नीति अपनाना होगी और जहा से हमारा भडार समृद्ध हो सके उसका स्वागत करना चाहिए। किन्तु, निश्चितता के लिये जहां अधिकृत पारिभापिक शव्दो की आवश्यकता हो और प्रचलित उपयुक्त शव्द न हों, वहां हमें संविधान के निर्देशानुसार मुख्यतः संस्कृत का ही सहारा लेना होगा।

देवनागरी लिपि—इसी तरह, विभिन्न भापाओ के लिए एक देवनागरी लिपि का प्रचार कर हम एक दूसरे के सन्निकट आ सकते हैं। मुझे यह जानकर हर्ष है कि एकेडेमी ऑफ लेटर्स अन्य भापाओं के ग्रथ देवनागरी मे प्रकाशित कर इस दिशा मे प्रयत्नशील होगा।

एक और महत्वपूर्ण पहलू है जिसे हम भुला नही सकते। अग्रेजी की विदा के साथ ही, रोमन लिपि भी विदा हो चलेगी और देवनागरी को उसका स्थान लेना होगा। यह सच है, कि देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से एक अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है। फिर भी, नागरी आज के युग की गति, सुगमता और तांत्रिक आवश्यकताओ के अनुरूप रोमन की तरह ही पूरी उतरे यह हमे सुनिश्चित करना होगा। लखनऊ मे लिपिसुधार सम्मेलन का आयोजन कर प्रशंसनीय कार्य किया। वहां के निश्चयो मे एक ही वात जो हिन्दी-प्रेमियो के गले नही उतर पाई वह है ह्रस्व 'इ' के स्वरूप के सम्बन्ध में निर्णय. यह अत्यन्त छोटासा प्रश्न है। तथापि लोगो की भावना से सवधित है। व्यावहारिक दृष्टि से भी उसमें कोई वहुत लाभ नही। एक दोप को दूर करने के लिये वह एक दूसरे दोप की स्थापना करता है।

संस्कृत भाषा का महत्व*

हमारे संस्कारो आदि की भाषा संस्कृत ही रहेगी। इस बात की जड बडी गहरी भूमि में है। तभी तो कन्या-कुमारी से लगाकर काश्मीर तक जन्म, विवाह, मृत्यु जसे संस्कारो और अन्य औपचारिक अवसरो पर आज भी संस्कृत का उपयोग होता है।

सारे भारतवर्ष में सांस्कृतिक एकता बनाये रखने में संस्कृत का बडा हाथ रहा है। और आज भी हमारी यही कामना है कि भारत के जीवन की विविधता में समन्वय स्थापित करने में वह पूर्ववत सक्षम बनी रहे। हमारे इस नव-स्वतन्त्र राष्ट्र के बहुमुखी विकास में संस्कृत भाषा और उसमें उपलब्ध साहित्य हमारी अनेक जटिल समस्याओ का हल करने मे सहायक सिद्ध होता है। एक ओर भारतीय दर्शन की मानव-वादी उदारता हमारी राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय गतिविधि को पूरी तौर से प्रभावित किये है, और संस्कृत साहित्य हमारे प्रगति पथ की बाधाओ में "नात्मान अवसादयेत" और "मा भै" की पवित्र ध्वनिया सुनाता रहता है, वहा दूसरी ओर संस्कृत भाषा हमारे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में "आवश्यक और वाछनीय" सहायता देने को तत्पर रहती है। "आवश्यक और वाछनीय" इसलिये कि कोई भी माता अपनी सन्तान को अत्यन्त परावलम्बी बनाना पसन्द नही करती। अपने पैरो पर खडे होने के प्रयत्नो मे वह उतनी ही सहायता देती है जितनी कि वह आवश्यक और वाछनीय समझती है। योग्य मातृत्व में यही दूरदर्शिता और विवेकशील सयम होता है।

हमारे लिये संस्कृत सदैव प्रेरणा और शक्ति की स्रोत रही है। आज विशेष रूप से जब चारो ओर युद्ध के बादल छा रहे है, केवल हमारा देश ही उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठा रहा है। भारतीय सदा ही शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध रहे है। विजय के उपरान्त युद्ध से विरत होने का उदाहरण अशोक के सिवा ससार में और कौनसा है। भारत की सैनिक शक्ति कभी कम नही थी। किन्तु इतने पर भी विदेशो में उसकी सब विजये सांस्कृतिक ही रही है। यह लका, बर्मा, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, बाली, आदि में भारतीय संस्कृति के विस्तार से स्पष्ट है। राष्ट्र तथा विश्व की सच्ची सुरक्षा सैन्य-बल में नहीं, किन्तु सत्य-पथ पर आरूढ रहने में है। आदिकाल से संस्कृत साहित्य की यही पुकार रही है कि—"हे ईश्वर हमे वह बल दो जिससे हम सदैव सुपथ पर चले। दूसरे के धन पर गिद्ध-दृष्टि न डाले और लोभ तथा मोह के पात्र को हटाकर सत्यधर्म को देखें"। हम सब भी आज यही निश्चय करे

समानी व आकूति समाना हृदयानि व ।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ॥

विज्ञान की प्रगति—दिनाक २१ दिसम्बर को सागर में राष्ट्रीय विज्ञान-परिषद के चौतीसवे वार्षिक अधिवेशन में श्री शुक्ल जी के अध्यक्षीय भाषण से—

"विज्ञान की प्रगति कृत्रिम साधना द्वारा अवरुद्ध नही की जा सकती, मानव कल्याण के लिये उसका लाभप्रद योगदान जारी रहना चाहिये। विज्ञान में कोई दोष नही है, दोष हम में है जो उसका दुरुपयोग करते है विज्ञान साधना की वस्तु योजना में मानव का अस्तित्व कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। ब्रह्माण्ड के अपरिमेय क्रम में मनुष्य का स्थान तो एक क्षुद्रतम बिन्दु के समान ही हो जाता है। किन्तु विज्ञान की विनाशक प्रवृत्तिया उस समय विजयी हो उठती है जब ऐसी एक मानवोचित जीवन दृष्टि का अभाव हो उठता है जिससे मनुष्य की आत्मा की सही प्रतिष्ठा होती है। मनुष्य विज्ञान का निर्माता और उसका स्वामी है। वह विज्ञान का उपयोग अपनी आवश्यकताओ और उद्देश्यो की पूर्ति के लिये करता है। यह सच है कि किञ्चित अविचारी व्यक्तियों के हाथो में पडकर वैज्ञानिक शक्ति मनुष्य जाति के लिये भयावह सिद्ध हो सकती है। किन्तु हम इस तथ्य को भी समझना है कि पारस्परिक घृणा और ओछी ईर्षा के कारण सारी दुनिया विग्रहमय हो गई है। अत विपत्ति निवारण, विज्ञान की उपयोगिता के बारे में सन्देह करके नही, वरन प्रेम और सद्भावना द्वारा मानवीय सम्बन्धो को सुधार कर ही हो सकता है। आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता जीवन का एक ठोस दर्शन और मानवीय बुद्धि एव भावना का उपयुक्त शिक्षण ही है। राधाकृष्णन रिपोर्ट में ऐसे सभी व्यक्तियो को मानवतावादी प्रशिक्षण दिये जाने की आवश्यकता पर सही तौर से बल दिया गया है जो वैज्ञानिक अध्ययन में विशेषता अर्जित करने के इच्छुक है। इस तरह

*दिनाक २८ अप्रैल १९५४ को नागपुर में संस्कृत विश्व-परिषद में स्वागताध्यक्ष पद से प्रकट किये गये श्री रविशंकर शुक्ल के विचार

के मानवतावादी प्रशिक्षण द्वारा वे उत्तम जीवन दर्शन पा सकेंगे और उचित मूल्यांकन कर सकेंगे। विशुद्ध वैज्ञानिक और शिक्षण से यंत्रचालित दैत्य ही उत्पन्न हो सकते है, जिसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय कमीशन के शब्दो मे 'राक्षस-राज्य' की स्थिति आ सकती हैं। विज्ञान पर दर्शन का नियंत्रण रहे और दर्शन विज्ञान की खोज से शक्ति और प्रेरणा हुआ हैं। विज्ञान ने अनेक प्रकार से जीवन को सुखी, सुरक्षित तथा जीने योग्य बनाया है। यदि विज्ञान की प्रगति बनी रही, जिसमे सदेह नही, तो हमारी एक-विश्व की वह कल्पना साकार हो उठेगी जिसमे पूरा मनुष्य समाज एक परिवार की भाति भय बाधायो से मुक्त हो, सुखी और सम्पन्न रह सकेगा।

"किन्तु विज्ञान के लाभ सर्वथा दोषमुक्त नही है। विज्ञान के विकास के साथ ही हमारे सामने कई खतरे उत्पन्न हो गये है जो हमे इसके लिये बाध्य करते है कि हम उनका विचार करे। जब से आर्कमिडीस ने आक्रमणकारी सेनाओ पर पत्थर फेकने की मशीन खोज निकाली थी, आज तक विज्ञान सैन्य-शक्ति को अधिकाधिक बल प्रदान करता आ रहा है। शौर्य और आन के वीरता सम्बन्धी विचारो तथा साहस और मौत से खेल जाने की जाबाजी अब बीती बात हो गई है। बर्टरेन्ड रसेल ने कहा है: 'भौतिक विज्ञानशास्त्री फौज के कई दस्तो के बराबर होता है। आज युद्धो मे आधुनिक विज्ञान के प्रयोग के अतिरिक्त, विजय साहसी सेनाओ पर नही, वरन भारी उद्योगो पर निर्भर रहती है।" सदा की अपेक्षा आज विज्ञान ने केवल जन-संहारी शस्त्रास्त्रो को ही अधिकाधिक भयावह बनाने मे योग दिया है। आइन्स्टीन के समान महान विचारकों ने तो यह आशंका प्रकट की हैं कि इस पृथ्वी पर से सभी प्राणियो के लोप होने का भय है। युद्धकारी सत्ताओ के हाथ मे विज्ञान ने समस्त प्राणियों के विनाश की शक्ति सौप दी है। युद्धरत सत्ताओं मे से किसी एक के निर्णय की जरा सी भूल से अथवा जल्दबाजी से सर्वनाश हो सकता है। बर्टरेन्ड रसेल के समान विचारक कभी कभी निराशावादी हो उठते है तथा यह आशका प्रकट करने लग जाते है कि कोई न कोई सत्ता मदांध हो ना समझी कर सकती है। डीन इंज ने तो बताया है कि आधुनिक काल के अन्तर्राष्ट्रीय रवैयों को देख यह पुरानी कहावत गलत सिद्ध जान पडती है कि जब दो ठन जाय तभी लडाई हो सकती है। आज तो स्थिति यह है कि कोई भी सत्ता अपने अनुचित कार्य से समस्त विश्व के लिये एक सकट खडा कर सकती है। आज जब कि मानव जाति अपनी उन्नति के शिखर पर है तथा अपनी हर कमी पूरी करने की क्षमता रखती है, सच मे यह दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना ही होगी कि वह आत्म-विनाश का मार्ग वरण करे".

भारतीय राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रभाषा की आवश्यकता*

यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जबाबदारी का विराट प्रश्न उपस्थित है तो वह हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के सामने है। इस विषय की समस्या को हल करने के लिये हमे दूरदर्शिता, बुद्धि और हृदय की उदारता और कार्य-तत्परता इत्यादि अनेक गुणो की आवश्यकता है। क्योकि आपको यह हमेशा ध्यान मे रखना चाहिये कि हमारे सामने हिन्दू-राष्ट्र स्थापित करने का प्रश्न नही है। यदि प्रश्न इतना ही होता तो वह कोई बडी बात नहीं थी। प्रश्न हमारे सामने भारतीय-राष्ट्र स्थापित करने का है और इसी कारण हमारे लिये राष्ट्रसगठन का काम अत्यत कठिन हो रहा है। चाहे जो हो यदि हम ससार मे जीना चाहते है तो हमे यह काम अवश्य करना पडेगा।

मेरे विद्वान मित्रो से मुझे यह कहने की आवश्यकता नही दिखाई देती, कि जिस जमाने से हम लोग गुजर रहे है वह सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, तथा राजनैतिक आंदोलन का काल है। वर्तमान काल की नई परिस्थितियोने हमे अपने बहुत से पुराने सिद्धान्तोकी यथार्थता और सार्थकता की परीक्षा करने की आवश्यकता सिद्ध कर के दिखला दी है। आज हम धर्मक्षेत्र में यह प्रश्न कर रहे है कि जीते जागते भारत के लिये सच्चा धर्म क्या होगा? आज हम यह प्रश्न कर रहे है कि भावी भारतीय समाज की बुनियाद समाज शास्त्र के किस सिद्धान्त पर डालना अधिक लाभदायक होगा। राजनैतिक क्षेत्र में हमारा यह प्रश्न है कि भारत की भारतीयता यहां किस शासनपद्धति के द्वारा सुरक्षित रह सकेगी? नैतिक प्रश्न हमारे सामने इस रूप मे उपस्थित हो रहा है कि किन नैतिक गुणो का अवलबन करके हमारा यह देश जातीय और अन्तर-जातीय जीवन संग्राम मे विजयश्री का अधिकारी हो सकेगा। तब क्या इन प्रश्नो के साथ आप लोगों को यह प्रश्न सुनाई नही देता कि क्या इस अनेक भाषा-भाषी भारत की भारतीयता और राष्ट्रीयता विना

---

*सन् १९२२ मे मध्यप्रदेश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पंचम अधिवेशन, नागपुर मे अध्यक्ष-पद से दिया गया भाषण।

एक राष्ट्रभाषा के स्थापित हो सकेगी ? इस प्रश्न की आवाज इतनी ऊंची है कि कोई भी इस पर दुर्लक्ष्य नहीं कर सकता। इसे सुनना होगा और इस का उत्तर शब्दों में ही नहीं वरन कार्य रूप में देना होगा। मित्रो ! राष्ट्र-भाषा के इस अभाव का परिणाम हमारे सार्वजनिक व्यापारों में हमें कितना मिल रहा है यह आप सहृदय सज्जनों को विदित ही है। अभ्यस्त हो जाने के कारण कदाचित् आपको यह देखकर आश्चर्य न होता होगा कि आज लगभग ५० वर्षों से हमारे देश की राष्ट्रीय महासभा की कार्यवाहियां अंग्रेजी सरीखी विदेशी भाषा में की गई है। क्या यह भारतीयों के लिये लज्जा, ग्लानि और असंतोष का विषय नहीं है कि देश के एक प्रान्त का मनुष्य दूसरे प्रान्त के अपने देश-भाई से प्रेम संभाषण करना चाहे तो उसे एक विदेशी भाषा की शरण लेनी पड़ती है। इससे बढ़कर परिताप का विषय और क्या हो सकता है कि दो भारतीय हृदय एक होकर भी भाषा के अभाव में दो बने हुए हैं। मैंने अपने देशभक्त भाईयों को यह उद्गार निकालते हुए सुना है कि भारत की अनेकता दूर करके एकता स्थापन करना हमारा पहिला कर्तव्य होना चाहिये। इसके उत्तर में मेरा इतना ही निवेदन है कि भारतीय हृदय में अनेकता नहीं है। भारतीय संस्कारों में अनेकता नहीं है, अनेकता भारतीय भाषाओं में है। भारतीय भाषाओं की यह अनेकता ही हमारे कलिमय विभिन्नता का कारण हो रही है। राष्ट्रीय भाषा के इस अभाव के कारण ही आज हम यथार्थ में एक होते हुए भी अनेक हो रहे हैं। सर्व सुलभ राष्ट्रीय साहित्य के संताप-जनक इस अभाव ही के कारण हमें अपने भारतीय भावों और संस्कारों को विदेशी भाषा का बेढंगा विकृत और अस्पष्ट रूप देना पड़ता है। क्योंकि जातीय भाव जातीय भाषा में ही सर्वतोभावेन अलंकृत किये जा सकते हैं, विदेशी भाषा में नहीं। कहने का सारांश इतनाही है कि राष्ट्रिय भाषा का एक अभाव ही हमारी पतनशीलता और सर्वनाश का कारण हो सकता है।

मैं पहले आप लोगों से यह निवेदन कर चुका हूं कि राष्ट्रीय भाषा का यह महत्व विशेष कर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिये अत्यन्त चितायुक्त मनन का विषय है। क्यों कि राष्ट्रीय भाषा का स्वरूप निश्चित करने का सौभाग्य इस देश के अन्यान्य भाषा भाषियों की अनुमति से उन्हें ही प्राप्त है। क्योंकि भारत की अन्यान्य भाषायें अपनी संपत्ति-शालीनता के मद में एक बार क्षणिक हिन्दी की ओर भले ही उपहास की निगाह से देखें परन्तु भारत के सबसे ऊंचे राष्ट्रीय सिंहासन पर बैठने का साहस आज तक उनमें से किसी ने भी प्रगट नहीं किया है। वह स्थान हिन्दी के लिये खाली पड़ा हुवा है। हिन्दी प्रेमी अपनी भाषा को उस योग्य बनावें और अपने साहित्य प्रेम की यथार्थता सिद्ध करें। यही उनकी परीक्षा होनेवाली है। इसी प्रयत्न में वे राष्ट्र का सच्चा हित-संपादन कर सकते हैं।

भारतीय राष्ट्र-निर्माण के इस काल में इस साहित्य-सम्मेलन के सामने हिन्दी-कलेवर-पुष्टि का प्रश्न उतने महत्व का मुझे नहीं दिखाई देता जितना कि उस के प्रचार का प्रतीत होता है। एक हिन्दी भाषा के अखिल भारत-वर्षीय हो जाने पर उसके साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रश्न कुछ कठिन नहीं रह जाता। विचार कीजिये कि बंगाली, मरहठी, गुजराती इत्यादि भारतवर्ष की भिन्न भिन्न भाषाओं में जितने शिक्षित और विद्वान लोग हैं वे यदि अपनी भाषाओं के साहित्य की ओर ध्यान देते हुवे भी राष्ट्र भाषा के नाते यदि हिन्दी में एकाध ग्रंथ ही लिख देते तो आज दिन हिन्दी साहित्य की काया इतनी निर्बल और क्षीण न दिखाई देती। इसीलिये मेरी यह निश्चित धारणा है कि केवल हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता है। एक बार उसमें राष्ट्रीयता आ गई कि फिर थोड़े दिनों में ही उसका साहित्य-सरोवर निर्बंध होकर सारे हिंदुस्थान को परिप्लुत करेगा। कल्पना के द्वारा थोड़ी देर के लिये यदि हम भाषाओं के भेदको मिटा दें तो हमारे देश में साहित्य की कमी हमें नहीं दिखाई देगी। साहित्य पर्याप्त है, परन्तु भिन्न भिन्न भाषाओं में बट जाने के कारण हम उसकी विशालता नहीं दिखाई देती।

इसी प्रसंग में मैं राष्ट्रीय महासभा से भी एक अनुरोध करूंगा। कॉंग्रेस ने गत दो वर्षों से जो अपना कार्यक्रम निश्चित किया है उसका प्रधान उद्देश इस देश को एकता के सूत्र में बांध कर जातीयता स्थापन करते हुए स्वावलंबी बनाना है। अस्पृश्य जातियों के उद्धार का सामाजिक प्रश्न उठा कर वह इस देश में सच्ची सामाजिकता स्थापन करने का प्रयत्न कर रही है। चरखे का प्रचार करने के प्रयत्न में वह देश की आर्थिक दुरवस्था को दूर करने में प्रयत्न-शील है। मद्यपान निषेध में वह एक नैतिक समस्या को हल कर रही है। हिंसारहित असहयोग में वह धर्म के आधार पर इस देश को स्वावलंबी बनाना चाहती है। इस तरह राष्ट्रीय निर्माण के कार्य को सफलता पूर्वक पूरा करने के लिये वह सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक, आत्मिक तथा धार्मिक इत्यादि सभी तरह के सुधारों में दत्तचित हो कर संलग्न है और इतने थोड़े समय में उसने सफलता भी अच्छी प्राप्त की है। परन्तु मेरी समझ में यह अभीतक नहीं आया कि इस महासभा ने राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न उठाना और सारे भारतवर्ष को एक भाषा भाषी बनाने का प्रयत्न करना क्यों आवश्यक नहीं माना। यदि स्वराज्य प्राप्त करने के पहिले अपने को स्वराज्य करने के योग्य बनाना एवं जातीयता स्थापित करना आवश्यक है तो अवश्यमेव राष्ट्रभाषा के इस प्रश्न की अवहेलना न की जानी चाहिये।

क्योंकि विना राष्ट्रभापा के राष्ट्रीयता स्थापन करने का प्रयत्न करना एक ऐसी असंगत वात है जिस का समर्थन कोई भी विचारवान मनुष्य नही कर सकता। यदि प्रत्येक स्त्री और पुरुप के लिये चरखा चलाना अनिवार्य और आवश्यक माना गया है तो प्रत्येक स्त्री और पुरुष के लिये राष्ट्रभापा जानना आवश्यक क्यो नही माना जा सकता। जिस तरह हम लोगों ने अपने शरीर और अवयवो को विदेशी पोशाको से विकृत और अभारतीय वना डाला है, उसी तरह हमारे हृदय के विचार और भारतीय भाव भी विदेशी भापा की अभारतीय पोशाख से विकृत और वेढगे हो रहे है। शरीर के लिये यदि स्वदेशी वस्त्रो की आवश्यकता मानी गई है तो विचारो के लिये भी राष्ट्र-भाषा के रूप मे स्वदेशी वस्त्रो की उतनी ही आवश्यकता है। मेरे कहने का इतना ही आशय है कि काग्रेसने अपने कार्यक्रम मे जिस तरह और और विषयों का समावेश किया है उसी तरह राष्ट्र-भाषा-प्रचार का विषय भी उस मे सम्मिलित होना चाहिये क्यो कि यह विषय उतने ही महत्त्व का है, जितने कि अन्यान्य विपय माने गये है।

हिन्दी की क्षमता—इस देश के अन्य भाषा-भाषी विद्वानो की राय प्राय. अव तक निश्चित हो गई है कि भारतीय अन्यान्य भाषाओ मे राष्ट्र-भाषा होने की अधिकारिणी हिन्दी ही है। आज तक इस विषय पर अनेक वाद विवाद हो चुके है और अन्त मे यह मत स्थिर हुआ है। अतएव यहां पर मै हिन्दी की योग्यता सिद्ध करने का यत्न करना अनावश्यक समझता हू क्योकि यह विपय इतना विस्तृत है कि कदाचित इस लेख मे इस की मीमांसा की जावे तो यह लेख वढ जायगा और दूसरे महत्व के विपयो के लिये समय बहुत कम रह जायगा। सिवाय इसके मै यह भी समझता हू कि यदि मै इस विषय पर कुछ विचार भी करना चाहूं और हिन्दी की श्रेष्ठता सिद्ध करने मे साधक तथा वाधक प्रमाणो की विस्तारपूर्वक चर्चा करू तो कोई ऐसी वात न कह सकूगा जो आप लोगों के लिये नई हो क्योकि इस विषय पर इतना अधिक विचार समय समय पर किया गया है कि कहने और सुनने योग्य अव कोई नई वात मेरे समान सकुचित बुद्धिवाले मनुष्य को नही दिखाई देती। इस दृष्टि से मेरा यह प्रयत्न केवल पिष्टपेषण मात्र ही होगा। तथापि जब कि प्रसंग आ ही गया है तो वहुत थोडे शद्वो मे उसकी योग्यता दिखलाने का प्रयत्न करूंगा।

प्रश्न किया जा सकता है कि हिन्दी भापा ही राष्ट्र भाषा होने के योग्य क्यो है ?

इसका सव से पहला उत्तर यह होगा कि इस देश मे अधिकाश लोग हिन्दी ही वोलते है और उससे अधिक लोग उसे समझ सकते है।

दूसरा उत्तर यह होगा कि यही एक ऐसी भापा है जो सव से सरल है और अन्य भाषा-भापी लोग इसे और भाषाओं की अपेक्षा वहुत कम परिश्रम से सीख सकते है।

तीसरा कारण इस की योग्यता का यह है कि इस भापा की लिपि जितनी निर्दोप है उतनी कदाचित् एतद्देशीय किसी भी भाषा की लिपि नही है। देवनागरी लिपि मे यह विलक्षण विशेषता है कि शद्वो का जिस तरह उच्चारण किया जाता है ठीक उसी तरह वह लिपिवद्ध भी हो सकता है।

चौथा गुण इस मे समता का है। चाहे किसी भी भापा का कैसा भी वेढगा और कठिन शद्व क्यों न हो इस की लिपि मे ठीक ठीक लिखा और पढा भी जा सकता है।

भापा की व्यापकता और सरलता और लिपि की निर्दोषिता और क्षमता इन गुणों के कारण हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा होने का अधिकार प्राप्त है यह वात विद्वानों को मान्य हो चुकी है, इसीलिये मैंने स्वाभिमान पूर्वक कई स्थानों में हिन्दी के लिये राष्ट्र-भाषा शद्व का उपयोग किया है।

इस सम्वन्ध मे आप लोग इस वात को अच्छी तरह जानते है कि मनुष्य के हृदय मे जव तक क्षुद्रता और सकीर्णता वनी रहती है तव तक वह वडप्पन का अधिकारी नही हो सकता। सच्ची महत्ता उसी मनुष्य की है जिसके वुद्धि और हृदय महान् है जिस की विचारशक्ति संकीर्णता की जजीरो से मुक्त है और जो प्रत्येक काम दूरदर्शी और व्यापक बुद्धि से किया करता है। संकुचित हृदय का मनष्य स्वामी तथा सम्राट् होने योग्य नही हो सकता, उसके लिये दासता और गुलामी ही उचित है। मेरे कहने का आशय इतना ही है कि जिस समय हम हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा का अत्यन्त महत्त्व और गौरवपूर्ण स्थान देने का विचार कर रहे है उस उस समय हमे यह भी सोच लेना चाहिये कि इसमे कही संकीर्णता का दोष तो नही है। इसका हृदय तो महान है। उसमे अन्यान्य भाषाओ से उदारता-पूर्वक प्रेम सभापण करने की मनोवृत्ति तो उत्पन्न हो चुकी है। हिन्दी को इस गौरव के स्थान पर आरूढ होने के पहिले अपने हृदय की इतनी तयारी कर लेना चाहिये। अन्यथा वह राष्ट्र-भापा के सिहासन को अलंकृत न कर सकेगी और उस का उपहास होगा। उसके सारे गुण दोप मे परिणित हो जायगे।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि जो लोग हिन्दी भाषा को इतनी अछूती बनाकर रखना चाहते हैं कि दूसरी भाषाओं से एक शब्द भी इस में नहीं आने देते, उनकी कदाचित् यह धारणा है कि भिन्न भिन्न भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में समाविष्ट करने से उन की पवित्रता नष्ट हो जायगी। इसलिये जब वे साहित्य की हिन्दी लिखते हैं तब तो ढूंढ ढूंढ कर चाहे संस्कृत के कठिन शब्दों को अपने उपयोग में भले ही लावें परन्तु दूसरी भाषा का प्रचलित शब्द एक भी नहीं आने देंगे क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा करने से हिन्दी का हिन्दीपन नष्ट हो जायगा और उसकी शुद्धता में दोष आ जावेगा। यह बात विशेष कर हिन्दी और उर्दू के संबंध में दिखाई देती है। उर्दू भाषा-भाषी यदि हिन्दी के प्रति इस तरह का व्यवहार प्रगट करें तो वह किसी अर्थ में क्षम्य है, परन्तु राष्ट्र-भाषा होने का दावा रखने वाली हिन्दी भाषा को हृदय की यह संकीर्णता शोभा नहीं देती। यह केवल शोभा देने या न देने का विषय नहीं है इससे हिन्दी की लोकप्रियता पर आघात पहुंच सकता है। यदि हिन्दी सर्व सुलभ और लोकप्रिय भाषा होना चाहती है तो उसे चाहिये कि वह अपने हृदय की ऐसी अनुदारता को दूर कर के सभी तरह के प्रचलित और लोकप्रिय शब्दों को लेकर उन पर अपने व्यक्तित्व की मुहर लगा दे और इस तरह मानवी मनोविकारों को सुचारू रूपेण प्रगट करना अभीष्ट समझे। प्रत्येक जीती जागती और उन्नतिशील भाषा का यही गुण धर्म होना चाहिये। संसार की प्रायः सभी बड़ी बड़ी और संपत्तिशील भाषाओं में यह विशेषता आप लोगों के देखने में अवश्य आयगी। अंग्रेजी भाषा का साहित्य कितना विस्तारयुक्त और विलक्षण है यह आप जानते ही हैं। इस भाषा में भी आप को यह विशेषता बढ़ी चढ़ी हालत में मिलेगी। परन्तु मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि हमारे कतिपय मित्रों की धारणा इस संबंध में बिल्कुल विपरीत है। मेरी राय में यह हृदय की संकीर्णता के सिवाय कुछ भी नहीं है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के प्रयत्न में हमें हृदय की कमजोरी को बिल्कुल दूर कर देना होगा।

जिन लोगों को हिन्दी की इस कल्पित पवित्रता का हमेशा ध्यान रहता है उनसे मेरी जिज्ञासा है कि क्या वे सचमुच ऐसा समझते हैं कि हिन्दी सारे देश की राष्ट्र भाषा हो कर भी अपरिवर्तित बनी रहेगी ? क्या उसके रूप में जरा भी फरक न होगा ? क्या आज से हजार वर्ष आगे की राष्ट्रभाषा हिन्दी उसी रूप में आपको मिलेगी जिस रूप में वह आज लिखी और पढ़ी जाती है। मैं समझता हूं कि ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। मेरा यह अनुमान है कि आजसे हजार वर्ष आगे की हिन्दी में जो रूपान्तर होगा उसमें उसका वर्तमान रूप नष्ट हो जावेगा किन्तु उसमें सच्ची राष्ट्रीयता दिखायी देगी। यही बात आज कल की बोलचाल की हिन्दीमें भी देखनेमें आती है। शुद्ध हिन्दी लिखी तो अवश्य जाती है, किन्तु बहुत कम बोली जाती है। इसलिये बोलचाल की इस भाषा को लिखी जानेवाली हिन्दी से अलग करनेके लिये उसे दूसरा नाम "हिन्दुस्तानी" प्राप्त हो गया है। मेरी राय है कि उर्दू मिश्रीत हिन्दी के लिये दूसरे नामकरण की आवश्यकता नहीं है। उसे हिन्दी कहना चाहिये और जहां तक हो सके लिखी जानेवाली हिन्दी भाषामें भी इसी तरह की भाषा का प्रयोग होना चाहिये।

मेरे कहनेका आशय यह नहीं है कि हिन्दी अपने स्वरूप का इतना परिवर्तित कर दे कि उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जावे और अपने वर्तमान की सारी विशेषता वह खो बैठे। जिस समय मैं यह कह रहा हूं कि हिन्दी को उन्नतिशील होते हुये परिवर्तनशील और उदार होना चाहिये उस समय मैं यह आशय प्रगट करना चाहता हूं कि उसमें एक जीती जागती और प्रौढ़ भाषा की विशेषतायें आजानी चाहिये। इससे उसके व्यक्तित्व के नष्ट हो जाने की आशंका जरा भी नहीं है, प्रत्युत उसकी प्राचीनता और प्रभुता के बढ़ जाने की ही संभावना है।

इतिहास

पुरातत्व

जगदधिपतिजाया रुक्मिणी यत्र जाता
विलसति दमयन्त्या जन्मभूर्यत्र सत्याः ।
निविडवननिवासः पाण्डवानाञ्च यत्र
जगति विदितकीर्तिः पावनोऽयम् प्रदेशः ॥
नृपकमलदिनेशो वीरसम्राडशोको
भुवनविदितनामा कर्णदेवस्त्रिपुर्याः ।
जनगणहृदयेशो रत्नदेवोनृपालः
स्मृतिभिरिह न एषा स्यात्प्रशस्तस्तु पथाः ॥

—श्री शिवनाथ मिश्र

मध्यप्रदेश का इतिहास और पुरातत्त्व
[संक्षिप्त परिचय]

श्री बालचन्द्र जैन

मध्यप्रदेश भारत भूमि के मध्य मे स्थित है, इसलिए भारत की तमाम प्रमुख राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का इस भू-भाग पर सदा ही प्रभाव पड़ता रहा है। प्राचीन काल मे जव रेलो और सड़कों का इतना सुव्यवस्थित विस्तार न था, तव उत्तर और दक्षिण तथा पूरव और पश्चिम का पारस्परिक आदान-प्रदान मध्यप्रदेश के माध्यम से ही होता था। यो कहे कि मध्यप्रदेश उत्तर और दक्षिण के सम्मेलन का केन्द्र था, उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय संस्कृतियों के संगम की भूमि था।

प्राचीन काल मे मध्यप्रदेश का वहुत सा हिस्सा दण्डकारण्य कहलाता था। उसके पूर्वी भाग में कोशल, दक्षिण कोसल या महाकोशल का राज्य स्थित था, जिसे अव छत्तीसगढ कहते हैं। उत्तरीय जिले महिषमंडल और डाहलमंडल में विभाजित थे। महिषमंडल की राजधानी निमाड़ मे माहिष्मती (आधुनिक मांधाता) में थी और डाहलमण्डल की राजधानी जवलपुर के निकट त्रिपुरी मे। वरार को प्राचीन काल मे विदर्भ कहते थे। नागपुर और चांदा के आसपास का प्रदेश कभी विदर्भ के अन्तर्गत और कभी कोशल के अन्तर्गत रहता था। अनूप, अवन्ति, दशार्ण, ओड्र और कलिग की सीमाएँ वर्तमान मध्यप्रदेश से लगी हुई थी। इनके अनेक टुकड़े अव मध्यप्रदेश के अग वन चुके हैं।

मध्यप्रदेश के इतिहास का क्रमवद्ध अध्ययन करने मे हमे निम्नलिखित साधनों से छुटपुट सहायता मिलती है :—

(१) साहित्य—वैदिक, पौराणिक, जैन, वौद्ध और इतिहास-साहित्य।

(२) विदेशी यात्री ह्यू नत्सांग का यात्रा विवरण।

(३) पुरातत्त्व—उत्कीर्ण लेख, सिक्के, स्थापत्य और शिल्प।

वैदिक साहित्य मे ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, ये चार वेद तथा ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और श्रौतसूत्र सम्मिलित हैं। इन सव में ऋग्वेद को भाषा विज्ञान के आधार पर सवसे प्राचीन माना गया है। रामायण, महाभारत और पुराण-ग्रन्थों मे भिन्न-भिन्न कालीन राजवंशावलियो का उल्लेख मिलता है। जैन और वौद्ध धार्मिक ग्रन्थों मे भी इसी प्रकार अनेक सूचनाएँ मिल जाती हैं। राजशेखर कृत "विद्धशालभंजिका" नाटक, पद्मगुप्त कृत "नवसाहसांक चरित", कृष्णमिश्र कृत "प्रवन्ध चन्द्रोदय", मेरुतुग कृत "प्रबन्ध चिन्तामणि", सोमेश्वर कृत "रासमाला" आदि ग्रन्थो से भी मध्यप्रदेश के तत्कालीन इतिहास और सभ्यता पर प्रकाश पडता है।

पुरातत्त्व ने भारतीय इतिहास की कड़िया जोड़ने मे वड़ा काम किया है। यही वात मध्यप्रदेश के इतिहास के लिए भी लागू होती है। शिलालेख, सिक्के, स्थापत्य और शिल्प सभी पुरातत्त्व के अन्तर्गत हैं। शिलालेखों से न केवल राजनैतिक स्थिति का ही ज्ञान होता है अपितु तत्कालीन लिपि और भाषा पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दानपत्रों से राजकीय व्यवस्था, शासन प्रणाली और राजस्व आदि के संवंध में अनेक सूचनाएँ मिलती हैं। समुद्र-गुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से हमें चौथी शताव्दी के मध्यप्रदेश के उन राजाओ के संवंध में सूचना मिलती है, जिनका उल्लेख हमे अन्यत्र कही नही मिलता। सिक्को ने भी इतिहास की शृंखला को जोडने मे वड़ी सहायता पहुँचाई है। त्रिपुरी, एरकिण और भागिला जैसे मध्यप्रदेश के प्राचीन जनपद राज्यों का अस्तित्व सिक्कों के वल पर ही सिद्ध हो सका है। इसी प्रकार शातवाहन राजाओं की वंशावली की गुत्थी चांदा और अकोला जिले से प्राप्त उन राजाओं के सिक्कों ने ही

सुल्भाई है। प्राचीन मदिर, महल, दुर्ग, मूर्ति, चित्र आदि भी इतिहास के बडे काम की वस्तु है। इनमे कला, सस्कृति और धर्म प्रचार के सबध में बहुत सूचनाएँ मिलती है। सातवीं शती ईस्वी में चीनी यात्री ह्यूनत्साग ने मध्य-प्रदेश के अनेक स्थानो की यात्रा की थी। उस यात्रा का विवरण उसने पुस्तक रूप में लिख छोडा है। उसमे यहा की लोक सस्कृति, बौद्ध विहार और लोगो के आचार विचारो के सबध में अनेक बहुमूल्य सूचनाएँ मिली है।

प्रागैतिहासिक अवशेष

आधुनिक विचारको का मत है कि मनुष्य अपनी प्रारभिक अवस्था में निपट अगम्य और असस्कृत था। उन दिनो के मनुष्य और पशु में कोई अन्तर न था। पशुओ की भाति मनुष्य भी वनो, पर्वतो और नदी घाटियो में विचरा करता और कन्द-मूल-फल खाकर या वन्य पशुओ का आखेट कर के अपना पेट भरता था।

पाषाण युग

इतने पर भी, सोचने और विचारने की शक्ति तो मनुष्य में प्रारभ से ही विद्यमान थी। उसने धीरे-धीरे इस शक्ति का उपयोग करना प्रारभ किया। आसानी से भोजन प्राप्त किया जा सके, इसके लिए उसने नदियो में प्राप्त होने वाली बट्टिया को तोड-फोड कर उन्हें नुकीला बना कर उनके औजार और हथियार बनाए। इन औजारो और हथियारो का कोई एक आकार नही होता था और न ही उनमें कोई खास कारीगरी की गुजाइश थी। हा, इतना अवश्य था कि जिस उद्देश्य को लेकर उनका निर्माण किया जाता, वह उद्देश्य उनसे अवश्य ही पूरा हो जाता था।

इस प्रकार के पत्थर के भद्दे औजार और हथियार जिस काल के मानवप्राणी ने निर्मित किए, उस काल को हम पाषाण युग कहने लगे है। पाषाण युग के विकास की दृष्टि में रखते हुए इस युग को तीन खडो में विभाजित कर दिया गया है, जैसे—पूर्व-पाषाण युग, मध्य-पाषाण युग और उत्तर-पाषाण युग।

पूर्व-पाषाण युग का मध्यप्रदेश, दक्षिण और उत्तर भारत के तत्कालीन औजार-उद्योग का मिलन केन्द्र था। जो औजार दक्षिण भारत में बनते थे, उनके नमूने कदाचित् यहा से होकर ही उत्तर भारत में जाते थे और उसी प्रकार उत्तर भारत के औजारो की खबर पहले मध्यप्रदेश को लगती थी फिर दक्षिण भारत को। नर्मदा घाटी पाषाणयुगीन मानव-सभ्यता के विकास की मुख्य भूमि थी। उस काल के सबसे अधिक औजार नर्मदा घाटी में ही प्राप्त होते है। नरसिंहपुर के निकट भुतरा नामक स्थान से जो पाषाण के औजार प्राप्त हुए है, वे स्यात् मध्यप्रदेश के सब से प्राचीन औजार है।* वे मनुष्य की उस प्रारम्भिक अवस्था के औजार है, जब वह बिना बेंट की पत्थर की कुल्हाडियो से कद मूल आदि खोदा और छीला करता था। इन औजारो के साथ तत्कालीन प्राणियो की अस्थियां भी प्राप्त हुई थी, जिनसे तत्कालीन प्राणिविज्ञान के अध्ययन में पर्याप्त सहायता मिली है।

देश विदेश के अनेक विद्वानो ने पाषाणयुगीन अवशेषो की खोज करने के लिए नर्मदा घाटी के अनेक स्थानो का पर्यटन किया है। येल और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयो की ओर से ईस्वी सन् १९३२ में विशेषज्ञो का एक दल यहा आया था। उसने होशगाबाद और नरसिंहपुर के बीच के १३ स्थानो की पडताल की थी और इस पडताल में उन्हें अनेक महत्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई थी।† काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से श्री मनोहरलाल मिश्र ने भी यहा के बहुत से स्थानो की जाच की थी।‡ इस प्रकार ईस्वी सन् १८७३ से लेकर होशगाबाद और नरसिंहपुर के बीच के स्थानो की अनेक बार खोज हुई और वहा से प्रचुर सख्या में पाषाणयुगीन औजार एकत्र किए गए जो अब देश विदेश के भिन्न भिन्न सग्रहालयो में सुरक्षित है। नागपुर जिले के कलमेश्वर और भडारा जिले के नवेगाव नामक स्थानो से प्राप्त औजारो के नमूने नागपुर के सग्रहालय में प्रदर्शित है। चूकि ये औजार अधिकतर नदी किनारे ही प्राप्त होते है,

* रिकार्डस् आफ जिओलाजिकल सर्वे आफ इडिया, जिल्द ६।
ब्राउन कैटलाग ऑफ प्रिहिस्टारिक एन्टिक्विटीज इन द इडियन म्यूजियम, फलक ६।
† डेटेरा और पीटरसन स्टडीज इन आइस एज, पृष्ठ ३१३–३२६।
‡ प्रासीडिङ्ग्ज आफ इडियन एकेडमी आफ साइन्सेज १०–४, पृष्ठ २७५–२८५।

इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यप्रदेश का पूर्व-पाषाणयुगीन मानव अपने समय के अन्य प्रदेशों के मानव की भांति नदी किनारे वसना ही अधिक पसंद करता था। ऐसा करने मे उसे अनेक सुविधाएँ थी। पानी पीने के लिए आने वाले पशुओं का वह आसानी से आखेट कर सकता था, स्वयं के लिए जल प्राप्त करने भी उसे दूर नही जाना पडता था। कभी-कभी वह पर्वतीय गह्वरों मे भी अपना डेरा डाल देता था, यदि उसके निकट ही कही कोई पानी का झरना हो।

पूर्व पाषाण युग के अनंतर मध्य पाषाण युग आया लेकिन इस युग का प्रतिनिधित्व करने वाले औजार या अन्य वस्तुएँ मध्यप्रदेश मे कम ही मिलती है। इसके विपरीत उत्तर पाषाण युग के अवशेषो मे मध्यप्रदेश वडा धनी है। उत्तर-पाषाण युग के औजार कव से बनने लगे अथवा कव से उत्तर-पाषाण युग का प्रारंभ हुआ, ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। इस युग के औजार अपने पूर्ववर्ती युग के औजारों से इस आधार पर अलग किए जा सकते है कि ये कुशलतापूर्वक तराशे हुए है और बने भी ढंग के है। पहले के समान विना बेट की कुल्हाड़ी, हथौड़े और अन्य औजार इस समय भी वनते रहे। सागर जिला इन औजारों की प्राप्ति के लिए खूव प्रसिद्ध है।* जवलपुर जिले तथा अन्य स्थानों से भी ये औजार प्राप्त हुए है, जिनमें से वहुत से कलकत्ता के इंडियन म्यूजियम मे सुरक्षित है।‡

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में भी इन प्रकार के वहुत से औजार प्राप्त हुए है, जिनसे विदित होता है कि उस काल मे समूचे भारतवर्ष मे एक व्यापक संस्कृति का विस्तार था। इस समय तक मनुष्य वहुत कुछ व्यवस्थित हो चुका था। वह स्थिर रूप से एक स्थान पर बसने का आदी हो चला था। पूर्व पाषाण युग और मध्य पाषाण युग का मानव एक स्थान पर स्थिर हो कर कभी नही रहता था, वल्कि वन्य पशुओ की भाति विचरता ही रहता था ; वह भोजन पैदा नही करता था ; ढूढता था। लेकिन उत्तर पाषाण युग मे स्थिति में काफी सुधार हो चुका था। अव मानव प्राणी मेहनत कर के खाद्य पदार्थ उपजाने लगा था। इस प्रकार खेती किसानी के कार्य का प्रारभ आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ।†

खेती-किसानी सीख लेने के वाद मानव जाति के लिये यह आवश्यक हो गया कि वह किसी एक स्थान विशेष पर तबतक जम कर रहे जवतक फसल तैयार होकर काटने लायक न हो जाए। और जव इस प्रकार खेती करने की आदत पड़ गई तो मनुष्य के मन में सम्पत्ति इकट्ठी करने की भावना भी जागी। वह पशु पालने लगा। वाल-वच्चों के आराम और सुविधा के लिए झोपड़ी वनाने लगा। जव वहुत से परिवार एक स्थान पर झोपड़ियां वना कर रहने लगे तो वह गांव वन गया। फिर दूसरे गावों के लोगों और दूसरी जातियों से सम्पर्क होना प्रारंभ हुआ और इस प्रकार रीति-रिवाजों तथा संस्कृति का परस्पर आदान-प्रदान एवं समन्वय वढा। नर्मदा घाटी की सभ्यता और सिंधु घाटी की सभ्यता निश्चित रूप से भिन्न-भिन्न सभ्यता थी, किन्तु यह संभव है कि पिछले काल में जव दोनो घाटियो की सभ्यता और संस्कृति का परस्पर संपर्क वढ़ा तो उनके वीच एक दूसरे के विचारो और कला कौशल का आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ।

ताम्रयुग

पाषाणयुग के बाद ताम्रयुग आया और उसके बाद लौहयुग। ताम्रयुग मे पत्थर के औजारो के स्थान पर तांवे के औजार वनाये जाने लगे थे। ये औजार इतनी अधिक संख्या मे प्राप्त होते है कि हमे मानना ही पड़ता है कि कोई एक युग ऐसा भी था जिसमें औजार आदि तावे के ही वनते थे। औजारों और हथियारों के निर्माण के लिए लोहा सवसे उपयुक्त धातु है क्योंकि वह मजवूत और टिकाऊ होता है। यदि ताम्रयुग न रहा होता तो तांवे के औजार

---

* ब्राउन : केटलाग आफ प्रिहिस्टारिक एंटिक्विटीज इन इंडियन म्यूजियम, फलक ४।
प्रोसीडिंग्ज आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ वंगाल, १८६७।
‡ वही।
† वी. वी. लाल : आर्कलाजी इन इंडिया, पृष्ठ १७।

भला क्यो बनने ? कुछ विद्वानो का मत है कि जब आर्यों ने सप्तसिन्धु से पूव और दक्षिण की ओर अपना विस्तार किया तो उनके साथ-साथ तावे के औजार भी उन-उन स्थानो में पहुचे। लेकिन इस कथन का कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नही हो सका और न ही हमें अभीतक ऐसे अन्य कोई अवशेष प्राप्त हो सके है जिनके आधार पर अनार्य सभ्यता और ऐतिहासिक युग के बीच की खाई को पाटा जा सका। हमें आशा करनी चाहिए कि भविष्य में कभी पुरातत्त्व विज्ञो को किसी ऐसे स्थान की खुदाई करने का प्रसग पडेगा जहा पाषाणयुग से लेकर प्रारभिक ऐतिहासिक युग तक की सभ्यताओ के अवशेष एक के बाद एक मिल जाए। लेकिन यह सम्भव तभी है जब उन स्थानो की वैज्ञानिक ढग से खुदाई की जाए जहा से ताम्रयुग के औजार उपलब्ध हुए है जैसे मध्यप्रदेश में बालाघाट के जगल प्रान्त या जबलपुर-होशगाबाद के बीच के भिन्न भिन्न स्थान। जबलपुर के निकट के एक स्थान से ईस्वी सन १८६६ में एक कुल्हाडी प्राप्त हुई थी जो एक हिस्सा टिन और सात हिस्सा ताबे की बनी हुई थी।* बालाघाट जिले के गुगेरिया नामक गाव के निकट तावे के औजारो का एक बडा समूह ईस्वी सन १८७० में अनायास ही प्राप्त हो गया था। गाव के दो लडके ढोर चराने गए। एक स्थान पर उन्हाने देखा कि भूमि में लोहे जैसी कोई वस्तु गडी हुई है। उन्होने उसे पकडकर खीचा तो वह कोई औजार निकला। जब और मिट्टी हटाई गयी तो और भी औजार निकले। बाद में जब उस स्थान की ढग से खुदाई की गई तो ४२४ तावे के औजार एव १०२ चादी के आभूषण प्राप्त हुए। ताबे की समस्त वस्तुओ का वजन लगभग डेढ मन था और चादी की वस्तुए कुल एक सेर निकली।+

विशालकाय चट्टानो के आवास

इसी काल के लगभग के विशालकाय चट्टानो के आवासगृह भी मध्यप्रदेश में बहुत मिलते है। वे अधिकतर चादा, भडारा, नागपुर, द्रुग और छिदवाडा जिले के भिन्न भिन्न स्थानो में विद्यमान है। इन आवासगृहो में चाकू, छुरिया, तलवार, बाण और मिट्टी के बरतनो जैसी वस्तुए मिली है। इन वस्तुओ की प्राप्ति से यह अनुमान लगाया जाता है कि इन आवासो का उपयोग शव विसर्जित करने के लिए होता था और शव के साथ ही मृत व्यक्ति की प्रिय वस्तुए इनमें रख दी जाती थी।†

शिलाचित्र

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रागैतिहासिक काल का मानव पर्वत-गह्वरो को अपना निवास स्थान बनाने लगा था। अपने निवासगृह को अलकृत बनाना हर एक को प्रिय होता है। प्रागैतिहासिक मानव ने भी अपने निवास स्थानो को अलकृत करने के उद्देश्य से इन गह्वरो को तरह-तरह के चित्रो से सजाया। इन चित्रो के विषय अक्सर वही होते है जो उक्त मानव के चतुर्दिक विद्यमान थे। जैसे पशुओ का आखेट, दो दलों की लडाई आदि आदि। इन चित्रो की सबसे बडी विशेषता यह है कि उनका चित्रण अतिशय रूप से स्वाभाविक हुआ है। होशगाबाद और रायगढ जिले इस प्रकार की चित्रकला के मुख्य केन्द्र है। रायगढ जिले में कवरा पहाड और सिघनपुर की गुफाओ में तथा होशगाबाद जिले में आदमगढ, पचमढी तथा उसके आसपास के अनेक स्थानो में ये चित्र आज भी देखे जा सकते है।

कवरा पहाड रायगढ से लगभग १० मील की दूरी पर आग्नेय कोण में स्थित है। यहा की सारी की सारी चित्रकारी लाल रग से हुई है। छिपकली, घडियाल, साभर तथा अन्य उनमें पशु और पक्तिबद्ध मनुष्यो के चित्र यहा की दर्शनीय वस्तु है। इन के अलावा कुछ प्रतीकात्मक चित्रण भी यहा है किन्तु उनका सकेत क्या है यह कह सकना कठिन है।‡

सिघनपुर के गुफाचित्र रायगढ से १२ मील की दूरी पर है किन्तु कवरा पहाड से विपरीत दिशा में। वहा पहुचने के लिए दक्षिण पूर्व रेल्वे के भूपदेवपुर नामक स्टेशन पर उतरना होता है। भूपदेवपुर से सिघनपुर दो-ढाई मील है। जिस

---

* प्रोसीडिङ्गज आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल १८६६। इडियन एटिक्वरी १९०५।

\+ ब्लूमफील्ड—गुगेरिया फाइन्ड आफ कापर सेल्टस।

† मध्यप्रदेश के सरक्षित स्मारको की सूची और कनिंघम की रिपोर्टो में इनके विवरण है।

‡ गॉडन—माइस एण्ड कल्चर के ५ पृष्ठ, २६६-७०।

पहाड़ी मे ये चित्र चित्रित है वह गांव से लगी हुई है। पहाड़ी पर दो गुफाएं है जो २५-३० फुट गहरी और लगभग १५ फुट चौड़ी है। तीसरी गुफा जिसे चट्टान का बना आश्रम कहना अधिक उपयुक्त होगा, वड़े महत्व की है क्योकि यही वह गुफा है जिसमे ये विश्वविख्यात चित्र चित्रित है। इन चित्रो की चित्रकारी गहरे लाल रंग की है। ईस्वी-सन् १९१० मे एक रेल्वे के इजीनियर ने सबसे पहले इनका पता पाया था। इन चित्रों में चित्रित मनुष्य आकृतिया कही तो सीधी और डंडेनुमा है और कही सीढ़ीनुमा। यो कहिए कि आड़ी सीधी लकीरे खीचकर मनुष्यो की आकृतियां वना दी गई है। एक चित्र मे वहुत से पुरुष लाठी डंडा ले लेकर किसी एक वड़े पशु का पीछा करते दौड़े जा रहे हैं। लोग दूर-दूर से दौड़े चले आरहे हैं और धावे में सम्मिलित हो रहे है। पास ही एक छोटे पशु ने एक व्यक्ति को मुड़फेरी है। कितना स्वाभाविक चित्रण है ! *

पचमढ़ी मध्यप्रदेश के चित्रान्वित गह्वरो का दूसरा केन्द्र है। यहां और इस के आसपास के स्थानों मे ५० के लगभग ऐसी गुफाएं खोजी जा चुकी है, जिनमे प्रागैतिहासिक काल की चित्रकारी विद्यमान है डोरोथी डीप, महादेव, वजार, जम्वूद्वीप, निम्वुभोज, वनियावेरी, धुआधार आदि वे स्थान है। अनेक विद्वानों ने पचमढी के आसपास की चित्रकारी के संवध में भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में विवरण प्रकाशित किए है। † पचमढ़ी से २० मील पर तामिया, २५ मील पर सोनभद्र और ४० मील पर झलई में भी इसी प्रकार की चित्रयुक्त गुफाएं देखी गई है। इन गुफाओं के चित्रो के विषय अक्सर ये है—जंगली पशुओं का हाका, दो दलो की आपसी लड़ाई (जो कभी पैदल ही होती थी और कभी घोड़े पर सवार होकर कभी तलवार और ढाल लेकर और कभी धनुषवाण लेकर) दैनिक जीवन के दृश्य भी इन चित्रों मे खूब मिलते है जैसे एक स्थान पर गायों के खिरके का दृश्य है तो दूसरी जगह किसी टूट पड़नेवाली झोपड़ी का दृश्य। जंगली जानवरों में मुख्यतः हाथी, चीता, शेर, भालू, जंगली शूकर, हिरण और सांभर आदि है। एक चित्र तो वडा ही मनोरंजक है। उसे देखकर हल्की हंसी आ ही जाती जाती है। एक वंदर अपने दो पैरो के वल खड़ा है बीन जैसा कोई बाजा वजा रहा है। पास ही एक पुरुप छोटी सी खटिया पर चित्त लेटा है। उसके दोनो हाथ ऊपर की ओर उठे हुए है जैसे वह वंदर की वीन के साथ ताली वजा रहा हो। ‡ वनियावेरी गुफा में किसी धार्मिक कृत्य के आयोजन का एक दृश्य है। वीचों वीच एक वडा सा स्वस्तिक बना हुआ है। उसके चारों और मनुष्य खड़े है। उनमे से कुछ के हाथो मे छत्र जैसी कोई वस्तु है। यह सूचित करना है कि प्रागैतिहासिक काल के मनुष्य भी स्वस्तिक पूजा करते थे। × स्वस्तिक पूजा के दृश्य के नीचे नदी का दृश्य है जिसके एक तट पर तीन गाये और दूसरे तट पर वस्तियो के झुड खड़े है। तीसरी गाय गाभिन है किन्तु उसके गाभिन होने की सूचना कलाकार वड़ा पेट बनाकर नही दे सकता था इसलिए उसने गाय के पेट को थोड़ा फटा सा वनाकर उसके भीतर वछड़े की आकृति खीच दी है। +

होशंगावाद के निकट के आदमगढ़ की प्रागैतिहासिक चित्रकारी ने भी वड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। यहां से अनेक पाषाणयुगीन औजार भी प्राप्त हुए है। फिर भी कुछ विद्वानों का मत है कि यह चित्र पिछले काल के है। संभव है कि आदमगढ़ के चित्रों में से कुछ पिछले काल मे जोड़े हुए चित्र हों किन्तु कुछ तो अवश्य ही प्रागैतिहासिक चित्र है। इन चित्रों का पता ईस्वी सन् १८२१ मे लगा था। इनमे भिन्न-भिन्न पशुओ के वड़े ही आकर्षक और स्वाभाविक चित्रण है। एक स्थान पर हरिणों का शिकार हो रहा है। दूसरा दृश्य धनुर्धारी व्यक्तिओं का है। वे एक हाथ मे तो धनुष

---

* गार्डन—साइन्स एण्ड कलचर ५, पृष्ठ १४२-१४७.
एण्डरसन—जरनल आफ विहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी १९१८पृष्ठ २९८-३०६.
मनोरंजन घोष – मेमाअर्स आफ आर्क. सर्वे. इं. २४, पृष्ठ ९—४।

† गार्डन – साइन्स एण्ड कल्चर; इंडियन आर्ट एण्ड लेटर्स १० पृष्ठ ३५-४१।

‡ आर्किलाजी इन इंडिया पृष्ठ ४७।

× „ पृष्ठ ४७-४८।

\+ „ पृष्ठ ४८।

और दूसरे हाथ मे दो–दो बाण लिए हुए है। उनकी पीठ पर तरकस बधा है। एक की कमर में छुरा भी खुसा है। उनके कानो के अलकरण भी निराले है। इन्हें देखकर बस्तर के आदिवासियो की सहसा याद आजाती है। +

वैदिक सभ्यता

वैदिक सभ्यता का आदिग्रन्थ ऋग्वेद है। इसमें अनेक भौगोलिक नामो का उल्लेख मिलता है, जो आर्यों के तत्कालीन विस्तार की सूचना देते है। किन्तु ऋग्वेद में न तो कही नर्मदा का ही नाम मिलता है और न ही विन्ध्य पर्वत का। इससे ज्ञात होता है कि ऋग्वेदिक आर्य मध्यप्रदेश तक नही आ पाए थे। वे केवल अफगानिस्तान, पजाब, सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, राजपूताना और पूरब में सरयू नदी तक अपना विस्तार कर सके थे। उत्तर-वैदिक सहिताओ, ब्राह्मण आरण्यको में हमें मध्यप्रदेश के सबध में कुछ सूचनाएँ मिलने लगती है। जैसे शतपथ-ब्राह्मण में* पूर्व और पश्चिम समुद्र का उल्लेख है। कौशीतकि उपनिषद में विन्ध्य पर्वत का उल्लेख है। यद्यपि वह सीधा नाम लेकर नही किन्तु दक्षिण का एक पर्वत कहकर। शतपथ ब्राह्मण में एक पद 'रेवोत्तरस' आता है। वेबर साहब का कहना है कि इस पद में रेवा नदी की सूचना है। वैदिकोत्तर साहित्य में तो रेवा का उल्लेख स्पष्ट मिलने लगता है।

ऐतरेय ब्राह्मण में × दक्षिण दिशा और उसके लोगो के सबध में सूचना मिलती है। उक्त ब्राह्मण के अनुसार यहा के निवासी सत्वन्त कहलाते थे और उनके अलावा वैदर्भ, निषध और कुन्ति लोग भी दक्षिण में रहते थे। उक्त ब्राह्मण में ही† विदर्भ और उसके राजा भीम का उल्लेख मिलता है और यह सूचना मिलती है कि भीम ने नारद और पर्वत से कुछ आदेश प्राप्त किए थे। जैमिनीय उपनिषद ‡ में भी विदर्भ का नाम मिलता है और विदित होता है कि विदर्भ के आखेटक भी शेरो का आखेट करने में बडे कुशल थे। विदर्भ के एक ऋषि भार्गव का उल्लेख उपनिषदो में मिलता है जो आश्वलायन के समवर्ती थे। इसी प्रकार विदर्भ की प्राचीन राजधानी कुण्डिन का भी उल्लेख अनेक स्थानो पर है। वह आजकल अमरावती जिले के चादूर तालुका में वर्धा नदी के तट पर स्थित कौण्डिन्यपुर नाम के ग्राम से अभिन्न है। शतपथ ब्राह्मण में । दक्षिण के एक राजा नळ की उपाधि नैषिध मिलती है। इसी नैषिध को बाद में नैषध कहने लगे थे। नैषध का अर्थ होता है निषध देश का निवासी। ये निषध लोग निषादो से सर्वथा भिन्न थे। निषाद लोग अनार्य जाति के थे, जब कि निषध लोग आर्य थे। सभवत निषध देश को विदर्भ के निकट ही कही होना चाहिये।

यह विवरण तो उत्तर-वैदिक काल की मध्यप्रदेश की आर्यजातियो के सबध में हुआ, अब उसी काल की मध्यप्रदेश की अनार्य जातियो को लीजिए। ऐतरेय ब्राह्मण में आध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मूतिब जाति के लोगो को दस्यु कहा गया है। ये लोग वास्तव में आधे आर्य और आधे अनार्य थे। इन्हे विश्वामित्र के पचास पुत्रो की सन्तति कहा जाता है। जो विश्वामित्र के श्राप से अनार्य हो गए थे। इनमें से आध्र और मूतिब लोगो का मध्यप्रदेश से अवश्य ही सबध था। शुद्ध अनार्य जातियो में केवल निषादो का उल्लेख ही मिलता है। पुराणो मे विदित होता है कि निषाद लोग विन्ध्य और सतपुडा के जगलो में निवास करते थे। इस प्रकार उपनिषद काल तक नर्मदा के पास-पडोस के प्रदेश और विदर्भ तक आर्यों का विस्तार हो चुका था।

अनुश्रुतिगम्य इतिहास

वैदिक और उत्तर-वैदिक काल के पश्चात के इतिहास का ज्ञान करने के लिये रामायण, महाभारत और पुराण ग्रन्थ मात्र ही वर्तमान साधन है। इनसे ज्ञात होता है कि वैवस्वत मनु के दस बेटे थे। उनकी एक बेटी थी, जिसका नाम

+ विशेष विवरण के लिए—नागपुर म्यूजियम बुलेटिन न २।
* १, ६, ३, ११।
× ८ १८।
† ७ ३४।
‡ २, ४४०।
। ३, ३, २, १, ३।

इळा था। इळा का विवाह सोम या बुध के साथ हुआ, जिसका बेटा पुरूरवा था। पुरूरवा ने ऐल वश की स्थापना की, इसे चन्द्रवंश भी कहते है। ऐल वश से यादव वंश निकला और यादव वश से हैहय। पुरूरवा और उर्वशी की कहानी वहुत प्रसिद्ध है। पुरूरवा वहुत ही योग्य शासक था। उसने दूर-दूर तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया था। किन्तु शासन के अंतिम दिनो मे वह घमंडी हो चला और उसने ब्राह्मणो से लड़ाई ठान ली। नैमिष नाम के ऋषि ने उसकी हत्या कर के उसके वेटे आयु को सिंहासन पर अभिपिक्त किया। आयु के समय में मालवा, राजपूताना आदि प्रदेशों तक चन्द्रवशियों का अधिकार था। आयु ने दानव राजा स्वर्भानु की वेटी प्रभा से विवाह किया। उससे उसे पांच वेटे हुए, जिसमें से एक नहुप भी था। नहुष का वेटा हुआ ययाति। ययाति का विवाह शुक्र की वेटी देवयानी से और असुर राजा वृषपर्व की वेटी शर्मिष्ठा से हुआ। इन दोनो रानियों से उसे पांच वेटे हुए, जिनमें से सवसे जेठे यदु को मालवा और महिषमंडल का राज्य मिला। यही यदु यादववश का मूल पुरुप है, जिससे वाद मे एक शाखा फूट कर हैहय वंश कहलाई।

यह तो रही चन्द्रवश की वात, अव सूर्यवंश को लीजिए। इक्ष्वाकु वंश के राजा मान्धातृ ने यादव साम्राज्य को वड़ी क्षति पहुंचाई। यहां तक कि यादव राजा शशविन्दु को उसके साथ अपने वेटी विन्दुमती व्याह देनी पड़ी। मांधातृ का जेठा वेटा पुरुकुत्स हुआ। नागो ने उसे अपनी वेटी नर्मदा दी और उसके वदले मे पुरुकुत्स ने मौनेय गंधर्वो से नागों की रक्षा की व्यवस्था की। इस प्रकार पुरुकुत्स के राज्य के नर्मदा और नागभूमि तक विस्तृत होने का प्रमाण मिलता है।

मांधाता का तीसरा वेटा मुचकुंच प्रसिद्ध राजा हुआ है। उसने पारियात्र और ऋक्ष पर्वतो के वीच नर्मदा किनारे एक नगर वसाया और उसे दुर्ग के समान चारो ओर से सुरक्षित किया। किन्तु हैहय राजा माहिष्मन्त ने उस नगर को जीत कर उसका नाम माहिष्मती रख दिया। इस प्रकार यद्यपि थोड़े समय के लिये सूर्यवंशियो ने मध्यप्रदेश के भागों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था, किन्तु अवसर पाकर चन्द्रवंश ने पुनः प्रभुता प्राप्त कर ली। माहिष्मन्त के उत्तराधिकारी भद्रश्रेण्य ने तो पौरव देश को भी जीत लिया और काशी भी। काशी के राजा हर्यश्व ने अपना राज्य वापस पा लेने की वड़ी कोशिश की किन्तु असफल रहा। वह हैहयो द्वारा मारा गया और उसका बेटा भी हैहयों का कुछ न विगाड़ सका। किन्तु क्षेमक राक्षस कुछ समय के लिए हैहयो से भी इक्कीस हो गए और उन्होने काशी को प्राप्त कर लिया, जिनसे हैहयों के राजा दुर्दम ने उसे वापस लिया।

हैहय राजा कृतवीर्य के समय मे भृगुवंश के ऋषियो का मध्यप्रदेश से सवंध हुआ। ये लोग पहले आनर्त या गुजरात के रहने वाले थे। राजा कृतवीर्य ने उन्हे वहुत सा धन देकर अपना पुरोहित वना लिया था। किन्तु कृतवीर्य के वंशजों ने भार्गवों से सवध बिगाड़ लिए और भार्गव लोग महिषमंडल से भाग कर कन्नौज पहुचे। भार्गव वंश के एक ऋषि जमदग्नि थे। कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने इनसे इनकी कामधेनु वलपूर्वक छीन ली थी। जमदग्नि का वेटा राम या परशुराम हुआ। वह वड़ा वीर और योद्धा था। परशु उसका प्रिय अस्त्र था। अपने पूर्वजो के अपमान का वदला लेने के लिए परशुराम ने इक्कीस वार क्षत्रियो का संहार किया। कहते हैं कि परशुराम ने सहस्रार्जुन की हजार भुजाएँ काट डाली थीं। तव अर्जुन के वेटों ने परशुराम के पिता जमदग्नि को ही मार डाला। इससे परशुराम वड़े क्रुद्ध हुए और फिर उन्होने न केवल हैहयों को ही अपितु क्षत्रिय वश को ही अपना शत्रु मान लिया था। वैसे सहस्रार्जुन को भारतीय साहित्य में काफी सम्मानित व्यक्ति माना गया है, सिवा इसके कि उसने भार्गवो से वैर ठाना। उसकी प्रशंसा मे लिखा गया है कि उसने रावण को भी परास्त कर दिया था। कर्कोटक नागो से युद्ध कर के अनूप देश पर कब्जा कर लिया था और माहिष्मती को अपनी राजधानी वनाया था। अर्जुन के वाद उसके वेटे जयध्वज ने राज किया, फिर जयध्वज के वेटे तालजंघ ने और उसके वाद तालजंघ के वेटे वीतिहोत्र ने। वीतिहोत्र के समय हैहय वश की अनेक शाखाएँ वन गईं और वे अनेक स्थानो मे अलग-अलग राज करने लगी।

रामायण से विदित होता है कि सूर्य वश के राजा रघु के वेटे अज ने विदर्भ देश की राजकुमारी इन्दुमती से विवाह किया था, जिससे दशरथ का जन्म हुआ। दशरथ के समय मे यादव राजा मधु राज्य करता था। उसका राज्य

यमुना से लेकर गुजरात और विन्ध्य-सतपुड़ा के समूचे प्रदेशो तक विस्तृत था। स्वय राम के बारे में रामायणी कथा में सूचना मिलती है कि वे बहुत दिनो तक मध्यप्रदेश के जगली प्रान्तो में आकर बसे थे। दण्डकारण्य मध्यप्रदेश में ही स्थित था। नर्मदा और छत्तीसगढ के प्रदेश में राम को अपने वनवास का बहुत सा समय काटना पडा था। शायद यही उनका राक्षसो से युद्ध हुआ, जिसमें वे विजयी हुए।

द्वापर युग में श्रीकृष्ण के समय में विदर्भ का राज्य बराबर चला आ रहा था। श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी इसी देश की थी। महाभारत के महायुद्ध में मध्यप्रदेश के कुछ राजवशो ने कौरवो की ओर से और कुछ राजाओं ने पाडवो की ओर से लडाई लडी थी। महाभारत युद्ध के पश्चात् परीक्षित भारतवर्ष का सम्राट् बना। उसके समय से ही कलियुग का प्रारंभ होना माना जाता है। उसके बाद जनमेजय ने राज किया। इस समय अवन्ती के राज्य में मालवा, निमाड तथा मध्यप्रदेश के लगे हुए हिस्से सम्मिलित थे। अवन्ती राज्य पर अभी भी हैहय लोग राज कर रहे थे।

ईस्वी पूर्व ६०० से ईस्वी पूर्व २००

बौद्ध ग्रंथ अगुत्तर निकाय, जैन ग्रंथ भगवती सूत्र या व्याख्या प्रज्ञप्ति तथा अन्य ग्रंथो से ज्ञात होता है कि ईस्वी पूर्व ६०० के लगभग उत्तर भारत में १६ महाजनपद राज्य स्थापित थे। इनमें मगध, कोशल और अवन्ती दूसरो की अपेक्षा अधिक सुसगठित और शक्तिशाली थे। मध्यप्रदेश का कुछ हिस्सा अवन्ती महाजनपद के अन्तर्गत था, जिसकी राजधानी माहिष्मती थी। चेदि महाजनपद में भी मध्यप्रदेश के उत्तरीय जिलो का बहुत सा हिस्सा सम्मिलित था, वह हिस्सा जिसमें आज भी बुदेलखडी बोली जाती है।

मगध ने अपना साम्राज्य बनाने के लिए लगातार उद्योग किया। पहले वहा बृहद्रथ राजवश राज करता रहा और उसके बाद शैशुनाक वश की प्रभुता बढी। शशुनाक वश का तीसरा राजा श्रेणिक या बिम्बिसार था। उसकी राजधानी राजगृह में स्थित थी। बिम्बिसार का बेटा कुणिक या अजातशत्रु था। उत्तर कोसल में प्रसेनजित और अवन्ती में प्रद्योत का राज्य था। महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर इन्ही के समकालीन थे। उन्हें अपने धर्म का प्रचार करने में इन राजवशो से सदा सहायता मिलती रही। किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक ऐसे कोई प्रमाण नही मिल सके है, जिनके आधार पर तत्कालीन मध्यप्रदेश के इतिहास का सगठन हो सके। कहा नही जा सकता कि महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर के समय में मध्यप्रदेश की क्या दशा थी और कौन से राजवश यहा के भिन्न-भिन्न भागो पर राज कर रहे थे। चूकि कलिंग में महात्मा महावीर के समय में ही उनके धर्म का प्रचार हो चुका था, इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि उससे लगे हुए दक्षिण कोसल या छत्तीसगढ के प्रान्त में भी जैन धर्म का विस्तार हुआ होगा। उत्तरीय जिलो में बौद्ध धर्म आ चुका था, क्योकि वह अवन्ती तक फैल चुका था।

बालाघाट की आहत मुद्राएं

बहुत समय पहले बालाघाट जिले से चादी के सिक्को का एक दफीना प्राप्त हुआ था। इस दफीने में जो सिक्के मिले थे, वे सब आहतमुद्रा है। किन्तु वे एक विशिष्ट प्रकार के है। वैसे सिक्के भारतवर्ष में बहुत कम मिलते है। इन सिक्को का कोई एक आकार नही है और ये बहुत ही पतले है। इन पर सामने की ओर चार चिह्न अकित है—(१) हाथी, (२) बैल, (३) गोनागल और (४) बिन्दुमण्डलयुक्त नेत्र, इनकी पीठ सपाट है और उस पर कोई भी चिह्न नही है। भारतवर्ष के सभी भागो से मौर्यकालीन आहतमुद्राएँ प्राप्त होती है, किन्तु उन पर सामने की ओर पाच चिह्न होते है, जिनमें सूर्य और षडार चक्र तो अवश्य ही होते है और साथ में पर्वत, मोर, आदि चिह्न रहते है, जो मौर्यों के चिह्न माने जाते है। आश्चर्य की बात है कि बालाघाट से प्राप्त सिक्कों पर इनमें से एक भी चिह्न प्राप्त नही होता, जिससे अनुमान किया जाता है कि ये सिक्के मौर्यों से पहले के सिक्के है।

दूसरी विशिष्ट बात यह है कि इन सिक्को का वजन लगभग १२ रत्ती है। मौर्य काल का कार्षापण सिक्का ३२ रत्ती का होता था और अर्धकार्षापण १६ रत्ती का। किन्तु १२ रत्ती का कोई सिक्का नद या मौर्य वश के समय में

नही वना। फिर ये सिक्के १२ रत्ती वजन के क्यो है? इसका भी कारण है। ३२ रत्ती के कार्षापण की तौल नन्द वंश के साम्राज्य काल मे स्थिर की गई थी। किन्तु ये सिक्के नन्दो से भी पूर्व के होने के कारण उस तौल से सर्वथा अछूते रहे। वस्तुत: ये सिक्के १०० रत्ती तौल के शतमान सिक्के के अष्ट भाग सिक्के है, जिनका नाम प्राचीन ग्रन्थो मे "शाण" मिलता है। इस प्रकार के सिक्के केवल उड़ीसा, आंध्र और मध्यप्रदेश मे ही मिले है, जो आपस मे एक दूसरे से लगे हुए है। नन्दो से पूर्व कौन सा ऐसा शक्तिशाली राजवंश था, जो इन सिक्को का चलाता? यह विचार करते समय हमारा ध्यान अनायास ही कलिग के चेदि वंश की ओर जाता है, जिसका एक राजा खारवेल; पीछे चक्रवर्ती बन गया था। इस चेदि वंश का राज्य-विस्तार उड़ीसा, आंध्र और मध्यप्रदेश तक रहा होगा। ये सिक्के उसी वंश के चलाए हुए होगे और इनकी तिथि ईस्वी पूर्व ४०० हो सकती है।*

नन्द-मौर्य काल

नन्द वंश के राजाओं को पुराणो मे अधार्मिक एव शूद्र कहा गया है किन्तु थे वे वडे प्रतापी, बड़े समृद्धिशाली और उनका साम्राज्य दूर-दूर तक विस्तृत था। नन्दो की संख्या कुल नौ कही गई है। कही-कहीं यह उल्लेख मिलता है कि समस्त क्षत्रियो का उन्मूलन करने मे वे दूसरे परशुराम के समान थे, इनके पास अटूट संपत्ति थी। दक्षिण मे मैसूर तक नन्दो का साम्राज्य फैला हुआ था और कलिग पर भी इन्होंने आक्रमण कर के उसे जीत लिया था। वहा से नन्द-राजा किन्ही जैन तीर्थंकर की मूर्ति उठा कर मगध ले गया था। कलिग और मैसूर तक राज्य का विस्तार कर लेने वाले नन्दों का मध्यप्रदेश पर अवश्य ही पूर्ण अधिकार रहा होगा। किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक नन्दो के साम्राज्य काल की कोई ऐतिहासिक वस्तु मध्यप्रदेश से प्राप्त नहीं हो सकी है। अन्तिम नन्द राजा कुछ कठोर स्वभाव का था। उसने तरह-तरह के कर लगा कर प्रजा को नाराज कर लिया था। उसके समय मे भारत पर ईरानियो और यवनों के आक्रमण हुए, किन्तु इन आक्रमणो का मध्यप्रदेश पर कोई प्रभाव नही पडा और वह पहले की भांति नन्द साम्राज्य के ही अन्तर्गत बना रहा।

नन्दों का पूरा का पूरा साम्राज्य मौर्यवंशीय चंद्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से अपने अधिकार में कर लिया और वह भारतवर्ष के संगठित साम्राज्य का एक मात्र शासक बन गया। चाणक्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त की सेना में आटविक लोगों की खूब भरती होती थी। ये आटविक-जन मध्यप्रदेश के आटविक राज्यो के निवासी प्रतीत होते है। चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को इतना अधिक शक्तिशाली और संगठित वना लिया था कि यवन सेल्यूकस को भारत पर आक्रमण कर के पछताना ही पड़ा। उसे अपनी बेटी का चन्द्रगुप्त से विवाह कर के ही छुटकारा मिला। मध्यप्रदेश का पूरा का पूरा भूमिभाग नन्दों से चन्द्रगुप्त को मिल गया था। उसका दूसरा प्रमाण यह है कि चन्द्रगुप्त ने मैसूर राज्य में श्रवण बेलगुल नामक स्थान मे सल्लेखनापूर्वक अपने प्राण त्यागे थे। मैसूर निश्चय से ही उसके साम्राज्य मे था। वहा तक जाने के लिए चन्द्रगुप्त को मध्यप्रदेश के प्रान्तो से हो कर जाना पडा होगा, जो कि उसके साम्राज्य के अंग थे। सौराष्ट्र के शिलालेख में भी चन्द्रगुप्त का उल्लेख मिला है। इन सब प्रमाणों से यही ध्वनि मिलती है कि मध्यप्रदेश भी चन्द्रगुप्त के अखिल भारतीय साम्राज्य का एक अंग था। अशोक ने अपने जीवन काल में केवल एक ही प्रदेश जीता था—कलिग। अशोक के पिता बिन्दुसार ने कोई विजय नही की। किन्तु अशोक के शिलालेख मध्यप्रदेश में मिलते है, जो यह सूचित करते है कि यहां अशोक का राज्य होगा और वह राज्य उसके दादा चन्द्रगुप्त के समय से ही चला आ रहा होगा।

२७३ ईस्वी पूर्व मे अशोक का शासन काल प्रारंभ हुआ और वह २३६ ईस्वी पूर्व तक रहा। अशोक भारतीय इतिहास का एक जगमगाता नक्षत्र था। उसका राज्य ईरान से दक्षिण भारत तक व्याप्त था और कलिग भी उसमे सम्मिलित हो चुका था। अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के अनंतर बहुत से शिलालेख और स्तंभ लेख लिखवाए थे,

---

*विशेष जानकारी के लिए-"जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इडिया", भाग १३, १४ और १५।

जिनमें नतिन ग्राचरण की शिक्षा निहित है। अशोक का एक स्तभ लेख साची में मिला है जो मध्यप्रदेश से अधिक दूर नहीं। स्वय मध्यप्रदेशमें जबलपुर जिले के रुपनाथ नामक स्थान में उसका लघु शिलालेख आज तक विद्यमान ह। यह भी पता चलता है कि भिक्षु महाधमरक्षित को अशोक ने महाराष्ट्र में धम प्रचार करने के लिए भेजा था। इन सब प्रमाणो के सद्भाव मे यह मानना ही पडेगा कि मध्यप्रदेश अशोक के धम साम्राज्य का एक अग था और यहा उसने समय-समय पर विहार और स्तूप आदि का निर्माण कराया था। अशोक के बाद मौय साम्राज्य की स्थिति कमजोर पड गई थी, यद्यपि उसके पोते सम्प्रति ने उसे बहुत ही सम्हाले रक्खा। किन्तु बाद के मौय राजे उतने अधिक प्रभावशाली नही हुए। अन्तिम राजा बृहद्रथ की हत्या करके उसके सेनापति पुष्यमित्र ने एक नवीन वश की नीव डाली, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

मौर्यकालीन पुरातत्त्व

ऊपर कहा जा चुका है कि सम्राट् अशोक ने भारत के भिन्न-भिन्न स्थानो में शिलालेख लिखवाए थे तथा अनेक स्तभ खडे किए थे। बौद्ध ग्रन्थों में सूचना मिलती है कि अशोक ने कुल मिला कर चौरासी हजार स्तूपो का निर्माण कराया था। अशोक के समय का एक शिलालेख हमें जबलपुर जिले में रुपनाथ में मिलता है। यह शिलालेख है तो छोटा पर बड महत्त्व का है। इसमें अशोक ने पुरुषार्थ की महत्ता बताई है। वह कहता है कि पुरुषार्थ से छोटे पुरुष भी बडा काम कर डालते ह।* अशोक का अथवा उसके ठीक बाद के किसी मौर्य राजा का दूसरा लेख चादा जिले में देवटेक नाम के स्थान में एक बडे पत्थर पर खुदा हुआ मिला है। इस लेख में कहा गया है कि स्वामी की आज्ञा है कि इस स्थान में जीव हिंसा न हो।‡ यद्यपि इस शिलालेख में अशोक का स्पष्ट कोई उल्लेख नही है फिर भी जीव हिंसा के निषेध का इसमें उल्लेख होने के कारण इस लेख को अशोक के समय का मान लिया गया है, क्योंकि जीव हिंसा का निषेध करने वाले शिलालेख अशोक ने ही लिखवाए थे। मौर्यों क समय के दो लेख सिरगुजा जिले में लक्ष्मणपुर के निकट रामगढ पहाडी की दो गुफाओं में खुदे हुए हैं। इनके विषय न तो राजनैतिक है और न ही धार्मिक, किन्तु ये किसी सुतनुका नाम की देवदासी और उससे प्रेम करने वाले कलाकार देवदत्त (देवदीन) से सबधित हैं।† जिन गुफाओं में ये लेख खुदे ह, उनमें कुछेक चित्र भी चित्रित हैं, जो प्राय नष्ट हो चुके हैं। गुफाओं के नाम जोगी माढा और सीता बेंगा हैं। इनमें से एक तो सुतनुका देवदासी के निवास की कोठरी है और दूसरी गुफा मौर्यकाल की नाटकशाला है जो भारत की सबसे पुरानी नाटकशाला प्रतीत होती है। मौय काल के अन्य अवशेष चादा जिले में भादक और छत्तीसगढ में तुरतुरिया में भी देखे गये ह किन्तु उनका अभी तक विशेष अध्ययन नहीं हो सका। जबलपुर के निकट त्रिपुरी की खुदाई मे काली चमकदार पालिश किए हुए बरतनो के टुकडे प्राप्त हुए है। इस प्रकार के काली चमकदार पालिश युक्त बरतन मौय काल की विशेषता है। इस कारण त्रिपुरी के इन टुकडों को भी मौर्य काल का ही मानना पडता है।

मौर्यकालीन सिक्के

मौय साम्राज्य बहुत बडा साम्राज्य था। इतने बडे साम्राज्य ने अपने सिक्के अवश्य चलाए होंगे किन्तु ऐसे कोई सिक्के अभी तक नही मिल सके, जिन पर चन्द्रगुप्त, अशोक या अन्य किसी राजा का नाम मिला हो। इसके विपरीत एक प्रकार के सिक्के जिन्हें आहतमुद्रा कहा जाता है, सम्पूर्ण भारत में व्यापक रूप से प्राप्त होते है। इन सिक्को पर जो चिह्न मिलते ह, वे छेनी मे अकित किए हुए चिह्न हैं, इसलिए इन सिक्को को वैसा कहने लगे हैं। यद्यपि आहत-मुद्राओं का चलन मौर्यो स पहले ही हो चुका था, किन्तु मौर्य काल की आहत मुद्राएँ आसानी से पहचानी जा सकती हैं। इन मुद्राओं पर भिन्न भिन्न मौर्य राजाओ के अपने चिह्न विशेष अकित रहते हैं।

---

* हुल्श कार्पस इ इ, भाग १।

‡ प्रोसीडिंग ग्राफ ग्राल इडिया ओरियटल कान्फ्रेन्स, १९३८।

† इडियन एटिक्विरी, ३४।

आहत सिक्कों को बनाने का तरीका यह था कि सबसे पहले चांदी या तावे की पत्तर तैयार कर ली जाती थी और उसमें से वजन के माफिक चौकोर टुकड़े काट लिए जाते थे। फिर इन टुकड़ों की तौल कर के उन्हे नियमित वजन के बराबर कर लेते थे। कभी-कभी ऐसा होता था कि पत्तर में से काटा गया चौकोर टुकड़ा नियमित वजन से अधिक वजन का निकलता था। तब किसी ओर से भी अधिक मात्रा को अलग कर दिया जाता था। इस प्रकार सिक्कों के आकार मे विभिन्नता आ जाती थी और वे अनेक कोण के बन जाते थे। यही कारण है कि आहत सिक्के एक आकार के नही मिलते। उनके आकार तरह-तरह के होते है।

सागर जिले मे एरन और जवलपुर जिले मे त्रिपुरी आहत सिक्को के मुख्य केन्द्र रहे हैं। यहा से चादी और तावे के आहत सिक्के मिले है। एरन के आहत सिक्के सब से सुन्दर है और उनके चिह्न दूर-दूर बने रहते है।* त्रिपुरी और जबलपुर मे भी चादी के आहत सिक्के मिले है। विदर्भ में मालेगाव और हिंगनघाट के सिक्कों ने वड़ी प्रसिद्धि पाई है।·|· छत्तीसगढ़ में भी इस प्रकार के आहत सिक्के बहुत से स्थानो से प्राप्त हुए है, जिनमे अकलतरा, ठठारी, बिलासपुर मुख्य है। नागपुर और भडारा जिलों में भी ये पाए जाते है। इन सवकी अपनी विशेषता है। यद्यपि इनका अभी तक तुलनात्मक अध्ययन नही हो सका है, फिर भी ठठारी के रूप्यमासक सिक्के अपने किस्म के अद्वितीय है।†

जानपदीय सिक्के

मौर्य काल मे भारतवर्ष मे अनेक गणराज्य और जनपद राज्य स्थापित थे। इनमें से कुछ तो वहुत वड़े-वडे थे और कुछ का विस्तार नगर की सीमा तक ही सीमित था। अभी तक जो प्रमाण मिल सके है, उनसे विदित होता है कि मध्यप्रदेश मे उस समय कम से कम तीन जनपद राज्य तो थे ही। एक तो त्रिपुरी का, दूसरा एरकिणा का और तीसरा भागिला का। एरकिणा (जिसे अब एरन कहते है) जनपद के सिक्के अनेक प्रकार के मिलते है। कुछ तो ठप्पे से वनाए गए निशानों वाले हैं और कुछ साचे मे ढाले हुए। एरण मे उस समय सिक्के वनाने की टकसाल भी थी, क्योकि वहां एक साचा भी प्राप्त हुआ है। एरन से प्राप्त एक सिक्के पर वहा के राजा धर्मपालित का नाम मिला है और दूसरे पर नगरी का नाम। ये राजा नगरी के नामयुक्त सिक्के भारत के लेख वाले तमाम सिक्को में प्राचीनतम हैं। जिन सिक्कों पर राजा का नाम मिला है, वे चौकोर हैं और जिन पर नगरी का नाम मिला है, वे गोल। ×

त्रिपुरी जनपद के सिक्के स्वय त्रिपुरी से तथा होशंगावाद जिले मे खिडकिया गाव से प्राप्त हुए है। इन सिक्को पर ३०० ई. पू. की ब्राह्मी लिपि मे 'तिपुरी' लिखा मिलता है और साथ ही अनेक मागलिक चिह्न जैसे स्वस्तिक, चैत्य और सुमेरु आदि।‡ ये सिक्के तावे के है और गोल रहते है।

भागिला नामक जनपद राज्य का पता केवल सिक्कों से ही लगता है। ये सिक्के भी अभी हाल मे ही खोजे जा सके है। इन सिक्को पर "भागिला" नगरी का नाम तथा अन्य चिह्न मिलते है। इनका प्राप्ति स्थान होशंगावाद जिले मे स्थित जमुनिया ग्राम है। ∴

भंडारा जिले मे पौनी नामक स्थान से एक सीसे का सिक्का मिला है, जिस पर ३०० ईस्वी पूर्व के अक्षरो मे "दिम-भाग" नामक किसी राजा का नाम लिखा है। +

---

* कनिघम : आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १०।

·|· एलन : कैटलाग।

† एलन : कैटलाग।

× कनिघम : क्वाइन्स आफ एंश्यन्ट इंडिया, फलक ११।

‡ एलन का कैटलाग तथा जरनल आफ [illegible] सायटी, भाग १३।

∴ जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी,

+ जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक, भाग ६।

ईस्वी पूर्व २०० से ई. प. ३००

शुंग वंश

बाण महाकवि के हर्षचरित में सेनापति पुष्यमित्र द्वारा अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ की भरी सभा में हत्या करके मगध का राज सिंहासन प्राप्त कर लेने का उल्लेख मिलता है। राज्यसिंहासन प्राप्त करके पुष्यमित्र ने एक राजवंश की स्थापना की जो शुंग वंश कहलाता है। यद्यपि कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र में पुष्यमित्र के बेटे अग्निमित्र को काश्यप शाखा के बैम्बिक वंश का लिखा है। विन्ध्यप्रदेश में नागौद के निकट के भरहुत नामक स्थान के शिलालेखों में शुंगवंश का उल्लेख आता है जिससे सूचना मिलती है कि वे वहां राज्य करते थे। मालवा में पुष्यमित्र का बेटा अग्निमित्र स्वयं राज्य करता था, विदिशा उसकी राजधानी थी। नर्मदा किनारे का एक दुर्ग अग्निमित्र के साले वीरसेन के संरक्षण में था। ध्यान देने की बात है कि शुंगों को मौर्यों का पूरा साम्राज्य प्राप्त नहीं हो सका था, साम्राज्य का मध्यवर्ती हिस्सा ही वे प्राप्त कर सके थे क्योंकि इस समय तक दक्षिण में आन्ध्र और कलिंग में चेदिवंश ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए थे। इससे यह अनुमान होता है कि मध्यप्रदेश के बहुत से हिस्से शुंगों के राज्य के अंतर्गत नहीं आ सके थे। यद्यपि उत्तरीय हिस्सा उनके अधिकार में था। यह कथन इस घटना से और भी प्रमाणित हो चुकता है कि अग्निमित्र ने विदर्भ के राजा यज्ञसेन पर आक्रमण किया था और उसे जीतकर अपने दो रिश्तेदारों में बांट दिया था। वर्धा नदी इन दोनों विभाजित प्रदेशों की सीमा बनाई गई थी।

यवनवंश मिलिन्द के सिक्के

पुष्यमित्र के राज्य काल में ही बेक्ट्रिका के यवन भारत की ओर बढ़े। उन्होंने पाटलिपुत्र तक हमले किये थे। इन यवनों में दिमेत्र या डेमेट्रियस बड़ा वीर योद्धा था। मिलिन्द या मेनेंडर दूसरा प्रतापी राजा था जो भारतीय परंपरा में बड़ा सम्मानित है। वह बौद्ध हो गया था। मिलिन्द पन्ह नामक बौद्ध ग्रंथ में इसका उल्लेख मिलता है। इस राजा के छह तांबे के सिक्के बालाघाट जिले में प्राप्त हुए थे। तांबे के सिक्के अक्सर वहीं पाये जाते हैं जहां उसको चलाने वाले राजा का राज रहा हो। यद्यपि आज तक ऐसा कोई और प्रमाण नहीं मिल सका जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि मध्यप्रदेश में भी यवनों का विस्तार हो चुका था। किन्तु ये तांबे के सिक्के एक समस्या खड़ी कर देते हैं। दूसरा संभव कारण यह हो सकता है, मध्यप्रदेश का भद्रावती तीर्थ बौद्धों का पूज्य स्थान था। भिन्न-भिन्न स्थानों के बौद्ध वहां यात्रा करने के लिए आते होंगे। हो सकता है कि इन्हीं किन्हीं यात्रियों के साथ मिलिन्द के ये तांबे के सिक्के भी यहां आये हों।

शातवाहन वंश

शुंग-यवनों के काल में ही दक्षिण में शातवाहन वंश के आंध्र राजा अपने प्रभुत्व का विस्तार करने लगे थे। वे अपने को 'दक्षिणापथ पति' कहते थे। इनकी राजधानी प्रतिष्ठान में थी जो आजकल हैद्राबाद राज्य में पैठन नाम का स्थान है। शातवाहनों के प्रारंभिक काल के लेख महाराष्ट्र और मालवा तक मिले हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि शातवाहन लोग मूलतः विदर्भ के निवासी थे। और बाद में वे आंध्र की ओर जाकर वहां बस गए। पुराणों में इनका उल्लेख 'आंध्रभृत्या' के नाम से मिलता है जिससे विदित होता है कि वे प्रारम्भ में मौर्यों या शुंगों के चाकर थे।

सिमुक शातवाहनों का पहला राजा था। नानाघाट के एक शिलालेख में इस राजा सिमुक सातवाहन कहा गया है। जिससे ज्ञात होता है कि इसका दूसरा नाम सातवाहन था अथवा यह सातवाहन नाम के किसी राजा का वंशज था। सिमुक के बाद कृष्ण राजा हुआ और उसके बाद शातकर्णि प्रथम। शातकर्णि प्रथम के शासन काल में आंध्रों का विस्तार डाहल प्रदेश तक हो गया, त्रिपुरी उनके अधिकार में आ गया। मालवा की विजय भी इनका मुख्य कार्य था। उज्जैन विजय के अनन्तर शातवाहनों के सिक्कों में नवीन ढंग ने स्थान पाया और उसके बाद ऐसे सिक्के बनाए गए जिनके एक

ओर हाथी और राजा का नाम तथा दूसरी ओर उज्जैन का चिह्न विशेष रखा जाने लगा। ये सिक्के मध्यप्रदेश में भी बहुत मिलते है।

शातकर्णि प्रथम और गौतमीपुत्र शातकर्णि के बीच में अनेक राजा हुए जिनमे से एक आपीलक भी था जिसका तांबे का सिक्का रायगढ के निकट से प्राप्त हुआ है। गौतमीपुत्र शातकर्णि की लड़ाई नहपान से होती रहती थी। इसमें अन्ततोगत्वा गौतमीपुत्र ही विजयी हुआ और उसने नहपान के सिक्कों पर अपना ठप्पा फिर से लगवाया। शिलालेखो मे गौतमीपुत्र को 'शकयवन पह्लवनिषूदन' और 'शातवाहन कुलयश प्रतिष्ठापन कर' कहा गया है। गौतमीपुत्र सातपुड़ा और विंध्य के प्रदेश का स्वामी था। उसका राज्य विदर्भ में भी स्थापित था।

गौतमीपुत्र के पश्चात् वसिष्ठीपुत्र पुलुमावि शासक बना। उसके समय मे कर्मदक चष्टन के वंश के राजाओं ने अधिक शक्ति एकत्र कर ली थी। पुलुमावि के पश्चात शिवश्री शातकर्णि राजा बना। उसके सिक्कों पर वासिष्ठीपुत्र शिवश्री शातकर्णि लिखा मिलता है। इसी प्रकार शातवाहन वश के अनेक राजा मध्यप्रदेश के प्रदेशो पर ईस्वी सन् २०० के लगभग तक राज करते रहे। दक्षिण कोशल अर्थात् महाकोशल मे भी इन के राज्य का विस्तार हो गया था जैसा कि हमें सातवी शती के चीनी यात्री ह्यूनत्साग के विवरण से विदित होता है। उसके अनुसार प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान दक्षिण कोशल की राजधानी के एक विहार में रहता था जिसे मौर्य सम्राट् अशोक ने बनवाया था। ह्यूनत्साग कहता है कि नागार्जुन के समय वहा का राजा कोई सातवाहन वंशीय था। महाकोशल मे शातवाहनों के राज्यविस्तार का एक प्रमाण आपीलक के सिक्के की प्राप्ति भी है।

चेदिवंश

शातवाहनों के प्रारंभिक समय मे ही अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शती मे कलिग मे चेदिवंश का उदय हो चुका था। उसका तीसरा राजा खारवेल बड़ा योग्य और महान् योद्धा निकला। उसकी उपाधि महामेघवाहन थी। हाथी गुफा के विस्तृत शिलालेख मे उसके प्रायः समस्त कार्यो का वर्णन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि खारवेल के वंश का मूल स्थान चेदि देश अर्थात् बुदेलखंड था। वहां से वे लोग महाकोशल या छत्तीसगढ के रास्ते कलिग पहुंचे। कलिग से उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। स्वाभाविक है कि दक्षिण कोशल याने छत्तीसगढ उनके राज्य के अन्तर्गत था। खारवेल ने सातकर्णि से लडकर वरार को भी जीत लिया था।

शातवाहनकालीन पुरातत्त्व

ऊपर कहा जा चुका है कि विदर्भ, कौशल और त्रिपुरी तक का प्रदेश शातवाहन राजाओं के अधिकार में आ चुका था। स्वाभाविक है कि शातवाहनकालीन पुरातत्व की मध्यप्रदेश में वहुलता होनी चाहिए किंतु दुर्भाग्य की बात कि शातवाहनकालीन स्थापत्य मे मध्यप्रदेश इतना धनी नही है जितना कि महाराष्ट्र। शातवाहनकालीन स्थापत्य के नाम पर मध्यप्रदेश मे केवल दो स्थानो पर ही कुछ सामग्री प्राप्त है। एक तो अकोला जिले मे पातूर* और दूसरे चांदा जिले मे भादक या भद्रावती।+ इन दोनो स्थानों पर शातवाहनकालीन गुफामंदिर देखने मे आए है।

शातवाहनो के सिक्के मध्यप्रदेश मे वहुत मिले है। प्रारंभिक शातवाहनो में से शातकर्णि प्रथम के सिक्के जवलपुर और होशंगावाद जिलो मे मिले है†। आपीलक का तावे का सिक्का रायगढ़ के निकट वालपुर मे प्राप्त हुआ है‡। गौतमी-

---

* अकोला जिले का गजेटियर।

+ कनिंघम की रिपोर्ट जिल्द ९

† जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसायटी भाग १२ और १३

‡ न्यूमिस्मेटिम सप्लीमेन्ट ४७ और जरनल आफ आंध्र हिस्टारियल सोसायटी १०।

पुन शातकर्णि का चादी का अनुपम सिक्का त्रिपुरी मे मिला है।* सातवाहन राजाओ के सिक्को के दो बडे दफीने चादा और अकोला जिला में मिले थे जिन्होने शातवाहनो के इतिहास पर काफी प्रकाश डाला है। चादा जिले का दफीना बहुत पहले मिला था। ईस्वी सन् १८८८ में यहा तक कि लोग उसकी प्राप्ति के वास्तविक स्थान को भी भूल गए और चादा जिले का नाम भर उन्हें याद रहा। इन दफीने में कुल १८३ सिक्के थे और वे सभी पोटीन नामक मिश्रित धातु के थ। इसमें ५१ सिक्के श्री सातकर्णि के, २४ सिक्के पुलुमावि के और ८२ सिक्के श्री यज्ञ शातकर्णि के थे। शेष सिक्के ठीक-ठीक पहचाने नही जा सके थे। इस दफीने के बहुत से सिक्के लदन के ब्रिटिश म्यूजियम और कलकत्ता के इडियन म्यूजियम को भेजे गए थे†। दूसरा दफीना ईस्वी सन् १८३८ में अकोला जिले में तरहाला नामक गाव के निकट प्राप्त हुआ था‡। यह बहुत ही महत्वपूर्ण दफीना था। इसमें कुल मिलाकर लगभग १६०० सिक्के थे किंतु उनमें से केवल १५२५ ही ठीक हालत में प्राप्त किये जा सके थे। ये है तो प्राय चादा दफीने के सिक्को की ही तरह के, याने एक ओर हाथी और राजा का नाम और दूसरी ओर उज्जैन चिह्न कहलाने वाला प्रतीक विशेष, किन्तु ये सिक्के अनेक नए राजाओ के नाम प्रकाश में लाए, यहा तक कि जिनके नाम पुराणो में भी नहीं मिले थे। इस दफीने में सबसे अधिक सिक्के थे श्री शातकर्णि तृतीय के। फिर पुलुमावि का स्थान आता है। उसके १७४ सिक्के थे, श्री शातकर्णि चतुर्थ के ३५, शिवश्री पुलुमावि के ३२, स्कन्द शातकर्णि के २३, यज्ञ शातकर्णि के २४८। कुभशातकर्णि, कर्णशातकर्णि, सकशातकर्णि के सिक्के बिल्कुल ही नयी प्राप्ति है। इस दफीनो के सिक्को के अलावा अन्य किसी प्रमाण द्वारा उनकी सूचना नही मिलती। इस प्रकार मध्यप्रदेश मे प्राप्त इस दफीने ने शातवाहनो के इतिहास पर बिल्कुल नया और अनूठा प्रकाश डाला है।

छत्तीसगढ के अनेक स्थानो से कुछ ऐसे तावे के सिक्के मिले है जो चौकोर है। इन सिक्को पर एक ओर हाथी और दूसरी ओर खडी हुई स्त्री अथवा नाग बने है। विद्वानो का मत है कि ये सिक्के शातवाहनो के उत्तर काल में चलाए गए थे। सभव है कि वे छत्तीसगढ के ही खास किस्म के सिक्के हो। शातवाहनो के समय में भारत का विदेशो से और खासकर रोम से व्यापार बढ चला था। इसलिए, विदेशी सिक्के भारत में आने लगे थे। इस प्रकार के रोम के सिक्के छत्तीसगढ और विदर्भ में मिले है।+ ये सोने और तावे दोनो के ही है। अमरावती जिले से एक मिट्टी का रोमन पदक भी मिला है जो अद्भुत वस्तु है।

शातवाहन राजाओ के समय के शिलालेख भी मध्यप्रदेश में मिलते हैं। बिलासपुर जिले में बुढीखार और जबलपुर जिले में बाघोरा से ऐसे ही दो लेख मिले है। किरारी (छत्तीसगढ) से जो काष्ठ का यूप प्राप्त हुआ है, उसपर का लेख भी शातवाहनकालीन है।× पौनी (भडारा) के लेख में भार वश के राजा भगदत्त का उल्लेख आता है। यह भगदत्त शायद भारशिव वश का होगा।| बिलासपुर जिले

---

* जनरल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी १२।

† विशेष विवरण के लिए—रेप्सन का सूचीपत्र।

‡ जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इडिया भाग २।

+ जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी भाग ७।

× एपिग्राफिआ इडिका भाग १८।

| एपि० इडिका भाग २४।

मे शक्ति के निकट गुंजी नामक स्थान से जिसे ऋषभतीर्थ कहते हे–एक महत्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुआ है जो कुमारवर दत्त का है ।‡

कुशाणों सम्बन्धी पुरातत्त्व

ईस्वी सन् ७८ मे कुशान राजा कनिष्क ने अपने राज्याभिषेक के उपलक्ष्य मे शक संवत् चलाया। वह वौद्ध था और महाविजयी भी। पूर्व में पाटलिपुत्र तक उसने अभियान किये थे और वहां से प्रसिद्ध वौद्ध विद्वान अश्वघोष को अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) ले आया था। कनिष्क के पश्चात् हुविश्क ने और उसके पश्चात् वासुदेव ने कुशाणों के राजसिंहासन को सम्हाला। इनका राज्य मालवा तक तो निश्चय से ही विस्तृत था क्योकि सांची मे उनके लेख मिले है। किंतु मध्यप्रदेश में कुशाणों का राज्य था अथवा नही यह ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। फिर भी जवलपुर के निकट भेड़ाघाट में कुशानकालीन अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। जिनपर लेख भी हैं। इन लेखों से मालूम होता है कि भूमक की पुत्री ने उन्हे वनवाया था। कुशाण राजा हुविष्क का एक सोने का सिक्का हरदा से मिला है। वही से मिलने वाला दूसरा सोने का सिक्का वाद के कनिष्क नाम के राजा का है। कुशाणो के तांवे के सिक्के विलासपुर जिले मे वहुत मिलते हैं। ईस्वी सन् १९२१-२२ में भी ये मिले थे और अभी हाल मे तो लगभग ५० की संख्या मे मिले है। कुशाणों के तावे के सिक्कों का छत्तीस-गढ़ मे मिलना वड़ा महत्वपूर्ण है क्योकि तावे के सिक्के अक्सर उन्ही स्थानो मे मिला करते है जहा उन राजाओं का राज्य रहा हो, वे राज्य के वाहर के प्रदेशो मे नही मिलते। इसलिए हमे मानना ही पडेगा कि छत्तीसगढ मे कुशाणो का राज्य अवश्य रहा है भले ही वह अल्पकालीन हो।

कर्दमकों के सिक्के

कुशाणो के आधीन कुछेक शकवंश पश्चिम भारत मे राज कर रहे थे। इनमे पहला वंश भूमक का वंश था जो क्षहरात वंश भी कहलाता था। इसी वंश में नहपान हुआ। दूसरा वंश कर्दमको का था। चष्टन इसका पहला राजा था जिसने नहपान के वाद अपना राज्य स्थापित किया। महाक्षत्रप रुद्रदामा इसी चष्टन का नाती था। यह वंश मालवा तक अपने राज्य का विस्तार किए हुए था। माहिष्मती पर भी उनका अधिकार था और निषाद भूमि पर भी अर्थात् वे मध्यप्रदेश के अनेक हिस्सों पर राज्य कर रहे थे। रुद्रदामा के पश्चात इस वंश के अनेक राजा क्षत्रप और महाक्षत्रप की उपाधि धारण करके राज करते रहे। इन्होंने वडे ही सुंदर सिक्के चलाए थे। उनकी विशेषता यह है कि उन पर शक संवत् मे राजा की राज्यतिथि लिखी रहती है और इसके साथ ही उसका और उसके पिता का नाम भी। मध्यप्रदेश मे इन क्षत्रप महाक्षत्रपो के वहुत से सिक्के प्राप्त हुए हैं और आज भी मिलते हैं। छिंदवाडा जिले मे सिवनी के निकट सोनपुर से एक वार रुद्रसेन से लेकर रुद्रसेन तृतीय तक के अनेक राजाओ के ६३३ चादी के सिक्को का एक वड़ा दफीना प्राप्त हुआ था।* स्वयं सिवनी से भी इनके सिक्के मिले है। वर्धा जिले मे आरवी के निकट भी इनके १० सिक्के मिले थे जो यह वताने के लिए पर्याप्त है कि क्षत्रपो का राज्य विस्तार इस ओर भी था। किन्तु दूसरा मत है कि क्षत्रपों ने इस ओर कभी राज्य नही किया। उनके सिक्के यहा इसलिए मिलते है कि मध्यप्रदेश का वाकाटक वंश इन सिक्को को ही चलाता था क्योकि उनसे अपने कोई सिक्के न थे। तीसरा मत यह है कि कोई धनवान व्यक्ति इन सिक्को को मालवा या गुजरात मे एकत्र कर इस ओर वसने के लिए चला आया होगा और उसने ही इन्हें यहां किसी आकस्मिक भय की आशंका से गाड दिया होगा। कुछ भी हो, यह तो हम जानते है कि एरन मे शक श्रीधर वर्मा का राज था जिसका एक शिलालेख अभी हाल मे खोज निकाला गया है।†

---

‡ एपि० इंडिका भाग २७।

* न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेंट ४८।

† प्रो० मिराशी—संशोधनमुक्तावलि।

ईस्वी ३०० से ईस्वी ८००

वाकाटक वंश

ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी के प्रथम पाद तक मध्यप्रदेश और बरार शातवाहन राजाओं के अधिकार क्षेत्र में थे किन्तु इसके बाद शातवाहनों की शक्ति कमजोर पड़ने लगी और उस वंश का ह्रास होना प्रारंभ हो गया। तीसरी शती में ही किसी समय वाकाटकों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया। विंध्यशक्ति इनका पहला राजा था। उसके मूलस्थान के संबंध में विद्वानों में विवाद है। कुछ लोगों का कहना है कि विंध्यशक्ति बुंदेलखंड से आया था। बुंदेलखंड से अपने राज्य का विस्तार करते हुए वाकाटक मध्यप्रदेश की वर्तमान राजधानी नागपुर के निकट के प्रदेश में आए और यहां उन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की। विंध्यशक्ति के बाद उसका बेटा प्रवरसेन प्रथम राजा बना। उसके समय में भी बुंदेलखंड से लेकर हैदराबाद राज्य तक विस्तृत प्रदेश वाकाटकों के साम्राज्य के अंतर्गत था।

प्रवरसेन प्रथम के बाद वाकाटक राज्य के अनेक टुकड़े हो गए। कम से कम दो का तो पता चलता ही है। प्रवरसेन का बड़ा बेटा गौतमीपुत्र अपने पिता की राजधानी में ही राज करता रहा किन्तु इसके दूसरे बेटे सर्वसेन ने अकोला जिले में स्थित वासिम (प्राचीन वत्सगुल्म) में अपनी नई राजधानी बनाई।

मुख्य शाखा

नागपुर-नन्दिवर्धन की मुख्य शाखा में रुद्रसेन प्रथम हुआ। इसकी माता भवनागा नागवंश की थी जो उस समय तक भारशिव कहलाने लगे थे। रुद्रसेन का एक लेख चांदा जिले में देवटेक नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जो कि अशोककालीन शिलालेख के साथ खुदा है।* रुद्रसेन प्रथम का बेटा पृथिवीषेण प्रथम हुआ। इसके समय के दो लेख विंध्यप्रदेश में मिले हैं। जिनमें उसके सामन्त व्याघ्रदेव का उल्लेख मिलता है। पृथिवीषेण प्रथम के पश्चात् उसका बेटा रुद्रसेन द्वितीय वाकाटक राज्य के राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। इसे गुप्तवंश के महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की बेटी प्रभावती गुप्ता ब्याही गई थी। इस विवाह संबंध से वाकाटकों की दशा कुछ और ही हो गई। और वे एक प्रकार से गुप्तों के अधीन हो गए क्योंकि हम देखते हैं कि स्वयं वाकाटकों के लेखों में जहां कहीं भी गुप्तों और वाकाटकों दोनों का एक साथ उल्लेख मिलता है, वाकाटक अपने को महाराज और गुप्तों को महाराजाधिराज कहते हैं।

रुद्रसेन द्वितीय की ईस्वी सन् ४०० के लगभग मृत्यु हुई। उस समय उसके तीनों पुत्र नाबालिग थे। इसलिए प्रभावती गुप्ता ने शासन संभाला। प्रभावती गुप्ता के समय के दो ताम्रपत्र लेख अभी तक प्राप्त हो सके हैं। एक पत्र नन्दिवर्धन में लिखा गया था † और दूसरा रामगिरि (रामटेक) से।‡ प्रभावती के बाद महाराज दामोदरसेन ने राज किया और उसके बाद उसके भाई प्रवरसेन द्वितीय ने। प्रवरसेन के बहुत से ताम्रपत्र लेख मिले हैं और वे मध्यप्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानों में दूर-दूर तक मिले हैं जैसे वर्धा, छिंदवाड़ा, नागपुर, बालाघाट, अमरावती और बैतूल जिलों में। इन ताम्रपत्र लेखों से ज्ञात हुआ है कि प्रवरसेन का राज्यकाल कम नहीं था। कम से कम २७ वर्ष तक तो उसने राज किया ही। इन लेखों से यह भी विदित होता है कि राज्य काल के प्रारंभिक वर्षों में उसकी राजधानी नागपुर के निकट नंदिवर्धन में थी किन्तु बाद में उसने प्रवरपुर बसाकर वहां अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। कुछ विद्वान इस प्रवरपुर को आधुनिक पवनार (वर्धा जिला) बताते हैं। यह भी कहा जाता है कि प्रवरसेन ने प्राकृत भाषा में सेतुबंध नामक काव्य की रचना की थी जिसे विक्रमादित्य के निर्देशपर कालिदास ने संशोधित किया था।

प्रवरसेन द्वितीय के बाद उसका बेटा महाराज नरेंद्रसेन और उसके बाद नरेंद्रसेन का बेटा पृथिवीषेण द्वितीय वाकाटक वंश के राजा बने। नरेंद्रसेन ने कुंतल की राजकुमारी से विवाह किया था। पृथिवीषेण ने दो बार वाकाटकों की गिरी हुई दशा को संभाला था। पृथिवीषेण द्वितीय के बाद वाकाटकों का क्या हुआ कुछ पता नहीं।

---

* प्रोसीडिंग्स आफ ओरियंटल कान्फ्रेंस १९३५। † इपि० इंडिका १५

‡ जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी २०

मध्यप्रदेश
स्केल ० ३२ ६४ ९६ मील
इतिहासपूर्व काल
पुराने अश्मयुग के हथियार (Palaeolithic Implements)
नये अश्मयुग के हथियार (Neolithic Implements)
सूक्ष्माश्मयुग के हथियार (Microlithic Implements)
वृत्ताकार अश्म कबरें (Stone Circles, Megaliths)
चित्रान्वित चट्टानाश्रय (Rock-shelters with paintings)
ताम्रयुगीन हथियार (Copper hoards)
फतेहगढ़
हट्टा
दमोह
देवरी
सिंग्रामपुर
जबलपुर
नर्मदा नदी
मुतरा
होशंगाबाद
पचमढ़ी
तामिया
सरेगा
गगेरिया
नवेगांव
सिंघणपुर
काबरा पहाड़
सोनभीर
नागनार
नादा
ताप्ती नदी

वत्सगुल्म की शाखा

ऊपर कहा जा चुका है कि नागपुर के वाकाटकों की एक शाखा अमरावती जिले में वत्सगुल्म या वासिम में अपनी राजधानी स्थापित कर मुख्य शाखा से अलग हो गई थी। इस शाखा की स्थापना सर्वसेन ने की थी। उसने और उसके अनेक उत्तराधिकारियों ने काफी समय तक राज किया। इनके समय में अजन्ता के अनेक गुफामंदिरों का निर्माण हुआ।

गुप्तवंश

भारतीय इतिहास में गुप्त वंश के राज्यकाल को सुख, समृद्धि और सम्पन्नता का युग माना जाता है। कला और संस्कृत साहित्य की इस युग में सर्वतोमुखी उन्नति हुई इसलिए इस युग को स्वर्णयुग भी कहा जाने लगा है।

ईस्वी सन की तीसरी शती के अंत में गुप्त नाम के एक छोटे से सामन्त राजा ने मगध में गुप्तवंश की नींव डाली। उसके बाद उसका बेटा घटोत्कच राजा हुआ। घटोत्कच के पश्चात् उसका बेटा चन्द्रगुप्त राजा बना। यह अपने उपर्युक्त दोनों पूर्वजों की अपेक्षा अधिक प्रतापी और शक्तिशाली निकला। पहले के दोनों राजा केवल महाराज ही थे किन्तु चन्द्रगुप्त महाराजाधिराज बन गया। गंगा के किनारे-किनारे प्रयाग तक उसने अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। इस चन्द्रगुप्त का मध्यप्रदेश से कोई संबंध स्थापित नहीं हो सका था क्योंकि वह प्रयाग के इस ओर कभी नहीं आ सका। चन्द्रगुप्त ने अपने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण करने के उपलक्ष्य में एक नया संवत् भी चलाया जो गुप्त संवत के नाम से विख्यात हुआ। यह संवत् ईस्वी ३२० में प्रारंभ किया गया था। महाराजाधिराज बनने में चन्द्रगुप्त को तिरहुत के लिच्छवी वंश की सहायता प्राप्त हुई थी, जिनके वंश की राजकुमारी कुमार देवी से उसने विवाह किया था। इस विवाह का उल्लेख गुप्त वंश के प्रायः सभी लेखों में मिलता है और यह घटना चन्द्रगुप्त के सोने के सिक्कों पर भी अंकित है।

चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसका बड़ा बेटा काचगुप्त अल्प समय के लिये राजा बना। काचगुप्त का राज्यकाल अत्यल्प क्यों रहा, इसका कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता, यहां तक कि गुप्त वंशावली में उसका नाम तक नहीं लिया जाता। काचगुप्त के बाद समुद्रगुप्त गुप्त साम्राज्य का अधिपति हुआ। उसने समस्त आर्यावर्त के राजाओं को जीत कर दक्षिणापथ की विजय यात्रा की। दक्षिणापथ के राजाओं को जीतने का उल्लेख उसकी प्रयाग वाली प्रशस्ति में मिलता है।* सागर जिले में एरन में इसे स्थानीय शासकों से युद्ध करना पड़ा था। एरन में समुद्रगुप्त का एक खंडित शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसमें विदित होता है कि—समुद्रगुप्त ने एरन को "स्वभोग नगर" बना लिया था और उसकी महारानी ने वहां किसी मंदिर का निर्माण कराया था।† समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ की विजय यात्रा के समय महाकौशल में महेन्द्र नाम का कोई राजा राज करता था। बस्तर के जंगली प्रदेशों में व्याघ्रराज का प्रभुत्व था तथा बैतूल के आस-पास के प्रदेशों पर अनेक आटविक राजा राज करते थे। इन सभी राजाओं ने समुद्रगुप्त के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी।

समुद्रगुप्त का बड़ा बेटा रामगुप्त था। उसकी पत्नी का नाम ध्रुव देवी था। जब शक वंश के सरदारों से रामगुप्त हार गया तो उन्होंने उससे उसकी पत्नी को मांगा। किन्तु रामगुप्त के छोटे भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इसे अपने वंश का अपमान मान कर शक सरदार की हत्या कर के उस भय को दूर कर दिया। इसके बाद उसने अपने बड़े भाई की भी हत्या करवा डाली और अपनी भाभी से विवाह कर के स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। इसके समय में कला और साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। सांची के निकट उदयगिरि में इसकी बनवाई गुफाएँ विद्यमान हैं। जबलपुर के निकट तिगवा का मंदिर भी इसी के काल का प्रतीत होता

---

* कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स इंडिकेरम्, ३।

† कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स इंडिकेरम ३।

है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का मध्यप्रदेश से वड़ा घनिष्ट संबंध रहा है। उसकी वेटी प्रभावती गुप्ता यहां के वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय को व्याही हुई थी। इसलिये मध्यप्रदेश के शासन प्रवंध के प्रति उसका चिन्तित रहना स्वाभाविक था। दूसरे मध्यप्रदेश के वाकाटक राजवंश की मदद से ही वह गुजरात की विजय मे सफल हो सका था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पश्चात् उसका वेटा कुमारगुप्त राजा हुआ। कुमारगुप्त के राज्य के अंतिम दिनों में भारतवर्ष में हूणों का आक्रमण प्रारंभ हो गया था। कुमारगुप्त के वेटे स्कन्दगुप्त ने हूणों का मुकावला करने में वड़ी वीरता दिखलाई। स्वयं स्कन्दगुप्त के राज्यकाल में ऐसी अनेक मुसीवतें गुप्त साम्राज्य पर टूटी जिनका उसने सामना तो किया किन्तु उससे राज्य व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। राजकोश खाली हो गया और अशान्ति फैलने लगी। स्कन्दगुप्त के बाद उसका भाई पुरुगुप्त सिंहासन पर वैठा। ४७७ ईस्वी में पुरुगुप्त का वेटा वुधगुप्त राजा हुआ। बुधगुप्त के समय का एक लेख एरन से प्राप्त हुआ है कि जिससे विदित होता है उसके साम्राज्य-कालमे एरन मे भगवान जनार्दन का एक स्तंभ खड़ा किया गया था।* वुधगुप्त के वाद नरसिंहगुप्त को सिंहासन मिला। उसके समय में एरन पर हूणों का आक्रमण हुआ और उन्होने एरन के साथ पूरे मालवा पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु भानुगुप्त के समय तक अर्थात् ईस्वी सन् ५१० मे एरन पुन: गुप्तों के अधिकार में आगया यद्यपि हूणों से होने वाले युद्ध मे भानुगुप्त के सेनापति गोपराज को प्राण देने पड़े।†

गुप्तकाल का पुरातत्त्व

मध्यप्रदेश के उत्तरीय भाग मे गुप्तों के अनेक अवशेष प्राप्त होते हैं। एरन, तिगवा और सकौर के मंदिर इनमें मुख्य हैं। ये सपाट छत के बने होते है और इनकी शैली विलकुल सादी है। कुछ विद्वानो का मत है कि रामटेक की त्रिविक्रम की मूर्ति भी गुप्तकालीन ही है। गुप्त राजाओं के सोने के सिक्के भी मध्यप्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानो से प्राप्त किए गए हैं। काचगुप्त का सिक्का समौर (हटा के निकट) से मिला है। समुद्रगुप्त के अनेक सिक्के भी इसी स्थान से मिले है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिक्के सकौर, सिवनी, पट्टण (वैतूल), जवलपुर, हरदा आदि स्थानो से प्राप्त हुए है जिनसे विदित होता है कि गुप्त राजवंश का मध्यप्रदेश में दूर-दूर तक प्रभाव था। स्कन्दगुप्त का केवल एक ही सिक्का मिला है और उसके पिता कुमारगुप्त के सोने के तो नही, चादी के सिक्के वरार मे इलिचपुर से प्राप्त हुए थे।

परिव्राजक वंश के महाराजा और उच्चकल्प के महाराज गुप्तों के अधीन सामन्त थे। इनके दानपत्रों में गुप्त संवत् मे तिथि पड़ी रहती है। ये दानपत्र कारीतलाई और बैतूल तथा विध्यप्रदेश के कुछ स्थानों में प्राप्त हुए है। छत्तीसगढ़ मे भी एक ऐसे राजवंश का एक लेख प्राप्त हुआ है जो गुप्तों का अधीन मालूम होता है क्योकि उसके लेख मे गुप्त संवत् का उपयोग हुआ है। यह लेख भीमसेन के समय में लिखा गया था जिसमे लेखक ने भीमसेन के पूर्वजों के नामों का उल्लेख किया है।

नलवंश

नलवंश के राजाओं और उनके राज्यविस्तार के संबंध मे अभी तक पूरी-पूरी जानकारी नही हो सकी है। उसका एक कारण यह है कि इस वंश के शिलालेख वहुत कम मिले हैं और दूसरे राजवंशों के लेखों मे इनका जो कुछ भी उल्लेख मिलता है वह अत्यन्त संक्षिप्त है। कुल मिलाकर चार उत्कीर्ण लेख और थोडे से सोने के सिक्कों के आधार पर ही हम नलवंश की क्रमानुगतिता का किंचित् अनुमान कर सकते है। इन चार लेखो में से दो उड़ीसा में प्राप्त हुए हैं

---

* फ्लीट का० इं० इं० ३।

† फ्लीट का० इं० इं० ३।

दोप दो अमरावती* तथा रायपुर† जिलों में । बस्तर जिले में इनके सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं।‡ उत्कीर्ण लेखों से नलों के सर्वप्रथम राजा का नाम भवदत्तवर्मन ज्ञात होता है। उसके अधिकार में नागपुर और बरार तक के प्रदेश सम्मिलित थे जो शायद उसने वाकाटकों से छीन लिए थे। नलवंश के दूसरे राजा का नाम अर्थपति भट्टारक मिलता है। यह भवदत्त का बेटा जान पड़ता है। इसके सोने के सिक्के बस्तर जिले में एडेंगा नामक स्थान में मिले हैं। भवदत्त-वर्मन का एक बेटा स्कन्दवर्मन था, जिसने अपने शत्रुओं पर विजय पाकर अपना राज्य पुनः वापस प्राप्त किया था। उड़ीसा में पोडागढ़ में इसने भगवान विष्णु का पादमूल (मंदिर) बनवाया था। संभावना है कि स्कन्दवर्मा अर्थपति का बेटा था और भवदत्त का नाती लेकिन ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता।

नलवंश का चौथा लेख रायपुर जिले में राजिम में मिला है किन्तु वह बहुत पिछले काल का है। इसमें पृथ्वीराज के बेटे विरूपाक्ष के उत्तराधिकारी विलासतुंग द्वारा अपने स्वर्गीय पुत्र के पुण्य की वृद्धि के लिए विष्णु के मंदिर का निर्माण करने का उल्लेख है। यद्यपि हमें विलासतुंग और उसके इन पूर्वजों का पहले के नलवंशी राजाओं से संबंधित होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता फिर भी वर्तमान लेख में नल राजा से वंश का प्रारम्भ होने का उल्लेख होने से हम विलासतुंग और पूर्ववर्ती राजाओं को नलवंश का मान लेते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि नलवंश के राजा छत्तीसगढ़ और बस्तर के प्रदेशों पर राज कर रहे थे। किन्तु कब तक यह नहीं कहा जा सकता। संभव है वे सोमवंशियों के उदय तक यहां के राजा बने रहे हों।

भोजवंश

पुराणों में भोजवंश को हैहय-कलचुरियों की एक उपशाखा बताया गया है। हैहय लोग बहुत पहले से ही नर्मदा घाटी में राज कर रहे थे जब कि भोजों का उल्लेख केवल बरार के इतिहास में ही मिलता है। कालिदास के रघुवंश में भी भोज विदर्भ के ही अधीन होते हैं। किन्तु इनका यहां के इतिहास में कितना और कहां तक स्थान है ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। भोजों की एक शाखा पिछले काल में कोंकण प्रदेश चली गई थी, जहां से उनके अनेक लेख प्राप्त हुए हैं।

शरभपुरीय राजवंश

गुप्त संवत् १८२ या २८२ (ईस्वी ५०१ या ६०१) का जो लेख आरंग (रायपुर जिला) में मिला है उसमें दिए गए कोशल के एक राजवंश के कुछ राजाओं के नाम मिलते हैं जिनमें सबसे पहले शूरा हुआ, फिर उसका बेटा दयित, फिर विभीषण, फिर भीमसेन प्रथम, फिर दयितवर्म द्वितीय और सबसे अंत में भीमसेन द्वितीय, जिसके राज्यकाल में उक्त लेख लिखा गया। इस लेख पर जो मुद्रा है उसमें सिंह अंकित है। इस प्रकार ईस्वी ४थी–५वीं शती में शूरा का वंश दक्षिण कोसल में उदित हो चुका था।×

इसी राजवंश के राज्यकाल के लगभग एक और वंश दक्षिण कोशल के एक भाग में अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुए था। उस वंश की राजधानी शरभपुर में थी। शरभपुर कहां था और आजकल कौन सा स्थान उसका खंडहर बना हुआ है, यह अभी तक निश्चय नहीं हो पाया है। कुछ विद्वानों का मत है कि शरभपुर मध्यप्रदेश में ही कहीं स्थित था किन्तु दूसरे उसे उड़ीसा में स्थित बताते हैं। इस प्रकार सारंगढ़, सरगुजा, सम्बलपुर आदि स्थानों को प्राचीन शरभपुर होने का संकेत किया गया है किन्तु निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं। वास्तव में ये तीनों ही स्थान प्राचीन शरभपुर नहीं हो सकते। इनका शरभपुर से कोई संबंध नहीं दिखता, न तो नाम की समानता से और नहीं किसी अन्य प्रमाण से।

---

* इपि० इं० १६।

† ,, ,, २६।

‡ जनरल आफ न्यूमिसमेटिक सोसाइटी, भाग २।

× इपि० इं० ६, पृष्ठ ३४२

शरभपुर का अपभ्रंश सरभौर या ऐसा ही कुछ हो सकता है। यह स्थान रायपुर जिले मे ही कही होना चाहिए, क्योकि शरभपुर के राजवश के अधिकतर ताम्रपत्र इसी जिले से प्राप्त हुए है। कोई बड़ी वात नही कि चांदा जिले से भी इस वंश का सवंध रहा हो क्योकि अभी हाल मे ही इस वंश के दो राजाओ के सिक्के उक्त जिले में प्राप्त हुए है। पिछले काल मे इस राजवंश की राजधानी शरभपुर से उठकर श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर) चली आई थी। क्यों? कहा नही जा सकता।

शरभपुर के राजा परमभागवत थे। उनके सिक्को पर गरुड़-शंख-चक्र आदि तथा दानपत्रों की मुद्राओ पर गजलक्ष्मी मिलती है। इस वंश का पहला राजा शरभ था जिसके नाम पर राजधानी का नाम शरभपुर पड़ा। उसका वेटा नरेन्द्र था जिसका एक दानपत्र पिपरहुला से प्राप्त हुआ है।* किसी एक शरभराज का नाम हमे एरन से प्राप्त गुप्त संवत् १९१ (५१० ईस्वी) के लेख मे मिलता है।‡ उसका इस वश से सवंध है या नही, कहा नही जा सकता। नरेन्द्र के वाद शायद महेन्द्र राजा हुआ। वह महेन्द्रादित्य भी कहलाता था। उसके सोने के सिक्के चादा और रायपुर जिलो से मिले है। उसके वाद प्रसन्नमात्र राजा हुआ। इसके चादी और सोने के सिक्के मिलते है।† पिछले राजाओं के लेखो मे प्रसन्नमात्र से ही वशवृक्ष प्रारभ किया गया है। प्रसन्न के दो वेटे थे जयराज या महाजयराज और मानमात्र या दुर्गराज। दुर्गराज के वाद उसका वेटा सुदेवराज राज करता रहा। उसके दानपत्र शरभपुर और श्रीपुर दोनों स्थानो से दिए गए थे। जो दानपत्र सारंगढ मे मिला है वह श्रीपुर से दिया हुआ है।× किन्तु इसके वाद के दानपत्र फिर शरभपुर से दिए हुए है। इससे पता चलता है कि इस राजवश ने अपनी राजधानी वदली नही थी वल्कि सिरपुर इसकी उपराजधानी थी या वह कोई तीर्थस्थान था जहां आकर राजा-रईस दान किया करते थे।

प्रवरराज इस वंश का अन्तिम राजा था। वह मानमात्र का वेटा था इसी लिए सुदेवराज का भाई हुआ। उसका ठाकुरदिया से प्राप्त होनेवाला दानपत्र श्रीपुर से दिया गया था।+ प्रवरराज के वाद इस वश मे कोई और राजा हुआ या नही, मालूम नही। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसके अंतिम काल मे पांडुवंशी लोग दक्षिण कोशल के राजा हो गए यातो तीवरदेव के समय मे अथवा नन्न के समय मे।

पाण्डु वंश

पाण्डुवंशी या सोमवंशी कहे जानेवाले राजवंश मे तीवरदेव, जिसे महातीवरदेव भी कहा जाता है; समस्त कोशल का अधिपति था। उसके राज्यकाल के दो दानपत्र प्राप्त हुए है। एक तो राजिम से। और दूसरा वलोदा से।∴ दोनो ही दानपत्र श्रीपुर से दिए गए थे। तीवरदेव के काल के वारे मे विद्वानो मे मतभेद है। कुछ लोग उसे छठी शती के उत्तरार्ध का मानते है और कुछ ८ वी शती का। तीवरदेव परम वैष्णव था। वह नन्न या नन्नेश्वर का वेटा था। इन्द्रवल उसका दादा था और उदयन परदादा। इस प्रकार पाडुवंश का राज्य ईस्वी पांचवी शती मे प्रारंभ होता दिखता है। पाण्डव वंश के एक उदयन का नाम कालिञ्जर के लेख मे भी मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि उदयन का राज्य वादा जिले तक विस्तृत था।

---

* इंडियन हिस्टारिकल क्वारटरली १९।

‡ जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी, भाग १२ और १६।

† जरनल आफ आध्र रिसर्च सोसाइटी ४। जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी १० और १६।

× इंडियन हिस्टारिकल क्वारटरली, भाग २१।

+ इपि० इं० २२।

·|· कार्प० इं० इं०, भाग ३।

∴ एपि० इं०, भाग ७।

बालार्जुन का जो लेख सिरपुर से प्राप्त हुआ है उसमें भी इन्द्रबल को उदयन का बेटा बताया गया है। एक लेख भादक से मिला है (जिसे कुछ लोग गारग का कहते है।) जिसमें इन्द्रबल के चार बेटो का होना बताया गया है। एक तो नन्न जो नृप था, दूसरा भवक्षमरी नन्न का सबसे छोटा भाई था जिसने किसी सूर्य घोष के द्वारा बनवाए बौद्ध मदिर का जीर्णोद्धार कराया था।*

इन्द्रबल के तीसरे बेटे ईशानदेव का लेख खरोद (बिलासपुर जिला) में मिला है।† यह पाण्डुवंशियो का दक्षिण कोसल मे प्राप्त सबसे पुराना लेख है। इस प्रकार पाण्डुवशी बडे राज्यविस्तार वाले लोग थे। नन्न के समय में इन्होंने दक्षिण कोसल पर आक्रमण किया और तीवरदेव के समय में उसे पूर्णत जीत लिया।

तीवरदेव का उत्तराधिकारी उसका भाई चन्द्रगुप्त था। चन्द्रगुप्त का बेटा हर्षगुप्त। उसने सूर्यवर्मा की बेटी वासटा से विवाह किया था। रानी वासटा वैष्णव थी। उसने श्रीपुर में एक मदिर का निर्माण कराया।‡ वह महाशिवगुप्त बालार्जुन की माता थी। महाशिवगुप्त का राज्यकाल बडा लम्बा था, कमसे कम ५७ वर्ष का तो अवश्य ही। उसके राज्य के ५७ वें वर्ष का एक दानपत्र लोधिया मे मिला है। + शिवगुप्त परम माहेश्वर था उसके दानपत्रो की मुद्राओ पर नन्दी मिलता है जब कि उसके दादा तीवरदेव की मुद्राओ पर गरुड जो कि उसे वैष्णव बताता है। इसप्रकार सातवी शती ईस्वी के प्रारभ तक बालार्जुन दक्षिण कोसल में राज करता रहा। यह वश कैसे समाप्त हो गया और सोमवंशियो से इसका क्या सबध था, यह अभीतक मालूम नही हो सका।

मेकल के पाण्डुवशी

अमरकटक के निकट का प्रदेश मेकल कहलाता है। पुराणो से पता चलता है कि मेकल प्रदेश की राजधानी मकूटा थी। उत्कीर्ण लेखो से पता चला है कि ईसा की ५ वी शती में मेकल प्रदेश में पाण्डु नाम का राजवश राज करता था। बम्हनी (सोहागपुर) से प्राप्त एक दानपत्र में मेकल के पाण्डुवश के चार राजाओ के नाम मिलते है। × जयबल, उसका बेटा वत्सराज, वत्सराज का बेटा नागबल और नागबल का बेटा भरत या भरतबल जिसका नाम इन्द्रबल भी था। भरतबल की रानी लोकप्रकाशा कोसला की राजकुमारी थी, इसलिए कुछ लोगो का मत है कि लोकप्रकाशा दक्षिण कोसल के पाण्डुवश की राजकन्या थी। कुछ लोग उसे शरभपुरीय वश की बताते है।

मानपुर के राष्ट्रकूट

प्रारभिक काल के राष्ट्रकूटो की दो शाखाए मध्यप्रदेश से सबधित थी। एक की राजधानी यही मानपुर में थी और दूसरी शाखा की राजधानी बरार में अचलपुर थी।

मानपुर के राष्ट्रकूट वश में मानाक का नाम सर्वप्रथम मिलता है। सभव है इसके नाम पर ही राजधानी का नाम मानपुर पडा हो। कुछ विद्वानो का कहना है कि यह मानपुर विन्ध्यप्रदेश में बाधोगढ़ के निकट है और दूसरे कहते है सतारा जिले में। मानाक का पौत्र अविधेय दानपत्रो में विदर्भ और अश्मक देशो का विजेता कहा गया है। इससे मालूम होता है कि ये लोग पहले किसी अन्य बडी शक्ति के उच्च पदाधिकारी थे बाद में स्वय स्वतत्र शासक बन गए। मानाक के बाद उसके बेटे देवराज ने राज किया। देवराज के तीन बेटे थे जिनमें से दो के नाम तो दानपत्रो से ज्ञात हो जाते है भविष्य और अविधेय।

---

* जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०५।
† हीरालाल की सूची क्र० २०८।
‡ इपि० इ० ११।
+ इपि० इ० भाग २७।
× इपि० इ० भाग २७।

कुछ विद्वानों का मत था कि इस वंश के मानाक और देवराज शरभपुर के मानमात्र और सुदेवराज से भिन्न नही हैं। किन्तु यह बात इसलिए नही जमती कि एक तो शरभपुर वाले राजाओं ने कभी अपने को राष्ट्रकूट नही कहा, दूसरे शरभपुर वालों के दानपत्रों की मुद्रा पर गजलक्ष्मी मिलती हैं जब कि इनकी मुद्राओं पर सिंह। दोनों वंशों की राजधानियां और राज्यक्षेत्र भी भिन्न-भिन्न थे। एक बड़ी बात यह भी ध्यान देने की है कि राष्ट्रकूटों में अक्षर सम्पुट युक्त नही हैं जब कि शरभपुर वालों के वैसे हैं।

बरार के राष्ट्रकूट

राष्ट्रकूटो का दूसरा वश तो निश्चय से ही बरार में राज करता था। उसकी राजधानी भी वही अचलपुर में (वर्तमान इलिचपुर) थी। इस वंश के कुछ दानपत्र मध्यप्रदेश में ही प्राप्त हुए हैं। तिवरखेड* और मुलताई† के दानपत्रों से इस वंश के चार राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं। ये दोनों पत्र नन्नराज युद्धासुर नाम के राजा ने लिखवाए थे, जो अपने को राष्ट्रकूट वंश का कहता है। वह स्वामिकराज का बेटा, गोविन्दराज का नाती और दुर्गराज का पोता था। वह ईस्वी ७वी. ८वी शती मे यहां राज करता था। तीवरखेड़* और मुलताई† के दानपत्रो से नन्नराज के राज्य का विस्तार बैतूल जिले तक दिखाई पड़ता है। अमरावती जिले का अचलपुर तो उसकी राजधानी थी ही। इसी राजा का एक और दानपत्र अकोला से १२ मील की दूरी पर स्थित सांगळूद नामक गाव से प्राप्त हुआ है। उस दानपत्र की विशेषता यह है कि वह अचलपुर से नही दिया गया था बल्कि पद्मनगर से।‡ संभव है पद्मनगर नन्नराज की उपराजधानी रहा हो। बरार के इस प्रारंभिक राजवंश का राज्य समाप्त करके राष्ट्रकूटो की एक दूसरी शाखा ने अपना राज्य स्थापित किया जिसका प्रथम व्यक्ति दन्तिदुर्ग था। इस वंश का वर्णन हम आगे करेंगे।

माहिष्मती के कलचुरि

मध्यप्रदेश के इतिहास मे कलचुरि राजवंश का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। त्रिपुरी और रतनपुर के कलचुरियो के समय मे मध्यप्रदेश ने सबसे अच्छे दिन देखे हैं। इन दोनो के सम्बन्ध मे आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी किन्तु इनके पूर्वजों का-जिनकी राजधानी माहिष्मती थी—यहा उल्लेख करना प्रासगिक है। कलचुरियो का प्रारभिक नाम कटच्चुरि मिलता है, कहीं-कही कलत्सुरि, कलचुति, कालचुर्य आदि भी। इन शब्दो का अर्थ क्या है यह न जान सकने के कारण कुछ विद्वानों ने कलचुरियों को विदेशी जाति कहना प्रारंभ कर दिया था। लेकिन पुराणो में बहुत पहले से ही हैहयो—कलचुरियों का उल्लेख मिलता है, जो कि कार्तवीर्य अर्जुन के वंश के थे। कलचुरि लोग अपने शिलालेखों मे अपने को हैहय—और सहस्रार्जुन का वंशज बताते हैं। इसलिए वे कोई विदेशी जाति नही जान पड़ते अपितु भारत के ही पुराने राजवंशों में से एक हैं।

छठी शताब्दी में कलचुरि बड़े समृद्ध और शक्तिशाली हो चुके थे। उन्होने गुजरात, महाराष्ट्र और मालवा के प्रदेशो पर अधिकार कर लिया था। यहां तक कि कोकण में मौर्य भी उनके अधीन हो गए थे। कृष्णराज नामक कलचुरि राजा के सिंक्के नासिक, बम्बई, अमरावती, बैतूल और जबलपुर जिलो में प्राप्त हुए हैं। ये चादी के हे और आकार मे छोटे हैं जैसे कि पश्चिम भारत के क्षत्रपों के सिक्के होते थे। एक तरफ राजा की प्रतिमा है और दूसरी तरफ नन्दी की आकृति तथा ब्राह्मी अक्षरो मे 'परममाहेश्वर माता पितृ पादानुध्यात श्रीकृष्ण राज' लिखा हुआ है।×

कृष्णराज का बेटा शंकरगण था। वह भी बड़ा शक्तिशाली था। उसका एक दानपत्र कलचुरि सवत् ३४७ याने ५९५ ईस्वी का नासिक जिले में अमोना से प्राप्त हुआ है। यह दानपत्र उज्जैन से दिया गया था। शंकरगण

---

* इपि० इं०, भाग ११।
† का० ई० इं०, भाग ३।
‡ पराग, वर्ष २, अंक ६।
× जरनल आफ न्यू० सो०, भाग ३ और १६।

की मत्यु के अनतर उसका बेटा बुद्धराज ५६५ ईस्वी के पश्चात् राज्याभिषिक्त हुआ। उसने कल्चुरि सवत् ३६० याने ६०८ ईस्वी मे विदिशा मे एक दानपत्र दिया था। बुद्धराज को चालुक्य राजा मगलेश से युद्ध करना पडा। युद्ध में पूरी तरह विजय किसी की नही हुई क्योकि ६०९ ईस्वी में बुद्धराज ने भरुकच्छ के निकट का प्रदेश दान में दिया था। ६३० ईस्वी के लगभग ये प्रदेश उससे छिन गए और वहा चालुक्यो का राज हो गया।

कलचुरियो के एक अन्य दानपत्र स दो अन्य कलचुरि राजाओ के नामो की सूचना मिलती है। यह दानपत्र तावे के दो पत्तरो का है जो अलग अलग स्थानो से प्राप्त किए गए ह। दानपत्र के लेख से विदित होता ह कि महाराज 'गण्ण' के बेटे तरलस्वामी+ने मन्नवणिका नाम का गाव दान दिया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि लेख में नन्न को 'कटच्छुरि कुलवेश्म प्रदीप' कहा है। नन्न का कल्चुरि वश से क्या सवध था, इस पर अभीतक और प्रकाश नही पड सका।

चालुक्य

चालुक्यो का प्रारभिक वश वदामी का चालुक्य वश कहलाता है क्योकि वदामी (प्राचीन वातापी) इनकी राजधानी थी। इस वश के राजाओ ने ईस्वी छठी शती मे लेकर ईस्वी ८ वी शती तक लगभग दो सौ वर्ष दक्षिणापथ पर राज किया। इस वश का पुलकेशिन् प्रथम सत्याश्रय और रणविक्रम कहलाता था। उसकी पृथ्वीवल्लभ आदि अनेक उपाधिया थी। उसके बाद कीर्तिवर्मन प्रथम राजा हुआ जिसका समय ईस्वी ५६६ से ५९८ निश्चित किया गया है। कीर्तिवर्मा का भाई मगलेश था। उसने कल्चुरिओ को जीता और रेवती द्वीप की विजय की। हारनेवाला कल्चुरि राजा बुद्धराज था। मगलेश का भतीजा पुल्केशी द्वितीय था। उसने मगलेश से लडकर अपना राज्य वापस लिया। वह जब राजसिहासन पर बैठा उस समय उसके चारो ओर शत्रु प्रबल हो रहे थे किन्तु वह बडा योग्य निकला और उसने सबको अपने वश में कर लिया। ऐहोल के एक जन मदिर में ६३४–३५ ईस्वी में एक प्रशस्ति लिखी गई थी जिसमें पुल्केशी की विजयो का विस्तार से वर्णन है। इससे मालूम होता है कि पुलकेशी ने कन्नौज के हर्षवर्धन को मध्यप्रदेश की उत्तरीय सीमा के निकट कही हराया था। पुलकेशी रेवा और विध्य के प्रदेश में स्वय मौजूद था। दक्षिण कोसल का प्रदेश भी पुल्केशी के अधीन हो गया था। पुल्केशी के राज्यकाल में ईस्वी सन् ६४१ में चीनी यात्री ह्यूनत्साग महाराष्ट्र प्रात में आया था। उसने अपने विवरण में यहा की लोक सस्कृति आदि पर प्रकाश डाला है।

चालुक्य वश में एक राजा विक्रमादित्य द्वितीय हुआ जिसका समय ईस्वी ७३३ से ७४४ था। उसने कलचुरि वश की दो राजकुमारियो स विवाह किया था। वडी लोकमहादेवी पट्टराणी थी। उसने लोकेश्वर महादेव का मदिर बनवाया था। दूसरी रानी त्रैलोक्यमहादेवी ने त्रैलोक्येश्वर का मदिर बनवाया था।

चालुक्यों के राज्य की समाप्ति की राष्ट्रकूट वश के दन्तिदुर्ग ने ईस्वी सन् ७५४ के लगभग। चालुक्यसाम्राज्य का उत्तरीय हिस्सा तो उसने हथिया ही लिया था। तबसे ही चालुक्यो के स्थान में राष्ट्रकूटो की शक्ति बढने लगी और वे महाराजाधिराज बन गए।

ईस्वी सन् ८०० से १३००

राष्ट्रकूट

ईस्वी सन ६२५ में राष्ट्रकूटो की राजधानी लत्तलूर (हैद्राबाद) से उठकर अचलपुर (वरार) में चली आई। यहा पहुचकर राष्ट्रकूटो ने अपने राज्य की बडी उन्नति की। पहले वे चालुक्यो के सामन्त थे किन्तु अब स्वतत्र हो गये थे। इद्र प्रथम का बेटा दन्तिदुर्ग राजसिहासन पर अभिषिक्त हुआ। ७५० ईस्वी के लगभग समूचे मध्यप्रदेश में राष्ट्रकूटो ने अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। बघेलखड और मालवा के कुछ प्रदेश भी अधिकार में आगए थे।

+ देखिये, गद्रे, Important Inscriptions from the Baroda State, Vol I

दन्तिदुर्ग के बाद उसका काका कृष्ण प्रथम सिहासन पर बैठा। भांदक से प्राप्त होनेवाले दानपत्रो से ज्ञात होता है कि मध्यप्रदेश का पूरा का पूरा मराठी भाषी प्रांत उसके शासन के अन्तर्गत था।* कृष्ण प्रथम के बाद उसका बेटा गोविन्द द्वितीय राजा हुआ। यद्यपि यह भी अपने पूर्वजों की भाति वीर था किन्तु विलासी अधिक था। उसने अपने छोटे भाई ध्रुव को राज्यभार सौपकर आनद का जीवन बिताना प्रारंभ किया। मौके का लाभ उठाकर ध्रुव ने स्वयं राजा बन जाना चाहा किन्तु गोविन्द को इसका पता लग गया और उसने ध्रुव के हाथ से शासन-प्रबंध छीन लिया। किन्तु ध्रुव ने विद्रोह करके सम्पूर्ण सत्ता हथिया ली और ईस्वी ७८० मे स्वयं राजा बन बैठा।

ध्रुव दक्षिणापथ का तो सार्वभौम राजा था ही किन्तु वह उतने से सतुष्ट नही हुआ। उसने उत्तर भारत की विजय यात्रा करने का निश्चय किया। इस समय राजपूताना के गुर्जर–प्रतिहार और बंगाल के पाल राजा भी उत्तर भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित करने मे प्रयत्नशील थे। गुर्जरों का राजा वत्सराज और पालो का राजा धर्मपाल था। दोनों के बीच युद्ध हुआ जिसमें वत्सराज जीता किन्तु धर्मपाल ने हिम्मत नही हारी। इसी बीच ईस्वी सन् ७८६ में ध्रुव की फौजे नर्मदा तट पर आ डटी। ध्रुव ने अपने दो पुत्रो—गोविन्द और इन्द्र की सहायता से प्रतिहारो और पालो दोनों को ही हरा दिया उनसे भागते ही बना। ७९० ईस्वी मे ध्रुव वापस दक्षिण लौट आया।

ईस्वी ७९३ मे गोविन्द तृतीय राजा बना। इसके अनेक दानपत्र मध्यप्रदेश मे प्राप्त हुए हैं।† वह ७९५ ईस्वी के पश्चात् उत्तर की ओर बढ़ा। कन्नौज मे उथलपुथल तो मची ही थी। उत्तर भारत के प्रमुख और गौण राजा उससे परास्त हुए। संजाण ताम्रपत्रो से विदित होता है कि गोविन्द तृतीय ने नर्मदा के तट पर विन्ध्य के चरणों मे अनेक मंदिर बनवाए थे तथा अनेक धार्मिक कृत्य किए थे।

फिर अमोघवर्ष ८१४ ईस्वी मे सिहासन पर बैठा। उसका शासन काल बड़ा लम्बा था अर्थात् ईस्वी ८७८ तक। अमोघवर्ष ने मान्यखेट नगर बसाया था जिसे उसने अपनी राजधानी बनाया। जबलपुर जिले मे कारीतलाई से कलचुरि संवत् ५९३ (ईस्वी ८४२–४३) का एक खंडित लेख मिला है जिसमे अमोघवर्ष का उल्लेख है जो सूचित करता है कि अमोघवर्ष का राज वहा तक विस्तृत था।‡ अमोघवर्ष के पश्चत् कृष्ण द्वितीय सन् ८७८ मे राजा हुआ। उसे कलचुरि राजा कोकल्लदेव की बेटी ब्याही गई थी। कृष्ण को अनेक युद्धो मे कोकल्लदेव से मदद मिलती रही। उसने लगातार अनेक युद्ध किए अटौर दूरतक राज्य-विस्तार कर लिया। चालुक्य विक्रमादित्य तृतीय इस का मुख्य प्रतिद्वन्द्वी था। वह राष्ट्रकूटों पर बराबर हमला किए जा रहा था। पहले तो राष्ट्रकूट एकदम हिल गए किन्तु बाद मे कृष्ण ने पुनः ताकत एकत्रित कर चालुक्यो को हटा दिया।

कृष्ण द्वितीय के पश्चात् इन्द्र तृतीय राजा हुआ। इसने भी उत्तर भारत मे अनेक युद्ध किए और उन सबमे कलचुरियो की इसे सहायता मिलती रही। इन्द्र ९२२ ईस्वी मे मरा। उसके बाद अमोघवर्ष द्वितीय के समय मे मध्यप्रदेश में कोई खास घटना नही घटी। फिर गोविद चतुर्थ को सिहासन मिला किन्तु वह बडा ही विलासी था। प्रजा तक उसे न चाहती थी इसलिए अमोघवर्ष तृतीय ने कलचुरि राजवंश की मदद लेकर मान्यखेट पर हमला करके शासन-सूत्र अपने हाथ मे ले लिया। लेकिन वास्तव में शासन प्रबंध करता था अमोघवर्ष का बेटा कृष्ण क्योकि अमोघवर्ष तो बड़ा धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। इस कृष्ण ने, जिसे कृष्ण तृतीय कहते हैं बुदेलखड तक विजय यात्रा की थी। कालिंजर और चित्रकूट के प्रसिद्ध दुर्ग उसने जीत लिए थे। इसका एक लेख मैहर के निकट मिला है।× छिन्दवाड़ा जिले में भी इसके लेख मिले हैं। कहते है कि बुदेलखंड के अभियान के सबंध में राष्ट्रकूट कृष्ण और कलचुरि नरेश के बीच मनमुटाव होगया और तबसे इन दोनों वंशों की मित्रता और पारस्परिक संबंध टूट गए।

---

* इपि० इं० १४।
† इपि० इं० २३।
‡ इपि० इं० २३।
× इपि० इं० १९।
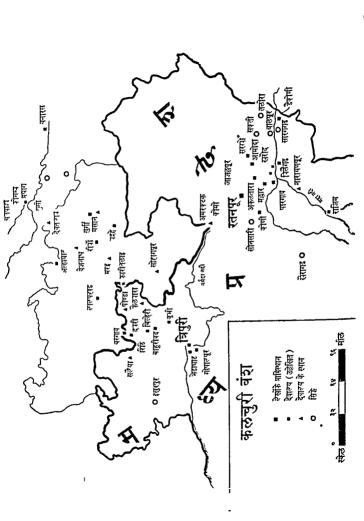
कलचुरी वंश
लेखोंके प्राप्तिस्थान
देवालय (उल्लेखित)
देवालय के स्थान
सिक्के
स्केल
० ३२ ६४ ९६
मील
प्रयाग
बनारस
अल्हाबाद
देवतगाव
बैजनाथ
रीवाँ
गुर्गी
मसान
लालपहाड
मरई
गढ़हे
परगाव
सलैया
पौण्डा
कारीतलाई
दउरी
कैलवारा
बिल्हेरी
बाहुरीबंद
इसुरपुर
सोहागपुर
कुम्भी
त्रिपुरी
भेड़ाघाट
गोपालपुर
नर्मदा नदी
अमरकटक
कोमो
रतनपुर
जाजल्लपुर
सोनसारी
अकलतारा
आमोदा
सक्ती
सरगों
तलोरा
कोणी
मल्लार
खरोद
पालपुर
पारगाव
शिवरीनारायण
सारंगगढ़
डैकोणी
नारायणपुर
सैरागढ़
महानदी
राजिम
म
ध्य
प्र
दे
श

कृष्ण के बाद उसका छोटा भाई खोट्टिग ९६७ ईस्वी में राजा हुआ किन्तु उसके समय में ईस्वी सन् ९७२ में परमारों के हमले हुए और उन लोगो ने राजधानी मान्यखेट को लूट लिया। खोट्टिग के पश्चात् उसका भतीजा कर्क्क द्वितीय राजा हुआ। उसके समय में चालुक्य राजा तैल द्वितीय ने गुप्त रूप से अपनी शक्ति बढाली थी। ९७३ ईस्वी मे उसने खुलकर विद्रोह कर दिया। कर्क्क ने इस विद्रोह को दवाना चाहा किन्तु स्वयं गहरी शिकस्त खाई। ९७५ ईस्वी मे चालुक्य वंशीय तैल दक्षिणापथ का स्वामी वन गया।

सोमवंशी राजे

केसरी पदान्त नाम वाले कुछ राजा अपने को सोमवशी और कोशल का राजा कहते हैं। वे त्रिकलिंगाधिपति थे। उनके लेखों पर शरभपुरियों और कलचुरियो के समान गजलक्ष्मी की मुद्रा मिलती है। किन्तु इस सोमवंश का पहले के सोमवंशियों से कुछ सवंध था अथवा नही कुछ नही कह सकते। इस सोम वंश के किसी एक राजा से कलचुरि मुग्धतुग ने पाली छीन ली थी। फिर तो कलचुरियों ने इन्हे छत्तीसगढ से भगा ही दिया यद्यपि कलचुरि लोग पूर्ण रूप से छत्तीसगढ़ में ११ वी शती में ही जमे। सोमवशी राजाओं मे शिवगुप्त के वाद जनमेजय महाभवगुप्त प्रथम हुआ (ईस्वी ९३० से ९७५ तक) उसका कलचुरि लक्ष्मणराज से युद्ध हुआ था। उसकी राजधानी सुवर्णपुर (वर्तमान सोनपुर) में थी। जनमेजय के वाद ययाति महाशिवगुप्त प्रथम हुआ। वह ९७०–१००० तक राज करता रहा। उसकी राजधानी पहले विनीतपुर मे रही और फिर ययातिनगर। इसके पश्चात् सोमवंशियों का छत्तीसगढ़ से संवंध कम हो गया। इसलिए उनका विशेष विवरण देना आवश्यक नही।

त्रिपुरी के कलचुरि

कलचुरि महाराजा अपने को हैहयवंशी कहते हैं। हैहयो की पहली राजधानी माहिष्मती थी। वहा से उनकी एक शाखा त्रिपुरी चली आई। ये लोग त्रिपुरी कव आए और क्यो आए, कुछ नही कहा जा सकता। स्वर्गीय रायवहादुर हीरालाल का अनुमान था कि माहिष्मती के हैहयो मे मनमुटाव हो जाने के कारण एक पक्ष ने दूसरी जगह चले जाने का निश्चय किया। माहिष्मती की भांति नर्मदा का किनारा उन्हे त्रिपुरी के निकट मिला। इसलिए वे वही आकर वस गए।

त्रिपुरी के कलचुरि राजाओं को डाहलमण्डल के राजा भी कहा जाता था। इनमें सर्वप्रथम राजा कोकल्ल देव हुआ, लेकिन कलचुरि सवत् ५९३ (ईस्वी ८४१-४२) का एक लेख कारीतलाई से प्राप्त हुआ है, जो खंडित है।* उसमे लक्ष्मण राजदेव नाम के किसी राजा का नाम मिलता है। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह लक्ष्मणराज कलचुरि राजा था अथवा राष्ट्रकूटों का प्रतिनिधि। यदि वह कलचुरि वंश का था तो मानना पड़ेगा कि कोकल्लदेव से पहले का था और कोकल्लदेव ईस्वी ८४२ के वाद ८४५ के लगभग ही राजसिंहासन पर वैठा होगा। कोकल्लदेव वड़ा प्रतापी राजा था। उसने गुर्जर प्रतिहारो के राजा भोज प्रथम से युद्ध किया था। इस युद्ध मे भोज कोकल्ल का मुकावला नही कर सका था। कोकल्ल ने उसे अंत मे अभय दे दिया। कोकल्ल ने तुरुष्कों को भी हराया और वंग अर्थात् पूर्वी वंगाल की समृद्धि नष्ट की।

कोकल्ल की महारानी नट्टा देवी चंदेश वंश की थीं। स्वयं कोकल्ल ने अपनी वेटी राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय को दी थी। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के दामाद होने पर भी कोकल्ल देव ने उससे युद्ध किया था, किन्तु वाद में दोनो वंशो में सन्धि हो गई। कहा जाता है कि कोकल्ल के १८ वेटे थे। इस मे से एक ने दक्षिण कोसल याने छत्तीसगढ़ में जाकर तुम्माण में कलचुरि वंश की शाखा स्थापित की जो वाद मे उठ कर रतनपुर चली गई। इस शाखा के संवध मे हम आगे विचार करेंगे। कोकल्ल का एक वेटा शंकरगण था, जिसे मुग्धतुग, प्रसिद्ध धवल और रणविग्रह भी कहते थे। दूसरा

---

* इपि० इंडिका, भाग २३।

बेटा गजुन था। मुग्धतुग स्वय बडा योद्धा था। उसने पूर्वी समुद्र के किनारे तक विजय की थी और दक्षिण कोशल के सोमवशियो से पाली (बिलासपुर जिला) छीन ली थी।* मुग्धतुग ने अपने रिश्तेदार राष्ट्रकूट राजाओ की सदा मदद की। उस समय कृष्ण द्वितीय का राज था और चालुक्य वशीय विनयादित्य तृतीय उनसे युद्ध कर रहा था। मुग्धतुग ने अपनी सेनाएँ राष्ट्रकूटो की मदद के लिये भेजी। राष्ट्रकूटो और कलचुरियो की सेनाएँ आपस में किरणपुर म मिल गईं किन्तु दोनो की सम्मिलित सेनाएँ भी चालुक्यो की सेनाओ के सम्मुख न टिक सकी और कृष्ण तथा मुग्धतुग दोनो की बरी हालत हुई। चालुक्यो ने किरणपुर को जला कर नष्ट कर दिया।

मुग्धतुग के दो बेटे थे, बालहर्ष और केयूरवर्ष, जिसे युवराज देव भी कहते थे। तीसरी सन्तान लक्ष्मी नाम की बेटी थी, जो राष्ट्रकूट कृष्ण के बेटे जगत्तुग को ब्याही गई थी, जिसका बेटा इन्द्र तृतीय हुआ। मुग्धतुग के भाई अर्जुन की नातिन विजाम्बा इन्द्र तृतीय को ब्याही गई थी। मुग्धतुग की मृत्यु नौवी शती ईस्वी के अतिम भाग में हुई। उसके बाद उसका बडा बेटा बालहर्ष सिंहासन पर बैठा और उसके बाद केयूरवर्ष या युवराज देव प्रथम १० वी शती के द्वितीय पाद मे राजा हुआ। वह बडा वीर और योद्धा था। युवराज देव का एक शिलालेख अभी हाल में ही कारीतलाई नामक गाव से खोजा गया है, जिसमें उसके द्वारा गौड, कोशल, गुर्जर और दक्षिण दिशा के राजाओ को जीतने का उल्लेख है। युवराजदेव के उत्तराधिकारियो के शिलालेखो मे भी इन देशो की विजय की सूचना मिलती है। बिलहरी के शिलालेख में† इसकी प्रशसा मे लिखा है कि "युवराज देव ने गौड देश को युवतियो की मनोकामना पूर्ण की, कर्णाटक की बालाओ के साथ क्रीडा की, लाट देश की ललनाओ के ललाट अलकृत किए, काश्मीर की कामिनियो से क्रीडा की और कलिंग की स्त्रियो से मनोहर गीत सुने। कैलास से लेकर सेतुबध तक और पश्चिम के समुद्र तक उसके शस्त्रो ने शत्रुओ के हृदयो में पीडा उत्पन्न कर दी।" बुदेलखड के चन्देलो से भी इसकी नही बनी, चन्देल लेखो से पता चलता है कि यशोवर्मा ने इसे हरा दिया था, किन्तु इस हार का युवराज देव के राज्य पर कोई प्रभाव नही पडा, क्योकि इस लडाई मे उसके राज्य का कोई भाग छिना नही था।

युवराज देव ने अपनी बेटी कुन्दका देवी राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष तृतीय को दी थी। उन दोनो का पुत्र कृष्ण तृतीय था। कृष्ण तृतीय ने अपने नाना के ही राज्य पर आक्रमण कर दिया, जिसमें कलचुरियो को बुरी तरह हारना पडा। उस समय प्राय पूरा का पूरा डाहलमण्डल कृष्ण की कृपा पर आश्रित हो गया था। कन्हाड मे प्राप्त होने वाले राष्ट्रकूट लेख मे स्पष्ट लिखा है कि "यद्यपि वह मा और पत्नी दोनो का ही रिश्तेदार था, फिर भी उसने सहस्रार्जुन को हराया।" मैहर के निकट जूरा नामक स्थान में जो कन्नड लिपि में लिखा राष्ट्रकूट लेख मिला है, वह भी इस बात का सबूत है कि कृष्ण तृतीय उक्त प्रदेश का राजा बन गया था।

किन्तु राष्ट्रकूट अधिक समय तक डाहलमण्डल मे न रह सके और न कलचुरियो को दबाए रख सके। युवराज देव ने शीघ्र ही उन्हें डाहल मण्डल से खदेड दिया। बिलहरी के लेख में कर्णाटक और लाट की विजय का जो उल्लेख है वह इसी घटना का सूचक है। कवि राजशेखर भी कहता है कि युवराज ने वल्लभ को जीत लिया था, जिसने अन्य अनेक राजाओ से सधि करके एक गुट्ट बना लिया था। युवराज देव के शासन काल की यह एक प्रमुख घटना थी। इसके उपलक्ष्य मे कवि राजशेखर ने विद्धसालभजिका नाम का नाटक लिखा और वह युवराज देव की सभा में खेला गया। बिलहरी के लेख मे युवराज के द्वारा हिमालय, कैलास और काश्मीर जीतने की जो बात कही गई है वह शायद अतिशयोक्ति ही है।

युवराज देव ने शैव आचार्यों को धर्म प्रचार के लिये अनेक प्रकार से सहायता दी थी। सद्भाव शभु नामक आचार्य को तीन लाख गावो का एक प्रदेश दान किया था। ये गाव त्रिपुरी में स्थित गोलकी मठ के प्रबध के लिए थे। युव-

* इपि० इडिका, भाग २।
† „ „ , भाग १।

राज देव की पत्नी नोहला चालुक्य राजा अवन्ति वर्मा की बेटी थी। अवन्ति वर्मा मत्तमयूर नगर में निवास करता था। वहा से प्रभावशिव नामक आचार्य को बुलाकर युवराज ने एक अन्य मठ का प्रवंध सौपा। यह मठ बघेलखंड मे चंद्रेह मे था। एक दूसरा मठ बघेलखंड मे ही गुर्गी मे स्थापित था। स्वय महारानी नोहला ने बिलहरी में नोहलेश्वर मठ का निर्माण करा कर उसके प्रवंध के लिये सात गावो का दान किया था।

युवराज देव प्रथम का पुत्र लक्ष्मणराज था। यह ९५० ईस्वी के लगभग सिंहासन पर बैठा। लक्ष्मणराज ने पूर्वी वगाल, उड़ीसा, दक्षिण कोसल, लाट, गुर्जर आदि अनेक देश जीते थे। पश्चिम समुद्र के किनारे पहुँच कर उसने सोमनाथ के दर्शन किए और उनके चरणो मे बडी भारी सम्पत्ति अर्पित की।* लक्ष्मणराज ने बिलहरी का मठ मत्तमयूर शाखा के हृदयशिव नामक साधु को सौंप दिया था। कारीतलाई में भी उसके समय मे विष्णु का मंदिर बना, जिसके लिए स्वयं लक्ष्मणराज ने, उसकी रानी राहड़ा ने और उनके पुत्र शंकरगण ने दान किए।†

लक्ष्मणराज के दो बेटे थे, शंकरगण और युवराज देव द्वितीय। एक बेटी भी थी बोन्था नाम की, जो चालुक्य वंश के राजा विक्रमादित्य चतुर्थ को व्याही थी। इसका बेटा तैल द्वितीय हुआ, जो बहुत ही प्रतापी निकला। उसने दक्षिण के राष्ट्र कूट वंश को पूर्णतया उखाड़ कर चालुक्य साम्राज्य की स्थापना की। लक्ष्मणराज का पहला बेटा शंकरगण परमवैष्णव था। उसने बहुत कम राज किया। उसके बाद उसका छोटा भाई युवराज देव द्वितीय राजा हुआ। उसका समय ईस्वी दसवी शताब्दी का अंतिम पाद है। युवराज देव द्वितीय ने त्रिपुरी को फिर से बसाया था और उसे सुन्दरता और विशालता दोनो मे ही पहले से अधिक बडा बनाया। यद्यपि कलचुरि शिलालेखो मे मिलता है कि युवराज देव ने बहुत के राजाओ को जीता था किन्तु अन्य राजवंशो के शिलालेखो से जान पडता है कि इसके समय मे त्रिपुरी को बुरे दिन देखने पडे थे। तैल द्वितीय ने अपने मामा की कोई चिन्ता न कर के चेदि देश पर आक्रमण कर दिया। इसी प्रकार परमार वश का मुञ्ज भी त्रिपुरी पर टूट पड़ा और उसने युवराज देव को हरा दिया। मुञ्ज त्रिपुरी मे घुस आया। इस युद्ध मे कलचुरियो के अनेक सेनापति मारे गए। युवराज को त्रिपुरी से भागना पडा। जब परमारों का आक्रमण कम हुआ और मुज वापस चला गया तो मन्त्रियों ने युवराज देव द्वितीय को फिर सिंहासन पर नही बैठने दिया क्योकि उसने कायरता का काम किया था। उसके बेटे कोकल्ल देव द्वितीय को राजा बनाया गया। कोकल्ल ने कलचुरियों की स्थिति को फिर सुदृढ बनाया और गुर्जर, दक्षिणापथ, कुन्तल तथा गौड़ देश की विजय की।

कोकल्ल देव द्वितीय का बेटा गांगेय देव ईस्वी सन् १०१५ में कलचुरि सिंहासन का अधिकारी हुआ। वास्तव मे गांगेय देव के समय में ही कलचुरि साम्राज्य फिर से सम्हला और शक्तिशाली हुआ। गागेय देव ने दूर-दूर के देशो की विजय-यात्रा की और विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। कहा जाता है कि उसके सौ रानियां थी। उनके साथ उसने प्रयाग मे वट वृक्ष के नीचे मुक्ति प्राप्त की।‡

गागेयदेव का बड़ा शक्तिशाली राजा होना इस बात से और सिद्ध हो जाता है कि उसने सोने के सिक्के चलाए थे। जिन पर एक ओर उसका नाम और दूसरी ओर चतुर्भुजा देवी की प्रतिमा रहती थी। गागेय देव के चलाए हुए सिक्कों की नकल उत्तर भारत के प्राय. सभी तत्कालीन राजाओ ने की। गागेय देव का एक लेख रीवा के निकट मिला है और इसके सिक्के उत्तरप्रदेश तक मिलते हैं।

गांगेयदेव का बेटा कर्ण देव हुआ। यह कलचुरि वंश का सबसे प्रतापी नरेश था। कर्ण ने अनेक देशो की विजय यात्रा की थी और कर्णावती नामक एक नगरी बसाई थी। इसने काशी मे राजघाट पर साप्तभौम कर्णमेरु नामक शिवमदिर का निर्माण कराया था। चन्देल और परमार राजवंशों के लेखो मे भी कर्ण की प्रशंसा के गीत

---

* इपि० इं० भाग १।

† इपि० इं० भाग २।

‡ इपि० इंडिका भाग २।

मिलते हैं। कर्ण के समय के सिक्के तो नहीं मिलते, किन्तु उसके बनवाए मंदिर अनेक स्थानों पर हैं। अमरकटक के मंदिरों का निर्माण कर्ण के द्वारा ही कराया गया था। कर्ण की एक विशेषता यह थी कि उसने हूण वंश की राजकुमारी आवल्ला देवी को अपनी महारानी बनाया था। कर्ण के लेख मध्यप्रदेश में तो मिलते ही हैं, विन्ध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में सारनाथ तक मिले हैं।

आवल्ला देवी से कर्ण देव को यशःकर्ण नामक पुत्र हुआ। वह ईस्वी सन् १०७२ के लगभग राजसिंहासन पर बैठा। इसका राज्याभिषेक स्वयं पिता ने ही किया था। यशःकर्ण के पश्चात् उसका बेटा गया कर्ण सिंहासनारूढ़ हुआ। गया कर्ण के समय में कलचुरि वंश की दशा क्षीण होती गई। उसके बाद उसका बेटा नरसिंह देव और फिर जयसिंह देव सिंहासन पर बैठा। दोनों भाइयों में राम और लक्ष्मण के समान प्रेम था।* नरसिंह देव और उसकी माता अल्हण देवी ने भेड़ाघाट में वैद्यनाथ का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया था। त्रिपुरी के कलचुरि वंश का अन्तिम शासक विजयसिंह था। यद्यपि इसके अनेक शिलालेख मिलते हैं, किन्तु उसके पश्चात् के कलचुरि वंश के संबंध में अभी भी सूचना नहीं मिल सकी है। विजयसिंह के पश्चात् कलचुरि वंश का क्या हुआ, कुछ नहीं कह सकते। इसप्रकार १२ वीं शती के अन्तिम भाग में त्रिपुरी के कलचुरि वंश के सूर्य का अस्त होगया।

रतनपुर के कलचुरि

ऊपर कहा जा चुका है कि त्रिपुरी के कलचुरि वंश के राजा कोकल्ल देव प्रथम के अठारह पुत्र थे। उनमें से सबसे जेठा तो त्रिपुरी के राजसिंहासन का अधिकारी हुआ और सबसे छोटे कलिंगराज ने दक्षिण कोशल की ओर आकर तुम्माण में अपनी राजधानी बनाई। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि इस कलिंगराज का जमाया हुआ वंश-वृक्ष सौ-सवा सौ वर्ष राज करने के बाद फिर अस्त हो गया। तब फिर कोई कलिंगराज वहां पहुँचा, जिसने तुम्माण के राज्य को पुनः स्थिर किया। इस कलिंगराज का पुत्र कमलराज हुआ और उसका पुत्र रत्नराज। रत्नराज ने तुम्माण में अनेक मंदिर आदि बनवाए थे। अन्त में उसने वहां से ४५ मील की दूरी पर रत्नपुर नामक नगर बसाया और अपनी राजधानी वहीं उठा कर ले गया। रत्नराज ने कोमोमंडल के राजा वज्जूक की पुत्री नोनल्ला से विवाह किया। उससे पृथ्वीदेव नामक पुत्र हुआ। पृथ्वीदेव ने तुम्माण में पृथ्वी देवेश्वर नामक मंदिर का निर्माण कराया था।

पृथ्वीदेव का पुत्र जाजल्लदेव हुआ। उसने कान्यकुब्ज और बुंदेलखंड के राजाओं से मित्रता की और फिर आस-पास के प्रदेशों को जीतना प्रारंभ कर दिया। जाजल्लदेव की इस विजय यात्रा में जगपाल देव नामक एक सेनापति ने बड़ी सहायता की। उसने हैहयों का आतंक मचा दिया और अमरकंटक से गोदावरी तथा बरार से लेकर उड़ीसा तक उसकी धूम मच गई। जाजल्लदेव का बेटा हुआ रत्नदेव द्वितीय। उसने कलिंग देश के राजा चोडगंग को हरा दिया था और वह नव स त्रिकलिंगाधिपति कहलाने लगा। फिर द्वितीय पृथ्वीदेव, उसके बाद जाजल्लदेव द्वितीय और उसके बाद रत्नदेव तृतीय तथा उसके बाद पृथ्वीदेव तृतीय राजा हुए। इन सभी राजाओं के समय के लेख मिलते हैं। अंतिम राजा प्रतापमल्ल हुआ। वैसे तो रतनपुर के राजाओं की बड़ी लम्बी वंशावली मिलती है किन्तु अन्य कोई प्रामाणिक लेख प्राप्त नहीं होते। चौदहवीं शती में रत्नपुर की शाखा से एक उप-शाखा फूटी और वह रायपुर में राज करने लगी थी।

कलचुरिकालीन पुरातत्त्व

मध्यप्रदेश की समस्त पुरातत्त्व सामग्री का अधिकांश भाग कलचुरियों के समय का है। इनके बहुत से शिला और ताम्रलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें राजाओं की वंशावली, शासन प्रबंध, राज्य विस्तार और तत्कालीन संस्कृति के संबंध में तरह-तरह की जानकारी होती है। कलचुरि राजाओं के समय में शैव, वैष्णव और जैन तीनों धर्मों की समान रूप से

* भेड़ाघाट प्रशस्ति।

उन्नति हो रही थी। कलचुरि राजा स्वयं शैव थे, किन्तु उन्हें किसी धर्म के प्रति द्वेष अथवा पक्षपात नही था। गोलकी मठ, नोहलेश्वर मठ, चद्रेह का मठ आदि इनके समय मे स्थापित हुए। भेड़ाघाट, त्रिपुरी, बिलहरी, कारीतलाई, अमरकंटक, चद्रेह, गुर्गी आदि स्थानो में विभिन्न मंदिरों का निर्माण हुआ।

रतनपुर के कलचुरियों की छत्रछाया में रतनपुर, शिवरीनारायण, राजिम आदि स्थानो में एक मे एक सुन्दर मंदिर बने और इन्हे राज्याश्रय भी प्राप्त रहा।

कलचुरि राजाओं में सबसे पहले सिक्के चलाने का श्रेय गागेयदेव को है, जो त्रिपुरी की मुख्य शाखा का राजा था। दुर्भाग्य की बात है कि गागेयदेव के उत्तराधिकारियों मे से किसी के भी सिक्के अभी तक नही मिल सके है। इसके विपरीत रतनपुर की शाखा मे कम से कम चार राजाओ के सिक्के मिलते है। जाजल्लदेव, पृथ्वीदेव, रत्नदेव और प्रतापमल्ल। प्रतापमल्ल के सिक्के केवल तांबे के ही मिले है, जो यह सूचित करते है कि उसके समय में रतनपुर के कलचुरि उतने समृद्ध नही रह गए थे, जितने कि वे पहले के राजाओं के समय मे थे, जिन्होने कि सोने के सिक्के चलाए थे।

प्रतिहार-वंश

प्रतिहार राजवश पहले राजपूताने मे राज करता था। वह गुर्जर-प्रतिहार राजवंश कहलाता था। ८ वी शती के मध्यकाल में ये विशेष प्रकाश मे आए और इन्होंने बाद मे अपना एक विशाल साम्राज्य स्थापित करके पूरे उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। प्रतिहार वंश का मध्यप्रदेश मे अधिक सबंध नही रहा। एक उल्लेख नागभट्ट द्वितीय द्वारा विदर्भ जीते जाने का मिलता है और दूसरा उल्लेख यह कि कलचुरि कोकल्लदेव प्रथम ने प्रतिहारो के राजा भोज प्रथम को बुरी तरह परास्त किया था और अन्त मे उसे अभयदान भी दिया।

चन्देल-वंश

चंदेल वंश चन्द्रात्रेय वश भी कहलाता है। ये कलचुरियों के पड़ोसी थे, इसलिये उनका कलचुरियो से अच्छा या बुरा, किसी न किसी प्रकार का संबंध बना ही रहता था। कहा गया है कि विंध्य पर्वत चन्देल वाक्पति का क्रीडा-स्थल था। इसी वंश के जयशक्ति की बेटी नट्टा देवी कोकल्ल देव प्रथम को ब्याही गई थी। यशोवर्मा के लेख मे उल्लेख मिलता है कि उसने कलचुरि राजा युवराज देव प्रथम को हरा दिया था और चेदि तथा मालवा तक अपना राज्य-विस्तार किया था। कोसल के सोमवंशी राजाओं को चंदेलो ने जीत लिया था। एक दूसरे चदेल राजा धग के राज्य में चेदि देश का बहुत सा हिस्सा (जबलपुर जिले का उत्तरीय भाग) सम्मिलित हो गया था।

परमार

परमारों का मूल स्थान आबू था और उपेन्द्र था उनका सबसे पहला राजा। बाद मे धारा नगरी इनकी राजधानी हो गई। परमार मुञ्ज ने त्रिपुरी पर चढाई की थी, यह हम पहले ही लिख चुके है। सिंधुराज के समय मे भी परमार फौजे मध्यप्रदेश मे बढी थी। पद्मगुप्त के ग्रन्थ "नवसाहसांक चरित" से पता चलता है कि नागवश के एक राजा ने जिसका राज्य नर्मदा से २०० मील दक्षिण में था, सिंधुराज से एक बार सहायता की याचना की थी कि वह वज्राकुश नाम के राक्षस राजा के विरुद्ध उसकी रक्षा करे। सिंधुराज ने विद्याधरों को साथ लेकर राक्षसराज को मार डाला। इसके बदले मे नागराजा ने अपनी बेटी शशिप्रभा का विवाह सिंधुराज के साथ कर दिया। इस कहानी में जिस नाग-राजा का उल्लेख है, वह बस्तर का नाग राजा था, राक्षसराज शायद चांदा जिले मे वैरागढ मे रहता था। कहा जाता है कि सिंधुराज के मध्यप्रदेश के इस अभियान के बीच दक्षिण कोसल के सोमवंशियो की भी उससे हार हुई।

कांकेर के सोमवंशी

रतनपुर के कल्चुरि शासकों के सामन्त राजा कवर्धा और कांकेर में राज करते थे। कवर्धावाले राजा उतने शक्तिशाली न थे जितने कि कांकेरवाले। इसका एक कारण यह था कि कवर्धावाले रतनपुर के अधिक निकट थे। निकट रहने के कारण उन्हें दबे रहना पड़ता था, किन्तु कांकेरवाले अधिक दूर होने के कारण बहुत कुछ स्वतंत्र जसे थे। कांकेर के राजा अपने को सोमवंशी कहते ह, किन्तु तिथि लिखने में वे कलचुरि संवत् का प्रयोग करते हैं। ईस्वी सन् ११९२ में कर्णराज वहा का राजा था। वह वोपदेव का पुत्र, व्याघ्रराज का पौत्र और सिंहराज का प्रपौत्र था। सिंहराज का समय ईस्वी सन् १०६४ के लगभग होना चाहिये। कर्णराज के बाद जैत्रराज, सोमचन्द्र और भानुदेव ने राज किया, जो १२ वीं-१३ वी शताब्दियों में राज करते रहे।

बस्तर के नागवंशी

बस्तर बहुत पुरानी भूमि है। ऊपर के विवरण म बीच-बीच में उसका उल्लेख आया है। पिछले काल के राजवंशों में नाग और काकतीय उल्लखनीय ह। चूंकि काकतीयो का राज्य-काल मुस्लिम काल के बीच में पड़ता है, इसलिए उन्हें तो हम यहा छोड देते ह, किन्तु नागो का उल्लेख करना आवश्यक है। नाग बहुत पुरानी जाति हैं। वे लोग बस्तर म आकर कब बसे, ठीक-ठीक पता नही चलता। इनका सबसे पुराना शिलालेख बस्तर में ईस्वी सन् १०२३ का प्राप्त हुआ है। उस समय वहा उक्त वंश का राजा नृपतिभूषण राज करता था। ईस्वी सन् १०६० के करीब जगदेकभूषण राजा हुआ। उसका बेटा सोमेश्वर था, जिसने कलचुरियो से युद्ध करके बहुत सा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था। सोमेश्वर का बेटा कन्हर देव हुआ। कन्हर देव के पश्चात् भी तीन-चार राजा हुए, किन्तु उनके क्रम का पता नही चलता। सन् १२१८ में जगदेकभूषण नरसिंह देव राज करता था, सन् १२४२ में कन्हर देव द्वितीय और सन १२४२ में हरिश्चन्द्र देव।

इसप्रकार प्रागैतिहासिक काल से लेकर मुसलमानों के प्रवेश और गोंडों के उत्थान तक मध्यप्रदेश के इतिहास की अनेक कडियां हम विच्छिन्न रूपमें ही मिलती है। इन्हें परस्पर जोडने के लिए और अनुसंधान की आवश्यकता है। हमें आशा करनी चाहिए कि यदि मध्यप्रदेश के वनकान्तार प्रदेशों में वैज्ञानिक ढंग से पुरातत्त्व संबंधी खोज की गई तो एक दिन आएगा जब मध्यप्रदेश का प्रामाणिक और क्रमबद्ध इतिहास अपने आप सम्पूर्ण हो जायगा।

गोंड, मुस्लिम और मराठा शासन

श्री प्रयागदत्त शुक्ल

[गोंडों की सभ्यताः ईस्वी सन् १४५०–१७८० तक]

राजगोण्ड वंशोत्पत्ति

मध्यप्रदेश मे अरण्यवासियो के अन्तर्गत गोड जाति की जनसख्या अधिक होने से मुसलमान इतिहासकारो ने इस प्रदेश का नाम—"गोडवाना" रखा था। "आईन अकबरी" मे भी इसी नाम से उल्लेख किया गया है। वास्तव में यह नाम रखने का कारण सयुक्तिक था ; क्योकि उस समय यहा का शासन राजगोडो द्वारा होता था। इनके पूर्व यहाँ क्षत्रियो के उत्कर्ष और पतन होते रहे-किन्तु पहाडी जातिया जगलों मे मंगल करती थी, इसलिये उनका सुख-संपत्ति से संपर्क सदैव ही कम रहा। अरण्यो मे रहने के कारण गोड आदिम अवस्था के लोग थे—फिर भी वे हिन्दू थे। अंग्रेजो के आने के पूर्व भारत की विभिन्न जातियो के अन्तर्गत उनकी गणना होती थी। उसका प्रचुर उल्लेख हमारे वाङ्मय मे पाया जाता है। पुराण काल मे (ईसा से ५ सदी पूर्व) भारत विन्ध्यपर्वत द्वारा दो भागो (आर्य और द्रविड़) मे विभाजित हुआ। विन्ध्य एवं सतपुडा की पर्वत श्रेणियो मे निवास करने वाली पहाड़ी जातिया हिन्दुओं की विविध जातियों मे गिनी जाती थी। अंग्रेजी शासन मे मानव शास्त्र का सहारा लेकर अरण्यवासियो को समतलवासियों से पृथक् करने का संगठित प्रचार किया गया है। अंग्रेजो के पूर्व तक ये जातिया हिन्दू ही मानी जाती थी—जिसका इतिहास साक्षी है। प्रत्येक जाति का शासन धर्मशास्त्र और जातीय पचायतों द्वारा होता था। उस समय के मुसलमान बादशाहो ने प्रचलित पम्पराओ में कोई हस्तक्षेप नही किया, बल्कि देश की प्रचलित विचारधारा का उन्होंने भी समर्थन किया था।

आधुनिक मानव शास्त्रियो ने भिन्न-भिन्न जातियों की खोज कर के उनको भिन्न-भिन्न नस्लो मे बाट दिया है। इसलिये प्रदेश के अरण्यवासी जन "द्रविड़वंश" के कहलाते है। यहा आर्य और द्रविडो मे मिश्रित वंश भी है। आर्य और द्रविडों के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग "मुडा" कहलाता है। उनके अन्तर्गत कोलरी, शावरी और खेरनारी जातिया आती है। कहते है कि मुंडा वंश के लोग ही भारत के आदिवासी है, द्राविड़ी (जिनमें गोड आदि जातिया गिनी जाती है) तो आर्यो के समान बाहर से आकर भारत मे बसे है। जो हो, हमारे मत से इस युग मे आर्य-द्राविड़ी संस्कृतिया गंगा-यमुना के समान मिल गई है—अब तो जातियो का वर्गीकरण करना कठिन हो गया है। वर्णसंकरता भी खूब बढ़ गई है। इसलिये एक प्रसिद्ध विद्वान् ने तो यहा तक कहा है कि **"समस्त भारतवासी अब एक ही नस्ल के है।"**

द्राविड़ी जातियो की गोण्ड जाति जंगलों मे रहती आई है। इसलिये उसका सुख-सम्पत्ति से संपर्क सदैव ही कम रहा है। अब भी उसकी दशा का कोई विकास नही हुआ है। अरण्यों मे रहने से उन के रग-रूप, खान-पान, आचार-विचार में अन्तर अवश्य दिखाई देता है। सहस्रों गोंडों के पास आज भी लंगोटी के अतिरिक्त दूसरा वस्त्र शरीर-आच्छादन को न मिलेगा। जैसा उनका सादा वेश है—वैसा ही सादा खाना-पीना है। अपने आप उत्पन्न होने वाले कंद-मूल और जंगली फूल-फल, उनका खाद्य रहा है और अब भी कही-कही पर है। उसके अतिरिक्त पशु-पक्षी आदि के मास का सहारा है। अस्त्रादि का उपयोग वे साधारण ही करते है, क्योंकि उनको खेती-पानी की अधिक आवश्यकता नही थी। हां, उनकी शौक की वस्तु थी-शराब। मद्य विभाग न होने से शराब भी वे अरण्यो मे स्वच्छंदता-

पूर्वक तैयार कर लेते थे। आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर, अपनी ही जाति का राजा पाकर ये लोग जंगलों में स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरते थे। तभी गोण्डा में यह कहावत प्रचलित है—

हडिया में नाज, गोंड घर राज।

अब रही उस युग की हिन्दू प्रजा—उनको अपने पोषण के लिये उद्योग करना पड़ता था। इस प्रदेश में जनसंख्या अधिक न थी, उर्वरा भूमि की अधिकता थी। कर स्वरूप पैदावार के भाग लेने की जो प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही थी, वही गोण्ड काल में भी स्थिर रही। उस जमाने में आवश्यकताएँ कम थीं, खाने-पीने, ओढ़ने बिछाने और धातुओं द्वारा शरीर को आभूषित करने के अतिरिक्त और कोई शौक न तो ज्ञात था—न उसकी चाह थी। इसलिये हिन्दू भी सरलता से जीवन बिताते थे और प्रायः घर के एक मुखिया के परिश्रम से पूरे परिवार का भरण-पोषण हो जाया करता था।

गोण्ड आदिम अवस्था के लोग थे—इससे उनका धर्म भी आदिम अवस्था का था। फिर भी तीन प्रधान लक्षण स्पष्ट हैं —

(१) जन्म की प्रधानता (२) छुआछूत और (३) अन्य जातियों से विवाह सम्बन्ध का निषेध।

गोण्डों के हाथ में जब इस प्रदेश का शासन आया, तब उन्होंने हिन्दुओं को भी साथ लिया। जिन्होंने राजवंश को अलग करने की चेष्टा की और गोण्ड जाति के दो विभाग करा दिये—एक "राजगोण्ड" और दूसरे "सर" अर्थात् असल गोण्ड। उन्होंने राज गोण्डों में हिन्दू प्रथाएँ चला दीं, उनको जनेऊ पहना दिया और उनके मन में भर दिया, कि वे क्षत्रिय हैं और 'सर' गोंडों से भिन्न हैं। राजकुल की लंबी चौड़ी वंशावली प्रस्तुत करा दी और यह कथा प्रचलित कर दी गई कि मूल पुरुष जादोराय क्षत्रिय था, उसने गोंड राजा की पुत्री से विवाह किया था और वह गोंडों की राजगद्दी का अधिकारी बन गया था—इसी कारण से वह गोंड कहलाता था। उसने गोंड कुमारी रत्नावली के हाथ का भोजन नहीं किया था। गढ़ा में आने के पूर्व उसका विवाह क्षत्रिय वंश में हुआ था और उसके पीछे जो राजा हुआ—वह प्रथम रानी का पुत्र था—न कि रत्नावली का। राजगोंडों ने अरण्यवासी गोंडों से जाति-व्यवहार छोड़ दिया और अपने सजातियों की अलग पंक्ति बना ली और हिन्दू मतानुसार आचार विचार इतना बढ़ाया कि उनके चौकों में जलाने की लकड़ियाँ तक धुल कर जाने लगीं। मंदिर, शास्त्र, कथा-पुराण आदि का प्रचार खूब बढ़ गया और राजगोंड बिल्कुल हिन्दू हो गये।

"गढाराज्ये त्रयो गुणा।"

बैतूल की गुप्तकालीन प्रशस्ति में* अंकित है, कि "डाहल राज्य में १८ आरण्यक रियासतें थीं।" इन १८ जंगली जागीरों के सामन्त डाहल के महाराज के सहायक थे। ई० सन १२०० के लगभग त्रिपुरी के राजा अजयसिंह के समय में प्रतापी कलचुरियों का जल घट गया था जिससे उनका शासन निकम्मा बन गया था। स्व० डॉ० हीरालाल जी ने† लिखा है कि—"अजयसिंह के समय में त्रिपुरी राज्य अस्ताचल की ओर मुड़ गया। एक ओर से चंदेलों ने, दूसरी ओर से पवारों ने और घर भीतर राजगोंडों ने अव्यवस्था निर्माण कर कलचुरियों को उखाड़ फेंका—जिससे राज का सूत्र टूट गया और जहाँ-तहाँ स्थानीय राजा स्वतन्त्र बन बैठे। परिणाम यह हुआ कि जब शक्तिहीन राजा किसी सामन्त या महन्त का कठपुतली बन जाता है, तब उसके शासन में—कमजोरियाँ आ जाती हैं और उससे राज्य के सरदारों में आपसी स्पर्द्धा होती है और राजकीय षड्यन्त्रों का दौरदौरा आरम्भ हो जाता है। यही अवस्था अजयसिंह के समय में निर्माण हुई होगी—जिससे राजगोंडों की शक्ति को बल पहुँचा। यह भी कहा जाता है कि प्रसिद्ध तांत्रिक सुरभि पाठक के सहयोग से जादोराय ने गढ़ा में गोंडी राज्य स्थापित किया था। अर्थात ब्राह्मण शक्ति के सहारे ही गोंडों का यह राज्य स्थापित हुआ था।

* इपिग्राफिया इंडिका जिल्द ६।
† स्व० डॉ० हीरालाल कृत "जबलपुर ज्योति"।

गोंडी शासन के श्रीगणेश की कहानियां लोग कई तरह से कहते हैं। उनका संकलन जवलपुर के पुराने कमिश्नर मि. स्लीमन ने किया था।* स्लीमन की एक कहानी का भावार्थ है कि—"राजगोंडो का पूर्वज जादोराय दक्षिण में गोदावरी के तट पर मोठा कठगांव मे रहता था और उसके पिता का नाम भोजसिंह था। युवावस्था मे वह चाकरी के लिये लांजी ‡ के मण्डलेश्वर के यहां गया था—जो रतनपुर राज्य का 'अंकित' (सरंजामी सरदार) था। एक समय महाशिवरात्रि के पर्व पर जादोराय मंडलेश्वर के साथ अमरकंटक की यात्रा को गया था। वहां एक दिन रात्रि मे जादोराय जव पहरा दे रहा था—उसने एक अद्भुत दृश्य देखा। उसने देखा कि दो सुन्दर युवक एक तरुणी के साथ जा रहे हैं और उनके पीछे एक विशालकाय वानर था। किन्तु वानर ने कुछ मोर के पंख जादोराय के सामने फेक दिये थे। विचार करने पर जादोराय को विश्वास होगया कि उसे प्रभु सीताराम, लक्ष्मण एव हनुमान के दर्शन हुए। दूसरे ही दिन उसे स्वप्न मे यह अनुभूति हुई कि नर्मदामाई आकर कह रही हैं कि—"तुझे प्रभु सीताराम के दर्शन हुए हैं—इसलिए तू अब यहाँ न ठहर और यहां से रामनगर मे सुरभि पाठक के पास चला जा और वहा उनकी राय से कार्य करेगा तो राजा होगा।" इस संकेतानुसार जादोराय रामनगर गया और उसने पाठक जी को सारा वृतांत कह सुनाया। कुछ दिनों के वाद वह पाठक जी के साथ गढा गया—जहाँपर नागदेव जागीरदार की एकमात्र कन्या रत्नावली का स्वयंवर था। गढ़ा के राजा ने यह घोषित किया था—कि "एक नीलकंठ पक्षी छोडा जावेगा और वह जिसके शीश पर जा वैठेगा—उसे राजा राज्यसमेत रत्नावली को दे देगा।" नियत समय पर वह पक्षी छोडा गया और वह जादोराय के सिर पर जा वैठा। तव तो उसका भाग्य ही चमक उठा—राज्य मिला और रानी भी। राजा के संतान न होने से उसने दामाद को ही राज्याधिकारी बना दिया।" उस कथानक मे यह भी कहा गया है कि—जादोराय ने रत्नावली से विवाह तो किया—पर उसके द्वारा पकाया हुआ भोजन उसने जीवनपर्यन्त नही किया और न उससे कोई संतान ही हुई। जादोराय ने राजा होने पर अपना दूसरा विवाह एक क्षत्राणी के साथ किया था और उसके ही पुत्र उसके उत्तराधिकारी हुए।" जान पडता है—कि पाठक जी ने नागदेव की कन्या रत्नावली से विवाह करवाकर जादोराय को राजा वनाया और उसी शक्ति के सहारे कलचुरियों की रही-सही शक्ति को नष्ट कर दिया। वास्तव मे गोंडों की यह शक्ति, पाठक जी के द्वारा ही विकसित हुई थी। यही कहानी हम आज तक सुनते आये हैं। किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि कलचुरियों का पतन किस घटना के द्वारा हुआ था।"

जादोराय के विषय मे दूसरी कथा इस प्रकार है—"गढा के पास कटंगा मे सकतू नाम का गोंड रहता था—जिसकी कन्या ने एक नाग से विवाह किया था—जिसका पुत्र धारुशाह था। इसी धारुशाह का पौत्र जादोराय था जिसने गढ़ा में गोंड राज्य की नीव रक्खी थी।" सिलापरी (दमोह जनपद में) के वर्तमान राजवंश के पास जो वंशावली है—उसमे जादोराय ही वंश का मूल पुरुष माना गया है। इस वंशावली को अधिकाश विद्वान कल्पित मानते है और यह है भी सत्य।

रामनगर की प्रशस्ति :– अन्य कुछ प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि ई. सन १२०० के लगभग गढ़ा मे गोड राज्य की स्थापना हो चुकी थी। वर्तमान उपलब्ध 'पृथ्वीराज रासो' में भी उसका उल्लेख आया है। † गढाके गोड राजाओं की एक वंशावली सन १६१७ ईस्वी मे रामनगर के

---

* मि. स्लीमन जवलपुर के एक प्रसिद्ध कमिश्नर होगये है, उन्होने कई पुस्तके लिखी हैं—जिनमे एक पुस्तक राजगोंडो के सम्वन्ध मे है। उन्ही के सम्वन्ध मे प्रसिद्ध विद्वान मि. कनिगहम ने भी लिखा है।

‡ लांजी—(वालाघाट जिले मे है।) रतनपुर राज्य का एक मण्डल था—वहाँ का मुख्य कर्मचारी मडलेश्वर कहलाता था।

† **पृथ्वीराज रासो**:—महोवा खण्ड के एक स्थलपर पृथ्वीराज का मंत्री कहता है—

कानन सुनि चहुवान कहै वरराय मंत्रगति। प्रथम देश परमाल रह्यो जसराज सेनपति ।।
गढ़ा जाय नृप लागि परी गोंडन से जंगह। पर्यो जाल चंदेल दली धरनी धर अंगह ।।
रोकियो सेन अरिसेन सव काम भरन धीरज धरिय। खेलियो व्याल विन सीसकर काम जाय फतह करिय ।।

मंदिर में* राजा हृदयशाह ने पाषाण पर अंकित करवा दी है—जिसमें ५३ राजाओं के नाम मिलते है। उस प्रशस्ति के लेखक राजकवि और पण्डित जयगोविन्द है।† इस वंशावली के सम्बन्ध में स्व० डॉ० हीरालाल लिखते है— "ऐतिहासिक दृष्टि से इस नामावली के प्रथम ३३ नाम प्राय सभी कल्पित जान पड़ते है। ३४ वी पीढी में मदनसिंह का नाम आता है और ४८ वी पीढी में संग्रामशाह का। संग्रामशाह वास्तव में ऐतिहासिक पुरुष है। इसने अपने नाम की सोने की पुतलियाँ चलाई थी-जो मिली है। उसमें संग्रामशाह का नाम और संवत् १५७० अर्थात् १५१३ ईस्वी पड़ा है। संग्रामशाह का नाम आमणदासदेव लिखा है। उसका यही नाम मुसलमानी तवारीख़ो में पाया जाता है। — मदनसिंह और संग्रामशाह के बीच १४ पीढियो का अन्तर है। प्रति पीढी के लिये २० वर्ष का औसत लेने से २८० वर्ष का अन्तर बैठता है। अन्य सिद्धान्तो मे संग्रामशाह का राजत्वकाल सन् १४८० ई० से १५३० तक ठहराया गया है। यदि १४८० ईस्वी में से २८० वर्ष घटाये जायँ तो १२०० ई० का काल आता है जो कलचुरियो के अन्त और गोडो के उदय का समय है। इससे यह अनुमान होता है कि गोंड वंश का मूल पुरुष मदनसिंह था—जिसने अपने नाम पर अनगढ चट्टानो पर महल बनवाया जो आज तक मदनमहल कहलाता है। महल बहुत बडा नही है, पर्वत निवासियो के योग्य ही है और पूर्ण रूप से उनकी अभिरुचि का द्योतक है। कदाचित् ऐसा स्थान महलो के लिये पर्वतीय लोगो के सिवा और किसी को सूझ भी न पड़ता। क्या जाने-मदनसिंह के उत्तराधिकारी इस महल में रहते थे या नही परन्तु संग्रामशाह ने उसका जीर्णोद्धार कराया और उसमें जाकर वह रहा भी। मदन-संग्राम-मध्यस्थ केवल १३ राजाओं के नाम प्राप्त है। उनके शासन का कोई लेख या वार्ता प्राप्य नही है। दूसरा यह कि संग्रामशाह जादोराय से ४८ वी पीढी में आता है। २० वर्ष की औसत आयु लगाने से जादोराय का समय ६४० वर्ष आता है। इसप्रकार सन् १४८० में से ६४० वर्ष घटा देने पर जादोराय का समय ईस्वी सन् ५४० के लगभग आता है। यह समय संभव नही जान पडता। साथ ही रामनगर की वंशावली के बहुत से नाम कल्पित जान पड़ते है। कर्ण-यशकर्ण नाम तो कलचुरि राजाओं के थे। इतना ही नही, ५२ नामो की पूर्ति के लिये अनेक अवतारो के विविध नाम उसमें सम्मिलित किये गये है। १४ वी पीढी में सुलतानशाह का नाम आता है, जिसका समय ई० सन् ८०० के लगभग आता है। वहा यह प्रश्न उपस्थित

---

* कनिंघम कृत—आर्कियालाजिकल रिपोर्ट, जिल्द २७, पृष्ठ ५२।
फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) जिल्द २
रा० ब० हीरालाल कृत—"मध्यप्रदेश की प्रशस्तियाँ", पृष्ठ ६१।

† जयगोविन्द—हृदयशाह के दर्बार के प्रमुख पंडित थे। ये तर्क एवं काव्य के धुरंधर विद्वान् थे। जाति के जझौतिया ब्राह्मण थे। रामनगर की वंशावली संस्कृत काव्य में है, जिसके अनुसार गढा के राजगोंडो की वंशावली इस तरह तैयार होती है —

(१) जादोराय (२) माधवसिंह (३) जगन्नाथ (४) रघुनाथ (५) रुद्रदेव (६) बिहारीसिंह (७) नरसिंहदेव (८) सूर्यभानु (९) वासुदेव (१०) गोपालसाहि (११) भूपालसाहि (१२) गोपीनाथ (१३) रामचंद्र (१४) सुलतानशाह (१५) हरिहरदेव (१६) कृष्णदेव (१७) जगतसिंह (१८) महासिंह (१९) दुर्जनमल्ल (२०) यशकर्ण (२१) प्रतापादित्य (२२) यशचंद्र (२३) मनोहरसिंह (२४) गोविंदसिंह (२५) रामचंद्र (२६) कर्ण (२७) रत्नसेन (२८) कमलनयन (२९) नरहरिदेव (३०) वीरसिंहदेव (३१) त्रिभुवनदेव (३२) पृथ्वीराज (३३) भारतीचंद्र (३४) मदनसिंह (३५) उग्रसेन (३६) रामसाहि (३७) ताराचंद्र (३८) उदयसिंह (३९) भानुमित्र (४०) भवानीदास (४१) शिवसिंह (४२) हरिनारायण (४३) सबलसिंह (४४) राजसिंह (४५) दादीराय (४६) गोरखदास (४७) अर्जुनसिंह (४८) संग्रामशाह (४९) दलपतशाह (५०) वीरनारायण (५१) चंद्रशाह (५२) प्रेमनारायण और (५३) हृदयशाह।

होता है कि सुलतान शब्द का चलन भारत मे उस समय में था ही नही, किन्तु जिस समय में उक्त वशावली रची गयी– उस समय मुगल सम्राटो का जमाना था। इसलिए प्रशस्ति के लेखक ने (ई. सन् १६६७ में) मुलतानी चकाचौंध मे रहकर गोंडो के पुरखा को "सुलतान" नाम दे देना अभीष्ट समझा। इसतरह की गल्तिया उसमे अनेक है।

स्लीमन साहब ने मदनसिंह का समय ई. सन् १११६ निश्चित किया था—जो सर्वथा गलत है, क्योंकि उस-समय त्रिपुरी में प्रवल कलचुरियो का शासन था। इसलिये मदनसिंह का शासनकाल १२ वी सदी का होना चाहिये। रामनगर की वंशावली मे मदनसिह के पूर्व के जिन राजाओं के नाम अकित किये गये है—वे काल्पनिक है ही—पर स्लीमन साहब ने उक्त वशावली के आधार पर गोड राजाओ का जो शासन समय निश्चित किया है—उसके अनुसार जादोराय का समय ईस्वी सन् ३८२ आता है। कनिंगहम साहब समय निर्धारित करते समय विक्रम सवत् के स्थान मे कलचुरि–संवत् का उपयोग करके जादोराय को ई. सन् ६६४ पर ले जाते है। किन्तु दोनों साहबो का अनुमान गलत हैं क्योकि कलचुरियो के प्रताप के आगे उस समय गोड ठहर ही नही सकते थे। इसी कारण से स्व. हीरालाल जी का अनुमान सयुक्तिक है। यदि गढा का प्रथम गोड राजा जादोराय है—तो उसका समय १३ वी का सदी होना चाहिये। जादोराय और मदनसिह के वीच के नाम तो फर्जी है।

मदनसिह का पुत्र उग्रसेन था। उसका पुत्र रामसिह और उसका ताराचद्र (किसी किसी के अनुसार रामकृष्ण) हुआ। उसका उदयसिंह, उसका मानसिंह, उसका भवानीदास, उसका शिवसिह, उसका हरनारायण, उसका सवल्सिह, उसका राजसिह और उसका दादीराय हुआ। दादीराय का पुत्र गोरखदास, उसका अर्जुनदास, और उसका आम्हणदास अथवा अमानदास हुआ। इसी अमानदास ने पीछे से संग्रामशाह की पदवी धारण की और मूलनाम का उपयोग करना छोड दिया। वैतूल जिले के वानूर ग्राम मे एक ताम्रपत्र संवत् १४२७ का मिला है। उसमे लिखा है कि "प्रौढ प्रताप चक्रवर्ती महाराजाधिराज अचलदास ने दो कुओं का उद्यापन करके जनार्दन उपाध्याय को "आमादह" ग्राम दान मे दिया। यह ग्राम वानूर से ४ मील पर है। मध्यप्रदेश के इतिहास मे अचलदास नाम के किसी राजा का नाम नही मिलता। इस ताम्रपत्र में अचलदास की वशावली नही मिलती। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अचलदास किसी ऐसे वश का था जिसका उल्लेख जानबूझकर नही किया गया। अचलदास का समय राजसिंह या दादीराय के जमाने मे पड़ता है। वैतूल आरंभ से ही जगली जिला और गोंडों का निवास स्थान रहा है। इससे कल्पना हो सकती है कि अचलदास ही इन दोनों में से किसी का मूल नाम रहा हो। दादी या दादू लाड के शब्द है। दादीराय के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सभी के नामो के अंत मे "दास" लगा है–इससे उसका नाम दासातक होना सभव है। कदाचित् दादीराय और अचलदास एक ही व्यक्ति हों। यदि ऐसा ही है—तो अचलदास के विरुद से सिद्ध होगा कि गोड निवासाचल के छोटे-मोटे राजा उसके अधीन थे। इससे मानना पड़ेगा कि गोंडों ने १४ वी शताव्दी के चतुर्थ पाद में अपने राज्य की नीव अच्छी जमा ली थी। दादीराय के पुत्र गोरखदास ने जवलपुर के निकटस्थ गोरखपुर बसाया। उसके पुत्र अर्जुनदास की कीर्ति का कोई चिह्न उपलव्ध नहीं है।

१३ और १४ वीं सदी की अवस्था:— ईस्वी सन् १२०० से १४०० तक गोंडी राज्य का इतिहास आज अंधकार में लुप्त सा है। इस समय दिल्ली के खिलजी सुलतानो का शासन दक्षिण मे मैसूर तक पहुँच चुका था। मध्यप्रदेश के उत्तरीय और पश्चिमी भागों मे मुसलमानों का शासन स्थापित होगया था—जिसका विवेचन अन्यत्र किया गया है। फिर भी अरण्यमय भूभाग मे राजगोड जागीरदार जगल मे मगल कर रहे थे। उसमे गढ़ावाले विशेष प्रभावशाली थे। मध्यप्रदेश मे इस समय भक्ति-मार्गी संतो का जनसमुदाय पर काफी प्रभाव था। वैदिक कर्मकाण्ड तथा वैदिक तंत्रो का प्रभाव जनता से उठ गया था। उसका स्थान जादू-टोने, झाड़फूक आदि अवैदिक कर्मकाण्ड ने ग्रहण किया था और उसकी अधिकता अरण्यवासियों मे थी। इस समय उत्तर भारत के भक्ति, और ज्ञान के तीन प्रचारक रामानन्द, कवीर और नानक थे—जिनके सैकडो शिष्य देश के विभिन्न भागो में फैले हुए थे। आज भी कवीर-पंथिओ का प्रभाव मध्यप्रदेश में काफी है। रामानंद और उनके भक्तिमार्गी शिष्यों का प्रभाव वुन्देलखण्ड मे था।

भक्तिमार्ग का यह आदोलन ऊच और नीच मत मफल हो चुका था फिर भी वर्णव्यवस्था के बधनो का तोडने में वह असफल रहा। यह वह समय था जबकि समस्त देश के सतो ने अपनी अपनी बोली में जाति-पाति के नियमो का खडन किया और मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम और सौहार्द का सदेश दिया। वे सब को समान दृष्टि से देखते थे। इन साधु-सतो के प्रेम और भ्रातृभाव के सदेश ने देश के कोने-कोने म व्याप्त होकर मनुष्यो के पारस्परिक वैमनस्य और ईर्ष्या द्वेष को हटाने का प्रयास किया। उसका विस्तृत विवरण अन्यत्र दिया गया है।

प्रतापी सग्रामशाह

गढा के प्रतापी सग्रामशाह ने गोडी-राज्य को उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचाया था। रामनगर की प्रशस्ति में लिखा है—कि "प्रतापी अर्जुनसिंह का पुत्र सग्रामशाह था। जिस भाति विशाल कपास का ढेर एक छोटी सी चिनगारी स नष्ट हो जाता है—उसी भाति उसके शत्रुगण तेजहीन होगये थे। मध्यकाल का सूर्य भी उसके प्रताप के सामने धूमिल सा दिखाई देता था। मानो सारी पृथ्वी को जीत लेने का उसने निश्चय किया हो। तदनुसार उसने ५२ गढो को जीत लिया था।* ये गढ या किले उच्च पर्वतीय श्रेणियो पर स्थित थे जो विशाल प्राचीरो और बुर्जियो से परिवेष्ठित होने के कारण दुर्भेद्य समझे जाते थे।"

सग्राम का शासनकाल ई सन् १४८० से १५४२ तक था। मि स्लीमन एव मि कनिंगहम ने ई सन १५३० तक हो निश्चित किया है। कहा जाता है कि उसने ६२ वर्ष तक राज किया था। तब तो उसकी गद्दीनशीनी का समय ई सन् १४६० के लगभग होना चाहिए क्योकि फरिश्ता ने आसफखा के आक्रमण का समय ई सन् १५६४ लिखा है। सग्रामशाह महारानी दुर्गावती का श्वसुर एव दलपतशाह का पिता था। सग्राम के बाद दलपत ने ७ वर्ष ही राज्य किया था और आसफखा के आक्रमण तक दुर्गावती के शासन के १५ वर्ष बीत चुके थे। यदि १५६४ से हम २२ वर्ष घटा दे, तो वह समय १५४२ ईस्वी के लगभग आता है—अर्थात् सग्रामशाह की मृत्यु सन १५४२ ई म हुई होगी।

पता चलता है कि सग्रामशाह का असली नाम "आमणदास" था। 'सग्रामशाह' तो उसकी उपाधि का नाम

---

*प्रशस्ति के अनुसार बावन गढ ये थे—

(१) गढा (२) मारुगढ (३) पचेलगढ (४) सिंगौरगढ (५) अमोदा (६) कनोजा (७) बगसरा (८) टीपागढ (९) रायगढ (१०) प्रतापगढ (११) अमरगढ (१२) देवगढ (१३) पाटनगढ (१४) फतहपुर (१५) निमुआगढ (१६) भवरगढ (१७) बरगी (१८) धुनसौर (१९) चावडी (सिवनी) (२०) डोगरताल (२१) कोरवा (करवागढ) (२२) झझनगढ (२३) लाफागढ (२४) मॉटागढ (२५) दियागढ (२६) पाकागढ (२७) पवई करहिया (२८) शाहनगर (२९) घमोनी (३०) हटा (३१) मडियादो (३२) गढाकोटा (३३) शाहगढ (३४) गढपहरा (३५) दमोह (३६) रानगिर (रहली) (३७) इटावा (३८) खिमलासा (खुरई) (३९) गढगौर (४०) बारीगढ (४१) चौकीगढ (४२) राहतगढ (४३) मकडाई (४४) करीबाग (कारबाघ) (४५) कुरवाई (४६) रायसेन (४७) भौरासो (४८) भोपाल (४९) उपतगढ (५०) पनागर (५१) देवरी (५२) गौरझामर।

ये गढ सागर, दमोह, जबलपुर, सिवनी, मडला, नरसिंहपुर, छिन्दवाडा, नागपुर, हुशगाबाद और बिलासपुर तक फैले हुए थे। इन में से अब कितने ही स्थान उजाड होगये है।

मि स्लीमन के लेखानुसार प्रत्येक बडे गढ में ७५० गाव थे। केवल अमोदा में ७६० थे, छोटों में ३५० या ३६०। ३५० वाले नबर ४, १२, २४, २५, ४६ और ३६० वाले नबर १३, १६, १९, ३१, ३२, ३४, ३६, ४१, ४२, ४८ है। ग्राम सख्या का योग ३५६८० है, किन्तु अबुल फजल ने ७० हजार लिखा है।

था और वही अधिक प्रचलित रहा। उसके सिक्को पर "संग्रामशाहि" ही अंकित है।* दमोह जनपद के ठर्रका गाव के दो सतीघीरों पर उसका नाम तथा राज्यकाल दमोह–दीपक के शब्दों मे यों लिखा है:—
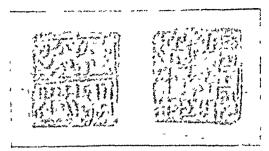
"एक सवत् १५७० का है। उस के श्रीगौरीगढ विपय दुर्गे महाराज श्री राजा आम्हणदासदेव के समय का जिक्र है और ग्राम का नाम ठर्रक लिखा है। दूसरा लेख सन् १५७१ का है-उसमे भी आम्हणदास का नाम लिखा है।†

संग्रामशाह का असली नाम आम्हणदास या अमानदास था। बाल्यावस्था मे वह बडा नटखट और क्रूर था। बाप ने कई बार उसे समझाया, बंद करके रखा और अन्य उपाय किये परन्तु इससे होता क्या था? उसने अपनी आदत न छोड़ी। एक बार वह कुछ गड़बड करके डर के मारे बघेलखण्ड के राजा वीरसिहदेव पास भाग गया।‡

इसपर पिता ने नाराज होकर उसे युवराजत्व से च्युत कर दिया। जब उसको यह समाचार ज्ञात हुआ तब वह तुरंत वापिस आया और षड्यंत्र रचकर उसने अपने पिता को मरवा दिया और स्वय गढा की गद्दी पर बैठ गया। जब वीरसिहदेव को यह वृत्तांत ज्ञात हुआ कि आमनदास ने पितृ हत्या की है–तब उसने गढ़ा पर आक्रमण कर दिया, परन्तु आमनदास ने कोई प्रतिकार नहीं किया और स्वयं चार-पांच सेवको को लेकर वीरसिंहदेव के पास पहुँच गया और हाथ-पैर जोडकर मना लिया। अमानदास की बालवृत्ति बाल्यकाल के साथ गई। जब उसने राज्य की बागडोर अपने हाथ मे ली–तब उसने अपने राज्य की वृद्धि की—जो उसके पूर्वजो ने सोची तक न थी और जिसको उसके पश्चात् उसकी संतति कभी लाघ न सकी। वास्तव मे राज्य के ५२ गढ उसकी रक्षा करते थे और अधिकाशत. उसके गढाधिपति गोंड जाति के ही थे। सिगोरगढ, गढा, मण्डला और चौरागढ़ ये स्थान राज्य के सैनिक केन्द्र थे। उसने सिगोरगढ के किले को खूब मजबूत बनाया क्योकि गढा राज्य की सीमा बुन्देलखण्ड तक पहुँच चुकी थी। उसीतरह चौरागढ का विशाल किला नरसिंहपुर जनपद की एक पहाड़ी (८०० फुट ऊँचाई) पर बनवाया था। उत्तर, पश्चिम तथा पूर्व की ओर से वह पहाडी कई सौ फुटो तक सीधी तराश सी दी गयी है जो कि परकोटे के समान दिखाई देती है। उसके कारण शत्रुओं का वहां पहुंचना असाध्य सा था। आगे चलकर उसके वंशवाले परचक्र आने पर इसी किले का सहारा लेते थे।

संग्रामशाह की उपाधि उसे क्यों कर मिली? मुसलमान इतिहासकारों का कथन है कि यह नाम वीरसिहदेव ने सन् १५२६ ई. मे रखा था, जब अमानदास ने गुजरात के बहादुरशाह से युद्ध मे वीरसिहदेव को सहायता दी थी।

---

* जबलपुर ज्योति पृ० ३२-३५।

† दमोहदीपक पृ० ७८।

‡ वीरसिंहदेव संवत् १६६२ मे गद्दीपर बैठा था और सग्रामशाह का समय संवत् १५३७-१५९९ माना जाता है। यदि उक्त दोनो संवत् ठीक है-तो यह घटना निराधार होजाती है, किन्तु एक लेखक ने लिखा है कि बघेलखण्ड के प्रसिद्ध वीरसिंहदेव का समय १५५७ विक्रमी से १५९७ विक्रमी तक है। वास्तवमे बांधवेश (बघेलखण्ड) वीरसिंहदेव और ओड़छा के राजा वीरसिंहदेव दो विभिन्न राजा है। अत: वर्णित घटना में समय की विषमता नहीं आती।

"आमनबुध बार्बन से"

बपौती मे अमान को तीन-चार गढ़ मिले थे, शेष उसके निज भुजोपार्जित थे।

वज्रप्रायैः पर्वत प्रौढ गाढैः सप्राकारैरम्बुभिश्चयाक्षयाणि ॥
द्वापञ्चाशद्येन दुर्गाणि राज्ञां निर्वृत्तानि क्षोणिचक्र विजित्य ॥
(रामनगर प्रशस्ति)

पर यह ठीक नहीं जचता क्योंकि अमणदास के सन् १५२९ ई के पूर्व के सिक्कों में संग्रामशाह नाम अंकित है। स्थानीय लेखों से ज्ञात होता है कि उसने संवत १५८१ (सन् १८८४ई) में यह पदवी धारण की। जब उसकी सेना माडौगढ के सुल्तान से हार गई और गढा शत्रुओं के हाथ में चला गया—तब उसने स्वयं जाकर केवल १ हजार सवारों की सहायता से शत्रुदल का तितर बितर कर सुलतान के निशान आदि छीन लिये थे। तभी से उसने संग्रामशाह की उपाधि धारण की।

जनश्रुति है कि संग्रामशाह पर बाजना के भैरव की कृपा थी और उस दवीशक्ति के सहारे उसने अपना प्रताप बढाया था। यो तो पुरातन काल में अरण्यवासी लोग अपने देवताओ को प्रसन्न करने के हेतु नर-बलि चढाते थे। संग्राम भैरव का उपासक था। राजा ने संग्रामसागर के तटपर बाजना नामक मठ में भैरव की स्थापना की थी—जिसका पूजन आदि समारोह के साथ होता था। वहा का पुजारी एक संन्यासी था और राजा का उसपर अधिक प्रेम भी था। संग्रामशाह के किसी शत्रु ने प्रलोभन देकर उसके द्वारा राजा का वध करवाने का षडयंत्र रचा और संन्यासी उस जाल में पूरी तौर से फस गया। भैरव को प्रसन्न करने के हेतु संन्यासी ने एक विशेष पूजा का आयोजन किया और खोलता हुआ तेल का बडा कढाव भी तयार किया। राजा से कहा गया कि वह मध्यरात्रि में अकेला ही पूजन के लिये मठ में आवे। जब राजा अकेला ही मठ के लिये रवाना हुआ तो पासवान ने कहा कि महाराज सतर्कता से काम करें—अन्यथा प्राण जाने की आशंका है। तब राजा ने छिपाकर अपनी तलवार को साथ में ले लिया। संन्यासी तांत्रिक ने मठ में पूरी तयारी कर रखी थी। राजा ने मठ में पहुचते ही सतर्कता से पुजारी को देखा और उसे विश्वास होगया कि वह कोई हथियार छिपाए हुए है। फिर भी राजा चुप रहा और पुजारी के आदेशानुसार पूजा-कार्य में लग गया। पूजा समाप्त होते ही तांत्रिक ने राजा को प्रदक्षिणा करने का आग्रह किया। उसपर राजा ने पुजारी से कहा कि पहले आप करें तो बाद में मैं करूंगा। ज्योंही पुजारी परिक्रमा करके भैरव को झुककर प्रणाम करने लगा—त्योंही राजा ने पास की तलवार से उसका सिर काट दिया। कहते हैं कि उसी समय भैरव ने प्रसन्न होकर राजा से वर मागने के लिये कहा। राजा ने देवता से सदा विजयी होने का वर मागा। यही कारण है कि वह सदा विजयी रहा। भैरव भक्त होने के कारण उसके राज्य का झडा "भगवा" था।

वास्तव में संग्रामशाह गोड वंश का प्रतापी राजा था। उसने गढ में कई इमारतें बनवायी थी। उसका राजमहल संग्रामसागर ताल के तट पर था। अब भी उसके कुछ अवशेष मिलते हैं। मदन महल में हवा खोरी को वह प्रतिदिन जाता था। उस महल को उसने नये सिरे से बनवाया था। उसी तरह उसने सिंगोरगढ की मरम्मत करवाई और अपने नाम पर एक गाव वहा पर बसवाया—जो संग्रामपुर कहलाता है।

संग्रामशाह के जो सोने के सिक्के मिले है—उसमें देवनागरी और तेलगू अक्षर मिलते है। प्रश्न सामने आता है कि हिन्दी के केन्द्र में तेलगू अक्षर कैसे पहुच गये? उसका उत्तर यही है कि यह वंश तेलगाना से ही गढा की ओर आया था। इसलिये जन्म भाषा का गौरव उसमें बना रहा। सिक्के की एक ओर सिंह और सूर्य की मूर्तिया है, और दूसरी ओर "पुलस्त्य वंश श्री संग्रामशाही संवत् १६००" अंकित है। पुलस्त्य वंश लिखने का कारण यही है कि राजगोड अपने को रावणवंशी कहते थे। उस सिक्के का वजन १६६५ ग्रेन और आकार ७" है। लोग उसे पुतली कहते थे।

संग्रामशाह के समय में दिल्ली का मुगल राज्य दृढ हो चुका था और सम्राट् अकबर ने उसके विकास का उद्योग आरंभ कर दिया था। अबुल फजल ने आइन अकबरी में गढा राज्य का विवरण अंकित किया है—जिससे संग्रामशाही शासन का कुछ आभास मिल जाता है।

दलपत और दुर्गावती

संग्रामशाह के मरने पर (सन् १५४३ ई. मे) उसका पुत्र दलपतशाह राज्याधिकारी हुआ। यह वह समय था, जब कि राजगोड अपने को क्षत्रिय कहलाते थे। इसी कारण दलपत ने अपना विवाह खड्ग के सहारे चंदेल कन्या दुर्गावती के साथ किया था। दुर्गावती महोबा के सामन्त एवं राठ के जमीदार शालिवाहन चंदेल की कन्या थी।* यह विवाह किस तरह हुआ था? उसकी कहानी अन्यत्र दी गयी है। मिस्टर स्लीमन के अनुसार वह महोबा के चंदेल राजा की कन्या थी। सन् १८२५ ई. में राजगोडों की जो वंशावली गवर्नर जनरल के पास जबलपुर के कमिश्नर के द्वारा भेजी गई थी—उसमें कहा गया था कि—"दुर्गावती उचेहरा के पड़िहार राजा की पुत्री थी।" दुर्गावती महोबा के चंदेल राजा की कन्या थी–यह सर्वथा असगत है–क्योकि १६ वी सदी में महोवा से चंदेल शासन उठ चुका था। मिस्टर कनिगहम ने कालिजर के राजा कीरतसिह को दुर्गावती का पिता लिखा है। अबुल फज़ल के लेखानुसार दुर्गावती का पिता राठ का चदेलवंशीय शालिवाहन था—यह हमे सयुक्तिक जान पडता है। लोग इस विवाह के सम्बन्ध मे कई तरह की कहानिया वताते है। राजगोडो को समाज ने कभी क्षत्रिय नही माना और उस युग का प्रत्येक राजपूत गोंडों से रिश्तेदारी करना हेय मानता था। यह तो स्पष्ट है कि यह विवाह तलवारों की झंकारो के साथ संपन्न हुआ था। दुर्गावती का हरण कर दलपत ने अपना विवाह सिगोरगढ ‡ मे सम्पन्न किया था। दुर्गावती की सुन्दरता का वर्णन करते हुए सस्कृत के एक कवि ने कहा है :—

मदन सदृशरूपः सुन्दरी यस्य दुर्गा।

दुर्गावती के साथ दलपत का विवाह सन् १५४० ई. के लगभग हुआ होगा–जब कि संग्रामशाह जीवित था। दलपतशाह ने सन् १५४१ से १५४८ ईस्वी तक शासन किया था। दलपतशाह गढा से राजधानी उठा कर सिगोरगढ ले गया था। सग्रामशाह के पराक्रम के कारण दलपतशाह का शासन विलासिता के साथ बीता था। जिसका आभास हमे गढा के सस्कृत कवियों के पदो से मिलता है। दलपत के मरने के समय उसका पुत्र वीरनारायण पाच वर्ष का था। ऐसी अवस्था में रानी ने वीर नारायण को राज्य पर अभिषिचित करके † सारा शासन अपने हाथ मे ले लिया था। राज्य के प्रधानमंत्री अधार कायस्थ और मान ब्राह्मण थे, जिन्होने राज्य का शासन व्यवस्थित किया था। तिस पर भी रानी स्वयं गढा मे रह कर प्रत्येक कार्य की निगरानी रखती थी।

अबुल फ़जल का कहना है कि—"रानी दुर्गावती बड़ी बहादुर थी। तीर और बंदूक चलाने मे उसकी बराबरी

---

* महोवा मे इस समय बुन्देलो की जड़ जम चुकी थी, फिर भी महोबा के निकट राठ नामक गाव मे शालिवाहन चंदेल एक छोटा सा राजा था। उसकी पुत्री दुर्गावती बड़ी सुन्दर थी। लोग कहते है कि महोबा के एक मेले में दलपतशाह ने दुर्गावती को देख लिया था और तब से दोनो एक दूसरे पर आकर्षित होगये थे। पर पिता ने दुर्गावती का विवाह निकटवर्ती किसी क्षत्रिय कुमार से तय कर दिया था। तब दुर्गावती ने दलपतशाह को यह संदेशा भिजवाया कि "वसंत पचमी के अवसर पर जब वह महोबा आवेगी और नगर के वाहर दुर्गा देवी के मन्दिर मे दर्शन के लिये पहुंचेगी—तव हरण करने का अच्छा अवसर मिल सकता है। यह अवसर चूकने पर वह दूसरे की हो जायगी।" तदनुसार दलपतशाह १२ हजार सैनिको को लेकर सिगोरगढ़ से महोबा गया और वहां से दुर्गावती को हरण कर ले गया तथा सिंगोरगढ में ही उसने शास्त्रानुसार विवाह किया।

‡ सिंगोरगढ़.—जबलपुर से ३५ मील पर है। सिगोरगढ़ का किला गजसिंह पड़िहार ने बनवाया था। त्रिपुरी के कलचुरियो के समय मे उनके आश्रित सामन्त पड़िहार थे।

† "गढ़ेश नृपवंश वर्णन।"

विरले ही करते थे। जहा कहो यह जगली जानवरो का उपद्रव सुन पाती—अविलम्ब घोडे पर सवार होकर उन्हें मार गिराती थी। उसके पास २० हजार सवार और एक हजार वलिष्ट हाथी थे।"

मिस्टर स्लीमन ने लिखा है—"इस रानी का शासन उत्तम था। वह प्रजा के दुखो और सुखो की कहानी स्वय सुनती थी।" उसने गढा के निकट सुन्दर रानीताल बनवाया और दासी ने चेरीताल। फिर दीवान साहब चुप क्यो बैठते? उन्होंने भी अधारताल बनवा दिया।"

रामनगर की शिला प्रशस्ति में जयगोविन्द ने लिखा है—"महारानी दुर्गावती याचको की सौभाग्यलक्ष्मी, सदगुणो की मूर्ति, परमसुन्दरी थीं, जिसका चित्त सदैव जग के कल्याण म मग्न था। पति के मरन के उपरा त उसने अपने ३ वर्षीय पुत्र वीर नारायण को राज्य पर अभिषिचित किया था और राजकाज स्वय करती थी—जिसकी प्रशसा सर्वत्र की जाती थी। अपने त्रलोक्य विश्रुत यश और हिमाचल के समान उत्तुग स्वर्णमदिरो के निर्माण द्वारा उसने तो पृथ्वी का रूप ही बदल दिया था। राज्य में बहुमूल्य रत्नो की भरमार थी। इन्द्र के हाथियो के सदृश अनेको मस्त हाथी उसके द्वार पर झूमा करते थ।"

केशव कवि ने "गणेश नृप वश वर्णन सग्रह" में कहा है—

नाके भूमितले फणीशभवते सिद्धि सदा सेविता।
सा सख्ये प्रबलारिवृन्दहरणी दुर्गेव दुर्गावती ॥१५॥
उवरा सवतो भूमिमध्यतो नमदा नदी।
विज्ञा दुर्गावती राज्ञी गढ़ाराज्ये त्रयो गुणा ॥१६॥

अबुल फजल और फ़रिश्ता आदि मुसलमान इतिहासकारो ने लिखा है कि "रानी दुर्गावती ने मालवा के अतिम सुलतान बाजबहादुर * को नीचा दिखाया था।" फरिश्ता लिखता है कि—"बाजबहादुर ने गोडवाने पर आक्रमण किया था। दुर्गावती ने उसका सामना किया था और इस युद्ध में बाजबहादुर का चचा फतह खा मारा गया था। तथा हार कर सारगपुर वापस लौट गया था। (ई सन् १५५०-१५६० के बीच में) बाजबहादुर ने फिर से युद्ध की तैयारी कर गढा राज्य पर दुबारा आक्रमण किया था।, परन्तु इस बार भी उसे हार कर लौटना पडा था। इस युद्ध के कारण रानी का प्रताप सर्वत्र फैल गया था। यही बात गजेंद्र मोक्ष" काव्य में कविवर प लक्ष्मीप्रसाद ने लिखी है।

गढा राज्य की राजकीय भाषा हिन्दी थी, किन्तु चारो ओर मुगल शासन हो जाने से फारसी का प्रभाव भी यहा हो चला था। रानी ने गढा का पूर्ण रीति से शृगार किया था—फिर भी वह स्वय हिन्दू विधवा नारी के समान

---

*बाजबहादुर—(ई सन् १५५४-१५६१) माल्वा का अतिम सुल्तान था। सन् १५६१ ई में मालवा के बाजबहादुर ने मुगलो द्वारा राज्यच्युत होने पर बुरहानपुर का आश्रय लिया, परन्तु जब मुगल सेना घर को लौटी तब माल्वा, खानदेश और बरार के नवाबो ने मिल कर उसे नमदा के किनारे घेर कर काट डाला। यह सुल्तान एक अच्छा कलाकार था। उसकी बेगम रूपमती भी, सुन्दर कवियित्री तथा गायिका थी। वह राजपूत कन्या थी। बाजबहादुर उसके गायन पर मुग्ध था—इसलिये उसके साथ उसने प्रेम-विवाह किया (सन् १५५७ ई)। बाजबहादुर जब मारा गया तब मुगल सेनापति आदम खा ने रूपमती को अपने अधीन करने का प्रयास किया—पर वह हाथ न लगी और उसने अपने प्राण-त्याग दिये। उस समय उसका यह अतिम दोहा प्रसिद्ध है —

तुम बिन जियरा दुखत है, मागत है सुखराज।
रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज॥

आज भी लोक गीत गाने वाले बाजबहादुर तथा रूपमती का आख्यान सुन्दरता के साथ गाते ह और सुनने वाला मुग्ध हुए विना नहीं रहता।

सात्विक जीवन बिताती थी। हिन्दी के कवि भी उसके दरबार मे थे। हिन्दी के कवि गोप महापात्र और नरहर महापात्र जो अकबर के राजकवि थे—दुर्गावती के शासन मे गढ़ा और चौरागढ आये थे। ये लोग सम्राट् अकबर द्वारा यहां भेजे गये थे, इसलिये कि वे राज्य की गुप्त बाते उसे बतावे, जिससे रानी मुगल सम्राट् की अधीनता में रहे। लोग कहते है कि प्रधान मंत्री अधार कायस्थ ने आगतुक कवियों का गढा और चौरागढ़ मे राजकीय स्वागत किया था। कहते है कि रानी ने इनके काव्य पर मुग्ध होकर एक करोड़ रुपया दिया था।

रानी दुर्गावती वल्लभ कुल सम्प्रदाय* (पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय) की मानने वाली परम वैष्णव थी। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी श्री विठ्ठलनाथ जी महाराज अरैल से गढ़ा आ कर कुछ दिन रहे थे। रानी ने उन्ही से दीक्षा ली थी। पता चलता है कि श्री विठ्ठलनाथ जी गढा से सागर होते हुए मथुरा गये थे। गढ़ा की वल्लभकुल की बैठक आचार्य ने ही स्थापित की थी। यह घटना विक्रम संवत् १६१९ (ईस्वी १५६३) की है।

दुर्गावती भीमपराक्रमेण— रानी ने अपने नाबालिग पुत्र वीरनारायण की ओर से राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली और १५ वर्ष तक बड़ी योग्यता से शासन किया था। उसने प्रजा के हितार्थ अनेक उपयोगी संस्थान बनवाए और अपने राज्य मे अमनचैन फैलाया। इस वृद्धि को देख कर कड़ा मानकपुर के† नवाब आसिफ खां (अकबर के राज्यपाल) काजी ललचाया और उसने इस विधवा से राज्य छीन लेने का विचार किया। बहाना ढूढ़ने को कुछ देर न लगी। कहते है, दुर्गावती को सम्राट् अकबर की ओर से एक सोने का चरखा इस अर्थ से नजर किया गया कि स्त्रियों का काम रहँटा चलाना है—राज्य करना नही। इसके प्रत्युत्तर मे रानी ने एक सोने का पीजन बनवा कर भिजवा दिया—मानों यह कहला भेजा कि यदि मेरा काम चरखा चलाना है—तो तुम्हारा पीजन से रुई धुनकना है। इस पर बादशाह नाराज़ होगया।

---

*गोस्वामी श्री वल्लभाचार्य (ई. सन् १४७९-१५३१) तैलंग ब्राह्मण लक्ष्मणभट्ट तथा एलमागार के पुत्र थे। जिस समय उनके माता-पिता काशी यात्रा के लिये आंध्र जा रहे थे– रास्ते मे महानदी के किनारे चम्पारण्य गांव मे (जिला रायपुर मे) वैशाख कृष्ण एकादशी संवत् १५३५ को उनका जन्म हुआ। उन्होंने देश में पुष्टिमार्ग का प्रचार किया था। उनका दार्शनिक सिद्धान्त "शुद्धाद्वैत" के नाम से प्रसिद्ध है। उनके मत से ब्रह्म माया से अलिप्त—अतः नितान्त शुद्ध है। यह माया सम्बन्ध रहित ब्रह्म ही एक अद्वैत तत्त्व है। इस मत का शुद्धाद्वैत नाम यथार्थ है। उनके पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी है। उन्होंने हिन्दी मे "२५२ वैष्णवो की वार्ता" ग्रंथ लिखा है–जिसमें रानी दुर्गावती की कहानी क्रमसंख्या २४२ मे है।

†आसिफ खां—असली नाम ख्वाजा अब्दुल मजीद था। कड़ा का राज्यपाल बना कर अकबर ने उसे आसिफ़ खां की उपाधि दी थी। "तबकात-इ-अकबरी" ग्रंथ मे लिखा है कि "हिजरी ९७१ में उसने गढ़ा कटंगा पर आक्रमण किया था। उस राज्य के अन्तर्गत ७० हज़ार ग्राम है। वहा की रानी बहुत ही सुन्दर है। उसे जीतने के लिये आसिफ़ खां ने ५० हज़ार सैनिकों को लेकर आक्रमण किया, तब रानी ने ७०० हाथी और २० हज़ार सैनिको को लेकर युद्ध किया। युद्ध मे रानी घायल हुई और शत्रुओ के द्वारा पकड़े जाने के भय से उसने स्वय आत्महत्या कर ली। विजय पाने पर आसिफ़ खां ने चौरागढ़ पर आक्रमण किया। रानी का पुत्र ज्यों ही आसिफ खां से मिलने के लिये किले के बाहर आया, त्यों ही उसने राजकुमार को मरवा दिया और किले को लूट कर बहुत सा धन प्राप्त किया। यहां से बहुत सा धन लेकर वापिस लौट गया।"

मुसलमान इतिहासकारों ने गढ़ा का नाम "गढ़ा कटंगा" लिखा है। गढ़ा के समीप कटंगा नाम का एक पहाड़ है। जायसी ने भी "पद्मावत" मे लिखा है :—

दक्खिन दहिने रहै तिलंगा। उत्तर मांझ होय गढ़ह कटंगा।

कुछ लोग कहते है कि दुर्गावती के पास एक श्वेत हाथी था—उसे अकबर बादशाह ने अपने लिये मागा, किन्तु रानी ने इनकार किया। वह प्रसग दोहे में इस प्रकार कहा गया है —

अपनो सीमा राज की, अमल करो परमान।
भेजो नाग सुपेत सुइ, अरु अधार दीवान॥

इस बात पर सम्राट् अकबर नाराज हो गया और आसिफ खा को चढाई करने का हुक्म दे दिया। चरचा और पीजन का किस्सा तो किस्सा है, परन्तु आक्रमण अवश्य किया गया। उस जमाने में युद्ध के लिये कोई कारण ढूटने की आवश्यकता नही पडती थी। बाहुबल, उचित कारण समझा जाता था। अन्त में आसिफ खा सन् १५६४ ई में ६ हज़ार सवार, तोपखाना और १२ हज़ार पैदल सिपाही लेकर सिंगौरगढ पर अचानक चढ आया। जब मुगल सेना दमोह पहुची, उस समय रानी के पास सिंगोरगढ में केवल ५०० घुडसवार थे। आसिफ खा की सहायता के लिये सम्राट ने महबूब खा, मुहम्मद मुराद खा, वजीर खा, नाजिर बहादुर, आक मुहम्मद आदि प्रसिद्ध सेनापतियों को हुक्म भेजा था। मुगलो का अचानक आक्रमण देखकर सिंगोरगढ की प्रजा घबरा उठी। फिर भी रानी ने बहुत कुछ सेना एकत्रित कर ली। रानी ने अधारसिंह से सलाह कर के गढा में मोर्चा लगाने का निश्चय किया। इसलिये रानी तुरत सिंगोरगढ से गढा की ओर रवाना होगयी। परन्तु शत्रु उसके पीछे हो लिये और उसे गढा में प्रबध करने का मौका नही दिया। तब रानी ने मडला की ओर कूच किया और १२ मील चल कर घाटियो के बीच सकरी जगह पाकर वहा पर मोरचा जमाया और लडाई की। रानी के पास ५ हज़ार से अधिक सैनिक न थे। सबसे बडी कमी यह थी कि रानी के पास तोपखाना था ही नही। गोडो की अपेक्षा मुगलो का युद्धोपयोगी सामान उन्नत था। युद्धोपयोगी बारूद का अभाव होने से युद्ध में विजय पाना दुर्गावती के लिये सभव ही न था। गोड लोग केवल तीर-कमान और बरछी-तरवार ही में लडते थे। बारूद का उपयोग नाम मात्र का था और न तोपें थी। आसिफ़ खा के पास तोपखाना था—किन्तु घाटी की लडाई मे वह समय पर पहुच नही पाया था। इसलिये पहले दिन उभय पक्ष के समान अस्त्र-शस्त्र द्वारा युद्ध हुआ। दूसरे दिन रानी हाथी पर सवार होकर, घाटी के मुख पर, लडने के लिये स्वय उपस्थित हुई। उसकी सेना जी-तोडकर लडने के लिये खडी थी और इसमें सदेह नही कि उस दिन वह शत्रुओ को मटियामेट कर डालती, परन्तु आसिफ खा के भाग्य से समय पर तोपखाना आ पहुचा। फिर क्या था। एक ओर से तोपो की मार और दूसरी ओर से तीरो की बौछार होने लगी। विषम शस्त्रो से बराबरी क्यो कर हो सकती थी। इस पर भी रानी तनिक भी न डरी। वह अपने हाथी पर से बाणवर्षा करती रही। इतने में ही एक तीर उसकी आख में लगा और जब उसने उसे खीच कर फेंक देना चाहा तो उसकी नोक टूट कर आख के भीतर रह गई। इतना बडा कष्ट होने पर भी रानी ने पीछे हटने से इन्कार किया। गोड सेना के पीछे एक छोटी सी नदी थी। वह युद्धारभ के पूर्व सूखी पडी थी। परन्तु इस दिन के शुरू होते ही उसमें अकस्मात् इतनी बाढ आ गई कि उसको हाथी भी पार नही कर सकता था। दोनो ओर से फौज का मरण दिखता था। आगे से तोपो की मार, पीछे से पानी का प्रवाह। फिर भी दृढ सकल्प नारी का मन बिलकुल न डिगा। उसके महावत ने प्रार्थना की कि हुक्म हो तो मै किसी तरह हाथी को नदी के पार ले चलू। परन्तु वीर नारी दुर्गावती दुर्गा ही थी। उसने उत्तर दिया कि—"नही, मै या तो शत्रु को मार हटाऊगी या यही पर मर जाऊगी।" इतने में ही दूसरा बाण उसके गले पर गिरा। सेना में किसी ने यह खबर फैला दी कि युवराज वीरनारायण को वीरगति प्राप्त हो गई। तोपो की मार, पानी की बाढ, कुमार की मृत्यु और रानी की घायल दशा देख गोडी सेना अधीर हो कर तितर-बितर होने लगी। रानी ने तुरन्त अपने विश्वासपात्र सैनिको को आज्ञा दी कि घायल वीरनारायण को चौरागढ ले जायें। इसी समय रानी को मुगल सैनिकों ने घेर लिया। जब रानी ने देखा कि अब बचने की आशा नही है—तब उस धीर वीर ने पासवान अधार बघेला को अपना मस्तक काट देने का हुक्म दिया। पासवान रो उठा और उसने कहा कि "सरमान" हाथी अब भी आपको शत्रुओ के बीच से भगा ले जाने में समर्थ है। किन्तु रानी ने रण से भागना योग्य न समझा और पासवान के हाथ से कटार छीन कर वीरगति को

अवलंवन किया। वरेला के निकट जिस स्थान पर रानी हाथी से गिरी थी—वहा एक चवूतरा वना दिया गया है। जो कोई पथिक यहा से गुजरता था तो वह एक श्वेत पत्थर समाधि-स्थल पर रख देता था। भले ही रानी हार गयी हो, किन्तु उसने अपना नाम और अपने लक्ष्य को अमर कर दिया है।

चौरागढ़ का जौहर

वास्तव मे वरेला के युद्ध से गोडों की पराधीनता का समय आरंभ होता है। वरेला की युद्धभूमि मे युद्धोपयोगी सामान और वहुत से हाथी सेनापति आसिफ खां के साथ लगे। वह गढा में दो माह तक ठहरा रहा और इसी वीच उसने आसपास के प्रदेश को लूट लिया, जिससे एक वार समस्त जवलपुर कंगाल हो गया। वाद मे आसफ खां ने चौरागढ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। क्योकि वह जानता था कि गढा राज्य का खजाना जो वर्षो से गोंड राजाओ ने संग्रहीत किया था—चौरागढ मे ही है। इसलिये वहां उसका पहुचना आवश्यक था। गढा की व्यवस्था कर आसिफ खां ने अपनी सेना लेकर चौरागढ़ को जा घेरा और वहा गोंडो ने डट कर सामना किया। चौरागढ का किला अभेद्य था और वीर नारायण तथा अधार सिह ने वहां लड़ने की अच्छी तैयारी की थी। पर अभाग्यवश वही के एक विश्वासघाती ने मुगल सेना को किले का मर्म वता दिया। इस कारण उसी कमजोर स्थान से मुगलों ने आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। यह साफ दिखाई देने लगा कि किला मुगलों के हाथ अवश्य चला जायगा। प्रत्येक जन अपनी जान की रक्षा का उपाय सोचने लगा। वीर नारायण और अमात्य अधार ने देखा कि रनिवास के पकडे जाने से विडंवना होगी। तव उन्होने समस्त स्त्रियों को "जौहर" करने की सलाह दी। उस कार्य को पूरा करने का भार वीरनारायण ने भोज कायस्थ और मियां भिखारी रूमी को सौपा। किले पर एक वड़ी चिता तैयार की गयी—जिसमे लकड़ियां और घी आदि डाला गया। किले मे जितनी स्त्रियां थी, अपने-अपने बच्चो को लेकर वैठ गयी और जो मरने से डरी—उन्हे भोज कायस्थ ने मार डाला। एकाएक जोर से आग सुलग उठी और पुरुष वर्ग हाथ मे तलवार लेकर वाहर निकल आये। किले के उत्तरीय द्वार पर मुगलो से लड़ता हुआ वीर नारायण अपनी वीर माता का अनुसरण करके वीरभूमि मे वीर लीला दिखला कर वीर लोक को गमन कर गया। इस तरह सैकडो गोड सैनिक चौरागढ मे मारे गये। चार दिनो तक किले की चिता वरावर जलती रही और जव द्वार खोला गया, तो उसमे से केवल दो स्त्रियां जीवित पायी गयी—जो एक वडी लकड़ी के नीचे दवी हुई थी। उनमे से एक थी दुर्गावती की वहन कमलावती और दूसरी थी राजा पुरग्रह की कन्या—जो वीरनारायण की भावी पत्नी होने वाली थी। वे दोनो आसिफ खां द्वारा दिल्ली भेज दी गयी।

आसिफ खां को चौरागढ मे जवाहिरात, मोती, सोना और चांदी आदि खूव सामान मिला था—जिसमें १०० घड़ो मे तो सोने की अशर्फियां भरी हुई थी। यहां पर उसे १ हजार हाथी भी मिले थे—जिसमे से उसने २०० हाथी दिल्ली भेजे और वाकी अपने पास रख लिये थे। आसिफ़ खा चौरागढ़ में कई दिनो तक टिका रहा और उसने सभी प्रकार के अत्याचार किये—जैसा कि विजेता लोग आरभ मे करते हैं। गढा की सम्पत्ति पाकर आसिफ खा एक स्वतंत्र सूवेदार वनने का स्वप्न देखने लगा। सम्राट् अकवर ने उसे दिल्ली लौटने का फ़रमान भेजा—पर वह नही गया। कहते है कि अकवर स्वयं यहा आने को चला था, पर नरवर पहुंचने के वाद वह दिल्ली वापिस लौट गया। आसिफ खां ने २–३ वर्ष इसी तरह विताये। अन्त मे उसने इस विद्रोह के लिये अकवर से क्षमा माग ली और अपने पुराने स्थान को लौट गया।

क्षीणावस्था के गोंड राजे

मुगलों का प्रभुत्वः—आसिफ़ खा के जाने पर कई वर्षो तक गढा राज्य मे अव्यवस्था वनी रही। जान पड़ता है कि समय-समय पर व्यवस्था के नाम पर दिल्ली के सैनिक अफसर सैनिकों सहित गढा मे आकर रहते थे। उनमे से उपलव्ध सामग्री के आधार पर कुछ परिचय यहां दिया जा रहा है। सन् १५६६ में अक़वर ने मेहदी कासिम ख़ां को

गढा में भेजा था। मिस्टर स्लीमन ने लिखा है कि आसिफ खा के चले जाने पर चूडामणि वाजपेयी दिल्ली गया था। वहा उसने सम्राट् से मिल कर दलपतशाह के भाई चन्द्रशाह को गढा राज्य का राजा बनाने का उद्योग किया था। कई दिन के बाद अकबर ने १० उपजाऊ गढ लेकर (जिनका सम्बन्ध मालवा मे था) चन्द्रशाह को अन्य पहाडी गढो का राजा बना दिया।

इस युद्ध के कारण गढा राज्य अवनति की ओर झुक गया और राज्य का उपजाऊ प्रदेश हाथ से जाता रहा। सागर तथा भोपाली प्रदेश हाथ से निकल गया। चन्द्रशाह को गढा राज्य मनसबदारी शर्त पर सौंपा गया होगा—ऐसा जान पडता है। देवगढ, हरियागढ, गरोठा, लाजी, देवगड, सटाला, देवहार, दनाकी, मडवानी आदि स्थानो के सामन्तगण स्वतन्त्र से होगए और वे सभी मालवा के सूबदार के अधिकृत होगये थे।

गढा मे मुगलो का एक अफसर रहता था—जो गोडवाने का राजस्व वसूल कर के दिल्ली भेजता था। यह प्रबंध लगभग २५ वर्षो तक चलता रहा। गढा में पहला मुगल अफसर मेहदी कासम खा आया था। किन्तु सन १५६६ ई में वह चला गया था। उसके बाद शाह कुलीखा और बाकर अली भी रहे थे। इनके बाद राय सूरजसिंह हाडा का नाम मिलता है—जो सन् १७५७ में गढ़ा में था। हस्तलिखित ग्रंथ "गढेश नृप वर्णनम्" से पता चलता है कि वह यहा ३ वर्ष रहा था। यह पता चलता है कि दिल्ली से चन्द्रशाह के पक्ष में फैसला करवा कर लौटने पर अधारसिंह कायस्थ ने हाडा को महल से निकाल कर दिल्ली भेज दिया। सूरजसिंह हाडा के बाद ही चन्द्रशाह गढा की गद्दी पर बैठा। सूरजसिंह ने सम्वत् १६१५ में गढा में एक तालाब बनवाया था। हाडा का गढा पर ३ वर्ष तक कब्जा था। ओडछा के मधुकरशाह से लडने के लिये सन् १५७७ में अकबर ने सूरजसिंह हाडा को भेजा। हाडा के बाद गढा में बाकीखा आया था—जो सन् १५८५ तक रहा। बाकी खा के बाद मिरजा अजीज भी एक वर्ष यहा रहा था। सन् १५८७ में शाहमखा यहा आया था। ये फौजी अफसर जो गढा पहुचते थे, उनका खर्चा गढा की जागीर से वसूल होता था। यो तो गढा राज्य के सर्वेसर्वा य लोग होते थे और गोड राजा नामधारी ही थे।

मधुकरशाह —चन्द्रशाह की राजकीय स्थिति जागीरदार के समान थी। राज्य का पुराना सग्रहीत कोष तथा राज्य का उपजाऊ प्रदेश हाथ से जाता रहा—इस से गढा के राजा की आर्थिक स्थिति दयनीय ही थी। चन्द्रशाह के मरने के बाद उसके दूसरे लडके मधुकरशाह ने अपने बडे भाई को धोखा देकर मार डाला और आप गद्दी पर बैठ गया। पीछे मे उसको अपनी करनी पर इतना पश्चाताप हुआ कि उसने एक खोखले पीपल के पेड में बन्द हो कर आग लगवा ली और इस तरह प्राण दे कर प्रायश्चित्त कर डाला। तब उसका लडका प्रेमनारायण गद्दी पर बैठा। मधुकर शाह की मृत्यु के समय प्रेमनारायण दिल्ली में था। चलते समय यह ओडछे के राजा वीरसिंह देव * से नही मिल पाया। इसको वीरसिंह ने बडा अपमान समझा।

‡ प्रेमनारायण —वह स्वय प्रेमनारायण को दड देना चाहता था, परन्तु शीघ्र ही बीमार होकर मर गया। अपनी मृत्यु के समय बुन्देला सरदार ने अपने मृत्यु शय्या पर अपने तीनो पुत्रो पहाडसिंह, जुझारसिंह और हरदौल लाला को बुलाया और उनसे प्रतिज्ञा करवायी कि वे गढा पर कब्जा करेंगे और प्रेमनारायण को कैद कर लेंगे और वे उसी स्थिति में छोडेंगे जब कि वह उसके हाथ से चावल ग्रहण कर लेगा। यदि वे ऐसा न कर सके तो उसके सच्चे पुत्र न कहलायेंगे। तीनो

---

* वीरसिंह देव—इनका समय इस घटना से मेल नही खाता है।

‡ प्रेमनारायण—जहागीरनामा से पता चलता है कि "१२ वें नौरोज भादो वदी ३० (ईस्वी सन् १६१६) को सम्राट् जहागीर ने राजा प्रेमनारायण को एक हजारी मनसबदार बनाया। गढा के जमीदार राजा प्रेमनारायण को हजारी जात और पाच सौ सवारो का मनसब दिया गया और जागीर की तनख्वाह उसी वतन में लगा दी गई। वह अगहन सुदी १० गुरुवार को दिल्ली से गढा के लिये रवाना होगया।" (मुशी देवीप्रसाद कृत जहागीरनामा)।

पुत्रों से उसने दूसरी यह सौगंध करवायी कि वे प्रेमनारायण से यह वचन ले लेंगे कि गोंडवाने में खेती कराने के † लिये गौओं को हलो में + न जोता जायगा।

प्रेमनारायण एक मामूली राजा था और उसका सारा जीवन बुन्देलों से संघर्ष करने में ही बीता था। इसलिये वह गढ़ा छोड़ कर चौरागढ़ मे रहता था। बुन्देले तो मुगलों के विरोधी थे—इसलिये वे सम्राट् की परवाह न करते हुए उपद्रव किया करते थे। सन् १६२७ में जहांगीर मर गया और उसका उत्तराधिकारी शाहजहा हुआ। वीरसिह देव के पुत्र जुझारसिंह ने सन् १६३४ में चौरागढ पर घेरा डाल दिया परन्तु ६ महीने तक किला आक्रमणकारियों के सामने सुदृढ़ रहा। इस पर एक हट्टेकट्टे ताकतवर मनुष्य ने किसी चालाकी से ऊपर पहुच कर पूजा करते हुए राजा को उठा लिया और मैदान मे मार डाला। एक दूसरे स्थानीय विवरण से पता चलता है कि प्रेमनारायण को जयदेव वाजपेयी के साथ जुझारसिह के डेरे पर निमंत्रण देकर बुलाया गया था—वहा पर पूजा के समय उसे धोखा देकर मार डाला गया था। राजा और दीवान को मार कर बुन्देलो ने चौरागढ को लूट लिया था। लोग कहते हैं कि बुन्देले जव चौरागढ को लूट कर वापस जा रहे थे—तव नर्मदा के किनारे ब्रह्माणघाट पर उन्होने चौरागढ़ की ओर मुख कर के मूछो पर हाथ फेरते हुए कहा था—"हम प्रेम नारायण की मूछ लेकर जा रहे हैं।" उस समय उनकी सारी नावें—जिन पर तोपे, गाड़िया, वैल, घोड़े तथा अन्य सामान भरा हुआ था—नर्मदा के प्रवाह में बह गयी। आज भी पूर्णिमा और अमावस्या को नर्मदा के जल मे तोपे दिखायी देती हैं और वैलो का रंभाना सुनायी देता है, ऐसी प्रचलित किम्वदन्ती है।

गढ़ा राज्य के अमोदा ग्राम मे जो सती लेख है, उसमें लिखा है "श्री गणेश। श्रीमान महाराजाधिराज प्रेमसाही को साको भयो—गढा देश अमोदा स्थाने कृष्णराय राज्य करोति। संवत् १६५१ समय कार्तिक वदी २ रविवासरे वसतराय दोरदा शियाले क्षिपलिथानी के ठाकुर वाको वेटा शिरोमणि राउत ताको सती भई। रचित—सुपंधर गणेशम्।" (यह लेख ७ पंक्ति का है)।

हृदयशाद—कोई-कोई कहते हैं कि जुझारसिह स्वयं लड़ने नही गया था, उसका भाई पहाड़सिह गया था, *

---

† **भाटों का यह कवित्त प्रसिद्ध है :—**

पड़ी है पिशाचन वश जोतते हैं आठों याम, सुधहु न लेत पापी तृणहू के खाने की।
कान्हजू की कामधेनु करती हैं विलाप रोय, कपिला की जात कहूं भाग नही जाने की।
रोज उठ करत अरज भोर भानुजूसो फौज चढ आवै केशोराय के घराने की।
वीरसिहजू के वंश प्रवल पहाडसिह तेरी बाट जोहती हैं गौएं गोडवाने की॥

+ **जो गाय गाभिन नहीं होती**—वह यदि जोती जाने लगती है, तो उसमें प्राय. गर्भ धारण करने की क्षमता आ जाती है,। आजकल पशु वैज्ञानिक यह मानने लगे है।

*जुझारसिह का छोटा भाई "हरदौल लाला" उत्तरीय मध्यप्रदेश मे देवता माना जाता है। ग्रामीण लोग उसके नाम से आज भी पूजन करते हैं। इस सम्बन्ध की कथा यह है कि पहले पहल राजा जुझारसिंह जव चौरागढ़ पर हमला करने गया था—तव रानी के पास अपने छोटे भाई हरदौल को रख गया था। देवर और भावज दोनों वड़े प्रेम से रहते थे किन्तु जव जुझार वापिस लौटा—तो उसे संदेह हुआ कि देवर-भावज मे अनुचित सम्वन्ध है। अन्त में उसने रानी से हरदौल को विष देने के लिये कहा और पति का संदेह हटाने के लिये, उसे अपने निरपराध देवर को विष देना पड़ा, जिससे हरदौल मर गया। तव से वह ग्रामीणो का "वीर" वन गया—"गांवन गांवन चौतरा—देसन देसन नाम" हो गया। ग्रामीण औरतें हरदौल के गीत वड़ी सुन्दरता से गाती हैं। हरदौल का पूजन करने से हैजा नहीं फैलता और विवाह मे आधी पानी से वचाव होता है, ऐसी प्रचलित किम्वदन्ती है।

जो-हो गाय की गुहार पहाडसिंह के प्रति की गई जान पडती है। प्रेमनारायण के पुत्र हृदयशाह को अपने बाप के मारे जाने की खबर दिल्ली म मिली थी। वह वहा से सम्राट् की आज्ञा से गढा गया, परन्तु बुन्देला की हुकूमत होने से वह प्रभावहीन था। इसी कारण से उसे भेष बदल कर कई दिन बिताने पडे थे। ओडछा के जुझारसिंह के द्वारा प्रेमनारायण का मारा जाना शाहजहा को अखरा और उसने तुरत भोपाल के मनसबदार को परवाना भेजा कि वह हृदयशाह की सहायता करे। "बादशाहनामा" के अनुसार पता चलता है कि इस घटना के बाद सम्राट् शाहजहा ने जुझारसिंह का यह परवाना भेजा था—कि "चौरागढ पर आक्रमण करके उसने शाही-आज्ञा का उल्लघन किया और अब यही अच्छा है, कि वह राज्य को अपने प्रभाव से मुक्त करके दस लाख रुपये दड देवे।" पता चलता है कि यह सदेश लेकर कविराय* सुन्दर जुझारसिंह के पास गया था। जुझारसिंह यह जानता था कि बिना युद्ध के इसका निर्णय होना असभव है। उसने तुरत कुमार विक्रमाजीत को वापिस चले आने का सदेश भेजा-क्योकि उसका पुत्र विक्रमाजीत उस समय बरार में मुगल सेनापति खानदौरान के साथ था। विक्रमाजीत किसी तरह जख्मी होकर बुदेलखण्ड पहुचा।

कविराय सुन्दर के लौट जाने पर शाहजहा ने शाहजादा औरगजेब को ३ प्रमुख सेनापतियो के साथ ओडछा भेजा। मुगल सेना ज्यो ही ओडछा पहुची, त्यो ही जुझारसिंह ओडछा छोड कर धामोनी चला गया परन्तु मुगल सेना ने पीछा न छोडा। अन्त में वह धामोनी से भाग कर चौरागढ पहुच गया—पर वहा पर सुरक्षित न रह सका। तुरत औरगजेब ने अब्दुल्ला खा, खानदौरान और फिरोज जग को सेनासहित चौरागढ पर आक्रमण के लिये भेज दिया। इन तीनो ने शाहपुर म मुकाम करके चौरागढ को घेर लिया। जुझारसिंह जानता था कि वह मुगलो से लड कर विजय नही पा सकता—इसी कारण उसने चौरागढ की समस्त तोपें, सामान और इमारतो को नष्ट कर दिया और अपने परिवार सहित लाजी और करौंदा के रास्ते दक्षिण मध्यप्रदेश के अरण्यमय प्रदेश में चल दिया। चौरागढ के राघव चौधरी ने मुगल सेनापतियो को यह बताया कि "जुझारसिंह के पास २ हजार घुडसवार, ४ हजार पैदल सैनिक और ६० हाथियो पर खजाना लदा हुआ है और वह चौचली कोडिया के मार्ग से गया है।" मुगल सेना ने पीछा किया—जिसका ब्यौरा औरगजेब पत्र द्वारा बराबर भेजता था। मुगल सेनापति जुझारसिंह का पीछा करते हुए लाजी पहुच गये। उस समय वहा का किलेदार गोविन्द गाड़ था। उसने पता दिया कि जुझारसिंह चादा के जगलो में है। इस भागदौड में उसकी बहुत सी सेना अस्तव्यस्त हो गई। पकडे जाने के भय से जुझार ने अपने रनिवास को मरवा दिया था। अन्त में जुझारसिंह और उसका पुत्र विक्रमाजीत जगल में गोडो के द्वारा मारे गये। तब उसकी लाश का पता लगा कर खानदौरान ने उसका सिर दिल्ली भिजवाया और सम्राट् ने उसे सेहूर द्वार पर टगवा दिया। (सन् १६३४ ईस्वी)

जुझारसिंह के मारे जाने के बाद हृदयशाह को चौरागढ प्राप्त हुआ-किन्तु सन् १६५१ ईस्वी में उसे वह दुर्ग सदा के लिये मुगलो के अधीन सौंप देना पडा।† कुछ दिनो तक हृदयशाह गढा में रहा—किन्तु वहा से वह अपनी राजधानी रामनगर में ले गया। रामनगर में उसने महल और मन्दिर बनवाये‡ जो बीहड अरण्यमय केन्द्र में है।

---

*कविराय सुन्दर हिन्दी के कवि हैं।

†सरदार खा नामक एक मुग़ल सरदार इसी समय धामोनी का किलेदार बनाया गया था किन्तु शीघ्र ही सन् १६४४ में वह मालवा का सूबेदार होकर यहा से चला गया। बुन्देलो से समझौता होने पर सन् १६५१ ई में चौरागढ का किला मुगल सम्राट ने पहाडसिंह को सौंप दिया था। पहाडसिंह जब चौरागढ आया—तो राजा हृदयशाह भाग कर बाधोगढ के राजा अनूपसिंह के यहा चला गया। इस पर उसने रीवा पर भी आक्रमण किया था। रीवा लूट कर पहाडसिंह दिल्ली गया था।

‡रामनगर—रामनगर का मोतीमहल, जहा पर शिलालेख लगा हुआ है—२१२ फुट लबा और २०० फुट चौडा आयताकार भवन है। उसके भीतर १६७ फुट लम्बा और १५६ फुट चौडा आगन है। यह महल घने जगल

लोग कहते हैं कि एक बार हृदयशाह देवगांव की यात्रा के लिये गया था—तब उसे रामनगर की छटा भा गई और वहीं रहने का उसने निश्चय किया। उसने वहा अपने रहने के लिये एक तिमंजिला महल वनवाया—जिसकी पिछली दीवाल पर सस्कृत मे एक शिलालेख चिपका हुआ है,‡ जो पहले वहां से १०० फुट दूर एक विष्णु के मन्दिर में लगा था। यह लेख सन् १६६७ ईस्वी का है। यह विष्णु मन्दिर हृदयशाह की रानी सुन्दरी के लिये वनवाया गया था—जो जाति की खत्रानी थी। कवियों ने तो हृदयशाह को सभी विद्याओं मे प्रवीण कहा है :—

"भुमहीन्द्रो हृदय नरपतिः सर्वे विद्याप्रवीणः"

मंडला से ५ मील पर वंजर नदी के किनारे इस राजा ने हृदयनगर वसवाया था। रानी सुन्दरी ने लखराज और गंगासागर दो तालाव खुदवाये थे। हृदयशाह के यहां विद्यानाथ दीक्षित और जयगोविन्द दो प्रमुख कवि थे। यही एक गोंड राजा है जो एक शिलालेख छोड़ गया है—उसमे गोंडो की वंशावली दर्ज है। इस राजा ने ७० वर्ष राज किया था।

छत्रशाह और केसरीसिंह

हृदयशाह के छत्रसिंह और हरिसिंह दो पुत्र थे—जिन मे से छत्रशाह ई. सन् १६७८ मे गद्दी पर वैठा। उसने ७ वर्ष राज्य किया और उसका उत्तराधिकारी केसरीसिंह हुआ। यह लड़का गद्दी पर वैठा, पर घर मे फूट होगयी। उसके चचा हरिसिंह ने बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल की सहायता लेकर रामनगर पर अधिकार जमाया और राज्य के अधिकारी केसरीसिंह को मरवा दिया। (ई. सन् १६८८) उस समय केसरी का पुत्र नरेन्द्रशाह केवल ७ वर्ष का वालक था। दीवान रामकृष्ण वाजपेयी के पुत्र कामदेव ने नरेन्द्रशाह को राजा घोषित कर दिया और हरिसिंह पर आक्रमण कर उसे मरवा डाला। हरिसिंह के मारे जाने पर उसका पुत्र पहाडसिह रामनगर से भाग गया। पहाड़सिंह रामनगर से भाग कर औरंगजेब से मिलने के लिये वुरहानपुर गया, परन्तु वह बीजापुर की ओर था। यह भी वहां गया और इसने बीजापुर के युद्ध में भाग लिया। इस युद्ध से छुटकारा पाने पर औरंगज़ेब ने पहाड़सिह की सहायता के लिये मीरजान और मीरमनुल्ला को हुक्म दिया।

नरेन्द्रशाह (ई० सन् १६८८–१७३२)

मुगलों को साथ में लाकर पहाड़सिंह ने रामनगर पर कव्जा जमाना चाहा, किन्तु फतहपुर में दूधी नदी के किनारे नरेन्द्र की सेना ने उसे रोक दिया। फतहपुर के युद्ध में नरेन्द्र की सेना हार गयी, तव वह दीवान रामकृष्ण के साथ मण्डला लौट गया। मण्डला से नरेन्द्र सोहागपुर गया और वहां उसने फिर से अपनी सेना संघटित की। उसने दूसरा युद्ध पहाड़सिह के साथ केतुगाव में किया था, उस समय में मुगल सेना पहाड़सिंह का साथ छोड़ कर चली गयी थी और इसलिये वह केतुगांव के युद्ध में मारा गया और नरेन्द्र विजयी हो मण्डला लौट गया।

में नर्मदा के दक्षिण किनारे ८० फुट ऊंचाई पर वना है। मोती महल के पूर्व मे १॥ मील पर रानी वघेलिन का महल है और महल के निकट दीवान भगतराय की कोठी है। मोतीमहल से १०० फुट पर रानी सुन्दरी का वनाया हुआ विष्णु मन्दिर है—जिसमे विष्ण, शिव, गणेश, दुर्गा और सूर्य की मूर्तियां थी, किन्तु अब तो सूर्य और दुर्गा की मूर्ति रह गयी है। यह मन्दिर ५६ फुट लंवा-चौड़ा चतुष्कोनी है। यही पर रामनगर का शिलालेख लगाया गया था। यह लेख कवि जयगोविन्द ने ४६ श्लोकों में रचा था। प्रशस्ति मे राजा हृदयेश्वर की ५२ पीढियों का वर्णन है। जिसको संवत् १७२४ जेष्ठ शुक्ल ग्यारस शुक्रवार को सदाशिव ने अंकित किया था। इस मन्दिर के वनाने वाले सिंहसाहि, दयाराम और भागीरथ कारीगर थे।

‡ रामनगर की प्रशस्ति का व्यौरा "आरक्यालोजिकल सर्वे आफ इंडिया", जिल्द १७ में दिया गया है।

नरेन्द्रशाह ने मण्डला को अपनी राजधानी बनाया, किन्तु राज्य का बहुत हिस्सा उसके हाथ से निकल गया था। केतुगाव में पहाडसिंह के मारे जाने पर उसके दोनो लडके भाग गए और फिर दिल्ली जाकर मदद मागी, परन्तु उनका प्रयास निष्फल हुआ। अब उन्होंने एक नई युक्ति सोची। अपना धर्म बदल डाला। वे मुसलमान होगये। इस तरकीब से उनको मदद मिल गयी और नरेन्द्र से एक बार लडाई छिडी। अन्त में वे दोनो (मुसल्मानी नाम—अब्दुल रहमान और अब्दुल हाजो) मारे गए। इसके बाद नरेन्द्र निश्चिन्त तो हो गया, परन्तु इन झगडो में पडने से उसका राज्य क्षीण हो गया। उसको अनेक राजाओ से सहायता लेनी पडी और बदले में कई गढ नजर करने पडे। इसी प्रकार गद्दी कायम रखने के लिये उसे मुगलो को ४ गढ नजर करने पडे।

महाराजशाह (ई सन् १७३२–१७४२)

नरेन्द्र के शासन-समय में दो जागीरदारो ने विद्रोह किया था। उनमें से लुण्डे खा का दमन नरेन्द्र ने देवगढ के राजा बख्तबुलद की सहायता से सिवनी में किया था। जिससे देवगढ के राजा को चौरई, घुनसौर और डोगरताल के गढ देने पडे थे। खलारी में आजिमखा जागीरदार हराया गया था। सन् १७३२ ईस्वी में नरेन्द्रशाह मर गया तब उसका पुत्र महाराजशाह गद्दी पर बैठा। सग्रामशाह के ५२ गढो में से उसके पास केवल २९ गढ रह गये थे। महाराज को निबल देख पूना के पेशवा की लार टपकी। उसने मडला पर चढाई कर महाराजशाह को मार डाला और उसके लडके शिवराज शाह को गद्दी पर बैठा कर ४ लाख रुपया सालाना चौथ मुकरर कर दी। इस तरह मडला का राजा पेशवा का आश्रित सा होगया।

शिवराजशाह (ई सन् १७४२–१७४९)

पेशवा के चले जाने पर नागपुर के रघोजी भासले ने मण्डला पर आक्रमण कर दिया। शिवराजशाह ने ६ गढ देकर उसको भी सतुष्ट कर दिया था। मराठो के नवीन आक्रमण से राजगोडो की रही-सही शक्ति जाती रही। शिवराजशाह ने केवल ७ ही वर्ष राज्य किया। तब उसका पुत्र दुर्जनशाह गद्दी पर बैठा।

दुर्जनशाह

वह वास्तव में यथा नाम तथा गुण था। उसकी सौतेली माता विलासकुवरि उससे असन्तुष्ट रहती थी। इसी कारण उसने अपने देवर निजामशाह से मिल कर दुर्जन को मरवाने का षड्यत्र रचा। विलास-कुवरि ने दुजन को राज्य में दौरा करने का आदेश दिया। उसके अनुसार राज्य का दौरा करना उसने आरम्भ किया किन्तु दूसरे ही दिन उसके पास हरकारा भेज कर कहलवाया गया कि "तुम्हारे चचा निजामशाह किसी कारण से नाराज होगये है, उन्हें आकर मना लो।" दुजनशाह तुरत वापिस लौट आया और सीधा चचा के मकान पर गया। ज्यो ही घोडे से उतर कर भीतर गया, त्यो ही बाहर जाने का द्वार बन्द कर दिया गया। साथ में लछमन पासवान था-वह चिल्लाया और राजा को उठा कर आगार से बाहर फेंक देना चाहा, परन्तु पास के सैनिको ने उसके हाथ काट दिये और राजा को मार डाला। इस तरह निजामशाह के महल में दुजनशाह मारा गया।

निजामशाह (ई सन् १७४९-१७७६)

भतीजे को मार कर निजामशाह मण्डला की गद्दी पर बैठा। इस में उसकी भावज विलासकुवरि का सहयोग था। निजामशाह ने सागर में पेशवा का जो सूबेदार नियत था—उसे पनागर, देवरी और गौरझामर परगने देकर सतुष्ट किया। चतुर होने से वह राजकीय आपत्तियो क हटाने में कुशल था। इसी कारण उसका शासन शाति के साथ बीता था। उसके पास मोहनसिंह और मुकुटमणि दो वीर राजपूत थे। एक बार शिकार में मुकुटमणि को तो शेर ने खा डाला और मोहनसिंह को विद्रोही सैनिको ने मोहन-नाले पर काट डाला। तब राजा ने मोहनसिंह के पुत्र गज्जीसिंह को रामगढ इलाका जागीर में दिया। इस राजा के दीवान

वाजपेयी और राजपुरोहित ओझा जी थे। मण्डला के किले मे राजराजेश्वरी की स्थापना इसी राजा ने करवायी थी। कहते है कि राजा लोग पूजा करते समय अपनी तलवार देवी के पास रख देते थे। वह आप से आप उठ कर उनकी गोद मे आ जाती थी। यह सर्वोत्तम सगुन माना जाता था। जब मराठो ने मण्डला पर आक्रमण किया था तब तलवार तीन बार उठी किन्तु गोद मे नही आयी और वही जमीन पर गिर पड़ी। तब तो राजा को निश्चय हो गया कि हार निश्चित है। यही कारण था कि वह युद्ध से भाग निकला था। इस तरह सगुन लेने की प्रथा राजाओ में प्रचलित थी।

निजामशाह की एक मुसलमान पीर पर भी अधिक श्रद्धा थी। कहते है कि राजा को एक बार स्वप्न मे पीर ने दर्शन दिया। किन्तु सचेत होने पर राजा ने उसे नर्मदा के जल पर चादर बिछाये लेटा हुआ पाया। प्रार्थना करने पर वह जल से बाहर निकला। तब से वह महन्त वाड़ा मे रहने लगा। जब वह मरा तो राजा ने उसकी दरगाह बनवा दी थी।

गोंड राज्य की समाप्ति

निजामशाह ने मण्डला के किले और महल की मरम्मत करवायी थी। कवियों ने इस राजा को कल्पद्रुम की उपाधि दी है। वह स्वयं भी हिन्दी मे कविता करता था।* उसके दरबार मे पं. रूपनाथ और पं. लक्ष्मीधर सुन्दर कवि थे। जिन्होंने संस्कृत श्लोको में राजवंश का इतिहास अंकित किया है। पता चलता है कि निजामशाह के मरने पर राजगद्दी के लिये झगड़े हुए थे। इस समय रानी विलासकुंवरि जीवित थी। राजा के मरते ही राज का प्रबंध उसने अपने हाथ में ले लिया था। वह दीवान वाजपेयी से नाराज थी—क्योकि वे राजा नरहरिशाह के पक्ष में थे। इसलिये उसने सैनिकों को हुक्म दिया कि वाजपेयी को मार डालो। सैनिको ने वाजपेयी का घर घेर लिया। जब वाजपेयी ने देखा कि सर्वनाश अनिवार्य है—तब उसने बाहर का द्वार बन्द करवा दिया। घर के सभी लोगों ने इष्टदेव का पूजन किया। परिवार के प्रत्येक पुरुष ने अपनी-अपनी स्त्रियो को मार डाला और जो पुरुष बचे वे तलवार लेकर द्वार खोल मारने और मरने को बाहर आगये। इस प्रकार १२५ जन इस झगड़े मे मारे गये। केवल दो छोटे बच्चे बच गये थे—जिनको नौकर बाहर खिलाने ले गये थे। उनसे ही मण्डला के वाजपेयी का वश आगे चला। जिस दिन यह जौहर हुआ था—वह भाद्रपद की पूर्णिमा का दिन था। आखिरकार निजामशाह के लड़के नरहरिशाह को गद्दी मिली, परन्तु उससे और नागपुर के भोंसले से झगड़ा उत्पन्न होगया। नरहरशाह गद्दी से उतार दिया गया और निजामशाह का लड़का सुमेरशाह राजा बनाया गया। यह बात सागर के सूबेदार को पसद न हुई। इसलिये उन्होने सुमेरशाह को निकालने का यत्न किया। सुमेरशाह ने अपना पाया उखड़ता देख कुछ शर्तो पर नरहरिशाह को गद्दी पर बैठाने की बातचीत चलाई। सागर वालो ने उसे शर्ते तय करने के लिये सागर बुलवाया। विश्वास का बँधा वह बेचारा वहा चला गया, परन्तु उसके साथ दगा की गई। सागर के हाकिम ने उसे पकड़ कर सागर के किले में कैद कर दिया और नरहरिशाह को गद्दी पर बैठा दिया। सागर के मराठे नरहरिशाह को कठपुतली सा नचाने लगे। जब उसको ज्ञात हुआ कि मै नाम का ही राजा हूँ तो उसने मराठो को निकालने का प्रयास किया। इस पर सागर के मराठा सूबेदार ने उसे पकड़ कर खुरई के किले मे कैद कर दिया। वही पर सन् १७८९ ई. मे उसकी मृत्यु हुई। इस तरह मराठों द्वारा गढ़ा मडला के गोंड घराने की लीला समाप्त कर दी गई।

---

*निजामशाह के रचे हुए तीन-चार कवित्त हमारे देखने में आये है—उनमे से एक कवित्त इस प्रकार है :—

फरकन लागे अंग होन ये सगुन लागे, जागे अब भाग अनुराग के समाज सों।
तोरन बंधावें सखी कलस धरावे पौरि, पांवड़े डरावे ले सुगंधन के साज सों।
आवें प्राणप्यारे उठ आदर करोंगी आज, सादर विलोकि मन भाये सिरताज सों।
आनंद उलेलिन सों हिलिहो निसंक आली, मिलि हौरी आज तैं निजाम महाराज सो।।

गोंडवाने का गोंडी शासन

बरार को छोड कर समस्त मध्यप्रदेश गोंडी शासनाधीन था। राजा और प्रजा के जो सम्बन्ध पुरातन काल से चले आ रहे थे—उनमें इस युग में कोई परिवर्तन नही हुआ। राज्य की समस्त आय राजा की सम्पत्ति मानी जाती थी। राजा प्रजा की भलाई का जो जो काम करता था—वह दान के रूप में होता था। प्रजा भी अपने उपार्जन का कुछ अंश राजा को देती था। यही पुरातन तरीका इस युग में भी रहा। पर शासन का आधार एक मात्र सैन्य सगठन था। उसमें व्यय करना आवश्यक था। मुगलो के समय में सैनिक व्यवस्था में काफी विकास हुआ था। रथ, तीर, भाले, तलवार और हाथियो का प्रभाव घट गया। उनका स्थान घुडसवार, पैदल बन्दूकची और तोपखाने ने लिया। जगह्-जगह किले बनवाने का काम जोरो पर था, जिनके सहारे राजा लोग अपना बचाव करते थे। केन्द्रीय सेना के अतिरिक्त गढाधिपति की सेना अलग होती थी और उसके खर्च के लिये जागीरें बाट दी जाती थी। गढा का प्रतापी राजा सग्रामशाह था। जिसने अपना राज ५२ गढो में बाट रक्खा था। ये गढपति एक तरह के छोटे राजा थे।

गोंडवाने की सीमा—अबुल फज़ल ने इस प्रकार लिखा है—"उस राज्य के पूर्व में रतनपुर (झारखण्ड प्रदेश), पश्चिम में रायसेन (मालवा), जिसकी लबाई १५० कोस थी, उत्तर में पन्ना (बुन्देलखण्ड) और दक्षिण में दक्खन (सूबा बरार) जिसकी चौडाई ८० कोस थी। यह राज्य गढा-कटगा कहलाता था। उस अरण्यमय प्रदेश में किलो की अधिकता है। कहते है कि उस राज्य म ७० हजार मौजे हैं। जिनमें कई घनी आबादी वाले गाव हैं। गढा एक बडा शहर ह, किन्तु कटगा साधारण मौजा है। दोनो को जोड कर लोग गढा-कटगा कहते है। उस राज्य की राजधानी चौरागढ ह।" उस ग्रथ में सरकार कनौजा (गढ़ा) का विवरण भी दिया गया है। "सरकार कनौजा के अन्तर्गत ५७ महाल हैं और उसकी आय १,००,७७,०८० दाम* है। राजा जाति का गोंड है, जिसके पास ५,४६५ घुडसवार और २,५४,००० पैदल सिपाही हैं।" गढा राज्य म गरोला, हरियागढ, देवगढ, खटोला, गन्नौर, लाजी, देवार, मण्डला, मुगदा आदि के प्रमुख जमीदार राजा कहलाते थे। जब अकबर ने गढा राज्य की कमर तोड दी—तब ये ही जमीदार स्वतन्त्र हो गये और उन्होने मुगल शासन से सीधा नाता जोड लिया। उनमें से हरिया और देवगढ के राजा महाराजा कहलाते थे। गढा के महाराजा प्रमुख मत्री दीवान और पुरोहित थे। सेना का सेनापति—किलेदार या बख्शी कहलाता था। जमाबन्दी का काम आमिल के आधीन था। राज का कामकाज हिन्दी में होता था, किन्तु दीवान के अधीन छोटा सा फारसी विभाग था, जिसका सम्बन्ध मुगल राज्य से था। फारसी और सस्कृत का आदर दरबार में होता था। गढो के किलेदार ठाकुर या दीवान कहलाते थे, जो प्राय गोड जाति के थे। परगनो के प्रबधक चौधरी और कानूनगो थे। मराठी जिलो में ये लोग देशमुख या देशपाण्डे कहलाते थे। हिसाब किताब रखने का काम गुमाश्ता करते थे और उनका मुखिया ब्योहार कहलाता था। घोडे, हाथी तथा फौजी भडार आदि के जो अधिकारी नियत किये जाते थे—वे जमादार कहलाते थे। ग्राम के मुखिया पटेल या दीवान कहलाते थे—जो लगान वसूल कर के राजा या जागीरदार को देते थे। प्रत्येक वर्ष खेत जोतने का इकरारनामा किसान को करना पडता था। गोंडो के समय में जागीरदारी पद्धति थी। राजवश के लोग और रिश्तेदार ही राज्य के बडे-बडे जागीरदार थे। राज्य सेवा के उपलक्ष्य में जो लोग जागीर पाते थे, वे लोग द्वितीय श्रेणी में गिने जाते थे। जागीरदार वास्तव में एक छोटा-मोटा राजा होता था। शातिस्थापन, चोर-डाकुओं का प्रबध या विद्रोह का प्रबध उनके जिम्मे था—खाल्सा में यह काम थानेदार के जिम्मे था। राज्य के जागीरदार स्वार्थ पर नजर रखते थे। जितनी सेना और घोडे रखने का उन्हें सरजाम दिया जाता था—उतना सरजाम वे लोग नही रखते थे। युद्ध के अवसर पर प्रत्येक जागीरदार सोचता था कि मैने राजा से करार किया है कि मैं ऐसी दशा में ५०० घोडे और सवार दूगा। यदि इतने मैं भेजता हूँ कही वे युद्ध में मारे गये तो फिर से उनको खरीदने के लिये दो लाख रुपये कहाँ से लाऊगा। सैनिक तो प्राण देने

---

*अकबर के समय में ४० दामो का एक रुपया होता था।

के लिये माहवारी पर मिल जायंगे, किन्तु घोड़ो की क्षतिपूर्ति खजाने से करनी होगी। ऐसी अवस्था में कई सरदार हीलेहवाले करने लगते थे या थोड़े से ही सवार भेज देते थे। इस पद्धति से महान क्षतियाँ हुई है।

गढा के गोड़ राजाओं का शासन तीन खण्डो मे विभाजित है। प्रथम खण्ड ईस्वी सन् १४८० से १५६४ तक है। इन ८४ वर्षो में ३ राजाओ ने इस प्रदेश का शासन स्वतंत्रतापूर्वक किया था और दिल्ली के मुसल्मान सुलतानो को पेशकाश ही न दिया था।

द्वितीय खण्ड ईस्वी सन् १५६५ से १६७८ मे समाप्त होता है—जव कि गढा के राजगण मुगल राज्य के मनसवदार और मर्झबान थे।

तृतीय खण्ड ईस्वी सन् १६७८ से १७८० तक है। इस काल के राजा लोग प्रभावहीन हो गये थे। मराठो ने क्रमशः इनका सारा राज्य हड़प लिया और अन्त मे गुजारा वांध दिया था।

गोडवाना हाथियो के लिये प्रसिद्ध था। इसी कारण मुगल सम्राट यहा के राजा से सदैव हाथियो की माग किया करते थे। सम्राट के मुहलगे लोग सुनी सुनाई वाते वढ़ा-चढा कर सुनाते थे—जिसका परिणाम यह होता था कि सम्राट उन पर दवाव डालता था। यदि राजा सत्य भी कहता था—तो भी वनावटी माना जाता था। उसके कारण गोड राजाओ को अपमान और दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता था। यदि भाग्य से राज्य मे मुगल सेना पहुंच गयी तो सारा इलाका वीरान हो जाता था। प्रजा के कष्ट का तथा जीवन का उस युग में कोई मूल्य न था।

गढा राज्य का आधा भाग महान उपजाऊ था। अन्न के लिये यहा की प्रजा सुखी थी। वडे-वड़े गावों मे व्यवसाय खूव होता था और आवश्यक वस्तुएँ लोग अपने-अपने क्षेत्र में निर्माण करते थे। यहां पर गोडी सिक्के तो थोडे ही दिन चले किन्तु वाद में मुगल सिक्कों का चलन वढ गया। यों तो अधिकाश कामकाज वस्तुओ की अदला-वदली से ही होता था। गोड राजाओ ने भी कवि और विद्वानों को आश्रय दिया। जिनमे से कुछ परिवारो का उल्लेख यहां किया जाता है :—

साहित्य

मुण्डला का दीक्षित वश—मण्डला के विष्णु दीक्षित का परिवार प्रसिद्ध माना जाता था। प्रेमशाह ने विष्णु दीक्षित को वनारस से वुलवाया था। राजा हृदयशाह के शासन काल मे विष्णु दीक्षित के पुत्र वैद्यनाथ जी काव्य, व्याकरण और धर्मशास्त्र के अध्यापक थे। वैद्यनाथ का पुत्र हरि दीक्षित महाराजशाह को प्रतिदिन पुराणों की कथाएँ सुनाता था।

हरि दीक्षित के चारो पुत्र गंगाधर, सदाशिव, पशुपति और लक्ष्मीप्रसाद शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। पं० लक्ष्मीधर राजा निजामशाह को प्रतिदिन पुराण सुनाया करता था। इसने "गजेन्द्र मोक्ष" काव्य रचा था।

पंडितो का दूसरा घराना महेश ठाकुर का था—जो मैथिल व्राह्मण तिरहुत का रहने वाला था। वह दलपतशाह और रानी दुर्गावती का पौराणिक था। कहते है कि महेश ठाकुर को सम्राट् अकवर से भी पुरस्कार मिला था। उसका छोटा भाई दामोदर था—जो चंद्रशाह राजा का मुख्य पंडित था। राजा के मरने पर उसने मधुकरशाह का राज्याभिषेक करने से इन्कार किया था, क्योंकि प्रेमनारायण ने अपने वड़े भाई को धोखा देकर मार डाला था। इसी कारण उसे राज्य से चला जाना पड़ा था और जागीर जव्त की गई थी। महेश ठाकुर का शिष्य कवि रघुनंदन प्रसिद्ध था। महेश के वंश में कई लोग संस्कृत के विद्वान हुए है। इनके यहां अनेको विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

रामनगर प्रशस्ति का लेखक पं. जयगोविन्द काव्य, मीमांसा और वेदों का विद्वान् था। राजा हृदयशाह और रानी सुन्दरी दोनो उसे गुरु मानते थे। वह जुझौतिया व्राह्मण था। उसके पिता मदन जी भी महान् विद्वान थे। कवि रूपनाथ का "राम विजय काव्य" वनारस के सरकारी संस्कृत कालेज ने प्रकाशित किया है। पं. रूपनाथ

मिथिला का ओझा ब्राह्मण था। उसी ने "गढेशनृपवर्णनम्" लिखा है। उसमें राजा सुमेरशाह तक (ई सन् १७८९) का वर्णन आया है। रूपनाथ का पुत्र लक्ष्मीदत्त भी व्याकरण और काव्य का विद्वान् था।

विद्वानो के अतिरिक्त और भी अनेको पडित राजवश के आश्रय में रहते थे। वे लोग अपने यहा विद्यार्थियो को भी पढाते थे। इसी तरह प्रत्येक गढाधिपति भी अपने यहा कोई न कोई पडित रखता था—जो उनका कर्मकाण्ड, व पूजा पाठ भी कराता था और विद्यार्थियो को शिक्षा देता था।

किले और इमारतें—यो तो गोडी राजा वनो और पहाडो के प्रेमी होने से बडी-बडी इमारतें बनवाने में उदासीन रहते थे। उनका खजाना भी उतना पर्याप्त न था कि वे बडी-बडी इमारतो के निर्माण में खर्च करते। फिर भी उन्होंने जगलो में कुछ इमारतें बनवायी है। उन इमारतो में किसी तरह की सफाई और कला की चमक-दमक दिखाई नही देती बल्कि आरण्यक सभ्यता स्पष्ट प्रकट हो जाती है। गोड राजाओ ने इमारतो की अपेक्षा अपनी रक्षा के लिये अनेको दुर्ग बनवाये है। जो अब भी वर्तमान है, इनके प्रमुख किलो की सूची इस तरह है —

(जिला जबलपुर) मदन महल, मगरधा, अभाना, अमोदा, बरगी, इटौरा, कनवारा, मलया, (जिला सागर) हटा, जटाशकर, पचमनगर, सिंगोरगढ, काटा, राजनगर, धमोनी, शाहगढ़, गढपहरा, गौरझामर, जयसिंगनगर, खुरई, गटाकोटा, एरन, पथरिया, रमना, मरियाडोह, (जिला मण्डला) रामनगर, मण्डला (जिला होशगाबाद) बवई, चौरागढ, चावरपाठा, छिलवार, हुशगाबाद, जोगा, (जिला वैतूल) खेलडा, आमला, (जिला छिंदवाडा) छपारा, मानगढ, दवगढ आदि किले गोडकालीन हैं।

गोडो की पुरानी इमारत "मदन महल" है—जिसका निर्माता मदनशाह था। इसी महल का जीर्णोद्धार सग्रामशाह ने करवाया था। यह इमारत दो अनगढ चट्टानो पर खडी है। नीचे के खण्ड म कोई कमरा नहीं है—केवल पहरेदारा के बैठने के लिये एक सकरी कोठरी और सीढिया है। पहाड की चोटी से २० फुट पर उसका मुख्य खण्ड आता है पर वह बडा नही है। उसमें एक खुली छत का दालान और छोटा सा कमरा है। उस कमरे में हवा के लिये आल क समान खिडकिया बनी है। उस खण्ड के ऊपर एक सकरी और खुली छत तथा एक छोटा सा कमरा है। सब के ऊपर एक चपटी टाट दी हुई छत है। उस इमारत में न तो कोई नक्काशी है, और न कोई कारीगरी। इमारत सादी चट्टाना के टुकडा का तराश कर बनायी गयी है। इमारत में लगने वाला सारा साहित्य स्थानीय है और कारीगर भी स्थानीय रहे होंगे। वास्तव में यह इमारत अरण्यमय वातावरण के अनुकूल है। महल के पूर्व में गगा सागर और बालसागर तालाव है। समीप ही सग्रामसागर, शारदा देवी का मन्दिर और बाजना के मठ है। सग्राम सागर क मध्य म जो टापू है—उसमें एक महल सा भवन रहा होगा। गगासागर के किनारे राजमहल के भग्नावशेष आज अपनी कथा सुना रहे हैं।

सागर जिले का धमोनी का किला (सागर से २८ मील उत्तर में) १५ वी सदी में राजगोड सूरतसिंह ने बनवाया था। उस किले में ५२ एकड जमीन लगती है। चारो ओर स १५ फुट चौडी और ५० फुट ऊची दीवाल का कोट खीचा गया है। कोनो पर बडी-बडी मजबूत बुर्जे है। किसी समय यहा हाथियो की हाट लगती थी। मुगलो ने इसकी खासी उन्नति की थी और यहा कई मुगलकालीन स्मारक है।

सिंगोरगढ दमोह से २७ मील पर है। यहा का किला गजसिंह पडिहार ने बनवाया था—किन्तु उसकी मरम्मत दलपतशाह ने करवायी थी। किले के भीतर अब कुछ महलो के खण्डहर और एक बडा पानी का हौज बना है। आसपास की पहाडिया पर मीनारें और दीवारें अब भी वर्तमान है। यही से चार मील पर सग्रामपुर गाव है। यही पर दुर्गावती ने आसिफ खा स पहला मोर्चा लिया था।

नरसिंहपुर जनपद का चौरागढ गोडो की राजधानी था। इस किले में कई इमारतें रानी दुर्गावती ने बनवायी थीं—जो अब नष्ट हो चुकी है। खण्डहरो की किसी-किसी दीवाल में जो रग दिया गया है—वह आज भी ताजा भरा

हुआ जान पड़ता है। किले के पश्चिमी भाग मे रहने के लिये महल और पानी का तालाव है। इस किले में जाने का राज-मार्ग दक्षिण की ओर से था।

इसी भांति नर्मदा के तट पर ब्रम्हाण घाट पर रानी दुर्गावती का बनाया हुआ सुन्दर मन्दिर है और उसी तरह रामनगर में रानी सुन्दरी खत्रानी का मोतीमहल है। इनसे गोडकालीन कला का अध्ययन किया जा सकता है।

देवगढ़ का राजवंश

महाराजा जाटवा—फरिश्ता ने लिखा है कि "सन् १३९८ ईस्वी मे खेरला * के राजा नरसिहराय के अधीन समस्त गोंडवाना था।" यह तो निश्चित ही है कि देवगढ़ † राज्य पर उसका आधिपत्य था। प्राचीन जनश्रुति के आधार पर यह कहा जाता है कि देवगढ़ राज्य अहीरों का था। अहीर सभ्यता की कुछ यादगार आज भी मिल जाती है। ये अहीर अरण्यों मे रह कर गोसंवर्द्धन किया करते थे और उनका राज्य प्राचीन गणतंत्र विधान के अनुसार था। गौली जाति को हटा कर जाटवा नामक गोड वीर ने देवगढ़ राज्य मे गोडी शासन स्थापित किया। लोग कहते थे कि उसका जन्म एक कुंवारी कन्या से शमी वृक्ष के नीचे हुआ था। जव वह जवान हुआ तो देवगढ के गौली बधु रणशूर और घनशूर के यहा नौकर होगया। ये दोनो वंधु देवगढ राज्य के राजा थे। जाटवा वडा वलशाली था। कहते है, कि एक वार उसने देवगढ के किले के ज़बरदस्त द्वारो को अपने हाथों से उठा लिया था। वह काम २० जवान मनुष्य भी नही कर सकते थे। उसी भाति दीपावलि के प्रसग पर राजा ने जाटवा को लकडी की तलवार से भैंसा मार डालने की आज्ञा दी थी। लकड़ी की तलवार से भैंसा मारना सरल न था फिर भी जाटवा ने पराक्रम के साथ यह कार्य सपन्न किया था। कहते है—उसी दिन रात्रि में देवी ने जाटबा को यह संकेत दिया था कि जब वह लकडी की तलवार हाथ से उठावेगा तव वह फौलादी तलवार बन जायगी जिसके द्वारा वह सरलता से भैंसे को मार डालेगा। ज्यो ही भैंसा मारा जाय—त्यों ही हाथी पर बैठे हुए दोनो भाइयों को मार कर वह राजगद्दी प्राप्त कर ले। निर्देशानुसार जाटवा ने वह कार्य संपन्न किया तथा रणशूर और घनशूर को मार कर देवगढ़ की राजगद्दी प्राप्त किया। यह है देवगढ़ वश की आदि कहानी। ‡

गढा के राजा संग्रामशाह के अधीन हरियागढ़ × और देवगढ के दोनो प्रदेश थे। जाटबा का शासन कव से आरभ हुआ, यह कहना कठिन है। किन्तु जाटवा १५९० ईस्वी के लगभग देवगढ मे वर्तमान था। जान पडता है कि सग्राम

---

*खेरला:—वैतूल नगर से ४ मील पर जंगल मे खेरला पहाडी किला है।

† देवगढ़:—छिन्दवाड़ा से २४ मील की दूरी पर देवगढ एक पहाड़ी पर वसा हुआ है। गोड-काल में यह एक वड़ा नगर था। गाव से २ मील तक किले की चहार दीवारी के खण्डहर आज भी दिखायी देते है। कई कुएँ और बावडियां जंगलो मे भी फैली हुई है। यहा के दुर्ग के भीतर पत्थर के हौज और इमारतें थी, किन्तु अब भी वादल महल, नगारखाना और प्रवेश द्वार गिरने से वचे हुए है। वादल महल का अष्टकोनी कमरा अब भी वच गया है। पास ही एक मसजिद है। कमानियों के अतिरिक्त सभी इमारते ईट और चूने से बनी हुई है। पहाड़ी के नीचे गोड राजाओं का स्मशान है—जिसमें उनकी कवरे है। जाटवा की कब्र इससे थोड़ी दूर पर है।

‡ देवगढ़ का गोड राज वंश धुरवा वंशी गोड है। वे लोग अपनी उत्पत्ति विष्णु से मानते है। विष्णु से ४४ पीढ़ी मे राजा कर्ण हुआ था, इसने पनहाल गढ़ के निकट नाग कन्या से संभोग किया था—जिससे भूरदेव की उत्पत्ति हुई थी। भूरदेव की ३५ वी पीढी मे शरभशाह हुआ था—जिसने प्रथम गौली राजा को मार कर देवगढ प्राप्त किया था। शरभशाह की ५ पीढ़ी के वाद वीरभानशाह से हरियागढ़ के रणशूर और घनशूर ग्वाल राजाओ से देवगढ छीन लिया और ७० वर्ष तक राज्य किया। वीरभान के पुत्र जाटवा ने उससे अपना राज्य वापिस छीना था।

× हरियागढ़.—यह पहाड़ छिन्दवाड़ा से १५ मील दूरी पर है। यहां आज प्राचीन युग का एक भी खण्डहर नही है। उसके निकट हिरदागढ़ स्टेशन है, जहा गोडी युग के कुछ स्मारक है। संभवत: हिरयागढ़ और हिरदागढ़ एक ही हों।

के शासनकाल में देवगढ राज्य जाटबा को ही मिला था। "आइन अकबरी" ग्रंथ में जाटबा का उल्लेख आया है। वहां लिखा है कि 'खेरला सरकार के पूर्व जाटबा (जाटवा) नामक जमीदार का राज्य है। उसके पास २ हजार घुड़सवार, ५० हजार पदल सैनिक और १०० हाथी हैं। समूचे राज्य भर में गोंडों की ही आबादी है। उसकी जमींदारी में हाथी पाये जाते है।' मुगलो के समय में यह राज्य सूबा मालवा के अन्तर्गत था और बाद में हडिया के सूबेदार के अधीन सौंपा गया। जान पड़ता है कि गढा के पतन के बाद देवगढ राज्य खेरला सरकार में शामिल कर लिया गया।

अकबर के समय में जाटबा मुगलो के अधीन राजा था। वह खेरला सरकार के अन्तर्गत एक प्रमुख जमीदार गिना जाता था। सी पू विल्स ने उसका शासन ईस्वी सन् १५८० से १६२० तक माना है। अबुल फजल के लेख से पता चलता है, कि अकबर के राज्यकाल के २८ वें वर्ष में (सन् १५८४ ईस्वी में) देवगढ के जाटबा ने मुगल सरदार मुहम्मद जामीन को मार डाला था। यह मुहम्मद यूसुफ खां का चचेरा भाई था और उसने जाटबा के राज्य पर बिना अनुभव के आक्रमण किया था। जाटवा ने युद्ध न कर एव उसे नजराना आदि देकर मना लिया था। फिर भी मुहम्मद जामीन ने अपने सैनिकों के द्वारा देवगढ को लुटवा लिया था। लूटपाट कर जब वह लौट रहा था—तो रास्ते में उसको शिकार की सूझी और उसने सेना को आगे रवाना कर दिया और आप शिकार में लग गया। उस शराब पीने की बुरी लत थी। जब वह शराब का मजा जगल में ले रहा था, तब-जाटबा के सैनिकों ने उसे और उसके साथियों को मार डाला।

"जहांगीर नामा" से पता चलता है, कि सम्राट् जहांगीर अपने शासन के ११ वें वर्ष में (सन् १६१६ ईस्वी में) जब अजमेर शरीफ से होता हुआ मालवा पहुचा था—तब टबा ने मालवा की सीमा पर सम्राट् को नजर जो कुछ हाथी भेंट किये थे।

जाटबा ने अपने सिक्का पर "महाराजा" शब्द अकित करवाया है। वह माडिया जाति का धुरवा गोत्री गोंड था। गढ़ा के समान यहा के राजगोंडा ने अपने को न तो क्षत्रिय कहलवाया और न मूल गोडो से अपना सम्बन्ध विच्छेद किया। फिर भी ये लोग हिन्दू देवी-देवताओं को पूजते थे और हिन्दुओं के प्रत्येक त्यौहार समारोह के साथ मनाते थे। हिन्दू सस्कार के सारे काय ये लोग ब्राह्मणों के द्वारा सपन्न कराते थे।

जाटबा के राज्य की पूर्वी सीमा पर वैनगगा नदी बहती थी—पश्चिम में वर्धा नदी—उत्तर में छपारा (वैनगगा) और दक्षिण में चादा राज्य (उमरेड) था। सम्राट् अकबर ने अपने राज्य में जो नवीन दक्षिण के सूबे बनवाये उनमें देवगढ और चादा राज्यों का सम्बन्ध बरार से जोड़ा गया था। ये लोग अपना वार्षिक "पेशकश" बुरहानपुर में जाकर पटाते थे। जाटबा का राज्य वर्तमान छिंदवाडा, नागपुर और भंडारा जिलों तक सीमित था। 'आईन अकबरी' से पता चलता है—"कि देवगढ राज्य की आय ६ लाख ६ हजार दाम थी।"

सम्राट् शाहजहा के शासनकालीन इतिहास में देवगढ का उल्लेख मिलता है। शाहजादा औरगजेब उस समय बुरहानपुर में रह कर दक्षिणी सूबा का प्रबंध करता था। यो तो जाटबा के ७ पुत्र * थे—पर मुगलो के राजकाज में कोकशाह का ही नाम बराबर आया है।

कोकशाह आदि —शाहजहा के शासन काल में बुरहानपुर से मुगल सेनापति खानदौरान सन् १६३६ ईस्वी में भेजा गया था। 'बादशाहनामा' में अब्दुल हमीद ने लिखा है—कि "शाहजहा के राज्यकाल के १० वें वर्ष खानदौरान सेना लेकर देवगढ गया। उसने कूलम्गिर (कैल्कर) और आष्टा के किलो को ले लिया। नागपुर रवाना होने के पूर्व कनरसिंह के द्वारा उसने कोकशाह से कहलवाया कि वह भेंट लेकर तुरत आवे। उसी समय चादा का गोंड

* जाटबा के ७ पुत्र—दलशाह, दिनकरशाह, कोकशाह, धीरशाह, पोलशाह, केसरीशाह, दुर्गशाह और वीरशाह थे। जेष्ठ पुत्र दलशाह का पुत्र गोरखदास था।

राजा कीना १५ सौ घुड़सवार और ३ हजार पैदल सैनिको को लेकर खानदौरान की सहायता के लिये पहुंच गया। कीवा साथ मे ७० हजार का "पेशकाश" भी लाया था। कीबा से सलाह कर के खानदौरान ने जो संदेश भिजवाया था—उसके उत्तर में कोकशाह ने कहलवाया था कि—"वह १५० हाथी देने को तैयार है।" कोकिया ने नागपुर का किला सौंपने की अस्वीकृति प्रकट की। तदनुसार वह नागपुर के समीप पहुंच गया और उसने किले को उड़ा देने का हुक्म दे दिया। नागपुर के किले पर तोपे चलने लगी। परिणाम यह हुआ कि किलेदार देवाजी पन्त पकड़ा गया और नगर मुगलों के अधिकार में चला गया। उस समय कोकशाह देवगढ़ में था। ६० मील की मजिल तै कर वह भी नागपुर के निकट पहुंच गया। उसने मुगल सेनापति को १७० हाथी और १।। लाख रुपया देना मंजूर किया और खानदौरान ने उस मामले को निपटा दिया।"

इसी तरह ई. सन् १६४८ मे सूवेदार उमदाद मुल्क़ ने देवगढ़ के राजा से सख्ती के साथ 'पेशकाश' वसूल किया था। देवगढ राज्य अरण्यमय होने से यहा के जमीदार लोग सदैव "पेशकाश" देने मे असमर्थ रहे और यही कारण है कि वार-वार बुरहानपुर से वसूली के लिये मुगल सेना भेजी जाती थी। इसका स्पष्टीकरण औरंगजेव के पत्रो से हो जाता है।† इससे देवगढ़ की दयनीय स्थिति का आभास लग जाता है।

---

† औरंगजेब के उपलब्ध पत्र—पिता के नाम (उनका आवश्यक अंश) :—

(१) "देवगढ़ के जमीदार की ओर जो पेशकाश बाकी है—उसके सम्वन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि वह सदा राज्य का वफ़ादार रहा है। उसको हर साल एक लाख रुपया जो अभी तक बक़ाया है—देना पड़ता है। जमीदारी से अभी तक वह पूरा लगान वसूल नही कर सका, जिससे वह अपना लगान नही पटा सका। जिस तरह चादा के राजा का लगान माफ किया गया है—उसी बुनियाद पर देवगढ़ के राजा की अर्ज़ है, कि उसका भी लगान माफ हो। वह इकरार करता है कि यदि बकाया लगान माफ किया गया, तो वह भविष्य मे बरावर देता रहेगा।"

(२) "आपका पत्र मिला। आप लिखते है कि देवगढ के राजा का बक़ाया लगान माफ़ किये जाने के कोई जोरदार वजूहात नही दिये गये। यह वही जमीदार है— जिस पर खानदौरान ने चढ़ाई कर के पेशकाश वसूल किया था और जिसने १७० हाथी दिये थे। आप फरमाते है कि दक्खन के अफसर नालायक है और यदि जरूरत पड़ी तो वर्षा के वाद शाहजादा मुहम्मद के साथ मुगल सेना भेजी जायगी—जो उससे बकाया लगान और हाथी जबरदस्ती से वसूल करेगी। उसके वारे मे मेरी अर्ज है और मै उस प्रदेश से पूरी जानकारी रखता हूँ—मुझे कोई कारण नही दिखायी देता है कि रुपये रहते वह क्यों युद्ध मोल लेगा। वह तो मेरे पास खुद आया है और लगान देने को तैयार है। उसके वाद मैने एक अफसर को देवगढ़ इस लिये भेजा था कि वह वहां जाकर इस वात की जांच करे कि राजा के पास कितने हाथी है। वह अफसर वहां ३ मास तक रहा और लौटने पर उसने सूचना दी है कि देवगढ़ में १४ हाथी से ज्यादा नहीं है। खानदौरान ने जव देवगढ पर हमला किया था—तव राज की हालत अच्छी थी और वे हाथी कई वर्षो मे इकठ्ठे किये गये थे। वर्तमान जमीदार फिजूलखर्ची से तग हालत मे है। यदि वकाया रकम के लिये सेना भेजी गयी तो सारा राज्य वरबाद हो जायगा और लाभ कुछ न होगा। फिर भी आपका जो हुक्म होगा, पालन किया जायगा। यदि आपकी मन्शा राज्य खालसा करने की हो—तो आज्ञा दे। जमीदार को सर करना आसान है। मैने बहुत पता लगाया पर राजा के पास जटाशंकर नाम का हाथी नही है। मैने सुना है कि उसके राज मे जटाशंकर नाम का किला अवश्य है। यदि उसके पास हाथी होते तो उमदादमुल्क शाहनवाज खां बकाया लगान के एवज मे हाथी जरूर ले आते। अच्छा हो यदि आप उस आदमी को मेरे पास भेज दे, जिसने आपको यह समाचार दिया है। यदि वह शख्स मुझे जटाशंकर हाथी वता देगा—तो मै तुरंत पकड़ लाऊंगा।"

(३) "आपका पत्र मिला। आप लिखते है कि यदि मै देवगढ जीत कर प्रवंध कर सकू तो मै अपने पुत्र अथवा हदीद खां को सेना के साथ रवाना कर दू। देवगढ़ राज्य को जीतना तो सरल है—पर प्रवंध करना आसान नही है।

जान पड़ता है कि देवगढ राज्य की आर्थिक दशा अच्छी न थी—क्योंकि अधिकांश प्रदेश अरण्यमय था। मुगल काल तक यहा के जगलो में हाथी पाये जाते थे। यहा अधिकांशत गोंडी प्रजा ही रहती थी—किन्तु उनके बाद गवली लोगो की (अहीरो की) आबादी अच्छी थी। लोधी, रघवी, किरार, भोयर आदि जातियो के लोग किसानी में सिद्धहस्त थे। मेहरा, कतिया और चमार अस्पृश्य जातिया थी। देवगढ की राजकीय भाषा हिन्दी थी—किन्तु मुगलो के साथ उनका व्यवहार फारसी में होता था। वस्तुत यह राज्य मुगलाधीन था। यहा की सेना में अधिकांशत राजपूत और गोंड ही थे। मुल्की शासन और फिमापटी का काम ब्राह्मण और कायस्थो के हाथ में था। यहा के राजवश का मुख्य चिह्न—"नाग देवता" था। राज्य का ½ हिस्सा जागीरो मे विभक्त था। जाटबा के समय में राज्य में १५ प्रमुख जागीरदार थे—जो कि अधिकांशत राजगोंड थे।

जाटबा के मरने पर "बादशाहनामा" में कोकशाह (कोकिया) का नाम आता है। औरगजेब के जो पत्र उपलब्ध हैं—वे सन् १६५५ में लिखे गये थे। उस समय देवगढ का राजा जाटबा था। यह द्वितीय जाटबा था।

उसके इन्तिज़ाम में आय से व्यय अधिक होगा। मेरा भी प्रथम यही विचार था—किन्तु अब शाही फरमान आ जाने से म ज़मीदार के खिलाफ सेना भेज कर बकाया लगान वसूल करूंगा और साथ ही हाथी भी। जटाशकर हाथी का पता शायद चादा के राजा से मिल जाय। हदीद खा विश्वासपात्र आदमी है—किन्तु अभी तक वह किसी ज़िम्मेदारी के काम पर मुकरर नही किया गया। सभव है कि इसी कारण से कुछ अफसर उसकी अधीनता में काम करने से इन्कार करते है। सेना में फूट रखना अच्छा नहीं है। देवगढ पर हमला करने के लिये मने यहा एक सेना तैयार की है और वह मुहम्मद ताहर के नेतृत्व में काम करेगी। इसके अलावा एक सेना हदीद खा की मातहती में और दूसरी मिरज़ा खा की मातहती में भेजी जायगी। मेरी सेना मिरज़ा खा के साथ जायगी।

(४) "आपका पत्र मिला। आपके आदेशानुसार मने मिरज़ा खा और हदीद खा की मातहती मे दो सेनाएँ देवगढ की ओर भेज दी है। आशा है, हमको सफलता मिलेगी और सब हाथी जरूर छीन लिये जायेंगे।"

(५) "मुझे मुहम्मद शरीफ के ज़रिये आपका पत्र मिला—जिसमें लिखा हुआ है कि म ८ वी रबीउल अव्वल तक हैदराबाद में उपस्थित होऊ। किन्तु जाटबा इसी बीच में सब हाथी और लगान लेकर पहुच रहा है। इसलिये मने अपना प्रस्थान रोक दिया है। मने पुन मुहम्मद मुलतान को गोलकुडा की सीमा पर रवाना कर दिया है। मैं बहुत ही जल्द आऊगा। जमीदार जाटबा इस मास की २३ तारीख तक मिरज़ा खा के साथ यहा पहुँच जायगा। इसलिये म २३ तारीख का अपना खेमा रवाना कर दूगा और रबी उसमानी की तीसरी तारीख को खुद रवाना हो जाऊगा।"

(६) "मुझे आपके पत्र मुहम्मद मुराद यसावल और मुहम्मद मीराक के द्वारा प्राप्त हुए। जाटबा ज़मीदार मिरज़ा खा के साथ मेरे यहा पहुच गया है। वह अपने साथ २० हाथी लाया है और विश्वास दिलाता है कि अब उसके पास एक भी हाथी नही है। उसका कहना है कि यदि उसके पास अब कोई हाथी मिले—तो उसको सज़ा दी जावे। चादा का ज़मीदार और उसका सरकारकार विनायक दोनो अदालत में पेश किये गये। हदीदाद खा के सामने दोनो ने कहा है कि वे जटाशकर हाथी के बारे में कुछ नही जानते और उनका भी कहना है कि आपके पास किसी ने झूठी खबर दी है। मुझ से जो कुछ हदीदाद खा ने कहा है—वही आपको लिख रहा हू। जाटबा इस मार्च ५ लाख रुपया देने के लिये तैयार है। बाकी लगान वह किश्तवार देना मजूर करता है। वह अपनी रियासत का कुछ हिस्सा सेलडा के थानेदार करनलब खा को देगा। थानेदार इस इतिज़ाम को मजूर करता है। ज़मीदार मेरे साथ गोलकुडा चलने का जिक्र कर रहा है। म उसे अपने साथ ले जाऊगा और उचित समझ पडा तो इस साल जो उसे ५ लाख रुपिया देना है—उसमें कुछ कमी कर दूगा।

"आदाब-ए-आलमगीर" (ई सन् १६५५)।

दक्षिण मे यह चलन था कि पौत्र प्रायः पितामह का नाम धारण कर के राजगद्दी पर बैठता था। मुसलमानों के इतिहास से देवगढ़ के शासन करने वाले राजाओ की वंशावलि इस प्रकार तैयार होती है :—

जाटबा (प्रथम) शासन ई. सन् १५७०—१६२०।
कोकशाह (प्रथम) शासन ई. सन् १६२०—१६४०।
जाटबा (द्वितीय) शासन ई. सन् १६४०—१६५७।
कोकशाह (द्वितीय) शासन ई. सन् १६५७—१६८७।
बख्तबुलंद शासन ई. सन् १६८७—१७००।

सन् १६५५ ईस्वी मे बुरहानपुर में दक्षिणी सूवे के प्रवंध के लिये युवराज औरगजेब रहता था। उस समय सम्राट् शाहजहा को यह समाचार किसी ने जा सुनाया, कि देवगढ के राजा के पास २०० हाथी है और उनमें प्रसिद्ध जटाशंकर है। उसका स्पष्टीकरण औरगजेब ने अपने पत्रो मे किया है। जाटवा स्वय औरगजेब से मिलने के लिये बुरहानपुर गया था और वहां ६–७ मास तक रहा था। यह जाटवा कोकिया (कोकशाह) का पुत्र था। औरगजेब ने जाटवा से २० हाथी तथा कुछ नकद रकम लेकर जनवरी सन् १७५६ ईस्वी मे यह मामला निपटा दिया। उसके बाद ही वह बुरहानपुर से दौलताबाद गया था—जहा उसने ४ वर्ष विताये थे।

कोकशाह और जाटवा दोनो राजाओ का शासन राज्य के लिये बलदायक सिद्ध नही हुआ, बल्कि विलासिता के कारण वे राजकाज मे असफल सिद्ध हुए और उससे प्रजा को भी कष्ट हुआ। जाटवा प्रथम के समय मे उसके पुत्रो ने राज्य को जागीरों मे बांट लिया था, जिससे राज्य की आय घट गयी थी। यही कारण है कि देवगढ का राजा प्रतिवर्ष १ लाख रुपया 'पेशकाश' नही दे सकता था। शराबखोरी और विलासिता के कारण गोडो ने कभी उपज बढाने का कोई उपाय नही किया। वास्तव मे मनुष्य की आवश्यकताएँ ही उसे कर्मण्यता की ओर प्रेरित करती है। मद्य और बहुविवाहो के कारण गोंडी शासन खोखला होता जा रहा था और राजमहल मे आपसी स्पर्धा और षड्यत्र तेजी के साथ चल रहे थे। जाटवा द्वितीय ने नियमित रूप से अपना लगान समय पर कभी नही पटाया। औरंगजेब के शासन के समय मे (औरगजेब के राज्यकाल के ९ वे वर्ष में) सन् १६६७ ईस्वी मे सम्राट् ने बकाया रकम वसूल करने के लिये दिलेर खा को सेनासहित भेजा था। उसने कोकशाह द्वितीय से १५ लाख रुपये वसूल किये थे। मुगलों के कागजपत्रों से पता चलता है कि यह कोकशाह द्वितीय जाटवा द्वितीय का पुत्र था। कहा जाता है कि उसने ३० वर्ष राज किया था।

बख्तबुलंद*—सन् १६७० मे सूबा बरार मराठो के आक्रमण का लक्ष्य बन गया था और उसी वर्ष शिवाजी ने कारंजा को लूटा था। इसी काल से दक्षिण भारत मे मुगलो के साथ मराठो का संघर्ष छिड़ गया था। सन् १६८५ ईस्वी के लगभग कोकशाह का स्वर्गवास होगया। तब राज्य के लिये देवगढ के राजकुमारों मे झगडे शुरू होगये। उन मे बख्तशाह प्रमुख था, जो कि जाटवा प्रथम का प्रपौत्र और गोरखदास (कोकशाह) का पुत्र था। गोरखदास के ५ पुत्र और ४ भतीजे थे। आरभ मे बख्तशाह गद्दी पर बैठ गया, किन्तु उसके भाई दीनदारशाह ने उसे खदेड बाहर किया। तब वह औरगजेब से सहायता पाने के लिये दिल्ली गया। इस समय कई राजवश के लोगो ने (औरंगजेब का अनुग्रह पाने के लिये) इस्लाम धर्म को स्वीकार किया था। उसी भाति बख्तशाह सम्राट् को खुश करने के हेतु

---

* बख्तबुलंद—पता चलता है कि औरंगजेब के शासन मे ३५ वें वर्ष (सन् १६९२ ईस्वी) मे बख्तबुलंद शाह के भाई दीनदारशाह को सम्राट् की ओर से इस्लामगढ़ (देवगढ) की जमीदारी सौपी गयी थी और वह 'एक हजारी मनसबदार' भी बनाया गया था। सम्राट् ने खिल्लत, घोड़ा, हाथी और राजा का खिताब देकर वतन को विदा किया था। जान पड़ता है कि दीनदारशाह बख्तशाह का प्रभाव न हटा सका और मुगलो ने भी कोई लक्ष्य नही दिया—क्योंकि स्वयं सम्राट् मराठों के आक्रमणो से त्रस्त हो रहा था।

मुसलमान हो गया और सम्राट ने उसका नाम 'बख्तबुलद' रख दिया। दिल्ली से मुगल सेना को साथ में लाकर बख्त-बुलद ने देवगढ प्राप्त किया। इस राजा ने देवगढ में कुछ इमारतें और एक मसजिद बनवायी। उसने नागपुर जिले के भिवगढ, भिवपुर, जलालखेडा, पारसिवनी, पाटन सावगी, सावनेर, भडारा जिले में प्रतापगढ, बालाघाट जिले में लाजी, सोनहार, हट्टा तथा देवगढ के समीप सौसर में किले बनवाये थे। राजा के मुसलमान हो जाने से कई मुसल-मान परिवार देवगढ में आकर बस गये थे, जिससे मुसलमानो के ताजिये, मुहर्रम और ईद आदि के नवीन समारम्भ आरम्भ हो गये थे।

वर्तमान चौंरी में (सिवनी से ६ मील पर) मण्डला राज्य का एक कर्मचारी रहता था। वहा के २ सैनिक सरदारो ने राज्य में विद्रोह खडा कर दिया। तब मण्डला के राजा ने बख्तबुलद से सहायता मागी। सिवनी के निकट परतापपुर में बख्तबुलद ने उन दोनो को घेर लिया और लुण्डे खा मारा गया। वहा आज भी उसकी कब्र है। इस सहायता के लिये बख्तबुलद को सिवनी जनपद प्राप्त होगया। तब वहा का प्रबंध उसने अपने रिश्तेदार रामसिंह को सौंप दिया। उसने अपना मुकाम चौंरी से उठा कर वैनगगा के किनारे छपारा† में कायम किया।

एक समय जब कि बख्तबुलद शिकार के लिये सिवनी के जगल में गया था—एक रीछ ने उस पर आक्रमण कर दिया। बख्तबुलद उस प्रसग में हाथी पर सवार था। उसका अगरक्षक राज खा तलवार लेकर आगे कूद पडा और रीछ को मार दिया। इसके बदौलत राज खा को डोगरताल‡ इलाका प्रदान किया गया। इसी राज खा ने भडारा जिले की सानगढी पर अधिकार जमाया था।

बख्तबुलद ने नागपुर और पाटनसावगी नगर बसवाये थे। यहा पुरातन इमारतें मुगल शिल्पकारी प्रकट करती है। सम्राट् औरगजेब के राज्य मे अव्यवस्था फैल गयी थी—इसी कारण उसने कुछ मुगल थाने वापिस ले लिये थे। जहागीर के समय में आष्टी+ में मुगल थानेदार मुहम्मद खा नियाजी था। बख्तबुलद ने पौनार के फौजदार को लूट लिया था—यह समाचार जब औरगजेब को ज्ञात हुआ तो उसने कहा—"बख्तबुलद वास्तव में निगमबख्त है।" उसने अपने पुत्र केदार बख्श को सेना के साथ भेजा था, किन्तु बख्तबुलद अविलब शरण में चला गया और मुहम्मद अमीन-खा ने सम्राट् को सूचित किया—देवगढ का जमीदार कुचल दिया गया। देवगढ का नाम बदल कर "इस्लामगढ" रखा गया।

जान पडता है कि बख्तबुलद ने ३८ वर्ष राज्य किया था और वह सन् १७०६ ईस्वी में मरा। उसके पाच पुत्र थे जिनमें से चाद सुलतान, महीपतशाह और यूसुफशाह विवाहित गोंड रानी के पुत्र थे तथा दो मुसलमान स्त्रियो से, जिनके नाम थे अलीशाह और वलीशाह। इस प्रकार उसके पाच पुत्र थे।

चाद सुलतान

बख्तबुलद के मरने पर चाद सुलतान ही इस्लामगढ की गद्दी पर बैठा। उसने नागपुर नगर के चारो ओर तीन मील का परकोटा बनवाया था। नागपुर का जुम्मा तालाब भी उसी समय का है। चाद सुलतान ने अपना सम्बन्ध दिल्ली से बना रखा था। उस समय की दो सनदें नागपुर के राजपरिवार के पास है। एक सनद दक्खिन के सूबेदार सैयद हुसेनअली (प्रसिद्ध सैयद बधुओ में से एक) ने दी है। जिसमें आमनेर * जागीर का उल्लेख है।

---

† छपारा—सिवनी से उत्तर में २१ मील पर है। यहा का किला रामसिंह ने बनवाया था।

‡ डोगरताल—नागपुर सिवनी मार्ग पर देवलापार से २ मील पर है।

+ आष्टी—सतपुडा घाटी के नीचे वर्धा से ५० मील पर है।

* पुरातत्त्व की खोज के लिये पाषाणकालीन "शव स्थान" बडी विशेषता रखते हैं। इन शव स्थानो में गडे हुए शस्त्र भी प्राप्त होते है—जो कि पाषाणकालीन सिद्ध किये गये है। इन शव स्थानो में कई ऐसे है—जो विशालकाय

दूसरी मनसबदारी सनद वली मुहम्मद तथा उसके तीन भतीजों के नाम है। उस समय राज्य की आय ११,३८,२३३ रुपये थी।

पुराने कागजो से पता चलता है कि सम्राट मुहम्मदशाह के राज्यकाल के १३ वे वर्ष मे (सन् १७३२ ईस्वी में) सुलतान अली नवाव आसफजहाँ ने देवगढ़ राज्य पर लगान वसूल करने के हेतु चढ़ाई की थी। पर जान पडता है कि उसमे वह सफल नही हुआ। चांद सुलतान के एक सरदार खांडेकाला ने पौनार सरकार पर अपना कब्जा जमाया था और वहां पर २५ वर्ष तक शासन किया था। वाद मे वह निजाम से मिल गया—तब नौकरी के एवज मे उसके नाम वह जागीर वख्श दी गयी। (इसके आगे का वर्णन अन्यत्र किया गया है।)

यह राज्य अधिकांशत: छोटी-वड़ी जागीरो मे वंटा हुआ था। परगने के कर्मचारी ठाकुर कहलाते थे और उनके अधीन ग्रामों के पटेल थे। वख्तबुलंद के समय मे वहुत सी जातिया वाहर से आकर यहा वसी—जिनमे अधिकाशत: लोधी, राजपूत और मुसलमान थे। प्रमुख काश्तकारी करने वाली जातियां पवार, मरार और लोधी थी। मराठो के आगमन के पूर्व देवगढ़ राज्य की भाषा हिन्दी थी। यहा के राजवंश की पुरानी राजधानी हरियागढ़ थी—जो कि अव पचमढी जागीर मे है। हिरदागढ़ में चण्डीदेवी का एक मन्दिर वच गया है। पहाड की चोटी पर एक छोटी सी गुफा मे शिवजी विराजते है। लोग कहते है कि यहा से एक रास्ता जमीन के भीतर से देवगढ तक गया है, पर वह सत्य नही है। एक स्थान ऐसा है जहा पर कि जाटवा की मृत्यु हुई थी। आसपास जंगलो मे कूप और वावड़िया है जिससे अनुमान होता है कि यहां की आवादी अच्छी थी। कन्हान नदी के किनारे पुरातन मन्दिरो के कुछ खण्डहर हैं। वख्तवुलंद ने यहा पर भी एक मसजिद बनवायी थी। हिरदागढ़ के आसपास जो अव गाव है उनसे जान पडता है कि यहा पर किन-किन जातियो का प्रभाव था—जैसे, बाम्हनवाडा, तेलीवूत, मारकधाना (कुम्हार टोला), व्रिजपुरा, घोडावाडी कलां और खुर्द (अस्तवलपुरा), रामनगिरि, चौगान। ये सभी गांव एक-दो मील के इर्द गिर्द है। हथियागढ़ १५ सौ फुट ऊंचाई पर है—जहां नगरानदेव पूजा जाता है। यहां पेंच और घाटामाली नदियों का संगम होता है। लोग उसे "राजा डोह" कहते है।

पचमढी के "महादेव" गोंडों के प्रधान देवता है। गोंडों के समय के किलों का विवरण हम अन्यत्र दे चुके है।

चट्टानों के द्वारा निर्मित किये गये है। गोंड लोग अब भी घने अरण्यो में ऐसे स्थान बनाते है और मृतक के साथ उसके हथियार आदि दफना देते है। अव पुरातन काल के समान बृहदाकार शव स्थान नही वनाये जाते। प्रस्तर निर्मित शव स्थान वास्तव मे द्राविड़ी-कला है। नागपुर जिले मे ऐसे १६-१७ शव स्थान है जिनमे जूनापानी, कामठी, उवाली, दिग्रस, टाकलघाट और वठोरा के शव स्थान महत्वपूर्ण है। चादा जिले मे इनके प्रमुख समूह चार्मुसी और वागनाक ग्रामों मे है। इसी तरह भंडारा जिले मे पीपलगांव, खैरी, तिलोता आदि स्थानो में है। इसी भांति के शव स्थान सिवनी तहसील और रायपुर तथा दुर्ग जिलों मे भी उपलब्ध होते है।

पुरातन गोंडकालीन देवालयो को हेमदपंती देवालय कहते है। विद्वान लोग उनको यादवकालीन मानते है। उनमें से प्रमुख देवालय—(नागपुर जिले मे) अदासा, अंभोरा, भूगाव, जाखपुर, किलोद, पारसिवनी, रामटेक, सावनेर (वर्धा जिले मे) पोहना, तलेगांव, (भंडारा जिले मे) पोहना, तलेगांव, थानेगांव आदि मे है।

प्राचीन गुफाएं निम्न स्थानो मे है :—(नागपुर जिला) गारपेली, (भंडारा जिले मे) विजली, कचरगढ, गायमुख, कोरम्वी, (वालाघाट जिले मे) सौरझरी, (वैतूल जिले मे) धानोरा, भोपाली, झापल, खैरी, लालवाडी, नागझिरी, गोपालतलाई, लालवाड़ी। इनके अतिरिक्त पचमढी के पहाड़ों मे गुफाओं का तो समूह है। पचमढी के अतिरिक्त तामिया, झलई और सोनभद्र की गुफाएं प्रसिद्ध है।

छिंदवाडा जिले की हरई जागीर सब जागीरो मे प्रमुख गिनी जाती थी। यहा के राजवश के पास ७० पीढियो की वशावलि है। इस जागीर में पातालकोट एक विचित्र स्थान है जो छिंदवाडा से ३६ मील दूर है। जबरदस्त गहराई के कारण लोग उसे "पाताल" कोट कहते है। पाताल कोट वह स्थान है जो पाताल के समान नीचे गहराई पर बसा हुआ चारो ओर पर्वतो के कोट से सुरक्षित है। उस स्थान का घेरा २० मील है और उसमे छोटे-मोटे १२ गाव बसे हुए ह। वहा पहुचने के केवल चार ही मार्ग है। यहा राजाखोह नाम की एक गुफा भी है।

चन्द्रपुर का शासन

पुरातत्त्व की दृष्टि से चन्द्रपुर का इलाका विशेष महत्वपूर्ण है, जिसका अन्वेषण अभी तक नही हो सका है। भद्रावती के पुरातन खण्डहर जो आज उपलब्ध ह तथा जो भूमि में समा गये ह, उन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता ह। यो तो चादा जिले के देवटेक में हमें मौर्यकालीन शिलालेख मिलता है। इसी तरह प्रसिद्ध सातवाहन काल का एक लेख पौनी गाव में पाया गया ह और इसी युग की एक गुफा * भद्रावती में है। प्रसिद्ध वाकाटक, सोमवशी, और राष्ट्रकूट (भादक ताम्रपत्र) राजाओ की प्रशस्तिया इस जिले में मिली है। इस जिले के प्रमुख स्थान मार्कण्डेय में सिंघण यादव का लेख मिला ह। यहा यादवकालीन कई मन्दिर मिलते है जो हेमादपन्थी मन्दिर कहलाते है। उनमें से कुछ प्रसिद्ध ह। जैसे—आमगाव, भोजेगाव, चादपुर, चुरुल, घोमरी, खरर्दे, महावाडी, मारोती, पालेवारस, वागनार, येडा और नलेश्वर स्थानो के मन्दिर। इसी तरह भादक, देऊलवाडा, गावरार, घुघुस और भाडापापडा की गुफाए प्रसिद्ध ह।

सन १११४ ईस्वी की रतनपुर के महाराज जाजल्लदेव की प्रशस्ति के अनुसार वैरागढ† लजिका‡ और भानारा+ में उसके मण्डलेश्वर रहा करते थे। ये राज्यपालगण रतनपुर राज्य के आधीन थे। प्रसिद्ध मार्कण्डेय | की मन्दिर

---

*भद्रावती —चादा से १२ मील पर है। यह नगर दो मील लम्बा और १ मील चौडा रहा होगा। यहा के खडहर भिन्न भिन्न युग के ह। गाव के पश्चिम में पुरातन किले का खडहर है। दक्षिण में भद्रग का मन्दिर है। मन्दिर के दर्शनीय भाग में कई पुरानी मूर्तिया है। गाव के पश्चिम में जो गुफा है वह तो मिट्टी से ढक रही है। यही पर दशभुजा देवी की प्रतिमा है। करीब डेढ मील पर बीजासन गुफा है—जो कि बौद्धो का प्रार्थनागृह रहा होगा। उसी के निकट बुद्ध की मूर्ति है। पाडु राजा के दाहिनी और बायी ओर बुद्ध की मूर्तिया है जिनको लोग राजा पाडु, उसके पुत्र और भतीजो की मूर्तिया कहते ह। गाव के पूर्व में जो तालाब है उसमें एक द्वीप है। वहा जाने के लिये एक प्राचीन पुल बना है। यह एक हिन्दू कला का नमूना है। यह पुल १३० फुट लबा और ७ फुट २ इच चौडा ह। एक जीर्ण मदिर में चडिका देवी की मूर्ति है, जिसके ३ मस्तक और ८ हाथ ह। यहा जैन मूर्तिया भी ह। वर्तमान भटाला गाव सभवत प्राचीन भद्रावती है। वहा एक सुन्दर मन्दिर बच गया है।

†वैरागढ —स्व डॉ हीरालाल उसका नाम वज्राकर कहते है। लोग कहते है कि द्वापर युग में यहा विरोचन रहता था। यहा के हीरे प्रसिद्ध थे। यहा १७ वी सदी का एक किला भी है। यहा एक महाकाली का मन्दिर है जिसको गोड राजा ने बनवाया था। पता चलता ह कि सन् १४४२ ईस्वी में अहमदशाह बहमनी ने वैरागढ को लूटा था। उस समय की यहा कुछ कबरें भी ह।

‡लजिका —वर्तमान लाजी बालाघाट जिले में है। यहा के किले में महामाया का पुरातन मन्दिर है और पास ही में कोटेश्वर महादेव का शिवालय।

+भानारा —वर्तमान भडारा नगर।

| मार्कण्डेय—चादा से ४० मील पूर्व वैनगगा के तट पर है। खडहरो से जान पडता है कि १०वी-११वी सदी में यह अच्छा नगर रहा होगा। १९६ फुट लबी और ११८ फुट चौडी भूमि पर २० से अधिक मन्दिर खडे है—जिनके

कला खजुराहो की कला से मिलती-जुलती है। जान पडता है कि दौलतावाद (देवगिरि) के यादवों के पतन के साथ ही साथ चादा मे गोंडी शक्ति निर्माण हुई, जिसने अपना स्वतत्र राज्य स्थापित किया।

मेजर स्मिथ ने अपने वंदोवस्त की रिपोर्ट मे (सन् १८६९ ई.) सवसे पहले यहा के राजाओं का इतिहास लिखा था और यह विवरण चांदा के राजवश से उनको प्राप्त हुआ था। उन्होने इस वश के मूल पुरुष का नाम भीमवल्लालसिह लिखा है जिसने ईस्वी सन् ८७० से ८९५ तक चांदा जिले का शासन किया था। इस वंश के १९* स्वतंत्र राजाओ ने लगभग ८८१ वर्षो तक राज्य किया था। पर यह ठीक नही जचता। इस हिसाव से प्रत्येक राजा का शासन औसत ४६ वर्ष आता है। लगभग ६ राजाओं ने ६० वर्ष से ऊपर राज्य किया है और एक ने तो ७५ वर्ष। यह वहुत संभव नही है। भारत के राजाओं के शासन का औसत दर्जे पच्चीस वर्ष से अधिक नही वैठता। इस हिसाव से चादा के राजाओ का शासन काल ४७५ वर्ष वैठता है। तव तो चन्द्रपुर वंश के प्रथम राजा भीमवल्लालसिह का शासन ईस्वी सन् १२४० के लगभग आना चाहिये। यह अन्य प्रमाणो से भी मेल खा सकेगा। "आइन अकवरी" मे चादा के राजा का नाम बावाजी दिया गया है जो कि अकवर का (ई. सन् १५५६-१६०३) समकालीन था। तव तो दी हुई वशावलि मे एक सदी का अन्तर आता है। इसलिये हम मानते हैं कि चादा के स्थापनकर्ता खांडकी वल्लालशाह का शासन ईस्वी सन् १४३७ से १४६२ तक रहा होगा।

इस वंश के राजा भीमवल्लालसिह ने वर्धा नदी के तट पर सिरपुर नामक स्थान पर अपना राज्य स्थापित किया था। जान पड़ता है कि गढा और चांदा के राज्य एक ही साथ निर्माण हुए थे। यद्यपि राजधानी सिरपुर थी, तथापि उसका शक्ति-केन्द्र माणकगढ था। गोड जाति कृषि करती ही न थी। प्रथम राजा के पौत्र हीरासिह ने गोडों का ध्यान खेती की ओर आकृष्ट किया था। उस समय तक गोंडो में गणतंत्र व्यवस्था प्रणाली प्रचलित थी और उनमे जो वलवान होता था—वही मुखिया या राजा माना जाता था। खाडकी वल्लालशाह तक इस वंश के जितने भी राजा हुए थे—उनकी शासनव्यवस्था स्थिर न थी। खाडकी वल्लाल सिंह का पिता सुर्जा बल्लाल सिंह अवश्य ही प्रतिभा सपन्न राजा था। जनश्रुति के अनुसार वह दिल्ली भी गया था और उसे "शेरशाह" की उपाधि मिली थी। तभी से यहां के राजाओ ने "शाह" की उपाधि प्रचलित की थी।

सम्मुख वैनगंगा अपनी छटा प्रदर्शित करती है। उनमें से कुछ मन्दिर तो गिर चुके है, कुछ छोटे है। परन्तु उन्हे देखते ही बनता है। स्व. कनिगहम ने यहा की मूर्ति कला की तुलना खजुराहो के मन्दिरों से की है, ये मन्दिर पीतवर्णी सुन्दर पत्थरो से वनाये गये है और ऐसा एक स्थान भी कलाकारों ने नही छोडा, जहा उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन न किया हो। उन मन्दिरो मे मार्कण्डेय का शिवमन्दिर प्रधान है। इन मन्दिरो के निर्माता शैव थे। मन्दिर विचित्र चित्रो से अलंकृत है जिनमे मनुष्य, पशु और पक्षियों के भी चित्र है, कुछ नग्न चित्र भी है। देवताओं के चित्र सुडौल वनाये गये है। मन्दिर के द्वार पर "श्री मकरध्वज जोगी ७००" लिखा है। ७०० का तात्पर्य संवत् से है या उसके साथ आये हुए शिष्यो से है—यह कहना कठिन है। मार्कण्डेय ऋषि के मन्दिर के अतिरिक्त दूसरा प्रधान मंदिर मार्कण्ड का है जो कि मार्कण्डेय के पिता थे, ऐसा लोग कहते है। यहा विभिन्न देवताओं की मूर्तिया हैं।

*गोड राजवंश की वशावली—(१) भीमवल्लालसिह (ई. सन् ८७० से ८९५), (२) खुरजा वल्लालसिह (सन् ९३५), (३) हीराशाह (सन ९७०), (४) वल्लालशाह (सन ९९५), (५) तलवारशाह (सन् १०२७), (६) केसरसिह (सन् १०७२), (७) दिनकरसिह (सन् ११४२), (८) रामसिह (सन् १२०७), (९) सूर्जा वल्लालसिह (१२४२), (१०) खांडकी वल्लालशाह (सन् १२८२), (११) हीरशाह (सन १३४२), (१२) भूमा और लोकवा (सन् १४०२), (१३) कोडियाशाह (सन् १४४२), (१४) बाबाजी वल्लालशाह (सन् १५२२), (१५) ढोंढचा रामशाह (सन १५९७), (१६) कृष्णशाह (सन् १६४७), (१७) वीरशाह (सन् १६७२), (१८) रामशाह (सन् १७३५) अटौर (१९) नीलकंठशाह ई. सन् १७३५—१७५१ तक.

खाडकी बल्लालशाह—"शेरशाह" का पुत्र खाडकी बल्लालशाह था—जो चर्म रोग (खाडर रोग) से पीडित था। उनकी स्त्री हीरा तालनी चतुर साध्वी थी। गाडो में यह जनश्रुति प्रचलित है कि एक अवसर पर राजा शिकार गया था—रास्ते में उसे प्यास लगी, निकट में झरपट नदी के एक कुंड में उसने हाथ पैर धोकर तृष्णा तृप्त की। उससे उसका रोग नष्ट हो गया। यह वह स्थान था—जिसे लोग अचलेश्वर-तीर्थ कहते हैं। घर आने पर रानी को स्वप्न में मन्दिर निर्माण करने की प्रेरणा हुई—जिसके अनुसार अचलेश्वर का मन्दिर बनवाया गया। एक दिन जब वह मन्दिर का काम देख कर लौट रहा था, रास्ते में उसने एक विचित्र दृश्य देखा। एक खरगोश कुत्ते का पीछा कर रहा था। इस पर उसने रानी से सलाह कर यह निश्चय किया कि जहा उपर्युक्त जानवर ने कुत्ते का पीछा किया है—उस भूमि में साहसी मनुष्य अवश्य पैदा होंगे। इसी कारण रानी की सलाह से वहा एक नगर बसवाया गया—जिसका व्यवस्थापक तेज ठाकुर हुआ। सन् १४५० ईस्वी में चादा नगर की नींव रखी गयी थी।* यह भी कहा जाता है कि खरगोश के मस्तक पर चन्द्र का चिह्न होने के कारण उसका नाम चंद्रपुर (चादा) रखा गया था।

इस राजा के समय में बहमनी राज्य की सीमा चादा राज्य के समीप तक पहुच गयी थी। सन् १४२२ ईस्वी में वहा के सुल्तान ने हीरा के लिये वरगढ पर आक्रमण किया और तब से माहूर में उनका एक फौजदार रहने लगा था। खाडकी बल्लालशाह का पुत्र हीरशाह था। उसने राज्य के जमींदारो से खेती के विकास का आग्रह किया और राज्य में कई तालाब खुदवाये। गोंडा में सिक्को का चलन इसी राजा ने आरंभ किया था। चादा का परकोटा और महल इसके शासन में ही तैयार हुए थे और तब से हीरशाह चादा में रहने लगा था। उसके पौत्र करणशाह ने राज्य में कई मन्दिर और तालाब बनवाये थे।

बाबाजी बल्लालशाह—रणशाह का पुत्र बाबा जी बल्लालशाह था। करणशाह को गोंड लोग कोडिया राजा कहते थे। अबुल फजल ने आइन अकबरी में लिखा है—"काडिया का पुत्र बाबा जी चादा का गोंड जमींदार था—पर वह दिल्ली के अधीन न था। उसके पास १० हजार सवार और ५० हजार पैदल सैनिक थे। उसके राज्य में वैरागढ एक ऐसा स्थान है—जहा हीरे पाये जाते हैं।" अकबर के समय में सूबा बरार मुगल शासन में आगया था।

---

*चादा—इराई और झरपट नदियो के सगम पर बसा है। यहा परकोटे का घेरा ७ मील लम्बा है—जिसका पत्थर पीले रंग का है। परकोटे की चौडाई १० फुट है। उसके चार द्वार—उत्तर में जटपुरा, पश्चिम में घोडा मैदान, पूर्व में अचलेश्वर और दक्षिण में पठानपुर द्वार हैं। इनके अतिरिक्त ५ उपद्वार हैं—चोर, विठोबा, हनुमत, मसान और बगड खिडकिया कहलाती है। नगर के समीप रामाला, वेंडाला, घुटकाला, गोवारी लाल और कोनार तालाब हैं। गोंड राजा रामाला तालाब से नालियो द्वारा शहर में पानी लाये थे। यहा गोंडकालीन इमारतें मुसल्मानी ढग की हैं। अचलेश्वर द्वार के निकट गोंड राजाओं का स्मशान है जिसमें वीर शाह की छत्री प्रधान है। अचलेश्वर मन्दिर देखने योग्य है। लोग कहते है चादा से एक रास्ता जमीन के भीतर ही भीतर बल्लालपुर तक गया है।

मार्कण्डपेठ में जो पुरातत्त्व की जो सामग्री है—वह तो अध्ययन की वस्तु है। लोग उसे "रावण का पठार" कहते है। कारीगरी तो सुन्दर नहीं है—पर आकार मे बडी अवश्य है। इसी कारण से लोगों ने उसका सम्बन्ध रावण से जोड दिया है। ये मूर्तिया १६९—जो चट्टानो पर बनायी गयी हैं। उनमें शिव प्रधान हैं। दस मस्तक वाली दुर्गा (१८×३ फुट) का वजन ५७ टन होगा। नदी, मत्स्य, मकर आदि मूर्तिया मुख्य है। कहते है कि ये मूर्तिया रायपा कोमटी ने रामशाह के शासन काल में बनवायी थी। बाबू पेठ में कुछ पुराने मन्दिर हैं—जिनमें त्रिपाद देवता भी हैं। लोग उन्हें शिव का गण कहते हैं। एक मन्दिर में शिव के साथ ही साथ इन्द्र, अग्नि आदि की मूर्तिया हैं। यहा कई कूप और बावली हैं, एक का आकार शखनुमा है। पचायतन का मन्दिर दीवान महादेव वैद्य ने बनवाया था। महाकाली का भी मन्दिर प्रसिद्ध है।

चांदा वरार के निकट होने से मुग़लो के कागज-पत्रों में उसका नाम मिलता है। वावा जी का पुत्र धोडिया रामशाह था–जो शरावी और व्यभिचारी था।

कृष्णशाह (कीवा)—धोडिया रामशाह का पुत्र कृष्णशाह था—जिसको गोंडी प्रजा कीवा कहती थी। यह राजा मुगल सम्राट् को 'पेशकाश' देता था। 'पेशकाश' पटाने के लिये चांदा के राजा को बुरहानपुर जाना पड़ता था। 'वादशाह-नामा' मे अब्दुल हमीद ने इस राजा का उल्लेख किया है। ख़ानदौरान ने जव देवगढ पर आक्रमण किया था, तव कीवा मुगल सेना के साथ था। उसने खान को ७० हजार रुपये 'पेशकाश' के दिये थे। यह मुगल सल्तनत का 'मर्ज-वॉन' था और उसका सरवराहकार विनायक था। राजा कीवा और देवगढ़ का राजा जाटवा दोनो ही समकालीन थे।

कृष्णशाह का पुत्र वीरशाह था। वीरशाह की एक पुत्री देवगढ के राजकुमार दुर्गशाह को व्याही गयी थी–पर दोनों का मेल नही खाता था। एक वार क्रोधित हो दुर्गशाह ने अपनी पत्नी के सामने श्वसुर को गालिया दी थी। तव वह अपने मायके चली गयी और पिता से सारा वृत्तांत कह सुनाया। वीरशाह ने क्रुद्ध होकर दुर्गशाह पर आक्रमण कर दिया और उसका सिर काट कर चांदा की महाकाली को अर्पण कर दिया। वीरशाह की रानी हिरायी ने चांदा मे जो महाकाली का मन्दिर निर्माण किया था—उसमे दुर्गशाह की भी प्रतिमा वना दी गयी है—जिसका मुख देवगढ की ओर है। वीरशाह का अंगरक्षक हीरामन राजपूत प्रसिद्ध था, जिसने द्वितीय विवाह के अवसर पर राजा को मार डाला। (ई. सन् १६७२) वीरशाह के कोई संतान न थी—इसलिये रानी हिराया ने चंदनखेड़ा के गोविन्दशाह के पुत्र रामशाह को दत्तक लिया और राजगद्दी पर बैठाया।

रामशाह—अच्छे स्वभाव वाला था। इसी कारण से प्रजा उसको भोला राजा कहती थी। किन्तु पुत्री के दुश्चरित्र होने से वह प्राय: दु.खी रहता था। उसकी पुत्री का सम्वन्ध वागवा नामक एक गोंड से था। राजा ने वागवा को डराया-धमकाया, पर कोई असर न हुआ। तव रामशाह ने उसे मार डालने के लिये एक सेना भेजी। सैनिकों ने गाव घेर लिया। वागवा, अगवा और रघवा तीनो भाइयों ने भी अपने साथियों को एकत्रित करके घुघुस में युद्ध किया और उसी युद्ध मे सारा परिवार नष्ट होगया।

रामशाह के समय मे मुगल सूवा को वार्षिक पेशकाश देना वंद किया गया, क्योंकि मराठो का राजा चांदा तक पहुंच गया। सन् १७३० ईस्वी मे रघोजी भोसला चांदा गया था—उस समय रामशाह ने उसका शाही स्वागत किया था। ५ वर्ष वाद वह मर गया और उसका पुत्र नीलकंठशाह गद्दी पर बैठा—जिसकी कहानी अन्यत्र दी गई है।

चांदा का राज्य अरण्यवासी जागीरदारों मे विभक्त था—जिनको राजा के समान अधिकार थे, किन्तु प्रतिवर्ष नाममात्र का राजस्व चांदा पहुंच कर राजा को दे आते थे। युद्ध के अवसर पर राजा के यहा कुछ घुड़सवार और कुछ पैदल सिपाही भेज देते थे। पलसगढ, आंवागढ़, पानावारस, धनोरा, दुधमाला, गेवरधा, कोटगल, पोटेगांव, सोनसरी, देवलगांव, रंगी, कोरछा, खुटगांव, दमोना, मुरसगाव, गिलगांव, मौलसदा और अहेरी प्रमुख ज़मींदारियां थी। केवल अहेरी का क्षेत्रफल २५४५ वर्गमील था। वैनगंगा, प्राणहिता और इन्द्रावती नदियों का प्रवाह इसी जमीदारी मे से गुजरता था। यहां के राजा की रिश्तेदारी चादा राजवंश से थी।

समस्त खालसा विभाग किलेदारों के अधीन था—जो दीवान भी कहलाते थे। उनके अधीन देशमुख, देश-पांडे और सीरमुकद्दम अफसर थे। चांदा के राजा आरंभ मे वहमनी राज्य को पेशकाश देते थे। मुगलों के समय मे मुगलों को देते थे। यहां का शासन सरल न होने से प्रभावशाली राजागण नजराना लेकर संतुष्ट हो जाते थे।

चांदा राज्य में गोड कला के कई सुन्दर नमूने प्राप्त है—किन्तु उन पर मुसलमानों का काफी असर है। यहां के राजाओं ने कई समाधि स्थल और किले वनवाये है। चांदा का परकोटा और टीपागढ का किला उनके* सुन्दर नमूने

---

* टीपागढ—मुरसगांव ज़मीदारी में टीपागढ़ नाम की २ हज़ार फुट ऊंची पर्वत श्रेणी है। यहां पत्थरों का एक मजवूत किला था। टीपागढ़ में एक स्थानीय राजा रहता था। लोग यहां के पूरम राजा की कथा कभी-कभी

हैं। बल्लारपुर, बैरागढ, देवरवाडा, भादक, मटागा, नेरी और सेगाव के किले आज खण्डहर के रूप में वर्तमान है। धाटिया रामशाह का बनाया हुआ जुनाना तालाब और उसकी बधवाई देखने योग्य है। कुछ इमारतो पर गोंड राज चिह्न को महत्व दिया गया है।

'सिंह हाथी का मस्तक विदीर्ण कर रहा है।"—यह चादा के राजाओ का राजचिह्न था। जहा-जहा हिंदुओ के मन्दिर है-वहा-वहा मुसल्मान फकीरो की कबरें भी बनी है और गोडो ने उनको भी महत्व दिया था। महाकाली के मन्दिर के पास जूमनशाह की दरगाह है। कहते है कि पुराने जमाने में महाकाली को नरबलि दी जाती थी। एक बार जूमनशाह ने इस प्रथा को बद करने के उद्देश्य से स्वय देवी का भक्ष्य बनना स्वीकार किया और जब देवी आयी—तो मिया जी ने उसको भगा दिया। इसीलिये लोगो ने उनकी कब्र निकट ही बनवा दी। अपढ लोग मुसल्मानो द्वारा प्रचारित कथा को आज भी सत्य मानते है।

मध्यप्रदेश में मुस्लिम शासन

प्रदेश में मुसलमानो का आगमन

खिलजी वंश का अलाउद्दीन बडा प्रतापी सुलतान था, जिसने दक्षिण भारत में द्वार समुद्र तक के राजाओ को जीत लिया था। सन् १२९४ में वह ८ हजार सवारो को लेकर देवगिरि (वर्तमान दौल्ताबाद) के यादव नरेश प्रतापी रामचद्र को जीतने गया था। उस समय उसकी युद्ध यात्रा इसी प्रदेश मे हुई थी। विदर्भ उस समय में यादवाधीन था। देवगिरि जाते समय साडिया घाट के* समीप मे उसने नर्मदा पार की थी। वर्तमान हुशगाबाद जिले मे होता हुआ वह भमदेही का घाट लाघ कर अचल्पुर पहुचा था।† उसी भाति लौटते समय उसने अचल्पुर में मुक़ाम

सुना देते है। राजा के पास २ हजार योद्धा, ५ हाथी और २५ मशहूर घोडे थे। उनकी बदौलत वह टीपागट का राज्य करता था। एक बार छत्तीसगढ के राजा ने टीपागढ पर हमला किया। राजा पूरम ने काटगढ में उनसे लडाई की। युद्ध करते समय राजा का जूता गिर गया और उसे एक सिपाही ने उठा लिया। सिपाही ने सोचा राजा मारा गया। तब वह उसे लेकर रानी के पास पहुचा। रानी ने भी सच मान कर अपना पूरा १६ शृगार किया और बैल-गाडी में सवार होकर तालाब के तट पर गयी। उसी ताल के किनारे खडे होकर उसने गढ भवानी की प्रार्थना की और मुट्ठी भर तिल दाहिने हाथ मे फेंक दिये। उन तिलो के प्रभाव से शत्रुओ के मस्तक कटने लगे और इस तरह छत्तीसगढ की सेना नष्ट होगयी। उधर राजा पूरम भी विजयी होकर लौट आया, परन्तु इधर रानी मर चुकी थी-तब राजा भी दुखी हो कर तालाब में डूब मरा। तब से टीपागढ वीरान हो गया और राज्य भी दूसरो के हाथ में चला गया।

* साडियाघाट—नर्मदा तट पर सोहागपुर से २३ मील पूर्व है। लोग कहते है कि यहा नर्मदा के तट पर शाडिल्य ऋषि रहा करते थे।

† यादवो के समय में अचल्पुर एक महत्वपूर्ण नगर था। जान पडता है कि यादवो का राज्य सतपुडा की श्रेणियो को लाघते हुए खेल्डा तक पहुच गया था। खेल्डा का किलेदार यादवो के अधीन था। जैन ग्रथो में अचलपुर का वर्णन मिलता है। उनके अनुसार अचल्पुर के ईशान में मेघगिरि (मुक्तागिरि) पर्वत के शिखर पर साढे तीन करोड लोगो ने निर्वाण पाया था। निर्वाण मुक्ति ग्रथ में लिखा है—

अचल्पुर वरणिय दे। ईसाने मेघगिरि सिहरे।
अट्ठुय कोडियो निव्वाण। गया नमो तेसि॥

इडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ४२, पृष्ठ २२०।

भी किया था और वहां अपना एक कर्मचारी नियत करके विदर्भ को दिल्ली राज्य मे जोड़ लिया था। यहां से पहुँच कर १९ जुलाई सन् १२९६ को अलाउद्दीन (चचा को मार कर) दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। राज्य पाते ही (सन् १२०५ ईस्वी के अन्त तक) उसने राजपूतो के प्रवल स्तंभ रणथंबोर एव मेवाड को जीत कर उज्जैन, मांडू, धार, चदेरी, आदि हिन्दू राज्यो को जीत लिया था। उसके वाद उसने दक्षिण भारत के प्रवल राज्यो को जीत लिया था। मुसलमानों के आगमन से देश की काया पलट गयी थी। हिन्दू सभ्यता को मुस्लिम सभ्यता से टक्कर लेनी पड़ी थी—जिसका उल्लेख "तारीख-ए-फ़िरोजशाही" में भी मिलता है। अलाउद्दीन ने राज्यनीति से धर्म को पृथक् करने का प्रयास किया अवश्य—फिर भी निरंकुश शासन के दोषों को वह न हटा सका। उसने सैनिकवल पर अपनी धाक स्थिर रखी थी—किन्तु उसके आंख मूदते ही उसके राज्य मे विद्रोह फैल गया।

कुम्हारी इलाके के वीरान मौजा वढैया खेड़े के संवत् १३६७ के एक सती लेख से प्रगट होता है कि उस समय सुलतान अलाउद्दीन का शासन था।‡ इस लेख के दो वर्ष पूर्व का अर्थात् संवत् १३६५ का जो लेख मिला है—उसमें यह साफ अंकित किया गया है कि—

> "कालंजराधिपति श्रीमद् हम्मीरदेव विजय राज्ये संवत् १३६५ समय महाराजपुत्र श्री वाघदेव भुजमाने अस्मिन काले।"

अर्थात् ३ वर्ष के पूर्व वहा कालंजर वालो का आधिपत्य था। इससे स्पष्ट है कि अलाउद्दीन का आधिपत्य सन् १३०८ और १३०९ ईस्वी के वीच मे हुआ। अलाउद्दीन ने दक्षिण की दूसरी चढ़ाई मन् १३०९ मे की थी। इससे स्पष्ट है कि उसी वर्ष सागर जिला या उसका भाग मुसलमानों के कब्जे में चला गया। दूसरा लेख वढैया खेड़ा से चार मील पर ब्रम्हनी* गांव के सतीचीर पर है।

तुगलक शासन—अलाउद्दीन के मरने पर दिल्ली में जो विद्रोह हुआ था—उसका शमन गयासुद्दीन. तुगलक ने किया था और खिलजियों को हटा कर वह स्वयं वादशाह वन गया था। (ई. सन् १३२०) उसका एक फारसी लेख बटियागढ में† मिला है। उसमें उसका राजत्व काल स्पष्ट दर्ज है और हिजरी सन् ७२५ अकित है, जो सन् १३२४ ईस्वी में पड़ता है।

> "न अहद शुद गयासुद्दीन व दुनिया विनाई खैर मैमू गश्त मनसूव।"

गयासुद्दीन तुगलक ने सन् १३२० से १३२५ तक शासन किया था। उसका उत्तराधिकारी पुत्र मुहम्मद तुगलक फ़ारसी और अरवी का विद्वान् था। वह यूनानी तर्क तथा दर्शन का ज्ञाता एवं गणितशास्त्र का पण्डित था। इतने पर भी उसका शासन वेमेल वातो का भंडार था। जिससे उसका शासन चौपट होगया। उसके समय का विस्तृत विवरण शाहवुद्दीन अवुल अव्वास अहमद दिमश्की ने अपने ग्रंथ मे किया है :—

लोग कहते है कि मुसलमानों के आगमन काल मे यहा ईल—नामक राजा का शासन था, जिसका समर्थन "तवारीख-इ-अजमदी" से होता है। (ईस्वी सन् १०५८) राजा ईल ने एक मुसलमान फ़कीर का अपमान किया था। उस फकीर ने गज़नी पहुँच कर उसकी शिकायत शाहदूला रहमान गाजी से की। तव वह राजा को दड देने के लिये सेना सहित यहां आया। यहां दोनो का भयंकर युद्ध हुआ। जिसमे दोनों मारे गये। कहते है कि इस युद्ध में ११ हजार मुसलमान सैनिक मारे गये थे और वे "गज शहीद" मे दफनाये गये थे और दूला रहमान गाजी की कब्र भी वनाई गयी थी। उसी को दुवारा, अलाउद्दीन, दौलतावाद से लौटते हुए, वनवा देने की व्यवस्था कर गया था। उसके निकट ईल राजा की भी समाधि है।

‡ रा. व. स्व. हीरालाल कृत "मध्यप्रदेश की प्रशस्तियां।"

* रा. व. स्व. हीरालाल कृत "मध्यप्रदेश की प्रशस्तियां।"

† रा. ब. स्व. हीरालाल कृत "मध्यप्रदेश की प्रशस्तिया।"

गयासुद्दीन ने अपने पुत्र मुहम्मदशाह को सन् १३२६ ईस्वी में चदेरी, बदायूं और मालवा की फौजों के साथ तेलगाना जीतने का भेजा था। इसी अवसर पर जान पड़ता है, कि तुग़लकों का पाया इस जिले में दृढ़तर जम गया था। बटियागढ़ में एक संस्कृत लेख* मिला है—जिसमें संवत् १३८५ (ई० सन् १३२८) लिखा हुआ है। उसमें लिखा है कि "सुल्तान महमूद के समय जीव जन्तुओं के आश्रय के लिये एक गोमठ, एक बावली और एक बगीचा बनवाया गया था। उस लेख में महमूद का जिक्र यों किया गया है —

"कलियुग में पृथ्वी का मालिक शकेन्द्र है—जो योगिनीपुर (दिल्ली) में रह कर समस्त पृथ्वी का भोग करता है। और जिसने समुद्रपर्यन्त सब राजाओं को अपने वश में कर लिया है। उस शूरवीर सुल्तान महमूद का कल्याण हो।"†

सागर जिले में तुग़लकों का राज्य कबतक रहा—इसका प्रमाण नहीं मिलता—किन्तु जान पड़ता है कि जिस समय मालवा के राजा ने दिल्ली से स्वतंत्र हो कर चदेरी पर आक्रमण किया और उसे अपने अधीन कर लिया, तभी से दिल्ली का प्रभुत्व सागर जिले से उठ गया।

मुसलमानों की सफलता—उस युग के इतिहास से यह साफ प्रकट होता है कि युद्ध कला की बातों में तुर्क और पठान हिन्दुओं से बढ़े-चढ़े थे। यह श्रेष्ठता तबतक कायम रही—जबतक उनमें राजसी विलासिता नहीं आयी। संगठन और एकता का अभाव राजपूतों में पर्याप्त था। देश में छोटे-बड़े कई काबिल राजपूत राजा थे, किन्तु आगन्तुक शत्रु के विरोध में कभी आपस में संगठित न हो सके। राजनैतिक परिस्थिति की तरह सामाजिक स्थिति एकता विरोधिनी हो चुकी थी। अनेक विविध जातियों से भयंकर विषमता निर्मित हुई थी। साधारण नागरिक राजनीतिक विप्लवों से अलिप्त रहता था और न उसे यह चिन्ता थी कि "किस का राज पलट रहा है अथवा किसका नया राज्य विकसित हो रहा है।" सच है कि राजपूत वीरता में किसी भांति मुसलमानों से न्यून न था—पर उसके लड़ने के तरीक़े बड़ा परम्परागत पुरातन ही थे। वह अपने धनुर्वेद और शास्त्रों का कायल था और उसका रथ और हाथियों पर अधिक भरोसा था। उसके विपरीत मुसलमानों में जातीय संगठन था और वे अपने घोड़ों पर पूरा विश्वास रखते थे तथा जहां वे चाहते अपना स्थान छोड़ कर फुर्ती के साथ शत्रुओं पर चारों ओर से धावा कर सकते थे। स्थानीय राजाओं को बाहर से आनेवाले शत्रुओं की स्थिति की कोई जानकारी न थी और न वे जानने का प्रयास करते थे। इस कारण राजपूतों की ही अधिक क्षति होती थी। प्रारम्भिक मुसलमान सेना पर निर्भर होते थे अतः उन्होंने देश के आन्तरिक शासन में कोई अभिरुचि नहीं दिखायी—जिससे ग्रामीण शासन हिन्दुओं के हाथ में ही रहा। मुसलमान सरदारों ने देश की भूमि को जागीरों में बांट दिया था—और उन जागीरदार और अमीरों का कर्तव्य था—कि वे अपने यहां शान्ति बनाये रखें और प्रजा से विभिन्न करों को वसूल करके अपना जीवन-निर्वाह करें। मुसलमानों में भी आपसी स्पर्धा खूब थी—पर हिन्दुओं से युद्ध करते समय इस्लाम के नाम पर वे एक हो जाते थे। फिर भी मुस्लिम राजवंशों में शासन परिवर्तन तेज़ी से चलता था। सन् १३९८ ईस्वी में तैमूर के आक्रमण से दिल्ली के मुसलमानों की कमर टूट गयी और तुग़लकों का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तथा प्रादेशिक सूबेदार स्वतंत्र से बन गये। इस युग में मध्यप्रदेश बहमनी और मालवा के हाकिमों के अधीन चला गया। सतपुड़ा की घाटियों में अरण्यवासी अरण्यों में अपने राजा के अधीन स्वतंत्रतापूर्वक विचर रहे थे। फिर भी प्रदेश के पूर्वी भाग पर दक्षिण कोसल में रतनपुर के हैहय राजाओं का

---

* बटियागढ़ का संस्कृत लेख—संवत् १३८५ का—रा० ब० स्व० हीरालालकृत—लेख सूची न० १०६।

† अस्ति कलियुगे राजा शकेन्द्रो वसुधाधिप।
योगिनीपुरमास्थाय यो भुंक्ते सकलां महीम्॥
"सर्वसागरपर्यन्तं वशीचक्रे नराधिपान्।
महमूद सुरत्राणो नाम्ना शूरोऽभिनन्दतु॥"

राज्य निर्विघ्नता से चला जा रहा था। इसी काल में जबलपुर के निकट गढ़ा में अरण्यवासी गोडों का एक राज्य स्थापित हो गया था।

खिलजी—१५ वी शताब्दी के आरम्भ में दिल्ली की ओर से दिलावर खां गोरी मालवे का राज्यपाल था। यही सन् १४०१ ईस्वी मे स्वतंत्र "शाह" बन बैठा। उसका पुत्र हुशगशाह प्रतापी था। उसने काल्पी तक धावा किया, परन्तु चंदेरी में अपना राज्य जमाया या नही, इसका उल्लेख नही मिलता। हुशगशाह के मरने के २ वर्ष बाद मालवे का राज्य खिलजियो के अधिकार मे होगया। ये खिलजी उसी कौम के थे—जिन्होंने दिल्ली मे ई. सन् १२९०–१३२० तक राज्य किया था और जिनके तीसरे सुलतान ने पहले पहल दमोह मे खिलजी राज्य की जड़ जमाई थी। मालवे का प्रथम खिलजी सुलतान महमूदशाह था। फरिश्ता ने लिखा है कि "सन् १४२८ मे उसने चदेरी को अपने कब्जे मे किया।" इसलिये उसी वर्ष से समझना चाहिये कि दमोह का संबध दिल्ली के शाही घराने से टूट गया और दमोह नगर का विकास आरंभ हुआ, क्योकि दिल्ली शाही जमाने मे नयाबत का सदर मुकाम बटियागढ रखा गया था, किन्तु खिलजियो ने उसके बदले दमोह मुकर्रर किया।

दमोह मे महमूदशाह खिलजी के समय का कोई चिह्न अभी तक तो नही मिला किन्तु उसके पुत्र गयासशाह के समय का एक फारसी लेख दमोह मे उपलब्ध है। उसमे लिखा है कि शहनशाह गयासुद्दुनिया बादशाह के खासखवास मुखलिस मुल्क ने दमोह किले के पश्चिमी द्वार की दीवाल सन् ८८५ हिजरी अर्थात् १४८० ईस्वी में बनवाई*। यह ग़यास सन् १४७५ ईस्वी मे तख्त पर बैठा था और सन् १५०० ई तक उसने राज्य किया था। उस युग के कई सतीचीरों मे भी उसका नाम दर्ज है। यथा नरसिहगढ के समीप एक सतीचीर मे लिखा है कि किसी धनसुख की स्त्री सवत् १५४३ (ई. सन् १४८६) मे "महाराजाधिराज श्री सुलतान गयासुद्दुनिया शाह विजय राज्ये माढ़ोगढ विन्ध्यदुर्गे चंदेरी वर्तमाने" सती हुई थी। सतसूया के पास एक दूसरे चीरे में नासिरशाह का नाम लिखा है और संवत् १५६२ पडा है। नासिरशाह गयासशाह का लड़का था और सन् १५०० ईस्वी मे गद्दी पर बैठा था। उसका पुत्र महमूदशाह द्वितीय था—जिसके समय का एक लेख दमोह खास मे मिला था—उसमे लिखा है—"सवत् १५७० वर्षे माघ वदी १३ सोमदिने महाराजाधिराज राज श्री सुलतान महमूद शाह बिन नासिरशाह राज्ये अस्सै (इसी) दमौव (दमोह) नगरे. . दाम बिजाई व मड़वा व दाई व दर्जी ये रकमें। जो गांव को मुक्ता मे ले वह छोड दे।" इस तरह का विज्ञापन है।†

फरिश्ता लिखता है कि सुलतान महमूद अन्य राजाओं की नीति के विपरीत अपनी तलवार के बलपर राज्य करना चाहता था। अन्त मे परिणाम यह निकला कि वह मारा गया और खिलजी घराने का राज्य हट गया। सन् १५३० ईस्वी मे गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मालवे को अपने राज्य मे मिला लिया।

बहमनी राज्य का प्रभाव—मुहम्मद तुगलक के शासन काल मे दक्षिण के मुसलमान अमीरो ने गुलबर्गा मे इस्लाम की नयी सल्तनत कायम की, जिसका सूत्रधार हसन बहमनी था—जो फारस के बहमन—बिन-इसफन्दियार का वंशज कहलाता था। बरार तो पूर्ण रूप से बहमनी राज्य के अन्तर्गत था। उसने अपना राज्य चार तरफो मे बांट रखा था। जिनमे से एक तरफ (प्रदेश) बरार था। वहा का तरफदार अचलपुर मे रह कर राज्य का शासन करता था। बहमनी राज्य का प्रभुत्व ईस्वी सन् १३४७ से १४८४ तक था। उस समय बरार की राजभाषा फारसी हो गयी थी और उर्दू का चलन बोलचाल में आरम्भ हो गया था। दिल्ली से दौलताबाद जाने का राजमार्ग सतपुड़ा की घाटियों से गुजरता था। बुलढाना जिले के रोहणखेड़ और राजूर घाट तो उस समय प्रसिद्ध थे।

बहमनी शासन में बरार के शासन मे कोई परिवर्तन नही हुआ। देशमुख और देशपाण्डे ग्रामाधिकारी अपना कार्य वंशपरम्परागत करते चले जाते थे। उनको जो मुआवजा दिया जाता था—वह "वतन" कहलाता था। बरार

---

* रा. ब. स्व. हीरालाल सूची क्रमांक १०८, दमोह के किले का लेख—सन् १४८० ई.

† रा. ब स्व. हीरालाल सूची क्रमाक ११०, महमूद खिलजी का लेख—ई. सन् १५१२।

के ग्राम बदोबस्त में "बारावलुतेदार" प्रमुख वतनदार थे। राज में सदव परिवतन होते रहे, किन्तु पाण्ड और पटेल के वतन वशपरम्परागत चलते जाते थे। मुसल्मानी शासन में उनम कोई परिवतन नही किया गया। परगनो मे वडा इलाका—"सरकार" कहलाता था और समस्त बरार १३ सरकारो में विभक्त था। मुहम्मद तुगलक के समय में बरार का सूबेदार—"इमाद उल-मुल्क" था और वह अचलपुर में रहता था। इसन बहमनी का उत्तराधिकारी मुहम्मद शाह प्रथम (ई सन् १३५८—१३७३) था—जिसने बरार की सूबेदारी सफदर खा को दी थी। मुहम्मद शाह का उत्तराधिकारी मुजहिदशाह था—जिसके समय में राज्य के प्राय सभी अमीर और सरदार विरोधी हो गये थे। उनमें सफदर खा भी था। इस विरोध का परिणाम यह हुआ था कि मुजहिद खा मारा गया और अमीरो ने उसके चाचा दाउद खा को गद्दी पर बिठाया। वह भी मई सन् १३७८ में मारा गया। दाउद खा के मारे जाने से मुहम्मदशाह द्वितीय सुल्तान बनाया गया (ई सन् १३७८ से १३९७)। इस सुल्तान का प्रबल समर्थक बरार का अमीर सफदर खा था। इसी सुल्तान का दीवान "पेशवा" कहलाता था। मुहम्मदशाह का उत्तराधिकारी फिरोज-शाह (ई सन् १३९७—१४२२) था, जिसके समय में बरार का तरफदार सफदर खा का पुत्र सलावत खा था। फिरोजशाह ने विजयनगर के देवराय राजा को हराया था। इसी युद्ध में सलावत खा भी बरार की सेना लेकर विजय नगर गया था।

जिस समय सफदर खा विजयनगर गया था—उसी बीच खरवा के राजा नरसिंह राय ने* आक्रमण कर के अचलपुर को लूट कर वहा अपना शासन जमा दिया था। वास्तव में नरसिंह राय एक साधारण सा राजा था और उसने यह प्रयास किस बूते पर किया? यह राजकीय पहेली है। इतने महत्वपूर्ण प्रदेश का पचा जाना भी सरल न था। जान पडता है कि मालवा के सुलतान ने उसे उत्तेजित किया होगा और उसके बल पर ही उसने यह साहस किया होगा। पर अवसर आने पर मालवा का सुल्तान हुशगशाह अलग हो गया—क्योकि उसकी नजर खेरडा पर लगी हुई थी। जो हो, खेलडा के नरसिंह राय न एक बार तो अचलपुर पर अपना आधिपत्य जमा लिया। जब यह वृत्तान्त विजयनगर से लौटते हुए सुल्तान फिरोजशाह को ज्ञात हुआ— तो वह सेनासहित माहूर के रास्ते से अचलपुर के समीप पहुचा। उस समय नरसिंह राय खेरला में था, इसी कारण फिरोज शाह ने अचलपुर में मुकाम किया और अपने भाई अहमद खा को खेल्डा पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया। नरसिंहराय ने अपनी सहायता के लिये मालवा और खानदेश सुल्तानो से आग्रह किया किन्तु वे मौके पर दूर हो गये। हताश हो नरसिंह राय ने एक बार खेलडा से लडने का निश्चय किया और किला छोड कर ८ मील बाहर चला आया। अन्त में उसने फिरोज शाह से सधि कर ली और अपनी पुत्री ब्याह दी। सुल्तान इससे प्रसन्न हो गुलबर्गा वापिस लौट गया। इस युद्ध के बाद नरसिंहराय ने खेलडा का शासन २७ वर्ष तक किया।

अचलपुर से लौटने के बाद ही सुल्तान फिरोज शाह मर गया और अहमद शाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। वह स्वय अचलपुर में आकर रहा था और उसने गाविल्गढ † और नरनाला ‡ किलो की मरम्मत की थी। इसी समय

---

* राजा नरसिंह राय—बैतूल नगर से ८ मील पर जगल में खेरवा पहाडी किला है—जहा पर स्वामी मुकुन्द-राज की समाधि है। नरसिंह राय यादवो का सूबेदार और अचलपुर का मातहत था।

† गाविल्गढ—बरार के प्रमुख किले चिखलदरा से एक मील पर सतपुडा की ४ सहस्र फुट ऊचाई पर बना है। पुरातन काल में इस किले का निर्माता गवली जाति का राजा था। इसी कारण लोग उसे गवलीगढ कहते हैं। सन् १४२५ ईस्वी में इस किले की मरम्मत अहमदशाह बहमनी ने करवायी थी। यह किला ऐसे स्थान पर बना है—जहा पहुचना सरल नही है। फतहउल्ला इमादशाह ने भी उसका कुछ भाग बनवाया था। अमरावती द्वार पर उसका उल्लेख भी है। साथ ही गज और सिंह की मूर्तिया खुदवायी गयी। (सन् १४८८ ई) दूसरा लेख बुर्ज पर है—जो ईस्वी सन् १५५७ का है।

‡ नरनाला—मल्घाट पर आकोट से १२ मील पर ३,१६१ फुट ऊचाई पर यह किला है। किले के ३ भाग है—पूर्व में जाफराबाद, मध्य में नरनाला और पश्चिम में तेलियागढ है। तीनो भाग परकोटे से घिरे हुए है। इस किले

मालवा के सुलतान हुशंगशाह ने खेरला पर हमला किया था। नरसिंहराय ने अहमदशाह वहमनी से मदद मागी थी—इसलिये उसने वरार के सूवेदार खाजहां को सेनासहित भेजा था। फिर भी राजा को यथोचित्त सहायता नही दी गयी। हुशंगशाह ने खेरला को लूट लिया—जो अहमदशाह के लिये चुनौती थी। पूर्णा नदी के किनारे वरार की सेना को उससे युद्ध करना पड़ा था। इससे जान पड़ता है कि हुशगशाह यहा हार गया और मेलघाट के रास्ते मालवा को चल दिया।

कुछ दिन ठहर कर ई. सन् १४३३ मे हुशंगशाह ने खेरला पर फिर से आक्रमण किया। नरसिह राय पिछले युद्धो के कारण तवाह होगया था और सेना संगठन के लिये भी उसके पास पर्याप्त धन नही था। फिर भी उसने मालवा की सेना से युद्ध किया। फरिश्ता ने लिखा है—"इस समय अहमद शाह और गुजरात के सुलतान से युद्ध छिड़ गया था—इसी बीच मे हुशंगशाह ने मौका पाकर खेरला पर हमला कर दिया। अहमदशाह से सहायता न पाने के कारण नरसिहराय इस युद्ध में मारा गया और हुशंगशाह ने खेरला को मालवा राज्य मे जोड़ लिया।" कहते है कि अहमदशाह ज्यो ही गुजरात से वापिस लौटा त्यो ही उसने हुशंगशाह पर आक्रमण कर दिया, किन्तु खानदेश के सुलतान नासिर खां फ़ारुकी ने बीच मे पड़ कर समझौता करा दिया—जिससे खेलड़ा तक का सारा प्रदेश मालवा राज्य के अन्तर्गत चला गया। हुशंगशाह ने, अपना नाम चिरस्थायी वना रहे, इस उद्देश्य से, नर्मदापुर का नाम हुशंगावाद रख दिया।

मुहम्मद शाह तृतीय (ई. सन् १४६३—१४८२) के समय से वहमनी राज्य पतन की ओर मुड़ गया। उस का वजीर मुहम्मद गवान चतुर था। उसने राज्य के ८ सूवे वनाये (इसके पूर्व ४ सूवे थे) क्योकि वह नही चाहता था कि राज्य के सूवेदार प्रवल हो। उस योजना के अनुसार वरार के २ सूबे वनाये गये थे और गाविलगढ तथा माहुर राजधानियां क़ायम की गयी। गाविलगढ़ का सूवेदार फतहउल्ला इमादमुल्क था और माहूर का ख़ुदावंत खां। ग़वान की योजना से राज्य के कई अमीर विरोधी हो गये और उन्होने सुलतान और वज़ीर मे मनोमालिन्य भी करा दिया—उसका फल यह निकला कि निरपराध गवान सूली पर लटकाया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वहमनी राज्य का सगठन हिल गया। मुहम्मदशाह भी मर गया और उसका उत्तराधिकारी महमूद शाह गद्दी पर बैठा—जो निकम्मा सिद्ध हुआ। उसके शासन काल में राज्य के सूवेदार स्वतंत्र हो गये और वरार में "इमादशाही" राज्य की स्थापना हो गयी। यह स्वतंत्र राज सन् १४५७ ईस्वी तक चलता रहा और वाद में वह अहमदनगर राज्य मे जोड़ा गया।

निमाड़ के फारूकी—तुगलक़ वश के समय मे मुसलमानी भारत कई स्वतंत्र राज्यो मे विभक्त होगया था। इन प्रातीय राज्यों मे निमाड़ भी एक था। गंजाल और हिरन फाल के मध्य मे निमाड़ था, जिसकी राजधानी नेमावर (हंडिया के उत्तरीय तट पर) थी। सुलतान फ़िरोज़ शाह के समय मे खानदेश राज्य की स्थापना हुई थी। सुलतान ने एक फ़र्मान के द्वारा तापी कछार का प्रदेश मलिक फ़रुक को दे दिया था। यों तो वह एक साधारण सा सिपाही था, किन्तु तालनेर के युद्ध से उसका भाग्य चमक उठा और सुलतान ने उसे सूवेदार वना दिया। आरंभ मे

के २२ द्वार और ६७ वुर्ज़ है, किन्तु मुख्य द्वार चार ही है। किला १४ मील के घेरे मे है। परकोटा कही पर २५ फुट और कही ४० फुट चौड़ा है। यहां कई इमारतें भी है—जिनमे पुराना महल, औरंगज़ेव का महल, जामा मसज़िद और नगारखाना मुख्य है। जिन अपराधियो को प्राणदंड की सजा दी जाती थी—उसको खूनी बुर्ज़ से नीचे खाले में ढकेल दिया जाता था। शाहनूर द्वार की कारीगरी देखने योग्य है। उसकी नक्काशी में कुरान की आयतें अंकित है। मुख्य द्वार "महाकाली" द्वार कहलाता है—उसी पर फतह उल्ला इमाद मुल्क का फ़ारसी लेख सन् १४८७ ईस्वी का है। यहां जल के २२ हौज़ है—जिनमे ४–५ में तो वारहो मास पानी रहता है। यहां हाथीखाना, टँकसाल, अंवर-खाना, वारूदखाना आदि के पृथक्-पृथक् स्थान है। यहां पर तोपें भी ढाली जाती थी—एक ९ गजी तोप पर मुगल सम्राट् औरंगज़ेव का नाम अंकित है।

मलिक फरूक की राजधानी तालनेर थी। फरिश्ता कहता है—"मलिक फरूक १२ हजार सवारों का सूबेदार सतपुड़ा की घाटियों में स्थित समस्त गोंड राजाओं से पेशकश वसूल करता था। उसके राज्य के पूर्व में बरार, पश्चिम में गुजरात, उत्तर में मालवा और दक्षिण में महाराष्ट्र था। मलिक का विवाह मालवा के सुल्तान दिलावर खां गोरी की पुत्री के साथ हुआ था—जिससे उसका पाया मजबूत हो गया था।

इस राज्य का प्रमुख किला असीरगढ़* था—और यह जिसके अधिकार में हो—वही उस प्रदेश पर हुकूमत कर सकता था। सन् १३७० ईस्वी में मलिक फरूक ने ताप्ती के कछार में अपनी सल्तनत की नींव रखी और उसका विकास उसके पुत्र नासिर खां ने किया। नासिर खां को गुजरात के सुल्तान ने "खान" की उपाधि दी थी—जिससे उसका मुल्क "खानदेश" कहलाया। फिर भी असीर का किला हिन्दू किलेदार के अधीन था। नासिर ने उससे साथ मित्रता कर के वह किला ले लिया। असीरगढ़ प्राप्त कर लेने पर इसको मुबारकबाद देने के लिए दक्षिण से बुरहानुद्दीन और जनुद्दीन नाम के दो फकीर तालनेर गये थे। उनका शुभ सवेन नासिर ने पाकर ताप्ती के दोनों ओर दो नगर बसाये और एक का नाम जनाबाद तथा दूसरे का नाम बुरहानपुर† रखा। इन दोनों फकीरों पर सुल्तान की श्रद्धा थी।

नासिर खां ने अपनी पुत्री का विवाह बहमनी राज्य के सुल्तान अलाउद्दीन से किया था, किन्तु उसकी दूसरी बेगम हिन्दुस्तानी थी—जिस पर उसका अधिक अनुराग था। इसी कारण नासिर खां ने बहमनी राज्य पर आक्रमण किया

---

* असीरगढ़—जनश्रुति के अनुसार यह किला आसा अहीर ने प्राचीन युग में बनवाया था—जो ८५० फुट ऊंचा है और यहां आसा देवी का स्थान है। मालवा के परमार और चौहान राजाओं का प्रभुत्व था। पृथ्वीराज रासो में इस किले का उल्लेख आया है। पृथ्वीराज के समय में यहां का राजा तार था। उसने सन् ११९१ में मुहम्मद गोरी से कन्नौज में युद्ध किया था। तार के पश्चात् १ सदी तक उसकी संतानों का ही राज्य था। सन् १२९५ ईस्वी में अलाउद्दीन ने इस किले का घेरा था—तब "रायसी" को छोड़ कर सम्पूर्ण वंश नष्ट हो गया था। तब से यह किला मुसल्मानों के ही अधीन रहा।

इस किले के तीन भाग हैं। सबसे ऊपर वाला भाग ६० एकड़ के घेरे में परकोटे से घिरा हुआ है और वहां जल का भी सुपास है। इस किले में उतर कर मध्यवर्ती भाग कमरगढ़ कहलाता है और वह भी परकोटे से घिरा हुआ है। सबसे नीचे का हिस्सा "मलाई गढ़" है—जिसको आदिल खां फारुकी ने बनवाया था। उसकी इमारतें, द्वार और मसजिद प्रेक्षणीय हैं। इस किले के पश्चिमी द्वार पर सम्राट् अकबर का एक लेख (१८ अगस्त सन् १६०० का) है। फूटा द्वार की चट्टान पर हिजरी सन् १०३७ और १०४० के लेख शाहजहां के समय के हैं—जिनमें परवेज और महाबत खां का उल्लेख है। कमरगढ़ के द्वार पर औरंगजेब का भी लेख है—जिसमें लिखा है कि—"उसने तलवार के बल पर राज्य पाया था।"

† बुरहानपुर—बुरहानपुर और जैनाबाद दोनों ताप्ती (ताप) नदी के उभय तट पर स्थित हैं। बुरहानपुर की जुम्मा मसजिद और बीबी मसजिद फारुकी कला के सुन्दर नमूने हैं। आदिल शाह का बनाया हुआ महल तो अब नष्ट हो चुका है। सन् १६०० ईस्वी में अकबर ने इसे दक्षिणी सूबे की राजधानी बनाया था। अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब आदि सम्राटों ने अपने जीवन के कुछ वर्ष यहां व्यतीत किये थे। शाहनवाज की यहां सुंदर कब्र है—जो देखने योग्य है। उतावली के तट पर हजरत बुखारी की कब्र है। नगर का परकोटा सन् १७३१ ई० में निजाम आसफजहां ने बनवाया था—उसका घेरा ५॥ मील और चौड़ाई २॥ मील में है। परकोटे के अष्ट द्वार देखने योग्य हैं। ये राजपुरा, शिकारपुरा, इतवारा, सिंधीपुरा, नागझिरी, शनिवारी, लोहारमंडी और राजघाट हैं। राजघाट तो बहुत ही सुन्दर है। यहां नालियों के द्वारा नगर में पानी पहुंचाया गया है। बुरहानपुर का पुराना नाम "बसनाखेड़ा" था।

जैनाबाद में मुगलकालीन कई स्मारक हैं। राजा जयसिंह पुरा के समीप अहूखाना देखने योग्य है। हैदराबाद का निजाम यहां आकर रहा था।

था। अलाउद्दीन ने निमाड़ी सेना को रोकने के लिये सूबेदार खलिकहुसेन खां को भेजा था। मेहकर मे हुसेन खा से वरार का सूवेदार खाजहा भी आ मिला था। रोहणखेड़ की घाटी में निमाड़ी सेना को वहमनी राज्य की सेना ने हरा दिया जिससे नासिर खाँ तैलंग के किले को भाग गया। खलिक ने बुरहानपुर लूट लिया और नासिर खां का महल तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिया। लूट मे ७० हाथी और कुछ तोपखाना हाथ लगा। ये उस समय वेशकीमती समझे जाते थे। नासिर खा ने ४० वर्ष शासन किया था। (ई. सन् १४३७)।

फारुकी वश ने ईस्वी सन् १३७० से १६०० तक शासन किया है। उनकी वंशावलि बुरहानपुर की जुम्मा मसज़िद में फ़ारसी और संस्कृत मे शिलाकित है।‡ यह लेख संवत् १६४६ (ईस्वी सन् १५९०) का है। उसका पुत्र मीरन आदिल खां उर्फ मीरनशाह राजा हुआ। वह चार वर्ष ही जीवित रहा। उसके पश्चात् उसका पुत्र मीरन मुवारक़ खां उर्फ मुवारकशाह चौखंडी गद्दी पर वैठा। उसने सन् १४५७ ई. तक राज्य किया। परन्तु दोनो के जमाने मे कोई उल्लेख योग्य घटना नही हुई। मीरनशाह के मरने पर उसका पुत्र मीरन गनी उर्फ़ आदिल खां, जिसको आदिलशाह आयना या अहसान खां भी कहते थे, राजा हुआ। यह चैतन्य निकला। उसने गोडवाने के कई राजाओ को अपने अधीन कर लिया और राज्य के भील लुटेरों को दवा दिया। उसने "शाह-झारखण्ड" की उपाधि धारण की थी और गुजरात के सुलतान को "पेशकाश" देना बन्द कर दिया था, जिससे गुजरात के सुलतान ने चढाई करदी। तव उसने असीरगढ किले का आश्रय लिया था। अन्त मे उसको गुजरात वालो की शर्तें स्वीकार करनी पडी। आदिलशाह सन् १५०३ ईस्वी मे मर गया तव उसका भाई दाऊद खा गद्दीपर वैठा। इसने अहमदनगर के राजा पर चढाई कर दी, परन्तु असीरगढ़ को लौटना पड़ा और मालवा के सुलतान से सहायता मागनी पड़ी, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसे मांडू के राजा का स्वामित्व स्वीकार करना पड़ा। दाऊद खा ई. सन् १५१० मे मर गया। वह बुरहानपुर मे दफ़नाया गया। उसके पूर्व उसके सभी पुरखे तालनेर मे दफन किये गये थे। उसका पुत्र गज़नी खा गद्दी पर दो ही दिन वैठ पाया कि उसको विष दे दिया गया। इस प्रकार मीरन शाह की शाखा मे अव कोई वारिस न रहा।

तव मीरनशाह के भाई कैसर खाँ का पौत्र आदिल खा उर्फ़ आदिल शाह आजिमे हुमायू राजा हुआ। आलम खां के एक सम्वन्धी ने झगड़ा उठाया-परन्तु वह असफल रहा। इस आदिल शाह ने १० वर्ष तक राज्य किया। उपरान्त उसका पुत्र मीरन मुहम्मद खां गद्दी पर वैठा। (ई. सन् १५२०—१५३५) गुजरात का सुलतान वहादुरशाह उसका मामा था। उसने मामा की सहायता से माडू जीता था। उसका मामा नि:सतान मर गया था—इसलिये गुजरात की गद्दी इसे मिलने वाली थी—किन्तु पहुचने के पूर्व ही वह रास्ते मे मर गया। तव मीरन मुवारक़ शाह खानदेश का राजा हुआ। उसने शाह की पदवी धारण की थी। किन्तु उसे गुजरात का राज्य नही मिला, क्योकि वहां के अमीरों ने वहादुरशाह के भतीजे को अपना राजा वना लिया था। मुवारकशाह ने सन् १५६६ ईस्वी तक राज किया था। सन् १५६१ ई. में मालवा के सुलतान वाजवहादुर ने मुगलों द्वारा राज्यच्युत होने पर बुरहानपुर का आश्रय लिया। तव मुगलो ने बुरहानपुर को आ घेरा और लूट लिया, परन्तु जव मुगल फौज घर को लौटी तव मालवा, खानदेश और वरार के मुसलमानों ने मिल कर उसे नर्मदा के किनारे घेर कर काट डाला। परन्तु फारुकी वंश के पतन का आरंभ यही से शुरू होगया।

मुवारकशाह के मरने पर उसका पुत्र मीरन मुहम्मद खां गद्दी पर वैठा। उसने गुजरात की गद्दी पाने का यत्न किया, किन्तु उस प्रयास मे उसको काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा। उल्टे खानदेश पर चढ़ाई हुई और सारा मुल्क़

‡ इपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ९, पृ. ३०६, जिसमे संस्कृत वशावलि भी अंकित है—अन्त मे लिखा है—

"स्वस्ति श्री संवत् १६४६ वर्षे शाके १५११ विरोधि संवत्सरे पौषमासे शुक्लपक्षे १० घटी सहैकादश्यां शुभघटी ४२ योगे वाणिज्यकरणेस्मिन दिन रात्रि घटि ११ समये कन्यालग्न श्री मुवारक शाह सुत श्रीः एदलशाह राज्ञी मसीतिरियं निर्मिता स्वधर्मपालानार्थम्।"

लूटा गया। शीघ्र ही अहमदनगर वालों ने आक्रमण कर दिया और बुरहानपुर को घेर लिया। तब मीरन मुहम्मद असीरगढ़ में जा छिपा। वह किला भी घेरा गया। तब उसने ४ लाख रुपये देकर अपनी मुक्ति प्राप्त की। मीरन मुहम्मद सन् १५७६ में मर गया। तब उसका भाई रजाअली खां उर्फ आदिलशाह गद्दी पर बैठा। इसी ने बुरहानपुर की जुम्मा मसजिद बनवाई थी। असीर की एक तोप पर उसका नाम अंकित है, जो अब खण्डवे के बाग में रखी हुई है। इसी ने सम्राट् अकबर की अधीनता मान ली और शाह की पदवी निकाल डाली। यह दक्षिण की चढ़ाइयों में उनकी सहायता करने लगा। उसकी मृत्यु सन् १५८६ में हुई। तब उसका लड़का मिरज़ा खां उर्फ बहादुरशाह गद्दी पर बैठा, जो फारुकी वंश का अंतिम राजा था। उसकी मृत्यु सन् १६०० ईस्वी में हुई। इसप्रकार मलिक खां के वंशधरों का राज्य लगभग २३० वर्षों में समाप्त हो गया और उनका राज्य मुगलों के हाथ में चला गया।

फारुकी शासन—फारुकी वंश के शासकों ने बुरहानपुर में बड़ी सुन्दर तथा भव्य इमारतें बनवायीं। उनकी बनवायी हुई बहुत सी बावड़ियां, मकबरे, मसजिद और महल अब भी विद्यमान हैं। जिनकी कला अध्ययन की वस्तु है। फारुकी वंश के मुसल्मानों ने बुरहानपुर की खासी उन्नति की। यह नगर रुई, रेशम एवं ज़री के कामों के लिये प्रसिद्ध था। अबुल फज़ल के अनुसार—"निमाड़ की अधिकतर प्रजा कुन्बी, गोंड और भील जाति की है और यहां के जंगलों में हाथी पाये जाते हैं। यह प्रदेश वस्त्र व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध है।" मुसल्मानी युग में यहां कई मुसलमान और हिन्दू सन्तजन हुए जिन्होंने हिन्दू और मुसल्मानों को भाई के समान-प्रेमपूर्ण व्यवहार करने का उपदेश दिया है। बुरहानपुर के औलिया हज़रत शाह गुरारी सूफी मत के थे, जिन्होंने जनता में भगवान के प्रेम और आराधना के तत्त्व का प्रचार कर के दोनों जातियों के बीच का भेदभाव दूर करने का आजीवन प्रयास किया था। उनकी कब्र को आज भी हिन्दू मुसल्मान पूजते हैं।

फारुकी वंश के शासनकर्त्ताओं ने हिन्दुओं के प्रति उदार भाव रखा था तथा पुराने राजपूतों को भी पनपने दिया था। उनके पास धार्मिक भेदभाव न था—शिया होने के कारण वे सहिष्णु भी थे। उस वंश की वंशावलि जिसको आदिलशाह की बेगम ने अंकित करवाया था—उसमें फारसी के साथ संस्कृत भाषा को उचित स्थान दिया गया है। अंतिम बहादुर खां ने बहादुरपुर बसाया था, जहां दूल्हा रहमानशाह की दरगाह है। दूल्हा साहब एक साधु पुरुष थे। उन्होंने हिन्दू-मुसल्मानों का एक सरल मार्ग बताया—जहां ईर्ष्या और द्वेष की बू-बास तक न थी। इस प्रेम मार्ग के अनुयायी कालान्तर में "पीरज़ादा" कहलाने लगे। दूल्हा साहब विष्णु के दसवें अवतार की मान्यता देते थे और उस "कलकी अवतार" को "निष्कलंकी" कहते थे। उनके रचे हुए ग्रंथ में दोनों धर्मों की अच्छी बातें संग्रहीत हैं। इस सम्प्रदाय के लोग अपनी पुरातन परम्परा को भी मानते थे। जाति और धर्म में रहते हुए भी वे पीरज़ादा सम्प्रदाय में सम्मिलित किये जाते थे। खानदेश के कुनबियों और गूजरों में इस पंथ का विशेष प्रचार था।

सन १५०० ईस्वी के लगभग निमाड़ में सिंगाजी नाम के एक प्रसिद्ध संत हो गये हैं। ये जाति के अहीर थे। आदिलशाह फारुकी के शासन समय में सारे निमाड़ में इनकी मनौती होती थी। यहां तक कि राजवंश के लोग उनके दर्शनार्थ उनके आसन पर पहुंचते थे। सिंगाजी जंगलों में गाय चराते हुए भगवान के गीत गा-गा कर मस्ती के साथ रहते थे। एक बेर कुछ चोरों ने उन के जानवर चुरा लिये थे—जिसका परिणाम यह हुआ था कि वे चोर अंधे होगये थे। तब चोर अपने कृत्य पर पछताते हुए उनके पास गये और उन्होंने उनसे क्षमा मांगी—जिससे उनकी दृष्टि फिर से लौट आयी। उस गोप ने जीवन की उस निचाई से अनुभूति की ऊंचाई के जिस उन्नताकाश में प्रवेश पाया, वह अलौकिक ही है। सिंगाजी जीवन के महान् तत्त्वों के द्रष्टा और अनुभूतियों के माधुर्य से पूर्ण अनेक अटपट सरल गीतों के रचयिता थे—जिनको आज भी ग्रामीण जन गा-गा-कर संसार तापों से बचने का प्रयास करते हैं। आज चार सदियां बीत गयीं, किन्तु लोग उन्हें अब तक नहीं भूले हैं। सिंगाजी की मृत्यु सन् १५६० ईस्वी में हुई थी। लोग उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने के हेतु कुवार मास में सिंगाजी पहुँचते हैं और उनका प्रिय नैवेद्य गुड़ चढ़ाते हैं। जहां सिंगाजी रहते थे—उस गांव का नाम भी वही है। देहात के लोग उनके गीत गा-गा-कर झूमते हुए यात्रा को सफल करते हैं।

सिगाजी के शिष्य खेमदास भी प्रसिद्ध थे। सिगाजी के समय में हुशंगाबाद जिले में भीलत-बाबा नाम के एक और प्रसिद्ध संत हो गये हैं-जो गोप जाति के ही थे। लोग कहते हैं कि वे सर्प का विष दूर करने मे सिद्धहस्त थे। दूर-दूर से सर्प दंश से ग्रस्त लोग उनके आश्रम मे पहुचते थे। इसके अतिरिक्त उनकी मनौती से अन्य बाधाएँ दूर होती थी।

बुरहानपुर के अमीरों ने शान-शौकत से जीवन बिताया था। उनके समय मे दूर-दूर से वहा आकर कलाकार वसे थे। विलासी साधन जुटाने मे इन्होंने कोई कसर नही छोड़ी। जहा अमीर थे वहा सैकडों गुलाम भी थे। दास बना लेना उस युग मे आसान था। यहाँ तक कि महाजन लोग अपने कर्जदार को गुलाम बना कर बेच देते थे। यहा की प्रजा औसत दर्जे की गरीब थी—मानों ईश्वर ने उनको उसी तरह जीने के लिये भेजा हो। फिर भी यहा की किसानी श्रेष्ठ थी। बुरहानपुर ने वस्त्र व्यवसाय मे खूब तरक्की की थी। उस समय मे यहा का कपड़ा विदेशो तक अच्छी तादाद मे जाता था। बुरहानपुर से बाहर जाने वाला माल सरलता से खंभात, सूरत और भडोच पहुचाया जाता था। यहा से बाहर जाने वाले पदार्थ सूती कपड़ा, नील, मसाला और अफीम थी। उसी तरह से विदेश से आने वाले पदार्थ गलीचे, कच्चा रेशम, घोड़े, धातुओ की वस्तुएँ और कीमती पत्थर थे। सन् १६२० ईस्वी मे सूरत का प्रमुख सौदागर वीरजी वोहरा था—जो ससार मे सबसे धनिक व्यापारी माना जाता था, उसकी कोठी बुरहानपुर मे भी थी। तोपे और बन्दूक बनाने वाले यहां के कारीगर भी प्रसिद्ध थे।

बुरहानपुर में मुगल शासन—बहादुरशाह अपने बाप के समान दूरदर्शी न था। उसने सम्राट् अकबर से वैर कर लिया और अपनी रक्षा के लिये असीरगढ़ में ऐसा प्रबध किया कि उसमे १० वर्ष तक घिरे रहने पर भी बाहर से किसी वस्तु के लाने की आवश्यकता न पड़े। सम्राट् अकबर ने स्वय बुरहानपुर पर आक्रमण कर के उस जीत लिया और असीरगढ़ को घेर लिया। किला ऐसा अटूट था कि उसे घेरे रहने से क्या होता था? उसमे सुरग भी न लगाई जा सकती थी। अकबर ने किले को लेने का भरसक प्रयास किया—पर सफल न हो सका। उसने भी किला पाने का निश्चय किया। उसने किले के रास्ते बद करवा दिये और बुरहानपुर मे रहने लगा। असीरगढ पर दिन-रात तोपो की मार आरम्भ हो गयी—यह क्रम एक मास तक बराबर चलता रहा। तब बहादुरशाह को सुलह करने की सूझी। उसने अपनी मा और पुत्र को अकबर के पास इसी अभिप्राय से भेजा। परन्तु अकबर ने साफ कह दिया कि स्वयं बहादुर-शाह आवे। उसके लिये वह राज़ी न था। इधर अक़बर की तोपें बराबर अपना कार्य करती रही और तीन मास बीत गये। इसी बीच मे यह अफवाह फैली कि अक़बर की सेना ने अहमदनगर ले लिया—जिससे बहादुरशाह का उत्साह घटने लगा। उधर अकबर का पुत्र सलीम पिता से बागी होगया। इसलिये अब दोनों निपटारा करने के लिए इच्छुक थे।

खानदेश के नवाबो की परम्परा के अनुसार असीरगढ मे राजकुल के सम्बन्धियों के सात लड़के काम पडने पर गद्दी पर बैठने के लिये तैयार रखे जाते थे। उनको किले के बाहर जाने की आज्ञा नही थी। केवल वही बाहर जा सकता था-जिसको राजगद्दी मिलती थी। बहादुरशाह को भी इस प्रकार अपना समय इस किले मे बिताना पडा था। अकबरी मोर्चे के समय असीरगढ का किलेदार हब्शी था। वह नमकहलाल मनुष्य था और वह २ लाख मुगल सेना से लड़ रहा था। उसने ऐसा व्यूह रचा था कि तोपो की मार से कोई असर नही हुआ था। तब अकबर ने छल कपट करने का निश्चय किया। उसने बहादुरशाह को किले के बाहर आकर भेट करने का निमंत्रण दिया और सुरक्षित लौटा देने के लिये सिरे पादशाह की कसम खाई। बहादुरशाह ने विश्वास कर लिया। वह किले के बाहर आगया। उसने गले में रुमाल डाल कर नम्रतापूर्वक सम्राट् को तीन बार सलाम किया। किन्तु एक मुगल सरदार ने पीछे से पकड़ कर उसे जमीन पर दे मारा और कहा कि सिजदा करो। इस उद्दडता पर अक़बर ने ऊपर से नाराज़ी दिखला कर बहा-दुरशाह से कहा कि—'तुम किलेदारो को इसी समय लिख दो कि किला हमको सौप दे।' बहादुरशाह ने यह स्वीकार न किया और विदा मागी—पर वह लौट न सका। अकबर ने शपथ की कुछ परवाह न की।

सन् १५६६ ईस्वी में वरार की व्यवस्था करने के हेतु जयपुर-कोथली के मार्ग से * बालापुर गया—जो उस समय प्रधान नगर और वरार की उपराजधानी था। मुराद यहा पर कई दिनोतक रहा था और यही पर उसने अपना विवाह खानदेश के सुल्तान की कन्या के साथ किया था। उसने यहा पर एक महल और शाहपुर मोहल्ला बसाया था। मुराद के बुरहानपुर लौट जाने पर भी कई दिनो तक सेनापति खानखाना जावना में रहा था।

अहमदनगर की सधि दक्षिण के सुलतानो को पसद न आयी और उन्होने विद्रोही आचरण आरम्भ कर दिया। यह ज्ञात होते ही स्वय अकबर दिल्ली से चल दिया। सन् १५६६ में वह बुरहानपुर पहुँच गया और वहा से अपने पुत्र दानियल को एक बडी सेना के साथ अहमदनगर की ओर भेजा। मुगलो ने वहा पहुँच कर नगर को घेर लिया। उधर अहमदनगर की सेना में विद्रोह हो गया और चादबीबी को उसके सरदार हमीद खा ने राजमहल में मार डाला, जिसके कारण दानियल अपने काय में सफल होगया और अहमदनगर के किले पर मुगल झडा लहराने लगा।

मुगल शासन

सम्राट् अकबर ने बुरहानपुर में रह कर दक्षिणी राज्य के ३ सूबे बनाये—एक सूबा वरार, दूसरा सूबा खानदेश और तीसरा अहमदनगर। इन सूबो का शासन अकबर ने पुत्र दानियाल को सौंपा और आप दिल्ली लौट गया। जाते समय वह असीरगढ की भी व्यवस्था कर गया था। अबुल फजल और फरिश्ता के समान इतिहासकारो ने लिखा है कि असीरगढ के किले में जानवरो के मरने से रोग फैल गया। वहादुरशाह ने इसे अकबर का जादू समझा और किले की रक्षा का प्रबध न कर के उसे अकबर के हवाले कर दिया।" † असीरगढ में अकबर ने पुत्र दानियल को नियुक्त किया और उसके नाम पर खानदेश का नाम "दानदेश" कर दिया। दानियल को शराब पीने की लत लग गयी और वह सन् १६०५ईस्वी में बुरहानपुर में मर गया। उस समय लुटेरो का वडा जोर था। परन्तु मुगलो ने अच्छा प्रबध किया—जिससे उत्तरीय भारत, गुजरात और दक्षिण के वहुत से लोग यहा आकर वसे। "मुगल शासन में सूबा बुरहानपुर में हण्डिया, माण्डू और बीजागढ परगने थे। आइन-अकबरी में लिखा है, कि "मुगल शासन में विदर्भ ‡ १३ सरकारो (परगना) में विभक्त था —

(१) गाविलगढ, (२) पवनार, (३) नरनाला, (४) कळम, (५) खेरला, (६) वाशिम, (७) माहूर, (८) पाथरी, (९) मेहकर, (१०) बैतूल, (११) माणिकदुर्ग, (१२) रामगढ और (१३) पयाला।

उस समय विदर्भ का राजस्व पौने दो करोड था।"

सन् १६०९ ईस्वी में जहागीर के शासन काल में शाहज़ादा परवेज़ को आसीर, खानदेश और विदर्भ का सूबा शासन के लिये सौंपा गया था। जब वह बुरहानपुर के लिये आगरा से रवाना हुआ था—उस समय उसके साथ में १६३ मनसबदार और ४६ बरकन्दाज़ थे। जहागीरनामा में लिखा है कि "बुरहानपुर के बक्षी ने जो आम सम्राट्

---

* बालापुर —मन और ह्रास नदियो के सगम पर वसा है। यहा बाला देवी का पुराना मन्दिर है।

† असीरगढ —किले के पश्चिमी द्वार की चट्टान पर सम्राट् अकबर ने यह अकित करवाया था—"अल्लाह अकबर ज़रब आसीर। इस्फदारमज इलाही ४५।" १८ अगस्त सन् १६०० ईस्वी में यह राज्य मुगलो के अधीन हुआ था।

‡ विदर्भ की सीमा अबुल फजल के समय में इस प्रकार थी —

"वरार की उत्तरीय सीमा पर हडिया (नर्मदा), दक्षिण में नादेड (गोदावरी), अन्तर १८० कोस था। पश्चिम में अजता का पहाड और पूर्व में वैरागढ—जिसका फासला २०० कोस था। लोग वरार को "वरधा तट" कहते थे।"

के लिये भेजे गये थे—उनमें से एक आम का वजन ५२ तोले था।" सन् १६१४ ईस्वी में इंग्लैण्ड का एक राजदूत सर टामस रो बुरहानपुर मे ठहरा था। उसने शहर का अच्छा वर्णन किया है। उसने परवेज को भेट के साथ अंग्रेजी शराब भी दी थी। यहां से वह सम्राट् से मिलने के लिये अजमेर गया था।

परवेज के बाद बुरहानपुर मे शाहजादा खुर्रम (शाहजहा) भेजा गया था। उसका उल्लेख जहागीरनामा में इस तरह है :—"पौष वदी २ को मैंने खुर्रम को खिल्लत, जडाऊ तलवार, और हाथी देकर विदा किया। नूरजहां ने भी एक हाथी दिया था। मैंने यह हुक्म दिया था कि वह दक्षिण को जीत कर २ करोड दाम का इलाक़ा खासगी मे ले लेवे। यह उसका इनाम होगा। उसके साथ में ६५० मनसवदार, एक हजार अहदी, एक हजार रूमी वन्दूकची, एक हजार तोपची और ३० हजार घुड़सवार थे। साथ में खर्च के लिये २ करोड़ रुपये दिये गये थे।"

खुर्रम ने बुरहानपुर मे पहुँच कर विद्रोह को शांत किया था। इसी वर्ष के अन्त मे बुरहानपुर का काजी नासिर दिल्ली जाकर सम्राट् से मिला था। सम्राट् स्वयं लिखता है कि—"शायद ही कोई पुस्तक हो—जिसे काजी नासिर ने न पढ़ा हो—उसकी संगति से कोई अधिक प्रसन्नता नही होती—क्योकि वह विरक्त है। इसी कारण से मैंने उसे नौकरी करने का कष्ट नही दिया और ५ हजार की विदायगी दे कर रवाना किया।"

सन् १६२२ ईस्वी मे खुर्रम बुरहानपुर मे रहा करता था। दिल्ली मे नूरजहां ने यह साजिश कर रखी थी—कि जहागीर के पश्चात् खुर्रम को राजगद्दी प्राप्त न हो सके। राजमहल के षड्यन्त्रो से विक्षुब्ध हो खुर्रम ने जहागीर के खिलाफ विद्रोह करने का प्रयास किया और चाहता था कि पिता उसके अधिकार को स्पष्ट घोषित करे। पुत्र का विद्रोह सुन सम्राट् जहांगीर ने शाहजादा परवेज एवं ख़ानख़ाना को खुर्रम को पकड़ने के लिये भेजा था। खुर्रम बुरहानपुर से भाग कर माहूर चला गया और वहा से तैलंगाना की ओर चल दिया। वरार का सूबेदार दाराव खा खुर्रम के अनुकूल था-इसी कारण परवेज ने आसद खा मामूरी को वरार का हाकिम वना दिया। चार वर्ष तक खुर्रम इधर-उधर रहा और इसी बीच सन् १६२६ मे परवेज़ बुरहानपुर में मर गया। यहा से कई दिनो के वाद उसकी लाश आगरा भेजी गयी थी।

परवेज के पहुंचने के पूर्व बुरहानपुर के निकट जहांगीर और खुर्रम का जो युद्ध हुआ था—उसमे खुर्रम पराजित हुआ था। जहागीरी सेना का नायक रायसी चौहान का वशज राव रतन था। जीत की खुशी मे वह बुरहानपुर का सूबेदार वना दिया गया था। पीछे से वह युद्ध में मारा गया—जिसकी छतरी बुरहानपुर मे है।

खुर्रम ने अन्त मे पिता से क्षमा मांग ली और दो वर्ष वाद सन् १६२८ में जहागीर मर गया। तब खुर्रम बादशाह वना जो शाहजहां कहलाता था। पता चलता है, कि जहागीर के शासन काल मे विक्रम संवत् १६८३ माघ वदी ४ मंगलवार (सन् १६२७ ई) मारवाड़ के राजा गजसिह के पुत्र जसवन्तसिह का जन्म बुरहानपुर मे हुआ था, क्योकि गजसिह यहां सेनापति वन कर आया था।

शाहजहां के शासनकाल मे दक्षिण के एक सूवेदार खांजहां लोधी ने विद्रोह खड़ा किया और उसी समय अहमद-नगर के फतह खां ने विदर्भ के वालाघाट परगने पर अपना अधिकार जमा लिया था। यह समाचार पाते ही शाहजहां स्वयं बुरहानपुर आया और वहा से खांजहां से युद्ध करने के लिये अपनी सेना रवाना की। इस युद्ध मे ख़ांजहा मारा गया और दक्षिण का विद्रोह शांत होगया। शाहजहां की सेना वालाघाट परगने से दौलतावाद गयी और उस किले को अपने अधीन किया। वाद में दौलतावाद से वह सेना बुरहानपुर लौट आयी थी।

बुरहानपुर में शाहजहां दो वर्ष तक रहा था और वही पर उसका १४वा पुत्र हुआ था। वेगम मुमताज़ महल वही पर प्रसव पीडा से मरी थी (जून सन् १६३१ ईस्वी)। वेगम को प्रथम जैनावाद में दफनाया गया था, परन्तु जब ताज-महल वन कर तैयार होगया—तो उसकी लाश यहां से आगरा गयी थी।

शाहजहा के समय में समस्त दक्षिण भारत के मुसलमान अमीर मुगल राज्य में समाते थे। सन् १६३३ में समस्त अहमदनगर राज्य मुगलो के कब्जे में चला गया था। इस समय मुगल सेनापति शाहजादा शुजा था। वह सन १६३४ ई में मल्कापुर में कई दिनो तक रहा था। शिया होने के कारण दक्षिण के सुल्तान कभी मुगलों के मित्र न हो सके और उनका अन्तस्थ विरोध बना रहा। शाहजहा के शासन काल मे औरगजेब भी बुरहानपुर में आकर रहा था, उस समय उसकी आयु १८ वर्ष की थी। वह सन् १६३६ ईस्वी से सई १६८४ तक दक्षिण भारत का सूबेदार था—जिसके अन्तर्गत बरार, खानदेश, तैलगाना और दौलताबाद के सूबे थे। इसी बीच वह पिता से मिलने के लिये बार बार दिल्ली गया था। उसकी अनुपस्थिति में शासन कार्य शाहिस्ता खा करता था। इसके बाद औरगजेब ने इस पद से त्यागपत्र दे दिया था और वह गुजरात भेजा गया था। ई सन् १६५२ में दक्षिण भारत की स्थिति बिगड गयी थी—इसलिये औरगजेब फिर बुरहानपुर भेजा गया। उसने वहा पर राजमहल बनवाया था। उसमें वह हीराबाई गायिका के साथ रहता था। हीराबाई बुरहानपुर की सुन्दर गाने वाली थी। उसका नाम औरगजेब ने "जनाबाई महल" रखा था। उस समय बुरहानपुर का बना हुआ कलाबत्त् विलायत को जाने लगा था। उसी जमाने में बुरहानपुर में पानी के लिये मिट्टी के नल लगाये गये थे।

सम्राट अकबर जागीर प्रथा का विरोधी था। वह अपने प्रमुख कर्मचारियो को नकद वेतन देता था। जहागीर के समय में कुछ नकद और कुछ जमीन में दिया जाता था। शाहजहा के समय में समस्त भूमि ठेके पर दी जाती थी। पता चलता है कि राज्य का ७।१० हिस्सा ठेके पर उठा दिया जाता था और खालसा जमीन बहुत कम रह गयी थी। अकबर के समय में उपज का तीसरा हिस्सा लगान के रूप में लिया जाता था। मुगल काल में विदर्भ की राजधानी बालापुर थी। सन १६५८ ईस्वी में औरगजेब दिल्ली का सम्राट् बना। तब उसने दक्षिण की सूबेदारी राजा जयसिंह को सौंपी थी। जयसिंह सन् १६६७ ईस्वी में बुरहानपुर में ही मरा था। जयसिंह की बनवायी हुई एक छत्री आज भी बालापुर में है। जयसिंह के समय में बरार का मुख्य अफसर ईरिज खा था। जयसिंह के मरने पर दक्षिण का सूबेदार गाजीउद्दीन हुआ—जो प्रसिद्ध निज़ामुल्मुल्क आसफजाह का पिता था। सन् १६७० से मराठो ने लूटना आरभ किया और कई पटेलो से चौथ लेना शुरू किया। सन् १६८४ में औरगजेब ने बुरहानपुर में मुकाम किया। इसके बाद ही बरार में निज़ाम वश का शासन आरभ हो गया—जिसका विवेचन अन्यत्र किया गया है।

बुन्देलो का शासन

बुन्देलखण्ड मे कालिजर, काल्पी और चदेरी तक शासन के मुख्य केन्द्र थे। इसी युग में बुन्देलो का उत्कर्ष हुआ। इसके पूर्व गढ कुढार में खगार जाति का प्रभाव सागर और दमोह जिलो पर था। सन् १५०१ ईस्वी में रुद्रप्रताप ने ओडछा में बुन्देलो का राज्य स्थापित किया था। उसके १२ पुत्रो में उदयादित्य के पास महोवा की जागीर थी। उदयादित्य की पाचवी पीढी में कुलनदन का पुत्र चम्पतराय था। महोबा की जागीर भाई-बेटो में बटते-बटते चम्पतराय के पास ३५० रुपये वार्षिक आय की जीविका रह गयी थी। उस समय राजपूतो में यह परम्परा चल पडी थी कि—एक गरीब राजपूत अपने पुत्र को एक घोडा और एक तलवार देकर कहता कि 'बेटा! इसी के सहारे अपनी जीविका का मार्ग खोज लो।' यह स्थिति चपतराय की थी। १५ आना रोज पाने वाले उस वीर ने घोडे और तलवार के सहारे बुन्देलखण्ड में एक विशाल राज्य की नीव रखी। सम्राट शाहजहा के शासनकाल में बुन्देलो ने जो विद्रोह किया था, उसमें चम्पतराय का नाम चमक उठा था। मुगलो ने उसे अपना "मनसबदार" बनाया और कौच का परगना जागीर में दिया। औरगजेब ने जब अपने पिता के विरोध में शस्त्र उठाया—तब चम्पतराय उसके साथ था। १५ अप्रैल सन् १६५८ ईस्वी के दिन पिताकी सेना को औरगजेब ने उज्जैन के समीप धरमत स्थान में बुरी तरह हराया और शाहजादा मुराद को लेकर वह चम्बल पार कर आगे बढा—किन्तु २९ मई को सामूगढ में शाहजादा दाराने औरगजेब को रोका। उस युद्ध में दारा हार गया और औरगजेब विजयी हुआ—जिसके सहारे उसे दिल्ली का राज्य मिला था।

सामूगढ के युद्ध में चम्पतराय की वीरता प्रशंसनीय थी और इसलिये औरंगजेब ने उसकी मनसबदारी बढ़ा दी। किन्तु शीघ्र ही सम्राट् की नीति से समस्त बुन्देलखण्ड विद्रोही बन गया। ओड़छा वालो ने तटस्थता धारण की, किन्तु चम्पतराय ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया। दो वर्षो तक मुगल सेना उसका पीछा करती रही। विन्ध्याचल की घाटियों मे चम्पतराय ने चुने हुए घुड़सवारो के बल पर मराठो के समान मुगल सेना को त्रस्त करना आरंभ कर दिया। बुन्देलों ने मुगलों के साथ खुले मैदान मे कभी युद्ध नही किया। कभी अकस्मात् मौका पाकर मुगल सेना पर आक्रमण कर देना लूट लेना और कभी पहाड़ों पर लापता हो जाना—यही बुन्देलों की आरंभिक युद्ध नीति थी। संवत् १७२१ (ई. सन् १६६४) मे चम्पतराय अपनी स्त्री के सहित सहरा ग्राम मे मुगल सेना द्वारा घिर गया। पास मे उस समय अधिक सहयोगी न थे। सहरा के मुगल घेरे से निकल जाना चम्पतराय के लिये असाध्य था। इसी कारण चम्पतराय और रानी लालकुंवरि ने कटारे मार कर प्राण दे दिये—क्योंकि शत्रुओं के द्वारा पकड़ा जाना वीर राजपूतो के लिये प्रशस्त नही समझा जाता था।

छत्रसाल*—पिता और माता के मरने के समय १४-१५ वर्ष का बालक छत्रसाल अपने मामा के यहां था। उसने किसी तरह ८ वर्ष बिताये-पर उसके सामने एक ही ध्येय था—"मुगलो से पिता का बदला लेना।" छत्रसाल का जेष्ठ भ्राता अंगदराय आमेर के राजा जयसिंह की सेना में सिपाही था। इसी तरह छत्रसाल भी कुछ दिनों तक सिपाही था। किन्तु इस तरह जीवन बिताना छत्रसाल को नही भाया और उन्होंने नौकरी त्याग दी और उसी तरह अगदराय ने भी। संवत् १७२८ मे दोनों भाइयों ने देवलवाडा ग्राम मे इस कार्य का श्रीगणेश किया। पास मे द्रव्य न होने से उन्होंने अपनी माता के जेवर बेच डाले थे और उसी पूंजी के सहारे उन्होंने ३० सवार और ३४७ सिपाही तैयार किये थे। इसी सेना के वल पर २२ वर्ष की अवस्था मे छत्रसाल ने—मुगलों का राज्य बुन्देलखण्ड से हटा देने का संकल्प किया। कवि लाल ने भी लिखा है :—

संवत् सत्रैसै अठ्ठाइस, लिखे आगरे बीस।
लागत बरस बाइसईं, उमड़ चल्यो अवनीश।

बुन्देलखण्ड विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है—जिससे बुन्देलो को प्राकृतिक सहायता मिली और वहां के पहाड़ी किलो ने भी उनको बल पहुँचाया। बुन्देलों मे जातीयता का प्रादुर्भाव भी धार्मिक क्रान्ति के कारण हुआ। यो तो बुन्देलखण्ड के सर्वसाधारण लोग बहादुर थे-उन्हे केवल एक ऐसे नेता की आवश्यकता थी, जो उन्हें योग्य मार्ग दिखला कर उनकी शक्तियो के विकास मे सहायक बनता। दैवयोग से छत्रसाल उस भूमि का योग्य नेता सिद्ध हुआ और उसने विदेशी शासन देश से हटाया। वास्तव मे कठिनाइया ही मनुष्य को प्रखर बना कर सघर्षमय जीवन का निर्माण करती है और उन्हीने छत्रसाल को उद्यमशील बनाया। बुन्देलखण्ड मे इस समय सम्राट् औरंगजेब का आतंक छाया हुआ था और बुन्देलखण्ड मे छत्रसाल के प्रमुख विरादरी वाले मुगलो के कृपापात्र थे। इसलिये छत्रसाल ने आरंभ में गृह कंटकों को दूर किया।

आरंभ मे छत्रसाल ने औडेरा-ग्राम मे अपने समस्त सहयोगियों को एकत्रित किया और वही पर भावी कार्यक्रम तैयार किया गया। छत्रसाल उनका नेता और बलदीवान मत्री बनाये गये। इस तरह भावी युद्धो के लिये सज्जित हो छत्रसाल ने प्रथम युद्ध (संवत् १७२८ मे) मुगल संरक्षित धंधेरा सरदार कुंवरसेन से किया। इस युद्ध मे कुंवरसेन हार गया और उसने अपनी भतीजी छत्रसाल को ब्याह दी। इस रिश्तेदारी से छत्रसाल को बल ही मिला। आरंभ में औरंगजेब ने फिदाई खां को बुन्देलों को दबाने के लिये नियत किया था—पर वह सफल न हो सका। तब रणदूलह ३० हजार सेना के साथ भेजा गया। रणदूलह के सहायक सिरोंज, कोच, धमोनी और चदेरी के मुगल सरदार थे।

---

* छत्रसाल की जन्म तिथि इस प्रकार है—संवत् १७०६ (सन् १६५० ईस्वी) जेष्ठ शुक्ल तीज, शुक्रवार, इष्टकाल ४८ घटी, १७ पल, नक्षत्र मृगशिरा। जन्म लग्न वृश्चिक और जन्मराशि मिथुन।

छत्रसाल ने कभी एक स्थान में केन्द्रित होकर युद्ध नहीं किया। वह चारों दिशाओं में पहाड़ों का सहारा लेता हुआ मुग़ल सेना पर आक्रमण करता रहा और उसकी सफलता की कुंजी यही थी। छत्रसाल ने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं—जिनमें अनेक वर्ष लगे थे। इन युद्धों का वर्णन लाल कवि ने "छत्रप्रकाश" ग्रंथ में किया है। मध्यप्रदेश का सागर ज़िला भी उस समय युद्धों का प्रमुख केन्द्र बन गया था।

मध्यप्रदेश की लड़ाइयाँ—रणदूल्ह को जेर करता हुआ छत्रसाल अचानक धामोनी† की ओर गया। वहाँ का अफसर खालिक रहा था—जिसने चंपतराय को धोखा देकर मुगलों से घिरवा दिया था। धामोनी पर उसने अनेक बार आक्रमण किया और क्रमशः प्रायः सभी जिला अपने अधिकार में कर लिया। सागर के प्रायः सभी ग्रामों में छत्रसाल ने युद्ध किया था, जिसका वर्णन छत्रप्रकाश में भी है। लाल ने एक स्थान पर कहा है —

त्यो धामोनी में सुन, खालिक जाको नाऊ।
चढे जोर मवास कौं, थानै देहर गांउ॥

सो जीतन छत्रसाल विचार्यो, गौनो गाव दौर कर मार्यो।
धमौनी में लई लड़ाई, मेंड़ा मार पथरिया लाई।

रहे सिदगवां गाव के, निकट पहारन जाय।
धामौनी में जोर दल, खालिक पहुच्यौ धाय।

धामोनी तें खालिक धाये, डंका आन नजीक बजाये।
उमड़ि चल्यो छत्रसाल बुंदेला, तुरकन के ओड़े सगमेला।

तल दिल में दहँसत अति जागी, मुरकि फौज खालिक की भागी।
चलें फौज चन्द्रापुर जार्यो, बौर मुलक महर को मार्यो।

व्हाते फेर रानगिर लाई, खालिक चमू तहा चलि आई।
उमड़ि रानगिर में रन कीन्हों, खालिक चालमान मै दीन्हों।

लगे नगारे ऊट हय, लूट निसान बजार।
खालिक बचे बराई जन, मानौ तीस हजार।

तीस सहस खालिक जब डाडे, लूटपाट अपने कर छांडे।
छूटे डाड मान के ज्यों ही, उठयो वस्त खालिक को त्योंही।

•

धामोनी में धूम मचाई, जब न और की बचं बचायी।
सुनत साह मन में अकलाने, भेजे रणदूलह भरवाने।

उमड़यो रण दूलह सजे—तीस हजार तुरंग।
बजे नगारे जूझ के, गाजे मत्त मतंग।

अड़े बुंदेला टरें न टारे, जीते जंग बजाय नगारे।
रणदूलह रन तें बिचलाये, व्हाते हनूटूक को आये।

फिर मवास रतनागर मारो, ओड़ेरा में डेरा डार्यो।
हलदौरैन हरयोन उबारी, धामोनी में खलबल भारी।

---

† धामोनी—सागर जिले की पुरानी मुग़ल राजधानी थी।

सुनी दिसील खवर ठिकठाई, सूवा दल को नालिस आई।
रणदूलह डांडे रएऊमी, पठये रोस कर रूमी।
फौज जोरि रूमी वढ़यो, वाजे तवल निसान।
छत्रसाल तासों कर्‌यो, वसिया में घनसान।। (आदि)

छत्रसाल को धामोनी मे अनेको बार मुगलों से युद्ध करना पडा था। सम्राट् औरंगजेव ने कई वार अपने प्रसिद्ध सरदार भेजे थे—पर वे सभी असफल रहे। जान पड़ता है कि केवल धामोनी में ही छत्रसाल को १० लडाइयां लड़नी पड़ी थी, जिनमें कई वर्ष वीते थे। मुगल सेनापति खालिक खां, रणदूलह, रूमी, तहवर खां, शेख अनवर खां, सुतरुद्दीन, बहलोल खां, गैरत खा आदि सरदारों ने इस प्रदेश में छत्रसाल से युद्ध किया था। जान पड़ता है कि अन्तिम सूवेदार गैरत खा से छत्रसाल नें धामोनी छीना था। सागर जिले के अनेको स्थानों मे कई वार छत्रसाल को मुगलों के साथ लड़ना पड़ा था। मुगल अफ़सरों के अतिरिक्त मुगलों के सहायक छोटे-छोटे राजाओं से भी जूझना पडा था। मैहर को जीत कर छत्रसाल ने बांसाकला के दागी केशवराय को जीता था।‡ वासा के युद्ध में केशवराय मारा गया था।

सागर जिले के निम्न गांवों में छत्रसाल ने युद्ध किया था—इटावा, खिमलासा, गढाकोटा, धमोनी, रामगढ़, कंजिया, मड़ियादो, रहली, रानगिर, शाहगढ, बांसाकला आदि। वसिया के युद्ध के वाद ही छत्रसाल की प्रभुता को मुगलों ने भी मान लिया था। मुगलों के प्रत्येक थाने को छत्रसाल ने लूटा था। मुगलो को लूटने से जो द्रव्य मिलता था उसी के सहारे छत्रसाल की सैनिक शक्ति वढ़ती थी। मुगलो की सेना को लूटने से वुन्देलो को ऊंट, घोड़े, तोप, बन्दूक तथा अन्य युद्धोपयोगी सामान मिल जाता था। इसी तरह मुगलो का जो सरदार पकड़ा जाता था, उसके छुटकारे के लिये भारी जुर्माना देना पड़ता था। ग्वालियर से जव लतीफ भागा था—तव छत्रसाल को वहा १०० घोडे, ७० ऊंट और १३ तोपें मिली थी। वुन्देलो का यह सघर्प कई वर्पो तक चलता रहा और उससे मुगलों का शासन वुन्देलखण्ड से उठ ही गया। सम्राट् औरंगजेव इस समय दक्षिण मे मराठो से सघर्ष करने मे लगा हुआ था—इस कारण वह पूरी शक्ति वुन्देलखण्ड में न लगा सका था।

छत्रसाल के सहयोगी—छत्रसाल ने जो शक्ति निर्माण की थी—उसमें सहयोग देने वाले उसके सहयोगी ही प्रमुख थे। जैतपुर वाले गोविन्दराम, कुंवर नारायणदास, सुन्दर पंवार, राममन दौआ, मेघराज पड़िहार, धुरमांगद, वक्षी, लच्छे रावत, हरवंशजी, भानु भाट, वंवल कहार, फत्ते वैश्य आदि छत्रसाल के प्रमुख सहायक थे—जिन्होंने वुन्देला राज्य स्थापित करने में जीवन अर्पण कर दिया था। आगे चल कर छत्रसाल ने एक विशाल सेना तैयार की—जिसके ७२ प्रमुख सरदार थे। वसिया के युद्ध के वाद ही मुगलो ने छत्रसाल को राजा होने की मान्यता दी थी। उसके वाद ही छत्रसाल ने कालिंजर का किला छीन कर वहां का किलेदार मांधाता चौवे को वनाया था।

---

‡ दांगी—यह वंश गढ़ नरवर से इस प्रदेश में आया था। गढ कुंडार के खंगार इनके सम्वन्धी थे। सागर नगर का वसाने वाला उदयशाह दागी थी, किन्तु उस वंश का मुख्य स्थान गढपहरा था। गढपहरा में आज भी उनका एक शीशमहल है—जो गिर पड़ा है। लोग कहते है कि गढपहरा के एक राजा ने व्याही स्त्रियों के २२ डोले छीन लिये थे। उनकी संतानों से दांगियों की २२ कुरीं हो गयी। यह राजा अपनी स्त्रियों को दिखा कर चंद्रमा को निशान वना कर तीर मारता था। एक समय दूसरा राजा उस पर चढ आया-तव उससे कुछ न वन पड़ा। उस समय एक स्त्री ने कहा—

मारत ते तुम चांदनी, मरी न एकौ भेड़।
घर घर की राडैं करी, अवौं जिअत हो डेढ़।।

इसी वंश का केशवराय दांगी था।

छत्रसाल की योग्यता—विक्रम संवत् १७३५ (ईस्वी सन् १६७८) के लगभग छत्रसाल ने पन्ना नगर में अपनी राजधानी स्थापित की। छत्रसाल का परिवार प्राय पन्ना में रहता था और वह स्वय सेना सहित मऊ में रहता था। विक्रम संवत् १७४४ में योगिराज प्राणनाथ के* आदेशानुसार शास्त्रोक्त पद्धति से पन्ना में महाराज छत्रसाल का राज्याभिषेक सस्कार हुआ था। अनेक युद्धो के बाद छत्रसाल ने यह विशाल राज्य स्थापित किया था। तहवर खा, अनवर खा, सदरुद्दीन, हमीद के समान कमे हुए मुगल सेनापति बुन्देलखण्ड से पराजित होकर दिल्ली लौटे थे। बहलोल खा तो मर ही गया था। मुराद खा, दलेल खा, सैयद अफगन, शाहकुली के समान मुगल वीर बुन्देलखण्ड से पराजित होकर भाग थे। इस प्रकार चम्बल से लेकर यमुना नदियो के मध्य में महाराज छत्रसाल की प्रभुता छायी हुई थी।

छत्रसाल ने एक आदर्शवादी हिन्दू राजा के समान राज किया था। वे मुगल शासन के विरोधी थे, परतु

---

* बाबा प्राणनाथ—जन्म संवत् १६७५। जामनगर के निवासी क्षेमजी क्षत्रिय के पुत्र थे। लोग इनको "प्राणनाथ प्रभु" कहते थे। ये मथुरा के देवचद जी के शिष्य थे। इन्होने आजीवन हिन्दू-मुसलमानो में एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। छत्रसाल ने सदव प्राणनाथ जी के आदेशो का पालन किया था। प्राणनाथ-सम्प्रदाय के लोग धामी कहलाते है। उनके सिद्धान्तो की पुस्तक "कुल्जम स्वरूप" कहलाती है। यह ग्रथ पन्ना में प्राणनाथ के समाधि-मन्दिर में रखा हुआ है। धामी मूर्ति-पूजा नही करते तथा मासाहार का निषेध करते है। ये लोग वर्णाश्रम को भी नहीं मानते। धामी एक दूसरे के अभिवादन में "परनाम" कहते है—इसी कारण से ये लोग "परनामी" भी कहलाते हैं। प्राणनाथ की मृत्यु संवत् १७५१ आषाढ वदी तीज शुक्रवार को पन्ना में हुई थी। प्राणनाथ जी "महामति" भी कहलाते थे।

इन्होने कुल्जम स्वरूप ग्रथ में वेद और कुरान के निर्देश देकर यह सिद्ध किया है कि दोनो में कोई भेद नही है। ये मूर्ति-पूजा, जातिभेद और ब्राह्मणो की श्रेष्ठता को समाज से हटाना चाहते थे। इस सम्प्रदाय का केन्द्र पन्ना है, किंतु गुजरात वाला का मुख्य केंद्र मगलपुरी, सूरत है।

लोग कहते हैं कि प्राणनाथ जी ने पन्ना में हीरो का पता खेडावाल दुबे, गगादत्त और रविदत्त को बतलाया था। ये लोग प्राणनाथ के शिष्य थे। गगादत्त का चढाया हुआ रत्नजटित हीरो का मुकुट प्राणनाथ जी की मूर्ति पर अबतक पन्ना में चढता है। प्राणनाथी अपने को निर्गुणी भी कहते है।

प्रणामी पथ का एक गीत इस प्रकार है —

खोज थके सब खेल खसम री, मन ही में मन है उरझाना।
होत न काहू गम री॥ टेक॥
मन ही बाधे मन ही खोले, मन तम मन ही उजास री।
ये खेल है सकल मन का, मन नेहचल मन ही को नास री॥
मन उपजावे, मन ही पाले, मन को मन ही करे सहार।
पचतत्त्व इद्री गुन तीनो, मन निरगुन, मन निराकार॥
मन ही नीला मन ही पीला, स्याम स्वेत सब मन री।
छोटा बडा मन भारी हल्का—मन जड मन चेतन री॥
मन ही मैला मन ही निरमल—मन खारा, तीखा मन मीठा।
ये मन सबन को देखें—मन को किनहु न दीठा॥
सब मन में वछू—मन में—खाली मन मन ही में ब्रम्ह।
"महामति" मन को सोई देखे—जिन द्रष्टे खुद खसम॥

इस्लाम धर्म के नही। उन्होने न तो कोई मसजिद तुडवायी और न मुस्लिम नारियों का अपहरण किया। उनके साथियो मे कई मुसलमान भी थे—जिन्होंने बुन्देलों के साथ-साथ अपना खून बहाया था।

प्राणनाथ जी छत्रसाल के मार्गदर्शक थे। दक्षिण में जो स्थान समर्थ रामदास का है—वही स्थान बुन्देलखण्ड मे प्राणनाथ का है। दोनों ने एक-एक शक्ति निर्माण की थी। प्राणनाथ बुन्देलखण्ड की आत्मा थे। उस समय के लोग कहते थे—

कृष्ण, मुहम्मद, देवचंद, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पंचन को जो भजे, दुख हरे तत्काल॥

छत्रसाल दानी और साहित्य कला के प्रेमी थे। उनके दरबार मे कई कवि आश्रय पाते थे। छत्रसाल भी स्वयं कवि थे। इनके यहां लाल कवि (प. गोरेलाल पुरोहित), अक्षर अनन्य*, नेवाज कवि, पंचम कवि, लालमणि आदि हिन्दी के कवि थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि भूषण भी इनके यहा पहुँचे थे। भूषण कवि की रचनाएँ हमें अन्यत्र मिलती है।

विक्रमी संवत् १७४७ मे छत्रसाल ने अमीर अब्दुल समद से युद्ध किया था। इस युद्ध मे मुगल सेना हारी थी। इसके बाद ही भेलसा मे अब्दुल समद को हराया था। संवत् १७५० में पन्ना पर आक्रमण करने के लिये सम्राट् औरगजेब ने एक पठानी सेना भेजी थी। बुन्देलों का अंतिम युद्ध शाहकुली सेनापति के साथ हुआ था। जिसमें भी छत्रसाल विजयी रहा। इसके बाद विक्रम संवत् १७६४ तक छत्रसाल ने शांति के साथ राज किया था। औरगजेब के मरते ही मुगल साम्राज्य खिसकने लगा। उसके उत्तराधिकारी ने मराठो और बुन्देलों से संधियां की—और इसप्रकार वर्षो से चलता हुआ संघर्ष कुछ दिनो के लिये बंद सा हो गया। जिसके कारण छत्रसाल की राजकीय स्थिति दृढ होगयी। छत्रसाल ने अपनी जीवितावस्था में अपना राज्य पुत्रो मे बाट दिया था। उनके १७ रानियां और लगभग ६९ पुत्र थे, किन्तु बड़ी रानी के हृदयशाह और जगतराज दो ही पुत्र थे—जो कि राज्य के अधिकारी माने जाते थे। महाराज अपने छोट पुत्र जगतराज के साथ पन्ना में रहते थे—इस कारण जेष्ठ पुत्र हृदयशाह ने गढाकोटा † मे अपनी राजधानी कायम की थी। उसके राज्य के अन्तर्गत सागर‡, शाहगढ़ ×, गढाकोटा, हटा ∴ और गुना परगने थे। इसी राजा ने सुनार नदी के तट पर हृदयनगर बसवाया था।

अन्तिम काल—ईस्वी सन् १७२९ मे सम्राट् मुहम्मदशाह के शासन काल में प्रयाग के सूबेदार मुहम्मदशाह बंगस ने छत्रसाल पर आक्रमण किया था—क्योकि वह एरच, कोच, सेहुड़ा, मौदहा, सोपरी, और जालौन के परगने अपने अधिकार मे चाहता था। इस युद्ध मे छत्रसाल और जगतराज मुगल सेना द्वारा हार गये थे—क्योकि ओडछा, दतिया+ और सेहुडा के राजाओ ने मुगलो का साथ दिया था। जेष्ठ पुत्र हृदयशाह चुपचाप गढाकोटा में ही बैठा रहा—

---

* अक्षर अनन्य—मध्यप्रदेश के थे—उन पर छत्रसाल की श्रद्धा थी—इसी कारण वे पन्ना मे रहते थे। इनक रचे हुए राजयोग, ध्यानयोग, विवेक दीपिका, ब्रह्मज्ञान, अनन्यप्रकाश आदि ग्रंथ है। ये प्राणनाथ के शिष्य थे।

† गढ़ाकोटा—सागर से २८ मील पूर्व मे दमोह मार्ग पर है। यही पर रणदूलह को बुन्देलों ने हराया था।

‡ सागर—जबलपुर से ११४ मील पर है। यहां का तालाब लाखा बंजारा ने खुदवाया था।

× शाहगढ—सागर से ४२ मील उत्तर मे है। यह गाव चारो ओर पहाड़ो से घिरा हुआ है।

∴ हटा—दमोह नगर से २४ मील उत्तर मे है—यह गाव सुनार नदी के किनारे बसा है। कहते है कि फ़कीर मंगलशाह की दुआ से गोंडो ने मुसलमानो को यहा से हटाया था; इसी कारण से इस स्थान का नाम हटा रखा गया। दूसरे कहते है कि इस गाव का बसाने वाला हटेसिह था। यहां बुन्देलो का एक किला भी है।

+ बगस से लड़ने के समय मे ओड़छा और दतिया वालो ने यह ताना दिया था :—

क्योंकि वह पिता से रुष्ट हो गया था। जब जगतराज बगस से लड रहा था—तब माता ने हृदयशाह के पास यह कहलवाया था—

बारे ते पाले हते—मोहन दूध पिलाय।
जगत अकेले लडत है, जो दुख सहो न जाय॥

इस पर हृदयशाह ने उत्तर दिया था—

गैया बछडा ना तजे—बेटा तजे न बाप।
कहा चूक हम से परी—हमें बिसारे आप॥

तब माता ने लिखवाया था—

गाडी थाकी माग में, बछडन करी न पश।
अब गाडी ढडकाय दे, धवल धग हिरदेश॥

इस पर हृदयशाह अपनी सेना को लेकर बगस से लडने के लिये पहुँच गया था।

छत्रसाल की अवस्था ८५ वर्ष की थी और अब पुराना पौरुष जाता रहा था और निकटवर्ती बधुगण विरोधी बन बैठे थे। ऐसी अवस्था में एक पत्र पूना के पेशवा बाजीराव को अपनी सहायता के लिये छत्रसाल ने भेजा था और कहलवाया था कि—

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुची आय।
बाजी जात बुदेल की, राखो बाजीराय॥*

यह पत्र पाते ही पूना से तुरत बाजीराव पेशवा सेनासहित बुन्देलखण्ड पहुँचा और बगस पर आक्रमण करके पराम्त कर दिया। यह घटना ३० मार्च १७२६ की है। बगस शिकस्त खाकर लौट गया और ४ अप्रैल को महाराजा छत्रसाल ने पन्ना में विजयोत्सव मनाया। इस प्रसग पर बाजीराव पेशवा भी उपस्थित था। इसी दरबार में छत्रसाल ने पेशवा को अपना तृतीय पुत्र मान कर राज्य का बटवारा इस तरह किया था—

(१) हृदयशाह को—पन्ना, मऊ, गढाकोटा, कालिंजर, एरिछ और धमोनी इलाका, जिसकी आय ४२ लाख थी।

(२) जगतराय को—जैतपुर, अजयगढ, चरखारी, बादा, सरिला इलाका, जिसकी आय ३६ लाख थी।

(३) बाजीराव पेशवा को—काल्पी, जालौन, गुरसराय, गुना, हटा, सागर, हृदयनगर इलाका, जिसकी आय ३३ लाख थी।

ओडछा के राजा और दतिया के राई।
अपने मुह छत्रसाल बने धना बाई॥

उसके उत्तर में छत्रसाल ने कहा था—

सुदामा तन हेरे तब रक हू ते राव कीन्हो, विदुर तन हेरे तब राजा कियो चेरे तें।
कूबरी तन हेरे तब सुन्दर स्वरूप दीन्हो, द्रौपदी तन हेरे तब चीर बढ्यो टेरे तें।
कहत छत्रसाल प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी, हिरनाकुश मारो नेक नजर के फेरे तें।
ऐसे गुरु, ज्ञानी, अभिमानी भये कहा होत, नामी नर होत गुरुडगामी के हेरे तें॥

* पेशवा की बखर से पता चलता है कि छत्रसाल ने यह पत्र १०८ दोहा में पेशवा को लिखा था, पर पूरा पत्र आज उपलब्ध नहीं है—केवल यही दोहा मिलता है (जनश्रुति के रूप में)।

इस अवसर पर दरवार के कवियों ने पेशवा की खूब वड़ाई की थी। जुलाई मास तक वाजीराव वुन्देलखण्ड मे ही रहा। पन्ना की संधि के अनुसार वुन्देलखण्ड में पेशवा के कर्मचारियों ने आकर अपना शासन जमाया था। (सन् १७३१) कुछ लोग कहते हैं कि छत्रसाल ने पेशवा को मस्तानी † नाम की नर्तकी को भेट मे दिया था, किन्तु कुछ विद्वान् कहते हैं कि हैदरावाद के निजाम ने दिया था। इसके वाद ही ८५ वर्ष की अवस्था में पौप की वदी ३ शुक्रवार संवत् १७८८ (१२ मई सन् १७३१) को महाराजा छत्रसाल की मृत्यु हुई। छत्रसाल का राज्य प्रसिद्ध चंदेल महाराजा कीर्तिवर्मन से वड़ा था। सागर जिले मे महाराज छत्रसाल की एक मुद्रा हमारे देखने मे आयी थी—जिस पर यह श्लोक अंकित था—

श्री जगत विदित मुद्रा शासनोजसमुद्रा।
सज्जनजनानां सुहृदो छत्रसाल नाम ।।

विन्ध्याचल की श्रेणियो के मध्य मे वारिप्रपात रम्य पर्वतमाला से सज्जित कच्छपाकृति भूमि वुन्देलखण्ड है—तभी लोग कहते थे—

इत यमुना, उत नर्मदा, इत चंवल, उत टौंस।
छत्रसाल सो लड़न की, रही न काहू हौंस ।।

वास्तव मे महाराज छत्रसाल अपने समय के प्रतापी राजा थे। वुन्देलखण्ड आज भी उनके नाम से फूला नही समाता है। कविवर मुंशी अजमेरी ने कहा है—

थे चम्पत विख्यात हुए सुत छत्रसाल से।
शत्रुजनों के लिये सिद्ध जो हुए काल से ।।
जिन्हें देख कर वीर उपासक कविवर भूषण।
भूल गये थे शिवा वावनी के आभूषण ।।
यह स्वतंत्रता सिद्धहेतु कटिवद्ध भूमि है।
सङ्गरार्थ वुन्देलखण्ड सन्नद्ध भूमि है ।।

हृदयशाह ने पिता की मृत्यु के पश्चात् पन्ना को अपनी राजधानी वनाया। गढ़ाकोटे का इलाका हृदयशाह के हिस्से मे पड़ा था। उसके जीते जी कुछ गड़वड़ नही हुई। जव वह सन् १७३९ मे मर गया, तव उसका जेठा पुत्र सुभागसिंह गद्दी पर वैठा। उसके कई भाई थे, उनमे पृथ्वीसिंह ने अपने मन के अनुसार जागीर न पाकर अपने भाई से विरोध किया था। पृथ्वीसिंह ने मराठो की सहायता से गढ़ाकोटा प्राप्त किया था और वही का राजा वन गया था।

छत्रसाल के वंशज (गढ़ाकोटा)—पृथ्वीराज के अधीन शाहगढ और गढाकोटा के परगने थे। सन् १७४४ ईस्वी में उसने गढ़ाकोटा को राजधानी वनायां। जिसके तीन पुत्र थे—जेष्ठ पुत्र किसनसिंह जू ने थोड़े ही दिन राज्य किया था—पश्चात् मंझला भाई हरिसिंह जू गद्दी पर वैठा। यह धार्मिक वृत्ति का राजा था—जिसने शंकर का मंदिर वनवाया था। संवत् १८४२ मे इस राजा का देहान्त काशी में हुआ था। मरने के कुछ दिन पूर्व उसने अपने पुत्र राजमर्दन सिंह जू का राज्याभिषेक कर दिया था।

---

† मस्तानी—वाजीराव और मस्तानी के वंशधर वांदा के नवाव थे। पेशवा ने अपने पुत्र शमशेरवहादुर का (ई. सन् १७३४—१७६१) विवाह १८ अक्तूवर सन् १७५३ में एक कुलीन हिन्दू कन्या के साथ करवाया था। पेशवा न शमशेरवहादुर का यज्ञोपवीत भी कराना चाहा था—पर पूना के ब्राह्मणो के विरोध करने पर न हो सका। शमशेरवहादुर का पुत्र अली वहादुर था—जो वादा का नवाव कहलाता था।

राज मदनसिंह ने गढाकोटा में एक सुन्दर महल बनवाया था। यहा के राजा सागर के मराठो को चौथ दिया करते थे। सागर के सूबेदार आबा साहब से गढाकोटा वालो से मनमुटाव हो गया—और मर्दनसिंह ने चौथ देना बन्द कर दिया—तब आबासाहब ने गढाकोटा पर आक्रमण कर दिया—उधर राजा भी तयार था-इसलिए दीवान जालिमसिंह ने सेना लेकर नगर के बाहर मराठो को रोक दिया। इस युद्ध में सागर वाला को हार मार कर लौट जाना पडा। तब आबासाहब रघुनाथ राव ने पूना से सहायता मागी—और वहा से अली बहादुर को भेजा गया-जिसने गढाकोटा-वालो से मिल कर चौथ का मामला निपटा लिया था। यो तो मदनसिंहजू गढाकोटा में स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करता था, फिर भी पन्ना वालो से उसका सम्बन्ध बना रहा। सन् १८१० ईस्वी के लगभग सागर वालो ने नागपुर के भोसला रघुजी द्वितीय को गढाकोटा पर आक्रमण करने का आग्रह किया था। इसी कारण रघोजी ने सेना सहित अपने वशी को भेजा था। मराठो की इस विशाल सेना ने गढाकोटा को घेर लिया—जिनके पास ८० तोपें थी। बुन्देलो ने किले के सहारे युद्ध किया था और उसका सचालन स्वय मदनसिंह करता था। मदनसिंह ने ग्वालियर के सिंधिया से सहायता मागी थी—इसलिये मामले मे लडने के लिये उसका यूरोपियन सेनापति कर्नल जान बाप्टिस्ट गढाकोटा पहुचा था। सिंधिया की सेना पहुचने के पूर्व ही मदनसिंह युद्ध में घायल होकर मर गया, किन्तु उसके अगरक्षक ने यह बात प्रकट नही की और युद्ध जारी रखा। ग्वालियर से सहायता पहुँचने पर भोसलो की सेना घेरा उठा कर गढाकोटा से चली गयी, पश्चात् गढाकोटा के सरदारो ने अर्जुनसिंह को गद्दी पर बिठलाया (ई सन् १८११) और रानी मृत राजा की अस्थि लेकर सती हो गयी।

अर्जुनसिंह ने सहायता के उपलक्ष्य में आधा राज्य देने का वादा किया था—किन्तु जब अवसर आया तो उसने एक हिस्से में गढाकोटा और मालथोन के उपजाऊ परगने और दूसरे हिस्से में शाहगढ का जगली इलाका रखा और कहा कि सिंधिया महाराज जो लेना चाहें—सो ले लेवें—मै तो अपने लिये शाहगढ पसद करता हूँ। अर्जुनसिंह ने सोचा था कि ऐसा कहने से सिंधिया समझेगा कि कदाचित शाहगढ परगना बहुत अच्छा है—इसलिये उसके लेने के लिये आग्रह करेगा—जिससे गढाकोटा और मालथोन मेरे हिस्से में आ जायेंगे, परन्तु सिंधिया ने उसकी बात मान कर ली। फिर भी सिंधिया ने राजा को नही खदेडा। भाग्यवश सन् १८१८ में सागर का राज्य अग्रेजो के अधीन चला गया और सन् १८२० ई में सिंधिया ने प्रबन्ध के लिये गढाकोटा, मालथोन, देवरी, गौरझामर, नाहरमऊ और राहतगढ का इलाका अग्रेजो को सौंप दिया। १२ मार्च सन् १८२१ ईस्वी मे कम्पनी के एजेंट ने राजा अर्जुनसिंह से सुलह की और उस समय सधि द्वारा तय किया गया था कि "गढाकोटा पर अग्रेजी कपनी का राज रहेगा और राजा अपनी राजधानी शाहगढ में रखे।" अर्जुनसिंह सन् १८४२ ई में मर गया तब उसका भतीजा बख्तवली गद्दी पर बैठा। हटा तहसील में जटाशकर का एक किला है—निकटवर्ती नाले में एक छोटा सा शकर का मन्दिर है—उसमें एक शिलालेख इसी राजा ने शकर जी की प्रशसा में अकित करवाया था। उसके नीचे एक दोहा यह है —

माणिक शोभ विशाल अति, स्वामि बली शिवभाल।
सेवक शभुनाथ के—तुम बखतेश दयाल॥

सन् १८५७ के देश की स्वाधीनता के सघर्ष में बख्तवली इस प्रदेश के प्रमुख नेता थे। उन्होंने जब अग्रेजो के खिलाफ ८ जून को युद्ध की घोषणा की और सागर की ओर हाथी पर सवार हो शाहगढ से सेनासहित रवाना हुए तो उनके मत्री दरयाव कवि ने कहा था—

बख्त को विचार चलो भूपति श्री बख्तवली, धरो न गुमान देव मुच्छन पै ताव जानि।
आके कमबख्तन के मन में न सख्त होहु, बख्त की है बात अगरेजा पै आज दिन॥
कवि दरयावराव जोर करि विनवत है, कीजिए विरोध जनि कहत है मेरो मन।
एहो महाराज मृगराज हो जरूर पर, आप छेडिये नहीं फिरगी इन कुजरन॥

राजा ने इस सीख को न मान कर स्वाधीनता के युद्ध में भाग लिया—किन्तु अन्त में वह अग्रेजो द्वारा पकडा गया। अग्रेजो ने उसे राजकीय वदी बना कर लाहौर भेज दिया और उसकी रियासत सागर और झासी इलाको में सम्मिलित कर दी गयी।

सागर की सूबेदारी

आगे वता चुके है कि सन् १७३२ मे सागर का वहुत सा भाग पेशवाओं के अधिकार में आगया था। छत्रसाल द्वारा पाया हुआ यह नवीन राज्य सिरोंज से लेकर यमुना तक पहुंचता था। जिसका प्रवध पेशवा ने गोविन्द वल्लाल खेर को सौपा था—जो "सूबेदार" कहलाता था। सूवेदारी का मुख्य केन्द्र काल्पी मे था। गोविन्दराव ने सागर-दमोह का प्रवंध वालाजी गोविद को सौपा था। वालाजी की सहायता के लिये रामराव गोविन्द, केशवराव कान्हेर, भीकाजी करकरे और रामचंद्रराव चांदोरकर आदि कर्मचारी भेजे गये थे। आरंभ मे सूवेदार का निवास स्थान रानगिर स्थिर किया गया। पीछे से उसने सागर में किला वनवाया और वही जाकर रहने लगा। वालाजी पन्त सागर में अधिक दिनों तक न रहा और काल्पी मे जाकर रहने लगा तव गोविन्दराव ने सागर का शासन अपने दामाद विसाजी चांदोरकर को सौप दिया। सन् १७६० ईस्वी मे गोविन्दराव पानीपत के युद्ध मे मारा गया—उसके रामचंद्रराव और वालाजीराव दो पुत्र थे। युद्ध में जाने के पूर्व गोविन्दराव ने अपना इलाका दोनों पुत्रों को बांट दिया था। काल्पी और जालौन का प्रवंधक था—रामचन्द्रराव तथा अन्तर्वेद का प्रवध वालाजीराव करता था। पानीपत के युद्ध से अन्तर्वेद का इलाका पेशवा के साथ से निकल गया—तव से वालाजीराव सागर मे ही आ गया था। इधर पूना की राजकीय स्थिति डांवाडोल हो रही थी और उसके साथ उन्हें खेलने का अवसर मिल गया था। सवत् १८३९ में वालाजी का प्रमुख कर्ताधर्ता विसाजी गोविन्द जवलपुर मे था और वहा उसके पास पर्याप्त सेना न थी—इसी वीच मे मण्डला के राजा नरहरशाह के सेनापति गंगागिरि ने ७ हजार गोड सैनिको को लेकर जवलपुर पर आक्रमण कर दिया—जिसमे विसाजी मारा गया और अन्य मराठे भाग कर सागर चले गये। इससे गोडो का उत्साह वढ गया और वे लोग तेजगढ़ तक वढ गये थे। इस पर गोंडो से लडने के लिये वालाजी ने वापू जी नारायण को घुड़सवारो के साथ भेजा। उधर जो मराठी सेना जवलपुर से भाग आयी थी (वह अंताजी खांडेकर के अधीन थी), वह फिर से दमोह मे संगठित की गयी—जिसका नेतृत्व इस वार केशवराव चादोरकर को सौपा गया था। वापूजी चौरागढ पर हमला करने के लिये भेजा गया और चांदोरकर ने तेजगढ पर आक्रमण किया था। मराठो के इस आक्रमण से नरहर-शाह गंगागिरि के साथ भाग कर चौरागढ़ चला गया। यह समाचार काल्पी में जव वालाजीराव को ज्ञात हुआ तो उसने भी एक सेना पुत्र रघुनाथराव उर्फ आवासाहव के साथ रवाना की। आवासाहव मोरो विश्वनाथ को साथ मे लेकर सागर से मण्डला गया—उस नगर को लूट कर वह जवलपुर लौट आया और वहा से चौरागढ गया—जहां सागर राज्य की सारी सेना एकत्रित हो गयी थी। चौरागढ़ मे गोडी सेना अधिक दिनो तक न लड़ सकी और अन्त मे राजा नरहरशाह और गंगागिरि पकडे गये। वालाजी ने नरहरशाह को कैदी वना कर खुरई के किले मे रख दिया और गंगागिरि को हाथी के पैर के नीचे दववा कर मरवा डाला। इस युद्ध से मण्डला का गोंडी राज्य मध्यप्रदेश के मानचित्र से सदा के लिये उठ गया।

वालाजीराव प्राय. काल्पी मे रहा करते थे—इसलिये उन्होंने अपने पुत्र आवासाहव को सागर मे छोड़ दिया था। उनके साथ मे निम्न प्रमुख अफसर राजकाज मे सहयोग देते थे—लक्ष्मीनारायण भट (दीवान), कृष्णाजी मुजुमदार, रामचंद्र कृष्ण, लक्ष्मण कृष्ण लघाटे, वासुदेव वांकणकर, तुकोवा प्रभु, और केशव भीकाजी। किन्तु इन सव पर नियं-त्रण मोरोपन्त का था। मोरोपन्त सूवेदार ही आवा साहव के नाम से राज्य शासन का संचालन करते थे। सन् १७९७ ईस्वी मे मोरोपन्त मर गया तव उसका अधिकार उसके पुत्र विश्वासराव को वालाजी राव ने सौप दिया था। सन् १७९८ मे मंडला और जवलपुर जिले पूना के पेशवा ने रघोजी भोसले (द्वितीय) को दे डाले। धमोनी भी शीघ्र ही भोंसलों को मिल गई। इसके वाद विश्वासराव को शासन का भार सौप कर आवा साहव काल्पी चला गया।

इस युग मे मीर खां पिंडारी ने सागर जिले मे कई वार लूटमार की थी। एक वार तो उसने सागर नगर को ही घेर लिया था। सूवेदार विश्वासराव ने अपनी सहायता के लिये भोंसले को वुलवाया था। इस प्रसंग पर भोंसलों की सेना ने सागर की रक्षा की थी—जिसके कारण उनको चौरागढ़ और धमोनी का इलाका सागर वालो ने दे दिया था।

बालाजीराव का एकमात्र पुत्र रघुनाथराव (ग्राबा साहब) और गगाधरराव का एकमात्र पुत्र गोविन्दराव (नाना साहब) था। बालाजी और गगाधरराव दोनो भ्राताओं का अन्तकाल थोडे समय के अन्तर से हुआ था। ग्राबा साहब कभी सागर और कभी काल्पी में रहता था। ये सागर के "सूबेदार" थे—किन्तु स्थानीय लोग उनको "राजा साहब" कहते थे। ग्राबा साहब—रघुनाथराव के समय में सागर में सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि पद्माकर कवि रहते थे। उसने रघुनाथराव की तलवार की यो प्रशसा की थी—

> दाहन त दूनी तेज तिगुनी त्रिसूलन पैं, चिल्लिन तैं चौगुनी चलाक चक्र चाली त ।
> कहै पद्माकर महीप रघुनायराव, ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तैं।
> पाच गुनी पब्ब त पचीस गुनी पावक तैं, प्रकट पचास गुनी प्रलय प्रनाली तैं।
> साठ गुनी सेस तैं सहस्र गुनी स्रापन त, लाख गुनी लूक त करोर गुनी काली त ॥

कहा जाता है कि रघुनाथराव ने इनकी कविता पर प्रसन्न हो, एक बार एक लाख रुपया पुरस्कार दिया था। रघुनाथराव का देहान्त सन् १८०२ ईस्वी में हुआ था। इनके कोई पुत्र न था—इसलिये यह निश्चय किया गया था कि नाना साहब के जो पुत्र होगा—उसे ग्राबा साहब की बडी रानी गोद में लें। मृत सूबेदार की दो स्त्रिया रुक्माबाई और राधाबाई थी। ये रानिया सागर में ही रहती थी और उनकी ओर से विनायकराव चादोरकर मुख्त्यार था। इधर कुछ दिनो के बाद काल्पी में नाना साहब के एक पुत्र हुआ—जब यह समाचार सागर पहुँचा था तब सागर की रानी रुक्माबाई ने नगर में एक विराट जलसा किया था जिसमें केवल ५ हजार रुपयो की शक्कर ही बाटी गई। बाद में यह बालक शीघ्र ही मर गया। इसलिये दुबारा जो दूसरा पुत्र नाना साहब के हुआ तो उसने गोद देने से इन्कार किया। तब रानियो ने दत्तक विधान के प्रकरण को कुछ दिनो के लिये स्थगित कर दिया।

सन् १८१८ ईस्वी में पूना का राज्य अग्रेजो ने हडप लिया और पेशवा बाजीराव को पेंशनर बना कर कानपुर के निकट बिठूर में पटक दिया। इस समय के निर्णय के अनुसार सागर प्रदेश भी अग्रेजो ने अपने कब्जे में ले लिया—जो कि पूर्व सधि के विपरीत था। काल्पी के नाना साहब ने अग्रेजो से एक स्वतन्त्र सधि की थी * जिसके अनुसार "ईस्ट इडिया कम्पनी" ने नाना साहब गोविन्दराव और उनके वारिसो का हक मजूर किया था। इस सुलह की ८वीं शर्त के अनुसार यह तय हुआ था कि यदि नाना साहब और ग्राबासाहब में कोई झगडा हो जावे—तो उसका निर्णय कम्पनी करेगी, किन्तु जब पेशवाई जब्त की गयी तब सागर का इलाका पेशवा का ही है—यह कर यह जब्त कर लिया गया (सन् १८१८ ईस्वी) परन्तु झासी का राज्य कायम रखा गया।

सागर राज्य अग्रेजी राज्य में जब्त लेने पर गवनर जनरल ने वहा के शासनकर्त्ताओं को वार्षिक ढाई लाख पेंशन देने का निर्णय किया था। इन पेंशनो का बटवारा इस प्रकार किया गया था। † (इस समय रानी रुक्माबाई जीवित थी)।

रानी रुक्माबाई को वार्षिक	९४,०००	रुपये
‡ विनायकराव को वार्षिक पेंशन	४७,०००	,,
अन्य सरदारों को पेंशन	१,०९,०८७	,,
जोड	२,५०,०८७	,,

---

* अचीसन साहब द्वारा लिखित—सुलहनामो का विवरण। (कैप्टन बेली द्वारा सन् १८०५ ई की सुलह)।

† (सागर १९ जुलाई १८१९ का पत्र) श्री टी ए मडाक साहब, अस्थायी एजेंट, गवनर-जनरल, सागर।

‡ सूबेदार विनायकराव का देहान्त, सवत १८८२ में हुआ था। उनके पुत्र मोरेश्वरराव १० सहस्र रुपये वार्षिक पेंशन पाते थे। ये झासी के राजा रामचद्रराव के बहनोई थे।
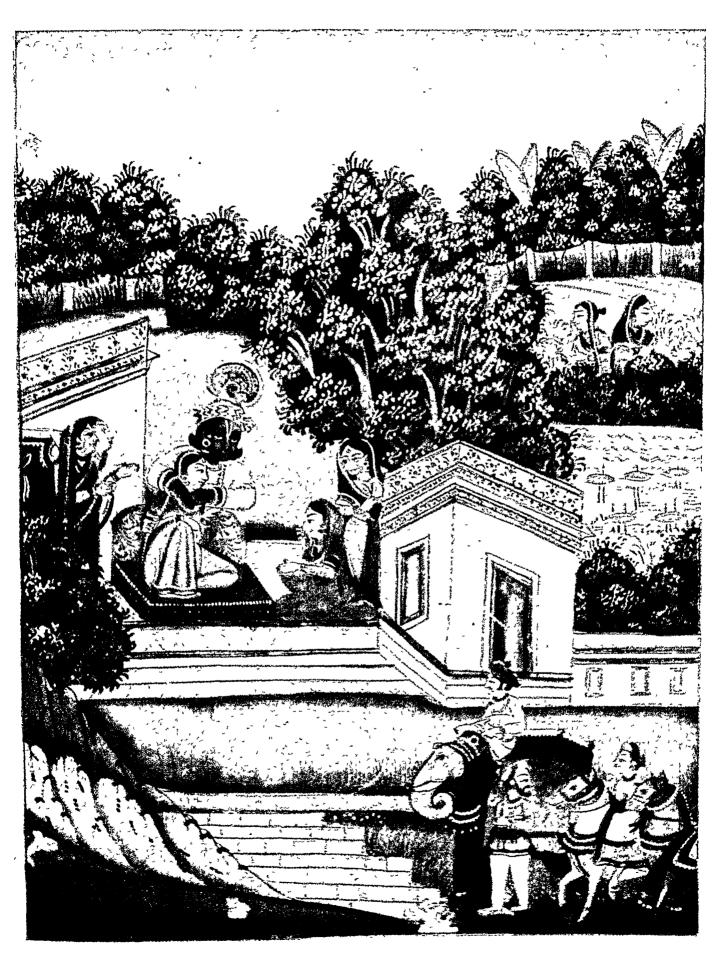
रुक्मिणी गोरटी । कृष्ण काळा ॥

(भोसलें कालीन चित्र)
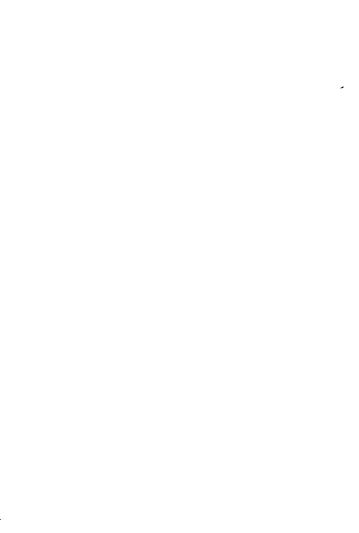
संवत् १८९० में रुक्मावाई ने पथरिया के रामचंद्रराव खेर के पुत्र वलवंतराव को दत्तक लिया था—जिसे कम्पनी ने भी मंजूर किया। वलवंतराव जी को जवलपुर मे रहने की आज्ञा दी गयी और उनकी पेशन १० हजार रुपये वार्षिक थी।

नागपुर में मराठा शासन

रघोजीराव भोंसले (प्रथम)—१८ वी सदी मे सतपुड़ा के अरण्यमय मैदान मे रघोजी भोंसले* ने नागपुर मे मराठो का राज्य स्थापित किया। उस समय तक मध्यप्रदेश पर राजगोडों का शासन था। वह सातारा के महाराजा शाहू का "सेनासाहब सूबा" था और ई. सन् १७३० मे उसे गोंडवाने से चौथ वसूल करने की सनद मिली थी।† आरंभ में रघोजी यवतमाल जिले के भाम नामक ग्राम में रहता था। वहीं पर उसने चुने हुए सरदारों की एक घुड़ सेना तैयार की—जिसका सेनापति भास्करराव कोल्हटकर था। सातारा से ही रघोजी चुने हुए कई वीर सरदारों को अपने साथ लाया था और उनके सहयोग से उसने एक विशाल राज्य स्थापित किया था। यों तो मराठे सरदारों की आरम्भिक अवस्था पिंढारों के समान थी—जिसका वर्णन हमने आगे किया है। जो राज्य मराठो के अधीन रहता था—उसकी देखभाल तो वे अच्छी तरह से करते थे; वहां की प्रजा को सभी तरह का सुख पहुँचाने का प्रयास करते थे, किन्तु पड़ोसी राज्यो को जहां पर दूसरे का शासन होता था—जाकर लूटते थे और प्रजा को तव तक त्रस्त करते थे, जवतक कि वहा का राजा चौथ के रूप मे धन नही देता था। दशहरा होते ही मराठे "मुलुकगिरि" के अपने राज्य से घोड़ों पर चल पड़ते थे और अन्य राज्यो पर आक्रमण कर के धन-संग्रह करते थे। उसी धन के सहारे अपनी राजधानी में वर्षा के घने वादलों और रिमझिम बरसते हुए पानी मे आनद की रातें विताते थे। रघोजी का चचा कान्होजी भोंसले भाम मे रह कर 'मुलुकगिरि' करता था—जिसकी सनद सातारा के महाराजा से मिली हुई थी। कान्होजी का उत्तराधिकारी भतीजा रघोजी वनाया गया—जो कि छत्रपति शाहू का साढू भी था। यह वही समय है—जब कि पूना के पेशवा, वड़ौदा के गायकवाड़, इंदौर के होल्कर और ग्वालियर के सिंधिया—सातारा के छत्रपति की अनुमति से प्रवल राज्य क़ायम करते है। उसी तरह नागपुर मे भोसलो का प्रवल राज्य क़ायम होता हैं। ये सभी सरदार शाहू को अपना राजा मानते थे।

नागपुर मे भोसले का प्रवेश—सन् १७३५ ईस्वी मे देवगढ़ का गोड राजा चांद सुलतान नागपुर में मर गया—उसके चार पुत्र थे, उनमें वालीशाह दासीपुत्र था—उसने राजा के जेष्ठ पुत्र मीरवहादुर को मरवा दिया और स्वयं राजा वनने का यत्न करने लगा। ऐसी अवस्था मे विधवा रानी रतनकुंवर ने बुरहानशाह और अकवरशाह पुत्रों के हित के लिये भाम से रघोजी भोसले को बुलवाया। उस निमंत्रण के अनुसार रघोजी नागपुर के लिये रवाना हो गया। वालीशाह ने मराठो को पाटनसांवगी मे रोकने के लिये गोंडी सेना के साथ सेनापति रघुनाथसिंह को भेजा। नागपुर से पाटन सावंगी पहुँच कर रघोजी ने गोंडो को हराया—तब रघुनाथसिह भाग कर भडारा चला गया और वही पर पकड़ा गया, परन्तु उसने रघोजी को राज़ी कर लिया। रामटेक मे श्रीराम का दर्शन कर उसने देवगढ़ की ओर प्रस्थान किया—रास्ते मे पहाडी घाटियो मे वालीशाह ने रघोजी को रोकने का यत्न किया। इस संघर्ष मे वालीशाह मारा गया और रानी रतनकुँवरि ने देवगढ मे रघोजी का स्वागत किया। (सन् १७३७ ई.) इस सहायता के उपलक्ष्य मे रानी ने रघोजी को १० लाख रुपये दिये और उसकी राय से वुरहानशाह देवगढ़ का राजा घोषित किया गया था। फिर भी रघोजी ने राजा के संरक्षक के वहाने नागपुर में रहने का निश्चय किया—क्योकि भाम की अपेक्षा

---

* रघोजी भोसले—जन्म सन् १६९८। जन्म स्थान—सातारा जिले का पांडववाडी ग्राम, विशेष विवरण—मल्हारराव कृत "राजाराम चरित्र", पृष्ठ ३७-३८।

† ग्रँट डफ का मराठो का इतिहास, जिल्द १ और श्री सरदेसाई का मराठों का इतिहास (मराठी)।

यहा कई बातो का सुपास था। नागपुर में वह चुपचाप नही बैठा रहा—उसने उसे राजधानी का रूप दे दिया—गोड राना के नाम पर वर्धा नदी के समीप के कुछ परगने भी अपने अधिकार में कर लिये। गोडों ने अपना हितचिंतक समझ उसकी आकाक्षा के लिये कोई रुकावट नही पदा की। उसका परिणाम यह हुआ कि बुरहानशाह देवगढ़ का पहाडी जागीरदार सा बना दिया था और रघोजी नागपुर का राजा बन गया। इसके बाद उसने सातारा जाकर शाहू से भेंट की और गोडवाने से प्राप्त धनराशि से कुछ भेंट कर के उसे सन्तुष्ट कर दिया था।

*"भोसला की बखर" से पता चलता है कि "सन् १७३८ ईस्वी में लखनऊ, मकसूदाबाद, ढाका, बगाल, चेनिया, बुन्देलखण्ड, बीदर, प्रयाग और पटना के सूबो से चौथाई वसूल करने का अधिकार महाराजा शाहू ने दिया था। सागर से लौट आने पर रघोजी ने मण्डला के राजा शिवराजशाह के राज्य के ६ गढ़ प्राप्त कर लिये—जो नागपुर प्रदेश से लगे हुए थे।

कर्नाटक का युद्ध—सन् १७४० ईस्वी में रघोजी सातारा में बुलवाया गया क्योंकि उस समय महाराष्ट्र के सभी सरदार कर्नाटक के युद्ध के लिये एकत्रित हुए थे। इस समय समस्त मराठा सेना का सेनापति रघोजी भोसला बनाया गया था और उसमें पेशवा बाजीराव का भी समर्थन था। इस मुहिम से मराठा राज्य का प्रभाव दक्षिण भारत में विस्तारित हुआ और साथ ही आर्थिक लाभ भी—क्योंकि प्रत्येक युद्ध आर्थिक लाभ के लिये भी होते थे। कर्नाटक के युद्ध के कारण रघोजी की योग्यता समस्त महाराष्ट्र की आखो के सामने आगयी। इस समय महाराष्ट्र में दो ही राज धुरंधर पुरुष थे—एक रघोजी भोसला और दूसरा पेशवा बाजीराव। पर दोनो में आपसी स्पर्धा थी, क्योकि रघोजी मानता था कि दोनो का दर्जा बराबरी का है—क्योकि दोनो ही छत्रपति के सेवक है।

हैहय राज्य का अत—जिस समय रघोजी—कर्नाटक की ओर गया था—उस समय नागपुर में उसका सेनापति भास्कर पन्त था। उसी समय से भास्करपन्त ने दक्षिण-कोशल—जिसे छत्तीसगढ कहते थे—में अपना राज्य जमाने का यत्न किया। नागपुर से लगा हुआ वैनगगा के पार रायपुर और रतनपुर के राजाओ का राज्य था—जो लगातार ८०० वर्षो से बराबर शाति के साथ राज करते चले आ रहे थे। किन्तु इस समय वे प्राय तेजहीन हो चुके थे। उधर बगाल में भी राज्य पलटने की साजिशें जोर के साथ चल रही थी। बगाल के मुगल सूबेदार अलीवर्दी खा के विरोधी सरदार मुर्शीदकुली खा का दामाद बाकरअली सहायता पाने के हेतु नागपुर गया था। वह रघोजी से मिलने के लिये कर्नाटक भी पहुँचा था। सन १७४०-१७४१ ईस्वी में भास्करपन्त १० हजार घुडसवारो को लेकर बगाल की ओर रवाना हुआ। रास्ते में उसे रायपुर से गुजरना पडा—वहा का राजा था अमरसिंह—जिसने मराठा सेना के प्रति किसी तरह का कोई विरोध प्रकट नही किया और न भास्करपन्त ने ही कोई छेडछाड की। इसी तरह मराठो के घुडसवार जब रतनपुर के समीप पहुँचे—तो वहा के वृद्ध राजा शिवराजसिंह ने किले के द्वार बन्द करवा दिये थे। उस समय राजा की अवस्था ८५ वर्ष की थी और उसका इकलौता पुत्र हाल ही में मरा था। मराठो ने रतनपुर के किले को घेर कर तोपो की मार शुरू कर दी और आसपास के गावो को लूटना आरभ कर दिया। किले का एक हिस्सा जब गिर पडा तब रानी लक्ष्मी ने स्वय एक बुर्ज पर खडी होकर सफेद झडा फहरा दिया और किले के द्वार खुलवा दिये। रतनपुर नगर का लूट कर—राज्य के खालसा की घोषणा की गयी और वहा का प्रबंध मोहनसिंह को सौंपा गया। रतनपुर लेकर भास्करपन्त ने उडीसा की ओर प्रस्थान किया—पर बीच रास्ते से ही वह नागपुर वापिस लौट आया।

‡बगाल पर हमले (सन् १७४२ ईस्वी)—सन् १७३६ ई में दिल्ली सम्राट् ने अलीवर्दी खा को बगाल, बिहार और उडीसा की सूबेदारी सौंपी थी—जिसका विरोध पुराने सूबेदार के हितैषियो ने किया था—उनमें उडीसा का नायब नाजिम मुर्शीदकुली खा भी था। उसे सन् १७४० ई में उडीसा से भागना पडा और मराठों की सहायता पाने का यत्न

---

* नागपुर भोसल्याची बखर (मराठी)।

‡ सर जदुनाथ सरकार द्वारा लिखित—"रघोजी भोसला।"

करने लगा—जिसमे उसे सफलता तो मिली—पर उसका कोई निजी लाभ न हुआ और मराठो को सेत में उड़ीसा प्राप्त होगया। इसी समय मे अंग्रेजो की ईस्ट इंडिया कम्पनी भी कलकत्ते में वैठ कर वंगाल मे राज्य जमाने का कार्यक्रम वना रही थी। भारतीय और पश्चिमी आदर्श के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे। पश्चिम के अर्थो में इस देश मे राष्ट्रीयता का अभाव था। भारतवासियो को एक दूसरे से लड़ा देना—अंग्रेजो के लिये सरल था।

मिस्टर मालेसन ने ठीक लिखा है—"स्वभाव से ही गैरों पर विश्वास कर लेने और उनकी ईमानदारी का व्यवहार करने की आदत थी।" अंग्रेज़ों ने भारत मे धन और राज के लिये सभी तरह के कार्य किये हैं। वचन देकर मुकर जाना—यह तो कम्पनी के प्रत्येक कर्मचारी की आदत ही पड गयी थी। एडमण्ड वर्क ने पार्लिमेन्ट के सामने वारन हेस्टिंग्स के मुकदमे के सिल्सिले मे कहा था—"एक भी ऐसी संधि नही है—जो अंग्रेजो ने भारत मे किसी के साथ की हो और जिसे उन्होने वाद में न तोड़ा हो।"

सन् १७४२ से भोंसलों के हमले लगातार कुछ वर्षो तक वंगाल मे चलते रहे—उनका मूल उद्देश्य था कि वंगाल का नवाब अलीवर्दी खां प्रतिवर्ष चौथ की रकम देता रहे। प्रथम आक्रमण सन् १७४२ मे हुआ था जो कि उड़ीसा के मार्ग से न होकर विहार के मार्ग से हुआ था। उस समय भास्कर पन्त १० हजार घुडसवार लेकर वंगाल गया था। मराठा शैली के हमले से वंगाली लोग परिचित न थे और उन्हे पता ही न चलता था कि वास्तव में मराठो की सेना कितनी है। मराठे अचानक छापा मार कर गांव को लूट लेते थे और मकानों को जला देते थे—जिसके कारण जोरो की अफवाह फैल जाती थी और लोग घवरा उठते थे। विहार के रास्ते से जव भास्करपन्त वगाल की सीमा पर पहुँचा—तव वहां का नवाव जयगढ़ मे था। उसके हरकारों ने उसे जाकर वताया कि "भास्करपन्त मरहटा ४० हजार घुड़सवार लेकर चौथ मागने आया है।" नवाव सेना सहित जव रानी तालाव पर पहुँचा—तव उसे समाचार मिला था कि भास्करपन्त वरद्वान जिले मे आतक मचा रहा है। नवाव का पुराना कर्मचारी मीर हवीव (जो मराठो से मिल गया था), मराठों का मार्गदर्शक वन गया था। उसने मराठों से मुर्शिदावाद पर हमला करने का अनुरोध किया—नगर के समीप जव मराठे पहुँचे तव नगर में अचानक भगदड़ मच गयी। नवाव के भाई के पास पर्याप्त सेना थी—तिस पर भी वह प्रतिकार न करते हुए किले मे चला गया था। सारे नगर मे मराठे फैल गये और उन्होने नगर को अच्छी तरह लूट लिया। कहते है कि जगत सेठ के यहां भोसले को ३ करोड़ का माल मिला था। नगर को लूट लाट कर ६ मई को शाम को मराठे नगर छोड़ वाहर चले गये। इसके वाद ही नवाव ने राजधानी मे प्रवेश किया था।

जुलाई मास के मध्य में मीर हवीव ने मराठो को साथ में लेकर हुगली पर कब्जा जमाया था जिससे अंग्रेज कम्पनी का कारोवार ठप्प होगया था। मराठो ने किसी मैदान मे संगठित हो कर युद्ध नही किया—वे अचानक आक्रमण करते, लूटते और घरो को जलाते हुए मीलों राज्य से वाहर भी हो जाते थे तथा उनके छापे प्रायः रात्रि मे ही होते थे। दिसंवर तक लूटमार के वाद भास्करपन्त वापिस नागपुर लौट गया था।

सन् १७४३ के मध्य मे स्वय रघोजी भोसले रामगढ़ के मार्ग से वंगाल पहुँचा था। मराठो के आगमन का सम्वाद पाते ही अलीवर्दी खा ने दिल्ली के सम्राट् से आग्रह किया था कि वह उनकी सहायता करे। इस समय पेशवा वालाजीराव दिल्ली के निकट टिका हुआ था। सम्राट् ने पेशवा से वातचीत करके तय किया कि वह भोसले की सेना को वगाल से निकाल वाहर कर दे और जिसके एवज मे उसे मालवा प्रदेश दे दिया जावेगा। पेशवा तुरंत सेना लेकर दाऊदनगर, टिकारी, गया, मानपुर, विहारशरीफ, मुंगेर और भागलपुर के मार्ग से वंगाल पहुँचा। अमानगंज छावनी से २० मील पर नवाव की ओर से गुलाम मुस्तफा ने पेशवा का स्वागत किया। ३१ मार्च को स्वयं नवाव पेशवा से मिला। पेशवा ने आरंभ मे रघोजी को लौट जाने का संदेश दिया था—किन्तु पल्ले मे कुछ न आने से वह लड़ने को तैयार हो गया और परिणाम यह हुआ कि पेशवा की सेना ने नागपुर वालों को खदेड़ दिया—तव रघोजी चुपचाप नागपुर लौट गया और वहां से पेशवा की शिकायत करने के लिये सातारा चला गया। ७ जुलाई सन १७४३

ई को नवाब स २२ लाख रुपये लेकर पेशवा वापिस लौट गया—किन्तु आश्वासन दे गया कि भविष्य में रघोजी बगाल पर आक्रमण नही करेगा। उत्तर मे लौट जाने पर बालाजी पेशवा भी सातारा गया और वही पर भोसले के साथ पेशवा ने मेल कर लिया। रघोजी के रुख से पेशवा ने प्रसन्नतापूर्वक उसे नर्मदा के उत्तरीय राज्यो से चौथ वसूल करने का अधिकार दिलवा दिया था।

सातारा में पेशवा से मेल-जोल कर के रघोजी नागपुर लौट गया और वहा पहुचते ही उसने २० हजार घुड-सवारो क साथ भास्करपन्त को बगाल पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया—अबकी बार मराठो की सेना उडीसा के मार्ग से बगाल गयी। बारमल-घाटी को पार कर ज्यो ही मराठे कटक के निकट पहुँचे—त्यों ही हरकारो ने नवाब से सारा समाचार कह सुनाया। अलीवर्दी खा ने पेशवा के पास सदेशा भेजा—किन्तु इस बार उसने मौन धारण कर लिया और दिल्ली सम्राट् भी किसी तरह की सहायता पहुचाने में असमर्थ था। फिर भी बगाल मे नवाब ने किसी तरह बगाल की रक्षा करने का प्रबध किया। भास्कर पन्त ने नवाब से समझौता कर डालने के विषय में बातचीत करने के हेतु सरदार जानकीराम और मुस्तफा खा को भेजा और स्वय मानकुरा म ठहर गया था। ३१ मार्च सन् १७४४ को दोनो न सुलह कर लेने का निश्चय किया था। भास्करपन्त कटवा और पलासी होते हुए मानकुरा गया था और वहा पर नवाब भी पहुँच गया था। नवाब ने भास्करपन्त को मार देने का एक षड्यन्त्र रचा और मराठे सरदारो को भोज क लिये निमन्त्रित किया था। भोज स्थल पर एक विशाल शामियाना खडा किया गया था और उसके एक कोने पर नवाब की बठक थी। भास्कर पन्त २१ मराठे सरदारो के साथ वहा गया था और ज्यो ही वह आसन पर बैठा—त्यो ही पूर्व सकेतानुसार शामियाने की रस्सिया काट दी गयी और खातिरदारी करने वाले छद्म वेषधारी सैनिको ने भास्कर पन्त और उसके साथियो को मौत के घाट उतार दिया। भास्कर का सिर काट कर नवाब के सामने पेश किया गया। अपने सरदारो के अमानुषी कृत्य देख कर नवाब नगे पैर अपने डेरे में पहुच गया था। भास्कर पन्त के मारे जाने का वृत्तात ज्यो ही सनिको क पास पहुँचा—त्यो ही सेनापति रघोजी गायकवाड घबरा कर सैनिको को लेकर वापिस नागपुर लौट गया।

महाराष्ट्र पुराण *—इसका वर्णन कवि गगाराम ने बगला के 'महाराष्ट्र पुराण' में किया है। इस ग्रथ की रचना का समय पौष १४ शनिवार शके १६७२ बङ्गाब्द ११५८ है। गगाराम ने ग्रथारम्भ इस तरह किया है—

> राधाकृष्ण नाही भजे पापमति होइया।
> रात्रदिन क्रीडा करे परस्त्री लोइया॥

उस ग्रथ म मराठो के अत्याचारो का वर्णन विस्तार के साथ मिलता है। जिसका साराश यह है—

"छत्रपति शाहू ने बगाल पर आक्रमण करने के लिये रघोजी को आज्ञा दी थी और उसके अनुसार उसने भास्कर-पन्त को सेना के साथ भेजा था। मराठों की सेना ने हजारो झडे और नगाडे बजाते हुए पञ्चकोट में प्रवेश किया। उस समय नवाब का मुकाम बरद्वान के समीप रानी तलाव पर था। बरगियो (मराठे सैनिको) ने ज्वालामुई के मार्ग से बरद्वान को घेर लिया—जिससे नवाब के हरकारे विस्मित से होगये। बरगियो के पास ४० हजार घुडसवार और जमादार थे उन्होने नवाब से कहलवाया कि सातारा महाराज की आज्ञा से वे चौथ वसूल करने के लिये आये हैं। नवाब ने मुस्तफा खा से यह सारी जानकारी प्राप्त की थी। भास्कर-पन्त के साथ हीरामन कासी, गगा जी आभा, सीमत योसी, बालाजी, शिवाजी, सभाजी केशजी, केसरीसिंह और मोहन-सिंह जमादार थे। वे लोग सैनिको को लेकर देहात में फैल गये और लूटमार करने लगे तथा बचे हुए १४ जमा-दारो ने नवाब को घेर लिया था। दो सप्ताह तक घेरा पडा रहा—जिससे बरद्वान में रसद मिलना असभव होगया।

---

* रायल एशियाटिक सोसायटी (बगाल) की पत्रिका में 'महाराष्ट्र पुराण' छापा गया था।

चावल, दाल, प्याज, तेल, घी, खाड, नमक आदि वस्तुएँ तेज हो गयी। एक रुपये मे एक सेर चावल मिलता था। तरकारी-भाजी का पता ही न था। गांजा, भाग, तमाखू भी मिलती न थी। साग के एवज मे लोग केले की जड़े खोद कर खाते थे। गरीब और मंगते भूखों मरने लगे। नवाव को भी दिक्कत के साथ खाना मिलता था। लाचार हो नवाब ने युद्ध करने का निश्चय किया। निशान लेकर घोड़े चल पड़े—ढोल और नगाड़ा वजने लगे। वरगियों ने सेना पर 'हर हर महादेव' कहते हुए हमला किया—जिससे नवाब की सेना में भगदड़ मच गयी थी।"

"मुस्तफा खा वरगियों पर पिल पड़ा—जिसको बर्गी न रोक सके। मीर हबीब ने मालिक के साथ विश्वासघात किया और वह बर्गियो से जा मिला। उसने नवाब की छावनी मे आग लगा दी और रसद को लूट लिया। कुछ हाथी और घोड़े बर्गियो के हाथ लग गये, किन्तु नवाब तो किसी कदर कटक पहुँच गया। नवाब का हाथ से निकल जाना भास्कर को अखरा। तव तो बर्गियों ने आसपास के ग्रामों को लूटना और गांव के गाव जलाना आरभ कर दिया। लोग घवरा उठे और ग्रामीण जन सुरक्षित स्थानों की ओर भागने लगे। वगल मे पोथी दाबे पडित जन भाग रहे थे। हाथ में तराजू ले बनिया और सुनार भागने लगे। लोहार, कसेरा, कुम्हार, केवट, ढीमर, चुडिहार, अपना-अपना सामान सिर पर रखे हुए भागने लगे। गोस्वामी, महंत, मठाधीश भी अपने-अपने स्थानो को छोड़ कर भाग रहे थे। वर्गी का नाम सुनते ही कायस्थ और वैद्य भी लापता होगये थे। कुलीन स्त्रिया जिन्होंने कभी हाट नही देखा था—वे भी सिर पर सामान रख कर भागती हुईं नजर आती थी। राजपूत और क्षत्रियगण अपनी तलवार फेक कर भाग रहे थे। किसान वैलों को हांकते हुए भागे जा रहे थे। शेख, सैयद, पठान भी भगोडों का अनुकरण कर रहे थे। रास्ते मे भागने वाले जव कही मिल जाते—तो यही पूछते थे कि—तुमने बर्गियो को देखा है। वे कहते नही—तव भी लोग भाग रहे थे। हम भी (लेखक स्वयं) उसी पथ के पथिक थे। रास्ते में कही वर्गी मिल जाते—तो वे उनको लूट लेते थे। वर्गी केवल चादी-सोना लूटते थे। वल से स्त्रियो से आभूषण छीनते थे। सैकड़ो स्त्री-पुरुषों के हाथ, नाक, कान काटे गये। कुलीन स्त्रियो के साथ इतना व्यभिचार करते थे कि युवतियां त्राहि-त्राहि करती थी। एक स्त्री से कई सैनिक व्यभिचार करते थे—सहस्रों ने तो प्राण दे दिये थे। ब्राह्मण, वैष्णव, संन्यासी, बच्चे और स्त्रियां मारी गयी थी। गांव के गांव जलाये जाते थे—जिसमे मठ और मन्दिर भी नही बचते थे।"

"निम्नलिखित ग्रामों की भीषण दुर्गति हुई थी—चन्द्रकोना, मेदिनीपुर, दिगनगर, खिरपई, बरद्वान, नीमगाछी, शेरगा, सिमैता, चंडीपुर, श्यामपुर। इस तरह सारा बरद्वान जिला तबाह होगया। पीरखां ने हुगली को बचा लिया था, किन्तु आसपास के सैकड़ो गांव जलकर नष्ट होगये थे।.....

"विष्णुपुर को (कवि जहा का निवासी था) गोपालसिंह ने बचा लिया था। हुगली से गंगा पार कर के बर्गी हाजीगंज मुर्शिदाबाद गये थे। वहां का छोटा नवाब हाजी बर्गियो का नाम सुनते ही किले में चला गया था। बर्गियों ने नगर के साहूकारो को लूट लिया और जगतसेठ का खजाना लूट लिया—जहां २।। करोड रुपये की सम्पत्ति थी। वरगियों ने लूट का धन घोडो के तोबरो तक में भरा था—जल्दी मे जो रुपये विखर गये थे—दूसरे दिन उन्हे नगर के फकीरो ने चुन लिया था।"

"कटवा मे नवाव को मुर्शिदावाद लूटने का समाचार ज्ञात हुआ था। तब वह तुरन्त राजधानी मे पहुंचा था। नवाव ने जगतसेठ के लूटे जाने का दोष हाजी को दिया था। नवाव जब किल मे गया तव वर्गी कटवा मे थे। गंगा और अजय नदियों मे वाढ आ जाने से वर्गी आगे न वढ सके। कटवा मे मुकाम करके भास्करपंत ने वंगाल के जमीदारों से लगान वसूल किया था।"

"मीर हवीव ने पुल वनवा कर गंगा को पार किया था और उसने गांवों को लूटना और जलाना प्रारम्भ किया था। भास्करपन्त ने डाइनहाट मे गंगा के तटपर नवरात्र का अनुष्ठान आरंभ किया था।.......

नवाब ने इसी बीच अपने जमादारो को लेकर बर्गियो पर हमला किया। अष्टमी की रात्रि को दुर्गापूजन का कार्य अधूरा छोड भास्करपत को भागना पडा था। नवाब ने बर्गियो का सामान भी लूटा था।"

"आश्विन मे भास्करपत बगाल से भाग गया—किन्तु चैत्र में फिर से पहुच गया था। बगाल का चित्र देखकर भावनी पावनी को महान दुःख हुआ और उसने भरवी तथा योगिनियो को आज्ञा दी थी कि वे नवाब की सहायता करें। जब भास्कर कटवा में पहुँचा तब नवाब मानकूरा म था। वैशाख कृष्ण ७ शनिवार को नवाब भास्करपत से मिला था। थोडी देर बाद नवाब वहा से उठकर चला गया। भास्करपन्त भी यह कहकर उठा कि—मैं शाम को वार्तालाप के लिये आता हू। मुस्तफाखा भी उठ गया। ज्यो ही रिकाब में पैर रखकर भास्करपन्त घोडे पर चढने लगा—त्यो ही किसी ने तलवार से उसका सिर काट दिया। (एक फारसी ग्रथकार ने मीरजाफर का नाम लिखा है।) बाद में उसके अन्य साथी मारे गये—और नवाब की सेना में आनद मनाया जाने लगा।"

मोनकूरा मुकामे जदि भास्कर मईल।
मनसूबाबाद उडाइया कवि गगाराम कईल।।

'महाराष्ट्र–पुराण'–अधूरा ग्रथ ही उपलब्ध है। अस्तु—

भास्करपन्त के मारे जाने पर बगाल में १५ मास तक शाति रही, किन्तु देश की आर्थिक दशा शोचनीय होगयी थी। सन् १७४४ ईस्वी में बगाल और उडीसा का राजस्व ⅓ वसूल हुआ था। कृषि की हालत भी बिगड गयी और नवाब का फौजी खर्च २ करोड पर पहुच गया था—जिससे वह अपने सैनिको का वेतन भी समय पर नही दे पाता था। भास्कर का मारा जाना सुनते ही रघोजी ने बगाल पर आक्रमण करने की जोरदार तैयारी की और सन् १७४५ के आरभ राजपुत में जानोजी के साथ स्वय रघोजी बगाल की ओर गया जिसके साथ में दीवान तुलजाराम भी था। कटक में राजा जानकीराम का पुत्र दुर्लभराम नवाब का किलेदार था। रघोजी ने आक्रमण करके कटक पर कब्जा किया और दुर्लभराम को पकड लिया। रघोजी ने मिदनापुर, बरद्वान और हुगली जिलो को फिर से लूट लिया–किन्तु नवाब के साथ प्रत्यक्ष में कोई युद्ध नहीं हुआ–और इसी बीच में रघोजी के पास नागपुर से यह समाचार पहुचा था कि देवगढ के गोडा ने विद्रोह खडा कर दिया है। इसी कारण से लूटलाट कर रघोजी नागपुर चला गया—किन्तु जाते समय कटक की सूबदारी उसने मीर हबीब को सौंप दी थी।

गोंडा के विद्रोह से लाभ—सन् १७४२ ईस्वी में देवगढ की राजमाता रतनकुवर मर गयी-तब तक बुरहानशाह और अकबरशाह दोनो भाइयो में कोई मनमुटाव नही होने पाया–परन्तु माता को मरे पूरे ३ वर्ष न बीते दोनो में झगडा खडा हो गया। दीवान रघुनाथसिंह को अपने पक्ष में करके अकबर शाह ने बुरहानशाह को नागपुर से खदेड बाहर किया तब वह नागपुर चला गया। अकबरशाह जानता था कि उसका भाई रघोजी की सहायता लेकर देवगढ अवश्य आवेगा। इसलिय उसने चादा के राजा नीलकठशाह को अपनी सहायता के लिये निमत्रित किया था। रघुनाथसिह ने गोडा को एकत्रित करके एक बार मराठो का प्रभुत्व हटाने का प्रयास किया था। इस समय रघोजी बगाल गया हुआ था और उसे ज्यो ही यह समाचार मिला था त्योही वह नागपुर लौट आया था। नागपुर से देवगढ के लिये उसने अपनी सेना भेजी–जिसने देवगढ पहुचकर रघुनाथसिह को मार दिया और देवगढ को अपने कब्जे में कर लिया। तब अकबरशाह—चादा भाग गया और वही वह मारा भी गया। देवगढ राज्य के शासन को रघोजी ने अपने कब्जे में करके बुरहानशाह का पेंशनर बना दिया। बुरहानशाह तबसे नागपुर में रहने लगा और ३ लाख पेंशन दी जाती थी। (सन्१७४९) देवगढ का राज्य हडप करके रघोजी ने चादा का राज्य भी ले लिया और वहा के राजा नीलकठ शाह को पेंशन देने लगा। इस प्रकार रघोजी ने दो गोड राज्यो का अस्तित्व सदा के लिये मिटा दिया और अपने राज्य में उन्हें जोड लिया। देवगढ, चादा, रायपुर और रतनपुर राज्यो को मिटाकर नागपुर का विशाल राज्य रघोजी ने स्थापित किया और उससे दिन पर दिन भोसला राज्य उत्कर्ष पर पहुच रहा था।

अलीवर्दीखां से सुलह—नागपुर की समस्या सुलझाकर ज्यों ही रघोजी मुक्त हुआ—त्यो ही उसने वंगाल का नाम मिटाना चाहा। अलीवर्दीखा इस समय मे ७२ वर्ष का वूढा हो गया था। उसके प्रमुख सरदार मुस्तफाखा, शमशेरखां और सरदारखा उसका साथ छोड़ चुके थे फिर भी उसने हिम्मत नही छोड़ी थी। १७ मई सन् १७४९ को १८ घंटे घोड़े का सफर करके वूढा नवाव सेनासहित कटक पहुंचा था और वहां से मीर हवीव को खदेड दिया। किन्तु नवाब के लौटते ही वह फिर से कटक में आकर जम गया। इसी समय नागपुर से सैन्य सहित रघोजी ने अपने पुत्र सावाजी भोसले को वंगाल की राजनीति को सफल वनाने के हेतु भेजा। अलीवर्दीखां ने जीवन के कई उतार-चढाव देखे थे—इसलिये उसने हिम्मत नहीं छोड़ी। मीरहवीव, मोहनसिह और सावाजी भोंसले ने कटक में अपना सैनिक केन्द्र स्थापित किया और उन्होंने उड़ीसा के समस्त जमीदारो से टाकोली या पेशकाश वसूल किया। इस तरह समस्त उड़ीसा प्रदेश नागपुर राज्य में मिला लिया गया था। सन् १७४९ ईस्वी के अन्त मे सावाजी नागपुर लौट गया। २ वर्ष वीतने पर अलीवर्दीखां ने भोसलों के आतंक से छुटकारा पाने के लिये—रघोजी से संधि की वातचीत आरंभ की—उसका एक दूत नागपुर भी गया था। अन्त में भोंसले और नवाव के मध्य मे निम्नलिखित शर्तोपर संधि हुई।

(१) वंगाल–विहार और उड़ीसा की चौथ १२ लाख रुपये प्रतिवर्ष नवाव दिया करेगा। (२) नवाव उडीसा के सूवेदार मीर हवीव को भोंसले का प्रतिनिधि मान्य करे। (३) भोसला सेना वंगाल राज्य मे किसी तरह का हस्तक्षेप नही करेगी। (४) सुवर्णरेखा से लगा हुआ उड़ीसा प्रदेश नागपुर राज्य का सूवा होगा।* नवाव ने इस सुलह को मान्य करके रघोजी को २५ लाख रुपये चौथ के रूप मे दिये थे। सुलह के वाद कटक में मीर हवीव भोसले का प्रथम सूवेदार नियुक्त किया गया था। सन् १७५२ ई. मे नागपुर से राजकुमार जानोजी चौथ आदि का हिसाव समझने के लिये कटक भेजा गया था। उसने मीर हवीव को सूवेदारी से हटा दिया और वह शीघ्र मराठो के द्वारा मरवा दिया गया। वाद में उड़ीसा की सूवेदारी शिवभट साठे को सौपी गयी। साठे ने कटक मे पहुंचकर जकात और ठेकेदारी के तौर पर लगान वसूली की व्यवस्था की थी—यही व्यवस्था सन् १८०३ ई. तक उड़ीसा मे चलती थी।

वरार का दो अमली शासन—सन् १७४९ ई. मे छत्रपति राजाराम की गद्दीनशीनी के अवसर रघोजी सातारा गया था। उस अवसर पर सन् १७५० ईस्वी में पेशवा ने रघोजी को वरार मे राज्य जमाने की अनुमति दी क्योकि निजाम पर अंकुश रखना भी पेशवा के लिये हितकारी था। वहां से लौटने पर रघोजी ने वर्धा पार वरार के इलाकों पर अपना प्रभाव जमाना आरंभ किया। यों तो सन् १७३८ ई. में ही नवाब सुजात खां को हरा कर (इस युद्ध में नवाव मारा भी गया था) आकोट इलाका भोंसले ने प्राप्त कर लिया था। सन् १७५० ईस्वी मे जव हैदरावाद निजाम सलावत खां था—रघोजी ने वरार के प्रसिद्ध किले गाविलगढ और नरनाला प्राप्त कर लिये थे—इससे भोंसला राज्य की जड़ मजवूती से जम गयी थी। इसके अनन्तर स्थान-स्थान पर लगान वसूली के लिये नागपुर राज्य के कर्मचारी नियत किये गये। इस दो अमली शासन का व्यौरा अन्यत्र दिया गया है।

राज्य का विस्तार†—रघोजी भोंसले प्रथम ने अपने पराक्रम से अपना राज्य पश्चिम मे वरार से लेकर पूर्व में वंगाल की खाड़ी तक और उत्तरमे नर्मदासे लेकर दक्षिण मे गोदावरी तक फैलाया था-जो वर्तमान मध्यप्रदेशसे वड़ा था। उसके राज्य मे मराठी, हिन्दी, उड़िया, तेलगू और गोंडी भाषाएँ प्रचलित थी, किन्तु राज्य की भाषा मराठी और लिपि मोड़ी थी। संस्कृत शास्त्रो का प्रभाव न्याय के कामकाज मे होता था। रघोजी केवल वीर सैनिक ही न था वल्कि योग्य शासक भी था। उसने नागपुर मे कई इमारते वनवाई थी। वह धार्मिक प्रकृति का रामभक्त था और उसने रामटेक के मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया था। उसके चार पुत्र थे—जानोजी, मुधोजी, वासाजी और विंवाजी। मरने

---

*पेशवाई दफ्तर, अङ्क २०, लेख २७।
पर्शियन कैलेण्डर, जिल्द २, पृष्ठ १२४४—१२४७ (भारत सरकार द्वारा प्रकाशित)।
† मध्यप्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले।

के पूर्व उसने अपना राज्य चार पुत्रो में बाट दिया था। जानोजी को नागपुर की गद्दी, मुधो जी को चांदा राज्य, साबाजी को बरार और बिम्बाजी का छत्तीसगढ देकर भावी कलह का मार्ग रोका था—इसी व्यवस्था को उसने पेशवा से भी मजूर करवाया था। भोसला वंश का यह प्रतापी राजा ५७ वर्ष की अवस्था में १४ फरवरी सन् १७५५ ईस्वी में मर गया—इसकी ८ रानिया थी—उनमें से ६ सती हुई थीं।

रघोजी की योग्यता—नागपुर वंश का रघोजी भोंसला १८ वीं सदी में भारत का एक प्रतापी मराठा राजा गिना जाता था। इसके जीवन का आरम्भ सन् १७२८ ईस्वी से हुआ था। २७ वर्ष की महादशा में उसका जीवन संघर्षमय बीता और उन्ही युद्धो की बदौलत उसने भोसलो का एक विशाल राज्य स्थापित किया था। इतिहासकारो ने तभी उसे "रघोजी महान्" कहा है। एक साधारण मराठा कुल में जन्म लेकर घोडे और भाले के सहारे उसने विशाल राज्य स्थापित किया था। वह स्वय अपने भाग्य का निर्माता था। पुरातन युग में ही नहीं—वरन् वैज्ञानिक युग में भी—राज्यो की नींव बलिदानो के रक्तो से सिंचित होती है। इतना होने पर भी वह चतुर शासन व्यवस्थापक भी था। मराठा-संघ के निर्माताओ में रघोजी और पेशवा बालाजीराव दो प्रमुख शक्तिया थी—इसी समय ईस्ट इडिया कम्पनी का विकास आरंभ हुआ था। रघोजी की सेना में प्रथम श्रेणी के २० हजार घुडसवार थे—जिनके बदौलत ही उसने यह पद पाया था। उसके यहा हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मों के योग्य सरदार नौकर थे। उसने नागपुर नगर को एक व्यापारिक केंद्र भी बनाया था। उसने अपने राज्य में कोष्टियो और जुलाहो को बुनवा कर बसाया था—जिसके कारण यहा का कपडा सारे देश में प्रसिद्ध था। युद्धोपयोगी सामान बनाने वाले कारीगर नागपुर में पर्याप्त थे। इसी भांति अन्य औद्योगिक कलाकार भी अन्य प्रदेशों से आकर यहा बसे थे। इसी तरह सहस्रो सैनिक, साहूकार और राज्य कर्मचारी नागपुर में बसे थे। भोसलों ने सतपुडा की श्रेणियो से व्याप्त प्रदेश को, जो गोडवाना कहलाता था—मराठी मय बनाया है, पर प्रांतीय लोगो के बसने के कारण प्रदेश की गोडी शकल पूर्ण रूप से बदल गयी और उसका असर सामाजिक व्यवस्था पर भी हुआ था। रघोजी की राज-मुद्रा पर निम्न श्लोक अंकित था —

शाहुराजपदा भोजभ्रमरायितचेतस ।
शिवात्मजस्य मुद्रेषा राघवस्य विराजते ॥

जानोजी भोंसले (ईस्वी सन् १७५५–१७७२)

रघोजी भोसले (प्रथम) के देहावसान पर उसका ज्येष्ठ पुत्र जानोजी गद्दी पर बैठा। वह और साबाजी भोसले छोटी रानी के पुत्र थे और बडी रानी के मुधोजी और बिंबाजी। इसी कारण से राज-परिवार में कलह निर्माण हो गया। रघोजी स्वय जानता था और भविष्य के संघर्ष को टालने के हेतु उसने चारो पुत्रो के कार्य का बटवारा कर दिया था। मराठा-संघ का नेता पेशवा बालाजी इससे परिचित था। परम्परा के अनुसार जब पेशवा की अनुमति के लिये यह प्रकरण उसके सामने उपस्थित हुआ, तब उसने उसी वसीयत पर अपनी मुहर छाप लगा दी, जैसी कि मृत रघोजी मरने के समय कह गया था। पेशवा ने जानोजी को—"सेना साहब सूबा" और मुधोजी को "सेना धुरंधर" की उपाधि देकर दोनो का कार्यक्षेत्र बाट दिया था। फिर भी आपसी तनाव दूर न हो सका। मराठो में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी—स्वय रघोजी की सात विवाहित रानिया थी। इसी कारण राज परिवारो में कलह उत्पन्न होते थे और उससे राज्य की ताकत घट जाती थी।

सन् १७५६ में पेशवा ने कर्नाटक में कुछ युद्ध किये थे—जिसमें भोसले बधुओ ने सक्रिय सहयोग दिया था। जानोजी और मुधोजी स्वय अपने घुडसवारो के साथ सावनूर के युद्ध में सम्मिलित थे। यहा से छुटकारा पाने पर दोनो नागपुर वापिस लौट आये थे। इसी समय कटक का सूबेदार शिवभट साठे १२ लाख रुपये पटाने के लिये नागपुर

पहुंचा। मुधोजी ने उस में से ग्राधी रकम पाने की मांग की ग्रौर जानोजी ने कटुता न निर्माण हो—इस हेतु से ६ लाख रुपये दे दिये थे। सन् १७५६ के ग्रन्त मे चान्दा के गोंडों ने उपद्रव मचाया था—जिसके दमन के लिये मुधोजी स्वयं चांदा गया था—क्योंकि वह इलाका उसके हिस्से में दिया गया था। मुधोजी चांदा मे कुछ दिन रहा ग्रौर वहां उसने एक महल वनवाया था।

दो अमली राज्य—सन् १७५७-५८ मे हैदरावाद के निज़ाम वंश में भी—सलावत खां ग्रौर उसके भाइयों मे राज्य के लिये नया संघर्ष खड़ा होगया। पेशवा ग्रौर भोंसले ने सलावत जंग से सहयोग किया था। उस समय उसका भाई वरार का सूवेदार था—जो "निजामुद्दौला" कहलाता था। भोसले के ग्रधीन भी ग्राकोट के समीप का इलाक़ा था—जिसका प्रवंधक था—रघोजी करांडे। हैदरावाद वालो ने उसे हटाने का उद्योग भी किया था। निज़ाम ग्रली वुरहानपुर से सेनासहित ग्रकोला पहुँचा ग्रौर उसे लूट लिया—वहां पर भोसलों का जो कर्मचारी था—वह ग्राकोट भाग गया था। करांडे ने जलगांव के समीप निज़ाम ग्रली से युद्ध करने की तैयारी की थी—परन्तु ग्रचलपुर के नायव सुलतान खां पन्ही ने वीच में पड़ कर दोनो का ग्रस्थायी समझौता करा दिया—जिसके ग्रनुसार यह तय हुग्रा था कि "वरार की समस्त ग्राय मे से प्रतिशत ५५ निजाम लिया करे ग्रौर वाकी ४५ प्रतिशत भोंसलों को दिया जायेगा"। इसी प्रसंग पर ग्रचलपुर के नवाव ने जानोजी भोसले ग्रौर निजाम ग्रली दोनों की भेट ३ मार्च सन् १७५८ को वर्धा के तट पर करवायी थी।

नांदगांव का युद्ध—नागपुर के भोंसले पूना के पेशवा को प्रतिवर्ष कुछ रकम दिया करते थे—जव सन् १७५८ ईस्वी में जानोजी ग्रौर मुधोजी पूना गये थे—तव वहां नाना फडनवीस ने भोंसलो से २० लाख वकाया रकम मांग की थी—जिसको भोंसलों ने मान्य किया था, परन्तु ग्रार्थिक कारणों से वह रकम पटायी नही जा सकी। मुधोजी ग्रौर जानोजी का ग्रापसी मनमुटाव तीव्र रूप धारण कर गया ग्रौर जव दोनों पूना से नागपुर के लिये रवाना हुए—तव दोनों का यात्रा-मार्ग ग्रलग-ग्रलग रहा। दोनों मे लड़ने की खुमखुमी थी—ही—इसलिये ग्रमरावती के निकट नांदगाव मे लड़ भी पड़े। मुधोजी का सरदार रघोजी करांडे हार कर चला गया—फिर भी उसने दोनों भाइयों के विरोध को शांत कराने का यत्न किया था। इसी भांति का प्रयास त्रिवक जी राजे ग्रौर पिराजी निंवालकर का भी था। जानोजी के दीवान देवाजी पन्त ग्रौर वालाजी केशव ग्रपना मतलव साधने के उद्देश्य से मुधोजी के विरोधी थे। मुधोजी स्वयं ही कहता था—"ये हमारे कामदार ही हमारा घर मिटाना चाहते हैं।" कुछ दिनों के वाद दोनों भाइयों में मेल भी हो गया था। समझौते के प्रसंग पर मुधोजी ने देवाजी ग्रौर वालाजी केशव को जेलखाने मे रखने का प्रस्ताव किया था—किन्तु नागपुर में पेशवा का जो प्रतिनिधि रहता था—उसने मध्यस्थ वन कर दोनों कर्मचारियों की स्थिति स्पष्ट कर दी ग्रौर मुधोजी भी संतुष्ट हो गया था।

६ जनवरी सन् १७६१ ईस्वी में पानीपत के मैदान में ग्रहमदशाह ग्रव्दाली के साथ मराठों ने जो युद्ध किया था—उससे नागपुर के भोंसले ग्रलिप्त थे। पानीपत मे मराठों की वढती हुई शक्ति सेनापति की ग्रदूरदर्शिता के कारण चकनाचूर हो गयी। इसी युद्ध के साथ-साथ इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो जाता है। भारतीय इतिहास का नया ग्रध्याय ग्रारम्भ होता है—जिसमें पश्चिम से ग्राये हुए युरोपियन व्यापारियों की कूटनीति का उत्कर्ष होता है। पानीपत के युद्ध का समाचार सुनते ही पेशवा वालाजी का देहान्त (वुरहानपुर के निकट) होगया—ग्रौर उसके कारण मराठों की राजनीति का नया ग्रध्याय ग्रारम्भ होगया—जो उत्कर्षकारक नही कहा जा सकता। पूना की पेशवाई १७ वर्ष के युवक माधवराव को सौंपी गयी ग्रौर उसके नाम से उसका चचा रघुनाथराव (राघोवा) मुख्त्यार वनाया गया।

निजाम के साथ मित्रता ग्रौर पेशवा से विरोध—हैदरावाद के निजाम के साथ पेशवा के राजकीय झगड़े वालाजी के समय से चले हुए थे। पानीपत के युद्ध के वाद उनमें उग्रता ग्रा गयी थी। निज़ाम का दीवान विठ्ठल सुन्दर चतुर राजकाजी मनुष्य था। उसने "मराठा संघ" से भोंसलों को पृथक् करने का सफल [illegible]। उसने

गमाजी ग्रंत्रा के द्वारा जानोजी को सातारा की गद्दी का लोभ दिखलाया था और साथ ही मराठे और ब्राह्मण वाद भी। वास्तव मे महाराष्ट्र का यह वाद पुराना ही है। पेशवा के विरोध में निज़ाम और भोसले दोनो ने एक मित्रता की सुलह की थी—जिसमे यह तय किया गया था—दोनो ही मिल कर सातारा के रामराजा को कैद करें और वहा की गद्दी पर जानोजी का अभिषिक्त किया जावे तथा इस मुहिम से जो लाभ होगा, उसमें से जानोजी को ४० प्रतिशत दिया जावेगा। गमाजी और विठ्ठलसुदर के षडयन्त्र में भोसलो का पूरा सहयोग था। ६ फरवरी सन १७६३ ईस्वी को गुलबर्गा में निज़ाम ने जानोजी का स्वागत किया था और वही पर दोनो की प्रत्यक्ष बातचीत हुई थी। दोनो ने मिल कर वही से एक सदेश पेशवा को भेजा था। जो पेशवा के लिये युद्ध के लिये चुनौती थी।

राक्षस भुवन का युद्ध—पेशवा के राजदूत जो नागपुर और हैदराबाद में रहते थे—उन्होने इनकी गतिविधियो का पूरा विवरण भी भेजा था। जिससे पेशवा ने ४५ हजार घुडसवारो को एकत्रित करके उसका सेनापतित्व सखाराम बापू को सौंपा था—जिसने भोसले और निज़ाम का शत्रु घोषित किया था। पेशवा की सेना लेकर राघोबा नागपुर राज्य की ओर अग्रसर हुआ और खानदेश से वह मलकापुर गया तथा वहा के लोगो से ६० हजार रुपये वसूल किये। उधर निज़ाम अली और जानोजी ने मिल कर एक लाख सेना के साथ पूना पर हमला किया। इन लोगो ने पूना पहुँच कर उसे लूट कर जला दिया था। उस प्रसग पर नगर के धनिक, सरदार और पेशवा का परिवार पूना छोड कर पुरदर के किले में चले गये थे। सिंहगढ और पुरदर के किलो के समीप का प्रदेश रघोजी करांडे ने लूट लिया था।

उधर पूना से चली हुई पेशवा की सेना हैदराबाद राज्य में घुस गयी और लूटमार करने लगी। उसी बीच में सेनापति सखाराम बापू ने मल्हारराव हुल्कर के द्वारा निज़ाम से भोसले को विभक्त करवा दिया—क्योंकि नागपुर में उसने मुधोजी को खडा कर दिया। मुधोजी पेशवा से मिल कर नागपुर हडप जायगा—इस आशका से जानोजी ने अविलब निज़ाम की मित्रता भग कर दी—उसकी गति साप-छछूदर सी होगयी थी। मल्हारराव की सलाह उसने मान कर ली और वह युद्ध से अलग हो गया। निज़ामअली की नाव मझधार में डगमगाने लगी, फिर भी उसने १० अगस्त सन् १७६१ को राक्षस भुवन स्थान पर पेशवा के साथ युद्ध किया-जिसमें निज़ाम का प्रसिद्ध दीवान विठ्ठल सुन्दर मारा गया। इस युद्ध में निज़ाम हार गया—और पेशवा के साथ सधि की तथा उदगीर की लडाई में प्राप्त प्रदेश निज़ामअली को वापिस देना पडा था।

नागपुर पर पेशवा का हमला—इस युद्ध म विश्वासघात करने के बदले में पेशवा ने जानोजी को कुछ इलाका दिया। सखाराम बापू के साथ जानोजी ने पेशवा माधवराव से भेंट कर के अपने अपराधो की क्षमा मागी थी। युद्ध समाप्त होने ही पेशवा माधवराव के सामने एक नयी आपत्ति खडी हो गयी थी। उसका चचा राघोबा उसके खिलाफ होगया था। माधवराव अच्छी तरह जानता था कि उसके चचा का समर्थन निज़ाम और भोसले करेंगे और उससे पेशवा की शक्ति पर चोट की जायगी। सब से प्रथम माधवराव के मन्त्रिमडल ने निज़ाम और भोसले को लडा देने का अच्छा मार्ग खोज निकाला था। इसी कारण से निज़ामअली के पास एक दूत पूना से भिजवाया गया और उसने हैदराबाद पहुचकर निज़ाम को समझाया कि दोनो मिलकर जानोजी को उसकी करतूत का दड देवें। वास्तव मे दोना ही जानोजी के कार्यों से असतुष्ट थे—जो स्वाभाविक था क्योकि उसने दोनो के साथ बेईमानी की थी। पेशवा माधवराव ने निज़ाम के सहयोग से भोसला राज्य पर आक्रमण करने का एक कार्यक्रम बनाया था—जिससे राघोजी की दशा निशकु सी बन जाती थी। निश्चित समय पर माधवराव की सेना नागपुर के लिये चल पडी—रास्ते में निज़ाम का सेनापति रुकनउदौला पेशवा के साथ हो गया। राघोबा भी इस समय पेशवा के साथ होगया था। इसप्रकार जानोजी केवल अकेला रह गया था।

भोसला राज्य में पहला मुकाम माधवराव ने बालापुर में किया था। वही पर उसे निज़ामअली का यह सदेश मिला था—कि कारजा में दोनो एक दूसरे से मिलेंगे। बालापुर से चलकर माधवराव ने दर्यापुर में मुकाम किया था।

पेशवा की सेना नागपुर पहुँच रही है—यह समाचार जब नागपुर पहुंचा— तो समस्त भोंसला राज्य में घवराहट फैल गयी थी। नागपुर शहर के लोग घरदार त्याग कर भागने लगे और जानोजी स्वय समस्त परिवार के सहित चांदा चला गया था। फिर भी उसके पास २५ हजार घुड़सवार थे। वास्तव मे जानोजी पेशवा से संघर्ष करने के लिये तैयार न था। इसी कारण उसका दीवान देवाजीपन्त दर्यापुर पहुचकर पेशवा से मिला था और उसने यह भी कहा था कि राक्षसभुवन के युद्ध मे जो प्रदेश उसे दिया गया था—उसे वापिस कर देने के लिये जानोजी तैयार है। जानोजी स्वय पेशवा से मिलने के लिये १७ जनवरी सन १७६५ को दर्यापुर गया था। इस तरह आई हुई वला को एक वार जानोजी ने टाल दिया और पेशवा भी दर्यापुर से वापिस पूना लौट गया था।

बिंबाजी भोंसले* :— रघोजी का तृतीय पुत्र बिम्वाजी सन १७५७ ई. मे रतनपुर जाकर वस गया था। उसके अधिकार में समस्त छत्तीसगढ का शासन था। उसके साथ कई मराठे घराने रतनपुर मे जा वसे। जनता की भापा हिन्दी होने पर भी राजभाषा मराठी और लिपि मोड़ी का वहां चलन था। रतनपुर और रायपुर के राजवश माफीदार बना दिये गये थे। राजा शिवराजसिह को रायपुर राज्य के प्रत्येक गाव के पीछे एक रुपया परवरिश हक लगा दिया था और वरगांव माफी मे दे दिया था।

बंगाल और नागपुर राज्य—अलीवर्दी खा से संधि हो जाने पर सन् १७५१ से १८०३ ईस्वी तक उड़ीसा प्रदेश नागपुर राज्य के अन्तर्गत था। उसका शासन मराठे सूवेदारो के द्वारा होता था—जिनकी राजधानी कटक थी। वारामाटी किले मे मराठो की फ़ौजी छावनी थी। समुद्र तट पर वसे हुए बालेश्वर बन्दर के द्वारा जलमार्ग से खूब व्यापार चलता था। शिवभट साठे उड़ीसा का प्रथम मराठा सूवेदार था और उसके सहायक मुकुन्दराव और रुकमाजी जाचक थे। साठे ८ वर्षो तक उड़ीसा का सूवेदार रहा था।

बंगाल का नवाव अलीवर्दी खां १० अप्रैल सन् १७५६ ई. को मर गया—उसका उत्तराधिकारी दोहित्र सिराजुद्दौला था। उसकी अवस्था २४ वर्ष से अधिक न थी। मृत नवाव के समय से ही बंगाल मे अंग्रेजो की साजिशे तेज़ी से चल रही थी। जिसको मृत नवाव अच्छी तरह से समझता था और तभी मरते समय उसने अपने दोहित्र से कहा था—"देश के अन्दर युरोपियन कामो की ताकत पर नजर रखना।" अंग्रेज कम्पनी इस समय तक बंगाल मे पुष्ट हो चुकी थी-क्योंकि उन्होने नवाव के अधीनस्थ सरदारो को विविध तरह के प्रलोभन देकर फोड़ लिया था और उनके जाल मे कई सरदार फंस भी गये थे। मिस्टर वाटसन की अपेक्षा क्लाइव कही अधिक चतुर था। उसने ४ जून सन् १७५७ ईस्वी मे नवाव के सेनापति मीरजाफर के साथ १३ शर्तो की एक गुप्त सधि की थी। अंग्रेजो ने उसे बंगाल का नवाव बना देने का पूरा आश्वासन दिया था। पूरी तैयारी कर चुकने पर कम्पनी ने सिराजुद्दौला को युद्ध के लिये मजबूर किया और २३ जून सन् १७५७ ईस्वी को पलास के वाग मे उसका निर्णय होने वाला था। उस समय नवाव के मीर जाफर, यार लुफ्त खां, दुर्लभराव और मीरमदन चार प्रमुख सेनापति थे। प्रथम तीनो सेनापति अंग्रेजों के हितचिन्तक थे, किन्तु अकेला मीर मदन कर ही क्या सकता था? इस युद्ध का परिणाम यह हुआ था कि सिराजुद्दौला को युद्ध से भागना पड़ा और २९ जून को अंग्रेजो ने मीर जाफर को बंगाल का नवाव घोषित कर दिया था। मीर जाफर

---

* बिंबाजी भोसले—(स्वर्गवास रतनपुर मे ७ दिसंवर सन् १७८७ ईस्वी)। बिंबाजी भोसला रतनपुर में ही वस गया था। उसके मरने पर रानी आनंदीवाई भी वही रही थी। उसका दीवान महिपतराव काशी तथा अन्य सहायक कारवारी कृष्णभट्ट उपाध्ये (मनभट उपाध्ये का पिता) और महादजी भोसले थे। वाद मे छत्तीसगढ़ के सूवेदार नागपुर से भेजे जाते थे—(१) प्रथम सूवेदार महिपतराव दिनकर था—उसके समय मे सम्बलपुर के राजा ने विद्रोह किया था। महिपतराव का उत्तराधिकारी विठ्ठल दिनकर था—उनके वाद निम्न सूवेदार थे—कालूपन्त, केशवपन्त, भीष्मजी भाऊ, सखाराम भाऊ, यादवराव दिवाकर, सखाराम वापू थे। इनका शासन सन् १८१८ ईस्वी तक चलता रहा।

की सेना लेकर अग्रेजो ने सिराजुद्दौला का पीछा किया और २ जुलाई को विश्वासघाती हितचिन्तको के द्वारा मरवा डाला गया था। इस प्रकार अग्रेजो ने अपना काटा निकाल फेंका और मीर जाफर को नवाबी मिली।

क्लाइव ने मीर जाफर के नाम से बगाल पर शासन करना आरम्भ किया और सैनिक दृष्टि से अग्रेजी सगठन मजबूत कर लिया। इस समय तक बगाल का समस्त वाणिज्य और व्यवसाय भी कम्पनी के अधीन हो चुका था—जिसकी करुण कहानिया इतिहास में अकित है। शीघ्र ही नवाब मीर जाफर स्वय अग्रेजो के आतक से ऊब गया और जब उसने विरोध प्रकट किया तो अग्रेजो ने उसे कैद कर लिया और मीर कासिम को नवाबी सौंप दी। (२० अक्तूबर सन् १७६० ई) इस समय अग्रेजी कम्पनी बगाल की स्वामिनी बन गयी थी।

बगाल की राजनीति में यदि मराठे सावधानतापूर्वक भाग लेते तो सभव था कि हिन्दुस्तान का इतिहास ही बदल जाता, परन्तु वे लोग अपनी घरेलू उलझनो में फसे हुए थे। जानोजी भोसले की गति भी यही थी। उसने बगाल के नवाब से १२ लाख रुपये चौथ लेने का इकरार किया था—और उसके एवज में मित्रता का सम्बन्ध रखने का भी। सिराजुद्दौला ने अपनी सहायता के लिये भोसलो से अपेक्षा की थी—पर वह उन्होने पूरी नही की—जिससे चौथ की रकम पटायी न जा सकी। सन् १७५८ में शिवभट साठे ने मीरजाफर से चौथ की माग की—पर नवाब ने कोई लक्ष्य ही नही दिया। तीन वर्ष बाद सन् १७६१ ई में शिवभट साठे ने मीर कासिम के पास दूत भी भेजे थे तब नवाब ने साफ अग्रेजो का बता दिया था। इस पर भय दिखाने के हेतु साठे ने कुछ सैनिक मिदनापुर और वर्द्धमान में लूटमार करने के लिये भेजे थे। तब कम्पनी ने मराठो को खदेड देने के लिये जानसन और नाक्स के अधीन एक सेना भेजी थी, जिसके कारण मराठे बगाल से भाग गये थे।*

शिवभट साठे कटक में बैठ कर उडीसा से १८ लाख रुपये वसूल कर के अपना गुजारा चलाता था और कुछ रकम नागपुर भेज देता था। अग्रेजो की तिजारती कोठिया उडीसा प्रदेश के अन्तगत बालेश्वर और कटक में थी। उनके कामकाज में मराठो ने कोई हस्तक्षेप नही किया। अग्रेजो ने ७ जुलाई सन् १७६३ ईस्वी को यह इश्तिहार घोषित करवाया था (उडीसा में भी) कि "मीर कासिम खा को उसके जुल्मो के कारण गद्दी से उतारा गया है और अब बगाल, बिहार और उडीसा के नवाब मीर जाफर ह।" सन् १७६५ ईस्वी में मीर जाफर भी मरवाया गया और नजमुद्दौला को अग्रेजों ने नवाब बना दिया था—वह तो केवल कठपुतली था—उस का दीवान रजा खा बनाया गया था—जो कि अग्रेजो का खैरख्वाह था। यह सूबेदार शीघ्र ही इस लोक से चल बसा और कम्पनी स्वय बगाल की स्वामिनी होगयी।

बगाल में जो राजनैतिक घटनाएँ हो रही थी—उनका पता नागपुर दरबार को भी था—पर उसका राजकीय दृष्टिकोण कुठित हो गया था। सन् १७६३ ईस्वी में बगाल के गवनर से बातचीत करने के लिये गोविन्दराव नाम का एक प्रतिनिधि नागपुर दरबार से कलकत्ते गया था। उससे यह कहलवाया गया था कि "यदि चौथ की रकम न पटायी गयी—तो भोसले बगाल पर आक्रमण कर देंगे।"† इस चेतावनी के बाद भी कोई कार्यवाही नहीं की गयी। सन् १७६४ ईस्वी में शिवभट साठे सूबेदारी से हटाया गया—पर कुछ दिनो तक वह उडीसा में ही बना रहा। कहते ह कि उसने विद्रोह करने का षड्यन्त्र भी रचा था, परन्तु शीघ्र ही भवानी कालू के साथ चिमना बापू बगाल पहुच गया था—इसी कारण वह शात हो वापिस लौट गया था। भवानी कालू ने कटक में मुकाम कर के चौथ के सम्बन्ध में कम्पनी के गवनर से लिखापढ़ी की थी—पर अग्रेजों ने कोई लक्ष्य न दिया था। आर्थिक अडचनो में फस जाने के कारण भवानी कालू ने बेटागढ, निलगिरि, मयूरभज, हरिहरपुर आदि के राजाओ से बडी-बडी रकमें वसूल की थी—

---

* कलेण्डर आफ पर्शियन कारस्पाण्डेन्स, जिल्द १, पृष्ठ ८८४।

† कलेण्डर आफ पर्शियन कारस्पाण्डेन्स, जिल्द १, पृष्ठ १५३७।

जिसके कारण उड़ीसा के जमीदार त्रस्त होगये थे। सन् १७६५ ईस्वी में सम्राट् शाहआलम के एक फर्मान से क्लाइव को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गयी। इसी प्रसंग पर जानोजी भोंसले ने क्लाइव को सूचित किया—"कम्पनी की सत्यप्रियता के सम्बन्ध मे मुझे पूर्ण विश्वास है और उसकी विजय की आधारशिला भी वही है। मीर क़ासिम के प्रतिनिधि सहायतार्थ नागपुर पहुंचे थे और वे लोग ३० लाख की हुंडी दे रहे थे, पर कम्पनी के गवर्नर वेन्सिटार्ट की सूचनानुसार हमने नवाब से कोई सहयोग नही किया था—इतना ही नही, बल्कि उडीसा मे हमारी जो सेना थी—उसे तटस्थ रहने का आदेश दिया गया था। बक्सर की विजय को दो वर्ष बीत चुके है और तबसे हमारा प्रतिनिधि रघुनाथ राव कलकत्ते में है पर हिसाब का निर्णय अब तक नही किया गया। अनेको युद्ध, २२ सरदारो का बलिदान, ५० सैनिकों की आहुति और १२ वर्ष के परिश्रम द्वारा हमने चौथ का हक हासिल किया था और उसे हम भविष्य मे भी त्यागने के लिये तैयार नही है।"*

इस तरह की लिखा-पढ़ी के अतिरिक्त जानोजी कोई सक्रिय कदम उठा नही सका—क्योंकि वह घरेलू राज-नीतिं से इतना उलझ गया था कि बगाल की राजनीति में उसने कोई दिलचस्पी नही दिखलायी। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर ओवेन ने ठीक लिखा है—"पानीपत के युद्ध से मराठा संघ को थोड़ी देर के लिये जो धक्का बैठा था—उसके कारण मराठे बंगाल पर हमला करने से रुक गये थे। उनके आक्रमण से यदि शुजाउद्दौला और शाह आलम अनुराग दिखलाते और यह संभव था—कि ये लोग कम्पनी की सत्ता को—जो अभी तक कमज़ोर थी और अनेक कठिनाइयों से घिरी हुई थी, सफलता के साथ उखाड कर फेंक देते।" †

पानीपत के युद्ध के बाद मराठे दक्षिण मे ही अपनी-अपनी समस्याओं से उलझ गये थे। जानोजी भोंसले की स्थिति का चित्रण हम पहले कर चुके है। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजों को विविध सूबों के निर्बल शासको को एक दूसरे से तोड़-फोड़ कर अपने लिये मार्ग निर्माण कर लेना सरल हो गया था। भोसले और बंगाल के नवाब में संधि हुई थी और इसके आधार पर वे चौथ के हकदार थे—पर उन्होंने अपने नैतिक उत्तरदायित्व का पालन नही किया था। बंगाल की राजनीति मे महान् परिवर्तन होते रहे और भोंसले केवल बिना परिश्रम चौथ की बाट देखते बैठे रहे। नवाबों ने कई बार भोसले से सहायता मांगी थी, पर वे कुछ न कर सके। मीर कासिम ने पूर्व सधि के आधार पर अपना एक प्रतिनिधि नागपुर भेजा था—फिर भी जानोजी चुप बैठा था। सन् १७६६ ईस्वी में जानोजी ने उदयपुरी गुँसाई को कलकत्ते भेजा था और उसके साथ यह पत्र भेजा था—"मीर कासिम की सहायता न करने से कम्पनी हमारी चौथ की देनदार है। हमने उस पर २० लाख रुपये कर्ज कर लिया है और २ वर्ष बीत रहे है, किन्तु हमारे गुमाश्तों को कुछ भी नही दिया गया। कृपया उदयपुरी को बकाया चौथ की रक़म दे दे।"‡

ज्यो ही क्लाइव की स्थिति मज़बूत हो गयी—उसने उड़ीसा हथियाने का यत्न किया—क्योकि कलकत्ता और मद्रास के मार्ग मे उडीसा था। कलकत्ते से मद्रास के लिये जो डाक भेजी जाती थी—वह उड़ीसा से ही गुजरती थी। सन् १७५८ ईस्वी मे "उत्तर सरकार"—प्रदेश निजाम द्वारा कम्पनी को प्राप्त हो गया था—अब वे उड़ीसा चाहते थे—जिससे कलकत्ता-मद्रास मार्ग मे कोई अन्य राज्य न रहे। जानोजी ने क्लाइव से जब चौथ की मांग की थी—तब अंग्रजो ने नवाब नजमुद्दौला के नायब रजा खां से मूल संधि-पत्र प्राप्त कर लिया था। ╪ अलीवर्दी खा ने रघोजी से सधि की प्रथम शर्त मे यह इक़रार किया था—"मै छत्रपति राजाराम को रघोजी भोसले के द्वारा बगाल, बिहार और उड़ीसा की चौथ प्रतिवर्ष १२ लाख रुपया दूगा।" उसी आधार पर क्लाइव ने यह दावा पेश किया था कि भोसले

---

* "कैलेण्डर आफ़ पर्शियन कारस्पांडेस", जिल्द २, पृष्ठ ७६३।

† प्रोः ओवेन का "इंडिया आन दि ईव आफ़ दि ब्रिटिश कान्क्वेस्ट" ग्रंथ।

‡ कैलेण्डर आफ़ पर्शियन कारस्पांडेस, जि. २, पृष्ठ ७६३-७६४।

╪ कैलेण्डर आफ़ पर्शियन कारस्पांडेस, जिल्द २, पृष्ठ १२४४—१२४७।

उड़ीसा अंग्रेजों का माग दें। उड़ीसा पर कब्जा रखते हुए चौथ की मांग करना अप्रशस्त है। इस विषय में भोसला के सामने एक ही मार्ग था—वह युद्ध था—पर भोसले परिस्थितिवश तैयार न थे।

सन् १८६६ ईस्वी में क्लाइव ने कम्पनी के संचालकों को यह सूचित किया था* कि—"कम्पनी भोसला को १६ लाख रुपये देकर बालेश्वर और कटक की ज़मींदारी प्राप्त करे। उसका उपयोग जानोजी भागने के लिये कुछ भी नहीं है। कम्पनी यह चौथ आसानी से पटा सकेगी। पर इस तरह का सुझाव भोसलों की ओर से आना आवश्यक है।" इस तरह का सुझाव देने के लिये क्लाइव ने मीर भेनुलाबिद्दीन को नागपुर भेजा था—जो २५ दिसंबर सन् १७६६ ईस्वी को नागपुर पहुँचा था। उसने अपने प्रवास वर्णन में लिखा है—"ये लोग मिरजापुर मार्ग से प्रथम दिनापुर पहुँचे थे। वहां के ज़मींदार ने एक मास तक क़ैद खाने में रखा था। कुछ द्रव्य देने पर ये लोग छूट गये थे। वहां से जब ये लोग बुन्देलखण्ड में महाराज हिंदू पत के राज से गुजरे, तो राह में बनौरा के ज़मींदार ने ११ दिनों तक रोका था। वहां भी उनको कुछ द्रव्य देना पड़ा था। वहां से आगे बढ़ने पर गढ़ा मण्डला के राजा निज़ामशाह के हुक्म से १ मास तक इनको रुकना अनिवार्य होगया था। गढ़ा से दो हरकारे नागपुर भेजे गये थे—जिन्होंने अपना उद्देश्य कह सुनाया था। जानोजी भोसले ने एक पत्र द्वारा निज़ामशाह को सूचित किया था —कलकत्ते से आने वाले लोगों को आने दिया जावे। वहां से मुक्त होने पर २५ दिसंबर को क्लाइव के प्रतिनिधि नागपुर पहुँचे थे। दूसरे दिन नज़राने के सहित भेनुलाबिद्दीन ने महल में पहुँच कर जानोजी से भेंट की थी। प्रसन्नता प्रकट करते हुए राजा ने बातचीत के सिलसिले में कम्पनी से ४८ लाख रुपये पाने का उल्लेख किया था। परन्तु उड़ीसा सौंपने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा था—जब क्लाइव के दूत ने आग्रह किया तो उसने यही कहा था कि उसका वकील उदयपुरी शीघ्र ही कलकत्ते जायगा और खुद ही गवनर-जनरल से बातचीत कर लेगा।" ये लोग नागपुर में मार्च सन् १७६६ ईस्वी तक रहे थे।†

इस समय उड़ीसा का सूबेदार चिमनाजी बापू भोसले और उसका दीवान भवानी कालू था, पर राजपुत्र चिमना जी नागपुर में ही रहता था और दीवान ही कटक में रहता था। वह इस काम पर सन् १७६८ ई० तक रहा था। इधर क्लाइव भी बंगाल से चला गया था—उसके पश्चात् मिस्टर वेरेलस्ट और सन् १७६६ में मिस्टर कार्टियर बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ था। ये लोग फोर्ट विलियम में बैठ कर भारतीय राजाओं के साथ साज़िशें कर रहे थे। सन् १७७२ ईस्वी में कार्टियर की जगह वारन हेस्टिंग राज्यपाल बना कर भेजा गया था। भवानी कालू ने अंग्रेजों से चौथ के बारे में कई शुष्क तकाज़े किये थे—परन्तु कोई लाभ न हुआ और स्वयं जानोजी पेशवा से झगड़ने में व्यस्त था। सन् १७६८ में भवानी कालू नागपुर चला गया और उसके पद पर गणेश संभाजी भेजा गया था।‡ इसी समय बंगाल के राज्यपाल ने एक पत्र जानोजी को भेजा था—जिसमें कहा गया था कि "यदि भोसले उड़ीसा प्रदेश कम्पनी को सौंप देंगे तो चौथ की रकम उनको बराबर मिलती रहेगी।" इसी पत्र के आधार पर बातचीत करने के लिये गोपाल-पुरी कलकत्ते से नागपुर गया था। पर भोसले उड़ीसा सौंपने के लिये तयार न थे।

पेशवा से विरोध और नागपुर का भस्म होना—पेशवा माधवराव का चचा इस समय मराठों के विरोधियों के हाथ में खेल रहा था। वह वीर और महत्वाकांक्षी था। उसने जब माधवराव के विरुद्ध साज़िशें करना आरम्भ किया तो जानोजी उसके साथ मिल गया था। यह समाचार पेशवा को ज्यों ही मिला, त्यों ही वह क्रोधित हो गया।

---

*ग्रंट डफ़ का मराठों का इतिहास।

†कैलेण्डर आफ पर्शियन कारस्पांडेंस, जिल्द २, पृष्ठ २२१।

‡गणेश संभाजी का विकास दीवान बाबूराव कान्हेरे के द्वारा हुआ था—वह सन् १७७१ ईस्वी तक उड़ीसा का सूबेदार था। उसके कई पत्र पर्शियन कैलेण्डर में मिलते हैं। इसके द्वारा अंग्रेजों को कई राजकीय बातें ज्ञात होती थीं। जानोजी ने इसके द्वारा माधवराव के विरोध में अंग्रेजों से सहायता पाने का यत्न किया था, पर कम्पनी की सैनिक स्थिति दृढ़ न होने से वे चुपचाप रहे।

उसने भोंसले के पूना पहुंचने के पूर्व ही राघोवा को वन्दीखाने मे पटक दिया और नागपुर पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दी। सन् १७६९ ईस्वी के आरम्भ में स्वयं माधवराव सेना लेकर नागपुर की ओर रवाना होगया। जव यह समाचार जानोजी ने सुना—तो उसने उसको राज़ी कर लेने के लिये दीवान देवाजी पन्त को भेजा—जो आधे मार्ग में पेशवा के पास पहुँचा था। पेशवा ने उसकी सलाह मानने मे अप्रसन्नता प्रकट की और उसे अपने साथ वन्दी वना कर ले लिया। वाशिम और कारंजा मार्ग से चल कर २० जनवरी को पेशवा ने आमनेर का किला ले लिया था—तव जानोजी सेना और खजाना ले कर चादा चला गया।

जनवरी मास के अन्त मे माधवराव नागपुर के समीप पहुँचा—उसने आस पास के गांवों को लूट कर नागपुर मे प्रवेश किया पर उसे कोई विशेष आर्थिक लाभ न हुआ। नागपुर को पेशवा ने लूट कर जलवा दिया था और जव वह नागपुर मे था—तव उसकी एक सेना ने भडारा को भी लूटा था। नागपुर से सेना लेकर माधवराव चादा गया, किन्तु वहां से जानोजी पहले से ही वाशिम की ओर चल दिया था। चादा पहुँचते ही भोंसले का पत्र पेशवा के सैनिको के हाथ लग गया था—जिसमे जानोजी ने चादा के किलेदार को निम्न आदेश दिया था कि "तुम चांदा मे पेशवा से जूझते रहो और मै पूना पहुँच कर राघोवा को वंदीखाने से छुड़ा लूगा और उसको पेशवाई पद पर अभिषिक्त कर दूगा।" यह पत्र पाते ही पेशवा के सैनिकों मे उद्विग्नता फैल गयी। इसी कारण चादा मे समय व्यय न करते हुए माधवराव पूना की ओर चल दिया था।

यों तो जानोजी स्वयं माधवराव से युद्ध नही करना चाहता था और इसी कारण वह पूना नही गया। अन्त में योग्य अवसर पर जानोजी और माधवराव का समझौता देवाजी पन्त ने करा दिया। २३ मार्च सन् १७६९ को कनकापुर ग्राम मे भोसलों के साथ पेशवा ने संधि की थी। इस संधि के अनुसार जानोजी ने* पाच किश्तो में ५ लाख रुपये प्रतिवर्ष पेशवा को देना स्वीकार किया था। कनकापुर मे ही जानोजी पेशवा माधवराव से मिला था। माधवराव पेशवा ने इस युद्ध यात्रा मे—निम्न प्रमुख ग्रामों से प्रवास किया था—"वीड, पाथरी, नडसी, वासनी, वाशिम, मंगरूलपीर, पिंजर, कारंजा, अमरावती, नागपुर, भंडारा, चादा, पांढरकवड़ा आदि।"

जानोजी भोंसले—इस युद्ध से छुटकारा पाते ही जानोजी अस्वस्थ हो गया था। उसके कोई संतान न थी। चारो भाइयो मे केवल मुधोजी के ही ३ पुत्र थे—जिनमे जेठा रघोजी था।† इसलिये जानोजी ने उसको अपना उत्तराधिकारी नियत किया था—उस पर मंजूरी लेने के लिये वह पूना गया था और पेशवा से मिल कर जानोजी और मुधोजी दोनों भाई पंढरपुर की यात्रा को गये थे। वहां से नागपुर लौटते समय रास्ते मे तुलजापुर के समीप जानोजी पेट दर्द की वीमारी से मर गया। (१६ मई सन् १७७२ ईस्वी) मुधोजी साथ मे था ही, उसने भाई का अंत्य संस्कार किया था।

जानोजी का राजकीय जीवन सदैव असफल रहा। उसने निजाम और पेशवा के साथ विश्वासघात किया था—इसी कारण दोनों प्रवल राज्यो ने कभी उस पर विश्वास नहीं किया था। इन्हीं कारणों से उसका जीवन अशातिमय दिखाई देता है।

सावाजी और मुधोजी

जानोजी के मरने पर मुधोजी उसके साथ मे था और उसके नागपुर मे पहुँचने मे देर लग गयी थी—इसी अवकाश में रानी दर्यावाई की सलाह से उसके सगे छोटे भाई सावाजी ने शासन सूत्र अपने हाथ मे ले लिया था—उसका समर्थन राज्य के कुछ मंत्रियो ने किया था। मुधोजी जव नागपुर पहुँचा—तो उसने दूसरा ही दृश्य देखा। मृत राजा की रानी सर्वथा उसके विरोध में थी। वह चाहता था कि उसका लड़का रघोजी नागपुर की गद्दी पर वैठाया जावे—

---

* कनकापुर की सधि—इसका पूरा व्यौरा मराठों के कागज़ पत्रों में अंकित है।

† मुधोजी भोसले के ३ पुत्र थे—रघोजी, व्यंकोजी और चिमना बापू।

जैसा कि मत राजा ने निश्चय किया था, पर राजमहल का वातावरण प्रतिकूल था—इसी कारण नागपुर एक बार पुन गृह कलह का शिविर बन गया था। इस कलह को हटाने की शक्ति पेशवा में भी नही थी—क्योकि वहा भी यही अवस्था भीषण रूप से खडी थी। फिर भी साबाजी ने नागपुर का प्रश्न माधवराव पेशवा के दरबार में पेश किया था। जिसका समर्थन पूना दरबार ने किया था, क्योकि मुधोजी राघोवा का समर्थक माना जाता था। मुधोजी ने प्रत्यक्ष रूप से पूना के मन्त्रिमडल का विरोध नही किया था—किन्तु महाराष्ट्र में राघोबा को मुक्त करने के लिये जो षड्यन्त्र रचा जा रहा था—उसका समर्थन गुप्त रूप से मुधोजी कर रहा था और उसके लिये उसने दो सरदार (व्यंकटराव और लक्ष्मणराव काशी) पूना में रख छोडे थे।

साबाजी एक बार यत्न कर के सेना साहब सूबा कहलाने लगा था। उसने अपनी दीवानी भवानी कालू को सौंपी और देवाजी चोरघडे को निगरानी म रखा, क्योकि वह विरोधी पक्ष का माना जाता था। मुधोजी और दीवान महीपतराम के लिये समय अनुकूल न होने से नागपुर में उनके पैर न जम सके। साबाजी ने बगाल से चौथ की माग करने के लिये अपने वकील बेनीराम पडित को वारन हेस्टिंग के पास भेजा था।* मुधोजी और साबाजी का आपसी तनाव दिन पर दिन उग्र बनता गया था और अन्त म परिणाम यह हुआ था कि दोनो भाई कुभारी नामक गाव में युद्ध के लिये खडे होगये। (२८ जनवरी सन् १७७३ ई) पर पेशवा के वकील रामाजी बल्लाला ने आपसी समझौता करा दिया, पर यह अधिक दिनो तक नही चला। क्योकि राजकीय महत्वाकाक्षा न्यायान्याय पर नही चलती—वह तो एक मात्र ताकत पर ही खडी रहती है। साबाजी ने अपनी शक्ति का विकास करना आरभ कर दिया था। उसने दीवान कालू को निजाम से सहायता पाने के लिये हैदराबाद भेजा था। तदनुसार हैदराबाद से सेना लेकर नवाब रुक्नउद्दौला बगार में आकर साबाजी से मिल गया और उसी तरह माधवराव ने खडेराव के अधीन सेना भेज दी थी। उधर मुधोजी भी स्वस्थ न था–उसके जासूस साबाजी की हलचलों पर पूरी निगरानी रखते थे। मुधोजी अपनी सेना लेकर अचलपुर के नवाब इस्माइल खा के पास ठहरा हुआ था। दोनो ही घनिष्ट मित्र थे। यही पर साबाजी की सेना ने मुधोजी को शिकस्त देने का यत्न किया था—किन्तु सफलता नही मिली—जिससे साबाजी नागपुर लौट गया था।

इसी समय पूना के राजकीय वातावरण में महान परिवर्तन होगया था। ३० अगस्त सन् १७७३ को रघोबा ने पेशवा नारायणराव को मरवा दिया था। इस घटना का वर्णन पूना के रेजिडेन्ट मास्टिन ने बडे हर्ष के साथ बबई के राज्यपाल को भेजा था—*क्योकि कम्पनी का उस साजिश में पूरा सहयोग था।*† *सर हेनरी लारेन्स लिखता है।*–†
"बाद में राघोबा ने नारायणराव को मरवा डाला और अग्रेजो ने उसका साथ दिया था। अग्रेजो के भारतीय इतिहास का यह घृणित अध्याय है।"

नारायणराव के मारे जाने पर राघोबा ने अपने को पेशवा घोषित किया था। अग्रेज और मुधोजी भोंसले ने उसका साथ दिया था। जिसके कारण साबाजी भोसले उत्साहहीन होगया था। मुधोजी रघोजी को लेकर उत्साह के साथ पूना पहुच गया था। दर्बार में राघोबा ने मुधोजी का स्वागत करके रघोजी को स्वय अपने हाथो से पगडी बाधकर "सेनासाहब—सूबा" घोषित किया था।‡ राघोबा वास्तव में अग्रेज रेजिडेन्ट मास्टिन के इशारों पर चल रहा था। प्रसिद्ध इतिहासकार ग्रट डफ ने मराठो के इतिहास में लिखा है –"बबई सरकार ने मास्टिन को इसी उद्देश से पूना भेजा था–कि वह मराठो के घर ही घर में एक दूसरे से लडाकर या जिस तरह से हो—इस बात का यत्न करे कि मराठे, हैदर या निजाम के साथ न मिलने पावे।" राघोबा को मास्टिन ने ही हैदरअली से लडने के लिये भेजा था-पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। पूना के नाना फडनवीस तथा अन्य मराठा सरदारो ने अच्छी तरह देख लिया था–कि राघोबा मराठा सघ

---

* बबई का पत्र-व्यवहार विलायत के संचालको के साथ।

† कलकत्ता रिव्यू, जिल्द २, पृष्ठ ४३०

‡ मिल–जिल्द २, पृष्ठ ४२५।

को धूल में मिलाने का कार्य कर रहा है। तब राघोवा की अनुपस्थिति में उन लोगों ने अपना बल संगठित किया था, यहां तक कि राघोवाको दुबारा पूना लौटने का साहस ही नहीं हुआ और जान वचाकर वह गुजरातकी ओर भाग गया था।*

पांचगांव की लड़ाई— सावाजी भोसले राघोबा का विरोधी और हैदराबाद के निजाम का मित्र था तथा नागपुर राज्य का समस्त प्रभुत्व उसके अधीन था। ज्यों ही उसने सुना–कि राघोबा ने रघोजी को विधिवत् सेनासाहब सूवा वना दिया है और उसका पिता मुधोजी सेनासहित नागपुर पहुंच रहा है–त्यो ही वह नागपुर की सेना लेकर मुधोजी से युद्ध करने के लिये रवाना होगया। नागपुर से १० मील दूर पांचगाव मे मुधोजी और साबाजी का युद्ध हुआ। यह घटना २६ जनवरी सन् १७७५ की है। भाग्यवश युद्ध में हाथी पर वैठकर सेना संचालित करते हुए सावाजी मारा गया और दीवान भवानी कालू आहत होगया था। इस तरह मुधोजी का एक कंटक दूर होगया—जिससे नागपुर मे अव उसका विरोध करनेवाला कोई नही था। नागपुर मे पहुंचकर उसने साबाजी का अंत्य संस्कार किया तथा सावाजी के शव के साथ उसकी दो स्त्रियां सती होगयीं।

रघोजी की गद्दीनशीनी—रघोजी भोसले का राज्याभिषेक संस्कार २४ जून सन् १७७५ ईस्वी को नागपुर में मुधोजी ने संपन्न करवाया था। उस प्रसंग पर राजतिलक करने का कार्य नागपुर के गोड राजा बुरहानशाह ने किया था।

सवाई माधवराव— इधर पूना की राजनीति ने करवट वदली। १८ अप्रैल सन् १७७४ को पेशवा नारायण-राव की विधवा स्त्री को एक पुत्र हुआ। पूना दरवार के कारवारियों ने उस वालक (सवाई माधवराव) को पेशवा का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। अंग्रेज कम्पनी का हित राघोबा को पेशवा बनाने का था और वह इस समय अंग्रेजों के आश्रय में था। सूरत मे उसने ६ मार्च सन् १७७५ ईस्वी को अंग्रेजों से एक सधि की और उसके अनुसार कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना को लेकर राघोवा पूना के लिये रवाना होगया। इसका पूरा समाचार पूना में नाना फडनवीस को मिल गया था। इसी कारण नाना ने राघोवा से युद्ध करने के लिये हरिपन्त फडके के अधीन मराठों की सेना भेजी थी। आरस—नामक स्थान में हरिपन्त फडके ने राघोबा और अंग्रेजों को वुरी तरह हराया था। इससे यह लाभ हुआ कि–बागी राघोवा को सहायता देने के बाद पूना सरकार से वातचीत करने का तथा मास्टिन का अव फिर से पूना पहुंचने का मार्ग बन्द सा होगया। इससे कम्पनी लज्जित हुई और बंगाल के गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग ने दोरुखी चाले चलना आरंभ कर दी। उसने वंबई के अंग्रेजों की कार्यवाही को नाजायज ठहराया और सवाई माधवराव के प्रति स्नेह दर्शाया। कलकत्ते से मिस्टर आपटन पूना गया और वहा उसने पूना के मंत्रिमंडल को अपने वश में कर लिया। आपटन के प्रयास से पूना दरवार ने अग्रेजो से पुरंदर मे एक सन्धि की (३ जून सन १७७६ ईस्वी) जिसमें सूरत की सन्धि रद्द की गयी थी और यह भी आश्वासन दिया था कि भविष्य मे वे राघोवा की सहायता नही करेंगे। इस सन्धि के अनुसार मास्टिन राजदूत वनकर पूना पहुंच गया।

मुधोजी और अंग्रेज—रघोजी भोसले (द्वितीय) के वली की हैसियत से मुधोजी शासन के कार्य करता था और उसका दीवान महीपतराम था। कुछ दिनों के बाद उस पर गंभीर अभियोग लगाकर मुधोजी ने उसे गाविलगढ़ मे वन्दी बनाकर रख दिया था। तव दीवानी का पद पुनः देवाजीपन्त को दिया गया था। उसने वगाल के अंग्रेजों से वकाया चौथ की रकम वसूल करने के लिये पडित बेनीराम को भेजा था। सन् १७७३ ईस्वी मे भीषण अकाल के कारण उड़ीसा उजड़ गया था— उस समय वहा का सूवेदार वापूजी नायक था, किन्तु उसे शीघ्र ही वापिस वुलाया गया और महादजी हरि सूवेदार वनाकर भेजा गया था, पर आर्थिक दशा मे कोई सुधार नही हो पाया था। वेनीराम भी चौथ की रकम दिलाने में असमर्थ रहा था।

पुरंदर की सुलह के वाद वारन हेस्टिंग ने मराठो से वदला लेने के सम्वन्ध में जोरदार तैयारी आरंभ कर दी। उधर पूना का राजदूत केन्द्र मे वैठकर मराठों को आपस में लड़ा देने का अवसर ताक रहा था। उसने पूना दरवार के

* ऐतिहासिक लेख संग्रह, पृष्ठ १३६।

एक मत्री मोरोबा को फोड लिया और नाना फडनवीस से सखाराम बापू को लडा दिया। इस झगडे में नाना का पद मोरोबा को सौंपा गया और स्वय नाना खिन्न होकर पुरदर चला गया। मास्टिन के प्रोत्साहन से मोरोबा ने फिर से राघोबा को पेशवा बना देने का दाँव खेला। अग्रेज मराठो से लडने के लिये जोरदार तैयारी कर रहे थे। वारन हेस्टिंग ने एक विशाल सेना कलकत्ते से बबई की ओर भेज दी थी। इसी बीच में पूना के मत्रिमडल में अकस्मात् परिवर्तन होगया—जिसका मूल कारण मोरोबा की नीति थी। नाना फडनवीस को अन्य मत्रियो ने बुलाकर सारा प्रबध उसे सौंप दिया। नाना ने एक बार फिर मराठो का सगठन दृढ करने का कार्य आरभ कर दिया।

पेशवा से युद्ध के लिये जो विशाल सेना कलकत्ते में तैयार की गयी थी—उसे हेस्टिंग ने (मई सन १७७८ ई) कर्नल लेसली के साथ बबई की ओर रवाना कर दिया था। उसके जाने के मार्ग में सिंधिया, हुल्कर और भोसले आदि मराठे सरदारो का राज्य आते थे। ये सब मराठा सरदार पेशवा को अपना नेता मानते थे। हेस्टिंग ने सेना रवाना करने के हेतु को गोपनीय रखा था—किन्तु प्रकट रूपमें यह कहा था कि इस सेना का हेतु भारतीय राजाओ के साथ युद्ध करने का नही है। इसी समय पडित बेनीराम के द्वारा हेस्टिंग ने मुधोजी को यह कहलवाया था—कि "सातारा का राजा जो हाल ही में मरा है— वह निपुत्रिक है। मुधोजी शिवाजी के गोत्रज और वशधर के नाते अपना दावा पेश करें—जिसका समर्थन अग्रेज कम्पनी करेगी।" वारन हेस्टिंग चाहता था कि यदि मुधोजी उसकी योजना में शामिल हो जावे तो महाराष्ट्र से पेशवा को उखाड फेंकने में सहूलियत होगी।* इसी बुनियाद पर वारन हेस्टिंग ने एक फारसी पत्र दीवान देवाजीपन्त के पास भिजवाया था और अन्य बातो को समझाने के लिये मिस्टर इलियट† को नागपुर भेजा था। वास्तवमें इलियट का उद्देश्य था—"मुधोजी को मराठा-सघ से विभक्त करना।" इलियट के साथ उसका सहकारी राबर्ट फरक्वार, कप्तान विलियम कम्बेल और लेफ्टिनेंट अडरसन थे। गवर्नर जनरल ने उसे यह भी अधिकार दे दिया था कि—'तुम राजा से साफ कह दो कि गवनर जनरल अपनी पूरी शक्ति से सातारा का समस्त राज आपको दिलाने को तैयार है।"

१० अगस्त सन १७७८ ई का राजदूत इलियट अपने कुछ साथियो के साथ कटक पहुचा—उस समय वहा का सूबेदार राजाराम मुकुन्द था। कटक में कुछ दिन ठहरकर ये लोग नागपुर के लिये चल दिये। रास्ते के दूषित एव मलेरियाजन्य वायु से इलियट बीमार होगया और १२ सितम्बर को सारगढ राज्य के सेमरा गाव के निकट पहुचते ही मर गया। उसके साथियो ने उसे वहा दफना दिया था और उन लोगो ने आगे की यात्रा पूर्ण की। ये लोग लाजी, तिरोडा, थारसा के मार्ग से ११ नवबर को नागपुर पहुचे। इन लोगो की व्यवस्था पडित बेनीराम ने नागपुर में की थी—क्योकि उसका घनिष्ट सम्बन्ध वारन हेस्टिंग से था। इस प्रतिनिधि मडल की कूटनीति सफल न हुई और १२ दिसबर को नागपुर दरबार ने उनको विदा कर दिया।

इसी बीच में कर्नल लेसली की जो सेना बगाल से रवाना हुई थी—वह बुन्देलखण्ड के रास्ते से भोपाल होती हुई हुशगाबाद पहुच गयी थी। लेसली के मर जाने से उसका सेनापति कर्नल गोडार्ड था। भोसला राज्य के भीतर से अग्रेजी सेना को गुजरने की अनुमति प्राप्त करने के लिये उसने मिस्टर वादरटन को नागपुर दर्बार के पास भेजा था (वह १२ फरवरी सन १७७९ को हुशगाबाद से चलकर १६ फरवरी को नागपुर पहुचा था।) वादरटन ने राजा मुधोजी और देवाजीपन्त से चर्चा की थी। वादरटन लिखता है —"राजा का दीवान दिवाकरपन्त बडा चतुर है और मुधोजी को वह कम्पनी के व्यूह में कदापि नही फसने देगा और न वह पूना के पेशवा से विरोध ही करेगा। २८ फरवरी को वादरटन नागपुर से चला गया और अग्रेजी सेना भी भोसला राज्य से गुजर गयी।

---

* वारन हेस्टिंग ने इस विषय में लिखा भी है।

† इलियट—आयु २३ वर्ष की थी—लार्ड मिंटो का भाई था। उसका वेतन ४० हजार रुपये वार्षिक था।

वारन हेस्टिंग ने देख लिया था कि कूटनीति से समस्या हल न होगी--तब उसने युद्ध करने का निर्णय किया। उसने भोसला, सिधिया, हुल्कर, हैदरअली और निजाम सभी को उलझाने का प्रयास किया। पूना से १८ मील पर तलेगाव के मैदान मे अंग्रेजी सेना को लेकर राघोवा ने मराठों के साथ युद्ध किया था–जिसमे अंग्रेज पूर्ण रीति से पराजित हुए थे। १३ जनवरी को अंग्रेजों ने पूना दर्बार से वड़गांव मे सधि की। नाना फडणवीस ने रावोवा पेशवा और दो अंग्रेज अफसरो को वंधक स्वरूप महादजी सिधिया के हवाले कर दिया था। सुलह करने पर भी अंग्रेज अपनी चालबाजी से वाज नही आये थे। महादजी सिंधिया को जो पेशवा का विश्वासपात्र सेनापति था—अपनी ओर खीचने का कम्पनी ने प्रयास किया था। वह भी मायावी जाल में फस गया और अग्रेजो के साथ उसने एक गुप्त संधि की थी। इसी समय सिधिया ने विश्वासघात करके राघोवा और दोनो अंग्रेजो को मुक्त कर दिया। राघोवा को फिर से अंग्रेजो ने मुहरा वना दिया—जिसको सामने करके अग्रेजो ने मराठो को कुचलने का कार्य आरम्भ किया था। अन्त मे कम्पनी ने सिधिया को अगूठा वता दिया था। पूना के नाना फडनवीस ने यह स्थिति देखकर मराठे सरदारो को पूना मे आमन्त्रित किया था। मुधोजी स्वयं तो नही गया था–पर उसका दीवान देवाजीपन्त उपस्थित था। निजाम और हैदर अली के प्रतिनिधिगण मंत्रणा करने के लिये पहुंचे थे। पूना की इस ऐतिहासिक वैठक मे यह तय किया गया था–कि मराठे–निजाम और हैदरअली तीनो अपने-अपने क्षेत्र के अग्रेजो पर आक्रमण करके उन्हे भारत से निर्वासित कर दे। * नाना ने अपना एक प्रतिनिधि दिल्ली भी भेजा था–जिसने नाना का पत्र सम्राट को दिया था। नाना ने लिखा था :—"उत्तर भारत मे सम्राट और नजफखां को चाहिये कि देश के सभी राजाओ को मिलाकर अग्रेजो का दमन करे। इससे मुगल साम्राज्य की कीर्ति और मान दोनो बढ़ेगे।" पूना–निश्चय के अनुसार पेशवा के कारवारी ने मुधोजी से आग्रह किया था—कि वे वंगाल पर आक्रमण करके अंग्रेजों की शक्ति को नष्ट कर दे। मुधोजी ने इसे पूना में स्वीकार तो कर दिया था—पर किया कुछ नही। अंग्रेजो से धन पाकर वह संतुष्ट होगया था। इसतरह उसने नाना के साथ विश्वासघात ही किया था। †

मुधोजी का विश्वासघात—देवाजीपन्त पूनासे लौटकर नागपुर गया और वहां की सारी कार्यवाही से मुधोजी को परिचित कराया। वास्तव मे मुधोजी अग्रेजो से युद्ध करना नही चाहता था। साथ ही नाना को यह दिखाना चाहता था कि वह मराठा संघ का विश्वासपात्र सदस्य है। सन् १७७९ ईस्वी मे दशहरा हो जानेपर मुधोजी भोंसले ने २० हजार घुड़सवारो के साथ अपने पुत्र चिमनाजी को वंगाल पर हमला करने के लिये रवाना किया था। प्रत्यक्ष रूपसे उसने यह प्रकट किया था-कि यह सेना अंग्रेजो पर आक्रमण करने के लिये भेजी गयी है-किन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे चिमनावापूसे कह दिया था कि "जहांतक होसके संघर्ष न करते हुए वकाया चौथ की रकम भय दिखाकर अग्रेजो से वसूल की जावे।" चिमनावापू के साथ वृद्ध दीवान भवानीकालू इसलिये साथमे भेजा गया था। भोसले का वकील पंडित वेनीराम जो कलकत्ते मे था–उसे भी यही इशारा मुधोजी ने दिया था। ‡इस विषय का सारा रहस्य उस समय के उपलब्ध पत्रो द्वारा हो जाता है। रायपुर, रतनपुर और सम्वलपुर के रास्ते से मई सन १७८० ईस्वी को चिमनावापू कटक पहुंचा था—अर्थात् इस यात्रामे उसने ८ मास व्यतीत किये थे। फिर भी वारन हेस्टिंग ने सतकर्तासे काम किया था।

वास्तव मे मुधोजी की आर्थिक दशा अच्छी न थी और उसपर नागपुर के गुसाई साहूकारो का काफी कर्ज था। इसलिये वह पैसा चाहता था—जिसको वारन हेस्टिंग भी जानता था। उसपर भी मुधोजीने एक पत्र वारन हेस्टिंग

* The ministers (at Poona) and Sindia in conjunction with Hyder, Nizam Ali and Mudhoji Bhonsle mean to make a general attack upon the English at their several settlements and have entered into, and sealed written agreements for the purpose.

† लाला सेवकराम (पूना का वकील) जो कलकत्ते मे रहता था—उसके पत्र ऐतिहासिक लेख संग्रह (मराठी में) छपे हैं।

‡ वेनीराम पंडित के सम्वन्ध में अंग्रेजी लेख—जो वारन हेस्टिंग के चरित्र में छपा है।

को (२५ जून सन १७८० ई) भिजवाया था–जिसमें कहा गया था कि– "पेशवा की आज्ञा से हमने चिमनाजी को सेनासहित बगाल की ओर भेजा है–पर उसका हेतु अग्रेज कम्पनी के साथ शत्रुता करने का नही है चिमनाजी और भवानी कालू को यही हिदायत दी गयी है और यही कारण है कि उडीसा पहुचने में ८ मास लगे है। यदि भोसलो का इरादा युद्ध करना होता तो यह यात्रा दो मास में हो जाती।"

पडित वेनीराम और कटक के सूबेदार राजाराम पन्त दोनो ने अग्रेजो के प्रति सहृदयता का परिचय दिया था। उसका कारण यही था–कि वे लोग कम्पनी द्वारा पुरस्कृत किये गये थे। अग्रेजी कागज पत्रो से पता चलता है कि कम्पनी ने भोसलो से एक सधि करने का एक प्रस्ताव रखा था—जिसे लेकर २३ जनवरी सन् १७८१ को मिस्टर अडरसन चिमनाजी के पास गया था। उस सधि की शर्तें ये थी —

(१) चिमनाजी सेना लेकर नागपुर वापिस लौट जावे। (२) कम्पनी १५ लाख रुपये सहायता देगी। (३) पिछले नवाब ने भोसले से चौथ की जो सधि की थी–उसका उत्तरदायित्व कम्पनी पर नही है। (४) भोसले गया की ओर न जाय। इसके अतिरिक्त कम्पनी ने चिमनाजी भोसले, भवानी कालू, उडीसा के दीवान राजारामपन्त तथा अन्य लोगो को भी पृथक् पुरस्कार दिया था–किन्तु वह रकम ३ लाख से अधिक न थी। अडरसन की शर्तें नागपुर भेज दी गयी थी। वारन हेस्टिंग ने प्रलोभन के द्वारा भोसलो को विवेकहीन बना दिया था। इसी प्रसग पर हेस्टिंग ने राजारामपन्त के द्वारा यह भी कहलवाया था–कि "जबतक मुधोजी जीवित है–तबतक के लिये चिमनाजी के हित सुरक्षित है परन्तु उसके मरनेपर उसे बडे भाई की कृपा पर जीवित रहना होगा—क्योकि वह राज्य का मालिक है। इससे अच्छा तो यही है कि वह एक स्वतत्र राज्य स्थापित करे।" वृद्ध भवानी कालू के साथ में होने से अग्रेजो का जादू चिमनाजी पर न चल सका था। एक मास के पश्चात मुधोजी ने कम्पनी की निम्न शर्तें मान्य की थी।

(१) हैदरअली से लडने के लिये २ हजार घुडसवार मुधोजी भोसले कम्पनी को देवे—जिसका खर्चा १ लाख रुपये कम्पनी देगी। (२) गढा मण्डला पर हुकूमत जमाने में कम्पनी मुधोजी से सहयोग करेगी। (३) कम्पनी भोसलो को १३ लाख रुपये पुरस्कार देती है और १० लाख का कर्जा प्रतिशत ८ टका वार्षिक व्याज पर देगी। कर्ज की वसूली उडीसा की आय से २ वर्षों में की जायगी।

६ अप्रैल सन १७८१ ईस्वी को कम्पनी के डायरेक्टरो ने उक्त शर्तें मान्य की थी। इसी वर्ष दीवान चोरघडे देवाजीपन्त का स्वर्गवास होगया था और चिमनाजी वर्ष के अत में बगाल से नागपुर लौटा था।

पेशवा और अग्रेज —कर्नल गोडाड अपनी विशाल सेना लेकर मराठो के राज्य में घुस गया—जिससे कल्याण, बसई तथा कोकण प्रदेश में तहलका मच गया था। यह वृत्तात नाना फडनवीस ने सुना तो उसने अग्रेजों को बोरघाट में रोकने के लिये मराठो की सेना भेज दी—जिसके प्रमुख सरदार हरिपन्त फड्के, परशराम भाऊ और हुल्कर थे। मराठो ने पहाडी अचल में अग्रेजी सेना को घेर कर नष्ट कर दिया (अप्रैल सन १७८१ ईस्वी) जिससे वे भाग गये और थोडे से सैनिक किसी कदर बबई पहुचे थे। इस तरह अग्रेजो की यह तीसरी हार थी।

इसी बीच में वारन हेस्टिंग ने उत्तर भारत में खूब दाव पेंच खेले। उसने महादजी सिंधिया को मध्यभारत में खब त्रस्त करवाया था—जिससे उसकी दशा विचित्र सी होगयी थी। मार्च सन् १७८१ ईस्वी में कर्नल कारनक ने सिंधिया को कई स्थानो में हराया था जिससे वह तबाह होगया था। मुधोजी का बगाल का आक्रमण तो वह पहले ही विफल कर चुका था। अब दो शक्तिया मैदान में थी, निजाम और हैदरअली—इन को फोडने का हेस्टिंग ने भरसक यत्न किया था। निजाम के साथ उसे सफलता मिली किन्तु हैदर उसके झासे में नही आया।

कर्नल गोडाड हारकर बबई पहुचा और जब हेस्टिंग ने यह समाचार सुना तो उसे भारी सदमा पहुचा और उसने पेशवा से सधि करने में अपनी भलाई समझी। हेस्टिंग ने मुधोजी भोसले से प्रार्थना की थी कि वे मध्यस्थ बनकर पेशवा

से अंग्रेजो की संधि करा दे। इसके लिये उसने मिस्टर च्यापमनको नागपुर भेजा था। मुधोजी नाना के साथ विश्वास-घात कर चुका था—इसलिये उसे नाना से कुछ कहने का नैतिक साहस न था। तब हेस्टिंग ने १३-१० सन १७८१ ई. को सिंधिया से सधि करली और उसके द्वारा नाना फडनवीस से संधि की चर्चा की। इसी समय मद्रास की ओर अंग्रेज हैदर से लड़कर हार चुके थे। १७ मई सन् १७८२ ईस्वी को कम्पनी ने सालवाई नामक स्थान में पेशवा के साथ संधि की—जिससे नाना फडनवीस की कुशलता प्रकट होती है। फिर भी नाना की राजनीति सफल न हुई। उसके सरदारों ने—सिंधिया, भोसले और गायकवाड ने उसे धोखा दिया और इसी समय हैदरअली भी मर गया था। फिर भी हेस्टिंग ने गिरती हुई बाजी को सम्हाल लिया—जिससे कम्पनी के विकास मे सहारा मिला था। इसके बाद ४–५ वर्ष शाति के साथ बीते थे। उस समय वारन हेस्टिंग भारत से विलायत चला गया और लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल होकर कलकत्ते आया था।

जार्ज फारेस्टर द्वारा भोंसले राज्य की समीक्षा—टीपू और मराठों की संधि होने का समाचार—जब लार्ड कार्न–वालिस के कानों तक पहुंचा तो उसने तुरन्त २३ अक्टूबर सन १७८७ ईस्वी को जार्ज फारेस्टर नामक एक अंग्रेज को इसलिये नागपुर भेजा था कि वह राज्य का पूरा विवरण गवर्नर जनरल के सामने पेश करे और साथ ही टीपू के विरोध में मुधोजी को खड़ा करे। यह राजदूत १० फरवरी सन १७८९ को नागपुर से वापिस कलकत्ता रवाना हुआ था। उसने एक रिपोर्ट लार्ड कार्नवालिस को दी—जिसका साराश नीचे दिया जाता है:—

"भोसला राज्य की वार्षिक आय ६० लाख रुपये है। नागपुर मे राजा की सेना मे ६ हजार घुडसवार तथा चार सौ पुलिस सैनिक है। किलेदारों के पास इसके अतिरिक्त सैनिक मय युद्ध सामग्री के है। सैनिको को नियमपूर्वक वेतन नही दिया जाता है और कभी-कभी साल भर का वेतन बकाया रह जाता है। ऐसी अवस्था मे वे लोग मोदियों से उधार लेकर गुजारा चलाते है।"

"भोसलावंश—नागपुर के गोंड राजा के साथ सम्मान का व्यवहार करता है मुधोजी प्रायः कहा करता है कि राजा बुरहानशाह ने इस वंश को राज सौपा है इसलिये उसे ३ लाख रुपये गुजारे को दिये जाते है। ६० वर्ष का वृद्ध बुरहानशाह अपने महल मे राजा के समान रहता है। भोंसले लोग दशहरे पर उसके यहां जाकर सम्मान व्यक्त करते है।"

"मुधोजी भोंसले के तीन पुत्र है—उनमे रघोजी केवल शासन कार्य में भाग लेता है। मंझले चिमना बापू को निम्बाजी की रानी ने गोद लिया है—इसलिये वह छत्तीसगढ़ का राजा कहलाता है, किन्तु वह रतनपुर नही जाने पाता। सबसे छोटा पुत्र व्यंकोजी भी नागपुर में रहता है और उसे दीवान पद सौपा गया है। रघोजी को उसकी प्रजा "बनिया राजा" कहती है।"

"राज्य का प्रमुख अधिकारी बक्षी है—जो सेनापति भी है। फारसी का पत्र-व्यवहार मुशी के अधीन है—मराठी मे पत्र-व्यवहार-चिटनवीस करता है। दीवान भवानी कालू ७० वर्ष का वृद्ध है—रघोजी उससे असंतुष्ट है—क्योंकि वह चिमनाजी को चाहता है। रघोजी महादजी लष्करी को दीवान बनाना चाहता है—किन्तु मुधोजी को वह पसंद नही है। उसी तरह भवानी मुशी की आयु ८० वर्ष की है। बाबाजी चिटनवीस और खजानची चिमनाजी अप्पा भी प्रमुख कारबारी है। मुधोजी का मुहलगा खासगी कारबारी जानराव है—उसके पास राजा की मुहर रहती है और उसी तरह शेख मुहम्मद से राजा की दिल्लगी होती है।"

"मुधोजी की आयु ५०–६० के लगभग होगी। वह मध्यम कद का कसा हुआ सैनिक है। आंखे बड़ी-बड़ी और नाक सीधी है—किन्तु आगे का भाग मिला हुआ है। मूछो और कल्लो से उसका चेहरा रुआबदार है। वह सभी से मिलता-जुलता है। उसने जीवन में कई लोगों के साथ विश्वासघात किया है। वह अपने सैनिको को समय पर वेतन नही दे पाता—जिसके कारण सैनिक कभी कभी राजद्वार पर जाकर धरना देते है। कभी-कभी सैनिको ने उस पर हमले भी किये है—जिससे उसके शरीर पर कई जख्म है। आश्वासन देकर पलट जाना—यह उसके लिये साधारण सी बात है। वह अपने—कर्मचारियो से डरा धमका कर भी रकम वसूल करता है।"

"७–८ वर्ष हो गये हैं—नागपुर में उदयपुरी गुसाईं एक प्रमुख साहूकार था। उसने मुधोजी भोंसले को ५० लाख का कर्ज दिया था। जीवन भर वह कर्ज चुका नहीं सका—अन्त में उसने एक युक्ति सोची। उदयपुरी के २ चेले थे—उनमें से एक पर उसने एक गाय को मार डालने का अभियोग लगाया। मुधोजी ने पुलिस भेजकर उसे पकड़ मँगाया और उदयपुरी पर ५० लाख जुर्माना किया। उदयपुरी से अपना लिखा हुआ कर्ज-पत्र लेकर उसने उसका वैभव समाप्त किया। इस अत्याचार से दुखी हो—उदयपुरी नागपुर छोड़कर बनारस चला गया।"

"नागपुर के प्रसिद्ध वकील प बेनीराम के पास काफी सम्पत्ति है। वह मुधोजी का विश्वासपात्र है। बेनीराम का भाई विश्वम्भर अपनी हवेली में बनारस से आकर रहता था। मुधोजी ने उससे कर्ज मांगा था—पर उसने नहीं दिया। मुधोजी ने उसे इसलिये तंग नहीं किया—क्योंकि वह अंग्रेजों का मित्र था।"

भोंसला-राज्य की सीमा—"उसके राज्य के उत्तर में नेर नदी बहती है—पूर्व में कटक और जगन्नाथपुरी, पश्चिम में बरार और दक्षिण में गोदावरी नदी है।"

भोंसला राज्य के निम्न सूबों की आय इस तरह थी –

नागपुर प्रान्त	वार्षिक आय	१८ लाख रुपये
बरार प्रान्त	वार्षिक आय	१० लाख रुपये
बनगंगा प्रान्त	वार्षिक आय	२ लाख रुपये
*कटक प्रान्त	वार्षिक आय	१७ लाख रुपये
रतनपुर प्रान्त	वार्षिक आय	३ लाख रुपये
मुलताई प्रान्त	वार्षिक आय	२ लाख रुपये
राज्य की अन्य आय		७ लाख रुपये
	कुल आय	५९ लाख रुपये

उक्त आय में १६ लाख रुपये परस्पर बाहर ही व्यय हो जाता था।

नागपुर के गोंड राजा को पेंशन	३ लाख रुपये वार्षिक।
सिवनी के जागीरदार को पेंशन	३ लाख रुपये वार्षिक।
बरार का सैनिक व्यय – – –	३ लाख रुपये वार्षिक।
कटक का सैनिक व्यय – – –	७ लाख रुपये वार्षिक।

मुधोजी की सेना —

१ घुड़सवार —

२०००	सरकारी बारगीर।
४७००	नागपुर के किल्लेदारों के पास।
३००	सिवनी के जागीरदार के पास।
२०००	कटक के सूबेदार के पास।
१५००	गगमडी के सूबेदार के पास।
१०,५००	घुड़सवार।

*भोंसले के शासनकाल में सूबा कटक की आय (मि बनर्जी द्वारा उड़ीसा का इतिहास)

शिवभट साठे के समय में आय	१०,७८,४४१	रुपये।
गणेश सभाजी के समय में आय	१५,६०,८११	रुपये।
राजाराम मुकुन्द के समय में आय	१४,४४,७४०	रुपये।
व्यंकोजी सवदेव के समय में आय	१५,९५,९९१	रुपये।

पैदल सैनिको का व्यौरा रिपोर्ट में नही है। राजा के पास २०० हाथी थे। भोंसलों के पास M मार्के की १५ तोपे थी— जिसके चलाने वाले २ अंग्रेज, १ फ्रेंच और कुछ पोर्तुगीज थे। राजा के पास जो हिन्दुस्थानी तोपखाना था—उसका प्रधान अफसर मीर यूसुफ था। राजा का एक नवीन महल वन रहा है और साथ मे अन्य इमारतें—जिन-पर काफी व्यय हो रहा है।"

मुधोजी वास्तव मे मराठा संघ का प्रभावशाली सदस्य था। आर्थिक कारणों से उसका वल टूटता ही गया और महादजी सिंधिया का वल वढता जा रहा था और यहा तक कि वह दिल्ली सम्राट का संरक्षक वना हुआ था। मुधोजी भोंसले के साथ अंग्रेजो ने अव इस तरहका व्यवहार करना आरंभ कर दिया था कि जिससे सिंधिया को सन्देह होगया कि अंग्रेज मेरे विरुद्ध मुधोजी को तैयार कर रहे है। मराठा मंडल को अंग्रेज पंगु वना रहे थे।* गायकवाड और मुधोजी तो एक तरह से पृथक् भी थे-किन्तु हुल्कर और सिंधिया के संघर्ष ने तो उसे सन्निपात की अवस्थामे पहुंचा दिया था। ऐसी अवस्था मे संघ की इमारत पेशवा पर ही खड़ी थी। दैवयोग से १९ मई सन् १७८८ ई. को नागपुर मे मुधोजी का स्वर्गवास होगया था।† उसके कुछ मास पूर्व ही अर्थात् ७ दिसंवर सन् १७८७ ई. को विवाजी भोंसले का रतनपुर में देहांत हो चुका था। मुधोजी के २ स्त्रियां, ३ पुत्र और ३ कन्याए थी। रघोजी आदि की माता चिमावाई थी। मुधोजी के वाद चिमनावापू का स्वर्गवास १५ अक्टूवर सन १८९० को होगया। जिसक साथ उसकी ४ स्त्रियां सती हुई थी।‡

रघोजी भोंसले (द्वितीय)

फारेस्टर का नागपुर में आगमन :—मुधोजी के मरने पर रघोजी पूर्ण रूप से स्वतत्र होगया था। उसका दीवान श्रीधर मुंशी था। अंग्रेजों का प्रभाव देश मे काफी वढ़ चुका था। लार्ड कार्नवालिस ने पेशवा और निजाम को मिलाकर टीपू को कुचल दिया था। उड़ीसा पर भोसले का आधिपत्य होनेसे कम्पनी के कार्यो मे वडी असुविधा होती थी—इसलिए कोई न कोई मार्ग निकालने के लिये गवर्नर जनरल ने फारेस्टर को फिर से नागपुर भेजा था—जो ३१ मार्च सन् १७९० ईस्वी को कटक पहुंचा था और उसके साथ मे दूसरा अफसर लेकी था। फारेस्टर ने अपने प्रवास का सुन्दर वर्णन लिखा है—जिससे मराठा राज्य का परिचय मिल जाता है। उस समय कटक का सूवेदार राजाराम नागपुर गया था—क्योंकि २-३ वर्ष में उसे हिसाव समझाने के लिये नागपुर जाना पड़ता था। उडीसा की जमा ठेकेदारी पद्धति से वसूल होती थी। समस्त प्रदेश की आय २२ लाख के लगभग होगी—किन्तु खर्च घटाने पर राजा को प्रतिवर्ष १० लाख रुपये भेजे जाते थे। उस समय उड़ीसा में कौड़ियों के द्वारा ऋय विक्रय होता था। यहा की मुख्य आय जमीदारी और जकात से थी। जो हिन्दू जगनाथ के दर्शन के लिये पुरी पहुचते थे—उनको फी यात्री १० रुपये कर देना पड़ता था—किन्तु दक्षिण के लोगों को ६ रुपये देना पड़ता था। गरीव और साधु उस कर से वंचित किये

---

* गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग ने जांच के अवसर पर पार्लिमेंट मे कहा था—"महान् भारतीय संघ के सदस्य निजाम को मैंने योग्य अवसर पर उसका कुछ इलाका वापिस करके उसे संघ से अलग किया था। दूसरे मुधोजी भोसले के साथ मैंने गुप्त पत्र-व्यवहार जारी रखा था और मैंने अपना मित्र वनाया था। तीसरे महादजी सिंधिया को दूसरे कामों में लगाकर और पत्र-व्यवहार करके मैंने उसे भुलावे मे रखा था और सुलह के लिये वतौर यंत्र के उसका उपयोग किया था।

† मुधोजी की मुहरछाप पर निम्न श्लोक अंकित था :—

"शाहू प्रसादेन रघोजी सुयशोधरः।
तत्सूनास्तु मुधोजी नाम्नस्तस्य मुद्रा विराजते।"

‡ नागपुर के रघोजी भोसले ने २१ अप्रैल सन् १७७९ ईस्वी को निम्न परगने अपने मंझले भाई चिमनावापू को निजी खर्च के लिये दे दिये थे—दारव्हा, गिरोली, महागांव, खड़ी, धामनी, माहूर, भाम आदि।

जाते थे। बगाल से नागपुर जाने का सीधा मार्ग "बारमल" घाटी से गुजरता था—वही उडीसा का द्वार था। बारमल के निकट का सारा इलाका "दामपल्ला" कहलाता था–जो एक धनिक जमीदार के अधीन था। यह जमीदार मराठो को कोई उवारी नही देता था।"

फारेस्टर जब सोनपुर पहुचा था–तब वहा के राजा प्रीतमसिंह ने उनको अपने यहा ठहराया था। यहा के राजा ने उसे मराठो के अत्याचारो की कहानिया सुनायी थी। सोनपुर से ये लोग १८ मई को रायपुर में ठहरे थे—जोकि उस समय व्यापार का केन्द्र था। छत्तीसगढ का वह नगर वरद्वान है। एक बडे तालाब के तटपर यहा का किला है–जिसके ५ द्वार और कई बुर्जिया है। यहा से चलकर ३ जून को फारेस्टर नागपुर पहुच गया था। कई दिनों तक प्रतीक्षा के बाद १५ जून को राजा ने महल में मुलाकात की इजाजत दी और उसी दिन उसने गवनर जनरल का पत्र राजा को दिया था। उसे यह भी पता चला था कि इसी समय वहा पेशवा और निजाम के हरकारे पत्र लेकर पहुचे थे। उनके पत्रो में राजा से अनुरोध किया गया था–कि टीपू के साथ युद्ध करने के लिये भोसले उनकी सहायता करें। उसे यह भी पता चला था कि नागपुर का राजा इस युद्ध में कोई हिस्सा नही लेगा। फिर भी राजा ने कहा था कि वह कम्पनी को ८ हजार घुडसवार देने को तैयार है और प्रति सवार के पीछे वह कम्पनी से ४०० सौ रुपये खर्च के लेगा। उसने राजा से कई बार भेंट की थी–पर कोई फल नही निकला। इसी बीच में ५ जनवरी सन १७९१ को फारेस्टर का नागपुर में देहान्त हो गया और उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करके उसके साथी कलकत्ते वापिस लौट गये थे।

खर्डा का युद्ध –निजाम और पेशवा का चौथ का झगडा बहुत दिनो से चला आरहा था–उसको अग्रेजो ने और भी बढा दिया–जिससे पेशवा ने निजाम से युद्ध करने की तैयारी की और सभी मराठे सरदारो को पूना पहुचने का आग्रह किया था। नागपुरसे १५ हजार घुडसवार लेकर रघोजी पूना में दाखिल होगया था। इस तरह सभी सरदारो की सेना मिलाकर मराठो की १॥ लाख सेना होगयी थी। इस सम्मिलित सेना का नेतृत्व दौलतराव सिंधिया और परशुराम पटवधन को सौंपा गया था। मराठो ने जब निजाम पर आक्रमण किया तब उसने अग्रेजों से सहायता मागी थी–पर गवनर जनरल जान शोर ने उस ओर ध्यान ही नही दिया था—यहातक कि कम्पनी सहायक सेना जो हैदराबाद में रहती थी—उसने भी सहायता देने से इन्कार किया था। फिर भी निजामअली १ लाख १० हजार सैनिक लेकर मराठो से युद्ध करने के लिये हैदराबाद से रवाना हुआ—जिसका सेनापति आसदअली खा था। आरभ में ही मराठो ने निजाम के सैनिको को मार भगाया—जिससे वे लोग खर्डा के किले में चले गये थे। मराठो ने उसे घेर लिया और दो-तीन दिनो में उसने हिम्मत त्याग दी। नतीजा यह हुआ था कि १५ मार्च सन १७९५ ईस्वी को* खर्डा के युद्ध में निजाम पूर्ण रूप से हार गया और उसने पेशवा से सधि की—जिसके अनुसार पेशवा को २२ लाख आय का प्रदेश प्राप्त होगया था। पेशवा ने अपनी ओर से रघोजी भोसले को नर्मदा के समीप का इलाका (नरसिंहपुर, बैतूल, हुशगाबाद तथा भोपाल के आसपास का इलाका) पुरस्कार के रूप में दे दिया था—जिसकी आय ३ लाख १८ हजार वार्षिक थी। मई मास में रघोजी पूना जाकर नागपुर के लिये रवाना हुआ था। रास्ते में जालना के निकट उसे २७ अक्टूबर को सवाई माधवराव की आत्महत्या का समाचार मिला।

सवाई माधवराव ने २५ अक्टूबर को जान बूझकर अपने महल के छज्जे से कूद कर आत्महत्या की थी–और उसके मरते ही पूना दर्बार में मतभेद निर्माण होगया। मृत पेशवा के कोई सतान न थी और इसलिये नाना फडनवीस ने घोषित किया था कि पेशवा की रानी यशोदाबाई गोद लेवे–जिसे सब मराठा सरदार तय करें। किन्तु अग्रेज रेजिडेन्ट ने राघोबा के पुत्र बाजीराव को खडा करके मराठो में फूट का बीज बो दिया। इदौर के तुकोजीराव ने इसका समर्थन किया था–जो पूर्णतया अग्रेजों के अनुकूल था। पूना दर्बार में भी केवल नाना

* खर्डा–बबई से पूर्व की ओर ६१ मील पर है।

अलग रह गया था। इसलिये † वाजीराव ने स्वयं अपने को "पेशवा" घोषित किया और नाना पर कई अभियोग लगाये थे। जिसके कारण नाना को जान बचाने के लिये पूना से भागना पडा था। किन्तु शीघ्र ही वह पकड़ा गया और वाजीराव ने उसे बन्दीखाने में रख दिया। चार्ल्स मेलट ने पूना से एक पत्र मे लिखा था—"जबतक पूना दर्वार में नाना है—तवतक मराठा राज्य में मजबूती से अपने पैर जमा सकने की हमे स्वप्न मे भी आशा नहीं करनी चाहिए।"

इसी वर्ष के अन्तिम मास में बाजीराव को पेशवाई पर अभिषिक्त करने का एक समारोह पूना मे हुआ था—जिसमे भाग लेने के लिये स्वयं रघोजी वहां गया था। कहते है कि इसी प्रसंग पर पेशवा को भोंसले ने २६ लाख का नजराना दिया था। वाजीराव ने भी मण्डला इलाका तथा जवलपुर नगर उपहार के तौर पर दिया था।

सन १७९९ ईस्वी में प्रसिद्ध मीरखां पिंढारी ने सागर राज्य मे तहलका मचा दिया था और वह उस जिले मे कई दिनो तक रहा था। पिढारियों के दमन की ताकत सागर के सूवेदार रघुनाथराव (आवासाहव) मे न थी उसने सहायता के लिये पूना समाचार भेजा था—इसपर वाजीराव ने रघोजी से अनुरोध किया था—कि वह सागरवाले की सहायता करे। इस पर रघोजी ने अपनी घुड़सवारों की सेना सागर भेजी था और उसने मीरखां को वहां से खदेड़ दिया था। इस सहायता के लिये सागर के सूवेदार ने तेजगढ़ परगना भोसलों को दिया था।

यशवंतराव हुल्कर:—पूना की राजनीति से नाना फडनवीस के हटने से पेशवा पर अकुश रखनेवाला एक मात्र दौलतराव सिंधिया था—जो अंग्रेजों की चालों को अच्छी तरह जानता था। इसी समय मार्क्विस वेलजली और उसके भ्राता कर्नल वेलजली (जो वाद में ड्यूक आफ वेलिंगटन कहलाया था।) ने भारतीय राजनीति मे जो हिस्सा लिया—उसके कारण अंग्रेजों का शासन देश मे मजबूती से फैल गया था। आरंभ मे कम्पनी ने सिंधिया और भोसले को मराठा संघ से अलग-अलग करने का यत्न किया था—किन्तु दोनों अंग्रेजों से छटकते ही रहे। ऐसे समय मे १५ अगस्त सन् १७९९ ईस्वी को तुकोजीराव हुल्कर मर गया। उसके दो वेटे काशीराम और मल्हारराव और दो दासी पुत्र यशवंतराव और विठोवाजी—राज्य के लिये झगड़ पड़े थे। यशवंतराव वास्तव मे मल्हारराव को इंदौर की गद्दी पर वैठाना चाहता था। दौलतराव ने काशीराम का पक्ष लेकर विरोधियों से युद्ध छेड़ दिया परिणाम यह हुआ—कि यशवंतराव भागकर नागपुर चला गया; क्योंकि उसको विश्वास था कि रघोजी उसकी सहायता करेगा पर वह तो किसी भी मूल्य पर सिंधिया से विरोध नही करना चाहता था। दौलतराव के वकील के कहने से रघोजी ने यशवंतराव को कैदखाने मे पटक दिया था और उसके पास जो सम्पत्ति थी वह ले ली। फिर भी वह किसी तरह जेलखाने से निकल गया और नागपुर से भागकर महेश्वर चला गया। जहा अंग्रेजों ने उसको प्रबल बनाया—इसलिये कि वह सिंधिया का प्रवल प्रतिस्पर्धी हो।

राजदूत कोलब्रुक। सिंधिया से भोसलों को अलग करने के लिये वेलजली ने मिस्टर कोलब्रुक को प्रतिनिधि वनाकर नागपुर भेजा—जो १८ मार्च सन १८९९ ईस्वी को नागपुर पहुंचा था। रघोजी उस समय पुरी की यात्रा से वापिस लौटा था। उसने राजा से मिलकर कम्पनी की सेना रखने (सबसीडियरी संधि) का अनुरोध किया था। वेलजली ने (३ मार्च के) पत्र मे यह हिदायत दी थी कि—"वरार के राजा का राज्य ऐसे मौके पर है कि दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध उसकी सहायता हमारे लिये हितकारी साबित होगी।" इसी समय वेलजली ने हैदरावाद के राजदूत कर्क पैट्रिक को जो पत्र भेजा था—उसमे कोलब्रुक को नागपुर भेजने का उल्लेख करते हुए लिखा था—"अच्छा होगा कि वरार के राजा और कम्पनी के वीच यह सम्बन्ध हैदरावाद दर्बार को मध्यस्थ वनाकर पक्का किया जाय और अन्त मे शायद सिंधिया और टीपू दोनों के विरुद्ध एक परस्पर सहायता संधि कर ली जाय..... जवतक मैसूर का युद्ध समाप्त न हो—तबतक सिंधिया से विरोध करना उचित न होगा।"

---

† सन् १७८२ की संधि के अनुसार अंग्रेजों ने राघोवा पेशवा को सौप दिया था। उसने नाना की राय से राघोवा को गोदावरी के तटपर कोपरगांव में रख दिया था और वही वह सन् १७८४ के आरंभ मे मर गया था। उस समय वाजीराव की अवस्था ९ वर्ष की थी।

कोलब्रुक नागपुर में २ वर्ष तक रहा था। उसने नागपुर में रहकर नागपुर दर्बार के कारबारियो से घनिष्ट सम्पर्क स्थापित किया था और धन का प्रलोभन देकर उनको फासने का प्रयास किया था। परन्तु कोलब्रुक को कोई अधिक सफलता नही मिली और अन्त में गवर्नर जनरल से कह दिया कि यहा रहने में कोई लाभ न होगा। तदनुसार १८-५ सन् १८०१ ईस्वी में वह नागपुर से चला गया।

सिंधिया और हुल्कर—यशवतराव हुल्कर ने महेश्वर में पहुचकर अपना सगठन तैयार किया—जिसमें अग्रेजो ने सहयोग दिया था। उसका भाई विठोजी भागकर कोल्हापुर चला गया—जहा पेशवा के सैनिको द्वारा मारा गया था। यशवतराव ने दौलतराव को नीचा दिखाने के लिये उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस कारण से सिंधिया कुछ सेना पूना में छोडकर मध्यभारत में पहुच गया। मालवा में हुल्कर के साथ सिंधिया को कई युद्ध करने पडे थे। २५ अक्टूबर सन १८०२ ईस्वी को यशवतराव हुल्कर ने अचानक पूना पर आक्रमण किया—क्योकि पेशवा से भाई का बदला लेना उसे आवश्यक था। इस कार्य में बसई के अग्रेजो का उसे प्रोत्साहन था—क्योकि अग्रेज चाहते थे कि पेशवा दौलतराव सिंधिया के अनुकूल न रहे। पूना में हुल्कर की सेना से सिंधिया की सेना ने युद्ध किया—किन्तु उनका युरोपियन सेनापति फाइलास हुल्कर से जा मिला था—इस कारण बाजीराव और सिंधिया की सयुक्त सेना इस युद्ध में हार गयी थी। तब बाजीराव भागकर सिंहगढ और वहासे महाड होता हुआ स्वर्णदुर्ग चला गया। किन्तु वहा से भी उसे भागना पडा। तब वह कम्पनी के एक जहाज में बैठकर १६ दिसबर को बसई चला गया। २४ दिसबर के पत्र में वेलजली ने लिखा है—"मराठा राज्य में जो झगडे होगये हैं—उससे ऐसी स्थिति निर्माण होगयी है कि जो अग्रेजी राज्य के स्थायित्व के लिये अत्यत महत्व की है। ज्ञात होता है कि देश के इस भाग में अग्रेज जाति के हितो को ठोस आधार शिला प्राप्त होगयी है। इस सयोग से बढकर दूसरा अवसर पहले कभी नही आया था।"

पेशवा द्वारा सधि करना—इस समय अग्रेज यशवतराव हुल्कर और बाजीराव पेशवा दोनो को खिला रहे थे। पूना से बाजीराव के भाग जाने पर हुल्कर ने उसके भाई अमृतराव को पेशवा बना दिया। यह नाटक रेजिडेंट क्लोज के इशारे पर हो रहा था। बाजीराव को दिखाया गया कि यह यदि सधि न करेगा तो उसे पेशवाई से हाथ धोना पडेगा। उसने ऐसी असहाय स्थिति में अग्रेजो से जो सधि की—वह मराठा राज्य के लिये घातक थी। बसई की इस सधि से मराठा-मण्डल को वलजली बधुओ ने नष्ट कर दिया। सधि होते ही पूना के रगमच से यशवन्तराव हुल्कर और अमृतराव पेशवा गायब होगये। १३ मई को अग्रेजो ने बाजीराव को बसई से लाकर पूना की गद्दीपर बिठलाया। नवीन सधि के अनुसार अग्रेजों की सहायक सेना पूना में आकर सदा के लिये रख दी गयी। प्रसिद्ध लेखक मिल ने कहा है—'भारत में ब्रिटिश राज्य की पक्की नीव जमाना और भावी शान्ति की स्थापना दोनो उस समय तक असभव थे—जिस समय तक कि मराठा शक्ति के मुख में लगाम न दे दी जाय।"

मराठो का दूसरा युद्ध—"मराठा-मण्डल" के पाचो सदस्यो की यह प्रतिज्ञा थी कि—आपत्ति के प्रसग पर एक दूसरे की सहायता करेंगे और पाचो की सलाह बिना किसी अन्य ताकत के साथ किसी तरह की सधि नही करेंगे, इस नैतिक बधन में सिंधिया, हुल्कर, गायकवाड, भोसले और पेशवा बधे हुए थे। उनमें से पेशवा दौलतराव सिंधिया और रघोजी भोसले को महत्व देता था। दोनो यह समझते थे कि पेशवा ने बसई में सधि करके अनुचित कार्य कर डाला है। वलजली यह अच्छी तरह समझता था कि दोनो की स्वीकृति आवश्यक है। वह यह भी जानता था—कि सधि की शब्दावलि दोनो को ज्ञात हो गयी—तो वे निश्चय ही विरोध करेंगे। इसी कारण से वेलजली ने उस सधि को गुप्त रखा—जिसके सम्बन्ध में वेलजली ने (१९ अप्रल सन् १८०३ ई को भेजा हुआ पत्र—जो उसने कम्पनी के डायरेक्टरो को भेजा था।) स्वय लिखा है—दौलतराव ने बाजीराव का पुन पेशवा बनाया जाना स्वीकार कर लिया है—किन्तु सधि के विषय में उसने कर्नल कालिन्स से स्पष्ट कह दिया है, कि जब तक सधि की सब शर्तें और बाजीराव के विचार मुझे ठीक ज्ञात न होंगे—मैं अनुमति नही दूगा। इसी तरह नागपुर के रघोजी राव ने बसई की सधि पर अपनी अनुमति नही दी है।'

पुन पेशवा होते ही वाजीराव ने उक्त दोनो सरदारों को पूना वुलवाया था। सभी लोग जानते थे कि जवतक भोसले और सिंधिया सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर नही करेंगे—तव तक वह पक्की नहीं मानी जायगी। दौलतराव सिंधिया ने वडी चतुराई से भोसले और हुल्कर को एक स्थान मे एकत्रित होने का वुलावा दिया और स्वयं वुरहानपुर में आकर ठहर गया। नागपुर से रघोजी भी वडाली के लिये रवाना हो गया जो वुरहानपुर से १०० मील पश्चिम मे है। ३ मई सन् १८०३ को सिंधिया भी वडाली को चल पड़ा। ३० मई को वेलजली ने दौलतराव को सूचित किया था, कि "वह वापिस लौट जाय।" और इसी तरह का संदेश रघोजी को भी पहुँचाया था। गवर्नर जनरल वेलजली ने जनरल वेलजली को तो यह हुक्म दे रखा था—कि "वह विना पूछे सिंधिया और भोसले से युद्ध कर देवे।"

४ जुलाई सन् १८०३ ईस्वी को दौलतराव सिंधिया, रघोजी भोंसले और कर्नल कालिन्स की भेंट हुई थी। उस समय भी दोनो ने यही कहा था कि जवतक शर्तो का पूरा पता नही चलता—तवतक राय नही दे सकते। काफ़ी पत्र-व्यवहार भी हुआ था—पर कोई निर्णय नही हुआ। ६ अगस्त सन् १८०३ ई. को जनरल वेलजली ने युद्ध की चुनौती दे दी—क्योकि अंग्रेजों ने युद्ध की तैयारी कर डाली थी। कम्पनी ने ६ ओर से ६ सेनाएँ भोसला और सिंधिया पर आक्रमण करने के लिये भेज दी। पूना के आसपास कर्नल वेलजली, औरगावाद के निकट कर्नल स्टीवेन्सन, मालवा की ओर कर्नल लेक, वंगाल की सेना लेकर कर्नल केम्पवेल और गायकवाड राज्य से कर्नल मरे खानदेश के लिये रवाना होगया था। इस अंग्रेज़ी व्यूह का हेतु दोनो को घेर कर हराना था।

अंग्रेजी सेना का पहला आक्रमण अहमदनगर से अकस्मात् आरंभ किया गया था। १८ अगस्त को जनरल वेलजली ने अहमदनगर से चल कर गोदावरी पार की। अहमदनगर के पतन का समाचार पाते ही सिंधिया और भोसलो ने युद्ध की तैयारी आरंभ कर दी। वेलजली ने चारों ओर अपने गुप्तचर फैला दिये थे—जिनके द्वारा उसको मराठो की हलचल का पता लगता था। २३ सितंवर को असई ग्राम मे सिंधिया की सेना ने वेलजली से युद्ध किया था। उस समय सिंधिया के युरोपियन सैनिक अफसर अंग्रेज़ो से जा मिले थे। इसके अतिरिक्त, उसके साथ कुछ मराठे सरदारो ने भी विश्वासघात किया था। असई के युद्ध मे सिंधिया को हार खानी पड़ी। फिर भी उसने हिम्मत नही छोड़ी। इस युद्ध की दो मुहिम हुई—एक वरार में और दूसरी मध्यभारत मे। भोसले और सिंधिया ने युद्ध का संयुक्त कार्यक्रम वनाया था—उसका पूरा पता वेलजली ने लगा लिया था। इसलिये यह कार्य असफल हो गया। तव दौलतराव असई का मैदान छोड कर अपनी सेना को लेकर खानदेश चला गया और १६ अक्तूवर को स्टीवेन्सन ने असीरगढ़ पर हमला कर के उसे ले लिया। क्योकि सिंधिया का नमक हराम नौकर दुपौ अपने १५ यूरोपियन साथियो के सहित असीरगढ़ का किला सौप कर कम्पनी की सेना के साथ हो गया था और यही गति वुरहानपुर की हुई थी। इतना होने पर भी वेलजली ने सिंधिया के घुडसवारो से सामना नही किया। उसने मराठों के सव मर्म स्थानो पर आघात किया, जहा के सैनिक अफसर घूसखोरी के कारण अंग्रेज़ो से जा मिले थे। अंग्रेजो ने इस युद्ध में पहला काम यही किया था—सिंधिया और भोसले से अलग-अलग युद्ध हो। वेलजली ने मराठों को विभक्त कर दिया था। उसने सिंधिया से लड़ने का काम स्टीवेन्सन को सौपा और स्वयं आप भोसले से लड़ने के लिये अग्रसर हुआ।

अड़गांव का युद्ध—रघोजी का मुख्य सैनिक केन्द्र वरार मे था—जहां पर उसका भाई व्यकोजी था। भोसले सेनापति रामचद्र वाघ, माधवराव नीलकंठ और विठ्ठल वल्लाल अपने घुडसवारो के साथ वालापुर मे थे। वेलजली भी राजूर का घाट लांघ कर आकोट पहुँचने का यत्न कर रहा था, क्योकि वही पर भोसलो की शक्ति केन्द्रित भी थी। समीप ही भोसलो के प्रसिद्ध किले नरनाला और गाविलगढ थे। इस युद्ध मे भी वेलजली ने छल से ही काम लिया था। उसने यह सन्धि की वार्ता आरंभ कर दोनो को धोखे में रखा था। सिंधिया की ओर से वालाजी कुजर और भोसले की ओर से अमृतराव सधि की वाते भी कर रहे थे। पर वेलजली थोथे आश्वासन देकर उनको गफ़लत मे रखना चाहता था। रघोजी इस समय मे अपनी मुख्य सेना के साथ अड़गाव मे था। वेलजली के साथ मे अचलपुर के नवाव की सेना और उसी तरह मैसूर की सेना थी। २६ अक्तूवर सन् १८०३ को वेलजली ने भोंसलो की सेना से

युद्ध किया था।* स्वय वेलजली कहता है—"भासले के तोपखाने की वर्षा शुरू होते ही ३ पलटनें जिन्होने असई में युद्ध किया था—इस युद्ध में भागने लगी। इससे कहा क्या जाय? अडगाव का युद्ध इतना भयकर नही था—पर सयोग से म समीप ही था और मने सेना को पीछे हटा कर व्यवस्थित किया। यदि हम वैसा नही करते—तो हमारी हार निश्चित थी। तोपो के कारण हमें व्यवस्था करने में विलब लगा—फिर भी हमारे सैनिको ने साहस दिखाया था। उस दिन में १८ घटे तक घोडे पर सवार था और यही हालत हमारे सैनिको की थी।" अडगाव के युद्ध में मैसूर तथा अचलपुर की सेना ने खासा पराक्रम दिखाया था। अडगाव में वेलजली के पास चार हजार सवार और उतने ही पैदल सनिक थे—जिन्होने भोसले की सेना को हराया था, क्योकि उनकी सेना बिखरी और अव्यवस्थित थी।

अडगाव के बाद उसी तरह छल से वेलजली ने गाविलगढ के किले पर आक्रमण किया था। ५ दिसबर को वलजली अपनी सेना लेकर अचलपुर पहुँचा और ७ तारीख को गाविलगढ के समीप पहुँचा। उस समय वहा का किलेदार बेनीराम सिंह था। वेलजली इसी चिता में था—कि किले का मम कहा पर ह? भाग्य से शभु भारती† ने वेलजली को मार्के का ऐसा स्थान बता दिया था—कि वहा से आसानी के साथ तोपो की मार हो सकती थी। १४ दिसबर को तोपो की मार से किल का कमजोर भाग टूट गया था। १५ दिसबर को उसी भाग से स्टीवेनसन और कनल केनी ने किले में पहुँचने का प्रयास किया था। इस समय वायव्य की ओर कनल चामर्स था, पर किले पर कोई न पहुँच सका। दूसरे दिन चामर्स को साथ में लेकर कनल केनी ने फिर से किले में प्रात १० बजे से यत्न किया था। करीव २ बजे अग्रेज सनिक किले के द्वार पर पहुँच गये थे। मुख्य द्वार पर स्वय बेनीसिंह अपने साथियो को लेकर शत्रुओ को रोक रहा था। इस आक्रमण में केनी स्वय मारा गया था और शीघ्र ही बेनीराम भी गोली लगने से मर गया। उसके मरते ही किले के सैनिक हताश होगये। १६ दिसबर को जब अग्रेजी सेना ने प्रवेश किया—तो उस समय में किलेदार की दो औरतें मारी पायी गई और उसी दिन अग्रेजो ने किले पर अपना झडा लगाया। या तो गाविलगढ के आसपास बिखरे हुए भोसलो के अनेको सनिक थे—पर उन्होने किले की रक्षा का कोई उपाय नही किया था। अगस्त मास में बगाल की सेना ने उडीसा पर भी अधिकार कर लिया। उस समय वहा का सूबेदार बालाजी कान्हेर था, पर उसने कोई सक्रिय विरोध नही किया। कटक में अग्रेजो ने घोषित किया था कि—"उडीसा से मराठो का राज्य उठ गया।"

देवलगाव की सुलह—उधर दक्षिण से जनरल वेलजली अपने भाई गवनर जनरल को लिख चुका था कि—"दौलत राव सिंधिया को और अधिक हानि पहुचाने की उसमें हिम्मत नही है।" उसी तरह रघोजी भोसले से भी वह आगे की कार्यवाही करने में असमर्थ था—क्योकि भोसले अब भी पूरी तरह से परास्त नही हुआ था। रिश्वतें और सनिक व्यय बेहद हो जाने से कम्पनी भी सुलह को उत्सुक थी। १७ दिसबर सन् १८०३ को कम्पनी ने रघोजी भोसले के साथ सधि की—जिस पर भोसलो के मुख्त्यार यशवत रामचद्र ने हस्ताक्षर किये थे। उसकी शर्तें इस प्रकार थी—

"रघोजी भोसले बालेश्वर बदर के सहित समस्त उडीसा कम्पनी को सौंप दे।"

वर्धा नदी के पश्चिम में बरार का जो इलाका भोसलो का ह, उसे कम्पनी और उसके मित्रो को दे दे।

---

*वेलजली के अग्रेजी पत्र।

† शभु भारती—नागपुर का निवासी तथा राजमाता चिमाबाई का कारबारी था। कार्यवश अचलपुर के सलाबत खा स मिलने के लिये अडगाव गया था। कहते हैं कि उसी ने वेलजली को गाविलगढ का माग बताया था। आगे चल कर रघोजी ने उस पर विद्रोह का अभियोग लगाया था और उसकी जायदाद जब्त कर ली थी। इसलिये वह हैदराबाद चला गया था। रेजिडेंट उसकी जायदाद दिलवाने का यत्न कर रहा था—इसका पता रेजिडेन्सी रिकार्डो से चलता है।

भोसले और निज़ाम राज्य की सीमा वर्धा नदी होगी, किन्तु नरनाला और गाविलगढ़ के किले भोंसलों के अधीन रहेंगे तथा आकोट, अड़गांव, वडनेर, भातकुली और खटकाली आदि परगनो पर मराठों का स्वामित्व होगा। जिसकी आय ४ लाख रुपये है।

पेशवा और निजाम के साथ जो विवाद खड़े होंगे, उसका निर्णय कम्पनी करेगी।

कम्पनी का एक रेजिडेन्ट नागपुर मे स्थायी रूप से रहेगा।

कम्पनी ने भोसलों के आश्रित जमीदारों से जो संधिया की है, उन्हें मान्यता दी जावे।"

इस सन्धिपत्र को ६ जनवरी सन् १८०४ ईस्वी को गवर्नर जनरल ने मंजूर किया था। वरार के आजनगाव मुकाम पर दौलतराव सिधिया ने एक सधि की थी। इसके बाद दूसरी संधि २७ फरवरी सन् १८०४ ईस्वी को बुरहानपुर मे हुई थी।

रेजिडेन्ट एलफिन्स्टन—सधि होते ही देवलगाव राजा मुकाम पर जनरल वेलजली ने १ जनवरी सन् १८०४ ईस्वी को रेजिडेन्ट एलफिन्स्टन को रघोजी से मिलने की आज्ञा दी थी। तदनुसार व्यंकटराव वक्षी ने राजा से रेजिडेन्ट की मुलाक़ात करवायी थी। रेजिडेन्ट ने अपने वयान में राजा का वर्णन किया है-"यह रंग से काला, स्थूल शरीर, छोटे क़द का, देखने मे धूर्त किन्तु स्वभाव से मिलनसार था।" एलफिन्स्टन राजा के ही साथ नागपुर आया था और नगर के वाहर सीतावर्डी स्थान पर उसने अपना कार्यालय और निवास स्थान वनवाया। यह रेजिडेन्ट राजनीति का अच्छा खिलाड़ी था। उसने दरवार के कारवारियों को रिश्वते दे-दे कर वेईमान वनाया*—जो राज्य की गुप्त से गुप्त वाते रेजिडेन्ट को जाकर वतलाते थे। राजा का प्रमुख दीवान भी कम्पनी से पेशन पाता था—अर्थात् नागपुर राज्य के प्रभावशाली कर्मचारी कम्पनी से रिश्वते पाते थे।

देवलगांव की सुलह से ६५ लाख वार्षिक आय का प्रदेश भोंसलों के हाथ से निकल गया था और उसमें से २६ लाख का वरार का प्रदेश अंग्रेजो ने निजाम को दे दिया था। इस युद्ध के समाप्त होते ही भोसले ने अपनी सेना को घटा दिया था—जिससे हजारो सैनिक वेकार होगये। इसी तरह अन्य राज्यों के वेकार सैनिकों ने पिंढारी दल वनाया —जिनकी कहानियां प्रसिद्ध है। यही से भोंसला राज्य का पतन भी होता है।

मराठों का पतन-काल

मराठो का पतन सन् १८०३ ईस्वी के युद्ध से ही होता है। इस युद्ध से अंग्रेज़ों का स्थायी राजदूत नागपुर मे रहने लगा था—जिसने भोंसला राज्य को समाप्त कर देने का सामान जुटाना आरंभ कर दिया था। उसने राजमहल के मनमुटाव को काफी प्रोत्साहन दिया था और राजमंत्रियो को पेन्शन देना आरंभ कर दिया था।‡ उसकी गुप्त कार-

---

* जनरल वेलजली ने एलफिन्स्टन के एक पत्र के उत्तर मे लिखा था—(लाइफ आफ दि ड्यूक आफ विलिगटन, जिल्द १, पृष्ठ ११३)। "मै ६ तारीख के पत्र के उत्तर में सूचित करता हूँ कि राजकीय समाचार प्राप्त करने के लिये आपको जो कुछ करना पड़े, उसे अवश्य करे। यदि आप समझें कि जयकृष्णराम आप को खवरे लाकर देगा या दूसरों से मंगा देगा, तो आप गवर्नर जनरल से उसकी सिफ़ारिश करने का वादा कर ले और गवर्नर जनरल को सूचित कर दे।" दूसरे पत्र मे लिखता है—"यशवतराव रामचंद्र ने जाने से पूर्व हमारा काम करने का वादा किया है। मै आप से उसकी सिफ़ारिश करता हूं। वह चलता-पुरज़ा आदमी है। इसमे सन्देह नही कि उसके द्वारा राजा ने कई महत्वपूर्ण वातो की वातचीत की है। मैने गवर्नर-जनरल से सिफारिश की है कि उसे ६ हजार की पेन्शन दी जावे।"

‡ नागपुर के राजकर्मचारियों की पेंशन (६ मास का हिसाव) "पेमेट आफ पेन्शन फार सिक्स मन्थ्स (कम्पनी की ओर से)", १-७-१८०६ से ३१ दिसम्वर-१८०६,

श्रीधर पडित—१६,००० रुपये।

यशवंतराव और जयकृष्णराव—२१,००० रुपये। —रेजिडेन्सी रिकार्ड।

गुजारियों से भामला राज्य पतन की ओर झुक गया था और पच्चीस वर्षों में तहस-नहस होगया था। वेलजली ने अपने राजदूत को यह खास हिदायत दे रखी थी कि—"राज्य की प्रत्येक बातों पर सूक्ष्म नजर हो और जो जानकारी गवनर जनरल को भेजी जावे—वह प्रमाण सहित हो। उसके लिये जो भी व्यय करना पड़े—उसे अवश्य करे, बल्कि राज्य भर में विश्वस्त खबरें देने वाले लोग नियुक्त किये जायें और राजा के मन्त्रिमडल से सम्पर्क रखा जावे।" राज्य के भिन्न भिन्न स्थानो से जो समाचार रेजिडेन्ट के पास भेजे जाते थे—उसका नाम "अखबार" था।

सन् १८०३ का युद्ध समाप्त होने पर भी बरार और राज्य के अन्य भागो में अव्यवस्था निर्माण हो गयी थी और विशेषत उडीसा और छत्तीसगढ में। यहा के जमीदारो ने गवनर जनरल से यह प्रार्थना की थी—कि उनको मराठा के पजे से मुक्त किया जावे। सम्बलपुर की रानी रतनकुवरि, रायगढ के जुझारसिंह, सारगढ के विश्वनाथ सहाय सोनपुर की रानी लवंगप्रिया, रेहराखोल के बीरबुध, गागपुर के बीरबुध, गागपुर के इन्द्रमूय देव, बामरा के त्रिभुवन देव, बुनाई के रुद्र देव, शवित के दीवान शवित सिंह, बरगट के रणजीत सिंह आदि राजाओ ने एक दरख्वास्त गवनर-जनरल के पास भेजी था कि वे लोग मराठो की अपेक्षा अग्रेजी राज्य पसद करते हैं। भारत सरकार की सूचनानुसार ६ जून सन १८०४ ईस्वी को एलफिन्स्टन ने रघोजी को मान्य करने के लिये बाध्य किया था। रघोजी को इस कागज पर हस्ताक्षर करने के लिये एक दिन का समय दिया गया था और यह भय दिखाया गया था कि यदि वह हस्ताक्षर नही करेगा तो युद्ध छेड दिया जायगा। इससे भामला राज्य को ३॥ लाख की प्रतिवर्ष हानि होती थी। इसी तरह कई मामला में उसने भय दिखा कर राजा की सम्मति प्राप्त की थी। युद्ध के कारण राजा आर्थिक सकट में पड गया था—जिससे उस कई पलटनें तोट देनी पडी थी। हजारो सैनिक जो बेरोजगार हो गये थे, वे ही पिंढारियो में शामिल हो जाते थे। नागपुर का राजा इस समय परावलम्बी सा बन गया था और उसके पत्र-व्यवहारो पर अग्रेज राजदूत कडी निगरानी रखता था।

मराठा राज्यों की अवस्था—इस समय अग्रेजो का एक विरोधी यशवन्तराव हुल्कर रह गया था—जिसने मथुरा में बैठ कर रघोजी भोसले के पास अपना दूत भेजा था और चाहता था कि भोसले उसका साथ दें। यह समाचार अविलम्ब रेजिडेन्ट को मिल गया था, जिसकी सूचना उसने गवनर-जनरल को दी थी—तब उसने रेजिडेन्ट को यह आदेश दिया था—"नागपुर के राजा की कारवाई के विषय में अग्रेज सरकार को खबर मिली है और आप राजा से यह स्पष्ट कह दो कि तुम्हारा व्यवहार ठीक नही है। गवनर-जनरल आवश्यक समझते हैं कि आप राजा की ओर से *बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये आक्रमण के रोकने तथा विश्वासघात का दण्ड देने के हेतु से तैयारिया शुरू कर दें।*

गवनर जनरल ने यह निश्चय कर लिया है कि जिस राज्य में ईमानदारी का इतना मूल्य है—उसके विरुद्ध कम्पनी अपनी तमाम शक्ति और सामर्थ्य से काम लेगी और तबतक चुपचाप नहीं बैठेगी—जब तक राजा पूरी तरह से परास्त न हो जाय।"

सत्य बात तो यह थी कि राजा हुल्कर का सहायता देना ही नही चाहता था—फिर भी रेजिडेन्ट ने उस पर इल्जाम लगाया था कि—वह हुल्कर से मिलना चाहता है। भारतीय नरेशो पर झूठे इल्जाम लगाना—राजदूतों की एक कार्य प्रणाली ही बन गयी थी। रघोजी अपनी कमजोरी को अच्छी तरह जानता था। फिर भी रही सही ताकत को समेट कर राजनीति से दूर रहना चाहता था। इतना ही नही बल्कि वह किसी पर भी विश्वास नही रखता था। यह स्वाभाविक था, क्योकि उसके दीवान ही पैसे के लिये बिक चुके थे—तो वह विश्वास करे भी तो किस पर?

सन् १८०६ ईस्वी की एक घटना का उल्लेख करते हुए एलफिन्स्टन ने लिखा है—कि "नागपुर में रघोजी भोसले, राजपुत्र बालासाहब और दीवान श्रीधर मुशी ने घडी मगवा देने को उससे कहा था।" इस पर उसने गवर्नर जनरल के पास पत्र भेजा था। गवनर जनरल सर जार्ज बारलो ने यह नीति प्रचारित की थी कि भारतीय रजवाडा में आपसी झगडे खडे किये जायें और उससे लाभ उठाया जाय। दूसरा ईसाई-धर्म का प्रचार। सर जार्ज बारलो के पश्चात गवनर जनरल मिन्टो (३ जुलाई सन् १८०७ ई) ने उसी नीति को आगे बढाया था।

भोंसला राज्य का पतन

श्री राममोहन सिन्हा

नागपुर का भोंसला राज्य भारत के मराठा राज्य-मण्डल के समृद्धिशाली तथा शक्तिमान राज्यों मे था। मुगल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् भोंसला-शासको ने भारत के मध्य मे एक स्वतंत्र तथा बलिष्ट शासन जमा कर अंग्रेज़ी सत्ता के बढ़ते हुए प्रवाह को बहुत दिनों तक रोका। भौगोलिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि अंग्रेज़ अपने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के प्रान्तों को नागपुर के स्वतंत्र रहते हुए कभी सगठित नही कर सकते थे। यही हाल उनके पूर्वी तथा पश्चिमी साम्राज्य के प्रान्तों का था। भोसला राज्य सुदूर पूर्व में उड़ीसा से लेकर पश्चिम मे गाविलगढ़ तक और उत्तर में विन्ध्यपर्वतमालाओ से लेकर दक्षिण मे निजाम की उत्तरी सीमा तक फैला हुआ था। १८ वी शताब्दी के अन्त तक अंग्रेजी शासन पेशवा तथा गायकवाड पर अपना सिक्का जमा चुका था, परन्तु १८०३ के मराठा-युद्ध के बावजूद भोसले, होल्कर तथा सिंधिया ने उनकी अधीनता स्वीकार नही की थी। अंग्रेज़ो का यह निरन्तर प्रयास रहा कि वे नागपुर पर अपना आधिपत्य जमाये। इसके लिये उन्होंने बहुत से साधनों का उपयोग किया, परन्तु प्रसिद्ध भोंसले राजा रघुजी द्वितीय की मृत्यु (सन् १८१६) के पश्चात् ही वे अपना उद्देश्य भोसला राज्य मे सफल कर सके।

सन् १८०३ ईस्वी से आग्ल-भोसला सम्बन्ध का एक नवीन युग आरम्भ हुआ। इस वर्ष, युद्ध के पश्चात् देवगांव की सन्धि हुई, जिसके अनुसार भोसला राज्य के दो बड़े प्रान्त—कटक तथा बरार—अंग्रेज़ों के हाथ लगे। कटक के ब्रिटिश राज्य मे मिलने से बंगाल तथा मद्रास प्रान्त जुड गये और अंग्रेजी सेनाये बेरोक कलकत्ते से मद्रास तक जा सकती थी। बरार प्रान्त अंग्रेज़ो ने निजाम को दे दिया। इस प्रकार भोसला राज्य की जनसंख्या तथा आय मे बहुत कमी हो गई। देवगांव की सन्धि के अनुसार नागपुर मे अंग्रेज़ों का एक प्रतिनिधि (रेजीडेन्ट) रहने लगा। रेजीडेन्ट का प्रभाव भोसला राज्य में प्रतिदिन बढ़ने लगा। वह शासन की न्यूनताओ पर विशेष दृष्टि रखता था और गुप्त रूप से आवश्यक सूचनाये संचित कर के गवर्नर-जनरल के पास यथासमय भेजता था। अग्रेज रेजीडेन्ट मराठा सरदारो से मिल जुल कर और राज्य के मंत्रियो को घूस देकर अपना कार्य सिद्ध करता था। इस सम्बन्ध में यह विशेष उल्लेखनीय है कि देवगाव की सधि के बाद रघुजी द्वितीय के मन्त्रियों को अग्रेज़ सरकार ने राजा की जानकारी में बड़ी-बड़ी रकमे वार्षिक पेन्शन के रूप में दी। इस प्रकार मन्त्रियो के प्रधान श्रीधर पंडित को तीस हजार, जसवन्तराव रामचन्द्र को १५ हजार तथा जयकृष्णराव को १० हजार रुपये वार्षिक पेन्शन के रूप मे दिये गये। इस बात से हम स्पष्ट समझ सकते हैं कि भोसले राजाओं के प्रभावशाली मन्त्री विदेशी शत्रु के धन को स्वीकार कर के अपनी स्वामिभक्ति पर कितना बड़ा लांछन लगाते थे।

इस तरह अंग्रेज़ अपना प्रभुत्व क़ायम कर रहे थे। अब हमें यह देखना है, इस समय भोंसला राज्य की स्थिति क्या थी? सन् १८०३ के युद्ध मे पराजित होकर रघुजी द्वितीय की स्थिति बहुत बिगड हो गई थी। साधारणतः मराठा राजाओ के शासन का आर्थिक संगठन दुर्बल रहा करता था। युद्ध के बाद नागपुर राज्य की आय और भी कम हो गई थी, परन्तु एक बड़ी सेना को रखना राज्य के लिये आवश्यक था। दरबार की शान-शौकत मे एकदम कमी कर देना भी राज्य की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल बात थी। उधर-पिंडारियो के आक्रमण का भय रघुजी को सदा बना रहता था। पिंडारी-सरदार अमीर खां को दौलतराव सिंधिया तथा जसवन्तराव होलकर नागपुर पर आक्रमण करने के लिये उकसा रहे थे। सिंधिया तथा होल्कर का उद्देश्य यह था कि रघुजी को अंग्रेजो के विरुद्ध मराठा सेनाओं को सहायता देने पर बाध्य करे और यदि वह अंग्रेज़ो से लोहा लेने मे आनाकानी करे तो उसके देश को लूटे। स्मरण रहे कि देव-

गाव की सधि के बाद अग्रेज तथा होल्कर की सेनाओ में लडाई हो रही थी और सिंधिया जो कि कुछ काल पूर्व अग्रेजो से हार कर उनसे सधि कर चुका था, अपनी खोई हुई शक्ति फिर प्राप्त करना चाहता था। इसी कारण ये तीनो सरदार रघुजी का लालच देकर या डरा कर अपनी ओर मिलाना चाहते थे। रघुजी स्वय अग्रेजो की बढती हुई शक्ति से असतुष्ट था, परन्तु पिछले युद्ध के परिणामो से उसे इतना धक्का लगा था कि खुल्लमखुल्ला वह अग्रेजो से लडना नही चाहता था।

इसी समय नागपुर राज्य में एक नई घटना घट रही थी। रघुजी द्वितीय के छोटे भाई व्यकोजी ने एक बडी सेना एकत्रित की और निजाम की सीमा के निकट उसका बेडा डाला। साथ ही साथ होल्कर तथा अग्रेजो की लडाई में अग्रेजो की क्षणिक पराजय होने के कारण नागपुर के मराठा सरदारो के हौसले और भी बढने लगे। भोसले सरदार तथा रघुजी के मन्त्री भी यथासमय अग्रेज रेजीडेंट एलफिन्स्टन से उत्तर हिन्दुस्तान अर्थात् होल्कर की लडाई के विषय में पूछताछ करते थे और अग्रेजो की पराजय के समाचार से उन्हें विशेष आनन्द होता था। कहा जाता है कि यदि इस समय सभी मराठे सरदार एकमत होकर अग्रेजो का सामना करते तो उनकी विजय अवश्य होती और अग्रेजी साम्राज्य की वृद्धि बहुत दिनो के लिये रुक जाती।

व्यकोजी की सेना ने निजाम के कुछ गावो को लूटा। यह समाचार पाकर एलफिन्स्टन सतर्क हो गया। इसके पूर्व ही पेंशनयाफ्ता अग्रेजो के ऋणी जसवन्तराव रामचन्द्र ने एलफिन्स्टन को सूचना दे दी थी कि व्यकोजी की सेनायें निजाम की सीमा के निकट स्थित है। जसवन्तराव ने रघुजी को बचाने के लिये यह भी कहा था कि—ये कार्य राजा की जानकारी में नही हो रहे है, वरन् व्यकोजी स्वतत्र रूप से यह कार्य कर रहा है। सूचना पाते ही एलफिन्स्टन आग-बबूला हो गया और उसने कडे शब्दो में व्यकोजी की गिरफ्तारी तथा उसकी सेना के नष्ट करने की माग की। उसने राजा के विरुद्ध बहुत से अपशब्दो का प्रयोग किया और कहा कि "व्यकोजी के कार्यो के लिए राजा स्वय उत्तरदायी है।" उसने कहा कि "इस कृतघ्नता का बदला लेने के लिये ब्रिटिश सेनायें शीघ्र ही नागपुर पर आक्रमण करेंगी और राजा स्वय साधारण लुटेरे की भाति उनसे पराजित होकर दर-दर की ठोकरें खायेगा।" उसने यहा तक धमकी दी थी कि नागपुर राज्य और ब्रिटिश-सरकार के बीच सधि की अवस्था का अन्त होगया और स्वय नागपुर छोड कर जाने के लिए उद्यत हो गया। इस प्रकार के कठोर शब्द एलफिन्स्टन ने भरे दरबार में रघुजी के सामने ही दोहराये।

रघुजी इन धमकियो से इतना भयभीत हुआ कि उसने अग्रेज रेजीडेन्ट की सभी शर्तें स्वीकार कर ली और बडी कठिनाई से वह एलफिन्स्टन को अपनी शान्तिप्रियता का विश्वास दिला सका। इसी बीच में होल्कर की लडाई का अन्त हो चुका था। अग्रेज विजयी हुए और लार्ड वेलेजली के स्थान पर नरमनीति का पालन करने वाला लार्ड कार्नवालिस गवनर-जनरल होकर आया। कार्नवालिस ने रघुजी के प्रति मैत्री की नीति चलाई और उसके कार्यो में हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया।

अग्रेज बहुत पहिले से नागपुर राज्य को सहायक सधि प्रथा का शिकार बनाना चाहते थे, परन्तु उनकी यह चाल सफल न हो सकी, क्योंकि रघुजी द्वितीय को सहायक सधि से बडा भय था। बात भी ठीक ही थी, क्योंकि सहायक सधि की शृखलाओ से जकडा हुआ राज्य अग्रेज शासन का दासानुदास होकर ही रहता था। उसकी स्वतत्रता विलीन हो जाती थी। उसकी भूमि पर अग्रेज अफसरो के अधिकार में एक बडी सेना रखी जाती थी, जिसका व्यय उस राजा को देना पडता था। इसके अलावा सधि करने वाला राज्य सर्वदा के लिये अपनी स्वतत्रता खो बैठता था और यदि वह सधि की शर्तों का अन्त करना चाहता तो अग्रेजी सेना उसे गद्दी से उतार कर किसी दूसरे व्यक्ति को बात की बात में राजा बना सकती थी। ऐसी स्थिति में सहायक-सधि के विनाशकारी परिणामो से बचना रघुजी अपना परम कर्तव्य समझता था।

पिडारियों का भय रघुजी को सदा ही वना रहता था। उनका सामना करने के लिए एक वड़ी सेना की ग्रावश्यकता थी। परन्तु धनाभाव के कारण रघुजी ग्रपनी सेना का संगठन नही कर सकता था। इस परिस्थिति का लाभ उठा कर ग्रग्रेज रेजीडेन्ट राजा के समक्ष सहायक सन्धि के गुणो का उल्लेख किया करता था ग्रौर इस प्रथा के लाभो की ग्रोर रघुजी का ध्यान ग्राकर्षित करने मे कभी नही चूकता था। रेजीडेन्ट को ग्रपने उद्देश्य को सफल वनाने मे ग्रौर भी सुविधाये थीं। स्मरणीय है कि राजा के तीन प्रमुख मन्त्री ग्रंग्रेज़ी शासन के पेशनयाफ्ता ग्रनुचर थे। ये मंत्रिगण समय-समय पर सहायक-सन्धि प्रथा के गुणगान किया करते थे। इन मंत्रियों का कहना था कि पिडारियों तथा ग्रन्य ग्राक्रमणकारियो का ग्रंग्रेज़ सरकार की सहायता के विना सामना करना नागपुर राजा के लिये ग्रसम्भव वात थी। रघुजी को पेशवा से सहायता की ग्राशा थी। दूसरे मराठा सरदारो से भी वह सहायता की ग्राशा रखता था। वास्तविकता यह थी कि भोसला राजा ग्रपना राज्य किसी तरह भी सहायकसधि प्रथा के ग्रन्तर्गत नही लाना चाहता था, वल्कि निजाम के सदृश शासकों से उसे घृणा थी, जो सहायक-सन्धि स्वीकार कर के ग्रपनी स्वतत्रता खो वैठे थे। ऐसे विचारों वाले शासक से सहायक-संधि स्वीकार करने की सिफारिश करने का परिणाम स्पष्ट ही था। श्रीधर पंडित तथा रघुजी मे मनमुटाव हो गया ग्रौर धीरे-धीरे श्रीधर पडित राजा की दृष्टि मे गिरने लगा। जसवन्तराव का भी यही हाल हुग्रा। स्थिति यहां तक बिगड़ गई कि सहायक संधि के विषय की वात भी राजा सुनने के लिये तैयार नही था, परन्तु ग्रपना नमक ग्रदा करने के लिये श्रीधर पडित तथा जसवन्तराव रघुजी के समक्ष सहायक संधि प्रथा की पैरवी करते ही रहे। उन्हे तो रेजीडेन्ट के ग्रादेशो का पालन करना था। इसका परिणाम यह हुग्रा कि रघुजी ने श्रीधर पंडित से राज्य कार्यो पर परामर्श करना वन्द कर दिया ग्रौर कुछ काल वाद वह तीर्थ यात्रा के वहाने काशी चला गया, कुछ वर्षो वाद उसकी मृत्यु हो गई। ग्रंग्रेजो के दूसरे कारगुजार मंत्री जसवन्तराव को भी रघुजी ने पदच्युत कर दिया ग्रौर ऐसा कर के ग्रंग्रेज-सरकार के विरुद्ध ग्रपने तीव्र असन्तोष का परिचय दिया। रघुजी कहा करता था कि "उसे सहायक-संधि की कोई ग्रावश्यकता नही है।" इस प्रथा की पैरवी करने वालो से वह पूछा करता था कि—क्या इस संधि के द्वारा कटक ग्रौर वरार उसे वापिस मिल जायेगे? जव ग्रराजकता तथा पिंडारियो का उसे भय दिखाया जाता था तो वह कह देता कि यदि वह राजकार्य न चला सका तो पदत्याग कर कलकत्ते चला जायगा ग्रौर गवर्नर-जनरल के संरक्षण में ग्रपने ग्रंतिम दिन व्यतीत करेगा। रघुजी की यह प्रवृत्ति देख कर रेजीडेन्ट ने गवर्नर-जनरल को सूचित कर दिया कि वर्तमान शासक के जीवन में नागपुर-राज्य में ग्रंग्रेज़ी प्रभुत्व क़ायम होना वहुत कठिन वात है। नागपुर में ग्रसफल होने के पश्चात् ग्रंग्रेज़ी सरकार ने भोपाल के नवाव से सहायक संधि कर ली। नवाव, भोंसला-नरेश से भयभीत था ग्रौर इस परिस्थिति का लाभ उठा कर उसके संरक्षण के लिए एक ग्रग्रेजी सेना भोपाल में ग्रवस्थित की गई। रघुजी को इस कार्य से बड़ा क्षोभ हुग्रा, क्योंकि वह स्वयं भोपाल पर ग्राधिपत्य जमाने के लिए तैयारी कर रहा था।

सन् १८१६ मे रघुजी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के वाद उसका एकमात्र पुत्र परसोजी गद्दी पर वैठा। परसोजी में शारीरिक तथा मानसिक दुर्वलता के चिह्न स्पष्ट थे। ग्रपने पिता के राज्य-काल मे उसने शासन-कार्यो में विल्कुल हाथ नही वटाया था। इस ग्रोर उसकी तनिक भी रुचि न थी। परसोजी के ग्रतिरिक्त भोंसला राजवंश में रघुजी के छोटे भाई व्यंकोजी का पुत्र ग्रप्पा साहव हर प्रकार योग्य तथा महत्त्वाकांक्षी था। रघुजी तथा व्यंकोजी मे हमेशा सघर्प रहा करता था ग्रौर ग्रत मे व्यंकोजी नागपुर छोड़ कर वनारस मे रहने लगा था। वही उसकी मृत्यु भी हुई। उसकी मृत्यु के वाद रघुजी ने ग्रप्पा साहव के साथ ग्रच्छा व्यवहार नही किया था, परन्तु ग्रपनी मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व रघुजी ने ग्रप्पा साहव से प्रार्थना की कि वह पुरानी वाते भूल कर भोंसला राजवंश की प्रतिष्ठा का ध्यान रखे। यह स्पष्ट था कि ग्रप्पा साहव के विना भोसला-राज्य का शासन-कार्य नहीं चल सकता था।

ग्रप्पा साहव स्वयं वदलती हुई परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिये तैयारी कर रहा था। परसोजी की ग्रसमर्थता के कारण शासन-कार्य चलाने के लिए राजा के एक निकट सम्वन्धी या संरक्षक के पद पर नियुक्त होना ग्रनिवार्य वात थी। भोसला सरदारों में ग्रप्पा साहव के प्रति वैमनस्य तथा विरोध की भावना थी ग्रौर वे—रघुजी के

भाजे गुजावा गूदर को राज्य का सरक्षक बनाना चाहते थे। जब अप्पा साहब को ये बातें मालूम हुई तब उसने रेजीडेन्ट से गुप्त वार्ता आरंभ की। रेजीडेन्ट तो यह चाहता ही था। अप्पा साहब ने एक सेना सगठित की और बहुत से सरदारो को ऊचे पदो का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। अनुकूल परिस्थिति देख कर उसने राजा परसोजी को अपने सरक्षण में ले लिया और मन्त्रियो के समक्ष तथा दरबार में घोषणा कर दी कि अप्पा साहब परसोजी की ओर से शासन के सब काय करेगा। इस प्रकार अप्पा साहब को पहिली विजय मिली। इतना होने पर भी उसे भोसला सरदारो के विरोध का भय बना ही रहा, इसलिए अपनी स्थिति को पूर्णतया दृढ करने के लिये उसने रेजीडेन्ट से सहायक सधि के विषय पर गुप्त परामश आरभ किया। इस काय में नागो पडित तथा नारायण पडित उसके प्रतिनिधि के रूप में जेन्किन्स से मिले। अप्पा साहब यह भली भाति जानता था कि भोसला-दरबार तथा उसके मत्री सहायक-सधि के विरुद्ध थे। इस कारण सधि-वार्ता गुप्त रखी गयी और २७ मई १८१६ को नागो पडित के स्थान पर अप्पा साहब तथा अग्रेज सरकार के बीच सहायक-सधि हो गई। इस सधि का समाचार लोगो को कुछ काल के बाद ज्ञात हुआ क्योकि अप्पा साहब का भय था कि इस घृणित काय की सूचना मिलते ही नागपुर राज्य की प्रजा उसके विरुद्ध हो जायगी और उसकी स्थिति खतरे में पड जायगी। अप्पा साहब ने रेजीडेन्ट से प्रार्थना की कि वह सधि की शर्तो के अनुसार, नागपुर के लिये निश्चित अग्रेजी सेना फौरन बुलवा भेजे। सेना के पहुँचने पर अप्पा साहब का भय कम हुआ और सहायक-सधि का समाचार प्रकाशित किया गया। परिणाम वही हुआ, जिसका अप्पा साहब को भय था। चारो ओर से अप्पा साहब का विरोध होने लगा। महल की रानिया उसे कोसने लगी, भोसला-सरदार खुले तौर पर उसका पक्ष छोडने लगे और विरोध के बढते हुए प्रवाह से वह इतना सशक हुआ कि राजमहल छोड कर अग्रेजी फौजो की छावनी के निकट एक उद्यान में उसने अपना डेरा डाला। सधि हो जाने पर अग्रेज सरकार ने नागो पडित तथा नारायण पडित के लिये क्रमश २५ हजार तथा १५ हजार रुपयो की वार्षिक पेन्शन निश्चित की। इस प्रकार नागपुर राज्य की स्वतन्त्रता का अन्त हुआ, क्योकि सहायक सधि की शर्तो के अनुसार राज्य की वैदेशिक नीति अग्रेजो के अधीन हो गई और आन्तरिक मामलो में भी हस्तक्षेप का उन्हें अधिकार हो गया। इस प्रकार अग्रेजी सेना की सहायता से अप्पा साहब ने भोसला सरदारो के बधन से अपने को मुक्त किया। कुछ महीनो बाद अचानक परसोजी की मृत्यु हो गई। उस समय अप्पा साहब चादा जिले में था, परन्तु मृत्यु का समाचार पाकर भी वह तुरन्त नागपुर नही लौटा। साधारणत परसोजी की मृत्यु के लिए अप्पा साहब को दोषी ठहराया जाता है और कहा जाता है कि उस निस्सहाय राजा को पहिले विष देने का प्रयत्न हुआ, परन्तु सफलता न मिलने पर गला घोट कर उसका अन्त किया गया।

परसोजी के पश्चात् अप्पा साहब भोसला राज्य का एकमात्र उत्तराधिकारी था और मुधोजी भोसला के नाम से वह गद्दी पर बैठा। राजा होने के साथ ही अप्पा साहब ने अपना रग बदला। सहायक सधि की शर्तें उसे कठोर प्रतीत होने लगी। भोसला सरदारो के प्रभाव से अपने को मुक्त करने के लिए उसने सहायक सधि की थी। अब उसे अग्रेजो के मित्रता की आवश्यकता नही थी। हम जानते है कि अग्रेजो का विरोध करना तथा उनकी बढती हुई शक्ति में अवरोध लगाना नागपुर के शासको की परम्परागत नीति थी। क्षणिक काम के लिए अप्पा साहब ने अग्रेजो से मित्रता की थी, परन्तु अब वह अग्रेजी सम्बन्ध को तोडना चाहता था।

अप्पा साहब ने भोसलो की परम्परागत नीति के अनुसार मराठा राज्यो का अग्रेजी शासन के विरुद्ध सगठित करना आरम्भ किया। उसने नये मत्री नियुक्त किये और ऐसे व्यक्ति जो ब्रिटिश शासन के अनुकूल थे, अपने पदो से अलग कर दिये गये। नारायण पडित पदच्युत कर दिया गया तथा रेजीडेन्ट से परामर्श के लिए रामचन्द्र वाघ नामक एक नया मत्री नियुक्त हुआ। नारायण पडित अग्रेजो का पेन्शनयाफ्ता कृपापात्र था। रेजीडेन्ट ने रामचन्द्र वाघ से परामश करना स्वीकार न किया। साथ ही साथ अप्पा साहब ने होल्कर, सिंधिया तथा पेशवा से बातचीत जारी रखी, जिसका उद्देश्य मराठा साम्राज्य को एक बार फिर सगठित कर के अग्रेजों से लोहा लेना था। इस समय पेशवा तथा अग्रेज सरकार में अनबन हो गई थी, परन्तु अप्पा साहब ने इस पर ध्यान न देते हुए नागपुर में स्थित पेशवा के प्रतिनिधि से गुप्त

परामर्श का क्रम वनाये रखा। अप्पा साहव का यह कार्य सहायक संधि की शर्तो के विरुद्ध था। रेजीडेंट ये वाते सतर्कता से देख रहा था। इस समय जेन्किन्स तथा गवर्नर-जनरल के वीच जो पत्र-व्यवहार हुआ, उससे हमे स्पष्ट ज्ञात होता है कि रेजीडेंट को अप्पासाहव के कार्यो की पूर्ण जानकारी थी।

गवर्नर-जनरल ने अप्पा साहव को एक कड़ा पत्र लिख कर स्मरण दिलाया कि उसकी कार्यवाही सहायक संधि की शर्तो के प्रतिकूल है। रेजीडेंट ने अंग्रेज़ सरकार की ओर से यह मांग की कि होशंगावाद का किला उसके हवाले किया जाय और संधि के अनुसार अप्पा साहव एक हजार सिपाहियो की संगठित सेना रखे। इस समय तक वाजीराव पेशवा तथा अंग्रेज सरकार मे विग्रह के लक्षण और स्पष्ट हो गये थे। निस्सहाय पेशवा पर अंग्रेजो ने एक अत्यत कठोर तथा निन्दाजनक सन्धि लाद कर उसकी रही-सही शक्ति का अन्त कर दिया। इस प्रकार पेशवा मे तीव्र असन्तोष की भावना जागृत हुई और उसने वदला लेने के लिए अंग्रेज़ी रेजीडेन्ट पर हमला वोल दिया। पूना मे अवस्थित रेजीडेन्ट एलफिन्स्टन ने पेशवा की फ़ौजों को पराजित कर दिया और पेशवा अपने देश से निर्वासित वची खुची सेना लेकर इधर-उधर भटकने लगा। जव अप्पा साहव को पेशवा की पराजय का समाचार मिला और उस दिशा से उसे सहायता की कोई आशा नहीं रही तव उसने दिखावे के लिए अपनी नीति एकदम वदल दी। उसने अंग्रेजो के विश्वस्त नारायण पडित को उसके पूर्व पद पर फिर नियुक्त कर दिया। संधि द्वारा मनोनीत उपयुक्त सेना भी उसने सगठित की और उसके निरीक्षण के लिए अंग्रेज़ अफ़सर भी नियुक्त किये। इतना ही नही, वल्कि उसने पेशवा के कार्यो की निन्दा भी की, पर फिर भी उसने अपनी फ़ौज़ी तैयारियां जारी रखी।

२४ नवम्वर सन् १८१७ की रात्रि के समय अप्पा साहव ने रेजीडेंट जेन्किन्स को दरवार मे उपस्थित होने के लिये आमन्त्रित किया। यह समय पेशवा द्वारा भेजी हुई "खिलअत" को स्वीकार करने के लिए निश्चित किया गया था। रेजीडेन्ट ने अप्पा साहव के इस कार्य का विरोध किया और उसे स्मरण दिलाया कि अग्रेज सरकार के शत्रुओ से किसी प्रकार का सम्वन्ध रखना संधि की शर्तो के प्रतिकूल था। अप्पा साहव ने रेजीडेन्ट की वातो पर विलकुल ध्यान नही दिया और जेन्किन्स की अनुपस्थिति मे यह कार्य सम्पन्न हुआ। मराठा फ़ौजे रेजीडेन्ट के पास स्थित थी और २६–२७ नवम्वर को अप्पा साहव ने रेजीडेंसी पर आक्रमण का हुक्म दिया। इस युद्ध मे अप्पा साहव पराजित हुआ और रेजीडेन्ट ने उस पर नई तथा कठोर शर्ते लादी। अव अप्पासाहव ने अपनी सेना विघटित कर दी, उसकी तोपो पर अंग्रेज–सरकार का अधिकार हो गया तथा स्वयं उसने राजमहल छोडकर रेजीडेन्सी मे जाकर शरण ली।

कुछ दिनो वाद अप्पा साहव मुक्त कर दिया गया परन्तु एक नई सधि के अनुसार—नर्मदा नदी के उत्तर तथा दक्षिण के प्रान्त—गाविलगढ़, सरगुजा तथा जशपुर नामक जिले उसे अंग्रेजो को देने पड़े। उसने यह भी शर्त की कि रेजीडेन्सी के विश्वासपात्र मंत्रियो की सलाह से वह शासन करेगा। इस प्रकार अप्पा साहव अंग्रेजों का पिट्ठू होगया। नाम के लिये तो वह राजा था परन्तु वास्तविक रूप से नागपुर पर अंग्रेजी शासन स्थापित होगया। इसी समय अप्पासाहव ने नागपुर छोड़कर भागने की योजना वनाई परन्तु यह वात अंग्रेजो को मालूम हो गई। तव रेजीडेन्ट ने उसे गिरफ्तार कर लिया और गवर्नर जनरल ने उसे पदच्युत करने की घोषणा कर दी। वन्दी के रूप मे अग्रेजी सेना की एक छोटी सी टुकड़ी के साथ अप्पा साहव इलाहावाद के लिए रवाना हुआ। इलाहावाद का प्रसिद्ध किला उसकी कैद के लिए निश्चित किया गया था लेकिन जवलपुर के पास पहुंचने पर पहरेदारो की आख बचाकर और एक साधारण सैनिक के वस्त्र धारण करके अप्पा साहव भाग निकला। अंग्रेजों ने उसे पकड़ने के लिए वडी-वड़ी रकमों का पुरस्कार घोषित किया परन्तु उनके प्रयत्न असफल रहे और महादेव की पर्वत-मालाओ, असीरगढ तथा लाहौर मे भटकते हुए सन् १८४० मे जोधपुर मे उसकी मृत्यु हुई।

अंग्रेजो के सामने अव एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ। नागपुर का राजा किसे वनाया जाय? परसोजी मृत्यु के समय पुत्रहीन था। ऐसी स्थिति मे द्वितीय रघुजी के नाती वाजीराव को परसोजी की विधवारानी ने दत्तक पुत्र वनाया और रघुजी तृतीय के नाम से वह राजा वना। नये राजा के अल्पायु होने के कारण नागपुर राज्य का शासन

अंग्रेज रेजीडेन्ट के निरीक्षण में होने लगा। रेजीडेन्ट ने प्रत्येक जिले में अपने मनोनीत अंग्रेज अफसर नियुक्त किये। प्रसिद्ध रानी बाकाबाई को अल्पायु राजा के लालन-पालन तथा शिक्षा का प्रबन्ध सौंपा गया। द्वितीय रघुजी का भानजा गुजाबा गुजर बनारस से वापिस बुलाया गया और शासन के कार्यों में उसे भी सम्मिलित किया गया। अंग्रेज अफसरों ने सन् १८१८ से शासन आरंभ किया और लोग यह समझने लगे कि यही शासन का स्थायी रूप है और शायद ही अब भोंसला शासन की पुनर्स्थापना हो। बात भी ठीक थी, जेंकिन्स तथा उसके उत्तराधिकारी रेजीडेंटों ने राजा को शासन कार्य सौंपने का भरसक विरोध किया परन्तु गवर्नर जनरल के आदेशों के सामने वे निस्सहाय थे। सन् १८२६ में नागपुर का जिला रघुजी तृतीय के शासन में आगया परन्तु भोंसला राज्य का एक बड़ा भाग अभी अंग्रेजों के ही शासन में था। गवर्नर जनरल ने राजा को शेष भाग देने के लिए रेजीडेन्ट से पत्र-व्यवहार आरंभ किया परन्तु उस समय के रेजीडेंट वाइल्डर ने इसका विरोध किया। उसने कहा कि राजा में अभी इतनी योग्यता नहीं आई है कि वह स्वयं इतने विस्तृत राज्य का शासन-कार्य चला सके परन्तु गवर्नर जनरल ने उसकी एक न सुनी और आदेश दिया कि नागपुर राज्य तथा ब्रिटिश सरकार के नये संबंधों को निश्चित तथा स्पष्ट करने के लिये एक संधि का प्रारूप प्रस्तुत किया जाय।

परिणामस्वरूप सन् १८२९ की संधि हुई जिसके अनुसार रघुजी तृतीय को उसके राज्य का शेषभाग अर्थात् चांदा, छिंदवाड़ा, छत्तीसगढ़ तथा भंडारा के जिले लौटा दिये गये, सेना पर उसका पूर्ण अधिकार होगया परन्तु ७॥ लाख की रकम उसे प्रतिवर्ष अंग्रेज-सरकार ने देने के लिये बाध्य किया। अंग्रेज सरकार की यह मांग सर्वथा अन्यायपूर्ण थी। १८२६ की संधि के अनुसार यह निश्चय हुआ था कि अंग्रेजों के अधिकृत नागपुर की सेना का खर्च राज्यकोष से लिया जायगा परन्तु सन् १८३० की संधि के अनुसार इस सेना का अंत कर दिया गया था और एक हजार सैनिकों की एक सुसज्जित सेना रघुजी ने संगठित करने का वादा किया था। रही सहायक-सेना की बात जो सहायक संधि की शर्तों के अनुसार नागपुर में रहनी थी, उसके व्यय के लिए सन् १८१८ की अस्थायी संधि के अनुसार अप्पा साहब अपने राज्य का एक बहुत बड़ा भाग देने पर बाध्य किया गया था। अब प्रश्न उठता है कि ७॥ लाख की बड़ी रकम का भार रघुजी पर क्यों लादा गया? इस विषय पर अंग्रेज सरकार तथा राजा में शीघ्र ही विवाद उत्पन्न हुआ और धीरे-धीरे दोनों में वैमनस्य की भावना दृढ़ होने लगी। इस विवाद के बीच रेजीडेन्ट ने राजा को स्मरण दिलाया कि उसने स्वेच्छा से यह रकम देना स्वीकार किया था। इसके उत्तर में राजा ने कहा कि यह शर्त उसने जबरन स्वीकार की थी क्योंकि उसे भय था कि उसके बिना अंग्रेज उसका राज्य कभी न लौटायेंगे। रघुजी की यह आशंका निर्मूल नहीं थी क्योंकि इसकी पुष्टि अंग्रेज रेजीडेन्ट तथा कलकत्ते की सरकार के तत्कालीन पत्र-व्यवहार से होती है। हमें स्मरण होना चाहिये कि सन् १८२६ की संधि से पूर्व जेंकिन्स ने राजा को शासन अधिकार स्थानान्तरित करने के विरुद्ध कितनी ही दलीलें दी थीं। यही बात सन् १८२८ की सन्धि के पूर्व रेजीडेन्ट वाइल्डर के समय हुई। तत्कालीन इतिहासकार प्रिन्सेस के पृष्ठों में भी हमें यही दलीलें मिलती हैं। स्पष्ट बात यह है कि नागपुर राज्य पर इतने दिनों बाद पूर्ण अधिकार प्राप्त करने पर जो सुविधाएँ अंग्रेज सरकार को मिली थीं, उन्हें वे किसी प्रकार खोना नहीं चाहते थे अस्तु, अन्त में उन्हें भी भोंसला शासन स्थापित करना पड़ा परन्तु उसके चारों ओर उन्होंने इतने बंधन रखे जिससे रघुजी का शासन सफल न हो पाये। शक्ति, अन्तिम रूप में, अंग्रेजों के हाथों में न भी हो, वे किसी भी बहाने से शासन में हस्तक्षेप कर सकते थे और रेजीडेंट ने राज्य में दौरा कर के, मराठा सरदारों से निकट सम्बन्ध स्थापित कर यहां तक कि अंग्रेज अफसरों ने रेजीडेंट काल के शासन की याद दिलाकर जनता को रघुजी के नये शासन के विरुद्ध उकसाने में कोई बात उठा नहीं रखी।

रघुजी को ये बातें बहुत बुरी लगीं और धीरे-धीरे उसने रेजीडेंट से बातचीत भी बन्द कर दी और यह आदेश निकाला कि कोई मंत्री या मराठा-सरदार उसकी अनुमति के बिना रेजीडेंट से मुलाकात न करे। रेजीडेन्ट ने यहां-वहां के साधारण व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया और उनके द्वारा शासन कार्यों की सूचना प्राप्त करने लगा। रेजीडेन्ट ने शासन के दोषों की ओर राजा का ध्यान आकर्षित करना आरंभ कर दिया और राजा द्वारा नियुक्त

अधिकारियों की शिकायत करने लगा। जब रघुजी ने उसकी बात न सुनी तो उसने गवर्नर जनरल के पास शिकायतें लिखनी आरंभ की। अंग्रेजों के अंतिम उद्देश्य का पता इसी से चलता है कि राजा की मृत्यु के वर्षों पूर्व रेजीडेन्टो ने गवर्नर जनरल को परामर्श दिया था कि उसकी मृत्यु के बाद भोंसला राजवंश को दत्तक पुत्र लेने की अनुमति कदापि न दी जाय।

गवर्नर जनरल के कितने ही कड़े पत्रों के पश्चात् रघुजी ने रेजीडेन्ट के परामर्श के अनुकूल शासन चलाना स्वीकार किया। इतने पर भी दोनो मे विवाद चलता रहा और उनमे विश्वास तथा सद्भावना का कभी पूर्णतया संचार नही हुआ।

रघुजी ने शासन काल पर टिप्पणी करते हुए हमे कुछ बातो पर ध्यान देना आवश्यक है। जब वह गद्दी पर बैठा, उसकी आयु लगभग १० वर्षो की थी और सन् १८५४ के अन्त मे मृत्यु के समय वह ४६ वर्ष का था। सन् १८२६ तक अल्पायु होने के कारण शासन का कार्य अंग्रेजी रेजीडेन्ट के आदेशानुसार अंग्रेज अफसरों ने चलाया। उस वर्ष केवल नागपुर के जिले पर उसे शासन करने का अधिकार दिया गया। इसके पश्चात् बड़ी कठिनाई के साथ सन १८३० मे राज्य के शेष भाग पर उसका शासन हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १८३० से १८५३ अर्थात् केवल २३ वर्षो तक उसने स्वयं शासन किया परन्तु इस काल मे भी अंग्रेजी सरकार के रेजीडेन्ट के मतानुसार ही उसे शासन करना पड़ा। स्वतंत्रतापूर्वक वह शासन कर ही नही सका। सहायक सधि की शर्तो से जकडा हुआ तथा अंग्रेजी सेना के प्रभुत्व से आतंकित रघुजी शासन कार्यो के प्रति उदासीन होने लगा। इसके अतिरिक्त उसने बहुत से दुर्गुण भी सीख लिये। मद्यपान, जुआ, भोगविलास इत्यादि दुर्व्यसनो मे उसका समय व्यतीत होने लगा। कितने ही दिनो तक लगातार वह रनिवास मे ही रहकर छोटे-मोटे मनोविनोद के कार्यो में लिप्त रहने लगा। दरबार, न्यायालय तथा अन्य सार्वजनिक कार्यो से उसकी अभिरुचि हटती गई। सन् १८५३ के अन्त मे वह रुग्ण हुआ और ११ दिसंबर को उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने भोसला राज्य को दत्तकपुत्र लेने की स्वीकृति नही दी और नागपुर का राज्य मार्च १८५४ मे अंग्रेजी राज्य मे मिला लिया गया।

अंग्रेजी राज्य में मिलाने के बाद नागपुर का कोष अंग्रेजों ने जी भरकर लूटा, रानियो के बहुमूल्य हीरे-जवाहरात तथा वस्त्राभूषण सस्ते दामों पर नीलाम किये गये। इससे नागपुर निवासियो को ही नही, सम्पूर्ण देश को बड़ा दुःख हुआ परन्तु अग्रेजों के आतंक से किसीने उफ् भी नहीं की। रानियों तथा राजा के अन्य सम्बन्धियो को पेन्शन दे दी गई और उनका शासन से कोई सम्बन्ध नही रह गया।

देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति
और
राष्ट्रीय आन्दोलन में मध्यप्रदेश का योग

मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय जागृति—सन् १८५७ में भारतीय सैनिकों द्वारा किया गया विद्रोह यद्यपि भारतीय स्वतन्त्रता के लिये किया जानेवाला हमारा प्रथम महाप्रयास था, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इसके पूर्व भारतीय अंग्रेजी शासन से पूर्ण संतुष्ट थे। हमारे देश में अंग्रेजो का शासन ही छल-कपट की नीति से आरम्भ हुआ, अतः ऐसे शासन से आरम्भ से ही भारतीयों को घृणा होना स्वाभाविक था। यही कारण है कि अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीयों द्वारा उसे उखाड फेंकने के प्रयत्न भी आरम्भ हो गये। आप्पाजी भोंसले प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह का श्रीगणेश किया। सन् १८१८ के सीताबर्डी युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने नागपुर के तत्कालीन शासक आप्पाजी भोंसले को हमारे प्रदेश के मंडला, बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी और नर्मदा के दक्षिण का भाग छोड देने को विवश किया और सन् १८२० से यह पूरा भाग "सागर-नर्मदा प्रदेश" के नाम से गवर्नर जनरल के एजेंट-द्वारा शासित होने लगा। सन् १८३१ में उत्तर-पश्चिम प्रदेश का निर्माण किया गया और "सागर-नर्मदा" प्रदेश उसका एक भाग हो गया।

आप्पासाहब का विद्रोह—आप्पासाहब ने अपने को तथा अपने राज्य को अंग्रेजो के हाथ में सौंप दिया। उनका स्वाभिमान यह सहन न कर सका। उन्होंने बाजीराव पेशवा को आमन्त्रित किया। वे सैनिकों की एक टुकडी के साथ चांदा से १० मील की दूरी पर स्थित ऊरा नामक ग्राम के समीप आये। आप्पासाहब के संकेत पर चांदा जिले की अहेरी और पारपल्ली जमींदारी के जमींदारों ने भी विद्रोह कर दिया, किन्तु नागपुर से एक अंग्रेजी सेना ने लेफ्टिनेंट हॉपटन स्काट की संरक्षकता में चांदा जाकर उन्हें पराजित कर दिया। नागपुर के अंग्रेज रेजीडेन्ट ने आप्पासाहब से शासनाधिकार छिन लिये और उनके स्थान में रघोजी तृतीय को सिंहासनारूढ कर दिया और स्वयं रेजीडेंट की एक सलाहकार समिति बनाकर उनकी ओर से शासन करने लगे। आप्पासाहब गिरफ्तार कर दिये गये, किन्तु वे किसी तरह सैनिकों के पहरे से भाग निकले और अपने घोडे से अंग-रक्षकों के साथ छिंदवाडा जिले की ओर चले गये।

इसके पश्चात नागपुर से अरबी सैनिकों का एक दल आप्पासाहब की सहायता के लिये उत्तर की ओर गया। यह समाचार पाते ही अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा किया और मार्ग में मुलताई के समीप दोनों दलों में घोर युद्ध हुआ, जिसमें अरबी सैनिकों के अतिरिक्त अनेक अंग्रेजी सैनिक और अधिकारी भी मारे गये।

सन् १८३३ में रायगढ-नरेश जुझारसिंह के पुत्र देवनाथसिंह ने अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह किया, पर वे सफल न हो सके।

बुंदेल विद्रोह—मार्च १८४२ में उत्तर मध्यप्रदेश में चन्द्रपुर (सागर) के जमींदार जवाहरसिंह और नरहुत के जमींदार मधुकरशाह के नेतृत्व में बुन्देलों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसी समय नरसिंहपुर के एक गोंड जमींदार डिल्लनशाह ने भी विद्रोह किया। इस विद्रोह से सागर से निमाड तक का भाग प्रभावित था। विद्रोहियों से मुठभेड करते हुए पुलिस और सेना के अनेक सिपाही मारे गये और खिमलासा, खुरई, धामोनी तथा बिनेकी ग्राम लूटे गये। मधुकरशाह पकड़ा गया और उसे फांसी दे दी गई। आज भी सागर के गोपालगंज में उसकी स्मृति में बना एक चबूतरा देखा जा सकता है। अंग्रेजो ने यह विद्रोह दबा दिया, पर वे जनता के हृदय की भावना को न दबा सके। असंतोष की आग धीरे धीरे जलती रही और सन् १८५७ में अचानक भडक उठी।

सन्' ५७ की राज्यक्रान्ति। यद्यपि सन्' ५७ की राज्यक्रान्ति मई के तृतीय सप्ताह मे मेरठ के सैनिकों के विद्रोह से आरम्भ हुई, तथापि ऐसा जान पड़ता है कि हमारे प्रान्त मे इस क्रान्ति की तैयारी जनवरी मास से ही आरम्भ हो गई थी। जनवरी १८५७ के प्रथम सप्ताह में नरसिहपुर जिले के कुछ ग्रामों से छोटी-छोटी चपातियां वांटी गई। वे चपातियां कहां से आई और किसने वाटी किसी को पता न था। नरसिहपुर के कमाडिग आफिसर पी. सी. टर्नन को इस पर सन्देह हुआ और उन्होने यह सूचना जवलपुर के कमांडिग आफिसर मेजर ईस्किन को दी, किन्तु उन्होंने इस पर ध्यान न दिया। कहा जाता है कि इस चपाती वंटवाने की व्यवस्था में विद्रोह होने का संकेत था। मेरठ और उसके पश्चात् झासी में विद्रोह होने की सूचना पाते ही सागर के कमाडिग आफिसर केप्टिन सेग सशकित हो गये और उन्होंने मेजर गॉसन के नेतृत्व में एक सेना ललितपुर की ओर भेजी। उन्होने इस सेना के सागर से ३७ मील उत्तर की ओर जाने पर ललितपुर में विद्रोह होने और वानपुर के राजा-द्वारा विद्रोह करने का समाचार सुना। उन्होने सागर से एक सहायक सेना मंगवाई और वालाकोट किले की ओर प्रस्थान किया। उन दिनों यह किला पूर्णतः विद्रोहियों के अधिकार मे था। विद्रोहियों ने इस किले के सैनिकों को प्राण-रक्षा का आश्वासन दिया और वे अपनी युद्ध-सामग्री सहित वानपुर-राजा की विद्रोहिणी सेना से मिल गये।

सागर में सैनिक-विद्रोह। केप्टिन सेग कुछ सैनिकों को लेकर मेजर गॉसन की सहायता को ३० जून को रवाना हुए। दूसरे ही दिन सवेरे तृतीय इर्रेगुलर फोर्स और ४२ वी पैदल सेना (इन्फेंटरी) के सैनिको ने विद्रोह कर दिया। उन्होने वाजार और सरकारी अधिकारियों के वंगले लूट लिये। १ जुलाई को तृतीय पैदल सेना व घुड़सवार (इन्फेंटरी इर्रेगुलर केव्हलरी) के सिपाहियों तथा भारतीय सैनिक-अधिकारियों और ५० सवारों ने भी विद्रोह कर दिया। इसी समय शेख रमजान नामक एक सूवेदार ने ४२ वी देसी पैदल सेना (नेटिव इन्फेंटरी) के साथ झण्डा उठाकर नगाड़ा वजाया और अन्य सैनिको का आह्वान किया। विद्रोही सैनिकों ने छावनी के प्रायः सभी अधिकारियों के वंगले लूटे और उनकी सामग्री नष्ट कर दी। इसके पश्चात् वे दमोह की सेना मे विद्रोह कराने के लिये वहां पहुचे। वहा के किले में लगभग डेढ़ लाख रुपया रखा हुआ था। विद्रोही सैनिकों को किले पर आक्रमण करते देख सव सैनिक अधिकारी वड़े चिन्तित हो गये। वे इतने भयभीत थे कि उन्होने ३१ वी नेटिव इन्फेंटरी को विद्रोहियों पर आक्रमण करने को तो कह दिया, पर उनके साथ किसी अंग्रेज अधिकारी को न भेजा।

दूसरे दिन सवेरे ३१ वी पैदल सेना (इन्फेंटरी) को किले के तोपखाने (आर्टिलरी) के सैनिको से सहायता प्राप्त होने का संदेह होते ही विद्रोहियो ने दमोह छोड़ दिया। सेग, व्हिटलाक, वाल्टेर और पिंकने के समान ख्यातिप्राप्त अंग्रेज सेनापति लगातार एक वर्ष तक विद्रोहियों का दमन करने का प्रयास करते रहे, पर वे पूर्ण सफल न हो सके। जवलपुर के डिप्टी कमिश्नर द्वारा ६ अगस्त १८५७ के दिन कमिश्नर को लिखे एक पत्र से जान पड़ता है कि उन दिनों उत्तरी मध्यप्रदेश के ये दोनो जिले पूर्णतः शाहगढ़ के विद्रोहियो और वानपुर-राजा के अधिकार मे थे और अंग्रेज अपने केन्द्र-स्थानो की रक्षा के लिये अत्यधिक चिन्तित हो गये थे। सेग ने कर्नल डलजेल के साथ १८ सितम्वर को एक वडी सेना विद्रोहियो का दमन करने को भेजी, किन्तु वे विद्रोहियोंद्वारा मारे गये और उनके सहायक लेफ्टिनेंट प्रायर वुरी तरह जख्मी होकर भाग गये।

सन् १८५८ में भी इन दोनों जिलों में अशान्ति वनी रही। इन दिनो राहतगढ का किला विद्रोहियों के अधिकार में था। २४ जनवरी को सर ह्यूरोज एक वडी सेना लेकर इस किले पर अधिकार करने को आये। २८ जनवरी को उन्हें मालूम हुआ कि एक सेना वानपुर राजा के साथ इसी ओर आ रही है। उन्होंने दूनी शक्ति से इस सेना पर गोली वरसाना आरम्भ कर दिया। विद्रोही सैनिक निरुत्साह हो गये और उन्होंने रात्रि के अंधकार में राहतगढ़ का किला छोड़ दिया। सवेरे सर ह्यूरोज की सेनाने वानपुर-राजा के सैनिकों का पीछा किया। वरोदा नामक ग्राम के समीप भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें दो अंग्रेज अधिकारी मारे गये और छः घायल हुए। अन्त में विद्रोही सिपाही पराजित होकर भाग गये। फरवरी में सागर की पैदल सेना (इन्फेंटरी) ने विद्रोह कर दिया और गढ़ाकोटा पर अधिकार कर लिया।

इसके पश्चात् सागर से झाँसी जानेवाले मार्गपर स्थित सनोदा, मरदानपुर, सरई, नरोरा आदि किले भी इन विद्रोहियो ने ले लिये। अन्त में वे मरदानपुर के समीप सर ह्यूरोज के द्वारा पराजित हुए।

दमोह की स्थिति--सागर के विद्रोहियो के लौटने पर ४ जुलाई १८५७ को दमोह की ४२ वी पैदल सेना (इन्फेंटरी) ने विद्रोह कर दिया। सरकारी अधिकारी बडी कठिनाई से सरकारी खजाने को जेल में हटाकर बचा सके। अंग्रेज अधिकारियो ने भी अपने स्त्री-बच्चो के साथ जेल में शरण ली। डिप्टी कमिश्नर अपने बगले से भाग गये। कर्नल मिलर अपनी सेना के साथ जबलपुर से दमोह पहुचे, पर वहा की स्थिति देखकर उन्होने किले के सैनिको को नि शस्त्र करना उचित न समझा। अन्त में, जबलपुर और नागपुर से विशेष (स्पेशल) सेना भेज कर विद्रोही पराजित किये गये। कुछ समय के पश्चात् हिंडोलिया के जमीदार के भाई किशोरसिंह ने अपने अनुयायियों के साथ विद्रोह कर दिया। जोरावरसिंह इन विद्रोहियो का नेता था। इन्होने दमोह के सब रिकार्ड और अधिकारियो के बगलो में आग लगा दी। एक अंग्रेज सेना ने इन्हें पराजित कर दिया, पर इसके पश्चात् छ मास तक अंग्रेज अधिकारी इन जिलो में शान्ति स्थापित न कर सके। जिले का प्रत्येक लोधी जमीदार विद्रोही था। उन्होने १३ सितम्बर को हिंडोलिया का किला ध्वस्त कर दिया। मानगढ का राजा गगाधर भी विद्रोहियो से मिल गया। उसके पकडे जाने पर बडी कठिनाई से विद्रोह शान्त किया जा सका।

जबलपुर में विद्रोह। सन् १८५७ में ५२ वी देसी पैदल सेना (नेटिव्ह इन्फेंटरी) जबलपुर सैनिक केन्द्र की सबसे बडी शक्ति थी। १६ जून को एक सैनिक ने एक अंग्रेज अधिकारी को मार डाला। उसके साथियों ने घोषणा की कि यदि उन्हें नि शस्त्र करने के लिये बाहर से सेना बुलाई गई, तो वे विद्रोह कर देंगे। यह सुनते ही अंग्रेज अधिकारियों ने अपने स्त्री-बच्चो को सिवनी और नरसिंहपुर भेज दिया। नागपुर से एक शक्तिशाली सेना बुलायी गई। २ अगस्त को कामठी से भी एक सेना वहा पहुची। इस सेना के सिपाही जबलपुर के आसपास के स्थानो में शान्ति बनाये रखने को भेज दिये गये। इसी समय गढा के गोड राजा शकरशाह, उनके पुत्र रघुनाथशाह और उनके साथियो ने विद्रोह कर दिया। पिता-पुत्र पकडकर तोप से उडा दिये गये। उसी रात को ५२ वें रेजिमेंट के सिपाही चुपचाप किले से निकलकर पाटन की ओर चले गये, जहा उनकी एक कम्पनी थी। उन्होंने इस कपनी के कप्तान माकग्रेगर से उन सैनिको को अपने साथ दिल्ली की ओर जाने के लिये छोड देने को कहा और कप्तान के ऐसा न करने पर उसे मार डाला। २१ सितम्बर को सागर से मद्रास कालम, एक घुडसवार सेना (केव्हलरी) और एक अंग्रेजी सेना इन विद्रोही सैनिको का दमन करने को भेजी गई। वाट्सन और जानकिन ने भी कुछ सेना के साथ वहा पहुचने का प्रयत्न किया, किन्तु जैसे ही वे कटगी के समीप पहुचे विद्रोहियो से घिर गये और किसी तरह अपनी जान लेकर भागे।

२१ अक्तूबर को विद्रोहियो की एक बडी सेना ने पाटन पर आक्रमण करने के लिये हिरन नदी पार की। डिप्टी कमिश्नर और तहसीलदार पुलिस सिपाहियो के साथ उन्हें रोकने आये। तहसीलदार और एक पुलिस-अधिकारी बुरी तरह जख्मी हुए और अपने प्राण लेकर भागे। विद्रोहियो ने पाटन में प्रवेश किया। सरकारी इमारतें नष्ट कर दी गई और कई घर लूट लिये गये।

अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में विजय राघोगढ के जमीदार ठाकुर सरजूप्रसाद ने विद्रोह किया। उसने तहसीलदार को मार डाला, सरकारी घोडे अपने अधिकार में कर लिये और मिर्जापुर सडक एक लम्बे समय के लिये बद कर दी। ३० अक्तूबर को नरसिंहपुर से कॅप्टिन ऊले के साथ एक सेना विजय- राघोगढ मे विद्रोहियो का दमन करने के लिये रवाना हुई। ४ नवम्बर को चतुर्थ घुडसवार सेना (केव्हलरी) की एक शाखा मेजर सुलीव्हान के साथ इस सेना को सहायता देने को निकली, किंतु इस सेना के सिपाही विद्रोहियों-द्वारा लूट लिये गये। ६ नवम्बर को विद्रोहियो ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर मुरवाडा के समीप अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। सेनापति टोटेनहम एक विद्रोही की गोली से आहत हुए और दूसरे दिन जबलपुर में मर गये। १४ नवम्बर को जबलपुर से मेजर जानकिन के साथ पुन एक सेना भेजी गई, किन्तु वह अपने सैनिको को आदेश देते समय एक विद्रोही की गोली का शिकार हो गया और उसकी सेना निराश होगई।

६ दिसम्वर की केप्टिन ऊले के साथ वरगी के विद्रोहियो का दमन करने के लिये जवलपुर से एक सेना भेजी गई। ठाकुर देवीसिह के नेतृत्व में १५ सौ विद्रोहियों ने इस सेना का सामना किया, किन्तु वे पराजित होकर भाग गये। देवीसिह पकड़ा गया और उसे फांसी दे दी गई।

नरसिंहपुर में विद्रोह—नरसिंहपुर जिले मे प्रथम विद्रोह जून १८५७ मे डिल्हरी के गोंड राजा के प्रतिनिधियों द्वारा हुआ। आगरा-वोर्ड ने राजा की उपाधि छीन ली, जिसे राजा ने अपमानजनक समझा। मई १८५७ में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र भी मर गया; किंतु गोंड जाति अपने राजा के अपमान को न भूल सकी और उसने राजा के प्रतिनिधि ठाकुर गजनसिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्हें दवाने के लिये केप्टिन ऊले के साथ २८ वी मद्रासी देसी पैदल सेना (नेटिव्ह इन्फेंटरी) भेजी गई। गंजनसिंह मारा गया और उसके अनुयायियो का दमन कर दिया गया। विद्रोहियो का दूसरा नेता दल गंजनसिंह भी पकड़ा गया और उसे फांसी दे दी गई। इसके पश्चात् सन् १८५७ के अन्त तक इस जिले में विद्रोह न हुआ।

जनवरी १८५८ में राहतगढ के ४ हजार विद्रोहियो ने भोपाल के अब्दुल मुहम्मदखां के नेतृत्व मे सिंगपुर के वलभद्रसिंह और नरवरसिह के सैनिको के साथ तेंदूखेड़ा पर आक्रमण किया। केप्टिन टर्नर ने २८ वी मद्रास नेटिव्ह इन्फेटरी तथा हैद्राबाद इन्फेटरी के साथ उनका सामना किया और उन्हें भगा दिया। कुछ समय के पश्चात् भोपाल के नवाब अलीखां ने १५० पठान, राहतगढ़ के विद्रोहियो तथा स्थानीय विद्रोहियों के साथ पुन. तेदूखेडा पर आक्रमण किया, किन्तु वे लेफ्टिनेंट वाल्टन के द्वारा पराजित कर दिये गये। इसी वीच इस जिले के मीरमानसिह नामक एक विद्रोही सरदार ने हीरापुर पर आक्रमण किया, किन्तु वह भी २८ वी मद्रासी देसी पैदल सेना (नेटिव्ह इन्फेटरी) के द्वारा पराजित हुआ।

मण्डला में। जब कि सारे देश में विद्रोह की आग जल रही थी, तव मण्डला जिला कैसे सोता रहता? उन दिनो इस जिले के अधिकांश छोटे-छोटे राजाओं और जमीदारो के दिल भी विद्रोही हो उठे थे। सन् १८४२ के वुन्देल-विद्रोह का एक सेनानी डालनशाह इन गोंड विद्रोह जमीदारो और राजाओं का सरदार था। जैसे ही उसे पकड़कर फांसी दी गई, मण्डला जिले में विद्रोह की आग फैल गई। शाहपुर और सोहागपुर के राजाओं ने अपनी सेना तथा सम्बन्धियों के साथ विद्रोह कर दिया। जवलपुर मे राजा शंकरशाह को तोप से उड़ाने पर उसकी रानी मण्डला की ओर भाग आई और यहां एक सेना संघटित कर उसने भी विद्रोह कर दिया। उसने रामगढ़ के समस्त सरकारी अधिकारियो को निकाल दिया। उसने अपने दवाने के लिये भेजी गई अंग्रेजी सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। जब उसने अपने को अंग्रेज सैनिकों से सुरक्षित न देखा, तब वह अपने पेट मे कटार मारकर मर गई, पर जीते जी शत्रु के हाथ में न पड़ी। शाहपुर के जमीदार विजयसिह विद्रोहियो से मिल गये और जबतक वे जीवित रहे, (सन् १८६५ तक) उन्होंने अंग्रेज अधिकारियो को चैन से न वैठने दिया।

होशंगावाद जिले पर विद्रोह का प्रभाव। यह जिला सन् १८५७ के विद्रोह से अधिक प्रभावित न हो सका। केवल महादेव पहाड की तराई मे वसे कुछ छोटे-छोटे राजाओ ने विद्रोह किया, पर वे तुरन्त दबा दिये गये। इस जिले के नेमावर परगने के मेवातियो ने विद्रोह किया और सिंधिया के एक पण्डित ने नेमावर आकर विद्रोहियो का नेतृत्व किया। उसने नेमावर पर अधिकार कर मराठो का झण्डा फहराया और कुछ मालगुजारी भी वसूल की। हर्दा की विद्रोही पुलिस उससे मिल गई। यह समाचार सुनकर होशंगावाद के डिप्टी कमिश्नर मि. वुड २८ वी मद्रासी देसी पैदल सेना (नेटिव्ह इन्फेटरी) के साथ ८ अक्टूवर १८५७ को रवाना हुए वे जैसे ही नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित हण्डिया नामक स्थान पर आये, उत्तरी तट से विद्रोहियो की गोलियां चलने लगी। पर वे अंग्रेजी सेना की गोलियों का मुकावला न कर सके और भाग गये। दूसरे दिन अंग्रेज सेना ने मेवाती विद्रोहियों का फिर पीछा किया। सिंधिया पण्डित पकड़ा गया और उसे फासी दे दी गई। १६ अक्टूवर को अंग्रेजी सेना ने सतवासा के विद्रोहियों पर आक्रमण किया। उनका नता लालखां और एक पुलिस जमादार पकड़ा गया और उन्हे फांसी दे दी गई।

सन् ५७ में निमाड। इन दिनो मण्डलेश्वर निमाड का केन्द्र-स्थान था। जैसे ही नसीराबाद और नीमच में विद्रोह होने की खबर मिली, मण्डलेश्वर का खजाना एक प्राचीन किले में हटा दिया गया और उसकी रक्षा के लिये एक भील सेना रख दी गई। इसके पश्चात् समाचार मिला कि औरंगाबाद में प्रथम हैदराबाद घुड़सवार सेना (केव्हलरी) ने विद्रोह कर दिया है और उसके सिपाही बुरहानपुर होते हुए उत्तर की ओर जाना चाहते है। बुरहानपुर की सेना विद्रोह के लिये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में थी। इसी समय इदौर में विद्रोहियो ने कुछ अग्रेज अधिकारियो की हत्या कर दी और बचे हुए अग्रेज अपने स्त्री-बच्चो को लेकर दक्षिण की ओर भागे। इस हत्याकाण्ड में होल्कर का हाथ होने का सदेह था। मण्डलेश्वर से ५ मील की दूरी पर महेश्वर में होल्कर की छावनी थी। इसलिये निमाड के तत्कालीन रेजीडेंट कैटिग्न ने इदौर से भागकर आये अग्रेज परिवारो को मण्डलेश्वर में न ठहरा पुनासा के किले में उनके ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। सरकारी खजाना भी उसी किले में भेज दिया गया।

१० जुलाई को वम्बई पैदल सेना (इन्फेंटरी) और हैदराबाद घुड़सवार सेना (केव्हलरी) असीरगढ आई। इसके कुछ ही समय पश्चात बुरहानपुर की सेना ने विद्रोह कर दिया और विद्रोही सिपाही असीरगढ़ की ओर बढे। भीलो की सेना और वम्बई इन्फेंटरी की सहायता से बुरहानपुर और असीरगढ की सिंधिया सेना के शस्त्र छीन लिये गये।

वैतूल पर विद्रोह की छाया। सैनिक विद्रोह के दिनों में बैतूल, मुलताई और शाहपुर में अग्रेजी सेनाए रखी गई थी। ये स्थान अग्रेज परिवारो की सुरक्षा की दृष्टि से बडे महत्वपूर्ण स्थान समझे जाते थे। जिले में इन अग्रेजी सेनाओ के अतिरिक्त गोडो तथा अन्य पहाडी जातियो की भी एक सेना थी। घने जगलो और पहाडो में बने अनेक गाव उजाड दिये गये थे, ताकि विद्रोही इन स्थानो में आकर छिप न सकें।

वैतूल के शिवदीन पटेल ने तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मि ब्राउन को आप्पा साहब का पीछा करने तथा पिंडारियों के दमन में बहुत सहायता की थी, किन्तु सन् ५७ के विद्रोह के दिनो में उनपर तथा उनके परिवारवालो पर विद्रोह का सन्देह किया गया और वे, उनके भाई रामदीन पटेल, उनके परिवार के तीन अन्य सदस्य तथा उनके दो नौकर गिरफ्तार कर ४ वर्ष से ७ वर्ष तक के लिये जेल भज दिये गये और उनकी सब जायदाद जब्त कर ली गयी। दोनो पटेल बन्धु कुछ समय के पश्चात् नागपुर जेल में ही मर गये।

दूसरे वर्ष तातिया टोपी की सेना के कुछ आदमी मुलताई और मासोद में पकडे गये और उन्हें फासी दे दी गई। ५ अक्तूबर १८५८ को मराठा सेनापति तातिया टोपी अपनी सेना के साथ मुलताई आये और मासोद, आठनेर, सावलमेढा, भसदेही होते हुए निमाड जिले में चले गये। उनके पश्चात् वादा के विद्रोही नवाब ने छिन्दवाडा के पश्चिमी तथा वैतूल जिले के पूर्वी भाग में लूटमार की। उन्ही के सैनिको द्वारा मुलताई के एक तहसीलदार, एक पुलिस-अधिकारी, कुछ तीरदाज और कुछ चपरासी मारे गये। छिंदवाडा के मैकूलाल नामक एक सरिश्तेदार को भी नवाब के सैनिको-द्वारा मुलताई में फासी दी गई।

विद्रोह में छिंदवाडा का योग। मई १८१९ में आप्पासाहब भोसले अग्रेज सैनिको के पहरे से भाग कर कुछ दिनो तक छिंदवाडा जिले के गोंड और कोरकू जमीदारो के पास रहे। यही उनकी पिंडारी नेता चीतू से भेंट हुई।

अगस्त १८५८ में हरई के जमीदार ठाकुर चैनसिह विद्रोहियो से मिल गये। नागपुर के सूबेदार मेजर ने कुछ सैनिको के साथ उनका पीछा किया, किन्तु वे उन्हें पकड न पाये। अक्तूबर १८५८ में इस जिले के अनेक ग्रामो में लाल झण्डा, नारियल-सुपारी और सुपारी के हरे पत्ते के साथ बाँटा गया। यह तातिया टोपी और नानासाहब के आदमियो का कार्य समझा जाता था, किन्तु इसका कोई परिणाम न हुआ।

नागपुर में सैनिक विद्रोह। सन् १८५७ के विद्रोह में सबसे अधिक योग यद्यपि सागर जिले का रहा, पर इस दृष्टि से नागपुर को भी कम महत्व नही दिया जा सकता। इन दिनो नागपुर के कमिश्नर मि प्लोडन के अधिकार में नागपुर में एक सुसज्जित अग्रेजी सेना तथा मद्रास तोपखाने (आर्टिलरी) की एक कम्पनी रहती थी। मद्रास तोपखाने

का दूसरा एक दस्ता कामठी मे था। जैसे ही मेरठ मे विद्रोह होने का समाचार यहां आया, स्थानीय घुड़सवार (केव्हलरी) सैनिको मे विद्रोह के भाव दिखाई देने लगे। प्लोडन ने कर्नल कम्वरलेग को १७ जून १८५७ को स्थानीय सेना को नि.शस्त्र करने की आज्ञा दे दी और सीतावर्डी किले की सैनिक शक्ति दूनी कर दी। इस समय यहा कोई घटना न हुई। स्थानीय सेना के सिपाहियो ने शस्त्र डाल दिये। उनके नेताओ के विरुद्ध अदालती कार्यवाही आरंभ हुई। मि. प्लोडन ने शकित होकर नागरिकों के भी हथियार छीन लिये। २९ जून को तीन विद्रोही समझे जानेवाले सैनिको को प्रातःकाल साढ़े सात वजे अन्य सैनिकों के सामने फासी दे दी गई।

इसके पश्चात् नागपुर की अनियमित घुड़सवार सैन्य (इर्रेगुलर केव्हलरी) ने विद्रोह करने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका प्रयत्न दूसरे ही दिन कामठी से मद्रास पैदल सेना (इन्फेंटरी) मगवाकर दवा दिया गया। विद्रोही सेना के तीन रिसालदारो को फासी दे दी गयी। ८ जुलाई को नागपुर-कमिश्नर ने समस्त दैनिक समाचार-पत्रों के प्रकाशन पर रोक लगा दी। १५ अक्तूवर १८५७ को अवध के नवाव, उनके प्रधानमत्री और उनके तीन सहायक गिरफ्तार किये गये और सीतावर्डी के किले मे कैद कर लिये गये। इसके पश्चात् सन् '५७ के अन्त तक नागपुर मे कभी अशान्ति न हुई।

१६ जून १८५८ को वारूद विभाग के एक कर्मचारी हनुमानसिह ने विद्रोह किया। हनुमानसिह एक दफादार और मेजर के साथ गिरफ्तार किया गया और उन सवको फासी दे दी गई। नागपुर के नागरिकों में से दो प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवारो के प्रमुख नवाव कादिर अलीखा और श्री विलायत मियां जनता को विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहन करने के अपराध मे गिरफ्तार किये गये और फांसी पर चढ़ा दिये गये।

चांदा जिले में अशान्ति—आप्पा साहव भोसले के नागपुर छोड़ने के समय से चान्दा जिले मे कभी भी पूर्ण शान्ति न रही। सदैव ही छोटी-वड़ी घटनाएं होती रही। सन् १८५२ मे मूल-मार्ग से जाते हुए सरकारी खजाने पर गोडो के एक विद्रोही दल ने आक्रमण कर दिया और खजाना लूट लिया। जिन दिनो भारत के अन्य स्थानों में विद्रोह की आग जल रही थी, उन दिनों चान्दा जिले के तथा हैदरावाद की सीमा पर वसे हुए गोडो ने जिले में अशान्ति फैला दी। तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मि. क्रिक्टन ने मार्च १८५८ तक किसी तरह विद्रोह न होने दिया। इसके पश्चात् मानमपल्ली के जमीदार वावूराव तथा आरपल्ली और घोटे के जमीदार व्यंकटराव ने विद्रोह की घोपणा कर दी और रुहल्लो के सहयोग से एक सेना संघटित की और २९ अप्रैल को इस सेना के एक समूह ने तीन अग्रेज अधिकारियो पर आक्रमण किया और उनमे से दो को मार डाला। इसके पश्चात् उन्होने अन्य स्थानो मे भी आक्रमण किया, पर अधिक सफल न हो सके। वावूराव २१ अक्तूवर को पकड़ कर फांसी पर चढ़ा दिया गया और व्यंकटराव वस्तर की ओर भाग गया, जो अप्रैल १८६० मे वस्तर के राजा द्वारा पकड़ा गया और उसे आजन्म कालेपानी का दण्ड दिया गया।

भण्डारा में—सन् १८१८ मे कामठी और आदवगढ़ के जमींदार चिमनाजी ने अग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया। परिणामस्वरूप उसके २०७ गांव जव्त कर लिये गये। कप्तान जार्डन को विद्रोहियों का दमन करने के लिये चार मास तक कामठी में रहना पड़ा। सन् १८३० मे भण्डारा जिला तृतीय राघोजी भोंसला को दे दिया गया और जिले मे शान्ति वनाये रखने के लिये पैदल सेना (इन्फेटरी) की एक कम्पनी और कुछ घुड़सवार भण्डारा मे सन् १८६० तक रखे गये।

रायपुर में विद्रोह—१५ अक्तूवर १८५७ को विद्रोहियो के एक वड़े समूह ने गुरूरसिह और रणवन्तसिह के नेतृत्व में और सम्वलपुर के कुछ विद्रोही जमीदारों ने रायपुर के सोहागपुर तालुका में प्रवेश किया। रायपुर के डिप्टी कमिश्नर ने स्थानिक सैनिकों को साथ ले ९ दिसम्वर को विद्रोहियो पर सोहागपुर के निकट आक्रमण किया। विद्रोहियों की गोलावारी से घुड़सवारों का एक दल घायल हुआ और कुछ घोड़े मारे गये। १७ विद्रोही गिरफ्तार किये जा सके, पर वे भी हिरासत से निकल भागे। सतारा-राजा के भूतपूर्व वकील रंगा वापूजी इन विद्रोहियों के सरदार थे।

में नागपुर में एक सभा हुई, जिसमें इण्डिया कौन्सिल में इस प्रदेश से एक प्रतिनिधि लेने की माग की गई। सरकार ने यह माग स्वीकार कर सर गगाधरराव चिटनवीस की इस प्रदेश के प्रथम प्रतिनिधि के रूप में नियुक्ति की।

काग्रेस का अमरावती अधिवेशन—सन् १८९७ का काग्रेस अधिवेशन अमरावती में श्री शकरन नायर की अध्यक्षता में हुआ। इसी वर्ष इस क्षेत्र मे भयकर अकाल पडा था। अधिवेशन में एक प्रस्ताव-द्वारा सरकार का ध्यान अकाल निवारण के प्रयत्न की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया गया। रेण्ड और आयर्स्ट की हत्या तथा लोकमान्य तिलक के कारावास के कारण इस अधिवेशन में अधिक प्रतिनिधि उपस्थित न हो सके, पर गरम दल को जन्म देने का श्रीगणेश वास्तव में लोकमान्य तिलक के कारावास के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के रूप में रखे प्रस्ताव द्वारा इसी अधिवेशन से हुआ। भारतमत्री का पद तोड देने का प्रस्ताव भी सर्वप्रथम इसी अधिवेशन में उपस्थित किया गया था।

सन् १८९९ का लखनऊ काग्रेस ने श्री रमेशचन्द्र दत्त की अध्यक्षता में सविधान में परिवर्तन का प्रस्ताव पारित किया और तदनुसार मध्यप्रान्त और बरार को तीन-तीन प्रतिनिधि भेजने को अधिकार प्राप्त हुआ। नागपुर-प्रदेश से श्री बापूराव दादा, लाला भगीरथ प्रसाद तथा वर्धा के श्री एच व्ही केलकर प्रतिनिधि चुने गये।

सन् १८९९ में श्री ना रा चदावरकर की अध्यक्षता में होने वाले लाहौर-काग्रेस अधिवेशन में इस प्रदेश से श्रीधर बलवन्त गोखले शिक्षा समिति के और श्री रावजी गोविन्द औद्योगिक समिति के सदस्य नियुक्त किये गये।

विचार क्रान्ति का युग—लाहौर-काग्रेस के पश्चात् अन्य प्रान्तो की तरह हमारे प्रान्त मे भी नव-जन जागरण के साथ ही विचार क्रान्ति का श्रीगणेश हो गया। काग्रेस का बढा हुआ महत्व और प्रभाव सरकार को धीरे-धीरे असह्य होगया। इसी समय लार्ड कर्जन भारत के वाइसराय होकर आये। यहा आते ही उन्होने सर्व-प्रथम विश्व विद्यालयो का स्वतत्र अस्तित्व समाप्त कर उन्हें सरकार के अधिकार में करना चाहा। सन् १९०४ में स्वीकृत विश्वविद्यालय एक्ट उनकी इसी इच्छा का परिणाम है। इसके पश्चात ही उन्होने शासनिक सुव्यवस्था और मुसलमानो के अधिकारो की रक्षा के नाम पर बगाल को दो टुकडों में विभाजित कर दिया। परिणामस्वरूप न केवल बगालवासियो में वरन समस्त भारत की राष्ट्रवादी जनता मे क्षोभ फैल गया। यही कारण है कि इसके पश्चात् होनेवाले काग्रेस अधिवेशनो द्वारा स्वीकृत प्रस्तावो मे हमें लार्ड कर्जन के इन कार्यों की प्रतिक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। इन प्रस्तावो में हमारे प्रदेश का भी महत्वपूर्ण योग रहा है। सन् १९०१ की कलकत्ता-काग्रेस द्वारा न्याय विभाग को शासन विभाग से पृथक् करने के प्रस्ताव का समर्थन करनेवालो में से इस प्रदेश के ख्याति प्राप्त कानून पडित डा सर हरिसिह गौर प्रमुख थे। सन् १९०२ की अहमदाबाद-काग्रेस में हमारे प्रान्त के एक प्रतिनिधि श्री म कृ पाध्ये ने काग्रेस के पुलिस कमीशन विषयक प्रस्ताव का जोरदार शब्दो में समर्थन किया।

उसी वर्ष लोकमान्य बाल गगाधर तिलक का नागपुर आगमन हुआ और उनकी प्रेरणा से नागपुर प्रदेश के तरुणो में एक नई विचारधारा प्रवाहित होती दिखाई देने लगी।

सन् १९०४ की बम्बई-काग्रेस में डाक्टर गौर ने सरकार की शिक्षा नीति की कडी आलोचना की। भारत मत्री के कार्यालय विषयक एक दूसरे प्रस्ताव पर श्री पाध्ये ने बडा प्रभावपूर्ण भाषण दिया। बरिस्टर मोरोपन्त अभ्यकर और बैरिस्टर गोविन्दराव देशमुख उन दिनो विद्यार्थी थे। उन्होने काग्रेस के इस अधिवेशन में भाग लिया और उनके द्वारा तत्कालीन विद्यार्थी-समाज में राष्ट्रीय कार्यो की नीव पडी। इसी अधिवेशन में पुलिस-सुधार सम्बन्धी एक प्रस्ताव पर भी वासुदेवराव जोशी का भाषण हुआ।

तारीख ८ फरवरी १९०४ को रूस-जापान युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में नित्य प्रति जापान को प्राप्त होने वाली विजय के कारण भारतीयो का ध्यान स्वभावत जापान की ओर आकर्षित हुआ और यहा के निवासी पश्चिम पर पूर्व की विजय होती देख प्रसन्नता व्यक्त करने लगे। यह लार्ड कर्जन को असह्य हो गया और उनकी सरकार ने

सीताबर्डी किले के युद्ध का एक दृश्य

(चित्र लन्दन से)
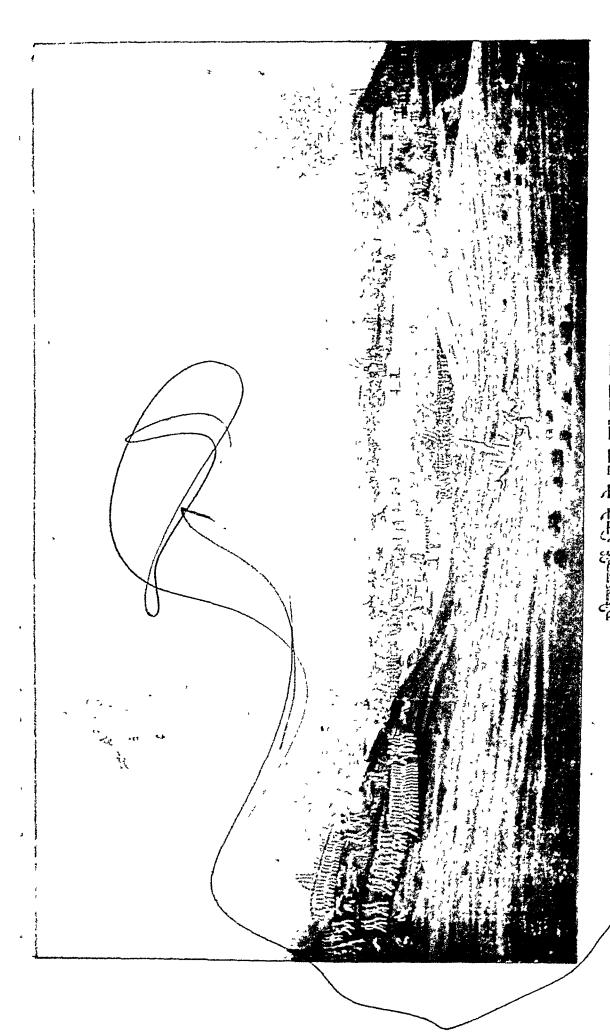
भोसलों ने स्वाधीनता की रक्षा के लिये अंगरेजों के पैर न जमने देने के लिये घोर प्रयत्न किया परन्तु वे असफल रहे
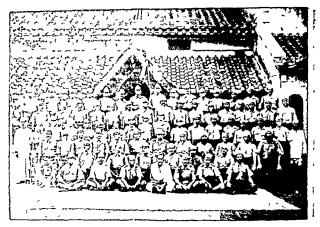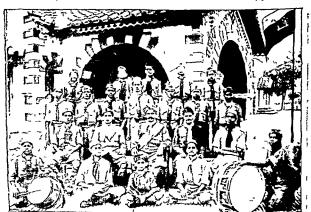
महात्माजी की महाकोशल मे शुक्ल जी के साथ
हरिजन-यात्रा के दो दृश्य
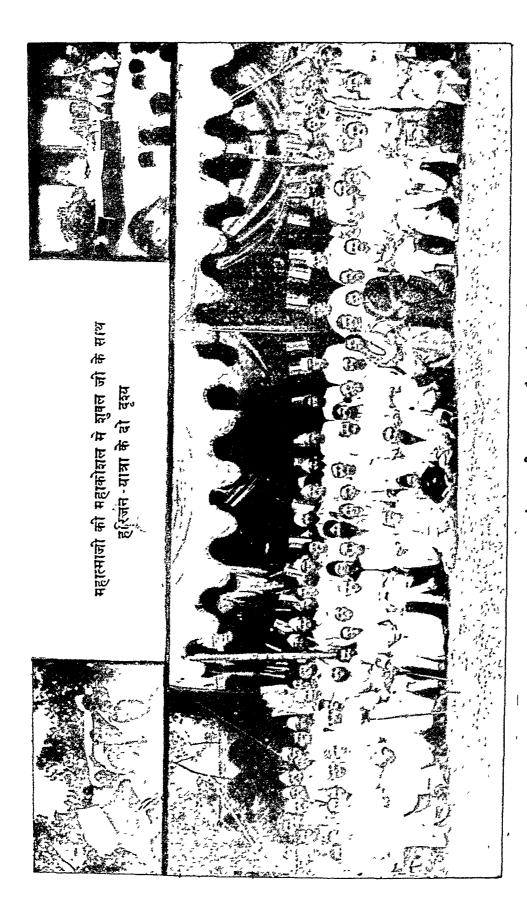
अ. भा. कां. क. की जबलपुर बैठक (१९३४)
भारतीय नेतागण सरदार वल्लभभाई, देशरत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद, श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, आचार्य कृपलानी,
श्री मुन्शीजी श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री भुल्लाभाई देसाई आदि बाबू गोविंदासजी और शुक्लजी आदि के साथ दिखलाई पड़ रहे है।
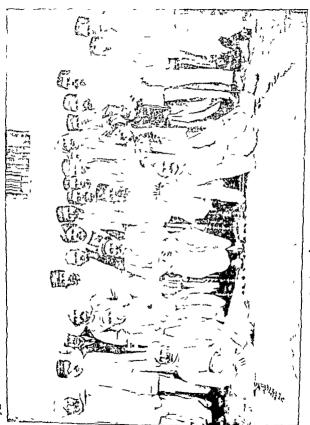
मध्यप्रदेश में राजनैतिक जागृति का पहिला अध्याय

श्री लोकमान्य तिलक के दौरे के समय का चित्र

जोरों से भारतीयों का दमन आरंभ कर दिया। सन् १६०५ मे श्री गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में बनारस मे कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन मे दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति से सम्बन्धित प्रस्ताव पर डा० मुजे का भाषण हुआ।

बनारस-अधिवेशन के पश्चात् बगाल मे श्री अश्विनी कुमार के नेतृत्व मे स्वदेशी प्रचार का कार्य बड़े वेग से आरम्भ हुआ। नागपुर में यह कार्य सर्वप्रथम विद्यार्थियों ने अपने हाथ मे लिया। इस कार्य के लिये भिन्न-भिन्न संस्थाएँ, क्लब आदि आरंभ हो गये। सर्वश्री जयकृष्णपंत उपाध्ये, भाऊसाहब दुलारी, भवानीशकर नियोगी, नागपुर, रामभाऊ श्रौती, आर्वी, बापट, पांढरीपाण्डे, पंढरपुरकर, भण्डारा आदि स्वदेशी-प्रचार-आदोलन मे भाग लेने वाले प्रमुख विद्यार्थी थे। डा. पांडुरंग खानखोजे, रामलाल बाजपेई, नागपुर, सिद्धनाथ कृष्ण काणे, यवतमाल, गनपतराव मालवी आदि इस समय के क्रान्तिकारी विचारो के विद्यार्थी थे। इस प्रकार एक ओर श्री उपाध्ये के नेतृत्व मे विद्यार्थी-समाज स्वदेशी-प्रचार मे व्यस्त था तथा दूसरी ओर श्री खानखोजे के नेतृत्व मे क्रान्तिकारी तरुणो का सगठन हो रहा था। इसी समय लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से नागपुर मे गणेशोत्सव और शिवाजी जयन्ती के कार्यक्रम आरम्भ हुए। इन दोनों उत्सवों ने भी तरुणों के संगठन मे मूल्यवान योग प्रदान किया। उन दिनो नागपुर प्रदेश में विद्यार्थियों-द्वारा संचालित ३४ संस्थाएँ थी। सन् १६०३ में विदर्भ नागपुर प्रदेश मे मिला दिया गया, जो राजनीतिक जाग्रति की दृष्टि से लाभदायक सिद्ध हुआ। अब नागपुर और विदर्भ के राजनीतिक कार्यकर्त्ता सयुक्त रूप मे जन-जाग्रति का कार्य करने लगे। सन् १६०५ में दादा साहेब खापर्डे की अध्यक्षता मे नागपुर मे प्रथम बार "नागपुर-विदर्भ प्रातीय राजनैतिक परिषद्" की गई। सर गंगाधर राव चिटनवीस परिषद् के स्वागताध्यक्ष थे। यह परिषद् बड़े उत्साह से नागपुर-टाउन हाल मे सम्पन्न हुई, जिसका स्थानीय जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार की एक राजनीतिक परिषद् जबलपुर मे भी श्री गंगाधरराव चिटनवीस की अध्यक्षता मे हुई।

सन् १८६१ में ही "सागर-नर्मदा क्षेत्र" का एकीकरण नागपुर प्रांत से हो चुका था, पर राजनीतिक दृष्टि से इस जबलपुर राजनीतिक परिषद् के समय से ही इन दोनों प्रदेशों का संगठन भारतीय स्वतंत्रता प्राप्तिके उद्देश्यसे आरम्भ हुआ और यह संगठन धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। इन्ही दिनो कुछ नवयुवकों के प्रयत्न से एक दल की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत "होमरूल" प्राप्त करना था। इस समिति की स्थापना मे लोकमान्य तिलक की प्रेरणा थी। नवयुवकों द्वारा स्थापित यह दल "राष्ट्रीय दल" कहलाता था। "केसरी" और "मराठा" इस दल के प्रमुख पत्र थे। अपने प्रदेश मे इस दल के सिद्धान्तो का प्रचार करने तथा दल के कार्यो को बल देने के लिये स्व. प. माधवराव सप्रे के सम्पादन मे नागपुर से "हिन्दी केसरी" का प्रकाशन आरंभ हुआ। श्री सप्रे जी मध्यप्रदेश के जन-जागरण के जन्मदाताओं मे प्रमुख थे। उन्होंने अपने इस पत्र द्वारा महाकोशल, छत्तीसगढ़ और नागपुर तथा विदर्भ की हिन्दी भाषी जनता की अमूल्य सेवा की। यह वह युग था, जब "देशभक्ति" "राजद्रोह" का पर्यायवाची शब्द था और एक मात्र अनुनय-विनय ही अपनी मागों की पूर्ति की साधना थी।

स्वराज्य की घोषणा

सन् १६०६ तक इस राष्ट्रीय दल अथवा गरम दल की शक्ति पर्याप्त बढ़ चुकी थी और पूर्ण देश गरम दल और नरम दल मे विभाजित हो चुका था। सन् १६०६ में कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिये लोकमान्य तिलक तथा लाला लाजपतराय को निर्वाचित करने पर बल दिया गया, किन्तु गरम दल को इन दोनों महान् नेताओं मे से कोई भी पसंद न था। उन्होंने दादा भाई नौरोजी को अध्यक्ष पद पर आसीन करना चाहा। लोकमान्य तिलक इसके पूर्व आम्स्टर्डम (हालैण्ड) में आयोजित "सोशलिस्ट कांफ्रेन्स" में दिये दादा भाई के भाषण से बहुत प्रभावित हो चुके थे; अतः उन्होंने उन्ही के अध्यक्ष होने का समर्थन किया और अन्ततः उन्ही की अध्यक्षता मे कलकत्ता-अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में हमारे प्रान्त के ६० प्रतिनिधि उपस्थित थे। स्वदेशी बहिष्कार, स्वराज्य और

राष्ट्रीय शिक्षा ही इस अधिवेशन के मुख्य सूत्र थे। दादा भाई नौरोजी ने अपने उग्र भाषण के पश्चात् सर्वप्रथम इसी अधिवेशन में "स्वराज्य" की घोषणा की और तब से वह भारतीयो का नारा बन गया।

नागपुर का वितण्डा वाद।

सन १९०७ का काग्रेस अधिवेशन श्री गगाधरराव चिटनवीस ने नागपुर के लिये निमन्त्रित किया था। नागपुर के वयोवृद्ध वकील श्री नीलकण्ठराव ऊधाजी ने अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर राष्ट्रीय दल को बल प्रदान किया और "राष्ट्रीय मण्डल" नामक एक सस्था का जन्म दिया। श्री नीलकण्ठराव उधोजी इस मण्डल के अध्यक्ष और श्री नारायणराव अलेकर मत्री निर्वाचित हुए। श्री उधोजी, अलेकर और डा मुजे के सतत प्रयत्न से मण्डल को सर्वश्री गोपालराव बूटी, बैरिस्टर सी वी नायडू, बैरिस्टर श्यामराव जकाते, चिन्तामणराव दिवाले, डा गद्रे, डा परांजपे, डा लिमये, केशवराव गोखले, वकील, धुडीराज पत ठेंगडी, शकर गुडो, सेठ रामनारायण राठी आदि नागपुर के प्रमुख व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त होगया। इन्ही दिनो इस मण्डल को बल देने के लिये श्री अच्युतराव कोल्हटकर ने "देश सेवक" पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्र अल्पावधि मे ही श्री कोल्हटकर की हृदयस्पर्शिनी लेखनी और ओजस्विनी वाणी के कारण समस्त मध्यप्रदेश की जनता का प्रिय बन गया।

काग्रेस और राष्ट्रीय मण्डल आगामी नागपुर-अधिवेशन के लिये प्रचार-कार्य में व्यस्त हो गये। राष्ट्रीय मण्डल लोकमान्य तिलक को इस अधिवेशन के अध्यक्ष पद पर आसीन करना चाहता था, किन्तु काग्रेस पक्ष को यह स्वीकार न था तथा एक लम्बे वाद विवाद के पश्चात् स्वागत समिति का निर्माण हुआ और दोनो दल उसमें अपना बहुमत बनाने का प्रयत्न करने लगे। अगस्त मास के अन्त तक काग्रेस पक्ष ने स्वागत समिति में अपना प्रचण्ड बहुमत बना लिया। अब राष्ट्रीय मण्डल के लिये अपने मन के अध्यक्ष का निर्वाचन करा लेना असम्भव हो गया, जिससे उसके सदस्य चिन्तित हो गये। काग्रेस-पक्ष भी हृदय से स्वागत समिति में राष्ट्रीय मण्डल के व्यक्तियो को रखने के पक्ष में न था। अत दोनो दलो में तनाव बढ गया। परिणामस्वरूप २२ सितम्बर १९०७ को नागपुर-टाउन हाल में होने वाली स्वागत समिति की बैठक में एक वितण्डावाद खडा हो गया। कार्य होना असम्भव देख कर सभा स्थगित कर दी गई। टाउन-हाल के बाहर जनता और विद्यार्थियो की एक बडी भीड एकत्र हो गयी थी। सभा स्थगित होने के पश्चात् टाउन हाल से बाहर आने वाले अनेक काग्रेसजनो को विद्यार्थियो तथा राष्ट्रीय मण्डल के समर्थक व्यक्तियो द्वारा अपमानित भी होना पडा। इस स्थिति में नागपुर में काग्रेस का अधिवेशन होना असभव हो गया और काग्रेस प्रमुखो को विवश होकर अपनी असमर्थता की सूचना अखिल भारतीय काग्रेस-कार्यकारिणी को दे देनी पडी। अब नागपुर के स्थान में सूरत में श्री रासबिहारी घोष की अध्यक्षता में अधिवेशन करना निश्चित हुआ। राष्ट्रीय दल और काग्रेस दल के तनाव ने वहा भी सफलता न मिलने दी।

सूरत में काग्रेस अधिवेशन न हो सकने पर काग्रेस पक्ष ने एक "काग्रेस कन्वेन्शन" करना और राष्ट्रीय दल ने "काग्रेस कान्टीन्यूएशन" स्थापित करना निश्चित किया। इस प्रकार यहा से दोनो दलो के दो पृथक् मार्ग बन गये। इसके पश्चात् लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें छ वर्ष का कारावास हो गया। तारीख २८ नवम्बर १९०८ को बम्बई में "काग्रेस कान्टीन्यूएशन कमेटी" की बैठक में पुन काग्रेस अधिवेशन करना निश्चित हुआ। राष्ट्रीय दल के निमन्त्रण पर यह अधिवेशन नागपुर में ही होने को था, किन्तु जिलाधीश (डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट) ने एक आज्ञा पत्र निकाल कर धारा १४४ के अन्तर्गत यहा अधिवेशन होना रोक दिया और राष्ट्रीय दल की सब तैयारी व्यर्थ हो गई।

नागपुर के राष्ट्रीय दल का प्रभाव यही तक सीमित न था। पूर्ण मध्यप्रदेश में उग्रता का वातावरण निर्माण हो चुका था। श्री रघुनाथराव मुधोलकर की अध्यक्षता में रायपुर में होने वाली प्रथम प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् को इस प्रभाव के परिणामस्वरूप ही सफलता न मिल सकी।

इस समय तक "वन्दे मातरम्" का गीत राष्ट्र मे सम्मान प्राप्त कर चुका था। जब पहिले पहल नागपुर मे यह गीत गाया गया, तब यहा के सरकारी अधिकारी चिढ़ गये और उन्होने दमन आरम्भ कर दिया। सरकार ने अवकाश-प्राप्त पदाधिकारियों, अवैतनिक मजिस्ट्रेटों और स्थानीय स्वराज्य संस्थाओ के अधिकारियों एव कर्मचारियों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने की मनाई कर दी। जिन्होने अप्रत्यक्ष रूप से भी भाग लिया, वे पदच्युत कर दिये गये। इन पदच्युत पदाधिकारियो मे चांदा नगरपालिका के अध्यक्ष, अमरावती नगरपालिका के उपाध्यक्ष और कुछ सदस्य थे। सरकार ने प्रेस एक्ट के नियमों के अन्तर्गत प्रान्त के पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर भी आघात करना आरम्भ कर दिया। मुज़फ्फ़रपुर बम केस पर अग्रलेख लिखने के कारण मराठी पत्र "देश सेवक" के सम्पादक श्री अच्युतराव कोल्हटकर पर मुकदमा चलाया गया और उन्हे डेढ़ वर्ष की सजा दी गई। इसी समय नागपुर के एक दूसरे पत्र "हिन्दी केसरी" पर भी १६ मई के अंक मे राजद्रोहात्मक लेख लिखने के कारण मुकदमा चलाया गया। लोकमान्य तिलक के कारावास तथा इन राष्ट्रीय पत्रो पर चलाये गये अभियोगों के कारण जनता मे, और विशेष कर विद्यार्थियो मे बडा असंतोष फैल गया। कुछ विद्यार्थियों ने मिल कर स्थानीय मिलों पर पत्थरों की वर्षा की, जिससे कुछ विद्यार्थी पकड़े गये और सद्व्यवहार के लिखित आश्वासन पर छोड़ दिये गये।

१८ जुलाई को नागपुर मे दिल्ली के तत्कालीन नेता सैयद हैदर रजा की अध्यक्षता मे लोकमान्य तिलक की जयन्ती बड़े समारोह से मनाई गई।

इसी वर्ष १२ नवम्बर से सरकार की ओर से एक औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शिनी का उद्घाटन मध्यप्रदेश के चीफ कमिश्नर सर रेजिनाल्ड क्रेडक ने किया और पूर्ण सरकारी शक्ति लगा कर इसे सफल बनाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु सरकार की दमन-नीति के कारण जनता का ध्यान इस ओर नही था। इन्ही दिनो एक दिन किसी ने कृषि महाविद्यालय के प्रागण एव महाराजबाग में स्थित महारानी विक्टोरिया की मूर्ति पर डामर पोत दिया। इसे सरकार ने अंग्रेजी शासन और अंग्रेज जाति का अपमान समझा। सन्देह मे कृषि महाविद्यालय-छात्रालय के सुपरिंटेडेट श्री नारायणराव पराजपे तथा कुछ विद्यार्थी गिरफ्तार कर लिये गये। श्री पराजपे नौकरी से पृथक् कर दिये गये और गिरफ्तार किये गये विद्यार्थी प्रमाणाभाव मे धीरे-धीरे छोड़ दिये गये। केवल एक विद्यार्थी को न्यायालय से दण्ड दिया गया।

इस घटना के पश्चात् सरकार पूर्वापेक्षा अधिक कड़ी हो गई और विशेष कर गरम दल वालों पर कड़ाई की जाने लगी। भारतीय दण्ड विधान की धारा १०८ और १२४ के अन्तर्गत अनेक व्यक्तियों पर अभियोग चलाये गये और उन्हे दण्ड दिया गया। उक्त दोनो राष्ट्रीय पत्र "हिन्दी केसरी" और "देश सेवक" का प्रकाशन रोक दिया गया। कुछ समय के पश्चात् "प्रबोध" नामक पत्र के भी प्रकाशन पर रोक लगा दी गई।

दिसम्बर १९०८ मे डा रासबिहारी घोष की अध्यक्षता मे मद्रास मे काग्रेस-अधिवेशन हुआ। गरम दल के असंतोष के कारण इस अधिवेशन मे हमारे प्रान्त से अधिक प्रतिनिधि न जा सके, फिर भी वहा उपस्थित ६२६ प्रतिनिधियो मे से १८ हमारे प्रान्त के प्रतिनिधि थे। इसके पश्चात् १९०८ में होने वाली लाहौर-काग्रेस मे इस प्रान्त से पर्याप्त प्रतिनिधियो ने भाग लिया, जिनमे बैरिस्टर अभ्यंकर और बैरिस्टर गोविन्दराव देशमुख प्रमुख थे। इस वर्ष श्रीशंभुराव गाडगील द्वारा लिखित "पदव्याची खैरात" लेख के प्रकाशन के कारण "देश सेवक" पर पुनः मुकदमा चलाया गया। यहां यह उल्लेखनीय है कि सन् १९०७ से १९१० तक नागपुर के समाचार-पत्रो पर जितने मुकदमे चले उनका भार श्री केशवराव गोखले ने ही वहन किया। वे इस बार "देश सेवक" पर चलाये गये अभियोग मे पैरवी करते हुए ज्वरपीड़ित हो गये और अंत मे प्लेग के शिकार होकर परलोकवासी हुए।

सन् १९१० मे श्री वेडरबर्न की अध्यक्षता मे [illegible] होने वाले काग्रेस-अधिवेशन में हमारे प्रान्त के १६ प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इसी अधिवेशन के [illegible] मध्यप्रान्त और बरार के लिये विधान सभा की

की गई। इसी अधिवेशन में कांग्रेस विधान में परिवर्तन कर मध्यप्रान्त और विदर्भ के लिये कांग्रेस प्रतिनिधियों की संख्या पृथक्-पृथक् निश्चित कर दी गई।

सन् १९०६ में दिल्ली में मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी। इसका द्वितीय अधिवेशन तारीख ३० दिसम्बर १९१० को नागपुर में सयद नबीउल्ला की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष खान बहादुर मलक थे। अधिवेशन के पश्चात् लीग के मंत्री मुहम्मद अज़ीज़ मिर्ज़ा ने इस प्रान्त में दौरा किया और कुछ स्थानों में इसकी शाखाएँ आरम्भ कीं। इसी समय से इस प्रदेश के मुस्लिम बन्धुओं में जाग्रति आई।

सन् १९११ में बंग-भंग की सरकारी योजना रद्द कर दी गई, जिससे इस वर्ष का कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ता में श्री विशन नारायण धर की अध्यक्षता में अधिक उत्साह से हुआ। इस अधिवेशन में उपस्थित शिक्षा विषयक प्रस्ताव पर हमारे प्रान्त से डा० गौर तथा राव बहादुर वासुदेव पंडित के भाषण हुए। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा इस अधिवेशन में कांग्रेस ने मध्यप्रान्त और बरार के लिये पुनः अपनी विधान सभा की मांग दुहराई। परिणामस्वरूप ८ नवम्बर १९१३ को इस प्रान्त के लिये विधान सभा की स्थापना की सरकारी घोषणा हुई और दूसरे वर्ष तक इस प्रान्त के तत्कालीन चीफ कमिश्नर की अध्यक्षता में सभा की स्थापना की गई। सर्वप्रथम इस सभा में ११ सरकारी और १० गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति की गई। गैर सरकारी १० सदस्यों में तीन नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि, तीन जिला कौंसिलों के प्रतिनिधि और दो जमींदारों के प्रतिनिधि थे। सर्वश्री रघुनाथराव मुधोलकर, रावबहादुर केलकर, सर मोरोपन्त जोशी, पं० विष्णुदत्त शुक्ल, राजा बहादुर जवाहर सिंह तथा एम० आर० दीक्षित इस प्रथम धारासभा के लोकप्रिय सदस्य प्रमाणित हुए। इसकी प्रथम बैठक १७ अगस्त को आरम्भ हुई।

इसके पश्चात् ही प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हो गया। अभी तक भी कांग्रेस गरम दल और नरम दल में विभाजित थी। अतः गरम दल की ओर से सर्व श्री दादा साहेब उधोजी, डा० मुंजे और दादा साहब खापर्डे तथा नरम दल की ओर से विपिन बाबू, गंगाधरराव चिटनवीस और डा० गौर दोनों दलों में समझौता कराने का प्रयत्न करते रहे और इसी प्रयत्न के फलस्वरूप दूसरे वर्ष मध्यप्रदेश और बरार की एक संयुक्त राजनीतिक परिषद् नागपुर में हुई।

सन् १९१५ में एनी बीसेंट की "होम रूल योजना" सामने आई। उनके नागपुर आने पर यहां सर विपिन बोस की अध्यक्षता में उनका भाषण हुआ, इसके पश्चात् १६, १७ और १८ नवम्बर को पं० विष्णुदत्त शुक्ल की अध्यक्षता में नरम और गरम दल की संयुक्त परिषद हुई, जिसमें "औपनिवेशिक स्वराज्य" की मांग की गई। इसी वर्ष लोकमान्य तिलक कारावास की अवधि समाप्त होने पर पुनः जनता के पथ प्रदर्शन के लिये सामने आये। गरम दल के कुछ नेता पृथक् "स्वतंत्र कांग्रेस" की स्थापना करना चाहते थे, किन्तु लोकमान्य इससे सहमत न हुए। सन् १९१६ में नागपुर में लोकमान्य तिलक द्वारा स्थापित "महाराष्ट्र होम रूल लीग" की एक शाखा भी दादा साहेब खापर्डे की अध्यक्षता में स्थापित की गई। नवम्बर मास में डा० गौर की अध्यक्षता में अमरावती में एक प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् हुई, जिसमें प्रान्त में कार्यकारिणी की स्थापना, प्रांतीय धारा सभा में गैर-सरकारी बहुमत होने तथा प्रेस एक्ट रद्द करने के सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किये गये। इसी वर्ष लखनऊ में लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, जिसमें हमारे प्रान्त की छिंदवाड़ा जेल में स्थानबद्ध अली बंधुओं के प्रति सहानुभूति का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। लोकमान्य लखनऊ कांग्रेस से लौटती बार नागपुर में ठहरे और श्री विपिन बोस की अध्यक्षता में उनका भाषण हुआ। तारीख ६ जनवरी से २८ फरवरी तक नागपुर जिला होम रूल लीग के ४३६ सदस्य बनाये गये। तारीख २८ फरवरी १९१७ को लीग की प्रथम जयन्ती नागपुर में बड़े समारोह से मनाई गई। इन दिनों दक्षिण अफ्रीका के भारतीय मज़दूरों के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित करने के कारण नागपुर के "महाराष्ट्र" से डेढ़ हजार की जमानत मांगी गई। इन दिनों विद्यालयों और महाविद्यालयों के विद्यार्थी पुनः राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने लगे थे। अतएव सरकार ने एक परिपत्र निकाल कर उन्हें इन कार्यों में भाग लेने से रोक दिया। तारीख १७ मार्च को होम रूल लीग की नागपुर

शाखा के द्वारा विश्व युद्ध के लिये सैनिकों की भरती करने के लिये श्री खापर्डे की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की गई। इस वर्ष होने वाले धारासभा के निर्वाचन मे लोक-निर्वाचित ७ सदस्यों में से तीन सदस्य सर्वश्री ताम्बे नागपुर, वाय. जी. देशपांडे, अमरावती और ठक्कर रायपुर थे। तारीख २६ अगस्त १९१७ को रायबहादुर ठक्कर की अध्यक्षता में नागपुर के व्यंकटेश थिएटर हाल में एक प्रान्तीय परिषद् की गई और यह निश्चय घोषित किया गया कि मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने जो मांग की है, उससे कम मे भारत कभी संतुष्ट न होगा। होमरूल लीग की एक शाखा जबलपुर में भी श्री नाथूराम मोदी की अध्यक्षता मे स्थापित की गयी।

कुछ दिनों मे ही इस प्रान्त से होमरूल लीग के ३,०३३ सदस्य हो गये। लीग के सदस्य सैनिक भर्ती के साथ ही लीग का भी कार्य करते रहे। इनमे से कुछ पर राजद्रोहात्मक भाषण देने के कारण मुकदमे चले। श्री एम. के. वैद्य ऐसे ही कार्यकर्त्ताओं मे से एक थे, जो नागपुर जुडीशियल कमिश्नर द्वारा निर्दोष घोषित कर दिये गये थे। देशबन्धु चित्तरंजनदास ने उनकी ओर से पैरवी की थी।

तारीख २० अगस्त १९१७ को भारतमंत्री माण्टेग्यू "मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड" योजना की घोषणा करने के पश्चात् भारत में आये। उन्होने हमारे प्रान्त के सर्वश्री गंगाधरराव चिटनवीस, डा. गौर, पं विष्णुदत्त शुक्ल, सर मोरोपंत जोशी, मुधोलकर, खापर्डे, रा. ब. नारायणराव केलकर, मानिकलाल कोचर और रा. सा. ठक्कर से मिल कर घोषित "सुधार-योजना" पर चर्चा की।

इन्होने काग्रेस मांग पर ही ज़ोर दिया। जबलपुर के अवकाश-प्राप्त दौरा (सेशन्स) जज खान बहादुर शम्सुल उलेमा मुहम्मद अमीन ने भी एक स्मरण पत्र (मेमोरेंडम) भारत मंत्री को प्रेपित कर कांग्रेस की मांग पर ही बल दिया था।

कलकत्ता कांग्रेस से लौटती बार और उसके पश्चात् फरवरी मास मे लोकमान्य तिलक पुनः नागपुर आये और उन्होने लीग के प्रचारार्थ प्रान्त के कुछ स्थानो मे दौरा किया। इस समय केवल नागपुर-विदर्भ से ही उन्हें एक लाख दस हजार रुपये भेंट किये गये।

रौलट एक्ट और हमारा प्रान्त—

सन् १९१७ में ही "मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट" प्रकाशित होने के पश्चात् रौलट कमीशन की नियुक्ति की गई। कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर सन् १९१९ में रौलट एक्ट बनाया गया, जो भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन के लिये एक जबर्दस्त धक्का प्रमाणित हुआ। भारत ने विश्व-महायुद्ध में अंग्रेजों की जो सहायता की, उसके बदले में सरकार इस विधेयक (बिल) को कानून का रूप देगी, इसका हमने कभी अनुमान भी न किया था। अत. इस क़ानून (एक्ट) के सामने आते ही भारत के कोने-कोने मे क्षोभ फैलना स्वाभाविक था। तारीख १० मार्च १९१९ को डा. मुजे ने प्रान्तीय असोसिएशन के १० सदस्यों की ओर से रौलट एक्ट के विरुद्ध एक पत्रक प्रकाशित किया। इसके पश्चात् तारीख २० मार्च को दादा साहब खापर्डे की अध्यक्षता में खण्डवा में मध्यप्रान्तीय राजनीतिक परिषद् हुई, जिसमे अन्य प्रस्तावो के साथ ही रौलट एक्ट के विरोध में भी एक प्रस्ताव पारित किया गया। होम रूल लीग के प्रचार क लिये डा. मुंजे के प्रयत्न से श्री प्रयागदत्त शुक्ल के सम्पादन में "संकल्प" नामक एक मराठी पत्र का प्रकाशन नागपुर से आरम्भ हुआ। प्रकाशन आरम्भ होने के कुछ समय पश्चात् ही पत्र से एक हजार रुपये की जमानत मांगी गई।

इसी वर्ष महात्मा गाधी ने ६ अप्रैल को रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ किया और १३ अप्रैल को जलियांवाला बाग की दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई। इस घटना से भारत का एक-एक हृदय काप उठा। अन्य प्रान्तो की तरह हमारे प्रान्त मे भी स्थान-स्थान पर सभाएँ हुई और इस शोकजनक घटना के लिये उत्तरदायी अधिकारियों की भर्त्सना की गई। इस वर्ष पं मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में होने वाली अमृतसर-कांग्रेस मे बड़ा क्षोभ और रोष देखा गया। डाक्टर मुंजे ने काग्रेस का आगामी अधिवेशन नागपुर के लिये आमंत्रित किया।

इस प्रकार कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन भारत की सर्वाङ्गीण और सर्वक्षेत्रीय जाग्रति के अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ।

महाकोशल में नव-जागरण —

सन् १९१९ से १९२१ तक का समय महाकोशल की जाग्रति की दृष्टि से बड़ा मूल्यवान रहा। सन् १९१९ में बाबू गोविन्ददास ने, जिनकी प्रवृत्तियां उस समय तक साहित्य के अध्ययन और सृजन तक ही सीमित थी, कांग्रेस में प्रवेश किया और पूर्ण शक्ति के साथ राष्ट्रीय कार्यों में योग देने लगे। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के पश्चात् महाकोशल की राजनीति में विशेष योग देने वालों में बाबू गोविन्ददास के अतिरिक्त श्री केशव रामचन्द्र खाण्डेकर, दामोदरराव श्रीखण्डे, पं रविशंकर शुक्ल, पं माखनलाल चतुर्वेदी, ठा छेदीलाल, श्री घनश्याम सिंह गुप्त, श्री श्याम सुन्दर भार्गव, श्री नाथूराम मोदी आदि प्रमुख थे। राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र "कर्मवीर" का प्रकाशन सन् १९१९ में ही पं विष्णुदत्त शुक्ल, पं माधवराव सप्रे, और पं माखनलाल चतुर्वेदी के संयुक्त प्रयत्न से जबलपुर से आरम्भ हुआ, जो प्रान्त की हिन्दी भाषी जनता का कांग्रेस का सन्देश अपनी निर्भीक वाणी में देने में समर्थ हुआ। कर्मवीर-सम्पादक पं माखनलाल चतुर्वेदी सम्भवत महाकोशल के प्रथम जन-सेवक थे, जिन्हें राजनीतिक अपराध के कारण जेल-यात्रा करनी पड़ी। उनके पश्चात सागर के पत्रकार श्री अब्दुल गनी तथा पं सुन्दरलाल और महात्मा भगवानदीन को भी देशभक्ति के फलस्वरूप कठिन कारावास का दण्ड दे दिया गया।

नागपुर और विदर्भ की तरह महाकोशल के विद्यार्थी भी राष्ट्रीय संग्राम में योग देने में पीछे न रहे। लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर माडल हाईस्कूल जबलपुर के विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी और इसके पश्चात् ही "गांधी टोपी सत्याग्रह" आरम्भ कर दिया गया। परिणामस्वरूप इस स्कूल के मैट्रिक कक्षा के विद्यार्थियों को लगभग एक मास तक ग्रीष्म की प्रखर धूप में कवायद करनी पड़ी और स्कूल के एक शिक्षक श्री वागडदेव शिक्षण महाविद्यालय (ट्रेनिंग कालेज) के अंग्रेज प्रिंसिपल-द्वारा अपमानित कर निकाल दिये गये। इससे जबलपुर नगर के विद्यार्थियों और तरुणों में गहन असन्तोष और क्षोभ फैल गया। अनेक विद्यार्थियों ने स्कूल छोड़ दिया और उनकी शिक्षा के लिये वहां का हितकारिणी हाईस्कूल राष्ट्रीय विद्यालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। पूरे प्रदेश में एक भयंकर तूफान सा आ गया। स्थान-स्थान में राष्ट्रीय विद्यालय खुलने लगे और उनमें सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थी प्रवेश पाने लगे। कोई ५० वकीलों ने वकालत छोड़ दी और कुछ उपाधिधारियों ने भी सरकारी उपाधियों से मुक्ति पाई। स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई और सड़कों सड़कों पर हाथ की कती-बुनी खादी बिकने लगी और खादी की बढ़ती बिक्री को देखकर नये केन्द्र खुल गये। इसके साथ ही मादक पदार्थों के विरुद्ध भी जोरों से प्रचार आरम्भ हो गया। शराब की दुकानों तथा विदेशी वस्त्र विक्रेताओं की दुकानों पर कांग्रेस स्वयंसेवकों-द्वारा धरने दिये जाने लगे और फलस्वरूप उन्हें पुलिस की लाठियों तथा जेल यातनाओं का सामना करना पड़ा। सरकारी दमन चरम सीमा पर पहुंच गया, किन्तु कांग्रेस-कार्यकर्ता और नेता किंचित् भी विचलित न हुए। प्रान्त की जनता में राष्ट्र सेवा और सर्वस्व त्याग की भावना उग्र हो उठी। न जाने कितने कांग्रेस स्वयंसेवक और जन-सेवक नेता जेल में ठूंस दिये गये। इसी वर्ष बैतूल में श्री उमाकान्त बलवन्त घाटे की अध्यक्षता में एक राजनीतिक परिषद् हुई। इसके दूसरे वर्ष ही बैतूल जिले के धनोरा नामक ग्राम में राष्ट्रमाता कस्तूरबा की अध्यक्षता में पुन राजनीतिक परिषद् हुई। सन् १९२३ में बैतूल में तत्कालीन महाकोशल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष डाक्टर राघवेन्द्रराव की अध्यक्षता में होनेवाली प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् विशेष महत्वपूर्ण थी। इसी परिषद् में महाकोशल कांग्रेस कमेटी दो दलों में विभाजित हो गई और परिषद के मनोनीत अध्यक्ष डा राव के स्थान पर पं सुन्दरलाल जी की अध्यक्षता में यह परिषद् हुई। इसी अवसर पर पं सुन्दरलाल ने अपनी झण्डा सत्याग्रह विषयक कल्पना जनता के समक्ष रखी, जिसे कुछ समय के पश्चात् प्रथम जबलपुर में और उसके पश्चात् नागपुर में मूर्त रूप प्राप्त हुआ।

सेवाग्राम में बापू की कुटिया का भीतरी दृश्य

सेवाग्राम स्थित बापू की कुटिया का बाह्य दृश्य
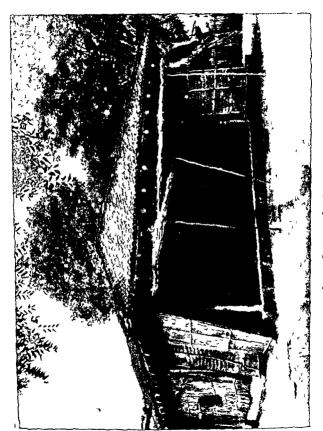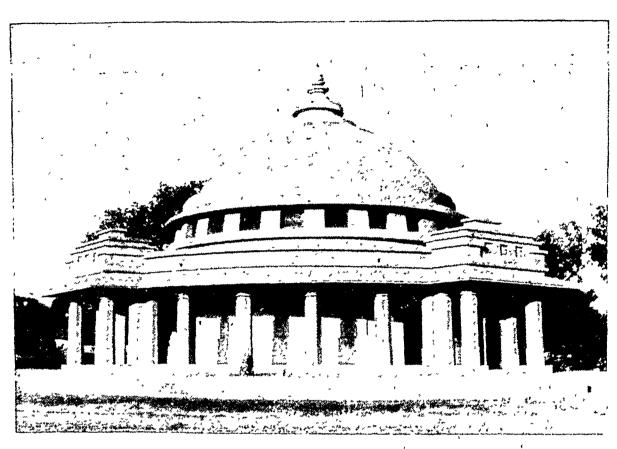
वापू की स्मृति में निर्मित गांधी स्मारक, जवलपुर
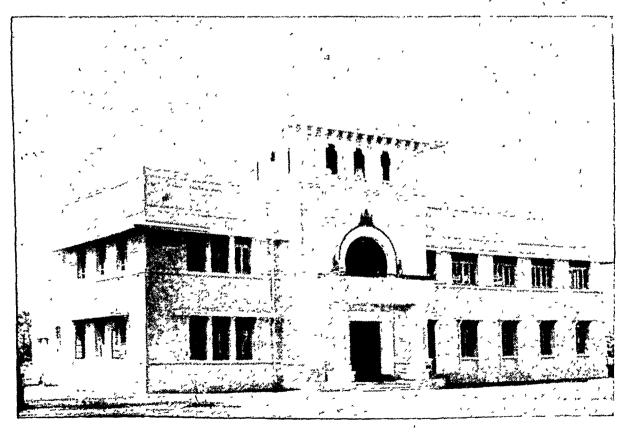
गांधी तत्वज्ञान के प्रचारार्थ निर्मित गांधी ज्ञान मंदिर, वर्धा

शहीद स्मारक
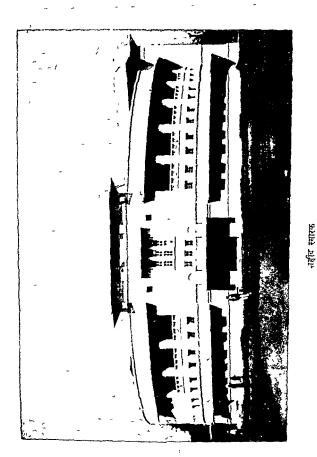
यह भव्य भवन महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के तत्वावधान में जबलपुर में बना है।

नागपुर प्रान्त में :—नागपुर प्रान्त भी इन दिनों महाकोशल से पीछे न रहा। नागपुर कांग्रेस के पश्चात् महात्मा भगवानदीन के संचालन मे २ जनवरी को नागपुर में असहयोग आश्रम तथा ३ जनवरी को तिलक राष्ट्रीय विद्यालय आरम्भ किया गया। इसी वर्ष १ फरवरी से नेशनल बोर्ड के द्वारा नेशनल कालेज भी आरम्भ हो गया। पं. सुन्दरलाल, महात्मा भगवानदीन, दादासाहब उधोजी, गोपालराव देव, शिवदासपंत वार्लिगे आदि जन-सेवको ने इस आश्रम और विद्यालय के संचालन में विशेष योग दिया। आचार्य विनोवा भावे ने वर्धा में भी एक असहयोग आश्रम आरम्भ किया। इन दिनों इस भू-भाग मे असहयोग की आंधी इतनी तीव्र गति से बह रही थी कि ड्यूक आफ कनाट जब १८ जनवरी १९२१ को यहां आये, तब उन्हें चुपचाप ही शिकार के बहाने बालाघाट चले जाना पड़ा। अनेक स्थानों में परगना परिषदें आयोजित की गईं और जनता का ध्यान स्वतंत्रता-आंदोलन की ओर आकर्षित किया गया। स्वयंसेवकों को शिक्षा देने के लिये १२ फरवरी को डा. परांजपे के नेतृत्व में प्रान्तीय स्वयंसेवक दल (प्राविंशियल वालंटियर कोअर) की स्थापना की गई। सरकारी न्यायालयों का कार्य ठप्प करने के लिये स्थान-स्थान पर लवाद कोर्ट खोले गये। फरवरी के तृतीय सप्ताह में डा. चोलकर मद्य-निषेध आंदोलन का नेतृत्व करने के कारण गिरफ्तार कर लिये गये। उनके मुकदमे के दिन न्यायालय के प्रांगण मे उपस्थित जनता पर पुलिस ने लाठियां चलाई जिसमें अनेक व्यक्ति आहत हुए। जनता को अधिक क्षुब्ध होते देख सरकार ने १४४ धारा लगा दी, पर इसका आंदोलन पर कोई प्रभाव न पड़ा। सरकार द्वारा सब प्रकार के उपायों से काम लेने के पश्चात् भी आंदोलन बढ़ता ही गया। महात्मा भगवानदीन को सिवनी मे दिये एक भाषण के कारण डेढ वर्ष की सजा सुना दी गई। इसके पश्चात् शराब की दुकान पर धरना दने के कारण उदाराम पहलवान की गिरफ्तारी के समय नागपुर की जनता में इतना रोष फैल गया कि २७ मार्च को सरकार को गोली चलवानी पड़ी। इसमे १० व्यक्ति घटनास्थल पर ही मर गये और अनेक आहत अवस्था में अस्पताल पहुंचाये गये। इसके पश्चात् अर्जुनलाल सेठी, पं. सुन्दरलाल, नारायणराव दंदे, मारोतराव पोहरकर, कर्मवीर पाठक आदि पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया और उन्हें कारावास का दण्ड दिया गया। सरकारी दमन का सामना करते हुए भी बैजवाड़ा-कांग्रेस के निश्चय के अनुसार नागपुर प्रांत में दस हजार चर्खे चालू किये गये, लगभग १५ हजार कांग्रेस-सदस्य बनाये गये और १,९३,६१४ रुपये (सेठ जमनालालजी द्वारा दिये एक लाख रु. सहित) तिलक स्वराज्य निधि मे दिये गये। २६ जुलाई को नागपुर में विदेशी वस्त्रों की एक बहुत बड़ी होली जलाई गई। "राजस्थान केसरी" के सम्पादक पं. सत्यदेव विद्यालंकार के अतिरिक्त वर्धा, घोटीवाडा, ब्रेला, अंजनगाव, आदि के भी अनेक कार्यकर्त्ताओं और असहयोगी मालगुजारों पर राजद्रोह के मुकदमे चलाये गये। सर्वश्री हर्लेकर (नागपुर), टेंभेकर (भण्डारा) तथा असेरकर, आंबोकर आदि वकीलो ने वकालत छोड़ दी। वर्धा लोकल बोर्ड आदि स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं ने भी अपने-अपने ढंग से स्वतंत्रता-आन्दोलन मे योग दिया। इन्ही दिनो नागपुर मे "भारत स्वयं सेवक मण्डल" ने स्वयंसेवकों को शिक्षा देने के लिये एक विद्यालय आरम्भ किया। प्रान्तीय धारा सभा मे बैरिस्टर रामराव देशमुख ने युवराज का स्वागत न करने का प्रस्ताव रखा। इसी समय डा. गौर ने स्वागत का प्रस्ताव रखा, जिसका पं. कुंजबिहारी लाल अग्निहोत्री, बिलासपुर ने कड़ा विरोध किया।

इसके पश्चात् नागपुर मे मराठो की एक राष्ट्रीय परिषद् हुई, जिसमें कांग्रेस की नीति का समर्थन किया गया। इसके साथ ही मराठा विद्यार्थियों की परिषद् ने विद्यालयों के बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत किया। क्षत्रिय लोधी समाज और क्षत्रिय माली समाज ने भी अपनी-अपनी जातीय परिषदें कर राष्ट्रीय विचारधारा के समर्थक प्रस्ताव स्वीकार किये। इस प्रकार नागपुर प्रदेश में चारों ओर सर्वाङ्गीण राष्ट्रीय प्रगति दिखाई देने लगी।

यह देख कर सरकार ने दमन के साथ ही सरकार-भक्तों के सहयोग से "अमन सभा" स्थापित की। इन्ही दिनों "सुबोध माला" के सम्पादक श्री देशमुख ने पांच सौ रुपये की और श्री घोरपड़े द्वारा सम्पादित "विजय" से एक हजार रुपये की जमानत मांगी गई। तारीख १७ मार्च को प्रिंस आफ़ वेल्स के बंबई उतरते ही पूरे प्रान्त में हड़ताल की गई। स्थान-स्थान पर परिषदों का आयोजन कर लोक-जाग्रति का कार्य ज़ोरों से चलता रहा। इन दिनों महाराष्ट्र मे "मुलशी"

सत्याग्रह चल रहा था। यद्यपि यह काग्रेस-मान्य सत्याग्रह न था, तथापि सेनापति बापट, दस्ताने आदि के नागपुर आने पर इस प्रदेश के अनेक स्त्री पुरुषो ने स्वयसेवको के रूप में उक्त सत्याग्रह में योग देना स्वीकार किया।

दिसम्बर मास म श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर की अध्यक्षता में अकोला में नागपुर, विदर्भ, बम्बई, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रदेश की एक सयुक्त परिषद् हुई। इस परिषद् मे एक प्रस्ताव द्वारा काग्रेस की पूर्ण असहयोग नीति का विरोध किया गया, किन्तु इससे काग्रेस द्वारा सचालित आदोलन पर कोई प्रभाव न पडा।

इसके पश्चात् ही सरकार द्वारा धारा १४४ का प्रयोग होने के कारण मौलाना ताजुद्दीन की अध्यक्षता में भण्डारा जिला राजनीतिक परिषद् भण्डारा के स्थान में वहा से छ मील की दूरी पर स्थित एकलादी ग्राम में सफलतापूर्वक की गई। इस परिषद् में नागपुर-काग्रेस के निश्चय का समर्थन किया गया। प्रान्तीय काग्रेस कमेटी ने महात्मा भगवान-दीन, प सुन्दरलाल, अर्जुनलाल सेठी, माखनलाल चतुर्वेदी तथा वीर वामनराव जोशी का उनके द्वारा की गई राष्ट्रसेवा और इसके लिये सही गई जेल-योजनाओ के लिये बधाई दी।

विदर्भ के प्राङ्गण में—वैसे तो सन् १९२० की नागपुर-काग्रेस के पूर्व भी विदर्भ भारतीय स्वतत्रता के लिये किये जानेवाले प्रयत्नो में यथाशक्ति सहयोग देता रहा है, किन्तु इस प्रदेश में वास्तविक जाग्रति इस काग्रेस अधिवेशन के साथ ही आरम्भ हुई कही जानी चाहिये। श्री दादासाहेब खापर्डे लोकमान्य तिलक के सम्पर्क में आने के पश्चात् पूर्णरूपेण सग्राम-भूमि में उतर चुके थे, किन्तु सन् १९२० से विदर्भ का वास्तविक जन-नेतृत्व वीर वामनराव जोशी के ही हाथ में रहा। विदर्भ के ग्राम ग्राम में जाग्रति का शखनाद करने का श्रेय उन्हें ही है। उन्ही के सतत और कडे परिश्रम ने इस प्रदेश को भारतीय स्वतत्रता-सग्राम में अन्य प्रदेशो के कधे से कधा लगाकर खडा होने में समर्थ बनाया। परिणामस्वरूप वे धारा १२४ (अ) के अन्तर्गत राजद्रोह में गिरफ्तार किये गये और डेढ वर्ष के लिये जेल भेज दिये गये। वीर वामनराव जोशी के पश्चात् उनका स्थान ग्रहण करनेवाले बाबासाहेब परांजपे भी थे उसी धारा के अन्तर्गत डेढ वर्ष के लिये जेल भेज दिये गये, किन्तु इन दोनो जन-नायको के जेल चले जाने से आन्दोलन में शिथिलता न आ सकी। उनकी अनुपस्थिति में पार्वतीबाई पटवर्धन, चन्द्राताई शेवडे, केशवराव शालिग्राम, नत्थूजी महाजन, भगवानसिंह, मामा साहेब जोगलेकर, नाना भाई इच्छाराम, बापूसाहेब सहस्रबुद्धे, विश्वनाथपत कुटे, देवीदास पत महाजन, दाजी साहेब, वेदरकर, शामराव देशपाडे, पन्नालाल व्यास, पारसनीस, भीमसिंह आदि विदर्भ के विभिन्न स्थानीय कार्यकर्त्ताओ ने इस प्रदेश में राष्ट्रीय आदोलन का दीप प्रज्ज्वलित रखा। अमरावती के श्री मोहरील वकील वकालत छोडकर मृत्यु पर्यन्त विदर्भ प्रदेश काग्रेस कमेटी के मत्री का कार्य करते रहे। इन्ही दिनो बापूजी अणे, अकोला के दयाल दास चौधरी और पाढरकवडा के अब्दुल रौफशाह ने भी वकालत छोडकर राष्ट्रीय आदोलन में योग देना आरम्भ किया। कुछ अन्य व्यक्तियो ने भी सरकारी उपाधियो तथा अवैतनिक न्यायाधीशो के पद का त्याग किया। भेंट विचार के विरुद्ध जाग्रति, स्वदेशी प्रचार, विदेशी-बहिष्कार और राष्ट्रीय विद्यालयो की स्थापना विदर्भ प्रदेश के इन दिनो के प्रमुख कार्य थे। भाऊसाहेब सोहनी, पढरीनाथ अमुलकर, मनोहरपत दीवान, पुरवार आदि ने राष्ट्रीय विद्यालयो के सचालन में विशेष योग दिया। इनके अतिरिक्त श्री सहस्रबुद्धे, पण्डित, मगलमूर्ति और मल्हारराव चौधरी ने भी इन विद्यालयो के चलाने में बहुत कार्य किया।

ऐतिहासिक झण्डा सत्याग्रह—बैतूल परिषद् के पश्चात छिंदवाडा में श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में राजनीतिक परिषद् हुई, जिसमें डा राघवेन्द्रराव की प्रान्तीय कार्यकारिणी की तीव्र आलोचना की गई। फल-स्वरूप महाकोशल प्रान्त का नेतृत्व डा राव के हाथो से निकल कर प सुन्दरलाल के हाथ में गया और वे प माखनलाल चतुर्वेदी, दुर्गाशकर मेहता, केशव रामचद्र खाण्डेकर, लक्ष्मणसिंह चौहान आदि प्रान्त के प्रमुख जनसेवियो के सहयोग से जनता का नेतृत्व करने लगे। प सुन्दरलाल के सुदृढ और निर्भीक नेतृत्व से जनता में नवस्फूर्ति दिखाई देने लगी। उन्होने बैतूल परिषद में व्यक्त की गई अपनी झण्डा सत्याग्रह विषयक कल्पना को प्रथम जबलपुर में मूर्त स्वरूप दिया, किन्तु इसके पश्चात् ही उसे १ मई १९२३ से नागपुर में केंद्रित कर दिया। महाकोशल-नागपुर और विदर्भ के कोने-

कोने से स्वयंसेवकों के समूह आकर इस सत्याग्रह मे भाग लेने लगे। इस सत्याग्रह मे तीनों प्रदेशों के २७५५ स्वयं-सेवकों ने दण्ड पाया, जिन मे से लगभग एक हजार सत्याग्रही महाकोशल प्रान्त के थे। इनमें से भी चार सौ सत्याग्रही केवल बालाघाट जिले से आये थे। इस सत्याग्रह को आयोजित करने में पं. दुर्गाशंकर मेहता, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, केशव रामचंद्र खाण्डेकर, ठा. लक्ष्मणसिंह चौहान, करामत हुसेन और सुभद्राकुमारी चौहान ने विशष योग दिया। सरकार ने यह सत्याग्रह यशस्वी न होने देने के लिये साम, दाम, दण्ड, भेद नीति का पूरा-पूरा प्रयोग किया, किन्तु वह सफल न हुई। महाकोशल के अतिरिक्त नागपुर और विदर्भ प्रदेश मे ही नही, वरन उत्कल, बम्बई, आन्ध्र, बिहार, बंगाल, गुजरात, कर्नाटक आदि प्रदेशों से भी अनेक स्वयंसेवकों ने आकर इस सत्याग्रह मे भाग लिया और गिरफ्तार होकर जेल यात-नाएँ सही। महाकोशल के उपर्युक्त नेताओ के अतिरिक्त डा. चन्दूलाल डा घिया, डा. हार्डीकर, गोपालदास तलाठी, मोहनलाल पंड्या, परदाचारी इग्नेशियर आदि अन्य प्रातीय नेताओ ने भी इस सत्याग्रह में भाग लिया। इस सत्याग्रह को अनेक प्रान्तो से सहयोग प्राप्त होता देख उसे १८ जून से अखिल भारतीय रूप दे दिया गया। इसके पूर्व पं जवाहर-लाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, दरबार गोपालदास देसाई, जार्ज जोसेफ, विठ्ठलदास जयरामजी आदि देश के मान्य नेता नागपुर आकर परिस्थिति का अध्ययन कर चुके थे। सत्याग्रह का अखिल भारतीय रूप देखकर भारत सरकार भयभीत हो गई। उसने १७ जून को ही सत्याग्रह के प्रमुख संचालक श्री जमनालाल बजाज, महात्मा भगवानदीन और नीलकठराव देशमुख को गिरफ्तार कर लिया। स्वयंसेवको के शिविरों पर पुलिस का पहरा लगा दिया और १८ जून को सूर्योदय के पूर्व ही सब स्वयंसेवक गिरफ्तार कर लिये गये। नागपुर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री श्री आबिद अली के अतिरिक्त सर्वश्री गणपतराव टिकेकर और जैनेन्द्र कुमार भी गिरफ्तार कर लिये गये। प. माखनलाल चतुर्वेदी और टिकेकर युद्ध विभाग, केशव रामचंद्र खाण्डेकर प्रकाशन विभाग और श्री वासुदेवराव सुभेदार स्वयसेवक विभाग के संचालक थे। १० जुलाई को सर्वश्री सेठ जमनालाल जी बजाज, नीलकठराव देशमुख और आबिद अली को डेढ-डेढ़ वर्ष का कारावास दिया गया। सेठ जमनालाल जी बजाज पर तीन हजार और श्री नीलकंठराव देशमुख पर पन्द्रह सौ रु. जुर्माना भी हुआ। इसी समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक नागपुर मे हुई और उसमे इस नागपुर के झण्डा सत्याग्रह को सहायता देना निश्चित किया गया। २२ जुलाई को सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे झण्डा सत्याग्रह संचालित हुआ। श्री विठ्ठल भाई पटेल भी २३ जुलाई को नागपुर आ गये। सत्याग्रहियों के परिवारों की सहायता के लिये महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने दो हजार और मराठी मध्यप्रान्त ने पाच हजार रुपये प्रदान किये।

६ अगस्त को प्रान्तीय धारा सभा का अधिवेशन हुआ, जिसमे गवर्नर तथा तत्कालीन गृह सदस्य (होम मेंबर) सर मोरोपंत जोशी ने सरकारी दमन का समर्थन किया, जिसका बै. रामराव देशमुख ने प्रखर उत्तर दिया। सेठ शिवलाल ने सत्याग्रही कैदियो को विना शर्त जेल मुक्त करने का प्रस्ताव रखा, जो १९ के विरुद्ध ३१ मतो से अस्वीकृत हो गया। १८ अगस्त की रात्रि को सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता मे नागपुर-टाउनहाल मे एक विशाल सभा हुई, जिसमें वीर सत्याग्रहियों को बधाई दी गई और सत्याग्रह स्थगित करने की घोषणा की गई। इसके पश्चात् प्रायः सभी सत्याग्रही मुक्त कर दिये गये।

स्वराज्य पार्टी का आविर्भाव— कांग्रेस का गया अधिवेशन समाप्त होते ही ३१ दिसम्बर १९२२ को विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियो ने कांग्रेस के अन्तर्गत ही "स्वराज्य पार्टी" नामक एक संस्था को जन्म दिया। देशबन्धु चितरंजन-दास इस नई पार्टी के अध्यक्ष तथा पं. मोतीलाल नेहरू, विठ्ठलभाई चौधरी, खलीकुज्जमा मंत्री नियोजित हुए। कौन्सिलों मे प्रवेश कर उन्हे तोड़ना इस पार्टी का उद्देश्य था। तदनुसार महाकोशल मे सेठ गोविन्ददास की अध्यक्षता मे यह पार्टी स्थापित हुई और मराठी मध्यप्रान्त में पार्टी संघटित करने का कार्य डा. मुंजे और बै. अभ्यंकर को सौपा गया। हिन्दी मध्यप्रान्त और मराठी मध्यप्रान्त के इस पार्टी के अधिकांश उम्मीदवार कौसिल-निर्वाचन मे विजयी हुए। मध्यप्रांत धारासभा के

लोक निर्वाचित ७४ सदस्यो में से ३१ सदस्य स्वराज्य पार्टी के तथा ३ स्वराज्य पार्टी द्वारा सहायता-प्राप्त सदस्य थे। इस प्रकार धारा सभा के कुल ७० सदस्यो में मे ४२ सदस्य इस पार्टी के होने के कारण तत्कालीन गवनर सर फ्रेंक स्लाय ने कौंसिल-स्वराज्य पार्टी के नेता डा मुजे को मन्त्रिमण्डल बनाने को निमन्त्रित किया, किन्तु पार्टी का ध्येय पद-स्वीकृति न था, अत उन्होंने मन्त्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया। अत गवनर ने एक अल्पदलीय मन्त्रि-मण्डल बनाकर काय आरम्भ किया। पडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दास स्वय नागपुर आये और उन्होने स्वराज्य पार्टी के कौंसिल-सदस्यो को समयानुकूल सलाह दी। स्वराज्य पार्टी की ओर से मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखा गया, जो २४ के विरुद्ध ४४ मता स पारित हो गया और अध्यक्ष को धारासभा स्थगित कर देनी पडी। इसी बैठक में सरकार की ओर से प्रस्तुत आय-व्ययक पत्रक बहुमत से अस्वीकृत किया गया और डा खरे का ब्रिटिश माल के बहिष्कार का प्रस्ताव २२ के विरुद्ध ४० मतो से स्वीकृत किया गया। अब सरकार बिना मन्त्रिमण्डल के ही शासन करने लगी।

१५ फरवरी २५ को स्थिति पर स्वराज्य पार्टी के कत्तव्य पर विचार करने के लिये एक उपसमिति बनाई गई। सवश्री देशबन्धुदास, पडित जवाहरलाल नेहरू, श्री अणे, व अभ्यकर, ताम्बे, घनश्यामसिंह गुप्त, डा मुजे और डा खरे इस समिति के सदस्य थे। समिति ने अपनी ५ माच १९२५ की रिपोट में मन्त्रिमण्डल बनाने में सहयोग न देने और पूववत् ही कौंसिलो के सरकारी कार्यो मे रुकावट डालने की घोषणा की। महाराष्ट्र के श्री केलकर और जयकर तथा मध्यप्रदेश के श्री अणे और डा मुजे पहिले से ही पद ग्रहण के पक्ष में थे, अत एक वर्ष के पश्चात् ही "महाराष्ट्र" पत्र-द्वारा पद-ग्रहण का समथन आरम्भ हो गया। स्वराज्य पार्टी में फूट हो गई। डा मुजे, प रविशकर शुक्ल तथा डा खरे ने पद-ग्रहण के समथक सदस्यो को बहुत समझाने का प्रयत्न किया और सर मोरोपत जोशी की कौंसिल-अध्यक्ष पद की अवधि समाप्त होते ही स्वराज्य पार्टी के एक सदस्य श्री ताम्बे को अध्यक्ष बना दिया गया। श्री केलकर और जयकर ने ताम्बे के विश्वासघात पर उन्हें बधाई दी। इस स्थिति पर विचार करने के लिये ८ नवम्बर १९२५ को नागपुर में अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी की बैठक हुई, जिसमें वै अभ्यकर द्वारा प्रस्ताव उपस्थित करने पर श्री ताम्बे की भत्सना की गई और प्रस्ताव बहुमत से पारित हुआ। श्री केलकर और जयकर ने पार्टी से त्यागपत्र दे दिया। कानपुर-काग्रेस के पश्चात डा मुजे और श्री अणे ने भी पार्टी से त्यागपत्र दे दिया।

नागपुर की बैठक में ही प्रति सहकार दल का जन्म हो चुका था। १९२८ के अप्रैल मास में साबरमती में स्वराज्य दल और प्रति सहकार दल में बडे प्रयत्न से समझौता हुआ, पर सभा समाप्त होते ही यह समझौता भी समाप्त हो गया। इसके बाद महाकोशलमें सेठ गोविन्ददास की अध्यक्षतामें स्वराज्य दल और डा राघवेन्द्रराव की अध्यक्षतामें स्वतन्त्र दल का काय तथा मराठी मध्यप्रदेश में व अभ्यकर के नेतृत्व में स्वराज्यदल एव डा मुजे के नेतृत्व में स्वतन्त्र दल का काय आरम्भ हो गया। काग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में काग्रेस ने स्वराज्य दल को पूर्ण सहयोग देने का प्रस्ताव किया। परिणाम-स्वरूप इस दल की शक्ति बहुत बढ गई और स्वतन्त्र दल के पूर्ण शक्ति लगाने पर भी प्रान्तीय तथा केन्द्रीय धारा सभा में स्वराज्यदल के उम्मीदवार बहुत बडी सख्या में पहुच गये। हमारे प्रात में इस दल की विजय का श्रेय महाकोशल के सवश्री सेठ गोविन्ददासजी, प द्वारकाप्रसाद मिश्र, घनश्यामसिंह गुप्त, प माखनलाल चतुर्वेदी, प केशव रामचन्द्र खाण्डेकर, सेठ शिवदास डागा और प विश्वनाथ दामोदर साल्पेकर को तथा मराठी मध्यप्रदेश के सवश्री वै अभ्यकर, नीलकठराव उधोजी, डा खरे आदि को है।

सशस्त्र सत्याग्रह—सन् १९२४ से १९२७ तक अग्रेजो की कूटनीति के कारण भारत के अनेक स्थानो में हिन्दू-मुस्लिम दगे हुए। इसबीच होनेवाले जबलपुर और नागपुर के इन साम्प्रदायिक दगो में भी अनेक व्यक्तियो के प्राण गये।

सन् १९२८ में देश के अन्य प्रान्तो की तरह हमारे प्रान्त में भी सायमन कमीशन का बहिष्कार किया गया। १४ माच को कमीशन के नागपुर स्टेशन पर उतरते ही लगभग १० हजार मनुष्यो ने "साइमन चले जाओ" के नारे लगाकर उसके आगमन का विरोध किया। इस जन-समूह में प्रान्त के अनेक नेता भी उपस्थित थे। सेठ गोविन्ददास और प द्वारकाप्रसाद मिश्र भी उन्ही में से थे।

इसके पश्चात् ही नागपुर के श्री मंचेरशा अवारी ने सशस्त्र सत्याग्रह आरम्भ किया। वे २४ मई को गिरफ्तार किये गये और उन्हे विभिन्न चार भाषणों तथा सत्याग्रह के कारण ४ जून को चार वर्ष की सख्त सजा सुना दी गई। श्री अवारी के गिरफ्तार होने पर सर्वश्री रुईकर, ढवळे और तिजारे ने सशस्त्र सत्याग्रह का नेतृत्व किया। यह सत्याग्रह २ जुलाई तक चलता रहा। इसी वर्ष कांग्रेस ने अपने मद्रास-अधिवेशन मे डा. अन्सारी की अध्यक्षता में सर्वप्रथम स्वतंत्रता का प्रस्ताव पारित किया था।

इसी वर्ष जून मास में श्री ब्रेडले की अध्यक्षता मे नागपुर मे मध्यप्रदेश किसान परिषद् हुई, जिसके स्वागताध्यक्ष डा. खरे थे। २१ अक्टूवर को वै. अभ्यकर और श्री भवानीशकर नियोगी के प्रयत्न से नागपुर के शुक्रवारी तालाव के समीप डा अन्सारी के हाथो लोकमान्य तिलक की मूर्ति का अनावरण हुआ। ३० नवम्बर को पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में आल इंडिया ट्रेड यूनियन का अधिवेशन नागपुर मे हुआ।

सन् १९२९ में सेठ गोविन्ददास की अध्यक्षता मे महाकोशल कांग्रेस कमेटी का संगठन नये सिरे से हुआ। वावू गोविन्ददास इसके अध्यक्ष और पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र मंत्री निर्वाचित हुए। इसी वर्ष स्वतंत्र दल से पं. रविशंकर शुक्ल और ठा. छेदीलाल पुन. कांग्रेस में आये। सन् १९३० मे रायपुर में महाकोशल प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् हुई। परिषद् के माननीय अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू रायपुर आते समय इरादत गंज मे गिरफ्तार कर लिये गये, जिससे परिषद् का कार्य वावू गोविन्ददास की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर पं. माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में यहा प्रान्तीय युवक परिषद् भी आयोजित की गई। ३१ दिसम्बर १९२९ को कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन में अर्ध रात्रि को पं. जवाहरलाल नेहरू ने अध्यक्ष पद से "पूर्ण स्वतंत्रता" की घोषणा की और २६ जनवरी १९३० को देश के सभी प्रमुख स्थानो मे प्रथम "स्वतंत्रता दिवस" वड़े समोराह से मनाया गया और प्रान्त की जनता को लाहौर-कांग्रेस का संदेश देने के लिये जन-सेवको ने दौरा आरंभ कर दिया। महाकोशल में वावू गोविन्ददास, प द्वारकाप्रसाद मिश्र, पं. रविशंकर शुक्ल, श्री घनश्यामसिह गुप्त आदि, नागपुर प्रदेश में वै. अभ्यंकर, महात्मा भगवानदीन, पूनमचंद रांका, सेठ जमनालाल वजाज, नीलकंठराव देशमुख आदि और विदर्भ मे दादासाहेव गोले, ब्रिजलाल वियाणी, हरिराव देशपाडे, वीर वामनराव जोशी, वापू साहेव सहस्रवुद्धे आदि अपने-अपने क्षेत्र मे घूम-घूम कर जन-जागरण मे व्यस्त हो गये। श्री गोले और श्री वियाणी ने लाहौर-कांग्रेस के निर्णय के अनुसार प्रान्तीय धारा सभा से त्यागपत्र दे दिया। श्री अणे ने धारा सभा से त्यागपत्र न दे विदर्भ प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद से ही त्यागपत्र दे दिया और उनके स्थान मे वीर वामनराव जोशी अध्यक्ष निर्वाचित हुए.

भद्र अवज्ञा आंदोलन—महात्मा गांधी ने ३० जनवरी के "यंग इण्डिया" में अपना ग्यारह मागोवाला लेख प्रकाशित किया और अपनी मागो की पूर्ति न होने पर आरभ किये जाने वाले स्वातत्र्य-युद्ध की रूपरेखा भारत सरकार के सामने रखी, किन्तु इसका कोई परिणाम न होने के कारण उन्होंने कानून भग सत्याग्रह अथवा भद्र अवज्ञा आदोलन की घोषणा कर दी। वे ११ मार्च को दाडी नामक नमक-निर्माण केन्द्र की ओर पैदल चल पड़े। यह समाचार सुनते ही भारत के कोन-कोने मे सत्याग्रह हलचल की वायु वहने लगी और प्रत्येक प्रान्त में जोरों से तैयारी आरम्भ हो गई। कांग्रेस कमेटिया भंग कर दी गई और उनके स्थान पर युद्ध समितियों का निर्माण हो गया। महाकोशल मे सेठ गोविन्ददास की अध्यक्षता मे प्रान्तीय युद्ध समिति का निर्माण किया गया। ६ अप्रैल १९३० को सेठ गोविन्ददास के नेतृत्व मे एक विशाल जुलूस निकला और १३ मील दूर स्थित रानी दुर्गावती की समाधि के समीप पहुंच कर स्वयंसेवको तथा नेताओं ने कांग्रेस-प्रतिज्ञा का पालन करने की शपथ ली। ८ अप्रैल को जवलपुर, सिहोरा, कटनी, मण्डला, दमोह और रायपुर मे नमक वना और वेचकर नमक-कानून तोड़ा गया। इसके पश्चात् प्रातीय युद्ध समिति ने जंगल-कानून तोड़ने का कार्यक्रम वनाया। प्रथम जंगल सत्याग्रह वैतूल मे करना निश्चित हुआ और श्री घनश्यामसिह गुप्त इस सत्याग्रह के प्रथम सेनानी नियुक्त हुए, किन्तु कुछ कारणों से उनके निश्चित तिथि पर उपस्थित न होने से वैतूल के वावू दीपचंद गोठी ने चिखलार के सरकारी जगल से घास काटकर जंगल-कानून तोड़ा। इसके पश्चात् वैतूल जिले मे जंगल सत्याग्रह की

बाट आ गयीं। बजारी ढाल, फिंगी, जम्वाडा, उत्तम सागर आदि स्थानो में स्त्री-पुरुषो ने कानून भग किया। इनमें से सबसे प्रसिद्ध सत्याग्रह बजारी टाल का था, जहा सहस्त्रा गोंड स्त्री-पुरुषो ने सरदार गजनसिंह के नेतृत्व में एक साथ सरकारी जगल पर आक्रमण कर उसे काटना आरम्भ कर दिया। यहा पुलिस ने बडी निर्दयता से गोली चलाई, जिसमें सकडो सत्याग्रही जख्मी हुए और तीन सत्याग्रहियो का घटनास्थल पर ही प्राणान्त हो गया। इन्ही दिनो जम्वाडा में भी गोली चलाई गई, जिसमें दो सत्याग्रहियो की मृत्यु हो गई। सिवनी के टूरिया ग्राम के समीप होनेवाला जगल सत्याग्रह भी महाकोशल के इतिहास में उल्लेखनीय है। यहा पुलिस अपनी पूरी तयारी के साथ भी जगल सत्याग्रह न रोक सकी और अन्त में चिढकर उसे गोली चलानी पडी। परिणामस्वरूप पाच व्यक्तियो का प्राणान्त हो गया, जिसमे तीन स्त्रिया थी। अनेको घायल हुए।

२९ अप्रल को बाबू गोविन्ददास, प रविशकर शुक्ल, प द्वारकाप्रसाद मिश्र, प माखनलाल चतुर्वेदी और श्री विष्णुदयाल भार्गव गिरफ्तार कर लिये गये। पर इससे आदोलन को बल ही मिला। स्थान-स्थान पर जब्त साहित्य पढकर भद्र अवज्ञा की गई। प्रान्त के अनेक स्थानो पर १४४ धारा लगा दी गई और लाठी चार्ज कर सभाए भग की गई। जबलपुर में "जवाहर दिवस" मनाने के लिये सोहागपुर के श्री सयद अहमद की अध्यक्षता में एक सभा हुई। इस सभा को भग करने के लिये भी पुलिस ने लाठी चलाई और श्री सयद को गिरफ्तार कर लिया। जबलपुर के ससरवा ग्राम म भी एक जमाव पर लाठिया चलाई गई।

जबलपुर में टिमलरी पर धरना दिया गया, जो लगभग १५ दिन तक चलता रहा। जबलपुर के ही नही पर महाकोशल के अन्य स्थानो के स्वयसेवको ने भी इसमें योग दिया। सत्याग्रहियो को तितर-बितर करने के लिये पहिले लाठिया चलाई गई, पर इससे कोई लाभ न होता देख पुलिस ने गोलिया चलाई, जिसमें अनेक व्यक्ति जख्मी हुए। इस वर्ष प्रातीय सरकार को मदिरा-बहिष्कार स होनेवाली हानि ५० लाख रु बतलाई जाती है।

इन्ही दिनो सरकार ने महाकोशल के 'लोकमत, कर्मवीर' और 'स्वदेश' पत्र पर प्रहार किया। इस भद्र अवज्ञा आदोलन में पूर्ण महाकोशल से २,७५५ काग्रस-सेवक गिरफ्तार हुए और उन्हें जेल-यातना सहनी पडी। इनमें सबसे लम्बी अवधि का दण्ड पाने वाले जबलपुर के प बालमुकुन्द त्रिपाठी थे, जिन्हें तीन वर्ष के सख्त कारावास की सजा दी गई।

मराठी मध्यप्रात की सेवा भी महाकोशल से कम न रही। महात्मा गाधी के दाडी में नमक-कानून भग करते ही नागपुर के श्री भैयाजी सहस्त्रबुद्धे के नेतृत्व में ६ अप्रैल को सवश्री रानडे, डागरे, वाघमारे, ढोक आदि का एक जत्था दहीहडा स्थान को रवाना हुआ और वहा उन्होने १३ अप्रैल को नमक-कानून तोडा। १६ अप्रैल को नागपुर प्रान्तीय युद्ध समिति की ओर से व अभ्यकर, डा खरे, महात्मा भगवानदीन, सेठ जमनालाल बजाज, नीलकण्ठराव देशमुख और पूनमचद राका ने युद्ध की घोषणा की। व अभ्यकर ने नागपुर में नमक-कानून तोडा और इसके पश्चात् प्रान्त के सभी प्रमुख स्थानो में भद्र अवज्ञा आदोलन आरम्भ हो गया। डा खरे, उनकी पत्नी और पुत्र ने नासिक में अवैध नमक बेचकर कानून तोडा। ९ मई को वै अभ्यकर ने "भारत में अंग्रेजी राज्य" नामक जब्त पुस्तक का कुछ भाग सार्वजनिक सभा में पढकर कानून तोडा। इसके पश्चात् पूरे प्रान्त में कानून भग करने के लिये २१ मई का दिन निश्चित किया गया और तदनुसार कही अवध नमक बनाकर, उसे बेचकर और कही जब्त साहित्य का प्रचार कर कानून तोडा गया। इस एक ही दिन नागपुर में तेरह सभाए की गई और जब्त साहित्य पढा गया। प्रान्तीय युद्ध समिति के सदस्य महात्मा भगवानदीन १८ मई को जबलपुर में और २९ मई को वै अभ्यकर नागपुर में गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये। इसके विरोध में दूसरे दिन एक विशाल जुलूस निकाला गया और चिटनवीस पार्क में सभा की गई, जिसमें लगभग २० हजार व्यक्ति उपस्थित थे। ७ जून को अभ्यकर को २ वर्ष का सपरिश्रम कारावास और १,५०० रु जुर्माने की सजा सुना दी गई।

१८ जून को श्री भैयाजी सहस्रबुद्धे के नेतृत्व में एक जत्था धरसाना रवाना हुआ, जो मार्ग में जलगाव के समीप ही गिरफ्तार कर लिया गया। २१ जून को डाक्टर खरे के नासिक से लौटने पर शराव की दुकानों पर धरना देने का कार्य आरंभ हुआ। यह कार्य एक महीने तक तेजी से चलता रहा। २१ जुलाई को डा. खरे, वावासाहेव देशमुख, श्री पूनमचद रांका और आचार्य धर्माधिकारी गिरफ्तार कर लिये गये। इसके पश्चात् श्री वाचासुन्दर के नेतृत्व मे विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन चला। परिणामस्वरूप नागपुर की १२५ कपड़ो की दुकानों में से १०० दुकानों के स्वामियों ने विदेशी वस्त्रो की गाठो पर मुहर लगा दी। इस आदोलन मे क्रिश्चियन असोशिएशन, स्टूडेंट्स यूनियन, नाभिकोदय मंडल, दलित युद्ध मडल आदि ने भी महत्वपूर्ण योग दिया।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आदोलन के पश्चात् जंगल सत्याग्रह का कार्यक्रम बना और वर्धा, आर्वी, तलेगांव, कोंढाली, काटोल, उमरेड आदि स्थानों मे सत्याग्रह शिविर आरम्भ किये गये। २४ जुलाई को श्री टिकेकर के नेतृत्व मे एक वड़ा जत्था तलेगांव के सरकारी जंगल मे सत्याग्रह करने को रवाना हुआ और उसने १ अगस्त को वहां घास काटकर सत्याग्रह किया। इस अवसर पर वहा लगभग ३० हजार जनता उपस्थित थी। सर्वश्री टिकेकर, तुलसीराम लोधी, अव्दुल रफीक और लक्ष्मण गंभीरा गिरफ्तार कर लिये गये। इसके पश्चात् सरकारी दमन का चक्र जोरों से घूमने लगा। प्रतिदिन ढूढ-ढूढ कर कांग्रेस कार्यकर्ता गिरफ्तार किये जाने लगे, फिर भी श्री छगनलाल भारुका और श्री राजाभाऊ डागरे के नेतृत्व मे प्रांत के अनेक स्थानों में जंगल-सत्याग्रह किये गये। ३ अगस्त से १० अगस्त तक "बहिष्कार सप्ताह" झण्डा दिवस, बहिष्कार दिवस, पिकेटिंग दिवस, गाधी दिवस, महिला दिवस, गढ़वाल दिवस और राजवंदी दिवस के रूप मे मनाना निश्चित किया गया। सरकार ने गढवाल दिवस के दिन निकलनेवाले जुलूस को १४४ धारा लगाकर अवैध घोषित कर दिया। जनता को भयभीत करने के लिये प्रातः काल से ही पूरे शहर में सशस्त्र पुलिस और घुड़सवार सैनिको का चक्कर आरंभ हो गया और कांग्रेस-कार्यालय के सामने सशस्त्र पुलिस की पक्ति खडी कर दी गई। श्री भारुका २५ स्वयंसेवको के साथ कांग्रेस कार्यालय से निकले। मार्ग मे सैकड़ों नागरिक एकत्र थे। कोतवाली के समीप पहुचने पर श्री भारुका तथा चादा के सेठ खुशालचन्द, आपाजी गाधी आदि गिरफ्तार कर लिये गये। इसके पश्चात् स्वयंसेवकों का एक दूसरा जत्था कांग्रेस-कार्यालय से निकला, जिसे पुलिस ने रोक लिया। वह जत्था रोके हुए स्थान पर ही वारह वजे रात्रि तक वैठा रहा। इसके पश्चात् चार स्वयसवको ने कांग्रेस-कार्य-कारिणी का ६ ठा प्रस्ताव पढ़ा और वे गिरफ्तार कर लिये गये। इसके अनन्तर पुलिस के हटते ही एक जुलूस चिटनवीस पार्क मे गया। पूरी पुलिस शक्ति कांग्रेस-कार्यालय से कोतवाली तक ही एकत्र थी। अत शहर के शेष भाग मे आठ-आठ दस-दस स्वयंसेवकों के जत्थों ने काले झंडे के साथ घूमकर गढ़वाल दिवस निर्विघ्न मनाया।

श्री भारुका के पश्चात् श्री कानिटकर युद्ध समिति के अध्यक्ष बने। वे १५ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये। इसके विरोध मे लगभग १०० विद्यार्थियो ने विद्यालय और महाविद्यालय छोडकर प्रचार-कार्य आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् श्री सालवे के नेतृत्व में प्रान्त मे जगल सत्याग्रह होता रहा। २५ अगस्त को पूरे प्रान्त मे सामूहिक जंगल सत्याग्रह किया गया जिसमे प्रान्त के लगभग ७५ हजार व्यक्तियो ने भाग लिया। इन्ही दिनों लोकमत की उपेक्षा कर डा. मुंजे और श्री तावे गोलमेज परिषद् मे गये। प्रान्त के अनेक स्थानो मे सभा कर इन दोनो की निन्दा की गई। श्री सालवे के पश्चात् युद्ध समिति के अन्य संचालक सर्वश्री प्रो जोगलेकर, शेरलेकर, अनुसूयावाई काले आदि भी जेल गये। श्रीमती अनुसूयावाई के प्रोत्साहन से अनेक महिलाओं ने भी आंदोलन में प्रवेश किया और वे पुरुषों के कधे से कंधा लगाकर काम करने लगी। चन्द्रभागावाई पटवर्धन, सुशीलावाई गाडगिल, कमलावाई हास्पेट, विद्यावती देवड़िया, वत्सला कर्णिक कु. विमलाताई अभ्यंकर, गोधूताई जोगलेकर, गंगावाई चौवे आदि इनमे प्रमुख थी।

१० नवम्वर को कौसिल-बहिष्कार दिवस मनाया गया। इस दिन लगभग ४०० स्वयंसेवक, २०० स्वयंसेविकाये और ५०० वालको की वानर सेना ने विभिन्न निर्वाचन-केन्द्रों मे धरना दिया। पुलिस ने डण्डो और वेतो का उपयोग किया। श्रीमती अनुसूयावाई काले टाउनहाल के पास कुछ स्वयं सेविकाओ सहित गिरफ्तार कर ली गई।

वानर सेना के सेनापति श्री प्रभाकर साखरदांडे को बेंतें लगाई गईं। १२ नवम्बर को १७ कार्यकर्ता गिरफ्तार किये गये, जिनमें सवश्री चतुर्भुजदास, घुले, वैद्य, मगलचन्द, बाबागुदर, हुम्मसजी, मोतीसिंह, भोलासाव, मगनलाल पाटनी, कृपाशंकर नियोगी आदि थे। इस धरने के कारण २५ हजार मतदाताओं में से केवल १,१३७ मतदाता ही मतदान कर सके।

इसके पश्चात् २०,२१ और २२ नवम्बर को शराब की दुकानें नीलाम होने वाली थी। इन दिनों युद्ध समिति ने इसके विरुद्ध प्रचार किया। परिणामस्वरूप सरकार को बहुत हानि उठानि पडी। श्रीमती अनुसूयाबाई काले के पश्चात् युद्ध समिति के दूसरे अध्यक्ष श्री कमाविसदार, आप्पासाहेब हलदे, पाढरीपाण्डे, कालीचरण सराफ आदि भी गिरफ्तार कर लिये गये।

महाकोशल और नागपुर प्रान्त की तरह विदर्भ में भी एक प्रान्तीय युद्ध समिति का निर्माण किया गया। वीर वामनराव जोशी समिति के अध्यक्ष और श्री ब्रिजलाल बियाणी मंत्री थे। सवश्री डा पटवर्धन, दादासाहेब सहस्रबुद्धे पुरुषोत्तम भुनभुनवाला, दुर्गाबाई जोशी, ताराबेन मशूवाला, त्र्यम्बकराव जोशी, गारडगावकर और आवुलकर समिति के सदस्य थे। प्रान्तीय युद्ध समिति ने अपनी २६ मार्च की बैठक के निर्णय के अनुसार विदर्भ की जिला कांग्रेस कमेटिया भंग कर उनके स्थान में जिला युद्ध समितिया बना दी। अमरावती जिला युद्ध समिति ने डा भोजराज, बुलढाना जिला युद्ध समिति ने डा पारसनीस और यवतमाल जिला युद्ध समिति ने बच्चू महाराज की अध्यक्षता में कार्य आरंभ कर दिया। अकोला प्रान्तीय युद्ध समिति का प्रधान केन्द्र था। १० जून के पश्चात् श्री बापूजी अणे यवतमाल युद्ध समिति के अध्यक्ष हुए। ३१ मार्च को श्री बापूसाहेब सहस्रबुद्धे ने अकोला के तिलक विद्यालय तथा सरस्वती मंदिर के विद्यार्थियों एव कुछ स्वयसेवको को शिक्षण देने के लिये शिविर आरम्भ किया। इसके पश्चात् अमरावती और खामगाव में भी स्वयसेवक शिक्षण शिविर आरम्भ किये गये। नमक-कानून भंग करने के लिये १३ अप्रल को दहीहांडा ग्राम में प्रान्तीय केन्द्र खोला गया। विदर्भ के सभी जिला में नमक-सत्याग्रह की सुविधा न थी, जिससे प्रत्येक जिले को दहीहांडा में ही नमक-कानून भंग करने के लिये एक एक सप्ताह दिया गया। २७ अप्रैल को चारो जिला के केन्द्र-स्थाना में और २८ अप्रैल को सब तहसीलो के केन्द्रस्थानो में दहीहांडा से खारा पानी भेज कर नमक-कानून तोडने की व्यवस्था की गई। इसी प्रकार १० मई को कुछ ग्रामो में भी नमक कानून तोडा गया।

पूर्व निश्चयानुसार १३ अप्रल को दहीहांडा में नमक-कानून तोडने के लिये १० अप्रल को श्री बापूसाहेब सहस्रबुद्धे के नेतृत्व में एक दल पदल रवाना हुआ। इस दल को अकोलावासियो ने शानदार विदाई दी। इस दल के दहीहांडा पहुचने पर १२ अप्रल को वहा एक विराट सभा हुई, जिस में निकटस्थ-ग्रामो के हजारो स्त्री-पुरुष एकत्र थे। दूसरे दिन निश्चित समय पर सत्याग्रह कर कानून-भंग किया गया। सरकार बिलकुल मौन थी। यहा बनाया नमक अकोला, अमरावती और नागपुर में खुले आम बेचा गया। २१ अप्रैल को श्रीमती दुर्गाताई जोशी के नेतृत्व में वयोवृद्धा यशोदाबाई आगरकर, विजयालक्ष्मी मशूवाला, काशीताई लिमये आदि ने भी नमक-कानून भंग किया। यह देखकर अमरावती में डा कुमारी जावडेकर तथा यवतमाल में श्रीमती आनंदीबाई दामले के नेतृत्व में भी कुछ महिलाओ ने नमक-कानून भंग किया।

श्री सहस्रबुद्धे के दल के पश्चात् दूसरे सप्ताह में अमरावती के दल ने डा शिवाजीराव पटवर्धन के नेतृत्व में और तृतीय सप्ताह में बुलडाना के दल ने श्री कृष्णराव गारडगावकर के नेतृत्व में नमक-कानून भंग किया। इसके पश्चात् जैसा कि पहिले बतलाया गया है जिले के केन्द्रो, तहसील के केन्द्रो और कुछ ग्रामो में भी नमक-कानून भंग किया गया। श्री बापूजी अणे ने महात्मा जी के नमक-सत्याग्रह के पश्चात् असेम्बली से त्यागपत्र दे दिया और प्रान्तीय युद्ध समिति के एक सदस्य के रूप में २७ अप्रल को यवतमाल में नमक-कानून भंग किया।

चतुर्थ सप्ताह में पढरीनाथ अबुलकर के नेतृत्व में अकोला और यवतमाल जिले के स्वयसेवको ने दहीहांडा में नमक-सत्याग्रह किया। ५ जून को नागपुर और विदर्भ के कुछ चुने हुए सत्याग्रही श्री अबुलकर

के नेतृत्व मे धरासना नमक केन्द्र पर पर धावा वोलने के लिये रवाना हुए, किन्तु वे यवतमाल में ही वम्वई-पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिये गये।

नमक-सत्याग्रह मे सरकार द्वारा कोई हस्तक्षेप न होता देखकर विदर्भ युद्ध समिति ने जव्त साहित्य के प्रचार द्वारा कानून भंग करना निश्चित किया और १८ मई को प्रान्त के सभी प्रमुख स्थानो में यही कार्य किया गया, पर सरकार ने इस कार्य मे भी हस्तक्षेप न किया। अतः युद्ध समिति ने जंगल-सत्याग्रह आरम्भ करना निश्चित किया। लगातार दो मास के प्रान्तव्यापी प्रचार के पश्चात् प्रथम सत्याग्रह १० जुलाई को पुसद मे करना निश्चित हुआ। तदनुसार श्री वापूजी अणे ने धुदी नामक ग्राम के समीप के सरकारी जगल का घास काटकर सहस्रों नागरिको की उपस्थिति में जंगल-कानून भंग किया। श्री अणे तथा उनका दल धारा ३७९ के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे छः-छः मास का कारावास दे दिया गया। दूसरे दिन श्री वापू साहव सहस्रवुद्धे और उनके दल को जंगल कानून तोड़ने पर छः-छः मास की कैद की सजा दी गई। इसके पश्चात् सर्वश्री गोविन्दशास्त्री जोगलेकर, रामचंद्र वलवन्त जोशी तथा गगाधर हिवरीकर के नेतृत्व मे जगल सत्याग्रह हुए और उन सवको भी कारावास का दण्ड दिया गया। इसके पश्चात् विदर्भ के अन्य स्थानों में सत्याग्रह न होने देने के उद्देश्य से सर्वश्री व्रिजलाल वियाणी, डा. पटवर्धन, डा. सोमण, दादासाहव गोले आदि विदर्भ के प्रमुख जन-सेवियों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया, किन्तु इससे सत्याग्रह की प्रगति न रुक सकी। अमरावती जिला युद्ध समिति के अध्यक्ष डा. भोजराज ने वडाली के जंगल में सत्याग्रह किया। उन्हे उनके दल सहित गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। दूसरे दिन दुर्गाताई जोशी के नेतृत्व मे जंगल सत्याग्रह हुआ, पर कोई गिरफ्तार न किया गया। तृतीय दिवस श्री रामगोपाल के नेतृत्व मे द्वितीय दिवस के दल ने ही वडाली मे सत्याग्रह किया और जेलयात्री हुए। इस प्रकार ७ दिन तक लगातार भिन्न-भिन्न दलों द्वारा वडाली में जंगल सत्याग्रह चलता रहा।

२४ जुलाई को डा. पारसनीस के नेतृत्व मे खामगांव के समीप जनूना ग्राम के जंगल में सत्याग्रह किया गया। डाक्टर साहव अपने दल सहित गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। जिला युद्ध मत्री श्री कोरडे गुरुजी भी पकड़ लिये गये। डा. पारसनीस को छः मास की और कोरड गुरुजी को एक वर्ष की सख्त कैद की सजा सुना दी गई। फिर भी सात दिनों तक सत्याग्रह चलता ही रहा। पांचवें युद्धाधिकारी श्री वामणगांवकर भी गिरफ्तार हो चुके थे; इस लिये श्री श्रीराम सूरजमल के नेतृत्व मे अकोला से चार मील पर स्थित लोणी ग्राम के समीप के जंगल में सत्याग्रह किया गया। वे सत्याग्रह करने पर अपने दल सहित गिरफ्तार कर लिये गये और प्रत्येक को छः-छः महीने की सजा दे दी गई, पर इसके पश्चात् भी यहां एक सप्ताह तक जंगल सत्याग्रह होता ही रहा और युद्धमंत्री हरिराव देशपाण्डे के अतिरिक्त दादा-साहव पण्डित, सदाशिवराव चिंचोलकर, रामभाऊ वोरकर, गोविंदराव सोहनी आदि भी गिरफ्तार कर जेल भेजे गये।

इसके पश्चात् करडगांव, चौसाला, परमोड़ा, दारव्हा आदि स्थानो में भी जंगल सत्याग्रह आयोजित किये गये और अनेक देश-सेवक जेल में वंद कर दिये गये। अमरावती में वडनेरा, गणोजा, देऊरवाडा, सुरली वोराला, चांदुर वाजार, रंगारवासनी, नेरपिंगलाई, वरुड, लोणी, दाभीरी, थुगाव, यावली, अचलपुर, चादुर, माझरी, दर्यापुर, दहीगांव, निमखेडा आदि, वुलढ़ाना जिले मे जलगांव, राजुर, जामोद आदि, अकोला जिले मे पारस, वोरगांव, कुरूम, कारंजा, जामठी आदि स्थानों मे जंगल सत्याग्रह के दिनो मे वड़ा जोश रहा और वहां के कांग्रेस-कार्यकर्ताओं ने इस भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध में महत्वपूर्ण योग दिया।

इसी वर्ष रायपुर और वैतूल की डिस्ट्रिक्ट कौंसिले तथा प्रान्त की कुछ नगरपालिकाएं राजनैतिक कारणों से सरकार द्वारा भंग कर दी गईं।

कानून-भंग सत्याग्रह का दूसरा दौर

गांधी-इर्विन समझौते के अनुसार मद्र अथवा आंदोलन के अधिकांश राजबंदी छोड़ दिये गये, किन्तु सर सेम्युअल होर के हाथ में भारत का शासन सूत्र आते ही पुन: यहां सरकारी दमन आरम्भ होगया। बंगाल और युक्त प्रान्त में दमन का चक्र जोरों से घूमने लगा। लंदन की गोलमेज कान्फ्रेंस असफल होने से सरकार चिढ़ गई और उसने अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर कांग्रेस को शक्तिहीन कर देना चाहा। जनवरी १९३२ के प्रथम सप्ताह में भारत सरकार ने अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं को अवैध घोषित कर दिया। बाबू सुभाषचंद्र बोस, पं. जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि एक के पश्चात् दूसरे नेता गिरफ्तार कर लिये गये और विशेष कानून जारी कर सरकारी आतंक छा दिया। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी पर जबलपुर की तिलक-भूमि में एक सभा आयोजित की गई। अधिकारियों ने धमकी दी कि यदि सभा में सरकार के विरुद्ध कुछ भी बोला गया तो सभा अवैध घोषित कर दी जायगी। जनता और नेता चार दिन और रात वहां बैठे रहे। चौथे दिन जुलूस निकालने पर सरकार ने इस जुलूस को अवैध घोषित कर दिया और पुलिस ने अकारण ही लाठियां चला दीं। बाबू गोविन्ददास, पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र और लक्ष्मण सिंह चौहान तथा बाबा हीरालाल गिरफ्तार किये गये। तिलक भूमि में फहराता राष्ट्रीय झंडा गिरा दिया गया। दूसरे दिन न केवल तिलक-भूमि में और शहर के सैकड़ों घरों के सामने भी तिरंगा लहरा उठा। सागर और रायपुर में भी लाठियां चलीं और नेतागण गिरफ्तार किये गये। महाकोशल के अन्य जिले भी गिरफ्तारी से न बचे। सभी स्थानों के अधिकांश कार्यकर्ता गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये।

नागपुर में तारीख ४ जनवरी से ही दैनिक सभाएं आरंभ हो गई थीं। सरकार से मोर्चा लेने के लिये बैरिस्टर अभ्यंकर की अध्यक्षता में पुन: एक युद्ध-समिति संगठित की गई। श्री पूनमचंद रांका समिति के मंत्री, महात्मा भगवानदीन कोषाध्यक्ष और आचार्य धर्माधिकारी तथा राजाभाऊ डागरे सदस्य थे। तारीख ९ जनवरी को समस्त पदाधिकारी और सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। उसी दिन एक सभा में भाषण देने के कारण श्रीमती विद्यावती देवड़िया, चन्द्रभागाबाई पटवर्धन और सुशीलाबाई गाडगिल भी गिरफ्तार की गईं। तारीख १० जनवरी को तिलक विद्यालय, कांग्रेस भवन और असहयोग आश्रम अवैध घोषित कर दिये गये। तारीख १५ जनवरी तक नागपुर के लगभग १२८ कांग्रेस कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये। जनता को भय दिखाने के लिये बैरिस्टर अभ्यंकर और सेठ पूनमचंद रांका पर दस-दस हजार रुपये जुर्माना किया गया। अन्यों को भी दो-दो वर्ष की सजा देने के साथ ही दो-दो तीन-तीन सौ रुपया जुर्माना किया गया। डा. गौर की अध्यक्षता में बार असोसिएशन ने इस दमन का विरोध किया। पं. काशीप्रसाद पाण्डे ने भी प्रान्तीय धारा सभा में कार्य-स्थगन का प्रस्ताव किया। नागपुर प्रान्त के अन्य स्थानों के भी कांग्रेस कार्यकर्ता गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये। किन्तु इस भीषण दमन के पश्चात् भी सरकार राष्ट्रीय आंदोलन बंद न कर सकी। अखिल भारतीय और प्रान्तीय कार्यालयों में ही नहीं, पर जिलों के कार्यालयों से भी कांग्रेस बुलेटिन निकलते ही रहे। सरकार ने दो महीने में कांग्रेस का आंदोलन खतम कर देने की घोषणा की थी, पर वह दो वर्ष तक पूरी शक्ति से दमन करने पर भी आंदोलन की गति न रोक सकी। गिरफ्तारियां होतीं, कड़े दंड दिये जाते, एक के पश्चात् दूसरी संस्था अवैध घोषित की जाती और अनेक घरों की तलाशी लेने पर भी कांग्रेस बुलेटिन सरकारी अत्याचारों की खबरें और कांग्रेस के कार्यक्रम लेकर निकलते जाते थे।

विदर्भ में भी पुन: वीर वामनराव जोशी की अध्यक्षता में युद्ध-समिति बनाई और श्री ब्रिजलाल बियाणी पूर्ववत् ही समिति के मंत्री बनाये गये। महाकोशल और नागपुर की तरह विदर्भ में भी जिला और तहसील कांग्रेस कमेटियों ने अपने-अपने सर्वाधिकारियों के नामों की घोषणा कर दी और उनके नेतृत्व में आंदोलन आरम्भ हो गया। तारीख २५ जनवरी को श्री ब्रिजलाल बियाणी, दादा साहेब गोले और दुर्गाताई जोशी गिरफ्तार कर ली गईं और उन्हें एक से डेढ़ वर्ष तक की सजा तथा ३०० रुपये से १,००० रुपये तक जुर्माना कर दिया गया। इससे प्रचारकों की संख्या बढ़ा दी गई और स्थान-स्थान पर भाषणों की व्यवस्था की गई। इसके साथ ही गिरफ्तार होने वालों की संख्या भी बढ़ गई।

गिरफ्तार होने वालों मे स्त्री-पुरुष सभी थे। महिलाओं में श्रीमती दुर्गाताई के अतिरिक्त अकोला जिले से श्रीमती सुषमादेवी, गोपावाई अग्रवाल, गोदाताई साने, गंगूताई वापट, मनुताई कोल्हटकर, कमलावाई भागवत, चंपूताई वनसोड, यमुनावाई ताकवाले, सरस्वतीवाई मेहरे, वत्सलावाई आदि ने इस आंदोलन मे भाग लिया और सरकारी मेहमानी स्वीकार की। अकोला जिले में अकोला के सिवाय दहीहांडा, मारेगाव, वाडेगाव, मलसूर, आलेगाव, वालापुर, मंगरूल, वोरगांव आदि इस कानून भंग सत्याग्रह के द्वितीय दौर के प्रमुख आदोलन स्थान थे। वुलढाणा जिले मे इस वार पुन: जंगल सत्याग्रह किया गया, जिसमे १५ सत्याग्रही गिरफ्तार किये गये। तारीख ३० जुलाई को श्री विसनलाल उदाणी की अध्यक्षता मे वुलढाणा जिला परिषद् की गई। परिषद् आरम्भ होते ही अध्यक्ष, स्वागताध्यक्ष, मत्री तथा श्री केशवराव सावजी गिरफ्तार कर लिये गये और परिषद् अवैध घोषित कर दी गई।

अमरावती जिले मे आदोलन आरम्भ होते ही सर्वश्री त्र्यंवक गुरुजी, डा. पटवर्धन, पी. वाय. देशपाडे, डा. भोजराज, डा. सोमण और हरिहरराव देशपाडे गिरफ्तार कर लिये गये। स्वयसेवको ने विदेशी वस्त्रो और शराव की दूकानों के अतिरिक्त इपीरियल वैक, पोस्ट और रेल्वे स्टेशन पर भी धरना दिया, जिसमे ११ व्यक्तियो को कारावास का दण्ड मिला। जब्त साहित्य के प्रचार के कारण सर्वश्री सहस्रवुद्धे, विसन जी और मालाणी को सजा हुई। वडाली, चांदूर और वैरभ मे जंगल सत्याग्रह भी आयोजित किये गये।

यवतमाल जिले में श्री वापूजी अणे प्रथम सर्वाधिकारी के रूप मे पकडे गये। उनके पश्चात् क्रमश. दामले वकील, अन्नासाहेब जतकर, वावासाहेव वापट, सस्तीकर, दाते, मेघराज छाल्लानी, रंगूवाई मिडवाइफ आदि भी विविध सत्याग्रहो मे भाग लेने के कारण जेल भेजे गये।

तारीख २५ मई १९३२ को महाकोशल, नागपुर और विदर्भ प्रदेश की एक संयुक्त राजनैतिक परिपद् नागपुर मे करने का निश्चय किया गया। परिषद् के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिह गुप्त और स्वागताध्यक्ष श्री छगनलाल भारूका थे, किन्तु श्री गुप्त जी के पहिले ही गिरफ्तार हो जाने के कारण वैरिस्टर छेदीलाल की अध्यक्षता मे परिपद् की गई। परिपद् मे तीनों प्रदेशो से आये लगभग ३०० प्रतिनिधियो में से २५५ प्रतिनिधि सभा स्थान पर ही गिरफ्तार कर लिये गये और सभी को सपरिश्रम कारावास का दण्ड दे दिया गया। इसमे महाकोशल के ७६, नागपुर प्रदेश के २१३ और विदर्भ के १९ प्रतिनिधि थे।

सत्याग्रह आदोलन में भाग लेने के कारण सर्वश्री वैरिस्टर अभ्यंकर, कर्मवीर पाठक, डा. वारलिगे, शेदुर्णीकर, घंगलवार, टेभेकर, लोकरे, रूईकर आदि वकीलो की सनदे जब्त कर ली गई।

महात्मा गान्धी का हरिजन दौरा—

महात्मा गाधी ने तारीख ८ नवम्वर १९३२ को नागपुर से ही अपना हरिजन दौरा आरंभ किया। इस अवसर पर नागपुर मे महात्मा जी के स्वागत मे की जाने वाली सभा चिरस्मरणीय है। इस सभा मे लगभग ३० हजार स्त्री-पुरुष एकत्र थे। उन्होने तारीख १५ नवम्वर तक नागपुर प्रदेश मे दौरा किया। इसके पश्चात् १६ नवम्वर को वे अमरावती और उसके पश्चात् अकोला गये। नागपुर और विदर्भ में मिला कर उन्होंने लगभग चौदह सौ मील का दौरा किया और हरिजन निधि के लिये ३२ हजार रुपये एकत्र किये। नवम्वर के तृतीय सप्ताह मे उन्होने महाकोशल में प्रवेश किया और छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त सिवनी, छिंदवाड़ा और वैतूल जिले मे दौरा करते हुए, वे तारीख ८ दिसम्वर को जवलपुर पहुँचे। हरिजन दौरा आरम्भ करने के पूर्व भी उनका स्वास्थ्य दौरे के योग्य न था, पर वे इसकी परवाह न कर २ मास मे पूरे भारत का दौरा करने का निश्चय कर के वे निकल पड़े थे। जवलपुर जाने तक उनका स्वास्थ्य और भी विगड़ गया। वे डा. अन्सारी के परामर्श के अनुसार चार दिन तक जवलपुर मे ठहरे रहे; पर इस अवधि मे भी उन्होने अपना कार्य वंद न किया। दिसम्वर के प्रथम सप्ताह मे उन्होंने ६०० मील का दौरा किया और २१ हजार रुपये एकत्र किये। इसके पश्चात् उन्होंने अन्य प्रान्तों का दौरा किया। इन नौ महीनों मे उन्होने १२,५०० मील की यात्रा की और आठ लाख रुपये एकत्र किये।

कौन्सिल प्रवेश—महात्मा जी ने ७ अप्रल १९३४ को सत्याग्रह आदोलन स्थगित करने का आदेश दे दिया। दो मास के पश्चात् भारत सरकार ने अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी को वैध स्वीकार कर लिया, पर अभी भी उसकी अन्तर्गत सस्थाओ पर प्रतिबंध लगा हुआ था और प जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, अब्दुल गफ्फार खा, मौलाना आज़ाद जसे सवमान्य नेता जेल से मुक्त न हो सके थे। तारीख १८ और १९ अप्रैल को पटना की परिषद् में महात्मा जी ने कौंसिल प्रवेश को मान्यता दी, जिसे १८ जून १९३४ को वर्धा में होने वाली अखिल भारतीय काग्रेस-कायकारिणी की बैठक में स्वीकार कर काग्रेस पालियामेंटरी बोड को सब प्रकार की आवश्यक सहायता देना निश्चित हुआ।

प्रथम काग्रेसी मन्त्रिमण्डल—सन् १९३५ में केन्द्रीय धारा सभा का निर्वाचन हुआ, जिसमें महाकोशल, नागपुर और विदभ के प्राय सभी काग्रेसी उम्मीदवार विजयी हुए। प्रान्त के अनेक स्थानो में विजयी उम्मीदवारो का बडे समारोह के साथ स्वागत किया गया। नागपुर प्रान्त के सुप्रसिद्ध नेता बरिस्टर अभ्यकर के विजयी होने की तारीख १७ नवम्बर को घोषणा हुई किन्तु दुर्दैव से तारीख २ जनवरी १९३६ को मधुमेह की व्याधि से बम्बई में उनकी मृत्यु हो गई।

सन् १९३६ में प्रान्तीय धारा सभा के सदस्यो का चुनाव देश भर में हुआ। सात प्रान्तो की धारासभा में काग्रेसी उम्मेदवार भारी बहुमत से निर्वाचित होकर पहुँचे। हमारे प्रान्त में भी काग्रेस का ही बहुमत रहा। सरकार द्वारा मन्त्रिमडल के कार्यो में अनुचित हस्तक्षेप न करने का आश्वासन मिलने पर इन सातो प्रान्तो में काग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाकर शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया। हमारे प्रान्त में भी यह प्रथम काग्रेसी मन्त्रिमडल डा नारायण भास्कर खरे के नेतृत्व में निर्मित हुआ। डा खरे, मुख्य मत्री तथा प रविशकर शुक्ल, प द्वारकाप्रसाद मिश्र, श्री रामराव देशमुख, श्री पुरुषोत्तम बलवन्त गोले, श्री दुर्गाशकर मेहता और मुहम्मद यूसुफ शरीफ मन्त्रिमडल के अन्य सदस्य थे। मन्त्रिमडल में ऐक्य न था। धीरे-धीरे यह मतभेद इतना बढ गया कि सन् १९३८ में केन्द्रीय पालियामेंटरी बोड को हस्तक्षेप करने को बाध्य होना पडा। डा खरे ने स्वय त्याग-पत्र देकर अन्य मन्त्रियो से त्याग-पत्र मागा। बैरिस्टर शरीफ एक साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण पहिले ही मन्त्रिमडल से पृथक किये जा चुके थे। प शुक्ल, प मिश्र और श्री मेहता ने केन्द्रीय पालियामेंटरी बोड की स्वीकृति के बिना त्याग-पत्र देना स्वीकार न किया, जिससे तत्कालीन गवनर ने इन तीनो को मन्त्रिमडल से पृथक् कर डा खरे को पुन मन्त्रिमडल बनाने को कहा। उन्होने तुरन्त इन तीनो के स्थान में महाकोशल के अन्य तीन एम एल ए नियुक्त कर दिये। केन्द्रीय पालियामेंटरी बोड ने डा खरे पर अनुशासन भग का आरोप लगा कर उन्हें पद-त्याग का आदेश दिया। अब प रविशकर शुक्ल काग्रेस दल के नेता निर्वाचित हुए। वे पुनर्गठित मन्त्रिमडल के प्रधान हुए और सवश्री प द्वारकाप्रसाद मिश्र, प दुर्गाशकर मेहता, सभाजी राव गोखले तथा छगन लाल भारका, मन्त्रिमडल के अन्य सदस्य हुए। यह मन्त्रिमडल लगभग एक वष तक शासन के सूत्र अपने हाथ में लिये जन-सेवा करता रहा, किन्तु सन् १९३९ में काग्रेस के द्वितीय महायुद्ध में सहायता न करने के निर्णय पर अन्य काग्रेसी प्रान्तो की तरह हमारे प्रान्त के मन्त्रिमडल ने भी नवम्बर १९३९ के प्रथम सप्ताह में त्याग-पत्र दे दिया और समस्त मत्री युद्ध विरोधी आन्दोलन में योग देने के लिये पुन मैदान में आ गये।

व्यक्तिगत सत्याग्रह—भारत सरकार से काग्रेस का कोई समझौता न होने पर महात्मा गाधी ने पुन सत्याग्रह आदोलन आरम्भ करने की घोषणा की, किन्तु यह सत्याग्रह अभी तक किये गये सत्याग्रहो से भिन्न था। महात्मा जी ने आदोलन के समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिये। उन्होने विभिन्न काग्रेस कमेटियो से ऐसे व्यक्तियो की सूची मागी, जो अहिंसा का पूर्ण पालन करते हुए स्वेच्छा से कानून भग सत्याग्रह करने को उत्सुक हो। उन्होंने निश्चित किया कि यह सत्याग्रह सामूहिक नही, पर व्यक्तिगत होगा। उनके द्वारा स्वीकृत एक-एक सत्याग्रही ग्रामो में युद्ध विरोधी प्रचार करता हुआ, तबतक पैदल आगे बढता जाये, जबतक वह गिरफ्तार न हो और गिरफ्तार कर के छोडने पर वह पुन उसी ढग से सत्याग्रह करता जाये।

प्राप्त सूची मे से महात्मा जी ने आचार्य विनोवा भावे को प्रथम सत्याग्रह करने की आज्ञा दी। उन्होंने तारीख १७ अक्तूबर १९४० को पवनार ग्राम मे एक युद्ध-विरोधी भाषण देकर व्यक्तिगत सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। वे पैदल घूमते हुए तीन दिनों तक युद्ध-विरोधी प्रचार करते रहे। इसके पश्चात् वे तारीख २१ अक्तूबर को गिरफ्तार कर तीन मास के लिये जेल भेज दिये गये। सरकार ने आचार्य विनोवा के सत्याग्रह से सम्वन्धित समाचार तथा भाषणो को समाचार पत्रो में प्रकाशित करने से रोक दिया और आज्ञा दी कि विना प्रधान प्रेस-सलाहकार को दिखाये सत्याग्रह से सम्वन्धित कोई समाचार प्रकाशित न किये जावे। व्यावहारिक दृष्टि से यह संभव न था, अतः महात्मा जी ने "हरिजन" तथा अपने अन्य दोनों पत्रों का प्रकाशन स्थगित कर दिया। कुछ पत्र विना अग्रलेख के ही प्रकाशित होते रहे।

आचार्य भावे के पश्चात् श्री ब्रह्मदत्त ने तारीख ७ नवम्वर को वर्धा के समीप एक ग्राम मे युद्ध-विरोधी नारे लगा कर कानून भंग सत्याग्रह किया, वे तुरन्त गिरफ्तार कर के ६ मास के लिये जेल भेज दिये गये।

अव महात्मा जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के द्वितीय सोपान पर पैर रखा। उन्होने कांग्रेस कार्यकारिणी, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्यो मे से सत्याग्रही चुने और उन्हे छोटे-छोटे समूहो मे विभाजित कर व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की आज्ञा दी। महात्मा गाधी के शब्दो मे यह "प्रतिनिधि-सत्याग्रह" था। इन में भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्रिमंडल के सदस्य भी थे। इनमे से अधिकाश को एक-एक वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। भारत के सभी प्रथम श्रेणी के नेता गिरफ्तार कर के जेल भेज दिये गये। इनमें ११ कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य, १७६ अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य, २९ भूतपूर्व मत्री और ४०० से अधिक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य थे।

तारीख ५ जनवरी १९४१ को इस कानून भंग सत्याग्रह का तृतीय दौर आरम्भ हुआ। प्रत्येक काग्रेस कमेटी ने सत्याग्रह के इच्छुक स्थानीय व्यक्तियो की सूची वना कर गाधी जी को भेजी और उनकी स्वीकृति प्राप्त होते ही सारे देश मे व्यक्तिगत सत्याग्रह की धूम मच गई। जनवरी के अन्त तक गिरफ्तार और दंड प्राप्त सत्याग्रहियों की संख्या २,२५० तक पहुँच गई। मार्च मास के अन्त तक सत्याग्रह चलता रहा। अप्रैल मे सत्याग्रह का चतुर्थ दौर आरम्भ हुआ। इस दौर मे छोटे-छोटे ग्रामो से भी सत्याग्रही आने लगे और थोड़े ही समय मे सत्याग्रह कर के जेल जाने वालों की संख्या वीस हजार के लगभग हो गई। पूरे देश मे असंतोष फैल गया। तारीख १७ अक्तूबर १९४१ को देश भर मे व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन की जयन्ती वड़े समारोह से मनाई गई।

एक ओर भारतीयों का असंतोष चरम सीमा को पहुँचता जा रहा था और दूसरी ओर जर्मनी और जापान को एक के पश्चात् दूसरी विजय मिलती जा रही थी। यह देख कर भारत सरकार को तारीख ३ दिसम्वर १९४१ को यह घोषणा करनी पड़ी कि "उसे विश्वास है कि भारत युद्ध मे मित्र राष्ट्रों को अन्तिम विजय प्राप्त होने तक वरावर सहायता करता रहेगा। कानून भंग सत्याग्रहियो का अपराध केवल सांकेतिक था, अतः वह पं. जवाहरलाल नेहरू तथा मौलाना अव्वुलकलाम आजाद सहित समस्त सत्याग्रही राजवदियो को मुक्त करने का निर्णय करती है।"

इन चौदह महीनो में लगभग २५ हजार देशसेवकों ने सत्याग्रह किया और अपने देश की स्वतंत्रता के लिये जेल यातनाएँ सही तथा आर्थिक हानिया उठाई। भारत सरकार की घोषणा के अनुसार तारीख ४ दिसम्वर को समस्त राजवंदी जेलों से मुक्त कर दिये गये। इस आदोलन के आरम्भ होने का श्रेय हमारे प्रान्त को ही है। इस प्रान्त के जिले और तहसीलो के स्थानो के ही नही, पर सभी प्रमुख ग्रामो के काग्रेसियो ने स्वेच्छा से व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन मे भाग लिया और प्रान्त के गौरव की वृद्धि की। यद्यपि हमे अभी तक प्रत्येक जिले से इस सविनय अवज्ञा आंदोलन मे भाग लेने वालों की निश्चित संख्या तो प्राप्त न हो सकी, पर अनुमानतः यह संख्या दो हजार के लगभग वतलाई जाती है।

भारत छोडो आदोलन—तारीख ६ जून १९४२ को वर्धा में काग्रेस कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा कि "वर्तमान स्थिति में भारतीय जो अनुभव कर रहे है, उसे देखते हुए कार्यकारिणी का दृढ विश्वास है कि अब भारत मे अग्रेजी राज्य का तुरन्त अन्त हो जाना आवश्यक है। बिना इसके न भारत अपनी रक्षा में समर्थ होगा और न ससार से नाजीवाद और तानाशाही का ही अन्त होगा। काग्रेस ने सरकार को पूरा अवसर देकर यह प्रयत्न किया कि वह इस देश का राज्य जन प्रतिनिधियो को सौंप कर वर्तमान विपादपूर्ण स्थिति का अन्त कर दे और विश्व शांति में सहायक हो, किन्तु सब आशायें व्यर्थ हुईं। काग्रेस मलाया और सिंगापुर और वर्मा में घटित घटनाओ की पुनरावृत्ति टालना चाहती है, वह नही चाहती कि जापान या कोई भी विदेशी शक्ति भारत में प्रवेश करे। काग्रेस ने साम्प्रदायिक समस्या का हल करने का भी पूरा प्रयत्न किया, पर यह प्रयत्न विदेशी सत्ता की उपस्थिति में सभव न हो सका। अत काग्रेस कार्यकारिणी चाहती है कि अग्रेज भारत छोड कर तुरन्त चले जायें।"

वर्धा प्रस्ताव पर विचार करने के लिये अगस्त के प्रथम सप्ताह में वम्बई में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक महात्मा गाधी की उपस्थिति में हुई और उस पर गभीरता से विचार करने के पश्चात काग्रेस ने वर्धा प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रस्ताव किया कि न केवल भारतीय हित की दृष्टि से, वरन अतर्राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भी अग्रेजो का भारत छोड कर चले जाना आवश्यक है, अत काग्रेस भारत से अग्रेजी शासन उठा लेने का समर्थन करती है। भारतीय स्वतत्रता एशियाई राष्ट्रो की स्वतत्रता की प्रतीक होगी। काग्रेस चाहती है कि भारत की तरह वर्मा, मलाया, हिन्द चीन, ईरान, इराक आदि एशियाई देश भी विदेशी सत्ता से मुक्त हो। अग्रेजो से प्राप्त शासन सत्ता काग्रेस की नहीं पर समस्त भारतीयो की होगी।

तारीख ७ अगस्त १९४२ को काग्रेस द्वारा इस प्रस्ताव के स्वीकार होते ही गवर्नर जनरल ने तारीख ८ अगस्त को एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर काग्रेस प्रस्ताव को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया। तारीख ८ अगस्त को प्रात काल ही वम्बई के पुलिस कमिश्नर महात्मा गाधी, महादेव भाई देसाई और मीराबेन की गिरफ्तारी का वारट लेकर आ गये। गाधी जी ने अपने सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल को एक कागज के टुकडे पर "करो या मरो" लिख कर देशवासियो को अपना अतिम सदेश दे दिया और वे आवश्यक सामग्री के साथ पुलिस कमिश्नर की मोटर में बैठ गये। विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर एक स्पेशल ट्रेन तैयार थी, जिसमें काग्रेस कार्यकारिणी के सब सदस्य तथा अनेक काग्रेसी पहिले से ही गिरफ्तार कर के विठा लिये गये थे। ट्रेन चिंचवाड स्टेशन जाकर रुकी और वहा से मोटर तथा लारियो में सब लोग यहा-वहा भेज दिये गये।

यह समाचार जहा भी पहुँचा, वही अशान्ति फैल गई। देश के सभी छोटे-बडे नेता तथा हजारो काग्रेस कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये। स्थान-स्थान पर लाठिया और गोलिया चलने लगी। सरकारी दमन पराकाष्ठा को पहुँच गया और वह सामान्य जनता को असह्य हो गया। परिणामस्वरूप जनता पागल हो गई। उसने सरकारी इमारतो पोस्ट आफिसो, रेल्वे स्टेशनो और पुलिस स्टेशनो पर आक्रमण कर दिया। टेलिफोन के तार कटने लगे, रेल की पटरियाँ उखडने लगी और पुल तक गिराने के प्रयत्न होने लगे। सरकारी आकडो के अनुसार नेताओ की गिरफ्तारी के एक सप्ताह के पश्चात् तक २५० रेल्वे स्टेशनो पर आक्रमण कर उन्हें क्षति पहुँचाई गई और ५०० से अधिक पोस्ट आफिसो पर हमला किया गया। विहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलो में कुछ सप्ताहो के लिये रेलो के आने-जाने में अनिश्चितता आ गई। इस अनिश्चित काल में सरकार को होने वाली हानि एक करोड के लगभग वतलाई जाती है। पुलिस और फौजी सिपाहियो से जनता की होने वाली मुठभेड में कुछ अधिकारी, सिपाही तथा सैनिक भी मारे गये। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ५३८ अवसरो पर गोलिया चलाई गई। लाठियों और वेंतो के उपयोग का तो कोई हिसाब ही न रहा। लगभग ८०० नागरिक मारे गये और कुछ हजार जख्मी हुए। सन् १९४२ के अत तक ६० हजार के लगभग गिरफ्तारियाँ हुईं और लगभग ९० लाख रुपया सामूहिक जुर्माने के रूप में वसूल

गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों में से २६ हजार व्यक्तियों को कारावास का दंड मिला और १८ हजार व्यक्ति विना अभि-योग लगाये जेलों मे रोक कर रखे गये। अनेक कांग्रेस कार्यकर्त्ता भूमिगत हो गये।

सन् १९४२ का आदोलन भारतीय स्वतंत्रता के लिये किया जाने वाला अन्तिम आन्दोलन था, जिसमे सरकार और जनता दोनो ने अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। मध्यप्रदेश, सौराष्ट्र, उत्तरप्रदेश और विहार इस आदोलन मे अग्रणी रहे। हमारे प्रदेश से इस आदोलन के दिनों मे लगभग ५ हजार देश सेवक गिरफ्तार कर जेल भेजे गये। एक दर्जन से अधिक स्थानो मे गोलियां चली, जिनमें घोड़ा-डोगरी, नाहिया, पट्टण, चिमूर तथा आष्टी मुख्य है। इन मे से चिमूर और आष्टी मे कुछ सरकारी अधिकारी और पुलिस सिपाही भी मारे गये। कुछ न कुछ नागरिक तो सभी गोली चलाने के स्थानों मे मारे गये। यह आन्दोलन देश के अधिकाश स्थानों मे एक ही समय आरम्भ हुआ और उसका रूप भी प्राय: समान ही रहा। महात्मा गांधी अथवा अन्य कोई भी नेता भारतीय स्वतंत्रता के किसी भी आंदोलन मे अहिसा की सीमा का अतिक्रमण नही करना चाहता था। हिसा के समस्त आधुनिक साधनो से सुसज्जित अग्रेज सरकार का सामना हिंसक वृत्ति से करना संभव भी न था, किन्तु सरकार की सनक और जल्दवाज़ी ने जनता को अनायास ही नेतृत्वविहीन कर दिया और उसके संकेत पर ताडव नृत्य करने वाली पुलिस तथा अन्य अधिकारियो ने विवेक को धता वतला दम्भ की पराकाष्ठा कर दी, जिससे कांग्रेसी और गैर-काग्रेसी सभी प्रकार की जनता को "मरता क्या न करता" की लोकोक्ति के अनुसार हिसा का आश्रय ग्रहण करने को वाध्य होना पड़ा।

सन् १९४४ के मई मास तक प्राय: सभी काग्रेसी नेता और कार्यकर्ता जेल से वाहर आ गये।

जून सन् १९४६ में कांग्रेस कार्यकारिणी ने ब्रिटिश मंत्रिमंडल द्वारा प्रस्तावित योजना पर विचार किया और विधान-निर्मात्री परिषद् मे भाग लेना स्वीकार किया। तारीख १५ अगस्त १९४७ के दिन अंग्रेज भारत से चले गये और देश स्वतंत्र हो गया और इस विधान निर्मात्री परिषद् द्वारा निर्मित संविधान के अनुसार तारीख २६ जनवरी सन् १९५० से भारत मे पूर्ण प्रजासत्तात्मक शासन प्रणाली आरंभ हुई।

मध्यप्रदेश का वाकाटक राजवंश

श्री वासुदेव विष्णु मिराशी

मध्यप्रदेश के प्राचीन इतिहास में वाकाटकों से अधिक अन्य कोई गौरवास्पद राजवंश नहीं है। बहुसंख्य इतिहासकारों की सम्मति है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में ईस्वी काल गणना की चौथी और पांचवीं शताब्दियां स्वर्णयुग हैं, क्योंकि ये धर्म, साहित्य और कला क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति से प्रभावित रही हैं। इस युग को गुप्त-वाकाटक काल भी कहा जाता है, क्योंकि इस में वाकाटक-गुप्तों ने क्रमश दक्षिण और उत्तर भारत के क्षेत्रों में अपना साम्राज्य फैलाया था। प्राचीन भारतीय इतिहास के एक अधिकारी विद्वान् प्रो जे दुब्रेल ने वाकाटकों* के विषय में कहा है—"तीसरी से छठी शताब्दी तक दक्षिण में राज्य करने वाले समस्त राजवंशों में सबसे अधिक गौरवास्पद, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, सबसे अधिक प्रतिष्ठित, सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण दक्षिण की संस्कृति में श्रेष्ठ प्रभाव डालने वाला वाकाटकों का गौरवपूर्ण राजवंश रहा है।"

विगत सौ वर्षों में ही इस राजवंश के विषय में हमारा सम्पूर्ण ज्ञान उपलब्ध हुआ है। सन् १८३६ में इस प्रदेश में सिवनी के एक गोंड मालगुजार के पास मिले ताम्र-पत्र से इस राजवंश का प्रथम ज्ञान हुआ। उस समय तक वाकाटक नाम भी अज्ञात था। वास्तव में राजवंश के संस्थापक विन्ध्यशक्ति के नाम का उल्लेख पुराणों में हुआ है, परन्तु अशुद्ध पाठ से और कुछ अंशों में विपरीत अन्वय† से उसे यवन या यूनानी जाति से सम्बन्धित मान लिया गया था। प्राचीन लिपि के एक विशेषज्ञ डा भाऊ दाजी ने अजन्ता की १६ वीं गुफा के उत्कीर्ण लेख का सम्पादन करते हुए लिखा था कि वाकाटक यवनों तथा यूनानियों का ही एक राजवंश था, जिन्होंने वैदिक यज्ञों को पूर्ण करने एवं बौद्ध धर्म के प्रसार के लिये महत्वपूर्ण एवं बहुमूल्य कार्य करने में प्रमुख भाग लिया था। ‡ दूसरी ओर प्रचलित मत यह है कि वाकाटक लोग ब्राह्मण थे। इस राजवंश के इतिहास सम्बन्धी हमारे ज्ञान में अभी हाल के वर्षों में जो प्रगति हुई है, वह इस उदाहरण से स्पष्ट होती है। मध्यप्रदेश के विभिन्न भागों में सौभाग्य से मिले शिलालेखों और ताम्रपत्रों से एवं इन उत्कीर्ण लेखों की प्रिन्सेप, बुल्हर, कीलहॉर्न और जायसवाल जैसे प्रमुख विद्वानों द्वारा की गहन गवेषणा और अध्ययन से हम इस राजवंश के इतिहास की मुख्य बाह्य रेखाओं को समझने और भारत के प्राचीन इतिहास में उसका उचित स्थान देने में समर्थ हुए हैं।

---

* जे दुब्रेल, "एन्शन्ट हिस्ट्री आफ दि डेक्कन", पृष्ठ ७१।

† वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में आन्ध्रों तथा सातवाहनों के बाद प्रतिष्ठित हुए राजवंशों का वर्णन करते हुए कहा गया है —

ततः कौलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति।
समाः षण्णवतिं ज्ञात्वा पृथिवीं तु समेष्यति॥

विष्णु पुराण का कथन है कैलकिल नरेश यवन थे।

तेषूच्छिन्नेषु कैलकिला यवना भूपतयो भविष्यन्ति।

देखिये पार्जीटर—"डायनेस्टीज आफ् दि कलि एज", पृष्ठ ४८।

‡ रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा की पत्रिका (इसका प्रस्तुत लेख में प्रयुक्त संक्षिप्त रूप जे बी बी आर- ए एस), जिल्द ७, पृष्ठ ६६ इत्यादि।

इस राजवंश का प्रारम्भ अभी अज्ञात है। जायसवाल का विचार है कि ये लोग वाकाट नामक स्थान से आये थे। उन्होंने इसे ओड़छा राज्य के बागाट स्थान से जोड़ा है। * अपने इस मत की पुष्टि में उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि इलाहाबाद के निकट कौसम तथा उत्तर भारत के अन्य स्थान मे पाये हुए सिक्के वाकाटक राजवंश के प्रथम प्रवरसेन तथा दूसरे राजाओं द्वारा प्रसारित किये गये थे, परन्तु जायसवाल के पाठ सन्दिग्ध है और उन्हें दूसरे विद्वानों ने स्वीकार नही किया है। † वस्तुस्थिति यह है कि वाकाटकों ने कोई सिक्का नही चलाया था, परन्तु उन्होंने अपने सारे राज्य में गुप्तों की मुद्रा को ही प्रचलित किया था। अतः वाकाटक मूलतः एक उत्तरी राजवंश था, यह मत इससे सिद्ध नही हो सकता। दूसरी ओर इस बात के कई प्रमाण है कि वे इस प्रदेश मे दक्षिण से आये थे। उनके संस्कृत तथा प्राकृत उत्कीर्ण लेखों में इस प्रकार की कई शब्द योजनाएँ हैं, जिनमें पल्लव दान-पत्रो से स्पष्ट समानता दिखती है। ‡ दक्षिण के सातकर्णियों, कदम्बों और चालुक्यों के समान प्रारम्भिक वाकाटक अपने को "हारिती-पुत्र"—हारिती के पुत्र कहते थे। उन्होंने धर्म महाराज की उपाधि भी धारण की थी, जो कि केवल पल्लवों व कदम्बों जैसे कुछ दक्षिणी राजवंशों के लेखों में ही दिखलाई पड़ती है। × इसलिये यह निश्चित मालूम पड़ता है कि वाकाटक प्रारम्भ मे दक्षिण से आये थे।

पुराणों में वाकाटकों की दो राजधानियों—पुरिका और चनका का उल्लेख मिलता है। ┼ प्रकरण से मालूम पड़ता है कि पुरिका पहले नाग राजाओं की राजधानी थी और हरिवंश के ब्यौरे से मालूम पडता है कि यह ऋक्षवत् या सातपुडा पहाड़ की तराई मे कही बसी हुई थी। ·|· इस प्रदेश में वाकाटक राजवंश के आगमन के पश्चात् उसकी यही राजधानी बनी थी। दूसरा नगर चनका उनकी पूर्व राजधानी रही होगी।

इस राजवंश का संस्थापक विन्ध्यशक्ति था, जिसका कि पुराणों और १६ वी अजन्ता गुफा के उत्कीर्ण लेख में उल्लेख मिलता है। अजन्ता लेख में उसको द्विज या ब्राह्मण कहा है। ‡‡ बाद के लेखों में वाकाटकों की बड़ी प्रशंसा की गई है। उसने बड़े युद्ध लड़ कर अपना सामर्थ्य बढाया था। जब वह क्रुद्ध हो जाता था तो वह अजेय होता

---

* जायसवाल.—'हिस्ट्री आफ इण्डिया', १५० ई. से ३५० ई., पृष्ठ ६७ इत्यादि।

† आल्तेकर.—"कुछ तथाकथित नाग और वाकाटक सिक्के"—जर्नल आफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसायटी आफ़ इण्डिया (संक्षिप्त रूप जे. एन. एस. आई.), जिल्द ५, पृष्ठ १११।

‡ वाशीम दानपत्रों के विषय मे लिखे अपने लेख में मै यह स्पष्ट कर चुका हूँ। इपिग्राफ़िया इण्डिका जिल्द २६, पृष्ठ १४६।

× वही, जिल्द २६, पृष्ठ १४१।

┼ विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान्। भोक्ष्यते च समाः षष्टिं पुरिकां चनकां च वै।। पार्जीटर 'डायनेस्टीज आफ् दि कलि एज'—पृष्ठ ५०।

"पुरी काञ्चनकां च वै" स्थान पर जायसवाल के मतानुसार "पुरिकां चनकां च वै" यह पाठ स्वीकृत किया गया है जो कि अधिक उपयुक्त अर्थ देता है और प्रकरण से पुष्ट होता है।

·|· हरिवंश, विष्णपुराण ३८,२२।

ऋक्षवन्तं समभितस्तीरे तत्र निरामये। निर्मिता सा पुरी राज्ञा पुरिका नाम नामतः।।

विष्णु पुराण मे तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या के उद्गम स्थान के रूप मे ऋक्षवन्त का उल्लेख किया गया है इसलिये वह सतपुड़ा पर्वत के तुल्य है।

तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसम्भवाः।।

‡‡ देखिये मिराशी, अजन्ता की १६ वी गुफा मे वाकाटक उत्कीर्ण लेख (हैदराबाद आर्किआलाजिकल सिरीज संख्या १४) पृष्ठ १०।

था। उसके पास बहुत बडी अश्वसेना थी। जिसकी सहायता से वह शत्रुओ को पराजित किया करता था। दक्षिण मे चल कर उसने अपने पूर्ववर्ती राजा सातवाहनो से विदर्भ का बडा भाग छीन लिया था। बराड के अकोला जिले में तरेहाला स्थान में मिले पोटिन धातु के सिक्को से मालूम पडता है कि सातवाहन लोग २५० ई में अपने पतन के समय तक विदर्भ पर राज्य करते रहे।* मध्यप्रदेश में वाकाटका के संस्कृत तथा प्राकृत लेखो में वशावलि विन्ध्यशक्ति के पुत्र प्रथम प्रवरसेन से प्रारम्भ होती है, जिससे स्पष्ट होता है कि विन्ध्यशक्ति अपने राज्य के उत्तर में प्रसार के बाद भी अपनी राजधानी चनका से ही शासन करता था। उसका शासन काल सन् २५०-२७५ ई के लगभग है।†

प्रथम प्रवरसेन वाकाटक शासन का असली संस्थापक था। उसने उत्तर में नर्मदा तक अपने शासन को प्रतिष्ठित किया था। उसने सम्पूर्ण सातो सोमयाग, कम से कम तीन वाजपेय यज्ञ और चार अश्वमेध, जिसके लिये उसने सभी दिशाओं में सफल अभियान किये थे, पूर्ण किये थे।‡ उसने अश्वमेध और वाजपेय सम्पूर्ण करने के पश्चात् सम्राट् की अद्वितीय उपाधि को धारण किया था।× पुराणों में भी उसके वाजपेय यज्ञो का उल्लेख किया गया है जिनमें उसने ब्राह्मणो को बहुत दक्षिणा दी थी।

उत्तर में नर्मदा तक वाकाटक राज्य के विस्तार से पुरिका जैसे मध्यवर्ती नगर में जो कि सम्भवत सातपुडा पहाड की तराई में था, राजकीय राजधानी ले जाना आवश्यक होगया। पुराणो में कहा गया है कि इस स्थान पर कई पीढ़ियों से एक नाग वश शासन कर रहा था+ उत्कीर्ण लेखों से मालूम पडता है कि वर्तमान भिलसा के समीप प्राचीन विदिशा के राजवश की एक शाखा थी। प्रतीत होता है कि प्रवरसेन ने नाग राजा को राज्यच्युत कर दिया था और उसका प्रदेश अपने अधिकार में ले लिया था। इसके बाद उसने चनका का त्याग कर पुरिका राजधानी बनायी थी।

प्रथम प्रवरसेन ने अपनी स्थिति भारशिवो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अधिक सुदृढ करने का प्रयत्न किया था। भारशिव नाग जाति के थे। सम्भवत वे प्रारम्भ में विदर्भ में राज्य करते थे क्योंकि मध्यप्रदेश के भण्डारा जिले के पौनी स्थान में भगदत्त नामक भार राजा का एक प्राचीन शिलालेख उपलब्ध हुआ है जो द्वितीय ईस्वी शताब्दी का है।‖ बाद में उन्होंने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और वहा वे बस गये। नागो की सुप्रसिद्ध राजधानी पद्मावती में भवनाग अधिराज के ताम्बे के सिक्के पाये गये हैं। वाकाटक लेखो से ज्ञात होता है कि भारशिव कट्टर शैव थे। वे अपने कन्धो पर सर्वदा शिवलिङ्ग (सम्भवत उसके त्रिशूल को) धारण करते थे और उनकी श्रद्धा थी कि उनका राजकीय ऐश्वर्य उसकी कृपा के फलस्वरूप ही था। उन्होंने दस अश्वमेध

* देखिये मिराशी तरेहाला में प्राप्त सातवाहन सिक्के (जे एन् एस् आई जिल्द २ पृष्ठ ८३१)

† पुराणो में कहा गया है कि वह छियानवे वर्ष जीवित रहा। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणो के उपर्युक्त श्लोक देखिये।

‡ वाकाटक दानपत्र के प्रारम्भिक भाग को देखिये —
अग्निष्टोमाप्तोर्यामोक्थ्यषोडश्यति-रात्रवाजपेयबृहस्पतिसवसाद्यस्कचतुरश्वमेधयाजिन
वाकाटकानामहाराज श्री प्रवरसेनस्य —।

× पार्जीटर-'डायनस्टीज ड पृष्ठ ५०। विन्ध्यशक्ति के पुत्र प्रवीर के बारे में कहा गया है —
"यक्ष्यते वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः" वाजपेय यज्ञ करने वाला व्यक्ति सम्राट की उपाधि लगाने में समर्थ हो जाता है। राजा वै राजसूयनेष्ट्वाभवति सम्राड् वाजपेयेन। शतपथ ब्राह्मण १ १ ३।

+ दौहित्र शिशुको नाम पुरिकाया नृपोऽभवत्। पार्जीटर, डायनेस्टीज, पृष्ठ ४९।

‖ मिराशी, भार राजा भगदत्त का पौनी शिलालेख " एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २४, पृष्ठ ११३।
अल्तेकर "भवनाग के सिक्के एव परिचय" जे एन एस आई जिल्द ५, पृष्ठ २१३

यज्ञ किये थे और पराक्रम से प्राप्त भागीरथी के जल से अपना अभिषेक किया था। * इससे स्पष्ट होता है कि भारशिवों ने मध्यभारत से कुषाणों को भगा दिया था और उनसे भगवान शिव के पवित्रस्थान प्रयाग और काशी का उद्धार किया था। भारशिवों का महाराज भवनाग प्रथम प्रवरसेन का समकालीन था। उसने अपनी पुत्री का विवाह गौत्तमीपुत्र से किया था जो कि वाकाटक सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र था। उत्तर के शक्तिशाली नाग राजकुल से हुए इस सम्बन्ध से वाकाटकों की शक्ति और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी होगी क्योकि गौत्तमीपुत्र के उत्तराधिकारियों के सभी दानपत्रों में उसका उल्लेख है। पुराणो मे कहा गया है कि प्रथम प्रवरसेन ने ६० वर्ष तक दीर्घकालीन शासन किया था। उसके द्वारा चार अश्वमेध और कई वाजपेय यज्ञ सम्पन्न किये जाने से यह काल असम्भव नही जान पड़ता। सम्भवत· उसने २७० ई. से ३३० ई. तक शासन किया था।

पुराणों के अनुसार प्रथम प्रवरसेन के चार पुत्र थे और सभी राजा बने थे। † अभी हाल तक पुराणों का यह विधान अविश्वसनीय मालूम पड़ता था क्योकि इसका कोई प्रमाण न था कि इतने जल्दी वाकाटक वंश की उपशाखाये फैल गयी थी। १९३९ मे वाशीम ताम्रपत्र के मिल जाने से मालूम हुआ कि वाकाटक दान-पत्रो में उल्लिखित गौतमीपुत्र के अतिरिक्त प्रवरसेन का एक और पुत्र था, जिसका नाम सर्वसेन था। ‡ मैंने यह प्रदर्शित किया है कि अजन्ता के उत्कीर्ण लेखो मे भी उसके नाम का उल्लेख हुआ है। × इसलिये यह सुनिश्चित प्रतीत होता है कि प्रवरसेन प्रथम का विस्तीर्ण साम्राज्य उसकी मृत्यु के बाद उसके चारो पुत्रो मे बाट दिया गया। ज्येष्ठ शाखा पुरानी राजधानी पुरिका में शासन करती रही। द्वितीय पुत्र सर्वसेन ने वत्सगुल्म के पवित्र नगर में, जो कि अकोला जिला का आधुनिक वाशीम गाव है अपने शासन की प्रतिष्ठा की थी। अवशिष्ट दो लड़के जिनके नाम अभी भी अज्ञात है सम्भवत: गोदावरी के दक्षिण में कुन्तल के देश (दक्षिण महाराष्ट्र देश और उत्तर कर्णाटक) पर राज्य करते थे। इन दो शाखाओं के लेख अबतक प्रकाश मे नही आये हैं। शायद ये अल्पजीवी रहे थे। सम्भवत: इनका अस्तित्व राष्ट्रकूट वश ने नष्ट कर दिया था जिसकी स्थापना ३७५ ई. में उत्तरी कृष्णा घाटी मे मानाङ्क ने की थी।

मुख्य शाखा :— प्रवरसेन के ज्येष्ठ पुत्र गौतमीपुत्र की अपने पिता के समय में ही अकालमृत्यु हो गयी थी। इसलिये प्रवरसेन का स्थान उसके पौत्र रुद्रसेन ने सन् ३३० ई. के ग्रहण किया। बाद मे वाकाटक लेखो मे प्रथम रुद्रसेन भारशिवो के महाराजा भवनाग की पुत्री का लड़का बतलाया गया है। जिसका अर्थ है कि उसको पद्मावती के नागों की शक्तिसम्पन्न सहायता उपलब्ध थी। उसके शासन का केवल एक उत्कीर्ण लेख उपलब्ध हुआ है, जो चान्दा जिले के देवटेक स्थान मे है। यह एक बड़ी प्रस्तर शिला पर पूर्ववर्ती लेख को, जोकि सम्भवत: पुण्यश्लोक अशोक के महामात्र द्वारा पशुओं के बन्धन व वध का निषेध करते हुये प्रसारित किया गया था, मिटाकर लिखा गया है। शिला पर लिखा वाकाटक उत्कीर्ण लेख कहता है कि यह स्थान जहां पर शिला लगायी गयी है रुद्रसेन राजा का धर्मस्थान (पूजा का स्थान) है। + रुद्रसेन भीषण महाभैरव देव का, जिसे दक्ष के यज्ञ के विध्वंस के लिये शिव ने पैदा किया था, परम भक्त था। उसे

---

* वही देखिये :—असभारसन्निवेशित शिवलिङ्गोद्वहन शिव सुपरितुष्टसमुत्पादित राजवंशानाम्पराक्रमाधिगत भागीरथ्यमल जलमूर्धाभिषिक्ताना दशाश्वमेधावभृथस्नातानां भारशिवाना महाराज श्री भवनागदौहित्रस्य आदि. पट्टन ताम्रपत्र, एपि. इण्डिका, जिल्द २३, पृष्ठ ८५।

† प्रवीर (प्रवरसेन प्रथम) का उल्लेख करने के बाद पुराणों में कहा गया है :—तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपा:॥ डायनेस्टीज आदि, पृष्ठ ५०।

‡ एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २६, पृष्ठ, २६ इ.।

× हैदराबाद आर्किआलाजिकल सिरीज, संख्या १४, पृष्ठ ३ इ.।

+ मिराशी, "देवटेक उत्कीर्ण लेख पर एक नया प्रकाश" आठवी अखिल प्राच्यविद्या परिषद् की कार्यवाही, पृष्ठ ६१६ इ०

अशोक द्वारा प्रचारित अहिंसा के सिद्धात में किसी प्रकार की आस्था नहीं थी। इसलिये उसे उसी प्रस्तरशिला पर जिस पर महान् बौद्ध सम्राट् द्वारा पशुओं के बन्धन व वध की निषेधात्मिका उद्घोषणा लगी थी, अपना उत्कीर्ण लेख अंकित करवाने में कोई हिचक नहीं थी।

प्रथम रुद्रसेन शक्तिशाली गुप्त नरेश समुद्रगुप्त का समकालीन था। इसलिये उसके समय में नर्मदा से उत्तर के देश में बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी। समुद्रगुप्त वैशाली के लिच्छवियों के शक्तिपूर्ण सहयोग को प्राप्त कर उत्तरी भारत की विजय और प्रभुत्व के कार्य पर अग्रसर हो गया था। उसके इलाहाबाद के स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख में आर्यावर्त अथवा नर्मदा से उत्तर के उन नरेशों की लम्बी सूची दी गयी है जिन्हें उसने बलात् गद्दी से उतार दिया था और जिनके राज्यों पर उसने प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।* इन राजाओं में नागदत्त, गणपति नाग और नागसेन आदि नाग शासक थे। इनमें से सम्भवत गणपति नाग पद्मावती का तत्कालीन शासक था क्योंकि उसके सिक्के वहा प्राप्त हुए हैं। वह स्पष्टतया भवनाग का उत्तराधिकारी था। दूसरे नाग राजा सम्भवत मध्य भारत की छोटी रियासतों पर राज्य कर रहे थे। हमें यह ज्ञात नहीं है कि रुद्रसेन प्रथम ने नर्मदा के पारवर्ती अपने सम्बन्धियों की मदद के लिये क्या कदम उठाये, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनकी पूर्ण पराजय एव पतन से उसे उत्तरी भारत के एक शक्तिशाली सघराज्य की मदद मिलनी बन्द हो गयी।

उत्तरी भारत के नरेशों को पराजित कर समुद्रगुप्त ने अपनी विजययात्रा दक्षिण में प्रारम्भ की। उसका आक्रमण सबसे पहले कोसल अर्थात छत्तीसगढ के शासक महेन्द्र को अनुभव हुआ। यह राजा सम्भवत पहले अपने राज्य के शक्तिशाली पडोसी वाकाटकों का माडलिक (करद सामन्त) था। अन्त में महेन्द्र पराजित हो गया † और उसे अपने प्रदेश में से होकर महाकान्तार (आधुनिक बस्तर जिला) के व्याघ्रराजा के राज्य और दूसरे दक्षिणी राजाओं पर आक्रमण करने के लिये समुद्रगुप्त को अनुमति देनी पडी।

इन गुप्त विजयों ने वाकाटक वश की इस मुख्य शाखा की शक्ति व प्रतिष्ठा को बड़ी भीषण क्षति पहुचायी। महाकान्तार के व्याघ्रराजा, जो सम्भवत नल वश का था, कुराळ का महाराज, पिष्टपुर (आधुनिक पीठापुर) का महेन्द्र गिरि और बहुत से दूसरे राजाओं ने वाकाटक प्रभुत्व को छोड कर गुप्त साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। इसलिये इस मुख्य शाखा का राज्य उत्तर विदर्भ में अर्थात् नर्मदा और इन्ध्याद्रि पर्वतराजि के मध्यवर्ती प्रदेश में मर्यादित हो गया।

सन् ३४५ ई मे रुद्रसेन का स्थान उसके पुत्र प्रथम पृथिवीषेण ने लिया। उसके उत्तराधिकारियों के दानपत्रों में वह महेश्वर का परम भक्त घोषित किया गया है और उसमें सचाई, ऋजुता, दया, सयम और दान के साथ-साथ वीरता एव राजनीतिक बुद्धिमत्ता के श्रेष्ठ गुण कहे गये है। उसकी तुलना उक्त गुणों से सुप्रसिद्ध प्राचीन पाण्डव युधिष्ठिर से भी की गयी थी।‡ प्रतीत होता है कि प्रथम पृथिवीषेण ने शान्तिपूर्ण नीति प्रचलित रखी जिससे उसकी प्रजा को सुख और समृद्धि मिली। उसके राज्य के उत्तरी सीमाओं के पार गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त अपने

---

* फ्लीट "गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स्" पृष्ठ ७

† दक्षिणी कोसल में गुप्त प्रभुत्व स्वीकार किया जाता था यह बात महेन्द्र के उत्तराधिकारियों द्वारा गुप्त सम्वत् के प्रयोग से स्पष्ट होती है। राय हीरालाल द्वारा सम्पादित भीमसेन द्वितीय के आरग पत्र देखिये, एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द ९, पृष्ठ ३४२ इ और उस के काल के विषय में मेरा सशोधन। वही जिल्द २६ पृष्ठ २२८

‡ देखिये मेरे द्वारा सम्पादित पट्टन पत्र (एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २७, पृष्ठ ८५)—अत्यन्त माहेश्वरस्य सत्यार्जवकारुण्य शौर्य विक्रमनय विनय माहात्म्य धीमत्त्व पात्रगतभक्तित्वधर्मविजयित्व मनोनैर्मल्यादि गुणै समुपेतस्य वर्षशतमभिवर्धमानकोशदण्ड साधन सन्तान पुत्र पौत्रिण युधिष्ठिर वृत्तेर्वाकाटका नाम्महाराजश्री पृथिवीषेणस्य, इत्यादि

पड़ोसियों को पराजित कर एव उनके राज्यो पर अधिकार कर आक्रमणात्मक नीति प्रचलित कर रहे थे। पृथिवीषेण हेतुपूर्वक इन युद्धो मे फंसने से वचे रहे और दक्षिण में अपनी स्थिति को सुदृढ करने और प्रजा की परिस्थिति सुधारने में लगे रहे। अधिकृत वाकाटक लेखों मे उसकी नीति के परिणाम निम्न शव्दो मे लिखे गये है: "पृथिवीषेण के पास, निरन्तर प्राप्त होने वाला कोश और सेना थी जो कि पिछले सौ वर्षो से संगृहीत हो रहे थे।"

प्रथम पृथिवीषेण ने दीर्घ काल तक शासन किया जो सम्भवत: सन् ४०० ई. में समाप्त हुआ। इसके शासन की समाप्ति से कुछ वर्ष पूर्व सन् ३९५ में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने, जो कि उस समय तक उत्तर भारत के वड़े भाग का सार्वभौम प्रभु वन गया था, मालवा और काठियावाड़ के शक क्षत्रपो पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध के कारण अज्ञात है। क्षत्रप वाकाटकों के उत्तरी पड़ोसी थे। इन्होंने मालवा, उत्तरी गुजरात और काठियावाड़ के उपजाऊ प्रान्तो पर निरन्तर तीन शताव्दी से अधिक कव्जा रखा था और वे अत्यन्त शक्तिशाली वन गये थे। इसलिये यह स्वाभाविक ही था कि क्षत्रपों के विरुद्ध अपने आक्रमण मे चन्द्रगुप्त ने अपने शक्तिशाली पड़ोसी वाकाटक नरेश प्रथम पृथिवीषेण की मैत्री चाही। गुप्तों और वाकाटकों का संयुक्त वल पश्चिमी क्षत्रपों का उन्मूलन करने मे समर्थ था, फलत: वे इसी समय से इतिहास के गर्भ मे विलीन हो गये। उसके वाद चन्द्रगुप्त ने मालवा पर अधिकार कर लिया और सम्भवत: उसने उज्जयिनी को अपने विस्तीर्ण साम्राज्य की दूसरी राजधानी वनाया। वाकाटको से हुई राजनीतिक मैत्री को मजवूत करने के लिये उसने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह प्रथम पृथिवीषेण के पुत्र वाकाटक राजकुमार द्वितीय रुद्रसेन से कर दिया। मालवा और विदर्भ के शासक राजवंशों का यह वैवाहिक सम्वन्ध शुङ्गों के समय हुई पांच शताव्दी पूर्व की ऐसी घटना को स्मरण कराता है। कालिदास का नाटक 'मालविकाग्निमित्र' जो कि पिछली घटना का चित्रण करता है सम्भवत. उज्जयिनी मे प्रभावती गुप्ता और द्वितीय रुद्रसेन के विवाह के अवसर पर सर्वप्रथम रंगमंच पर प्रदर्शित किया गया था।*

अपने पिता के समान ही प्रथम पृथिवीषेण भी शैव था। उसके काल मे वाकाटक राजधानी नागपुर से २८ मील दूर रामटेक के समीप नन्दिवर्धन, आधुनिक नन्दर्धन या नगरवन के समीप ले जायी गयी। यह स्थान घूघसगढ, भिवगढ आदि सुदृढ़ सुरक्षित किलो से घिरा होने से राजकीय राजधानी वनाये जाने के लिये योग्य समझा गया।†

प्रथम पृथिवीषेण के स्थान पर उसका पुत्र एव प्रसिद्ध गुप्त राजा द्वितीय चन्द्रगुप्त उर्फ विक्रमादित्य का जामात द्वितीय रुद्रसेन राजगद्दी पर वैठा। उसके सव पूर्वज शैव थे किन्तु यह राजा चक्रपाणि (विष्णु) का भक्त था और अपनी समृद्धि के लिये वह उसी की कृपा को कारण मानता था। धार्मिक श्रद्धा मे यह परिवर्तन सम्भवत: उसकी धर्मपत्नी प्रभावती गुप्ता के प्रभाव के कारण हुआ था जो कि अपने पिता के समान विष्णु की भक्त थी। वह रामगिरि की टेकड़ी पर श्री रामचंद्र के पादमूलों (पदचिह्नों) की पूजा करती थी और वाद में उसने कुछ दान दिये थे।‡ यह रामगिरि ही वर्त्तमान रामटेक है जो नागपुर के समीप तीर्थयात्रा का एक सुप्रसिद्ध स्थान है। यह उस समय की वाकाटक राजधानी नन्दिवर्धन × से लगभग ३ मील की दूरी पर था।

राजगद्दी पर वैठने के वाद जल्दी ही रुद्रसेन द्वितीय का स्वर्गवास होगया। उसने सम्भवत: दो लड़के दिवाकरसेन और दामोदरसेन अपने पीछे छोड़े थे जो कि उसके वाद क्रमश: गद्दी पर वैठे। अपने पिता की मृत्यु के समय दिवाकरसेन

---

* मिराशी, 'कालिदास' (हिन्दी मे) पृष्ठ १८३-४

† वेल्स्टेड, "मध्यप्रदेश के वाकाटक और उनका प्रदेश" जे. ए. एस. वी. जिल्द २९, पृष्ठ १५९ इ

‡ प्रभावती गुप्ता के ऋद्धपुर पत्रों में वितरण के स्थान के रूप में रामगिरि का उल्लेख किया गया है। (रामगिरि-स्वामिन: पादमूलात्) जे. ए. एस. वी. (एन. एस.), जिल्द २०, पृष्ठ ५८.

× मिराशी 'रामगिरि का स्थान' 'नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल' सं. ९ पृष्ठ ९ इ.

अल्पवयस्क था। रानी प्रभावती गुप्ता ने अपने छोटे पुत्र की अभिभाविका (रीजट) के रूप में राज्य के कार्यों का सचालन किया। बालक राजा के शासन के १३ वे वर्ष में नन्दिवर्धन से प्रसारित अपने पूना ताम्रपत्र से * यह सर्वप्रथम मालूम पडा है कि वह सुप्रसिद्ध गुप्त राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय की सुपुत्री थी। और इससे वाकाटकों का काल निश्चित हो गया है। † इस लेख के आरम्भ में दूसरे वाकाटक ताम्रपत्र के समान वाकाटक वंशावलि न देते हुए गुप्त वंशावलि दी गई है जिससे स्पष्ट है कि प्रभावती गुप्ता के शासन काल में वाकाटक राजदरबार में गुप्त प्रभाव प्रबल था। चन्द्रगुप्त ने स्पष्टतया अपनी पुत्री को अपने राज्य के शासन कार्य में सहायता देने के लिये अपने कुछ विश्वासपात्र अधिकारी और राजनीतिज्ञ भेजे थे। इन में से एक सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि कालिदास था जो कुछ समय तक वाकाटक राजधानी में रहा होगा। सम्भवत उसने अपने विदर्भ के प्रवास में अपने विश्वप्रसिद्ध काव्य मेघदूत की रचना की क्योंकि इसमें उसने निर्वासित यक्ष के निवासस्थान के रूप में रामगिरि का उल्लेख किया है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि यह स्थान नागपुर के समीप रामटेक ही है।

प्रतीत होता है कि दिवाकरसेन भी अल्पायु ही रहा। उसके स्थान पर राजगद्दी पर उसका भाई दामोदरसेन बैठा जिसने अपने यशस्वी पूर्वज के नाम पर गद्दी पर बैठते समय अपना प्रवरसेन नाम रखा। इस राजा के कुछ दान पत्र हमें मिले हैं। इन में उसके मध्यप्रदेश के अमरावती, वर्धा, नागपुर, बैतूल, भण्डारा और बालाघाट जिला के खेतो व गावो के दानो का उल्लेख किया गया है। इनमें सबसे बाद का २७ वें शासन वर्ष का ‡ है जिसका पट्टन ताम्रपत्रो में उल्लेख किया गया है। इस प्रकार उसने सन् ४२० से ४५० ई तक लगभग ३० वर्षों तक दीर्घ शासन किया।

अपने शासन के ११ वे वर्ष तक द्वितीय प्रवरसेन पुरानी राजधानी नन्दिवर्धन से शासन करता रहा क्योंकि उसके बेलोरा ताम्रपत्र उसी वर्ष में उसी नगर से × वितरित किये गये थे। उसके बाद उसने प्रवरपुर नामक एक नये नगर की स्थापना की जिसे उसने अपनी राजधानी बनाया। प्रवरपुर से वितरित सबसे पुराना दानपत्र १८वें शासन वर्ष ┼ का है जिससे पता लगता है कि राजधानी का परिवर्तन ११ वें से १६ वें शासन वर्ष के मध्य में हुआ होगा। प्रवरपुर बहुधा वर्धा जिले का पवनार ही है। द्वितीय प्रवरसेन शम्भु का भक्त था। ताम्रपत्रो में कहा गया है कि इसकी कृपा से उसने पृथ्वी पर कृतयुग या स्वर्ण युग की प्रतिष्ठा की थी। वह एक उदार शासक था क्योंकि उसके दर्जन भर दान-पत्र अभी तक हस्तगत हुए हैं। कालिदास जैसे महान् कवि के सम्पर्क में आने से स्वभावत उसने काव्य रचना की रुचि प्राप्त कर ली थी। यद्यपि वह शैव था परन्तु उसने सम्भवत अपनी माता प्रभावती गुप्ता के कहने पर राम की प्रशंसा में प्राकृत 'काव्य सेतुबन्ध' की रचना की थी। इस काव्य की संस्कृत कवियो और आलंकारिकों ने बडी प्रशंसा की।

सन् ४५० ई के लगभग नरेन्द्रसेन अपने पिता द्वितीय प्रवरसेन के स्थान पर गद्दी पर बैठा। इसका निर्देश उसके पुत्र द्वितीय पृथिवीषेण । के अपूर्ण बालाघाट ताम्र-पत्रो में उपलब्ध होता है। उसने कुन्तल की

---

* एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १५, पृष्ठ ३९ इ। ये पत्र यद्यपि सुदूरवर्ती पूना में पाये गये है, परन्तु जैसा कि मैं 'प्रवरसेन द्वितीय के कोठुरक दानपत्र' सम्बन्धी अपने लेख में प्रदर्शित कर चुका हू ये मूलत हिंगनघाट तहसील के है। एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २६, पृष्ठ १५८।

† वाकाटक भूदान पत्रों में प्रभावती गुप्ता के पिता के रूप में देवगुप्त का उल्लेख है। यह भ्रम से ८ वी शताब्दी का तन्नामक गुप्त राजा समझा जाता था। देखिये 'गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स्', भूमिका, पृष्ठ १५

‡ मिराशी 'द्वितीय प्रवरसेन का पट्टन ताम्रपत्र' एपिग्राफिया इण्डिका', जिल्द २३, पृष्ठ ८३ इ

× मिराशी "द्वितीय प्रवरसेन के दो अपूर्ण दान-पत्र" वही, जिल्द २४, पृष्ठ २६० इ

┼ फ्लीट "द्वितीय प्रवरसेन" के चम्मक ताम्रपत्र," गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स्' पृष्ठ २३५ इ

। कील्हॉर्न, 'द्वितीय पृथिवीषेण के बालाघाट ताम्र-पत्र' एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ९, पृष्ठ २६७ इ

राजकुमारी अभ्भित भट्टारिका से विवाह किया था। वह सम्भवत: मानपुर की राष्ट्रकूट वंश की थी जिसका शासन दक्षिण महाराष्ट्र पर, जिसमे कम से कम सातारा, शोलापुर जिले और कोल्हापुर जिले सम्मिलित थे-प्रतिष्ठित था। * कोल्हापुर के समीप एक गांव में प्राप्त पाण्डरङ्गपल्ली ताम्र-पत्रो में इस राजवंश के संस्थापक मानाङ्क को समृद्ध कुन्तल † प्रदेश का शासक वतलाया गया है। इस राजवंश का वड़ा भारी प्रभाव था और यदा-कदा इसकी वाकाटक वंश की वत्सगुल्म शाखा से टक्कर हो जाती थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय मे यह गुप्त प्रभाव क्षेत्र मे आगया था और जनश्रुति के अनुसार इसका राज्य शासन गुप्त सम्राट् के निर्देशानुसार चलता था। प्रसिद्ध कवि कालिदास तत्कालीन कुन्तल नरेश के, जो कि सम्भवत: देवराज था, ‡ राज दरवार मे राजदूत के रूप में भेजा गया था। नरेन्द्रसेन द्वारा विवाहित अभ्भित भट्टारिका सम्भवत: देवराज के पुत्र अविधेय की पुत्री थी जिसका उल्लेख पाण्डरङ्गपल्ली के ताम्रपत्रो में किया गया है। यह सम्भवत: सन् ४४० ई. से ४५५ इ. तक हुआ था।

नरेन्द्रसेन ने आक्रमणात्मक नीति प्रचलित रखी और पूर्व तथा उत्तर मे विजय प्राप्त की। उसके पुत्र द्वितीय पृथिवीषेण के वालाघाट ताम्रपत्रो मे कहा गया है उसने अपनी शक्ति से अपने शत्रुओं को पराजित किया और उसका आदेश कोसल, मेकला और मालवा के शासको द्वारा ╪ मान्य किया जाता था। इन प्रदेशो में से मालवा पश्चिमी क्षत्रपों के पतन के वाद से उस समय तक गुप्तों के प्रत्यक्ष शासन प्रवन्ध के अन्तर्गत था। पाचवी शताब्दी के मध्य तक हूणों के आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य अस्थिर हो गया था। यद्यपि युवराज स्कन्दगुप्त ने इन आक्रमणो की लहर को रोकने के लिये वड़ी वीरता के साथ संग्राम किया था तो भी देश भर में अशान्ति और अनिश्चितता का भाव व्याप्त हो गया था। इसी समय के लगभग कुमारगुप्त का स्वर्गवास हो गया। उसके पुत्र स्कंदगुप्त को पुष्यमित्र तथा दूसरे शत्रुओ के कारण गम्भीर संकटों का सामना करना पड़ा। मध्य भारत के मन्दसौर स्थान में स्कन्दगुप्त के पितृव्य (चाचा) गोविन्दगुप्त का उत्कीर्ण लेख ·|· प्राप्त हुआ है। इसमे गुप्त सम्वत् के स्थान पर विक्रमी सम्वत् का उल्लेख किया गया है और चन्द्रगुप्त के तुरन्त वाद गोविन्दगुप्त का नामोल्लेख किया गया है। इस लेख में तत्कालीन नृपति स्कन्दगुप्त के नाम का अभाव उल्लेखनीय है। इससे स्पष्ट है कि गोविन्दगुप्त ने अपने भाई की मृत्यु के वाद भतीजे की सार्वभौम प्रभुसत्ता को मानने से इन्कार कर दिया था। सम्भवत: वह अपने दक्षिणी पड़ोसी वाकाटक नरेन्द्रसेन से मिल गया। वालाघाट ताम्र पत्रों के लेखानुसार वह उसकी आज्ञा शिरोधार्य मानता था।

अमरकण्टक के समीप का प्रदेश मेकला था जहा से निकलने वाली नर्मदा को मेकलसुता कहा जाता है। यहा से इस राजवंश का एक ताम्र-पत्र हस्तगत हुआ है। × इससे स्पष्ट होता है कि इस दान-पत्र को देने वाला एव अपने को पुराणों के योद्धा पाण्डवो का वशधर कहने वाला राजा भरतबल मेकला प्रदेश पर राज्य कर रहा था और वह नरेन्द्र-नामक सम्राट् की सार्वभौम प्रभु सत्ता को अङ्गीकार करता था। यह शासक वाकाटक नरेन्द्रसेन के अतिरिक्त दूसरा कोई नही हो सकता।

---

* १६२६ वर्ष की मैसूर आर्किआलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, पृष्ठ १६७ इ.। 'मानपुर के राष्ट्रकूट' शीर्षक लेख मे मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को देखिये। 'अनाल्स आफ दि भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट', जिल्द २५, पृष्ठ ३६ इ.

† वही, 'पाण्डरङ्गपल्ली ताम्र पत्रों की प्रथम पंक्ति मे' सविदर्भाश्मकविजेता मानाङ्कनृपति: श्रीमत्कुन्त-लानां प्रशासिता' यह उल्लेख है।

‡ मेरा 'मानपुर के राष्ट्रकूट' शीर्षक लेख देखिये।

╪ कोसलामेकलामालवाधिपति [भि*] रभ्यर्च्चित शासनस्य प्रभावप्रणतारिशासनस्य वाकाटकानाम्महाराज श्री नरेन्द्रसेनस्य'। वही ताम्रपत्र देखिये।

·|· १६२२-२३ की ग्वालियर आर्किआलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, पृष्ठ १८७.

× भारतकौमुदी, जिल्द १, पृष्ठ २१५ इ.

कोसला निस्सन्देह दक्षिण कोसल या छत्तीसगढ है जिसमें दुग, रायपुर और बिलासपुर के आधुनिक जिले सम्मिलित हैं। कोसल का राजा वाकाटक का पूर्वी पडोसी था। जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि ईसा की चौथी शताब्दी में इस प्रदेश पर राज्य करने वाले महेन्द्र को समुद्रगुप्त ने पराजित कर दिया था और उसको गुप्त सम्राट् की सार्वभौम सत्ता स्वीकार करनी पडी थी। इस समय गुप्त शक्ति क्षीण हो जाने से कोसलानरेश ने भी अपनी वफादारी वाकाटक नरेन्द्रसेन में हस्तान्तरित कर दी होगी।

नरेन्द्रसेन के शासन का अन्त सन् ४७० ईस्वी में हुआ होगा। इस समय के लगभग नल राजा भवदत्त वर्मा ने वाकाटक प्रदेश पर आक्रमण किया था। पुराण के अनुसार नल राजा कोसला पर राज्य करते थे* और यह बात उनके उत्कीर्ण लेखों तथा सिक्कों की उपलब्धि से पुष्ट होती है। नल राजवंश के तीन नरेशो अर्थात् वराह, भवदत्त और अर्थपति के सोने के सिक्के बस्तर जिले † के एडेङ्गा और कोण्डेगाव तहसील में पाये गये हैं। सम्भवत इन में से वराह सर्वप्रथम राज्य करता था उसे नरेन्द्रसेन ने पराजित कर दिया होगा। प्रतीत होता है कि उसके पुत्र भवदत्त-वर्मन ने इसका बदला लिया। उसने वाकाटक प्रदेश पर आक्रमण किया और पुरातन वाकाटक राजधानी नन्दिवर्धन तक बढ आया और उस पर कुछ समय तक अधिकार रखा। अमरावती जिले के ऋद्धपुर स्थान में प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि राजा भगदत्त ने प्रयाग के पवित्र तीर्थ (इलाहाबाद) में अपने तथा अपनी पत्नी के धार्मिक गुणों की अभिवृद्धि के लिये एक गाव दान में दिया था। ‡ वास्तव में ये पत्र उसके पुत्र अर्थपति ने, नन्दिवर्धन से × प्रसारित किये थे। इस उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट होता है कि वाकाटक राज्य के कुछ भाग पर नलो ने अधिकार कर लिया था।

वाकाटक भी स्पष्टतया अपना पराभव स्वीकार करते हैं। बालाघाट के ताम्र पत्रों में कहा गया है कि नरेन्द्रसेन के पुत्र द्वितीय पृथिवीषेण ने अपने अस्तगत वंश का अभ्युदय किया था। + प्रतीत होता है कि इस समय इसे विवश होकर पूर्व की ओर जाना पडा और पद्मपुर में अपनी राजधानी स्थापित करनी पडी। यह नगर भण्डारा जिले का आमगाव का समीपवर्ती आधुनिक पद्मपुर है जहा से एक अपूर्ण वाकाटक ताम्रपत्र प्रसारित किया जानेवाला था। | पूर्वी विदर्भ में अपनी इस राजधानी में पृथिवीषेण ने अपनी स्थिति सुदृढ कर ली और कुछ समय के बाद उसने अपने पैतृक प्रदेश से शत्रु को निकाल दिया। वह शत्रुप्रदेश में भी युद्ध करता चला गया और जैसा कि विजगापट्टम जिले की भू पू जयपोरे एजन्सी के पोडा गढ में प्राप्त अर्थपति के भाई स्कन्दवर्मन के उत्कीर्ण लेख में स्वीकार किया गया है उसने नलो की राजधानी पुष्करी पर भी हमला कर उसे नष्टभ्रष्ट कर दिया।

पृथिवीषेण द्वितीय ने जल्दी ही उत्तर में भी अपनी स्थिति सुधार ली क्योंकि मध्य भारत के पुराने अजयगढ व जासो राज्यो के गज तथा नचना स्थानो में मिले दो उत्कीर्ण लेखो में उसके माडलिक व्याघ्रदेव ने उसकी सार्वभौम सत्ता

---

* कोसलाया तु राजानो भविष्यन्ति महाबला । मेघा इति समाख्याता बुद्धिमन्तो नवैव तु । नैषधा पार्थिवा सर्वे भविष्यन्त्यामनुक्षयात् । नलवंश प्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबला ॥ पार्जीटर "डायनेस्टीज" आदि, पृष्ठ ५१

† मिराशी, 'नल राजवंश के तीन नरेशो के सोने के सिक्के', जे एन एस आई, जिल्द १, पृष्ठ २९ इ

‡ गुप्ते, 'भवदत्तवर्मन के ऋद्धपुर के ताम्रपत्र' एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १९, पृष्ठ १०० इ

× जे एन एस आई जिल्द १, पृष्ठ ३० इ

+ द्वि (नि) मग्नवंशस्योद्धर्तु वाकाटकानाम्परम भागवत महाराज-श्री पृथिवीषेणस्य। एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द ९, पृष्ठ २७१

| मिराशी, "दुर्ग में प्राप्त एक अपूर्ण वाकाटक ताम्र-पत्र" एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द २२, पृष्ठ २०७ इ

श्रीनलान्वयमुख्यस्य विक्रमक्षपितद्विष । नृपतेभवदत्तस्य सत्पुत्रेणा यसस्थिताम्। भ्रष्टामाकृष्य राजर्द्धि शून्यामावस्य पुष्करीम्। पादमूल कृत विष्णो राजा श्री स्कन्दवर्म्मणा ॥ एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द २६, पृष्ठ १५६ इ

को स्वीकार किया है। सम्भवत . यह व्याघ्रदेव उच्चकल्प राजवंश का रहा होगा क्योंकि समीपवर्त्ती राज्य नगोध में इस वंश के कई उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें महाराजा व्याघ्र का उल्लेख मिलता है। इस व्याघ्र का पुत्र जयनाथ सन् ४९० ई. से सन् ५१० * ईस्वी तक राज्य कर रहा था इसलिये व्याघ्र का काल ४७० ई. से ४९० ईस्वी तक रहा होगा। इस प्रकार व्याघ्र द्वितीय पृथिवीषेण का समवर्ती था।

द्वितीय पृथिवीषेण, वाकाटक वंश की इस मुख्य शाखा का अन्तिम ज्ञात राजा है। सम्भवत : उसका शासन सन् ४९० मे समाप्त हुआ होगा। उसके बाद सम्भवत : उसका राज्य वत्सगुल्म शाखा के हरिषेण ने अपने अधिकार मे ले लिया क्योकि उसने सभी दिशाओं मे अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। इस प्रकार डेढ सौ वर्षो से अधिक (सन् ३३० से ४९० ईस्वी तक) के उत्तम राज्य शासन के बाद वाकाटक राजवंश की इस मुख्य शाखा का अस्त हो गया।

वत्सगुल्म शाखा—सन् १९३९ मे वाशीम ताम्रपत्र के मिलने तक इस शाखा का अस्तित्व अज्ञात था। इस शाखा के कई सदस्यो के नाम अजन्ता के गुफा लेखो मे उल्लिखित पाये गये थे परन्तु उस लेख के दुर्भाग्यपूर्ण बिगाड़ से उनके नाम गलत पढ़े गये थे। अब वे नाम ठीक तरह से पढे गये हैं और यह स्पष्ट हो चुका है कि अजन्ता और इन्ध्याद्रि पर्वतराजि के दक्षिणवर्ती प्रदेश मे राज्य करने वाले नरेश वाकाटक वंश † की ही एक विभिन्न शाखा के थे।

इस शाखा का संस्थापक सर्वसेन था जिसका वाशीम के ताम्रपत्र एवं अजन्ता के उत्कीर्ण लेख दोनो मे ही प्रवरसेन के पुत्र के रूप मे उल्लेख किया गया है। सम्भवत : वह उसके छोटे लड़को में से एक था। प्रतीत होता है कि उसके शासन के अन्तर्गत प्रदेश इन्ध्याद्रि पर्वतराजि के दक्षिण से लेकर गोदावरी तक फैला हुआ था। उसने वत्सगुल्म को, अकोला जिले में वर्तमान वाशीम को, अपनी राजधानी बनाया था। इसके चारों ओर का प्रदेश वत्सगुल्म कहलाता था जिसका वात्सायन के कामसूत्र ‡ मे उल्लेख किया गया है। वत्सगुल्म एक पवित्र तीर्थ समझा जाता था और स्थानीय माहात्म्य के अनुसार इस कथन का कारण यह था कि ऋषि वत्स ने अपनी तपस्या से देवताओं के समूह को नीचे उतरने और अपनी कुटिया के समीपस्थ क्षेत्र मे बसने के लिये विवश किया था। वाकाटक काल मे यह विद्या और संस्कृति का बड़ा केन्द्र बन गया और श्रेष्ठ काव्य रीति के लिये 'वच्छोमी' नाम दिया जाने लगा।

वाशीम ताम्रपत्र+ से हमें यह मालूम पडता है कि सर्वसेन ने धर्ममहाराज की उपाधि को प्रचलित रखा जो कि उसके पिता प्रवरसेन ने दक्षिण भारत की प्रथा के अनुसार ग्रहण की थी। अजन्ता के उत्कीर्ण लेख में उसका जो वर्णन हुआ है वह पूर्णतया रूढ़रूप के अनुसार है। सर्वसेन प्राकृत काव्य-हरिविजय के लेखक के रूप मे प्रसिद्ध है जिसकी सस्कृत कवियो तथा आलंकारिकों ने बड़ी प्रशसा की है। उसने कई प्राकृत गाथाये भी लिखी थी जिन मे से कुछ गाथा 'गाथा-सप्तशती' मे सम्मिलित की गई है। सर्वसेन का काल सम्भवत : सन् ३३० से ३५५ ईस्वी तक रहा होगा।

सर्वसेन के बाद विन्ध्यसेन आया जिसे वाशीम ताम्रपत्र मे (द्वितीय) विन्ध्यशक्ति कहा गया है। उसने आक्रमक नीति प्रचलित रखी और कुन्तल के नरेश को जो कि उसका दक्षिण पडोसी था पराजित कर दिया। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है उस समय के लगभग × एक राष्ट्रकूट राजवश का अभ्युदय हुआ। प्रतीत होता है कि इसके संस्थापक मानाङ्क ने बहुत विजय प्राप्त की थी और गोदावरी के दक्षिणवर्त्ती प्रदेश को अपने अधिकार मे ले लिया

---

* एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १७, पृष्ठ १२ इ. और गुप्त इन्स्क्रिपशन्स् पृष्ठ २३५ इ,
जैसा कि मै दिखला चुका हूँ, उच्चकल्प राजाओ के लेखों में गुप्त संवत् का ही प्रयोग किया गया है। एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २३, पृष्ठ १७१ इ.

† मिराशी, अजन्ता मे १६ वीं गुफा मे वाकाटक उत्कीर्ण लेख (हैदराबाद आर्किऑलाजिकल सिरीज, संख्या १४).

‡ कामसूत्र (निर्णयसागर प्रेस संस्करण) पृष्ठ २९५.

+ एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २६, पृष्ठ १३७ इ.

× मिराशी, "मानपुर में राष्ट्रकूट" ए. बी. ओ. आर. आई, जिल्द २५ पृष्ठ ३६ इ.

था जिन पर प्रथम प्रवरसेन का एक दूसरा पुत्र पहले राज्य कर रहा था। उसके उत्तराधिकारियो ने अपने उत्कीर्ण लेखो म मानाङ्क का उल्लेख समृद्ध कुन्तल के शासक एव अश्मक और विदर्भ के विजेता के रूप में किया है। मानाङ्क ने मानपुर नगर बसाया था जो इन राष्ट्रकूटो की राजधानी बना। मानपुर सम्भवत बम्बई राज्य की माण तहसील के प्रमुख गाव माण के तुल्य ह।

इस प्रकार मानाङ्क दक्षिण महाराष्ट्र पर राज्य कर रहा था। उसका राज्य अश्मक और विदर्भ से सलग्न था। अश्मक गोदावरी नदी के किनारे के साथ फैला हुआ था इसमें वर्तमान हैदराबाद राज्य का औरगाबाद जिला सम्मिलित था। अश्मक का शासक सम्भवत वत्सगुल्म वाकाटको का माडलिक राजा था।

उत्तरकालीन राष्ट्रकूट ताम्रपत्रो की अक्षरवटिका से अनुमित होता है कि मानाङ्क चौथी ईस्वी शताब्दी के अन्त में राज्य करता था। अत वह विन्ध्यसेन का समकालीन था। जब कि मानाङ्क और विन्ध्यसेन दोनो ही एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने का दावा करते है इससे प्रतीत होता है कि इस युद्ध से दोनों में से कोई भी पूर्ण विजयी नही हुआ था। मानाङ्क के उत्तराधिकारी देवराज के समय में कुन्तल का राज्य गुप्तो के प्रभावक्षेत्र में आगया क्योकि इसका शासन चन्द्रगुप्त द्वितीय के अनुशासन में चलता था। इस प्रकार यह वत्सगुल्म वाकाटको के लिये कोई खतरा न रह गया।

विन्ध्यसेन ने अपने ३७ वें शासन वर्ष मे वाशीम दान पत्र वितरित किया था। यह दानपत्र राजधानी वत्सगुल्म से प्रसारित किया गया था और इसमें नान्दीकट (हैदराबाद राज्य में वर्तमान नान्देड) के विषय में एक गावके दान का उल्लेख किया गया था। दानपत्र का राजावलि भाग सस्कृत में लिखा गया था दान दिये गाव का वर्णनादि इतर भाग भाषा में। विन्ध्यसेन ने अपने पिता सर्वसेन की तरह धर्ममहाराज की उपाधि ग्रहण की थी। सम्भवत वह प्रथम पृथिवीषेण का समकालीन था और इसी के समान इसके शासन का अन्त ४०० ईस्वी के लगभग हुआ था।

विन्ध्यसेन के बाद उसका पुत्र द्वितीय प्रवरसेन शासक बना, परन्तु इसके बारे में बहुत कम मालूम है। अजन्ता के उत्कीर्ण लेख मे कहा गया है कि वह अपने उत्कृष्ट, शक्तिशाली और उदार शासन से गौरवान्वित हो गया था। प्रतीत होता है कि उसके शासन का समय बहुत कम रहा (सन् ४०० से ४१५ ईस्वी तक) क्योकि जब उसकी मृत्यु हुई तब उसका पुत्र केवल ८ वर्ष की आयु का था।

इस बाल राजा का नाम, अजन्ता के उत्कीर्ण लेख में लुप्त हो गया, किन्तु उसने अच्छी तरह से शासन किया-यह वर्णन उस लेख में आया है। सन् ४४० ईस्वी में उसका स्थान उसके पुत्र देवसेन ने लिया। इसका एक ताम्रपत्र दक्षिणी बरार के किसी स्थान पर प्राप्त हुआ था और तबसे उसे ब्रिटिश सग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। अभी हाल में इसका प्रकाशन डा रैण्डल ने किया है। * यह ताम्रपत्र भी वत्सगुल्म से प्रसारित किया गया था जिससे स्पष्ट होता है कि यह स्थान अन्त तक राजकीय राजधानी बना रहा।

देवसेन का हस्तिभोज नामक एक बडा ही साधुवृत्ति और योग्य मन्त्री था। वह राज्य के कारबार की देखरेख करता था और सम्पूर्ण प्रजा प्रसन्न रखता था। देवसेन ने अपने राज्य का शासन प्रबन्ध उसे ही सौंप दिया था और स्वय सुखोपभोगो में लगा रहता था। अजन्ता और घटोत्कच गुफालेखो में हस्तिभोज की प्रशसा की गयी है, इन्हें उसके पुत्र वराहदेव † ने ही लिखवाया था।

सन् ४७५ ईस्वी में देवसेन का स्थान हरिषेण ने ग्रहण किया था जो अपनी वशावलि का अन्तिम ज्ञात राजा था। वह एक शूर और महत्त्वाकाक्षी नरेश था। उसने सभी दिशाओ में अपने राज्य का प्रसार किया था। दुर्भाग्य

---

* रण्डल, "वाकाटक महाराजा देवसेन का एक अप्रकाशित इण्डिया आफिस ताम्रपत्र" न्यू इण्डिया एटिक्वेरी (ए आई ए) जिल्द २, पृष्ठ १७७ इ

† हैदराबाद आर्कियालाजिकल सिरीज, स १४ और १५

से अजन्ता की १६ वीं गुफा मे उत्कीर्ण लेख की १४-१५ * पक्तियों में उसकी विजयो का उल्लेख बुरी तरह नष्ट हो गया है परन्तु उसमे उन कई प्रदेशो का उल्लेख किया गया है जिन्हें उसने जीत लिया था अथवा कर देने के लिये विवश किया। ये सभी प्रदेश विदर्भ की चारों दिशाओ मे अवस्थित है अर्थात् उत्तर में अवन्ति (मालवा), पूर्व मे कोसला (छत्तीसगढ़), कलिंग (उत्तरी सरकार), आन्ध्र (गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के मध्य मे पूर्वी समुद्रतट के साथ का प्रदेश), पश्चिम मे लाट (गुजरात) और त्रिकूट (नासिक जिला) और दक्षिण मे कुन्तल (दक्षिण महाराष्ट्र)। इस प्रकार प्रतीत होता है कि हरिषेण उत्तर मे मालव से लेकर दक्षिण में कुन्तल तक के और पश्चिम मे अरब समुद्र से लेकर पूर्व मे बगाल के उपसमुद्र तक के फैले हुए सम्पूर्ण देश का सर्वमान्य अधिपति बन गया था।

हरिषेण का वराहदेव नाम का एक धर्मात्मा, उदार एवं योग्य मन्त्री था जिसे राजा और प्रजा समान रूप से चाहते थे। उसने अजन्ता की १६ वी गुफा बनवायी और उसे उत्कीर्ण मूर्तियो और चित्रावलियो से सजाया। इसके बरामदे की दीवार पर उसने जो उत्कीर्ण लेख लिपिबद्ध करवाया था वही वत्सगुल्म शाखा के विषय में ज्ञान का हमारा मुख्य साधन है। उसने घटोत्कच गुफा भी बनवायी, उस में भी उसका एक उत्कीर्ण लेख मिला है।

इस शाखा का हरिषेण अन्तिम ज्ञात राजा है। सम्भवत: उसके बाद भी एक दो राजा रहे होगे परन्तु उनके नाम तक हमे मालूम नही है। प्रतीत होता है कि किसी भी स्थिति मे सन् ५५० ईस्वी मे माहिष्मती के कटच्चुरियो या कलचुरियो ने इस राजवंश को उखाड़ फेंका था। प्रारम्भिक कलचुरि दानपत्रो की वंशावलि मे सर्वप्रथम कृष्णराजा के सिक्के उत्तर मे विदिशा † से लेकर दक्षिण मे नासिक और कन्हाड ‡ तक और पश्चिम मे बम्बई से ✝ लेकर पूर्व मे अमरावती और जबलपुर × जिलो तक के फैले हुए देश भाग मे पाये गये है। अभी हाल में नागपुर के समीप नगर्धन मे उसके एक माडलिक स्वामिराज (सन् ५७३ ईस्वी) का एक ताम्र पत्र हस्तगत हुआ है। इसलिये प्रतीत होता है कि इस कलचुरि राजा ने अपना साम्राज्य वाकाटक साम्राज्य के भग्नावशेषों के ऊपर निर्मित किया।

शक्तिशाली वाकाटक साम्राज्य के आकस्मिक विघटन के कारणो का इतिहास में कोई उल्लेख नही किया गया है, परन्तु वाकाटको के पतन के एक सौ वर्ष के अन्दर लिखे गये दण्डी के दशकुमारचरित मे वाकाटक शासन के अन्तिम काल की आख्यायिका सुरक्षित रखी है। इस सस्कृत ग्रन्थ के विश्रुत चरित नामक आठवे अध्याय में मगध के पदच्युत नरेश राजहंस के पुत्र राजवाहन के अनुयायी कुमारो मे से एक विश्रुत के साहसिक कृत्यों का उल्लेख किया गया है।

इस वर्णन मे एक विस्तीर्ण दक्षिणी साम्राज्य ·|· के अस्तित्व का उल्लेख किया गया है। सम्राट् का विदर्भ पर प्रत्यक्ष शासन था। विदर्भ मे आधुनिक बरार, मध्यप्रदेश के मराठी जिले और गोदावरी के उत्तर मे अवस्थित हैदराबाद राज्य का भाग सम्मिलित था। विदर्भ के सामन्त राज्य थे जैसे; कुन्तल (दक्षिणी महाराष्ट्र), अश्मक (गोदावरी

---

* देखिये, 'सकुन्तलावन्तिकलिङ्गकोसलत्रिकूटलाटान्ध्र' अजन्ता की सोलहवी गुफा का लेख।

† भिलसा के समीप बेसनगर मे खुदाई के समय कृष्णराजा के सात सिक्के उपलब्ध हुए है। १९१३-१४ की आर्किआलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, पृष्ठ २१४.।

‡ नासिक के निकट देवलाना और करहाड में मिले कृष्णराजा के चार सिक्के। देखिये 'बाम्बे गजट,' जिल्द १, भाग २, पृष्ठ १३।

✝ बम्बई शहर मे मिले २०० सिक्को का समूह। देखिये, रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा का जर्नल, जिल्द २० (अतिरिक्त सख्या) पृष्ठ ७ और ९।

× इस तरह के कुछ सिक्के अमरावती जिले के धामोरि मे और जबलपुर के पास भी मिले है।

·|· इस विषय में ऐतिहासिक विवरण एवं चर्चा का सार देखने के लिये ए वी. ओ. आर. आई, जिल्द २६, पृष्ठ २० इ. मे मेरा लेख देखिये।

का उत्तरी तटवर्ती प्रदेश, खानदेश के दक्षिण में) ऋषीक (खानदेश), मुरल (गोदावरी का निकटवर्ती प्रदेश), नासिक्य (नासिक जिला) और कोङ्कण। इस प्रकार यह साम्राज्य उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में तुङ्गभद्रा तक और पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूर्व में कम से कम वैनगंगा तक फैला हुआ था। अपने यशस्वी पिता के बाद इस साम्राज्य का अधिपति एक युवक राजकुमार बना। यह राजकुमार यद्यपि बुद्धिमान था और सब कलाओं में दक्ष था परन्तु उसने राजनीति के शिक्षण की उपेक्षा की थी। उसके पिता के वृद्ध मन्त्री ने उसे बार-बार सत्परामर्श दिया और दण्ड नीति सीखने के लिये कहा परन्तु वह अपने व्यसनी दरबारी के प्रभाव में उस सलाह की उपेक्षा करता रहा और सुखोपभोग में मग्न होकर राजकार्यों की उपेक्षा करता रहा और सभी प्रकार की बुराइयों में लगा रहा। उसकी प्रजाओं ने भी उसका अनुकरण किया और वह इसी प्रकार का पापपूर्ण एवं विलासी जीवन बिताने लगा। इसका फल यह हुआ कि राज्य भर में अव्यवस्था तथा अराजकता का दौरदौरा हो गया। इस अवसर को उपयुक्त जान कर पड़ोसी अश्मक राज्य के चतुर नरेश ने अपने मन्त्री के पुत्र को विदर्भ के राज दरबार में भेजा। वह राजा के साथ हिलमिल गया और उसे विलासपूर्ण जीवन के लिये और अधिक प्रेरणा देता रहा। उसने विभिन्न उपायों से उसकी सेना को भी पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न किया। अन्त में, जब राज्य पूरी तरह अव्यवस्थित हो गया तो अश्मक के नरेश ने वनवासी (उत्तरी कानडा जिले में आधुनिक बनवासी) के नरेश को विदर्भ के राज्य पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। इस पर वह नरेश बड़े सैन्य के साथ आगे बढ़ा और उसने दक्षिणी विदर्भ के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। इस पर विदर्भ के नवयुवक सम्राट् ने अपनी सेनाओं का संघटन किया और सभी माण्डलिक राजाओं को अपनी सहायता के लिये बुलवाया। उसके झंडे के नीचे एकत्र होने वालों में अश्मक के विश्वासघाती राजा के अतिरिक्त, कुन्तल, मुरल, ऋषीक, नासिक्य और कोङ्कण के नरेश सम्मिलित थे। इन अधीनस्थ राजाओं की मदद से विदर्भ के सम्राट् ने शत्रु से वरदा के (आधुनिक वर्धा) के तट पर मोर्चा लेने का निश्चय किया। अश्मक के नरेश ने गुप्त रूप से कुन्तल के नरेश के साथ षड्यन्त्र किया और इतर माण्डलिक नरेशों में भी असंतोष उत्पन्न कर दिया। इन्होंने धोखे से अपने सम्राट पर, जब कि वह वनवासी की आक्रमणकारी सेनाओं से जूझ रहा था, पीछे से हमला कर दिया। युद्ध में सम्राट मारा गया। इस पर चालाक अश्मक नरेश ने माण्डलिक राजाओं में भी मतभेद उत्पन्न किया। युद्ध की लूट को प्राप्त करने के लिये ये सब आपस में लड़ पड़े और एक दूसरे को नष्ट कर दिया। इसके बाद उसने लूट का सम्पूर्ण माल हस्तगत कर लिया और उसका कुछ भाग आक्रमणकारी राजा को देकर उसे वनवासी लौटने के लिये प्रेरित किया और स्वतः विदर्भ का सम्पूर्ण राज्य अपने अधिकार में कर लिया। इस बीच विदर्भ के वृद्ध विश्वासपात्र मन्त्री विदर्भ की रानी और उसके दो छोटे बच्चों-एक राजकुमार और एक राजकुमारी- को लेकर स्वर्गीय सम्राट् के सौतेले भाई द्वारा शासित माहिष्मती में ले गये। सौतेले भाई ने विधवा रानी पर डोरे डालने चाहे परन्तु उसने उन्हें ठुकरा दिया। इस पर उसने विदर्भ के छोटे राजकुमार की हत्या करनी चाही परन्तु विश्रुत ने उसकी हत्या कर राजकुमार को माहिष्मती के सिंहासन पर आरूढ कर दिया।

यहां पर यह वर्णन बीच में ही समाप्त हो जाता है। इसलिये हमें यह मालूम नहीं होता कि बालक राजकुमार अन्त में विदर्भ से अश्मक के नरेश को हटाने एवं अपनी पैतृक राजगद्दी प्राप्त करने में सफल होता है या नहीं?

उक्त वर्णन में सन् ५०० ईस्वी में हरिषेण की मृत्यु के बाद के काल के विदर्भ की वास्तविक राजनीतिक परिस्थिति का सच्चा विवरण प्रस्तुत किया गया है। दण्डी के पूर्वज विदर्भ के थे, वहां के विश्वसनीय सूत्रों से उनका सम्बन्ध था, फलतः उस काल के दक्षिण भाग के राज्यों का वह विस्तृत ब्यौरा देता है। यह विवरण उत्कीर्ण लेखों की साक्षी से भलीप्रकार पुष्ट होता है। उसके वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि किसप्रकार महान् वाकाटक साम्राज्य, जो कि एक समय उत्तर में नर्मदा से तथा दक्षिण में तुङ्गभद्रा तक फैला हुआ था, हरिषेण के उत्तराधिकारी की अयोग्यता तथा माण्डलिक राजाओं के विश्वासघातपूर्ण व्यवहार के कारण अचानक ही लड़खड़ा गया था, क्योंकि दण्डी का विवरण बीच में ही समाप्त हो जाता है इसलिये हम यह नहीं जान पाते कि हरिषेण के पौत्र ने क्या बाह्य सहायता के बल पर विदर्भ का

सिहासन प्राप्त किया था ? हो सकता है कि अपने युग के सबसे शक्तिशाली नरेश विष्णुकुंडीवंशी प्रथम माधव-वर्मा की , जो कि आन्ध्र पर शासन कर रहा था और जिसे ग्यारह अश्वमेध करने का गौरव दिया जाता है, सहायता से वह यह कार्य करने मे समर्थ हो गया हो। आन्ध्र नरेश ने एक वाकाटक राजकुमारी से विवाह किया था, जो कि सम्भवत: हरिषेण की पौत्री थी। * परन्तु वाकाटक राजकुमार देर तक विदर्भ पर अपना प्रभुत्व स्थिर नही रख सका होगा क्योंकि जैसा कि हम देख चुके है कि इसी वीच में कलचुरि कृष्णराजा ने माहिष्मती पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और सन् ५५० ईस्वी तक विदर्भ और उत्तरी महाराष्ट्र पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। पूर्व में सोमवंशियों, गंगों और विष्णु कुण्डिनो ने अपनी स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा की तो दक्षिण मे राष्ट्रकूट क्रमशः प्रवल हो गये इस प्रकार ३०० वर्ष के उत्तम शासन के वाद वाकाटकों के अन्तिम चिह्न भी लुप्त हो गया।

* * * *

वाकाटकों का युग महान् राजनीतिक विजयों के कारण ही स्मरणीय नही है प्रत्युत वह धर्म, कला, साहित्य के क्षेत्रों मे अद्वितीय देन के कारण, जिन का हम उल्लेख करने जा रहे है चिरस्मरणीय है। वाकाटक स्वत· वैदिक धर्म के कट्टर अनुयायी थे परन्तु वे वौद्ध, जैन आदि दूसरे धर्मो के प्रति किसी प्रकार का विरोध भाव प्रदर्शित नही करते थे अपितु वे धर्म, उनकी नही तो उनके मन्त्रियो तथा माडलिक नरेशो की उदार सहायता से, उनके विस्तृत साम्राज्य मे फल-फूल रहे थे। वाकाटक साम्राज्य के संस्थापक प्रथम प्रवरसेन ने कई सोम तथा वाजपेय यज्ञों के अतिरिक्त चार अश्वमेध यज्ञ किये थे। वाद के राजाओं द्वारा श्रौत यज्ञों के किये जाने का उल्लेख कम मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि धीरे-धीरे इनका प्रचलन बन्द हो गया।

पुराणसम्मत देव देवताओं की पूजा का महत्व क्रमशः वढ़ता चला गया। अधिकाश वाकाटक नरेश शैव थे क्योंकि उन्हें परम माहेश्वर या महेश्वर (शिव) के परम भक्त कहा गया है। प्रतीत होता है कि प्रवरसेन प्रथम ने वर्धा जिले मे कही प्रवरेश्वर के नाम पर शिव का मंदिर वनवाया था। वाकाटक लेखो मे उसके पौत्र रुद्रसेन प्रथम को महाभैरव का परम भक्त कहा गया है। उसने चिकम्बुरी मे, चान्दा जिले के चिकमारा स्थान मे उस देव की भक्ति के लिये एक धर्मस्थान का निर्माण किया था परन्तु यह धर्मस्थान अपने मौलिक स्वरूप मे आज सुरक्षित नही है। रुद्रसेन का लड़का प्रथम पृथिवीषेण भी शैव था परन्तु इसका लड़का द्वितीय रुद्रसेन सम्भवत: अपनी पत्नी प्रभावती गुप्ता के प्रभाव से , जो कि अपने सुप्रसिद्ध पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के समान भगवान विष्णु की परम भक्त थी विष्णु का उपासक वन गया। प्रभावती के उदार आश्रय से रामगिरि (नागपुर के निकट वर्तमान रामटेक) में रामचन्द्र का पुराना मंदिर वड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ और यात्रा के रूप में दूर दूर तक प्रसिद्ध हो गया, यहां तक कि महान् संस्कृत कवि कालिदास को निर्वासित यक्ष के निवासस्थान † के रूप मे अपने विश्वविख्यात गीतिकाव्य 'मेघदूत' में इसका उल्लेख करना पड़ा। आजकल सामान्यतया विष्णु की पूजा एक मूर्ति के रूप मे की जाती है परन्तु उस काल मे विष्णु देव की पादुकाओ की पूजा करने की सामान्य परम्परा थी। रामगिरि में पूजा का लक्ष्य मेघदूत ‡ एवं प्रभावती गुप्ता के दानपत्र × के उल्लेखानुसार

---

* वर्णन मे उसका उल्लेख विश्रुत नाम से हुआ है, जिसने वालक राजकुमार भास्करवर्णन की वहन मञ्जुवादिनी से विवाह किया था।

† यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ।। मेघदूत, श्लोक १।

‡ आपृच्छस्व प्रियसखममु तुङ्गमालिङ्गय शैलं
वन्द्यै: पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं · मेखलासु ।। मेघदूत श्लोक १२।

× देखिये रामगिरिस्वामिन. पादमूलात्' प्रभावती गुप्ता के ऋद्धपुर ताम्र-पत्र। जे. ए एस. वी. (एन. एस.) जिल्द २०, पृष्ठ ५८ इ.।

रामचन्द्र की पादुकायें थी। अरवरमेटक (बैतूल जिले में वर्तमान पट्टन) में भी विष्णु को समर्पित एक दूसरे मन्दिर में भी पूजा के लक्ष्य महापुरुष (विष्णु) के पादमूल ही थे।* पवनार (प्राचीन प्रवरपुर) में राम का एक दूसरा भव्य मन्दिर बनवाया गया था। पवनार धाम में आचार्य विनोबा भावे के आश्रम के निकट धाम के तट पर रामायण की कहानी को चित्रित करने वाली सुन्दर मूर्तियों के भग्नावशेष अभी हाल में प्रकाश में आये हैं। द्वितीय प्रवरसेन ने नन्दिवर्धन से प्रवरपुर में राजधानी स्थानान्तरित करने के बाद अपनी माता प्रभावती गुप्ता के कथन पर यह मन्दिर बनाया था। इसे विभिन्न मूर्तियों से सजाया गया था। जिनके भग्नावशेष आज भी कला समीक्षकों का ध्यान खींचते हैं।† इन मन्दिरों के साथ सत्र अथवा धर्मार्थ भोजनालय संलग्न रहते थे, जो कि उदार राजकीय सहायता से चलाये जाते थे। तो भी विष्णु और शिव की मूर्तियां अज्ञात न थीं। वर्धा और भण्डारा जिलों के ही अमरा केलझर और प्रवरपुर स्थानों में मुझे इनकी कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

वाकाटक धार्मिक एवं विद्वान् ब्राह्मणों को अपने उदार संरक्षण में लेते थे और उन्हें राजधानी में आकर रहने को आमन्त्रण दिया करते थे। महान् संस्कृत कवि भवभूति के पूर्वज वाकाटक वंश की मुख्य शाखा की अन्तिम ज्ञात राजधानी प्रवरपुर में निवास करते थे और वाजपेय तथा दूसरे श्रौत यज्ञ‡ किया करते थे, जिनके लिये उन्हें अवश्य ही अच्छा राजकीय आश्रय मिला करता होगा। कई वाकाटक उत्कीर्ण लेखों में पवित्र एवं विद्वान् ब्राह्मणों को भूमि एवं कभी-कभी पूरे गांव भी दिये जाने का उल्लेख है।

उस काल में बौद्ध धर्म भी खूब चल रहा था और उसे राजाओं और मन्त्रियों से उदार संरक्षण प्राप्त होता था। जैसा कि हम यहां देखेंगे अजन्ता की कुछ भव्य गुफायें वाकाटकों के मन्त्रियों तथा माडलिक राजाओं ने बनवायी थीं। पद्मपुर में प्राप्त हुई कुछ पुरातन जैन मूर्तियों से मालूम पड़ता है कि इस धर्म के अनुयायी लोग भी वहां निवास करते थे।

वाकाटकों के सुसंस्कृत शासन में संस्कृत तथा प्राकृत काव्यों को नवीन प्रेरणा मिली। वाकाटक राजाओं में से बहुत से न केवल विद्वान लोगों के आश्रयदाता थे प्रत्युत सुन्दर प्राकृत काव्यों और सुभाषितों के प्रणेता भी थे। प्राकृत का सबसे प्राचीन ज्ञात काव्य हरिविजय का निर्माण× वाकाटक राज्य के संस्थापक सर्वसेन ने किया था। यह काव्य इस समय उपलब्ध नहीं है परन्तु कई संस्कृत कवियों और आलंकारिकों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है और उसके श्लोक उद्धृत किये हैं अथवा उसमें उल्लिखित घटनाओं का उल्लेख किया है जिससे हम उसकी सामान्य कल्पना कर सकते हैं। ग्रन्थ में वर्णित विषय कृष्ण द्वारा अपनी पत्नी सत्यभामा की प्रसन्नता के लिये स्वर्ग से बलपूर्वक पारिजात वृक्ष लाने की कथा है। यह काव्य महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा गया था और इसका छन्द सर्वत्र स्कन्धक था। इसमें नगरी (द्वारका), नायक (कृष्ण), वसन्त ऋतु, सूर्यास्त, घोड़ों, हाथियों और पानगोष्ठियों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह पूर्णतया महाकाव्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है और प्रतीत होता है कि इसने उत्तरकालवर्ती कालिदास और द्वितीय प्रवरसेन के संस्कृत तथा प्राकृत काव्यों के लिये एक आदर्श बना रखा था।

---

* मिराशी, द्वितीय प्रवरसेन के पट्टन ताम्रपत्र, एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २३, पृष्ठ ८६।

† मिराशी, "वाकाटकों की एक पुरानी राजधानी", सरूप भारती, पृष्ठ २७१ इ।

‡ भवभूति के मालती माधव की प्रस्तावना में निम्न स्थल देखिये —

अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति स्म।

पद्मपुर की आमगांव समीपवर्ती पद्मपुर से समानता प्रतिपादित करने के लिये इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, जिल्द ११, पृष्ठ २८७ इ में 'भवभूति का जन्मस्थान शीर्षक' मेरा लेख देखिये।

× इस काव्य के विस्तृत विवरण के लिये "वाकाटक काल के कुछ राजकीय कवि" शीर्षक मेरा लेख देखिये। वही, जिल्द २१, पृष्ठ १९३ इ।

कई संस्कृत लेखकों ने अपने प्रवन्धों में हरिविजय के श्लोकों को उद्धृत किया है जिससे उसकी लोकप्रियता पुष्ट हो जाती है। दण्डी ने अपनी "अवन्ति-सुन्दरी कथा" की भूमिका मे इसकी प्रशंसा की है। वक्रोक्तिजीवित के प्रसिद्ध लेखक कुन्तक ने लिखा है 'सर्वसेन सुकुमार मार्ग (कोमल शैली) के प्रसिद्ध लेखक कालिदास के तुल्य था।'*

सर्वसेन ने हरिविजय के अतिरिक्त कुछ फुटकर गाथाये भी रची थी जिन्हें गाथासप्तशती के विभिन्न पाठो में संग्रहीत किया गया है। गाथासप्तशती प्राकृत गाथाओ का संग्रह है यद्यपि परम्परा से यह प्रथम ईस्वी शताव्दी में शासन करने वाले सातवाहन राजवंश के काल की कृति कही जाती है पर इसमे समय-समय पर आठवी ईस्वी शताव्दी† तक कुछ गाथाये जोड़ी जाती रही। इसलिये इस वात मे कोई आश्चर्य नही है कि इस मे वाकाटक नरेश सर्वसेन की भी कुछ गाथाये सम्मिलित है।‡ सप्तशती के प्राचीन टीकाकार भुवनपाल ने २१७ और २३४ गाथाओ को सर्वसेन लिखित कहा है।× दूसरा टीकाकार पीताम्बर, जिसका टीका ग्रन्थ अभी हाल में प्रकाशित हुआ है, दो और गाथाओं अर्थात् ५०३ और ५०४ के विषय मे राजा के नाम का उल्लेख करता है।+

प्रतीत होता है कि सर्वसेन तथा उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल मे वत्सगुल्म नगर ज्ञान और संस्कृति का वड़ा केन्द्र वन गया था। प्रसिद्ध संस्कृत कवि राजशेखर ने ·|· इस नगर को कामदेव का क्रीड़ा स्थान वर्णित किया है। वत्सगुल्म राज दरवार मे रचे गये प्राकृत काव्यो और सुभाषितो में वच्छोमी (वत्सगुल्मी) शैली का विकास किया गया जो कि वैदर्भी रीति का पर्याय वन गयी। राजशेखर ने अपने कर्पूरमंजरी के प्रारम्भिक श्लोक मे वच्छोमी का उल्लेख इसी अर्थ से किया है।

दूसरा प्रसिद्ध राजकवि द्वितीय प्रवरसेन था जो कि वाकाटक वंश की मुख्य शाखा मे हुआ था। उसने महाराष्ट्री प्राकृत में सेतुवन्ध की, जिसे रावणवहो भी कहा जाता है, रचना की। इस काव्य मे राम की कथा-रावण के विरुद्ध अभियान से प्रारम्भ कर, लंका के लिये शिलाओं का सेतुवन्ध वनाने एवं राक्षस नरेश के विनाश के वाद अयोध्या लौटने तक वर्णित की गई है। यह काव्य पन्द्रह काण्डो में, जिन्हे आश्वास कहा गया है, विभक्त है, इसमे १,३६२ श्लोक है। मुख्य छन्द स्कन्धक है, परन्तु वीच-वीच मे दूसरे छन्द की गाथाएँ भी प्रयुक्त की गयी है और अन्त मे भी उन्हे जोड़ दिया गया है।

सेतुवन्ध की रचना अनुप्रास तथा लम्वे समासों से युक्त काव्योचित शैली में कलापूर्ण रीति से की गयी ह। स्पष्टतया इसका लेखन उस जनता को दृष्टि मे रख कर किया गया था जो कि संस्कृत मे निष्णात थी और इसमे सस्कृत महाकाव्य के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक सभी विषयो का वर्णन भी समाविष्ट है। इसकी संस्कृत कवियों और आलंकारिको ने वड़ी प्रशंसा की है। काव्यादर्श के प्रसिद्ध लेखक दण्डी ने इसे "सुभाषितों के रूप में रत्नो की खानि" कहा है।

---

* सहज सौकुमार्यसुभगानि कालिदाससर्वसेनादीना काव्यानि दृश्यन्ते। वक्रोक्तिजीवित (एस. के डे द्वारा सम्पादित), पृष्ठ ७१।

† "सिद्धेश्वर वर्मा ग्रन्थ" मे प्रकाशित "गाथासप्तशती का काल" विषय का मेरा लेख देखिये।

‡ विभिन्न हस्तलिखितो मे गाथाओं को विभिन्न क्रम से सग्रहीत किये जाने से यहा पर गाथाओं का उल्लेख गाथासप्तशती के निर्णयसागर संस्करण के अनुसार किया गया है।

× वेवर "इण्डिशे स्टडी", जिल्द १६, पृष्ठ २३। भुवनपाल इन गाथाओ को १६३ तथा १८० वां वतलाता है।

+ गाथासप्तशती प्रकाशिका (सत्तसई पीताम्वर की टीका के साथ) प्रो. जगदीश लाल द्वारा सम्पादित। पीताम्वर इन गाथाओं की संख्या ४६३ और ५६६ लिखता है।

·|· वही, तत्रास्ति मनोजन्मनो देवस्य क्रीडावासो विदर्भेषु वत्सगुल्मं नाम नगरम्। राजशेखर, काव्यमीमांसा (गायकवाड्'स ओरियन्टल सिरीज), प्रथम संस्करण, पृष्ठ १०।

अपने हर्षचरित में बाण कहता है "इस सेतु के माध्यम से" (अर्थात् सेतुबन्ध से) प्रवरसेन का यश उसी प्रकार समुद्र का लंघन कर गया है, जिस प्रकार (राम निर्मित) सेतु के माध्यम से वन्दरो की सेना समुद्र पार कर गयी थी।* ९वीं ईस्वी शताब्दी का प्रसिद्ध साहित्य समीक्षक आनन्द वर्धन काव्य के उस भाग की अत्यन्त प्रशंसा करता है, जिसमें राम के माया सिर के दर्शन मात्र से सीता के शोकाकुल हो जाने का वर्णन किया गया है।†

सेतुबन्ध के एक टीकाकार द्वारा उल्लिखित एक अनुश्रुति के अनुसार जो कि प्रत्येक आश्वास के अन्त के निर्देश से पुष्ट होती है यह काव्य वास्तव में कालिदास ने लिखा था, जिसे उसने विक्रमादित्य के आदेशानुसार प्रवरसेन को घोषित किया था। इस अनुश्रुति का अर्थ सरलता से समझा जा सकता है, क्योंकि द्वितीय प्रवरसेन प्रसिद्ध गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री का लड़का था। अधिकांश विद्वान्, जिनमें भारतीय तथा यूरोपियन सम्मिलित हैं इस विषय में एकमत हो गये हैं कि महान् संस्कृत कवि कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय ने आश्रय दिया था। प्रभावती-गुप्ता के दानपत्रों से स्पष्ट है कि वाकाटक राज दरबार में गुप्तों का प्रभाव प्रचुर था। इससे यह अनुमान करना गलत न होगा कि महान् सम्राट् ने अपनी विधवा पुत्री को अपने नाबालिग पुत्र दिवाकरसेन के लिये राज्य चलाने में सहायतार्थ अनुभवी शासक एवं राजनीतिज्ञ भेजे थे। सम्भवत इन में कालिदास भी रहा होगा और उसके आश्रयदाता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने काव्य निर्माण के कार्य में अपने दौहित्र की मदद करने के लिये कहा हो। सेतुबन्ध के ९ वें श्लोक में कहा गया है कि प्रवरसेन ने सिंहासन पर बैठने के कुछ समय बाद ही इस काव्य का निर्माण प्रारम्भ किया था और वह समय-समय पर इसका निर्वाह करना कठिन अनुभव करता था।‡ ऐसे अवसरों पर उसे कालिदास से सहायता मिलती होगी। इसी का उक्त अनुश्रुति में निर्देश किया गया है और प्राकृत काव्य के अन्तिम भाग में भी इसका उल्लेख हुआ है।

सर्वसेन की भाँति द्वितीय प्रवरसेन ने प्राकृत गाथायें लिखी थी, जिनमें से कुछ उपर्युक्त प्राकृत कथा संग्रह गाथा-सप्तशती में सुरक्षित हैं। सप्तशती के निर्णयसागर संस्करण की अनुक्रमणिका में पांच गाथा अर्थात् ४५, ६४, २०२, २०८ और २१६ प्रवरसेन की कही गई हैं। पीताम्बर इनमें दो और अर्थात् ४८१ और ५६५ सम्मिलित कर देता है। भुवनपाल निम्न गाथाओं—४६, १२६, १५८, २०३, २०६, ३२१, ३८१, ५६७ और ७२४ के प्रणेता के रूप में प्रवर, प्रवरराज और प्रवरसेन का उल्लेख करता है। यह प्रवरसेन और प्रवरराज सेतुबन्ध के सुप्रसिद्ध प्रणेता वाकाटक प्रवरसेन द्वितीय के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता।×

---

*देखिये, "कीर्ति प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला। सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥"

† ध्वन्यालोक (निर्णयसागर संस्करण, १९११), पृष्ठ १४८।

३ देखिये 'इह ताव महाराजप्रवरसेननिमित्तं महाराजाधिराजविक्रमादित्येनाज्ञप्तो निखिल कविचक्र चूडामणि कालिदासमहाशय सेतुबन्धप्रबन्धं चिकीर्षु, आदि, सेतुबन्ध, पृष्ठ ३।

४ "इअ सिरिपवरसेणविरइए कालिदासकए दहमुहवहे", आदि, वही, पृष्ठ ६७।

‡ अहिणवराआरद्धा चुक्कक्खलिएसु विहडिअपरिट्ठविआ।
मेत्तिव्व पमुहरसिआ निव्वोढु होइ दुक्कर कव्वकहा॥ श्लोक ९।
(अभिनवराजारब्धा च्युतस्खलितेषु विघटितपरिस्थापिता।
मैत्रीव प्रमुखरसिका निर्वोढु भवति दुष्कर काव्यकथा॥)

× दण्डी की "अवन्तिसुन्दरी" कथा के प्रारम्भिक भाग के एक श्लोक के अनुसार छप्पन कवियों ने सेतु की रचना की थी। यह प्रबन्ध प्राकृत श्लोकों का एक संग्रह ग्रन्थ प्रतीत होता है। इन्द्रसूरि की कुवलयमाला में भी छप्पण्ण (षट्पचाशत् या ५६) कवियों की बड़ी प्रशंसा की गयी है, परन्तु उनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं किया गया है। काव्यमीमांसा में उद्धृत श्लोकों को देखिये। टिप्पणियां, पृष्ठ १२।

कारीतलाई में गुप्तकालीन वाराहमूर्ति
(५ वीं ईस्वी शताब्दी)

ओंकार मान्धाता का एक मन्दिर

होशंगाबाद की प्रस्तर शिलाओं में सुरक्षित प्रागैतिहासिक भीत्ति चित्र

असीरगढ किले का एक भव्य द्वार

हरदा से उपलब्ध वाराह
(नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय में सुरक्षित)
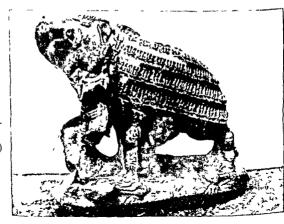
गाथासप्तशती में प्राकृत गाथाओं के कुछ दूसरे ऐसे लेखकों के नामो का भी उल्लेख किया है, जिनके नामों के अन्त में सेन आता है, जैसे जयसेन (गाथा १७०), मकरन्दसेन (गाथा ६, ८०, ९८, ४२९ और ५९९), मल्लसेन (गाथा ३२८), वसन्तसेन (गाथा ३२३), विश्वसेन (गाथा ३४०) और सत्यसेन (गाथा २३३ और २९८)। प्रवरपुर तथा वत्सगुल्म—दोनों भी शाखाओ के राजाओं के नाम सेन से अन्त होते हैं। इसलिये यह असम्भव नही है कि उनमें से कुछ—यदि सव नही तो—प्राकृत कवि वाकाटक राजवंश के थे। वे सम्भवतः गोदावरी के दक्षिण मे, सन् ३७५ ईस्वी मे मानपुर के राष्ट्रकूटों के अभ्युदय के समय तक राज्य कर रहे होगे।

इन सभी कवियों ने उस काल में विदर्भ मे प्रचलित महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखा था। परन्तु इसका यह अर्थ है कि उस काल मे संस्कृत काव्य थे ही नहीं, क्योंकि वैसी स्थिति में दण्डी जैसे प्रारम्भिक आलकारिक द्वारा वैदर्भी को संस्कृत काव्य की श्रेष्ठ शैली नही कहा जाता और मालवा का कवि कालिदास भी अपने सभी काव्यो * का निर्माण करने के लिये इसे नहीं अपनाता। वस्तुस्थिति यह है कि उस काल में फुटकर सस्कृत श्लोक वैदर्भी रीति मे लिखे जाने के उदाहरण हमारे पास है। श्रीधरदास के सदुक्तिकर्णामृत (२, ३१, ४) मे युवराज दिवाकरसेन के एक सस्कृत सुभाषित का उल्लेख किया गया है।† यह दिवाकरसेन उस वालक-नृपति के समरूप है, जिसकी माता प्रभावतीगुप्ता स्थानापन्न शासिका के रूप में राज्य कर रही थी।

कालिदास की रचनाओं में से एक सुन्दर गीतिकाव्य मेघदूत को विदर्भ का काव्य कहा जा सकता है, क्योंकि यह सम्भवतः महाकवि के वाकाटक दरबार में निवास काल मे लिखा गया प्रतीत होता है। इस काव्य मे प्रस्तुत विषय कर्तव्यपालन से च्युत होने के कारण अलका से निर्वासित किये गये यक्ष द्वारा मेघ रूपी सन्देशवाहक दूत के द्वारा वर्षा ऋतु के आगमन के समय अपनी प्रियतमा को भेजा सन्देश है। जैसा कि मैं अन्यत्र ‡ प्रदर्शित कर चुका हू, यह रामगिरि नागपुर का समीपवर्ती वर्त्तमान रामटेक ही है, जो कि आज तक तीर्थ स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। डाक्टर कीथ ने लिखा है कि "मेघदूत की यात्रा मे वर्णन का उत्कर्ष तथा शोकाकुला एवं एकाकिनी पत्नी के उच्छ्वासो के चित्रण की अधिकतम प्रशंसा करना कठिन है। शब्दों की बह्वर्थता, विषयगाम्भीर्य एव भावना के प्रकाशन की शक्ति के कारण भारतीय समीक्षक इसे कालिदास की सर्वोत्तम कृति कहते हैं। यह प्रशंसा अयोग्य नही है।" ×

शिल्प, स्थापत्य एवं चित्रकला में भी उस काल का कार्य क्रम महत्वपूर्ण नही है। दुर्भाग्य से उस समय की कोई भी इमारत आज विदर्भ मे उपलब्ध नहीं है, परन्तु वाकाटकों के माण्डलिक नरेशो के भूमिभागों में वनाये दो स्मारक आज भी सुरक्षित है, जिनसे उस काल के मन्दिर शिल्प का सही अन्दाजा लगाया जा सकता है। इनमे से प्राचीनतर जवलपुर जिले में वहुरिवन्ध के समीप तिगवा + में है। यह आज भी भली प्रकार सुरक्षित है। उस काल के दूसरे मन्दिरो के समान इसकी चपटी छत है और इसके सामने छता हुआ वरामदा है। पिछले युग के हिन्दू मन्दिरो के स्पष्ट प्रतीक

---

* यह विख्यात ही है कि कालिदास ने वैदर्भी रीति मे अपनी रचनायें की थी। जैसे, "लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिर:। तेनेदं वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम्।।" अवन्तिसुन्दरी कथा।

† इण्डियन कल्चर, जिल्द ६, पृष्ठ ४७८। उस काल के एक अन्य संस्कृत श्लोक के लिये, देखिये इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, जिल्द २१, पृष्ठ २०१।

‡ देखिये 'मेघदूत में रामगिरि' शीर्षक मेरा लेख (विक्रम-स्मृतिग्रन्थ, हिन्दी) (पृष्ठ ३४९—३५४)

× कीथ—"संस्कृत साहित्य का इतिहास", पृष्ठ ८६।

+ तिगवा के चारों ओर का प्रदेश सम्भवतः मेकला के पाण्डववंशी राजाओं के राज्य में सम्मिलित था, जो कि शायद वन्धोरगढ़ से शासन करते थे। इन राजाओं में से एक भरतबल वाकाटक नरेन्द्रसेन के सामन्त राजा के रूप में ज्ञात है। भारतकौमुदी, जिल्द १, पृष्ठ २१६ इ.।

शिखर का अभाव इनमें स्पष्ट झलकता है। बरामदे के स्तम्भ एव अर्ध स्तम्भ के शीर्ष इण्डो पर्सेपोलिटन पद्धति के हैं जिनमें आधे बैठ सिंह उत्कीर्ण किये गये हैं। पूजा स्थान के प्रवेश द्वार पर नदी देवता गंगा और यमुना की मूर्तिया प्रतिष्ठित की गयी हैं।*

इसके कुछ ही समय बाद के पुरातन नागोद राज्य के नचना स्थान में अवस्थित मन्दिर का उल्लेख सर्वप्रथम सर एलग्जेंडर कर्निंगहम ने किया था। नचना के चारो ओर का प्रदेश वाकाटक साम्राज्य में सम्मिलित था, यह बात वहा प्राप्त हुए पेटिका शीर्षक लिपि में लिखे प्रस्तर-स्तम्भ से स्पष्ट हो जाती है।† इसमें व्याघ्रदेव को वाकाटक महाराज द्वितीय पृथिवीषेण का सामन्तराजा कहा गया है। उपर्युक्त वर्णन में बतलाया जा चुका है कि व्याघ्रदेव उच्चकल्प राजवंश म हुआ था और सन् ४७०-४९० ईस्वी में राज्य करता था।

तिगवा की तरह यह मन्दिर भी चपटी छतवाला है, परन्तु यह दुमजिला है, शिखर के स्थान पर मूर्ति स्थान के ऊपर एक छोटा सा कमरा बना दिया गया है। इस कमरे की छत भी चपटी है और जिससे स्पष्ट दिखता है कि इसके ऊपर कोई शिखर नही था। मूर्तिस्थान अन्दर में ८ वर्ग फुट है। पार्श्व की भित्तियो में प्रकाश के लिये शिला निर्मित खिडकिया बनाई गई है। पूजा स्थान के चारो ओर घिरा हुआ प्रदक्षिणा स्थान है, इसकी छत भी चपटी ही है। बाह्य दीवारें प्रस्तर शिलाओं की नकल करती मालूम पडती है, बीच-बीच में जहा-तहा छेदो में शेरो व भालुओं के मुख दिखाये गये हैं, जिनसे गुफाओ की प्रतीति होती है। प्रवेश द्वार के सामने १२ वर्ग फुट का एक खुला बिना पटा दालान है। पूजा स्थान के प्रवेश द्वार के दोनो ओर मिथुन तथा नदी देवता (गगा या यमुना) की आकृतिया बडे सौन्दर्य से उत्कीर्ण की गयी है। कर्निंगहम का कथन है कि सम्पूर्ण मध्यकालीन स्थापत्य की अपेक्षा ये आकृतिया अपनी स्वाभाविकता तथा उदात्त भावो में एव स्वरूप के वास्तविक सौन्दर्य में बहुत ही श्रेष्ठ हैं।‡ जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वाकाटक राजधानी प्रवरपुर में, वर्धा के निकट आधुनिक पवनार में राम का एक दूसरा भव्य मन्दिर था। यह सम्भवत द्वितीय प्रवरसेन ने अपनी माता के कहने पर बनवाया था। राम के जन्म, दशरथ की मृत्यु, सुमन्त द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता को वन ले जाना, राम भरत का मिलाप, बाली-सुग्रीव सग्राम और बाली की मृत्यु आदि, रामायण की कहानी कई विभिन्न घटनाओ को चित्रित करने वाले सुन्दर चित्रो से सुसज्जित है।

नचना के मन्दिर के बाहरी स्वरूप से मालूम पडता है कि उसके स्वरूप को प्रस्तरो से काट कर बनायी गुफाओं की अनुकृति के आधार पर बनाया गया है। वास्तव में भारत के सबसे प्राचीन देवस्थान प्रस्तरो से निर्मित विहार और चैत्य है। प्राचीन विदर्भ के कलाकार इस कला में भी खूब बढे हुए थे। अजन्ता की सबसे शानदार गुफाओ में पूरी चट्टानो से काट कर बनायी गयी गुफायें है, जो आज भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है, जिनसे तत्कालीन कलाकार का शिल्पकौशल परखा जाता है।× भारतीय स्थापत्य कला के एक अधिकारी विद्वान् बर्जेस के अनुसार अजन्ता की तीन गुफायें—अर्थात् १६ वी और १७ वी—दो विहार गुफायें और १९ वी चैत्य गुफा—जो कि सभी वाकाटक काल मे सम्बधित हैं—अपनी स्थापत्य कला और चित्रकला की दृष्टि से भारत के पश्चिम में अवस्थित गुफाओ के समान सौन्दर्य एव आकर्षण मे परिपूर्ण है।+

---

* कर्निंगहम, आर्किआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्टस् (ए एस आई आर), जिल्द ९, पृष्ठ ४३।

† फ्लीट—"गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स", पृष्ठ २३३ इ।

‡ कर्निंगहम आर्किआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्टस् (ए एस आई आर), जिल्द २१, पृष्ठ ९६ इ।

× इन गुफाओ के स्थापत्य, शिल्प एव चित्रकला के विवरण के लिये मैंने फर्ग्यूसन और बर्जेस के अमर ग्रन्थ "केव टेम्पल्स आफ इण्डिया", का उपयोग किया है।

+ वही, पृष्ठ ३०२ इ।

इन तीन गुफाओं में से १६ वी गुफा वाकाटक सम्राट् हरिषेण के मन्त्री वराहदेव ने बनवायी थी। कई दृष्टियों से यह दूसरी सभी गुफाओं से अधिक भव्य है। इसका बरामदा ६५ फुट लम्बा, और १० फुट ८ इंच चौड़ा ह, इसमें छः सादे अष्टकोणात्मक स्तम्भ हैं, जिनमें आन्तरिक मण्डप ६६ फुट ३ इच लम्बा, ६५ फुट ३ इंच गहरा और १५ फुट ३ इंच ऊँचा है। छत धरन और वल्लियों की अनुकृति मे काट कर बनायी गयी है। प्रत्येक पार्श्व में छः कोठरियां हैं; पिछली दीवार मे दो और बरामदे के प्रत्येक सिरे के अन्त मे एक-एक। आखिरी सिरे पर महात्मा बुद्ध की धर्मचक्र-प्रवर्त्तन मुद्रा अर्थात् उपदेश देने की स्थिति मे विशाल मूर्ति अवस्थित है। इस गुफा के सामने अवस्थित सीढ़ियों के मार्ग से पीछे की दीवार के साथ अवस्थित भवन मे सर्प के चक्कर पर, एक नागराज की बैठी हुई मूर्ति अंकित की गई है। सर्प के फण नागराज के ऊँचे चपटे मुकुट को छा लेते है। इस बरामदे के सामने दीवार पर एक लम्बा परन्तु बुरी तरह नष्ट हुआ उत्कीर्ण लेख है, जो कि वत्सगुल्म शाखा के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमे निम्न श्लोक में गुफा का वर्णन किया गया है :—

गवाक्षनिर्यूहसुवीथिवेदिकासुरेन्द्रकन्याप्रतिमाद्यलङ्कृतम् ।

मनोहर स्तम्भविभङ्ग (भूषितं*) निवेशिताभ्यन्तर चैत्यमन्दिरम् ।।

(यह विहार, जो कि खिड़कियों, दरवाजो, सुन्दर चित्रावलियों, वेदिकाओ, इन्द्र की अप्सराओं और ऐसी ही दूसरी चीजो से सजाया गया है, सुन्दर स्तम्भों से अलकृत किया गया है और इसके अन्दर बुद्ध का एक मन्दिर है।)

इस श्लोक मे उल्लिखित चित्रावलियो से १६ वी गुफा का सारा आन्तरिक भाग आच्छादित था, परन्तु इन मे से बहुत सी नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है। यहां पर मै केवल एक उल्लेखनीय कृति का ही उल्लेख करूंगा—वह है, एक मरणासन्ना राजकुमारी की—जिसके विषय मे सुप्रसिद्ध कला समीक्षक श्री ग्रिफिथ्स ने इन शब्दों मे वर्णन किया है—"मेरा ख्याल है कि कारुण्य एव भावनाओ में तथा अपनी कहानी को सुस्पष्ट रीति से कहने मे इस चित्र से उत्कृष्ट कृति कला के इतिहास में कोई नही मिल सकती। फ्लोरेन्सवासी चित्रकार इससे सुन्दर चित्राकृति प्रस्तुत कर सकते थे और वेनिसवासी इससे अच्छा रंग भर सकते थे, परन्तु दोनो मे से कोई भी इससे अधिक भावना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत नही कर सकता था। मरणासन्न नारी, शिथिर हुए शिर, अर्ध निमीलित नयनो एवं रुग्ण अंगो से एक शय्या पर लेटी है, जिस तरह की शय्या किसी भी आधुनिक भारतीय नागरिक के घर मे पायी जा सकती है। एक स्त्री परिचारिका सावधानी से उसे सहारा देती है, जब कि दूसरी उत्सुक दृष्टि से उसके मुख को देख रही है और रुग्णा स्त्री के हाथ को पकड़े हुए है, मानो वह उसकी नाड़ी टटोल रही हो। उसके मुख का भाव गहरी चिन्ता से व्याप्त है क्योकि सम्भवत. वह अनुभव कर रही है कि उस व्यक्ति का जीवन दीप बुझने ही वाला है, जिसे वह प्यार करती है। पीछे एक परिचारिका पंखा लिये खड़ी है और बायी ओर के दो आदमी अत्यधिक शोक से परिपूर्ण मुख से खड़े देख रहे है। नीचे फर्श पर दूसरे सम्बन्धी बैठे हुए है। दिखता है कि इन सबने आशा छोड़ दी है और उन्होने अपने शोक के दिवस का आरम्भ कर दिया है, क्योंकि एक स्त्री ने अपना मुह अपने हाथो मे छिपा लिया है, स्पष्ट है कि वह बुरी तरह रो रही है।"

इस काल की दूसरी विहार गुफ़ा अर्थात् १७ वी गुफ़ा को ऋषीक (बम्बई राज्य के वर्त्तमान खानदेश जिले) के एक शासक द्वारा, जो कि वाकाटक सम्राट् हरिषेण का माण्डलिक था, निर्मित करवायी गयी थी। बरामदे के बाये पार्श्व पर खण्डित रूप में उसका उत्कीर्ण लेख आज भी विद्यमान है, इसमे शासक राजा के, जिसका नाम दुर्भाग्य से लुप्त हो गया है, पूर्ववर्त्ती दस राजाओ की पूरी वंशावलि दे दी गयी है†। उसका रविसाम्ब नामक एक छोटा भाई भी था, जिसकी अकालमृत्यु हो गयी थी। इस उत्कीर्ण लेख मे बताया गया है कि शोक से अभिभूत हुए बड़े भाई ने संसार की

---

* वही, पृष्ठ ३०७।

† मिराशी—"खानदेश का एक पुराना राजवंश", "नागपुर युनिवर्सिटी जरनल", संख्या १०, पृष्ठ १ इ.।

निस्सारता को अनुभव कर लिया और पवित्र जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। उसने स्तूप तथा विहार बनवाये और अजन्ता में वर्तमान १७ वी गुफा के रूप में बौद्ध चैत्य और भव्य मण्डप निर्मित करवाये। इसी समय राजाओं में चन्द्रमा के तुल्य हरिषेण पृथ्वी पर राज्य कर रहा था। उसने इसके पश्चिम में एक दूसरी पहाडी पर* एक भव्य गन्धकुटी का भी निर्माण करवाया। यह उल्लेख स्पष्टतया १६ वी चैत्य गुफा के सम्बन्ध में है, जो कि १७ वी गुफा के पश्चिम में अवस्थित है।

१७ वी गुफा एक विहार गुफा है और आकार-प्रकार में १६ वी गुफा के तुल्य है। मुख्य भवन में एक केन्द्रीय द्वार से प्रविष्ट हुआ जाता है। यह ६३ फुट ६ इंच चौडी, ६२ फुट गहरी और १३ फुट ऊँची है। गुफा में १८ कोठरियां हैं, जिनमें से दो बरामदे में हैं। उत्कीर्ण लेख में उल्लिखित दूसरे सिरे पर अवस्थित देवस्थान मुनिराज चैत्य १७ फुट ६ इंच चौडा और २० फुट गहरा है और इसमें १६ वी गुफा के समान बुद्ध की विशाल मूर्ति है।

इस गुफा में दूसरी सभी गुफाओ के अपेक्षा अधिक चित्राकृतियां हैं। इनमें से कई जातक अथवा बुद्ध के अतीत जीवनों की कहानियां चित्रित करती हैं, जैसे विश्वन्तर जातक, सुतसोम जातक, षड्दन्त जातक, महाकपि जातक और अन्य। एक छोटा सा स्थल विशेष ध्यान देने योग्य है। ये उडते हुए गन्धर्व और अप्सरायें हैं। इस सम्बन्ध में बर्जेस की टिप्पणियां उल्लेखनीय हैं। वह कहता है—"इस युग के बौद्ध शिल्प में इस प्रकार की उडती हुई युगल आकृतियां बडी सामान्य हैं। तो भी ये जैसी भी हों, उनकी बाह्य आकृतियों की पूर्णता एवं एकत्रीकरण की भव्यता की दृष्टि से वे अजन्ता की छोटी चित्राकृतियों में सबसे मनोरम हैं [२] और किसी दूसरे उदाहरण की अपेक्षा तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में इटली में पायी गयी कला के स्वरूप को लगभग पहुँच जाती हैं।" †

१६ वीं गुफा—ऋषीक के शासक द्वारा निर्मित १७ वी गुफा में उपर्युक्त उत्कीर्ण लेख में उल्लिखित गन्धकुटी यही है। अजन्ता की चार चैत्य गुफाओं में से यह एक है। यह अत्यन्त परिश्रम से बनायी गयी है, इसके बाहरी प्रवेश स्थान और झरोखे पूरी तरह सुन्दर शिल्प कृतियों से, जिनमें बुद्ध की बैठी हुई एवं खडी हुई मूर्तियां हैं, ढके हुए हैं। श्री फर्ग्यूसन ने इन्हें "भारत में बौद्ध कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा है"।

चैत्य २४ फुट चौडा, ४६ फुट लम्बा और २४ फुट ४ इंच ऊंचा है। प्रवेश द्वार के ऊपर घोडे की नाल के तुल्य सुन्दर मेहराब से अन्दर खूब रोशनी आती है। गुफा में ११ फुट ऊँचे १५ स्तम्भ हैं। इस पूजा के स्थान दगोबा में खडे हुए बुद्ध की प्रतिमा है, जो कि एक मेहराब को दो सहारों के माध्यम से मदद दे रही है। घुमट पर एक के ऊपर दूसरी तीन छतरियां और हर्मिका है। कार्ले की चैत्य गुफा में यह छतरी लकडी की बनी हुई है, परन्तु यहां ये सब प्रस्तर-निर्मित हैं।

इस गुफा के विषय में बर्जेस ने लिखा है—"सौन्दर्य एवं विस्तार में गौरवपूर्ण होने के साथ पूर्णतया प्रस्तर निर्मित चैत्य का यह प्रथम उदाहरण बडा दिलचस्प है।"

इसमें सभी आभूषण पत्थर के बनाये गये हैं। इसका कोई भी भाग लकडी का न था और कई भाग आकृति में इतने सूक्ष्म हैं कि हम उनकी मूलाकृति की कल्पना नहीं कर सकते। इस गुफा में लकडी के स्थान पर पत्थर का प्रयोग सर्वथा पूर्ण है।

---

* वही, अन्यागदेशेस्य दिशि प्रतीच्यामकारयद्गन्धकुटीमुदाराम्। १७ वी गुफा के उत्कीर्ण लेख की २७ पंक्ति, ए एस डब्ल्यू आई, संख्या ४, पृष्ठ १३०।

† फर्ग्यूसन और बर्जेस—"केव टेम्पल्स आफ इण्डिया", पृष्ठ ३११।

२ वही, पृष्ठ ३१७।

वाकाटक नरेश हरिषेण के उपर्युक्त मन्त्री वराहदेव ने अजन्ता से १० मील दूर पश्चिम में जञ्झाल गांव के समीप गुलवाड़ा मे कुछ दूसरी गुफाये वनवायी थी। इसमें केवल दो ही जो कि विहार जैसी हैं, आज भी अवशिष्ट हैं। ये गुफाये भी १६ वी गुफा के समय की ही है, क्योंकि वड़ी गुफ़ा के उत्कीर्ण लेख मे यज्ञपति नामक वंश के संस्थापक से लेकर वराहदेव तक की वंशावलि दे दी गयी है।* यह गुफ़ा ७६ फ़ुट चौड़ी और ७८ फ़ुट गहरी है और इसमें एक बरामदा, एक भवन, एक वाह्य कमरा और पीछे एक पूजास्थान है। पूरा नक्शा अजन्ता की १६ वी गुफा से मेल रखता है। सामने के बरामदे से तीन दरवाज़े पिछले मुख्य भवन को जाते है। प्रकाश के लिये दो खिड़कियों की व्यवस्था की गयी है। दरवाज़े और खिड़कियां घोड़े की नाल के तुल्य मेहरावों से सजायी गयी है, जिसमे वुद्ध की आकृतियां भी है। भवन में चार पंक्तियों मे २० खम्भे वनाये गये हैं। पूजा स्थान मे धर्मचक्र-प्रवर्त्तन-मुद्रा में हाथ किये वुद्ध की विशाल मूर्तियां है। सिहासन पर दोनों ओर वैठे हरिणों की आकृतियां खोदी हुई दिखाई देती है।

वाकाटक काल के कलाकारों ने इस प्रकार की शानदार गुफायें निर्मित की थीं, उन्हें शिल्प व चित्रो से सुसज्जित किया था और राजाओ तथा मन्त्रियों ने उन्हे वौद्ध भिक्षुओ की सेवा के लिये प्रस्तुत कर दिया था।

* मिराशी—घटोत्कच गुफा का उत्कीर्ण लेख (हैदरावाद आर्किआलोजिकल सिरीज़)।

सिरपुर में उपलब्ध प्राचीन अवशेष

श्री मोरेश्वर गगाधर दीक्षित
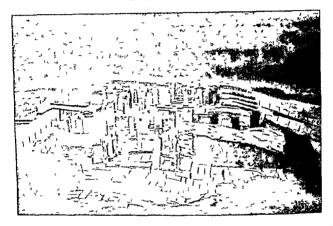
सिरपुर, प्राचीन श्रीपुर, रायपुर से ३७ मील उत्तर पूव मे रायपुर जिले की महासमुन्द तहसील में महानदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित है। वतमान सिरपुर नदी और रायकेडा तालाब के मध्यवर्ती स्थान म बसा हुआ है। इसमें लगभग ४५ झोपडिया है, जिनमें लगभग १५० प्राणी रहते ह, जो अधिकतर खेती तथा धान की फसल पर गुजर-बसर करते है। प्रतिवष माघ महीने में पूर्णिमा के दिन गाव में एक बडा मेला होता है, जिसमें पास पडोस के ५,००० व्यक्ति एकत्र होकर पवित्र महानदी में स्नान करते है।

सातवी ईस्वी शताब्दी से पूव इस स्थान के प्राचीन इतिहास का कुछ भी ज्ञान नही है। सातवी शताब्दी के अन्तिम चरण में श्रीपुर में शरभपुर या सोमवशी राजाओ की राजधानी स्थापित हुई थी। इस सम्बध में सबसे प्राचीन उत्कीएा लेख सम्बधी साक्षी महासुदेव राजा के सारगढ ताम्रपत्र * और उसके उत्तराधिकारी महाप्रवर राजा के ठाकुरदिया ताम्रपत्रो † से उपलब्ध होती है। दोनाही ताम्रपत्र श्रीपुर से प्रसारित किये गये थे, न कि परिवार की प्राचीन राजधानी शरभपुर से।

* इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली में पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय द्वारा सम्पादित, २१, पृष्ठ २९४-२९५।

† एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द २२, पृष्ठ १५ इ।

आठवी ईस्वी शताव्दी से श्रीपुर के उल्लेख वहुत अधिक मिलने लगते है। इनमे से अधिकाश सिरपुर से प्राप्त उत्कीर्ण लेख ही है, जो अधिकतर महाशिवगुप्त नाम से या जिसे वालार्जुन भी कहा गया है, सम्वन्धित है। इनमें से एक *लक्ष्मण मन्दिर के चारों ओर के मलवे को साफ करते हुए मिला था। इसमे उल्लेख किया गया है कि महाशिवगुप्त की राजमाता वसाटा ने एक भव्य मन्दिर वनवा कर हरि को समर्पित किया था। सिरपुर के गन्धेशवाडा मन्दिर में कम से कम पाच † उत्कीर्ण लेख है, जो कि मण्डप मे स्तम्भों पर खुदे हुए है, ये शासक तथा उसके आश्रितो की विभिन्न प्रवृत्तियो से सम्वन्धित है। इसी मन्दिर की नीव मे लगे हुए एक अन्य उत्कीर्ण लेख ‡ मे पाण्डव राजाओ की वंशावलि दी गयी है, इससे इस परिवार के इतिहास को व्यवस्थित करने मे वड़ी मदद मिली है।

भूमिस्पर्शमुद्रा मे वुद्ध की धातुमूर्ति

एक अन्य उत्कीर्ण लेख × जो कि नवनिर्मित घाट में मिला है और जिसे "नदी द्वार लेख" कहा जाता है महाशिवगुप्त के राज्यकाल से सम्वन्वित है। सिरपुर मे सुरंग के टीले से भी एक अन्य उत्कीर्ण लेख + प्राप्त हुआ है जो कि दुर्भाग्य से वड़ा खण्डित हो गया है। अब इसे रायपुर के संग्रहालय मे सुरक्षित रखा गया है। अपने प्रकरण से यह महाशिवगुप्त से सम्वन्धित मालूम पड़ता है। इसमे एक महाप्रासाद तथा अन्नसत्र वनवाने का भी उल्लेख है जिनके लिये कुछ आर्थिक व्यवस्था की गयी थी। सिरपुर मे
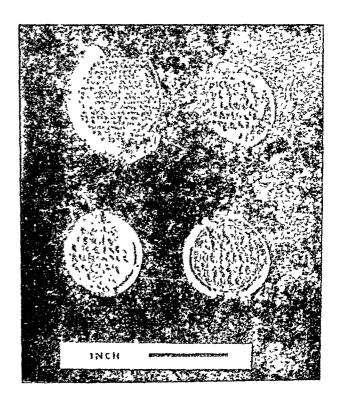
सिरपुर मे प्राप्त कुछ मुद्रायें व ताम्रपत्र

* एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ११, पृष्ठ १९०।

† हीरालाल की सूची, संख्या १७३।

‡ इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द, १८, पृष्ठ १४९ इ.।

× हीरालाल की सूची, सख्या १८७।

+ वही, संख्या १८६, विषय की पूर्ण जानकारी महन्त घासीराम संग्रहालय के संचालक श्री वी. पी. रोडे से साभार।

अपनी खोज-बीन के सिलसिले में मुझे अन्य तीन उत्कीर्ण लेख भी प्राप्त हुए, इन में से एक गंधेश्वर मन्दिर के फर्श में लगा हुआ मिला। इसमें महाशिवगुप्त द्वारा एक विहार बनवाये जाने का उल्लेख किया गया है, दूसरा सिरपुर के समीपवर्ती एक गांव सेनकपट* से प्राप्त हुआ है जिसमें किसी शिवरक्षित द्वारा त्रिलोचन के महान मन्दिर बनवाने का और आमर्दक मतावलम्बी एक शैव सदाशिवाचार्य को समीपस्थ गांवों से कुछ भूमिदान देने का उल्लेख किया गया है। १९५५ वर्ष के प्रारम्भ में अपनी खुदाई के सिलसिले में मुझे पूर्णतया सुरक्षित एक १४ पंक्तियों का उत्कीर्ण लेख † प्राप्त हुआ है, इसमें आनन्दप्रभ नामक एक भिक्षु द्वारा महाशिवगुप्त के राज्य-काल में एक बौद्ध मठ बनवाने का उल्लेख किया गया है। राजा ने मठ में निवास करने वाले भिक्षुओं के भोजन आदि के लिये एक सत्र की व्यवस्था की थी।

महाशिवगुप्त यद्यपि शिव का परम भक्त था परन्तु उसकी श्रद्धा अपनी राजधानी का निर्माण करते हुये केवल अपने ही मत के कई मन्दिरों के बनवाने में ही मर्यादित नहीं थी। दूसरी ओर वह दूसरे धर्मावलम्बियों को भी अपनी राजधानी में बसने के लिये उत्साहित करता था और उन्हें उदार आश्रय देता था। यह तथ्य सिरपुर की खुदाई में मिले बहुसंख्यक बौद्धविहारों तथा गांव में सुरक्षित कुछ बौद्ध शिलालेखों से पुष्ट होती है। बौद्ध धर्म की उन्नति में महाशिवगुप्त की दिलचस्पी का विषय उसके द्वारा बनवाये बौद्ध विहार के उल्लेख के अतिरिक्त मल्लार दानपत्र‡ से भी परिपुष्ट होता है जिसमें बौद्ध भिक्षुसंघ को उसके द्वारा दिये गये दान का विवरण दिया गया है। सन् १९३९ के वर्ष में सिरपुर में एक टीले की खुदाई करते समय कास्य पदार्थों ×का एक बड़ा दफीना अकस्मात् ही उपलब्ध हो गया था परन्तु खेद का विषय है कि इन में केवल कुछ ही संग्रहालय में सुरक्षित रखे जा सके। ये नमूने भी तत्कालीन शासक के सुवर्णकारों की ऊंची शिल्प सम्पत्ति को प्रमाणित करते हैं। इन में से विशेषरूप से उल्लेखनीय भारतीय विद्याभवन बम्बई के संग्रह में आजकल सुरक्षित सुनहरी आभा से झलमलाती तारा+ की मूर्ति एवं नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय में सुरक्षित दूसरी कुछ मूर्तियां हैं। कुछ मूर्तियां कुछ व्यक्तियों के निजी संग्रहों में भी सुरक्षित हैं जिन्हें देखकर लेखक इस परिणाम पर पहुंचा है कि उस युग में मूर्ति निर्माण कला सिरपुर में बहुत उन्नति प्राप्त

सिरपुर से प्राप्त मृण्मुद्रा

*एपिग्राफिया इण्डिका में शीघ्र ही प्रकाशनीय।

†ताम्रपत्र देखिये।

‡एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २३, पृष्ठ ११३ इ०।

×इन पदार्थों की प्राप्ति किन परिस्थितियों में हुई इसका विवरण श्री मुनि कान्तिसागर ने अपने ग्रन्थ "खण्डहरों का वैभव" में २८८ से २९८ पृष्ठों में दिया है। इन मूर्तियों की प्राप्ति का स्थान अब पता लगा लिया गया है और अब इस स्थान की व्यवस्थित खुदाई की जायेगी।

+भारतीय विद्या मन्दिर की अंग्रेजी पत्रिका के ४३२ पृष्ठ पर चित्र।
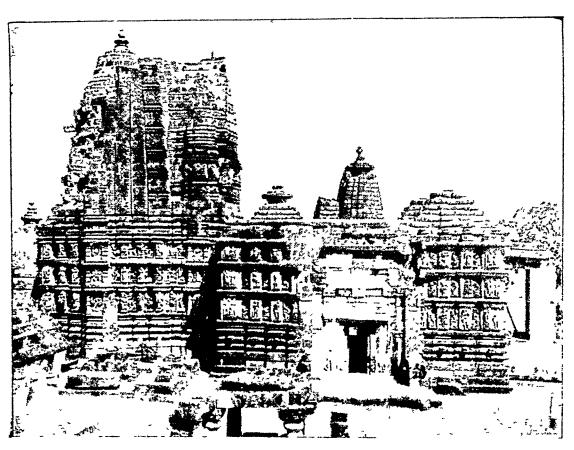
मारकंडी (चांदा) स्थित १०वीं शताब्दी का शिवमन्दिर
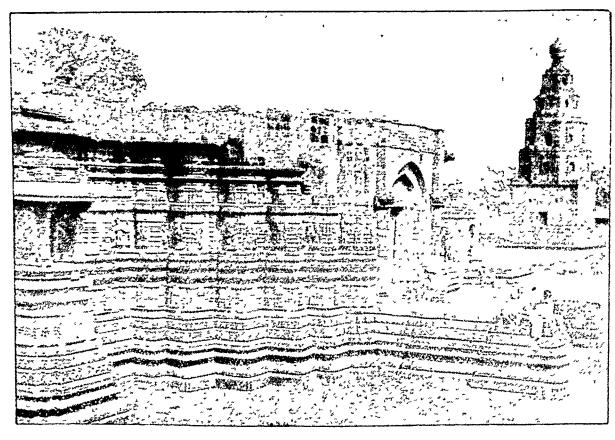
लोणार स्थित यादव कालीन दैत्यसूदन मन्दिर

एरन (जिला सागर) में गुप्तकालीन विजयस्तम्भ,
वाराह और शिवमन्दिर

बुरहानपुर स्थित असीरगढ का किला

कर चुकी थी। सिरपुर मे खुदाई से * प्राप्त मूर्तियां तथा दूसरी कला मूर्तिया इस वात को ध्वनित करती है कि प्राचीन महाकोशल मे एक स्वतंत्र मूर्ति निर्माण कला उन्नति कर रही थी, इस पर गुप्त प्रणाली का प्रभाव था और जिसे कलचुरि काल के महान कलाशिल्पियों ने ग्रहण कर लिया था।

महाशिवगुप्त बालार्जुन के शासन के बाद के प्राचीन सिरपुर के विषय मे हमे पर्याप्त सूचना उपलब्ध नही है। ईस्वी सन् की नौवी शताब्दी में सिरपुर ने फिर से अपनी गौरवपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली क्योकि हम देखते है कि शरभपुर से सम्बधित न होते हुये भी शासक तीवरदेव ने अपने दो ताम्र-पत्र श्रीपुर से प्रसारित किये थे। इन मे एक राजिम पत्र † है जो कि उसने अपने शासन के ९ वें वर्ष में प्रसारित किया था और दूसरा बलोदा पत्र ‡ है जो कि उसने अपने शासन के ८ वें वर्ष मे प्रसारित किया था। इन ताम्रपत्रों से मालूम पड़ता है कि तीवरदेव के शासन मे श्रीपुर सम्पूर्ण महाकोशल की राजधानी बन गया था।

* * * *

सिरपुर की भूमि मे तीन ही भवन (स्थापत्य) सम्वन्धी स्मारक विशेष उल्लेखनीय है। ये तीन है (क) लक्ष्मण मन्दिर (ख) राम मन्दिर और (ग) गन्धर्वेश्वर का मन्दिर।

(क) **लक्ष्मण का मन्दिर**। ईंटो का बना यह मन्दिर इस काल के उन कुछ ही प्राचीन स्मारकों मे से अवशिष्ट है जो भारत मे काल के प्रहारों से सुरक्षित बच गया है। इस मन्दिर का निर्माण काल सम्भवत: ८ वी शताब्दी का पूर्वार्ध है। भारत में ईंटों से बने कुछ ही प्राचीन मन्दिरों में सम्मिलित होने से इस मन्दिर ने पुरातत्ववेत्ताओ का, जिनमें सर्वप्रथम भारत मे पुरातत्त्व के प्रथम महासंचालक सर एलेग्जण्डर कनिंगहम × थे, पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया। पिछली शताब्दी के आठवें दशक मे उन्होने इस अद्वितीय मन्दिर का महत्व आंक लिया था जिसका कि बाद मे सन १९०९ १९१० में भारत शासन के पुरातत्व विभाग के श्री ए. लोंगहर्स्ट ┼ ने उल्लेख किया था। बाद मे भारतीय शासन के पुरातत्त्व विभाग द्वारा इस मन्दिर की मरम्मत की गयी तथा इसकी सुरक्षा की गयी, क्योकि इस मन्दिर का बहुत बार वर्णन हो चुका है इसलिये मुख्य मन्दिर के विषय मे ऐसी कोई बात नही है जिसका उल्लेख आवश्यक हो। पुरातत्त्व विभाग द्वारा निर्मित एक छते हुए स्थान मे-मन्दिर की सफाई करते समय एव समीपस्थ क्षेत्रो से मिली ७३ मूर्तियां एवं शिल्प सम्बन्धी नमूने रखे गये है। शिल्प कला के नैपुण्य को प्रकट करने वाले कुछ दिलचस्प नमूनों मे एक वृक्ष के नीचे शिशु के साथ खडी अम्बिका की सुन्दर पूर्ण मानव आकृति की मूर्ति, कुछ बौद्ध प्रतिमाये एव एक चीते और द्वारपाल के मध्य हुई लड़ाई को व्यक्त करने वाली उत्कीर्ण मूर्ति प्राप्त हुई है। लक्ष्मण मन्दिर मे सुरक्षित काले पत्थर की बनी सुन्दर परन्तु खण्डित विष्णु प्रतिमा भी उल्लेखनीय है। (लक्ष्मण मन्दिर) का निर्माण सम्बन्धी रानी वसाटा का उत्कीर्ण लेख इस समय रायपुर सग्रहालय में सुरक्षित है।

(ख) **राममन्दिर** राममन्दिर लक्ष्मण मन्दिर के पूर्व मे बिल्कुल पास मे ही है परन्तु इस समय खण्डहर हो चुका है। मन्दिर के पूजास्थान की बाहरी दीवारे ही इस समय खड़ी है। लक्ष्मण मन्दिर के नक्शे के तुल्य ही राममन्दिर का नक्शा भी है परन्तु इसका स्थापत्य पूर्व-मन्दिर जैसा उत्कृष्ट नही है। यह पत्थरो से बने चबूतरे पर बनाया गया था इसका आधार तारकाकृति से बनाया गया था जैसा कि लक्ष्मण मन्दिर में उपलब्ध है।

---

*देखिये ताम्रपत्र।

† इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द १८, पृष्ठ २२० इ.।

‡ एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ७, पृष्ठ १०४ इ.।

× आर्कियालोजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द २, पृष्ठ १६८ इ, वही जिल्द १७, पृष्ठसंख्या २३ इ.।

┼ "मध्यप्रदेश मे प्राचीन ईंट से बने मन्दिर" आ. स. आफ इण्डिया, ए आर. १९०९–१०, पृष्ठ ११ से १७ पांच चित्रों के सहित।

(ग) गन्धेश्वर मन्दिर—यह मन्दिर वास्तव में प्राचीन काल का गन्धर्वेश्वर मन्दिर है। यह महानदी के तट पर बना हुआ है इसमे शिल्प या पुरातत्त्व सम्बन्धी महत्त्व की कोई बात नही है क्योकि इसका बहुत सा भाग पुनर्निमित हो चुका है। पूर्व उल्लिखित उत्कीर्ण लेखो के अतिरिक्त समीपस्थ क्षेत्रो से प्राप्त की गयी उत्कीर्ण मूर्तिया मन्दिर के अहाते में सुरक्षित कर दी गयी है। इन में से सबसे अधिक उल्लेखनीय भूमिस्पर्श मुद्रा में आसीन हुए महात्मा बुद्ध की दो आदमकद मूर्तिया है जिनके प्रभामण्डलो म बौद्ध मन्तव्य आठवी शताब्दी के अक्षरो में उत्कीर्ण किये गये है। यह प्रतीत होता है कि महाशिवगुप्त बालार्जुन द्वारा निर्मित विहार से ये मूर्तिया लायी गयी थी क्योकि लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व मन्दिर के अहाते में निवाससम्बन्धी नवीन भागो को बनवाते समय मन्दिर के पुजारी ने इन प्राचीन अवशेषो वाले टीले को पत्थर प्राप्त करने के लिये बुरी तरह खुदवा डाला था। मन्दिर में भी विष्णु के वराह अवतार, गरुड द्वारा विष्णु को ले जाने आदि की कुछ मूर्तिया है, परन्तु पूजा में स्निग्धपदार्थो एव सिन्दूर आदि के प्रयोग से इन मूर्तियो के चिन्हाङ्कित अवयव अस्पष्ट हो गये है। मन्दिर की चारदिवारी में बाहर की ओर शिव की ताण्डव मुद्रा में एक सुन्दर उत्कीर्ण मूर्ति लगी हुई है, इस प्रकार की मूर्ति महाकोशल म बहुत कम देखने को मिली है वैसे शिव के दूसरे स्वरूप बहुत प्रचलित है। इनके अतिरिक्त महिषासुरमर्दिनी देवी को चित्रित करने वाली बहुत सी मूर्तिया एकत्र कर दी गयी है जिनसे विषय का वैविध्य प्रकट होता है।

सिरपुर के स्थानवृत्त का एक बहुत ही उल्लेखनीय भाग उसके निकट के चार मील की विस्तीर्ण भाग में फैले हुए बहुसख्यक तालाब है। इन में से प्रत्येक के तट पर छोटे-छोटे मन्दिरो के खण्डहर दिखते हैं। कहा जाता है कि इनकी सख्या सवा लाख से अधिक है। यद्यपि ये खण्डहर बहुत आकर्षक तो नही है परन्तु मलवे से कई बार दरवाजा के ऊपरी हिस्से, स्तम्भो के सिरे और बिखरी हुई उत्कीर्ण मूर्तिया अपने क्षेत्रो में समायी हुई मूर्तियो के धार्मिक स्वरूप को इङ्गित कर रही है। गाव के दक्षिण में बेतरतीब से फैले हुए टीले, जहा आसपास के मैदानो से अधिकतर ८–१० फुट ऊँचे है पुरातत्त्व सम्बन्धी अन्वेषणो के लिये उपयुक्त क्षेत्र बन सकते है।
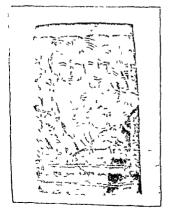
दम्पति

१९५४ के ग्रीष्मकाल में लक्ष्मण मन्दिर के उत्तर में एक बडे ऊचे टीले की मैने खुदाई करवायी थी जिसमे पञ्चायतन शाखा का शिवमन्दिर मिला। यह ८–१० फुट ऊचे पत्थरो के आधार पर बना हुआ था जिसके सम्मुख ईंटो का कोठरीनुमा ढाचा था। पश्चिम दिशा के सामने ४॥ फुट ऊचे एक बडे शिवलिंग की मुख्य मूर्ति है और पश्चिम दिशा की ओर इसी देवता की कुछ छोटी मूर्तिया है प्रत्येक पार्श्व पर दो-दो मूर्तिया है—जिससे स्पष्ट होता है कि पञ्चायतन शाखा प्रतिलोम स्वरूप की थी। इस क्षेत्र में मिली हुई कुछ महत्वपूर्ण शिल्प उपलब्धियो में महिषासुरमर्दिनी देवी, एक द्वारपालिका की आकृति और एक राजकीय दम्पति की चित्राकृति उल्लेखनीय है। १९५५ के प्रारम्भिक शीतकालीन महीनो में गाव की दक्षिणी सीमा पर कुछ अधिक व्यापक कार्य प्रारम्भ किया गया। लक्ष्मण मन्दिर से एक मील दक्षिण में सुरक्षित जगल के मध्य में अवस्थित मलवे में से उभरी हुई द्वारपालो की दो

मूर्तियों के मिलने से हमें एक सूत्र प्राप्त होगया जिससे मैंने यह परिणाम निकाला कि यहा पर भग्नावशेषो मे एक वड़ा मठ भूमिगत हुआ है। वादमे यहा पर खुदाई करवाने पर मालूम हुआ कि वौद्ध धर्म से सम्वन्धित दो समीपस्थ मठो का एक पार्श्वभाग है। मुख्य मन्दिर मे एक विशिष्ट प्रकार की योजना देखने को मिली जिसमे पश्चात् गुप्त कालीन मन्दिर और मठ का सुन्दर सम्मिलन दिखता है। छते हुए दरवाजे, एक सभा-मण्डप और पूजास्थान की अवस्थिति से यहा मन्दिर की सव जरूरते पूर्ण हो जाती है। गुप्त काल के वाद के वौद्ध विहारो में मध्यवर्ती आंगन के चारो ओर कोठरियो की कतार की व्यवस्था वडी सामान्य हो गयी थी।

सिरपुर मे मिली युगल मूर्तियाँ

मुख्य पूजास्थान मे भूमिस्पर्श मुद्रा मे सिहासन पर वैठी हुई महात्मा वुद्ध की एक विशाल मूर्ति है। इस मूर्ति की ऊंचाई ६।। फुट के लगभग है और सिरपुर मे हस्तगत हुई सम्भवत· यह सवसे वड़ी मूर्ति है। इसके दाहिने पार्श्व पर एक सेवक के रूप मे अवलोकितेश्वर पद्मपाणि अवस्थित है परन्तु वायी ओर की वज्रपाणि की मूर्ति अव गायव है। पूजास्थान का द्वारमार्ग पूजास्थान की दाहिनी ओर एक स्तम्भ पर आश्रित मकर के वाहन पर गगा की खडी ऊंची मूर्ति से सुसज्जित है परन्तु सम्मुख स्तम्भ पर अवस्थित सम्वद्ध यमुना की मूर्ति अव लापता है।
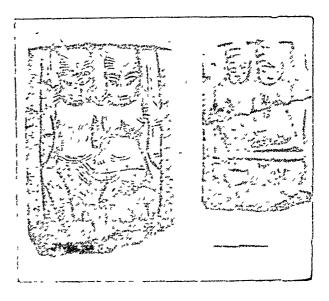
मठ में वरामदे की पिछली ओर चार कतारो मे १४ कोठरिया है। प्रत्येक कोठरी ८ × ९ फुट के आकार की है जिसमे प्रत्येक मे आलो की व्यवस्था की गयी है जिन में एक दरवाजे की साकल के लिये, दूसरा लैम्प के लिये, तीसरा ताले के लिये और चौथा वहां निवास करने वाले भिक्षुओ के सामान के लिये था। यह मठ दुमंजिला था जिसमे एक सुदृढ़ सीढी के माध्यम से उत्तर पश्चिमी कोण पर एक प्रवेशद्वार था। इसका निकटवर्ती कमरा मठ के कोशागार का कार्य करता था और इसमे प्रवेश का एकमात्र रास्ता समीपवर्ती कमरे की दीवार के आधार के साथ खिड़की-नुमा एक पल्ला था। उत्तरी वरामदे के मलवे को साफ कराते हुए १४ पंक्तियों का एक संस्कृत उत्कीर्ण लेख, जो कि आठवी ईस्वी शताव्दी की लिपि मे उल्लिखित था, हस्तगत हुआ। इसके द्वारा हमें मठ का निर्माण विपयक विवरण प्राप्त हुआ। इसमे कहा गया था कि वालार्जुन (महाशिवगुप्त) के शासनकाल में आनन्दप्रभ नामक एक भिक्षु ने कुटी विहार का निर्माण किया था और इसके साथ एक अन्न सत्र की व्यवस्था की थी जिसमे मठ में रहनेवाले भिक्षुओं को चावल तथा खाद्यान्न निश्चित परिमाण मे दिया जाता था। यह भी उल्लेख किया गया है कि तारदत्त के पुत्र श्री सुमङ्गल ने उत्कीर्ण लेख लिखा था और इसे प्रस्तरशिला पर किसी प्रभाकर नामक व्यक्ति ने उत्कीर्ण किया था। महाशिवगुप्त के दरवार का राजकवि सुमङ्गल सिरपुर से उपलव्ध हुए दूसरे उत्कीर्ण लेखो से भी प्रख्यात है।

खुदाई के कार्य में २००० से अधिक वस्तुयें प्राप्त हुई और इनकी प्राचीन अवस्था को देखते हुए यह सुनिश्चित प्रतीत होता है कि मठ में सुखकारी जीवन व्यतीत किया जाता था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मठ मे रहनेवाले वौद्ध धर्म के अनुयायी होने पर भी आधुनिक समाज के निम्न मध्यमवर्ग के व्यक्ति थे और किसानी, वर्तन वनाने और सुवर्ण कार्य आदि विभिन्न कामधन्वों को अपनाते थे। इन सभी कारीगरों के औजार भी उपलव्ध हुए है। एक कमरे में सुनार के औजारों का पूरा सेट प्राप्त हुआ है जिनमें उसकी चिमटियां, चिमटे, छोटी हथोड़ी, एक तिपाई, और कसौटी भी, जिससे उसने सोना परखा होगा, सुनहरी रेखाओ के साथ सुरक्षित रूप मे

प्राप्त हुआ हैं। निस्सन्देह खुदाई म प्राप्त बहुत सी कास्य मूर्तिया स्थानीय कलाकारो द्वारा यहा पर ही निर्मित की गयी होगी इन में से उल्लेखनीय सोने के पत्तरो से बना महात्मा बुद्ध का सुन्दर पुतला है जिसकी आखें चान्दी से निर्मित की गयी ह। स्वाभाविक लाल रग की अनुकृति करने के लिये होठो को रगने के लिये ताम्बे का प्रयोग किया गया है। कासे की कुछ कलाकृतियो के, जो कि आन्तरिक साचे की पद्धति से ढाली गयी थी, आन्तरिक पार्श्व के साथ रेत का भाग अभी भी लगा दिखता है। उनकी कलाकृति से स्पष्ट है कि धातु के कारीगरो ने अपनी कला में पर्याप्त प्रगति कर ली थी। कासे की मूर्तियो के अतिरिक्त पत्थर की भी कुछ छोटी-बडी मूर्तिया उपलब्ध हुई हैं। देवस्थान के बाहरी प्रवेशद्वार के भवन में आले पर यक्ष कुबेर की सुन्दर मूर्ति दृष्टिगोचर होती है जो बहुत ही भव्य स्वरूप में सुसज्जित है और उत्कीर्ण कला की आवश्यकताओ की दृष्टि से पूर्ण है। मन्दिर के अहाते में इसी की एक अन्य मूर्ति प्राप्त हुई है, परन्तु सबसे सुन्दर मूर्ति मठ के मुख्य देवस्थान की मूर्तियो की अनुकृति में निर्मित सिंहासनासीन महात्मा बुद्ध की छोटी सी मूर्ति ह, यह मूर्तिकला की बारीकियो एव औजारो के सुन्दर नैपुण्य को प्रकट करता है। एक दूसरी छोटी प्रतिमा में महात्मा बुद्ध अपने शिष्यो-पद्मपाणि और वज्रपाणि के साथ अवस्थित ह। यह एक प्रस्तर शिला म अपने प्रभामण्डलो के साथ निर्मित की गयी है। इनकी कारीगरी बहुत ही सूक्ष्म है और जिन शिल्पियो ने इन्हें बनाया है उनके शिल्पकौशल को व्यक्त करता ह। दुर्भाग्य से यह मूर्ति बुरी तरह से खण्डित की गयी है।

सुनार के कुछ औजार

यक्ष कुबेर

पूजा के धार्मिक उपादानो के साथ हमें गृहकार्यों में आनेवाले पदार्थ भी उपलब्ध हुए हैं। एक कमरे में, जो कि निस्सन्देह मठ का रसोईघर था हमें कढाई, तवा चम्मचें, करछी, मथानी और एक छोटा सा सरौता भी उपलब्ध हुआ है।

दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तुओ में स्कन्दाहत (स्प्रिङ्गदार) किस्म का ताला जो कि हमें साची और नालन्दा के मठो में भी मिला है, उल्लेखनीय है। लोहे की घटियो, खटियो, दरवाजे के कब्जे, जजीरें, चटकनिया, द्वार की साकल आदि विभिन्न वस्तुओ के नाम परिगणित किये जा सकते ह। मठ की छत में अच्छी इमारती लकडी लगी हुई थी, इसलिये हमें बडी गिनती में विभिन्न किस्मो व आकारो में लोहे की कीलें मिली है। लगभग २००० ऐसी लोहे की कीलें हमें प्राप्त हुई ह। प्रत्येक कमरे म दैनिक आवश्यकताओ की वस्तुयें-यथा आटे की

चक्की, सिल वट्टा और कही-कही ऊखल भी मिला है। बरामदों के कोनों मे वड़े घड़े रख कर उचित पानी की व्यवस्था की जाती थी और आलों मे मिट्टी के दिये रख कर वरामदो मे प्रकाश किया जाता था।
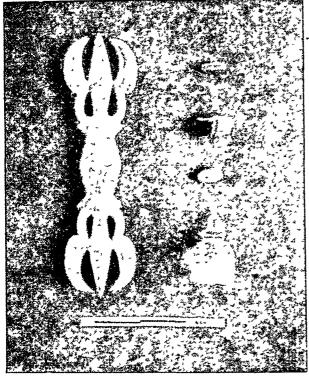
सिरपुर मे प्राप्त कुछ पदार्थ

यह मालूम नही हो सका कि मठ का उपयोग किस तरह वन्द हो गया परन्तु भूतल विज्ञान, परिस्थिति सम्वन्धी एवं पुरातत्त्व सम्वन्धी साक्षियों से स्पष्ट हो जाता है कि इस स्थान पर वाद मे ऐसे लोगो ने अधिकार कर लिया जो कि अपने पूर्ववर्तियों के समान शान्तिप्रिय न थे। ये वाद मे आये शैव मतावलम्वी थे, इन्होने या तो वौद्ध लोगो को भगा दिया अथवा उनकी खाली कोठरियो पर अधिकार कर लिया। उन्होंने मठ के कुछ भागो की एक द्वार वना कर मरम्मत करवायी और मठ की पुरानी कोठरियो का भी प्रयोग किया। सम्भवत. वे शिकार एवं वन्य व्यवसाय कर अपना जीवन--यापन करते थे, यह वात खुदाई में प्राप्त वहुत से आयुधों, एवं हथियारों से स्पष्ट होती है। उनकी धार्मिक पूजा शिव-पार्वती, महिषासुरमर्दिनी, गणेश और लिग जैसे दैवी उपादानों एवं देवताओं की प्रस्तरमूर्तियो की व्यक्तिगत पूजा तक मर्यादित थी, क्योंकि वहुत सी बौद्ध प्रतिमाये वुरी तरह क्षत--विक्षत एव खण्डित स्वरूप मे उपलब्ध हुई है। यह भी निश्चय से नही कहा जा सकता कि वुद्ध की मुख्यमूर्ति की पूजा की जाती थी, उस मूर्ति का सुरक्षित रहने का प्रधान कारण यही प्रतीत होता है कि महात्मा वुद्ध दशावतारो मे सम्मिलित कर लिये गये थे और कुवेर आदि कुछ देवता हिन्दुओं और वौद्धों दोनों के लिये पूजा के पात्र थे। इन शैव मतावलम्वियों का कलासौष्ठव एवं शिल्पनैपुण्य उच्च न था। ये लोग पवित्र भस्म रखने के लिये छोटी चपटी तश्तरी का प्रयोग करते थे। कमल, गजलक्ष्मी, अश्वयुगल, वराह, हाथी आदि उनके अलंकार के उपादान थे, कोनों मे आकृतियां भी दिखती है। सारसो, तितलियों आदि विभिन्न आदर्शो आदि का भी प्रयोग चित्रकला मे दिखता है परन्तु इनमे किसी प्रकार का कला नैपुण्य नही प्रदर्शित होता, ये विना किसी श्रम से निर्मित दिखते है। यह निश्चय से नही कहा जा सकता कि ये लोग किस काल से सम्वन्धित थे क्योकि खुदाई के ऊपरी स्तर से किसी भी प्रकार का विशेष विवरण उपलब्ध नही हुआ है और आकृतियो एव सामग्री की स्थिति से यह परिणाम अवश्य निकाला जा सकता है कि मठ पर उक्त शैव आक्रमण दसवी ईस्वी शताव्दी से पूर्व नही हुआ होगा। संक्षेप मे मठ के जीवन मे यह पश्चात् मध्यवर्तीकालीन एक संक्षिप्त अस्थायी दौर ही रहा होगा। इस अधिकार के कुछ समय वाद ही मठ निर्जन हो गया होगा। उपेक्षा, भवन मे लगी हुई इमारती लकडियो के स्वाभाविक क्षय एवं दूसरे कारणो से इसका विनाश हो गया और सारा प्रदेश जंगलो से व्याप्त हो गया।*

---

* सिरपुर के पुरातत्त्वीय अवशेषो का उत्खनन मध्यप्रदेश शासन के तत्त्वावधान में सागर विश्वविद्यालय की ओर से लेखक ने सम्पन्न किया है। इस कार्य के श्रीगणेश एवं सम्पन्न करने मे मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री श्री प. रविशंकर शुक्ल ने व्यक्तिगत दिलचस्पी दिखलायी है।

चेदि शिल्प-स्थापत्य

श्री महेशचन्द्र चौबे

भारत में मूर्तिकला का विकास कब और कैसे हुआ इसके विषय में विदेशी एव भारतीय विद्वानो में अनेक भ्रान्ति-मूलक धारणायें फैली हुई हैं। मोहनजदडो और हडप्पा मे प्राप्त मूर्तिखण्डो के आधार पर कतिपय भारतीय विद्वान यहा की मूर्तियो का आविर्भाव सिन्धु सभ्यता तक ले जाना चाहते हैं, परन्तु अन्य विद्वान इससे सहमत नही, और भारत में मूर्तियो का निर्माण काल सिकदर के आक्रमण के पश्चात ही मानते है। यद्यपि सिकदर के पूर्व की प्रतिमायें भारत में प्राप्य नही है तो भी कलकत्ता और पटना के सग्रहालयो में सग्रहीत कुछ यक्ष प्रतिमाए ऐसी है जिन्हें श्री काशीप्रसाद जायसवाल शिशुनाग काल की मानते है और उन पर उत्कीर्ण नामो के आधार पर उन्हें देवकुल की प्रतिमायें होना सिद्ध करते है। इन मूर्तियो के सबध में वर्षों तक विद्वानो के बीच मतभेद चलता रहा। कतिपय विद्वान कलकत्ता सग्रहालय में सग्रहीत अगम कुआ वाली दो यक्ष प्रतिमाओ के कालनिर्णय के सबध में एक मत न हो सके, परन्तु जायसवाल जी ने इन पर उत्कीर्ण अभिलेखो का ठीक निरूपण कर उन्हें 'अज' और 'वटनन्दी' नामक शिशुनाग वश के पूर्वजो की प्रतिमायें सिद्ध किया है। मथुरा के सग्रहालय में प्रस्थित परखम से प्राप्त एक आदमकद प्रतिमा को भी जिसे अन्य विद्वान किसी अज्ञात यक्ष की मूर्ति समझते थे जायसवाल जी ने बडे परिश्रम से अजातशत्रु की प्रतिमा सिद्ध किया है। इस प्रकार भारतीय शिल्प और मूर्ति निर्माण कला ईसा की पाचवी शताब्दी पूर्व एक समुन्नत दशा को पहुच चुकी थी, यह सिद्ध कर देने का भगीरथ प्रयत्न हो रहा है।

त्रिपुरी में उपलब्ध बोधिसत्व

मौर्यों के समय में भारतीय कला-कौशल उन्नति के जिस उच्चतम शिखर पर था, यह साची के स्तूपो और सारनाथ की मूर्तियो को देखने से प्रतीत होता है। कुछ विदेशी विद्वान सारनाथ सग्रहालय में रखे हुए हमारे देश के वर्तमान राजचिह्न को देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि इन सिंहो पर पारसिक सभ्यता की छाप है और कदाचित् अशोक के कलाकारों ने ईरान के विश्वविख्यात नगर "पारसीपोलिस" से प्रेरणा ली हो। परन्तु मौर्यकालीन चवर ग्राहिणी की भव्य प्रतिमा देख कर यह कदापि परिलक्षित नही होता कि वह किसी अन्य कला की देन हो। उसकी भारतीय मुद्रा युग की नारी का प्रतीक है। मौर्यकाल में राजकीय सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ इससे वह लोक कला से भिन्न राजकीय वैभव के रूप में सामने आयी। मौर्यों के पश्चात् राज सत्ता शुगो के हाथ में आयी। इनके समय में निर्मित भरहुत

का स्तूप कला की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस स्तूप मे पायी गयी सैकड़ों प्रतिमायें स्थानीय लोक कला के सुन्दर उदाहरण है। इनको देखकर यह विश्वास होता है कि लोक जीवन मे कला का वड़ा सहज प्रवेश था। इसी से मूर्तियों के विषय भी दैनिक जीवन में आने वाली वस्तुओं से भिन्न नही हैं।

शुंग राज्य के समाप्त होने के वाद उत्तर मे शक, कुषाण और दक्षिण में सातवाहन राज्यो का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मथुरा से प्राप्त सैकड़ों प्रतिमाओं पर कुषाण राजकाल की गहरी छाप है। सिक्कों के ऊपर वनी हुई मूर्तियों पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट ही है। दक्षिण मे आन्ध्रो के अभ्युदय के साथ ही कला को भी प्रोत्साहन मिला। अमरावती के महाचैत्य से प्राप्त सुन्दर प्रतिमाएं मूर्तिकला के इतिहास मे अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। वौद्ध धर्म तवतक जनता का धर्म था, अमरावती के कला-कौशल को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है। महायान संप्रदाय के प्रादुर्भाव के पूर्व वौद्ध प्रतिमाओ का निर्माण नही होता था। यही कारण था कि भरहुत मे वुद्ध के स्थान मे वज्रासन का प्रतीक बना देते थे। परन्तु कनिष्क के समय मे जव प्रथम वुद्ध प्रतिमा का निर्माण किसी यक्ष प्रतिमा के आधार पर हुआ उसके बाद तो मूर्तिकारों को एक नया विषय मिल गया और वौद्ध गाथाओ के आधार पर सुन्दर प्रतिमाएँ वनने लगी। इसके वाद इस देश का सुवर्ण युग प्रारम्भ होता है।

जिस प्रकार प्रभात का आगमन पक्षियो के कलरव से प्रतीत होता है--उसी प्रकार गुप्त काल का आगमन कालिदास के सुन्दर छन्दो और अजन्ता तथा वाघ के भित्ति चित्रों से ज्ञात होता है। गुप्त काल की कला मे सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय तो है ही साथ ही जीवन से अविच्छिन्न सम्वन्ध भी स्थापित है। अजन्ता के भित्ति चित्रो मे वर्णित वौद्ध कथाये, पुलकेशी के राजस्वकाल मे ईरानी दूत के आगमन का सुन्दर चित्र, सारनाथ की वौद्ध प्रतिमाएं, देवगढ के नर-नारायण और उदयगिरि के वाराह की मूर्ति इस काल की अनुपम देन हैं। राजघाट से प्राप्त मिट्टी के खिलौने लोक-जीवन के अध्ययन मे वडी सहायता देते हैं। उस समय की मुद्राओ मे चित्रित सम्राट् समुद्रगुप्त अपने विभिन्न रूपो मे दिखाई देते हैं; यह इस वात का द्योतक है कि राजाओ मे भी कला के प्रति कितनी उदार भावना थी। हूण आक्रमण के वाद जव गुप्तो की नीव कमजोर होगयी तव भारत भिन्न-भिन्न राज्यों मे विभाजित होगया, जिससे कला मे सर्वदेशीय न होकर स्थान विशेष के गुण आ गये। मध्ययुगीन संस्कृति ने जितना भी आकर्षण एकत्र किया वह गुप्त काल का ही परिमार्जित रूप है। इस युग का अवसान राजपूत शक्तियों के अभ्युदय के साथ ही हुआ।

मध्ययुग के राजवंशों मे स्थानेश्वर के मौखरि, वादामी के चालुक्य, मानखेड के राष्ट्रकूट, भिन्नमाल के गुर्जर-प्रतिहार, खजुराहो के चंदेल और त्रिपुरी के कलचुरि तथा धार के परमार प्रमुख राजपूत वंश है। इनके नाम के साथ ही मध्ययुगीन कलाओ का नामकरण हुआ। वास्तुकला मध्ययुग मे वहुत पनपी और आज भी सुन्दर-सुन्दर मन्दिर उस युग की झांकी दिखलाते है। मध्य काल की इस प्रगति मे "चेदि" देश भी पीछे नही रहा। यहा भी कला की ओर रुझान आरम्भ हुई। नर्मदा और यमुना के वीच के कछार को चेदि देश कहते हैं। यह पुराणो मे डाहल मंडल के नाम से भी, प्रख्यात है :—

"अस्ति विश्वंभरा सारः कमला कुल मन्दिरम्।
भागीरथी नर्मदयोर्मध्ये डाहलमण्डलम्॥"

कालातर मे इसके दो भाग हुए जो क्रमशः "जेजाकभुक्ति" तथा "भट्टविल" कहलाये। जेजाक भुक्ति आधुनिक वुन्देलखण्ड है —और भट्टविल वघेलखण्ड। वैसे तो चेदि देश में महाभारत काल मे शिशुपाल राज्य करता था परन्तु शुग काल मे शुगो के एक मांडलिक धनभूति रीवा के पास राज्य करते थे। भरहुत के विहार मे इनके कई अभिलेख प्राप्त होते है। गुप्त काल में चेदि देश परिव्राजक महाराजाओ के अधिकार मे था। ये गुप्तो के माडलिक थे। इनके समय मे यहां के कला-कौशल की अत्यधिक उन्नति हुई। इस काल के कुछ अवशेष आज भी उपलब्ध है। भूमरा का शिव मन्दिर तथा तिगवा का देवालय गुप्तकाल के उत्कृष्ट शिल्पो मे से है। कलचुरियो के सत्तारूढ़ होते ही चेदि देश

में नवीन जाग्रति के दर्शन होते हैं। ये अपने साथ एक नवीन पाशुपत धर्म लेकर आये जिसके आचार्यों ने जगह-जगह देवालय और शिव मूर्तियां स्थापित कीं। इन्हीं आचार्यों के प्रोत्साहन के कारण सम्पूर्ण चेदि देश में शैवधर्म का सिक्का जम गया। शैव धर्मावलम्बी साधुओं का सम्पूर्ण मध्ययुगीन राजसत्ता में बहुत बड़ा हाथ था जो कि मुसलमानों के आगमन के पश्चात ही समाप्त हुआ। ये आचार्य भिन्न भिन्न देशों से बुलाये गये थे इसीलिये प्रशस्तियों में लाट, गौड, केरल इत्यादि देशों के नाम आते हैं। यही कारण है कि इस देश की कला-कृतियों पर एक विशिष्ट सम्प्रदाय की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। कलचुरि कला कोई विशेष संदेश लेकर समाज के समक्ष नहीं आयी। उसमें तत्कालीन मानव का दिग्दर्शन उसके नैसर्गिक रूप में प्राप्त होता है। नख शिख से अलंकार पूर्ण यक्ष व यक्षिणियों की प्रतिमायें प्रान्त के कोने-कोने में किसी वृक्ष के नीचे या खेर माई नाम से पड़ी मिलेंगी। मन्दिरों और मठों के निर्माण में चेदि देश किसी से पीछे नहीं रहा। बिलहरी स्थित नोहलेश्वर का मन्दिर, सोभाग्यपुर का विराटेश्वर का मन्दिर, अमरकंटक के केशव नारायण के मन्दिर और भेड़ाघाट स्थित चौंसठ योगिनी का मंदिर कलचुरि कला के ज्वलंत उदाहरण हैं। इन मन्दिरों को जब केनिंघम ने प्रथम बार देखा था तब अन्य शिल्पों से उनकी भिन्नता देखकर उसने इनका नामकरण "कलचुरि शिल्प" ही किया था। इनका निर्माण भी एक विशेष शिल्प पद्धति के आधार पर हुआ था जिससे वही समानता जबलपुर से लेकर विन्ध्यप्रदेश तक पायी जाती है। कलचुरि शैव मतावलम्बी थे अतः यहां शिव मंदिरों का ही बाहुल्य है। इनकी भव्यता इससे ही प्रतीत होता है कि रीवा नरेश ने अपने महल के द्वार पर गुरजी के शिवालय के तोरण ही लगवाये हैं जिनका सौंदर्य देखकर आज भी लोग दांतों तले अंगुली दबाते हैं। मूर्ति निर्माण में मध्ययुगीन संस्कृति को जितना योगदान कलचुरि और चन्देल शिल्प ने दिया है उतना किसी अन्य ने नहीं। यहां की श्रेष्ठतम प्रतिमाएं निरीह काल की चुनौती स्वीकार करती हुई मौन धारण किये यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं। जिन कतिपय विषयों को छूकर कलचुरि शिल्पकार ने आत्मा उँडेल दी है, वे इस प्रकार हैं —

उमा-महेश्वर, विष्णु, कार्तिकेय, वाराह, यक्ष-यक्षिणी, योगिनी, सप्त मातृका और गणेश इत्यादि।

लोक में फैली हुई बौद्ध और जैन धर्म की असंख्य मूर्तियां या तो धरातल पर ही अथवा मेदिनी के अमर क्रोड से आज भी बाहर निकलती आ रही हैं। इनमें तीर्थंकर, उनकी साधना में लीन यक्ष और यक्षिणियां और जैन वाङ्मय में वर्णित विषय मूर्तिमान किये गये हैं। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत बुद्ध, बोधिसत्व, तारा और वज्रयान से संबंधित अन्य देवी-देवता भी शिल्पकार की तीक्ष्ण दृष्टि से बचे नहीं हैं। इस प्रकार सभी धर्मों का समन्वय इस प्रान्त की विशेषता है।

उमा-महेश्वर—उमा-महेश्वर की सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतिमा भेड़ाघाट स्थित चौंसठ-योगिनी के मंदिर में है। यहां शिव पार्वती से परिणय कर प्रसन्न मुद्रा में लौट रहे हैं। दोनों नन्दी द्वार पर आसीन हैं और नीचे तूणव, वेणु, मृदङ्ग,आदि, वाद्यों का आयोजन है। गुरजी जो सिहोरा से तीन मील की दूरी पर है, वहां भी शिव-पार्वती की एक सुन्दर प्रतिमा है। रीवा से आठ मील दूर एक अन्य गुरजी में भी शिव-पार्वती की विशालकाय मूर्ति पड़ी है।

वाराह—वाराह की सुन्दरतम प्रतिमा मझौली के विष्णुवाराह के मंदिर में है। काले पत्थर की यह सुन्दर मूर्ति मूर्तिभंजकों की कृपापात्र न बन सकी और अभी भी पूजी जाती है। इसी प्रकार के खंडित सुन्दर वाराह पनागर और बिलहरी में भी पड़े हुए हैं।

कार्तिकेय—कार्तिकेय की एक सुन्दर प्रतिमा जिसके हाथ खंडित हो गये हैं, वर्तमान तेवर की खेरमाई में पड़ी है, जो कला की दृष्टि से ग्यारहवीं शताब्दी की प्रतीत होती है। इतनी सुन्दर प्रतिमा अन्य किसी स्थान में देखने में नहीं आती।

यक्ष और यक्षिणियों की सैकड़ों प्रतिमाएँ चेदि देश के अंतर्गत मिलती हैं। यक्षों की पूजा का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव जाति का। इसी लिये यक्षों की पूजा, अनादि काल से चली आ रही है। त्रिपुरी में वेणुवादिनी, सुदर्शना, नागी इत्यादि कई प्रकार की यक्षिणियों की प्रतिमाएँ रखी हैं। बिलहरी के आधुनिक मंदिरों

त्रिपुरी में उपलव्ध सुदर्शना यक्षिणी

कटनी में प्राप्त 'विष्णु' प्रतिमा

त्रिपुरी मे प्राप्त 'उमा-महेश्वर'
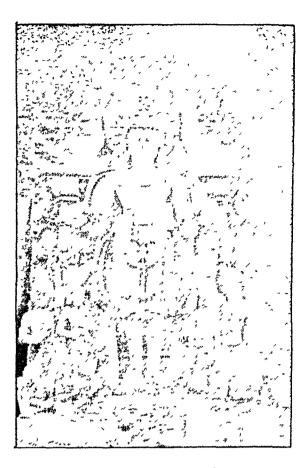
पुरवा में उपलव्ध 'पद्मासना' लक्ष्मी

में भी कई यक्षिणियो की प्रतिमाएँ रख दी गई ह । विन्ध्य प्रदेश के सोहागपुर स्थान के ठाकुर साहब के घर में भी सुन्दर यक्षिणियो की प्रतिमाएँ सग्रहीत हैं, जिनमें जैन शासन देविया भी सम्मिलित ह ।

विष्णु—विष्णु की एक अत्यत मनोहर प्रतिमा कटनी नदी के किनारे मगुरहा घाट से प्राप्त हुई है। सिहोरा के पास गुरजी में विष्ण की एक अत्यत आकर्षक आदमकद प्रतिमा है, जो काली माई के नाम से पूजी जाती है। विष्णु की अधिकाश प्रतिमाओ में उनके दशावतार बडे ही सुन्दर रूप से बनाये गये हैं। अनन्तशायी शेषशायी विष्णु की कई सुन्दर प्रतिमाएँ विन्ध्य प्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानो से प्राप्त हुई हैं। विन्ध्य प्रदेश के सौभाग्यपुर और जबलपुर के बिलहरी स्थान में अवस्थित इन सुन्दर प्रतिमाओ में यहा के कलाविदो की कार्य-कुशलता एव सजीवता का परिचय दिया गया है।

त्रिपुरी में, भारत में प्रथम बार गाथा सप्तशती की एक गाथा के आधार पर निर्मित एक पाषाण प्रतिमा मिली है, जिस पर पूरी गाथा चित्रित है। यह विलक्षण प्रतिमा अनिर्णीत अवस्था में बरसो पडी रही। इसके नीचे लिखे अभिलेख के पढे जाने पर ही यह भेद खुला। यह अभिलेख इस प्रकार है —

" अलि अप सुत्त अविणि मीलि अई दे मूह अमूह उवास गड परिउम्ब पुलइ अगण उणे चिराइस मम् " ।

सपूर्ण चेदि देश के अतर्गत जैन सम्प्रदाय एक जीवित धर्म के रूप में दिखाई देता है। जैन तीर्थंकरो और शासन देवियो की अगणित प्रतिमाएँ आज भी प्राप्त हो रही है। आमा हिनौता से नेमिनाथ की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसके साथ उनके यक्ष और यक्षिणिया गोमेध और अम्बिका ह। सोहागपुर के ठाकुर साहब के यहा सैकडो जन प्रतिमाएँ सग्रहीत है। अधिकाश तो निरूपण ही ठीक तरह से नही हो पाया है।

बौद्ध प्रतिमाएँ—ह्यूनत्साग ने त्रिपुरी में सातवी शताब्दी में जीवित बौद्ध धम देखा था। सातवी शताब्दी के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में वास्तविक धम का लोप हो गया और उसके बदले मन्त्र-तन्त्र की परम्परा ने जन्म लिया। यह पतन केवल बौद्ध धम के साथ ही नही, वरन् अन्य धर्मों के साथ भी हुआ, परन्तु बौद्धो में वज्रयान, सहजयान, मन्त्रयान तथा कालचक्र यान के नाम से कुछ विचित्र परम्पराय आयी, जिसके अन्तगत हजारो नये देवी देवता बने और गुह्य साधना का क्रम आरम्भ हुआ। त्रिपुरी के पास गोपालपुर में अवलोकितेश्वर और तारा की सुन्दर मूर्तिया प्राप्त हुई ह। स्वय त्रिपुरी में बोधिसत्त्वो की बहुत सुन्दर प्रतिमायें पायी जाती हैं, जिनमें बौद्धो का बीज मन्त्र भी खुदा हुआ ह।

इस प्रकार भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में चेदि शिल्प अपना विशिष्ट स्थान रखता है, यद्यपि पुरातत्त्ववेत्ताओ की दृष्टि में इसका योगदान नगण्य है, परन्तु वास्तविक रूप से विचार किया जावे तो यही प्रतीत होता है कि केवल "राखालदास बनर्जी" को छोड कर अन्य किसी विद्वान् ने इस ओर दृष्टिपात ही नही किया। उसका परिणाम यह हुआ कि चेदि शिल्प अधकार के आवरण में विलीन हो गया। इतिहास निर्माताओ की नयी पीढी अवश्य इस दिशा में प्रयत्नशील होगी और चेदि कला को भारत की अन्य कलाओ के साथ समान स्थान प्राप्त होगा।

महाकोशल में प्राप्त ताम्र तथा शिलालेखों की संस्कृत रचना

श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय

रायपुर, विलासपुर और सम्बलपुर—ये तीन जिले सन् १६०५ के पहले मध्यप्रदेश के "छत्तीसगढ विभाग" में सम्मिलित थे। वर्तमान 'दुर्ग' का जिला रायपुर जिले में एक तहसील के रूप में था। सम्बलपुर जिले मे सोनपुर देशी राज्य (स्टेट), पटना देशी-राज्य, वामण्डा या वामरा देशी राज्य आदि लगते थे। ये सब भू-भाग महाकोशल के हृदयदेश या मध्य एवं मुख्य अञ्चल में गिने जाते थे। इसी* सीमा के भीतर (अर्थात् सिहावा (राजिम) से लेकर वैद्यनाथ (सोनपुर) पर्यन्त) महाकोशल की राजधानी श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर गाव, जहा डाक्टर एम. जी. दीक्षित ने अपनी खुदाई मे प्राप्त ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में लाये हैं कि समस्त भारतवर्ष के पुरातत्त्व एव इतिहास के विद्वानो का ध्यान उस ओर आर्कषित हो उठा है)। शिवरी नारायण, नन्दपुर कोसीर, स्वर्णपुर या सुवर्णपुर (वर्तमान सोनपुर नगर—उड़ीसा), ययाति नगर, विनीतपुर, वामण्डापाटि, "किसरकेल्ला," मूरसीमा, महाविजय कटक, तुम्माण, रत्नपुर आदि अवस्थित थे।

"मूरसीमा" से एक ताम्र-शासन त्रिकलिङ्गाधिपति महाराज महाभवगुप्तराज जनमेजयदेव के शासन के ८ वे वर्ष मे प्रचारित किया गया था। उसके प्रारम्भिक अंश की रचना देखिए—

ॐ स्वस्त्यनेक वर विलासिनी चरणनूपुररवोद्भ्रान्त मत्त पारावत कुलात् सकल दिगन्तरागत वन्दि जन विस्तारित कीर्त्ते : श्रीमतो मूरसिम्नः ।।†

यह "मूरसीमा" उड़ीसा के पटना राज्य मे है।

ॐ स्वस्ति। सुवर्णपुर समावासित श्रीमतो विजयस्कन्धावारात्।

सुवर्णपुर में विजय-स्कन्धावार से एक दान पत्र दिया गया था।

अब "ययाति नगर" की प्रशंसा में कवित्वपूर्ण पद्य रचना के साथ-साथ महाकोशल की जनमनमोहिनी, जीवनदायिनी चित्रोत्पला महानदी ‡ का भी नामोल्लेख देखिए—

स्वस्ति-प्रेम निरुद्ध मुग्ध मनसो स्फारी भवच्चक्षुषोर्यूनो यत्र विचित्र निर्भर रत क्रीड़ाक्रमं तन्वतो।
विच्छिन्नोऽपि कृताति मात्र पुलकै राविर्भवत् सीत् कृतैराश्लेषैः ग्लपितवलमैः स्मररसः कामं मुहुस्ताव्यते ।।१।।

---

* सोनपुर से वेल नदी के तट पर २० मील दूर वैद्यनाथ मे कोसलेश्वर का विशाल प्राचीन मन्दिर है।

† "सुतल्लमा" ग्राम दान वाला ताम्र शासन.—'म. को. हि. सोसायटीज पेपर्स', जिल्द २, पृष्ठ ३३।

‡ डा. दिनेशचन्द्र सरकार द्वारा सम्पादित "महादा प्लेट्स आफ सम स्वरदेव" २३ वर्ष, मे चित्रोत्पदा नाम महानदी के स्थान पर आता है—

"यस्यावरोधस्तन चन्दनानां प्रक्षालनाद्वारि विहार काढो"
चित्रोत्पला स्वर्णवती गताऽपि गङ्गोर्मिसंसक्त मिवा विभाति ।।
इस ताम्रलेख का समय सन् ११५५—११८० ही मे पड़ता है।

यत्रान्येप विनेप रूपमहिमा पास्तास्पर कान्तिभि
जातेर्ष्या कलहेष्वपि प्रणयिन कर्णोत्पलैस्ताडिता ।
जायन्ते प्रविशान्ति स्मरशर प्रोत्यापिता तव्यैया
सान्द्र स्वेद जलावसेचन वशान्निर्यात रोमाङ्कुरा ॥२॥

अत्युत्तङ्ग करीन्द्र दन्तमुसले प्रोदभासिरोचिश्चयै
ध्वान्त ध्वसन निष्फलीकृत शरच्चन्द्रोदयै सर्वदा ।
यत्रासीदसतो जनस्य विहार मुक्तामय मण्डनम्
सकेतास्पदमप्यतीव धवल प्रासाद शृङ्गाग्रत ॥३॥

महानदी-तुङ्ग-तरङ्ग-भङ्ग-स्फारोच्छलच्छीकरवर्षिरारात
यस्मिन रतासक्ति मदङ्गनाना श्रमापनोद क्रियते मरुद्भि ॥४॥

तस्मात श्रीययातिनगरात् ॥

इस श्रृङ्गार-वैभव-विचित्रीकृत ययाति नगर के सस्थापक सोमवश सभूत श्री महाभवगुप्त जनमेजय राज देव के उत्तराधिकारी एव सत्पुत्र "स्वपितृ पादानुध्यात

परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोमकुलतिलक त्रिकलिङ्गाधिपति श्रीमहाशिवगुप्त ययातिराजदेव थे, जिनको उत्कल के इतिहासज्ञ "ययाति केसरी" की आख्या प्रदान करते है ।

कहा जाता है कि कोसलेन्द्र* ययातिराजदेव स्वय उच्च कोटि के सस्कृतज्ञ एव प्रतिभावान् सुकवि थे । उद्धृत श्लोको की रचना सभवत उन ही के द्वारा की गई थी । कोसल रत्नमाला के "प्रशस्तिकृत कवय " में यह श्लोक मिलता है—

चित्रोत्पला चरण चुम्बित चारुभूमौ श्रीमान् कलिङ्ग विषयेषु ययातिपुर्याम् ।
ताम्रे चकार रचना नृपति र्ययाति श्रीकोसलेन्द्र इति नामयुत प्रसिद्ध ।

ऊपर जिन ताम्र-लेखो के उद्धरण दिये गये है, उनकी लिपि "कुटिल नागरी लिपि" है । ताम्रलेखो का समय सन् ईस्वी ६०० और १,००० के आस पास निर्धारित किया गया है ।

कुछ महीने पूर्व विलासपुर जिले के चन्द्रपुर तालुक के अडभार ग्राम में एक ताम्रशासन के तीन पत्र प्राप्त हुए थे। इनके अध्ययन का अवसर मुझे प्राप्त हुआ था । उस ताम्र लेख में "अडभार" ग्राम का नाम "अष्टद्वार" लिखित है । उसका प्रथम वाक्य देखिये—

ॐ स्वस्ति श्रीपुरात् । अनेक जन्मा तराराधितभगवन्नारायण भट्टारक पाद प्रसादित-नय-विनय-सत्य त्याग शौर्यादिगुणसम्पत् सम्पादित प्रथम पृथ्वीपति प्रभाव परिभावि सम्भावनस्य भावनाभ्यास प्रकाशीभूत निर्मलनय शशिन शशिवशभूते स्वभुजपराक्रमोपार्जित सकल कोसलादि मण्डलाधिपत्य प्राप्त माहात्म्यस्य श्रीमहाशिव तीवरराजस्य प्रद्युम्न इव कैटभारे रात्मज सच्चरितानुकरणपरायण प्राप्त सकल कोसला मण्डलाधिपत्य परम वैष्णवो माता पितृपादानुध्यात श्रीमहानन्नराजकुशली ।

---

* प्रणीत कोसलेन्द्रेण प्रतिबोध्य महत्तमम् ।
श्रीदत्त पुण्डरीकाक्ष शासन ताम्र निर्मितम् ॥

एव अन्य प्रशस्ति रचनाकार का नाम था, श्रीसिहदत्त, जो महाभवगुप्त भीमरथ महाराज के "महासन्धिविग्रहिक" के पद को सुशोभित करते थे ।

यह तो उत्कल कोसलाधिप महानन्नराज के दान-पत्र की रचना का एक अंश है। अब इनके पिता महाशिव तीवरराज के "राजिम" वाले ताम्र-शासन की भाषा और रचना-शैली पर विचार कीजिए—

......विविध रत्न संभार-लाभ-लोभ विजृम्भणारिक्षार-वारि-वाड़वानलः चन्द्रोदय इवाकृतकरोद्वेग : क्षीरोद इवाविर्भूतानेकातिशायि-रत्न-सम्पत् गरुत्मान् इव भुजङ्गोद्वारचतुरः ..... प्रसन्नयौवनेन चालङ्कृत : स्वामी भवन्नप्य बहुलेपनोनुज्भित : कुतृष्णोपि नितान्त त्यागी, रिपुजन प्रचण्डोऽपि सौम्यदर्शन : भूमि विभूषणोप्य परुष स्वभाव : .... असन्तुष्टो धर्म्मार्जिने न सम्यल्लाभे स्वल्पः-क्रोधे न प्रभावे, लुब्धो यशसि न परवित्तापहारे, सक्त : सुभाषितेपु न कामिनीक्रीड़ासु प्रतापानलदग्ध शेषरिपुकुल तूल-राशि : .... प्राप्त सकल कोसलाधिपत्य : .... परमवैष्णवो मातापितृ पादानुध्यातः श्री महाशिव-तीवरराजः कुशली ।।

आगे श्रीपुर के उदार चरित शासक महारानी वासटा के सत्पुत्र रत्न परम माहेश्वर महाशिव वालार्जुन के ताम्र-शासन का प्रथम वाक्य उद्धृत किया जाता है :—

"ॐ स्वस्त्यशेष क्षितीश विद्याभ्यास विशेषासादित महनीय विनयसम्पत् सम्पादित सकल विजिगीपुगुणो गुणवत्समाश्रयप्रकृष्टतर शौर्य प्रज्ञा प्रभाव संभावित महाभ्युदय : कार्त्तिकेय इव कृत्तिवाससो राज्ञ : श्रीहर्षदेवस्य सुनू : सोमवंशसम्भवः परममाहेश्वर मातापितृपादानुध्यात श्री महाशिवगुप्तराज : कुशली ।।"

इन सब ताम्रलेखो की लिपि सन्दूकनुमा 'वाक्स-हेडेड' या वाकाटक लिपि है, जैसा कि अड़भार वाले ताम्र लेख की छाप से ज्ञात होगा। इन लेखो का समय ६००–७०० सन् ईस्वी के आसपास है। खेद है, इन ताम्रलेखों के रचयिता गण के नाम अज्ञात है, पर इतना तो स्पष्ट है कि "वन पर्वत गिरिदरी सरित पूरित" दक्षिण कोसल की भूमि अच्छे संस्कृतज्ञ कविकोविदों से विरहित न थी। संस्कृत विद्या देवी के भक्त उपासक यहां भी ऐसे उच्चकोटि के थे, जिनकी लेखन कुशलता महाकवि दण्डी और वाणभट्ट की शैली की याद दिलाती है।

दो-तीन शिला-लेखो मे हमें प्रशस्तिकार कवियों के नाम मिलते है। वे है—

(१) चिन्तातुराङ्क ईशान, सन् ईस्वी ७००।
(२) भास्कर भट्ट, सन् ईस्वी ६००।
(३) श्री तारदत्तात्मज सुमङ्गल।
(४) नारायण सत्कवि : सन् ईस्वी १,२००।

इन सब की पद्यवद्ध रचनाएँ शिला-लेखों में अब तक सुरक्षित है, जिससे उनके संस्कृत भाषा एवं साहित्य ज्ञान का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। इन चारो कवियों की कृतियां रायपुर तथा नागपुर के संग्रहालयो मे सुरक्षित शिला-लेखो में पाठक देख सकेगे।

यहां मै अभी हाल की श्रीपुर की खुदाई मे डाक्टर मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित द्वारा प्राप्त कुटिल लिपि मे संस्कृत भाषा में लिखित सुमङ्गल कवि का एक पद्य उद्धृत करता हूँ। इन तारदत्त के सुपुत्र कवि सुमङ्गल द्वारा रचित एक अन्य शिलालेख भी इसी लिपि में सिरपुर के गन्धेश्वर मन्दिर में है।

सुमङ्गल कवि महाशिवगुप्त वालार्जुन के शासन काल में विद्यमान थे, जैसा कि नूतन आविष्कृत भिक्षु आनन्द-प्रभ द्वारा स्थापित "विहार कुटी" की चौदह पंक्ति वाली प्रशस्ति से ज्ञात होता है।

सुकवि सुमङ्गल जी लिखते हैं—

धवल कुल कमल भानौ भूभृति भूपाल मण्डवी तिलके।
प्रतिपक्ष क्षतिदक्षो रक्षति बालार्जुने क्षोणिम् ।।

उस प्रशस्ति का अन्तिम श्लोक यह है—

सुमनोनुगतामेता चक्रे स्रजमिवो (ज्ज्वला)
सूनुः श्रीतारदत्तस्य प्रशस्ति श्रीसुमङ्गलः ॥

ईशान बडे शानदार कवि थे, ऐसा उनकी पद्य रचना व्यक्त करती है। ये महाशिव बालार्जुन की माता, मौखरी-नरेश श्री सूर्यवर्म्मा की पुत्री तथा "प्राक् परमेश्वर" विशेषण से विभूषित कोसलाधिप श्रीहर्षगुप्त महाराज की महारानी को अपनी प्रतिभा से अमर कर गए हैं। "चिन्तातुराङ्क" उनकी उपाधि थी, ऐसा अनुमान किया जाता है—

इति व प्रशस्तिकार कवि स चिन्तातुराङ्क ईशान
यत्पालनायमययति पार्थिवास्ता स्थिति श्रृणुत ॥ श्लोक २४।

महारानी "वासटा" पर शिला लेख में जो श्लोक है, वह यों है—

तस्योरुजन्यजयिनो जननी जनानाम् ईशस्य शैलतनयेव मयूरकेतो ।
विस्मापनी त्रिबुध लोकधिया बभूव श्री वासटेति नरसिंह तनो सटेव ॥ श्लोक १५।

सुकवि भास्कर भट्ट ने शिलालेख का श्रीगणेश धनुधर जिन की जय मनाते हुए किया है। यथा—

अनुत्तर ज्ञान चाप-युक्त मैत्री शिलीमुख
जयत्यजय्य जानीक जयी जिन धनुर्धर ॥ श्लोक १।

भट्ट भास्कर के शिलालेख में पहले एक "सूर्यघोष" नामक शासक का वर्णन है। (श्लोक ५)। बाद में १६ वें श्लोक में पाण्डव वंश के उदयन नामक राजा का उल्लेख है—

गच्छति भूयसि काले भूमिपति क्षपित सकल रिपुपक्ष
पाण्डव वंशात् गुणवान् उदयन नामा समुत्पन्न ॥१६॥

—भवदेव रणकेसरी का भान्दक वाला शिलालेख।

ज्ञात होता है, यही "उदयन" इन्द्रबल के पिता थे, जिन्हें सोम या पाण्डुवंशीय महाकोशल के राजाओं का आदि पुरुष मानना चाहिये।

अब नारायण सत्कवि का परिचय देकर हम अपनी लेखनी को विश्राम देते हैं—

श्रीवत्सश्चरणाब्ज पूजनमतिर्नारायण सत्कवि
श्रीरामाभ्युदयाभिध रसमय काव्य स तद्यो व्यधात
स्मृत्यारूढ यदीय वाक्य रचना प्रादुर्भवन्निर्भर
प्रेम्णोल्लासित चित्तवृत्तिरमुचत् वाग्देवता वल्लकीम् ॥ श्लोक ४३।

—सारगढ़ राज्य के पुजारीपाली में प्राप्त गोपालवीर का शिलालेख।

छत्तीसगढ़ की प्राचीन शासन व्यवस्था

श्री बलदेवप्रसाद मिश्र

मध्यप्रदेश का छत्तीसगढ प्रान्त ही एक ऐसा स्थल है, जहा प्राचीन काल की शासन व्यवस्था अर्वाचीन काल तक चलती आई है। न तो वहा कभी मुसलमानो का आधिपत्य हो पाया और न अंग्रेज़ों के आने के पहले अन्य किसी विदेशी शक्ति का। गोंडों का भी वहा एक छत्र साम्राज्य नही होने पाया यद्यपि उनके छोटे-छोटे राज्यों की सख्या इस क्षेत्र मे बहुत हो गई थी। जिन कलचुरियों ने यहा अनेक शताब्दियों तक शासन किया, उन्होने ऐसी कोई प्रथा नही चलाई, जो विदेशी अथवा विजातीय आक्रमणकारियों को अभीष्ट रहा करती है। अतएव प्राचीन आर्यो की जो शासन-व्यवस्था रही है और प्राचीन अनार्यो की भी जो शासन-व्यवस्था रही है, उन दोनों के अवशेष इस प्रान्त मे बने ही रहे। यह प्रान्त आर्य और अनार्य, दोनो ही संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है, यह तो प्रसिद्ध है ही। दोनों की सम्मिलित संस्कृति की जो परम्परा इस प्रान्त मे स्थापित हुई, उसकी जड़े उखाडने का किसी ने प्रयत्न नही किया। अतएव वे इतनी गहराई तक चली गई है कि अंग्रेज़ी-काल की पराधीनता मे भी वे निर्जीव न हो पाई और आज स्वातंत्र्य के उन्मुख वातावरण में वे फिर लहलहाने को उद्यत है।

बाहर से आया हुआ आक्रमणकारी स्वभावतः ही अपनी शक्ति और अपने स्वार्थ की वृद्धि चाहता है। वह शासित वर्ग को अपने से भिन्न मान कर उसके शोषण के लिये नये-नये उपाय निकालेगा, नये-नये व्यक्तियो की नियुक्ति करेगा। वह शासित वर्ग के द्वारा लगाये गये किसी प्रकार के अंकुश को सहन करना न चाहेगा। अपनी इस निरंकुशता के लिये वह परम्परागत स्थानीय ग्राम वृद्धो की अपेक्षा नवागन्तुक वेतनजीवी भृत्यों पर अधिक भरोसा रखेगा। एक शब्द मे यह समझिये कि वह शासन का केन्द्रीकरण चाहेगा, न कि विकेन्द्रीकरण। छत्तीसगढ में यह बात रही ही नही। कलचुरियों के ज़माने मे भी नही। आर्यो और अनार्यो, दोनो ही की परम्परा में ग्राम-वृद्धों का बड़ा मान रहा है और उनके ज़िम्मे न केवल अनेकानेक राजकीय किन्तु अनेकानेक सामाजिक निर्णय भी निर्भर रहा करते रहे है। राजा या भूमि स्वामी को भी प्रायः उन्हीं के निर्णयो का आश्रय लेना पड़ता रहा है। ग्राम-पचायत की यह प्रथा सनातन काल से चलती हुई कलचुरियों के समय भी विद्यमान रही और इस दृढता के साथ विद्यमान रही कि कलचुरियो के बाद भी वह मिटाई न मिट सकी। गणतंत्र पद्धति की यह एक महत्वपूर्ण प्रथा है, जिसके इस रूप में दर्शन एकतत्र शासन-पद्धति मे दुर्लभ ही है।

राजा के अधिकार सामन्तो को और सामन्तो के अधिकार ग्राम प्रमुखो को, जिस हद तक छत्तीसगढ़ मे वितरित थे, वैसे न तो उड़ीसा की रियासतों और न राजस्थान की ही रियासतों के इतिहास मे उल्लिखित है। ये अधिकार कवल राजकीय अधिकार ही न थे। वे सामाजिक समस्याओ सम्बन्धी अधिकार भी थे। अधिकार-वितरण की इस व्यवस्था को सामन्त-शाही व्यवस्था कहना असंगत होगा। व्यवस्था यह थी कि राज के अन्तर्गत गढ़ अथवा जिले हो और गढ़ों के अन्तर्गत तालुक़े अथवा तहसीले तथा तालुकों के अन्तर्गत गांव रहें। कलचुरि काल मे गढाधीशों को दीवान अथवा ठाकुर कहा जाता था और तालुक़ाधीशो को दाऊ तथा ग्राम-प्रमुख गौंठिया। यह भी अक्सर होता रहा है कि राजा के कुटुम्बी प्रायः दीवान होते रहे है और दीवानों के सम्बन्धी गौंठिया बन जाते रहे हों। परन्तु ये लोग वेतनभोगी भृत्य कभी माने ही नही गये। संकट काल में अपने अधिपति को सहायता देना इनका नैतिक कर्तव्य था, परन्तु सामान्य काल मे अपने-अपने क्षेत्र में सब प्रायः स्वतंत्र सत्ता ही रखते थे। वे "ग़ैर-हाज़िर भू-स्वामी" अथवा मुनाफाखोर

परावलम्बी बन कर नहीं रहा करते थे, किन्तु अपने निवास क्षेत्र के भूस्वामित्व का दायित्व स्वत सभालते थे और इस प्रकार भूमि और भूमिजना की समस्याओ से अपना प्रत्यक्ष सम्पर्क बनाए रखते थे। यह क्रम राजा से लेकर गौंठिया तक बराबर बना रहता था। सामन्तशाही में इस तरह का प्रबन्ध कहा? वह तो केवल युद्धशक्ति के आधार पर आत्म रक्षा के लिये गढी हुई व्यवस्था का ही दूसरा नाम ह। अशक्त लोग सताए न जा सकें, इसलिए वे सशक्तो का सहारा जिन शर्तों पर ढूढा करते ह, उन्ही ने सामन्तशाही प्रथा को जन्म दिया ह। छत्तीसगढ की जन जातिया अपने में स्वत पूर्ण रही ह और उनका सामाजिक जीवन भी किसी विशेष सरक्षण का मुखापेक्षी हो ऐसा कभी हुआ नहीं। अत एव यहा की शासन प्रथा एकदम सामन्तशाही प्रथा बन ही न पाई।

शासन की यह व्यवस्था धार्मिक विश्वासो से आबद्ध थी, अतएव इसके खिलाफ बगावत का किसी के मन में विचार भी न उठता था।। समझ लिया जाता था कि राज की सारी जमीन का मालिक राजा है, जिसकी जिम्मेदारी है कि वह अपने राज म बसने वालो का हित उस राज के मुखियों की सलाह से करे। जो समझ राजा के सम्बन्ध में थी, वही अपने-अपने क्षेत्र के दीवानो (ठाकुरो), दाउओ और गौंठियो के सम्बन्ध में उसी अनुपात मे थी। अपने अपने क्षेत्र में इन लोगो के अत्याचार भी, इस विश्वास के कारण, प्राय चुपचाप सह लिये जाते थे और इन्ही के द्वारा न केवल अपने राजकीय मामलो का किन्तु अपने सामाजिक और धार्मिक मामलो का भी निपटारा करवाया जाता था। परन्तु जनता की पचायतें इन शासको को मर्यादा के बाहर होने ही न देती थी, क्योकि शासको के पास उनके वेतनिक कर्मचारी नही के बराबर रहा करते थे और उन्हें शासन सम्बन्धी प्राय प्रत्येक कार्य मे पन्चायत के आश्रित रहना पडता था। अतएव शासन मनमाना निरकुश हो ही नही सकता था। यदि जनता कहती थी कि "राजा करें सो न्याय पासा परै सो दाव" तो राजा भी समझता था कि "पच सने ही कीजै काज, हारे जीते न आवै लाज।" इस प्रकार की शासन-व्यवस्था अत्यन्त सादगी से भरी होते हुए भी जीवन के विविध क्षेत्रो में अत्यन्त व्यापक रूप से फैली हुई थी और फिर भी मजा यह कि एक एक ग्राम अपने को एक स्वतत्र इकाई मानता हुआ अपने ढग पर अपना जीवन-यापन करता रहता था। विकेन्द्रीकरण का चमत्कारिक रूप था उसमें।

गाव-गाव, तालुके-तालुके या जिले जिले (गढ-गढ) मे शासन के अलग-अलग विभाग नही रहा करते थे। जो मुखिया होता था, वह युद्ध का भी मुखिया, रक्षा का भी मुखिया, न्याय निर्णय का भी मुखिया और राजस्व वसूली का भी मुखिया होता था। वह परम्परा का प्रवर्तक नहीं किन्तु परम्परा के अनुसार कार्य-सचालक मात्र समझा जाता था। परम्परा का सृजन तो होता था जातीय पचायतो द्वारा। जनतत्रीय पद्धति का प्राधान्य इसी में तो है। मुखिया व्यापक क्षेत्रो का मुखिया होते हुए भी इसी जनतत्रीय परम्परा के कारण अपनी सत्ता का उपयोग बहुत कम मात्रा में कर पाता था। यह जरूर है कि हैहयवशियो ने अधिकाश में अपने ही कुटुम्बियो और कुटुम्बियो ने अपने ही सम्बन्धियो को ठाकुर (दीवान) और दाऊ आदि के पदो पर सुविधानुसार नियुक्त कर दिया था, परन्तु ये पदधारी लोग परम्परा के अगभूत होकर ही रहे और इस तरह शासक और शासित के बीच किसी प्रकार की खाई बनने ही नही पाई। मुसलमानी, मराठी या अग्रेजी शासन के पदधारियो की तरह ये न तो अपनी प्रभुता को प्राधान्य दे सकें और न स्थान निरपेक्ष होकर अपने को इतर देशीय कहाने में गौरव मान सके। अतएव वे स्थानीय जनतत्रीय पद्धति के साथ अपने को भलीभाति समरस रख सके और दोनो में अन्तर आने ही न पाया।

मुसलमानी शासन तो यहा हुआ ही नही, इसीलिये शासन की यह विशुद्ध भारतीय परम्परा यहा बहुत वर्षों तक चलती रही। मराठो और अग्रेजो का शासन अलबत्ता रहा, जिनमें मराठो का शासन तो केवल कुछ वर्षों तक ही रह पाया था। उनकी एकतत्र साम्राज्यवादी भावना ने इस परम्परा को थोडी बहुत क्षति तो अवश्य पहुचाई परन्तु इसका समूल उन्मूलन न कर सकी। उनमें फौजी अफसर अलग थे, पुलिस अफसर अलग थे, राजस्व-वसूली के अफसर अलग थे, खानगी या खाजगी के अफसर अलग थे जिनका तबादला भी हो सकता था। छत्तीसगढ में ऐसी कोई बात ही न थी। यहा मुलाजिम वर्ग जैसी कोई वस्तु ही न थी। यदि राजस्व वसूली के लिये कोई हरकारा रख लिया

गया अथवा पंचायतो आदि की व्यवस्था के लिये कोई लिपिक पत्र या "पंज" नियुक्त कर दिया गया तो उस से मुलाजिम वर्ग नही बन जाता इन इने-गिने भृत्यो के अतिरिक्त और किसी प्रकार के भृत्य का कोई उल्लेख ही नही मिलता। यहां राजशासन का कार्य चलता था दीवानों अथवा ठाकुरो की सहायता से, जिन्हें न तो पूरे भूस्वामी ही कहा जा सकता है (क्योंकि वे परम्परागत नियमों से बधे रहते थे), और न भृत्य ही कहा जा सकता है (क्योकि उनकी भूमि जीविका परम्परागत रहती थी)। भले ही उनमे से कुछ लोग राजा के कुटुम्वी और सम्बन्धी रहे हों परन्तु अपने पद की प्रतिष्ठा तो उन्हे अपनी ही जनता के द्वारा मिला करती थी। यह छत्तीसगढ़ शासन-परम्परा की अपनी विशेष वात थी।

हैहयवंशियों के समय अठारह गढ रतनपुर शाखा के अधीन माने जाते थे और अठारह गढ रायपुर शाखा के अधीन। एक-एक गढ प्राय: चौरासी गांवों का समझा जाता था और एक-एक तालुका प्रायः बारह-बारह गांवों का। परन्तु इन संख्याओ मे सुविधानुसार कमी-बेशी हो जाया करती थी। गढ़ाधिपति या दीवान वर्ग और तालुकाधिपति या दाऊवर्ग मराठी सल्तनत में छिन्न-भिन्न होगया। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी सल्तनत मे गौठियों का राज से सीधा सम्वन्ध स्थापित होगया और मालगुजारी आदि की प्रथाए प्रारम्भ की गई। तब तक तो व्यावहारिक बात यही थी कि भूमि उसकी होती थी जो उसे जोते। यो नाम करने को गौठिया भले ही भूस्वामी कह दिया जाता था जैसे गढाधिपति अपने पूरे गढ का ठाकुर (स्वामी) अथवा राजा अपने पूरे राज्य का राजा (स्वामी) कह दिया जाता था।

किसी भी व्यवस्थित शासन पद्धति मे न तो एकदम राजतंत्र ही रहा करता है न एकदम प्रजातंत्र। राजा भी अपने सलाहकार रखता ही है जो किसी न किसी तरह प्रजा की भावनाओ का प्रतिनिधित्व किया करते है और प्रजातत्र भी किसी न किसी को शासक वनाकर ही आगे वढ़ता है। यदि प्रजा-प्रतिनिधि प्रवल हुए तो वे शासक को निरंकुश नही होने देते और जनतत्रीय प्रणाली को आगे वढाते है। यदि शासक प्रबल हुआ तो वह प्रजा-प्रतिनिधियो की अवहेलना करता हुआ, जनतंत्रीय प्रणाली के पीछे रहता है। छत्तीसगढ़ का जो इतिहास उपलव्ध है उससे यही विदित होता है कि मराठो के आगमन के पूर्व अर्थात् लगभग अठारहवी सदी तक किसी भी राजा ने अपनी प्रजा पर किसी प्रकार की संगठित प्रवलता दिखाई ही नही और न किसी प्रकार कोई संगठित अत्याचार ही किया। इसके विपरीत वे यहा की जनतंत्रीय शासन-परम्परा के अग वनकर रहने मे ही सुविधा समझते रहे। जो उनका हाल रहा वही उनके दीवानो आदि का हाल रहा। यदि एकाध व्यक्ति किसी समय अत्याचारी हो भी गया हो तो उसके वे अत्याचार व्यक्तिगत विस्तार तक ही सीमित रहे होंगे। जिन्हे लोगो ने आधी, ववण्डर भूकम्प या उल्कापात् के वरावर भी शायद न समझा हो और चुपचाप सह लिया हो। उनसे परम्परागत जनतंत्रीय व्यवस्था में कोई उलट फेर नही होने पाया।

छत्तीसगढ़ की चिर-पुरातन, ग्राम पंचायत परम्परा का अब फिर से उद्धार किया जा रहा है। इस पुनरुद्धार मे वह प्राचीन परम्परा ही अपना विकसित रूप लेकर सामने आवेगी अथवा उसका नाम लेकर उसके भग्नावशेष पर कोई नूतन प्रथा अपना आसन जमा लेगी यह भविष्य ही वता सकता है।

महाकोशल में जैन पुरातत्त्व

श्री मुनि कान्तिसागर

प्रत्येक प्रान्त की सांस्कृतिक आत्मा उन प्राकृतिक सौन्दर्य सम्पन्न खण्डहरों में बिखरी रहती है जिन पर हम सांस्कृतिक व रुचिशील कहलाने वाले साहित्यिकों की दृष्टि तक नही पडती। महाकोशल पर उपर्युक्त पंक्तियाँ सोलह आना चरितार्थ होती है। महाकोशल का सांस्कृतिक अतीत अत्यन्त उज्ज्वल व गौरवमय था। प्रकृति की स्वाभाविक छवि संस्कृति का सहारा पाकर यहां द्विगुणित हो उठी थी। यहां का जनजीवन, कला और सौन्दर्य के प्रति पूर्णत सचेष्ट जान पडता है। यहा के शासक शिल्पकला के परम उन्नायक रहे है। स्थानीय सक्षम कलाकारो ने अपनी दीर्घकाल व्यापिनी साधना द्वारा जो हृदय के भाव कठोर प्रस्तर पर उत्कीर्ण किये उनकी सुकुमार भाव-भंगिमा व रेखायें आज भी हमें उत्प्रेरित कर नवीनतम भावनाओं का संदेश देती है। कहना होगा महाकोशल की सभ्यता और संस्कृति का समुचित अध्ययन जबतक नही हो जाता तबतक भारतीय शिल्पकला का इतिहास अपूर्ण रहेगा।

किसी भी प्रान्त के कलात्मक तथ्यो की गवेषणा करते समय उस प्रान्त के निकटवर्ती भू भागस्थ अवशेषो का गंभीर निरीक्षण अनिवार्य है। उनकी भौगोलिक या राजनैतिक सीमायें राजकीय परिस्थिति के अनुसार बनती बिगडती रहती है, पर कलात्मक दृष्टि से उनका साम्य अविभाज्य है। तात्पर्य एक प्रान्तीय कलात्मक परम्परा की ऊर्जस्वल रेखायें या शैली निकटवर्ती प्रान्त के कलात्मक वातावरण को प्रभावित करती है जैसे कि महाराष्ट्र, विन्ध्य प्रदेश, भोपाल राज्य आदि भूभागस्थित कला कृतियो के प्रकाश में जब हम महाकोशल के अवशेषो को देखते है तब इनका अनुभव होता है। इन पंक्तियों के लेखक को महाकोशल एवं उसके निकटवर्ती भागो का पुरातत्त्व दृष्टया अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उस पर से वह कह सकता है कि यद्यपि महाकोशल के कलाकारों ने गुप्त शिल्प से बहुत कुछ लेकर अपने को स्वरक्षित रखा किन्तु यह भी उतना ही सच है कि उन्होने समय-समय पर होने वाले कलात्मक उपादान मूलक प्रान्तीय परम्पराओं से भी बहुत कुछ लेकर भी अपनी निजी शैली को निखारा है। शिल्प के अंकन में चाहे टैकनिक एक हो पर वह समय एवं सामाजिक परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। कभी-कभी इतना विराट् परिवर्तन हो जाता है कि उसकी मौलिकता धूमिल हो जाती है। इन पंक्तियो का अनुभव भारतीय लोक तक्षण कला के उदाहरणो में मिलता है जो आज भी भ्रष्ट संस्करण के रूप में ग्रामीण जन जीवन का आन्दोलित करता है।

महाकोशल की संस्कृति के मुख को उज्ज्वल करने वाले अवशेषो का सर्वाङ्गीण अध्ययन तो नही हो सका है। अधीत सामग्री इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि जितना इतिहास वह प्रेरणाशील और राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त अवशेषो में उद्दीपित है उससे भी कही अधिक आनन्दप्रदायक स्रोतस्विनी मिट्टी में प्रकृति की गोद में विलुप्त है। इतिहास और पुरातत्त्व के विज्ञगण भारत के इतिहास में अक्सर इस प्रान्त के प्रति सहानुभूति से काम नही लेते है, प्रत्युत वे यह सोचते है कि यह भाग बहुत प्राचीन काल से ही अनुन्नत या पश्चात् पद रहा है। मेरा विनम्र निवेदन है कि शैव, शाक्त, बौद्ध, वैष्णव और जैन परम्पराओं से सम्बद्ध सुन्दर और सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियां महाकोशल में उपलब्ध हुई है वे न केवल अन्यतम ही है अपितु अल्प होकर भी गुणो में गरिष्ठ है। कतिपय ऐसी भी कलाकृतियां है जिनकी सर्वप्रथम उपलब्धि महाकोशल में ही हुई है। गुफाओं से लगाकर स्थापत्य-मंदिर तक की शिल्प-संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा यहां रही है जिसमें न केवल धर्ममूलक भावनाओं को ही प्रश्रय मिला है अपितु इन से राष्ट्रीय लोक चेतना की उद्बुद्ध हुई है। भारत के समाजमूलक अध्यात्मवाद का प्रत्यक्ष प्रतीक महाकोशल का पुरातत्त्व है। यहां पर स्मरण रखना चाहिये कि

पुरातत्त्व शब्द इतना व्यापक है कि इसमे साहित्य, चित्र आदि का भी अन्तर्भाव संभव है। भारतीय भित्तिचित्रों की विकासशील परम्परा की दृष्टि से भी महाकोशल का महत्व महान् है। यहां मेरा क्षत्र संकुचित है। सभी शाखाओं पर प्रकाश डालने का न यहा समय है एवं न उपयुक्त स्थान ही। मुझे तो केवल महाकोशल मे जैन पुरातत्त्व से सम्बद्ध कतिपय तथ्यों पर विचार करना है।

श्रमण परम्परा का प्रादुर्भाव मौर्य-काल के पूर्व महाकोशल मे हो चुका था जैसा कि तात्कालिक निकटवर्ती प्रान्तीय भूभागों से सम्बद्ध साहित्यिक उल्लेखों से विदित होता है। रामगढ़ (सरगुजा के निकट) के गुफ़ा चित्र इसकी पुष्टि करते है। यही से यदि जैन पुरातत्त्व का कालक्रम माना जाय तो अत्युक्ति नही होगी। मै तो मानता हूं चाहे शिल्पी हो, लेखक हो, चित्रकार हो या कवि हो उन सब में एक कलाकार जाग्रत है जो आत्मस्थ, अमूर्त, उत्प्रेरक भावों को विभिन्न उपादानो द्वारा व्यक्त कर रसस्रोतस्विनी बहाता है। शिल्प के अभाव मे उसकी विशालता का अनुभव चित्रों से होता है और चित्रों के अभाव मे अन्य शैल्पिक रेखाओं से। कभी-कभी शब्द भी भावो का औचित्यमूलक प्रतिनिधित्व कर लेते है। ईस्वी सन् ३ सदी पूर्व से आज तक के जैन पुरातत्त्व पर क्रमबद्ध प्रकाश पड़ सके वैसे साधन उपलब्ध नही है, किन्तु कलचुरि काल के कुछ पूर्व से आज तक की सामग्री प्रचुर परिणाम मे उपलब्ध है। पूर्व कलचुरि कालिक कतिपय ऐसी कृतिया व स्थापत्य के अवशेष उपलब्ध है जिन पर गुप्त शिल्प व मूर्तिकला मे व्यवहृत उपादानो का स्पष्ट अनुकरण है एवं कही-कही आंशिक प्रभाव है। बिलहरी के अवशेष इस सत्य के प्रमाण मे उपस्थित किये जा सकते है। यद्यपि गुप्तकालीन स्थापत्य के कुछ प्रतीक महाकोशल मे शेष है जिनका अपना स्वतंत्र महत्व है। परन्तु जैनाश्रित शिल्पकला का समुचित विकास कलचुरि युग मे हुआ। वे शैव होते हुए भी परमतसहिष्णु थे। उनके पूर्वज शकरगण जैनधर्मानुयायी थे। अध्ययन की सुविधा के लिये स्थापत्य और मूर्ति इस प्रकार स्थानीय शिल्प-कृतियों को दो भागों मे विभाजित करना समुचित प्रतीत होता है। यह तो अभिलेख व साहित्यिक कृतियों मे भी अनुपेक्षणीय नही होना चाहिये।

स्थापत्य

कोई भी राष्ट्र या प्रान्त यदि एक दूसरे के प्रति कुछ भी आकर्षण का माध्यम है तो वह उसकी कला व सभ्यता-मूलक प्रवृत्तियां ही है। कला द्वारा ही उस देश व प्रान्त के वास्तविक जनजीवन का समुचित रूपेण आत्मसात् किया जा सकता है। साहित्य समाज का प्रतिविम्ब है तो शिल्प प्रकृति का अनुकरण है। इसके अनुकरण मे संस्कृति का सहारा मिलने पर मानवता की लता जीवित हो उठती है। स्थापत्य कला के अवशेष उस देश के इतिहास के जीवन के प्रतीक है। कठोर पत्थरों की सुकुमार रेखाओं द्वारा उस देश की जनता के जीवन और रहस्य का भली भांति ज्ञान होता है। मानसिक चिन्तन की उच्चतम दार्शनिक पृष्ठ-भूमि की अनुभूति स्थापत्य के द्वारा ही भली भांति व्यक्त हो सकती है। महाकोशल का स्थापत्य, कला, संस्कृति, सभ्यता और तात्कालिक जनजीवन की अविस्मरणीय प्रतिमूर्ति है। यद्यपि इसकी कलात्मक परम्परा का आलोकित करने वाली कलाकृतियां अत्यन्त सुरक्षित नहीं रह सकी है पर जो भी है वे उसकी अक्षुण्ण व मर्मग्राही परम्पराओं के प्रति सचेष्ट मानस को इसका परिज्ञान कराती है। जहा तक जैन स्थापत्य कला का प्रश्न है मुझे निस्संकोच कहना चाहिये कि अपेक्षाकृत बहुत ही कम अवशेष अवशिष्ट है जो है उनपर भी विज्ञो का ध्यान नही है। अन्वेपित सामग्री से तो इतना ही अवगत हो सका है कि आरंग को छोड़कर जैन स्थापत्य कला के अवशेप महाकोशल में प्राप्त नही हुए है। अपेक्षित ज्ञान की अपूर्णता के कारण ही महाकोशल के खंडहर अपना सौन्दर्य प्रकृति की गोद मे बिखेरकर अन्तिम सांसें ले रहे है।

मध्यप्रदेश से मध्य भारत आते हुए महाकोशल के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण नवीन खंडहर देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ जिनकी कृतियो को महाकोशल का अभिमान कहा जा सकता है। इन खंडहरों के अवलोकन से पारस्परिक प्रान्तीय कलात्मक प्रादान-प्रदान विपयक मेरी कल्पना को बहुत बल मिला जैसा कि अग्रिम पंक्तियों से प्रतिफलित होगा। मेरा तात्पर्य "वरहटा" और "पनागर" से है।

"वरहटा"

वरहटा महाकोशलीय संस्कृति का एक ऐसा अरक्षित उपेक्षित केन्द्र है जहा की कृतियो का एकत्र किया जाय तो एक सग्रहालय सहज में ही बन सकता है। श्रमण, वैदिक एव शाक्त परम्परा से सम्बद्ध ४०० (चार सौ) से अधिक अवशेष ऐसी दशा में पडे हुए है जिनको व्यक्त करना सयमित लेखनी के लिये सभव नही है। जो बारहवी शती व इसके बाद का काल मूर्ति निर्माण कला का रहस्योन्मुखी युग माना जाता है, उसके लिये यहा की कृतिया एक चुनौती है। अभीतक महाकोशल में शिल्प निर्माण विषयक कार्य में जिन नगरो की परिगणना होती थी उनमें त्रिपुरी, विलहरी, कारीतलाई आदि मुख्य थे पर अब वरहटा का नाम भी त्रिपुरी के बाद इस सूची में जुड जाना चाहिये। सचमुच यह स्थान चारो ओर घनघोर अटवियो से परिवेष्ठित होने के कारण प्रकृति के साथ सस्कृति और कला का अद्भुत त्रिवेणी सगम है। कलाकार का यह साधना निकेतन आत्म द्रष्टा की प्रतीक्षा में है।

यो तो दजनो छोटे-मोटे स्थापत्यावशेष जीर्ण शीर्ण दशा में अपना सदेश स्वरविहीन वाणी में दे रहे है पर यहा तो केवल उस जर्जरित प्रासाद का उल्लेख ही विवक्षित है जहा महाकाय कलापूर्ण जिन प्रतिमायें पडी है। कहा जाता है किसी समय यहा पर विराट् जैन प्रासाद था। मै भी जब वरहटा गया तब जैन मूर्तिया पडी रहने के कारण जैन मदिर ही इसे मानता था जैसा कि "खडहरो के वैभव में" मै व्यक्त कर चुका हूँ किन्तु अब मुझे ऐसा लगता है कि मै भ्रम में था। वह तो विशाल शैव प्रासाद का ढाचा है। परिस्थितिवश किसी ने महाकाय जैन मूर्तियो को रख दिया इसे जैन मदिर घोषित नही किया जा सकता। पर प्रश्न यह है कि जब शताधिक जैन प्रतिमायें है तो क्या ये बिना मदिर के ही रही होंगी? सच बात यह है कि शैवप्रासाद के निकट ही एक और प्रासाद का जर्जरित ढाचा खडा है। निश्चय ही यह जैन प्रासाद मदिर के अवशेष है कारण कि इसके द्वार पर-कुभ कलश व अष्टमागलिक चिह्न के अतिरिक्त महात्मा ऋषभदेव व महावीर के जीवन की कतिपय घटनायें तोरणद्वार में उत्तम रीति से उत्कीर्णित हैं। दीवालो में तीर्थङ्करो के विशेष प्रकार के चिह्न बने है। साथ ही "नमो जिणाण" जैसे वाक्य उसकी दीवाल पर खुदे है। ये सभी जैन प्रासाद होने के प्रमाण है। इन्ही खडहरो मे अम्बिका व कुबेर की विशाल मूर्तिया इस बात की ओर सकेत है कि निश्चय ही यह मदिर ऋषभदेव का ही होना चाहिये। कारण कि इन दोनो ने शताब्दियो तक ऋषभदेव के परिकर में स्थान पाया है। इस ढाचे की चपटी छत व अष्ट से सोलह कोण एव कलशाकृतियो वाले स्तम्भ कलचुरि शिल्प की अपनी विशेषता है। कतिपय जैन मूर्तियो में भी ऐसी आकृतिया मिलती है। नही कहा जा सकता कि यह जैन प्रासाद पुरातन अवशेषो की नवनिर्मित कृति है या पुरातन कला का ही प्रमाण है।

वरहटा में प्राप्त मानस्तम्भ (शीर्ष भाग)

इसे स्पष्टत जैनप्रासाद मानने का एक कारण यह भी है कि जिस लाल पत्थर का प्रयोग अवशेषो में हुआ है, जो ज्यामितीय रेखाए व्यवहृत हुई है ठीक इसी पत्थर व इन्ही रेखाओ से युक्त एक मानस्तम्भ की खडित आकृति नरसिंहपुर के लोक उपवन के मध्य सुरक्षित है। लाल प्रस्तर पर उत्कीर्ण मानस्तम्भ के कोण उनकी गहराई एव रेखायें दीर्घ काल व्यापी साधक की महती कृति है। अवशिष्ट भाग ५ फुट ११ इच और मध्य गोलाई ४ फुट है। ऊपर का चतुष्कोण १ फुट २ इच है। पत्थर पर खुदी हुई शृखला और बधा हुआ घटा आकर्षक जान पडता है। ठीक इन्ही भावो को व्यक्त करने वाली तीन स्तम्भकृतिया वरहटा में सुरक्षित है। अम्बिका प्रमुख ऋषभदेव की प्रतिमा ही मानस्तम्भ

में खुदी हुई हैं। जो इस बात की ओर संकेत करती है कि पूर्व सूचित मंदिर ऋषभदेव का ही है। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात है स्तम्भ की विशिष्ट रेखाये। जिन रेखाओं वाले स्तम्भ नरसिंहपुर स्थित लोक उपवन में है वैसी ही अन्य कृतियां उपर्युक्त आसाद में आज भी लगी हुई है।

बरहटा होशंगाबाद में नरसिंहपुर से लगभग (१४) चौदहवें मील पर अवस्थित है।

पनागर

महाकोशल मे एक ही नाम के एक ही जिले में कई नगर पाये जाते है। नाम साम्य के साथ कहीं-कही गुण साम्य भी परिलक्षित होता है। पनागर जबलपुर से दसवें मील पर अवस्थित है जिसका पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्व है। पर यहा जिस पनागर का उल्लेख किया जा रहा है वह गाडरवाडा (जिला होशंगाबाद) से पिपरिया को जाने वाले गाडी मार्ग पर पन्द्रहवे मील पर अवस्थित है। इस का जैन पुरातत्त्व की दृष्टि से विशिष्ट महत्व तो है ही साथ ही निकटवर्ती प्रान्तीय कलात्मक प्रभाव की दृष्टि से भी यहां के अवशेष बहुत ही महत्व के प्रमाणित हुये है। आश्चर्य इस बात का है कि इतनी विराट् सामग्री वाला यह ग्राम इतना उपेक्षित रहा कि पुरातत्त्वविज्ञो ने कही भी इस का उल्लेख तक नही किया। पैदल यात्री होने के नाते एक रात मुझे वहा ठहरना पड़ा। वहा के अवशेषों से मै बहुत प्रभावित हुआ—इसलिये नही कि सापेक्षतः ये अवशेष प्राचीन और कलापूर्ण है बल्कि इसलिये कि उसमें वैविध्य है और ये अत्यन्त अनुपलब्ध भी है।

ग्रामवृद्धों से ज्ञात हुआ कि पनागर के पास ही थूथी या दूधी नदी के तट पर सुन्दर रेखाओ से खचित कई प्रस्तर व्यवस्थित रूप से अवस्थित है, जिनका रंग लाल है। पत्थरो के व्यवस्थित गिराव से ऐसा लगता है कि किसी समय यहा जैन मंदिर रहा होगा। वही के एक वयोवृद्ध व्यक्ति श्री कल्याण सिंह जी ने मुझे बताया कि ये जैन मंदिर के ही ध्वंसावशेष है। पच्चीस वर्ष पूर्व हमारे ग्राम में कबीर पंथी महात्मा रहते थे। लक्ष्मी के लालच से इस मंदिर की खुदाई की। इस का परिणाम आज सामने है। उसने यह भी बताया कि इसमे पचास लेखयुक्त प्रतिमायें भी निकली पर हमने पांच यहा रखकर शेष निकटवर्ती ग्रामों मे पूजार्थ भिजवा दी। परन्तु अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मंदिर और मूर्ति के निर्माण मे कितना व्यवधान है क्योकि मूर्ति के लेख तेरहवी शती के है पर मंदिर के जो अवशेष वहां पड़े है और उन पर जो भावशिल्प रेखाये व अन्य कलात्मक प्रतीक अंकित है उनका समय , शैली को देखते हुए बारहवी शती के बाद का नही हो सकता, कारण कि मंदिर का तोरण व मूलद्वार कलचुरि शिल्प का जाज्वल्यमान प्रतीक है जब कि मूर्तियां अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। अनुमान है जीर्णोद्धृत मंदिर मे वे पुन. स्थापित की गई होगी। जो भी हो इतना सत्य है कि पनागर के इस जैन प्रासाद के अवशेष अध्ययन का पथ प्रशस्त करते है।

आरंग के अतिरिक्त उपर्युक्त नवोपलब्ध जैन स्थापत्यावशेष इस बात के प्रमाण है कि यदि अन्वषेण किया जाय तो ऐसे और भी कई जिन मंदिर ध्वस्त रूप में मिलने चाहियें। जब हजारों की संख्या मे जैन मूर्तिया मिलती है तो क्या कारण है कि मंदिर न मिले। मेरी विनम्र सम्मति मे जैनो का आधिपत्य ज्यो ज्यों प्रान्त या नगरो मे घटता गया त्यो-त्यों हिन्दुओ द्वारा उनके मंदिरों पर अधिकार होता गया। बिलहरी (जिला जबलपुर) और कुफर्रा (जिला मंडला) के मठ व मंदिर इस पंक्ति को चरितार्थ करते है। डाक्टर हीरालाल जी ने अपने हिन्दी सर्व संग्रहो मे कई स्थानों पर अनुमान किया है कि अमुक हिन्दू मंदिर पूर्व काल में जैन मंदिर था।

धनसोर में जिन मंदिरो के अवशेष अवश्य पाये जाते है पर वे गोडकालीन है। कला और पुरातत्त्व की दृष्टि से उनका विशेष महत्व नही है।

महाकोशल के जैनाश्रित स्थापत्यों पर नागर शैली का स्पष्ट प्रभाव है। जो विन्ध्य नैपुण्य के कारण स्वाभाविक है। बहु संख्यक कलात्मक उपादान भले ही प्रान्तीय कलाकारो की देन हो पर उनकी शैली पर गुप्त उपादानों का भारी प्रभाव है। जैन मंदिरो मे प्रवेश द्वार पर गंगा यमुना की मूर्ति, काम सूत्र के समस्त आसन और कही-कही हिन्दू धर्म

मान्य देवियो का अकन कभी-कभी सामान्य गवेषक को भ्रमित कर सकते है। कलाकार अनुकरणशील भी होता है। वह प्रवृत्ति का अनुकरण तो करता ही है पर कभी-कभी अनुकृत अवशेषों का अनुकरण कर रस निष्पन्न करता है। आबू का मधछत्र पश्चिम भारतीय शिल्पकला का उत्कृष्ट प्रतीक समझा जाता है। इस पद्धति का अनुसरण यहा के कलाकारो ने भी किया है। यद्यपि वे उतने सफल नहीं हुए किन्तु उनकी अनुकरणशील वृत्ति का आभास कलचुरि युग से लगाकर आज तक की कृतियो में पाया जाता है। आबू का मधु छत्र तो केवल छत की ही शोभा बढाता है पर महाकोशल में तो वह दीवाल की शोभा भी बढाता है।

कला की मूल चेतना एक होने हुये भी प्रान्तिक वैभिन्य सवत्र दृष्टिगोचर होता है। भारतीय साधना के इतिहास में मूर्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। निराकार की समुचित साधना बिना आकार के सभव हो ही नही सकती। सामान्य कोटि का मानव बिना सुदृढ निमित्त के चित्त वृत्ति को केंद्रित नही कर सकता। न अध्यात्म की उच्चतम मनोभूमि पर पहुच सकता है। जिन प्रतिमा समत्व की मौलिक भावना की प्रतीक है जहा मनुष्य मद, मात्सर्य, अहङ्कार आदि को विस्मृत कर स्व की साधना के लिये वीतरागत्व की ऊर्जस्वल प्रेरणा से अभिभूत होता है। सौन्दर्य के द्वारा वह अतींद्रिय या अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करता है। प्रकृति की गोद में संस्कृति की साधना अमरत्व का सदेश ऐसे ही निमित्त द्वारा दे सकती है। सचमुच यहा के कलाकार भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी थे। उनकी कल्पना शक्ति, अनुपम ग्राहकता और भावाभिव्यक्तिकरण की सुचिन्तित क्षमता अनुपम थी। उनकी कल्पना तथ्याश्रित आदर्श मूलक परम्परा को लिये हुये थी। यद्यपि जैन मूर्ति निर्माण कला के आसन निर्धारित होने के कारण बौद्ध-मूर्तियो के समान इनमें वैविध्य की कल्पना का स्थान नही है तथापि उसके परिकर निर्माण में महाकोशल के कलाकारो ने जिस वैविध्य का परिचय दिया है वह भले ही गुप्तकालीन कलाकृतियो का अनुसरण करता हो किन्तु इसमें प्रान्तीय कलाकार का व्यक्तित्व व उपादान भी खूब ही निखरे है। मुझे कहना चाहिये कि कुछ एक ऐसे परिकर निर्मित किये है जो महाकोशल की भारतीय जैन कला को मौलिक देन है।

मुख्यत जिन प्रतिमा खड्गासन व पद्मासन में पाई जाती है। दोनो सपरिकर या अपरिकर हो सकती है। परिकर पर एव विशेष कर उनके प्रभा-मडल पर गुप्त कलाओ का अस्पष्ट प्रभाव है। आभूषणो का बाहुल्य एव व्यक्ति या व्यक्तियो के व्यक्तित्व का सतुलित उभार शरीराकृति आदि कुछ गुण ऐसे है जिनमें प्रान्तीय कलाकार का प्रेरणाशील व्यक्तित्व उद्दीपित हो उठता है। खड्गासनस्थ प्रतिमाओ में बहुरी बन्द, कारीतलाई आदि स्थानों की मूर्तिया लेख युक्त व विशालकाय है। बरहटा की विशालकाय प्रतिमायें भी उल्लेखनीय है। कला और सौन्दय की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है। यद्यपि उनपर लेख नही मिलते पर वे सब उस समय की कृतिया है जब कलचुरियो का शिल्पिक सूर्य उत्कर्ष पर आरूढ था। जैसा कि निम्न चित्रो से स्पष्ट है —

महानाथ ऋषभदेव (बरहटा)

पार्श्वनाथ जिन प्रतिमा (बरहटा)

बरहटा की मूर्तियों में मुझे परिकरान्तर्गत ज्यामतीय रेखाओं का अंकन बहुत ही सुन्दर लगा। यद्यपि सम्पूर्ण महाकोशल और विन्ध्य प्रदेश की प्रतिमाओ में ऐसा ही अंकन पाया जाता है परन्तु इन की रेखाएं बहुत ही स्पष्ट और उभरी हुई है।
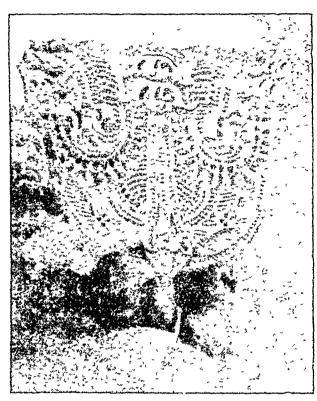
महाकोशली रेखाङ्कन कला एवं उत्कीर्ण शिल्प का जाग्रत नमूना (बरहटा)

स्वतन्त्र मन्दिरो में ही मूर्तिया प्रतिष्ठित होती थी ऐसी बात नही है। मानस्तंभों मे व प्रवेशद्वार के तोरणों में भी दोनो प्रकार की प्रतिमाएं मिलती है। ऐसे एक तोरण का आधा भाग निम्न चित्र मे प्रदर्शित है जो मुझे त्रिपुरी से अपनी शोधायात्रा मे प्राप्त हुआ था।
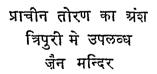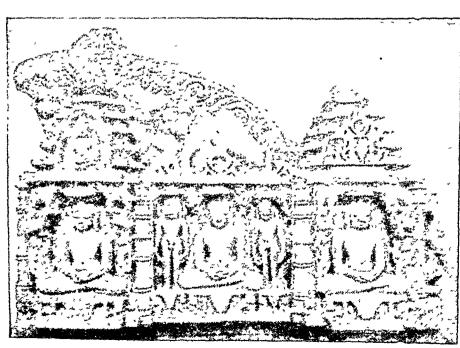
प्राचीन तोरण का अंश त्रिपुरी मे उपलब्ध जैन मन्दिर

मन्दिर के स्तम्भों में भी मूर्तियाँ खुदवाने की प्रथा रही है। ऐसे प्रतीक भी बिलहरी, धनमोर, पनागर (जिला होशंगाबाद) और बरहटा में उपलब्ध हुए हैं।

सूचित भू भाग की प्रतिमाओं के निरीक्षण से अवगत होता है कि यहां के कलाकार मूर्ति निर्माण में केवल प्रतिमा विधान शास्त्र के नियमों के दास नहीं रहे बल्कि पर्याप्त स्वतन्त्रता से भी काम लिया है, विशेषकर परिकर के गठन में, क्योंकि यही एक ऐसा माध्यम है जिस में कलाकार अपनी कला और अनुभूति को सफलता के साथ व्यक्त कर सकता है। जबलपुर के हनुमान ताल स्थित मंदिर की प्रतिमा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

देवी व गुरु मूर्तियां

महाकोशल में तन्त्रपरम्परा* का प्राबल्य रहा है, बौद्ध और शैव तन्त्रों की प्रायः सभी शाखाएं यहां विद्यमान थीं जैसा कि तात्कालिक शिलालेख व ग्रन्थस्थ-उल्लेखों से सिद्ध है। पुरातन प्रतिमाएं भी इसके समर्थन में आज भी पर्याप्त सुरक्षित हैं। यद्यपि कर्मवाद में विश्वास रखने वाली जन परम्परा में मौलिक स्वाथ मूलक तन्त्र परम्परा जैसी कोई वस्तु सांस्कृतिक दृष्टि से नहीं पनप सकती, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि तात्कालिक प्रचलित पूजापद्धति से बचना भी कम संभव था। जब शक्ति के उपासक वाली, दुर्गा आदि देवियों की स्वतन्त्र मूर्तियां बनवा कर उन्हें पूजते थे तब जैनों ने उनके तीर्थङ्करों की अधिष्ठात्री देवियों की स्वतन्त्र प्रतिमाएं बनवाना आरम्भ किया और मंदिर भी अलग से बनने लगे। बिलहरी के लक्ष्मण सागरताल पर आज भी चक्रेश्वरी का मंदिर विद्यमान है। बरहटा पद्मपुर, त्रिपुरी, पनागर, डोंगरगढ़ और धनमौर में कई स्वतन्त्र देवी प्रतिमाओं के साथ जैन सरस्वती का प्रतीक भी विद्यमान है।

सरस्वती प्रतिमा (बरहटा)

तीर्थङ्कर के बाद जैन परम्परा में जो महत्व का पद है वह गुरु को प्राप्त है। पूर्व मध्य युग में गुरु मूर्तियां का निर्माण भी होने लगा था। उल्लेखनीय बात यह है कि मूर्ति निर्माण विधानशास्त्र गुरु मूर्ति के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं रखते हैं। ग्यारहवीं शती के बाद व्यक्ति पूजा के प्रखर आवेश में धवल से गुरु मूर्तियां बनवाई जाने लगीं। दोनों सम्प्रदायों में अधिकतर गुरु मूर्तियां इसी युग की पाई जाती हैं। यों तो कुशाण काल में भी मूर्तियों की प्रतिमायें मिलती हैं पर उनकी संख्या नगण्य है। विन्ध्य एवं महाकोशल के कलाकार इतने सजग थे कि जिन मूर्ति के परिकर के साथ गुरु मूर्ति का प्रतीक भी बना देते थे। जैसा कि रीवा के व्यंकट सेवा सदन एवं बिलहरी के जैन मंदिर स्थित जिन बिम्बों में स्पष्ट है। बारहवीं शती के बाद पाशुपत मत के प्रभाव के कारण जैन गुरुओं की स्वतंत्र मूर्तियां व स्तूप बनने लगे। पनागर (जिला होशंगाबाद) में तेरहवीं शती की एक गुरु मूर्ति पाई गई है जो महाकोशल में अपने ढंग की प्रथम व श्रेष्ठतम

---

* महाकोशल की तन्त्र परम्परा पर लेखक के निम्न निबन्ध दृष्टव्य हैं—
  १ महाकोशलीय शक्तिपूजा का ग्राम्य रूप—साहित्य सम्मेलन पत्रिका भाग, ४०, संख्या ४।
  २ शक्ति व भक्ति का विस्मृत साधना केन्द्र—डोंगरगढ़—अजन्ता, वर्ष ६, अंक ६।
  ३ महाकोशल व तन्त्र परम्परा—भारती, अगस्त ५४।

कृति है। परवर्ती काल में आचार्य श्री जिन दत्तसूरि और आचार्य श्री जिन कुशलसूरि आदि आचार्यो की मूर्तियां बनने लगी जो 'दादावाड़ी' मे पधराई जाती थी। महाकोशल में शताधिक दादावाड़िया आज भी विद्यमान है।

महाकोशल की कुछ विशिष्ट जैन मूर्तियां

जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में सूचित किया जा चुका है कि महाकोशल मे कुछ ऐसी भी जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई है जिनका अपना अभूतपूर्व वैविध्य है। यह एक मानी हुई बात है कि जैन मूर्ति के परिकर में नवग्रहों का अंकन अनिवार्य है। अत: प्रत्येक सपरिकर जैन प्रतिमा के चरण के निम्न भाग मे आठ प्रतीक बने हुए मिलते है। स्मरण हो कि जैन शिल्प शास्त्र में राहू केतु को एक माना है। कतिपय मूर्तियों में सशरीर और सायुध ग्रह मिलते है। जैसा कि मेरे संग्रह की एक धातु प्रतिमा जो मुझे सिरपुर (जिला रायपुर) से प्राप्त हुई थी—में खचित है।
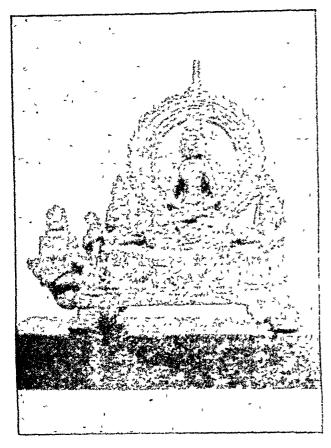
नवग्रहो युक्त ऋषभदेव प्रतिमा
(सिरपुर मे प्राप्त सर्व प्राचीन मूर्ति)

विशिष्ट तांत्रिक प्रभाव के कारण कलचुरि युग के नवग्रहो के प्रति जनता मे इतना श्रद्धामूलक आकर्षण था कि स्वतन्त्र ग्रह मूर्तियों के पट्टक बने एवम् मदिर भी। जैन परम्परा भी इस प्रभाव से अपने को न बचा सकी। स्लीमनाबाद से मुझे ऐसी जिन प्रतिमा उपलब्ध हुई है जो समूचे भारतवर्ष मे अपने ढंग की प्रथम मूर्ति है। इस से जैन-मूर्ति विधान शास्त्र के क्रमिक इतिहास पर अच्छा प्रकाश पडता है। इस की सबसे बड़ी और मौलिक विशेषता यह है कि इस का परिकर केवल ग्रहो का ही है। इसकी समता करने वाला दूसरा प्रतीक अद्यावधि उपलब्ध नही हुआ।

" एक अश्रुतपूर्व-प्रतीक "

इतिहास के मध्यकाल में संत--परम्परा का प्रभाव यहां बहुत बढ़ चुका था। संत साहित्य और जीवन में समन्वय-वादी भावना मूर्त रूप धारण किये थी। स्मरणीय है कलात्मक प्रतीक युग का यथार्थ प्रतिनिधित्व करते है। मुझे अपनी शोध मे एक ऐसा प्रतीक मिला है जो भारत मे अपने ढंग और शैली का प्रथम है। संतों की समन्वयमूलक सहिष्णुता-युक्त साधना का मूर्त रूप कला मे व्यक्त करने वाली वह प्रथम ही कृति है। एक ही प्रस्तर शिला पर जैन, शैव और वैष्णव संस्कृति उद्दीपित हो उठी है। शिला के मध्य भाग में भगवान भोलेनाथ आसन जमाए पद्मासन मे विराजमान है। उभय पार्श्व मे शेषशायी व बांसुरी लिये विष्णु मूर्तियां खुदी है। तन्निम्न भाग मे दोनों ओर पांच जिन प्रतिमाएं खड्गासनस्थ विराजमान है। भगवान शंकर का पद्मासनस्थ रूप और जिन मूर्तियों का वैदिक मूर्तियों के साथ अंकित करना यह तात्कालिक व्यापक जैन प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण है। यह प्रतीक धनसोर से उपलब्ध हुआ था और वर्तमान मे सिवनी (जिला छिन्दवाड़ा) के सरोवर के एक घाट में बहुत ही बुरी हालत मे लगा हुआ है। भारत की समन्वयवादी आत्मा का यह प्रतीक शीघ्र ही उचित स्थान पर व्यवस्थित रूप से सुसज्जित हो ही जाना चाहिये।

जैन प्रभाव

विष्णु प्रतिमा (बरहटा)

महाकोशल में जैन संस्कृति के व्यापक प्रभाव के आगे हिंदू और बौद्ध धर्म की मूर्तियों पर जैन मूर्तिकला का प्रभाव पड़ा है। साथ दिये चित्र में प्रदर्शित विष्णु मूर्ति या प्रतीक उपर्युक्त पंक्तियों को मजबूत करता है। भगवान् विष्णु की अद्यावधि ऐसी कोई प्रतिमा नहीं मिली जिसका मस्तक खुला हो। कम से कम किरीट-मुकुट तो उनके मस्तक पर रहना ही चाहिये। इसके विपरीत साथ दिये चित्र में भगवान विष्णु न केवल मुकुट विहीन ही हैं अपितु जिन मूर्ति के समान घुंघराले केशकुन्ज युक्त हैं। विष्णु का पद्मासन होना भी जैन परम्परा का प्रभाव सूचित करता है।

पारस्परिक प्रान्तीय कलात्मक आदान-प्रदान

इतने विवेचन के बाद प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पारस्परिक निकटवर्ती प्रान्तीय कलात्मक उपादानों का आदान प्रदान महाकोशल की जैन मूर्तिकला के विकास में कितना हुआ? उससे भी कहीं अधिक प्रभाव बरहटा की स्थापत्य व मूर्तिकला पर परमार कलाकारों का प्रभाव पड़ा है। सर्व प्रथम प्रतिमाओं को ही लें। त्रिपुरी और बरहटा में मैंने ओपदार (Polished) ऐसी दर्जनों जिन मूर्तियां देखी हैं जिनका स्निग्ध माधुर्य आइनों का काम देता है। मौर्यकालीन ओपदार (पॉलिश्ड) स्मरण हो आता है। यह प्रभाव स्पष्टतः परमार राज्य काल की साधना का परिणाम है और ग्यारहवीं शती से लगाकर तेरहवीं शती के उत्तरार्ध तक पॉलिश की यह परम्परा महाकोशल में जीवित थी। जैसा कि पनागर स्थित लेख युक्त पांच जिन प्रतिमाओं से सिद्ध होता है।*

महाराज भोज की कलाप्रियता महाविख्यात है। उसने मौर्यकालीन पॉलिश की परम्पराओं को पुनरुज्जीवित किया। इतिहास सिद्ध है कि नर्मदा के अर्थात् होशंगाबाद जिले के कुछ भागों पर परमारों का आधिपत्य तेरहवीं शती तक निश्चित था जैसा कि उनके ताम्रपत्रों से सिद्ध है। ऐसी स्थिति में उनका पद प्रभाव पड़ना सर्वथा वांछनीय था। केवल यही नहीं महाकोशल के स्तम्भ बरहटा की नोनियोटक मूर्तियों की ज्यामितीय रेखायें, पुष्प एवं जालियों इन सभी पर तुलनात्मक गंभीर विचार किया गया तो स्पष्ट कहना पड़ेगा कि दोनों प्रान्तों का कलात्मक आदान प्रदान कितना उच्चतर था। मुझे मध्यप्रदेश की सीमास्थित भोजपुर † का शैव मन्दिर एवं ग्वालियर दुर्गस्थित अवशेषों के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ है। उससे मैं विनम्रतापूर्वक कह सकता हूं कि कहीं-कहीं शिल्प साम्य इतना निकट है कि मानो एक ही सम्प्रदाय के कलाकार की ये विभिन्न कृतियां हों। मैं इस विषय पर अत्यन्त विस्तृत प्रकाश डाल चुका हूं।

महाकोशल की अधिकतर जैन मूर्ति व स्थापत्य कला की सामग्री लेखरहित है। पर समकालीन अन्य प्रान्तीय अवशेषों के अध्ययन से उनका काल निर्धारित किया जा सकता है, वाणी विहीन भाषा का यह तथ्य सत्य के अधिक निकट है।

---

* खंडहरों का वैभव—खंडहर दर्शन, पृष्ठ ३०-३१।

† विशेष के लिये देखें —'भोजपुर'—लेखक द्वारा लिखित और भोपाल शासन द्वारा प्रकाशित, १९५४।

उपर्युक्त पंक्तियों मे केवल कलचुरिकालिक जैनाश्रित पुरातत्त्वावशेषों पर ही विचार किया जा सका है। साथ ही जैसा कि ऊपर सूचित किया जा सका है कि ग्रंथस्थ वाङ्मय भी पुरातत्त्व की विस्तृत व्याख्या मे अनुपेक्षणीय नही। मुगल काल मे न केवल जैन संस्कृति का व्यापक केन्द्र ही महाकोशल बना अपितु उस समय की साहित्यिक रचनायें भी प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। जैन मुनियों ने चित्रकला के विकास पर भी ध्यान दिया एवं बिखरे हुए साहित्यिक ग्रंथों को भण्डारों मे एकत्र कर सांस्कृतिक अन्वेषण की मौलिक सामग्री संचितकर ऐतिह्य विज्ञों के लिये पथ प्रशस्त किया है पर उन सबका यहां उल्लेख ही पर्याप्त है।

कला और संस्कृति का अभिन्न सम्बन्ध है। पारस्परिक योगदान से दोनों की स्वरूप सुषमा निखरती है। मानवीय जीवन का गंभीर वैज्ञानिक चिन्तन एवं समाजमूलक प्रवृत्तियो का विकास महाकोशल की पुरातन शिल्प रेखाओं में परिलक्षित होता है। अतीत की ऊर्जस्वल ज्योति का आशिक प्रतिबिम्ब विकास का भावी पथ प्रशस्त करता है। महाकोशल के खंडहर, महाकोशल के कलावशेष और तत्रास्थित सुकुमार रेखाये क्षतविक्षत स्थिति मे आज हमारी कलापरक भावना को चुनौती दे रही है। इन खडहरों में व्याप्त विगत गौरव की आत्मा आज भी हमे आलोकित कर सकती है बशर्ते कि हम उन्हे भावनापूर्ण होकर अन्तर्दृष्टि से देखे, परखे और जीवन मे उनका अनुभव करे। तदर्थ आज वहां अनुसंधान और सत्यान्वेषण के क्षेत्र मे जागरूक चिन्तन नितात वाछनीय है। प्रस्तुत प्रबन्ध पुरातत्त्व के क्षेत्र में यदि जनता की ज्ञान शलाका को उद्दीपित कर सका तो श्रम सफल समझूगा। *
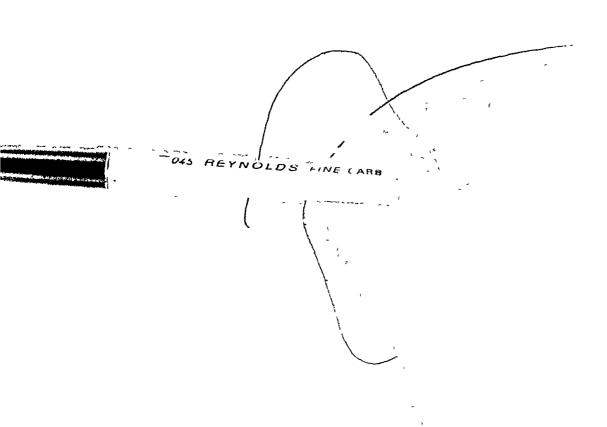
*बरहटा से सम्बन्धित समस्त चित्रण की उपलब्धि मे रासहु...
प्रयत्न रहा है तदर्थ मै उनका आभार मानता हूं।

कला
साहित्य
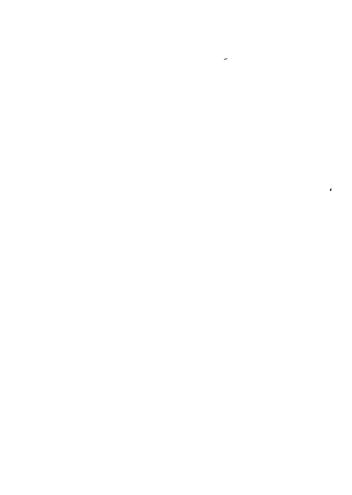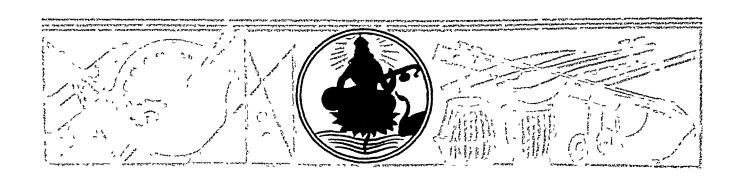
यस्यास्तु कङ्कणमणिर्भवभूति रासीत्
पद्माकरेण परिपूजित पादपद्मा ।
भानोर्मरीचि निकरैरवभासमाना
सा शारदा भवतु नोऽभ्युदयाय सिद्धा ॥
यत्र स्थिता जलदधावनजन्मभूमिर्यो
भारतीं हिमकिरीटवतीञ्चकार ।
कृष्णायनेन सुरभीकृतदिग्विभाग
प्रान्तः स विश्वविदितो रविशङ्करस्य ॥

—श्री शिवनाथ मिश्र

मीरा

चित्रकार:- स्व. तोमर

मध्यप्रदेश का संस्कृत-वाङ्मय

श्री सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी

भारतवर्ष के मध्य भाग मे स्थित होने के कारण मध्यप्रदेश को प्राचीन काल से ही विशेष महत्व प्राप्त है। उत्तर में चेदि, दक्षिण मे दण्डकारण्य, पूर्व मे दक्षिण कोशल तथा पश्चिम मे विदर्भ—इन चार विख्यात प्रदेशो से निर्मित—तथा पश्चिम वाहिनी नर्मदा, ताप्ती और पयोष्णी एवं पूर्ववाहिनी महानदी और गोदावरी—इन पुण्यतोया नदियो के परिसर मे फैला हुआ हमारा मध्यप्रदेश प्राचीन काल से ही संस्कृत-साहित्यिको का क्रीड़ास्थल रहा है। प्रागैतिहासिक युग मे आर्य धर्म के प्रथम प्रसारक अगस्त्य ऋषि ने मध्यप्रदेश मे जन्मी लोपामुद्रा को धर्मपत्नी के रूप मे सहायक पाकर न केवल कर्तव्यसिद्धि के लिये १२ वर्ष तक दाम्पत्य जीवन मे भी ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा ली अपितु एक पुत्रोत्पादन व्रत का आदर्श भी समाज के सामने रखा है। अगस्त्य के नाम से ऋग्वेद में अनेक सूक्त तथा अगस्त्य गीता और अगस्त्य संहिता आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

कालिदास के रघुवंश में अगस्त्य, सुतीक्ष्ण और शरभंग नामक ऋषियों के आश्रमों का वर्णन आया है। ये आश्रम मध्यप्रदेश मे स्थित थे और इनमे आर्य धर्म प्रसार के लिये प्रशिक्षण दिया जाता था। विदर्भ कन्या इन्दुमती के स्वयंवर वर्णन मे कालिदास ने वहा के "सुराज्य" और "समृद्धि" का विशेष रूप से उल्लेख किया है। उनके अमर ग्रंथ "मेघदूत" का स्फूर्ति स्थान रामगिरि (वर्तमान रामटेक) है। नागाधिराज हिमालय और उज्जयिनी के समान सम्भवत: विदर्भ और रामगिरि ने भी कालिदास के हृदय को आकृष्ट किया था। कहा जाता है कि कालिदास कुछ काल के लिये वाकाटक-नृपति प्रवरसेन के दरबार में आये थे तथा यही रह कर उन्होंने मेघदूत की रचना की। गुप्त साम्राज्य के "स्वर्णयुग" के प्रारंभ, निर्माण तथा विकास में मध्यप्रदेश के वाकाटक वंशी नृपो का अमूल्य सहयोग था। वाकाटक सम्राट् प्रवरसेन द्वितीय स्वय अच्छे कवि थे। उनकी माता प्रभावती गुप्त सम्राट् विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त की पुत्री थीं। अत: गुप्तकालीन राजदरबार की साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा मध्यप्रदेश में भी फैली और संस्कृत साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास हुआ।

संस्कृत काव्य रचना की तीन विशिष्ट शैलियों मे वैदर्भी, गौड़ी, पाचाली मे, वैदर्भी का प्रमुख स्थान है। कालिदास इसी वैदर्भी शैली के पुरस्कर्ता कवि थे। इस शैली का विकास इसी प्रदेश में हुआ था—यह तो नाम से ही स्पष्ट है। रसोत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित चार वृत्तियों का अलंकार शास्त्रियों ने वर्गीकरण किया है। कैशिकी, सात्वती, भारती और आरभटी। इनमे कैशिकी सर्वश्रेष्ठ रस पद्धति मानी जाती है। इस कैशिकी वृत्ति का भी विकास विदर्भ में ही हुआ था, क्योकि कैशिक और विदर्भ पर्यायवाची शब्द हैं। काव्य शैली और वृत्ति के नाम में भेद स्पष्ट करने के लिये वैदर्भी और कैशिकी ये दो भिन्न नाम दिये गये थे। इससे स्पष्ट है कि विदर्भ का संस्कृत-काव्य शैली के इतिहास मे कितना महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि ११ वी सदी के प्रसिद्ध नाटककार और समीक्षक राजशेखर ने भी विदर्भ को—"**सारस्वती जन्म भू**" कहा है।

काव्य शैली और वृत्तियो के नामों मे ही नही, संस्कृत साहित्य के अनेक काव्य नाटकों की नायक-नायिकाओं के कारण भी विदर्भ की साहित्यिक ख्याति प्राचीन काल में दृष्टिगोचर होती है। मालविकाग्निमित्र की मालविका, रघुवंश की इन्दुमती, नैषध चरित और नलचम्पू की दमयंती, मालती माधव का माधव इन सभी का विदर्भ की रम्यभूमि में जन्म हुआ था। राजशेखर की नाटिका "विद्धशाल भंजिका" की रचना त्रिपुरी (जबलपुर के निकट तेवर) के कल-

चुरि वंशी केयूरवर्ष उपनाम युवराजदेव के दरबार में अभिनय करने के लिये की गई थी। 'सेतुबंध' तथा "नागकुमार चरित्र" जैसे संस्कृत-प्राकृत काव्य के रचयिता प्रवरसेन और पुष्पदन्त भी यहीं जन्मे थे। त्रिपुरी के निकट गोलकी-मठ के आचार्य सामशम्भु एवं प्रकाण्ड दार्शनिक और जननेता थे। उनके लोक-कल्याणकारी तथा शैक्षणिक कार्य का विस्तृत क्षेत्र यहीं था। इस गोलकीमठ में अनेक महाविद्यालय थे। जिनमें विविध शास्त्रों के विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदि दिये जाते थे। यहां विद्याध्ययन के लिये बंगाल, केरल आदि, दूर-दूर के प्रदेशों से विद्वान् आते थे। 'चेदि मंडन मंडन' की उपाधि से विभूषित सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में मान्यता प्राप्त सदानन्द कवि की १० वीं शती में अक्षय कीर्ति थी। सारांश यह कि संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में मध्यप्रदेश का योगदान उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत निबंध का मुख्य विषय मध्यप्रदेश में निर्मित संस्कृत वाङ्मय की कृतियों का विहंगावलोकन करना है। सर्व प्रथम प्राचीन ग्रंथकारों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। कालिदास के अमर खंड-काव्य मेघदूत का उल्लेख ऊपर आ चुका है। सर्वविदित नाटककार भवभूति का जन्म विदर्भ के पद्मपुर में हुआ था। महावीर-चरित, उत्तर रामचरित और मालती माधव—ये भवभूति के तीन प्रसिद्ध नाटक हैं। किरातार्जुनीय महाकाव्य के रचयिता भारवी, दशकुमार-चरित के रचयिता दंडी, अचलपुर के निवासी माने जाते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन—जिसकी स्मृति में अभी भी रामटेक के पास नागार्जुनी गुफा यात्रियों को दिखाई जाती है, मूलतः नागपुर क्षेत्र में जन्मे थे—ऐसा कहा जाता है। रसायनशास्त्र और दर्शन जगत में उनका स्थान अग्रगण्य है। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत "महायान" (माध्यमिक) मार्ग के वे प्रवर्तक थे। उनके ग्रंथों के अनुवाद चीन, तिब्बत आदि की भाषाओं में मिलते हैं। नालन्दा विश्वविद्यालय की द्वार परीक्षा में उन्हें कठिनता से सफलता मिली, किन्तु बाद में अपनी प्रतिभा और अध्यवसाय से उसी विश्वविद्यालय के आचार्य पद को उन्होंने अलंकृत किया था। कहा जाता है महाकोशल के प्रतापी राजा सद्वाह नागार्जुन के मित्र थे। इसमें सन्देह नहीं कि नागार्जुन की धवल कीर्ति के प्रसार में मध्यप्रदेश का गर्वानुभव करना स्वाभाविक है।

सांख्य दर्शन के आचार्य रुद्रिल का एक नाम "विन्ध्यवासी" है। इससे सिद्ध है कि वे यहीं के निवासी थे। आद्य शंकराचार्य के गुरु भगवत्पूज्यपाद गोविन्द यति को नर्मदा क्षेत्र के हैहयवंशी राजा का आश्रय प्राप्त था और यहीं रह कर श्री शंकराचार्य ने दर्शनशास्त्र की जटिल गुत्थियां सुलझाई थीं। उस युग में माहिष्मती नगरी (वर्तमान मांधाता) संस्कृत विद्या का केन्द्र थी। प्रसिद्ध मीमांसक मण्डन मिश्र और उनकी विदुषी धर्मपत्नी का निवास माहिष्मती नगरी में था। शंकराचार्य से पराजित होकर मण्डन मिश्र ने संन्यास की दीक्षा ली और सुरेश्वराचार्य के नाम से "बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक" की रचना की थी।

१३ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् हेमाद्रि भी विदर्भ में जन्मे थे। उनकी प्रतिभा चतुर्मुखी थी। धर्मशास्त्र पर "चतुर्वर्ग-चिन्तामणि" नामक प्रचण्ड ग्रंथ उनकी प्रसिद्ध रचना है। शिल्पशास्त्र, वैद्यक और ज्योतिष शास्त्र पर उन्होंने ग्रंथ लिखे हैं। हेमाद्रि के समकालीन वोपदेव के मुग्धबोध—नामक संस्कृत व्याकरण का आज भी बंगाल में प्रचार है। वोपदेव ने व्याकरण पर दस, वैद्यक पर नौ, ज्योतिष पर एक, साहित्य शास्त्र पर तीन, श्रीमद्भागवत पर तीन-ऐसे कुल २६ ग्रन्थों की रचना कर लोकोत्तर कीर्ति प्राप्त की थी। धारा नगरी के राजा भोज के समान विदर्भ में भी विद्वानों के आश्रयदाता अनेक भोज हो गये हैं। त्रिविक्रम भट्ट ने—नलचम्पू ग्रंथ में कुंडिनपुर एवं वरदा तथा पयोष्णी नदी का मार्मिक वर्णन किया है। जातकाभरण, मुहूर्त-मार्तण्ड, मुहूर्त-चिन्तामणि आदि प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथों के रचयिता ढूंढिराज, नारायण और नीलकंठ आदि ज्योतिषियों ने विदर्भ देश को अलंकृत किया था। कवियों और विद्वानों के आश्रय स्थान के रूप में कलचुरियों की राजधानी त्रिपुरी की अच्छी ख्याति थी। राजशेखर ने यहां रह कर विद्धशाल भंजिका नामक नाटिका की रचना की थी। उनके अन्य नाटक—बाल भारत, बाल रामायण, कर्पूरमंजरी (प्राकृत नाटक) सुप्रसिद्ध हैं। उनका काव्य मीमांसा (अपूर्ण) साहित्य समीक्षा पर अनूठा ग्रंथ है। तत्कालीन साहित्यिक और सामाजिक परम्पराओं की सूचना देने में काव्य मीमांसा अर्थशास्त्र और महाभाष्य के समान है।

त्रिपुरी के महाराज कर्णदेव के समय मे गंगाधर कवि शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान थे। काश्मीर के प्रसिद्ध पर्यटक कवि विल्हण ने त्रिपुरी के कवि गंगाधर को शास्त्रार्थ मे हराया था। बाद में कर्णदेव के आश्रय में रह कर विल्हण ने "कर्णसुन्दरी" नामक नाटिका की रचना की थी। "विक्रमाङ्क देव चरित" नामक ऐतिहासिक महाकाव्य और "चौर-पंचाशिका" नामक श्रृङ्गार रसपूर्ण श्लोक संग्रह इन्ही बिल्हण की प्रसिद्ध कृति है। १२वी शताब्दी में पृथ्वीधर और शशिधर त्रिपुरी के प्रख्यात राजकवि थे। उनमे से एक धरणीधर को प्रशस्तिकारों ने गौरव के साथ "त्रिभुवन दीपक" कहा है। त्रिपुरी के समान दक्षिण कोशल की राजधानी श्रीपुर (वर्तमान सिरपुर) भी संस्कृत के विद्वानों का केन्द्र था। यहां के सोमवंशी राजाओं के आश्रय मे सम्मानित "विद्याकला पारग" तथा कविराज पण्डितवर ईशान, कविकुलगुरु भास्कर भट्ट और वैद्य श्रीकृष्ण दण्डी के नाम उल्लेखनीय है। सोमवंशी त्रिकलिंगाधिपति राजा ययाति स्वयं एक अच्छे कवि थे। उपर्युक्त प्रथित यश कवियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे भी कवि हैं—जिनकी काव्य प्रतिभा का परिचय तत्कालीन राज-प्रशस्तियो में मिलता है। इन प्रशस्तियों में इतिहास निर्माण के लिये महत्वपूर्ण सामग्री के अतिरिक्त संस्कृत कविता की उत्तमोत्तम शैलियों का भी दिग्दर्शन होता है। मध्यप्रदेश की विभिन्न रियासतों मे प्राप्त राज-प्रशस्तियो, शिला लेखों और ताम्रपटों में पाये जाने वाले गद्य और पद्य के कवित्वपूर्ण अवतरण हमारे प्रान्त के संस्कृत साहित्य-निर्माण की उच्च-परम्परा का परिचय देते हैं।

मध्यप्रदेश के विविध स्थानो में प्राप्त विशाल हस्तलिखित संग्रहों में उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियां छिपी हुई हैं। वस्तर के राज्य पुस्तकालय में अनेक ग्रंथों का पता चलता है। भोसलों के यहां भी अच्छा ग्रंथ संग्रह है। महाकोशल और विदर्भ के समृद्ध कुलों तथा पंडित घरानों मे जो विपुल वाङ्मयीन सामग्री बिखरी पड़ी है, उसकी खोज, परीक्षण और संरक्षण शीघ्र होना चाहिये। अन्यथा, कालचक्र के फेर में इनका अस्तित्व चिर काल तक नही रहेगा। प्राचीन साहित्यिक कृतियों क परिचय के बाद अब हम अपेक्षाकृत नवीन मौलिक ग्रंथों का निर्देश करेंगे। मंडला में प्राप्त रूपनाथ कृत "गढेश नृप वर्णन" और लक्ष्मी प्रसाद कृत "गजेन्द्र मोक्ष" काव्य क्रमशः ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व की कृति हैं। पटना स्थान के वैजलदेव का संस्कृत व्याकरण पर "वैजलकारिका" ग्रंथ, सम्बलपुर निवासी गंगाधर मिश्र विरचित "कोशलानन्द" काव्य, रतनपुर के तेजनाथ शास्त्री का पद्यात्मक "रामायण सार संग्रह" आदि ग्रंथ हमारे प्रान्त की वाङ्मय निर्माण सम्बन्धी प्राचीन परम्परा के परिचायक हैं। रुद्रकवि विरचित—"नवाव खानखाना चरित", गणेश कवि रचित "शौरि सुरत तरंगिणी", नागपुरीय गंगाधर कवि के विविध विषयों पर अनेक ग्रंथ नागपुर विश्वविद्यालय के हस्तलिखित संग्रहालय मे सुरक्षित है। कायस्थ कुल भूषण पं. रेवाराम बाबू के गीतमाधव, गंगालहरी, नर्मदा-लहरी आदि अनेक ग्रंथ साहित्य निर्माण मे ब्राह्मणेत्तर विद्वानो के सक्रिय सहयोग के दिग्दर्शक है। शतकत्रय (नीति-शतक, श्रृङ्गारशतक, वैराग्य शतक) की भाति एक चतुर्थ "विज्ञान शतक" भी किसी अन्य भतृहरि ने रचा था। उसका प्रकाशन नागपुर में हो चुका है। श्री. मा. ना. डाऊ की "विनोद लहरी" मे श्लेष-अनुप्रास आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग के साथ विनोदपूर्ण कवित्व चमत्कार भी दृष्टिगोचर होता है। भट्ट जी शास्त्री घाटे की "उतर राम चरित" पर भाव भूतार्थ बोधिनी टीका ग्रंथकार की विद्वत्ता का परिचय देती है। काव्य निर्माण कौशल की परम्परा में महामहो-पाध्याय केशव गोपाल ताह्मन और शिवदासपन्त वारलिंगे की रचना नैपुण्य प्रशंसनीय है। ताह्मन काव्य संग्रह और शंकराचार्य जन्म काल काव्यम् में क्रमशः इनका परिचय मिलता है। कृष्ण शास्त्री घुले का "हरिहरीयम्" एक द्व्यर्थक स्तोत्र है—जिसमे कल्पना के साथ भाषा प्रभुत्व भी स्पष्ट परिलक्षित है। रायगढ के राजा चक्रधरसिह ने विद्वानों की सहायता से संगीत शास्त्र के तीनो अंगों पर सचित्र ग्रंथ लिखवाये थे। उनके नाम "नर्तन सर्वस्व", "तालतोयनिधि" और "रागरत्नाकर" है। जबलपुर के व्योहार रघुवीरसिह ने पडितो द्वारा "विद्वन्मोद तरगिणी" मे विविध शास्त्रों के सिद्धान्तो का काव्यमय वर्णन करवाया है।

उक्त साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त, शास्त्रीय विषयो पर भी मध्यप्रदेश के आधुनिक विद्वानों का अच्छा योग-दान है। ज्योतिष शास्त्र पर डॉ. दफ्तरी ने अनेक ग्रंथ लिखे है। वैदिक काल गणना पद्धति, भारतीय ज्योतिःशास्त्र

परीक्षण आदि। मीमासा शास्त्र पर मीमासा सूत्र विमर्श उनके मौलिक चिन्तन का परिचायक है। डॉ ज्वाला-प्रसाद ने सूत्र शैली में "भारतीय दर्शनम्" की रचना कर यह सिद्ध कर दिया है कि नवीनतम दार्शनिक चिन्तन भी सस्कृत में किये जा सकते है। कृष्णशास्त्री घुले का "सापिड्य भास्कर" और "होमध्याय दिवाकर" धर्मशास्त्र और वैदिक कर्मकाण्ड पर पाडित्यपूर्ण और प्रगल्भ शैली में लिखे विवेचनीय ग्रथ है। दासोपन्त गोगावी ने पुरुष सूक्त पर पुरुष सूक्तार्थ प्रकाश नामक विशद और भावपूर्ण भाष्य लिखा है।

ऊपर के सक्षिप्त विहगावलोकन में मध्यप्रदेशीय सस्कृत वाङ्मय के मूल ग्रथो का एक अति सक्षिप्त आभास मात्र दिखाया है। इस वाङ्मयीन सामग्री का अवलोकन कर खोजपूर्ण निबधो या पुस्तको के द्वारा गत अर्द्ध शती में प्रदेश ने गवेषणा का महत्वपूर्ण कार्य किया है—उसका निरूपण एक स्वतत्र निबध का विषय है। निर्माण और समीक्षा ये दो भिन्न भिन्न कार्य है। यहा निर्माण सबधी कार्य का ब्यौरा दिया गया है—समीक्षण सबधी कार्य का नही। समीक्षण कार्य के क्षेत्र में भी मध्यप्रदेश ने अपना योगदान दिया है। अभी तो प्राकृत में यही वक्तव्य है कि सृजन या निर्माण के क्षेत्र में भारत-भारती के चरणों में मध्यप्रदेश ने जो पुष्पाञ्जलि चढाई है—वह गुण और परिमाण, दोनो में सर्वथा श्लाघनीय है।

मध्यप्रदेश का पाली, प्राकृत और अपभ्रंश-साहित्य

श्री हीरालाल जैन

भारत में आर्य भाषा के विकास के तीन युग माने गये हैं—प्राचीन, मध्य और वर्तमान। प्राचीन भाषा का स्वरूप वेदो मे और विशेषत: ऋग्वेद के प्राचीनतम अंशो मे मिलता है। तत्पश्चात् भाषा का विकास दो भिन्न धाराओं में हुआ दिखाई देता है। एक ओर प्राचीन भाषा की विधियों और विकल्पों का संस्कार कर के "संस्कृत" भाषा का आविष्कार हुआ और दूसरी ओर "प्राकृत" का। संस्कृत "शिष्टो" की भाषा हुई जिसका संसार प्रसिद्ध सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण पाणिनि मुनि द्वारा लिखा गया। यह व्याकरण अष्टाध्यायी के नाम से प्रख्यात है। लगभग विक्रम पूर्व पाचवी शताब्दी में संस्कृत भाषा के साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जो कालिदास और भवभूति के समय मे अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचा।

संस्कृत भाषा की ध्वनियों और व्याकरण की विधियों का स्वरूप ऐसा है कि उसे विना अभ्यास व अध्ययन के प्रयोग में उतारना सरल नहीं है। इसी से संस्कृत जनता की भाषा नहीं हो सकी। वह शिक्षित समाज तक ही सीमित रह गई। जन-भाषा का जो प्राचीनतम स्वरूप था, वह "प्राकृत" भाषा में प्रवाहित होता हुआ क्रमश: पाली और प्राकृत भाषाओं के साहित्य में प्रकट हुआ। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध ये दोनों जन-नायक और धर्मोपदेशक विक्रम पूर्व पांचवी शताब्दी में हुए। इन्होंने अपने उपदेश का माध्यम शिष्टों की भाषा संस्कृत को नही, किन्तु जन-भाषा "प्राकृत" को वनाया। उन की भाषा सामान्य रूप से "मागधी" कहलाती है। ये दोनों महापुरुष मगध देश में उत्पन्न हुए थे, और उस समय मगध की जो जन-भाषा थी, उसी को स्वभावत: उन्होंने अपनाया। वही मध्ययुग की आर्य भाषा का आदितम रूप माना जाता है।

भगवान महावीर और बुद्ध के समय का लिखा हुआ कोई प्राकृत ग्रन्थ उपलब्ध नही है। उक्त महात्माओं के उपदेशों का संकलन उनके शिष्यों द्वारा किया गया माना जाता है। जो बौद्ध साहित्य उपलव्ध है, वह मुख्यत: "त्रिपिटक" में संग्रहीत हुआ और लंका से आया है। धार्मिक उत्क्रान्ति के कारण इस त्रिपिटक का कोई ग्रंथ इस देश में सुरक्षित नही रहा। त्रिपिटक की भाषा "पाली" नाम से प्रसिद्ध है, जो यथार्थत: प्राकृत का ही एक विशेष रूप है।

पाली साहित्य—भारत की संस्कृति और इतिहास में बौद्ध धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में जो समस्त एशिया खंड में और क्रमश: समस्त सभ्य संसार में जो भारत की ख्याति हुई, वह प्राय: इसी धर्म के आधार से। आज भी चीन, जापान, श्याम, बर्मा, तिब्बत और लंका आदि देशों में इसी धर्म के प्रचार के कारण इस देश की भूमि को पुण्य और पवित्र माना जाता है। उन देशों का साहित्य भी बौद्ध साहित्य से अनुप्राणित और प्रभावित है। भारत वर्ष का तो साहित्य ही नही समस्त कला-कौशल व विज्ञान भी इस धर्म का बहुत ऋणी है। यहां की प्राचीनतम लिपि और लेखन कला के नमूने बौद्ध धर्माश्रित ही पाये जाते हैं। महाकाव्य और नाटक के प्रथम आदर्श कनिष्ककालीन बौद्ध लेखक अश्वघोष की कृतियों मे ही हमे मिलते हैं। कथा-साहित्य में प्राचीनता, रोचकता, नीति और उपदेश की दृष्टि से बुद्ध जातकों की तुलना क ग्रंथ दूसरे नहीं। बौद्ध गुफ़ाओं, मूर्तियों और चित्रों की कला भारत के गौरव का अनुपम आधार है। आज भारतीय राष्ट्र का प्रतीक जो सारनाथ का सिंह स्तम्भ चुना गया है, वह भारत के बौद्ध धर्म के प्रति ऋण का एक उदाहरण है।

मध्यप्रदेश का बौद्ध धर्म से बड़ा प्राचीन सम्बन्ध रहा है। जबलपुर जिले में रूपनाथ नामक स्थान से मौर्य सम्राट् अशोक का एक शिलालेख मिला है, जिसमें सम्राट् ने अपने स्पष्ट रूप से बुद्ध भगवान् के अनुयायी होने की घोषणा की है और जनता से यह प्रेरणा की है कि धर्म और सदाचार के हेतु लोगो को परिश्रमशील होना चाहिये। रूपनाथ का यह शिलालेख भारत की ब्राह्मी लिपि और लेखन कला का एक प्राचीनतम उदाहरण होते हुए मध्यप्रदेश में पाली रचना का एक उत्तम उदाहरण है, अतएव उसका कुछ अंश यहा मूल रूप मे उद्धत करना अनुपयुक्त न होगा—

"देवानपिये हेव आह। सातिरेकानि अढतियानि वय सुमि प्रकास सके। नो चु बाढि पकने। साति-लेके चु सवछरे य सुमि हक सघ उपेते बाढि च पकते। या इमाय कालाय जबुदिपसि अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा। पकमसि हि एस फले। नो च एसा महतता पापोतवे खुदकेन पि पकममिनेना सकिये विपुले पि स्वगे आराधेतवे। एतिय अठाय च सावने कटे खुदका च उडाला च पकमतु ति अता पि च जानतु इय पकरा व किति चिरठितिके सिया।"

(देवप्रिय (राजा अशोक) का यह कहना है कि अढाई वर्ष से भी अधिक काल मुझे प्रकट शाक्य हुए हो गया। किन्तु मने (पहले) अधिक पराक्रम (उद्योग) नही किया। इधर एक वर्ष से कुछ अधिक हुआ तब मै सघ में आया और तब मन खूब उद्योग किया। इस काल के भीतर जम्बू द्वीप में जो देव अमिश्र थे, वे मिश्र बना दिये गये। (अर्थात् देवो और मनुष्यो के बीच मेल जोल बढा दिया गया) यह सब उद्योग का फल है। बडे पुरुषो के उद्योग से ही ऐसा हो सकता है, सो बात नही। छोटे बडे सभी अपने-अपने उद्योग से उच्च स्वर्ग का आरोहण कर सकते है। इसी प्रयोजन से यह बात मैंने को सुनाई गई है कि छोटे-बडे सब उद्योग करें, अन्त तक के लोग जान जाय कि पराक्रम क्या चीज है और यह शासन चिरस्थायी होवे।)

रूपनाथ के इस शासन के द्वारा बुद्धानुयायी सम्राट् अशोक के आज से कोई सवा दो हजार वर्ष पूर्व जनता में छोटे-बडे, नीच-ऊँच की भावना मिटाने सबको समान रूप से उन्नति के पथ पर आरूढ करने और उन्हें उद्योगी बनाने के महान् प्रयत्न की सूचना मिलती है। यह भी जान पडता है कि उस समय इस देश का नाम जबू द्वीप था। लेख की भाषा में मागधी प्राकृत के भी लक्षण दिखाई देते है।

मध्यप्रदेश के अनेक भागो में जो बौद्ध पुरातत्त्व के भग्नावशेष मिले है, उनसे जाना जा सकता है कि बौद्ध संस्कृति की परम्परा यहा दीर्घ काल तक प्रचलित रही। इन भग्नावशेषो में भादक की दगबा नामक गुफा, रायपुर जिले के तुरतुरिया नामक स्थान का भिक्षुणी विहार, रामगढ के गुफा नाट्यगृह, रामटेक की नागार्जुनी गुफा, पचमढी की पाडव गुफाओ के नाम से प्रसिद्ध गुफाएँ, सालबर्डी के अध बने व ध्वस्त मदिर आदि प्रसिद्ध है। बौद्ध धर्म के सुप्रसिद्ध दार्शनिक लेखक नागार्जुन का इस प्रदेश से सम्बन्ध एक गौरव की वस्तु है। किन्तु मध्यकाल से इस प्रदेश में ही नही, किन्तु समस्त भारत मे से बौद्ध धर्म का क्रमश लोप हो गया और उसके साथ ही बौद्ध साहित्य भी लुप्त हो गया। पाली भाषा में त्रिपिटक नाम से प्रसिद्ध जो साहित्य अब ससार को उपलब्ध है, वह सिंहल द्वीप में सुरक्षित साहित्य है, जिसकी प्रतिलिपिया श्याम और बर्मा में भी पाई गई है। ऐसी अवस्था में यदि इस प्रदेश में पाली के कोई प्राचीन ग्रथ आदि, न पाये गये हो, तो कोई आश्चर्य की बात नही। अब देश में बौद्ध धर्म और साहित्य की ओर लोगो की रुचि उत्पन्न हुई है, और प्रथम बार पाली साहित्य के कुछ ग्रथ नागरी लिपि में प्रकाशित हुए है। इधर अनेक वर्षों से नागपुर विश्व-विद्यालय ने अपने पाठ्यक्रम में पाली भाषा और साहित्य को भी इटर, बी ए व एम ए तथा प्राज, विशारद और शास्त्री परीक्षाओ मे स्थान दिया है, एव नागपुर महाविद्यालय मे एम ए तक पाली-प्राकृत पढाने की व्यवस्था भी की गई है। नागपुर में एक बौद्ध सोसायटी भी स्थापित है, जो अपने ढग से अपने अल्प साधनो द्वारा इस क्षेत्र में कार्य कर रही है। पाली साहित्य के सशोधन प्रकाशन का कार्य इस प्रदेश में यदि कुछ हुआ है, तो वह वैयक्तिक प्रयत्न का ही फल है, किसी सरकारी व अन्य सस्था का इस ओर कोई ध्यान नही गया। श्री भदन्त आनन्द जी कौसल्यायन ने कुछ पाली ग्रथो का सशोधन व अनुवाद किया है और वे अनेक वर्षों तक वर्धा में स्थापित राष्ट्र भाषा प्रचार समिति

के मंत्री रहे हैं। इस नाते इन ग्रन्थों का इस प्रदेश से सम्बन्ध कहा जा सकता है। भदंत जी द्वारा, जहा तक मुझे ज्ञात है, निम्न पाली ग्रन्थों का सम्पादन व अनुवाद हुआ है :—

(१) धम्मपद—मूल व हिन्दी अनुवाद सहित (महावोधि ग्रन्थमाला–५, १९३८)।

(२) सच्च संगहो—मूल पाली संकलन, भूमिका सहित (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९४०)। यह ग्रन्थ सम्मेलन की परीक्षाओ तथा नागपुर विश्वविद्यालय के बी.ए. के पाली कोर्स मे नियत है।

(३) वुद्ध वचन—सच्च संगहो का हिन्दी अनुवाद (महावोधि पुस्तक भंडार)।

(४) महावंश—हिन्दी अनुवाद (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९४१)।

(५) जातक—हिन्दी अनुवाद, भाग १—४ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९४१, १९४२, १९४६ और १९५१)। इनमें ५०० जातकों का अनुवाद आ गया है। शेष ४७ अगले दो खण्डो में पूर्ण करने का भदंत जी का संकल्प है। देखिये, ये कब प्रकाशित हो पाते है।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य—भगवान महावीर जैन धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर माने जाते है। उनके उपदेशों का संकलन "द्वादशांग" आगम में किया गया, जिसकी भाषा "अर्ध मागधी" नाम से प्रसिद्ध है। इस आगम का श्रुत परम्परा से ही प्रचार होता रहा, जिससे क्रमशः उस आगम का आदितम स्वरूप लुप्त होता गया। अन्ततः महावीर निर्वाण के ९८० वर्ष पश्चात् वल्लभी नगर में जैन मुनि संघ का एक वृहत् सम्मेलन हुआ, जिसमे उक्त द्वादश आगमो में से ग्यारह आगमों का उद्धार कर उन्हे पुस्तकाकार रूप दिया गया। बारहवे अंग का उद्धार नही हो सका, किन्तु इन ग्यारह आगमों और उनके साथ ही संकलित कोई पैंतीस अन्य ग्रंथो को जैन समाज के एक अंग श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे ही धार्मिक मान्यता प्राप्त है। दिगम्बर सम्प्रदाय का मत है कि समस्त द्वादशाग आगम लुप्त हो गया। केवल उनके आधार से बनाये हुए पीछे के ग्रंथों को ही वे मान्यता प्रदान करते है। इस साहित्य का सवसे प्राचीन ग्रंथ "षट्-खंडागम है," जिसकी रचना द्वादशांग श्रुत के बारहवें अंग दृष्टिवाद के आधार से हुई मानी जाती है। यह रचना सूत्र रूप है और उसका काल लगभग विक्रम की दूसरी शताब्दी सिद्ध होता है। षट्खंडागम की सुविस्तृत और प्रख्यात "धवला" नामक टीका की रचना विक्रम की नवी शताब्दी में हुई। षट्खंडागम की प्रायः समकालीन दूसरी रचना "कषाय प्राभृत" है, जो मूलतः गाथा रूप है। उस पर 'वृत्ति', 'चूर्णि' और विस्तृत 'जय धवला' नामक टीका की रचना क्रमश : नवीं शताब्दी तक हुई। इस सब रचनाओं की भाषा "शौरसेनी" हैं। शूरसेन मथुरा का प्राचीन नाम है और उस प्रदेश से इसका आदिम संबंध होने के कारण वह शौरसेनी प्राकृत कहलाती है। कुंदकुदाचार्य आदि अनेक आचार्यो ने इसी शौरसेनी प्राकृत मे अपने पद्यात्मक ग्रंथों की रचना की।

"पैशाची" प्राकृत की एक महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना थी गुणाढ्य कवि कृत वृहत्कथा। दुर्भाग्य से यह रचना अब अपने मूल रूप मे उपलब्ध नहीं है। केवल उसके संस्कृत रूपान्तर कथासरित्सागर, वृहकत्थामंजरी आदि प्राप्त होते हैं। पैशाची प्राकृत पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा अनुमान की जाती है, जहा अब उसी प्राकृत की उतराधिकारिणी "पश्तो" भाषा बोली जाती है।

प्राकृत लोक-साहित्य में जिस भाषा ने विशेष ख्याति प्राप्त की वह है "महाराष्ट्री प्राकृत"। महाकवि दण्डी ने कहा है कि प्राकृत ने महाराष्ट्र प्रदेश का आश्रय पाकर जो रूप धारण किया, वह सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसी प्राकृत मे अच्छे सुभाषितों की रचना हुई, जिसके उदाहरण "सेतुबन्धादि" काव्य विद्यमान है। महाराष्ट्री प्राकृत की एक अत्यन्त सुन्दर रचना है "गाथा सप्तशती," जिसका प्रभाव न केवल संस्कृत की अनेक रचनाओं पर अपितु हिन्दी की "सतसई" जैसी रचनाओं पर भी प्रचुरता से पाया जाता है। संस्कृत नाटककारों मे तो यह प्रथा ही बन गई कि प्राकृत में यदि पद्य-रचना करना हो तो महाराष्ट्री प्राकृत में और गद्य लिखना हो तो शौरसेनी प्राकृत मे लिखा जाय।

उक्त प्राकृत भाषाओ का विकास और उनमें साहित्यिक रचनाओ का क्रम विक्रम की छठी शताब्दी तक अपनी उत्कृष्ट सीमा पर पहुँच गया था। उनका साहित्यिक रूप भी ऐसा सुघटित हो गया था कि वह जन-भाषा से मेल नही खाता था। लोक में बोली जाने वाली भाषा सदैव अपनी कुछ मौलिक प्रवृत्तियो को लिये हुए विकास शील हुआ करती है। किन्तु साहित्य की भाषा जन-भाषा का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व थोडे ही काल तक कर पाती है। जहा उसकी शैली, शब्दावलि व अलकार योजना आदि व्यवस्थित हुई और उसका व्याकरण बना, तहा वह जन भाषा से उत्तरोत्तर दूर हटने लगती है। छठी शताब्दी के लगभग उक्त प्राकृतो की यही दशा हो चली थी। अतएव उस काल की लोक-वाणी को साहित्य में उतारने का नया प्रयत्न किया गया और "अपभ्रश" भाषा की रचनाएँ प्रस्तुत हुई। अपभ्रश भाषा को प्राकृत का अन्तिम रूप और वर्तमान भाषाओ का आदिम रूप कहा जा सकता है। इसी कारण अपभ्रश साहित्य का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। वह इस देश की भाषाओ के विकास-क्रम को जोडने वाली अति आवश्यक कडी है। जब तक अपभ्रश भाषा का साहित्य सम्मुख नही आया था, तब तक हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओ के विकास को दशवी शताब्दी से पूर्व समझने का कोई साधन ही नही था। उनका सस्कृत व प्राकृत से विकास तो मानते थे, किन्तु उनका यह रूप कैसे निकल पडा, यह वैज्ञानिक ढग से समझने समझाने की सामग्री उपलब्ध नही थी। अपभ्रश साहित्य ने सम्मुख आकर इस कठिनाई को दूर कर दिया। इस अपभ्रश साहित्य की सुरक्षा, खोज, शोध और प्रकाशन में मध्यप्रदेश का गौरवपूर्ण स्थान है।

सस्कृत और प्राकृत के प्राचीन साहित्य को सुरक्षित रखना मुसलमानी शासन काल में एक बडी चिन्ता की बात हो गई थी। पद-पदपर उसको जला कर भस्म कर दिये जाने का भय लोगो को सताता रहता था। और इसी कारण ग्रथ भडारो को गुप्त रखने की प्रथा चल पडी। अग्रेजी शासन काल में जब अग्रेजो का ध्यान इस साहित्य की ओर गया और उसका महत्व उनकी समझ में आया, तब वे इस साहित्य की खोज बीन करने का प्रयत्न करने लगे। अग्रेजी शासन के इस प्रयत्न की झलक हमें सन् १८७८ ईस्वी में प्रकाशित गफ साहब के—"Collection of papers relating to the collection and preservation of the records of Ancient Sanskrit Literature in India" (अर्थात् भारत में प्राचीन सस्कृत साहित्य के ग्रथो के सग्रह एव सरक्षण से सम्बद्ध विवरणों का सग्रह) में मिलती है। भारत सरकार के इस सम्बन्ध के प्रयत्न के फल-स्वरूप सस्कृत प्राकृत ग्रथो की अनेक सूचिया तैयार हुइ। सन् १८६८ में सरकार ने इस कार्य के लिये देश को दो मडलो में बाटा—एक उत्तरी मडल और दूसरा दक्षिणी मडल। उत्तरी मडल में सस्कृत प्राकृत ग्रथो की खोज लगाने और सूची बनाने का कार्य डॉ बूलर के अधीन किया गया और दक्षिणी मडल का कार्य डॉ कीलहान के अधीन। मध्यप्रदेश दक्षिणी मडल में सम्मिलित किया गया था और सूची निर्माण का कार्य प्रान्तीय शिक्षा विभागो की सहायता से किया जाता था। इस प्रकार इस प्रदेश में उपलब्ध प्राचीन ग्रथो की जो सूची तयार होकर, सन् १८७४ ईस्वी में—" A classified alphabetical catalogue of Sanskrit manuscripts in the Central Provinces" मध्यप्रान्त में सस्कृत पाण्डुलिपियो की एक वर्गीकृत अक्षरानुक्रमणी सूची) नाम से प्रकाशित हुई, उसमें हमें १८२५ पोथियो का उल्लेख मिलता है। इनमें ७०६ सागर जिले की, ६६६ चादा जिले की, ३०६ नागपुर जिले की और शेष १०८ अन्य छ जिलो की पोथिया थीं। स्पष्टत यह खोज और सूची इस प्रान्त के लिये बहुत अपूर्ण थी। खोज का कार्य केवल बडे शहरो मात्र में किया गया था और वहा भी केवल कुछ राजा-रईसो के सग्रह मात्र देखे गये थे। यह बात उस समय की बम्बई सरकार को भी खटकी और उसने सन् १६०३ ई में प्रोफेसर श्रीधर भण्डारकर को मध्यप्रदेश, मध्यभारत और राजपुताने में दौरा कर प्राचीन ग्रथो की खोज करने और सूची बनाने के कार्य में नियुक्त किया। किन्तु इस विद्वान् का मत था कि "साहित्यिक वर्ग का जहा सर्वथा अभाव है, ऐसे मध्यप्रदेश में सस्कृत के बहुत ग्रथो के मिलने की कोई आशा नही की जा सकती।" अतएव उन्होने इस प्रान्त में पदार्पण भी नही किया।

तत्पश्चात् सन् १६१२ में शिमला में प्राच्य विद्वानो की एक सभा हुई, जिसमें उन्होने सस्कृत ग्रथो के सग्रह और सूची निर्माण के कार्य के लिये सरकार से बहुत अनुरोध किया। तदनुसार भारत-सरकार ने प्रान्तीय-सरकारो को

इस कार्य में कदम उठाने की प्रेरणा की और सहायता का वचन दिया। इस प्रेरणा के फलस्वरूप, मध्यप्रदेश की सरकार ने इस प्रदेश के संस्कृत प्राकृत ग्रंथों की सूची बनाने का कार्य राय बहादुर हीरालाल जी के सुपुर्द किया। इस कार्य क लिये रायबहादुर साहब को केवल कुछ मासों की ही अवधि और बहुत ही थोड़ी रकम खर्च करने की अनुमति दी गई थी। तथापि उन्होने उन्ही सीमाओं के भीतर बड़ी लगन से काम कर के जो सूची तैयार की, उसमे ८१८५ हस्त-लिखित ग्रंथों का उल्लेख है। यह सूची—"Catalogue of Sanskrit and Prakrit manuscripts in the Central Provinces & Berar" (मध्यप्रान्त और बरार में संस्कृत और पाली पाण्डुलिपियों की सूची) इस नाम से प्रान्तीय सरकार द्वारा सन् १९२६ में प्रकाशित हुई थी। यथार्थतः यह सूची भी इस प्रदेश के लिये पर्याप्त नही है। इसका अधिकांश संकलन शासनाधिकारियों द्वारा मंगवाई गई सूचियों के आधार पर ही किया गया है। इस में कारंजा के जैन शास्त्र भंडारों के केवल १,२६४ ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। ग्रंथों का पर्याप्त परिचय भी नही दिया जा सका है। इस कारण इस प्रदेश के प्राचीन ग्रंथों की सूची का कार्य विधिवत् सम्पादित किये जाने की अभी भी बड़ी आवश्यकता है। स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात् विलीन की गई देशी रियासतों व रजवाड़ों के ग्रंथ भंडारों का तो इस सूची में स्वभावतः निर्देश भी नही हुआ है। इस कारण इस प्रदेश की प्राचीन साहित्यिक निधि का यत्नपूर्वक खोज-शोध कर के विधिवत् सूची बनाने का कार्य अभी भी अवशिष्ट ही पडा है। तथापि प्रकाशित सूची मे जिन ज़रूरी प्राकृत ग्रंथों का और विशेषतः अपभ्रंश ग्रंथों का उल्लेख आया है, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण है, और उनसे इस प्रदेश की साहित्यिक निधि को बड़ा गौरव प्राप्त हुआ है।

सूची में १०–१२ अपभ्रंश ग्रंथों का उल्लेख है, जिनके कुछ महत्वपूर्ण अवतरण भी सूची के अन्त में दे दिये गये थे। इनके सम्मुख आने से विद्वत्समाज मे बड़ा कौतुक बढ़ा, क्योंकि अभी तक अपभ्रंश साहित्य कही भी अन्यत्र इतनी बड़ी मात्रा में नहीं पाया गया था। विद्वानों की इसी उत्सुकता से प्रेरित होकर इस लेख के लेखक ने इन ग्रंथों के सम्पादन व प्रकाशन का आयोजन किया, जिसके फलस्वरूप कारंजा जैन ग्रंथ माला मे निम्न ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है :—

(१) **जसहर-चरिउ** (यशोधर चरित्र)—यह अपभ्रंश काव्य महाकवि पुष्पदन्त की रचना है और रचना-काल है, दशवी शताब्दी। इसका सम्पादन, भूमिका, शब्दानुक्रमणी और टिप्पणों आदि सहित डॉ. परशुराम लक्ष्मण वैद्य द्वारा हुआ है, जो इस समय दरभंगा की संस्कृत इंस्टिट्यूट के संचालक है। इसका प्रकाशन सन् १९३१ ई. में हुआ था। यदि आप इस कविता का कुछ रसास्वादन भी यही करना चाहते है, तो यौधेय देश के राजा मारिदत्त का थोड़ा सा वर्णन सुन लीजिये—

चाएण कण्णु विहवेण इंदु। रूवेण कामु कंतीए चंदु॥
दंडें जमु दिण्ण पयंड-घाउ। पर-बल-दुम-दलण बलेण वाउ॥
सुर-करि-कर-थोर-पयंड-बाहु। पच्चंत-णिवइ-मणि दिण्ण-दाहु॥

अर्थात् राजा मारिदत्त त्याग में कर्ण, वैभव में इन्द्र, रूप मे कामदेव और कान्ति मे चन्द्र के समान थे। अपराधी को दण्ड देने मे उनका घात यमराज के समान ही प्रचण्ड होता था। उनके विशाल बाहु इन्द्र के हाथी की सूंड के समान प्रकाण्ड थे। उनके प्रताप से, उनके सीमान्त राजाओं के मन में सदा दाह बना रहता था।

२. **णायकुमार चरिउ** (नागकुमार चरित)। यह भी महाकवि पुष्पदन्त की रचना है जिसका सम्पादन डा. हीरालाल जैन द्वारा और प्रकाशन सन् १९३३ मे हुआ। भूमिका, शब्दकोश, टिप्पणी आदि से ग्रंथ महत्वपूर्ण हो गया है। इस ग्रंथ का भी थोड़ा सा रसास्वादन कीजिये। योद्धा युद्ध की तैयारी कर रहे है। वे अपने-अपने मन में क्या-क्या मनसूबे बांध रहे है :—

सण्णज्झतु भणइ भडु वच्चमि। अज्जु वइरि-सीसें रण अच्चमि ॥
खग्गिंडवि अज्जु वइरि वण सोणिउ। वड्ढउ असिवरे मेरउ पाणिउ ॥
को वि भणइ उज्जुय पय दोपिणु। पिसुण कव्वु पहु पुरउ लुणेप्पिणु ॥
हुयवहे घिवमि पेक्खु सहउत्तणु। कते महारउ ण सुकइत्तणु ॥

एक भट कवच धारण करता जाता है और अपनी प्रिया से कह रहा है, "हे प्रिये! आज मैं वैरी के शिर में रण-भूमि की पूजा करने जा रहा हूँ। शस्त्रप्रहार द्वारा वैरी के रक्त बहाने के लिये मेरा हाथ मेरी तलवार पर बढ़ रहा है।" दूसरा एक योद्धा अपनी प्रेयसी से कह रहा है, "हे कान्ते! आज मेरा सुभटत्व और सुकवित्व देखो। सीधे कदम बढ़ाकर और वर्गी के शरीर को अपने प्रभु के सम्मुख छिन्न भिन्न करके मैं उसी प्रकार आग में झोंकने वाला हूँ जिस प्रकार कि कोई बड़ा कवि राजा की सभा में अपनी सुन्दर पदावलि सुनावे और अपने विरोधी कवि के काव्य को प्रभु के सम्मुख फाड़कर आग में जला दे।"

३ सावय-धम्म दोहा (श्रावक धर्म दोहा)। इसका सम्पादन, हिन्दी अनुवाद, भूमिका, शब्दकोश, टिप्पण आदि सहित डॉ० हीरालाल जैन ने किया है और प्रकाशन सन् १९३२ में हुआ है। इसमें २२४ नीति और धर्म विषयक दोहे हैं। एक दो दोहे सुनिये —

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउजेण।
अमिउ तिसें वासरु तमिण जिम मरगउ कच्चेण ॥

दुर्जन संसार में सुखी रहे, क्योंकि वह सज्जन को उसी प्रकार प्रकाश में लाता है जिस प्रकार विष अमृत को, अंधकार दिवस को और काच मरकतमणि को चमका देता है।

सुहियउ हुवउ ण को वि इह रे जिय णर पावेण।
कद्दमि ताडिउ उट्ठियउ गिंदउ दिट्ठउ केण ॥

रे जीव! यहाँ कोई भी नर पाप कर्म के द्वारा सुखी नहीं हो सकता। जो गेंद कीचड़ में फेंकी जाती है उसे कभी किसी ने ऊपर उठते देखा है?

४ पाहुड दोहा — इसका सम्पादन भी पूर्वोक्त रीति से हिन्दी अनुवाद सहित डॉ० हीरालाल जैन ने किया है और प्रकाशन सन् १९३३ में हुआ है। इसके २२२ दोहों में सन्तों के रहस्यवाद का अच्छा प्रतिपादन मिलता है। आदि में ही लेखक अपने गुरु का परिचय इस प्रकार देता है —

गुरु दिणयरु गुरु हिमकिरणु गुरु दीवउ गुरु देउ।
अप्पा परह परंपरह जो दरिसावइ भेउ ॥

सूर्य मेरा गुरु है, चन्द्र मेरा गुरु है, दीपक मेरा गुरु है जहाँ से प्रकाश मिले और जो आत्म और पर के भेद का दर्शन करा दे वही सच्चा गुरु है।

आत्म और ब्रह्म में प्रेयसी और प्रेमी की कल्पना करके रहस्यवादी कवि कहता है—

हउ सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु।
एक्कहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु ॥

मैं सगुण हूँ और मेरा प्रियतम है निर्गुण, निर्लक्षण और निस्संग। इस कारण एक ही अंग (अंक—कोठे) में साथ-साथ रहने पर भी अंग से अंग नहीं मिल पाया।

५ करकंड-चरिउ (करकण्डू चरित)। इसका सम्पादन भी डॉ० हीरालाल जैन द्वारा अविकल अंग्रेजी अनुवाद आदि सहित होकर प्रकाशन सन् १९३४ में हुआ है। इसके कर्ता मुनि कनकामर हैं जिन्होंने

अपने समय के राजा विजयपाल, भूपाल और कर्ण का उल्लेख किया है। आश्चर्य नहीं जो ये राजा वे ही हों जिनका विजयपाल और उनके पुत्र भुवनपाल का उल्लेख दमोह जिले की हटा तहसील से प्राप्त एक शिलालेख में मिला है। जवलपुर से मिले एक लेख मे भूमिपाल राजा का उल्लेख है। यदि इन उल्लेखों का साम्य है तो आश्चर्य नही इस काव्य की रचना मध्यप्रदेश मे ही हुई हो। कवि ने अपने रचनास्थल का नाम आसाइ नगरी दिया है।

इस काव्य की एक नायिका रतिवेगा का पति नौका पर से कूद कर जल में डूब गया। उस समय नौका पर के पथिको मे जो व्याकुलता फैली और रतिवेगा की जो दशा हुई व उसने जो विलाप प्रारंभ किया उसका कुछ वर्णन सुनिये-

जाणर--पंचाणणु वियसिय-आणणु जलि पडिउ।
ता सयलहिं लोयहि पसरिय-सोयहिं अइउरिउ ।।
रइवेय सुभामिणि णं फणि-कामिणि विमणभया।
सव्वंगे कंपिय चित्ति चमक्किय मुच्छ गया।।
किय चमर-सुवाएं सलिल-सहाएं गण-भरिया।।
उट्ठाविय रमणिहिं मुणि-मण-दमणिहिं मणहरिया।।
सा कर यल-कमलहिं सुललिय-सरलहिं उरु हणइ।
उव्वाहुल-णयणी गग्गिर-वयणी पुणु भणइ।।
हा, वइरिय वइवस पावमलीमस किं कियउ।
मइं आसि वरायउ रमणु परायउ किं हियउ।।
हा, दइव परम्मुह दुण्णय दुम्मुहुं तुहुं हुयउ।
हा सामि सलक्खण सुट्ठु, वियक्खण कहिं गयउ।।

जब वह णर-केहरी करकंड प्रफुल्ल मुख सहित जल में कूद पड़ा, तब सब लोगों में शोक फैल गया और वे अत्यन्त भयाकुल हो उठे। कामिनी रतिवेगा जो नागकन्या के समान सुकोमल थी वड़ी विमनस्क हुई, वह सर्वाङ्ग कांप उठी, चित्त में उसके एक चमक हुई और वह मूर्च्छित हो गई। तव सुन्दरी सहेलियो ने शीतल चमरों की वायु से उसकी मूर्च्छा दूर की। सचेत होते ही रतिवेगा अपने कोमल हस्त कमलों से अपनी छाती पीट—पीटकर गद्गद होकर सजल नेत्रों सहित रोने लगी और कहने लगी— "रे वैरी पापी यम ! यह तूने क्या किया ? मैंने जिस पति को अभी हाल ही वरा था उसका तूने अपहरण क्यों कर लिया ? हा दैव ! तू इतना अन्यायी और पराङमुख क्यों हो गया ? हे मेरे सुलक्षण स्वामी ! तुम तो इतने समझदार और कुशल थे; तुम क्यों मुझे अकेली छोड़कर इस प्रकार चले गये?"

ये थोड़े से वे अपभ्रंश भाषा के ग्रंथ है जो कारंजा (अकोला) से प्राप्त होकर अभी तक प्रकाशित हो पाये है और जिनके द्वारा अपभ्रंश का अध्ययन-अध्यापन सुलभ हो गया है। अन्य अनेक ग्रंथ अभी भी प्रकाशन की वाट जोह रहे हैं।

ऊपर एक अपभ्रंश ग्रंथ के कर्त्ता मुनि कनकामर के इसी प्रदेश में काव्य रचना करने की संभावना का उल्लख किया जा चुका है। जिन महाकवि पुष्पदन्त के दो काव्यों का ऊपर परिचय कराया गया है और समस्त प्रकाशित अपभ्रंश साहित्य मे श्रेष्ठतम कवि कहे जा सकते है उनके सम्बन्ध में भी कुछ ऐतिहासिक वातें ध्यान देने योग्य है। उन्होंने अपने काव्यो में अपने कुल आदि का भी कुछ परिचय देने की कृपा की है जिसके अनुसार उनके पिता का नाम केशव भट्ट और माता का मुग्धादेवी था। वे आदित: काश्यप गोत्री ब्राह्मण और शिव के उपासक थे, किन्तु किसी जैन मुनि का उपदेश पाकर उन्होंने जैन धर्म ग्रहण कर लिया था और अंतत: जैन संन्यास धारण कर उन्होंने स्वर्गवास प्राप्त किया था। यह वात उनके णायकुमारचरिउ की प्रशस्ति में इस प्रकार पाई जाती है :—

सिव भत्ताइ मि जिण-सण्णासें। वे वि मयाइ दुरिय णिण्णासें ॥
बम्हणाइ कासव रिसि-गोत्तइ। गुरु-वयणामय-पूरिय सोत्तइ ॥
मुद्धादेवी-केसव-णामइ। मह पियराइ होतु सुह-धामइ ॥

इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी विशाल रचना महापुराण में यह भी कहा है कि जब बडी दूर से चलकर—

दुग्गम-दीहर पथेण रीणु। णव इदु जेम देहेण खीणु ॥

अर्थात् दुगम और दीघ यात्रा के क्लेश से नये चन्द्रमा के समान देह से क्षीण होकर राष्ट्रकूट नरेशो की राजधानी मान्यखेट (मलखेड, हैदराबाद राज्य) में पहुचे और महामत्री भरत जी से मिले, तब—

देवी सुएण कइ भणिउ ताम। भो पुप्फयत ससि लिहिय णाम ॥
णिय सिरि विसेस णिज्जिय सुरिंदु। गिरि धीर वीर भइरव णरिंदु ॥
पइ मण्णिउ वण्णिरउ वीर राउ। उप्पण्णउ जो मिच्छत्त भाउ ॥
पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्जु। ता घडइ तुज्झु परलोय कज्जु ॥

देवी सुत (भरत मत्री) ने कविराज से कहा—'हे पुष्पदन्त जी! आपका शुभनाम तो अपनी ख्याति द्वारा चन्द्रमण्डल पर भी लिखा जा चुका है। किन्तु अपनी राज्यलक्ष्मी से जिन्होने सुरेन्द्र को भी पराजित कर डाला है और जो गिरि के समान धीर है ऐसे भैरव नरेन्द्र वीरराव का आपने जो स्तुतिपूर्ण वर्णन किया है उससे जो मिथ्यात्व भाव उत्पन्न हुआ है उसका अब आप (महापुराण की रचना द्वारा) प्रायश्चित्त कर डालिये जिससे आपका परलोक भी सुधर जावे।

इस वर्णन से ऐसा भी कुछ अनुमान होता है कि मान्यखेट में आने से पूर्व महाकवि पुष्पदन्त जी ने काव्य रचना में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली थी और वह रचना उन्होने किसी भैरव नरेन्द्र वीरराव के आश्रय में की थी। ये राजा शिव भक्त प्रतीत होते है जिनका सम्बन्ध पुष्पदन्त के पिता के समय से रहा है। किन्तु किसी कारण से उनका इस राजा से विरोध हो गया और वे उसके देश को छोड कर राष्ट्रकूट राज्य में आ गये।

'सिद्धान्त शेखर' नाम का एक ज्योतिष ग्रथ है जिसका प्रकाशन कलकत्ता विश्वविद्यालय से हुआ है। इस ग्रथ के रचयिता श्रीपति भट्ट नागदेव के पुत्र और केशवभट्ट के पौत्र थे। इनके बनाये ज्योतिष रत्न माला, दैवज्ञ-वल्लभ, जातक पद्धति आदि और भी अनेक ग्रथ पाये जाते है। पण्डित नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि "पुष्पदन्त के पिता केशवभट्ट और श्रीपति के पितामह केशवभट्ट एक ही थे, क्योकि एक तो दोनो ही काश्यप गोत्रीय है और दूसरे दोनो के समय में भी अधिक अन्तर नही है। केशव भट्ट के एक पुत्र पुष्पदन्त होगे और दूसरे नागदेव। पुष्पदन्त निष्पुत्र-कलत्र थे, परन्तु नागदेव को श्रीपति जैसे महान ज्योतिषी पुत्र हुए। यदि यह अनुमान ठीक हो तो श्रीपति को पुष्पदन्त का भतीजा समझना चाहिये।" श्रीपति भट्ट ने अपने ज्योतिः शास्त्र की रचना 'रोहिणी खड' में रहते हुए की थी जैसा कि उस ग्रथ में उल्लेख है।

भट्ट केशवपुत्रस्य नागदेवस्य नन्दन।
श्रीपती रोहिणीखडे ज्योतिः शास्त्रमिद व्यधात् ॥

यह 'रोहिणीखड' नामक स्थान मध्यप्रदेश के बुलढाना जिले का रोहनखेड नामक ग्राम ही अनुमान किया जाता है (नाथूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ ३०४)। इस प्रकार अपभ्रश भाषा के महाकवि पुष्पदन्त का पैतृक स्थान मध्यप्रदेश ही सिद्ध होता है। यह अनुसन्धान करने योग्य विषय है कि कवि द्वारा उल्लिखित उनका पूर्व आश्रयदाता भैरव नरेन्द्र वीरराव कौन होगा? सस्कृत में शिवमहिम्न स्तोत्र की बडी प्रसिद्धि है। यह रचना पुष्पदन्त कृत है जैसा कि उस स्तोत्र के निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

श्री पुष्पदन्त-मुख-पकज-निर्गतेन। स्तोत्रेण किल्बिष-हरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेश ॥

अपभ्रंश कवि पुष्पदन्त के पूर्वोक्त कुल-परिचय के प्रकाश मे आश्चर्य नही जो वे ही शिवमहिम्न स्तोत्र के कर्ता भी हों। उनकी संस्कृत की काव्यशक्ति का पता तो उनकी अपभ्रंश रचनाओ से भी चल जाता है क्योंकि एक तो उन्होने अपने अपभ्रंश काव्यों को संस्कृत के समस्त काव्य गुणो से अलकृत किया है और दूसरे इन काव्यों की संधिओं के आदि मे अनेक स्थलों पर उन्होने संस्कृत पद्य भी रचे है। उनके महापुराण का एक श्लोक देखिये जिसमें उन्होंने धारानरेश (हर्षदेव) द्वारा मान्यखेट नगर के ध्वंस किये जाने पर शोक और चिन्ता प्रकट की है। वे कहते हैं—

दीनानाथ-धनं सदा बहुजनं प्रोत्फुल्ल-वल्लीवनं।
मान्याखेटपुरं पुरन्दरपुरी लीलाहरं सुन्दरम्।
धारानाथनरेन्द्र कोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियं।
क्वेदानीं वसति करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कवि :।।

अर्थात् जो मान्यखेट पूरी दीन और अनाथों का धन थी, जहां सदैव वहुजन निवास करते थे और जहां के उद्यान फल फूलों से समृद्ध थे वह इन्द्रपुरी की शोभा को भी जीतने वाली सुन्दर और विद्वज्जनों की प्रिय नगरी धारानाथ (हर्षदेव) की कोपाग्नि से भस्म हो गई। अब श्री पुष्पदन्त कवि कहां निवास करेगे। इस रचना का सौष्ठव शिवमहिम्न स्तोत्र की रचना से मेल तो खाता है।

हिन्दी के एक इतिहास लेखक शिवसिंह 'सरोज' के मत से हिन्दी के आदि कवि पुष्प (या पुष्प) हुए जिन्होंने दोहा छंद म एक अलंकार ग्रंथ की रचना की थी। आश्चर्य नही कि उक्त लेखक का अभिप्राय हमारे इन्हीं अपभ्रंश महाकवि पुष्पदन्त से हो।

इन अपभ्रंश रचनाओं के अतिरिक्त प्राकृत के कुछ महान-सिद्धान्त ग्रंथों के सम्पादन प्रकाशन का श्रेय इसी मध्य-प्रदेश को है। हम ऊपर षट्खंडागम सूत्र और उसकी धवला टीका का उल्लेख कर आये है। यह ग्रंथ शताब्दियों से केवल मात्र ताड़पत्रों पर प्राचीन कनाड़ी अक्षरों में लिखा हुआ मैसूर राज्यान्तर्गत मूडविद्री के जैन मन्दिर में सुरक्षित था और अध्ययन की नहीं, किन्तु पूजा की वस्तु वना हुआ था। इस का विधिवत् सम्पादन, अनुवाद व प्रकाशन भी मध्यप्रदेश में ही डॉ. हीरालाल जैन द्वारा किया गया है और मुद्रण भी दश भागो का अमरावती में किया गया है। इसके अवतक वारह भाग निकल चुके है। चार भाग अभी भी सम्पादित होकर निकलना शेष हैं।

विश्व मंडल के सम्बन्ध में प्राचीन जैन मान्यताओं का निरूपण करनेवाला एक अति प्राचीन प्राकृत गाथा-बद्ध ग्रंथ तिलोय-पण्णत्ति (त्रिलोक-प्रज्ञप्ति) है जिसके कर्त्ता यतिवृषभाचार्य है। इस ग्रंथ को प्रकाशित करने का श्रय भी मध्यप्रदेश को है। इस का सम्पादन डॉ. हीरालाल जैन और कोल्हटकर निवासी डॉ. आ. ने. उपाध्ये ने मिलकर किया है और उसका हिन्दी अनुवाद किया है पं. वालचन्द्र जी शास्त्री ने। यह दो भागो में पूर्ण हुआ है। प्रथम भाग सन् १९४३ में और द्वितीय भाग सन् १९५१ में अमरावती में मुद्रित होकर जैन संस्कृति संरक्षक संघ द्वारा प्रकाशित किये गये हैं।

जम्बूद्वीप का जैन मान्यतानुसार प्ररूपण करने वाला एक प्राकृत ग्रंथ पद्मनन्दि कृत 'जम्बूदीवपण्णत्ति' है। इसका भी प्रथम वार डॉ. हीरालाल जैन और डॉ. आ. ने. उपाध्ये द्वारा सम्पादन तथा पं. वालचन्द्र शास्त्री द्वारा अविकल हिन्दी अनुवाद होकर अमरावती में मुद्रण पूरा हो चुका है और ग्रंथ शीघ्र ही जैन संस्कृति संरक्षक संघ द्वारा प्रकाशित होने वाला है।

मध्यप्रदेश में प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की सेवा का यह सक्षिप्त परिचय है।

मध्यप्रदेश के हिन्दी-साहित्य का इतिहास

श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित "कुसुमाकर"

वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल

मध्यप्रदेश में हिन्दी-साहित्य अपनी प्राचीन एवं गौरवपूर्ण परम्परा रखता है। विक्रम संवत् ९९० में जैनाचार्य नाम के एक कवि हुये, जो इसी प्रान्त के रहनेवाले थे। इनकी भाषा प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश है। इन्होंने 'सरवकाचार' नामकी पुस्तक दोहा-छन्द में लिखी और 'दब्व सहाव-पयास' एक अन्य ग्रंथ भी दोहों में लिखा। इन्हीं का लिखा हुआ 'सावय-धम्म' नामक एक ग्रंथ भी है। यह अत्यंत प्राचीन और प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसकी भाषा भी अपभ्रंश है और इसमें जैन-शास्त्रों के अनुसार धर्म और नीति की चर्चा की गयी है। इसकी भाषा के मूल में प्रयुक्त क्रिया-पदों में हिन्दी का रूप भी झलकता दिखलाई पड़ता है।

प्राकृत भाषा के बोलचाल की भाषा न रहने पर अपभ्रंश-भाषा में साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ। 'दूहा' या 'दोहा' कहने से जनसाधारण में प्रचलित काव्य-भाषा का भान होता था। अनेक जैन और बौद्ध आचार्यों ने अपने धर्म के प्रचार के लिये इसी भाषा को अपनाया। प्राकृत का जो रूप बोलचाल की भाषा में आया, वह भाषा जब तक सर्वसाधारण में प्रचलित रही, तबतक देश-भाषा कहलाती थी और जब वह साहित्य की भाषा हो गई, तब उसे अपभ्रंश कहा जाने लगा। भरत मुनि * ने इसे 'देश-भाषा' ही कहा है। 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम वलभी के राजा धारसेन द्वितीय के शिलालेख में मिलता है, उसमें उन्होंने अपने पिता गुहसेन (विक्रम संवत् ६५० के पूर्व) को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का कवि बतलाया है।

कारंजा के मुनि रामसिंह ने संवत् ११०० में 'पाहुड दोहा' नामक ग्रंथ की रचना की। संवत् १०४० में लिखित त्रिपुरी नरेश राजा कर्णदेव की एक प्रशस्ति प्राप्त हुई है, जिसमें संस्कृत के साथ-साथ अपभ्रंश भाषा की भी निम्नांकित पंक्तियां प्राप्त होती हैं—

> "हो हंति एत्थ वंश पुरिसाएहइय गौरव महग्घा।
> इअ हविऊण जेंण पाणेण परिग्गहो गहिओ॥" †

महमूद गजनवी के समय से ही भारत पर यवनों की कोप-दृष्टि पड़ने लगी थी और संवत् १०८७ में महमूद की मृत्यु के बाद उसके लाहौरस्थित एक अधिकारी ने भी भारत में लूट-खसोट का कार्य पूर्ववत् जारी रखा। उत्तर भारत विशेषकर राजस्थान की शक्तियां ही यवनों के अत्याचारों को रोकने में संलग्न हुईं, इसलिये राजस्थान में वीर रस के काव्य का स्रोत बड़े वेग से प्रवाहित हुआ और 'खुमानरासो', 'बीसलदेव-रासो' तथा 'पृथ्वीराजरासो' जैसे वीर रस पूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई, परन्तु मध्यप्रदेश उन दिनों इस प्रकार के आक्रमणों से मुक्त रहा, इसलिये यहां पर वीर रस के ग्रंथों का निर्माण नहीं हो सका और जिसे आचार्य रामचन्द्र

---

* विक्रम की तीसरी शताब्दी

† होवेंगे इस वंश में, सुपुरुष गौरववान।
यह विचार वह दिशन को परिग्रहण कृतवान॥ (जबलपुर ज्योति से)

शुक्ल "वीर-गाथा-काल" मानते है, उसमें कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ मध्यप्रदेश मे नही लिखा गया। कुछ लोग जगनिक (संवत् १२३०) को मध्यप्रदेश का कवि मानते है, परन्तु जगनिक कलिंजर के राजा परमाल के यहां एक भाट थे और उनके नाम पर प्रचलित "आल्हा" को भी उनका लिखा हुआ प्रामाणिक ग्रंथ नही माना जाता। इस ग्रंथ की भाषा भी मध्यप्रदेश की भाषाओ से विशेष मेल नही खाती।

मध्यप्रदेश ने जो धार्मिक परम्परा जैन और बौद्ध आचार्यो से प्राप्त की थी, वह बराबर अपने नये रूपरंग में चलती रही। समस्त भारत के कबीर-पंथियों का केन्द्र इसी प्रात के कवर्धा स्थान में सर्व प्रथम स्थापित हुआ; फिर उसे भाटापारा के निकट दावाखेड़ा तथा बाद मे रायगढ़ के समीप खरसिया ले जाया गया। आज भी भारत भर के कबीरपंथी इस स्थान पर अपनी श्रद्धांजलि चढाने के लिये आते है। कबीर-पंथ से मिलते-जुलते यहां और भी कई पंथ स्थापित हुये और यहां की जनता पर कबीर तथा रैदास, जैसे, ज्ञानमार्गी निर्गुण सन्तो की वाणियो का प्रभाव पडा, परन्तु सबसे अधिक प्रभाव यहा की रचनाओ पर वैष्णव-धर्म एवं सगुणोपासक भक्ति-धारा का ही रहा। कारण, वैष्णव धर्म के प्रधानाचार्य महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म रायपुर के निकट चम्पारन मे वैशाख कृष्ण ११, संवत् १५३५ में हुआ। इनकी मृत्यु का समय आषाढ शुक्ल तीज संवत् १५८७ माना जाता है। आपका कुटुम्ब यद्यपि जबलपुर के निकट गढ़ा में बस गया, परन्तु आप अधिकतर ब्रजभूमि में ही रहे और वही आप गोलोकवासी हुये। वल्लभाचार्य की भांति रामानुजाचार्य भी दक्षिण के थे। आचार्य क्षितिमोहन सेन के मत से इस रूप मे दक्षिण भारत ने उत्तर भारत के साहित्य और यहा की संस्कृति पर बहुत बडा प्रभाव डाला, "कबीर, तुलसी और सूर की भाषा चाहे उत्तर भारत की हो, परन्तु उनकी भावना दक्षिण भारत की है।" *

वल्लभाचार्य ने 'पूर्वमीमांसा-भाषा', और 'उत्तर-मीमांसा' या 'ब्रह्मसूत्र-भाषा'—(जो 'अणुभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है) दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे, जिनमें से अन्तिम में शुद्धाद्वैतवाद का दार्शनिक दृष्टि से प्रतिपादन किया गया। श्रीमद्भागवत की सुबोधनी तथा सूक्ष्म टीका, 'तत्त्वदीप' निबन्ध तथा सोलह छोटे प्रकरण-ग्रन्थ आपकी अन्य रचनायें है। कहते है कि 'अणुभाष्य' पूरा करने के पूर्व ही वल्लभाचार्य का गोलोकवास हो गया और उसकी पूर्ति गोस्वामी विट्ठलनाथ ने की।

वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग कहलाता है। अन्य आचार्यो की भांति इस सम्प्रदाय का लक्ष्य भी शंकराचार्य के मायावाद और विवर्त्तवाद से मुक्ति पाना था। इस मत के अनुसार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है और वे सर्व गुण सम्पन्न होकर पुरुषोत्तम कहलाते है।

वल्लभाचार्य का गोलोकवास होने पर उनके पुत्र विट्ठलनाथ गद्दी पर बैठे। इनके पुत्र गोकुलनाथ थे जिन्हें कुछ लोग 'चौरासी वैष्णव की वार्त्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता' का रचयिता बतलाते हैं। 'अष्टछाप' में वल्लभाचार्य जी के चार शिष्य सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास और परमानंददास तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य चतुर्भुजदास, छितस्वामी, नंददास और गोविंद स्वामी कहे जाते है। इनमे से कुम्भनदास और चतुर्भुजदास गढ़ा (जबलपुर) के निवासी थे। कुम्भनदास का अधिकाश समय ब्रज मे ही बीता। वे विरक्त पुरुष थे और हमेशा भगवतद्भक्ति में लीन रहते थे। अकबर बादशाह के बुलाने पर आपको फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा। यद्यपि वहां बादशाह ने बहुत सम्मान किया, परन्तु आपको यह यात्रा सुखकर नही जान पड़ी—

---

* २३ नवम्बर १९५५ को हैदराबाद में आचार्य क्षितिमोहन सेन का भाषण (हिन्दी प्रचार सभा का पदवीदान महोत्सव).

सतन को कहा सीकरी सों काम?
आवत जात पनहिया टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम।।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिवे परी सलाम।।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम।।

इनके फुटकर पद ही प्राप्त होते है, कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। नाथद्वारा के निजी पुस्तकालय में 'सेवाप्रकार' नामका एक हस्तलिखित ग्रन्थ ब्रजभाषा में है, जिसमें आचार्य वल्लभाचार्य द्वारा कुम्भनदास को दिये गये सेवा सम्बन्धी उपदेश सग्रहीत है। इससे प्रकट होता है कि कुम्भनदास, सूरदास की भाति ही महाप्रभु के कृपा-पात्र थे। फुटकर पदो में कृष्ण की बाल-लीला और प्रेम-लीला का बडे भावपूर्ण रूप में चित्रण मिलता है—

माई गिरिधर के गुन गाऊ,
मेरो तो व्रत याही निसि दिन, और न रुचि उपजाऊ।
खेलन आगन आउ लाडिले, नेकहु दर्शन पाऊ।
कुम्भनदास इह जग के कारन, लालच लागि रहाऊ।

चतुर्भुजदास कुम्भनदासजी के पुत्र थे। 'द्वादश-यश,' 'भक्ति प्रताप' और "हितजू को मगल' इनके मुख्य ग्रन्थ है। कुछ फुटकर पद भी इधर-उधर पाये जाते है। इनकी भाषा मँजी हुई और प्रवाहपूर्ण है, जिसे पाकर कवि की भक्ति भावना प्रखर हो उठती है। इनके सम्बन्ध में नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में लिखा है—

गायो भक्त प्रताप सबहि दासत्व बढ़ायो
राधावल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढ़ायो
मुरलीधर को छाप कवित अति हो निर्दूषण
भक्तन की पदरेणु वहै धारी सिर भूषण
सत्सग सदा आनन्द में रहत प्रेम भीजो हियो
हरिवश भजन बल चतुरभुज गोंड देश तीरथ कियो।

"गोड देश तीरथ कियो" से स्पष्ट है कि नाभादासजी की दृष्टि में चतुर्भुजदास का कितना महत्त्व था और उनके कारण गोंड देश अर्थात गोडवाना भक्तो की दृष्टि में कितना ऊचा उठ गया। सूरदास की भाति चतुर्भुजदास की रचनाओं में भी कृष्ण के बाल-जीवन का सुदर चित्र मिलता है—

जसोदा कहा कहौं हौं बात।
तुम्हरे सुत के करतब मों प, कहत कह नहि जात।
भाजन फोरि, ढोरि सब गोरस, ले माखन दधिखात।
जो बरिजौ तौ आखि दिखावै, रचहु नाहि सकात।
और अटपटी कहलौं वरनौं छुवत पानिसों गात।
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहत-कहत सकुचात।

अष्टछाप के कवियों का काव्य अधिकतर मुक्तक है और जहा-जहा उसमें इतिवृत्तात्मक स्थल आ गये है, वहा रस का परिपाक नहीं हो पाया। जिस भक्त की मानसिक वृत्ति जिस लीला में रमी है, उसीका अष्टछाप के काव्य में तन्मयता के साथ चित्रण मिलता है और "सिद्धात की दृष्टि से इन भक्त कवियो का मार्ग लोकमर्यादा को पीछे छोडनेवाला है। इनके काव्य में वर्णन सब लोकानुभूत भावों का ही है, परन्तु उन्होने लौकिक भावो को, चाहे लोक की दृष्टि से वे भाव सद् हो चाहे असद, लोकातीत रस रूप भगवान् श्रीकृष्ण के मान्य गुणो की अग्नि मे तपाई हुई अथवा परिमार्जित की हुई वस्तु के समान शुद्ध या परिष्कृत माना है। अग्रेजी में इस प्रकार के मानसिक मैल काटने की क्रिया को

"सब्लिमेशन" कहते हैं।"* वास्तव में उनका काव्य प्रेम-काव्य है, जिसमें लोक-मर्यादा पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। चतुर्भुजदास ने कई पदों मे संसारिक सम्बन्ध और लौकिक विषयों को छोड़कर प्रेम-भक्ति के परम रस को ग्रहण करने का भाव प्रकट किया है, इसीलिये आपका कहना है—

धर्म-कर्म लोक लाज, सुत पति तजि धाई।
चत्रभुज प्रभु गिरधर मैं जांचे री माई।

गढा (जवलपुर) के दामोदरदास जी सेवकजू महाराज ने भी कृष्ण-भक्ति की कविताए लिखी। आपका चतुर्भुजदासजी से घनिष्ठ सम्बन्ध था और आपने हित जी से वैष्णवधर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। ध्रुवदास ने अपनी 'भक्तनामावली' मे सेवकजी को "भजनसरोवर का हंस" कहा है। सेवकजी के सम-सामयिक नागरीदासजी ने सेवकजी की प्रशंसा मे लिखा है 'प्रथम श्री सेवक पद सिर नाऊं।'

आप हरि और हरिवंश में कोई अन्तर नही मानते थे। आपके मत से "जो रसरीति सब (ब्रह्मादिक) मे दूर एवं दुर्गम है, वह सब विश्व मे भरपूर है और वही सजीवनता का मूल है।" आपने अपनी रचना मे सवैया और दोहा जैसे छन्दो का भी पदों के साथ उपयोग किया है—

भुज अशंनिदीन्हे विलोकि रहे, मुख चन्द उभय मधुपान कराई।
आप बिलोकि हृदय कियो मान, चिबुक्कु सुचारु प्रलोई मनाई।
श्री हरिवंश विना यह हेतु को, जाने कहा को कहै समुझाई।
जो हरिवंश तजौं भजौं औरहि, तो मोहिंको हरिवंश दुहाई।
पढ़त जु बेद पुरान, दान न शोभित प्रीत बिनु।
बींधे अति अभिमान श्री हरिवंश कृपा बिना।

गढ़ाकोटा के कृष्णभक्त श्रीहरिदास स्वामी 'भगवतरसिक' राधारामण सम्प्रदायानुयायी थे। इस संप्रदाय मे श्री विहारीजी की उपासना सखीभाव से की जाती है। भगवत-रसिक जी की कविता सरस और प्रभावपूर्ण है, इसमें भाव पक्षऔर कलापक्ष दोनो का समावेश पाया जाता है—

तुव मुखचन्द चकोर ये नयना।
अति आरत अनुरागी लम्पट, भूल गई गति पलहुँ लगैन।
अरबरात मिलिवे को निसिदिन, मिलेइ रहति मन कवहुं मिलै न।
'भगवतरसिक' रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझ सकै न।†

गढ़ाकोटा के ही वक्षी हंसराज ने "स्नेह-सागर" नाम का एक ग्रंथ लिखा, जो गीत-काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इस काव्य में भावो की सुकुमारता और भाषा का लालित्य है।

गढ़ा (जवलपुर)–निवासी श्री गदाधरभट्ट ने "ध्यानलीला" नामका एक ग्रंथ लिखा, जिसमें कृष्ण की माधुरी मूर्त्ति का वर्णन है, इसमें उत्प्रेक्षालंकार की छटा भी मनोमोहक है :—

जाहि देखत उठत सखि आनंद की गोमा।
नैंन धीर अधीर कछु-कछु असित सित राते।

---

* अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ ६९५.

† गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने तो यहां तक कहा है कि —जो लोग जानते हैं कि भगवान रस-रूप हैं और रस-द्वारा ही प्राप्त होते हैं, वे ही इस ग्रन्थ का अवलोकन करें, अन्यथा जो भक्तिरस से अनभिज्ञ हैं, उनको इसे पढ़ने का अधिकार नही। (विट्ठलनाथकृत—'श्रृंगार-मण्डन)'

प्रिया आनन चन्द्रिका मधुपान रस माते।
वसिया कल हुसिका मलकमल रसराची।
पवन परिसत अलक अलिकुल कलह-सी माची।
ललित लोल कपोल मण्डल मधुर मकराकार।
जुगल शिशु सौदामिनी जनु नचत नट चटसारि।
विमल अलक सुढ़ार मुक्ता नासिका दौनों।
ऊँच आसन पर असुर गुरु उदय सो कीहों।
भौंह सोहनि का कहौं अरुभाल कुमकुम विंदु।
श्याम बादर रेस परि मन प्रबहि ऊगिऊ इंदु।
लग्यो मन ललचाय तातें टरत नाहिं टारयो।
अमित अदभुत् माधुरी पर "गदाधर" वारयो।

रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक गजाधर भट्ट का उल्लेख करते हुए, उन्हें दक्षिणी ब्राह्मण माना है। उनके जन्म-सवत् आदि का ठीक-ठीक पता न होने पर उन्होंने उनकी रचनाओं का आरम्भ सवत् १५८० मान लिया है। आपके मत में ये चैतन्य महाप्रभु को भागवत् सुनाया करते थे।* नाभादासजी ने भी अपने "भक्तमाल" में एक गदाधरभट्ट का उल्लेख करते हुए—"गुणनिकर गदाधरभट्ट, अति सबहिन को लागै सुखद"—लिखा है। ये गदाधर भट्ट ही गढा (जबलपुर)-निवासी गदाधर भट्ट जान पड़ते हैं।

जयसिंह नगर के आनन्द कवि ने भी अनेक सुन्दर पदों की रचना की है। इन पदों में कवि की भक्ति भावना और प्रेममयी उपासना स्पष्ट झलकती है —

तुम्ह के टेरत हैं बनवारी?
हेरत बाट घाट जमना के श्री वृषभान दुलारी।
गोरे गात बात हँसि बोलति सुभग वेश वयवारी।
चलिये वेग लाल जसुदा के ह्वै रहे परम दुखारी।
लगत अगार हार हीरन के माला नागिन कारी।
वशी विसिख बयार जु विससी तोरे विनु पिय प्यारी।
अचल गात तन थकित मन, अरि सुधि नहिं रहत सभारी।
राधा राधा-राधा टेरति व्याकुल वदन विहारी।
सिरस सुमन सुकुमार अग के सह नहिं सकत बयारी।
ता हित किये रहत अचरन की छांहि सदा ब्रज-नारी।
मिलहु अक भरि भेंट भुजन सौं, तुम सम और न प्यारी।
"आनन्द" तुम बिन नन्दनन्दन की हरहि बिथा को भारी।

छत्तीसगढ़ (रतनपुर) के गोपालचन्द्र मिश्र का जन्म सवत् १६६० के लगभग माना जाता है। इनके पिता का नाम गगाराम और पुत्र का माखनचन्द्र था। माखनचन्द्र भी अच्छे कवि थे। रामप्रताप—काव्य का आधा भाग गोपालचन्द्र ने लिखा और शेष उनकी आज्ञा से माखनचन्द्र ने पूरा किया।

छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के हैहयवशी राजा राजसिंह के दरबार में गोपालचन्द्र का बड़ा मान-सम्मान था। बाद में उन्होंने आपको अपना दीवान बना लिया। राजा की इच्छा से ही आपने सवत् १७४६ में

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, सातवां सस्करण, पृष्ठ १८२।

"खूबतमाशा" ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त "जैमिनी अश्वमेघ", (१७५२), "सुदामाचरित्र" (१७५५), "भक्त चिन्तामणि" (१७५९), "रामप्रताप" और पिंगल का ग्रन्थ "छन्दविलास" लिखा। आप की कविता सरल और कही-कही अत्यंत व्यंग्यपूर्ण हो गई है :—

दान सुधा जलतें जिनि सींच, सतोगन बीच विचार जमायो।
बाढ़ि गयो नभ मण्डल लौं महिमण्डल घेरि दसौं दिसि छायो।
फूल घने परमारथ फूल निपूर्ण बड़े फलते सरसायो।
कीरति वृक्ष विशाल गुपाल सुकोविद वृन्द विहंग बसायो।।

o o o

खेती करत किसान के मोतें दुख सुनि लेहु।
हर लैके पिय खेत में भूलि पांय मत देहु।।

कृष्ण-भक्त कवियों की भाति मध्यप्रदेश के रामभक्त कवियों ने भी अपनी रचनाओं से हिन्दी-साहित्य को मंडित किया है। इन कवियों ने राम के लोकरंजक चरित्र का जो रूप उपस्थित किया, वह लोकपक्ष की विभिन्न भावनाओं से परिपूर्ण है। इस प्रकार के कवियो मे गोपाल, माखन कवि और मदनभट्ट के अतिरिक्त जैसीनगर के नाथूराम चतुर्वेदी व्रज (संवत् १८९१) ने "रामसागर" नाम का महाकाव्य लिखा, जिसमें रामवनवास से रामके राज्याभिषेक तक की कथा समाविष्ट है। आप ही हिन्दी के उन प्रथम कवियो मे है, जिन्होने मैथिलीशरण गुप्त के पूर्व लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला का चित्रण किया। इस काव्य मे सभी रसों का समावेश मिलता है और चरित्र-चित्रण भी सफल हुआ है। उर्मिला अपनी वियोगावस्था के समय सूर्य से प्रकट न होने की प्रार्थना करती हुई कहती है —

कनका चलि मंदिर सो, सुन्दर शिखर ओट,
मारि खल निश्चर समूह व्यूह राखो न।
खैंचि हय डोरि अंध सारथी निहारौं "ब्रज",
रथ करि मंद गति वेगि अभिलाखो न।
गुरु इहि वंश के प्रसंश अवतंस, देव!
आज-चल-कंज पुंज कमल विकासो न।
निसितम घोर करि जोरें तिय प्राची ओर,
होहि नहिं भोर ये प्रभाकर प्रकासो न।

सागर के कवि मदन भट्ट (संवत् १८८५) के वाल्मीकि रामायण के आधार पर "राम-रत्नाकर" नामक महाकाव्य लिखा था। इसके लिखने में राम-चरित्र सम्बन्धी संस्कृत के अन्य काव्यो और नाटकों का भी आश्रय लिया गया।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भूषण और मतिराम के बडे भाई चिन्तामणि त्रिपाठी का जन्म-काल संवत् १६६६ और कविता-काल संवत् १७०० के आसपास माना जाता है। इन्होने "कविकुलकल्पतरु" नामक ग्रंथ की रचना की। ये तिकवांपुर (जिला कानपुर) के रहनेवाले थे, परन्तु "शिवसिंहसरोज" में लिखा है कि ये "बहुत दिन तक नागपुर में सूर्य वंशी भोसला मकरंदशाह के दरबार मे रहे और उन्ही के नाम पर "छन्द-विचार" नाम का एक बहुत बड़ा पिंगल ग्रंथ बनाया ; परन्तु इस नाम के किसी भोंसला राजा का अस्तित्व नही पाया जाता। सम्भव है कि कोई गोंड राजा हो, क्यों कि उस प्रकार के नाम उन्ही में प्रचलित थे। चिन्तामणि के काव्य में भाषा का प्रवाह और भावो की सरसता भली प्रकार मिलती है :—

येई उधारत हैं तिन्हें जे परे मोह-महोदधि के जल फेरे।
जे इनको पल ध्यान धरैं मन ते न परें कबहूं जम घेरे।

राजै रमा रमनी-उपधान अभै वरदान रहैं जन नेरे।
हैं बलभार उदण्ड भरे हरि के भुज-दण्ड सहायक मेरे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकालीन काव्य का समय संवत् १७०० से १९०० तक माना है। इस अवधि में भी मध्यप्रदेश में अनेक ग्रंथों की रचना हुई, जिनमें से कुछ धार्मिक भावनाओं से युक्त हैं और कुछ वीर रस की रचनाएँ हैं। संवत् १७०१ में हरिवल्लभ ने दोहा छन्द में गीता का अनुवाद किया, जो व्यंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। कृष्ण भट्ट कलानिधि ने भी इन्हीं दिनों "ब्रह्मसूत्र", "केन", "माण्डूक्य" और "प्रश्नउपनिषदों" के अनुवाद किये। अमरावती के छत्रसिंह कायस्थ ने महाभारत के कथानक को ग्रहण कर "विजय मुक्तावली" नामक प्रबंध-काव्य की रचना की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका स्थान बटेश्वर उत्तर प्रदेश का अटेर ग्राम माना है और आपके मतानुसार ये अमरावती में कल्याणसिंह नामक किसी व्यक्ति के यहाँ आश्रय में थे। "विजयमुक्तावली" के लेखक का समय संवत् १७५७ है। ग्रंथ में कथानक ओजस्वी भाषा द्वारा प्रकट किया गया है। अभिमन्यु की युद्ध-यात्रा के पश्चात् विदुर की चिन्ता को लक्ष्य कर कवि कहता है —

निरखत ही अभिमन्यु को, विदुर डुलायो सीस।
रक्षा बालक की करौ, ह्वै कृपालु जगदीस।
आपुन काचौ युद्ध नहिं, धनुष दियो भुव डारि।
पापी बठे गेह कत, पाण्डु पुत्र तू चारि।
पौरुष तज, लज्जा तजी, तजी सकल कुल-कान।
बालक रनहिं पठाइ कै, आपु रहे सुख मान।

इन्हीं दिनों मण्डला के प्राणनाथ कवि ने "अंगदवादि" नामक वीररसपूर्ण प्रबन्ध-काव्य की रचना ६०३ छंदों में की। जयसिंह नगर के भगवन्तशरण चतुर्वेदी ने "द्रौपदी-स्वयम्वर", "अभिमन्यु आख्यान", "मीरा आख्यान" और "भीष्म-युद्ध" नामक "काव्य-ग्रंथों" की रचना की। खैरागढ के बक्षी उमरावसिंह ने "पाण्डव विजय" लिखा।

गोरेलाल पुरोहित या लाल कवि का वीररसपूर्ण काव्य लिखने के कारण हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान है और इनकी शैली भूषण तथा सूदन से भिन्न है। इनका जन्म संवत् १७१४ के लगभग माना गया है।* आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें मऊ (बुन्देलखण्ड) का रहनेवाला माना है,† परन्तु लोकनाथ सिलाकारी, इन्हें दमोह (सकोलिया) का मानते हैं।‡ ये उन महाराजा छत्रसाल के दरबार में थे, जिनके सम्बन्ध में भूषण कवि ने कहा था कि "साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।" लाल कवि इसी युद्ध में छत्रसाल के साथ गये थे और वहीं मारे गये। इन्होंने "छत्रप्रकाश", "विष्णुविलास" और "राजविनोद" नामक तीन ग्रंथ लिखे। "छत्रप्रकाश" में दोहा, चौपाई, छंदों में महाराज छत्रसाल का जीवन-चरित्र लिखा गया है। वास्तव में छत्रसाल अपने युग के महान् वीर थे और उन्होंने अपने शौर्य से बुन्देलखण्ड में यवनों के पैर उखाड़ दिये थे। आपने गढाकोटा (सागर) को अपनी राजधानी बनाया था। "छत्रप्रकाश" में ओज गुण और कवि की प्रबंध-पटुता सुन्दर रूप में प्रकट हुई है —

छत्रसाल हाडा तहँ आयो, अरुन रंग आनन छवि छायो।
भयो हरौल बजाय नगारो, सार धार को पहिरनहारो।
दौरि देस मुगलन के मारो, दपटि दिली के दल सहारो।
एक आन सिवराज निबाही। करै आपने चित की चाही।

---

* "कविता कौमुदी" (पहला भाग), सम्पादक पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ ३७९।
† हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३३३।
‡ भानु अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ११४।

आठ पातसाही झकझोरे, सूबन पकरि दंड लै छोरे।
कोटि कटक किरवान बल, बांटि जंबुकन देहु।
ठाटि युद्ध यहि रीति सों, बांटि धरन धरि लेहु।

हिन्दी के अधिकांश रीतिकालीन कवि किसी न किसी राजा के आश्रय में रहे। वे इसमे गौरव भी अनुभव करते थे। इसीलिये ठाकुर कवि ने कहा :—

ठाकुर सो कवि भावत मोहिं, जो राजसभा में बड़प्पन पावै।

हिन्दी की रीति-काल में अधिकतर रचनाएँ तीन प्रकार की मानी जाती है—रीति सम्बन्धी, श्रृङ्गार रसपूर्ण तथा नायिका भेद सम्बन्धी। रीति-कालीन कवियों को संस्कृत-साहित्य के अलंकार-सम्प्रदाय, रीति-सम्प्रदाय, ध्वनि-सम्प्रदाय तथा वक्रोक्ति-सम्प्रदाय से प्रेरणा प्राप्त हुई और उस पर वात्सायन के "कामसूत्र" तथा वाद में लिखे गये "रति-रहस्य" और "अनंग-रंग" आदि, ग्रन्थो का भी प्रभाव पड़ा। इन कवियों मे से अधिकांश ने अपने लक्षण-ग्रन्थों मे उदाहरण दूसरे कवियों के न लेकर स्वयं रचे और १७ वी शताब्दी के पंडितराज जगन्नाथ की भाति यह सिद्ध किया कि — "अपनी सुगन्ध में मस्त् कस्तूरी उत्पन्न करनेवाला हिरन, फूलो के गंध की चिन्ता नही करता।" (देखिए रसगंगाधर प्रथम खंड)।

हिन्दी का रीतिकालीन काव्य जीवन की गहराई की अपेक्षा कला-पक्ष से अधिक प्रभावित जान पड़ता है। यह कवि-समाज उस समय भी आमोद-प्रमोद का दरबारी-जीवन व्यतीत कर श्रृङ्गारिक रचनायें कर रहा था।

रीतिकालीन काव्य मे अनुभूति की गहराई की अपेक्षा अभिव्यक्ति की सजावट अधिक प्रखर हो गई और प्रायः सभी कवि श्रृङ्गाररस को रसराज* मान कर ही काव्य-रचना करते थे। इनके श्रृङ्गार में मन की वह सात्विक भावना नही पाई जाती जो भक्त श्रृङ्गारी कवियों में मिलती है। इन्होंने अपनी वासनाओं को राधा और कृष्ण की आड़ मे छिपाने का प्रयत्न किया और कही-कहीं तो लोकमर्यादा तथा नैतिकता का भी उल्लंघन कर गये। इनकी राधा आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन न रहकर रास और केलि का आधार बन गईं और "मेरे कर मेहदी लगी है, नन्द-लाल प्यारे, लट उलझी है नेकु वेसरि सवांर दे।" जैसे बहाने बनाकर कृष्ण की निकटता प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। इस युग के काव्य मे अभिव्यक्ति को कवि की चेतना का रूप नही मिलता, जिसे आधुनिक काव्य-आलोचक इलियट और लीविस काव्य के लिये आवश्यक मानते है। फिर भी इस युग के काव्य में रस-संचार अवश्य मिलता है, जो क्षणिक है और जीवन के शाश्वत-सत्य को नही छूता। इसमें कुछ मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उपलब्ध है; जो आधुनिक मनोविज्ञान की कसौटी पर परखने योग्य है। रीति-कालीन काव्य की मनोवैज्ञानिकता ब्रज-साहित्य-मण्डल के गत मेरठ अधिवेशन में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री और साहित्य एवं दर्शन के गंभीर विद्वान् डॉ सम्पूर्णानंद ने भी स्वीकार की थी।

मध्यप्रदेश ने भी कई रीतिकालीन आचार्य उत्पन्न किये, जिन मे कुमारमणि, कृष्णभट्ट कलानिधि और पद्माकर मुख्य हैं। इनकी रचनाएँ, केशव, देव, मतिराम और भिखारीदास, जैसे रीतिकालीन हिन्दी के अन्य आचार्यो से टक्कर लेती हैं। कुमार मणिका "रसिक-रसाल" ग्रंथ इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि—"इनका कुछ वृत्त-ज्ञात नही है। इन्होंने संवत् १८०३ के लगभग "रसिक-रसाल" नामक एक बहुत बड़ा रीति-ग्रन्थ बनाया।* शिवसिंह सरोज में इन्हें गोकुल का रहनेवाला माना गया है। वास्तव में ये मध्यप्रदेश के थे और इन्हे गोंड राजा द्वारा सागर जिले के ग्राम—कनेरा और धमती—दान में मिले थे। "रसिक-रसाल" मे समास-शैली पर लक्षणो को बाँध कर उनके सुन्दर उदाहरण उपस्थित किए गये हैं। लक्षणों के विषय में ये भिखारी-

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, पृष्ठ २९२।

दास से भी अधिक सरस जान पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में आपकी त्रुटि निकालना आचार्यों के लिये भी सरलता से सम्भव नहीं। इनके काव्य की मधुरता दर्शनीय है —

> गावें वधू मधुरे सुर गीतन, प्रीतम सग न बाहिर आई।
> छाई कुमार नई छिति में छवि, मानो बिछाई नई दरियाई।
> ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि, बोली यों बाल गरो भरि आई।
> कसी करों हहरें हियरा, हरि आये नहीं उलही हरियाई।
>
> ० ० ०
>
> बाधति केस दुहो भुज सों गहि यो, मुख कांति लखो दृग फेरें।
> घरहि घेरें मनो तम जाल, मनो तम को चपला जुग घेरें।

कुमार मणि के पुत्र कृष्ण भट्ट कलानिधि ने "अलंकार प्रकाश", "वृत्तचंद्रिका", "शृङ्गाररस माधुरी" तथा "नख-शिख" चार ग्रंथों की रचना की। कटा कोटा के वदनेश कवि (सन् १७६५) ने "रसदीपक" नामक रीति-ग्रंथ लिखा, जिसमें विस्तार के साथ नायिका-भेद का निरूपण किया गया।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध रीतिकालीन कवि पद्माकर का जन्म संवत् १८१० (सन् १७५३) में सागर में* हुआ। इनका पूरा नाम प्यारेलाल भट्ट और पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। मोहनलाल भट्ट स्वयं अच्छे विद्वान् थे और उन्हें कई राज्यों से सम्मान प्राप्त था। पद्माकर संवत् १८४९ में गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर जसे, उस समय के प्रमुख वीर, के सम्पर्क में आये और "हिम्मतबहादुर विरुदावली" ग्रंथ की रचना की, जो वीररस का खण्ड-काव्य है। इसके पश्चात् आप सतारा में रहे और फिर जयपुर पहुँचे, वहा के महाराजा जगतसिंह के नाम पर आपने "जग-द्विनोद" लिखा, जो शृङ्गाररस का प्रमुख ग्रंथ है। इनके द्वारा दोहा छंद में लिखित अलकार ग्रंथ "पद्माभरण" भी सम्भवत जयपुर में लिखा गया। उदयपुर के महाराणा भीमसिंह और ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सिंधिया के दरबार में भी गये। कहते हैं कि वहा आपने सरदार ऊदा जी के अनुरोध पर संस्कृत के ग्रंथ "हितोपदेश" का भाषा-नुवाद किया। अंतिम दिनों में रोग-ग्रस्त होकर आप कानपुर (उत्तर प्रदेश) में रहे और वहा "गंगालहरी" की रचना की। "जगद्विनोद" के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि "वास्तव में यह शृङ्गार रस का सार ग्रंथ सा प्रतीत होता है। इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव भाव-पूर्ण मूर्ति विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसा सजीव मूर्ति-विधान करनेवाली कल्पना बिहारी को छोड़ और किसी कवि में नहीं पाई जाती।' पद्माकर की कल्पना और भावुकता उनके काव्य को रसिकता प्रदान करती है, तो उनकी अलंकारप्रियता कभी-कभी काव्य को दुरूह भी बना देती है। लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग से आप मन की अव्यक्त भावनाओं का मूर्त रूप देने में भी सफल हुए हैं और यह लाक्षणिकता आपके काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। एक नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते हुए आप कहते हैं —

> जाहिर जागत सी जमुना जब बूड़े बहै उमहै वह बेनी।
> त्यों पद्माकर हीर के हारन गग तरगन सी सुखदेनी।
> जावक के रग सों रग जात है भाति ही भाति सरस्वति स्रेनी।
> पैरे जहा ही जहा वह बाल, तहा-तहा ताल में होत त्रिवेनी।

पद्माकर ने ऋतु-वर्णन भी किया है, जो एक प्रकार से प्राचीन परम्परा पर ही अवलंबित है। ऋतु-वर्णन सम्बन्धी छंदों में आपने अनुप्रास अलंकार का खूब प्रयोग किया है, जैसे —

* सागर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में, क्यारिन में, कलिन-कलीन-किलकंत है।
कहैं पद्माकर परागन में, पानहू में, पानन में, पीक में, पलासन पगंत है।
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देश देशन में, देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में, वनन में, बागन में, बगरो बसंत है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने पद्माकर पर केशव और चिंतामणि का प्रभाव माना है, परन्तु वास्तव में पद्माकर अपनी स्वतंत्र-धारा को लेकर अग्रसर हुये और उन्होने रीतिकालीन काव्य-साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया। उन्होने कल्पना और शब्द-शक्ति द्वारा जो चित्र कही-कही पर उपस्थित किये है, उस प्रकार के चित्र देव और विहारी को छोड़ कर हिन्दी के अन्य बहुत कम कवियो द्वारा प्रस्तुत किये जा सके। एक नायिका का वर्णन करते हुए आप लिखते है :—

कै रति-रंग थकी थिर ह्वै परयंक पै प्यारी परी सुख पायकै।
त्यौं पद्माकर स्वेद के बुंद, रहे मुकता हल से तन छाय कै।
बुंद घने मेंहदी के लसैं कर तापर यों रह्यो आनन आयकै।
इंदु मनो अरविंद पै राजत इंद्रवधून के वृन्द बिछायकै।

स्वर्गीय लाला भगवानदीन ने इस कविता को पद्माकर की आंखो द्वारा देखे हुए एक दृश्य के आधार पर लिखा हुआ माना है। पद्माकर की भाषा सरल, तरल एवं मधुर होते हुए अलकारों के सम्मिश्रण द्वारा सजीवता पैदा कर देती है और उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दाडम्बर भी अधिकतर काव्य को रोचक बनाने मे सहायक हो गया है।

विष्णुस्वामी और निम्बार्क के पहले विष्णु के गोपाल रूप एवं राधा की ओर भक्तों का ध्यान नही गया था। आपने गोपाल कृष्ण और राधा की भक्ति को प्रधानता दी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी के अनुसार पौराणिक-काल की रुक्मिणी तथा लक्ष्मी से कही अधिक सजीव मानवीय राधा की उत्पत्ति प्रेमभक्ति के कारण ८०० ईस्वी से पूर्व हो चुकी थी।* हिन्दी के भक्त-कवियो ने "नारद-भक्त-सूत्र" के अनुसार प्रेमस्वरूपा राधा की आराधना की, परन्तु रीतिकालीन कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम को आधिभौतिक धरातल के नीचे उतार कर अति-मानव बना दिया। इस प्रकार ब्रजभाषा मे दिव्य तथा लौकिक दोनो प्रकार के प्रचुर श्रृङ्गारी साहित्य की सृष्टि हुई।†

रीतिकालीन होते हुए भी कई कवियों ने वीररस और शांत-रस की कवितायें भी लिखी। नरसिंहपुर के मौनी महाराज का जन्म लगभग १८०७ और स्वर्गवास संवत् १९५७ में हुआ। आपका पूरा नाम भक्त परमानन्द बताया जाता है। आपने लगभग १६ वर्ष की अवस्था से मौन धारण किया और जीवन-पर्यन्त मौन ही रहे। होशंगाबाद-निवासी शिवलालजी ने आपकी गेय कविताओं का संग्रह किया, जिससे प्रकट होता है कि यह संग्रह १९५६ मे लिपि-बद्ध हुआ। मौनी महाराज ने अनेक छंदों मे कविता की है। यहा तक कि आपकी रचनाएँ उर्दू के "गजल" छन्द में भी पाई जाती है। एक गजल के अन्तिम चरणों में आप सबको उपदेश देते हुए कहते है :—

जमाना देख दुनिया का कभी कोई से न कुछ कहना।
सदा खामोश दिल अपना जगत् में मौन हो रहना।

मौनी बाबा राम के भक्त थे, इसीलिये आपने राम-जन्म, राम का व्याह और उनके अन्य कार्यो को भी अपनी रचनाओं का आधार बनाया। राम के जन्म पर आप एक "सोहर" में लिखते है :—

राम जनम मंगलमय सजनी, बाजत अनंद बधाई हो।
ध्वज पताक तोरन पुर छादित रचना विविध बनाई हो।

---

* गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर।

† पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, श्री गुरुप्रसाद टंडन, पृष्ठ १७६।

खोर-खोर प्रति सदन सुशोभित सुषमा सकल सुहाई हो।
सहज श्रृङ्गार किये शशिवदनी वृन्द-वृन्द उठ धाई हो।
कनक कलस भर थारि सुमंगल गावत नृप-गृह आई हो।
घर घर मौज बधाए बाजें, प्रकटे जन सुखदाई हो।
हर्षवन्त नर नारि सत सुर "मौन" मुदित बलि जाई हो।

कहीं-कहीं मौनी बाबा की रचनाओं में दार्शनिक विचारों का भी समावेश मिलता है और गढ़ एवं जटिल भावनाओं को भी सरल रूप में प्रकट किया गया है।

इसी प्रकार उत्तर माध्यमिक काल में निमाड के संत सिंगाजी (१७१५ के लगभग) का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाएँ निमाडी भाषा में हैं और पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में—"सिंगाजी नर्मदा की तरह अमर, उज्ज्वल, सुन्दर और प्राणवर्द्धक और युग की सीमारेखा बनानेवाले संत हैं।" गांधी जी की भांति हिंसा पर अहिंसा से विजय पाने का मंत्र बतलाते हुए संत सिंगाजी कहते हैं —

अगला होइगा आग का पूला, अपुण न होणू पाणी रे।
जाण का आग अजान हुई न, तत्त्व इक लेणू छाणी रे।

छोटे, सरल एवं सीधे-सादे शब्दों में अपने दिन प्रति दिन के जीवन से सम्बन्धित उदाहरणों द्वारा बड़ी से बड़ी बात कह जाना सिंगाजी के भजनों की विशेषता है और वे न केवल निमाडी, वरन् समस्त हिन्दी-साहित्य के लिये गौरव की वस्तु हैं।

(२)

आधुनिक साहित्य

(अ) भारतेन्दु-युग—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म काशी में भाद्रशुक्ल पंचमी संवत् १९०७ को और मृत्यु ३५ वर्ष की अवस्था में माघ कृष्ण ६ संवत् १९४१ में हुई। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। आप नाटककार, निबन्ध-लेखक, सहृदय कवि तथा समाज-सुधारक सभी कुछ थे। आपने काव्य और साहित्य की उन्नति के लिये कई संस्थाएँ स्थापित कीं और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरम्भ किया। साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में आपने स्वयं रचना की और दूसरों को भी प्रोत्साहित किया। मध्यप्रदेश के ठाकुर जगमोहनसिंह (संवत् १९४१ से १९५५) अध्ययन के लिये काशी आये थे। यहीं आपका भारतेन्दु जी से सम्पर्क हुआ, जो अंत तक बराबर ज्यों का त्यों बना रहा।

पन्ना निवासी हजूरी के पुत्र दुर्जनसिंह को पन्ना के राजा ने मैहर का राज्य दिया, जिसमें मुड़वारा (कटनी) भी शामिल था। दुर्जनसिंह के पुत्र राजा प्रयागदास ने कटनी के पास विजयराघवगढ़ नगर बसाया। सन् १८४६ में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पुत्र सरयूप्रसाद नाबालिग थे, इसलिये विजयराघवगढ़ का राज्य अंग्रेजों ने अपने अधिकार में ले लिया। सन् १८५७ के विप्लव में विद्रोहियों का साथ देने के अपराध में सरयूप्रसाद को कालापानी की सजा हुई, परन्तु उन्होंने मार्ग में ही आत्म-हत्या कर ली। इन्हीं के पुत्र ठाकुर जगमोहनसिंह को दो सौ रुपया मासिक पेंशन दी गयी और बाद में तहसीलदार बनाया गया।

ठाकुर साहब जब बिलासपुर जिले की शिवरीनारायण तहसील में तहसीलदार थे, तब आपने "श्यामास्वप्न" नामक एक सुंदर उपन्यास की रचना की। संवत् १९४२ में बाढ़ के कारण तहसील बह जाने पर आपने "प्रलय" रचा। इन दो ग्रंथों के अतिरिक्त आपने "प्रेम-हजारा", "प्रेम-सम्पत्तिलता", "मेघदूत", "कुमारसम्भवसार", "सुजनाष्टक", "श्यामा-सरोजनी", "ज्ञान-प्रदीप" और "सांख्य-सूत्रों के ऊपर टीका" आदि ग्रंथ लिखे। आचार्य रामचन्द्र

शुक्ल के कथनानुसार—"आप संस्कृत-साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे जानकार तथा हिन्दी के प्रेम-पथिक कवि और माधुर्य-पूर्ण गद्य-लेखक थे। प्राचीन साहित्य के अभ्यास और विन्ध्याटवी के रमणीय प्रदेश में निवास के कारण विविध भावमयी प्रकृति के रूप-माधुर्य की जैसी सच्ची परख, जैसी सच्ची अनुभूति, उनमें थी, वैसी उस काल के किसी हिन्दी-कवि या लेखक मे नहीं पाई जाती।" वास्तव मे ठाकुर साहब का गद्य और पद्य दोनों पर समान अधिकार था। आपने ग्राम्य जीवन का सुन्दर वर्णन "श्यामास्वप्न" मे किया है। प्रकृति के अन्तस्तल का माधुर्य उपस्थित करने मे जो सफलता ठाकुर साहव को मिली वह स्वयं भारतेन्दु भी नही पा सके। दक्षिण कोशल का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं :—

"इसके दक्षिण विन्ध्याचल सा अचल; उत्तर और दक्षिण को नापता भगवान् अगस्त्य का किंकर दण्डवत करता हुआ विराजमान है। इसके पूर्व चरणों को धोती मोती की माला के नाई मेकलकन्यका वहती है। यह पश्चिमवाहिनी जिसकी सबसे विलग गति है, अपनी वहिन तापती के साथ होकर विन्ध्य के कन्दरों की दरी में तप करती सूर्य के तप से तापित सोतों के सदृश अपने वाहु-वल्लभ सागर से जा मिलती है। नर्मदा के दक्षिण मे दण्डकारण्य का एक देश दक्षिण कोशल के नाम से प्रसिद्ध है।"

ठाकुर साहव की रचनाओं मे भाषा विषय के अनुरूप पाई जाती है। आपके द्वारा लिखे हुये सवैया छन्द अत्यन्त मधुर है। 'मेघदूत' का अनुवाद भी आपने कवित्त, सवैया मे ही किया। आपकी शृगारी कविताए 'श्यामास्वप्न' उपन्यास की भांति ही श्यामा से सम्वन्धित जान पड़ती है, जिसे आपकी एक प्रेयसी वतलाया जाता है। 'प्रेम-सम्पत्तिलता' (संवत् १८८५) का एक सवैया नीचे उदाहरण-स्वरूप उपस्थित किया जाता है—

अव यों उर आवत है सजनी, मिलि जाऊं गरे लगि कै छतियां।
मन की करिभांति अनेकन औ, मिलि कीजिये री रस की बतियां।
हम हारे अरी करि कोटि उपाय, लिखी वहुनेह-भरी पतियां।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिन, कैसे कटै दुख की रतियां।

भारतेन्दुयुग में उत्पन्न होनेवाले अथवा उन्ही की शैली पर काव्य-रचना करनेवाले मध्यप्रदेशीय कवियों में महामहोपाध्याय स्व. जगन्नाथप्रसाद 'भानु' स्व. विनायकराव, स्व. सैयद अमीरअली 'मीर', स्व. रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' और श्री सुखराम चौवे 'गुणाकर' का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

भानु ने 'काव्य-प्रभाकर' और 'छन्द-प्रभाकर' जैसे ग्रन्थ रचकर हिन्दी की जो सेवा की वह अतुलनीय है। आप छन्दशास्त्र, गणितशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र के भी अच्छे विद्वान् थे। आपका जन्म विक्रम सवत् १९१६ श्रवणशुक्ल दसमी को मध्यप्रात की राजधानी और हिन्दी-मराठी के सम्मिलन-क्षेत्र नागपुर मे हुआ। आपके पिता श्री वख्शीराम सरकारी फौज मे नौकर थे। वे भी कवि थे और इनका 'हनुमान नाटक' आज भी प्रसिद्ध है। सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने पर भानुजी विलासपुर मे रहने लगे थे।

भानु ने शिक्षा-विभाग से नौकरी प्रारम्भ की और धीरे-धीरे इ. ए. सी. के पद पर पहुँचे गये। जिस समय आप वर्धा मे थे, उसी समय पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के सम्पर्क मे आये, जिससे दोनों मे साहित्य-क्षेत्र की ओर अग्रसर होने की विशेष अभिरुचि उत्पन्न हुई। आपके सम्पर्क से ही सैयद अमीरअली 'मीर' को भी लिखने का चाव उत्पन्न हुआ और आपने मध्यप्रदेश के कवियों में अत्यन्त ऊंचा स्थान प्राप्त किया। भानु ही वे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्हे हिन्दी का विद्वान होने के कारण भारत सरकार की ओर से 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्राप्त हुई। प्रयाग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने भी अपने शिमला-अधिवेशन में आपको 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया।

भानुजी गद्य और पद्य दोनों के लेखक थे। तुलसीकृत रामायण का अध्ययन भी आपने वहुत अच्छा किया

था। वे काव्य-ममश, काव्य पद्धति की प्राचीन परम्परा के पुजारी और बीसवी शताब्दी के प्रमुख प्रेरणादायक आचार्य थे। सरस्वती की वदना मे आप कहते हैं—

मगन की खानी जग कीरत बखानी मजु, मूल तें हरनवारे कुमति निसानी के।
सुमति प्रदानी 'भानु' भक्त सुखदानी महा, दानी भक्ति सियाराम औधरजधानी के।
सुरता भजानी सोऊ होत गुणखानी पूज्य, परम सुजानी स्वच्छ वेद बर बानी के।
कविन की बानी कर सुधारस सानी सदा, ध्याऊँपद दोऊ ऐसे बानी महारानी के।

स्व विनायकराव 'नायक' कवि तुलसीकृत रामायण की विनायकी टीका के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म पौष शुक्ल दशमी सवत् १६१२ में सागर जिले के अन्तर्गत हुआ। आपने लगभग ३४ वर्षों तक प्रात के शिक्षा-विभाग मे योग्यता के साथ काय किया। प्रारम्भ में आप मुडवारा स्कूल के प्रथम अध्यापक नियुक्त हुये, परन्तु क्रमश तरक्की करते हुए जबलपुर नामल स्कूल के सुपरिनटेनडेन्ट तथा ट्रेनिंग इन्स्टिट्यूट के अध्यापक-पद तक पहुँच गये। आपने लगभग २० पुस्तकें लिखी। सवत् १६८१ की ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को—आपका स्वगवास हो गया। विनायकरावजी ने 'काव्यकुसुमाकर' नामक ग्रन्थ दो भागो में लिखा, जो एक उच्च कोटि का रीति-ग्रन्थ है। खडी-बोली में अलकार-पिंगल सम्बन्धी ग्रन्थ की रचनाकर आपने भी एक अभाव की पूर्ति की। आपकी काव्य प्रतिभा अधिक तर उदाहरण-स्वरूप उपस्थित किये हुये छन्दो में ही दिखलायी पडती है —

चत्र विसाख वसत बसै अरु ग्रीषम जेठ असाढ बखाने।
सावन भादव प्रावृट ये शरदातप अस्विन कार्तिक जाने।
मारग शीरष पूष हिमन्तहु माधरु फागुन शीशिर माने।
शीतल माघ सु फागन जो, कवि नायक सो ऋतु नायकमाने।

—काव्यकुसुमाकर

पद्य की भाति गद्य भी आप सुदर लिखते थे। आपकी अनेक पुस्तकें पाठ्य पुस्तको के रूप में प्रचलित थी।

सुखराम चौबे 'गुणाकर' का जन्म सवत १६२४ में सागर जिले के रहली ग्राम में हुआ। आपने वर्षों तक शिक्षा विभाग में काय किया और ८० वष से अधिक उम्र हो जाने पर भी आपकी साहित्यिक अभिरुचि ज्यो की त्यो विद्यमान है। हास्य भी आप सुन्दर लिखते ह और आपके द्वारा बालोपयोगी साहित्य का भी सृजन हुआ है। आपकी रचनाओं में भाषा की सानुप्रासिकता, सरलता और भावो की मधुरता के दशन होते हैं।—

सहज सलोनी सुमुख सुलोचन सुदरि श्यामा।
भूषण-भूषित भूरि, छबीली ललित ललामा।
देती है जब भव्य-भाल में बिंदी प्यारी।
छिति पर छिटकी छटा चौगुनी हो चितहारी।
ज्यों मयक के अक लसै मगल छवि छाकर।
त्यो कल कुकुम की बिंदी भाये अति सुन्दर।

स्व सैयद अमीरअली 'मीर' का जन्म देवरी (सागर) में सवत् १६३० के लगभग हुआ। अपने निवास-स्थान देवरी में आपने 'मीर-मडल' की स्थापना कर अनेक युवको को काव्य और साहित्य की प्रेरणा प्रदान की। 'बूढे का ब्याह' आपकी प्रसिद्ध रचना है। रसखान और आलम की भाति, मीर ने भी हिन्दी-कविता को अपनी साधना का आधार बनाया और अपने जीवन को साम्प्रदायिक भावनाओ से सदा दूर रखा। आप समाज-सुधारवादी थे। 'बूढे के ब्याह' में इसी भावनाका समावेश पाया जाता है। अतिम दिनो में आप भाटापारा चले गये थे और वहा रेल के पहियो के नीचे दबने से मृत्यु हो गई।

आपके काव्य में कही-कही विशेषकर जहां हिन्दू त्योहारों का वर्णन किया गया है, नजीर अकबराबादी की शैली के दर्शन होने लगते है। दशहरा के सम्बन्ध में आप लिखते हैं :—

आ गया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह बल।
मातृ-पूजा, शक्ति-पूजा, वीर-पूजा है विमल।
हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय-उत्सव है ललाम।
शरद की इस सुऋतु में है खड्ग-पूजा धाम-धाम।

स्व. राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (संवत् १९२५ से १९७१) का जन्म और शिक्षा-दीक्षा जबलपुर में हुई। स्व. रायबहादुर डाक्टर हीरालाल और दमोह के रायबहादुर पण्डया बैजनाथ (आजकल काशी मे रहते है) आपके सहपाठी थे। इन दोनो ने सरकारी नौकरी मे प्रवेश कर ऊँचे-से-ऊँचा पद प्राप्त किया और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने वकालत का पेशा ग्रहण कर कानपुर और कानपुर के निकट भदरस गांव को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। कानपुर के साहित्यिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के आप कर्णधार बन गये और वहां पर 'रसिक-समाज' नाम की संस्था की स्थापना की तथा 'रसिक-वाटिका' नाम का पत्र भी प्रकाशित किया। आपने महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद 'धाराधरधावन' नाम से किया। 'स्वदेशी-कुण्डल' आपकी राजनीतिक कविताओं का संग्रह है। आपकी कविताओ का संग्रह 'पूर्ण-संग्रह' नाम से प्रकाशित हो चुका है। खड़ीबोली और ब्रज-भाषा दोनो मे आप काव्य-रचना करते थे। प्रकृति-निरीक्षण मे आपके भावो की सुकुमारता दर्शनीय होती थी। भारतेन्दु की भाति आप मे भी देश-भक्ति और स्वदेशी की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी तथा उपनिषदों और वेदान्तों में गति होने के कारण आप भारतीय संस्कृति के भी परम उपासक थे। आप अच्छे वक्ता और शीघ्र-से-शीघ्र काव्य-रचना करने में प्रवीण माने जाते थे जिसका कारण आपकी कुशाग्र बुद्धि थी।

'पूर्ण' जी केवल पद्य-लेखक ही नही थे उन्होंने 'चन्द्रकला भानुकुमार' नाम का एक नाटक भी लिखा, जिसमे खड़ी-बोली का गद्य और ब्रज-भाषा के पद्य का प्रयोग किया गया है। आप स्वयं कुशल अभिनेता और वक्ता थे। भदरस की रामलीला मे स्वयं अभिनय करते थे, यही कारण है कि "चन्द्रकला भानुकुमार" नाटक को अभिनय योग्य बनाने के लिये आपने भरसक प्रयत्न किया, परन्तु उसमे विशेप सफलता नही मिल सकी। फिर भी यह नाटक भावप्रधान है और स्थान-स्थान पर आपकी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार इसमें अवश्य उपलब्ध होता है। नाटक की नायिका चन्द्रकला का वर्णन करते हुए आप लिखते है :—

भाय रही सुख पाय रही हिय सुन्दर चन्द्रमुखी अबला।
न बनै उपमा बरनै कत हूं, सो मनो छवि सिंधु कढ़ी कमला।
कुसुमी पट मुजुलगात लसै मुसकान लखे मनुजात छला।
रमणी के सुहावन पांयन पै झुकि चाहत लोटन को चपला।

'पूर्ण' जी का स्वर्गवास संवत् १९७७ मे हो गया, जबकि उनकी अवस्था केवल ५७ वर्ष की थी।

रहली के रामचन्द्र दुबे ने हास्यरस की सुन्दर कविताए लिखी। आधुनिक युग के प्रिय पेय चाय का वर्णन करते हुये आप लिखते है :—

कंचन की नीको देवें केटिली कुबेर आय,
गंधवाली चाय कामरूप से ही आवेगी।
आग अग्निहोत्री टी पवित्र पाक गौरी करें,
दूध कृष्ण-धेनु का यशोदामाय लावेगी।

विष्णु राजभोग और सिताको गणेश लावें,
पचपात्र भाजनो की कमी निपटावेंगी।
आओ भक्त लोगों आज शभुघर चाय भोज,
राम जपने का पियो आलस भगायेगी।

० ० ०

मान की दायिनी आज समाज में आतियताइ आतिथ्यहि भावै।
सुन्दर स्वाद सुधासम सोहत सभ्यों के आगे पियाले में आवै।
घूटन घूट में आवे मजा अतिनीकी उमग सदा दरसावै।
जो जस चाहता हो कलि में उसे चाहिये लाकर चाय पिलावै।

ठाकुर जगमाहनसिंह के शिष्य पडित मालिकराम त्रिवेदी (शिवरीनायण) ने 'रामराज्य वियोग 'और' प्रबोध चन्द्रोदय' नाम के दो नाटक लिखे। यद्यपि इन नाटको में अधिकतर नाट्यशास्त्र के प्राचीन नियमा का परिपालन किया गया है, फिर भी इनमें लेखक को सफलता मिली है और रगमच पर खेले भी जा चुके है। सिवनी के कालिका-प्रसाद द्वारा लिखित 'अजविलाप' एव 'नलदमयती', जबलपुर के खिलावनलाल लिखित 'प्रेम-सुन्दर' तथा नरसिंहपुर क गणपतिसिह लिखित 'सत्योदय' नाटक भी अपने समय का प्रतिनिधित्व करते है। इन नाटको में भाषा तथा शैली का परिवर्तन भी कुछ-न-कुछ अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

कदेली (नरसिंहपुर) के चरणदास ने 'धर्म प्रकाश', 'विनयप्रकाश', 'गुरुमाहात्म' और 'धन-सग्रह', ग्रन्थ लिखे। विसाहूराम ने सर्व प्रथम 'कृष्णायन' महाकाव्य लिखा। इसके पश्चात् मऊ बुदेलखण्ड-निवासी सचित-द्विज ने 'कृष्णायन' लिखा और तीसरा 'कृष्णायन' महाकाव्य वर्तमान युग में पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र द्वारा लिखा गया।

धमतरी के श्री हीरालाल उपाध्याय (मृत्यु सवत् १९४०) ने छत्तीसगढी भाषा का व्याकरण तैयार किया जिसका सशोधन पडित लोचनप्रसाद पाण्डेय और अग्रेजी अनुवाद डाक्टर ग्रियर्सन ने किया था।

रायगढ के अनन्तराम पाण्डेय ने 'कपटी-मुनि' नाम का नाटक और कुछ निबन्ध लिखे। आपका नाटक कई स्थानों में रगमच पर सफलता के साथ खेला जा चुका है। प मेदिनीप्रसाद पाण्डेय भी रायगढ के थे। बालपुर के मालगुजार श्री पुरुषोत्तम पाण्डेय की पुस्तक 'आनन्द का टोकना' प्रकाशित है, जिसमें आपके निबधो का सकलन है। अनिरुद्ध चौबे ने 'शिवरात्रि' माहात्म्य और श्रीकात शर्मा ने 'भूपदेववश-माला' पुस्तकें लिखी। रतनपुर (बिलासपुर) के सेवाराम ने लगभग तेरह पुस्तकें लिखी। आपका जन्म सवत् १८७० में और अवसान सवत् १९२७ में हुआ। पेंड्रा के श्री रामराव चिंचोलकर (सवत् १९१७ से १९९०) 'छत्तीसगढ-मित्र' के सपादक रहे। शिवरी नारायण के सुखलालप्रसाद पाण्डेय गद्य और पद्य के अच्छे लेखक थे। आपकी रचनाए जबलपुर की 'श्री शारदा' मासिक में प्रकाशित होती रहती थी। 'बाल-शिक्षक', 'पहेली', 'भूल भूलइया', 'बालगीत', 'पद्यपचामृत', 'मातृमिलन' (नाटक) 'और मैथिलीमगल' आपने सात पुस्तकें लिखी। 'मैथिली-मगल' में नृप-कुमारिया राम से उनका निवास स्थान पूछती है, तो तुलसी के राम की भाति आपके राम, इस युग की भावनाओ के अनुसार कहते है —

प्रिय स्वदेश मदिर दरिद्र भगवान में, दुःख-दैन्य से पीडित दीन किसान में।
त्याग यज्ञ से दीक्षित वर विद्वान में, प्रेमीजन के प्रेम-उफनते प्राण में।
शुभ-स्वदेश सेवा-व्रत के उद्यान में, दीन जनों के हेतु प्रदानित दान में।
और अन्त्यजोद्धार-स्वरूप कृपाण में, निशिदिन करता वास बडा सुखमान में।
मुझे खोजना हो, तो ठौरों में इन्हीं, खोज शीघ्र पा जाओगी सशय नहीं।

श्रीमती राजरानी देवी का जन्म नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश) के निकट पिपरिया ग्राम में संवत् १९२७ मे हुआ। आपका विवाह नरसिहपुर निवासी शोभाराम जी के ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीप्रसाद के साथ संवत् १९४० में हुआ। श्रीमती राजरानी की मृत्यु संवत् १९८५ मे हुई। आपने 'प्रमदा-प्रमोद' और 'सती-सयुक्ता' नाम की पद्य-पुस्तके लिखी। 'वियोगिनी' उपनाम से भी आप पत्र-पत्रिकाओं मे लिखती रहती थी। आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार डाक्टर रामकुमार वर्मा की माता थी। आपके प्रभाव से ही डाक्टर वर्मा का झुकाव काव्य की ओर हुआ। काव्य मे आपकी भाषा अत्यन्त सरल होती थी। एक स्थान पर आप लिखती है :—

भ्रम है मुझे, ललित लतिका को,
समझ न जाऊँ मैं बनमाल।
कृष्ण समझकर बड़े प्रेम से,
चूम न लूं मैं कहीं तमाल।

खण्डवा के सैयद छेदालाल शाह का जन्म संवत् १९३७ में हुआ। आप खण्डवा में रेवेन्यू इंस्पेक्टर और कृष्ण-भक्त मुसलमान थे। आपने 'भक्तपंचाशिका', 'श्रीकृष्ण पंचाशिका', 'हरगंगा रामायण', 'आत्मबोध' और 'श्री भागवत की' टीका पुस्तके लिखी। कविता आप ब्रजभाषा मे लिखते थे :—

बकि-बकि आली तुम खाली न मगज करो।
खैहौ नतु गाली मेरी टेंव बलिहारी हैं।
एक बार कहौं कि हजार बार कहौं शाह।
बिनहि जराए हाय छाती जरि हारी हैं।
लाख बात ताक धरो करो पन साख दूर,
और को सिखा के देखी केती छलिहारी हैं।
माय देवे गारी, चाहे बाप दे निकारी,
पर सांवरे बिहारी पर तन बलिहारी है।

खंडवा में जब 'भानुजी', सेटलमेंट आफिसर थे तब उन्होंने वहां 'भानु-समाज' नामकी एक कविगोष्ठी आयोजित की थी जिसमे पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के अतिरिक्त चम्पालाल जौहरी भी भाग लिया करते थे। जौहरी जी की आयु ७० वर्ष के लगभग है। वे ब्रजभाषा मे मधुर-काव्य-रचना और समस्या-पूर्तिया किया करते थे।

भाषा की दृष्टि से मध्यप्रदेश में जो रचनाये इस काल में हुई ; उनमें ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, खड़ी बोली और छत्तीसगढी सभी का समावेश मिलता है। सबसे महत्व की बात तो यह है कि यहां इन भाषाओं के बीच किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता नही पाई जाती।

(३)

आधुनिक-साहित्य-(ब) द्विवेदी-युग

हिन्दी-साहित्य में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का समय भी अपना विशेष स्थान रखता है और उस समय की अनेक परम्परायें आजतक हिन्दी-साहित्य के विभिन्न अंगों में दिखलाई पड़ती है। गद्य और पद्य दोनो की दृष्टि से इस समय एक नया प्रयास आरंभ हुआ, जिसने-हिन्दी-साहित्य की गतिविधि को पलट दिया और उसमें नई शैली के साथ-साथ नई भावनाओं का भी समावेश आरम्भ होने लगा। द्विवेदी जी का जन्म वैसाख शुक्ल ४, संवत् १९२७ को दौलतपुर, जिला रायबरेली, उत्तरप्रदेश में और देहावसान पौष कृष्ण ३०, संवत् १९९५ को हुआ। सन् १९०३ में आपने उस समय की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका "सरस्वती" के सम्पादन का भार ग्रहण किया और तभी से आपने

हिन्दी-साहित्य के विभिन्न अगो की परिपुष्टि एव भाषा के परिमार्जन की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। वास्तव में द्विवेदी जी के सामने हिन्दी का व्यापक भविष्य था और वे चाहते थे कि उसका साहित्य और भाषा-सौष्ठव ऐसा हो जाय कि वह राष्ट्रभाषा के उत्तरदायित्व को सरलता से सम्हाल सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो में—"द्विवेदीजी लिखने में सम्भवत इस बात को मानते थे कि कठिन से कठिन विषय को भी ऐसे सरल रूप में रख दिया जाय कि साधारण समझने वाले पाठक भी उसे बहुत कुछ समझ सकें।" इस प्रकार का प्रयत्न भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जमाने में ही आरभ हो गया था, परन्तु काव्य में अलकारप्रियता और कल्पना की अनावश्यक उडान का अन्त नही हुआ था। द्विवेदीजी ने काव्य के क्षेत्र में भाषा का परिमार्जन तो किया ही, उन्होने उसे जीवन और जगत के अधिक निकट लाने की चेष्टा की जिससे काव्य केवल पाण्डित्य प्रदर्शन या मनोरजन का साधन न रहकर राष्ट्रोत्थान का आधार बन गया।

द्विवेदीजी का कहना था कि—"कविता यथार्थ में कविता है तो सम्भव नही कि उसे सुनकर कुछ असर न हो। कविता से दुनिया म आजतक बडे-बडे काम हुए है।" द्विवेदीजी के समय में साहित्य के विभिन्न क्षेत्रो में भारतेन्दु-युग की प्रमुख भावनाओ का समुचित और सन्तुलित विकास हुआ। भारतेन्दु-युग को यदि जागरण का युग कहा जाय तो द्विवेदी-युग को साधना का युग कहा जायगा।

द्विवेदी जी ने गद्य और पद्य दोनो में खडीबोली को स्थान दिया और उनके द्वारा राष्ट्रीय भावनाओ को बडे वेग के साथ प्रोत्साहन मिला। खडीबोली का अस्तित्व अमीर खुसरो (सवत् १२४६) से भी पूर्व पाया जाता है। भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र (सवत् १६०७ से सवत् १६४१) तथा राजा लक्ष्मणसिंह (अभिज्ञान शाकुन्तल, सवत् १६०२) ने पद्य में ब्रजभाषा को स्थान देते हुए भी गद्य में खडीबोली का उपयोग किया, किन्तु द्विवेदी जी ने सभी क्षेत्रों में खडीबोली की स्थापना की और उसे व्याकरणसम्मत परिमार्जित करने का भी पूरा प्रयत्न किया, जिसके कारण हिन्दी-गद्य को एक नया रूप प्राप्त हुआ और उसका प्रभाव सभी प्रान्तो के तत्कालीन हिन्दी-लेखको पर पडा।

भाषा के पश्चात् भावनाओ का प्रश्न सामने आता है। साहित्य-भूमि पर प्रवेश करने के पूर्व द्विवेदी जी स्वय उस समय के विदेशी शासन का कटु अनुभव प्राप्त कर चुके थे और देश के राजनीतिक तथा सामाजिक क्षितिज पर जागरण के चिह्न दिखाई पडने लगे थ। मार्क्सवादी आलोचक एव कवि काड्वेल के अनुसार —"जिस प्रकार सीप की कृति मोती है, उसी प्रकार कला, समाज की कृति है।" * और—"कविता यथार्थ रूप में समाज का इतिहास है और प्रकृति के साथ होने वाले मनुष्य के सघर्ष का भावात्मक श्रम-सीकर है।" † द्विवेदीजी के समय में ही राजनीतिक तथा सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हो गई थी। स्वामी दयानन्द, राजा राममोहनराय, केशवचन्द सेन तथा रानडे आदि विभिन्न प्रान्तो में जाग्रति के अकुर उत्पन्न कर चुके थे और राजनीतिक क्षेत्र में अग्रेजी शासनाधिकारियो की नीति के कारण जनता में विक्षोभ पैदा हो चुका था। बग भग के कारण देश भर में शासन के प्रति असन्तोष की भावना उत्पन्न होकर क्रान्ति के चिह्न दिखलाई पडने लगे थे। फलस्वरूप कितने ही नवयुवक विदेशी शासन के प्रति प्रकट रूप से विद्रोह करने को अग्रसर हुये।

द्विवेदी जी का समय, साहित्य क्षेत्र में, सन् १६०० से सन् १६३० तक माना गया है।

इस युग के प्रारम्भ में लार्ड कर्जन के शासनकाल में प्लेग का भयानक प्रकोप हुआ, जो कई वर्षों तक चलता रहा। सन् १६०४ में उससे ११,४३,६६३ लोग मरे ‡ और यह क्रम कम अधिक मात्रा में बराबर जारी रहा। यहा तक कि

---

* 'एल्यूजन एण्ड रियल्टी'—लेखक क्रिस्टोफर कॉड्वेल, पृष्ठ ८०

† वही पृष्ठ ११०

‡ इडिया अण्डर कर्जन एण्ड आफ्टर लोएट फ्रेजर, पृष्ठ २७१, २७२।

सन् १९११ की छमाही में मृत्यु संख्या* ६,५०,००० तक पहुँच गयी। जनता में सरकार के द्वारा किये गये प्रयत्नों के प्रति इतना असंतोष व्याप्त हो गया था कि सन् १९०० में लोगों ने कानपुर के एक कैम्प पर आक्रमण किया और पांच पुलिस सिपाहियों को मार डाला।

प्लेग के साथ-साथ अकाल का भी आक्रमण हुआ और इसका कारण लोगों के पास जीविका के साधना का अभाव, वेकारी तथा भोजन-सामग्री की मँहगाई था, जिसका मुख्य आधार देश की गिरी हुई आर्थिक दशा मानना होगा।† सन् १८५७ की क्रान्ति के पश्चात् इस प्रकार के पाच अकाल भारत मे हुए और उन्होंने सरकार के प्रति जनता का विश्वास डिगा दिया। वंगभंग-आन्दोलन ने जनता के हृदय मे धीरे-धीरे प्रज्ज्वलित होनेवाली अग्निशिखा को तीव्र वनाने में सहयोग दिया। बंगाल के तत्कालीन गवर्नर सर फ्रेजर की सलाह पर लार्ड कर्ज़न ने वंग-भंग का निर्णय किया था और उनकी योजना की पूर्ति मे व्रिटिश पार्लमेन्ट ने योग दिया।‡ बंगाल के प्रमुख लोगो के अनुरोध पर भी सरकार ने निर्णय को स्थगित करना तो दूर रहा, परिवर्तन करने की वात भी स्वीकार नही की × जिससे समस्त देश में हिंसात्मक क्रान्ति की भावना पैदा हो गयी और बंगाल के दैनिक-पत्र "संध्या" ने उस वक्त लिखा कि—"जिस दिन फिरंगी ने सोने के वंगाल के दो टुकड़े कर दिये, उस दिन हमने समझा था कि कुछ गोलमाल अवश्य होगा।" + सरकार भारत रूपी तोते को केवल पिजड़े मे ही बन्द कर के सन्तोष नही कर रही थी, वल्कि उसके पर भी नोच डालना चाहती थी।·|·

पश्चिमी शिक्षा और अधिकारियों की दमननीति ने देश की राष्ट्रीय भावना को प्रवल वनाने में विशेष रूप स सहायता पहुँचाई ∵ और उसका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ा। उसने एक ओर तो हिंसात्मक क्रान्ति की दुर्गम घाटियो को पार किया तो दूसरी ओर गांधीयुग से सत्य और अहिंसा की प्रेरणा ग्रहण की। इसकी प्रत्यक्ष छाप हमें मैथिलीशरण गुप्त की विभिन्न रचनाओ में दिखाई पड़ती है। गाधीजी ने कला के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था कि—"सर्वश्रेष्ठ कला वह है, जो कला के नाम को वास्तविक रूप में सार्थक कर सके। जिसमें धूमकेतु सी तीव्र गति हो और जो हमारे जीवन को गतिशील वना सके।" द्विवेदी-युग के अधिकांश साहित्यकारों की कृतियों में यह रूप मिलता है। स्वयं आचार्य द्विवेदी जी जान स्टुवर्ट मिल के विचारों से प्रभावित थे। उन्होने उनकी पुस्तक "लिवर्टी" का हिन्दी अनुवाद भी "स्वाधीनता" नाम से किया था।

देश की राजनीति एवं सामाजिक समस्याओं पर विचार करना उस समय के साहित्यकारों का मुख्य ध्येय बन गया। द्विवेदी-युग का काव्य सरल भावानुभूतियों की रम्य स्थली है, उसमें जीवन की विभिन्न समस्याओं का निरूपण अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया गया है। इस युग की काव्य-कृतिया, जीवन-दर्शन को समझने की ओर अधिक उन्मुख जान पड़ती है। इस काल के अधिकांश कवियों का दृष्टिकोण अत्यंत प्रकृतिस्थ और सुसंगठित है। उनमे मानवता के प्रति एक जागरूक चेतनता दिखलाई पड़ती है। कला की सृष्टि मे उस समय आन्तरिक अनुभूतियो एवं सवेदनाओं का जो सूत्रपात हुआ, उसका ही एक रूप आगे चल कर छायावादी, रहस्यवादी और प्रगतिवादी कविताओं मे दिखलाई पड़ा। इस युग की आध्यात्मिक प्रवृत्तियो ने ही अभिव्यंजना मे लाक्षणिकता का सहयोग लेकर हिन्दी-काव्य को एक नई दिशा प्रदान की और प्रमुख छायावादी कवियो ने विषयप्रधान (सवजेक्टिव) तथा विषयीप्रधान (आवजेक्टिव)

---

* वही, पृष्ठ २७५।

† इकोनोमिक ट्रांजीशन इन इंडिया—सर थियोडर मारिसन।

‡ कर्ज़न के त्यागपत्र पर व्रोडरिक का पत्र, कर्ज़न के नाम—तारीख १६ अगस्त १९०५।

× सन् १९१० के वंगाली पत्र मे सुरेन्द्रनाथ वनर्जी का वक्तव्य।

+ दैनिक संध्या—सन् १९०६।

·|· हिन्दी केसरी, नागपुर—तारीख १३ जून १९०८।

∵ न्यू इंडिया—हेनरी कॉटन।

में अंतर नहीं रहने दिया।* द्विवेदी जी ने यद्यपि स्वयं इस प्रकार की कविताओं की तीव्र आलोचना की और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा भी ऐसी रचनाओं की विडम्बना की गई † परन्तु उनका प्रभाव कोई नहीं रोक सका। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कुछ लोगों के ख्याल से द्विवेदी-युग की हिन्दी-समीक्षा की चरम परिणिति प्राप्त कर चुके थे।‡

मध्यप्रदेश के जिन कवियों पर द्विवेदी युग या द्विवेदी जी का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा, उनमें लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय और स्व० कामताप्रसाद गुरु मुख्य हैं। खड़ी बोली के प्रथम काव्य-संग्रह "कविता-कलाप" में, इनमें से कुछ की कवितायें भी संग्रहीत की गई थीं।

लोचनप्रसाद पाण्डेय आज-कल काव्य-क्षेत्र से हट कर ऐतिहासिक अनुसंधान में संलग्न हैं। कविता के साथ-साथ आप गद्य के भी अच्छे लेखक माने जाते हैं। मुकुटधर पाण्डेय इस समय काव्य से तटस्थ हैं। परन्तु उनकी पुरानी रचनायें उन्हें द्विवेदी-युग के कवियों में ऊँचे स्थान पर ले जाती हैं। आप द्विवेदी-युग के उन कवियों में हैं, जिनकी रचनाओं में ही सर्वप्रथम छायावाद की झलक दिखलाई पड़ी। इसका कारण पाण्डेय जी का रवीन्द्र-साहित्य से निकटतम सम्पर्क जान पड़ता है। सन् १९१३ में रवीन्द्रनाथ को "नोबेल-पुरस्कार" मिला, परन्तु इसके बहुत पूर्व से ही उनकी प्रतिभा का प्रभाव भारत के विभिन्न प्रान्तों के साहित्य पर पड़ने लगा था। छायावाद पर अपने विचार प्रकट करते हुए सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है कि "पूर्व में उपनिषदों के दर्शन के जागरण की आभा को पश्चिम की यन्त्ररूपी सभ्यता के सौंदर्य-बोध से प्रभावित होकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने सर्वप्रथम छायावाद की भावना को जन्म दिया, क्योंकि बंगाल ही सर्वप्रथम पश्चिमी संस्कृति के गहन-सम्पर्क में आया। हिन्दी के जागरण-काल में भी ये प्रयत्न नये युग के तकाजे के कारण अल्पमात्रा में मुकुटधर आदि के समय में स्वतः प्रारंभ हो गये थे।" × पन्त जी छायावाद नाम को द्विवेदी-युग के आलोचकों द्वारा नई कविता के उपहास का सूचक मानते हैं। छायावाद के सम्बन्ध में मुकुटधर जी का कहना है कि—"आध्यात्मिकता और धर्म-भावुकता, छायावाद के अभिन्न अंग हैं। मायावाद के दृढ़पाश में जकड़े हुए पश्चिमीय हृदय को वे नवीनतापूर्ण भले ही मालूम हों, पर भारत की तो वे एक तरह से चिरन्तन वस्तुएँ हैं।"+ मुकुटधर एवं मैथिलीशरण गुप्त का छायावाद इसी आधार पर अग्रसर हुआ था।

द्विवेदी-काल के कई कवियों ने अद्वैतदर्शन की भांति काव्य-क्षेत्र में कल्पना को यथार्थ से पृथक् कर एक ऐसे स्वप्न लोक की सृष्टि की जिसकी पृष्ठभूमि सामाजिक होते हुए भी आधार आध्यात्मिक बनाया गया और इस प्रकार सामाजिक विषमताओं एवं विशृङ्खलताओं से मुक्त होकर कवियों ने अपने कल्पना-लोक में विचरना आरंभ किया। छायावादी-काल के लिए श्री सियारामशरण गुप्त जो स्वयं कुछ सीमा तक छायावादी हैं, की निम्नलिखित पंक्तियां बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होती हैं।

स्वर न ताल, केवल झंकार, किसी शून्य में करे विहार। |

यह झंकार ही छायावादी काव्य को माधुर्य प्रदान करती है, जिसके कारण उसे समझने और न समझनेवाले दोनों ही आनन्द का अनुभव करते हैं। मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं में माधुर्य के साथ-साथ भावों की भी सरलता स्पष्ट-रूप से मिलती है—

जब संध्या हो हट जायगी भीड़ महान, तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा गान।
शून्य पक्ष के अथवा कोने में ही एक, बैठ तुम्हारा करूँ वहां नीरव अभिषेक॥

---

* विनयमोहन शर्मा का लेख "अवन्तिका काव्यालोचनांक", जनवरी १९५४, पृष्ठ १९२।
† काव्य में रहस्यवाद।
‡ "नया साहित्य, नये प्रश्न?"—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ३३।
× "अवन्तिका काव्यालोचनांक," जनवरी १९५४, पृष्ठ १९०।
+ श्री शारदा, नवम्बर १९२०, पृष्ठ १००।
| झंकार—सियारामशरण गुप्त।

मुकुटधर पाण्डेय की भांति मैथिलीशरण गुप्त और वदरीनाथ भट्ट भी द्विवेदी-युग में नवीन प्रवाह की ओर आकर्षित हुए, परन्तु वे अन्त तक इसका निर्वाह नहीं कर पाये, जव कि मुकुटधर पाण्डेय अपने नव निर्मित मार्ग पर बरावर चलते रहे। उनके काव्य पर द्विवेदीजी की इतिवृत्तात्मक शैली का प्रभाव अवश्य पड़ा। "आंसू" एवं "उद्गार" आपकी इसी प्रकार की सुन्दर रचनाएँ हैं। "शैलवाला", "पूजा-फूल", "लक्ष्मी" और "परिश्रम" आपके पद्य-ग्रन्थ हैं। आपके सम्वन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"तृतीय उत्थान के आरंभ मे पंडित मुकुटधर पाण्डेय की रचनाएँ छायावाद के पहिले नूतन स्वच्छद मार्ग निकाल रही थी। मुकुटधर की रचनाये प्राणियों की गतिविधि का भी रहस्यपूर्ण परिचय देती हुई स्वाभाविक स्वच्छन्दता की ओर झुकती मिलेगी।" प्रकृति-प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का रागात्मक परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुःख मे उनके साहचर्य की भावना—ये सब वाते स्वच्छन्दता के पथचिह्न हैं।"* वास्तव में कवि का व्यक्त सत्य प्रकृति और मानव है और जव इनके आध्यात्मिक प्रणय का स्वरूप उसे सर्वत्र दिखलाई पड़ने लगता है, तव उसकी कला मे वास्तविक सौदर्य और शिवत्व की भावना पैदा होती है।

लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा उनके भाई पुरुषोत्तमप्रसाद पाण्डेय, मुरलीधर पाण्डेय और वंशीधर पाण्डेय ने भी काव्य-रचना की, परन्तु लोचनप्रसाद पाण्डेय का हिन्दी-काव्य में एक विशेष स्थान है। आपने पूर्ण रूप से द्विवेदी-युग की प्रवृत्तियो को ग्रहण किया। "सरस्वती" मे आपकी रचनाये सन् १९०५ से ही प्रकाशित होने लगी थीं। आपने कई रचनाये ऐतिहासिक कथा-प्रसंगो को लेकर लिखी। "माधव-मंजरी", "मेवाड़-गाथा" और "नीति-कविता" आपकी काव्य-कृतिया हैं। आप प्रान्तीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पंचम अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे। चितौड़ के राणा भीमसिंह के अपूर्व त्याग की कथा आपने नन्ददास के "रासपंचाध्यायी" के ढंग पर लिखी। "मृगी दु:खमोचन" आपकी रचना खड़ी वोली के सवैया छन्द मे लिखी गई है, जो सुन्दर है। इसमे आपने एक पशु के हृदय को वड़ी सरलता के साथ परखा है, जो आपके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का द्योतक है। "मृगी दुःखमोचन" मे आप सुन्दर ढंग से लिखते हैं—

चढ़ जाती पहाड़ों में जाके कभी, कभी—झाड़ों के नीचे फिरें विचरें।
कभी कोमल पत्तियाँ खाया करे, कभी—मीठी हरी-हरी घास चरें॥
सरिता-जल में प्रतिबिम्ब लखें, नित—शुद्ध कहीं जलपान करें।
कहीं मुग्ध हो झर-झर निर्झर से, तरु-कुंज में जा तप ताप हरें॥

पाण्डेय जी के काव्य मे ओज और माधुर्य दोनों मिलते हैं।†

द्विवेदीजी के अन्य समकालीन गद्य-पद्य लेखकों में व्याकरणाचार्य स्व. कामताप्रसाद गुरु का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है। आपने व्याकरण लिख कर खड़ीवोली गद्य को परिष्कृत और व्यवस्थित वनाने में द्विवेदी जी का हाथ वटाया। गुरु जी का जन्म सन् १८७५ मे सागर मे हुआ। प्रारंभ से ही आपकी साहित्य के प्रति अभिरुचि थी। आपकी खड़ीवोली की कविताओ का संग्रह "पद्य-पुष्पावलि" नाम से प्रकाशित हुआ और व्रजभाषा मे भी आपने "भस्मासुर-वध" तथा "विनय-पचासा" नाम के ग्रन्थ लिखे। "वेटी की विदा"—आपके द्वारा लिखी गयी वहुत प्रसिद्ध रचना है, जिसमे मातृहृदय का वड़ा सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। इस कविता मे कवि की रागात्मक भावनाओं की अनुभूति अत्यन्त प्रवल हो उठी है। इसी प्रकार "दमयन्ती-विलाप" आपकी वड़ी भावात्मक कविता है, जिसमें कवि ने शोक विह्वल दमयन्ती की दशा का वड़ा प्रभावशाली वर्णन किया है :—

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६५८।

† नक्षत्र—मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृष्ठ ३४।

पति को न पा समीप उठी अकुला कर रोती, फिर वैसी रह गई देख कर आधी धोती।
पागल सी हो लगी खोजने पति को वन में, करती कभी पुकार, कभी कुछ कहती मन में।
जिनको पहिले दत्य समझ वह डर जाती थी, अब निर्भय हो उन्हीं द्रुमों से बहलाती थी।
दौडी धूपी, गिरी पडी, रोई चिल्लाई, पर न कहीं से किसी भांति पय की सुधि पाई।।

अंग्रेजी कवि "वर्डसवर्थ" की भांति द्विवेदी जी भी गद्य और पद्य का विन्यास एक ही प्रकार का चाहते थे। यद्यपि इस क्षेत्र में स्वय द्विवेदी जी और उस युग के अन्य कवियो को भी पूर्ण सफलता नही मिली फिर भी विन्यास में नवीनता अवश्य दिखलाई पडने लगी और यही कारण है कि इस समय की अधिकांश कविताएँ इतिवृत्तात्मक रहीं। उनमें लाक्षणिकता, चित्रमयी भावना और भाषा की वह अलकारिता नही आ पाई जो प्राचीन आचार्यों के अनुसार रस-सचरण में तीव्र रूप से सहायक होती थी। इस समय के अधिकाश कवियो की रचनायें वर्णवृत्त छन्द में मिलती है।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज आलोचक लीविस का मत है कि—"अपने देश के किसी विशेष युग में उसके सबसे तीव्र चेतना-बिन्दु के प्रति जो कवि जितना अधिक सचेत रहता है, वह उतना ही महान कलाकार है।"† उनका यह भी मत है कि—"व्यक्तियो की चेतना प्रत्येक युग और पीढी में बदलती रहती है, परन्तु अभिव्यक्ति के माध्यम को बदल डालने की क्षमता श्रेष्ठ कलाकारो में ही पाई जाती है।" द्विवेदी जी स्वय अपने युग के चेतना बिन्दु अर्थात् राष्ट्रीयता एव देश प्रेम के प्रति सजग थे और उनके समय के अनेक कवियो ने इस चेतना-बिन्दु को ग्रहण करने की चेष्टा की परन्तु सबमे अधिक सफलता मैथिलीशरण गुप्त और मध्यप्रदेश के राष्ट्रवादी कवि माखनलाल चतुर्वेदी को मिली। चतुर्वेदीजी ने राष्ट्रीयता और प्रेम की साकार कमनीयता को अपने जीवन का चेतना बिन्दु बनाया और उनके प्रतिभा शिखर से दो सरितायें प्रवाहित हुईं, जिनमें से एक राष्ट्रीयता की उत्तुंग ऊर्मिया लेकर देश प्रेम के पयोनिधि को आलिंगन करने को दौडी और दूसरी जगत् को अपने स्नेह के भुज-पाश में बाध कर अलौकिक आनन्द की सृष्टि करने को। माखनलाल जी का साहित्य उनकी प्रतिभा और भावुकता पर निर्भर है, जिसका सृजन उनकी अनुभूतियो के आधार पर हुआ और उसकी अभिव्यजना भी अत्यन्त तीव्र है। आपकी अनुभूतिया मानव और प्रकृति के बीच साहचर्य का भाव प्रकट करती है। "हिमकिरीटिनी", "हिमतरंगिनी"‡ और "माता" आपकी काव्य-कृतिया है, जिनकी आपने कला का सुन्दर स्वरूप उपलब्ध होता है।

माखनलालजी के काव्य में राष्ट्रीयता, छायावाद एव रहस्यवाद के अवगुण्ठन में प्रकट होती है। उसमें जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति और समाज के प्रति कवि की हमदर्दी ही अधिक व्यापक हुई है :—

जिस दिन रत्नाकर की लहरें, उसके चरण भिगोने आयें,
जिस दिन शैल शिखरिया उनको, रजत मुकुट पहनाने आवें,
लोग कहें मैं चढ़ न सकूगी—बोझीली, प्रण करती हूँ सखि!
मैं नर्मदा बनी उनके, प्राणो पर नित्य लहरती हूँ सखि!
मैं अपने से डरती हूँ सखि!

कला के द्वारा भावनाओ का विकास होता है। मानव के लिए इन भावनाओ का विकास अत्यत आवश्यक है। माखनलाल जी की कला ने उनके जीवन पर और उनके जीवन ने उनकी कला पर जो प्रभाव डाला है, वह अमिट है। सन् १९१३ और उसके आसपास की कविताओ में अभिव्यजना की वह शैली अन्यत्र कम मिलती है, जो माखन-

---

† न्यू बियरिंग्स इन इंग्लिश पोयटरी—डाक्टर लीविस।
‡ इस पुस्तक पर सन् १९५५ में आपको भारत सरकार की ओर से ५ हजार का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

जी की कवितायें प्राप्त होती है।"* पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी का कहना है कि—"हम हिन्दी के अधिकांश कवियों के व्यक्तिगत जीवन से परिचित हैं। हमारे सामने एक भी ऐसा कवि नही है, जिसके सम्बन्ध में हम सरलता के साथ कह सकें कि उसे अंतर्गत की उन तरंगों का, जिनका वर्णन, उसकी कविता में मिलता है, कोई विशेष अनुभव है।"† माखनलाल जी के सम्बन्ध में ऐसा नही कहा जा सकता। उनकी राष्ट्रीय कविताओं ने जीवन के कर्त्तव्यक्षेत्र से प्रेरणा ग्रहण की है, तो भावमयी प्रेम की कवितायें उनके परिवार की भक्ति-भावना का प्रसाद हैं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और उनके पति श्री लक्ष्मणसिंह चौहान की कवितायें भी अपने युग की राजनीतिक विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। सुभद्राजी के काव्य में राष्ट्रीयता और मातृत्व की भावना का समावेश मिलता है। उनका काव्य हृदय की गहराई और—नारी-सुलभ उदारता एवं भाव-प्रवणता से अभिसिक्त है। उसमे महादेवी के काव्य जैसी विषादमयी—अनुभूतियां न मिल कर उल्लास का अविराम स्वर सुनाई पड़ता है, जिसके कारण उनका समस्त काव्य-साहित्य प्राणवान् हो गया है। उनके काव्य में कल्पना की रंगीन झाकी के स्थान पर जीवन का शाश्वत स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से अंकित हुआ है और लेखिका की अन्तर्मुखी अनुभूति पाठक की आत्मा पर प्रबल प्रभाव डालती है। भावो की अभिव्यंजना हृदय को स्पर्श कर उसमें उत्साह का अनुपम उत्स प्रवाहित कर देती है। यही कारण है कि सुभद्रा जी का काव्य-भूषण की अपेक्षा वीर रस का अधिक सुन्दर स्वरूप उपस्थित करता है और उसका स्थायी भाव "उत्साह", केवल शब्दो तक सीमित न रह कर काव्य की आत्मा को मुखरित कर देता है। उनकी सन् १९२१ में लिखी गई "खूब लड़ी मरदानी - वह तो झांसीवाली रानी थी" और "वीरो का कैसा हो वसन्त" आदि कवितायें राष्ट्रीय भावनाओं से ओतःप्रोत हैं। दूसरी ओर सुभद्राजी ने बाल जीवन की मधुर स्मृतियो का भी बड़ा मनोमोहक चित्रण किया है, जिसमें वात्सल्य की भावना अपनी स्वाभाविक गतिविधि के साथ निर्झर के समान प्रस्फुटित होती है। उनके मातृहृदय मे शिशु-प्रेम का जो प्रवाह उमड़ा, वह भी बड़ी स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक भावनाओं से युक्त है। "बालिका का परिचय"—कविता में आप लिखती हैं—

बीते हुए बालपन की यह क्रीड़ापूर्ण वाटिका है,
वही मचलना, वही किलकना, हँसती हुई नाटिका है,
मेरा मन्दिर, मेरी मस्जिद, क़ाबा, काशी यह मेरी,
पूजा-पाठ, ध्यान-जप-तप है, घट घट वासी यह मेरी ॥

सुभद्रा जी स्वयं वीराङ्गना थी। भारत की वे ही सर्वप्रथम महिला थी, जिन्हों ने झंडा सत्याग्रह में भाग लेकर अपने देश-प्रेम का परिचय दिया।

सुभद्रा जी के कविताओं के संग्रह—'मुकुल' और 'त्रिधारा'‡ है, जिनकी सभी कवितायें जागरण एवं चेतना की भावना उत्पन्न करनेवाली हैं।

सुभद्रा जी के पति स्व. ठाकुर लक्ष्मणसिंह का जन्म सन् १८९५ मे खण्डवा मे हुआ। माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आने से आप प्रान्त के राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में आये। इसके पूर्व आप प्रयाग से प्रकाशित होने वाले पत्र 'अभ्युदय' के सम्पादक थे। आपने नाटक, उपन्यास तथा कवितायें लिखी। जेल मे लिखा आपका एक काव्य-ग्रन्थ अप्रकाशित है। आपकी रचनाओं मे भी राष्ट्रीयता का प्रभाव मिलता है परन्तु अधिकतर कविताये सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण है और उनमें कवि की अनुभूतियो का सुमधुर संचार पाया जाता है। 'कृष्णावतार' मे चौहान जी ने कृष्ण के चमत्कार-रहित मानवीय पक्ष को उपस्थित किया है। उनके भावुक-हृदय से निःसृत होने के कारण उसमें

---

* 'अवन्तिका काव्यालोचनांक', विनयमोहन शर्मा, पृष्ठ १९८।

† कविता-कौमुदी, भाग २ की भूमिका, पृष्ठ ३८।

‡ त्रिधारा में सुभद्राजी के अतिरिक्त माखनलाल जी चतुर्वेदी और केशवप्रसाद पाठक की रचनायें भी संग्रहीत है।

हृदयगत भावो के स्वाभाविक उद्रेक, मानव हृदय की सहज प्रवृत्तियां तथा विभिन्न मनोदशायें अंकित की गई है। समस्त काव्य मे सौंदर्य और माधुर्य प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह महाकाव्य चौहानजी ने जेल-जीवन में लिखा था।

जेल-जीवन में लिखे गये अनेक ग्रन्थो मे पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' महाकाव्य भी अपना विशेष स्थान और महत्व रखता है। इसमें कवि ने खडीबोली या ब्रजभाषा का प्रयोग न करके गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस मे प्रयुक्त अवधी भाषा का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में 'कृष्णायन' के टीकाकार विनय मोहन शर्मा का कहना है कि "मिश्रजी ने अवधी को इसलिये चुना कि तुलसी की रामायण के छन्द समस्त भारत में प्रचलित है अतएव लोकरजन-कार्य सन्देश उसी प्रचलित भाषा और शैली में अधिक मनोवैज्ञानिक होगा"*। 'कृष्णायन' मे सूर की अपेक्षा माधुर्य कम है परन्तु ओज की मात्रा अधिक पाई जाती है क्योकि उसमें गोप और ग्वालो के कृष्ण का ही नहीं, महाभारत के सूत्रधार कृष्ण का भी चरित्र समाविष्ट है जिसकी अधिकाश कृष्णभक्त कवियो ने उपेक्षा की। मिश्र जी अपने आराध्य कृष्ण और अपने जीवन में एक ही समता मानते हैं और वह है दोनो का नटखटपन। † मिश्र जी के कृष्ण शक्ति और उत्साह की मूर्ति है और इसीलिये 'कृष्णायन' को कुछ आलोचक 'शक्ति का काव्य' मानते है। इस ग्रन्थ मे भारतीय संस्कृति के प्रति मिश्रजी की निष्ठा भी बडे प्रबलरूप में दिखलाई पडती है। उन्होने कहा भी है —

> परम्परा-प्रिय मति मैं पाई। पतृक सम्पति तजि नहि जाई।
> करि तप रिषिन लहेउ जो ज्ञाना, भयउ न आजहु सो निष्प्राणा।
> बीजरूप सब निज उरधारी, मागत कर्मभूमि नव बारी।

रामगढ़ के स्व राजा चक्रधरसिंह भी द्विवेदी-युग के कलामर्मज्ञ नरेश थे। काव्य, सगीत और चित्रकला सभी ललित कलाओ के प्रति उनकी समान रुचि थी। काव्य के क्षेत्र में 'रम्यरास' उनका प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें भगवान कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। आपने हिन्दी के प्राचीन ब्रजभाषा के कवियो का सग्रह 'काव्य-कानन' और संस्कृत की शृगार रस पूर्ण कुछ चुनी हुई कविताओ का सग्रह 'रत्नहार' नाम से प्रकाशित कराया। आपने उर्दू में भी काव्य-रचना की और दो सग्रह 'जोशेफरहत' और 'पयामे फरहत' नाम से प्रकाश में लाये। 'रम्यरास' खडी बोली का खण्ड काव्य है। इसमें आरभ से अन्त तक 'वशस्थ-छन्द' का उपयोग किया गया है —

> तपोवनी माधवनी बनी सभा, वसुन्धरा मालवनी रसाल की।
> अमन्द वृन्दारक वृन्द सेविता, सुरम्य वृन्दावन की बनी बनी। ‡

रायगढ के भूतपूर्व दीवान डा बलदेवप्रसाद मिश्र अच्छे कवि, लेखक और समालोचक है। आपकी प्रथम कविता 'मदनमहल' जबलपुर की 'हितकारिणी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'कौशल किशोर' और 'साकेतसन्त' आपके महाकाव्य हैं। 'जीवन-सगीत' भी प्रसाद जी के 'आसू' काव्य के ढग पर लिखी गई एक काव्य-पुस्तिका है, परन्तु इसमें 'आसू' की निराशा नही, उल्लासमय दार्शनिकता पाई जाती है। इसमें जीवन का दार्शनिक रहस्य सरल और मधुर भाषा में समझाया गया है —

> जीवन की शान्ति न खोना, खोकर भी सर्वप्रसन्नी,
> सुलझाओ कस समस्या, पर रहे हाथ में वशी॥

o o o

---

* भानु अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ १२४

† प द्वारकाप्रसाद मिश्र का नागपुर आकाशवाणी द्वारा प्रसारित भाषण।

‡ वशस्थ छन्द- जगण, तगण, जगण, रगण का होता है।

जीवन क्या जिसमें तिरकर, सौ सौ ज्योतें बुझ जायें,
जीवन वह जिस पर तिरकर, लाखों दीपक लहरायें।

इस ग्रन्थ की भाषा एक प्रकार की बोलचाल की 'आमफहम' भाषा है और महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'चौखे चौपदे' की याद दिलाती है। 'अन्तः स्फूर्ति' में आपकी फुटकर कवितायें संग्रहीत है। मिश्रजी हास्य भी अच्छा लिखते हैं। जिसमें भाषा और भावों का चयन परिमार्जित रूप मे मिलता है। 'साकेत-सन्त' गांधीवादी सिद्धान्तों को लेकर लिखा गया है और वह गांधी जी को समर्पित है। ब्रजभाषा मे आपने शृंगार शतक, वैराग्य शतक और श्यामशतक आदि ग्रन्थ लिखे हैं। समर्थ रामदास के सुप्रसिद्ध मराठी ग्रन्थ 'मनाचे श्लोक' का पद्यानुवाद 'हृदय-बोध' नाम से किया है।

स्व. मातादीन शुक्ल द्विवेदी युग के प्रमुख कवि, लेखक और पत्रकार थे। आपने जबलपुर से निकलनेवाले 'छात्रसहोदर' पत्र का सम्पादन किया और वर्षो तक हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'माधुरी' के सम्पादक रहे। आप व्रजभाषा और खडीबोली दोनों मे काव्य-रचना करते थे। खड़ीबोली मे सवैया और कवित्त छन्दों का प्रयोग आपने द्विवेदी युग के कवि ठाकुर गोपालशरणसिंह की भाति ही बड़ी सफलता से किया। मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व ही आपने 'गांधी चालीसा' नामक एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी। आपकी अधिकांश कविताये अप्रकाशित पड़ी हैं। लगभग ३० वर्ष पूर्व आपका एक खंड-काव्य 'स्वराज्य का शंख' नाम से प्रकाशित हुआ था। काव्य-रचना मे आप 'विदग्ध' और 'सुकवि नरेश' उपनामों का भी प्रयोग करते थे। सन् १९२९ में लिखी 'अम्मा की चिता' आपकी एक अत्यत भाव-पूर्ण कविता छप्पय छन्द में है जो अंग्रेजी कवि 'ग्रे' की 'एलिजी' की याद दिलाती है :—

कलतक जिसके वक्षस्थल में उधम मचाया,
मचल-मचलकर खूब खिझाकर फिर इठलाया,।
गा किलकारी गीत वैरियों को दहलाया,
याद नहीं, क्या खेल खेलकर क्या था खाया,।
एक एक कर वे सभी खड़े सामने नाचते,
अंकित मेरे इस हृदय में मां का गौरव वांचते।

खैरागढ के पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कवि, कहानीकार, निबन्धकार और समालोचक हैं। आपका जन्म सन् १८९४ में हुआ। आपका जीवन काव्य-रचना से ही आरंभ होता है। 'शतदल' तथा 'पद्मवन' आपके दो काव्य-संग्रह प्रकाश मे आ चुके हैं। आप दार्शनिक विचारक है और भावुक-हृदय होने के कारण आपके काव्य में भावुकता और दार्शनिकता का कही-कहीं बड़ा सुगम संगम हो गया है। भाषा आपकी मँजी हुई होती है और आपकी कल्पना में भी व्यापक सत्य निहित रहता है।

महाकवि रवीन्द्रनाथ के इस कथन से आप पूर्ण सहमत है कि जब "कवि सत्य को उपलब्ध कर लेता है, तभी वह समझता है कि सत्य का प्रकार कितना सहज और कितना सुन्दर है, तब सत्य के यथार्थ रूप को ग्रहण कर वह अलंकारो की सर्वथा उपेक्षा कर देता है। जहां अलंकार नही है, वही सत्य अपने सहज रूप में प्रकाशित होता है।" बख्शीजी काव्य में अलंकार, ध्वनि या वक्रोक्ति-सम्प्रदाय के अनुयायी नही जान पड़ते और न वे यही मानते है कि अलंकारों के विना रस की निष्पत्ति नही हो सकती। महाकवि कालिदास की "इयम् अधिक मनोज्ञावल्केलेनापि तन्वी" —शकुन्तला की भांति वे कविता को स्वाभाविक रूप में देखना चाहते हैं और यह स्वाभाविकता अनुभूति की गहराई पर ही निर्भर रहती है। इसी के द्वारा काव्य में आनन्दानुभूति का सृजन होता है। आपकी 'गंगा के तटपर' कविता में भाषा और भाव का समन्वय देखने योग्य है :—

तुम आती हो यहां दया का स्रोत बहाती,
श्री, समृद्धि, सुख, शान्ति सभी पल में छा जाती।

पूर्ण फलोसे तट के कानन द्रुम हसते हैं,
पाकर आश्रय शोक-मुक्त हो सब बसते हैं।
पर उस गिरि की भीनि में आती है क्या सुधि कभी,
हृदय भग्न करके तुम्हें दिया रहा जो कुछ सभी।

वर्धा के दरबारीलाल 'सत्यभक्त' जैन धर्म एवं दर्शन के पंडित हैं और आजकल आप 'मानव धर्म' का प्रचार करने में लगे हैं। यद्यपि आजकल आपकी लिखी गई 'कवितायें' अधिकतर प्रचारात्मक हैं, परन्तु किसी समय आपने 'उलहना', 'कब्र के फूल' और 'झरना' आदि सुन्दर कवितायें लिखी थीं। असहयोग आन्दोलन के समय राष्ट्रीय रचनायें भी आपकी प्रकाशित हुईं।

मध्यप्रदेश के द्विवेदीकालीन कुछ अन्य कवि आज अन्य प्रान्तों का गौरव बढ़ा रहे हैं। इनमें से नाथूराम प्रेमी, गंगाराम शुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा', सागर के शोभाचन्द्र 'अनिल', लल्लीप्रसाद पाण्डेय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव आदि हिन्दी साहित्य की सेवा अभी भी करते जा रहे हैं। स्व. कृष्णशास्त्री तलग ने 'नीति-संग्रह' नाम का एक पद्य-ग्रन्थ संस्कृत के आधार पर लिखा जो व्यंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध प्रकाशक-संस्था हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर के स्वामी नाथूराम प्रेमी, जैन-साहित्य के पंडित हैं और उन्होंने अनेक जैन ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया है। आपका जन्म स्थान देवरी, जिला सागर है। 'जैन साहित्य का इतिहास' आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आपने वर्षों तक 'जैन हितैषी' पत्र का सम्पादन किया और कवितायें भी लिखते रहे। आपकी कविताओं पर द्विवेदी-युग की पूर्ण छाप है। गंगारामशुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा' अब तक लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिख चुके हैं। आपकी सर्वप्रथम पुस्तक 'विधवा' सन् १९२० के लगभग प्रकाशित हुई थी। आपके सभी ग्रन्थ खड़ी बोली में हैं। भाषा के सम्बन्ध में आप बड़े सतर्क रहते हैं। आँखों पर आपने एक हजार दोहे खड़ी बोली में लिखे हैं। आपकी अधिकांश कवितायें राष्ट्रीयता से परिपूर्ण हैं और सन् १९२० के असहयोग आन्दोलन के समय जनता में उनका अच्छा प्रचार था। द्विवेदी-युग में जब गीतों का अधिक प्रचार नहीं था तब आपने अनेक गीत लिखे, जो सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। लल्लीप्रसाद पाण्डेय द्विवेदी जी के सहयोगियों में थे। आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

गुरुदेवप्रसादतिवारी 'वीरात्मा' (विनयमोहन शर्मा) का जन्म जुलाई सन् १९०५ में करकबेल (होशंगाबाद) में हुआ। सन् १९२१ से ही आपने कविता लिखना प्रारम्भ किया। उस समय आप विद्यार्थी थे। सन् १९२२ से आपकी रचनायें प्रकाश में आने लगीं। आपकी कविताओं का संग्रह 'भूले गीत' नामसे प्रकाशित हुआ है। हाल ही में आपके द्वारा अनूदित 'गीत-गोविंद' का पद्यानुवाद भी प्रकाश में आ चुका है। 'भूले गीत' में प्रकाशित आपकी रचनाओं में प्रयोगवादी-धारा के भी दर्शन होते हैं। 'कनखजूर' इसी प्रकार की कविता है। संग्रह की कुछ कवितायें सन् १९२६ से ३३ तक की हैं और कुछ वर्तमान काल की। अधिकांश कविताओं में आत्मनिवेदन की भावना व्यक्त होती है जिसमें आग्रह का स्वर है और जीवन के उन क्षणों की भीड़ है जो कभी-कभी कवि के जीवन में आते रहे हैं और जिन्हें लेकर कवि भाव-जगत की ओर बढ़ा है। कई कविताओं में भावानुभूति की प्रखरता मिलती है तो कई कविताओं में गीति-काव्य के संगीत की मधुरिमा। आपकी कविताओं पर राष्ट्रीयता और छायावाद दोनों का प्रभाव देखकर भी-कभी आलोचक आपपर माखनलाल जी का प्रभाव मानने लगते हैं। वास्तव में इसका कारण दोनों में भावुकता का अतिरेक है, परन्तु दोनों की प्रेरणा के क्षेत्र अलग-अलग हैं। एक गीत में आप लिखते हैं —

कैसे तुझ से मान करूँ?
कब तेरे नयनों के 'मोती' ढरके बनकर 'पानी'?
कब मैंने बातों में तेरी, अपनी ध्वनि पहिचानी।

मध्यप्रदेश में द्विवेदीयुग के बाल-साहित्य के पद्य लेखकों में गुणाकर और स्वर्णसहोदर मुख्य हैं। स्वर्णसहोदर के काव्य मे बच्चों को प्रेरणादायक अनुभूतिया प्राप्त होती है जो उनके हृदय पटल पर एक स्थाई प्रभाव छोड़ने में सहायक बन जाती है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त जबलपुर के स्व. श्यामाकान्त पाठक का नाम उल्लेखनीय है। आपका 'श्याम-सुधा' नामका एक महाकाव्य है। हिन्दी-जगत में इस महाकाव्य का अच्छा स्वागत हुआ था, इसके पूर्वार्द्ध में श्रीकृष्ण के बाल्यकाल से लेकर कंसबध तक की कथा है। उत्तरार्द्ध में पार्थसारथी कृष्ण का चित्रण है, जो अभी अप्रकाशित है।

जबलपुर के नरसिहदास अग्रवाल तथा तोणरलाल स्वर्णकार ने असहयोगके जमाने मे राष्ट्रीय कवितायें लिखी। द्विवेदीकालीन अन्य कवियों में गंगाविष्णु पाण्डेय, स्व. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, स्व. बालमुकुन्द त्रिपाठी, स्व. नर्मदा-प्रसाद मिश्र, हरिदत्त दुबे, दयालगिरि गोस्वामी, बाबूलाल भार्गव, सुहागपुर के सुखदेव प्रसाद तिवारी 'निर्बल', स्व. देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बिलासपुर के पुत्तूलाल शुक्ल, सरयू प्रसाद त्रिपाठी, शेषनाथ 'शील', प्यारेलाल गुप्त, काशीनाथ पाण्डेय गर्गाश्रमी, यदुनन्दनप्रसाद, श्रीवास्तव, शिवदास पाण्डेय, मस्तूरी के आशुकवि स्व. शिवदास शुक्ल, रायपुर के स्व रामदयाल तिवारी, मावलीप्रसाद श्रीवास्तव, शुकलाल प्रसाद पाण्डेय, प्रेमदास वैष्णव, राजनांदगाव के स्व. भगवानदास सिरोठिया, कृष्णस्वामी मुदलियार, दुर्ग के उदयप्रसाद 'उदय', रामप्रसाद कसार, छिंदवाड़ा के रामाधार शुक्ल, हटा के लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा', हरदा के श्यामलाल उपाध्याय 'श्याम,' होशंगाबाद के स्व. हरनाम-सिह चौहान, आदि ने भी काव्य-रचना करके हिन्दी-साहित्य की सेवा की है। इनमें से कई कवि आनेवाले युग के लिये मार्गदर्शक का काम करते है और उनकी रचनाओं में अपने युग की काव्य-शैली तथा भाषा का प्रतिनिधित्व मिलता है।

गद्य-साहित्य

कविता की भाति गद्य मे भी मध्यप्रदेश की देन साधारण नही है। इस प्रान्त में छत्तीसगढी, निमाडी, बुदेलखंडी आदि अनेक जनपदीय भाषाये प्रचलित है, परन्तु यहा के लेखको ने खड़ी बोली को ही अपने गद्य-लेखनका माध्यम बनाया। इसमे अनेक प्रकार की रचनाये की और कर रहे है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साफ-सुथरी-खड़ी बोली का प्रथम लेखक रामप्रसाद निरंजनी को माना है।* आपने संवत् १७९८ में 'भाषायोगवाशिष्ठ' की रचना की। शुक्ल जी का कथन है कि ये पटियाला दरबार में थे और महारानी को कथा बाँचकर सुनाया करते थे।† कुछ लोगो का मत है कि ये सागर, मध्यप्रदेश के निवासी थे। शुक्लजी के मतानुसार खडीबोली के दूसरे लेखक बसवा (मध्यप्रदेश) के दौलतराम थे, जिन्होंने संवत् १८१८ मे "रवि-वैष्णवाचार्य के जैन पद्मपुराण" का भाषानुवाद कर १०० पृष्ठो से अधिक का एक ग्रन्थ लिखा। इनकी भाषा पर उर्दू या फारसी का कोई प्रभाव नही। इस प्रान्त के लेखक सदैव उर्दू-फारसी के प्रभाव से मुक्त रहे। 'पद्मपुराण' की भाषा मे लल्लूलाल की भाषा की भाति पंडिताऊपन अवश्य दिखलाई पड़ता है।

दौलतराम का यह गद्य फोर्टबिलियम कालेज के अधिकारियों के आदेशानुसार मुशी सदासुखलाल, और सदल मिश्र द्वारा लिखे गये गद्य-ग्रन्थो से लगभग २० वर्ष पूर्व और लल्लूलाल के जन्म से २ वर्ष पूर्व लिखा गया।

'योगवाशिष्ठ' और 'पद्मपुराण' की भाषा मे अन्तर अवश्य है फिर भी 'पद्मपुराण' की भाषा को खड़ी बोली के विकास-क्रम का परिचायक मानना ही पड़ेगा।

---

* हिन्दी-साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ४१०.

† वही, पृष्ठ ४१०.

नाटक

आधुनिक गद्य-साहित्य, नाटक, उपन्यास कहानियो और निबन्धो के रूप में सामने आता है। प्राचीन आचार्यों ने नाटक को काव्य का ही एक भेद मानकर काव्य को श्रव्य तथा नाटक को दृश्य काव्य कहा है। आधुनिक नाट्य-परम्परा को विकसित करने वाले नाटको का प्रादुर्भाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में ही हो गया था, परन्तु द्विवेदीकाल में नाटको की भाषा और उनकी शैली में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये, कारण इस बीच हिन्दी के लेखको पर बगला, मराठी और अग्रेजी के नाटको का प्रभाव बहुत अधिक पड चुका था और पारसी रगमच जनसाधारण के आकर्षण के केन्द्र बन चुके थे। मध्यप्रदेश में सर्वप्रथम अनूदित हिन्दी नाटक सन् १७६० का मिलता है, जो* शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का एक इसाई महिला कुमारी 'आर्या' द्वारा किया गया अनुवाद है। इसी प्रकार शवरीनारायण (बिलासपुर) के सुखलालप्रसाद पाण्डेय ने सन् १९०३-४ के लगभग शेक्सपियर के 'कॉमेडी आफ एरर्स' का अनुवाद छत्तीसगढी-पद्य में 'भूल भूलइयाँ' नामसे किया। श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय ने सन् १९१४ में 'साहित्य-सेवा' नामका एक प्रहसन लिखा था जिसमें साहित्य-सेवियो की दुर्दशा का चित्रण है।

हिन्दी के नाटककारो म बाबू गोविन्ददास का अपना स्थान है। आरम्भ में आपने शेक्सपियर के 'रामियो जलियट' के आधार पर तथा 'पैरीक्लिक्स' के एक नाटक के आधार पर नाटक लिखे। बाद में आप पर इब्सन का बहुत प्रभाव पडा और समस्यामूलक नाटको की रचना करने लगे। इब्सन के नाटको में मानव और उसके जीवन की विभिन्न समस्याओ को ही प्रधानता दी गई है, इसलिये उसके नाटक 'डाल्स हाऊस' की नायिका 'नोरा' एक स्थान पर कहती है कि "और सब बातो के पहिले मैं मानव हूँ।" मानव की परिस्थितियो और उसकी विवशताओ का चित्रण सेठजी के नाटको में भी मिलता है। उनका उद्देश्य मानव की आतरिक एव बाह्य-समस्याओ पर प्रकाश डालना है। आपने प्रारभ में काव्य-रचना भी की थी। 'बाणासुर-वध' नामका महाकाव्य लिखा, परन्तु बाद मे आपने नाटको को ही अपना क्षेत्र बनाया और आपका प्रथम नाटक पद्मावती' सन् १९१० मे प्रकाशित हुआ। अब तक आपने छोटे-बडे कुल मिलाकर लगभग ८५ नाटक लिखे ह। आपके नवप्रकाशित नाटक 'भूदान-यज्ञ' में नाटक लिखने की एक नई प्रणाली का अनुसरण किया गया है, जिसका कारण आपकी विदेश-यात्रा और वहा के रगमच का प्रभाव माना जा सकता है। इस नाटक में जीवित पात्रो को रगमच पर उतारा गया है। यह नाटक सामयिक सदेश के तौर पर लिखा गया है। आपके अधिकाश नाटको में सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्याओ का प्राधान्य ह, इसीलिये आपके नाटक सामाजिक-राजनीतिक (सोशियो-पोलिटिकल) कहे जा सकते हैं। आप इस धारा के एक प्रमुख लेखक माने जाते ह। राजनीति लेखक के जीवन का एक अग है जो अपनी मोहिनी मूर्ति द्वारा उसके साहित्यिक व्यक्तित्व को खीचती रहती है और राजनीतिक जीवन की अनुभूतिया ही नाटको में सामने आ जाती ह। "प्रकाश" और "पाकिस्तान" आपके इसी प्रकार के नाटक हैं। "कर्तव्य" नाटक में राम और कृष्ण दोनो के चरित्र रखे गये ह, जिनका उद्देश्य कर्तव्य की दो भूमिकायें उपस्थित करना है। राम का चरित्र मर्यादा-पालन की पूर्णता उपस्थित करता है, तो कृष्ण का चरित्र—समयानुसार नियम और मर्यादा का यहा तक उल्लघन करता है कि वे जरासन्ध के सामने लडाई का मैदान छोड कर भाग जाते ह।† "हृष", "शशिगुप्त", "कुलीनता" और "शेरशाह" आदि आपके ऐतिहासिक नाटक है। "प्रकाश", "सेवापथ", "दलित कुसुम", "हिंसा या अहिंसा," "गरीबी", "अमीरी", आदि, आपके सामाजिक नाटक ह। "प्रकाश" में राजनीतिक और सामाजिक दोनो प्रकार की परिस्थितियो का प्रभाव दिखलाई देता है। मध्यप्रदेश के नाटककारो में आप अग्रणी है।

---

* पडित प्रयागदत्त शुक्ल के सग्रह से

† हीरक जयन्ती अक-नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ १६४

ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान कवि होने के साथ नाटककार भी थे। आपके नाटकों में भी राजनीतिक जीवन की अनुभूतियां प्रखर रूप मे पाई जाती है और उनमे देश तथा समाज का सच्चा चित्र मिलता है। कॉलेज जीवन मे ही आपने "कुली-प्रथा" नामका नाटक लिखा था, जिसमे फिजी द्वीप में प्रचलित कुली-प्रथा की ओर भारतीयों का ध्यान आकर्षित किया गया। "गुलामी का नक्शा" भी आपका राजनीतिक नाटक है। इस नाटक को तत्कालीन सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा। नाटक में पात्रों का चयन और घटनाओं का उपक्रम सफलता के साथ किया गया है। उत्सर्ग, सौभाग्य लाड़ला-नैपोलियन आपके दो अन्य नाटक है। इन नाटको में प्राचीन तथा नवीन नाटक-प्रणाली का सामञ्जस्य पाया जाता है और ऐतिहासिक घटनाओं की विशेषता भी यथाशक्ति सुरक्षित रखी गई है।

स्व. कामताप्रसाद गुरु ने "सुदर्शन" नामक नाटक लिखा। इसका आधार बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक है। लेखक ने समय के अनुसार रंगमंच की कठिनाइयो का भी ख्याल रखा है। इसमें युग की परम्पराओ की विशेषता अधिक उपलब्ध है।

माखनलालजी चतुर्वेदी ने "कृष्णार्जुन-युद्ध" नाटक एक पौराणिक कथा के आधार पर लिखा है, जो कई बार सफलतापूर्वक रंगमंच पर खेला जा चुका है। इस नाटक मे कथोपकथन, पात्रों का चरित्र-चित्रण और घटनाओं का घात-प्रतिघात इतना आकर्षक है कि नाटक का मनोरंजन तत्त्व, जिसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नाटक के लिए अत्यंत आवश्यक मानते थे, कही भी कम नही हो पाता।* शशि तथा शंख का हास्य प्रेक्षको के मन मे गुदगुदी पैदा कर देता है और उसके द्वारा नाटक के प्रति प्रेक्षकों का आकर्षण बढ़ता है।

स्व. श्यामाकान्त पाठक ने "बुन्देल-केसरी" नामका एक ऐतिहासिक नाटक लिखा था। रायगढ़ के स्व. राजा चक्रधरसिंह ने भी श्रृङ्गार रस पूर्ण "प्रेम के तीर" नामका नाटक लिखा, जो रंगमञ्च पर खेला भी गया। आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव ने "अछूत" नाटक लिखा, जिसमे अछूतो की समस्या पर प्रकाश डाला गया। (रायपुर के) स्व. रामदयाल तिवारी ने स्व. प्रेमचन्द्र की कहानी "रानी सारंध्रा" के आधार पर एक नाटक लिखा था, जो अप्रकाशित है।

डा. बलदेवप्रसाद मिश्र ने सर्व प्रथम "शकर-दिग्विजय" नाटक सन् १९२२ में लिखा था, जो उनके "राजहंस" उपनाम से जबलपुर की "श्री शारदा" मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। इस नाटक में शंकराचार्य के समय की परिस्थिति और उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाये दिखलाई गई है। इस नाटक का प्रधान रस शांत है और अन्य रस सहायकों के रूप में आये है। पहिले यह नाटक पाच अको में था, बाद मे तीन अंकों मे करके इसका नाम "क्रान्ति" रख दिया गया। इस नाटक में अधिकतर प्राचीन नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन किया गया है। "असत्य-संकल्प" मिश्र जी का दूसरा नाटक है, जिसमे भौतिकवाद, अध्यात्मवाद एवं शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को लेकर प्रह्लाद का कथानक सामने रखा गया है और अन्त मे दिखाया गया है कि किस प्रकार सत्य की विजय और असत्य का पराभव होता है। इसमे शान्त और करुण रस का समावेश है।

आपके तीसरे नाटक "वासना-वैभव" मे राजा ययाति की कथा का समावेश करते हुए यह दिखलाया गया है कि वासना-रत राजाओ की क्या दुर्दशा होती है। "समाज-सेवक" नाटक मे बालचर जीवन और बालचरों के कर्तव्य का वर्णन है। यह बालको और विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है।

स्व. सिद्धनाथ आगरकर ने मराठी के सुप्रसिद्ध नाटककार गडकरी के "घर-बाहर" का हिन्दी-रूपान्तर किया और कुछ एकांकी भी लिखे। मराठी नाट्य-साहित्य मे गड़करी का बहुत ऊँचा स्थान है।

दमोह के बाबूलाल मायाशंकर दवे ने लगभग सन् १९१५ में संस्कृत के नाटक "स्वप्नवासवदत्ता" का अनुवाद किया था। स्व. नर्मदाप्रसाद मिश्र के नाटकों का संग्रह "बाल नाटकमाला" नाम से प्रकाशित हुआ। इसमे समाविष्ट

---

* "नाटक करतब तब भलो, रीझै चतुर सुजान"—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

नाटक बालकों के लिए उपयोगी हैं। "श्रीकृष्ण का दूतत्व" नामक नाटक सन् १९२२ में जबलपुर के राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर द्वारा प्रकाशित हुआ था। लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी एवं स्व. गोपाल दामोदर तामस्कर ने भी नाटक लिखे।

व्योहार राजेन्द्रसिंह का नाटक "वर्षा मंगल" भी प्रकाशित हो चुका है, जिसमें प्राकृतिक सौंदर्य के सुन्दर दृश्यों का अंकन है। आपके छः-सात एकांकी नाटकों का एक संग्रह भी "आधुनिक स्वयंवर" नाम से छप चुका है। आपका "सबै भूमि गोपाल की" नामक एकांकी नाटक स्टेज पर भी खेला जा चुका है।

उपन्यास और कहानियां—प्रान्त में यद्यपि उपन्यास और कहानियों का क्षेत्र द्विवेदी-काल में अधिक व्यापक नहीं हो पाया, फिर भी हिन्दी के कई अच्छे गद्य-लेखक सामने आये और उन्होंने अधिकतर हिन्दी के निबंध-साहित्य की ही पूर्ति की। इस कार्य में "हितकारिणी", "छात्र-सहोदर", "श्री शारदा", "कान्यकुब्ज नायक" पत्रों और "राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर", जैसी संस्थाओं से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इस युग के प्रमुख गद्य-लेखकों में स्व. कामताप्रसाद गुरु, स्वर्गीय रघुवरप्रसाद द्विवेदी, स्व. माधवराव सप्रे, स्व. प्यारेलाल मिश्र, स्व. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, स्व. बालमुकुन्द त्रिपाठी, स्व. रामदयाल तिवारी, स्व. सिद्धनाथ माधव आगरकर, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डा. बलदेवप्रसाद मिश्र, लज्जाशंकर झा और लल्लीप्रसाद पाण्डेय आदि मुख्य हैं। स्व. विनायकराव यद्यपि अधिकतर अपनी रामायणी टीका और कविताओं के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु वे अच्छे गद्य-लेखक भी थे। स्व. विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा लिखित यद्यपि कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं, परन्तु उनके भाषणों का संग्रह हिन्दी के गद्य साहित्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। उनसे प्रान्त की सभी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता था और वे अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के पटना अधिवेशन के अध्यक्ष भी हुए थे।

कहानियां—हिंदी में कहानियों का आरम्भ "सरस्वती" पत्रिका के प्रकाशन काल से होता है। "सरस्वती" सन् १९०० में प्रकाशित, स्व. किशोरीलाल गोस्वामी की "इन्दुमती" कहानी ही सम्भवतः हिंदी की सर्वप्रथम कहानी है। अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का प्रभाव बंगला-साहित्य पर पड़ा और वहां के साहित्यकारों ने गल्प लिखना आरम्भ किया। इसके पश्चात् यह प्रभाव हिंदी पर पड़ा और इसीलिए हिन्दी की अधिकांश अनूदित कहानियां बंगला के गल्पों का अनुवाद हैं।

मध्यप्रदेश के द्विवेदीयुगीन कलाकारों में बख्शीजी, सुभद्राकुमारी चौहान, आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, मंगलप्रसाद विश्वकर्मा आदि की कहानियां अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। बख्शी जी की कहानियों का एक संग्रह "झलमला" नाम से प्रकाशित है। आपकी कहानियों में कथानक की सरलता तथा भावों की व्यापकता विशेष रूप से पाई जाती है। बख्शी जी की दार्शनिक मानसिक प्रवृत्ति भी इन पर अपना प्रभाव डालती है और प्रायः सभी कहानियों में समाज के प्रति एक मंगलमय दृष्टिकोण मिलता है।

स्व. सुभद्रा जी के कहानी-संग्रह "बिखरे-मोती", "उन्मादिनी" आदि प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण और अनुभूतियों की गहराई मिलती है। सुभागी, तांगेवाला, होली और पापी पेट में समाज का वास्तविक चित्र मिलता है। आपकी कहानियां के पात्र अत्यन्त स्वाभाविक हैं और उनकी मनोदशा का चित्रण भी बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। इन कहानियों में नारी-हृदय की सरलता के साथ-साथ आज के जीवन की वांछनीय क्रियाशीलता की ओर भी संकेत मिलता है। आपकी कलात्मक अभिव्यंजना मूर्त अमूर्त सत्य को प्रस्फुटित करती है और जीवन की विरूपता में भी सत्य का सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है।

स्व. मंगलप्रसाद विश्वकर्मा की कहानियों का संग्रह "अश्रुदल" नाम से प्रकाशित है। इनमें जीवन का विशद् चित्रण है। कविताओं की अपेक्षा आप की कहानियां में अभिव्यक्ति का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है।

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव की कहानियों का संग्रह "मकरन्द" है। इसके अतिरिक्त आपने स्त्रियों की वीरता के प्रकरण को लेकर "शौर्य सुकुमार" नाम का कहानी संग्रह भी प्रकाशित कराया। कुछ कहानियां पद्य में भी लिखी गईं

है। लेखक की लेखनी बड़ी सतर्कता के साथ समाज़ के अन्तराल में प्रवेश कर, उसका विश्लेषण करती है और पात्रों की सजीवता मन को आकर्षित करने में विलम्ब नहीं करती। कथोपकथन में बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिलता है।

प्रान्त के द्विवेदीकालीन लेखकों द्वारा उपन्यास अधिक संख्या में नही लिखे गये फिर भी उस समय के कुछ उपन्यासों की गणना हिन्दी के अच्छें उपन्यासों में हो सकती है और कुछ मे उपन्यास लेखन-कला का विकास-क्रम मिलता है। लोचनप्रसाद पाण्डेय का "दो मित्र" उपन्यास सम्भवतः इस प्रान्त के साहित्यकारो द्वारा लिखित उपन्यासो मे सर्वप्रथम है, जिसमें शराब की बुराइयां दिखलाई गई है। स्व. रघुवरप्रसाद द्विवेदी ने "शाहजादा और फकीर" तथा स्व. कामताप्रसाद गुरु ने "पार्वती और यशोदा" उपन्यास लिखे ; प्रथम ऐतिहासिक और द्वितीय सामाजिक उपन्यास है। इनमें भी उपन्यास लेखन-कला का पूर्ण विकास नही मिलता। व्योहार रघुवीरसिंह लिखित "विक्रम-विलास" नाम का उपन्यास अभी तक अप्रकाशित है। यह राजा विक्रम की कहानियों के आधार पर लिखा गया है।

बाबू गोविन्ददास द्वारा लिखित उपन्यास "इन्दुमती" मे देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का चित्रण है, जो कही-कही अनपेक्षित रूप से बारीक हो गया है, जिससे उपन्यास का कलेवर बहुत भारी बन गया है। उसमें पात्रो के मानसिक संघर्षो का चित्रण मिलता है।

आलोचना और निबन्ध—द्विवेदी युग में साहित्य के दो अंगो की विशेष रूप से पुष्टि हुई ; आलोचना और निबन्ध। साहित्य-परिष्कार के लिए आलोचना का महत्व कम नही माना जा सकता। कला के निर्माण मे आलोचना के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता भले ही न हो,* परन्तु कला के परिष्कार के लिए आलोचना-साहित्य को उपेक्षित नही किया जा सकता क्योकि प्रत्येक कला मानवीय क्रियाशीलता की परिचायक है और उसका अस्तित्व—भावों की प्रेषणीयता मे निहित रहता है। आलोचना के द्वारा भाव-प्रेषणीयता को मार्ग-दर्शन मिलता है और वह कलाकार के द्वारा की गई, जीवन की व्याख्या को समझने मे सहायक होती है।† इसके द्वारा कलाकार की अवगुंठित भावनाओं का भी प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

आलोचना किसी कृति के मूल्यांकन एवं प्रेषणीयता के आधार पर अग्रसर होती है और मस्तिष्क के स्वरूप का अधिकाश प्रेषणीयता से माध्यम ग्रहण करता है। आधुनिक आलोचना-पद्धति मे मूल्यांकन के साथ-साथ प्रेषणीयता की प्रक्रिया को भी स्थान दिया जाता है। द्विवेदी-युग की आलोचना प्राचीन तत्त्वों को लेकर अग्रसर हुई, परन्तु उसमें नई भावनाओं का भी समावेश हुआ। मध्यप्रदेश के प्रमुख आलोचक पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, विनयमोहन शर्मा, स्वर्गीय रामदयाल तिवारी और लोकनाथ सिलाकारी ने आलोचना के नवीनतम सिद्धान्तो को ग्रहण किया।

बख्शी जी की आलोचनाये अधिकतर भावप्रधान होती है,परन्तु वे रचनाओ के मर्म को स्पर्श करती है और उसमें द्विवेदी जी की आलोचना-शैली का प्रतिनिधित्व मिलता है। "विश्व-साहित्य" और "साहित्य-विमर्श" आपके दो मुख्य आलोचनात्मक ग्रन्थ है, जो द्विवेदी जी के समय में ही प्रकाशित हो चुके थे।

विनयमोहन शर्मा आधुनिक कवियो की वाणी को समझने में अत्यधिक सफल हुए है। उन्होंने छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराओ पर गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है और आजकल महाराष्ट्र के सन्तों की हिन्दी कविताओं की विवेचना मे संलग्न है। आपकी आलोचना केवल बाहरी रूप-राशि में न उलझ कर कृतियों के अन्तस्तल को टटोल कर कलाकारों के साथ भावात्मक तादात्म्य स्थापित करती है, जिसके कारण आप गहन से गहन विषय को भी बड़ी श्लिष्ट एवं प्राजल भाषा में उपस्थित करने की क्षमता प्राप्त कर लेते है। आलोच्य कृति की पार्श्वभूमि को सामने रख कर आलोचना की ओर अग्रसर होना भी आपकी विशेषता है। 'साहित्य-कला', 'दृष्टिकोण', "कवि 'प्रसाद' 'आंसू' तथा अन्य कृतियाँ" और 'साहित्यावलोकन' समीक्षा-पुस्तकें प्रकाश मे आ चुकी है।

---

* आलोचना : इतिहास तथा सिद्धान्त—डा. एस. पी. खत्री।

† साहित्यालोचन डा. श्यामसुन्दरदास।

स्व रामदयाल तिवारी ने प्राचीन एव नवीन साहित्य के साथ साथ भारतीय एव पाश्चात्य दर्शन का भी गम्भीर अध्ययन किया था और गांधी युग की प्रवृत्तियो को भी अच्छी तरह से समझते थे। "गांधी-मीमासा" को आपने अपने इन गुणो के कारण ही सफल बनाया उसमें विषय का प्रतिपादन भी बड़ी सफलता के साथ हो सका है। उस समय की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका "माधुरी" आपको "समय समालोचक" कहती थी।

डॉ बलदेव प्रसाद मिश्र का "तुलसी-दर्शन" और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित व्योहार राजेन्द्र-सिंह का "तुलसीदास की समन्वय-साधना" भी दो महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। ये दोना ग्रथ पाश्चात्य एव पौर्वात्य समालोचना शैली पर लिखे गये हैं। प्रथम में गोस्वामी तुलसीदास की धार्मिक एव दार्शनिक भावनाओ का विश्लेषण मिलता है तो दूसरे में तुलसीदास की विचार-धाराओ की समीक्षा, विभिन्न क्षेत्रों को लेकर की गई है। व्योहार जी का दूसरा आलोचनात्मक ग्रन्थ "तुलसीदास और कालिदास—तुलनात्मक समीक्षा" अप्रकाशित है। लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ने भी रीतिकालीन कवियों पर कई आलोचनात्मक लेख लिखे। मध्यप्रदेश का साहित्यिक इतिहास आपका प्रसिद्ध अप्रकाशित ग्रन्थ है।

निबन्ध—साहित्य के कई रूप पाये जाते है। यह पाश्चात्य साहित्य की देन है। द्विवेदी युग में भाव प्रधान, तर्क प्रधान और विचार-प्रधान सभी प्रकार के निबध लिखे गये। मध्यप्रदेश भी इस क्षेत्र में कभी पीछे नही रहा और उस युग के कई लेखक आज भी अपने निबधो से हिन्दी-साहित्य का गौरव बढा रहे है। इनमें पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डा बलदेव प्रसाद मिश्र और व्योहार राजेन्द्र सिंह मुख्य है। सेठ गोविन्ददास ने भी नाट्य साहित्य पर निबन्ध लिखे। स्व रघुवरप्रसाद द्विवेदी, स्व कामताप्रसाद गुरु, स्व गगाप्रसाद अग्निहोत्री, स्व बालमुकुन्द गुप्त, स्व गोपाल दामोदर तामस्कर, स्व मधुमगल मिश्र और स्व मातादीन शुक्ल आदि ने भी कई महत्वपूर्ण निबन्ध लिखे और आप लोगोने निबन्ध-लेखन-परम्परा को प्रोत्साहन दिया। "हितकारिणी", "छात्र सहोदर", "श्रीशारदा" और "प्रभा", जैसी पत्रिकाओ ने भी इस कार्य में विशेष रूप से सहयोग दिया।

मुकुटधर पाण्डेय ने सन् १९२०-२१ के लगभग "श्री शारदा" में छायावाद के सम्बन्ध में कई निबन्ध लिखे। बल्लीप्रसाद पाण्डेय द्विवेदी जी के समय के प्रमुख लेखक है और उनकी भाषा तथा अभिव्यजना पर द्विवेदी जी की स्पष्ट छाप है। इनके अतिरिक्त कुलदीप सहाय, मावलीप्रसाद श्रीवास्तव, बैरिस्टर ठाकुर छेदीलाल, गणेशराम मिश्र, द्वारकाप्रसाद मिश्र, सूरजप्रसाद अवस्थी, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, रामचन्द्र सघो, प्रो लालजी राम शुक्ल, प्रो गोविन्द राव हार्डीकर, बाबूलाल मायाशकर दवे, सुकुमार चटर्जी, शुकदेव प्रसाद चौबे, गजानन गोविन्द आठले, रामचन्द्र रघुनाथ सवटे, विश्वम्भरप्रसाद गौतम आदि ने भी निबन्ध तथा लेख लिखकर उस समय के साहित्य-सृजन में सहयोग दिया और कुछ आज भी दे रहे हैं। श्री सुकुमार चटर्जी कृषि आदि विषयो पर अमेरिका से लेख भेजा करते थे, जो श्री शारदा मे छपे है। जनार्दन रामचन्द्र पराजपे ने कानूनी विषयो पर कई लेख लिखे।

रायबहादुर स्व हीरालाल ने लेख और ऐतिहासिक ग्रथ बहुत अधिक सख्या में लिखे। आपके द्वारा लिखित "दमोह-दर्शन", "सागर-सरोज", "मण्डला मयूख" और "जबलपुर-ज्योति" आदि अपना बहुत बडा ऐतिहासिक महत्व रखते है। अग्रेजी में भी आपने कई पुस्तकें लिखी और इतिहास में आप अखिल भारतीय ख्याति के विद्वान् माने जाते थे। आपकी प्रेरणा से स्व रघुवीरप्रसाद ने "झारखण्ड झकार" नामकी पुस्तक लिखी, जिसमें झारखण्ड के कोरिया, जशपुर, सरगुजा, चादभकार और उदयपुर रियासतो का प्रामाणिक इतिहास मिलता है।

नागपुर के प्रयागदत्त शुक्ल इतिहास सम्बन्धी अन्वेषणो के लिये प्रसिद्ध है और वृद्ध हो जाने पर भी आपकी यह प्रवृत्ति तथा लेखन-कार्य बराबर जारी है। आपके लेख द्विवेदी जी के समय में "सरस्वती" आदि पत्रिकाओ में छपते थे। प्रान्त के इतिहास और राजनैतिक जीवन की अत्यत महत्वपूर्ण सामग्री आज भी आपके पास सुरक्षित रूप में मिलती है। आपकी सर्वप्रथम पुस्तक "दादा भाई नौरोजी", सन् १९१७ में प्रकाशित हुई। सन् १९२५ में आपने "मध्य-

प्रान्त-मरीचिका" तथा सन् १९३० में मध्यप्रदेश का इतिहास लिखा। इसके वाद आपके लिखित विंध्याटवी के अंचल मे, सतपुड़ा की सभ्यता, गोरक्षिणी, नागपुर-नेत्र, होशंगावाद-हुंकार तथा वालाघाट-वैभव आदि ग्रन्थ प्रकाश में आये और आपने मराठी तथा हिन्दी मे प्रान्तीय कांग्रेस का इतिहास लिखा। शुक्ल जी का जन्म सन् १८९९ में हुआ। आपके पितामह स्व. शिवचरणलाल जी शुक्ल सन् १८९० में प्रकाशित होने वाले "गोरक्षा" पत्र के सम्पादक थे।

प्रान्त के राय वहादुर पंड्या वैद्यनाथ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष रह चुके हैं। आपने थियोसफी सम्वन्धी लेख तथा पुस्तकें लिखी हैं।

वैरिस्टर प्यारेलाल मिश्र और रामचन्द्र संघी ने हिन्दी मे कानून की पुस्तकों का निर्माण किया। मध्यप्रदेश के वर्तमान मुख्य-मन्त्री रविशंकर शुक्ल ने "आयर्लेण्ड का इतिहास" लिखा, जो रायपुर डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल के मासिक पत्र "उत्थान" में वरावर प्रकाशित होता रहा। इसमें आयर्लेण्ड के स्वाधीनता-आन्दोलन का रोचक ढंग से वर्णन किया गया है। "उत्थान" पत्र के सम्पादक सुन्दरलाल त्रिपाठी भी गद्य-लेखक हैं और आपकी एक पुस्तक "दैनंदिनी" नाम से प्रकाशित हो चुकी है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश गणेशप्रसाद भट्ट भी द्विवेदी-युग मे लिखते थे और आपके कई लेख "श्री शारदा" मे प्रकाशित हुए। स्व. दयाशंकर झा भी उस समय के अच्छे लेखक थे। व्योहार रघुवीरसिंह जी के भी कुछ लेख पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुए। श्री गोविन्द राव हार्डीकर लिखित स्व. माधवराव सप्रे का विस्तृत जीवन-चरित्र मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

विलासपुर के वैरिस्टर छेदीलाल कई पत्रों के सम्पादक रह चुके हैं और लेख भी लिखते रहे हैं। धमतरी के श्री चन्द्रकान्त पाठक ने भी हिन्दी तथा संस्कृत में ग्रन्थ रचना की है। राजनादगांव के स्व. भगवानदत्त सिरोठिया अच्छे लेखक और वक्ता थे। खैरागढ़ के लाल प्रद्युम्नसिंह ने "नागवंश" नाम की पुस्तक दो भागों में लिखी। रायगढ़ के वावू श्यामलाल पोद्दार ने "वालकाण्ड का नया जन्म" लिखा। रायपुर के वनमालीप्रसाद शुक्ल ने भी कई पुस्तके लिखी और वही के उमरियार वेग भी गद्य के अच्छे लेखक थे। दुर्ग के घनश्यामसिंह गुप्त भी सामाजिक विपयों पर लेख लिखते रहे हैं। नागपुर के स्व. रघुनाथ माधव भगाड़े ने मराठी की सुप्रसिद्ध पुस्तक "ज्ञानेश्वरी" का हिन्दी-अनुवाद किया।

प्रान्त के निवन्ध-लेखको में स्व. माधवराव सप्रे का विशिष्ट स्थान है। आपका जन्म दमोह जिला के पथरिया गांव में तारीख १९ जून सन् १८७१ ई. को हुआ, वाद मे आप रायपुर में रहने लगे। आप राष्ट्र-भाषा हिन्दी के परम उपासक थे। आपने पेण्ड्रा (विलासपुर) से "छत्तीसगढ-मित्र" नामका एक मासिक-पत्र निकाला, जिसके प्रकाशक स्व. वामनराव लाखे और आपके साथी-सम्पादक रामराव चिंचोलकर थे। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य शुद्ध, सरल हिन्दी भाषा का प्रचार और छत्तीसगढ़ में शिक्षा की उन्नति करना था। जव नागरी प्रचारिणी सभा ने विज्ञान-कोश के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया, तव सप्रे जी को अर्थशास्त्र-विभाग का कार्य सौंपा गया। "छत्तीसगढ मित्र" के पश्चात् आपने तारीख १३ अप्रैल सन् १९०७ ई. से "हिन्दी केसरी" का प्रकाशन आरम्भ किया। इस कार्य में आपको कई साहित्यिको से सहयोग मिला। इसी समय आपने मराठी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "दासवोध" और "लोकमान्य तिलक" के "गीता-रहस्य" का अनुवाद किया। इन दोनों अनुवादों में मूल-लेखकों के भावों की वड़ी योग्यता के साथ रक्षा की गयी है। जनवरी सन् १९२० ई. से जवलपुर से "कर्मवीर" पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमे भी सप्रे जी का जवरदस्त हाथ था। तारीख ९, १० और ११ नवम्बर को देहरादून मे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो १५ वां अधिवेशन हुआ था, उसके सप्रे जी अध्यक्ष हुए थे। इस वीच हिन्दी-जगत् में आपने पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली थी। आप सुन्दर, सरल और विचारपूर्ण भाषा में निवन्ध लिखा करते थे। आपके निवन्ध "सरस्वती", "अभ्युदय", "मर्यादा", आदि विभिन्न पत्रों में प्रकाशित हो चुके थे और उनमे विभिन्न विषयों पर आपके व्यवहारिक-ज्ञान का समावेश पाया जाता था। वास्तव में सप्रे जी हिन्दी के निवन्ध-लेखकों में अपना ऊँचा स्थान रखते हैं और उनकी कई रचनायें आज भी उतना ही महत्व रखती हैं, जितना अपने प्रकाशन-काल में रखती थी। तारीख २३ अप्रैल सन् १९२२ ई. को आपका स्वर्गवास

हो गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "हिन्दी के बड़े अच्छे लेखक ही नहीं, उसके अच्छे उन्नायक थे।" सचमुच सप्रे जी ने हिन्दी के लिए मध्यप्रदेश में जो कुछ किया, वह सदैव आदर के साथ स्मरण किया जायगा।

प्रान्त में शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर लिखने वालों की भी कमी नहीं है। लज्जाशंकर झा और शालिग्राम द्विवेदी की कृतियां इस सम्बन्ध में अपना विशेष स्थान रखती हैं। आप दोनों प्रान्त के शिक्षा शास्त्री हैं और लज्जाशंकर झा की योग्यता से प्रसन्न होकर महामना मदनमोहन मालवीय ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय के ट्रेनिंग कालेज का प्रिंसिपल बनाया था। भूगोल सम्बन्धी विषयों पर लिखने वालों में स्वर्गीय उत्तमसिंह तोमर का नाम उल्लेखनीय है। आप सिद्धहस्त चित्रकार भी थे।

नागपुर के हृषीकेश शर्मा ने रामचरित में वाल्मीकि रामायण का सार सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। आपने बाल-साहित्य पर भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। आजकल आप राष्ट्र भाषा प्रचार समिति द्वारा संचालित "राष्ट्र-भारती" मासिक के सम्पादक हैं। जैन मुनि वर्णी जी और महात्मा भगवानदीन भी प्रान्त के अच्छे गद्य-लेखक हैं।

इसी प्रान्त के पाण्डुरंग खानखोजे भी कृषि शास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। इस समय आप देश के बाहर हैं और कृषि शास्त्र पर आपने बहुत सा उपयोगी साहित्य अपने अनुभव के आधार पर लिखा है। श्री गोविन्द शर्मा छागाणी ने सन् १९१२ में "गृह-बन्धु" नामक एक मासिक-पत्र निकाला था। आप आयुर्वेद के माने हुए विद्वान् हैं और इस सम्बन्ध में आप कई ग्रंथ लिख चुके हैं। इसके अतिरिक्त इस युग में बदरी प्रसाद वाजपेयी, शिवसहाय चतुर्वेदी, रामाधार शुक्ल, दयालगिरि गोस्वामी आदि के नाम भी इस समय के निबन्ध-लेखकों में उल्लेखनीय हैं।

(४)

आधुनिक साहित्य (स) नया युग

आज हिन्दी–साहित्य में सभी ओर प्रगति और नवजीवन के चिह्न दिखलाई पड़ रहे हैं। काव्य में छायावाद का और रहस्यवाद का युग बीत चुका है। प्रकृतिवाद भी अपने अन्तिम पदचिह्न छोड़ रहा है और हिन्दी में प्रतीकात्मक तथा प्रयोगात्मक काव्य की ओर कवियों का झुकाव अभी भी किसी न किसी रूप में पाया जाता है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी नई-धारा प्रवाहित होने लगी है और नाटकों की शैली में न तो आज प्राचीन भारतीय शैली दिखलाई पड़ती है, न शेक्सपियर और मोलियर के नाटकों की शैली ही है। निबन्धों में भी नया मोड़ आ गया है और आलोचना–साहित्य दिन पर दिन प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। आज का कलाकार समाज और मानव-जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है, वह केवल कल्पनाओं के पीछे ही नहीं दौड़ता। जर्मनी के सुप्रसिद्ध नाटककार गेटे, जिसने "फाऊस्ट" नामका अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त नाटक लिखा था, ने "वेर्टेर" (उपन्यास) लिखने के बाद कहा था कि— "जिस प्रकार दारुण शीत से जल हिम की कठोरता धारण कर लेता है। इसी प्रकार "वेर्टेर" की रचना करते समय जो निर्मम परिस्थितियां आईं, वे जरा सी दाह पाते ही उपन्यास में उमड़ आईं।" आज का प्रत्येक कलाकार गेटे की भांति अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। उसकी रचनायें युग के शोषित और पीड़ित मानव को प्रेरणा प्रदान करती हैं। यही कारण है कि हमारा साहित्य दिन पर दिन अधिक यथार्थवादी होता जा रहा है और हमें उसमें जीवन का शाश्वत सत्य और मानव-हृदय का स्पन्दन मिलता है।

आज का कलाकार सापेक्षवादी द्वैत चिन्तक है और उसकी अनुभूति की अखण्ड एकरूपता अविकारी आत्मा से असीम सम्बन्ध जोड़कर निर्पेक्ष में सापेक्ष तत्वों को आरोपित करता है और प्रकृति मानवी-भावों की प्रतिछाया बनकर सम्मुख उपस्थित होती है। बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने कहा था कि—"समाज नामक व्यक्ति को मैं मानता हूं, परन्तु देवता के रूप में नहीं। इसमें स्त्रियों और पुरुषों के परम्परागत पुंजीभूत मिथ्या

कुसंस्कार तथा उपद्रव सम्मिलित हैं। ....सुविधा तथा प्रयोजन के लिये लोग असत्य को सत्य के रूप में प्रचलित करते हैं, परन्तु इसी रूप में जातीय–साहित्य को कलुषित करना बहुत बड़ा पाप है। सामाजिक अवस्था चाहे जिस प्रकार की क्यों न हो, साहित्य को संकुचित दायरे से मुक्त करना ही पड़ेगा।"

वास्तव में हमारा नया–साहित्य इस दायरे से मुक्त होने की प्रक्रिया मे संलग्न है। वह असत्य को असत्य ही प्रमाणित करने में गौरव अनुभव करता है, जिसे कुछ लोग यथार्थवाद कहते हैं और कुछ कलाकार इस यथार्थवाद के नाम पर कला की कमनीयता उघारकर उसे नंगा ही नचाना चाहते हैं। यह सन्तोष की बात है कि हमारा प्रान्त यथार्थ का वीभत्स रूप नही अपना रहा है। आज भी उसका साहित्य सत्य से सौंदर्य और सौंदर्य से शिवत्व की भावना उत्पन्न करने में संलग्न है।

प्रयाग-निवासी डा. रामकुमार वर्मा का जन्म मध्यप्रदेश के सागर स्थान में सन् १९०५ में हुआ। आपने सन् १९२१ से लिखना आरम्भ किया। "निशीथ" आपका छायावादी शैली पर लिखा गया पहिला प्रबन्ध-काव्य था। "वीर हमीर", "चित्तौर की चिता" और "नूरजहाँ" में आपकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती दिखलाई पड़ी। पन्त की भांति वर्माजी भी पहिले प्रकृति के कवि हैं और बुन्देलखण्ड का प्रकृति-वैभव आपको उसी प्रकार काव्य प्रेरणा देने मे सफल हुआ है, जिस प्रकार अलमोड़ा का प्रकृति-सौंदर्य पन्त को। वर्माजी की प्रकृति चेतना उनके मानस पर कल्पना की जो सुन्दर रेखा खीचती है, वह उनके मन की स्निग्ध–भावनाओं की अनुभूति लेकर सावन-भादों के बादलों की भाति उमड़ उठती है—

यह तुम्हारा हास आया,
इन फटे से बादलों में, कौन सा मधुमास आया ?

डा. वर्मा धीरे-धीरे प्रबन्ध-काव्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं और छन्दो की विविधता भी बढ़ती जा रही है। "चतुर्दशपदी" मे लिखित "एकलव्य" आपका इसी प्रकार का प्रयोग है। गीत और मुक्तक-काव्य की रचना मे तो आप सफलता-प्राप्त ही कर चुके हैं। आपके काव्य में करुण और श्रृंगार-रस का समन्वय मधुर रूप में होता है। वर्माजी कवि के साथ–साथ कुशल नाटककार और आलोचक भी हैं। आपके कई नाटक–संग्रह प्रकाशित हो चुके है, जिनमें "पृथ्वीराज की आंखें", "रेशमी-टाई", "चारुमित्रा" और "विभूति" मुख्य है। आप एकांकी नाटक लिखने मे सिद्ध-हस्त हैं और इस क्षेत्र में आपने अंग्रेजी-एकांकी शैली को बडी सावधानी और सफलता के साथ अपनाया है। आपके ऐतिहासिक नाटक रोचक होते है। आपने "हिन्दी–साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" और "कबीर का रहस्यवाद" दो अनुपम आलोचना-ग्रन्थ लिखे हैं।

हिन्दी के कवि, उपन्यासकार, और आलोचक रामेश्वर शुक्ल "अंचल" का जन्म उत्तर प्रदेश मे सन १९१५ में हुआ। "मधूलिका", "अपराजिता" "किरणबेला," "करील" और "लालचूनर" आपके काव्य-संग्रह बहुत पूर्व प्रकाशित हो चुके है। "मधूलिका" आपकी सर्वप्रथम रचना है। "वर्षान्त के बादल"—काव्य-सग्रह हाल ही मे प्रकाशित हुआ है जिसमें लेखक की ५४ कविताये संग्रहीत है। अंचल भावना-प्रधान कवि हैं। आपके काव्य मे कभी-कभी रोमान्स की मात्रा मर्यादा से अधिक मालूम पड़ती है। "वर्षान्त के बादल" मे कवि ने एक नई मोड़ ली है। कुछ रचनाओ में आप प्रगतिवादी दृष्टिकोण को लेकर चले है, परन्तु यह प्रगतिवादी दृष्टि-कोण भारतीय नहीं, फ्रायड़ और जुग से प्रभावित है। आपकी अभिव्यंजना-शैली सरस होती है जिसके कारण काव्य में भावों की उन्मादिनी--धारा अपने सीधे रास्ते पर चलती हुई पाठकों के हृदय मे एक सुकुमार अनुभूति पैदा करती है :—

जब नींद नहीं आती होगी,
क्या तुम भी सुधि से थके प्राण ले मुझ सी अकुलाती होगी।
दिनभर के कारभार से थक जाता होगा जूही सा तन,
श्रम से कुम्हला जाता होगा मृदु कोकाबेली सा आनन,

लेकर तनमन की श्रान्त पडी होगी शैय्या पर चचल,
किस मम वेदना से क्रन्दन करता होगा प्रतिरोम विकल ।।

उपन्यास के क्षेत्र में अचल यथार्थवादी है, यद्यपि वे आदर्श से मुक्त नहीं होना चाहते, परन्तु उनका आदर्श भावनाओं के तिमिर जाल में फसकर तिरोहित सा हो जाता है और ऐसा जान पडता है कि लेखक का ध्येय एकमात्र वस्तुस्थिति सामने रखना है। "मरुभूमि" और "उल्का" आपके उपन्यास हैं और इनमें आधुनिक शिक्षित समाज का रोमास चित्रित किया गया है। यशपाल के नारी पात्रों की भाति, अचल के पुरुष और नारी दोनों पात्र अधिकतर परिस्थितियों के प्रवाह में बहने लगते है और अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक टामस हार्डी के ये शब्द याद आते है कि — "हमारे दुष्कम विपरीत परिस्थिति को प्राप्त करने के लिये अतीत की पृष्ठभूमि में नहीं छिपे रहते वरन् फल देनेवाले पौधों की भाति पुष्ट होकर पुन पनपते है, क्योंकि उन्हें जड से नष्ट करने के लिए उनके विनाशक तत्त्व नष्ट नहीं हो पाते "अचल" जी का एक निबन्ध-सग्रह—"साहित्य और समाज" के नाम से प्रकाशित हुआ है। "तारे" नामक कहानी सग्रह बहुत पहले प्रकाश में आ चुका है।

भवानी प्रसाद तिवारी का जन्म सन् १९१२ में सागर में हुआ। आपकी सर्वप्रथम रचना सन् १९२९-३० में "प्रभा" द्वारा प्रकाश में आई। आपके द्वारा लिखित महाकवि रवीन्द्रनाथ की गीताजलि का पद्यबद्ध अनुवाद प्रकाशित है और आपकी मौलिक रचनाओं का सग्रह "प्राणपूजा" है। तिवारी जी की शैली वर्णनात्मक न होकर भावात्मक अधिक है और अपने आराध्य की स्मृति या अपनी अतरभावनाओं को ही भाव-भुवन में प्रवेश करते है। भावों में स्पष्टता और सरसता रहती है। प्रकृति के साथ तन्मय हो जाने में आप सुख अनुभव करते है, जो प्रेम-रश्मियों में उलझकर काव्य क्षेत्र में अनुराग बिखरे देते है —

नयन का पानी न रीता,
ज्वालसा जलता हुआ, सखि एक आतप और बीता।
घन लगे घिरने सखी, पर यक्ष के वे मीत है री,
मधुर-स्वर मेरे कहा, वे तो शिखी के गीत है री।
बिन्द-माला में प्रतिध्वनि आजतक सखि 'कहा सीता ?"

भवानीप्रसाद मिश्र प्रगतिशील और प्रयोगवादी कवि माने जाते है। आपकी कई रचनाओं में प्रकृति का सुन्दर चित्र मिलता है और कुछ में समाज के प्रति तीखा व्यग भी। सतपुडा के जगल', "बरसात आगई है", और "मै गीत बेचता हू"—आपकी इसी प्रकार की रचनायें है। आपका जन्म २३ मार्च १९१३ को होशगाबाद में हुआ। विद्यार्थी-जीवन से ही आपकी रुचि काव्य की ओर होगई थी। आजकल आप चलचित्रों के लिए गीत भी लिखते हैं।

केशव प्रसाद पाठक का जन्म सन् १९१६ में जबलपुर में हुआ। आपके काव्य में भावुकतायुक्त मस्ती और कल्पनाओं में सरसता पाई जाती है जिनमें कहीं-कहीं लेखक की अनुभूतियों की कसक बरबस पाठक के हृदय में कसक पैदा करती है। आपका भावना-जगत हृदय की सूक्ष्म-अनुभूतियों पर निर्भर है जिससे प्रकृति के छोटे-छोटे चित्र अपना सौंदर्य ग्रहण करते है। "त्रिधारा" में आपकी कुछ कवितायें सग्रहीत है। ईरान के सुप्रसिद्ध कवि उमरखैय्याम की रुबाईयों का पद्यबद्ध अनुवाद भी आपने किया है और पाठकजी पर उमरखैय्याम का प्रभाव भी जान पडता है। इसीलिये आपके काव्य में प्रेम और दार्शनिकता की धारायें बडे सयम के साथ एक दूसरे को भेंटती हुई चलती हैं —

सखि मैं उसे प्यार करती हूँ,
उसके सपनों की सुषमा से मैं अपना सिंगार करती हूँ।

नर्मदाप्रसाद खरे जबलपुर में १६ नवम्बर सन् १९१३ को पैदा हुये। आपकी सर्वप्रथम कविता सन् १९३० में सरस्वती में प्रकाशित हुई। "स्वर-पाथेय" और 'नीराजन' आपके प्रकाशित काव्यग्रथ हैं। आपका काव्य प्रेम

और सौंदर्य की अनुभूतियों को ग्रहण करता हुआ अग्रसर होता है और प्रकृति के शान्त क्रोड़ में उसे सुख की अनुभूति प्राप्त होती है :-

बन्धनों से मुक्त कर दो,
चिर मुखर वीणा बने ये अमर-कम्पन उलट स्वर दो।

खरे जी कहानियां भी लिखते है और आपका कहानी-संग्रह "नीराजना" नाम से प्रकाशित है। आपकी कहानियों मे सामाजिक परिस्थिति का चित्रण ही अधिक रहता है और आपके पात्र नित्य प्रति दिखलाई देने वाले मानव ही होते है जो अपनी विशिष्टता न रखते हुए भी, जीवन का यथार्थ चित्र सामने ला देते है।

रामेश्वरप्रसाद गुरु "कुमार हृदय" का जन्म ४ अप्रैल १९१४ को जबलपुर मे हुआ। आपकी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके है। गुरुजी का काव्य आधुनिक समाज का चित्र उपस्थित करता है और वह केवल भावना-जगत् से नही, प्रत्यक्ष से भी सम्बन्ध रखता है। समाज के नवनिर्माण का चित्र भी व्यापक रूप से आपके काव्य मे पाया जाता है, जिसकी मीमांसा आप अपने काव्य की कल्पनात्मक रेखाओं से करते है :--

एक नया इन्सान बनेगा, जो न देव या दानव होगा,
सच्ची मानवता का हामी, प्यार भरा वह मानव होगा।

गुरुजी ने काव्य के अतिरिक्त नाटक, निबन्ध एवं संस्मरण भी लिखे है। बाल-साहित्य में आपकी अच्छी गति है। आपके 'निशीथ' "सरदार बा", "पांच एकांकी", "भग्नावशेष" और "नक्शे का रंग" आदि पाच प्रकाशित नाटक है। "नक्शे का रंग" द्वितीय महायुद्ध के समय प्रकाशित हुआ था। चरित्र-चित्रण, कथोपकथन और घटनाओं के घात-प्रतिघात की दृष्टि से इन नाटकों के लिखने मे लेखक को सफलता मिली है। नाटकों में भारतीय और पाश्चात्य (टेक्नीक) शैली का समन्वय होता है।

रामेश्वर गुरु के छोटे भाई राजेश्वर गुरु आधुनिक कवियो मे एवं साहित्यकारो मे अपना निजी स्थान रखते है। आपका जन्म १८ जुलाई सन् १९१८ को जबलपुर मे ही हुआ। 'शेफाली' और 'दुर्गावती' आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। प्रकृति के सौंदर्य मे निमग्न होकर आप अपने मनोभावों को बड़े स्वाभाविक ढंग से प्रकट करते है। कही-कही पर आपके काव्य मे प्रेम की विह्वलता व्यंजना की सृष्टि करती है।

सजनि वातायन खुली री,
सुभगमंगल घड़ी में जीवन सपन साकार आया,
आज मेरी बेसुधी में चेतना बन प्यार आया,
प्राण के यमुना-पुलिन पर वेणु में उल्लास जागा,
हृदय का संदेश बनकर स्वास में सुखज्वार आया।

आपने कुछ नाटक भी लिखे है। 'झासी की रानी' ऐतिहासिक नाटक है और उसमें ऐतिहासिक तत्त्वों की रक्षा करने का प्रयत्न किया है। साधारणतया आपके नाटक केवल भाव-जगत् के नही, यथार्थ-जगत् से सम्बन्ध रखते है और उनमे लेखक अपने युग की समस्याओ के प्रति भी सतर्क रहता है। आपने कई वर्षो पहिले 'डाक्टर कोटनीस की अमर कहानी' लिखी थी जिसका बाद मे चित्र भी बना। इस समय आप भोपाल मे है।

रामानुजलाल श्रीवास्तव का जन्म सन् १८९७ में (सिहोरा) जबलपुर में हुआ। सन् १९१५ से आपकी रचनायें पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होने लगी थी। यही कारण है कि आपकी रचनाओं मे द्विवेदी युग की भी छाप है परन्तु वर्तमान काव्यधारा में भी आप पीछे नही रहे। माधुर्य और भावुकता की गहराई आपके काव्य की विशेषता है। हाल ही में आपकी कविताओं का एक संग्रह 'उनींदी रातें' प्रकाशित हुआ है। सन् १९४२ के आन्दोलन मे श्रीमती सुभद्रा-

स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी (रायगढ) का जन्म खानपुर जिले के एक गाव में हुआ। आप रायपुर से प्रकाशित होने वाले कई पत्रो के सम्पादक रह चुके है। आपके कई काव्यसग्रह अप्रकाशित पडे है जिनमें से एक खण्ड काव्य भी है। एक नाटक और कुछ कहानिया भी आपने लिखी है। आपकी कविताओ में राष्ट्रवाद की उच्च अनुभूति है।

घनश्यामप्रसाद 'श्याम' छत्तीसगढ के प्रमुख कवियो में से है। आप एक सवेदनशील कवि है। आपकी हिन्दी साहित्य मडल रायपुर से 'स्मृति' नाम की एक २६ पृष्ठ की पुस्तिका प्रकाशित हुई है।

दिल्ली निवासी विष्णुदत्त 'तरगी' इसी प्रान्त के कवि, लेखक और पत्रकार है। आपका काव्य-ग्रन्थ 'जय काश्मीर' बडे सुन्दर रूप-रग में प्रकाशित हुआ है। आप कहानिया और निबन्ध भी लिखते है। प्रान्त के सुप्रसिद्ध सन्त तुकडोजी महाराज हिन्दी और मराठी दोनो में भजन लिखते है, जो काफी लोकप्रिय हुये है।

मध्यप्रदेश के चार-तरुण कवि, जिनका असमय स्वर्गवास हो गया-कुजबिहारी चौबे, विनयकुमार, इन्द्र-बहादुर खरे और राधाकृष्ण तिवारी से प्रात को काफी आशायें थी। कुजबिहारी चौबे का 'कुजबिहारी काव्य-सग्रह' नाम से इन्डियन प्रेस लिमिटेड से प्रकाशित हो चुका है। विनयकुमार के गीतो का सग्रह मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा और इन्द्रबहादुर खरे का सग्रह 'विजन के फूल' साहित्य सघ जबलपुर ने प्रकाशित किया है।

प्रान्त के तरुण-कवियो में हरि ठाकुर और रामकृष्ण श्रीवास्तव अपना स्थान रखते हैं। रामकृष्ण श्रीवास्तव प्रगतिवादी कवि माने जाते है और इसी से कभी-कभी उनके काव्य में भावनायें असयत हो जाती है। हरि ठाकुर भाव-जगत् के कवि है और आप की शैली आकर्षक है। हरदा के पुरुषोत्तम 'विजय' का एक काव्य-सग्रह 'अगारा' प्रकाशित है। आप आजकल इन्दौर से 'इन्दौर-समाचार' (दैनिक) का सम्पादन तथा सचालन करते है। हरदा के शिखरचन्द जैन का काव्य-सग्रह 'गुनगुन' है। आपने कई आलोचनात्मक ग्रन्थ भी लिखे है। अमरावती के श्रीकान्त की आचार्य, जो आजकल बीकानेर में रहते है, गायक कवि है।

इनके अतिरिक्त प्रान्त में और अनेक सुकवि है जिनमें से कई प्रमुखता प्राप्त कर चुके है और न जाने इनमें से कौन अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त करे। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है —

जबलपुर—गोविन्दप्रसाद तिवारी, रामकृष्ण दीक्षित 'विश्व', गुलाबप्रसन्न शागाल, श्रीपाल पाण्डेय, सरला तिवारी, पूरनचन्द्र श्रीवास्तव, फितरत, नत्थूलाल सराफ, नानाजी, झलकनलाल वर्मा 'छैल', श्रीमती विद्या भार्गव, श्रीमती शकुन्तला खरे, रूपकुमारी देवी, जगदीश गुरु।

नागपुर—गौरीशकर लहरी, जीवनलाल वर्मा 'विद्रोही', राजेन्द्रप्रसाद अवस्थी 'तृषित', शिवनाथ मिश्र (सस्कृत, हिन्दी और उर्दू म कविता करते है), गजानन माधव मुक्तिबोध, अनिलकुमार, भृग तुपकरी, रामपूजन मलिक, रामनारायण मिश्र, गिरजाप्रसाद पाण्डेय 'कमल'।

रायपुर—पूनमचन्द तिवारी, रामकृष्ण कपूर,

राजनादगाव—काशीप्रसाद मिश्र, बलभद्रप्रसाद मिश्र,

बिलासपुर—श्रीकान्त वर्मा, गजानन शर्मा, बच्चू जाजगिरी, द्वारकाप्रसाद तिवारी 'विप्र', ज्वालाप्रसाद मिश्र।

रायगढ—आनन्दीसहाय शुक्ल, वन्देअली फातमी।

सागर—श्री कठल, इकराम सागरी, शिवकुमार श्रीवास्तव, लक्ष्मीनारायण मिश्र 'कवि-हृदय', अमृतलाल 'चचल', राजेन्द्र अनुरागी।

कटनी—सीताराम पाण्डेय, रामकृष्ण शर्मा, सम्राट, विद्यावती तिवारी।

खण्डवा—के रामचन्द्र बिल्लोरे, बुरहानपुर के गगाचरण दीक्षित, अकोला के गोविन्द व्यास,

वर्धा–रामेश्वरदयाल दुवे (आप वाल-साहित्य के भी अच्छे लेखक हैं), आशाराम वर्मा, रतन पहाड़ी, सिवनी के श्यामलाल नेमा, वृन्दावन नामदेव, वैतूल के शशिपाण्डे, अमरावती के मोतीलाल सरवैया 'मोती', करेली के राधेलाल शर्मा, छुईखदान के रतन साहित्यरत्न और वारासिवनी के प्रभुदयालसिंह 'अमर'।

गद्य-साहित्य—जैसा कि कुछ प्रसिद्ध आलोचकों का मत है कि आज का युग काव्य की अपेक्षा गद्य का है और यह कथन कुछ सीमा तक ठीक भी जान पड़ता है, क्योकि मनुष्य मे भावुकता के स्थान पर वौद्धिकता का समावेश दिन पर दिन अधिक होता जा रहा है। यद्यपि प्राचीन आचार्यो ने नाटक को काव्य का ही अंग माना है, परन्तु यहां पर नाटक, उपन्यास, कहानी, निवन्ध और रेखाचित्र आदि सभी की गणना गद्य-साहित्य के अंतर्गत की जा रही हैं। जिन कवियों ने पद्य के साथ गद्य-साहित्य का निर्माण किया उनका उल्लेख पहिले हो चुका है। यहां केवल उन्ही लेखकों का उल्लेख किया जा रहा है, जो प्रधानतया गद्य ही लिखते हैं। हमारे प्रान्त ने अर्थ और वाणिज्य साहित्य के निर्माण में सवसे अधिक योग दिया है और उसका श्रेय प्रान्त के विभिन्न स्थानों में स्थापित सेक्सरिया अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालयों के आचार्यो और प्राध्यापको को है। इस क्षेत्र में दयाशंकर दुवे, भगवतशरण अधोलिया, तोखी, शाह, दयाशंकर नाग, पन्नालाल वल्दुआ, सुशील कुमार दिवाकर, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, नन्दलाल शर्मा मुख्य हैं। सेकसरिया अर्थ वाणिज्य विद्यालय के कर्णधार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामन्त्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल गाधी अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ माने जाते है और आपने अर्थशास्त्र सम्वन्धी पुस्तकें लिखी हैं। आप कवि भी हैं और आपकी कविताओं का संग्रह 'रोटी का राग' नाम से प्रकाशित है। वनापुरा (इटारसी) के हुकुमचन्द्र पाटनी ने भी अर्थशास्त्र पर लेख लिखे हैं। आजकल आपने इन्दौर को अपना कार्यक्षेत्र वना लिया हैं।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष, व्रिजलाल वियाणी की दो पुस्तकें 'कल्पना कानन' और 'जेल मे' प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी भाषा सरल और नई शैली लिये हुये हैं। छोटे-छोटे वाक्यों में वर्ण्यविपय को अच्छा उपस्थित कर देते हैं और गद्य में भी काव्य का सा आनन्द अनुभव होता है। 'कल्पना-कानन' के सम्वन्ध में स्वयं लेखक का कहना है "मेरा कानन -कल्पना मे हूँ।" यह कल्पना ही हृदय की अनुभूतियों के साथ मिलकर लेखक की अभिव्यजना को प्रखरता प्रदान करती है जिसके पीछे लेखक के व्यक्तित्व की अपनी छाप है। 'जेल मे' आपके जेल जीवन के कुछ व्यक्तिगत संस्मरण हैं। इस पुस्तक में लेखक ने संस्करण लिखने की एक नवीन शैली उपस्थित की है। जिसमे कही-कही तो कहानी का आनन्द आने लगता है। संस्मरणो मे जीवन के वास्तविक चित्र और हृदय के अन्तरतम की भावनाओ का प्रस्फुटन हुआ है। लेखक का मत है कि 'व्यतीत-जीवन की स्मृतियां व्यक्ति के जीवन की सततता है और —है राष्ट्र के जीवन का इतिहास।" इसीलिये इस कृति में विचारों का शृंखला-वद्ध तारतम्य मिलता है।

प्रान्त के गद्य-लेखकों मे श्रीमती दिनेशनंदिनी डालमिया का नाम उल्लेखनीय है। आपके 'शवनम', 'मौक्तिक-माल', 'दुपहरिया के फूल' आदि गद्य-काव्य संग्रह तथा दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके है। अव आप दिल्ली मे हैं।

प्रान्त के कलाकारों और उपन्यास-लेखकों में 'अंचल' के अलावा श्रीमती उषादेवी मित्रा, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' और अनन्त गोपाल शेवड़े मुख्य हैं। प्रसिद्ध कहानी लेखिका श्रीमती उषादेवी की अधिकाश कहानियां सामाजिक हैं और उनमे परिस्थितियों का चित्रण सुन्दर ढंग से होता है। आप पहिले वंगला भापा मे लिखती थी, परन्तु प्रेमचन्द जी की प्रेरणा से हिन्दी के क्षेत्र में आईं और अच्छी ख्याति अर्जित की। देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' के कई उपन्यास और कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं। आप कविता भी लिखते हैं। 'दुर्गावती' आपका खण्ड काव्य है। 'हवा का रुख' आपका हाल ही मे प्रकाशित कहानी-संग्रह है। आपकी पत्नी हीरादेवी चतुर्वेदी भी उपन्यास, नाटक और कहानियां लिखती हैं। अनन्त गोपाल शेवड़े के 'निशागीत' और 'मृगजल' दो प्रसिद्ध उपन्यास हैं। नये लेखकों मे आपका अच्छा स्थान हैं।

जहूरबख्श मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध कहानी लेखक है। आप बहुत अर्से से हिन्दी में लिख रहे है। आपकी अधिकाश कहानिया सामाजिक होती है। आपकी कुछ कहानिया आवश्यकता से अधिक बडी हो गई है, फिर भी उनमें रोचकता का अभाव नहीं पाया जाता। पात्रो के चरित्र-चित्रण म लेखक का व्यावहारिक ज्ञान समाविष्ट रहता है। भाषा सरल और पात्रो के अनुरूप रहती है। आपकी कहानियो का सग्रह "हम प्रेसीडेंट है"—कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित हुआ है, जिसमें लेखक की कला की सुन्दर झाकी मिलती है। आप बाल साहित्य के भी लेखक है।

श्रीमती तेजरानी दीक्षित (अब पाठक) के उपन्यास "हृदय का काटा" का हिन्दी-जगत् में अच्छा स्वागत हुआ था। आपने कुछ और उपन्यास तथा कहानिया भी लिखी है। "हृदय का काटा" एक सामाजिक उपन्यास है और उसमें कौटुम्बिक वातावरण एव समाज की निर्ममताओ का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। लेखिका ने सभी पात्रो को बडे अच्छे ढग से उपस्थित किया है, जिसमें उनकी मानसिक दशा का चित्रण भी सजीव रूप में पाया जाता है।

दुर्गाशकर मेहता का "अनबूझी प्यास" मध्यप्रदेश के उपन्यास-साहित्य में अच्छी कृति है। इसमें ग्रामीण जीवन का सुन्दर चित्रण है। शैली बहुत कुछ प्रेमचन्द्र की धरती पर है। इस उपन्यास में नवीन युग का भी प्रभाव पडा है।

फिल्म जगत के सुप्रसिद्ध कलाकार दुर्ग-निवासी किशोर साहू हिन्दी में कहानिया लिखते है। आपकी कहानियो के दो सग्रह प्रकाशित हो चुके है। आपकी अधिकाश कहानिया यथार्थवादी है और उनमें समाज का वास्तविक चित्रण मिलता है। कथनोपकथन में नाटकीय-तत्त्व का समावेश पाया जाता है, जिसका कारण आप पर फिल्म-जगत् का प्रभाव है। भाषा आपकी सरल होती है और छोटे-छोटे वाक्यो में विचार प्रकट किये जाते है।

हरिशकर परसाई, नरेन्द्र और राजेन्द्रप्रसाद अवस्थी प्रान्त के तरुण-कहानी लेखको में अपना स्थान रखते है। परसाई जी की कहानिया रेखा चित्र के रूप में सामने आती है। 'हसते है रोते है' आपका कहानी-सग्रह है। नरेन्द्र की कहानिया में मनोवैज्ञानिक चित्रण रहता है। "ग्रहण के बाद" आपका कहानी सग्रह है। अवस्थी जी की कहानिया आदर्शवादी और सामाजिक होती है, जिनमें समाज के शोषित तथा पीडित वर्ग का चित्रण रहता है। आपका कहानी-सग्रह "मकडी के जाले" छप रहा है। रायपुर के मधुकर खेर नये उत्साह से कहानी के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए है। वर्धा के 'ज्योतिमय" की कहानियो में समाज की विनगारिया रहती है। जबलपुर के गोविन्दसिंह ने कई रहस्यभरी और जासूसी कहानिया लिखी है। यहीं के स्व मोहन मिश्र का एक कहानी सग्रह "मगल-पथ" भी निकल चुका है। स्व सिद्धनाथ माधव आगरकर "निरजन" के नाम से "प्रभा' आदि पत्रिकाओ में कहानिया लिखते थे। इनके अतिरिक्त कुमार साह, आनन्दमोहन अवस्थी, श्रीमती सत्यवती मैय्या (वर्धा), श्रीराम शर्मा, शकरलाल शुक्ल, रामकिशोर पाषाण, श्रीमती तारा वागडदेव, उमाशकर शुक्ल एम ए, व्रजभूषणसिंह "आदर्श" आदि के कहानी-सग्रह प्रकाशित हो चुके है, । श्रीमती शान्ति तिवारी, प्यारेलाल सन्तोषी, शिवचरणलाल मालवीय, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध, राजेन्द्रनाथ मिश्र केशवप्रसाद वर्मा राजेन्द्रलाल गुप्त, अविनाश आदि भी इस क्षेत्र में सेवा कर रहे है।

प्रान्त के नाटककारो में गोविन्ददास जी के बाद राजेश्वर गुरु, रामेश्वर गुरु, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, गोपाल शर्मा और मृग तुषकरी प्रमुख है। श्रीवास्तवजी एव शर्माजी के नाटक रगमच पर खेलने योग्य होते है। आप दोनो के नाटकों पर अग्रेजी एकाकी नाट्य शैली का प्रभाव रहता है। छोटे-छोटे प्रहसन लिखने में कामताप्रसाद सागरीय का नाम उल्लेखनीय है।

हिन्दी का निबन्ध और आलोचना-साहित्य दिन पर दिन प्रगति कर रहा है। सागर-विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, उत्तरप्रदेश से अब मध्यप्रदेश में आगये है। आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक है। आपने कई आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे है, जिनमें "हिन्दी साहित्य-बीसवी शताब्दी, "आधुनिक-साहित्य", "नया युग, नये प्रश्न" पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। इनमें हिन्दी के आधुनिक-साहित्य की आलोचना की गई है।

कमलाकान्त पाठक की भी एक आलोचनात्मक पुस्तक मध्यभारत हिन्दी-साहित्य समिति,इन्दौर से प्रकाशित हो चुकी है। आप कविता भी लिखते हैं।

प्रान्त मे निवन्ध-लेखकों की संख्या पर्याप्त है, और सभी विषयो पर निवन्ध लिखे जाते है। जवलपुर तथा नागपुर के "नव-भारत" (दैनिक) के संचालक और सम्पादक रामगोपाल माहेश्वरी पत्रकार के साथ साथ सुलेखक भी हैं, परन्तु आप वाहरी-पत्रों में नही लिखते। सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी ने संस्कृत साहित्य पर कई लेख लिखे हैं। शान्ति-निकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष मोहनलाल वाजपेयी ने सम्पूर्ण रवीन्द्र साहित्य का हिन्दी मे अनुवाद किया है। आपने कई चित्रों के लिये संवाद भी लिखे हैं। 'अमृत पत्रिका' के समाचार -सम्पादक पन्नालाल श्रीवास्तव ने पत्रकार-कला पर कई पुस्तकें लिखी है। श्रीमती वुलवुल मित्रा संगीत और गार्हस्थ्य-शास्त्र पर पुस्तक लिख चुकी हैं। इनके अतिरिक्त राजनाथ पाण्डेय, दादा धर्माधिकारी, वेणी शंकर झा, नसीने, पी. एल. चोपरा, जमनालाल जैन, मोहनलाल भट्ट, प्रो. इन्द्रदेव आर्य, रघुनाथप्रसाद परसाई, दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी (कटनी), राजेश्वर अर्गल, रसूल अहमद 'अबोध', श्रीमती राधादेवी गोयनका, प्रो. प्रभाकर जागीरदार, रामनारायण उपाध्याय, जगदीश चतुर्वेदी, राजेन्द्र प्रसाद अवस्थी, रमाप्रसन्न नायक, विद्याभास्कर शुक्ल, करुणाशंकर दवे, नाथूराम शुक्ल, जगदीश व्यास, जयनारायण अवस्थी, उमाशंकर शुक्ल (पत्रकार), हरिशंकर त्रिपाठी, सवाईमल लैन, कासिमअली, कृष्णलाल 'हंस', अशोक, दिनेश, सच्चिदानन्द वर्मा, केशवप्रसाद वर्मा, मदनमोहन शर्मा, विश्वंभरप्रसाद शर्मा, ईश्वरसिंह परिहार, हरिनारायण अग्निहोत्री, जीवन नायक, हनुमान तिवारी, वेणीमाधव कोकास, भारतेन्दु सिन्हा, श्यामलाल चतुर्वेदी, श्रीमती कृष्णकुमारी नाग, सुरेन्द्रनाथ खरे, मगनलाल वोरा आदि के निवन्ध और गद्यलेख प्रकाशित होते रहते हैं।

डा. रघुवीर और उनके पुत्र डा. लोकेशचन्द्र पिछले कुछ वर्षो से मध्यप्रदेश में आये हैं और आप लोगों ने मध्यप्रदेश तथा भारत-सरकार के योग से हिन्दी शब्दकोष के निर्माण का कार्य आरंभ किया, जो अभी तक चल रहा है। ये दोनों पिता-पुत्र अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य भाषाओं के जानकार हैं और पूर्वीय देशो के पुरातन भारतीय ग्रन्थ, शिलालेखो तथा ताम्रपत्रों की खोज की है। नवीन शब्दों के निर्माण मे आप कुछ नियमों के आधार पर अग्रसर होते हैं। इस सम्बन्ध मे कुछ मतभेद भले हो परन्तु इस कार्य की मौलिकता और विद्वत्ता की सराहना अवश्य की जायगी। आप लोगो के लेख भी समय-समय पर देशी तथा विदेशी पत्रों मे प्रकाशित होते रहते हैं। दिल्ली मे जो 'कन्वेशन' हुआ था, उसमें डा. रघुवीर ने, डा. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के रोमन लिपि के समर्थन का बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से समर्थन किया था।

डा. हीरालाल संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश के अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त विद्वान् हैं। आप जैन-साहित्य और जैन-दर्शन के पंडित हैं और अवतक अनेक प्राचीन ग्रन्थो का अन्वेषण कर चुके हैं। हिन्दी भाषा पर भी आपका अच्छा अधिकार है। आपके ग्रन्थो की संख्या लगभग दो दर्जन है। सन् १९४४ के बनारस अधिवेशन मे आप प्राकृत और जैनधर्म विभाग के अध्यक्ष रहे हैं।

पुरातत्त्व विषयों पर जवलपुर के डा. महेशचन्द्र चौवे और नागपुर के डा. कटारे, राममोहन सिन्हा और बुरहानपुर के शिवदत्त ज्ञानी भी लिखते हैं। शिवदत्त के भाई स्व. रणछोरदास ज्ञानी विक्टोरिया म्यूजियम बम्बई में क्यूरेटर थे और प्राचीन सिक्कों की अच्छी जानकारी रखते थे। नागपुर म्यूजियम के असिस्टेंट-क्यूरेटर वालचन्द्र जैन भी पुरातत्त्वीय विषयो के प्रमुख लेखक हैं। आपकी २-३ पुस्तकें भी छप चुकी हैं। इसके पूर्व आप कविता और कहानियां भी लिख चुके हैं। मुनि कान्तिसागर जी ने भी पुरातत्त्व-सम्बन्धी काफी शोध किये हैं।

मध्यप्रदेश में मराठी साहित्य की प्रगति का इतिहास

लेखक— श्री त्रिंबक गोपाल देशमुख
अनुवादक—श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

वर्तमान मध्यप्रदेश में बरार के चार और नागपुर के चार इस प्रकार कुल मिलाकर आठ जिले मराठी भाषा भाषी गिने जाते है। इसके साथ ही साधारणत यह माना जाता है कि इन जिलो की सीमा के कुछ मराठी भाषा-भाषी भाग हिन्दी जिलो में समाविष्ट हो गये है। सब मिलाकर इस प्रदेश के मराठी भाषा भाषी विभाग का क्षेत्रफल लगभग चालीस हजार वर्गमील है और जनसख्या ६० लाख। इस विभाग में एक लाख से अधिक आबादी वाले नागपुर, अमरावती और अकोला ये तीन शहर है। शिक्षा की दृष्टि से यह विभाग नागपुर विश्व विद्यालय के अधिकार क्षेत्र में आता है। सन् १९०२ तक नागपुर और बरार अलग अलग राजकीय विभाग थे। परन्तु सन् १९०२ में अंग्रेजो ने नागपुर में बरार के चार जिले जोड दिये जिससे ये मराठी भाषा भाषी भाग सयुक्त हो गए।

मराठी भाषा आर्यकुलोत्पन्न है। आर्य लोग उत्तर से हिन्दुस्थान में आये। उनकी भाषा सस्कृत थी। विद्वानो का तर्क है कि जिस समय आर्यो ने दक्षिण में प्रवेश किया, उस समय विदर्भ और महाराष्ट्र के मूल निवासी गोंड, भील, कोरकू इत्यादि लोग थे जिनका कही कोई स्थायी निवासस्थान न था और न उनकी कोई स्थायी सस्कृति ही थी। इसलिये आर्यो ने ही आकर इस प्रदेश को बसाया। इसके पूर्व यहा जगल था जिसे दण्डकारण्य नाम दिया गया था जो बिल्कुल साधक था। उत्तर से जो आर्य लोग यहा आये उनकी सस्कृति और ज्ञान उच्च स्तर का था और वे बुद्धिमान थे। उन्होने इस प्रदेश की खूब उन्नति की और लगता है कि यहा के मूल निवासियो को नष्ट न कर उन्होने उन्हें अपने काम मे लगा लिया। "महाराष्ट्र सारस्वत" के लेखक श्री वी ल भावे के मतानुसार उत्तर प्रदेश से प्रथम आने वाले लोग नाग जाति के थे जिन्होने आर्यों की सस्कृति और भाषा को बडे परिमाण में अपना लिया था। फिर आगे चलकर पाणिनि के पश्चात राष्ट्रिक, वैराष्टिक और महाराष्ट्रिक लोग यहा आये और इन तीनो के सम्मेलन से 'मरहट्ट'-मराठा लोगो की उत्पत्ति हुई होगी। जो हो, पर बाहर से आये हुये आर्य या नाग लोगो की भाषा सस्कृत थी इस में सन्देह नही। ये लोग महाराष्ट्र मे आकर बसने लगे। यहा की जनता से उनका सम्पर्क हुआ। सम्पर्क के पश्चात् और समय की गति के साथ उनकी सस्कृत भाषा का रूप बदलकर 'महाराष्ट्री' भाषा हो गई जो आगे चलकर 'महाराष्ट्री अपभ्रंश' हुई और इसके पश्चात् उसने भी सब साधारण जनता की बोली के द्वारा परिवर्तित होते-होते अंत में मराठी का रूप धारण कर लिया।

पौराणिक कथाओ से स्पष्ट है कि आर्यों के यहा आने के पश्चात् नर्मदा से गोदावरी तक का भाग जिसे हम विदर्भ कहते है, साहित्य और कला में बहुत आगे बढा हुआ था। रुक्मिणी और दमयन्ती नामकी तेजस्विनी विदर्भ राज कन्याओ का उल्लेख महाभारत में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत की रचना से पूर्व भी विदर्भ देश सस्कृति की दृष्टि से उन्नतिशील था। इसलिये हम यह कह सकते है कि आर्यो की सस्कृत भाषा मे परिवर्तन होते-होते मराठी भाषा बनने की प्रक्रिया इसी देश में होती रही। इस दृष्टि से गोदावरी के दोनो तट, पैठण और बरार-वर्धा तट का भू भाग इस भाषा के शैशव का क्रीडास्थल है इस में सदेह नही। उस का नन्हा सुदर रूप हम यही देख सकते है और उसका उत्पत्ति स्थान भी यही मिलेगा। सवत् ९८५ के लगभग विदर्भ के कवि राजशेखर ने अपने 'कर्पूरमजरी' नाटक में 'महाराष्ट्री' भाषा का बडे परिमाण में उपयोग किया है। इससे अनुमान होता है कि उस समय विदर्भ में 'महाराष्ट्री' भाषा का बहुत प्रचार रहा होगा। आगे चलकर साधारणत सवत् ११३५ के लगभग उसे 'महाराष्ट्री अपभ्रंश' रूप प्राप्त हुआ और इसके पश्चात् सवत १२३५ या १३३५ के लगभग उसने मराठी रूप धारण किया होगा।

मराठी भाषा की लिपि संस्कृत की तरह देवनागरी ही है। यह भाषा उच्चारणानुसारी है। मराठी का "ळ' वर्ण द्रावड़ी वर्णमाला से मराठी में आया है।

सम्पूर्ण प्राचीन मराठी साहित्य प्रायः पद्य में ही मिलता है। मराठी गद्य की उन्नति ब्रिटिश शासन काल में ही हुई। मराठी भाषा का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ मुकुंदराज का लिखा विवेकसिंधु है जिसकी रचना संवत् १२४५ मे मध्य-प्रदेशान्तर्गत भंडारा जिले के आंभोरे नामक ग्राम मे हुई। विवेक सिंधु वेदान्त विषयक ग्रन्थ है जिसमे आदि कवि ने अपनी सरल, रसमयी और तेजस्विनी मराठी भाषा में वेदान्त जैसे क्लिष्ट विषय को संस्कृत न जानने वाली जनता के लिये अत्यन्त सुलभ कर दिया है। इस ग्रन्थ में मराठी का जो रूप दिखाई देता है उससे अनुमान हो सकता है कि संवत् १२४५ के पूर्व ही मराठी भाषा सरल और तेजस्विनी बन चुकी थी। आदि कवि मुकुंदराज ब्राह्मण थे। विवेक सिंधु के अतिरिक्त और भी दो-चार ग्रन्थ इनके लिखे माने जाते है। मुकुंदराज की पावन वाणी से प्रकट हुई मराठी भाषा आगे चलकर और भी अधिक सम्पन्न हो गई। मध्यप्रदेश के लिये यह गर्व की बात है कि मराठी के आदि कवि द्वारा इसी प्रदेश में मराठी के प्रथम ग्रन्थ का निर्माण हुआ।

मुकुंदराज के इस ग्रन्थ के लगभग पचास वर्ष बाद महानुभाव पथ के सस्थापक श्री चक्रधर इस प्रदेश मे आये और उनके शिष्यों द्वारा पंथ-प्रसार एवं आत्म-सुख के लिये निर्माण किये साहित्य से सारस्वत की जन्मभूमि मराठी के जयघोष से पुनः निनादित हो गई। उस समय देवगिरि उर्फ दौलताबाद मे यादव वंश के राजा राज्य करते थे और उनके राज्य का विस्तार साधारणतः सतपुडा से लेकर कृष्णा तक हो गया था। इन्ही यादवो के शासन काल मे मराठी भाषा का खूब उत्कर्ष हुआ। महानुभाव पंथ का गद्य और पद्य साहित्य बहुत-सा उपलब्ध है। इस पंथ के लेखकों ने पंथ विषयक एवं अन्य साहित्य निर्माण करके मराठी के आदि काल मे साहित्य-शिशु को अलंकृत किया।

"लीला चरित्र" मराठी का पहला गद्य ग्रन्थ और चरित्र ग्रन्थ है। श्री चक्रधर के शिष्य महीन्द्र भट्ट उर्फ मही भट्ट ने रिसपुर के बाजेश्वरी मन्दिर मे इस ग्रन्थ की रचना की। श्री चक्रधर के पश्चात् उनके पट्ट शिष्य श्री नागदेवाचार्य महानुभाव पंथ के प्रमुख हुए। चक्रधर के विरह से वे बड़े व्याकुल हो गए थे। मन की शान्ति के लिये आचार्य की निगरानी में चक्रधर की एक-एक लीला एक-एक व्यक्ति से एकत्रित कर महीन्द्र भट्ट ने यह ग्रन्थ लिखा। संवत् १३४३ मे चक्रधर के गुरु श्री गोविन्द प्रभु के निर्वाण प्राप्ति से पूर्व उसकी रचना पूरीं हुई होगी। संवत् १३४४-४५ के लगभग उसकी अंतिम लिपि तैयार हुई होगी। यह ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी से पहले का है और इस दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। इस मे लेखक की सुगम निरूपण शैली का परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ के एकांक, पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध इस प्रकार तीन खंड है। एकांक मे चक्रधर के पहले ६० वर्ष की और दूसरे दो ४५० पृष्ठो के खंडो मे केवल अंतिम आठ वर्षो की जीवन कहानी का वर्णन है। इस ग्रंथ के सगठन का श्रेय श्री चक्रधर के पट्ट शिष्य नागदेवाचार्य को है। उन्ही के नेतृत्व में इस पंथ के लोगों ने इस विशाल ग्रन्थ की रचना की और मराठी के उषःकाल को सजाया। इन मे 'लीला चरित्र' विदर्भ में निर्माण हुआ। चक्रधर को बाणाइसा नाम की प्रथम शिष्या वरार के मेहकर नामक ग्राम में मिली। उनकी दूसरी शिष्या का नाम महदंबा था। महदंबा ने संवत् १३४४ के लगभग विवाह के अवसर के सुदर गीतों की रचना की है। इसके अतिरिक्त उसने "मातृकी रुक्मिणी स्वयंवर" नामक ५२ सरस कविताओं का एक पद्य ग्रन्थ लिखा है। महदंबा ही मराठी की पहली कवियित्री है। महानुभाव पथ के अनेक पुरुष बड़े विद्वान और शास्त्रविद्या सम्पन्न थे। 'उद्धव गीता' के लेखक भास्कर भट्ट बोरीकर, रुक्मिणी स्वयंवर के रचयिता नरेन्द्र पंडित, "वच्छ हरण" के लेखक दामोदर पंडित आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भास्कर भट्ट बोरीकर का लिखा "शिशुपाल वध" नामक ग्रन्थ रसात्मक महाकाव्य का एक अपूर्व आदर्श माना जाता है। इस पथ के संस्थापक श्री चक्रधर ने स्वयं कोई ग्रन्थ नही लिखा। परन्तु मही भट्ट ने अपने गुरु द्वारा बताए गये सिद्धान्तों को उनकी वाणी से जैसे निकलत थ ठीक उसी तरह जतन करके रखा। इन सिद्धान्तों से कुछ सिद्धान्त चुनकर केशव राज सूरी उर्फ केसो वास ने सवत् १३२५ से १३३० के दरम्यान "सिद्धान्त सूत्र पाठ" नामक ग्रन्थ की रचना की। यही इस पंथ का मूल

ग्रन्थ है। पथीय लोग इसे भगवान् की तरह पूजते है। यह ग्रन्थ वराड के रिनपुर आश्रम में ही तैयार हुआ होगा। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त इस पंथ के जो "मार्गी" ग्रन्थ प्रसिद्ध है उन मे विश्वनाथ बालापुरकर का "ज्ञान प्रबोध" स १२८८, रवी व्यास का "सह्याद्रिवर्णन" स १३६०, नारो व्यास बाहाविये का "गोविंद प्रभु चरित्र" स १६२० आदि ग्रन्थों के नाम उल्लेखनीय है। सभी अन्वेषकों का मत है कि महानुभाव पथीय लेखकों ने मराठी भाषा पर अनत उपकार किये है।

जाति भेद, मूर्ति पूजा, चातुवर्ण्य आदि धार्मिक रूढियों का विरोध करने वाले महानुभाव पथीय लेखकों ने ब्राह्मणों की सस्कृत भाषा की पूर्ण उपेक्षा कर अपना सपूर्ण साहित्य मराठी भाषा में निर्माण किया, यह स्वाभाविक ही था। परन्तु इससे सस्कृत भाषा को ठेस लगी। वह भाषा पीछे पडने लगी और विद्वानों में भी मराठी भाषा का प्रभाव बढने लगा। महाराष्ट्र के सतो ने बडे अभिमान से मराठी भाषा में उत्तम-उत्तम ग्रन्थ निर्माण किये। एकनाथजी ने भागवत ग्रन्थ की मराठी में रचना की तो ब्राह्मणो ने उन्हें खूब तग करना शुरू किया। तब सताने वाले ब्राह्मणो से "सस्कृत वाणी देवे केली, प्राकृत काय चौरापासोनी झाली ?" यह सीधा सवाल एकनाथजी ने पूछा। परन्तु मराठी का यह मनोहारी उन्मेष अधिकाश में वर्तमान मध्यप्रदेश के पडोसी प्रदेश मे प्रकट हुआ है। विशेषत पैठन-मराठवाडा भाग ही उस समय साहित्य की उर्मियो से उमड रहा था। नामदेव द्वारा स्थापित भागवत धर्म के अनेक अनुयायी सत-कवि मराठवाडे में हो गये। उस समय उस प्रदेश पर विजय नगर के बलाढ्य हिंदू राजा राज्य करते थे। उस शान्ति-पूर्ण सम राज्य में सत-कवियो के अग्रणी श्री एकनाथजी तथा अन्य अनेक कवि कृष्ण चरित्र भागवत् भगवद् गीता आदि पर विपुल ग्रन्थ रचना कर रहे थे। इन में से एकनाथजी और "विशाल गीतार्णव" के लेखक दासोपत जी तीर्थयात्रा के निमित्त वराड में आये थे। नामदेव की दासी प्रसिद्ध सत जना बाई भी विदर्भ में आई थी। पूर्वकालीन विदर्भ में ये कवि समाविष्ट होते थे। परन्तु वर्तमान विदर्भ की दृष्टि से देखा जाय, तो कवि श्री सरस्वती गगाधर का नाम सबसे प्रथम लेना होगा। अकोला जिले के रहने वाले इस दत्तोपासक कवि ने "गुरु चरित्र" नामक एक विख्यात ग्रन्थ लिखा है जो ज्ञानेश्वरी की तरह घर-घर में पढा जाता है। दत्त सम्प्रदाय में इस ग्रन्थ का बडा महत्व है। इस के पश्चात वराड में अनेक कवि हो गये जिन में कुछ नाथ सप्रदायी थे।

उत्तम श्लोक व चिन्मयानद, मुर्जी अजन-गाव के देवनाथ दयाल नाथ, अमरावती जिले के मारकीनाथ और शिवदीन केसरी नाथ-सम्प्रदाय के प्रमुख कवि है। उत्तम-श्लोक ने "सप्तशती वरील टीका" नामक एक उत्तम ग्रन्थ लिखा है। देवनाथ की कविताओ का एक सग्रह प्रकाशित है। दयालनाथ की भक्ति-रस से सराबोर कविताए उपलब्ध है और उनकी "द्रौपदी पुकार" नामक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। वणी के गोविन्द नामक कवि परमेश्वर की मधुर भक्ति करने में प्रवीण थे। उनके भजन भक्ति रस से भरे है। फारसी, उर्दू और मराठी इन तीनो भाषाओं पर समान अधिकार रखने वाले अमृतराय की कविताओ से विदर्भ की भूमि कुछ समय के लिये निनादित हो गई। शेख मुहम्मद, शेख सहराम आदि मुसलमान कवियो ने भी विदर्भ में मराठी भाषा में रचनाए की। नागपुर जिले के केलवद ग्राम में रहने वाले गगाधर-तनय की आरतिया भी बडी प्रसिद्ध है। विदर्भान्तर्गत श्री क्षेत्र नागझरी के श्री गोमाजी महाराज प्रसिद्ध भगवद्भक्त और कवि हो गए। "श्री नागझरी माहात्म्य" नामक ग्रन्थ में उन्होने भक्ति प्रधान शिक्षा दी है। इन के अतिरिक्त, श्री सताजी महाराज, कृष्णा मुनि, म्याली बहादुर और माहूर के विष्णुदास कवि का भी विदर्भ के सत कवियो में उल्लेख करना चाहिये। इन्होने स्फुट कविताए एव ग्रन्थ रचनाए की है। माहूर के विष्णुदास दत्तोपासक साक्षात्कारी सत थे। उनका त्रिखडात्मक चरित्र ग्रन्थ उपलब्ध हो गया है। "रेणुका देवी पर भी इनकी कविताए चित्ताकर्षक है।

आधुनिक-काल— इस काल के साहित्य की चर्चा करते समय उसके काव्य, उपन्यास, नाटक आदि भेद करना आवश्यक है। इसके अनुसार आधुनिक काल के काव्य साहित्य का रसास्वादन लेने समय प्रथम ही हमारा ध्यान प्राचीन सतो की परम्परा को आज भी चालू रखने वाले दो प्रसिद्ध कवि श्री गुलाब राव महाराज और श्री सत तुकडोजी महाराज

की ओर जाता है। श्री गुलाबराव महाराज जन्मांध होते हुये भी अत्यन्त ज्ञानी पुरुष थे। वेदान्त विषय पर उनका बड़ा अधिकार था। उनका निवासस्थान अमरावती मे था। उन्होंने बहुत से ग्रन्थ लिखे है जिन में वेदान्त विषयक निरूपण है। इनका शिष्य समुदाय बहुत बडा था।

अपने खंजड़ी भजनों से बहुजन समाज के हृदय सिंहासन पर अधिष्ठित राष्ट्र कवि संत तुकडोजी महाराज आज के प्रमुख संत कवि है। इनके भजनो का संग्रह प्रकाशित है और "मन मोहना कधी येणार" जैसे भजन सबके मुख पर है। इन्होंने 'गुरुदेव सेवा-मंडल' नाम की सस्था प्रस्थापित की है जिसका अमरावती जिले में गुरुकुंज मोझरी केन्द्र है। आपने प्रचलित फिल्मी गीतो की तर्ज पर भजन और कविताएं लिखकर बहुजन समाज को उदात्त नीति-तत्त्वों और देशकार्य का उपदेश किया। परमार्थिक संत होते हुए भी आप सासारिक व्यवहार में रस लेते है। आप समाज सुधारक है, देशभक्त है और आजकल भू-दान यज्ञ के कार्य मे व्यस्त रहते है।

संत काव्य के पश्चात् आधुनिक काल के मराठी काव्य की ओर हमारी दृष्टि जाती है। सभी आलोचक मानते है कि आधुनिक मराठी काव्य का प्रारंभ केशवसुत से हुआ है। भाव और अभिव्यक्ति दोनो में केशवसुत जी ने मराठी काव्य में क्रान्ति कर दी। उनकी कविता अंग्रेजी कविता से बहुत मात्रा में प्रभावित हुई है। आधुनिक काल के साहित्य का एक व्यवच्छेदक लक्षण ही यह माना जा सकता है कि अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन और प्रभाव से वह बहुत परिमाण में पुष्ट हुआ है।

परन्तु साहित्य साधना के इस महायज्ञ में मध्यप्रदेश को भाग लेने का अवसर अन्य भागो से कुछ पीछे मिला, क्योंकि सन् १८५३ में नागपुर के रघुजी भोसले का राज्य नष्ट हुआ और अंग्रेजी शासन में यह प्रदेश आ गया। बरार अवश्य १९०२ तक निजाम के अधिकार में था। नागपुर विश्व विद्यालय भी १९२३ में स्थापित हुआ। सारांश यह कि यहां अंग्रेजी विद्या का आगमन आधी सदी पीछे हुआ। इसके कारण प्रारंभ की बहुत बड़ी सुशिक्षित पीढ़ी नौकरी और व्यवसाय के निमित्त महाराष्ट्र से इस प्रदेश में आई थी। आगे लोकमान्य तिलक की राजनीति प्रभावी होने पर इस प्रदेश के दादा साहब खापर्डे, लोकनायक अणे, डा. मुंजे, नरकेसरी अभ्यंकर, वीर वामनराव जोशी, विदर्भ केसरी बियाणी इत्यादि नेता उसमें सम्मिलित हुए और राजनीति की तरह नागपुर और बरार का प्रदेश साहित्य और पत्रकारिता में अच्छा चमकने लगा।

काव्य-विभाग की दृष्टि से बजाबा रामचन्द्र प्रधान-१८३८-८६, वामन दाजी ओक-१८४५-९७ और विष्णु मोरेश्वर महाजनी १८५१-१९२३ के नाम पहले हमारे सामने आते है। ये मध्यप्रदेश मे आकर कुछ दिन रहे थे और मराठी काव्य इतिहास की दृष्टि से केशवसुत पूर्वकालीन कवियों में गिने जाते हैं। स्व. प्रधान ने १८६७ में स्काट की "लेडी आफ दी लेक" का मराठी रूपान्तर "देवसेनी" नाम से लिखा। वामन दाजी ओक ने भी थोड़ी बहुत काव्य रचना की है। "श्रीमन्माधव निधन", "गणपति निधन विलाप", "कादम्बरी कथासार" और "कृष्णकुमारी" उनकी प्रसिद्ध कविताएं है। सन् १८५५ में इन्होंने "काव्य माधुर्य" नाम से अर्वाचीन कवियो का पहला काव्य संग्रह संपादन कर प्रकाशित किया। मोरेश्वर महाजनी की कविता प्राय: रूपान्तरित है। परन्तु रूपान्तर करने की कला उन्हें अच्छी तरह सिद्ध हुई है। महाजनी और प्रधान कुछ समय के लिये अकोला और रायपुर में रहे हैं।

केशवसुत कालीन आधुनिक कवियों के एक प्रसिद्ध कवि श्री रेवेरेण्ड नारायण वामन तिलक तथा उनकी पत्नी कवियित्री लक्ष्मी बाई तिलक ने अपने जीवन का कुछ समय नागपुर और राजनांदगाव मे व्यतीत किया था। तिलकजी की "वनवासी फूल", "माझी भार्या" और "सुशीला" आदि कविताएं प्रसिद्ध है।

खास मध्यप्रदेश के कवियों का विचार करते हुए प्रथमत: स्व. नीलकंठ बलवंत भवालकर, स्व. अच्युत सीताराम साठे, आनंद राव टेकाड़े १८८८, जयकृष्ण केशव उपाध्ये १८८३-१९३७, श्रीनिवास रामचन्द्र बोवड़े १८८६-१९३४ का हमे उल्लेख करना चाहिये। ये सब साधारणत: समकालीन कवि है। अपने समय में ये लोग एक प्रकार से नागपुर

के साहित्य प्रान्त के नेता ही थे। उपाध्ये जी नागपुर के एक प्रख्यात व्यग काव्यकार थे। मराठी में "विडम्बन काव्य" सर्वप्रथम उपाध्ये जी ने ही लिखा और विडम्बना के लिये भी उन्होंने एकदम भगवद्गीता को ही पकडा। उन की यह विडम्बना कविता अप्रतिम हुई है। उनकी विनोदी कविताओं का सग्रह "पोपट पची" और "उमर खैयाम की रुबाइयां का मराठी काव्यानुवाद" प्रसिद्ध है। योगडे जी वडे रसिक गृहस्थ थे। उनकी कविताए शृगार रस से ओत प्रोत है। इन्होंने अपनी मृत्यु के कुछ दिन पहले "मृत्यु गीत" नाम की अत्यन्त करुण और भावपूर्ण कविता लिखी है।

आनद कृष्णाजी टेकाडे और नारायण वैमन वेहरे दोनो नागपुर के है और देशभक्ति पर लिखी कविताओं के लिये प्रसिद्ध है। टेकाडे जी की कविताओं का सग्रह "आनद गीत" के नाम से चार भागो में प्रकाशित हो गया है। इन-की कविताए बम्बई विश्वविद्यालय की बी ए की परीक्षा के लिये पाठय-क्रम में सम्मिलित है। इनका "हा हिन्द देश माझा" नामक गीत सुप्रसिद्ध है। अपनी कविताओं को बहुत अच्छी तरह से गाकर कहने वाले सभवत मराठी के ये पहले ही कवि है। वेहरे जी की कविताए "मोत्याची माळ" नामक सग्रह में प्रकाशित हुई है। उनकी "सप्तर्षि" नामकी कविता ने किसी समय वडी धूम मचा दी थी। आपकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मी वाई वेहरे की कविताओं का सग्रह भी "सुमन माला" नाम से प्रकाशित हुआ है। इन दोनो के साथ ही, कई वर्षों से कविता करने वाले कवि भूषण यशवन्त गणेश खापर्डे का उल्लेख करना चाहिये। खापर्डे जी ने रवीन्द्र की गीताजलि की तरह कुछ गूढ भक्तिपूर्ण कविताए लिखी है। "सवस्वाची गाणी" और "अनताची हाक" नाम के आपके दो दीर्घ काव्य प्रसिद्ध है।

मराठी काव्याकाश में ध्रुव तारे की तरह चमकने वाले विदर्भ के कवि नारायण मुरलीधर गुप्ते—१८७४—१९४७—उपनाम "बी" (BEE) ने अपना नाम मराठी साहित्य के आधुनिक कवियो में अमर कर लिया है। श्री गुप्ते जी प्रसिद्धि से घबराते थे। इसलिए उनकी कविताओं का सग्रह बहुत देर में–१९३४–में प्रकाशित हुआ। "बी" की कविताओं के एक सग्रह का नाम "फुलाची ओंजल" है। उसकी आलोचना करते हुए आचार्य अत्रे ने कहा है–"बी (B) नाम से भले ही बी (B) हो, पर उनकी कविताएँ अवश्य ए-वन (A-1) है।" "बी" ने बी (BEE) —मधुमक्खी—उपनाम से अपनी सारी कविताएँ लिखी है। उनकी "वेड गाणे" नाम की पहली ही कविता सन् १९११ ई में बम्बई से प्रकाशित होने वाले तत्कालीन मराठी के एक श्रेष्ठ मासिक पत्र, मासिक मनोरजन में, प्रकाशित हुई थी और उसने रसिक पाठको के हृदय को गुदगुदा दिया। "बी" का सारा जीवन अकोला में मामूली क्लर्क की हैसि-यत से कलम घिसते ही बीता। व्यापक विचारो को अत्यन्त थोडे शब्दो में प्रकट करने में "बी" कुशल थे। उन्होंने अपनी सारी कविताएँ अपनी प्रौढावस्था में ही लिखी है। उनकी "चोराताची कमला", "चाफा", "माझी कन्या", "डका", "पिंगा" आदि कविताओं में उनका कल्पना-वैभव, रचना-कौशल, भाव-प्रदर्शन और उदार सामाजिक मत दिखाई देते है।

कवि "बी" के बाद भी महाविदर्भ ने मराठी कविता साहित्य को अनेक नामाकित कवि दिये। इस काव्य कर्तृत्व का श्रेय आत्माराव राव जी देशपाडे, उपनाम "अनिल"—१९०१—, गुणवत हणमत देशपाडे—१८९७—, वामन नारायण देशपाडे १९०३—को और अन्य कुछ कवियो को भी जाता है। "अनिल" की कविताओं का पहला सग्रह—"फुलवात"—नाम से सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ। अपने प्रगाढ प्रेमभाव का हृदयस्पर्शी प्रदर्शन करने में अनिल जी सिद्धहस्त है। इस सग्रह के बाद उनके और भी दो तीन काव्य-सग्रह प्रकाशित हुए। उनका "भग्न मूर्ति" नामक दीर्घ काव्य मुक्त छन्द में है। रसिको ने इसकी वडी प्रशसा की है। अनिल की कुछ कविताएँ मानवता-वादी और क्रान्तिकारी सामाजिक आशय से पूर्ण है। इसलिए कुछ आलोचको ने उन्हें मराठी के नवकविता प्रवर्तको में शीर्ष स्थान दिया है।

मराठी में सर्व प्रथम सफल गूढ रहस्यवादी (mystic) कविता निर्माण करने का श्रेय जिला यवतमाल के प्रतिभासम्पन्न कवि गुणवत राव देशपाडे को ही देना होगा। सन् १९१५ से आप काव्य-लेखन कर रहे है। उनकी

कविताओं का संग्रह—"निवेदन"—नाम से सन् १९३५ मे प्रकाशित हुआ। यवतमाल में अध्यापन व्यवसाय करने वाले कवि वामनराव देशपांडे की कविताओं के संग्रह-आराधना—१९३८, और अनामिका—१९५०, में प्रकाशित हुए। अनिल जी की तरह आपने भी मुक्त छंद अपनाया और काव्य रचना में नए-नए प्रयोग किए। आपने "कपट वेष" और "नंदनवन मुकल्यावर" नामक नाट्य गीत लिख कर मराठी में नाट्य गीत की नई परम्परा डाली।

भवानीशंकर श्रीधर पंडित (१९०५), नागोराव घनश्याम देशपांडे (१९०९), यादव मुकुंद पाठक (१९०५), दत्तात्रय चिंतामण सोमण (१९१२) और शरच्चन्द्र मुक्तिबोध (१९२१)—ये आज के मध्यप्रदेश के प्रथम पंक्ति के कवि कहे जा सकते हैं। पंडित जी की कविताओं के तीन संग्रह प्रकाशित हुए है। मराठी कविता के तांबे सम्प्रदाय के इस कवि की कविताएँ प्रसादपूर्ण होती है। छोटे वच्चों के लिए भी पंडित जी ने सुन्दर गीत लिखे हैं, जो शिशु-समाज मे वड़े लोकप्रिय हैं। मेहकर के वकील ना. घ. देशपाडे, भाव-गीत लिखने मे वड़े प्रवीण हैं। उनके भाव-गीत रिकार्ड हो जाने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुए। इनकी कविता गेय होती है। ये सौन्दर्यवादी कवि है। श्री राजा वढे एक प्रतिभाशाली भाव-गीतकार और सौन्दर्यवादी कवियों में गिने जाते है। ये नागपुर के रहने वाले है, पर वर्तमान समय में व्यवसाय के निमित्त वंवई मे रहते है। उनका "माझिया माहेरा जा" नाम का फिल्मी और भाव-गीतों का संग्रह प्रकाशित है। वढ़े जी की रचना कोमलकान्त पदावलि से युक्त रहती है। रूप की झिलमिल और कोमलता उनकी काव्य-सुन्दरी की खास विशेषता है। उनकी शव्द योजना नाद मधुर होती है।

नागपुर के यादवराव पाठक की "शशि मोहन" नामक कविता बीस वर्ष पहले प्रकाशित हुई। आपका काव्य-लेखन आज भी जारी है। पर उनका कोई अन्य काव्य-संग्रह प्रकाशित नही हुआ है। वरार के द. चि. सोमण की कविताओ के तीन संग्रह प्रकाशित हुए है। किसी विशिष्ट भाव वृत्ति (मूड) को साकार करने में सोमण जी कुशल हैं।

नागपुर के शरच्चन्द्र मुक्तिवोध नव कविता के एक अत्याधुनिक सम्प्रदाय के अध्वर्यु की हैसियत से ही मराठी पाठकों के सामने उपस्थित हुए है। यंत्रयुगीन मानवता का करुण क्रंदन, दारुण दुःख एवं समाज की विफलता का प्रभावोत्पादक चित्रण मुक्तिवोध जी ने अपनी कविता में किया है। परंतु वे मार्क्सवादी विचारों के हैं। इसलिए उनका स्वर केवल निराशा का नही है। भविष्य के गर्भ में छिपी क्रान्ति की प्रतिध्वनि उनकी कविताओं मे गूंजती है।

आदि मराठी कवियित्री महदंवा ने जहां वास किया था, उस प्रदेश में आज कोई यशप्राप्त मराठी कवियित्री नहीं, यह सच है। श्रीमती लक्ष्मी वाई वेहरे का उल्लेख हमने पहले कर दिया है। इनके अतिरिक्त जवलपुर की श्रीमती मनोरमावाई नावलेकर और नागपुर की श्रीमती विमलावाई देशपांडे के नाम उल्लेखनीय है। श्रीमती नावलेकर की कविताएँ भावपूर्ण होती है। उनकी कविताओं का एक संग्रह "पणती" नाम से सन् १९५० में प्रकाशित हुआ है। आत्मीय भावो का हृदयस्पर्शी प्रदर्शन करने का सामर्थ्य श्रीमती देशपांडे के पास वहुत परिमाण में है, यह उनकी कविताओं के—"निर्माल्य माला" नामक संग्रह से दिखाई देता है।

अत्यन्त सुन्दर ग्रामीण गीत लिखने वाले यवतमाल के श्री पाडुरंग श्रावण गोरे (१९०५) भी एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि है। यवतमाल के श्री नारायण नागोराव हूड, वणी के श्री ना. म. सरपटवार (१९०३), अमरावती के श्री रघुनाथ दत्तात्रेय सरंजामे (१८९५) आदि, कवियों के नाम भी उल्लेखनीय है। हूड जी की कविताओ का संग्रह "पराग" नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री सरंजामे जी की—झिम्मा— नाम की कविता प्रसिद्ध है।

इनके अतिरिक्त अकोला में रहने वाले "कृष्णमूर्ति" ने एक खण्ड काव्य लिखा है और उनकी कविताओं का संग्रह "कृपा" नाम से प्रकाशित हुआ है; मो. ज्ञा. शहाणे, कवि हुताश, वऱ्हाडपांडे और केशव गोपाल ताम्हण के नाम भी उल्लेखनीय है। मध्यप्रदेश की आजकल की तरुण पीढी मे अनेक उदीयमान कवि हैं। जिन पर विहंगम दृष्टि ही डाली जा सकती है।

मराठी नाट्य का आरम्भ विष्णु अमृत भावे के "सीता स्वयंवर" नाटक से हुआ, जिसकी रचना सन् १८८४ ईस्वी में हुई थी। भावे जी सागली के थे और इस तरह पहले ही से विदर्भ का मराठी नाटक से सबंध कम रहा। अर्वाचीन काल में मराठी नाट्य कला और रंगभूमि का पुनरुद्धार करने के बहुत बडे प्रयत्न नागपुर म हुए और इसका अधिकांश श्रेय प्रा श्री ना बनहट्टी को है। उन्होंने डा वर्वे और गोमकाल जैसे अपने सहकारियो के साथ "अभिनव नाट्य मंदिर" नाम की एक सस्था स्थापित कर म मिश्र नाट्य प्रयोगो की नागपुर में नीव डाली।

मराठी नाट्य साहित्य के एक आचार्य श्री तात्या माहन कोल्हटकर, बरार के ही निवासी थे, जो प्राय खामगाव में रहा करते थे। उन्होंने गुप्त मजूषा, मूक नायक, मति विकार, प्रेम शोधन इत्यादि, नाटक लिखे हैं। दूसरे प्रसिद्ध नाटककार श्री भा वि उर्फ मामा वरेरकर का पहला सुप्रसिद्ध नाटक—कुंज विहारी—का प्रथम प्रयोग खामगाव में हुआ। इसलिए वे स्वय अपने को वैदर्भीय कहते ह। महाराष्ट्र के सबसे प्रिय नाटककार और कवि राम गणेश गडकरी ने इसी प्रदेश में नागपुर के पास सावनेर में अपनी देह छोडी। बरार के सुप्रसिद्ध नेता श्री दादा साहेब खापर्डे नाटको के बड़े समर्थ और शौकीन थे। उनके प्रोत्साहन से राष्ट्रीय आन्दोलन में लगे कुछ लोगों का ध्यान नाटकों की ओर आकर्षित हो गया। अमरावती के श्री वामनराव जोशी का "राक्षसी महत्वाकाक्षा" नामक नाटक आज विद्यालयों में पढाया जाता है। आपका "रण दुन्दुभी" नामक एक नाटक, जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था, बड़ा प्रसिद्ध है। वामनराव जी के नाटक ओज से भरे होते ह। भव्य घटनायुक्त और सवर्षात्मक नाट्य लिखने में आप सिद्धहस्त ह। आप को यदि बरार के "खाडिलकर" कहा जाय, तो कोई हर्ज नही। अमरावती के दूसरे नाटककार श्री ना र बामणगावकर ने "धनुर्भंग" और "आत्मतेज" नामक पौराणिक नाटक लिखे और वे सब पर खेले भी जा चुके ह। खाडिलकर की तरह पौराणिक कथा पर प्रचलित राजनीति का रूपक चढाने के कारण आपका "धनुर्भंग" नाटक ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। अब उसका नया सस्करण हाल ही में बबई से प्रकाशित हुआ ह।

श्री वा वा भोले इस प्रदेश के उल्लेखनीय नाटककार है। कुमारी माता का प्रश्न लेकर उन्होंने इब्सेन के नव-नाट्य-तत्रानुसार "सरला देवी" नामक नाटक लिखा जो मराठी साहित्य में अपने ढग का पहला नाटक माना जाता ह। आपके दूसरे नाटक का नाम "अरुणोदय" है। श्री भोले एक अनुभवी नाट्य निर्देशक भी है। श्री वि रा हवर्डे, इस प्रदेश के पुराने नाटककार ह और आज भी नाटक लिखते हैं। फिर भी उनका "१८५७" नाम का नाटक सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ था। आपने हाल ही में "बाजीराव मस्तानी" नामक नाटक लिखा है और वह मराठी रगमच पर खेला जा चुका है। नागपुर के श्री नाना जोग ने "चित्रशाला" और "सोयाचे देव" नामक दो प्रयोगात्मक नाटक लिखे ह, जो काफी प्रसिद्ध है। श्री पु भा भावे ने भी "विष कन्या" नाम का एक मनोविश्लेषणात्मक और पुरोगामी स्त्री का जीवन दर्शन कराने वाला नाटक लिखा है। डा वि भि कोलते ने "सोड चिट्ठी" नामक एक हास्य प्रधान लघु नाटक लिखा है। श्री व शा वरखेडकर ने "ध्येयाचा ध्यास" और "पूर्वग्रह" नाम के दो नाटक लिख कर नाट्य साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। श्री श ना काका सहस्रबुद्धे, बहुत पुराने नाटककार ह और उनके लिखे "खरा प्रेम सन्यास" और "रानी चन्द्रावती' नामक नाटक प्रसिद्ध है। इसी प्रकार स्व नारायणराव दीवानजी ने भी "सुनेचा साफला" आदि नाटक लिखे हैं।

सन् १९४८ में नागपुर में आकाशवाणी केन्द्र की स्थापना हुई और तब से छोटे-छोटे नाटक लिखने के लिए अनेक नए लेखक अग्रसर हुए ह। इनमें श्रीराम डोके और पु व्य दारव्हेकर के नाम उल्लेखनीय ह। अमरावती के प्रो मधुकर अष्टीकर हास्य प्रधान नाटक लिखने में कुशल ह। व्यकटेश शकर वकील ने कुछ सुन्दर एकाकी और "जन्मा चे सोबती" नामक नाटक लिखा है।

मध्यप्रदेश में नागपुर का 'अभिनव नाट्य' मन्दिर, 'नागपूर नाट्य मडल्' 'सहकारी सस्था' आदि शौकीन कला-

कारों के द्वारा स्थापित की गई नाट्य संस्थाएँ हैं। विदर्भ नाट्य मंदिर के आधारस्तम्भ श्री द. शं. फड़के और काका सहस्त्रबुद्धे हैं। जबलपुर मे भी लगभग ४० वर्षो से एक नाट्य समाज चल रहा है।

आजकल इस प्रदेश मे नाटको के खेल पर मनोरंजन कर माफ है। इसलिए बाहर की नाटक मंडलियो का यहां तांता-सा लगा रहता है। किसी भी अभिनेता और अभिनेत्री को पकड़ कर ये मंडलियां नए और पुराने नाटको को खेला करती हैं और क़ाफ़ी धन कमाती हैं। मनोरंजन कर माफ हो जाने से एक बड़ा भारी लाभ यह हुआ कि सर्वत्र नाट्यानुकूल वातावरण का निर्माण हो गया है और छोटी-छोटी नाटक मंडलियां और क्लब भी शौक से नाटक खेल कर श्रेष्ठ अभिनय कला का आनन्द लूटने लगे हैं।

मराठी साहित्य का उपन्यास अंग सर्वस्व में ब्रिटिश शासन काल में ही पुष्ट हुआ है। इसलिए उसकी परपरा को आदि काल मे खोजने की आवश्यकता नही। इस प्रदेश के पहले उपन्यासकार श्री बालकृष्ण संतुराम गडकरी हैं। उनके "पतितेचे हास्य", "वृन्दा", "हीच का सुधारणा" आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं। स्व. श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर ने "श्याम सुन्दर" और "दुटप्पी ची दुहेरी" नामक दो उपन्यास लिखे हैं। नारायण केशव वेहरे के "उत्तर राम चरित्र", और "अहिल्योद्धार" नामक उपन्यास हृदयग्राही हैं। ये उपन्यास पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं और सन् १९३० से पहले लिखे गए हैं। उपर्युक्त उपन्यास यद्यपि अपने ढंग के अच्छे उपन्यास हैं, फिर भी सन् १९०० से लेकर सन् १९२० तक महाराष्ट्र मे स्व. हरि नारायण आपटे के उपन्यासो ने मराठी उपन्यास विभाग को जिस प्रकार समृद्ध किया, उस प्रकार इस प्रदेश के लेखको ने नही किया। परंतु स्व. नीलकंठ बलवंत भवालकर को इसका अपवाद मानना होगा। उनका "वेहेन पिरोज" नामक उपन्यास पूर्ण रूप से सेक्स विषय को लेकर लिखा गया है और वह सन् १९३० से पहले ही प्रकाशित हो गया था। मराठी सेक्स विषय पर पहला उपन्यास लिखने का श्रेय इस प्रदेश के भवालकरजी को ही देना चाहिये। इस समय के उपन्यासकारों में अ. तु. वालके और श्रीमती कमलाबाई बंबावाले के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

डा. श्रीधर व्यंकटेश केतकर का जन्म रायपुर में और शिक्षा अमरावती में हुई। आगे वे पूना चले गए। फिर भी इस प्रदेश का उन पर पूर्ण अधिकार है। उनके "गोंडवानांतील प्रियंवदा", "ब्राह्मण कन्या" और "गाव सासू" नामके उपन्यासों ने मराठी उपन्यास साहित्य मे एक भिन्न प्रांगण ही निर्माण कर दिया है। डाक्टर केतकरजी ने मराठी उपन्यास के प्रवाह को, जो केवल मध्यम वर्ग तक ही सीमित था, विशाल कर दिया। समाज के उपक्षित प्रश्नो का समाज समाज- शास्त्र के दृष्टिकोण से निर्भयतापूर्वक विश्लेषण और आसपास के कुछ प्रमुख व्यक्तियों का कथा भाग मे चित्रण उनके उपन्यासो की विशेषता है।

सन् १९३० के पश्चात् इस प्रदेश के प्रमुख उपन्यासकारों में श्री पुरुषोत्तम यशवंत देशपाडे और श्री गजानन त्रिंबक माडखोलकर के नाम उल्लेखनीय हैं। देशपांडे जी का "बंधनाच्या पलीकडे", नामक पहला उपन्यास सन् १९२५ मे प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास मे वेश्या से विवाह करने के प्रश्न पर चर्चा की गई है। इसलिए तत्कालीन दकियानूसी समाज मे इस उपन्यास ने बड़ी सनसनी मचा दी थी। आपके "सुकलेले फूल" और "सदाफुली" नामक दो उपन्यास बाद में प्रकाशित हुए।" सुकलेले फूल" नामक उपन्यास मे एक प्रेम वंचिता की हृदयस्पर्शी आत्म-कथा है।

श्री माडखोलकर जी मराठी भाषा के एक प्रतिभाशाली लेखक हैं और उनके उपन्यासों मे भी उनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। गत बीस वर्षो मे आपके कोई तेरह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। आपके उपन्यासों पर मराठी भाषा मे बहुत टीका-टिप्पणी हुई है। आपका "मुक्तात्मा" नामक पहला उपन्यास सन् १९३० के लगभग प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् "चन्दन वाडी", "नवे संसार", "मुखवटे", "शाप", "नागकन्या" "डाक बंगला", और कान्ता", आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। सुन्दर रचना और स्वभाव चित्रण की सुसंगतता की दृष्टि से आपका "भंग-लेले देऊल" नामक उपन्यास अत्यन्त उत्कृष्ट है। मध्यप्रदेश की प्रचलित राजनीति और "खरे-प्रकरण" पर आपके

लिखे "मुखवटे" और "कान्ता" नामक उपन्यास अच्छे माने जाते है। "कान्ता" नामक उपन्यास का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है, जो इलाहाबाद की माया सिरीज़ में प्रकाशित हुआ है। वर्ण्य विषय का आकर्षक ढग से वर्णन करने में और सुन्दर लेखन शैली से पाठकों का मन आकर्षित कर लेने में माडखोलकर जी सिद्धहस्त है। श्री माडखोलकर नौकरी के लिए सन् १९२६ ई में पूना से नागपुर आए।

श्री शकर बालाजी शास्त्री इसी प्रदेश के उपन्यासकार है। आपके भी एक-दो उपन्यास प्रदेश के बाहर ही प्रकाशित हुए है। सन् १९२६ के पश्चात् ही आपने आठ-नौ उपन्यास लिखे है। स्पष्ट, हृदयग्राही और मनोरम उपन्यास लिखने के लिए शास्त्री जी प्रसिद्ध है। आप के "लक्ष्मी", "अडेल तट्टू", "अमावस्या", नाम के उपन्यास सुन्दर है और उनके उपर्युक्त गुणो की साक्षी देते है।

इनके बाद प्रमुख उपन्यास लेखको में केवल एक ही उपन्यास लिख कर प्रसिद्ध हुए श्री विश्राम बेडेकर का उल्लेख करना पडेगा। बेडेकर जी सुप्रसिद्ध फिल्म कहानी लेखक और निर्देशक है। वे अमरावती के निवासी है और उनकी शिक्षा भी इसी प्रदेश में हुई है। "रणागण" नामक उपन्यास लिख कर आप सम्पूर्ण विश्व को मराठी उपन्यास में ले आए है। आपका यह उपन्यास अत्यन्त हृदयग्राही है और मराठी साहित्य में अपूर्व है। इस प्रदेश की श्रीमती कृष्णा बाई मोटे ने भी "मीनाक्षी चे जीवन" नाम का एक अत्यन्त सुन्दर उपन्यास लिखा है, जिसमें मीनाक्षी नाम की एक पढी लिखी स्त्री के स्वभाव का चित्रण बहुत अच्छा बन पडा है।

शरच्चन्द्र टोगो के "प्रत्यय", "सत्कार", "लक्ेरी" और कुमारी लीला देशमुख के "वीणा", "दोन घड़ीचा डाव", "दूर कोठेतरी", "मी एकटीच जाणार" नाम के उपन्यासो में श्री ना सी फडके का अनुकरण है और वे मनोरम है। परन्तु इनमें भी यवतमाल के टोगो जी ने अच्छी प्रगति दिखाई है। उनका "लक्ेरी" नामक उपन्यास एक अच्छी कृति है, जिसमें ग्रामीण जीवन का सुन्दर चित्र अकित है। श्रीमती गीता साने मराठी भाषा की एक अनुभवी पुरानी लेखिका है। आप यद्यपि बिहार प्रदेश में रहती है, फिर भी वे इसी प्रदेश की लेखिका है। आप के "आविष्कार", "निखल लेली हिरकणी", "वठलेला वृक्ष" इत्यादि नाम के उपन्यास प्रसिद्ध है, जिन में आपने विवाह, स्त्रियो की आर्थिक स्वतन्त्रता आदि प्रश्नो का नवमतवादी, पुरोगामी दृष्टिकोण से चित्रण किया है। श्री व्यकटेश वकील ने इटालियन उपन्यासकार इग्नेसिओ सिलोने के "फाटमार" और पर्ल बक के "गुड अर्थ" नामक उपन्यासो के सरल और सुन्दर मराठी अनुवाद किए है। श्री पु भा भावे ने पतित स्त्री की समस्या को लेकर "अकुलिना" नाम का एक अत्यन्त सुन्दर और हृदयस्पर्शी उपन्यास लिखा है। इनके अतिरिक्त भा भु पाठक ने "धवधव्या च्या धारेत" कृष्णमूर्ति ने "मना", और "चुम्बन", श्री तु वालके ने "अपोलो बदराबर", श्रीमती कमलाबाई बबावाले ने "बधमुक्ता" और प्रो व्य रा वनमाली ने "आदिमाया" नाम के उपन्यास लिखे है, जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। "जयपराजय" नामक उपन्यास की लेखिका श्रीमती सुमति धनवटे और "सुरग" नामक उपन्यास के लेखक श्री ल भा वखरे के नाम भी उल्लेखनीय है। सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखिका श्रीमती शान्ता शेलके भी अब इस प्रदेश में आ गई है। "शितू" की तरह श्रेष्ठ उपन्यास लिखने वाले, बम्बई राज्य के श्री गो नी दाडेकर भी इसी प्रदेश के निवासी है। आपका जन्म अचलपुर में हुआ और शिक्षा नागपुर में हुई। यह मध्यप्रदेश के लिए बडे अभिमान की बात है। श्री व श वरखेडकर के "सक्रमण" और "पाहुणे" तथा श्री गोपाल गिरलकर का "पावना" नाम का उपन्यास उल्लेखनीय है। श्री शरच्चन्द्र मुक्तिबोध के "क्षिप्रा" नामक उपन्यास की आजकल धूम है।

इनके अतिरिक्त अनेक तरुण लेखक और लेखिकाऐं मराठी उपन्यास के प्रागण को अपनी प्रतिभा से समृद्ध कर रहे है और भविष्य में उनसे बडी आशाएँ है।

मराठी में कहानी साहित्य गत तीस-चालीस वर्षो में ही अधिक लोकप्रिय हुआ और बहुत से तरुण लेखक उसकी ओर झुकने लगे। वर्तमान समय में मराठी साहित्य का कहानी-विभाग काफी समृद्ध है और अनेक तरुण कथाकार सुन्दर कहानिया लिख रहे है।

पुराने लेखकों में कहानी लिखने वाले श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर इसी प्रदेश के थे। उनकी चार कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित है। माडखोलकर जी ने भी वहुत कहानिया लिखी है और उनकी कहानियों के संग्रह "रातराणी ची फुलें" और "शुक्रा चे चादणे" नाम से प्रकाशित हुए है।

नागपुर मारिस कालेज की प्रो. कुसुमावती बाई देशपांडे हमारे प्रान्त की पहली प्रसिद्ध कहानी लेखिका है। उनकी कहानियो के संग्रह "दीपकली", "दीपदान" और "मोली" नाम से प्रकाशित हुए हैं। पीड़ित और दुःखियों के प्रति सहानुभूति उनकी कहानियों की विशेषता है। इस प्रान्त के श्री वामन चोरघड़े और श्री पु. भा. भावे, मराठी कथाकारों मे अग्रगण्य है। चोरघड़े जी की कहानियों के "सुषमा", "हवन", "यौवन", "प्रस्थान" और "पाथेय" नाम के संग्रह प्रकाशित है। चोरघड़े जी कवितामय वातावरण निर्माण कर के गूढ़ भावों को कोमलता से प्रदर्शन करने मे कुशल है। भावे जी आज के मराठी के सबसे अधिक लोकप्रिय कलाकार है जो मध्यप्रदेशवासियों के लिए वड़े अभिमान की वात है। भावार्त वातावरण निर्माण कर के पात्रों के मनोभावो के उत्कट खेल में पाठकों को पूर्ण रूप से वेहोश कर देने का सामर्थ्य भावे जी की कहानियों में है। आप मनोविश्लेषण भी वहुत सुन्दर करते है। आप के "पहला पाऊस", "ध्यास", "स्वप्न", "फुलवा" और "मुक्ति" नामक कहानी-संग्रह प्रकाशित है; जो मराठी साहित्य के अमर अलंकार वन गए है।

सन् १९३० के पश्चात् इस प्रदेश मे "विहंगम", "वागीश्वरी" और "विश्ववाणी" आदि मासिक पत्रिकाएँ निकली। इनमें और वाहर के अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी वहुत से नए कहानी लेखक आगे आये। उनमे श्री प्रभाकर मांजरेकर, हृदयग्राही कहानियां लिखते हैं। उनकी कहानियों का संग्रह "उप: प्रभा" नाम से प्रकाशित है। इन लेखकों में श्री. व्यं. नी पंडित, श्री. य. व. शास्त्री, कृष्णमूर्ति, भा. श्री. परांजपे, श्री वाल शंकर देशपाडे और अमरावती के प्रभाकर निमदेव के नाम उल्लेखनीय है। इन के कहानियो के संग्रह क्रमश: "चालते वोलते देव", "लाव लांव सावल्या", "चन्द्रकला, "अभिसार", "यमुना जली" और "मृगा चा पाऊस" नाम से प्रकाशित हुए है। ये प्राय: सभी कथाकार, अच्छे लेखक भी है। इनके अतिरिक्त दो न्यायाधीश, श्री. पु. वा. साठे और श्री. अ. मु. पाठक, अनूदित कहानियां लिखने वाले श्री व्यंकटेश शास्त्री व शंकर शास्त्री, श्री. भा. द. भावे, श्री. गो. र. देशपाडे, श्रीमती अंबिका वेहरे, श्री. ग. ल.देवपुजारी, श्री. द. ग. प्रधान इत्यादि अनेक लेखक उस समय कहानियां लिखा करते थे और इनमे से कई आज भी लिखते हैं। परन्तु वर्तमान समय में श्री. पु. भा. भावे और श्री. के. ज. पुरोहित (शांताराम), इस प्रदेश के प्रथम पक्ति के कहानीकार है। श्री भ. रा. देशपाडे का, जो किसी समय आज़ाद हिन्द फ़ौज मे थे, "रेघोटचा" नाम का एक सुन्दर कहानी-संग्रह प्रकाशित है। नागपुर के केशव केलकर और अकोला के शान्ताराम जैन भी सुन्दर कहानियां लिखते है।

मराठी मे लघुनिवन्ध लिखना प्रो. ना. सी. फड़के ने आरंभ किया। किसी भी विषय पर प्रसन्न, खिलाडी, परन्तु फिर भी विचारपूर्ण ललित गद्य लिखने की परम्परा फड़के जी के "गुज गोष्टी" नामक लघुनिवन्ध ने डाली।

हमारे प्रदेश में श्री भ. श्री पडित ने "सवडी चे क्षण" नामक लघु निवन्ध लिख कर यह प्रयत्न किया। श्री पु. भा. भावे ने कुछ हास्य-प्रधान लघु निवंध लिखे है। उनके लघ निवधों का "वाकुल्या" नामक एक संग्रह प्रकाशित है। ये निवंध वड़े हृदयग्राही है। श्री शान्ताराम और श्री गो. रा. दोडके आज के प्रमुख लघु निवंधकार है। शान्ताराम के लघु निवंधो का संग्रह "सांवलाच रंग तुझा" नाम से और दोड़के का "माहेरवाशीण" नाम से प्रसिद्ध है और अपने विशेष गुणों के कारण सर्वत्र लोकप्रिय हो गए हैं। मध्यप्रदेश के वित्त मंत्री श्री ब्रिजलाल वियाणी की "कल्पना कानन" नामक हिन्दी पुस्तक का स्व. प्रमिलावाई ओक ने मराठी में अनुवाद कर मराठी साहित्य मे एक भावरम्य ललित गद्यात्मक संग्रह निवन्ध उपस्थित कर दिया है, जिसका उल्लेख करना आवश्यक है।

विनोदाचार्य श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर और उनके शिष्य राम गणेश गडकरी के इस प्रदेश में आचार्य अत्रे, चि वि जोशी और पु ल देशपांडे की जोड के हास्यरस के लेखक न हो, यह दुर्भाग्य की बात है। आज के हास्यरस के लेखको में इस प्रदेश के तरुणलेखक श्री पु व्य दारव्हेकर, श्री राम डोंगे और श्री मधुकर आष्टिकर के नाम अवश्य उल्लेखनीय है।

मराठी में चरित्र-लेखन अग्रेजी के अनुकरण से ही आरभ हुआ है। इससे पहले के चरित्र ग्रथ काव्य में थे और उनमें पुराणो में वर्णित देवताओ तथा वीरो के जीवन की लबी-लबी कहानिया लिखी रहती थी। गद्य में लिखा "लीला चरित्र" और महिपति द्वारा पद्य में लिखे सतो के चरित्र मराठी भाषा के सबसे पहले चरित्र ग्रथ है। मध्यप्रदेश में सतो के जीवन-चरित्र अधिक परिमाण में लिखे मिलते है। इनमें श्री सत केशोजी महाराज, कोलबाजी महाराज, मुगमाजी महाराज इत्यादि सतो के जीवन-चरित्र केवल भक्ति-भाव से पूर्ण है और भक्तो के ही पढने योग्य है। वरूड के श्री गोविन्द विठ्ठल राऊत ने "श्री सत सावता महाराज चरित्र" नामक एक चरित्र ग्रथ लिखा है, जो सन् १९३० में प्रकाशित हुआ। यह ग्रथ अवश्य अधिक प्रभावशाली और पठनीय लिखा गया है। बुलढाने के श्री पढरीनाथ पाटील का लिखा "महात्मा फुले चरित्र" नामक जीवन चरित्र एक अच्छे चरित्र ग्रन्थो में गिना जाता है। मराठी में फुले जी की जीवनी पर लिखा यह पहला और एक ही विस्तृत जीवन चरित्र है और इस दृष्टि से इसका बडा महत्त्व है। सन् १९२९ में नागपुर के श्री उमाकान्त केशव उर्फ बाबा साहब आपटे ने पजाब केसरी लाला लाजपतराय का एक सुन्दर और सरस जीवन चरित्र लिखा है। नागपुर के दूसरे लेखक श्री अप्रबुद्ध ने सन् १९२६ में पूना के प्रह्र्षि अण्णा साहब पटवर्धन का जीवन चरित्र प्रकाशित किया जो बहुत विस्तृत है। इसके अतिरिक्त वामन दाजी ओक ने, जो कुछ समय तक इस प्रदेश में रहे थे, गुरु नानक की एक छोटी सी जीवनी लिखी है। प्रसिद्ध साहित्य सेवियो का व्यक्तित्व और साहित्य पर विवेचनात्मक जीवन चरित्र लिखने का श्रेय कम से कम इस प्रात में पहले श्री ग त्र्य माडखोलकर और श्री ना वनहट्टी को देना होगा। आप लोगो ने अपने स्फूर्तिदाता श्री विष्णु कृष्ण चिपळूणकर का वृहत जीवन चरित्र सन् १९३१ में प्रकाशित किया। एक तो चरित्र नायक अद्वितीय व्यक्ति है और दूसरे दोनो लेखक अच्छे मजे हुए सुप्रसिद्ध विवेचक और भाषा पडित है। इसलिए सोने में सुहागे की तरह यह जीवन चरित्र मराठी में सबसे सुदर ग्रथ हो गया है। अभी एक वर्ष पहले ही माडखोलकर जी ने इस ग्रथ का सुधरा हुआ द्वितीय सस्करण "चिपळूणकर—काल और कर्तृत्व" के नाम से प्रकाशित किया है। वर्धा के धर्मानद कौसम्बी ने "बुद्ध लीला सार सग्रह" नामक गौतम बुद्ध विषयक पुस्तक लिखी जो मराठी में उस विषय की पहली पुस्तक है। इसके पश्चात् कौसम्बी जी ने "भगवान बुद्ध पूर्वार्ध व उत्तरार्ध" नामक दो ग्रथ लिखे जिन्हें नागपुर की नवभारत ग्रथमाला ने प्रकाशित किया और जो मराठी भाषा के लिये भूषण हो गए है। इन ग्रथो में विद्वान् लेखक ने सिद्धार्थ गौतम की जीवनी एव उनके कार्य और तत्त्वज्ञान का सागोपाग विवेचन किया है। इन ग्रथो के हिन्दी और अग्रेजी भाषाओ में भी अनुवाद हुए है।

इनके अतिरिक्त इस प्रान्त के उल्लेखनीय जीवन चरित्र "सर मोरोपत जोशी चरित्र", "डा हेडगेवार चरित्र" नाम के चरित्र ग्रथ है जिन्हें उनके अनुयायियो ने लिखा है। सन् १९३० में श्री ना के बेहेरे ने पहले बाजीराव पेशवा का जीवन चरित्र प्रकाशित किया जो भावनात्मक और आवेशपूर्ण है। प्राचीन काल के नागपुर के प्रसिद्ध शिक्षक श्री बलवत हरि पडित ने स्व सत्यभामा बाई पडित का जीवन चरित्र लिखा है जो मध्यप्रदेश के मराठी साहित्य में स्त्री विषयक पहला ही चरित्र ग्रथ है।

अभी कुछ समय से श्री ज रा जोशी ने चरित्र लेखन में बडी लगन से पदार्पण किया है। डा ना भा खरे के विस्तृत जीवन चरित्र का पहला भाग उन्होंने लगभग पन्द्रह वर्ष पहले ही प्रकाशित किया था। दूसरा बडा भाग भी सन् १९५० में प्रकाशित हो गया है। इस ग्रथ में लेखक ने जो परिश्रम किया है वह कौतुकास्पद है। श्री जोशीजी

डा. केदार का बृहत् जीवन चरित्र लिख रहे हैं। डा. नाना साहब केदार का एक संस्मरण रूपी जीवनचरित्र श्रीमती रमाबाई केदार ने लिखा है जो सरस और पठनीय है।

गत दो वर्षों में प्रकाशित चरित्र ग्रंथों मे, नागपुर के डा. वि. भि. कोलते का लिखा "श्री चक्रधर चरित्र" तथा वीर वामनराव जोशी और श्री ना. श. अभ्यंकर का लिखा "महात्मा गांधी चे जीवन चरित्र" नामक दो चरित्र ग्रंथों का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरा ग्रंथ बम्बई से प्रकाशित हुआ है। ये दोनों ग्रथ सिद्धहस्त लेखकों के द्वारा लिखे गये है।

आत्म-कथाओ में प्रथमत: धर्मानंद कौसम्बी के "प्रस्थान" और "निवेदन" नामक दो ग्रंथ उल्लेखनीय है। इन ग्रंथों मे एक महान सत्योपासक ने अपने जीवन के अनुभवो का अत्यन्त संयमित शैली में जो निवेदन किया है वह पठनीय है। मध्यप्रदेश मे पहली आत्मकथा श्री शिवराम धोंडदेव ओक ने लिखी। माडखोलकर जी की "दोन तपे" और "एका निर्वासिताची कहाणी" नामक दो आत्मकथाओं की तरह लिखी पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। वैरिस्टर देशमुख ने "काल समुद्रांतील रत्ने" नाम की एक आत्मकथा लिखी है। अन्त में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रो. वनहट्टी द्वारा लिखे कुछ व्यक्तियों के परिचयात्मक लेखो का संग्रह उनके एक विद्यार्थी डा. माधव गोपाल देश-मुख ने सन १९५१ मे "एकावली" नाम से प्रकाशित किया। कुछ प्रख्यात भारतीयों के चरित्र और उनके कार्यो का विवेचन इस पुस्तक के लेखों में बहुत प्रभावशाली भाषा में मार्मिकता और संतुलन के साथ किया गया है।

इतिहास की खोज और तद्विषयक साहित्य में मध्यप्रदेश का मराठी विभाग बहुत आगे बढा हुआ है और उसने बड़े उपयुक्त अनुसंधान किए हैं। क्योकि विदर्भ का इतिहास अत्यन्त पुरातन और सम्पन्न होने के कारण उसकी ओर विद्वानों का ध्यान सहज ही मे आकृष्ट हो गया। आज भी अनेक ऐतिहासिक स्थल और अवशेष अन्वेषकों के उत्खनन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। महाराष्ट्र के इतिहासाचार्य स्व. राजवाड़े ने अपना कार्य आरंभ किया उससे पहले ही सन् १८६२ मे वणी, जिला यवतमाल के स्व. श्री नीलकंठ लक्ष्मण ढुमे उर्फ सरमुकदम ने गोंड़ों के इतिहास और जमीदारों की सनदो के आधार पर "वणीचा इतिहास" नामक ग्रंथ लिखा है। यद्यपि वह आज भी अप्रकाशित है, तथापि मध्यप्रदेश के आद्य अन्वेषक का श्रेय उपयुक्त ग्रथ को ही है। उन्ही का "श्रीकृष्ण लीला सार सग्रह" नाम का दूसरा ग्रंथ रावबहादुर गोपालराव बुटी के आश्रय मे सन् १८९५ मे प्रकाशित हुआ जिस मे महाभारत और पांडवों के काल के निर्णय का प्रयत्न किया गया है और श्रीकृष्ण से लेकर विक्टोरिया तक का भारत का इतिहास लिखा है। वर्तमान समय के वैज्ञानिक अनुसंधानो की दृष्टि से सर मुकदम के इस इतिहास ग्रंथ में बहुत सी खामिया हो सकती हैं, पर हमें यह नही भूलना चाहिये कि आखिर वह आरम्भ का प्रयत्न है।

सन् १८८५ के पश्चात् नागपुर अनुसंधान का एक केन्द्र ही बन गया। नील सिटी हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक स्व. हरि माधव पडित उसके प्रमुख थे। उनके मित्र वामन दाजी ओक, नीलकठ बलवंत भवालकर, महामहोपाध्याय कृष्ण शास्त्री घुले, नारायणराव अलेकर आदि बड़े परिश्रमी और उत्साही अन्वेषक थे। इससे भी पहले चांदा के केशवराव जी भवालकर ने, जो एक सरकारी नौकर थे, सन् १८७९मे "गौडी भाषा–व्युत्पत्ति और व्याकरण" शीर्षक से कुछ लेख लिखे और उन्हे पूना के "विविधज्ञान विस्तार" नामक प्रसिद्ध मासिक पत्र मे प्रकाशित कराया था। भाषा विज्ञान की दृष्टि से एक अत्यन्त उपेक्षित विषय पर मराठी में यह सबसे पहले विचार विमर्श हुआ है।

ऐतिहासिक खोज का पहला श्रेय भोंसला दरबार के रेजिडेन्ट जेकिन्स के आश्रित स्व. विनायकराव औरंगाबादकर को है। छत्तीसगढ़ के प्राचीन शिलालेखो को सफलतापूर्वक पहले उन्होने ही पढ़ा था। श्री रामपुर मिशन, बंगाल के प्रमुख डा. खरे को बहुमूल्य सहायता देने वाले पंडित वैजनाथ शास्त्री कानफडे नागपुर के ही थे। उनका भी नाम उल्लेखनीय है।

स्व हरि पण्डित दूसरे प्रदेश से यहा आये थे, परन्तु इसी प्रदेश को उन्होने अपना मान लिया था। आपने "विविध ज्ञान विस्तार" नामक मासिक पत्र में एतिहासिक विषया पर अनेक लेख लिखे हैं। उनके मित्र वामन दाजी ओक ने सन् १८९० में "काव्य-सग्रह" नाम का एक मासिक पत्र निकाला जिसमें उन्होने मोरोपन, मुक्तेश्वर इत्यादि प्राचीन मराठी कवियो की अप्रसिद्ध और अ चकार क गन में पडी कविताओ को अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया। ओक जी और उनके काव्य-सग्रह मासिक पत्र का स्थान केवल ऐतिहासिक अनुसधान में ही नही, किन्तु सम्पूर्ण मराठी साहित्य में महत्त्वपूर्ण है। अनेक प्राचीन कविताओ को प्रकाश में लाकर उन्होने मराठी पाठको को उनका ज्ञान करा दिया, अन्यथा वे अनजान ही रह जाती। विशेषत मुरजी के देवनाथ और वणी के गोविंद नामक कवियो की कविताओ को अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित कर उन्होने विदर्भ साहित्य पर बडे उपकार किये है। आप सरकारी नौकरी म इस प्रदेश के नागपुर और रायपुर नामक नगरो मे रहे थे और उन्होने बहुत सा अन्वेषण काय इन्ही स्थानो मे किया था।

श्री हरि पडित के सहकारी नागपुर के श्री के व्ही लक्ष्मण राव और जबलपुर के श्री घटैय्या नायडू ने भी विदर्भ क अन्वेषण काय में हाथ बटाया। के व्ही लक्ष्मणराव ने 'पचवटी स्थान निर्णय' विषय पर पूना के 'विविधज्ञान विस्तार' नामक मासिक पत्र में लेख लिखे जिन पर विद्वानो में मतभेद हो जाने के कारण बडा वाद विवाद खडा हो गया था और फिर अन्त में हरि पत जी ने उसका सुदर समारोप किया था। घटैय्या नायडू ने 'मराठी भाषे ची पूर्वपीठिका' शीर्षक से एक बडा सुन्दर खोजपूर्ण लेख लिख कर मराठी में भाषा विज्ञान सबधी लेख लिखने की नीव डाली। नागपुर के नारायणराव शनेवर, "पतितोद्धार मीमासा" नामक सस्कृत प्रबध के लेखक महामहोपाध्याय कृष्ण शास्त्री घुले और मारिस कालेज के अध्यापक महामहोपाध्याय के ग ताम्हन के नामो का भी इस प्रदेश के अन्वेषको मे उल्लेख करना चाहिये।

इतिहासान्वेषण के समान ही इतिहास-लेखन का भी महत्व है। इस प्रदेश का पहला इतिहासकार होने का श्रेय मुन्डाने के स्व यादव माधव काले को जाता है। काले जी सरकारी नौकर थे और आगे चलकर बडे ऊंचे पद पर पहुच गए थे। उन्होने "वऱ्हाड चा इतिहास" और "नागपुर प्रान्ताचा इतिहास" नाम के दो बडे ग्रथ लिखे ह। सरल भाषा, भरपूर जानकारी और सावधानतापूर्वक विषय विवेचन इन ग्रथो के विशेष गुण है जिनके कारण वे पठनीय हो गए है।

इसके पश्चात् लगता है कि प्रान्त के अधिकाश अन्वेषको का ध्यान महानुभाव पथ और उसके साहित्य की ओर आकृष्ट होगया था और इस काय के प्रारभ का श्रेय डाक्टर यशवत खुशाल देशपाडे को है। सन १९२६ में डाक्टर साहब ने गोविनायक अणे के सहकाय से "शारदाश्रम" नाम की एक सस्था यवतमाल में प्रस्थापित कर विदर्भ के इतिहासान्वेषण क काय का सगठित स्वरूप देने का प्रयत्न किया।

"शारदाश्रम" ने प्राचीन मराठी हस्तलिखित साहित्य की जिस प्रकार सावधानी से रक्षा की है और इतिहास का अध्ययन करने वालो की जो परम्परा निर्माण कर दी ह उसे देखकर डाक्टर देशपाडे जी के कर्तृत्व की श्रेष्ठता का परिचय मिलता ह। स्वय डाक्टर साहब का अन्वेषण काय भी महान् है। सयोग से ही सन १९२० म महानुभाव साहित्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। वे अनेक मतो से जाकर मिले और उनकी साकेतिक लिपियो का उन्होने अध्ययन किया और फिर अत्यन्त परिश्रमपूर्वक खोज के पश्चात् सन १९२६ में उन्होने "महानुभावीय मराठी साहित्य" नामक अत्यन्त मौलिक ग्रथ प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त "ऋद्धिपुर वर्णन," "परिसिद्धान्त सूत्र 'पाठ", "विष्णुदासाची कविता" नामक ग्रथो का भी सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया है।

स्व नी व भवालकर और स्व हरि नारायण नेने ने महानुभाव साहित्यान्वेषण का एक केन्द्र नागपुर में स्थापित किया था और उन्होंने "दृष्टान्त पाठ" एव "सिद्धान्त सूत्र" नामक ग्रथ प्रकाशित किए, परतु विशेष महत्व के "लीला चरित्र नामक ग्रथ का सपादन कर उसे अपनी टिप्पणी के साथ सन् १९३९में प्रकाशित किया जो विशेष उल्लेखनीय है।

यवतमाल के श्री वामन नारायण देशपाडे भी एक परिश्रमी अन्वेषक है। आद्य मराठी कवियित्री महदंवा के गीतों का संकलन कर उन्हें आप ही ने प्रथम प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त "नागदेव स्मृति" और "स्मृति स्थल" नामक दो ग्रंथों का भी सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया है। आज महानुभाव साहित्यान्वेषण में अग्रणी अखिल महाराष्ट्र के प्रख्यात विद्वान् डाक्टर विष्णु भिकाजी कोलते है। डाक्टर साहब ने भास्कर भट्ट बोरीकर की भगवद्गीता" का सम्पादन कर उसे अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया और उसके बाद शीघ्र ही इसी कवि के जीवन कार्यो पर पर लिखा अपना विवेचनात्मक प्रबध भी प्रकाशित किया। सन् १९४५ में "महानुभावा चे तत्त्वज्ञान" और सन् १९४८ में "महानुभावाचा आचार धर्म" नामक आपके दो ग्रंथ प्रकाशित हुए जिन पर उन्हे पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई। डाक्टर कोलते जी आज भी अन्वेषण कार्य में लगे हुए है।

लोक गीतों और लोक कथाओ की खोज, संकलन एवं सम्पादन प्राचीन साहित्यान्वेषण की ही एक शाखा है। इस क्षेत्र में यवतमाल के कवि श्री पां. श्री. गोरे ने 'वन्हाडी लोक गीतें' नामक बरार के लोकगोतों का और चादा के श्री वा. वि. जोशी ने लोक-कथाओं के सुन्दर संग्रह प्रकाशित किए है।

सुप्रसिद्ध अन्वेषक महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी को संयोग से कुछ प्राचीन सिक्के प्राप्त होगये थे। उन पर से आपने खोज की और पता लगाया कि वे विदर्भ के प्राचीन राज्य के है। आपके प्रायः बहुत से लेख अंग्रेजी भाषा में है। परन्तु "गाथा सप्तशती" के काल निर्णय, वाकाटक और राष्ट्रकूट राजाओं के विषय मे आपने मराठी में भी बहुत से लेख लिखे है। आप की "संशोधन मुक्तावली" नामक पुस्तक प्रकाशित है। इसी प्रकार आपने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक और आधारो सहित "कालिदास" नामक पुस्तक लिखी है जिसे समूचे महाराष्ट्र के विद्वानो ने सराहा है।

हाल ही मे यवतमाल के ना. ना. हूड ने "विदर्भ संशोधनाचा इतिहास" नामक एक पठनीय एवं उपयुक्त पुस्तक लिखी है। वणी के विद्वान डाक्टर यादव श्रीहरि अणे ने भी एक विस्तृत "वांग्मय सूचि" नाम की सूची तैयार की है जो शारदाश्रम मे रखी है।

नागपुर मे भी कई वर्षो से "मध्यप्रान्त संशोधन मण्डल" नाम की एक संस्था स्थापित है। इस संस्था के श्री हे. गो. लांडगे और श्री शं. गा. चट्टे खोजपूर्ण लेख लिखने में विख्यात है। लांडगे जी ने नागपुर का सांस्कृतिक इतिहास लिखा है।

इनके अतिरिक्त "दयालनाथ" का काव्य प्रकाशित करने वाले नागपुर के श्री अच्युतराव सीताराम साठे, अनेक लेखों और "रामायण कालीन लोक स्थितीचा इतिहास" नामक पुस्तक के लेखक, अकोला के स्व. विष्णु मोरेश्वर महाजनी, "गोस्वामी व त्यांचा सप्रदाय" नामक पुस्तक के रचयिता यवतमाल के श्री पृथ्वीगीर हरिगीर, मराठा कुलाचा इतिहास" के लेखक श्री गो.रा. दलवी आदि सभी विद्वानों ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक एवं स्वेच्छा से प्रेरित होकर मध्यप्रदेश के मराठी अन्वेषण कार्य मे उल्लेखनीय सहयोग दिया है।

महानुभाव साहित्यान्वेषण के कार्य मे माहुर के महंत श्री दत्तराज महानुभाव, ऋद्धिपुर के महंत श्री गोपीराज महानुभाव, उनके पंजाबी शिष्य पंडित बालकृष्ण शास्त्री आदि महाशयो ने अपना सहयोग प्रदान कर स्वयं भी उस विषय पर विवेचनात्मक लेख लिखे है। स्व. श्री गंगाराम मायाजी ढवरे ने "चक्रधर व महानुभाव" नाम की एक पुस्तिका लिखी थी।

प्राचीन मराठी काव्यों के टिप्पणी सहित संस्करण इस प्रदेश मे बहुत प्रकाशित हुए। इन संबंध मे प्रो. श्री. ना. बनहट्टी को पहला श्रेय दिया जायगा। आपने रघुनाथ पंडित का "नल दमयन्ती स्वयंवराख्यान" मोरोपन्त की "आर्य केकावली" और "श्लोक केकावली" नामक पुस्तकें अपनी अत्यन्त विस्तृत प्रस्तावना और टिप्पणी सहित प्रकाशित की है जिन्हे विद्वानों से मान्यता मिली है। वर्धा के हनुमनगढ़ के प्रो. श्रीधर बोवा परांजपे की "केकावली" पर लिखी टीका

भी प्रसिद्ध ह। टा मा गो देशमुख ने नागेश कृत "सीता स्वयवर" तथा अकोला के प्रि ना रा केलकर ने "दमयन्ती स्वयवर" नामक काव्य अपनी प्रस्तावना और टिप्पणी सहित प्रकाशित किए ह। श्रीमती सीताबाई जयवत मामन एव उन्साही लगिता ने मोरोपन्त के "रुक्मिणी हरण" और "सावित्री गीत" नामक गीतों का सम्पादन किया ह। अकोला के श्री कृष्णमूर्ति ने "क्षत्रियाचा इतिहास" नामक पुस्तक तीन भागो में लिखी है। "भट्टाची भूत अवलाद" नामक पुस्तक भी उल्लेखनीय है। अन्वेषण काय में प्रि मिराशी का नाम भी उल्लेखनीय है।

तत्त्वज्ञान और शास्त्रीय विषयो में इस प्रदेश के लेखको ने मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत कर मराठी साहित्य और भाषा को काफी समृद्धशाली बना दिया ह। अपनी विद्वत्ता और कतृत्व के कारण सिर्फ मध्यप्रदेश या महाराष्ट्र के ही नही, किन्तु समूचे भारत के आधुनिक पुरोगामी ऋषि के नाम से विख्यात डा केशव लक्ष्मण उर्फ भाऊजी दप्तरी, मराठी में ज्ञानकोश बनाने का प्रचण्ड काय अकेले अपनी हिम्मत पर पूरा करने वाले डा श्रीधर व्यकटेश केतकर, "हिन्दी सस्कृति आणि अहिंसा" नामक अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुस्तक के लेखक प्रो धर्मानंद कोसम्बी इत्यादि व्यक्ति इसी प्रदेश के ह, यह बात मध्यप्रदेश के लिये अत्यन्त भूषणास्पद है। डाक्टर भाऊजी दप्तरी इसी प्रदेश के ह और उन्हें अपने प्रदश का अभिमान है। अपने व्याख्यानो में तथा वार्तालाप में वे केवल नागपुरी बोली या शब्दो का उपयोग करते हैं। यह उनकी एक विशेषता है। उन्होंने विविध विषयों पर ग्रथ लिखे है। नीचे उनके लिखे ग्रथो की सूची दी जाती है —

वदिक कालगणना पद्धति व रामचद्र जन्म काल निणय, करण-कल्पलता पूर्वाध व उत्तराध, पचाग चन्द्रिका, भारतीय ज्योतिषशास्त्र निरीक्षण, महाभारत युद्ध काल निणय, ग्रह गणित कुतूहल, चिकित्सा परीक्षण, सच्चिकित्सा प्रनागिरा, उपनिषदाचा वस्तुनिष्ठ व बुद्धिगम्य अथ, व्यास सूत्रे, धमविवाद स्वरूप, धम रहस्य, जमिन्यर्थ दीपिका आदि। ये तो दप्तरी जी के मराठी ग्रथ हुए। इनके अतिरिक्त उन्होने बहुत से ग्रथ अग्रेजी में भी लिखे है। वेद और प्राचीन भारतीय समाज के विषय में उनके विचार अत्यन्त मूलगामी और क्रान्तिकारी हैं। अनेक पूर्वाचार्यों के मतो का उन्होंने अपने ग्रथो में खण्डन किया है। लोकमान्य तिलक ने ही नही, बल्कि आद्य शकराचाय जी ने भी अपने भाष्य में कहा कहा भूलें की है यह दिखाने में भी दप्तरी जी नही चूके। उनके सारे लेख प्रमाणभूत ह और उनके गहरे अध्ययन का परिचय देते हैं। ज्योतिगणित तथा आयुर्वेद-होम्योपथी-विषयो म डाक्टर दप्तरी की जोड का अधिकारी विवेचक समूचे हिन्दुस्थान मे विरला ही मिलेगा। "स्वतत्र भारताचा पुढील मार्ग" नामक उनके कुछ लेखो का सग्रह प्रसिद्ध ह और उनम देश की वतमान दशा पर इस श्रेष्ठ विचारवान के विचार पढने को मिलते ह। डाक्टर दप्तरी के विचार अत्यन्त पुरोगामी है और एक ऋषि की तरह ही अपरिग्रह का व्रत लेकर वे त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करते ह। उनकी आयु आज ७५ वष की है।

डाक्टर केतकर का जन्म रायपुर में हुआ और अमरीका से लौटने पर उन्होने सन् १९१२ में नागपुर में ही ज्ञान कोष की रचना का आरम्भ किया। ज्ञान-कोष का पहला प्रस्तावना खड नागपुर से ही प्रकाशित हुआ था। केतकर जी की "भारतीय समाज शास्त्र" नाम की पुस्तक भी नागपुर की 'नव भारत ग्रथमाला' ने प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में हिन्दुओ की समाज रचना की शास्त्रीय मीमासा की गई है।

शास्त्रीय विषयो में स्व श्री कृ कोल्हटकर ने ज्योतिष विषयक कुछ लेख लिखे है जिनका उल्लेख आवश्यक ह। वेद, उपनिषद, पुराणेतिहास एव स्मृति सबधी बहुत से लेख महामहोपाध्याय श्रीकृष्ण शास्त्री घुले ने लिखे और उनका एक सग्रह प्रकाशित हुआ है। बाहर से नौकरी के निमित्त इस प्रदेश में आए डा दा दा पेंडसे ने "ज्ञानेश्वराचे तत्त्वज्ञान" और "महाराष्ट्राचा सास्कृतिक इतिहास" नामक दो ग्रथ लिखे हैं। इसी तरह स्व ह ना नेने ने "शिक्षण-कला व मानस शास्त्र" नाम का ग्रथ लिखा है। श्री श्री ना बनहट्टी का विविध ज्ञानशाखाओ का सकलनात्मक विवेचन करने वाला "नानोपासना" नामक ग्रथ भी उल्लेखनीय है। अप्रबुद्ध और श्री बाल शास्त्री हरदास ने पुराण और भारतीय सस्कृति पर अनेक लेख लिखे ह। स्व श्री व्य पुणताबेकर की "नागरिक नीति" और प्रो मुजे की "अर्थ शास्त्र"

नामक पुस्तकों का भी उल्लेख आवश्यक है। साम्यवाद और गांधीवाद इत्यादि विषयो पर श्री पु. य. देशपांडे ने बहुत सा लिखा है। उनकी "नवी मूल्ये" और "गांधीजीच कां ?" नाम की दो पुस्तकें प्रसिद्ध है। लोकनायक बापू जी अणे की "राजकीय लेख संग्रह" नाम की पुस्तक उस विषय के विद्यार्थियो के लिए पठनीय है। अणे जी ने धर्म इतिहास और साहित्य आदि विषयों पर भी प्रस्तावना तथा लेखों के रूप में विपुलता से लिखा है जो इस प्रदेश के मराठी साहित्य के लिए अनमोल सिद्ध होगा। विशेषत: उन्होने हाल ही में महाविदर्भ के विषय मे जो महान् लेख लिखा है उसमे उन्होने अपनी प्रतिभासम्पन्न लेखनी से इस राज्य के मराठी साहित्य का इतिहास भी लिखा है जो अपूर्व है। उसमें विद्वान् लेखक की प्रगल्भ बुद्धि का प्रतिविम्व दिखाई देता है और उसके भीतर के कलाकार के दर्शन होते है।

इन के अतिरिक्त यवतमाल के श्री रा. दा. दामले ने हाल ही में "समूहाचे मानस शास्त्र" नामक सुन्दर ग्रंथ लिखा है और नागपुर के श्री वि. गंधे ने खेलों पर बहुत से लेख लिखे है। उनकी "हुतूतू" और "क्रीड़ागणवर" नामक खेलों सम्वन्धी पुस्तके कम से कम मराठी मे उस विषय की अपने ढग की अपूर्व ही माननी होगी।

स्व. नरहर लक्ष्मण उर्फ नाना आठवले ने मानस शास्त्र पर "बालकांचा मनोविकास" नामक एक अत्यन्त विवेचक ग्रंथ लिखा है। अमरावती के हरिहर देशपांडे ने "राजपूत राज्यांचा उदय व न्हास" और "राजपूत संस्कृति" नामक दोनों जानकारी से भरे ग्रंथ लिखकर मराठी साहित्य को राजपूतो के बारे में अनमोल ग्रंथ प्रदान किए है। श्री वि. वा. कलंबेलकर ने मराठी मे "संस्कृत साहित्याचा इतिहास" नामक एक बड़ा ग्रथ लिखा है। स्व. दाजीवा नारायण वाडेगांवकर ने नागोजी भट्ट के "परिभाजेदु शेखर" नामक ग्रंथ का सम्पूर्ण अनुवाद किया जो कुछ साल पहले ही प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ ने मराठी के व्याकरण विषयक साहित्य को अधिक समृद्ध कर दिया है।

इस प्रदेश के साहित्यालोचकों में साहित्याचार्य स्व. श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर का नाम सबसे पहले हमारे सामने आता है। कोल्हटकर जी ने महाराष्ट्र के प्रसिद्ध साहित्य सेवी स्व.न.चि. केलकर के "तोतया चे बंड" नामक नाटक की जो आलोचना की वह मराठी साहित्य मे आज भी आदर्श मानी जाती है। उनके पश्चात् श्री माडखोलकर, श्रीमती कुसुमावती बाई देशपाडे, प्रो. श्री. ना बनहट्टी, डा. मा. गो. देशमुख और प्रो. अ. ना. देशपांडे इस प्रदेश के प्रमुख साहित्यालोचक है।

माडखोलकर जी एक शैलीकार आलोचक है और साहित्य एवं व्यक्ति की हृदयंगम समीक्षा करने मे सिद्धहस्त है। उन्होंने "स्वैर विचार" और वांगमय विलास" नाम की दो आलोचनात्मक पुस्तके लिखी है। उनके लेख संस्कृत साहित्य शास्त्र और संस्कृत साहित्य के संकेत से प्रभावित हुए है। श्रीमती कुसुमावती बाई ने अंग्रेजी भाषा के परिशीलन से स्फूर्ति प्राप्त की है। उनके स्फुट समालोचनात्मक लेखों का "पासंग" नामक संग्रह और "मराठी कादंबरी १ ला और २रा भाग" नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। सूक्ष्म निरीक्षण, संयम और सहृदयता उनकी समीक्षाओं के विशेष गुण है। बनहट्टी जी के साहित्यालोचन मे संस्कृत और आधुनिक अंग्रेजी साहित्य के प्रवाहों का मेल मिलता है। इनकी आलोचना सन्तुलित और अचूक निर्णय वाली होती है। वे अनुरूप शब्दों का प्रयोग करते है। इसके कारण उनकी सम्पूर्ण समीक्षा वड़ी शानदार हो जाती है। वनहट्टी जी ने साहित्यालोचन की समस्त प्रचलित पद्धतियो का अद्यावत अध्ययन करके मराठी के भावी साहित्यालोचन को किस दिशा से जाना चाहिये, इसका निश्चित और उचित मार्गदर्शन किया। वनहट्टी जी के कुछ ग्रंथो का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। उनके अतिरिक्त मोरोपन्त के सम्पूर्ण काव्य की अत्यन्त विस्तारपूर्वक समीक्षा करने वाला "मयूर काव्य विवेचन" नामक आपका ग्रंथ इस विषय का सर्वमान्य ग्रंथ माना जाता है। वनहट्टी जी ने मराठी की अनेक पत्र–पत्रिकाओं मे भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेक लेख लिखे है। इन सब लेखो को एकत्र कर उन्हे विषयानुसार खंडश: प्रकाशित करने के लिए उनके कुछ भूतपूर्व ख्यातनामा विद्यार्थियों ने "वनहट्टी ग्रंथ प्रकाशन मंडल" नाम की एक संस्था स्थापित की है। श्री त्रि. गो. देशमुख, संपादक "मराठी जग" इस के कार्यवाहक है। इस संस्था ने वनहट्टी जी के "नाट्य व रंगभूमि" और "वांगमय विमर्ष" नामक दो वहुमूल्य ग्रंथ हाल ही मे प्रकाशित किए है। डा. मा. गो. देशमुख ने "मराठीचे साहित्यशास्त्र" नामक

प्रबध लिखा जिस पर आपको पी एच डी की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबध में आपने मराठी सत कवियो-ज्ञानेश्वर से रामदास तक के अनुशीलन मे अत्यन्त रहस्योद्ग्राही विवेचन करके यह दिखाया है कि मराठी का साहित्य-शास्त्र सस्कृत के साहित्य शास्त्र से किस प्रकार भिन्न है। इस प्रबध से आपको बडी ख्याति मिली। इस से पहले आप समय समय पर समाचार-पत्रो एव साहित्य पत्रिकाओ में साहित्य के प्रश्न तथा व्यक्ति पर आलोचनात्मक लेख लिखा करते थे। यद्यपि आपने थोडा लिखा है, पर जो लिखा है वह मौलिक है।

प्रो अ ना देशपाडे प्रथमत सामयिक पत्र पत्रिकाओ में फुटकर लेख और समालोचनायें लिखकर आलोचनात्मक साहित्य क्षेत्र मे अग्रसर हुए। परन्तु हाल ही में "आधुनिक मराठी साहित्याचा इतिहास" नामक एक बहुमूल्य ग्रथ लिख कर उन्होने आलोचनात्मक साहित्य में अपना स्थान बना लिया। इस विशाल ग्रथ के पहले भाग में देशपाडे जी ने ने सन् १८७४ से लेकर सन् १९२० तक के मराठी साहित्य का बडे सुन्दर ढग से विवेचन किया है।

उपर्युक्त प्रमुख पाच आलोचको के अतिरिक्त और भी एक यश प्राप्त आलोचक है जिनका मध्य प्रदेश के मराठी साहित्य में काफी ऊचा स्थान है। वे हैं यवतमाल के अध्यापक, कवि और अन्वेषक श्री वामन नारायण देशपाडे जो अपने अथावत अभ्यास, गहन अध्ययन एव मार्मिक समीक्षा के लिये विख्यात है। उनके लेखो का "विचार समीक्षा" नामक एक ही सग्रह प्रकाशित हुआ है। तथापि उन्होने सामयिक पत्र-पत्रिकाओ में कल्पित नाम से बहुत लिखा है। मराठी साहित्य में "स्फुट" लिखने की प्रथा आप ही ने डाली। "प्रतिभा" नामकी सुप्रसिद्ध पाक्षिक पत्रिका के लेखक "रामशास्त्री" वामन राव जी ही हैं। इस के अतिरिक्त बबई के "नवयुग" नामक साप्ताहिक पत्र में "द्रोणाचार्य" के नाम से और नागपुर के "समाधान" नामक सामयिक पत्र में "समाधानी" के नाम से देशपाडे जी आलोचनात्मक लेख लिखा करते थे। उनके ये सारे लेख विचार परिलुप्त है।

इनके अतिरिक्त श्री पु या देशपाडे, डाक्टर वि भि कोलते, डा श दा पेंडसे, श्री बालशास्त्री हरदास और श्री आ रा देशपाडे आदि लेखको ने भी आलोचनात्मक लेख लिखे है। इन में डा कोलते ने मराठी सतो के सामाजिक कार्यों पर हिन्दी भाषा में जो पुस्तक लिखी है, वह विशेष उल्लेखनीय है। खामगाव के श्री द रा गोमकाले और अमरा-वती के श्री श ना सहस्रबुद्धे दोना नाटय समालोचक है। गोमकाले जी की "नाट्यकार कोल्हटकर" और सहस्रबुद्धे जी की "नाट्याचार्य खाडिलकर" नाम की आलोचनात्मक पुस्तक विशेष प्रसिद्ध है।

निबधकारो में जिन का स्थान सचमुच में बहुत ऊचा है, परन्तु जो किसी भी वर्गीकरण के भीतर नही है, ऐसे कुछ लेखको का उल्लेख अब हमें करना है। इनमे आचार्य विनोबा भावे और आचार्य कालेलकर प्रमुख है। ये दोनो पश्चिम से इस प्रान्त में आए। वास्तव में "वसुधैव कुटुम्बकम्" मानने वाले इन विश्वात्माओ को किसी भी प्रदेश की सीमाए कैसे बाध सकती है ? फिर भी वर्धा में बहुत समय तक रहने के कारण मध्यप्रदेश का उन पर निश्चित ही अधिकार पहुचता है। इन दोना गाधीवादी आचार्यो ने मराठी साहित्य को बहुत से बहुमूल्य साहित्यिक लेख प्रदान किए है। श्रेष्ठ औदार्य, कडा आत्म निरीक्षण, मानसिक तपस्या और कर्मयोग के कारण विनोबा जी के प्रत्येक शब्द से पाठको को महान् सामर्थ्य का बोध होता है। उनकी लेखन शैली अत्यन्त प्रसन्न, शब्द सहज ही सूझे हुए पर नाद मधुर, और वाक्य छोटे-छोटे परन्तु हृदयस्पर्शी होते है। "महाराष्ट्र धर्म" नामक मासिक पत्र में प्रकाशित उनके कुछ लेखो का "मधुकर" नामक सग्रह सन् १९३७ में प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त "गीता" का "गीताई" नामक उनका रूपान्तर तो आज मराठी जगत् का धर्म ग्रथ हो गया है। विचार गुण और लेखन गुण से विनोबाजी का साहित्य इतना समृद्ध है कि उसका थोडे में विवेचन करना सभव नही हो सकता।

आचार्य कालेलकर जन्म से साहित्यिक और सौन्दर्यवादी कलाकार है। उनका प्राय बहुत सा लेखन गुजराती भाषा में है। तथापि उनकी "हिंडलग्या चा प्रवास" नामक आलोचनात्मक पुस्तक मराठी में है। इसके अतिरिक्त "जिवत अतोत्सव", "लोकमाता", "आमच्या देशाचे दर्शन", "हिमालयाचा प्रवास", "ब्रह्मदेशाचा प्रवास" आदि, यात्रा तथा

प्रकृति वर्णनात्मक और "जीवन विहार", "जीवन आणि समाज", "समाज आणि समाज व्यवस्था" इत्यादि साहित्य, कला और समाज शास्त्र पर लिखी उनकी पुस्तकें विविध लेखको ने मराठी में अनूदित की है। कालेलकर जी गांधीवाद के निष्ठावान् भाष्यकार हैं। आचार्य धर्माधिकारी ने कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा। तथापि उनके अनेक व्याख्यान और लेख उनकी प्रगल्भ विचार संपदा और गहन परिशीलन की साक्ष्य देते हैं। अभी थोड़े ही दिन पूर्व "स्नेहाचे झरे" नाम की "प्रिय ताई" को लिखे पत्रों की उनकी एक छोटी पुस्तक प्रकाशित हुई है। उनकी शैली श्रेष्ठ और प्रौढ़ है। इनके अतिरिक्त श्री प्रभाकर दीवाण और श्री कुन्दन दीवाण के नाम भी, जो विनोबा जी के शिष्यो मे से है, उल्लेखनीय है। प्रभाकर जी अच्छे कवि और आलोचक हैं तथा कुंदन जी छंद शास्त्र पर लिखा करते हैं। विनोबा जी के बंधु श्री शिवा जी नरहर भावे ने ज्ञानेश्वरी के शब्दों का एक उपयुक्त कोष तैयार किया है। हिन्दुस्थानी-मराठी कोष के संबंध में आचार्य कालेलकर और वामन चोरघड़े के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

सामयिक पत्रो में मासिक पत्रों का विचार करने पर हम देखते हैं कि हमारा देश कम से कम आरम्भ में तो पश्चिम महाराष्ट्र की बराबरी से आगे बढ़ा है। मराठी की सुप्रसिद्ध "निबंध माला" नामक मासिक पत्रिका जिस साल निकली, उसी साल यानी सन् १८७४ में अकोला के तत्कालीन प्रधानाध्यापक रावबहादुर विष्णु मोरेश्वर महाजनीने "ज्ञान संग्रह" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया था। वह लगभग दो साल तक चला और तत्कालीन महत्वपूर्ण मासिक पत्रों में गिना जाता था। इसके बाद इस प्रदेश मे नीचे लिखे मासिक पत्र निकले :—

मासिक पत्र का नाम	कहां से निकला ?	कब निकला ?
कारीगर	नागपुर	१८८०
शेतकरी	अमरावती	१८८३
काव्यसुमनांजली	,,	१८८९
नीरजोल्हास	...	१८९२
सरस्वती प्रकाश	,,	१९०२
वऱ्हाड़ शाला पत्रक	,,	१९०५
महाराष्ट्र वाग्विलास	,,	१९०६
शाला वृत्त	नागपुर	१९०७
वीरशैव संजीवनी	अमरावती	१९०९
सुबोध माला	,,	१९१६

महाराष्ट्र साहित्य सूची में यद्यपि इतने नाम मिले है, तथापि इन में दो-तीन मासिक पत्र ही प्रसिद्ध हुए। इनमें अमरावती की "महाराष्ट्र वाग्विलास" नामक मासिक पत्रिका साहित्यिक थी और डा. केतकर, य. खु. दगपांडे और बा. सं. गडकरी उसके संचालक थे। अमरावती की "सरस्वती प्रकाश" नाम की पत्रिका भी साहित्यिक ही थी। "शाला पत्रक" नामक मासिक पत्र शिक्षा विषयक था, जो सरकारी सहायता से ४० वर्ष तक चलता रहा।

सन् १९३१ के बाद नागपुर से कुछ अच्छी मासिक पत्रिकाएँ निकली। ग्राम पंचायत विषयक "ग्रामणी" नाम का मासिक पत्र अनेक वर्षो तक अच्छा काम करता रहा। सन् १९३० के लगभग नागपुर से "वागीश्वरी" नाम की एक सुन्दर साहित्यिक पत्रिका निकली थी, परन्तु दुर्भाग्य से सन् १९३५ के लगभग वह बंद हो गई। तथापि उन्ही संचालकों ने "विश्ववाणी" नाम की दूसरी मासिक पत्रिका निकाली। "वागीश्वरी" के सम्पादक श्री व. बो. गर्ग थे। "विश्ववाणी" के सम्पादकों में वासुदेव राव फडनीस और वा. र. मोडक आदि लोग थे। सन् १९३५ के लगभग प्रो. बनहट्टी ने भारतीय साहित्य परिषद् की ओर से "विहंगम" नामक मासिक पत्रिका निकाली, जिसके सम्पादक श्री या. मु. पाठक थे। इस साहित्यिक पत्रिका के कारण, नागपुर के साहित्य विलास पर अच्छा रंग चढ़ा। मराठी साहित्य में वागी-

रवरी, विश्व-वाणी और विहंगम नामक तीनो मासिक पत्रिकाओ का उनकी महत्वपूर्ण साहित्य सेवा और उनमें प्रकाशित उत्कृष्ट साहित्य के कारण बहुत बडा स्थान है, इसमें सन्देह नही। ये पत्रिकाएँ धनाभाव और योग्य सचालको के न मिलने से सन १९३८ के लगभग बन्द हो गईं। इसी समय अमरावती से "कलादर्श" नाम का मासिक-पत्र निकलता था। इसी समय नागपुर से श्री वा र मोडक ने "मुलाचे मासिक" और श्री वि ना वाडेगावकर ने "उद्यम" नाम के मासिक पत्र निकाले, जो आज तक सुचारु रूप से चल रहे हैं, और समूचे मराठी प्रदेश में विख्यात हो गए हैं।

अमरावती से सत तुकडोजी महाराज के सचालन में "गुरुदेव" नामक मासिक पत्र कई वर्षों से निकल रहा है। सन १९४८ में "पूजा" और "उन्मेष" नाम की सुन्दर साहित्यिक मासिक पत्रिकाएँ निकली थी, पर दोनो अल्पजीवी रही। वादा से 'मधुवन' नामक एक सुन्दर मासिक पत्र निकला था, पर वह भी शीघ्र ही बन्द हो गया। पर मोहेकर जी की "सुषमा" नामक मासिक पत्रिका जो सन् १९४७ में निकली थी, अभी तक चल रही है। सन् १९४६ से विदर्भ साहित्य सघ की मासिक मुख पत्रिका "युगवाणी", नागपुर से प्रकाशित होने लगी। प्रथम कुछ वर्षो तक श्री वामनराव देशपाडे उसके सम्पादक थे। उनके पश्चात् श्री वामन चोरघडे उसके सम्पादक हुए। अब हर वर्ष उसके सम्पादक बदलते रहते है। आजकल यही मध्यप्रदेश की एकमेव और प्रमुख मासिक पत्रिका है। इसके अतिरिक्त, बहुत साल तक सर्वोदय समाज की ओर से हिन्दी-मराठी में "सर्वोदय" नामक मासिक पत्र निकलता था, पर वह भी अब बद हो गया है।

मासिक पत्रो के पश्चात साप्ताहिक, पाक्षिक और दैनिक समाचार पत्रो का विचार करने पर अकोला को पहला श्रेय देना होगा। सन् १८६७ में "वन्हाड समाचार" नाम का इस प्रदेश का पहला मराठी साप्ताहिक पत्र अकोला से श्री फडके ने निकाला, जो सन् १९१९ तक अच्छी तरह चल रहा था, पर सरकारी कोप के कारण सन् १९१९ में उसका प्रकाशन बन्द हो गया। पर मामा जोगलेकर ने उसे खरीद लिया और "प्रजापक्ष" नाम का साप्ताहिक समाचार निकाला जो सन् १९३५ तक चलता रहा। महाराष्ट्र का पहला साप्ताहिक पत्र स्व बालशास्त्री जाभेकर का "दर्पण", सन् १८३२ में निकला और बरार का पहला समाचार पत्र सन् १८६७ में निकला, यह अन्तर ध्यान देने योग्य है। "वैदर्भ" नाम का दूसरा मराठी साप्ताहिक पत्र श्री देवराव विनायक दिगवर की सहायता से अकोला से ही निकला था।

सन १९०२ में "हरिकिशोर" और "देशसेवक" नाम साप्ताहिक पत्र नागपुर से निकले, जिनकी बडी धूम रही। इन पत्रो ने 'केसरी' और "काल" से स्फूर्ति प्राप्त की थी और वे लोकमान्य तिलक के गरम दल की राजनीति के समर्थक थे। "देश सेवक' के सम्पादक कुछ समय तक हरिपन्त पडित थे। बाद में कुछ दिन तक स्व गोपाल अनन्त ओगले रहे और अन्त में मराठी के एक ख्यातनामा पत्रकार स्व अच्युत बलवत कोल्हटकर "देश सेवक" के सम्पादक थे। स्व कोल्हटकर आगे चल कर समूचे महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध सम्पादक हुए। यहा यह उल्लेखनीय है कि ऐसे विख्यात पत्रकार का जीवन नागपुर से आरम्भ हुआ था। सन् १९१० में प्रेस एक्ट लगा कर देशसेवक पर मुकदमा चलाया गया और उसका अन्त हो गया।

सन् १९०७ में नागपुर से नटेश अप्पाजी द्रविड ने 'सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसाइटी' की ओर से "हितवाद" नामक मराठी साप्ताहिक पत्र शुरू किया। वही आज का अग्रेजी दैनिक "हितवाद" है। सन् १९०५ के लगभग अकोला में तिलक पक्षीय लोगो ने "स्वावलम्बी" नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। सन् १९१४ में नागपुर से बरार का "केसरी" माना जाने वाला "महाराष्ट्र" नाम का साप्ताहिक पत्र निकला। आगे शीघ्र ही वह द्विसाप्ताहिक और फिर दैनिक हो गया। सन् १९३५-३६ में डाक्टर खरे के "तरुण भारत" नामक साप्ताहिक पत्र का उदय हुआ, जो आगे चल कर अस्त हो गया, परन्तु सन् १९४१-४२ में दैनिक रूप में वह फिर प्रकट हो गया। यह मराठी का प्रमुख दैनिक है।

इस बीच अनेक साप्ताहिक पत्र निकले, उनमें अमरावती का "उदय" नामक द्विसाप्ताहिक पत्र श्री ना रा बामणगावकर के सम्पादकत्व में आज भी अच्छी तरह से चल रहा है। इसी प्रकार हवर्डे जी के सम्पादकत्व में "किरण" नाम का साप्ताहिक पत्र निकलता है। सन् १९३१ में अकोला से श्री ब्रिजलाल बियाणी ने "मातृभमि" नामक साप्ता

हिक पत्र की स्थापना की जो उसी वर्ष द्विसाप्ताहिक हो गया और अब तारीख ६ दिसम्बर १९५३ से दैनिक हो गया है। यह राष्ट्रीय विचारों का कांग्रेसपक्षीय पत्र है। स्व. प्रमिला बाई ओक ने, अपनी बुद्धिमत्ता और कर्तृत्व से इस पत्र की उन्नति की। नागपुर से सन् १९४७ मे प्रो. बनहट्टी द्वारा सम्पादित "समाधान" नामक साप्ताहिक पत्र शुरू हुआ, जो सन् १९५१ तक चलता रहा। इसी प्रकार श्री पु. य. देशपाडे द्वारा सम्पादित "भवितव्य" नाम का पत्र भी ७-८ साल चल कर वन्द हो गया।

सन् १९३० के बाद "सावधान" नामक साप्ताहिक पत्र अवतीर्ण हुआ। इसके सम्पादक स्व. श्री मावकर थे। यह हिन्दू सभा-वादी पत्र था। अपने ओजस्वी लेखो और चुभती हुई आलोचना के कारण यह बड़ा लोकप्रिय हो गया था और मराठी के पत्रकारिता के इतिहास में चिरस्मरणीय हो गया है। उसमे स्व. वासुदेव फडनीस, श्री रा. बी. काली और श्री पु. भा. भावे, जैसे श्रेष्ठ शैलीकार और धुरंधर भाषा पंडित लिखा करते थे। आगे श्री भावे जी ने "सावधान" वन्द हो जाने पर, "आदर्श" नाम का जोरदार साप्ताहिक पत्र निकाला था।

सन् १९४७ मे स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर इस प्रदेश मे मराठी पत्रो की जैसे बाढ-सी आ गई थी, जिनमे बहुत से नामशेष हो गए है। उनमे नागपुर प्रान्तिक कांग्रेस का मुखपत्र "नवसदेश", अमरावती के वीर वामनराव जोशी का "स्वतन्त्र हिन्दुस्थान", चांदा से प्रकाशित "नवा मनु", नागपुर के श्री मा. ज. कानेटकर का "नि.स्पृह", आदि, साप्ताहिक पत्र उल्लेखनीय है। साप्ताहिक पत्रो मे आज इस प्रदेश मे मेरे सम्पादकत्व मे तारीख २ अक्तूबर १९४३ से "मराठी जग" नाम का साप्ताहिक पत्र निकल रहा है। आजकल यह दैनिक "मातृभूमि" के रविवार सस्करण के रूप मे अकोला से प्रकाशित होता है। इसमें समाज, जीवन, संगीत, कला, राजनीति, आदि विषयो पर सारगर्भित लेख रहते है।

हाल ही में प्रकाशित "संधिकाल" पाक्षिक पत्र, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की ओर से प्रकाशित "राष्ट्रशक्ति", श्री वा. ना. सावजी का "चव्हाटा", अमरावती का "हिन्दुस्थान", यवतमाल का "लोकमत", नामक पत्र भी उल्लेखनीय हैं। इस प्रदेश के पत्र-जगत् मे आजकल श्री यशवंत शास्त्री, केशव पोतदार, श्यामकान्त बनहट्टी, श्री फडनीस, आदि नवयुवक काम कर रहे हैं।

सन् १९३० तक इस प्रदेश मे पुस्तक प्रकाशन का कोई संघटित व्यवसाय न था। सन् १९३० के बाद "वीणा प्रकाशन" और "सुविचार प्रकाशन मंडल" नामक प्रकाशन सस्थाएँ स्थापित हुई। श्री राजा भाऊ गर्गे के "वीणा प्रकाशन" ने, इस प्रदेश के तथा महाराष्ट्र के अनेक प्रसिद्ध लेखकों के उपन्यास प्रकाशित किए। "सुविचार प्रकाशन मंडल", इस प्रदेश की अग्रगण्य प्रकाशन संस्था है। उसके संचालक है, श्री पां. ना. बनहट्टी। इस संस्था ने "नव-भारत ग्रंथमाला" की ओर से केतकर, मिराशी, कोसम्बी, पुणतांबेकर, आदि जैसे प्रख्यात विद्वानो की ज्ञानप्रद पुस्तके प्रकाशित कर मराठी साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है। श्री दि. भा. धुमाल की "नागपूर प्रकाशन" नाम की संस्था ने भी बहुत सा ललित साहित्य प्रकाशित किया है। श्री ल. वा. पडोळे उत्साही कार्यकर्त्ता ने "पूजा-प्रकाशन", नाम की प्रकाशन संस्था निकाली और उसकी ओर से बहुत सी उत्तमोत्तम पुस्तके प्रकाशित की। "हिन्द प्रकाशन" नाम की प्रकाशन संस्था ने बहुत सा शिशु साहित्य प्रकाशित कर खूब प्रसिद्धि प्राप्त की है। श्री श्री. ना. हुद्दार की "अभिनव ग्रंथमाला" का यहा अवश्य उल्लेख करना चाहिये। इनके अतिरिक्त "उद्यम प्रकाशन", नागपुर, "विनोबा साहित्य प्रकाशक", "ग्राम सेवा मंडल" तथा "हिन्दुस्थानी तालीमी संघ", यवतमाल का "शारदाश्रम प्रकाशन", नागपुर का विदर्भ साहित्य संघ प्रकाशन" और "मध्यप्रदेश सशोधन मंडल", आदि प्रकाशन संस्थाओं को भी उपयोगी पुस्तके प्रकाशित करने का श्रेय देना आवश्यक है।

प्रकाशन संस्थाओं की तरह साहित्यिकों और उस भाषा के भाषियों की एक संगठित सार्वभौम संस्था भी परम आवश्यक होती है। मध्यप्रदेश के मराठी भाषियों की प्रातिनिधिक एवं सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक संस्था "विदर्भ साहित्य संघ" है। इस संस्था का केन्द्रीय कार्यालय "विदर्भ साहित्य मन्दिर", नागपुर मे अम्बाझिरी मार्ग पर स्थित है और उसकी

शाखाएँ वर्धा, अमरावती, खामगाव, गोंदिया, भंडारा और हिंगनघाट में फैली हैं। इस संस्था की स्थापना मुख्यत वरि भूषण बलवन्त गणेश खापर्डे तथा लोकनायक बापूजी अणे के प्रयत्नो से सन् १९२३ में अमरावती में हुई। सन् १९२६ तक इसका कार्य सुचारु रूप से चलता रहा और वार्षिक सम्मेलन भी होते रहे। तत्कालीन सम्मेलनो के सभापति श्री न चि केलकर, दादा साहब खापर्डे, इत्यादि गणमान्य साहित्यिक लोग थे। सन् १९३७ में इस संस्था का कार्य बन्द हो गया। आगे सन् १९४४ में प्रो श्री ना बनहट्टी ने श्री द श फडके, प्रो ना कृ दिवाएजी और श्री ग ना गद्रेगुद्धे के सहयोग से उसे पुनरुज्जीवित किया और उसी साल अकोट में डा य खु देशपाडे की अध्यक्षता में उसका अष्टम अधिवेशन हुआ। इसके पश्चात् हर वर्ष उसके वार्षिक अधिवेशन होते रहे। इसका सत्रहवा अधिवेशन सन् १९५८ में श्री बाबासाहब खापर्डे की अध्यक्षता में नागपुर में हुआ। इसका १४ वा अधिवेशन सन् १९५१ में श्रीमती कुसुमावती बाई देशपाडे के सभापतित्व में जबलपुर में हुआ था। सन् १९४८ में विदर्भ साहित्य संघ का रौप्य महोत्सव गोंदिया में बिहार प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री लोकनायक बापूजी अणे की अध्यक्षता में बडी धूमधाम के साथ मनाया गया था। लोकनायक अणे जी ही इस संस्था के स्थायी ट्रस्टी हैं।

मध्यप्रदेश के निबन्धकार और आलोचक

श्री रामेश्वर शुक्ल "अंचल"

कविता के साथ-साथ गद्य साहित्य की अभिवृद्धि का प्राधान्य भारतेन्दु युग मे ही स्वीकार किया गया था। निवन्ध और आलोचना का सूत्रपात उसी समय से माना जाता है। साहित्य के भाव पक्ष और भाषा पक्ष दोनों मे परिष्कार उन्ही के कार्यकाल में आरम्भ हुआ। मध्यप्रदेश की क्रमवद्ध गद्य-परम्परा का इतिहास भी हमें इसी समय से मिलता है। अपने इस लेख की सामग्री का प्रारम्भ मैने यही से किया है। इसके पहिले मध्यप्रदेश निवासी लेखको द्वारा लिखे गये गद्य के जो एक-दो नमूने मिलते हैं,उनमें वड़ी शिथिलता और पंडिताऊपन लिए उलझन से भरी अपरिष्कृत वाक्य-रचना और वाक्य योजना है। इसलिये मध्यप्रदेश में हिन्दी गद्य का विकास क्रम हमे यही से मानना चाहिये। प्रस्तुत लेख मे मैंने साहित्यिक निवन्धकारों और उनकी कृतियों का अध्ययन ही उपस्थित किया है। हमारे प्रदेश मे डा. हीरालाल, लोचनप्रसाद पाण्डेय, डा. हीरालाल जैन, पं. लज्जाशंकर झा, नाथूराम प्रेमी, दयाशंकर दुवे, डा. विद्याभास्कर, गोपाल दामोदर तामस्कर जैसे इतिहास, राजनीति, समाज-शास्त्र, पुरातत्व, अर्थशास्त्र, दर्शन और शिक्षा-शास्त्र से सम्वन्ध रखने वाले विपयो पर उच्च कोटि के निवन्धकार हुए है, पर उनके निवन्धों का निरूपण मेरे लेख का विषय नही है। मेरी जानकारी साहित्यिक निवन्धो तक ही सीमित है।

भारतेन्दु काल से लेकर आज तक का समय आधुनिक काल है, जो विकास और परिवर्तन का काल है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे किसी युग ने इतने वहुमुखी विकास—इतनी विविध जगत्-जीवन पक्षों की अभिव्यक्ति का परिचय नही दिया। इसे सच्चे अर्थ में साहित्यिक क्रान्ति और नव-जागरण-कह सकते है। साहित्यिक प्रवृत्तियो और रूपो की यह विविधता भाषा में अभिव्यक्ति-शक्ति का संचयन और प्रदर्शन देखते ही वनता है। इस जाग्रति और नव-निर्माण मे मध्यप्रदेश का योगदान भी रहा है। यहां के साहित्य सेवियों और कवि, लेखकों ने यह भली भांति समझ लिया था—टेनिसन के अनुसार—कि कोई भी परम्परा और रूढ़ि यदि अपनी आयु से अधिक जीवित रहती है तो उसका सौन्दर्य कुरूपता में तथा उपयोगिता अमंगल में परिणत हो जाती है। गद्य-युग की मांग है—सशक्त गद्य के प्रसार द्वारा ही खोए हुए धार्मिक और सामाजिक स्वास्थ्य को फिर से पाया जा सकता है—इसे मध्यप्रदेश के साहित्यिको ने भी अनुभव किया। भाषा के नये-नये प्रयोग और विषय-ज्ञान का प्रसार कर ये लेखक वर्तमान काल की नीव को सुस्थिर और शक्तिशाली वनाते रहे। हमारे प्रदेश में भी साहित्यिक निर्माण की व्यवस्था और भाषा परिष्कार का प्रयत्न दोनो साथ-साथ चलते रहे।

हिन्दी साहित्य में आलोचना का सूत्रपात, गुण-दोष-विवेचन की प्रणाली से हुआ, जिसने आगे चल कर एक सुव्यवस्थित परिपाटी का रूप ले लिया। हिन्दी मे समालोचना का आरम्भ वहुत देर में हुआ। सवसे पहिले वदरीनारायण चौधरी "प्रेम धन" ने "आनन्द कादंविनी" पत्रिका मे लाला श्रीनिवास दास के "संयोगिता स्वयवर" और गजाधरसिंह द्वारा अनूदित "वंग विजेता" की आलोचना की। उस समय तक आलोचना का उद्देश्य केवल दोषों का अन्वेपण होता था। आज आलोचना का क्षेत्र वहुत व्यापक हो गया है। कृति विशेष के समुचित अध्ययन से आगे वढ़ कर उसके सृजन की प्रक्रिया—स्रष्टा के व्यक्तित्व तथा उसके युग एवं तत्कालीन प्रवृत्तियो को समझने की चेष्टा भी की जाती है। द्विवेदी युग की आलोचना-कृतियों में साहित्य-विवेक के साथ-साथ सामयिक उपयोग की भावना भी शुरु हो गयी थी। लेखकगण प्राचीन और नवीन के प्रति एक सुसंतुलित दृष्टिकोण अपने सामने रखते थे। राष्ट्रीय और सुधारवादी प्रवृत्ति को लेकर वह पूरा का पूरा युग चला। प्राचीन आध्यात्मिकता की अपेक्षा एक व्यावहारिक

आदर्श की ओर ही उनका झुकाव रहा—साथ ही कवि के व्यक्तित्व और उसकी सामाजिक परिस्थितियो की अभिनता भी साहित्यालोचन में स्थान पाने लगी। वर्तमान आलोचना का यह बीज-वपन था।

आगे चल कर विकास क्रम के साथ-साथ आलोचना अधिकाधिक निबन्धात्मक होती गयी। आचार्य शुक्ल जी ने निबन्ध के अन्तर्गत ही साहित्यालोचन को लिया है। अपनी समीक्षाओ को भी उन्होंने निबन्ध या प्रबन्ध कोटि में रखा है। आलोचक अपने आलोचनात्मक विचारो को लघु या दीर्घ निबन्धो के रूप में प्रस्तुत करने लगे थे। बक्शी जी और पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी की कृतिया आलोचनात्मक निबन्ध-संग्रह ही हैं। अधिकांश नवीन लेखको की आलोचनाओ मे भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। आलोचना और निबन्ध कला के इस अधिकाधिक निकट आने की प्रक्रिया का परिणाम कुछ विद्वानो के अनुसार यह हुआ कि भारतीय आलोचना-पद्धति की विशेषता में कमी आ गयी। जो आलोचना पद्धति वस्तु तथ्य-सिद्धान्त और जीवन की पूर्णता को ही चरम सिद्ध मानती थी, वह बडी सीमा तक आलोचक के निजी व्यक्तित्व को भी प्रकट करने लगी। विषय की प्रधानता के साथ-साथ व्यक्ति की प्रधानता भी उसमें स्थान पाने लगी। परन्तु इससे जहा एक ओर आलोचक के आत्म-गोपन के भाव में कमी आई वही आलोचना तथ्य-निरूपण और सैद्धान्तिक विवेचन मात्र न रह कर ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आधारो को भी अपनाने लगी। युगो से चलते आ रहे सैद्धान्तिक आलोचना के धाराप्रवाह में व्याख्यात्मक और व्यक्तिप्रधान आलोचना के ये नये रूप साहित्यिको को कम रुचिकर नही लगे। तथ्यो और सिद्धान्तो के प्रकाश में व्यक्ति का अपना समावेश आलोचक को सामाजिक श्रोता या रस-भोक्ता की दृष्टि देता है। कृति के भीतर व्याप्त सौंदर्य या आनन्द के तथ्यो का उद्घाटन भी हो जाता है।

हिन्दी साहित्य के व्यापक इतिहास में जो स्थान एक विभाजक-रेखा-व्यक्तित्व के रूप में भारतेन्दु का है, वही हमारे प्रान्त म ठाकुर जगमोहनसिंह का है। उनके पहिले गद्य केवल संस्कृत-भाषा-टीका के रूप में आया था। कविता की भिन्न-भिन्न धाराएँ ही साहित्य को ओत प्रोत किये थी। उनके अन्तर्गत रची जाने वाली कृतिया, रस सिद्धान्त और काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकती है, पर गद्य की जड ठाकुर जगमोहनसिंह के समय में ही जमी। उस समय तक छापाखानो की स्थापना अच्छी तरह हो गयी थी। यही नही, सन् १८७६ और १८८५ के भीतर प्राय पच्चीस-तीस समाचार पत्र और ऐसी पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थी, जिनमें समाचारो के अतिरिक्त विभिन्न विषयो पर छोटी-छोटी टिप्पणिया के साथ निबन्ध, इत्यादि अन्य साहित्यिक रचनाएँ भी निकला करती थी। इन पत्र-पत्रिकाओ के अतिरिक्त ईसाइयो और आर्यसमाज के प्रचार-कार्य ने भी हिन्दी के विस्तार में योग दिया। हिन्दी भाषा का रूप स्थिर हो चला। हिन्दी के गद्य साहित्य का वास्तविक उदय इसी काल में हुआ—शुद्ध साहित्यिक रचनाओ द्वारा।

देश और समाज की उपर्युक्त परिवर्तनशील प्रवृत्तियो ने निबन्ध और आलोचना की दिशा का निश्चय और उसके स्वरूप का निर्धारण किया। द्विवेदी-युग में आकर साहित्यिक विवेचना का स्तर अधिक बौद्धिक हुआ। गद्य में नये नये रूप जन्म पा रहे थे। काव्य की रचना और समीक्षा में रीतिकालीन रस और अलकार पद्धति का प्रयोग चल सकता था, परन्तु नये उपन्यास, नई कहानी, नये निबन्ध, नये यात्रा-विवरणो और काव्य या इतर साहित्यिक ग्रन्थो के अनुवाद भी सामने आ रहे थे। उनके विवेचन के लिए नये प्रतिमानो की आवश्यकता थी—पृथक्-पृथक् समीक्षा-दर्शों की आवश्यकता थी।

अनुवादो की परीक्षा, भाषा सम्बन्धी शुद्धता और प्रयोगो की आलोचना निर्दोषता से की जाती थी। अनुवादो में भावो की सम्यक् अवतारणा होनी चाहिये। आचार्य वाजपेयी के शब्दो में "हम देखते हैं, उस समय की समीक्षा में किसी विशेष शास्त्रीय नियम का अनुवर्तन नही हो रहा था, बल्कि भिन्न भिन्न समीक्षक अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार रचनाओ के गुण-दोष उद्घाटित कर रहे थे। यह हिन्दी की नवीन प्रयोगकालीन समीक्षा का समय था। बीसवी शताब्दी में आते आते ये प्रयोग निश्चित सिद्धान्तो का रूप लेने लगे। प्राचीन संस्कृत साहित्य के प्रतिवर्तन से आगे बढ कर साहित्य चेतना पाश्चात्य सिद्धान्तो को अपनाने की ओर भी प्रवृत्त हुई। उसके रूपान्तर की ओर भी

लोगों का ध्यान गया। भारतेन्दु-युग का गोष्ठी-साहित्य, जो थोड़े से साहित्यिक रुचि वाले, एक वर्ग विशेष के लिए ही लिखा जाता था, अब सर्व साधारण में हिन्दी प्रचार के लिए एक वृहत् आन्दोलन का रूप लेने लगा। विषय वैभिन्य के अनुरूप भाषा की भंगिमा मे यथायोग्य परिवर्तन आये। अनेक प्रकार के प्रभाव उत्पन्न करने के लिए वात करने के रंग-रूप-ढँग में व्यावहारिक उतार-चढ़ाव के आदर्श निरूपित होने लगे।

ठाकुर जगमोहन सिंह का व्यक्तित्व एक शैली का व्यक्तित्व था। इनमें कवि और दार्शनिक का समन्वय है। अपने माधुर्य में पूर्ण होकर इनका गद्य काव्य की परिधि में आ जाता है। वाद मे इनकी शैली को भी चण्डी प्रसाद "हृदयेश", राजा राधिकारमण सिंह, शिवपूजन सहाय, राय कृष्णदास, वियोगी हरि, और एक सीमा तक जयशंकर प्रसाद ने भी अपनाया। उनके "श्यामा स्वप्न" मे प्रकृति के सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण है। आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे उनके सम्वन्ध में लिखा है :—"ठाकुर जगमोहन सिंह की शैली शव्द शोधक और अनुप्रास की प्रवृत्ति के कारण चौधरी वद्रीनारायण की शैली से मिलती जुलती है। पर उसमें लम्वे-लम्वे वाक्यों की जटिलता नही पाई जाती। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा मे जीवन की मधुर भारतीय रंगस्थलियों को मार्मिक ढंग से हृदय मे जमाने वाले प्यारे शव्दों का चयन अपनी अलग विशेषता रखता है।" दूसरे स्थल पर आचार्य शुक्ल लिखते है :—"वावू हरिश्चन्द्र, पण्डित प्रताप नारायण, आदि लेखकों की दृष्टि और हृदय की पहुँच मानव क्षेत्र तक ही थी, प्रकृति के ऊपर के क्षेत्रों तक नही। पर ठाकुर जगमोहन सिंह जी ने नरक्षेत्र के सौन्दर्य को प्रकृति के और क्षेत्रो के सौन्दर्य के मेल मे देखा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के रुचि संस्कार के साथ भारतवर्ष की प्यारी रूप रेखा को मन मे वसाने वाले, वे पहिले लेखक थे। कवियों की पुरानी प्यार की वोली में देश की दृश्यावलि के सामने रखने का मूक समर्थन तो उन्होने किया ही है, साथ ही भाव प्रवलता से प्रेरित कल्पना के विप्लव और विक्षेप अंकित करने वाली एक प्रकार की प्रलाप शैली भी इन्होंने निकाली, जिसमे रूप विधान का वैलक्षण्य प्रधान था न कि शव्द विधान का। क्या ही अच्छा होता, यदि इस शैली का हिन्दी में स्वतन्त्र रूप से विकास होता। तव वंग साहित्य में प्रचलित इस शैली का शव्द प्रधान रूप जो हिन्दी पर कुछ काल से चढाई कर रहा है और काव्य क्षेत्र का अतिक्रमण कर कभी-कभी विषय निरूपक निवन्धो तक का अर्थ ग्रास करने दौडता है, शायद जगह न पाता।" भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख सदस्यों में ठाकुर जगमोहन सिंह थे। वर्णनात्मक निवन्धों का एक प्रकार से इन्होंने ही सूत्रपात किया। वर्णनात्मक निवन्धो का लेखक, किसी प्राकृतिक वस्तु जड़ अथवा चेतन, कोई स्थान, प्रान्त अथवा और किसी मनोहर तथा आह्लादकारी दृश्य का वर्णन करता है। इस प्रकार के निवन्ध हिन्दी मे वहुत कम हैं। आगे आने वाले यथार्थवादी साहित्य प्रवाह में सुन्दर-सुन्दर शव्द चयन वाली इस अलंकृत शैली और गद्यकाव्यावलि के लिए पाठकों का आकर्षण क्रमशः घटता गया। परन्तु विविध भावमयी प्रकृति का रूपमाधुर्य तो उसमें सुरक्षित है ही और हिन्दी गद्य के विकास क्रम मे इस शैली का ऐतिहासिक महत्त्व माना जायेगा। इनकी उदात्त भावुकता, कल्पना की उडान, पौराणिक, रोमान्टिसिज्म, माधुर्य की व्यापकता और वर्णन की सजीवता उल्लेखनीय हैं। ये विशुद्ध निवंधकार थे, आलोचक नहीं। "श्यामा स्वप्न" इनका सवसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री हिन्दी में उदारवृत्ति के पोषक थे। व्रज भाषा और खड़ी वोली दोनो की काव्योपयोगिता पर इनका विश्वास था। जीवन की अन्तिम दशाव्दि मे उन्होने केवल गोपालन और कृषि विषयक साहित्य का निर्माण किया, पर वे हिन्दी में समालोचना सिद्धान्तों के सूत्रपातकर्त्ता भी थे। इस सम्वन्ध मे डा. लक्ष्मी सागर ने अपने ग्रन्थ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे लिखा है :— "साहित्य शास्त्र पर प्रकाश डालने वाला पहिला लेख पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री कृत समालोचना था। उसमे लेखक ने तत्कालीन तत्त्वों द्वारा नवीन प्रकाशित पुस्तको की चर्चा के रूप में समालोचना, हिन्दी में समालोचना की प्रथा, समालोचक का ग्रन्थ सम्वन्धी ज्ञान, सत्य प्रीति, शान्त स्वभाव, सहृदयता आदि गुणो पर प्रकाश डाला है। वीच-वीच में लेखक ने अंग्रेजी साहित्य के समालोचकों, उनके मतो और अंग्रेजी की आलोचना पद्धति के वारे में संकेत किये है। केवल गुण-दोष विवेचन प्रणाली से भिन्न, समालोचना सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाली प्रथा का सूत्रपात हम अग्निहोत्री कृत समालोचना से मान सकते हैं।

समालोचना साहित्य का यह महत्वपूर्ण विकास था। आचार्य शुक्ल जी ने हिन्दी निबन्ध शैली के उन्नायक के रूप में उन्हें याद करते हुए लिखा है —"इस उत्थान काल के आरम्भ में निबन्ध का रास्ता दिखाने वाले दो अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित हुए-बेकन विचार रत्नावलि और निबन्धमालादर्श (चिपलुणकर के मराठी निबन्धों का अनुवाद) पहिली पुस्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की और दूसरी पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की। अग्निहोत्री जी ने मराठी से संस्कृत कवि 'पंचक' का अनुवाद भी किया जिसमें संस्कृत के पांच महाकवियों का समय, जीवन चरित्र तथा उनकी रचनाओं के गुण-दोष का विवेचन मिलता है। उस समय यह आशा हुई थी कि इन दोनों अनुवादों के पीछे ये दोनों महाशय इसी प्रकार के मौलिक निबन्धों के लिखने में हाथ लगायें। पर ऐसा न हुआ। मिश्र बन्धुओं ने भी अपने इतिहास में अग्निहोत्री जी को हिन्दी का परम प्रसिद्ध गद्य लेखक माना है। उनकी भाषा में डा श्रीकृष्ण लाल को मराठी और संस्कृत शब्दों के दर्शन हुए और कहीं-कहीं पुराने पण्डिताऊ प्रयोग भी पाये जाते हैं। आचार्य द्विवेदी के सहयोगी होते हुए भी उनकी भाषा में वह सफाई, व्याकरण की शुद्धता, ढलाव और व्यवस्था—वह परिष्कृत सौष्ठव नहीं है, पर इनकी रचना शैली उनके कार्यकाल को देखते हुए महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रसंग में पण्डित गणपति जानकीराम दुबे का नाम भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। 'गुजराती साहित्य का विकास' उनका गंभीर, विद्वत्तापूर्ण आलोचनात्मक निबन्ध था जो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में छपा था। आपने इने-गिने लेख ही लिखे हैं। पर उस युग को देखते हुए आपकी भाषा की व्यवस्था और क्रम बद्ध भावों की नियोजना उल्लेखनीय है। भाषा में संस्कृत की तत्समता जो उस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी, आपकी रचनाओं में मिलती है। प्रकृति सौंदर्य के प्रति आप में झुकाव है और भाव प्रधान वर्णनात्मकता आपकी शैली की विशेषता है। साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में आपका उल्लेख कम देखने को मिलता है। इसी प्रकार "छत्तीसगढ़ मित्र" के दो लेखकों—पाण्डेय अनन्त राम तथा सूर्यनारायण शर्मा और रामराव चिंचोलकर का उल्लेख भी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता। पर उन्होंने विचारात्मक और भाव प्रधान निबन्ध लिखे हैं। उस युग को देखते हुए उनके निबन्धों का एक सीमा तक वही महत्त्व होना चाहिये जो बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों का है।

पं माधव राव सप्रे की प्रतिभा बहुमुखी थी। राजनैतिक जाग्रति में आपका बड़ा हाथ रहा है। अपने समय में हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि में आपने बड़ा योग दिया। देहरादून हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद को भी आपने सुशोभित किया था। मध्यप्रदेश विशेष कर छत्तीसगढ़ को अन्धकार से प्रकाश में लाने में आपने बड़ा काम किया। समय-समय पर अनेक पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन और बहुतेरी बहुमूल्य पुस्तकों का प्रणयन भी आपने किया जिनमें छत्तीसगढ़ मित्र, हिन्दी केसरी, हिन्दी ग्रन्थ माला, हिन्दी गीता रहस्य, हिन्दी दास बोध, महाभारत की मीमांसा मुख्य हैं। वे स्वार्थत्यागी देशभक्त, सुयोग्य सम्पादक और श्रेष्ठ लेखक थे। पुस्तकों के रूप में निबन्ध लिखने की हिन्दी में जो प्रथा चली उसके अन्तर्गत सप्रे जी की पुस्तक 'जीवन संग्राम में विजय पाने के उपाय,' रामचन्द्र शुक्ल के 'आदर्श जीवन' के समान ही श्रेष्ठ है। ऐसी पुस्तकों में एक विषय पर छोटे-छोटे निबन्धों का संग्रह होता है जिनमें ज्ञान के साथ साथ साहित्यिकता भी मिलती है। सप्रे जी ने गंभीर उपयोगी विषयों पर सुन्दर विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं जो आज भी पढ़ने में तरोताजा लगते हैं। आपके ओजस्वी निबंधों में सामयिक और राजनैतिक विषयों के समावेश के साथ-साथ सुबोधता, सुगमता और शैली में निष्कपट हार्दिकता है। उन्हें निबन्धकार ही माना जायेगा आलोचक नहीं। उस युग में ग्रेजुएट होकर भी, मराठी और संस्कृत के पण्डित होकर भी हिन्दी के प्रति उनका अनुराग और उस पर अधिकार असाधारण था। ऐसी प्रांजल भाषा और बहती-बोलती शैली उन्होंने पाई थी जो उस युग में द्विवेदीजी को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ थी। क्लिष्ट से क्लिष्ट भावों को प्रभावपूर्ण सादगी के साथ वे अभिव्यक्त करते थे।

पंडित कामताप्रसाद गुरु वैयाकरण के साथ-साथ निबन्धकार भी थे। हिन्दी में आलोचनात्मक प्रवृत्तियों के सूत्रपातकर्त्ताओं में उन्हें भी माना जाता है। गद्य-पद्य पर आपका समान अधिकार था। 'देशोद्धार' आपके फुटकर निबन्धों का संग्रह है और आपने खड़ी बोली की भाषा सम्बन्धी काव्योपयोगिता पर कई लेख लिखे हैं। कवि

और व्याकरणाचार्य के रूप मे ही अधिक माने जाने के कारण आपका गद्यकार और निवन्धकार का रूप अधिक सामने नही आ सका। द्विवेदी मंडल के लेखको में आपका अपना स्थान था। गंभीर साहित्य, सामाजिक शिष्टाचार, सामान्य मनोविज्ञान, नवयुवकोचित चरित्र-निर्माण आदि आपके स्वतंत्र निवन्धो के विषय हैं। गुरुजी जैसा आत्म नियंत्रण और विषय के प्रति एकात्म तल्लीनता कम लेखकों मे मिलती है। उनकी शैली सरल, सुवोध और आख्यानक है। अत्यंत संयत और परिष्कृत भाषा, समालोचनात्मक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक की सी तटस्थता आपकी विशेषता है। जीवन के नैतिक आदर्शो और स्वस्थ सामाजिक चरित्र निर्माण के प्रति आपका आग्रह स्पष्ट है। विचारो के संगुफन में व्यवस्थित क्रम मिलता है। वोल-चाल की सामान्य भाषा और सुष्ठु साहित्यिक भाषा दोनों में आपकी समान गति थी।

रायसाहव रघुवरप्रसाद द्विवेदी ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया—लेख और लेखमालाएं लिखी। 'हितकारिणी', 'श्री शारदा', 'माधुरी' आदि में ये प्रकाशित हुईं। विनोद और नीति, शिक्षा और सीख आपकी रचनाओं का प्रधान गुण माना जा सकता है। मध्यप्रदेश के लेखकों-कवियों की एक पूरी पीढ़ी को ही आपने प्रभावित किया है। भाषा का संस्कार उस युग में साहित्य का रूप खड़ा करने का एक साधन था। द्विवेदी जी ने भी यह किया। इतिहास, सदाचार और शिक्षा से सम्वन्धित विषयों पर ही उन्होने अधिकतर लिखा है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। उन्हे आलोचक तो नही कहा जा सकता, पर विचारात्मक निवन्ध वे उच्च कोटि के लिखते थे। भाषा और शैली का वाह्य अलंकरण उनमे नही, एक प्रकार का साध्वीपन उनकी स्वाभाविक शैली मे मिलता है जो सरल, वोधगम्य व्यावहारिक और आत्मीयता पूर्ण होती थी। उन तक आते-आते भाषा का स्वरूप आचार्य द्विवेदी द्वारा स्थिर हो चुका था। पर उसे शव्द चयन के सौन्दर्य द्वारा संवारना शेष था। मध्यप्रदेश के लिये द्विवेदी जी वावू श्यामसुन्दर दास थे। उन्होने निरन्तर वर्त्तमान का सर्जन और भविष्य का स्पष्टीकरण किया। क्रमवद्ध जीवन प्रवाह के समान ही उनके निवन्धों में सुनियोजित भाव प्रवाह और विचारतल्लीनता मिलती है। भाव-प्रकाशन के अन्य दो प्रकार व्यंगात्मक और आलोचनात्मक उनके निवन्धों में नही दृष्टिगोचर होते।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल वक्शी मध्यप्रदेश के पुराने आलोचको में सवसे ऊंचा स्थान रखते हैं। इनकी आलोचना शैली में दार्शनिक के चिन्तन और कवि की भावुकता के साथ-साथ जीवन के स्थायी मूल्यो की खोज का अनवरत प्रयास दिखाईदेता है। साहित्य के वाह्य प्रसाधन की अपेक्षा उसके अन्तरस्थ की सच्चाई पर वे अधिक जोर देते है। विश्व साहित्य, हिन्दी साहित्य विमर्श, प्रदीप, यात्री, आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य आदि उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कथा साहित्य उनका प्रिय विषय है और वड़ी तटस्थता के साथ वे कथाकारो की सफलता व असफलता का निदर्श करते हैं। उनके कुछ विशेष साहित्यिक आदर्श है जिनके अनुरूप वे कलाकार को देखना चाहते हैं। यहा तक कि अपनी साहित्यिक कल्पनाओ की वारम्वर पुनरावृत्ति करने मे वे नही चूकते और पाठक को उनकी आलोचनाओ मे खटकने वाली एकरसता भी मिलती है। पर जीवन के सत्यों और कला के मानों के प्रति वक्शीजी की आस्था गहरी है। इस-लिये उनकी कथा साहित्य की आलोचना में वार-वार की जाने वाली कथा-रस की मांग और उसकी मनोरंजकता पर उनका आग्रह खटकता नही। साहित्य में जिस विशेषता की वे चाहना करते है उसे इतनी सच्चाई के साथ स्वत: अनुभव करते है कि पाठक के हृदय पर उनके लिखने का सीधा प्रभाव पड़ता है और उनकी आलोचक दृष्टि मे वैविध्य का अभाव उसे खलता नही। उनके वैयक्तिक निवन्धो मे भी यही गुण प्रधान है। उनमे वक्शी जी की आलोच-नात्मक दृष्टि छिपी नही रह पाती और उनकी आसक्तिया-विरक्तिया वड़ी प्रखरता के साथ उभरती हैं। साहित्य के सिद्धान्तों और जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणो को कलारूप और संलाप रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी उनमे पाई जाती है। प्राचीन और अर्वाचीन की समन्वय दृष्टि उनमें है। उनकी दार्शनिक वृत्ति उनके लेखक के हर क्षेत्र मे दिखाई देती है। पाश्चात्य साहित्य से हिन्दी की तुलना करने की प्रवृत्ति उन्ही के सम्पादन काल मे 'सरस्वती' मे परिलक्षित हुई थी। इस प्रणाली के प्रवर्त्तन का श्रेय वक्शी जी को है।

स्वर्गीय पण्डित रामदयाल तिवारी की आलोचनाओं ने प्रकाशित होते ही हिन्दी संसार को अपनी ओर आकर्षित किया था। मध्यप्रदेश की इस छिपी हुई प्रतिभा ने प्रकाश में आते ही चारों ओर से प्रशंसा के स्वर सुने थे। स्वर्गीय पण्डित मातादीन शुक्ल के सम्पादन काल में 'माधुरी' में उनकी आलोचनाएं पहिले पहल छपी। उनमें गंभीर चिन्तन, अध्ययन और तत्वनिष्ठा की गहरी छाप थी। 'माधुरी' में तीन चार लेख छपने के साथ ही तिवारी जी समर्थ समालोचक माने जाने लगे। यह सन् १९२३-२४ की बात है। मुझे याद है, उसी समय पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी को एक इण्टरव्यू दिया था—"भविष्य किन का है।" उसमें उन्होंने स्वयं तिवारीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उमर खय्याम पर लिखी गयी तिवारी जी की आलोचना ने, जो 'माधुरी' के दो-तीन अंकों में छपी थी, प्रेमचन्द्र को अत्यधिक प्रभावित किया था। सचमुच वह लेखमाला बेजोड़ थी। इसके बाद 'माधुरी' में उनके चार लेख और छपे थे—साकेत समीक्षा, यशोधरा, समर्थ समालोचक और सत्याग्रह का स्वरूप। साकेत और यशोधरा पर इतनी सारगर्भित और स्वच्छ दृष्टि सम्पन्न कोई आलोचना आज तक नहीं लिखी गई। यदि तिवारी जी जीवित रहते और उसी गति से लिखते तो वे पं० रामचन्द्र शुक्ल के समकक्ष महान आलोचक होते, ऐसा मेरा विश्वास है। उनका *गांधी मीमांसा* नामक ग्रन्थ आज भी गांधीवाद पर एक महान कृति है जो अनूठा और सर्वमान्य है। विद्वत्ता, विचार स्वातंत्र्य, आत्म-विश्वास, निर्भीकता, हृदयशीलता, वैज्ञानिक तटस्थता और राग द्वेषहीनता से उनकी आलोचनाएं परिपूर्ण होती थीं। एक दार्शनिक प्रकाश उनकी आलोचनाओं को प्रकाशित किये रहता था। आज आलोचनाओं और मौलिक निबंधकारों में उनका कहीं उल्लेख नहीं होता—यह देख कर आश्चर्य और दुःख दोनों होते हैं। यदि तिवारी जी जीवित रहते तो वे एक व्यापक समीक्षा दर्शन का निर्माण और निरूपण करते, उनमें वह गंभीर अतलस्पर्शी जीवन दृष्टि और भारतीय साहित्य-परम्परा और जीवन दर्शन के प्रति अटूट निष्ठा थी। उमर खय्याम के शून्यवाद और भोग वाद का उन्होंने जिस विश्लेषणात्मक ढंग से खण्डन किया था और उसके काव्य की अन्तःसार शून्यता को जैसी खरी कठोरता की कसौटी पर रखा था, उसे पढ़ कर उस समय समस्त हिन्दी संसार मुग्ध हो गया था। उनके साहित्यिक और विवेचनात्मक लेखों का संग्रह प्रकाशित हो सके तो हिन्दी का हित हो। मध्यप्रदेश के इस महान् आलोचक की कृतियां सब सुलभ हो जायेंगी।

पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र का गद्य, उनके प्रयोगात्मक-विवेचनात्मक निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। मिश्र जी की सांस्कृतिक जीवन दृष्टि और परिष्कृत वैज्ञानिक समीक्षा शैली उनकी अपनी विशेषता है। उनका विशाल *अध्ययन* और पनी अन्तर्दृष्टि उनके विषय प्रतिपादन को मौलिकता और गंभीरता प्रदान करती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा के साथ-साथ आप में नवीनता का सामंजस्य भी पाया जाता है। राजनीति और सामाजिक *अर्थ नीति* और वर्तमान युग के सांस्कृतिक संक्रमण और आदान प्रदान को लेकर लिखे गये आपके निबन्धों में विश्लेषणात्मक, तर्कयुक्त बुद्धि ग्राह्य और वस्तु निष्ठ लेखन शैली के दर्शन होते हैं। 'तुलसी के राम और सीता' नामक आपकी एक छोटी पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। साहित्यिक और सामाजिक-सांस्कृतिक आयोजनों के अवसर पर दिये गये आपके अनेक भाषण हैं जो विचार सामग्री और विषय की नवीनता की दृष्टि से स्वतंत्र निबन्ध जैसे प्रतीत होते हैं। 'सारथी' 'श्री शारदा', 'लोकमत' और प्रान्त की अन्य पत्र पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित आपके साहित्यिक आलोचनात्मक लेखों का संकलन निकलने पर हिन्दी साहित्य को मध्यप्रदेश की एक अच्छी देन मिलेगी।

पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी के श्रेष्ठतम आलोचकों में हैं और मध्यप्रदेश का सौभाग्य है कि पिछले ६ वर्षों से उन्होंने उसे अपना कार्यक्षेत्र बना रखा है। 'माधुरी' में प्रकाशित उनके प्रारंभिक लेखों या 'कल्याण' के राम-चरित मानसांक आदि के सम्पादन के समय से ही उनकी सूक्ष्मदर्शी प्रतिभा का परिचय हिन्दी संसार को मिला। "प्रसाद" पर उनकी विशिष्ट पुस्तक प्रकाशित होते ही वाजपेयी जी आचार्य शुक्ल के बाद उनकी परम्परा का निर्वाह करने वाले आलोचकप्रवर गिने जाने लगे। कुछ लोग उन्हें रसवादी आलोचक कहते हैं—कुछ लोग उन्हें मूलतः व्याख्या-

कार मानते है। उनके दृष्टिकोण में समय-समय पर परिवर्त्तन भी हुए है, पर उन्होंने अपने आदर्शवाद को सदा अक्षुण्ण रखा है। उनकी आलोचना कभी वैयक्तिक या प्रभाववादी समीक्षा के हल्के स्तर पर नही उतरी। अपने गुरु आचार्य शुक्ल जी की भाति उन्हे भी भाषा और विचारो में संयम रखना खूब आता है। उनके पास अपना स्वतंत्र जीवन-सन्देश भी है जो वे बड़ी सफाई के साथ अपनी आलोचना में सुनाते है। प्रभाकर माचवे के शब्दों मे कुल मिलाकर वाजपेयी जी का हिन्दी आलोचना को दान बहुत अधिक है। उन्होंने हमारी आलोचना को आगे बढाया है। शुक्लजी का आग्रह जहां बुद्धिवाद और मर्यादावाद पर था, वाजपेयी जी रसवाद पर निर्भर रहने के कारण या और स्पष्ट करूं तो अन्त: प्रज्ञा पर अधिक निर्भर रहने के कारण सहज निराला से नरोत्तम नागर तक के सब प्रकार के नूतन प्रयोगवादी साहित्य के व्याख्याकार और अनुमोदक बन गये। वाजपेयी जी को एक प्रकार से हिन्दी के रोमाटिक युग के साहित्य शास्त्र का निर्माता माना जा सकता है और उनकी समीक्षा पद्धति अभी विकासशील है। 'हिन्दी साहित्य-बीसवी शताब्दी," "आधुनिक हिन्दी साहित्य," "जयशंकर प्रसाद" और "नया साहित्य-नये प्रश्न" उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जो किसी भी गंभीर साहित्यिक के लिए पठनीय ही नही, आवश्यक भी है। प्रसाद, निराला, महादेवी, पन्त, आचार्य शुक्ल और मैथिलीशरण गुप्त पर उनके आलोचनात्मक निष्कर्षो की उपेक्षा नही की जा सकती। आवश्यकतानुसार उन्होंने ऐतिहासिक और तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक दशाओ के प्रभाव का उद्घाटन भी आलोच्य रचनाओ मे किया है। इस प्रकार साहित्य की ऐतिहासिक रचना परम्परा के साथ उन्होंने आलोच्य कृति का तारतम्य मिलाया है। सामाजिक शक्तियो की यह आलोचनात्मक विश्लेषणा कही भी उनके सौन्दर्यात्मक मूल्यांकन मे बाधक नही होती। पार्श्वभूमि के संगीत के समान यह उनके गुणात्मक मूल्याकन के प्रभाव को बढ़ाती ही है। अपने नवीनतम ग्रंथ "नया-साहित्य--नये प्रश्न" मे उन्होने बड़े अधिकार के साथ लिखा है--"जिन कवियों के पास जीवन का यह रचनात्मक आधार नही है वे ही निराश और निस्तेज कृतियो की अंधियारी मे स्वयं रहते है और पाठको को भी रखते है।" मेरा आग्रह है कि श्रेष्ठ काव्य और इतर काव्य का यह अन्तर समझने की चेतना जो हमारे साहित्य मे अबतक अविकसित स्थिति मे है, तेजी के साथ जाग्रत की जाये। किसी काव्य या साहित्यिक कृति का श्रेष्ठत्व किसी संवेदन या रस विशेष मे नही है बल्कि इस संवेदन की मनोवैज्ञानिक प्रांजलता, पुष्टता, और गहराई मे है। श्रृङ्गार रस की एक कृति अपने छिछलेपन और कामुक अभिव्यजना मे प्रतिक्षण तिरस्कृत हो सकती है, वही उसी रस की एक दूसरी कृति अपनी स्वच्छ गंभीर संवेदनाओं के कारण कविता और काव्य रसिकों का कण्ठहार बन सकती है।...... हिन्दी के क्षेत्र मे अधिकाधिक काव्य विवेक को जाग्रत करने के प्रश्न को मै शीर्ष प्राथमिकता देना चाहता हूं।" मध्यप्रदेश मे समीक्षा और निबंध लेखन की जो नई पीढ़ी बन रही है और बनेगी उसकी जड़ मे वाजपेयी जी की भावना का आधार होगा। उनके मतों और निष्कर्षो, विचारों और प्रतिपादनों से भले ही किसी का कुछ मतभेद हो परन्तु उनका यह व्यक्तित्व समर्थतम साहित्यिक व्यक्तित्त्वों मे है, यह मानना होगा।

डा. रामकुमार वर्मा मध्यप्रदेश के आलोचको और निबंधकारो मे उच्च स्थान रखते हैं। कवि और एकाकी-नाटककार होने के साथ-साथ वे साहित्यिक निबंध और व्याख्यात्मक आलोचनाएं भी बड़ी अच्छी लिखते है। उनकी अनेक आलोचनात्मक कृतियां प्रकाशित हुई है। छायावाद, रहस्यवाद और नये साहित्य को लेकर लिखी गयी उनकी आलोचनाओ में हृदय तत्त्व और बुद्धितत्त्व दोनों का सुखद सम्मिश्रण मिलता है। भिन्न-भिन्न कवियो और लेखकों की पुस्तकों की उनकी लिखी भूमिकाएं भी उनकी आलोचनात्मक क्षमता और काव्य मर्मज्ञता का पर्याप्त प्रमाण है। वर्मा जी मूलत: कवि हैं। उनका कविरूप उनके गद्य मे बराबर उभरता है। उनका साहित्यालोचन भी इसीलिए जहा अत्यन्त सरस और पठनीय होता है वही उसमे गंभीर चिन्तन और प्रबुद्ध सोद्देश्यता का अभाव भी दृष्टिगोचर होता है। उनकी भावुकता प्रधान शैली और भावों का और कवि का मानवातिरेक कहीं-कही उनकी आलोचना को गीत काव्य की भांति व्यक्तिगत बना देता है। सफल अध्यापक होने के नाते उनका समझाने का ढंग बिलकुल अपना है और सफल नाटककार होने के नाते उनकी आलोचना और निबंधों में भी नाटकीय उतार-चढ़ाव हमें मिलता है। इन्हे रसवादी आलोचकों की श्रेणी मे गिना जा सकता है। छात्रोपयोगिता का वे बराबर ध्यान रखते है और जो कुछ कहते है

सफाई के साथ कहते है। किसी प्रकार की दुरूहता या जटिलता उनकी कृतियो में नही है। छायावाद के उप काल में जब पुराने सम्पादको और आलोचको द्वारा उसका विरोध किया जा रहा था, उन्होने अपने प्रारंभिक लेखो में उसका समर्थन किया। नये साहित्य पर लिखे गये उनके लेखो में यदि विस्तार है तो कबीर और रहस्यवादी साहित्य दर्शन पर लिखे गये उनके निबधो और आलोचना ग्रथो में शास्त्रीय विवेचन और विषय की गहरी पकड भी है। सब मिलाकर वे एक सफल व्यक्तिवादी आलोचक है।

डा बलदेवप्रसाद मिश्र तुलसी साहित्य और भक्तिकालीन चिन्ताधारा के मर्मज्ञ के रूप में सामने आते है। मिश्र जी मूलत दार्शनिक है और दार्शनिक पक्ष की ओर ही उनकी दृष्टि अधिक गई है। 'तुलसी दर्शन' नामक उनका ग्रथ तो अनूठा और सर्वमान्य है ही। उनके स्फुट निबध भी पर्याप्त सख्या में है जो उनकी मानसिक गठन और दार्शनिक अभिरुचि का पर्याप्त परिचय देते है। साहित्य के सास्कृतिक पक्ष की ओर उनकी दृष्टि सजग है और एक स्वाभाविक वैशिष्ठ्य उनकी रचनाओ में पाया जाता है। आलोच्य विषय के सामाजिक पक्ष पर भी आप ध्यान रखते है। मिश्र जी के कई साहित्यिक अभिभाषण मैने पढे है, जो परम्परागत ज्ञान और पुरातन के प्रति बुद्धिगम्य आग्रह के लिए अधिक उल्लेखनीय है। आलोचक की अपेक्षा आप निबधकार अधिक है। प्राचीन भक्ति काव्य, सन्त साहित्य और विभिन्न धार्मिक दार्शनिक मत मतान्तरो का अध्ययन आपने किया है और तुलसी के भक्ति भाव के निरूपण में उसका समुचित उपयोग भी। आपकी वाणी के अनुसार आपकी लेखनी में भी रस है और व्यापक सास्कृतिक दृष्टि भी आप में है। परिष्कृत भाषा और विषय के साथ एकात्म होनेवाली शैली आपकी विशेषता है।

पण्डित प्रयागदत्त शुक्ल की विद्वत्ता बहुमुखी है। पुरातत्त्व, इतिहास, साहित्य की प्राचीन अर्वाचीन गतिविधि और सास्कृतिक अनुवर्तन सबका उन्हें प्रगाढ ज्ञान है। इतिहास, वदिक सभ्यता, भारतीय संस्कृति, विगत धर्मों और सम्प्रदायो की गभीर जानकारी उन्हें है। काव्य शास्त्र का भी आपको विशद ज्ञान है और ये सारी उपलब्धिया आपके लेखो में प्रचुर परिमाण में प्रकट होती है। मध्यप्रदेश की सास्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि का जैसा ज्ञान आपको है, वैसा कम लोगो का है। आपको निबधकार ही कहना उचित होगा यद्यपि आपने साहित्यिक आलोचनाए भी लिखी है। नयी कविता और इतर रचनाओ के प्रति आपका दृष्टिकोण सुलभा हुआ और सहानुभतिपूर्ण है।

श्री लोकनाथ सिलाकारी के निबधो में उनका साहित्य के इतिहास का ज्ञान प्रकट होता है। मध्यप्रदेश के साहित्य के इतिहास से सम्बध रखने वाले उनके निबध में गवेषणात्मक प्रवृत्ति है। आलोचक की अपेक्षा निबधकार ही वे अधिक है। जहा तक साहित्य के विशुद्ध ज्ञान और कवियो, लेखको, साहित्यिक परम्पराओ और भिन्न भिन्न सम्प्रदायो के अन्तर्गत समय-समय पर लिखी गयी साहित्यिक कृतियो के ज्ञान का सबध है सिलाकारी जी अलग दिखाई देते है। विशेष रूप से भक्ति काल, रीति काल और छायावाद युग के पूर्व आधुनिक काल का उनका अध्ययन पूर्ण है और विषय नियोजन की क्षमता भी उनमें है। प्रान्त के साहित्यिक ऐतिहासिक दृष्टिसम्पन्न लेखको में वे उल्लेख्य है।

अपने पूज्य पिता पडित मातादीन शुक्ल का उल्लेख मैं अत्यन्त सकोचपूर्वक कर रहा हू। आलोचक और निबधकार का अपूर्व सामजस्य उनमें था। पर अपने युग के अन्य साहित्यिको की भाति कभी उन्होने अपने लेखो और आलोचनात्मक निबधो का सग्रह नही प्रकाशित कराया। छात्र सहोदर में उनके लेख पर्याप्त सख्या में मिलते है। 'आज', "मर्यादा" और 'अभ्युदय' में भी उन्होने अनेक निबध लिखे है जो साहित्यिक कम और तत्कालीन राजनैतिक-सामाजिक समस्याओ को लेकर ही अधिक है। उनके गभीर साहित्यिक निबध उनके सयुक्त सम्पादन और प्रधान सम्पादन काल में 'माधुरी' में ही अधिकतर छपे है। भाषण का ओजपूर्ण प्रवाह, आलोच्य विषय की गहरी प्रामाणिक जानकारी विषय प्रतिपादन की नवीनता और रोचक तथा सुव्यवस्थित रचना क्रम और विश्लेषण उनके लेखो की विशेषता है। कला और मानवीय वेदनायें, गल्प रत्न, पृथ्वी प्रदक्षिणा, रायसाहब रघुवरप्रसाद द्विवेदी, पराधीन प्रकृति, पद्माकर

बिहारी, तुलसीदास आदि पर लिखी गयी उनकी आलोचनात्मक चर्चाएं उल्लेखनीय हैं। सैकड़ों पुस्तकों की सारगर्भित और साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की आलोचनाएं उन्होंने माधुरी और सुधा में लिखी और नियमित रूप से आलोचना का स्तम्भ संभाला। जो कुछ भी लिखा उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। डा. श्रीकृष्ण लाल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास नामक अपने ग्रंथ में लिखा है :– "भावनात्मक निबंध कभी-कभी स्वागत भाषण का भी रूप ले लेते हैं जबकि लेखक नाटकीय ढग से किसी अदृश्य व्यक्ति या वस्तु को संबोधन करके अपनी भावनाओं का पूर्ण और नाटकीय प्रदर्शन करते हैं। जुलाई १९१९ की 'मर्यादा' में पंडित मातादीन शुक्ल ने अपने "आशा" शीर्षक लेख में यही विशेषता दिखाई है।"

भदन्त आनन्द कौसल्यायन का निबंध संग्रह "जो न भूल सका" अनेक दृष्टियों से हिन्दी में अनूठा है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात को प्रभावशाली ढंग से कहना आनन्द जी की शैली है। छिपकर अपने को निर्लिप्त रखते हुए उन्होने जीवन का निरीक्षण किया है। इतना मधुर और निर्मोह व्यंग हिन्दी में कम लिखा गया है। संस्मरणात्मक शैली मे अधिकतर लिखे गये इन निबंधो में पूंजीवाद की, प्रतिक्रिया की, ढोग ढकोसलों की और सामाजिक और व्यक्तिगत पाखंड की भारतीयों पर कस-कस कर चोटे की गयी हैं। पंडित कालिकाप्रसाद दीक्षित मे आलोचक और निबंधकार दोनो का समन्वय है। कुशल संपादक होने के नाते आपके निबंधों में एक नैसर्गिक परिष्कार रहता है। प्राच्य और पाश्चात्य दोनो दृष्टिकोणो का सार ग्रहण कर आप विषय प्रतिपादन का क्रम सजाते हैं। आपके निबंधों का सकलन अभी तक प्रकाशित नही हुआ है। साहित्यिक, आलोचनात्मक, संस्मरणात्मक और विवेचनात्मक सभी प्रकार के निबन्ध आपने लिखे हैं। रामानुजलाल श्रीवास्तव हिन्दी मे अंग्रेजी के सुलेखक है। आपकी शैली पर उर्दू के लहजे का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वही मुहावरेदारी, शैली की सजीवता, विषय और पाठक के बीच तत्काल स्थापित हो जाने वाली निकटता, प्रच्छन्न व्यंग आदि आपके लेखो मे खूब मिलते हैं। ब्योहार राजेन्द्रसिंह के निबंधो मे उनकी साहित्य निष्ठा और स्थान-स्थान से ज्ञान का संचय करने वाली मधुकर वृत्ति के दर्शन होते हैं। 'तुलसी की समन्वय साधना' आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है। साहित्य से इतर विषयो में भी आपकी गति है। शैली मे सरलता और अभिव्यक्ति की ईमानदारी है। अनेक प्रकार के निबंध आपने लिखे हैं। पर आपके साहित्यिक-विवेचनात्मक निबध ही अधिक सफल हैं। श्री विनय मोहन शर्मा प्रात के प्रसिद्ध लेखक और आलोचक हैं। आपके आलोचनात्मक निबधो के अनेक संग्रह निकल चुके हैं। शुद्ध साहित्यिक विषयो पर तो आपकी आलोचनाए है ही, प्रान्तीय बोलियो पर भी आपने कुछ अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। साहित्य-कला, साहित्यालोचन दृष्टिकोण पर ही आपके निबध संग्रह है। निबंधकार की अपेक्षा आप मे आलोचक की प्रवृत्ति ही अधिक दिखाई देती है। प्राचीनता और नवीनता का आपके दृष्टिकोण मे सुखद सामंजस्य हैं। काव्यकला और काव्य कृतियों पर आपके आलोचनात्मक निबध सर्वाधिक सफल हैं। आप की निबंध शैली और आलोचना प्रणाली मे पत्रकार की परिचयात्मकता भी देखने को मिलती है। अपनी आलोचनाओं में आप प्रभाववादी ही अधिक हैं।

पडित आत्मानन्द मिश्र ने शिक्षा विषयक निबंध अधिक लिखे हैं यद्यपि आपके साहित्यिक निबंधो की संख्या कम नही है। आपकी शैली सरल, सुबोध और विषय प्रतिपादन की दृष्टि से सफल है। पडित प्रभुदयालु अग्निहोत्री मंजे हुए निबंध लेखक हैं। सस्कृत साहित्य के विद्वान् होने के नाते आपकी शैली पर संस्कृत शैली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गीत गोविंद, कालिदास का विरह वर्णन, प्रबोध चंन्द्रोदय, हिन्दी काव्य मे नारी का मातृरूप आदि आपने निबंध लिखे हैं। सस्कृत शैली की विशेष अभिरुचि होने पर भी आप उसके बोझिल पन से मुक्त हैं। डा. राम रतन भटनागर सागर विश्व विद्यालय मे हिन्दी के प्रधान हैं। इस समय तक आप लगभग ५० पुस्तकों की रचना कर चुके है। आप मुख्य रूप से आलोचक है, निबंधकार नही। आधुनिक हिन्दी साहित्य के आप मर्मज्ञ है। दीर्घ आलोचनात्मक निबध मालाये स्वतंत्र पुस्तक का रूप ले सकेगी। आपकी आलोचना दृष्टि गंभीर और पैनी हैं। प्राचीन काव्य और साहित्य के प्राचीन इतिहास के आपने आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये हैं जो पठनीय हैं। कमलाकात

पाठक प्रात के तरुण लेखको में तथा आलोचको में ऊचा स्थान रखते हैं। आप सागर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक है और आधुनिक हिन्दी कविता का आपने विशेष अध्ययन किया है। आपने संस्कृत की शैली अपनायी है। इस कारण आपकी आलोचनाओ में तत्सम बोझिल पन पाया जाता है पर अन्तरस्थ की दृष्टि से आप पाश्चात्य आलोचक दृष्टि लेकर चलते हैं। आप कुशाग्र बुद्धि के सुलझे हुए आलोचक है। श्री रामनारायण मिश्र ने अनेक निबंध लिखे हैं जो अधिकतर साहित्यिक विषयो को लेकर है। मराठी साहित्यिको पर और साहित्य पर भी आपके निबंध पठनीय हैं। देवीदयाल चतुर्वेदी के साहित्यिक निबंध साहित्य की आलोचक वृत्ति से ओत प्रोत है। नर्मदाप्रसाद खरे के साहित्यिक निबंधो में परिचायक की विवेचना अधिक मिलती है। श्री खरे जी के लेखो की संख्या अधिक है और प्रत्येक आधुनिक लेखक या उसके काव्य के संबंध में आपने प्राय लिखा है। गजानन मुक्तिबोध के निबंधो में नई आलोचक दृष्टि और प्रगतिशील चित्त धारा के दर्शन होते है। विचारो का बाहुल्य और मौलिकता तो उनमें है ही, पर विषय शृंखला और नियोजन की पटुता की दृष्टि से उनके निबंधो में कलात्मक भाव टपकता है। भवानीप्रसाद तिवारी ने साहित्यिक निबंध लिखे है और कुछ उच्च कोटि के व्यक्तिगत निबंध भी। गहरा व्यंग, स्वस्थ जीवनदृष्टि और सामाजिक आलोचना आपके लेखो की विशेषता है। इनके अतिरिक्त शिवसहाय चतुर्वेदी, कृष्ण लाल हंस, रामेश्वर प्रसाद गुरु, प्रभागचन्द्र शर्मा, राजेश्वर गुरु, हरिकृष्ण त्रिपाठी, उमाशंकर शुक्ल (वर्धा), श्री राम शर्मा (अकोला), लक्ष्मी नारायण दुबे आदि नवयुवकोचित प्रवृत्तियो के तरुण लेखक भी है जो पत्र-पत्रिकाओ में बराबर लिखा करते है। इनमें से अनेक कवि, कहानी लेखक और पत्रकार भी हैं। उपर्युक्त सभी लेखक कथात्मक, वर्णनात्मक, चिन्तनात्मक और परिचयात्मक निबंध लिखते रहते हैं, परन्तु अधिकतर उनके लेख समकालीन अथवा प्राचीन साहित्य और उसकी विशेषताओ की व्याख्या और आलोचनात्मक अथवा प्रशंसात्मक उहापोह तक ही सीमित रहते हैं।

साहित्य रूप की दृष्टि से निबंध सबसे आधुनिक रूप है। इसका प्रचार मासिक अथवा साप्ताहिक पत्रो द्वारा हुआ है। निबंधो का आधुनिक रूप यद्यपि पश्चिम की देन है तथापि हमारे यहा भी १६ वीं शताब्दी के गोष्ठी साहित्य के प्रतिनिधि निबंध लेखक थे। इनकी दृष्टि जीवन के समस्त पक्षो पर नही जाती थी—किसी विशेष पक्ष पर ही ये दृष्टि डालते थे। इधर एक बात और होगई है। साहित्य की अभिवृद्धि इस तीव्र प्रयास से हो रही है कि इसका सामयिक मूल्यांकन और विवेचन, उसकी प्रेरक सूत्र प्रवृत्तियो का विश्लेषण बहुत शक्तिया ले लेता है। वर्तमान युग की निबंध कला एक प्रकार से साहित्य के व्याख्यात्मक अध्ययन-मूल्यांकन तक ही सीमित है। इस दृष्टि से जो विविधता और विषयो का बाहुल्य हमें भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के निबंधकारों में मिलती है वह आज उपलब्ध नही है। उस समय तो जो विषय सामने आजाता था उसी पर निबंध लिखे जाते थे। आज साहित्यिक अधिक लिखे जाते हैं जो आलोचनात्मक भी होते हैं और आत्म परिचयात्मक भी। निबंधो के साहित्यिक रूप और शैली में पर्याप्त विकास हुआ है, परन्तु विषय विस्तार नही। अधिकतर साहित्यिक विषयो ने ही निबंध सृजन को आच्छादित कर रखा है। आवश्यकता है कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी पक्षो को निबंध के विषय और उपादान का रूप मिले।

मध्यप्रदेश के आधुनिक कथाकार

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री

साहित्यिक दृष्टि से मध्यप्रदेश मे नवीन युग का प्रारम्भ सन् १९२० से माना जा सकता है। खडवा के "सुबोध-सिन्धु" से लेकर नागपुर के "हिन्दी केसरी" तक और "हिन्दी-केसरी" से लेकर जबलपुर के "कर्मवीर" तक जो साहित्यिक-प्रयत्न मध्यप्रांत मे हुये, उनके बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा खीच सकना यद्यपि कठिन है, तथापि इन तीनों युगो की कृतियो मे विषय, भाव और अभिव्यक्ति की भिन्नता, थोड़ा ध्यान देने से स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। इसका कारण है, ऐसा लगता है कि मध्यप्रदेश के शैलो और सरिताओ के समान उसकी भावभूमि अपनी हरीतिमा और अवदात-पूरता के लिए अपने अन्तः पर कम और वातावरण के आवर्तन-विवर्तन पर अधिक निर्भर रहती आयी है; ऐसा नही कि हिमाचल और हैमवती के समान आकाश की देन को पूरक—मात्र के रूप मे ही ग्रहण करे। हां, एक बात अवश्य, कि ऊपर से जो आया, उसे अत्यन्त विशुद्धता और अपकिलता के साथ उसने ग्रहण किया, इतनी अपकिलता के साथ कि उसमे उसके अन्तर की ऋजुता और अनृतता ही साकार हो पायी। मध्यप्रदेश की साहित्यिक कृतियो मे सादगी, निश्छलता और ईमानदारी अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में मिलती है। प्रभाव का अर्थ दोहराहट नही; और यदि अन्यत्र कही हो तो भी मध्यप्रदेश मे बिलकुल नही। यो यह प्रभाव प्रायः प्रत्येक साहित्यिक जाग्रति के मूल मे होता है। बंगाली नाटच-कला ने हिन्दी छविगृहो को प्रेरणा दी, लोकमान्य ने सारे भारत के लेखकों को प्रभावित किया। उसी प्रकार "सुबोध-सिन्धु" स्व. दादाभाई नौरोजी से प्रभावित वातावरण मे, "हिन्दी-केसरी" स्व. लोकमान्य तिलक के विचारो के प्रचारक के रूप मे और "कर्मवीर" गांधी युग की चेतना के परिमाणस्वरूप निकला और इन सबका प्रभाव तत्कालीन साहित्यिक कृतियों पर भी परिस्फुटित हुआ।

आधुनिक युग के पूर्वार्ध के कहानी लेखकों मे पं. माखनलाल चतुर्वेदी, स्व. सुभद्राकुमारी चौहान और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कहानी लेखक के साथ-साथ कवि भी रहे है। बख्शी जी ने कुछ दिनों के बाद कविता से कलम खीच ली किन्तु उसे समीक्षा की ओर प्रवाहित कर दिया। इसका प्रभाव इन लेखको के कथा-साहित्य पर भी पड़ा। कविता तात्कालिक यश और संतोष दोनो दे सकती थी। वह कविता का युग था और तब साहित्यिक के लिए कवि होना अपरिहार्य सा था। फिर हमारे ये लेखक तो जन्मजात एवं बहुमान्य कवि थे, अतः उनकी उर्वर मनोभूमि का रस पहिले-पहल कविता को ही प्राप्त होता रहा। फिर भी इसमे सन्देह नही कि इन तीनो लेखकों की कुछ कहानियां साहित्य मे सदा अमर रहेगी। यदि ये लोग मुख्यतः कहानी की ओर ध्यान देते तो सम्भवतः आज कथा-साहित्य की स्थिति कुछ भिन्न होती।

पं. माखनलाल चतुर्वेदी मे कहानीकार की सूझ और प्रतिभा खूब है। यद्यपि कविताओं के मुकाबिले उनकी कहानियां कम ही प्रकाशित है फिर भी कहानियां उन्होने लिखी बहुत हैं। उनकी लगभग १५० बड़ी और ३०० लघुकथाओं मे, जहां तक मुझे मालूम है, कुल १० कहानियां "कला का अनुवाद" नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। इन कहानियो में श्री चतुर्वेदी जी का व्यंग—जो उनकी साधारण हलकी—फुलकी चर्चा में प्रायः देखा जाता है—खूब निखरा है। व्यक्ति की भीतरी—बाहरी विद्रूपताओं पर उनकी दृष्टि झट पहुंच जाती है, और वे उन्हे उघाड़कर रख देते है। क्या "मुहब्बत का रंग," क्या "बरसता सावन बैसाख होगया" और क्या "महंगी पहचान" सर्वत्र उनमे फबतिया कसने और बड़े संकेतात्मक ढंग से एक नयी बात कह जाने की प्रवृत्ति देखी जा सकती हैं। कवि के समान कहानीकार के रूप में भी श्री चतुर्वेदी जी पूर्णतः मध्यप्रदेशीय है। भाव, शैली सभी मे वे इस प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते है। उनकी

शैली मे उनका निजीपन जितना झलकता है उतना बहुत कम लेखको की कृतियो में पाया जाता है। उनकी शक्ति उसमें प्रस्फुटित हुई है और प्रभाव भी। बात को एक विशिष्ट घुमाव के साथ नये प्रतीको में और अछूतेपन से कहना—उनकी विशेषता है। बातो पर इतना बल देकर उनके कसीदे काढने के शौक ने उनके वक्तव्य को अक्सर ढक लिया है। फिर भी उनकी सूझ अपनी है। अपने जीवन-यात्री के पावो में सहसा गड जाने वाली या आखो में चुभ जाने वाली चीजो का एक खाका उन्होने प्राय प्रस्तुत किया है। माखनलाल जी की कविताओ के समान उनकी प्रत्येक कहानी के पीछे कोई न कोई छोटी-मोटी घटना अवश्य विद्यमान है। मनोविश्लेषण इन कहानियो में यत्र-तत्र है, राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक चर्चा भी कही-कही है पर गौण रूप में। चारित्रिक विकास नही के बराबर और तत्त्व निरूपण बहुत कम है। वास्तव में माखनलाल जी की कहानियो पर वे भले ही बडे आकार की हो—लघु-कथा के लक्षण अपेक्षाकृत अधिक घटित होते है, इसीलिये उनमें सकेतात्मकता खूब है।

माखनलालजी की भाषा में अटपटापन है, स्थानीय शब्दो के प्रयोग भी है और वाक्य-रचना कही—कही अजनबी सी। उसमें सर्वत्र एक बाकापन है, देखिए—

> "पैसेंजर गाडी, साचा था, आधीरात को घर से मेल पकडने से, तो रास्ते में कही बदल लेना अच्छा होगा। सो, पैसेंजर गाडी। जीवन का मूल्य कूतने की उचित जगह। वे आते है, वे चले, और वे चले गये।"
>
> "किन्तु मेरी आखें, उस समय मेरे कानो पर आ बैठी थी। मै सुनकर देख रहा था और देखने की उन्ही उगलियो से वातावरण को छू रहा था, इतने ही में सारा छायावाद गद्य हो गया।"

श्री माखनलालजी की कहानियो का उचित मूल्याकन तब तक सम्भव नही, जब तक उनमें से अधिकाश प्रकाशित न हो जाय।

श्री पदुमलाल जी बख्शी सम्पादक, समालोचक और निबन्धकार के साथ कहानी लेखक भी है। उनकी कहानियो का एक सग्रह "झलमला" नाम से प्रकाशित हुआ था। कुछ कहानिया "पचपात्र" आदि उनके विविध रचना-सग्रहो में सग्रहीत है। उनकी अनेक कहानिया पत्र-पत्रिकाओं मे छपी है किन्तु पुस्तकाकार नही हो पायी। कुछ कहानिया सर्वथा अप्रकाशित है। किसी वाद, विषय या पद्धति में न बधकर श्री बख्शी ने जब जैसी इच्छा हुई, लिखा। उनके एकाकी भी आपको देखने को मिल जायगे और कभी-कभी ऐसी रचनायें मिलेंगी जिन्हें आप न कहानी कह सकेंगे, न एकाकी और न निबध।

श्री बख्शी जी कहानी के सम्बन्ध में एक विशिष्ट सिद्धान्त रखते है। उनके मत से कल्पना कहानी का मूल तत्त्व है, ऐसी कल्पना-जो पाठक के मन को सम्मोहित कर उसे अपने साथ भ्रमण कराये, हसाये और रुलाये। इसीलिये श्री बख्शी जी देवकी नन्दन खत्री से लेकर प्रेमचद तक के कथा साहित्य को ही वास्तविक कथा साहित्य मानते है। मनोविश्लेषणात्मक कहानी को वे पसन्द नही करते। अपनी एक कहानी में उन्होने लिखा है, —"कुछ समय से विज्ञो की यह प्रवृत्ति हो गयी है, कि वे उपन्यास को मनोविज्ञान की तरह पढने लगे है। मनोविज्ञान के तथ्यो के लिये उनका इतना आग्रह हो रहा है कि वे उन्ही में कला की सार्थकता समझते है। अपने समान उपन्यास प्रेमी के लिये मै जिस गुण को आवश्यक समझता हू वह है उसकी कल्पनाशीलता। जो लेखक मेरे हृदय में कल्पना का यह मोहजाल निर्मित नही कर सकते उनमें मेरी समझ के अनुसार कथा की कला नही है, अन्य चाहे जो गुण हो। इसी से प्रेमचद्र की कहानियो में मेरे लिये जो आकर्षण है, वह प्रसाद जी की कहानियो में नही है।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि बख्शी जी कहानी का अर्थ कहानी मानते है। वे शैली की दृष्टि से कुछ पञ्चतन्त्र और हितोपदेश के समीप पहुचती है, जिनमें एक व्यक्ति कोई सामान्य तथ्य प्रकट करता है और उसके समर्थन मे किसी की सुनायी हुई घटना कहानी के रूप में उपस्थित करता है। इस तरह मूल कहानी किसी अन्य कहानी में अन्तर्भूत हो जाती है। बख्शी जी की प्राय प्रत्येक कहानी किसी न किसी तथ्य के समर्थन के लिये है चाहे वह तथ्य

प्रारम्भ मे उद्‌घाटित कर दिया गया हो, चाहे अन्त मे। उपादेवी जी या जहूरबख्श के समान वे कहानी के लिए कहानी नहीं कहते या कह नही.पाते। कहानियो के वीच-वीच मे वे अपनी मान्यताओ की सविस्तर चर्चा करते नही हिचकते इसीलिए कभी-कभी तो कहानी के भीतर एक साथ लगातार छोटा-मोटा निवंध ही लिख जाते है। श्री वख्शी जी की कहानियां, ऐसा लगता है जैसे घटित-घटनाओ के ही साहित्यिक सस्करण हों। उनमे उनकी निजी चर्चा भी बहुत है। शायद ही किसी अन्य कहानीकार ने अपने सम्वन्ध की तथा अपने पास-पड़ोस के वातावरण की चर्चा कहानी के भीतर इतनी अधिक की हो। अनेक स्थानो पर इससे कहानियों के सौदर्य में वृद्धि भी होती है पर प्राय वे किसी पराजित निराश लेखनी से प्रेरित सी मालूम पड़ने लगती है और ऐसा इस कारण होता है कि लेखक कभी निज को भूल नही पाता। वख्शी जी की "विपर्यय", "नन्दिनी", "सुखद-अत" आदि अनेक कहानियो को आप सरलता से प्रेमचद्र युग की श्रेष्ठ कहानियो के साथ पढ सकते हैं। इनमे लेखक स्वयं को भूल गया है। श्री वख्शी जी के चिन्तन के समान उनकी शैली भी वड़ी सरल, स्पष्ट और मधुर है—द्विवेदी—युगीन। उन्हे इसी दृष्टि से पढा भी जाना चाहिये। उनकी अनेक कहानियां उनके व्यक्तित्व के समान ही निर्मलता और भोलापन लिये हुये हैं, जिनको एक वार पढकर मन को सन्तोप प्राप्त होता है।

स्व. श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुये—"सीधे सादे चित्र", "उन्मादिनी", और "बिखरे मोती"। काव्य दो ही—'मुकुल' तथा झासी की रानी"। इस प्रकार उनका कहानी साहित्य परिमाण में कविताओं से वड़ा है फिर भी हिन्दी जगत् श्रीमती सुभद्राजी को कवियित्री के रूप मे ही विशेष जानता है और यह उचित भी है। वास्तव मे वे कवि प्रथम थी और कथाकार पीछे। कहानिया उन्होने कहानीकार वनकर लिखी है। श्रीमती सुभद्राजी की कहानियों का कलेवर प्राय: छोटा, कथानक किसी मामूली घटना पर आश्रित, शैली सरल, सुलझी और आदर्श अत्यन्त स्थूल हैं। कहानी लेखिका के रूप मे वे सुधारक है। "भग्नावशेष", "पापी पेट," "मझली रानी", "परिवर्तन", "ग्रामीण," "अनुरोध" सभी कहानियां सामाजिक या वैयक्तिक न्याय, सहानुभूति और पर-दु:ख-कातर पर आश्रित है। इन कहानियो मे न उन्मादक रोमानी वातावरण है और न क्रांतिकारी स्फुलिग। यह वात आशा के विपरीत सी लगती है। उनमे सहानुभुति और छिपा मातृ-हृदय ही अधिक मुखर है और इस वात का आभास मिलता है कि आगे चलकर इस वीर राष्ट्र सेविका का मातृत्व उसके सैनिक से प्रबल हो उठेगा। नारी की वेवसी, पीड़न और अभिशापों से उनका हृदय सदा द्रवित रहा है, फिर भी उनकी कहानियों मे नारी के लिये क्रांति का ज्वलित सन्देश नही है। वे केवल एक क्षणिक झांकी, जीवन के कुछ मिनट, कुछ दिन पट पर चित्रित कर दूर जा खड़ी हो गयी है।

श्रीमती सुभद्रा जी कविता के क्षेत्र में भावना प्रधान रही। कल्पनाओं का चिन्तन उनका क्षेत्र नही। कहानी के क्षेत्र मे भी उनकी यही स्थिति है। काव्य मे उन्हे आशातीत सफलता मिली क्योकि वहां हृदय से हृदय के मौन संभापण के लिये अवकाश है। कहानी की स्थिति भिन्न है। वहा वुद्धि आगे और हृदय पीछे है। यही कारण है कि उनकी कहानियां प्राय: वर्णनात्मक कविता का विषय वन कर रह गयी है। फिर भी उनके सीधे-सादे चित्रों की सादगी मे एक आकर्पण है, वही आकर्षण जो वेमुलम्मे की सरल भोली वात मे होता है। श्रीमती सुभद्रा जी की कहानियों मे उनके हृदय की धड़कन सुनायी पड़ती है। उनकी कहानियो के कथानकों की सादगी मे भी कुछ नवीनता और पात्रों की सरलता में भी विचित्रता है, भापा वहुत मधुर वोलचाल की और प्रवाहमय। उनके "विखरे मोती को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त होने का गौरव प्राप्त है।

इस युग के लेखको मे श्रीमती उपादेवी और श्री जहूरवख्श ही ऐसे है जो केवल कहानी लिखते है। जहूर-वख्श सैकड़ो कहानियां आज तक लिख चुके है और उनके हाल ही मे प्रकाशित "हम पिरशीडण्ट है" के लिये मध्यप्रदेशीय शासन साहित्य परिपद् ने ५००) का पारितोपिक प्रदान किया है। मुंशी जहूर वख्श कदाचित् मध्यप्रदेश के एक मात्र कहानीकार है जिनकी कहानियां लगभग १९३० से आजतक समान आदर के साथ पढ़ी जा रही है। उनकी कहानियों के विपय विविध है। जीवन की रंगीनी, ठिठोली, गहराई, दर्द सभी कुछ उनमे अत्यन्त सफलता के साथ चित्रित हुआ है। फिर भी करुण पारिवारिक चित्र उपस्थित करने मे वे सिद्धहस्त है। एक मुसलमान के नाते उन्होने अपनी अनेक

कहानिया में भव्य इस्लामी वातावरण और मुस्लिम परिवारो, तथा उनकी धार्मिक मान्यताओ और विश्वासों की सही-सही खुशनुमा तसवीर पाठको को दी है। वातावरण उत्पन्न करने में तो उन्हें यों भी कमाल हासिल है। कहानी के प्रारम्भ से ही वे पाठक को विश्वास में ले लेते हैं और उससे मैत्री स्थापित कर लेते हैं। वे जहा एक ओर करुण चित्रो के आकलन में सिद्धहस्त हैं वहा परमजाक, फबती भरे, गुदगुदा देने वाले फिसाने लिखने में भी। भाषा उनकी वफादार बीबी है जो सुख-दुख, आसू मुस्कान, हरम-जगल, महल-झोपडी और मसजिद-कसाईखाने कही भी उनका साथ नहीं छोडती। श्री जहूरबख्श विशुद्ध सस्कृतमयी शैली में भी लिख सकते हैं और फसीह उर्दू में भी। उर्दू की जानकारी ने उनकी भाषा को गति, ओज और जिन्दादिली प्रदान की है। मुहावरो के प्रयोग में उनका सानी नहीं। उनके व्यग बडे मनोरजक और मजाक बडे मीठे होते हैं।

श्री जहूरबख्श ने द्वेष, ईर्ष्या, साम्प्रदायिकता, अन्ध विश्वास और गरीबी से भरी दुनिया को अपनी आखो देखा और समझा है, जिन्दगी की, परिवार की और समाज की बडी भोंडी-भोंडी तसवीरें उनके सामने हैं। हिन्दू विश्वास परम्परा को वे एक अहिन्दू की दृष्टि से देख सके हैं और जैसा उन्हें दिखा, उन्होने निसकोच दूसरो को भी दिखा दिया है। हिन्दी के कुछ पाठको को कभी-कभी उसमें साम्प्रदायिकता भी झलकती दिखी है पर हमें हिन्दी और हिन्दू को अलग कर के देखना चाहिये, देखना भी होगा। हमारे लिये यही क्या कम गौरव की बात है कि श्री जहूरबख्श हिन्दी जगत के प्रतिनिधि कहानीकारो में है।

श्रीमती उषादेवी मित्रा की मातृभाषा बगला है। वे प्रारम्भ में बगला में ही लिखती थी और उनकी तत्कालीन कहानिया "वसुमती", "भारतवर्ष", "पचपुष्प" आदि पत्रो में प्रकाशित होती थी। उन्होने सन् १९३३ से हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया और उनकी प्रथम हिन्दी कहानी "मातृत्व" "हस" में प्रकाशित हुई जिससे स्व श्री प्रेमचन्द जी अत्यन्त प्रभावित हुये और उन्होने उन्हें एक पत्र में लिखा, "ऐसी दस कहानिया भी तुम लिख दो तो हिन्दी के गल्प लेखको में तुम्हारा स्थान सर्वोत्तम हो जायगा।" तब से अबतक श्रीमती उषादेवी जी अनवरत गति से कहानिया और उपन्यास लिखती जा रही है। जिनमे "वचन का मोल", "पिया", "जीवन की मुसकान", "पथचारी" "आवाज", आदि उपन्यास और "आधी के छन्द", "महावर", "सान्ध्य पूरवी", "नीम चमेली", "रागिनी", "मेघमल्हार", आदि कहानी-सग्रह प्रकाशित हो चुके है। इनके अतिरिक्त उनकी ढेरों कहानिया मासिक पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित होती रहती हैं।

श्रीमती उषादेवी कहानी कहने की कला में सिद्धहस्त हैं। उपन्यास और कहानी दोनो आप बालक की तरह चुपचाप बैठे सुनते रहिये—उत्सुक, "और-और" के जिज्ञासु बालक के समान—और लगेगा, बूढी दादी बडे प्यार से आपके सामने से रहस्य का पर्दा उठाती जा रही है। एक कौतूहल, उत्सुकता और जिज्ञासा जगाती चलती हैं उनकी कहानिया। उनका सूत्र कही नहीं टूटता, नीरसता कही नहीं आने पाती। उषादेवी जी की दूसरी विशेषता है, उनकी करुणाद्रता। बगाली काव्य के समान उनके कथा-साहित्य का अधिकाश गहरी टीस और वेदना से स्नात है। उजडे वसन्त, बरसे बादल और लुटे सुहाग का सूनापन और रुआसी जगा देने वाली उदासी उस पर बरसती है। इस कारण उनकी कथाओ का वातावरण प्राय रहस्यमय, धुधलका और कुछ-कुछ भय—भीगा रोमाच जगा देने वाला—सा हो गया है। उनकी कहानियो पर बगला की छाप स्पष्ट है। उनकी भाषा पर भी बगला प्रभाव है। इस कारण उनकी अभिव्यक्ति कई स्थानो पर अटपटी सी हो गयी है, किन्तु साथ ही उसमें काव्यत्व की मात्रा बढ गयी है। उषादेवी जी अपनी बात कहने के लिए पहले वातावरण तैयार कर लेती हैं। देखिये—

> "हवा की हल्की-हल्की मुस्कान उसके रोमकूपो में प्रवेश कर शरीर के रक्त को जमा दे रही थी। बलबीर को लगने लगा, जैसे वह क्रमश जमती जा रही है और अब जम कर वह पत्थर की बन जायगी।
>
> "क्या पत्थर इसी तरह बनते हैं ? सोच उठी बलबीर—वे जो बडे काले पत्थर देखने में आते हैं, क्या वैसे ही गृहहीन मनुष्य ठड में जम कर पत्थर बने हैं। सोच रही थी और सोचती ही चली गयी—तो उसके दोनों बच्चे, जो कि लाहौर में गडे हैं, वे भी जम कर अब तक पत्थर बन गये होंगे।"

उपर्युक्त उदाहरण में उनकी भाषा और वर्णन शैली के गुण-दोष स्पष्ट है।

श्रीमती उषादेवी को जीवन और जगत् का बड़ा अनुभव है। पुरुष और स्त्री की शक्ति और दुर्बलताओं से वे पूर्ण अवगत है। कोलाहल भरे जंगल के एकान्त निभृत कोने मे कभी माता की, कभी बहन की, कभी पत्नी की, कभी पुत्री की और कभी उपेक्षिता परित्यक्ता की उँगलियों से उन्होने जो करुण, ओजोमय, दिव्य, स्वाभिमान पूर्ण और स्नेहिल भव्य नारी चित्र उतारे है, उन पर दृष्टि टिकी रह जाती है, किन्तु बंगाल की परम्परा के अनुरूप उनमे से हर एक में मातृच्छवि का ओज सर्वोपरि दमक उठा है।

प्रचार से दूर वे अभी भी बसाये जा रही है, काव्य, संगीत और प्रकृति माधुरी की त्रिवेणी के तट पर, अपनी कथा-साधना का प्रयोग। श्री प्रेमचन्द जी ने उनकी इन्ही विशेषताओं को लक्ष्य कर के कहा था, "श्रीमती उषादेवी की कहानियो मे प्राकृतिक दृश्यो के साथ मानव जीवन का ऐसा मनोहर सामञ्जस्य होता है कि रचना में संगीत की माधुरी का आनन्द आता है। साधारण प्रसंगो मे रोमांस का रंग भर देने में उन्हे कमाल हासिल है।"

दूसरे खेवे के लेखकों मे हम श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव, वनमाली, अंचल, प्रभुदयालु अग्निहोत्री, नर्मदाप्रसाद खरे, ज्योतिर्मय, अनन्त गोपाल शेवड़े, देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त", श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी आदि को ले सकते हैं। ये लेखक सन् १९३५ और १९४५ के बीच प्रकाश मे आये। यद्यपि इनमें श्री रामानुजलाल जी अवस्था की दृष्टि से हमारे समालोच्य काल के प्रथम दशक मे आ सकते हैं। उनकी पहली कहानी सन् १९२७ मे 'सरस्वती' में निकली थी, किन्तु कहानी कला के विकास की दृष्टि से वे प्रथम लेखकपञ्चक से बाद के ही माने जायँगे। हिन्दी कहानी का स्वरूप सन् १९३० तक स्थिर हो चुका था और वह अन्य भारतीय भाषाओ के मुकाबिले में सशक्त हो चुकी थी। प्रेमचन्द और उनकी शैली के लेखक सुदर्शन, कौशिक, चतुरसेन शास्त्री आदि का दल हिन्दी उपन्यासों के प्रति पाठक के मन में आदर का स्थान पा चुका था और रोमाण्टिक लेखक क्षेत्र में अवतीर्ण हो चुके थे। फिर भी जैसा कि मैंने पहले कहा है, प्रयोगों के लिये मध्यप्रदेश की भूमि विशेष अनुकूल नहीं रही। प्रयोग संघर्षो मे पहले है, चाहे वे संघर्ष जीविका के हो या दूसरी-तीसरी भूख के। मध्यप्रदेश की शान्त, स्वयंपूर्ण, परितुष्ट भूमि मे संघर्षो को पनपने का अवकाश सदा ही कम रहा है। इसलिये यहां नये-नये प्रयोग आये भी तो उत्तरप्रदेश की नकल पर। फलतः वे सदा पुराने पड़ कर आये और तब आये जब उनमे लोगों को आकृष्ट करने का सामर्थ्य नष्ट हो चुकता रहा। जिन लोगों को सदा नये की भूख रहती है, वे कलाकार और पाठक हमारे लेखकों को इसीलिये द्वितीय श्रेणी का मानते रहे। उन्हे जिनकी आंखें योरोपीय साहित्य के नित नये वादों और टेकनीक के प्रयोगो से चमत्कृत होकर उनके पीछे-पीछे चलने में कृतार्थता का अनुभव करती थी और जिनकी कलम उनकी नकल कर स्वयं को कृतकार्य मानती थी, भला कौन समझाता कि आत्मा और देह में क्या अन्तर है, वस्तु और रूप में कौन श्रेष्ठ है? किन्तु अनुकृति से अलग रहने का जो एक शुभ परिणाम होता है, वह इस प्रदेश की प्रायः रचनाओं पर हुआ। मध्यप्रदेश के शायद ही किसी लेखक का अपना निजी व्यक्तित्व न हो और शायद ही किसी लेखक की कृतियों मे बासीपन मिले।

हां तो इन लेखकों तक आते-आते कहानी मे घटना के बदले चरित्र के विकास को महत्त्व दिया जाने लगा था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सन् १९३० के बाद की मन्दी और बेकारी ने लोगों के मन को निराशाविष्ट कर दिया था। हिन्दी काव्य के क्षेत्र मे भी वैचारिक और शैलीगत परिवर्तन हो रहे थे। अब वह कैशोर्य से बढ कर तारुण्य का स्पर्श करने लगी थी। ऐसी स्थिति में कहानीकारों का यह और दल सामने आया।

इन कथाकारों में श्री रामानुजलाल जी निहायत फक्कड़ तबियत के और जिन्दादिल लेखक है। कथा-शास्त्र का काफ़ी अध्ययन और मनन कर वे इस क्षेत्र में आये। उर्दू और फारसी का भी सहारा उन्हे था। श्री जहूरबख्श की ज़िन्दादिली और परिहास को थोडा और सुष्ठु उन्होने बनाया। उनके व्यंग्य मे परिष्कार, हँसी मे आवश्यक संयम और फक्कड़पन मे साधुता है। कोई पन्द्रह कहानियां उन्होंने लिखी, किन्तु जो लिखा पुरअसर। वस्तु, उसका सग-

ठन, शैली-सभी दृष्टियों से उनकी कहानियाँ उच्च स्तर की हैं। पशुपात्रों को आधार बना कर लिखी हुई उनकी कहानी "बिजली" काफी प्रसिद्ध हुई। "मृग की माता", "भूल भुलैयाँ", उनकी शैली की प्रतिनिधि कहानियाँ है।

श्री वनमाली को हिंदी कहानी का पाठक भली प्रकार पहचानता है। वे कम लिखते है, पर जब लिखते है, तो प्रथम कोटि का। अन्तर्जगत् में विचरण करने वाले इस लेखक की अन्तर्जगत से बड़ी गहरी और सच्ची मैत्री है। अनन्त प्रकाश के किसी निभृत कोण में भटके, खोये, दुर्दश मेघ खण्ड के समान मानस गह्वर में छिपे, खोये भाव को पकड़ कर उसका वैज्ञानिक विश्लेषण करने में वे बड़े पटु हैं। इसलिये वनमाली जी की कहानियाँ हिन्दी की नयी से नयी कहानियों के साथ है। वे केवल आख्यायिकायें लिखते हैं और इस कला में उनकी कलम खूब मँज चुकी है। उनकी कथाओं में जीवन का कठोर यथार्थ चित्रित है, पर यथार्थ की विकृति कहीं नहीं। उनके यथार्थ में कटुता, उन्माद और असन्तोष नहीं, सच्ची सहानुभूति की वेदना है। श्री जगन्नाथप्रसाद चौबे "वनमाली" शब्दों का समुचित, सन्तुलित और कलात्मक प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं।

श्री रामेश्वर शुक्ल "अंचल" कवि और उपन्यासकार साथ साथ हैं। उनकी दर्जनों कहानियाँ और 'चढ़ती धूप', 'उल्का' तथा 'मरुप्रदीप', ये तीन उपन्यास प्रकाशित हैं। कवि अंचल के समान कहानीकार अंचल के भी दो रूप है—प्यास और अतृप्ति से रागाग्र, आपादमस्तक रोमान्सवादी और युगीन विषमताओं तथा अन्यायों के प्रति विद्रोही। अंचल जी की कहानियों और उपन्यासों में उनके दोनों रूप पूर्णतः निखरे है। कहानियों में जहाँ उनका प्रथम रूप साकार हुआ है, वहाँ उन्होंने आदर्शों की झीनी चादर में स्वयं को छिपाने का प्रयास कभी नहीं किया। प्रेम-शरीर का शरीर से मिलन, उसके अभाव में मनोव्यथा, मानसिक आलोडन, ऐसा शायद श्री अंचल जी स्वीकार करते हैं। उन्होंने इस बात को साहस के साथ कहा। स्नेह के क्षेत्र में वे अति यथार्थवादी जान पड़ते हैं। एक सच्चे कलाकार के समान वे इस विषय में पूरे ईमानदार है—बाहर-भीतर एक समान। उनकी इस साहसिक क्रिया से समाज का कितना हित होगा या साहित्य की उद्देश्यपूर्ति में कहाँ तक सहायता मिलेगी, यह दूसरा प्रश्न है। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनकी रोमांटिक कहानियों में मादकता, मिठास है और मन को विलोडित करने की शक्ति है। और यह यथार्थ केवल यथार्थ के लिये नहीं, श्री अंचल जी ने उसे साधन बनाया है, सामाजिक आर्थिक अन्यायों पर कटाक्ष का, यद्यपि अधिकांश वह स्वयं साध्य बन गया है। जहाँ तक दूसरे स्वरूप का सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बौद्धिक स्तर पर वे वहाँ भी ईमानदार है, पर अनुभूति के अभाव में ये चित्र अतिरंजित और अस्वाभाविक बन गये हैं।

यही बात उनके उपन्यासों के विषय में कही जा सकती है। 'उल्का' और 'मरुप्रदीप' दोनों में नारी के संघर्ष की कहानी है। दोनों नारियों का संघर्ष जीवन की कुण्ठा और सड़न के प्रति है। इस संघर्ष में समाज की रूढ़ियों और अन्ध परम्पराओं के विरुद्ध नारी का अभियान है, पर यह अभियान अकेले नहीं। दोनों के मुँहबोले भाई उनके सहयात्री हैं—भाई जिसके मानस के एक कोने में छिप कर प्रेमी बैठा रहता है और अधरों पर भाई का घोष। मुँहबोले भाइयों के ये दोहरे चित्र आधुनिक कालेजी वातावरण की देन है। इसमें सन्देह नहीं कि तीनों उपन्यासों में जीवन की प्रवृत्तियाँ एवं मानसिक-शारीरिक पिपासाओं का मनोरम चित्रण हुआ है, किन्तु उनका समाधान नहीं। समाधान हो भी तो पात्रों में इतना नैतिक साहस नहीं कि वे अन्यायों का प्रतिशोध कर सकें। एक तो यह संघर्ष अब बहुत पुराना पड़ चुका है, दूसरे वह पूर्णतः व्यक्तिगत है, जिसे सामाजिक बनाया जा सकता था, किन्तु लेखक के घोर व्यक्तिवादी होने के कारण वैसा सम्भव न हो सका, तीसरे उसमें कोई सन्देश चाहे क्रान्ति का हो, चाहे सुधार का, नहीं मिलता। शरत के 'शेष प्रश्न' की कमला के समान 'मरुप्रदीप' की नायिका भी निष्क्रिय पुतली बन कर रह गयी है।

जहाँ तक वस्तु को रूप देने का सम्बन्ध है, श्री अंचल की कुशलता के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते हैं। ऐसा लगता है, जैसे किसी स्वप्न लोक के धुंधले चित्र एक के बाद एक आकर उनके सामने अनायास उतरते जा रहे हैं—ऐसे चित्र जो स्वयं एक दूसरे से पूर्ण अपरिचित किन्तु उनके आंगन में हमजोली—से गलबाहीं डाल एकत्र हो जाते है।

श्री अंचल इन चित्रों को तरतीब से सजाते जाते हैं, आवश्यकतानुसार उनमें यत्र-तत्र रंग भर देते है और यह देखिये एक सुन्दर प्रदर्शिनी वन गयी।

श्री अंचल जी जीवन के आलोचक भी हैं। मन की दुर्वल प्रवृत्तियों को वे खूब समझते है और उनसे लाभ उठाना जानते है। उनकी कथाओ को इससे वल मिला है। भाषा पर उनका अच्छा अधिकार है, पर उर्दू का प्रयोग, जब वे करते है, भापा मे कृत्रिमता आ जाती है। कथाकार अंचल हिन्दी जगत् में अपना स्थान सुरक्षित कर चुके हैं।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन मूलतः निवन्धकार हैं। यद्यपि उनका घर सारा देश है और किसी एक प्रदेश के घेरे में वंधना उन्हें पसन्द नही। आज तो वे मध्यप्रदेश में रह भी नहीं रहे। फिर भी गत १२, १३ वर्ष राष्ट्रभापा कार्य के नाते वे मध्यप्रदेश में रह कर यहां के इतने आत्मीय वन गये कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी डेढ़ वर्ष तक रहे। श्री आनन्द जी ने कोई दो दर्जन कहानियां लिखी हैं, जिनमे उनके मीठे-कड़वे अनुभवों का आकलन है। यह आकलन इतिहास की वस्तु होकर भी श्री आनन्द जी की लेखनी मे पड़ कर कला वन गया है। मन की कोमल वृत्तियों का स्पर्श उन्होंने वड़ी सतर्कता से किया है और कथा चित्रो मे चतुर शिल्पी के समान वहुत थोडा, हल्का रंग भर कर उन्हे मनोरम वना दिया है। आनन्द जी के अनुभवों में विविधता है, एक-एक वात को वे तोल कर कहते है, उनकी एक-एक वात मे संयम और विवेक वोलते हैं। आनन्द जी की विशेपता उनके सन्तुलन में है। उनकी कथाओं मे परिष्कार खूव है। चुटकी लेने, कटाक्ष और व्यंग या मीठे परिहास की कला मे वे दक्ष हैं। धर्म, समाज, राजनीति, कुछ भी हो, विना व्यक्ति का ख्याल किये वे चुटकी लेते चलेगे, रूढियों और अन्यायों की धज्जियां उड़ाते। उनकी लेखनी मे अमृत है, पर अमृत पर छा जाने वाले विष के लिये "विपस्य विपमौपधम्" भी।

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री की कोई डेढ़ दर्जन कहानियां अब तक निकल चुकी हैं। पहली कहानी "महामाया का प्रसाद", सन् १९३६ में "सरस्वती" मे प्रकाशित हुई। इन कहानियों पर मत व्यक्त करना अन्य विद्वानों का काम है।

श्री नर्मदाप्रसाद जी खरे के दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे कवि हैं और कहानी लेखक भी। यह कहना कठिन है कि वे कवि रूप में अधिक सफल हैं या कहानीकार के रूप मे। उनकी रचनाओं मे उनके दोनों रूपों का क्रमिक निखार स्पष्ट देखा जा सकता है। 'नीराजना' से 'कथाकलश' तक वे वरावर आगे वढ़ते गये हैं।

जिस प्रकार कविता के क्षेत्र में श्री खरे जी कोमल भावनाओं के शिल्पी हैं, उसी प्रकार कहानी मे भी। श्रद्धा, त्याग, नम्रता, स्नेह, ये ही उनकी कहानियों के विपय हैं। नारी जीवन की निगूढ़ अन्तर्वृत्तियों या मनोदशाओ का वैज्ञानिक विश्लेपण भले ही उनकी कथाओ में न हो किन्तु परिवार में प्रतिदिन घटित होने वाली छोटी-मोटी घटनायें, उसके खट्टे-मीठे अनुभव, नारी की अनेक स्थितियां, उसके स्नेह, ईर्ष्या, घृणा, विनय, आदि भाव भी खरे जी की लेखनी से वड़े सुन्दर उतरे हैं। मां की ममता, पत्नी का विश्वास और सहनशीलता, वहन का स्नेह, सव पर उनकी दृष्टि गयी है और सवको उन्होंने खूव निकट से देखा है। श्री खरे जी की कहानियों ने रोमांस दिया है, मादकता दी है; औद्धत्य, क्रान्ति, प्रतिहिंसा, चीख कहीं नहीं। उनकी हर कहानी की परिणति शान्ति और माधुर्य में है।

श्री खरे जी उसी प्रकार के लम्वे विवरण देते हैं, अपने पात्रो की मानसिक स्थिति के, जैसे कि श्री प्रेमचन्द जी प्रारम्भ में दिया करते थे। यह प्रवृत्ति आगे चल कर धीरे-धीरे कम होती गयी है। "काली शेरवानी" उनकी श्रेष्ठ-तम कहानियो मे है, जो कला के मापदण्ड पर भी खरी उतरती है।

श्री खरे जी की भापा भी उनके विषयों के समान ही मधुर और कोमल है। शायद ही किसी कहानी में कोई कटु या कर्कश शव्द मिले। वास्तव मे श्री खरे जी की कहानियां कवि हृदय की कहानियां हैं।

श्री सत्यनारायण "ज्योतिर्मय" की दर्जनों कहानियां अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। वे वर्तमान युग के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के कटु एवं स्पष्ट आलोचक हैं। दैनिक जीवन का गहरे यथार्थवादी दृष्टिकोण से निरू-

पण, विशुद्ध जनवादी प्रवृत्तियों का समर्थन और वास्तविक जीवन का यथातथ्य चित्रण उनकी विशेषता है। श्री ज्योतिर्मय का भावव्यञ्जना पर पूरा अधिकार है। उनकी भाषा प्रखर प्रवाहमय उर्दू बहुल है। हर दूसरी-तीसरी पंक्ति के बाद "डाटम" की लम्बी पंक्ति से बिना नाम देखे आप श्री ज्योतिर्मय का अनुमान कर सकते हैं। मध्यप्रदेशीय कहानी लेखकों में उनकी शैली प्रगतिवादी लेखकों के ज्यादा समीप है।

मध्यप्रदेश से बाहर जाकर अपनी एकान्त साधना और अडिग निष्ठा से इस प्रदेश का गौरव बढाने वाले साहित्य-सेवियों में श्री देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त" एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी का नाम आदरपूर्वक लिया जाना चाहिये। व्यवसाय से पत्रकार होते हुए श्री चतुर्वेदी जी ने हिन्दी कथा साहित्य को जो कुछ प्रदान किया है, वह गौरव की बात है। अब तक आपके 'अन्तर्ज्वाला', 'सन्नाटा', 'आवर्तन', 'उलटफेर', 'छोटी बात' और 'हवा का रुख' ये ६ कहानी-संग्रह और 'रैन बसेरा', 'आँख मिचौनी', 'रंग महल', 'दीपदान' 'भाग्यहीनों की बस्ती', 'प्यासी आँखें', 'अपना-पराया', 'अनुष्ठान', 'प्रवाह' और 'लक्ष्य पथ' ये १० उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'उड़ते पत्ते' नामक नया उपन्यास अभी अप्रकाशित है। इस प्रकार कुल मिला कर आपकी सत्रह पुस्तकें हैं। इनमें "प्रवाह" पर ५०० रुपये और "हवा का रुख" पर ३०० रुपये का पारितोषिक उत्तर प्रदेशीय सरकार ने तथा "हवा का रुख" पर ५०० रुपये का पारितोषिक मध्यप्रदेशीय सरकार ने प्रदान किया है।

सन् १९४० ईस्वी के बाद, विश्व के रंगमञ्च पर और स्वयं भारत में जिस तरह घटनायें घटित हुईं, उनकी प्रतिक्रिया साहित्य पर, विशेषतः कथा-साहित्य पर तीव्र हुई। काव्य में रूढ़ता और कथा में ग्राहकता अधिक होती है। इस बात के हिन्दी कथा-साहित्य में वस्तुगत एवं शैलीगत क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। लेखकों ने पाठक का ध्यान वर्ग-संघर्ष की ओर, युग पाप के दोहराने वाले के रूप में नहीं, ईमानदार विवेचक के रूप में खींचा। इस युग के उपन्यासकार ने पाठक की दृष्टि मनुष्य के अस्थिचर्म से हटा कर उसके अन्तर (मन) के दर्शन की ओर उन्मुख की। इसके परिणाम-स्वरूप कहानी के टेकनीक में परिवर्तन हुए, लघु और लघु-लघु कथाओं पर भी प्रयोग। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद जिस तरह हमारे देश के आर्थिक क्षेत्र में प्रयोग हो रहे हैं, उसी तरह साहित्य के प्रत्येक अंग में भी। श्री चतुर्वेदी जी मध्यप्रदेश के उन गिने चुने लेखकों में हैं, जो बदलती परिस्थितियों और उनके साथ बदलते हुए कला-रूपों और कला-मूल्यों के प्रति जागरूक रहे हैं और जिन्होंने अपना मन और हृदय सहानुभूति के साथ उन्हें परखने और परख कर ग्रहण करने के लिये खुला रखा है। "हवा का रुख" मेरे इस कथन का साक्षी है।

श्री चतुर्वेदी जी विचारों में पूर्ण भारतीय हैं। इस शताब्दी में भौतिकता और अध्यात्म के प्रतिपादक दो महान् व्यक्तियों, मार्क्स और गांधी ने अपनी गतिशील विचारधारा से युग के हर मस्तिष्क को किसी न किसी प्रकार आन्दोलित किया। साहित्य पर इसका असर गहरा पड़ा। भारत का कथाकार उससे प्रभावित कैसे न रहता? प्रेमचन्द तक जैसे आदर्श और यथार्थ में, वैसे मार्क्स और गांधी के तत्त्वज्ञान में सन्तुलन बनाये रहने का प्रयत्न चला, किन्तु बाद में मार्क्स और फ्रायडवादी एक खेमे में तथा गांधी आत्मवादी स्पष्ट रूप से दूसरे खेमे में बट गये। श्री चतुर्वेदी जी इस दृष्टि से गांधीवादी परम्परा के यथार्थ से दूर न हटते हुये भी, आदर्शवादी उपन्यासकार हैं।

श्री "मस्त" की कहानियों और उपन्यासों की कथावस्तु प्रायः हमारे बहुत समीप की, बहुत सुपरिचित है। ऐसा लगता है जैसे लेखक स्वयं उन स्थितियों के बीच से गुजरा है। इसलिये उससे इतनी स्वाभाविकता सध सकी है। इन रचनाओं में लेखक का विकसमान रूप सर्वत्र प्रतिबिम्बित है। जैसे वह आगे बढ़ता गया है, घटनाओं पर कम निर्भर होता गया, पात्रों में चारित्रिक विकास आता गया है और मनोविश्लेषण में उसकी दृष्टि पैनी होती गयी। क्या ही अच्छा होता, यदि परिस्थितियों और समस्याओं के निरूपण के समान उनके समाधान की ओर भी लेखक उतना ही ध्यान दे पाया होता। पर आज जब कि विश्व के बड़े से बड़े मस्तिष्क लाख प्रयत्न कर के भी समाधान खोजने में असफल हो

रहे हैं, हम अपने कथाकार को ही क्यों दोष दें। इस दृष्टि से उनकी अनेक कहानियों की सहसा समाप्ति भी क्षम्य ही मानी जायगी। परिमाण की दृष्टि से श्री "मस्त" ने मध्यप्रदेश के कथाकारों में सबसे अधिक लिखा ही है।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी का एक कहानी संग्रह 'उलझी लड़ियां' प्रकाशित हो चुका है और इसके अतिरिक्त कुछ फुटकर कहानिया। "उलझी लड़ियां" पर उत्तरप्रदेशीय सरकार से ५०० रुपये का पारितोषिक भी प्राप्त हुआ है। श्रीमती हीरादेवी जी विचार और चिन्तन के क्षेत्र में अपने पति की अनुगामिनी हैं। फिर भी हीरादेवी जी की कहानियो की विशेषता है, उनके भीतर बोलता नारी हृदय। कहानियां दैनन्दिन जीवन की सुपरिचित घटनाओं को लेकर लिखी गयी हैं। आधुनिक कहानी की टेकनीक पर भी वे खरी उतर सकती हैं। ये कहानियां पाठक के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं और उसकी सहानुभूति प्राप्त कर लेती हैं। गृहस्थ जीवन की भावनाओ, उसके अनुरोध-विरोधों, सन्तति-नियमन, साहित्यिक के आर्थिक संकटो और ध्वंस-निर्माण की समस्याओं पर लेखिका के विचार गाधीवादी हैं। हीरादेवी जी की नारी के पास समस्यायें है, प्रश्न है, पीड़ा है। अपनी दयनीयता से वह सुपरिचित है, पर इस सबके समाधान के लिये आधुनिक नारी के समान उसके पास विद्रोह का स्फुलिंग नहीं। वह भीतर ही भीतर सुलगती, अपने सुखों की आहुति देकर आदर्शों के लिये जीना चाहती है। यह आदर्शवादी दृष्टिकोण आपकी प्राय. कहानियो मे सुस्पष्ट है। श्रीमती हीरादेवी जी कथा लेखिका के अतिरिक्त एकांकी लेखिका भी हैं।

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े भी प्रतिभा-प्राप्त कहानीकार हैं। अंग्रेजी दैनिक की व्यवस्था, मराठी के अध्ययन और हिन्दी की समाराधना की त्रिवेणी के स्नान का पुण्य-लाभ करते हुए श्री शेवड़े जी ने हिन्दी कथा-साहित्य को जो दिया है, उसे हिन्दी जगत् ने स्नेहपूर्वक ग्रहण किया। 'ईसाईवाला', 'निशागीत', 'पूर्णिमा' और 'मृगजल' आदि चार उपन्यास आपके प्रकाशित हो चुके हैं और इनके साथ अनेको कहानियां। 'निशागीत' बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ और उसके अनेक संस्करण निकल चुके। 'मृगजल' को मध्यप्रदेश सरकार की साहित्य परिषद् ने प्रदेश का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास स्वीकार कर १,००० रुपये से पुरस्कृत किया है।

कथाकार शेवड़े मध्यप्रदेश के कहानी लेखकों मे कथावस्तु, शैली, आदर्श एवं भाषा दृष्टियों से एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं। उनके उपन्यास व्यापक और उदार दृष्टिकोण लिये हुए आदर्शवादी हैं। ऐसे आदर्शवादी जिनके पात्र भावना और चिन्तन की ही नही, कर्म की कठोर किन्तु वरेण्य भूमि पर अपने आदर्शों को साकारता प्रदान करते पाठक के प्रेरणास्रोत बनने की क्षमता करते हैं। श्री शेवड़े के उपन्यासों में धर्म-सम्प्रदाय, देश और काल की सीमा से परे स्नेह, त्याग और सेवा का सन्देश है। जितना दिव्य स्नेह, जितना उदात्त समर्पण श्री शेवड़े के उपन्यास और कहानियों में प्रस्फुटित हुआ है, उतना इधर हिन्दी में कम देखने मे आता है। यौन सम्बन्धों और अस्वस्थ मनोविकारो के विगदीकृत निरूपणों और विश्लेषणों से बोझिल कथा-साहित्य की वर्तमान मरुभूमि में श्री शेवड़े के स्नेह-सिक्त उपन्यास शान्तिदायी लगते हैं। मराठी के पौरुष, कर्मठता, अनौपचारिकता, नारी के प्रति उदात्त भावना एवं हिन्दी क्षेत्र की भावुकता, आदर्शवादिता और शैली सज्जा का सम्मिश्रण श्री शेवड़े में स्पष्ट देखा जा सकता है। ईसाइयों—विशेषतः सुशीला, मरियम, नीना, जैसी ईसाई वालाओं की सेवावृत्ति और सादगी से वे बहुत प्रभावित मालूम होते है। इन नर्सों की छाप उनके मन पर अमिट है। कला के प्रति वे बड़े भावुक और आदर्शवादी हैं। वे अपनी एक कहानी की नायिका के विषय में कहते हैं—"वह इस नरश्रेष्ठ कलाकार की अभिभाविका है, बहन है, मां है ; किन्तु वह नही है, जो नारी का चरम सुख है, जो नारी के जीवन की फलश्रुति है। वह कलाकार की प्रेयसी नही है, प्रेमपात्र है—हल्के और ओछे माने में, प्रेयसी नही, सबसे गम्भीर, सबसे गहरे और सबसे पुनीत अर्थ से।" उनके इस कथन मे ही नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है। वास्तव में श्री शेवड़े ने हिन्दी को बड़े पुनीत नारी चरित्र दिये हैं।

श्री शेवड़े के कथाकार का एक और पक्ष भी है, और वह है, मधुर व्यंग्यकार का, मराठी के व्यंग को उन्होने हिन्दी में अधिक मधुर और श्लीलतर बना दिया है। उनका व्यंग विद्रूपण नहीं, परिहास, स्नेह-सिक्त परिहास है। उनकी 'रेशम का कोट,' 'जेलर का रोमांस', 'तीसरी भूख', आदि दर्जनों कहानियां स्वस्थ एवं आदर्श हास्य-कथाओं के उदाहरण हैं।

उनकी परिहास कथाओं पर मराठी की सुविदित कहानी लेखिका और उनकी पत्नी सौ यमुताई शेवडे का प्रभाव स्पष्ट है। वस्तु और तन्त्र दोनों में श्री शेवडे मोपासा के स्कूल के जान पडते है। भाषा पर भी उनका अच्छा अधिकार है और बात को अत्यन्त सरल शब्दों में विस्तार किन्तु रोचकता के साथ कहने में सफल हैं।

श्री मगनप्रसाद विश्वकर्मा, श्री आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, श्री लक्ष्मीप्रसाद मिश्र "कविहृदय", श्री श्याम और श्री "चन्द्र" के कहानी-सग्रह उपलब्ध नहीं है। इसलिये उनकी कहानियो का विवेचन यहा सम्भव नही है। "कवि हृदय" सुन्दर लिखते थे, पर न जाने क्यों, उनकी लेखनी ने बीच में विश्राम ले लिया। उक्त तीनों कथाकारो की देन महत्त्वपूर्ण है।

तरुण लेखको में—जिन्होने अपेक्षाकृत देर से लिखना प्रारम्भ किया, किन्तु शीघ्र ही हिन्दी जगत् का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है, श्री हरिशकर परसाई, श्री विष्णुदत्त अग्निहोत्री, श्री मधुकर खेर, श्री कुमार साहू, श्री नरेन्द्र, श्री शेष और श्री आनन्दमोहन अवस्थी मुख्य है। इनमें श्री परसाई का कहानी सग्रह "हँसते है, रोते है" प्रकाशित हो चुका है। इसमें सन्देह नही कि विचारो की ईमानदारी, गहरी अनुभूति, सघर्षो से प्रत्यक्ष जूझकर और जीवन की भट्टी में तप-तप कर पाये हुए निखार, जीवन की प्रगति पर आस्था, प्रखर आलोचक के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण, मस्ती, जिन्दादिली और भाषा पर अधिकार इन बातो का मिल कर जो सयुक्त प्रभाव कला पर पडना चाहिये, वह श्री परसाई में आप देख सकते है। उनकी कल्पना और अनुभूति मे कितना बडा अन्तर होता है और अनुभूति के स्पर्श से कला कितनी प्रभावोत्पादक बन जाती है, यह किसी को देखना हो तो श्री परसाई की कहानिया में देखें।

श्री विष्णु दत्त अग्निहोत्री का एक कहानी सग्रह "सोने का साप" दो वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ। श्री अग्निहोत्री कवि भी है। उनकी कहानियो में यौवन का उद्दाम स्वर है और छलकती भावुकता है। श्री मधुकर खेर, काफी अरसे से लिखते आ रहे है। श्री खेर की जन-जन पर होने वाले अन्याय के प्रति असन्तोष की भावना है, वे जनसाधारण के मनो में व्याप्त असन्तोष को व्यक्त करते है। उन्हें जीवन का अच्छा अनुभव है और भाषा में प्रौढता है। सरल सीधी शैली, दैनन्दिन जीवन के सूक्ष्म घटनाओं पर आधारित कथानक और मर्मस्पर्शी अवसान उनकी कहानियों की विशेषता है। श्री कुमार साहू का एक कहानी सग्रह "चट्टान के टुकडे", कोई चार-पाच वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ है। इन कहानियो में कोई नया दृष्टिकोण या शलीगत नावीन्य नही, किन्तु कथानक के गठन और उसके पेश करने में आकर्षण अवश्य है।

श्री रामनारायण उपाध्याय, ग्राम जीवन के शिल्पी है। ग्रामीण और कृषक जीवन को बहुत ज्यादा करीब से उन्होंने देखा-समझा है। उनकी कहानियो के एक सग्रह "अनजाने-जाने-पहिचाने" में जीवन के विविध अनुभवो का आकलन है। इन रेखाचित्रों में जीवन के छोटे छोटे खण्डो का अकन है। ये चित्र कलात्मक दृष्टि से भी बहुत मार्मिक और सम्पूर्ण उतरे है। हा, जहा लेखक उपदेशक बन गया है, वहा कला को क्षति अवश्य पहुँची है। फिर भी इसमें मतभेद नही हो सकता कि श्री उपाध्याय के हर रेखा चित्र में लेखक का ईमानदार, सरल, आत्मीयता भरा, साधक रूप स्पष्ट झलकता है और शली मे ग्रामीण का सा भोलापन।

श्री नरेन्द्र का एक कहानी सग्रह "ग्रहण के बाद" प्रकाशित हुआ है। श्री नरेन्द्र प्रगतिशीलता के समर्थक, जनवादी और यथार्थ के चित्रकार है। अभिव्यजना पर उर्दू का प्रभाव है। श्री नरेन्द्र का पूरा नाम श्री देविनेनी विश्वनाथराव है, आप की मातृभाषा तेलगू है।

श्री कृष्णकिशोर श्रीवास्तव कहानीकार है और नाटककार भी। उनकी कहानिया काव्यमय वातावरण से ओत प्रोत रहती है, और भाषा रसवन्ती। हल्के चुटकुले, चुटेले व्यग और अदम्य जीवन आस्था कलाकार की कला में स्पष्ट झलकती है।

श्री आनन्द मोहन अवस्थी के "बन्धनों की रक्षा" और "लघु कथा संग्रह" ये दोनों संग्रह काफी लोकप्रिय हैं। लघु कथाकार के नाते वे अपनी कथाओं में अनावश्यक से बच-बच कर चले हैं। कथानक, अभिव्यंजना, सभी दृष्टियों से नये प्रयोगो का प्रयास भी अवस्थी मे दृष्टिगोचर होता है।

इन लेखकों के अतिरिक्त और भी नये-पुराने लेखक प्रान्त मे बिखरे हैं, जिनकी इस लेख मे चर्चा करना सम्भव न हो सका। श्री आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, श्री शकरलाल शुक्ल, श्री घनश्यामप्रसाद "श्याम", श्री केदारनाथ झा "चन्द्र", मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, श्री ब्रजभूषण सिंह "आदर्श" ने भी कहानिया लिखी है, किन्तु उनके उपलब्ध न हो सकने के कारण इस लेख मे उन पर चर्चा न हो सकी।

कुल मिला कर इस सम्पूर्ण साहित्य का सिहावलोकन करने से कुछ बाते बड़ी स्पष्ट दिख जाती हैं। एक तो मध्य-प्रदेशीय कथा साहित्य मे कृत्रिमता बिलकुल नही है। अधिकाश लेखको ने तीव्र प्रेरणा से ही लिखा है, प्रकाशन के लिये नही। दूसरे यह साहित्य प्राय. आदर्शवादी है और मानव की उदात्त-वृत्तियो पर विश्वास करके चला है। तीसरे प्रगतिशील होते हुए भी, यह प्रगतिवादी नही है। जो लेखक क्रान्तिवादी लगते है, वे भी वास्तव में मानवतावादी ही है। वास्तव में हमारे प्रदेश का साहित्य संघर्ष का साहित्य नही है। उसमे शान्ति, मानवता और सहानुभूति का स्वर प्रबल है।

मध्यप्रदेश की काव्य प्रवृत्तियाँ

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

मध्यप्रदेश अपेक्षाकृत सुस्थिर और प्रशान्त प्रान्त रहा है—उसमें बड़ी उत्तेजनात्मक अथवा संघर्षमयी उतनी परिस्थितियां प्रायः नहीं रहीं और इस कारण यह स्थिति जैसे मध्यप्रदेश के काव्य की मुख्य पृष्ठभूमि बनी रही है। उसने इस प्रदेश के काव्य को धीर और प्रशान्त गति प्रदान की है जो मध्यप्रदेश के इस युग के काव्य की विशेषता कही जा सकती है। यहां का काव्य सम्पूर्ण अतिवादों से रहित रहा है, काव्यगत क्षुद्रतायें भी यहां नहीं पायी जातीं।

इस प्रदेश की आधुनिक-कविता में श्री माखनलाल चतुर्वेदी "एक भारतीय आत्मा" और श्री रामेश्वरप्रसाद शुक्ल "अंचल" का काव्य अपनी विशेषतायें रखता है, ये दोनों ही कवि अपने अपने क्षेत्रों में प्रवर्तक भी कहे जा सकते हैं। चतुर्वेदी जी ने काव्य में आध्यात्मिक राष्ट्रीयता और अंचल ने उद्दाम आकांक्षा का प्रवर्तन किया है।

यहां हम सुविधा के लिए इस प्रदेश के काव्य को तीन चार अंचलों में रखकर देखना चाहेंगे। इन विभिन्न काव्य अंचलों की कुछ न कुछ स्वतन्त्र विशेषतायें भी हैं। प्रथम अंचल "सागर, दमोह, जबलपुर" का है, जिसे हम महाकोशल अंचल कह सकते हैं। द्वितीय रायपुर, बिलासपुर आदि का छत्तीसगढ़ अंचल है। तीसरा खण्डवा, होशंगाबाद आदि का निमाड़ी अंचल और चौथा नागपुर-विदर्भ अंचल। इनमें से सागर-जबलपुर अंचल का काव्य भौगोलिक स्थिति के अनुसार अपेक्षाकृत उत्तरप्रदेशीय-काव्य के अधिक समीप है। यहां के कवियों का सम्पर्क वहां की काव्य धारा से स्वभावतः अधिक है। छत्तीसगढ़ का इस अंचल से कुछ भौगोलिक पार्थक्य है और फलस्वरूप छत्तीसगढ़ अंचल के काव्य में किञ्चित् भिन्नता के साथ-साथ उसमें निकटवर्ती भाषाओं का प्रभाव भी दिखलाई पड़ता है। निमाड़ विभाग के काव्य पर पं० माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व की सामान्य छाप दिखती है। विदर्भ और नागपुर का अंचल वस्तुतः हिन्दी का अंचल नहीं है। फलस्वरूप वहां के काव्य में अपर-भाषाओं की काव्य शैली और प्रयोगों का पुट पाया जाता है। इस निबन्ध में हमारा कवियों की गणना का प्रयोजन नहीं है। यह मुख्य रूप से सामान्य प्रवृत्तियों का परिचायक लेख है। अतः मध्यप्रदेश के अनेक कवि मित्रों का इसमें उल्लेख न हो तो इसमें आश्चर्य न माना जाय।

छत्तीसगढ़-अंचल के कवि—श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय और उनके अनुज श्री मुकुटधर पाण्डेय हिन्दी-काव्य से प्रायः उसी प्रकार सम्बन्धित हैं, जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में मैथिलीशरण गुप्त और उनके छोटे भाई सियारामशरण गुप्त। लोचनप्रसाद जी के काव्य में संस्कृत छन्द और भाषा रूपों का अधिक स्पष्ट निदर्शन है। उनके काव्य में पौराणिकता की छाया भी है। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी कविता पर उड़िया और बंगला भाषा के काव्य का प्रभाव भी है। लोचनप्रसाद जी प्रमुखतः पण्डित कवि हैं। उनकी सारी भावधारा उपदेशोन्मुखी है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही उनकी कवितायें हिन्दी की तत्कालीन प्रतिनिधि पत्रिका "सरस्वती" में प्रकाशित होती रही हैं। गुप्त जी (श्री मैथिलीशरण गुप्त) और द्विवेदीजी (श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी) की उस समय की रचनाओं की अपेक्षा पाण्डेय जी की रचनायें फिर भी अधिक स्वच्छंद हैं। परन्तु द्विवेदी जी के सर्वग्रासी प्रभाव से उनकी कृतियां भी अछूती नहीं रह सकी हैं।

मुकुटधर जी की रचनायें दो वर्गों में रखी जा सकती हैं। एक वह वर्ग जिसपर उनके बड़े भाई की छाप है, दूसरा वर्ग जो उनकी स्वतंत्र प्रेरणा से निर्मित है। वस्तुतः यह द्वितीय वर्ग ही मुकुटधर जी की ख्याति का मुख्य आधार

है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन के समय के काव्य-संग्रहों में उनकी कविता प्रमुख-स्थान पाती रही है। मुकुटधर जी की इन स्वच्छन्द रचनाओं पर उनकी निजी काव्य प्रतिभा का प्रभाव तो है ही, वंगला, उड़िया और अंग्रेजी की स्वच्छन्द काव्य-शैली का रंग भी चढा हुआ है। उन दिनो प्राकृतिक–सौंदर्य, स्वच्छन्द प्रेम, असामान्य और अज्ञात की अभिलाषा की भावनाओ से समन्वित मुकुटधर जी की कविता विशेप रूप से लोकप्रिय हुई थी। इन कविताओं मे देश और विदेश के स्वच्छन्दतावादी कवियों की भावना से वड़ा साम्य दिखाई दिया था। "कुररी के प्रति" शीर्षक उनकी कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

देख किसी माया-प्रान्तर का चित्रित चारु दुकूल
क्या तेरा मन मोहजाल में गया कहीं था भूल?
क्या उसकी सौंदर्य-सुरा से उठा हृदय तव ऊव?
या आशा की मरीचिका से छला गया तू खूव?
या होकर दिग्भ्रान्त लिया था तूने पथ प्रतिकूल?
किसी प्रलोभन में पड़ अथवा गया कहीं था भूल?

इन तथा ऐसी ही पंक्तियो से हिन्दी के स्वच्छंदतावादी काव्य का आरम्भ हुआ था। खेद है कि मुकुटधर जी ने इसके वाद ही कविता लिखना वन्द कर दिया और वे युग-काव्य को अपनी भाव-सम्पत्ति से पुरस्कृत न कर सके।

यहां हम इस अंचल के एक अन्य कवि श्री पदुमलाल पुन्नालाल वक्शी का भी उल्लेख करेंगे, जिन्होंने आगे चलकर-कविता का क्षेत्र छोड़ दिया और गद्य का क्षेत्र अपनाकर प्रचुर यशार्जन किया। वक्शी जी की काव्य रचनाओ पर एक ओर द्विवेदी जी का प्रभाव है तो दूसरी ओर युगगत स्वच्छन्द चेतना भी प्रतिविम्वित हुई है। दोनों के सम्मिश्रण से वक्शी जी का काव्य एक तीसरा नया रूप ग्रहण कर लेता है,जिसमे न तो स्वच्छद काव्य-भाव का निर्वाध प्रवाह है और न लौकिक तथा भौतिक लक्ष्यो का निर्देश। उनकी कविता तथाकथित "आध्यात्मिक" साचे मे ढल गई है। वक्शी जी अधिक समय तक काव्य रचना न कर सके इसका कारण कदाचित् यही है कि उन्होने अपने को दो विरोधी संस्कारो और प्रभावों की खींचतान मे पाया। कदाचित वे मूल रूप से कवि न होकर चिन्तक, विचारक और अध्येता ही रहे हैं।

महाकोशल अंचल के कवि:—आचार्य द्विवेदी जी के प्रमुख सहकारी और "सरस्वती" के स्थायी लेखक और कवि श्री कामताप्रसाद गुरु इस अंचल के खड़ी वोली के आरम्भिक कवियों मे है। इनकी कविता की मुख्य विशेषता शब्द-परिमार्जन और भापा के सुनियमित प्रयोग की रही है। इस क्षेत्र मे इनका अधिकार स्वयं द्विवेदीजी मानते रहे हैं। "सरस्वती" के प्रमुख कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त पर भी इनकी भाषा परिष्कृति का प्रभाव पड़ा है।

इस अंचल की कविता का वास्तविक स्वरूप सुभद्राकुमारी की रचनाओ मे ही दिखाई देता है। छायावाद युग के काव्य की कल्पना प्रियता और सूक्ष्म सज्जा से दूर रहते हुए भी इनकी कविताओं ने हिन्दी संसार को मुग्ध कर लिया था। सुभद्राजी के लिए यह कम गौरव की वात नही कि युग के काव्य प्रवाह से भिन्न गति का आधार लेकर भी वे युग की प्रमुख कवियित्री कहलाईं। सुभद्रा जी के काव्य की प्रमुख विशेषता उसकी सरल निप्कपट भावना है। गार्हस्थ्य जीवन के मार्मिक संवेदन उनके काव्य मे अभिव्यक्त हुए हैं। माधुर्य और वात्सल्य की भावनाए आयास रहित रूप में उनकी काव्य पंक्तियों मे उतरी हैं। वे राष्ट्रीय कवियित्री भी हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता "झासी की रानी" तथा "झांसी की रानी की समाधि पर" हिन्दी काव्य में अप्रतिम है। सुभद्रा जी को महाकोशल की प्रतिनिधि काव्य प्रतिभा कहा जा सकता है।

केशव प्रसाद पाठक और रामानुजलाल श्रीवास्तव इस अंचल के दो भावुक कलाकार है। इनकी भावुकता इन्हे अनेक काव्य दिशाओं में ले गई है। इनकी कलाप्रियता इन्हें देश-विदेश के कवियों का काव्य रस लेने और उसे रूपांतरित कर हिन्दी पाठको के समक्ष रखने को प्रेरित कर सकी है। इन दोनों कवियों का अधिक महत्त्व हिन्दी-काव्य

को दूसरी भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाओं से समृद्ध करने में है। दोनों कवियों पर फारसी और उर्दू काव्य का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है। प्रांत में और विशेष कर महाकोशल क्षेत्र में श्रेष्ठ काव्य परिष्कार की ओर नवयुवकों को प्रेरित करने में इनका विशेष हाथ है। इनकी कला-मर्मज्ञता और कविता की पहचान मार्मिक है जिसका लाभ महाकोशल के नवोदित कवियों को मिलता रहा है।

महाकाव्यों के प्रणेता दो प्रमुख कवि द्वारकाप्रसाद मिश्र और बलदेवप्रसाद मिश्र क्रमशः महाकोशल और छत्तीसगढ़ अंचल के होते हुये भी दोनों में यह बड़ी साम्यता है कि दोनों बड़े प्रबंधों के रचयिता हैं। सांसारिक अनुभव और विस्तृत प्रबंध योजना में इनकी असाधारणता सिद्ध हुई है। साथ ही प्राचीन इतिहास और संस्कृति के ये मर्मज्ञ विद्वान हैं। दोनों की कविता पर गोस्वामी तुलसीदास के काव्य का प्रभाव दो भिन्न रूपों में पड़ा है। इन दोनों कवियों की भावधारा में वही अन्तर है जो क्रमशः कृष्ण चरित्र और रामचरित्र के भावकों में हो सकता है। द्वारकाप्रसाद मिश्र की अभिरुचि अधिक दार्शनिक है जब कि डाक्टर बलदेवप्रसाद के काव्य में नैतिक संस्कार अधिक प्रमुख है। इन दोनों कवियों ने क्रमशः व्यास और वाल्मीकि का उत्तराधिकार अपनाना चाहा है। यहां हम "कृष्णायन" और "साकेत संत" के काव्योत्कर्ष पर अधिक कुछ नहीं कहेंगे। परन्तु इन दोनों कवियों में उच्चकोटि का प्रबंध-कौशल और पाण्डित्य अत्यधिक स्पष्ट है। वर्तमान युग की पृष्ठभूमि पर इन महाकाव्यकारों का मूल्याङ्कन कठिनता से हो पाता है। इनके काव्य का गाम्भीर्य और विशालता भी वर्तमान पाठक के लिए बड़ा व्यायाम बन जाता है। फिर भी वर्तमान युग के हिन्दी काव्य में ये रचनाएँ ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं।

श्री भवानीप्रसाद तिवारी प्रगीत काव्य के रचयिता मनस्वी कवि हैं। रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि का सुन्दर अनुवाद कर इन्होंने अपनी काव्य मर्मज्ञता का परिचय दिया है। अपनी स्वतंत्र रचनाओं में वे एक मौजी कवि के रूप में दिखाई देते हैं। किसी एक विशिष्ट भावना या जीवन दृष्टि को न अपनाकर, इन्होंने विविध अवसरों पर विविध मनोवृत्तियों की परिचायक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। हिन्दी में ऐसे कवियों की संख्या कम है जो लोक सामान्य भूमि पर रहते हुए विविध अवसरों और मनोभावों के चित्र उपस्थित करते हैं। आए दिन व्यक्तित्वपरक और अन्तर्मुखी कृतियां ही अधिकता से प्रस्तुत की जा रही हैं। भवानीप्रसाद जी इसके अपवाद हैं। उनके काव्य में किसी एक वृत्ति का प्रधानता से आग्रह नहीं है। सागर क्षेत्र में श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी की भावनापूर्ण राष्ट्रीय रचनायें काफी प्रसिद्ध हो चुकी हैं। इस बीच सागर विश्वविद्यालय में अध्यापक श्री कमलाकान्त पाठक के प्रगीत अपनी संवेदनशीलता और सूक्ष्म व्यंगात्मकता के गुण से प्रचलित हो रहे हैं। श्री विष्णुदत्त अग्निहोत्री और श्री मुरलीधर दीक्षित कटनी जनपद के उल्लेख्य कवि हैं, जिनकी रचनायें प्रदेश में समादृत हुई हैं।

यहीं हम श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के काव्य-निर्माण का भी उल्लेख करेंगे, जिन्हें ऊपर मध्यप्रदेश की प्रतिनिधि काव्यधारा से भिन्न प्रकृति का स्रष्टा कहा गया है। वास्तव में 'अंचल' की कविता विशेष वैयक्तिक संवेदनों से इतनी ओत प्रोत है कि वह इस प्रदेश की सामान्य और निर्वैयक्तिक काव्य-प्रकृति से मेल नहीं खाती। इसीलिए अंचल जी को प्रादेशिक कवियों की भूमिका पर रखकर देखना कठिन हो जाता है। 'अंचल' के काव्य में एक परिव्याप्त लालसा का उद्दाम मानसिक प्रवेग बहुत स्पष्ट है। वियोग-काव्य की भूमिका पर अंचल जी ने जो आवेगपूर्ण सौंदर्य चित्र अंकित किये हैं उनकी समता हिन्दी काव्य में कम ही मिलेगी। उनकी कविता में रूपों का आधिक्य है परन्तु आवश्यक काट-छांट और अन्विति की कमी भी है। उनके काव्य में कलाकार का पक्ष पिछड़ गया है। उपमायें और दृश्य चित्र एक पर एक आते हैं परन्तु उनके सन्तुलित प्रभाव में फिर भी न्यूनता रह जाती है। ऐसी रचनायें थोड़ी हैं जिनमें कवि ने सम्पूर्ण एकाग्रता और एकमत्तता बरती हो। अंचल की कृतियों में इस कमी के रहते हुये भी अनेक अतिरागमय गुण हैं, जिनसे उनकी कृतियां हिन्दी-काव्य जगत् में अपना स्थान बना चुकी हैं। अंचल के मुख्य गुण उनकी भावातिशयता और उनका प्रगल्भ पौरुष है जो आधुनिक हिन्दी कविता में उन्हें स्वतंत्र व्यक्तित्व देता है। श्री नर्मदाप्रसाद खरे और उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला खरे का नाम भी यहां उल्लेखनीय है।

निमाड़ अंचल के कवि :—इस अंचल के कवियों में, जैसा कि हमने ऊपर संकेत किया है, "भारतीय-आत्मा" का व्यक्तित्व इतना ऊंचा उठ चुका है कि दूसरे कवि उनकी छाया से वाहर निकलने में प्राय: असमर्थ रहे हैं। "वीरात्मा" के नाम से कविता करनेवाले श्री शुकदेव प्रसाद तिवारी की प्रारम्भिक कृतियो मे "भारतीय आत्मा" की प्रेरणा परिव्याप्त है। जबसे तिवारी जी नागपुर आये और उन्होंने अध्यापन कार्य करते हुए अनेकानेक कवियों के काव्य का पारायण किया, तवसे उनकी कविता की रंगत वदली है। नागपुर में रहते हुये वीरात्मा जी की काव्य-कृतियो पर प्राचीन संस्कृत और हिन्दी कविता का परिमार्जित प्रभाव दिखाई देता है। वर्तमान समय मे लिखी गई उनकी कविताये अधिकतर अनुवाद रूप मे है और एक विशेष प्रकार की कलात्मक समृद्धि लिये हुये है। यह समृद्धि अध्ययन और परिष्कृत अभिरुचि का परिणाम है।

श्री भवानीप्रसाद मिश्र इस अंचल के बड़े होनहार कवि है। उन्होने अपने काव्य को "भारतीय आत्मा" के प्रभाव से मुक्त कर लिया है। यह उनके लिए कम प्रशंसा की वात नही है। भवानीप्रसाद मिश्र मे सुभद्राकुमारी चौहान की सी स्वाभाविक उद्भावना की मार्मिक शक्ति है। मध्यप्रदेश के प्रतिनिधि-कवियो मे सुभद्रा जी के साथ भवानीप्रसाद मिश्र की गणना की जा सकती है। दोनो का काव्य स्थानिक वातावरण की नैसर्गिक सृष्टि है। दोनो की कविता मे आयासरहित अवलकृत प्रवाह है। इधर कुछ समय से हिन्दी कविता में प्रयोगवाद की पुकार उठी है, जिसकी हल्की आवाज़ इस प्रदेश मे भी सुनाई देने लगी है। इस काव्यधारा के सयोजको ने भवानीप्रसाद जी को अपने खेमे मे लाने का आयोजन किया है। भवानीप्रसाद की नैसर्गिक प्रतिभा का सा कवि, आवश्यकता होने पर किसी भी प्रकार की रचना कर सकता है, परन्तु प्रयोगों के संकीर्ण घेरे मे भवानीप्रसाद की प्रतिभा समा नही सकेगी, यह तथ्य प्रयोगवादियो से छिपा नही है।

यही हमे निमाड़ अंचल के सर्वप्रमुख कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य पर भी दृष्टिपात कर लेना है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों मे चतुर्वेदी जी दीर्घकाल तक कारावास मे रहे है। इसी से इनकी कविता मुख्यत: राष्ट्रीय भावना से संवलित है। राष्ट्रीयता के साथ उनकी दूसरी प्रवृत्ति आत्म-विसर्जन की है जो उनके काव्य को आध्यात्मिक दिशा देती है। इन दोनो के सम्मिलन से चतुर्वेदी जी का काव्य आध्यात्मिक राष्ट्रीयता के रंग मे रंग गया है। यह तो उनके काव्य का विधि-पक्ष है। उनका एक निषेध-पक्ष भी है, जो उनकी व्यंग्यात्मक रचनाओ मे प्रस्फुटित हुआ है। यत्र-तत्र उनकी कविता मे एक विशेष प्रकार की श्रृङ्गारिकता भी देखी जाती है, जो अधिकतर ऊहात्मक है। इन रचनाओं मे चतुर्वेदी जी सूफियों की रंगत लेकर आये है, यद्यपि इनके काव्य का भाव-क्षेत्र वहुत अधिक व्यापक नही है, परन्तु इनकी सूझे असाधारण उत्कर्ष से समन्वित है। काव्य विषय के चुनाव मे वे व्यक्तिमुखी प्रगीत कवि की भांति अपनी विशेष सीमा मे वंधे हुये है। व्यापकता और फैलाव उनका गुण नही है, परन्तु भावना की गहराई उनके काव्य को पारदर्शिता का गुण देती है।

चतुर्वेदी जी के शव्द-चयन और भाषा प्रयोगो के सम्वन्ध मे अनेक समीक्षकों ने अपनी सुसम्मतिया प्रकट की है। श्री अज्ञेय ने एक स्थान पर यह निर्देश किया है कि उस युग के काव्य पाठक भी वैसी ही दुरूह और अनिर्दिष्ट मनोवृत्ति के रहे है। इसलिये चतुर्वेदी जी की कविता की दुरूहता उन्हे अग्राह्य नही हुई। परन्तु यह विलक्षण तर्क है। काव्य-भाषा या काव्य प्रयोगो का विवेचन करने के लिए समय विशेष के पाठकों की तथाकथित स्थिति या अभिरुचि को माप-दण्ड वनाने की आवश्यकता नही है। चतुर्वेदी जी की भापा और उनके शव्द-प्रयोग वस्तुत. उनकी भावना के साथ एक विचित्र कशमकश में पड़े दिखाई देते है। जान पड़ता है कि कवि की आवेगपूर्ण भावनाओ के साथ उसके शव्द-चयन की होड़ लग गई है। भावना और उसकी अभिव्यक्ति की इस दौड़ मे चतुर्वेदी जी का शव्द संसार पिछड़ जाता है। उनको कुछ कृत्रिम रूप से शव्दों को और भाषा-प्रयोगों को नियोजित करना पड़ा है, परंन्तु चतुर्वेदी जी के लिए यह महत्व की वात है कि भाव और भापा—गिरा और अर्थ की इस विसर्ग संभव और अनिवार्य विसंगति को उन्होने अपने असाधारण संकल्प तथा प्रेरणा द्वारा तिरोहित किया है और हिन्दी मे अपनी अकाट्य प्रतिभा की प्रतिष्ठा की है।

नागपुर-विदर्भ अचल के कवि — इस अचल में ऐसे कवि कम मिलेंगे जो इस क्षेत्र में रहते हुए हिन्दी की अपनी प्रतिभा से समन्वित हो–जिन्होंने इस प्रदेश में हिन्दी की स्वतंत्र परम्परा की स्थापना की हो। परन्तु हिन्दी के क्रमिक प्रसार और महाकोशल–नागपुर–विदर्भ के राजनीतिक सपर्कों के फलस्वरूप आशा है यहा भी हिन्दी का एक स्वतंत्र अचल निर्मित हो सकेगा। ऊपर हमने "वीरात्मा" जी की चर्चा की है। स्वतंत्र राष्ट्रीय शासन की स्थापना के पश्चात पिछले पाच-सात वर्षों में हिन्दी के अनेक उदीयमान कवि प्रान्त के विविध भागो से सिमटकर नागपुर पहुचने लगे है। आश्चर्य नही, यदि निकट भविष्य में नागपुर हिन्दी काव्य का एक मौलिक और उल्लेखनीय केन्द्र बन जाय। पिछले कुछ वर्षों ने वीरात्मा के अतिरिक्त श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री तथा रामेश्वरदयाल दुबे जैसे राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के कवि इस अचल में हिन्दी की टेक रखे हुये है। इस बीच श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित "कुसुमाकर" भी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा में आगये है। अग्निहोत्री जी की कविता सस्कृतनिष्ठ है परन्तु इधर उनकी कविता पर से यह कृत्रिम आवरण क्रमश दूर होता जा रहा है। श्री रामेश्वर दुबे के काव्य में राष्ट्रीयता ही उनका साथ दे रही है। इस क्षेत्र में हिन्दी कवियो का आगमन बढने लगा है और इस क्षेत्र के काव्य पर उसका प्रभाव भी अब दृष्टिगोचर हो रहा है।

पिछली अर्द्ध शताब्दी के हिन्दी काव्य का यह सक्षिप्त विवरण है। इसमें कतिपय प्रौढ प्रतिभाओ का ही उल्लेख किया गया है। विगत पाच-सात वर्षो से हमारे इस प्रदेश में एक नवीन साहित्यिक अभ्युत्थान हुआ है और अनेक नई प्रतिभाये काव्यक्षेत्र में आगई है। इन नये कवियो की सख्या और उनकी साहित्यिक सभावनायें विशेष आशाप्रद है। यदि इन्हें समुचित प्रोत्साहन और समीचीन दिशा निर्देश प्राप्त होता रहा तो आश्चर्य नहीं इन में से अनेक कवि अपने पूर्ववर्ती कवियो की काव्य प्रतिभा का अतिक्रमण कर जायें तथा इस प्रदेश को उच्चतर साहित्यिक गौरव प्रदान करे। पिछली पीढी के साहित्यिकों ने जो नीव तयार की है, वह एक दृढ विशाल-भवन के लिए पूर्णत उपयुक्त है। उद्यान में नये पुष्प और नई कलिकायें अनूठे सौरभ से प्रान्तीय दिशाओ को आमोदित करने लगी है। इन्हें देखकर हम विश्वासपूर्वक कह सकते है कि इस प्रदेश में हिन्दी काव्य की परम्परा न केवल अक्षुण्ण रहेगी, वह अधिकाधिक विकसित होकर हमारी साहित्यिक सम्पन्नता पर चार चाद लगा देगी।

मध्यप्रदेश का हिन्दी नाट्य-साहित्य

श्री गोपाल शर्मा

जिस समाज में रंगमंच का अभाव हो, वहां नाट्य साहित्य का उचित विकास नही हो पाता। रगमच से केवल एक पर्दे से सजे हुए मंच का वोध नही होता। इसके अन्तर्गत कई बातें आती हैं। जिस समाज की अभिनय की ओर रुचि न हो, अभिनय कला को सगीत और चित्रकला के समान सम्मान और श्रद्धा की भावना से न देखा जाता हो, नाटक के प्रति आकर्षण के साथ-साथ उसके तंत्र और साहित्य-सम्वन्धी वारीकियो का अर्थ समझकर आनंद लेने की वृत्ति न उत्पन्न हुई हो उस समाज मे रंगमच का अभाव है, ऐसा समझना चाहिए। एक समय था जव नाट्य-साहित्य मुख्यतया अभिनय के लिये ही लिखा जाता था। कालिदास, भवभूति और शूद्रक आदि अनेक नाटककारों की सारी रचनाएं अभिनय-सुलभ हैं। नाटक की सार्थकता उसकी अभिनेयता मे है। अन्यथा वह साहित्य की एक विशिष्ट लेखन-शैली वनकर रह जाती है। ऐसे साहित्यिक नाटको पर कुछ समय वाद वड़ी कथाएं और उपन्यास हावी हो जाते हैं क्योकि पात्रो, घटनाओं और कथानको के तारतम्य का निर्माण उपन्यास लेखक स्वयं करते चलते हैं। वे अपनी टीकाओ द्वारा उन्हे सजीव वनाते चले जाते हैं। नाटक में अभिनेताओ के व्यवहार और घटनाओं का संघटन इस तारतम्य की सृष्टि करता है तथा दर्शको के मानस-पटल पर जाग्रत होनेवाली कल्पनाएं तथा संयोजक टीकाएं लेखकीय वक्तव्य का स्थान ग्रहण कर लेती हैं। इस तरह नाटक अपने समग्र रूप का विकास करता चला जाता है। नाटक वास्तव में लेखक, अभिनेता और दर्शको की सम्मिलित सृष्टि है। यही कारण है कि नाटक-लेखको के कधो पर एक विशेष उत्तरदायित्व होता है। रंगमंच के तंत्र का ज्ञान, पात्रो की सजीवता, घटनाओ का औत्सुक्य और आकर्षण तथा स्वाभाविक कथोपकथन नाटक के प्राण हैं। इन सबको ध्यान में रखकर नाटक नही लिखा गया हो तो वह केवल साहित्यिक पाठ्य-सामग्री वनकर रह जाती है। एक समय था जव भारतीय हिन्दी भाषी समाज मे रामलीला व नौटंकी का प्रचार था। जनता की मनोरंजन की भूख इनके द्वारा समय-समय पर तृप्त हो जाती थी। कभी-कभी कुछ रास मंडलियां भी आया करती थी, जो अष्टछाप के काव्य साहित्य के आधार पर राधा-कृष्ण नृत्यों से पूर्ण सगीत-प्रधान कथानक प्रस्तुत करती थी। रामलीला और रास-क्रीड़ा को लोग धार्मिक भावनाओ से देखते थे। गांवों में जो नौटंकियां हुआ करती थी उनका प्रधान विषय वीर-गाथा अथवा उस प्रादेशिक भाग में प्रचलित कोई प्रेम-गाथा हुआ करती थी। सामान्य ग्रामीण जनता का मनोरंजन करने में इनका वहुत वड़ा हाथ रहा है।

इसके उपरान्त भारतेन्दु युग मे हिन्दी रंगमंच का निर्माण हुआ और अधिक से अधिक अभिनय नाटक लिखे गए और जनता के समक्ष प्रस्तुत किए गए। किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रगमच स्थापित करने का प्रयत्न सामाजिक परिस्थितियों के कारण चिरस्थायी न रह सका। धीरे-धीरे पारसी थियेट्रिकल कंपनी ने जनता को मनोरंजन प्रदान करना आरम्भ किया परन्तु इनके नाटक साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के नही थे। पारसी थियेट्रिकल कपनी के अवसान-काल मे ही सिनेमा का प्रादुर्भाव हो गया था। इससे पहले-पहल नाट्य साहित्य को वहुत वड़ा धक्का लगा और कुछ समय के लिये रंगमंच समाप्त ही हुआ दिखाई देने लगा, परंतु आज ऐसी स्थिति नही है। लोग सजीव व्यक्ति को अपने सम्मुख उनके और उनकी समस्याओं का अभिनय करते देखना चाहते हैं। अतएव हिन्दी रंगमंच का पुनरुत्थान अवश्यम्भावी है।

मध्यप्रदेश के हिन्दी नाट्य-साहित्य की चर्चा करने से पहले हम उन नाटककारों को नही भूल सकते जिन्होने कि अतीत में अनेक नाटक लिखकर मध्यप्रदेश को गौरव प्रदान किया है। सुप्रसिद्ध सस्कृत कवि और 'उत्तरराम-

चरित' के रचयिता भवभूति इसी प्रान्त की विभूति थे। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यहा के अधिकाश साहित्यकारो की प्रसिद्धि के पर्याप्त प्रकाशन की कमी का अनुभव आज भी हो रहा है। उसकी एक झलक भवभूति के इस कथन से भी दिखाई देती है—'कालो ह्यय निरवधि विपुला च पृथ्वी।"

सस्कृत-साहित्य के लौकिक काल में तो मध्यप्रदेश के दो राजवशो के ऐतिहासिक नाटको से कथानक लिया गया है। कालिदास ने महाकोशल के अग्निमित्र और विदर्भ की मालविका की प्रेमगाथा को लेकर 'मालविकाग्निमित्र' नाटक लिखा है। परन्तु मध्यप्रदेश के हिन्दी नाट्य साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ भारतेन्दु काल से ही माना जाना चाहिये। हिन्दी रगमच का सम्यक् प्रतिष्ठापन १९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हुआ है। इसके पूर्व भी सन् १९०३ में रायगढ निवासी श्री अनतराम पाडे ने 'कपटी-मुनि' नामक नाटक लिखा था। यह नाटक सयुक्तप्रान्त तथा छत्तीसगढ के अनेक स्थानो में सफलतापूर्वक खेला गया था। श्री जगमोहनसिंह के मित्र प मालिकराम त्रिवेदी ने 'रामराज्यवियोग' तथा 'प्रबोध-चद्रोदय' नाटक लिखे। इन नाटको का अभिनय करने के लिये उन्होने एक मडली भी स्थापित की थी। ऐसा सुना जाता है कि यह मडली अभी तक विद्यमान है। ज्ञात हुआ है कि श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' के पिता श्री बक्षीराम ने 'हनुमान' नाटक का अनुवाद किया था। इन नाटकों के अतिरिक्त जबलपुर निवासी श्री खिलावनलाल ने 'प्रेम सुन्दर' नाटक और नरसिंहपुर निवासी श्री गणपतसिंह ने 'सत्योदय' नाटक लिखा था। क्रमबद्ध नाटको के इतिहास के अभाव में इन नाटको के रचना-काल का ठीक-ठीक पता नही चलता। भारतेन्दु काल में अग्रेजी और सस्कृत में नाटको के अनुवाद करने का प्रचलन आरम्भ हुआ था। उसके प्रभाव से मध्यप्रदेश भी अछूता नही था। सन् १८८८ में जबलपुर की निवासिनी एक महिला ने जिसका नाम 'आर्या' था 'मर्चेंट आफ वेनिस' का हिन्दी में अनुवाद किया था। इस अनुवाद पर तत्कालीन नाट्य शब्दावलि का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु के समय में दृश्य के लिये गर्भाङ्क का प्रयोग किया जाता था। इस नाटक के लिये भी दृश्य के लिये गर्भाङ्क का प्रयोग किया गया है। इस अनुवाद की भाषा आधुनिक हिन्दी के विकास काल की भाषा है। उदाहरणार्थ एक सवाद नीचे दिया जा रहा है—

"बसानिओ—हे अटोनिओ! यह बात आप पर छिपी नही है कि उस बात का है कि जिस बडे ऋण में अति व्यय ने डाला है। उस ऋण से छूटे मैं जिस दुरबल उपाय से रह सकता हू उसकी अपेक्षा अधिक आडम्बर दिखलाने वाले पदार्थो मे अपनी कितनी सपत्ति व्यय किया और मैं अब ऐसी उत्तर प्रतिष्ठा से भ्रष्ट हाने का कुछ विलाप नही करना जिस ऋण में मेरे व्यय व्यय के काल ने डाला है, उस बडे ऋण से छुटकारा पाने का मुख्य उपाय, हे अटोनिओ! आप के द्रव्य और प्रीति के कारण म आपका ऋणी हू आप की प्रीति से मने आज्ञा पाई है कि मैं अपने सब उद्देश को कहू कि कैसे ऋण से अनृणी होऊ।

अन्टोनिओ—हे प्रिय बसानिओ! मुझसे यह वृतान्त कहो, जैसे आप सवदा मेरे माननीय ह उसी प्रकार यह भी आदरणीय होय तो निश्चय रखिये कि मेरे रुपयो के तोडे, मेरी शरीर और मेरे असख्य द्रव्य, सब आप के काज के लिये तैयार ह।"

लेखिका के इस अनुवाद को बनारस सस्कृत कालेज के पडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने साहित्योपाध्याय सूर्य-प्रसाद मिश्र के पास सशोधन के लिये भेजा था। अनुवाद की भूमिका एडवीन आर्नल्ड (Edwin Arnold) सी एस आय ने दिसम्बर १८८० में लदन से लिखकर भेजी थी। भारतेन्दु काल के उपरान्त द्विवेदी युग में मध्यप्रदेश में राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' द्वारा सुप्रसिद्ध नाटक 'चद्रकला भानुकुमार' नाटक लिखा गया था। शिवरीनारायण के प शुकलाल पाडे ने भी शेक्सपियर के 'कामेडी ऑफ एरर' का 'भूल भुलया' शीर्षक से अनुवाद किया।

मध्यप्रदेश के नाट्य साहित्य की चर्चा करते समय प माखनलाल जी चतुर्वेदी लिखित 'कृष्णार्जुन युद्ध' का स्मरण सर्वप्रथम आता है। यह नाटक हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९१७) के अवसर पर अत्यन्त सफलतापूर्वक खेला गया

था। 'कृष्णार्जुन युद्ध' में महाभारत की कथा का आधार लिया गया है। कथोपकथन में तत्कालीन प्रचलित शैली का प्रभाव स्पष्ट है—

अर्जुन—मैं शपथ खाकर कहता हूं।

सुभद्रा—किसकी ?

अर्जुन—तुम्हारी।

सुभद्रा—यह देह नाशवान् है।

अर्जुन—तुम्हारे मन की।

सुभद्रा—वह चंचल है।

अर्जुन—तुम्हारे हृदय की।

सुभद्रा—वह दुर्वल है। ... .

'कृष्णार्जुन युद्ध' में साहित्य और रंगमंच का सुन्दर समन्वय है। इस नाटक मे शिष्ट हास्य का भी समुचित समावेश है जिसका उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

वत्स जियो कुछ वर्ष हर्ष को दूर भगाओ।
बनो दया के पात्र गात्र को क्षीण बनाओ।
सदा बढ़े मन्दाग्नि आंख की ज्योति घटाओ।
बन कर पुस्तक कीट जगत में ख्याति बढ़ाओ।
मेरा आशीर्वाद यह सिर घूमे, पर तुम नहीं।
रोग शोक चिन्ता भवन हो जाओ तुम शीघ्र ही।

डा. बलदेवप्रसाद मिश्र का रचना-क्षेत्र वहुमुखी है। समीक्षा, काव्य, निवंन्ध, नाटक आदि सभी क्षेत्रों मे आपने रचनाएं लिखी है। आपके मुख्य नाटकों के नाम हैं—'शंकर दिग्विजय', 'वासनावैभव', 'समाजसेवक', 'दानी सेठ' और 'क्राति'। 'शंकर दिग्विजय' मे शाक्त और वौद्धधर्म की विजय का उल्लेख है। 'दानी सेठ' एक प्रहसन है वह आधुनिक नाट्यतंत्र के अधिक निकट है। अधिकांश नाटको का आधार पौराणिक कथाएं है। वर्तमान दर्शकों को इस तरह के नाटकों के प्रति रुचि नही रही है। आपके नाटकों के कथोपकथन काव्यमय और चमत्कारपूर्ण है तथा कुछ नाटकों की शैली मे पारसी-नाट्य परंपरा का आभास भी मिलता है।

स्व. नर्मदाप्रसाद मिश्र ने भी कई एकाङ्कियों की रचना की है। उनके एकाङ्की, छात्रों द्वारा अभिनीत होते रहे हैं। कुछ एकाङ्की वाल-साहित्य की श्रीवृद्धि करते है। स्व. कामताप्रसाद गुरु ने भी नाटक लिखा है जो प्रकाशित हो चुका है। वैयाकरण होते हुये भी गुरुजी मे नाटक लिखने की प्रवृत्ति हुई, यह तत्कालीन साहित्य-अभाव की पूर्ति की चिन्ता का परिणाम है।

मध्यप्रदेश के लव्धप्रतिष्ठ साहित्यकार सेठ गोविन्ददास भारत के अग्रणी नाट्य प्रणेताओं मे से एक है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध नाट्यकृति "तीन नाटक" के 'प्राक्कथन' में लिखा है—"वाल्यावस्था से ही मुझे नाटकों से अनुराग रहा है" अतएव इसमे कोई संदेह नही कि हिन्दी नाट्य-साहित्य की उन्होंने महत्त्वपूर्ण सेवा भी की है। नाटकों के प्रति अपने इसी अनुराग के फलस्वरूप नाट्यकला सम्वन्धी पाश्चात्य तथा भारतीय शास्त्रीय-ग्रंथों का अध्ययन कर उन्होंने नाटक-सम्वन्धी अपने कुछ निजी मत भी स्थिर किए है और इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके अधिकांश नाटको का कलापक्ष उनके निजी सिद्धान्तों से ही प्रभावित है। अपनी इस दीर्घकालीन साहित्य-साधना में उन्होंने विशेष रूप से नाटकों की ही सृष्टि की है।

सेठ गोविन्ददास की नाट्यकला पर विचार करते समय हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि प्रसादोत्तर नाटक-साहित्य में एकांकी नाटकों का उद्भव हो चुका था और वे शनैः-शनैः प्रगति के पथ पर अग्रसर भी हो रहे थे। कदाचित् इसीलिये सेठजी ने भी एकांकी नाटकों के सृजन की ओर विशेष ध्यान दिया है और पौराणिक ऐतिहासिक तथा विविध विषयों से सम्बन्धित एकांकियों के सृजन के साथ-साथ पाश्चात्य मनीषियों के विचारों से प्रभावित होकर पाश्चात्य विचार-धारा तथा नवीन तन्त्र का समन्वय कर समस्यामूलक एकांकियों की भी सृष्टि की है जिनमें कि अतीत-गौरव के चित्रण के अतिरिक्त आधुनिक समाज के विविध वर्गों, समस्याओं तथा राजनैतिक आन्दोलनों का भी वास्तविक चित्रण किया गया है। जहां कि एक ओर उन्होंने सन् १६२० से अब तक के निजी अनुभवों पर आधारित भारतीय समाज तथा बहुमुखी मानवजीवन की आदर्शोन्मुख व्याख्या की है वहां साथ ही प्राचीन आर्य संस्कृति पर आधारित पौराणिक ऐतिहासिक नाटकों में वे सांस्कृतिक उपासक के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार सेठजी की नाट्य-साधना विशेष रूप से युग-सापेक्ष्य ही है और उन्होंने युग की आत्मा को लेकर ही हिन्दी नाट्य-साहित्य में प्रवेश किया है।

'हर्ष','दानवीर कर्ण','कर्त्तव्य','कुलीनता','शशिगुप्त' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने 'विकास', 'सेवापथ' और 'प्रकाश' जैसे उल्लेखनीय समस्यामूलक नाटकों का सृजन भी किया है। 'भूदान यज्ञ' उनकी अत्याधुनिक प्रकाशित नाट्य कृति है जिसमें कि आचार्य विनोबा भावे के भूदान यज्ञ का महत्त्व चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और राजनैतिक एकांकी तथा प्रहसन भी लिखे हैं। * साथ ही 'प्रलय और सृष्टि', 'अलबेला', 'शाप और वर' तथा 'सच्चा जीवन' नामक चार मोनोड्रामा का सृजन कर हिन्दी साहित्य को एक सर्वथा नवीन देन दी है।

अपने ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में वे प्रसादजी की भांति आर्यसंस्कृति पर निर्भर से हैं तथा प्राचीन भारतीय गौरव, संस्कृति, आचार-विचार का प्रतिपादन करते हुए प्रधानतः प्राचीन संस्कृति का महत्त्व ही प्रतिपादित करते हैं। सेठजी ने प्रायः अपना कथानक उन्हीं स्थानों से चुना है जहां कि उन्हें अपने आदर्श का विचार बिन्दु प्राप्त हुआ है और कदाचित् इसीलिये उनकी ऐतिहासिक नाट्यकृतियों की विचार-धारा सर्वथा इतिहास-सम्मत ही प्रतीत होती है। किसी घटना या व्यक्ति विशेष के चरित्र का अंकन करने के पूर्व तत्कालीन जीवन, मानव-समाज और संस्कृति का अध्ययन कर तदनुरूप वातावरण प्रस्तुत करने की चेष्टा ही उनके ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों या एकांकियों में दृष्टिगोचर होती है। प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा किंवदंतियों के अतिरिक्त उन्होंने राजतरंगिणी, 'शिवाजी एंड हिज टाइम्स', 'लेटर मुगल्स' तथा 'राजपूताने का इतिहास' नामक ग्रन्थों से भी अपने एकांकियों का कथानक चुना है।

जहां कि सेठजी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में हमारा ध्यान पुरातन भारतीय आदर्शों तथा गौरव, चरित्र की दृढ़ता, उत्कर्ष और महानता की ओर आकृष्ट किया है वहां उन्होंने अपने सामाजिक एकांकियों में व्यंग्यात्मक दृष्टि से मानव-

---

* सेठजी के कुछ प्रसिद्ध एकांकी इस प्रकार हैं —

सामाजिक—(१) धोखेबाज (२) ईद की होली (३) मानव मन (४) महाराज (५) व्यवहार (६) बूढ़े की जीभ (७) जाति उत्थान (८) फांसी (९) सच्चा सुख (१०) अधिकार लिप्सा (११) स्पर्धा (१२) चालीस घंटे

ऐतिहासिक व पौराणिक—(१) चन्द्रापीड और चर्मकार (२) जालौक और भिखारिणी (३) शिवाजी का सच्चा स्वरूप (४) निर्दोष की रक्षा (५) कृष्णकुमारी (६) सहित या रहित (७) प्रायश्चित्त (८) बाजीराव की तस्वीर (९) सच्ची पूजा

राजनैतिक—(१) यू नो (२) आई सी (३) भूख हड़ताल (४) सुदामा के तंदुल

प्रहसन—(१) हासपावर (२) चौबीस घंटे (३) वह मरा क्यों ? (४) कुछ आप बीती कुछ जग बीती

समाज के विभिन्न वर्गो तथा चरित्रों की न्यूनताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। समाज में फैली हुई नाना समस्याओ पर विचार प्रकट करते समय कही तो उनका दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक रहा है और कही भावुकतापूर्ण। उच्च शासनाधिकारियों की अनुभवहीनता और पदलिप्सा, पूजीवादी समाज की विलासिता तथा एकागिता, हिन्दू-मुस्लिम एकता का लाभ, ब्राह्मणो की पतितावस्था, दीन श्रमिकों और कृषको का शोषण, मध्यमवर्गीय रोमांस-भावना, कवियों की कल्पना की सारहीनता, हिंसा-अहिंसा, धर्म और सत्य की व्याख्या, राजा-रईसों के चरित्रों की विविधता, अस्पृश्यता की समस्या, न्याय का सच्चा स्वरूप आदि विविध मनोभावों का चित्रण उनके एकाकियों तथा नाटकों मे कुशलता के साथ हुआ है। सेठजी ने आधुनिक समाज की—विशेष कर मध्यमवर्गीय समाज की कटु आलोचना की है और प्राय: सर्वत्र ही गांधीवादी विचारधारा को ही आश्रय दिया है। सेठजी के समस्यामूलक एकाकी विशेष रूप मे यथार्थ-वादी ही है। यद्यपि उनमें स्वाभाविकता भी है लेकिन कही-कही उपदेशात्मकता की भावना के फलस्वरूप उनका आदर्श स्वरूप चाहे अधिक स्पष्ट अवश्य हो जाता हो परन्तु स्वाभाविकता को तो ठेस ही पहुंचती है। उनके राजनैतिक एकांकियो में तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का ही चित्रण किया गया है। यह बात भुलाई नही जा सकती कि इन एकांकियों का प्रणयन विशेष रूप से कारागार में ही हुआ है। इस प्रकार सेठजी का दृष्टिकोण व्यावहारिक आदर्श-वाद रहा है।

स्वीडन के प्रसिद्ध नाट्यकार स्टेन्डवर्ग तथा अमेरिका के ओ' नील की शैली का अनुसरण करते हुए उन्होने जो चार मोनोड्रामा लिखे है उनमे भी समाज और व्यक्ति की मनोवृत्तियों की ही आलोचना की गई है। "सच्चा जीवन" तो वास्तव में एक चित्रण प्रधान मोनोड्रामा ही है। इनमे चरित्र-चित्रण की आतरिक गुत्थियों का विश्लेषण करने में सेठजी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। ऐतिहासिक नाटको की अपेक्षा सामाजिक तथा समस्यामूलक एकाकियों के सृजन में उन्होने विशेष रुचि दिखलाई है।

रंगमंच की जो व्याख्या मै आरंभ मे कर चुका हूं उसे ध्यान मे रखते हुए यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि डा. रामकुमार वर्मा एक सफल नाटक और एकांकी लेखक है। रंगमंच की दृष्टि से उनकी रचनाएं खरी उतरती है तथा हिन्दी के लुप्तप्राय रंगमंच को नए तंत्र का आश्रय लेकर पुनरुज्जीवित करने का श्रेय उन्हे दिया जा सकता है। उन्होने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक व्यंग, समस्याप्रधान, प्राय: सभी प्रकार के एकाकी लिखकर हिन्दी के नाट्य-साहित्य में विविधता और सजीवता उत्पन्न की है। वर्मा जी को ऐतिहासिक नाटक लिखने मे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनके ऐतिहासिक पात्र किसी विशेष विचारधारा से प्रेरित मात्र कल्पनाजन्य मूर्तियां नही है वरन् उन मे ऐतिहासिक शोध की प्रामाणिकता भी है। वर्मा जी ने लगभग बारह ऐतिहासिक एकाकी लिखे है, उनके नाम है—'शिवाजी', 'समुद्रगुप्त', 'विक्रमादित्य', 'चारुमित्रा', 'पृथ्वीराज की आंखे', 'औरंगजेव की आखिरी रात', 'तैमूर की हार', 'प्रतिशोध', 'कलंक', 'रेखा', 'स्वर्ण श्री', 'कौमुदी महोत्सव', 'ध्रुवतारिका'। वर्मा जी ने अपने इन नाटको में भी संकलन त्रय का निर्वाह बड़ी अच्छी तरह किया है। आज वह जमाना नही रहा जब बड़े-बड़े रंगमंचीय उपकरण इकट्ठे कर अनेकों दृश्यो और अनेकों वर्षो की घटनाएं प्रस्तुत की जाए। दृश्यविधान और घटनाए औत्सुक्य वर्धक, प्रभावोत्पादक तथा संघर्ष को निखारनेवाली होने के साथ ही साथ सरल और सुलभ होनी चाहिये। वर्माजी की सफलता का रहस्य इसी बात मे है कि उनके नाटक रंगमंच की आवश्यकताओं की सम्यक् पूर्ति करते है। गुप्तकालीन पात्रो के चरित्रो को उन्होने कुशलता से निखारा है और सम्भाषण में कवित्व के साथ स्वाभाविकता का उचित समन्वय किया है।

भारत की हिन्दी भाषी तरुण-पीढ़ी को नाट्यकला की ओर प्रेरित करने का श्रेय निस्सदेह डा. वर्मा को ही है। कालेजों, छोटे-छोटे सांस्कृतिक समारोहों मे उनके सामाजिक नाटको को तरुणो ने बडे चाव से अभिनीत किया है। समझ में नहीं आता इधर कुछ दिनो से डा. वर्मा सामाजिक एकांकियो की ओर से क्यों विमुख से हो गए है। 'एक तोले अफीम', 'उत्सर्ग', 'परीक्षा' नाटको मे उन्होंने नारी के मनोवेगों को आधार माना है उनका विश्लेषण किया है। 'एक तोले अफीम' में कुसुमधन्वा से आहत दो हताश जीवो का चित्रण है। 'चम्पक' में प्रेम त्रिकोण से भिन्न एक नवीन कथा है जिसमें

मानव एक पशु के प्रति ईर्ष्या का भाव दिखाता है और पशुप्रेमी के हृदय में नए सिरे से सहानुभूति जाग्रत करता है। 'सही रास्ते' एक उत्तम कोटि का सामाजिक व्यंग है जिसमें मनुष्य के दो रूपो का भलीभांति उद्घाटन किया गया है। वर्मा जी के अनेक नाटको में इस प्रकार की व्यंग प्रणाली अपनाई गई हैं, जहा उन्होंने यथार्थ को निरावृत किया है समाज पर एक आलोचक की दृष्टि डाली है वहा कलात्मक रीति में उन्होंने आदर्श की ओर सकेत भी किया है।

डा वर्मा के सामाजिक एकाकियो के चरित्र सजीव हैं उनकी गतिविधि अत्यन्त परिचित मालूम होती हैं तथा सवाद मार्मिक, और स्वाभाविक प्रतीत होते ह। डा वर्मा ने अपने नाटको की भूमिका में लिखा है, जीवन के स्वाभाविक गति प्रवाह को *एक बल देना अथवा उसकी दिशा में झुकाव ला देना ही मेरी नाटक-रचना का प्रमुख* उद्देश्य रहा है। अपनी इस कला का प्रयोग मै सामाजिक नाटको में विशेष विश्वास के साथ कर सका हू।

प्रान्त के नाटक-लेखको में स्व ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान तथाश्री रामेश्वर गुरु "कुमार हृदय" का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ठाकुर साहब ने "कुली प्रथा","उत्सर्ग","दुर्गावती" और "अम्बपाली" नाटक लिखे ह। 'कुली प्रथा' में फिजी के कुलियो पर किये जाने वाले अत्याचार का चित्र खीचा गया है। 'उत्सर्ग' में शिवाजी के पुत्र सभाजी और कमला थोरात की प्रेम कथा है। इस नाटक का अधिक प्रचार हुआ है, परन्तु रगमच पर इसे खेलने में कठिनाई का अनुभव होता है। श्री रामेश्वर गुरु ने 'सरदार बा','निशीथ', भग्नावशेष, 'नशे का रग' आदि नाटक लिखे ह। सवादो की भाषा कही-कही विनष्ट हो गई है। श्री गुरु का रगमच से निकट सम्पर्क बना रहता तो हमें और भी उपयुक्त नाटक प्राप्त होते। "सरदार बा" में गुजरात की वीरागना का चित्रण है। "नशे का रग" विश्वयुद्ध के समय प्रकाशित हुआ था। श्री ज्वालाप्रसाद जी ज्योतिषी के चार नाटक उपलब्ध है। उनके नाम ह- "कृष्ण चरित्र", अन्तिम ओज,' 'अजय भारत' और 'अछूत'। ज्योतिषी जी ने अपने नाटको को रगमच पर लाने का प्रयास भी किया है। उनका 'अजेय-भारत' नाटक पोरस और सिकदर की कथा पर आधारित है। नाटक-अभिनय सुलभ है। सवाद प्रवाह-मय है। 'अछूत' एक एकाकी है। इनके अतिरिक्त स्व श्यामाकान्त पाठक और लोकनायक जी सिलाकारी ने भी नाटक लिखे ह।

राजेश्वर गुरु का "झासी की रानी" नाटक सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ है। विषय सर्वविदित है तथा नाटक साहित्यिक दृष्टि से ओजपूर्ण ह। परन्तु आधुनिक रगमच की आवश्यकताओ को ध्यान में रखकर यह नही लिखा गया। नाटक म तीन अक ह और अनेक दृश्य। सवाद प्रभावोत्पादक है। प्रान्त की महिला लेखिकाओ में श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी न नाटको की ओर विशेष रुचि दिखाई है। अभी-अभी उनका एक एकाकी-सग्रह भी प्रकाशित हुआ है। आपके *एकाकी सामाजिक, पारिवारिक वर्ग-समस्या, व्यक्ति-वैचित्र्य* सम्बन्धी विषयो को लेकर लिखे गए ह। आपने सभ्यता के चमकील आवरण के भीतर छुपी हुई जर्जरता और खोखलेपन की ओर सकेत किया। अधिकाश एकाकी कुछ परिवर्तनो के साथ सफलतापूर्वक अभिनय बनाए जा सकते हैं। आपके मुख्य-मुख्य एकाकी ह– 'भूल भुलया', 'सह दिखाई,' 'रगीन पर्दा' और 'माटी की मूरत'। श्री रामेश्वर दयाल एक अच्छे व्यग लेखक है। आपके नाटको में चुटकीले सवादो का गभीर विषय वस्तु के साथ अच्छा समन्वय मिलता है।

मध्यप्रान्त की तरुण पीढी में अनेक ऐसे लेखको का आविर्भाव हो रहा है, जिनकी विशेष रुझान केवल नाटक और एकाकी लेखन की ओर ही है। मध्यप्रदेश की यह पीढी केवल नाटक लिख ही नही रही वरन् साथ ही साथ रगमच और नाट्यतत्र को समझने का सक्रिय प्रयास कर रही है। कई ऐसे लेखक है जो स्वय अभिनय भी करते ह और निर्देशन भी। नागपुर आकाशवाणी केन्द्र के खुलने से नई प्रतिभाओ को नाट्य साहित्य सृजन की पर्याप्त प्रेरणा मिली है। उक्त पीढी के लेखको में कई दोनो प्रकार के रगमच और ध्वनि नाटक लिख लेते ह। इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय लेखक है, इस निबध का लेखक, श्री कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, श्री भृगु तुपकरी, श्री अनिलकुमार तथा कमलाकर दाते। इस निबध के लेखक ने लगभग २५ एकाकी लिखे ह जिनमें 'नारी की व्याख्या,' 'दाता का डाक्टर,' 'कपडो का सवाल', 'दिवाली के मेहमान,' 'मुक्ति की पुकार', 'झगडे की जड' आदि अनेक स्थानो और अवसरो पर सफलतापूर्वक अभिनीत हुए

है। 'दांतों के डाक्टर' नाटक का बंगला और गुजराती में अनुवाद भी हुआ है। इसके अतिरिक्त बड़े नाटकों में "सौंदर्य प्रतियोगिता", 'अपराधी कौन?' और "सरला" को रंगमंच पर पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। लेखक ने अधिकांश सामाजिक व्यंग ही लिखे हैं। 'दातों के डाक्टर' में एक बेइमान महत्वाकांक्षी का चित्र है। 'नारी की व्याख्या' में उसे रहस्यमयी सिद्ध किया गया है। 'कपड़ो के सवाल' मे समाज के दो वर्गो का राजनैतिक महत्वाकांक्षा पर व्यंग है। कृष्ण-किशोर श्रीवास्तव को रंगमंच का पर्याप्त अनुभव है। ये भी प्रधानतः व्यंग लेखक ही हैं। आपकी प्रकाशित रचनायें हैं :—"नाटक का नाटक" जो एक पूर्ण नाटक है तथा "रेखाये" जो एकाङ्कियों का संग्रह है। अधिकांश रचनाओं का विषय सामाजिक ही है। चरित्र-चित्रण में आप विशेष ध्यान देते हैं।

आकाशवाणी नागपुर के निकट संपर्क में रहने के कारण श्री भृङ्ग तुपकरी का एक सफल रेडियो नाटककार के रूप मे विकास हुआ है। रेडियो-रूपकों में आपने विभिन्न तंत्रो के संबंध मे प्रयोग भी किए है। आपको रंगमंच का भी पर्याप्त अनुभव है। 'दस का नोट' नामक नाटक का परिवर्तित रूप नागपुर रेडियो की ओर से गत वर्ष दिल्ली के 'तरुणोत्सव' मे खेला गया था और सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया था। समय-समय पर आपके नाटक विद्यालयों में भी खेले जाते हैं। आपके नाटकों के विषय विविध है। राजनीति, व्यक्ति-चित्रण और सामाजिक समस्या-प्रत्येक क्षेत्र के सम्बन्ध मे आपने कुछ न कुछ लिखा है। नागपुर आकाशवाणी से ही सम्बन्धित दूसरे नाट्य लेखक हैं अनिल कुमार। आपने अनेक ध्वनि-रूपक लिखे है किन्तु रंगमंच की ओर आपकी रुचि नही है। सामाजिक ध्वनि–रूपकों मे आपने समाज का विद्रूप मुखड़ा चित्रित करने की चेष्टा की और अनेक समस्याएं भी प्रस्तुत की है। "नागपुर में घोड़ों की हड़ताल" एक प्रहसन है।'फागुन के दिन','किसान की मेहनत,''दूसरी कथा'एकांकी है। "निर्देशक"-सिने-जगत् के लेखको की दुर्दशा पर व्यंग है। "मौत के बाद" मे आपने एक मृत व्यक्ति के मरणोत्तर जीवन का चित्र खीचा है। इनके अतिरिक्त आपने कई ऐतिहासिक और संगीत रूपक भी लिखे है। दाते भी एक रेडियो रंगमंच नाटककार है। आपका लिखा हुआ एक नाटक अभिनीत भी हो चुका है। इनके अतिरिक्त रामेश्वरदयाल दुबे, प्रमोद वर्मा, कृष्ण मेहता, विलास शुक्ला तथा रानी सूरी आदि अनेक नाटक तथा एकांकी लेखक है, जिनसे मध्यप्रदेश के नाट्य-साहित्य को पर्याप्त आशाएं हैं। सिनेमा के बावजूद नाटकों का दिन-ब-दिन महत्त्व बढ़ता जा रहा है। उपयुक्त साधनो के अभाव मे तथा हिन्दी भाषी जनता की इस ओर अधिक रुचि न होने पर भी नए नाटककार दृढ़ता से अपने मार्ग पर अग्रसर होते चले जा रहे है और आशा है कि भविष्य मे मध्यप्रदेश अच्छे-अच्छे नाटक देने मे समर्थ होगा।

मध्यप्रदेश की हिन्दी-मासिक-पत्र-पत्रिकाएं

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

कहावत है कि मिल्टन का साहित्य समझने के लिये एक मिल्टन की ही आवश्यकता होती है। गालिब के बारे में यह व्यंग्यात्मक शेर मशहूर ही है —

"मजा कहने का तब है, इक कहे और दूसरा समझे।
मगर इनका कहा ये आप समझें या खुदा समझे॥

हमारे महाकवि केशवदास के काव्य की दुरूहता के सम्बन्ध में भी लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"देन न चाहे जो राजा राग, तो पूछत केशव की कविताई।"

दूसरी ओर यह निर्विवाद सिद्ध है कि ये महान मानव ही साहित्य के स्तम्भस्वरूप हैं। इन्हें समझे, न समझे या कम समझे, एक-मात्र इनसे किसी प्रकार निकट का नाता जोड़कर जन-साधारण साहित्यिक चेतना (लिटररी कान्शसनेस) का अनुभव करता है। यह चेतना अपने आप में एक अमूल्य वस्तु है।

धार्मिक चेतना से इसका मूल्य अधिक स्पष्ट हो जाता है। बुद्ध, मुहम्मद, ईसा को कितने लोग समझते हैं? किन्तु इनके द्वारा प्राप्त धार्मिक चेतना से कितने लोग एक सूत्र में बद्ध हैं, एक मार्ग में अग्रसर हैं और एक सिद्धि के हेतु कर्मरत हैं।

जन साधारण में धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक आदि चेतनाओं का आविर्भाव ही स्वस्थ मानवता की प्राप्ति का लक्षण है। आधुनिक काल में मासिक पत्रिकाएं ही सत्साहित्य निर्माण के लिये प्रमुख अवलम्ब हैं। अब पाक्षिक, साप्ताहिक तथा कुछ दैनिक पत्र भी साहित्य को स्थान देने लगे हैं, परन्तु पिछले सौ वर्षों से आरम्भ होनेवाला आधुनिक हिन्दी का साहित्य मासिक पत्रिकाओं द्वारा ही प्रधान रूप से निर्मित किया गया है। इनके माध्यम से अपनी भाषा और भावों को परिष्कृत करके या करते हुए लेखकों ने साहित्य के भंडार की श्री-वृद्धि की है, साहित्यिक चेतना प्रदान की है।

हिन्दी ने न केवल सत्साहित्य का निर्माण कर जन-साधारण को अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक किया है, वरन् बिना किसी उत्पात या कटुता के उसने अपने विभिन्न अवयवों को समेट कर, एक-रसता और एक रूपता भी स्थापित कर ली है। इस शान्ति प्रवृत्ति के कारण वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति में एकनिष्ठ सेवा अर्पित कर सकी है, राष्ट्र-निर्माण में पूर्ण सहयोग दे रही है और विश्व-बन्धुत्व की स्थापना में भी वह प्रमुख भाग ले सकेगी, यह आशा केवल कल्पना-मात्र नहीं कही जा सकती।

यों तो आधुनिक हिन्दी का जन्म सन् १८०३ माना जाता है, जब फोर्ट विलियम (कलकत्ता) में एक स्कूल की स्थापना हुई और हिन्दी की पुस्तकें लिखाई जाने लगी, परन्तु पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि सन् १८५८, अर्थात् प्रथम स्वतन्त्रता-सग्राम के कुछ समय बाद तक हिन्दी का विकास प्राय शून्यवत् ही था।

इस सुषुप्त काल में जिन अहिन्दी भाषा-भाषी विद्वानों ने हिन्दी को पूर्णरूपेण उत्साह प्रदान किया वे ये थे —

(१) लल्लूलाल जी—ये आगरा निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। इन्होंने लगभग सन् १८०३ में "प्रेमसागर" की रचना की।

(२) श्री इंशाअल्ला खां—इन्होंने लगभग इसी समय "रानी केतकी की कहानी" की रचना की।

(३) राजा राममोहन राय—इन्होने सन् १८२९ मे कदाचित् हिन्दी का पहला पत्र निकाला, जिसका नाम "वंगदूत" था। इन्होंने वेदान्त सूत्रो के भाष्य का हिन्दी अनुवाद कर के प्रकाशित कराया।

(४) श्री तारामोहन मित्र—इनके प्रयत्न से काशी मे लगभग सन् १८५० में "सुधाकर" पत्र प्रकाशित हुआ।

इसके कुछ समय वाद श्री नवीनचन्द्र राय ने लाहौर से "ज्ञानप्रदायिनी" पत्रिका निकाली और पंजाब में हिन्दी का खूब प्रचार किया। स्वामी दयानन्द (सन् १८६३) के अवतीर्ण होते ही हिन्दी की चारो ओर धूम मच गई। स्मरण रहे कि स्वामी जी गुजराती थे। यह भी उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश में हिन्दी की उन्नति मे महाराष्ट्रीय वन्धुओ का विशेष योग रहा है और है।

आधुनिक हिन्दी या नई धारा के उत्थान का प्रथम काल सन् १८६८ से १८९३ तक माना गया है। इसे "भारतेन्दु-काल" भी कहते हैं। भारतेन्दु जी के जीवन में ही हिन्दी की २७ पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थी, जिनमे जवलपुर का साप्ताहिक "शुभचिन्तक", प्रकाशन तिथि सन् १८८३, सम्पादक श्री सीताराम, भी एक था।

पण्डित लोचनप्रसाद जी पांडेय ने जानकारी दी है कि लगभग सन् १८८९-९० में मध्यप्रदेश सरकार एक "एजूकेशन गजट" निकाला करती थी, जिसमें शिक्षा के अतिरिक्त कुछ साहित्यिक या मनोरंजक सामग्री भी रहती थी। उन्ही से यह भी ज्ञात हुआ कि सन् १९०० के आसपास और भी कई मासिक-पत्र प्रकाशित हुए, जैसे "कृषि-समाचार" या "किसानी-समाचार" (सरकार द्वारा प्रकाशित); "गो-रक्षण" (नागपुर से प्रकाशित); "शिक्षा-प्रकाश" (जवलपुर से श्री दवीर द्वारा प्रकाशित); "हिन्दी मास्टर" (सरस्वती विलास प्रेस, नृसिहपुर से प्रकाशित); "आर्य-वनिता" (आर्य-समाज, जवलपुर से प्रकाशित); नाम से ही इन पत्रिकाओं का उद्देश्य प्रकट है, पर इनमे यदाकदा साहित्यिक सामग्री भी रहती थी। सरकार ने अपने पत्र क्यो वन्द कर दिए, ज्ञात नही। अन्य पत्रों के वन्द होने का कारण आर्थिक समस्या ही हो सकती है।

हमारे प्रान्त का निर्माण सन् १८६१ में हुआ। लगभग यही समय आधुनिक हिन्दी के उत्थान का द्वितीय काल है, जो सन् १९०० के आसपास समाप्त होता है। इस काल मे हम, मासिक पत्रो के प्रकाशन की दृष्टि से, अपने प्रान्त में कोई विशेष हलचल नही देखते। तब क्या हमारा प्रान्त साहित्य-सृजन से तटस्थ था?

ऐसी वात नही है। न केवल हमारे प्रान्त प्रत्युत समस्त भारत के गांवों की इकाई इतनी सम्पूर्ण थी कि शिक्षा, साहित्य और संस्कृत का कोई अभाव न था। गांव-गांव में कवि और गुणीजन निवास करते थे। युग वदल रहा था। यात्रिक-युग का प्रवेश काल था। सर्वप्रथम कलकत्ता-वम्वई में प्रभाव पड़ा। वहीं मुद्रणालय खुले और समाचारपत्र प्रकाशित हुए। जहां तक हिन्दी का सम्वन्ध है, उसका सांस्कृतिक पुनर्निर्माण राम-कृष्ण की भूमि, उत्तरप्रदेश, से प्रारम्भ हुआ और स्वभावतः काशी और प्रयाग उसके केन्द्र हुए। ये स्थान तत्कालीन समस्त हिन्दी-भाषी जनता का प्रतिनिधित्व करते थे और सभी प्रान्तों के साहित्यिक उन्हे योग देते थे। हमारे प्रान्त मे ठाकुर जगमोहनसिंह उस समय न केवल अखिल हिन्दी-जगत् के प्रख्यात साहित्यिक थे, वरन् भारतेन्दु जी के घनिष्ट मित्र तथा भारतेन्दु-मंडल के देदीप्यमान नक्षत्र थे। महामहोपाध्याय श्री जगन्नाथप्रसाद "भानु" कवि भी इस काल मे ख्यातिप्राप्त हो चुके थे। सन् १८८५ मे काशी के विद्वानो ने कहा था "आप तो साक्षात् पिंगलाचार्य हैं; कवियों में भानु हैं।" पण्डित विनायकराव भट्ट की कीर्ति भी हिन्दी-संसार मे फैल चुकी थी। जवलपुर के "भानु-कवि-समाज" ने (जो समयानुसार परिवर्तित होता हुआ, सन् १९२९ से "साहित्य-संघ" के नाम से प्रस्थापित है और जिसकी रजत-जयन्ती इस वर्ष मनाई जा रही है), इन्हे "कवि-नायक" की उपाधि दी थी। कवि-श्रेष्ठ राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ने, जो जवलपुर मे विद्यार्थी जीवन से ही कविता करने लगे थे, इस समय तक पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। ये सब महानुभाव तत्कालीन पत्रिकाओ-"भारतेन्दु चन्द्रिका", "हिन्दी प्रदीप", "आनन्द कादम्विनी" आदि, मे लेख, कविताएँ आदि देते रहते थे।

लगभग सन् १९०० मे ठेठ खडी बोली का युग आरम्भ होता है, जो लगभग सन् १९२० तक "द्विवेदी-युग" के रूप में भी मान्य है।

"छत्तीसगढ मित्र" मध्यप्रदेश का प्रथम मासिक पत्र है, जो यथार्थ रूप में साहित्यिक था। इसका पहला अंक जनवरी, सन १९०० में पेंड्रा (बिलासपुर) से प्रकाशित हुआ और अन्तिम दिसम्बर, १९०२ में। इसके प्रकाशक रायपुर के प्रसिद्ध जनसेवी स्वर्गीय पण्डित वामन बलीराम लाखे थे और सम्पादक स्वनामधन्य पण्डित माधवराव सप्रे तथा पण्डित रामराव चिंचोलकर (वकील, बिलासपुर)। श्री चिंचोलकर जी सन् १९०६ में ही गोलोकवासी हो गए। प्रथम कुछ अंक कैयमी प्रेस, रायपुर से और बाद में देशसेवक प्रेस, नागपुर में छपते रहे। यह उल्लेखनीय है कि ठाकुर जगमोहन सिंह की भाषा उतनी ही परिष्कृत थी, जितनी आज किसी साहित्यिक की हो सकती है और सप्रे जी के उद्देश्य उतने ही प्रगतिशील थे, जितने आज किसी सम्पादक के हो सकते है।

"मित्र" हिन्दी को भारत की 'राष्ट्र भाषा' मानता था। सप्रे जी अपने घर में भी मराठी न बोल कर हिन्दी बोलते थे। "मित्र" हिन्दी को ठोस, सुरुचिपूर्ण, प्रगतिशील साहित्य देना चाहता था। "मित्र" ने आलोचना के स्तर को बहुत ऊपर उठाया। अपने छोटे से जीवन में उसने तत्कालीन मासिकों में काफी उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। प्राय सब पत्रो ने उसकी नीति की प्रशंसा की और सब प्रसिद्ध साहित्यिको ने उसे लेखादि दिए। "मित्र" के कालकवलित होने का कारण वही था—आर्थिक समस्या।

सप्रे जी ने इसके बाद सन् १९०५ में नागपुर में "हिन्दी ग्रन्थमाला" की नींव डाली, जो मासिक पुस्तक के रूप में प्रस्थापित हुई। प्रकाशक देशसेवक प्रेस था। इसने लगभग दस उत्तम पुस्तकें प्रकाशित की, जैसे "मिल" कृत "लिबर्टी" का अनुवाद—"स्वाधीनता", अनुवादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, "महारानी लक्ष्मीबाई" आदि। "माला" में लेख, निबन्ध, कविताएँ आदि भी छपती थीं। अन्य स्थानीय बोलियो के स्थान में भारत भर में खडी बोली का प्रचार "माला" का उद्देश्य था। "हिन्दी कविता की भाषा", "खडी बोली की कविता" आदि लेख पण्डित कामताप्रसाद जी गुरु द्वारा लिखे गये थे, जिनमें यह प्रतिपादित किया गया था कि खडी बोली कविता तथा उच्चकोटि के साहित्य के निर्माण के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

इसके बाद १९०७-१९०८ में सप्रे जी ने "हिन्दी-केसरी" साप्ताहिक का सम्पादन किया, जिसकी ओजस्विनी भाषा प्रसिद्ध थी। सप्रे जी प्रान्त की हिन्दी के स्तम्भ तो है ही, वे ओजस्विनी हिन्दी के पिता ही है। तथापि सप्रे जी का व्यक्तित्व साधक का, साहित्यिक तपस्वी का था। युग ने उन्हें राजनीति में भाग लेने के लिये प्रेरित किया, अन्यथा "गीता-रहस्य", "दास-बोध", "आत्म विद्या", की कोटि की और भी सामग्री उनके द्वारा प्राप्त होती।

आगे "कर्मवीर" तथा "श्री शारदा" के सस्थापन में भी सप्रे जी का प्रमुख प्रभाव था। इस लेख की सीमा परिमित है। विद्वद्वर पण्डित गोविन्दराव हर्डीकर (वकील सिहोरा) ने पण्डित माधवराव सप्रे की जीवनी लिख कर हिन्दी का बडा उपकार किया है। प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इसे प्रकाशित कर एक स्तुत्य कार्य किया है। जिन्हें "छत्तीसगढ मित्र", "हिन्दी-ग्रन्थमाला", "हिन्दी-केसरी", "कर्मवीर", "श्री शारदा" तथा "राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर" और मध्यप्रदेश तथा अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कुछ अधिवेशनो का अधिक विवरण पढना हो, वे सप्रे जी की इस जीवनी का अवश्य अवलोकन व मनन करें।

सन् १९०८ से १९११ तक हम प्रान्त में हिन्दी मासिक का अभाव देखते हैं। यह छोटा-सा सुषुप्त काल अन्य प्रान्तो में भी आया जान पडता है। प्रयाग की "सरस्वती" विशेष रूप से और "मर्यादा" ही इस समय कदाचित् समस्त हिन्दी प्रान्तो का प्रतिनिधित्व करती थी। इसका कारण सम्भव है, यह हो कि इस समय पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने प्रखर प्रताप को प्राप्त हो रहे थे। जो अवधी-ब्रज मिश्रित पत्रिकाएँ निकालते थे, उनकी हिम्मत आगे पाने की नहीं थी। जो विशुद्ध खडी बोली की पत्रिका निकालना चाहते थे, वे तैयारी में लगे हुए थे।

इस काल में पत्रिका की कमी रही हो, हमारे प्रान्त मे लेखको की कमी नही थी। वे पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी तथा अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे भी छाए हुए थे। सम्वत् १९६८ (सन् १९११) के द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कार्य विवरण, दूसरे भाग मे हमारे तीन विद्वानों के लेख है :– पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री, पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी और पण्डित ताराचन्द दुवे। इन लेखको ने प्रान्त के लेखको के जो नाम गिनाए हैं, उनमे कुछ ये है : पण्डित लोचनप्रसाद जी पाडेय, पण्डित कामताप्रसाद जी गुरु, पण्डित प्यारेलाल जी मिश्र, पण्डित लज्जाशंकर झा, पण्डित गणेशदत्त पाठक, पण्डित नर्मदाप्रसाद मिश्र, पण्डित सुखराम चौवे "गुणाकर", पण्डित प्रयागदत्त शुक्ल, डाक्टर हीरालाल (डी. लिट्), पण्डित गणपतलाल चौवे, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, वावू जीवराखन लाल, सैयद अमीर अली "मीर", सेठ रामनारायण राठी आदि।

सन् १९१०-११ मे "बालाघाट" और हितकारिणी" प्रकाशित हुई। "बालाघाट" स्थानीय शिक्षा-विभाग के अफ़सरों के उत्साह से प्रकाशित हुआ और एक वर्ष चला। "शिक्षा-प्रकाश" जो एक वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था, इस वर्ष "हितकारिणी" मे परिवर्तित हो गया और कुछ दिन यूनियन प्रेस मे छप कर सन् १९२१-२२ तक हितकारिणी प्रेस (पुराने यूनियन प्रेस) मे छपता रहा। "हितकारिणी" प्रान्त की सवसे अधिक दीर्घजीवी पत्रिका थी।

पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी एक साथ उच्च कोटि के विद्वान्, साहित्यिक और उच्च कोटि के शिक्षक व वक्ता, तथा व्यक्तित्वशील मानव थे। उनका समस्त व्यक्तित्व "हितकारिणी" को प्राप्त था। कभी-कभी पूरा अंक उन्हे अकेले ही लिखना पड़ता था, परन्तु "हितकारिणी" के लिये उन्होने कोई कष्ट वड़ा नही समझा। "हितकारिणी" साहित्य तथा शिक्षा, दोनो ही की पत्रिका थी। उसने समस्त शिक्षको तथा साहित्यिकों के लिये द्वार खोल दिये। लेखको से तो लेख लिये ही, उसने लेखक ढालना भी आरम्भ कर दिया जिन्हे अपने काम का समझा, उन्हे अपने पास खीच लिया, जैसे पण्डित नर्मदाप्रसाद मिश्र व पण्डित मातादीन शुक्ल। पण्डित शालिग्राम द्विवेदी भी एक प्रकार से "हितकारिणी" के कुटुम्वी थे। विद्यार्थियों को सवसे पहले इस पत्रिका मे स्थान मिला। पूज्य पदुमलाल जी वक्शी विद्यार्थी-जीवन से "हितकारिणी" मे लिखते थे, यह लेखक भी। अपने दस वर्ष के जीवन में "हितकारिणी" ने प्रान्त को लेखकों और कवियो से भर दिया। द्विवेदी द्वय ने इन लेखको की भाव-भाषा परिष्कृत की तो गुरु जी ने व्याकरण सुधारा। फल यह हुआ कि "हितकारिणी" के लेखक पदुमलाल जी और मातादीन जी "सरस्वती" और "माधुरी" की गद्दी पर जा विराजे। यह कहना नितान्त सत्य है कि इन दस वर्षो का प्रान्तीय हिन्दी साहित्य अधिकतर शिक्षको द्वारा निर्मित किया गया, यद्यपि डा. वल्देवप्रसाद मिश्र, झुन्नीलाल जी वर्मा, स्व. देवीप्रसाद जी गुप्त "कुसुमाकर", मावलीप्रसाद श्रीवास्तव, रामदयाल जी तिवारी तथा अन्य महानुभावों ने भी खुल कर हाथ वँटाया।

"हितकारिणी" के लेखक शहर-शहर, गांव-गांव में फैले थे। उनकी गणना सम्भव नही। तथापि विशेष प्रयोजनवश अप्रैल १९१८ से मार्च १९१९ तक की फाइल से कुछ नाम दिए जाते है : सर्वश्री गोविन्द रामचन्द्र चाँदे, गजानन गोविन्द आठले, गनपत राव गनोद वाले, दशरथ वलवंत यादव, रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे, जहूरवख्श, प्रियनाथ वसक, गोपाल दामोदर तामस्कर।

"हितकारिणी" की सफलता तथा दीर्घ जीवन के दो कारण ऊपर वतलाए गए है–द्विवेदी जी का व्यक्तित्व और उनकी उदार नीति। एक कारण और था। सरकार "हितकारिणी" की प्रति माह एक हजार प्रतियां खरीद लेती थी। "हितकारिणी" का अन्त राजनीतिक उथल-पुथल के कारण हुआ। शाला के राष्ट्रीय वनाने का प्रयत्न किया गया। सरकार की कोप-दृष्टि हुई। शाला तो वच गई पर पत्रिका गई, यद्यपि वार्षिकाक अव भी प्रकाशित होता है।

अप्रैल सन् १९१३ मे खण्डवा से "प्रभा" प्रकाशित हुई। श्री कालूराम जी गंगराडे का नाम प्रधान सम्पादक के रूप मे छपता था, पर पत्रिका के कर्त्ता, धर्त्ता, विधाता पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी थे। पत्रिका वहुत सज-धज से निकलती थी। लेखक हिन्दी के गणमान्य लेखको की श्रेणी के ही होते थे। श्री मैथिलीशरण जी गुप्त द्वारा अनू-

दिन उमर खय्याम की कुछ रुबाइयां सचित्र प्रकाशित हुई थी। दो साल के बाद "प्रभा" नागपुर से प्रकाशित होने लगी और कुछ दिन के बाद अस्त हो गई। सम्भवतः अर्थाभाव ही कारण रहा होगा। मार्च सन् १६२० में पण्डित मातादीन जी शुक्ल के सम्पादन में "छात्र-सहोदर" मासिक का जन्म हुआ। शुक्ल जी ने केवल अपनी शक्ति व साधनों से लगभग दो वर्ष तक यह पत्र चलाया। *पत्र का कलेवर तथा पठन सामग्री सुन्दर और सुरुचिपूर्ण होती थी। "हितकारिणी"* और "छात्र-सहोदर" में यह भेद था कि सहोदर गांधी जी की नीति का प्रबल समर्थक था, जब कि "हितकारिणी" किसी अंश तक सरकारी नीति का समर्थन करती थी। "छात्र सहोदर" से छात्रों तथा नए लेखकों को पर्याप्त स्फूर्ति तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। शुक्ल जी बतलाते थे कि वे उस समय प्रतिदिन १८ घंटे परिश्रम करते थे। खेद है कि *इतने त्याग और परिश्रम के बाद भी "सहोदर" शुक्ल जी को लम्बा घाटा देकर समाप्त हो गया।*

सन् १६१६ में जबलपुर में अखिल-भारतीय साहित्य-सम्मेलन और १६२० में मध्यप्रदेश सम्मेलन के अधिवेशन हुए। सन् १६२० में "कर्मवीर" भी बहुत धूम-धाम से प्रकाशित हुआ। इन सब कारणों से साहित्यिक वातावरण सजग और सचेष्ट हो उठा। उस समय प्रान्त और बाहर के अनेक प्रसिद्ध साहित्यिकों का निवास भी जबलपुर हो रहा था, यथा पण्डित माधवराव सप्रे, पण्डित सुन्दरलाल, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी। पण्डित मनोहर कृष्ण गोलवलकर तो सदा से साहित्य के पुजारी थे ही। इन सब के परामर्श से बाबू गोविन्ददास जी ने सन् १६२० में राष्ट्रीय-हिन्दी-मन्दिर की स्थापना की और तारीख २१ मार्च १६२० को "श्री शारदा" मासिक का जन्म हुआ। पण्डित नर्मदा-प्रसाद जी मिश्र, इसके सम्पादक थे और मावली प्रसाद जी श्रीवास्तव तथा बाद में स्व. मातादीन शुक्ल, सह-सम्पादक। कुछ समय बाद पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र भी "शारदा" के स्टाफ में आए।

मार्च १६२३ तक "श्री शारदा" बहुत धूमधाम से निकली। उसमें बड़े-से-बड़े साहित्यिकों के लेख आदि प्रकाशित होते थे और सुन्दर मुखपृष्ठ तथा रङ्गीन और सादे चित्रों से उसकी सुन्दरता निखर उठती थी। प्रान्त के साहित्यिक जागरण का प्रमुख श्रेय "श्री शारदा" को भी है। "हितकारिणी", "प्रभा" "छात्र-सहोदर", के बन्द हो जाने के कारण, इस समय "श्री शारदा", प्रान्त की एकमात्र साहित्यिक पत्रिका थी। सन् १६२२ में पण्डित नर्मदा प्रसाद मिश्र और पण्डित मातादीन शुक्ल "श्री शारदा" से हट गए। पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र के सम्पादन में वह मार्च १६२३ तक निकल कर, बन्द हो गई। "श्री शारदा" के बन्द हो जाने का कुछ कारण तो संचालक-मण्डल का आपसी मतभेद था, पर प्रधान कारण था बाबू गोविन्ददास जी की कृष्ण मन्दिर (जेल) यात्रा। "श्री शारदा" के साथ-साथ *"शारदा-पुस्तक-माला" का भी प्रकाशन होता था। इसके सम्पादक पण्डित कामताप्रसाद जी गुरु और सहायक सम्पादक* श्री मावलीप्रसाद जी श्रीवास्तव थे। माला से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए, जैसे "रसज्ञ रंजन", 'पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी', 'हज़रत मुहम्मद की जीवनी', आदि।

सन् १६१५-१६ में पण्डित नर्मदाप्रसाद मिश्र के सम्पादकत्व में किताबी-साइज़ में "शारदा विनोद" गल्प-पत्रिका *भी निकलती थी, प्रकाशक शारदा-भवन-पुस्तकालय, जबलपुर था। सन् १६२६से दो-तीन साल तक श्री शिवेकर जी,* सुपरिटेंडेंट, नार्मल स्कूल, "शिक्षण-पत्रिका" निकालते रहे हैं। इसमें साहित्यिक सामग्री भी रहती थी।

मराठी "उद्यम" पत्र सन् १६१८ में प्रकाशित हुआ था। पिछले १० वर्षों से उसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हो रहा है। वह पत्र अपने ढंग का अलग और उल्लेखनीय है। उसका उद्देश्य सब प्रकार के उद्योग धंधों, व्यापार-व्यवसायों, आदि की व्यावहारिक, नित्य लाभ पहुँचाने वाली शिक्षा देना है।

"प्रेमा" का उल्लेख मैं अत्यन्त संकोचपूर्वक कर रहा हूँ। उसका प्रथम अंक अक्तूबर १६३० और अन्तिम अंक मार्च १६३३ में प्रकाशित हुआ। १६२७ में मैंने "प्रेमा-पुस्तकमाला" के प्रकाशन की बात सोची थी। सन् १६२८ में इंडियन प्रेस का कार्य आरम्भ किया। जबलपुर के साहित्यिक बन्धुओं से परिचय बढ़ा। "लोकमत" के कारण भाई परिपूर्णानन्द वर्मा, श्री सत्यकाम विद्यालंकार, बाबू कुलदीप सहाय, ठाकुर काशीप्रसाद सिंह आदि से

सम्पर्क हुआ। "लोकमत" वन्द होने पर परिपूर्णानन्द जी के सहयोग से "प्रेमा" प्रकाशित हुई। सम्पादन का भार उन्ही पर था। मै प्रबन्धक ही था। प्रशंसा होती गई, घाटा आता गया। कोई चारा न देख, परिपूर्णानन्द जी काशी चले गए। कुछ अंक वही से निकले। फिर "प्रेमा" जवलपुर आई। अन्त में दस-वारह हजार का घाटा देकर "प्रेमा" समाप्त हो गई।

सन् १९२० के बाद हिन्दी ने नया कदम उठाया। उसने स्वतन्त्रता से सोचना शुरू किया। पुरानी परिपाटी से हट कर छायावाद, रहस्यवाद आदि की ओर उसका ध्यान गया। इधर विश्वविद्यालयों ने हिन्दी के लिये द्वार खोल दिये। उसमे विवेचनात्मकता, गवेषणात्मकता, आलोचनात्मकता आई। लेखक, कवि आदि नवीन प्रयोगों के लिये तरस रहे थे। उस समय जवलपुर के साहित्यिक क्षेत्र मे एक वड़ी होनहार मण्डली थी, जो आज ख्याति और प्रतिष्ठा से भरपूर है, यथा सर्वश्री केशवप्रसाद पाठक, भवानीप्रसाद तिवारी, भवानीप्रसाद मिश्र, नर्मदाप्रसाद खरे, ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, गुलाव प्रसन्न "शाखाल", गौरीशकर "लहरी", वद्रीनारायण शुक्ल, केशवप्रसाद वर्मा, देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त", प्यारेलाल "संतोषी", आदि। ये सव "प्रेमा" की सहायता को टूट पड़े। केशव-प्रसाद जी तो उसके प्रधान पथ-प्रदर्शक और नीति-निर्धारक थे। नर्मदाप्रसाद जी ने कभी उसे भिन्न माना ही नही। उस समय के सभी वयोवृद्ध और लव्ध-प्रतिष्ठित लेखको ने "प्रेमा" को सहयोग दिया। आर्थिक सहयोग के लिये सरकार तथा संस्थाओं के वहुतेरे द्वार खटखटाए, पर व्यर्थ।

"प्रेमा" ने रस-विशेषांक निकाल कर एक रस-कोष वनाना चाहा था। वह अधूरा रह गया। हास्य-रसांक (सम्पादक श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा), शान्त-रसांक (सम्पादक श्री सम्पूर्णानन्द वर्मा), शृङ्गार-रसाक (सम्पादक श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी) और करुण-रसाक (सम्पादक श्री केशवप्रसाद पाठक) निकल पाए। वाकी के लिये वाद में प्रयत्न किया पर सफलता न मिली।

"प्रेमा" ने हिन्दी को उमर खय्याम व हालावाद दिया। ऊपर लिख आए हैं कि सन् १९१३ में श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने "प्रभा" मे कुछ रुवाइयां अनूदित की थी। तव से इस ओर कोई प्रयास नही हुआ था। "प्रेमा" मे केशव-प्रसाद जी का सफल तथा प्रामाणिक अनुवाद इस जोर-शोर से प्रकाशित होने लगा कि अनुवादों की धूम मच गई। इसके प्रभाव से हालावादी कविताओ का आविर्भाव हुआ। श्री वच्चन जी की पहली कविता 'प्रेमा' में छपी थी। साथ-साथ "प्रेमा पुस्तकालय" का भी प्रकाशन हुआ। उमर खय्याम की रुवाइयां, प्रदीप आदि पहले और अव भी प्रकाशन होता है—प्राणपूजा (भवानी प्रसाद जी तिवारी), कुंजविहारी काव्य-संग्रह आदि प्रकाशन हुए।

श्री व्रिजलाल जी वियाणी ने अकोला से हिन्दी मासिक पत्र निकालने का कई वार प्रयत्न किया। सन् १९२६ मे उन्होने "राजस्थान" मासिक शुरू किया, जिसके सम्पादक सत्यदेव विद्यालंकार थे। यह मासिक कुछ समय ही चला। इसके पूर्व भी आपने एक मासिक पत्र का प्रकाशन किया था। फ़िलहाल आप "प्रवाह" नाम का मासिक-पत्र निकाल रहे है, जिसका उल्लेख आगे आयेगा।

पण्डित रविशंकर शुक्ल जी के संरक्षण मे डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल, रायपुर से, सन् १९२० के लगभग शायद कोई शिक्षा विषयक पत्रिका निकली थी। सन् १९३५ के लगभग फिर उन्ही के संरक्षण मे, उसी सस्था से "उत्थान" नामक मासिक-पत्र प्रकाशित हुआ। सम्पादक थे—पंडित सुन्दरलाल त्रिपाठी। पत्र इण्डियन प्रेस द्वारा सुन्दर रूप में मुद्रित किया जाता था। उसमें शिक्षा और साहित्य का अनुपात लगभग वरावर रहता था। शिक्षा-संस्थाओं और जनता, दोनों को "उत्थान" प्रिय था। वह लगभग साढ़े तीन वर्ष चला। पूज्य शुक्ल जी की रचनात्मकता तथा संगठनशीलता लोक प्रसिद्ध है। उनके प्रयत्न से राष्ट्रीय विद्यालय, काग्रेस-भवन आदि कव के वन गए थे। उनके साथ भी कृष्णमन्दिर का प्रेम लगा था। वे जेल गए, "उत्थान" समाप्त हुआ।

इस बीच श्री केशवप्रसाद वर्मा के सम्पादकत्व में पटेरिया बुक-डिपो, रायपुर ने शैक्षणिक मासिक "शिक्षा" के कुछ अंक निकाले थे। श्री घनश्यामप्रसाद जी "श्याम" ने भी कुछ महीने एक मासिक प्रकाशित तथा सम्पादित किया था। श्री मास्टर बलदेवप्रसाद जी ने सागर से "बच्चो की दुनिया" निकाली थी। श्री कुलदीप सहाय जी ने कुछ दिनो तक "विकास" तथा "श्रीहरि" जी ने भी एक मासिक निकाला था। कुछ दिनो तक रायगढ से "छत्तीसगढ़" नामक मासिक भी निकला है। लडाई के समय में कागज की मँहगी और अन्य अडचनो के कारण मासिक पत्र निकालना सम्भव नही था। सन् १९४६ के बाद जो पत्र नही चल पाए, वे ये है —

"कला", कटनी की "परिमल" गोष्ठी द्वारा प्रकाशित तथा श्री बालचन्द्र जैन तथा श्री रमशचन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित, तीन-चार अंक के बाद धनाभाव के कारण बन्द हो गई।

"समता", पण्डित रामेश्वर शुक्ल "अचल" द्वारा सम्पादित तथा स्वस्तिक प्रेस, जबलपुर में मुद्रित। यह गम्भीर विचारो की अपनी कोटि की एक ही पत्रिका होती, परन्तु धनी ने दो-तीन अंको के बाद ही मुख मोड लिया।

"युगारम्भ", आरम्भ में श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह जी द्वारा सम्पादित तथा उन्हीं के साहित्य प्रेस में मुद्रित। डेढ-दो साल के बाद जबलपुर की "परिमल" गोष्ठी ने इसे ले लिया। श्री नर्मदाप्रसाद खरे, स्व इन्द्र बहादुर खरे, श्री नरेन्द्र आदि के सतत और संयुक्त प्रयत्न से ग्यारह अंक ऐसे निकले कि वे अच्छी से अच्छी पत्रिका से टक्कर ले सकते थे, परन्तु धनाभाव के कारण बन्द कर देना पडा।

"प्रकाश", मध्यप्रदेश-सरकार द्वारा प्रकाशित और डा रामकुमार वर्मा आदि द्वारा सम्पादित कुछ समय निकलकर शीघ्र ही बन्द कर दिया गया।

मध्यप्रदेश की मासिक पत्रिकाओं का इतिहास यहा समाप्त होता है। प्रचलित पत्रिकाओ का परिचय देना बाक़ी है। इतिहास बहुत सुखद नही है। वह हमें कुछ प्रश्नो पर विचार करने के लिए विवश करता है। हमारे प्रान्त में अच्छी से अच्छी पत्रिकायें प्रकाशित हुईं, परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि एक भी पत्रिका चिर-स्थायी नही हुई। पत्रिकाओं की अल्पायु का कारण सदव अर्थाभाव रहा। सरकार की उदासीन वृत्ति के कारण ही हमारी पत्रिकायें पनपन नही पायी। स्वतन्त्रता के बाद भी यह स्थिति जारी रही, जो खेदजनक है। अभी प्रान्त में जिन पत्रिकाओ का प्रकाशन हो रहा है, उनका विवरण इस प्रकार है —

(१) ए सी सी पत्रिका, कटनी—यह एसोशियेटेड सीमेंट कम्पनी द्वारा सरक्षित है। उद्देश्य पारस्परिक प्रेम बढाना तथा साहित्य व शिक्षा की सेवा करना। सम्पादक श्री विष्णुदत्त अग्निहोत्री। (२) चदा—शिक्षक सघ, जबलपुर द्वारा प्रकाशित बालोपयोगी मासिक। (३) राष्ट्र भारती—वर्धा। प्रकाशक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा। सम्पादक श्री हृषीकेश शर्मा और श्री मोहनलाल भट्ट। कुछ समय पहिले नागपुर में "भारती" प्रकाशित की थी। कदाचित् "राष्ट्र भारती" उसी का सुसस्थापित रूप है। पत्रिका सुन्दर तथा राष्ट्रोपयोगी है। (४) प्रतिभा, नागपुर—प्रकाशक प्रतिभा प्रकाशन लिमिटेड। सम्पादक श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति। अगस्त सन् १९५३ से ठाठ से प्रकाशित हो रही है और काफी सुन्दर है। नरेन्द्र जी के रूप में उसे उद्योगी सम्पादक मिला है, यदि उचित सहारा दिया जाय तो "प्रतिभा" का काफी विकास हो सकता है। (५) प्रवाह, अकोला—श्री ब्रिजलाल बियाणी द्वारा सरक्षित तथा राजस्थान प्रेस में मुद्रित। प्रकाशक हिन्द प्रकाशन। सम्पादक श्री शिवचन्द्र नागर तथा श्री शेखर। राजनीति से दूर विशुद्ध साहित्यिक मासिक। मुद्रण, सम्पादन प्रथम कोटि का। (६) मानवता, अकोला—श्रीमती राधादेवी गोयनका द्वारा सम्पादित तथा

मानवता प्रेस, अकोला द्वारा मुद्रित व प्रकाशित। गांधीवाद की नीव पर संचालित। यह अच्छी पत्रिकाओ की श्रेणी मे है। (७) नई दिशा (त्रैमासिक), विलासपुर—अभी निकली है। (८) रेखा, नागपुर—कहानी प्रधान, मासिक। हाल ही में प्रकाशन आरम्भ हुआ है। (९) राष्ट्र भाषा—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित, उद्देश्य हिन्दी प्रचार। (१०) बापू—रायगढ़ से प्रकाशित और स्वामी गौरीशंकर जी महाराज द्वारा प्रकाशित। उद्देश्य नाम से ही प्रकट होता है। (११) वालगोपाल—शिशु कल्याण केन्द्र, मध्यप्रदेश द्वारा प्रकाशित और श्री रघुनाथप्रसाद तिवारी द्वारा सम्पादित। यह प्रान्त का वच्चो और अभिभावको के लिए सुन्दर पत्र है। (१२) दीपक—समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रकाशित। साक्षरता प्रचार के उद्देश्य से प्रकाशित। (१३) प्रगति—मध्यप्रदेश सरकार की प्रवृत्तियों का परिचय देने वाली पत्रिका। (१४) पुलिस पत्रिका। (१५) किसानी समाचार (१६) श्रमपत्रिका आदि विभागीय पत्रिकाये भी सरकार द्वारा प्रकाशित की जाती है।

मध्यप्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता का विकास

श्री श्यामसुन्दर शर्मा

समाचार एव समाचार पत्रो की व्याख्या तथा काय क्षेत्र के सम्बन्ध में अभी तक अनेक विद्वान अपने-अपने मत व्यक्त कर चुके हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में लगभग सभी विद्वान एक मत हैं कि समाचार-पत्र का काय क्षेत्र प्रमुख रूप से जनता और शासन के बीच सम्बन्ध जोडने वाली कडी के रूप में है। समाचार पत्रो के बीच शासन का बडा हाथ रहता है। यद्यपि इसमें भी कोई सन्देह नही कि शासन का स्वरूप निर्धारित करने में समाचार-पत्रो का प्रमुख योगदान होता है।

अंग्रेजी शासन की प्रशासनात्मक इकाई के रूप में मध्यप्रदेश ने अन्य प्रान्तो की अपेक्षा विलम्ब से प्रगति की और यही कारण है कि जब बगाल, बम्बई, मद्रास आदि प्रान्तो में अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नो को लेकर व्यापक वाद-विवाद चलता रहा था--अनेक सस्थाएँ सघटित हो रही थी और इसी जन-जाग्रति के फलस्वरूप अनेक समाचार पत्र भी प्रकाशित होने लगे थे, तब हमारा क्षेत्र पूर्णतया अविकसित एव चेतनाहीन था। यहा तक कि जब काग्रेस का प्रथम अधिवेशन इस प्रान्त में बुलाने का प्रश्न उठा, तो सर फीरोजशाह मेहता ने इस प्रान्त को sleepy hollow (प्रसुप्त और खोखला क्षेत्र) कह कर सम्बोधित किया था।--सन् १८६० ईस्वी में मध्यप्रदेश नामक प्रान्त का भारतीय प्रशासनात्मक इकाई का अवतरण हुआ और स्वाभाविक ही था कि हमारी जन चेतना इसके बाद ही जाग्रत होती। समाचार पत्र सवप्रथम गौराङ्ग महाप्रभुओ के स्वस्ति गान के हेतु ही निकले, जिनमें नागपुर से निकलने वाला "सी पी न्यूज़" और जबलपुर का 'विक्टोरिया सेवक" इत्यादि उल्लेखनीय हैं। किन्तु मध्यप्रदेश के जन जीवन में इनका कोई महत्वपूर्ण स्थान नही बन सका और आज यह भी विदित नही है कि ये पत्र कब और क्यो बन्द हो गये। यह काल इस प्रदेश में समाचार-पत्रो का प्रारभिक काल था। इस काल में स्वतन्त्र प्रेस या देश में चेतना पैदा करने वाले समाचार पत्रो का प्रादुर्भाव नही हुआ था। अंग्रेज़ी शासन की छत्रछाया में शासन से प्रेरित जागृति मात्र इस काल में प्रकाशित किसी समाचार पत्र की काय-मर्यादा थी।

राममोहन राय, सुरेन्द्र मोहन बनर्जी, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर इत्यादि, अनेक समाज सुधारको के विचारो की लहर सारे देश में व्याप्त हो गयी थी। लार्ड विलियम बेंटिक ने जिस समय सती प्रथा को बन्द करने का कानून बनाया, उसी समय से देश का ध्यान अनेक सामाजिक प्रश्नो की ओर आकर्षित हुआ और यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि हमारे राष्ट्रीय मानस का विकास सामाजिक चेतना से ही आरम्भ हुआ। इधर हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का यह प्रारम्भिक काल ही था और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द', पण्डित बालकृष्ण भट्ट इत्यादि प्रमुख रूप से खडी बोली के साहित्य सृजन में ही लगे हुए थे। इन्ही सब कारणो से उत्तरप्रदेश की भांति ही हमारे प्रान्त में भी पत्रकारिता का प्रारम्भ मासिको से हुआ, जिन्होने प्रान्त के पाठको को आकर्षित किया।

किन्तु अब समस्त देश के साथ ही हमारे प्रान्त में भी जन-मानस अधिक जाग्रत होने लगा एव सावजनिक हलचल दृष्टिगोचर होने लगी। तब केवल साहित्यिक पत्रो से ही जनता की जिज्ञासाओ को सन्तुष्ट नही किया जा सकता था। इधर भारतीय राजनीति में भी लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में प्रथम बार सुस्पष्ट स्वातन्त्र्य आन्दोलन की रूपरेखा निर्धारित हुई थी और जन जागृति करवटें लेने लगी थी। स्पष्ट है कि इस समय की आवश्यकताओ को प्रमुख रूप से राजनीतिक एव सामाजिक सामग्रीयुक्त पत्र ही पूरा कर सकते थे। यही युग था जब कि हमारे प्रान्त में पत्रकारिता ने एक नियमित

संस्था का रूप ग्रहण किया और हम देखते हैं कि सन् १९०७-१९०८ तक प्रान्त में विभिन्न भाषाओं में २८ पत्र निकल रहे थे। जब कि सन् १८९०-९१ मे यह संख्या केवल ९ थी।

इस काल के पश्चात् मध्यप्रदेश मे हिन्दी पत्रकारिता की प्रगति तीव्र हुई। जिसका श्रेय मध्यप्रदेश मे हिन्दी पत्रकारिता के महारथी पण्डित माधवराव सप्रे, पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल और पण्डित प्रयागदत्त शुक्ल प्रभृति को है। पण्डित माधवराव सप्रे के संचालन एवं पण्डित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के सम्पादन में प्रकाशित "हिन्दी केसरी" सम्भवतः प्रान्त का सर्वप्रथम प्रभावशाली साप्ताहिक था। इसका प्रकाशन सन् १९०७ में हुआ तथा इसका प्रमुख उद्देश्य लोकमान्य तिलक की विचारधारा को प्रान्त मे प्रसारित करना था। इसमें पूना से लोकमान्य द्वारा प्रकाशित "केसरी" के अग्रलेख का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होता था और ३,००० प्रतियो से आरम्भ होकर इस पत्र की सम्भवतः ६,००० प्रतियां तक बिकने लगी थी। यहा तक कि सन् १९१८ में प्रकाशित "रोलट कमीशन" की रिपोर्ट मे इस पत्र के सम्बन्ध में लिखा गया है कि इसने "जनता और सैनिकों मे राजद्रोहात्मक विचारधारा को प्रसारित करने का प्रयास किया था।" स्वाभाविक ही था कि ऐसे पत्र को तत्कालीन सरकार का कोपभाजन बनना पड़ता और तारीख ३१ अगस्त १९०८ को राजद्रोह के आरोप मे श्री सप्रे जी को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद श्री सप्रे जी का नाता "हिन्दी केसरी" से टूट गया, किन्तु पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल के सम्पादन में वह सन् १९०९ तक बराबर धूमधाम से चलता रहा। उस समय नागरी प्रेस के संचालक डा. लिमये को धमकी दी गई कि अगर "हिन्दी-केसरी" उनके प्रेस से प्रकाशित हुआ, तो प्रेस जब्त हो जायेगा और इस पर उन्होने "हिन्दी केसरी" को बन्द कर दिया। यद्यपि इसके पहिले खण्डवा से "सुबोध सिंधु" और जबलपुर से "शुभ-चिन्तक" ये दो हिन्दी साप्ताहिक निकल चुके थे, तथापि मध्यप्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता को नियमितता एवं बल-प्रदान करने मे "हिन्दी केसरी" ने अविस्मरणीय योग दिया।

जैस-जैसे प्रान्त मे राजनीतिक चेतना बढ़ती जा रही थी और जनता मे स्वराज्य भावना का उदय हो रहा था, वैसे-वैसे पत्रो की संख्या भी बढती जा रही थी और साथ ही समाचार-पत्रों की गर्दन पर साम्राज्यवादी दमन का फन्दा अधिक कसा जा रहा था। ऊपर हम 'हिन्दी-केसरी' की चर्चा कर ही चुके है। नागपुर से निकलने वाले मराठी "देश-सेवक" साप्ताहिक का भी यही हाल हुआ। किन्तु हम देखते हैं कि इस दमन चक्र के बाद भी हमारे निर्भीक पत्रकार हताश नही हुए और सन् १९११-१२ मे पत्रो की संख्या बढ़ कर ३१ हो गई। इस काल का सर्वाधिक सफल पत्र "मारवाड़ी" है, जो कि सन् १९०८ मे नागपुर से पण्डित रुद्रदत्त शर्मा के सम्पादन मे निकला। इसकी यह सफलता थी कि घोर दमन के काल मे भी इस पत्र ने १० वर्षो तक अपना अस्तित्व बनाए रखा। यह पत्र प्रमुखतया समाज सुधार का सन्देश देता था और इसमे राजनीति का आशय उन्हें खला। इस पत्र की यह विशेषता थी कि हिन्दी के अनेक प्रमुख पत्रकारों का इससे सम्बन्ध रहा। इस पत्र से सम्बन्धित प्रमुख व्यक्तियों के नाम ये हैं। श्री नन्दकुमार देव शर्मा, गंगाप्रसाद गुप्ता, बाबू शिवनारायण सिह, पण्डित गोवर्द्धन शर्मा छांगाणी, श्री सत्यदेव विद्यालंकार और श्री नारायण दत्ता कश्यप। इन में से कुछ विद्वान् बाद मे क्षितिज पर काफ़ी ऊँचे उठे।

इस समय तक प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो गया था और इसके साथ ही जन-जागरण भी क्रमशः व्यापक होता जा रहा था। "युद्धस्य वार्ता रम्या" के सिद्धान्त के अनुसार, इस समय तक जन-साधारण की समाचार तृष्णा बहुत बढ़ गई थी। इसके साथ ही हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन एक निश्चित स्वरूप धारण करता जा रहा था। १९१० से से १९१९ तक की अवधि में इस प्रदेश की काया में भी बड़ा परिवर्तन हो चुका था। सन् १९१४ मे इस प्रदेश मे चीफ कमिश्नर के सभापतित्व मे विधान सभा स्थापित हुई थी और सन् १९१९ के सुधारो से यह प्रदेश गवर्नरी शासन के अन्तर्गत आगया था। इसी समय प्रदेश मे हाईकोर्ट और विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

इन्ही सब कारणो से इस काल ने समाचार पत्रो को संस्था के रूप मे खड़ा होते देखा। इसके पहिले तक अनेक पत्र प्रकाशित हो चुके थे, किन्तु उनमें स्थायित्व नहीं आ सका था। इसका प्रमुख कारण जनता में शिक्षा एवं

जिज्ञासा का अभाव एव पत्र सचालन की बारीकियों का अज्ञान ही था। किन्तु युद्ध के पश्चात् ये समाचार पत्र सस्था का रूप ग्रहण करने लगे। इस समय की पत्रकारिता एक "मिशन" थी और देशभक्ति का जोश लेकर ही लोग इस व्यवसाय में प्रवेश करते थे। इस काल के पश्चात् कुछ समाचार पत्रों का अच्छा विकास हुआ और उन्होंने समाचार सस्था का रूप धारण किया। उदाहरणार्थ, सन् १९१३ में आरम्भ किया गया—"हितवाद", १९१४ में ही श्री ओगले द्वारा स्थापित "महाराष्ट्र" आदि। "हितवाद" के सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी द्वारा अग्रेजी साप्ताहिक के रूप में आरम्भ किये जाने के पहिले वह मराठी साप्ताहिक था और श्री प्रभाकर पाध्ये उसके प्रथम सम्पादक थे। तत्पश्चात् अग्रेजी सस्करण का सपादन श्री नटेश अप्पाजी द्रविड ने अनेक वर्षों तक गौरवपूर्ण ढग से किया। लगभग इसी समय अन्य छोटे छोटे स्थानों से भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं का निकलना आरम्भ हुआ, जैसे जबलपुर से 'शारदा', 'विनोद', 'कर्मवीर', कटनी से 'सी पी स्टैण्डर्ड', सोहागपुर से 'मित्र मण्डली समाचार', छिन्दवाडा से 'सी पी वीकली न्यूज', 'मारवाडी हितकारक' और रायपुर से 'कायकुब्ज नायक' इत्यादि, किन्तु इन में से कोई भी पत्र दीर्घजीवी नहीं हो पाया।

सन् १९०८ में "हिन्दी केसरी" के बन्द हो जाने पर प्रदेश में राष्ट्रीय आदोलन का समर्थक एक भी समाचार पत्र न था। इस प्रश्न पर प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में विचार किया गया। प विष्णुदत्त शुक्ल, डा बी एस मुजे और प माधवराव सप्रे की समिति भी निर्माण हुई थी। जिसके प्रयास से "सकल्प" नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र सन् १९१९ की विजयादशमी को निकला था। पत्र के सपादक श्री प्रयागदत्त शुक्ल और मुद्रक तथा प्रकाशक श्री शकरराव खोत थे। उस समय लोकमान्य तिलक का होमरूल आन्दोलन देश में जोरों से चल रहा था। "सकल्प" के प्रकाशन में होमरूल लीग ने ७ हजार की सहायता दी थी तथा प्रदेश के अन्य लोगों से ८ हजार रुपये मिले थे। सरकार ने 'सकल्प' से एक हजार की जमानत मागी थी। जमानत देकर इस पत्र ने १ वर्ष तक लोक-जाग्रति का कार्य किया था। इसके बाद ही "कर्मवीर" का जन्म हुआ था।

सन् १९२० में जबलपुर से "कर्मवीर" साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। राष्ट्रीय विचारधारा के इस स्फूर्तिदायक साप्ताहिक ने प्रात की राजनीतिक एव साहित्यिक चेतना को एक नवीन दिशा प्रदान की। इस समय देश की राजनीति में महात्मा गाधी के असहयोग सिद्धान्तों का बोलबाला था। गाधीवादी युग की सबसे बडी विशेषता यह रही है कि इसने जन जागरण को बड़े-बड़े नगरों और कतिपय बुद्धिवादियों तक ही सीमित न रख, उसे गाव-गाव तक प्रसारित कर दिया था और इसीलिये समाचार-पत्रों का क्षेत्र भी व्यापक हो गया था। "कर्मवीर" मध्यप्रदेश में विशुद्ध राष्ट्रीय पत्रकारिता का प्रथम एव निर्भीक प्रयास था और इसने प्रान्त की साहित्यिक एव राजनीतिक चेतना को प्रबुद्ध करने में स्मरणीय योगदान किया। यह पत्र पडित विष्णुदत्त शुक्ल एव श्री माधवराव सप्रे के प्रयास से आरम्भ हुआ था और इसके सम्पादक थे पडित माखनलाल चतुर्वेदी जो कि अब तक लेखनी के द्वारा "भारतीय आत्मा" के रूप में सारे भारत में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर, ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान, श्रीमती सुभद्रा-कुमारी चौहान आदि इसी पत्र के द्वारा हिन्दी जगत् के सामने आये। इस युग में 'कर्मवीर' का अपना प्रभाव था। "कर्म-वीर" के माध्यम से हिन्दी को अनेक नये-नये प्रतिभावान लेखक मिले जिसका श्रेय पडित माखनलाल चतुर्वेदी को है। परन्तु दुर्भाग्य से ई राघवेन्द्रराव और पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी की राजनीतिक कशमकश में यह पत्र बन्द हो गया। कुछ समय पश्चात् "कर्मवीर" खण्डवा से प्रकाशित हुआ और तबसे लेकर आज तक बराबर चल रहा है, यद्यपि अब 'कर्मवीर' का बलवर क्षीण होगया है। लगभग इसी समय चतुर्वेदी जी के दाहिने हाथ श्री आगरकर ने "स्वराज्य" नामक साप्ताहिक निकाला, जिसका सपादन अब उनके सुपुत्र श्री यशवतराव आगरकर कर रहे हैं। नागपुर का 'प्रणवीर' अर्द्ध साप्ताहिक था और इस पत्र के प्रकाशन म श्री सनोदास मूदडा का साहस उल्लेखनीय था। मराठी के तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र "महाराष्ट्र" की तुलना में हिन्दी में वैसा ही प्रभावशाली पत्र पाठकों को समर्पित करना उनका उद्देश्य था।

काफी घाटा उठाकर यह पत्र बन्द हुआ। प्रणवीर-संस्था ने जन-जाग्रति की दृष्टि से प्रकाशन कार्य भी आरम्भ किया था। इनके प्रकाशनों मे "वीर सावरकर का चरित्र" उल्लेखनीय है।

सन् १९३५ में श्री व्रिजलाल वियाणी जी के सचालन में अकोला से "नव–राजस्थान" नाम का साप्ताहिक पत्र आरम्भ हुआ, जिसके सम्पादक श्री. रामनाथ सुमन और श्री. रामगोपाल माहेश्वरी थे। यह, प्रान्त का सबसे सुन्दर पत्र था और उसकी गणना देश के तत्कालीन चार-छ प्रमुख साप्ताहिकों मे होने लगी थी। भारी घाटे के कारण यह पत्र १९३८ मे वन्द हो गया। यह पत्र सरकार का कोपभाजन भी हुआ और उससे ग्यारह हजार रुपयो की जमानत मांगी गई थी। सन् १९३७ मे कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल के पदारूढ होने पर यह जमानत वापस कर दी गयी।

साप्ताहिक पत्रो की इस गौरवपूर्ण परम्परा के पश्चात् यह स्वाभाविक ही था कि इसका विकास अन्य प्रान्तो की पत्रकारिता की भाति दैनिक पत्रो के रूप मे हो। वैसे तो मध्यप्रदेश का प्रथम दैनिक "सन्देश" श्री. अच्युतराव कोल्हटकर द्वारा सन् १९२० मे ही आरम्भ किया गया था, किन्तु यह प्रयत्न असफल ही रहा। इस प्रकार जवलपुर से सन् १९३० मे निकलने वाले "दैनिक लोकमत" को प्रान्त का प्रथम महत्वपूर्ण दैनिक-पत्र होने का गौरव प्राप्त होता है। यह पत्र सेठ गोविन्ददास जी ने निकाला था, जिसके सम्पादक पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र थे। उस समय यह पत्र १६ पृष्ठो मे निकला था और तार, समाचार के अतिरिक्त विभिन्न विषयो पर लेख और टिप्पणिया भी होती थी, जो वड़ चाव से पढी जाती थी। सामयिक घटनाओ के चित्र आदि भी दिये जाते थे। "लोकमत" के समान सुसज्जित एव वृहत् दैनिक-पत्र आज भी मध्यप्रदेश मे देखने को नही मिलता। लगभग तीन साल वाद वावू गोविन्ददास एवं पण्डित मिश्र की जेल-यात्रा के कारण यह पत्र वन्द हो गया। तत्पश्चात् सन् १९४२ मे पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र ने "सारथी" साप्ताहिक निकाला जो छ माह वाद मिश्र जी के जेल जाने के कारण वन्द हो गया। यह काफी समय वाद सन् १९५३ से पुन. प्रकाशित हो रहा है, जो प्रान्त का काफी अच्छा राजनीतिक पत्र है।

मध्यप्रदेश के वर्तमान मुख्य मन्त्री पण्डित रविशंकर शुक्ल के प्रयास से सन् १९२६ मे नागपुर से "महाकोशल" साप्ताहिक निकला, जिसका सम्पादन श्री सीताचरण दीक्षित तथा श्री. सुन्दरलाल त्रिपाठी करते थे, किन्तु दो वर्ष वाद वह भी वन्द हो गया। यह भी एक साहसपूर्ण प्रयास था। यही "महाकोशल" रायपुर से कुछ समय पूर्व साप्ताहिक प्रकाशित होता था और अव दैनिक के रूप मे निकल रहा है। इसके प्रधान सम्पादक श्री श्यामाचरण शुक्ल तथा सम्पादक श्री. वैशम्पायन है। लगभग इसी समय कुछ काल से वन्द पडे साप्ताहिक "शुभचिन्तक" को भी श्री. मंगलप्रसाद विश्वकर्मा के सम्पादकत्व मे श्री वालगोविन्द गुप्त ने पुनः आरम्भ किया। श्री. नर्मदा प्रसाद खरे भी इसके कुछ समय तक सम्पादक थे। इस साप्ताहिक ने प्रान्त के साहित्यिक-जीवन को गतिशील वनाने मे पर्याप्त योग दिया, किन्तु दुर्भाग्य से यह पत्र अव वन्द हो गया है।

"लोकमत" के पश्चात् प्रान्त का दूसरा सफल हिन्दी-दैनिक "नव-भारत" श्री रामगोपाल माहेश्वरी के सम्पादन मे सन् १९३८ मे प्रथम साप्ताहिक के रूप मे आरम्भ हुआ। कुछ ही समय वाद वह अर्ध-साप्ताहिक हो गया और द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ मे (सन् १९३९ मे) इसे दैनिक का रूप दे दिया गया। सन् १९५० मे इस पत्र की एक शाखा जवलपुर मे भी खुल गयी और यह पत्र वडी सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रहा है। इधर के काल मे मध्यप्रदेश की जन-जाग्रति और राष्ट्रीय आन्दोलन को अग्रसर करने मे इस पत्र का प्रमुख योग रहा है। आज भी यही प्रान्त का प्रमुख राष्ट्रवादी पत्र है। पत्र के जवलपुर संस्करण के सम्पादक श्री. मायाराम सुरजन है। "नव-भारत" का भोपाल से भी दैनिक पूर्ति अंक प्रकाशित होता है। सन् १९४६ मे श्री. गोविन्ददास जी एवं श्री. रामगोपाल माहेश्वरी के सयुक्त प्रयास से जवलपुर से एक और दैनिक पत्र "जय-हिन्द" नाम से निकला, जिसके प्रथम सम्पादक, "अमृत पत्रिका" के वर्तमान सम्पादक श्री. विद्याभास्कर थे। तत्पश्चात् श्री. कालिकाप्रसाद दीक्षित ने इसका सम्पादन किया। यह पत्र ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनी के तत्वावधान मे निकला था, जिसके मैनेजिग एजेन्ट श्री. रामगोपाल माहेश्वरी एवं वर्तमान उप-शिक्षामन्त्री श्री. जगमोहनदास थे। कुछ समय पश्चात् श्री माहेश्वरी जी इस पत्र की व्यवस्था से पृथक् हो गये। श्री. गोविन्ददास जी ने इस पत्र को चलाने मे काफी प्रयास किया। अव यह पत्र दैनिक "नव-भारत" (जवलपुर) के साथ सम्मिलित हो गया है। इसका साप्ताहिक संस्करण नागपुर, जवलपुर दोनो स्थानो से निकल रहा है, जिसके संचालक श्री. रामगोपाल माहेश्वरी है और सम्पादक प्रस्तुत लेख का लेखक। यह इस समय मध्यप्रदेश का प्रमुख साहित्यिक साप्ताहिक है।

सन् १९२९ में कलकत्ते के "लोकमान्य" के सचालक श्री रामशकर त्रिपाठी ने "लोकमत" के नाम से नागपुर मे दैनिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। "लोकमत" का साप्ताहिक सस्करण भी प्रकाशित होता था, दैनिक और साप्ताहिक दोनो पत्रो के सम्पादक श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति थे। अब वही "लोकमान्य" नाम से प्रकाशित हो रहा है और उसके के सम्पादक श्री रामाश्रय उपाध्याय है। "नव-भारत" का साप्ताहिक सस्करण श्री शैलेन्द्र कुमार के सम्पादकत्व मे निकलता है। माहेश्वरी जी ने मराठी दैनिक "देशबन्धु" और अग्रजी साप्ताहिक "यग इण्डिया" का प्रकाशन भी किया था, परन्तु ये बन्द हो गये। "नव भारत" का साप्ताहिक सस्करण "नवजीवन" भी प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक श्री मगनलाल कोठारी थे। कुछ समय पूर्व "तरुण भारत" की प्रकाशक नरकेसरी सस्था की ओर से "युगधर्म' हिन्दी-दैनिक का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। यह पत्र १९५० से दैनिक हो गया। इसके सम्पादक पहले श्री राजीवलोचन अग्निहोत्री थे फिर इसके सम्पादक श्री कृष्णस्वरूप सक्सेना हुए। इस समय इसके सम्पादक श्री भगवतीधर बाजपेयी है। जबलपुर से "नि्रक" नाम का अर्ध-साप्ताहिक स्व मातादीन शुक्ल के सम्पादकत्व मे प्रारम्भ हुआ था, जो लगभग ढाई वर्ष तक चला।

राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-सग्राम में मध्यप्रदेश के समाचार-पत्रो ने चिरस्मरणीय योगदान दिया। मध्यप्रदेश सदैव राष्ट्रीय विचार-धारा का क्षेत्र रहा है और यहा के समाचार-पत्रो ने भी सदैव इसी विचार धारा को पाठको तक पहुँचाने का प्रयत्न किया और अपने इस प्रयास में उन्होने बडे से बडे बलिदान को छोटा समझा। उस समय पत्रकारिता का एकमात्र साफल्य देश को पराधीनता की शृङ्खलाओ से मुक्त कराना ही माना जाता था और हम गर्व से कह सकते है कि हमारे प्रदेश के पत्रकार भी इस दिशा में किसी से पीछे नही रहे।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति एव सन् १९४७ में स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात हमारे देश की पत्रकारिता के स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए है। पत्रकारिता को व्यवसाय के रूप में सगठित करने मे द्वितीय महायुद्ध ने बडा सहयोग दिया और इसी बीच अनेक समाचार-पत्र आर्थिक स्थायित्व भी प्राप्त कर सके। इसके सिवाय, स्वाधीनता-सग्राम की सफल परिणति के पश्चात पत्रकारिता "मिशन" न रहकर व्यवसाय का रूप धारण कर रही है और हमारा प्रान्त भी इस प्रवृत्ति का अपवाद नही है। आज हमारे प्रान्त में हिन्दी के चार दैनिक "नव-भारत", "युगधर्म', "लोकमान्य" और 'महाकोशल" प्रकाशित हो रहे है। इनके सिवाय दो आग्ल भाषा के दैनिक "हितवाद "और "नागपुर टाइम्स" तथा मराठी भाषा के तीन दैनिक "तरुणभारत", 'महाराष्ट्र" तथा "मातृभूमि" प्रकाशित हो रहे है। इस प्रकार हम देखते है कि हमारे प्रदेश की पत्रकारिता प्रमुख रूप से नागपुर, जबलपुर और रायपुर में ही सीमित है तथा अन्य क्षेत्र इन पत्रो के नियमित सम्वाददाताओ से जुडे है। हमारी साप्ताहिक पत्रकारिता भी अब पुष्ट हो रही है तथा दैनिको के साप्ताहिक साहित्यिक-सस्करणो के अतिरिक्त ये साप्ताहिक भी प्रान्त की साहित्यिक प्रतिभा को प्रकाश में लाने का यत्न कर रहे है। इसमें सन्देह नही कि आर्थिक दृष्टि से साप्ताहिक पत्रकारिता बहुत सफल नही हो सकी है, पर विभिन्न क्षेत्रो की दृष्टि से उनकी व्यापकता बढ रही है। प्रान्त के साप्ताहिक पत्रो में "सारथी", "कर्मवीर", "जयहिन्द" और स्वराज्य" के अतिरिक्त, पण्डित भवानीप्रसाद तिवारी के सम्पादन में "प्रहरी" जबलपुर से राजनीति-प्रधान साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हो रहा है। स्वामी कृष्णानन्द 'सोख्ता' नागपुर से "नया खून" निकाल रहे है, जिसका प्रान्त के साप्ताहिक-पत्रो में अपना स्थान है। प्रान्त के मजे पत्रकार श्री नन्दकिशोर "नवप्रभात" नाम से रोचक अर्ध-साप्ताहिक का प्रकाशन कर रहे है। रायपुर से श्री केशवप्रसाद वर्मा "अग्रदूत" साप्ताहिक का काफी समय से सफलता के साथ प्रकाशन कर रहे हैं। यही से भी श्री घनश्यामप्रसाद 'श्याम' ने "नवज्योति" मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया था, जो अब साप्ताहिक है। बिलासपुर से श्री श्यामनारायण शुक्ल "तूफान" नाम का साप्ताहिक निकाल रहे है, जो अपने क्षेत्र में अच्छा प्रयास है। "पराक्रम" और "लोकमित्र" यहा के अन्य साप्ताहिक हैं। दुर्ग से श्री केदारनाथ झा 'चन्द्र' ने "जिन्दगी" का काफी समय तक प्रकाशन किया जो अब बन्द है। रायपुर एव नागपुर से लगभग पाच वर्षो तक चला कर श्री शिवनारायण द्विवेदी को अपने अर्ध साप्ताहिक पत्र "सावधान" का प्रकाशन स्थगित कर देना पडा। नागपुर से श्री विश्वम्भरप्रसाद शर्मा का "आलोक" विगत १० वर्षो से प्रकाशित हो रहा है। आप "गृहिणी" एव "राजस्थानी" नाम के दो मासिको का भी प्रकाशन कर रहे है। नागपुर से विगत ५५ वर्षो से "आर्यसेवक" पत्र प्रकाशित हो रहा है। यह पाक्षिक और साप्ताहिक रूपो में प्रकाशित होता रहा है। इसके वर्तमान सम्पादक प्रो इन्द्रदेवसिंह 'आर्य' है। यही से प्रकाशित "अग्रवाल समाचार" के सम्पादक श्री ग्यारसीलाल अग्रवाल और श्री हरकिसन अग्रवाल है। यह अपने क्षेत्र में अच्छा प्रयास है।

नागपुर से कुछ समय पूर्व "विचार" नाम का सुन्दर साप्ताहिक श्री. हनुमानप्रसाद तिवारी और भवानीप्रसाद मिश्र के सम्पादकत्व मे निकलता था। कुछ समय के वाद यह वन्द हो गया। यही हाल श्री. माणिकचन्द्र वोन्द्रिया के सम्पादकत्व मे निकलने वाले प्रथम मासिक और वाद मे साप्ताहिक "कृषक" का रहा। "जनमत" नाम का साप्ताहिक समाजवादी पक्ष की ओर से लगभग २॥ वर्ष तक निकलता रहा।

यहा यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ समय मे कुछ मराठी भाषियो ने हिन्दी पत्र निकालने का उद्योग किया। श्री. एम. जे कानेटकर का "निःस्पृह", श्री. गोपालराव पाठक का "नागरिक" ओर श्रीमती कन्नमवार का "ग्रामसेवक", ऐसे ही प्रयत्न थे, जो उनके हिन्दी-प्रेम के द्योतक है। राजनादगाव से डॉ. वलदेवप्रसाद मिश्र की प्रेरणा से "जनतन्त्र" साप्ताहिक का प्रकाशन हो रहा है। वर्धा से श्री. उमाशंकर शुक्ल अपने जिले की आवश्यकतानुसार "जागरण" साप्ताहिक हिन्दी और मराठी दोनो भाषाओ की सामग्री लिये हुये प्रकाशित कर रहे है। इटारसी से श्री. सुकुमार पगारे तथा अन्य सज्जनो ने साप्ताहिक पत्र निकालने का निरन्तर उद्योग किया, किन्तु उसमे सफलता नही मिली। नरसिंहपुर से "उदय" नाम का साप्ताहिक सजीवता लिये हुए निकला था, पर वह वन्द हो गया। सागर से श्री. ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी ने "विन्ध्य-केसरी" नाम से अच्छा साप्ताहिक निकाला, जो अव वन्द है। स्वामी कृष्णानन्द यहा से "सिपाही" निकाल रहे है। "हण्टर" भी यहा से प्रकाशित हो रहा है। कटनी से श्री. गोविन्दप्रसाद शर्मा एव अन्य सज्जनो ने जिले मे जाग्रति के लिये साप्ताहिको का प्रकाशन किया, परन्तु वे स्थायी न हो सके। छिन्दवाड़ा की भी यही स्थिति रही।

जवलपुर से "प्रकाश" साप्ताहिक निकलता रहा, जो अच्छा प्रयास था। यह अव साध्य दैनिक हो रहा है। इसके अलावा कई साप्ताहिक-पत्रो के प्रकाशन का भिन्न-भिन्न नगरो से प्रयास हुआ जो क्षेत्रीय जाग्रति के प्रयत्न थे। उनकी उपयोगिता आज भी वैसी ही है।

जवलपुर के एक नवयुवक पत्रकार स्व मोहन सिन्हा ने अपने अध्यवसाय से सांध्य दैनिक "प्रदीप" की नीव डाली थी। दुर्दैव ने उन्हे असमय मे हमसे छीन लिया। अव उनकी मृत्यु के वाद "प्रदीप" यू ही चल रहा है।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र मे एक नया प्रयोग श्री वामन गोपाल शेवडे ने "रहली की चिट्ठी" के रूप मे किया। यद्यपि यह प्रयोग असफल हुआ तथापि इससे पत्रकारो की आगामी पीढी अवश्य प्रेरणा ग्रहण करेगी और पत्रकारिता को केवल वड़े-वड़े नगरो ओर कुछ पढ़े लिखे लोगो की वौद्धिक कसरत का साधन न वनाकर गाव-गांव मे उसे फैलावेगी।

इस समय तक इस प्रदेश में अनेक पत्र-पत्रिकाये अस्तित्व मे आ गयी है, जिनकी संख्या २०० से अधिक है और इसलिए उन सवका विस्तृत विवेचन यहा सम्भव नही। इनमे से अनेक पत्र-पत्रिकाये हिन्दी भाषा मे प्रकाशित होती है पर अधिकाश आर्थिक संकटग्रस्त है। इस अवनति की ओर हिन्दी के शुभचिन्तको का ध्यान आकर्षित होना चाहिये। हिन्दी भाषा के महत्व और उज्ज्वल भविष्य को देखते हुए हिन्दी के पत्रो को पुष्ट एव स्थिर वनाना अत्यन्त आवश्यक है

हल्बी भाषा और उसका साहित्य

श्री विनयमोहन शर्मा

हल्बी को हल्बा जाति की बोली कहा जाता है। यह जाति छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त, चांदा, विदर्भ और दक्षिण में जयपुर जमींदारी तक फैली हुई है। यह जाति जहां-जहां गई, वहां-वहां की स्थानीय बोलियां को अपनी बोली में समाविष्ट करती गई। इस तरह इसके कई रूप हो गए। परन्तु इस बोली को केवल हल्बा ही नहीं, बस्तर-कांकेर में अन्य व्यक्ति भी बोलते हैं। सन् १९५१ की "सेंसस रिपोर्ट" (जनगणना प्रतिवेदन) के अनुसार हल्बी बोलनेवालों की संख्या २,६२,८९४ है। इसका आशय यह है कि मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या में इस 'बोली' को १.२८ प्रतिशत व्यक्ति बोलते हैं। १९३१ की जनगणना के समय इसका अनुपात ०.९५ और सन् १९२१ की जनगणना के समय ०.९६ प्रतिशत था। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार केवल बस्तर में २,११८ व्यक्ति, चांदा जिले में १,३६० और बैतूल, दुर्ग, भंडारा, वर्धा एवं यवतमाल में ३२८ व्यक्ति इसे बोलते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार जो व्यक्ति हल्बी को अपनी मातृभाषा के रूप में बोलते हैं वे उसी के साथ हिन्दी, गोंडी और छत्तीसगढ़ी भी (सेंसस रिपोर्ट लेखक ने छत्तीसगढ़ी को हिन्दी से पृथक बतलाने में भूल की है) बोलते हैं। हल्बी बोलनेवालों में ०९.२० प्रतिशत व्यक्ति द्वि-भाषिक (Bilingual) हैं। (देखिए सेंसस आफ इंडिया रिपोर्ट, जिल्द ७, भाग १-ए, पृष्ठ २७४ से २७९)/ ग्रियर्सन को भारतीय भाषाओं का अध्ययन करते समय हल्बी के जो नमूने प्राप्त हुए हैं वे अधिकतर विदर्भ में बसनेवाले हल्बाओं के हैं इसलिये उनमें मराठीपन अधिक है। उधर छत्तीसगढ़ की कांकेर रियासत से प्राप्त जो उदाहरण मिले हैं उनमें पूर्वी हिन्दीपन की छाप स्पष्ट है। यह देखकर ग्रियर्सन स्वयं असमंजस में पड़ गये। वे न उसे छत्तीसगढ़ी की उपबोली मानने को तैयार हुए और न मराठी की ही। ग्रियर्सन के यह लिखने के बावजूद हिन्दी की कतिपय भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में इस बोली के सम्बन्ध में भ्रान्त कथन मिलते हैं। हाल ही में प्रकाशित 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में डा. उदयनारायण तिवारी लिखते हैं "बस्तर की भाषा वस्तुतः हल्बी है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार यह मराठी की उप भाषा है। (पृष्ठ १६३)/परन्तु ग्रियर्सन ने तो उल्टी ही बात कही है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि वह उड़िया, छत्तीसगढ़ी, मराठी आदि की एक मिश्रित भाषा है। वे उसे न मराठी की उपभाषा मानते हैं और न छत्तीसगढ़ी हिन्दी की ही उपबोली कहते हैं। वे उसे छत्तीसगढ़ी की उपभाषा मानने को इसलिये तैयार नहीं हैं कि उसमें 'ल' प्रत्यय और संबंधवाचक 'च' पाया जाता है जो मराठी की विशेषता है।

इस सम्बन्ध में निवेदन है कि "ल" प्रत्यय मराठी की ही विशेषता नहीं है। पूर्वी हिन्दी और बिहारी में भूतकालीन क्रियारूप में 'ल' पाया जाता है यथा मराठी "गेला"—पूर्वी हिन्दी गइल। अब रहा 'च' प्रत्यय। यह मराठी में ही नहीं, पुरानी गुजराती में भी नरसी मेहता के पदों में बहुत प्रयुक्त हुआ है। यह सस्कृत 'त्यत' प्राकृत 'च्च' से मराठी 'च' बना है। यह कहना कठिन है कि यह पुरानी गुजराती से मराठी में आया या मराठी से पुरानी गुजराती में चला गया। हल्बी में "च" षष्ठी का चिन्ह नहीं है, उसके लिये 'के' भी लगता है। ग्रियर्सन के उदाहरण को आगे उद्धृत किया गया है। उससे यह बात स्पष्ट हो जायेगी। यहां केवल उसके दो वाक्य दिये जाते हैं—यथा —

(१) बाघ उठलो आउर हुनके (उसका) टावला (पंजा) मुसापर एकदम पटला।

(२) हुनके (उनके) टोर को कन्नु कन्नु मारते रेलो।

मराठी में सम्वन्धवाचक में 'के' का प्रयोग कभी नहीं होता।

ग्रियर्सन ने यह भी माना है कि उच्चार-प्रक्रिया, शव्द-भांडार, वचन और सर्वनाम रूपों में हलवी पूर्वी हिन्दी, छत्तीसगढ़ी के समान है। फिर यह वात समझ में नही आती कि 'ल' और 'च' के प्रवेश से ही वे उसे हिन्दी की उप-बोली मानने से क्यों झिझके और उसे विचित्र मिश्र वोली कह कर रह गए। वस्तरी हलवी की कतिपय विशेषताएं ये हैं :—

(१) उसमें केवल दो ही लिंग पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होते है। यहां भी वह मराठी का अनुकरण नही करती। मराठी में उपयुक्त दो लिंगो के अतिरिक्त तीसरा नपुंसक लिंग भी होता है।

(२) वहुवचन का कोई चिह्न नहीं लगता। पद मे 'मन' जोड़ने से वहुवचन वन जाता है, जैसे—बावा (एकवचन)—वहुवचन वावामन। बहुवाचक शव्द को जोड़ कर भी वहुवचन वना लिया जाता है, यथा—

खुवभन मुसा (वहुत से चूहे)

मराठी मे वहुवचन के चिह्न होते है। छत्तीसगढ़ी में भी "मन" जोड़ने से वहुवचन वन जाता है।

(३) **कारक चिह्न**—

कर्ता—ने,
सम्वन्ध—चो, के,
सम्प्रदान—के, को,
अधिकरण—में,
अपादान—ले, से,

कारक चिह्नों मे 'चो' को छोड़कर शेष सव हिन्दी के है। 'ले' छत्तीसगढ़ी में अपादान का चिह्न है।

भूतकालीन 'ल' प्रत्यय की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अव ग्रियर्सन की 'लिंग्विस्टिक सर्वे' भाग ६ से हलवी का उदाहरण दिया जाता है—

एक दुन बाघ कोनी वन में पडे सोउ रली। एकदम खुवभन मुसा हुनके पास अपलो बिलले निकरलो। हुनके आरोसे वाघ उठलो आउर हुनके डावला (पंजा) एकदुन (एक) मुसापर एकदम पडला। (वाघ) रीस में इलो। वाघ ने हुन मुसा को मारेवर तैयार हो रहिलो। मुसा अर्जी करलो। तुम चो आपन बाट (अपनी ओर) देखो। मोचो वोर (मेरी ओर) देख। मोचो मारले से तुचो का वडाई मीलोते। इतनो सुन वाघ ने मुसा को छोडेन थाती। मुसा ने अर्जी कर लो। वो कहलो, को नी दिन में आमलो येचे दाया का वदला दीहो। हुनके सुन वाघ हंसलो आउर वनवाट गैलो। थोड़े दिन पाछे हुन वन के पास के रहिलो। वीतामन फांदा लगावले। वाघ को फसावलो। क्योकि हुन हुन के ढोर को कन्तु कन्तु मारते रेलो (रहा) वाघ ने फांरी से निकल न रहलो। फेर निकल नही सकलो। आखिर हुन (वह) दुख के मारे नरिआवलो (चिल्लाया) हुनी (उस) मुसा ने जिनके वाघ छोडाउन दिले रहलो हुन नरिआलो सुन लो। हुन आपलो उपकार करिया के वोली जानलो आउर खोजत उथा उपरलो हुता वाघ फसा फसा पडला रहलो। हुन आपलो तेज चो दातो से फांदा को कतरलो आउर बाघ को छडावलो।

यह पुराना उदाहरण है। नीचे वस्तरी हलवी के वर्तमान रूप का उदाहरण दिया जाता है:—

हिन्दी अंश—नागपुर मे अखिल भारतीय प्रजा समाजवादी पार्टी का जो अधिवेशन हुआ उसकी तुलना यदि समुद्र-मंथन से करे तो अनुपयुक्त न होगा। पहिले विप ही ऊपर आया और उसके मथनेवाले भयग्रस्त हुए। सदस्यो के साथ दर्शको को भी दु.ख हुआ। परन्तु आचार्य कृपलानी ने हंसते-विनोद करते हुए उसका पान कर लिया। एक वार ही दोनों गुटों के वोट गिने गए। जिसके परिणामस्वरूप कृपलानीजी तथा उनकी कार्यकारिणी में वहुमत से विश्वास प्रकट हुआ। इससे कृपलानीजी ने कोई व्यक्तिगत लाभ नही उठाया। वे विपपान कर अध्यक्षपद से अलग हुए।

हलबी में रूपान्तर—नागपुर ठाने प्रजासमाजवादी पार्टी चो, जोन सभा होती, हुनचो बरोबरी समदमयतो नग करत, काई बले अडबग नी होय। बीग पहिले ऊपर इलो अउर हुनचो मयतो बीना मन डरलो। मबर बीना मन के मगे, दम्नो बीता मन के वजे दु ख लागलो। आचार्य कृपलानी हसुन हसुन, ठठोली करन, हुन गोठ मनमें पीजा दीता। दूनो बाट चो बोट, बोटाक दाम गिनला। गिनती बाजे कृपलानी अउर हुनचो कमेटी स्वकाजे भारी बोट पडुन, विश्वास दवाना। मातर कृपलानी काई मुद चो स्वारतनी उठालो। बीख के, पीउन स्भापति पद के छोडलो।

यह वर्तमान हलबी का एक उदाहरण है जिसे जगदलपुर के वकील श्री रविशंकर वाजपेयी ने हमें प्रेषित किया है। इन अंश से बोली के कुछ रूपों की चर्चा की जायगी।

ठाने——संस्कृत स्थान—प्राकृत—ठान और थान—हिन्दी ठान।

संयुक्त शब्द के प्रारम्भ में बोलियों में प्राय स का लोप हो जाता है। प्राकृत में ठान और थान दोनों रूप मिलते हैं। संस्कृत की ठान में सप्तमी का "ए" लग जाने से ठाने हो गया। सप्तमी का "ए" रूप पूर्वी-पश्चिमी हिन्दी और मागधी प्राकृतोद्भूत भाषाओं में मिलता है।

चो—यह षष्ठी रूप है। इसकी उत्पत्ति विवादास्पद है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है –
संस्कृत त्यत्—प्राकृत—च्च—मराठी—च। प्राकृत में भी षष्ठी का त्यान्त रूप मिलता है—
संस्कृत—अस्माकम्—प्राकृत—अहमेच्चय *

कृष्णशास्त्री चिपलूणकर संस्कृत ईय से इसकी उत्पत्ति बतलाते है।† पर डा गुणे ईय से "च" की उत्पत्ति निकालने में कठिनाई अनुभव करते ह ईय इज्ज ज्ज (?) ‡

पर यह प्रत्यय मराठी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। गुजराती में नरसी मेहता के पदो में भी यह पाया जाता है। "नरसैयाचा स्वामिए मुखडु करि करि× जसोद रे।" नरसिंह बाललीला। +

जोन—पूर्वी हिन्दी जवन, जौन

होली—भूतकालिक "ल" प्रत्यय, मराठी के अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उडिया, बंगला और असमिया में भी पाया जाता है। होली में खडी बोली हिन्दी धातु "होना" से भूतकालिक रूप "हुई" न बनाकर मराठी और पूर्वीय भाषाओं का "ल" जोडकर गंगाजमुनी रूप "होली" बना लिया गया है। शुद्ध मराठी रूप होता "झाली"।

हलबी की इस विभिन्नता को देखकर ही तो ग्रियर्सन इसे उडिया छत्तीसगढी (पूर्वी हिन्दी) और मराठी की खिचडी (Admixture) कह कर रह गए।

अउर—(संयोजक पद) स्पष्टत पूर्वी हिन्दी का रूप है।

(अ) हसुन हसुन	(हसहस कर)	ये अव्ययी भूतकालिक कृदन्त मराठी के ह।
(ब) करन	(करके)	
(स) पडुन	(पड कर)	

---

* देखिये, 'यादवकालीन मराठी'—पृष्ठ १८३।
† देखिये 'मराठी व्याकरणावरील' निबंध पृष्ठ ६२।
‡ देखिये Comparative Philology, पृष्ठ ३०।
× देखिये 'यादवकालीन मराठी' भाषा पृष्ठ १८४।
+ देखिये वही—पृष्ठ १८४।

मराठी मे ऊन महाराष्ट्री प्राकृत ऊण से आया है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलायी जाती है *
—संस्कृत–त्वानम्—त्वीनम्—प्राकृत त्ताणं, तूणं और ऊण—अपभ्रंश—एविणु एप्पिणु मराठी–ऊनि ऊन ऊनिया। मराठी मे उन का उ दीर्घ (ऊ) है।

कांई—यह राजस्थानी, निमाड़ी, मालवी मे 'क्या' के अर्थ में व्यवहृत होता है। यहां कोई के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मराठी मे "काही" "कोई" अर्थ होता है। सम्भवतः यह कोई मराठी काही से "ह" के लोप और 'का' पर अनुस्वार के आगम से बन गया है।

नी—यह निमाड़ी और मालवी (पश्चिमी हिन्दी) में "न" के अर्थ मे बहुत प्रचलित है। खड़ी बोली नही से "ह" का लोप हो जाने से "नी" बन गया। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार भी लगाई जा सकती है—

संस्कृत—नहि—पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी—नाही, नाहिं, नही —बुन्देली—नई —बस्तरी हलबी, निमाड़ी, मालवी—नी।

कोष्ठी हलबी—छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले के अतिरिक्त नागपुर की कोष्ठी जाति में भी हलबी बोली जाती है। उपर्युक्त-हिन्दी अंश का नागपुरी कोष्ठी हलबी में हलबी भाषी श्री अनिलकुमार द्वारा किया रूपान्तर नीचे दिया जाता है:—

नागपुर मां प्रजा समाजवादी पार्टी को जो अधिवेशन भयो वो की बरोबरी समुद्र मंथन संग करनेमा कांही हरकत नहीं होणार। पहले जहर बरथा (बरत्या) आयो अन मंथन (घुसलन) करनेवाला डरान्या। सभासद बरोबरच देखनेवाला लोकसुध्दा दुखी भया। पर आचार्य कृपलानी न हसता हसता, मजाक करता करता, वो जहर पीय लेइस। दुयही पार्टी का मत मोज्या गया। परिणाम अस्यो भयो की कृपलानी अन उंकी कार्यकारिणी मां बहुमत नं विश्वास देखाइस। एक ऽ पासलऽ कृपलानीजी नं आपलो काही फायदा नही करीस। वो जहर पीईस अन अध्यक्षपद ल अलग भयो।

उपर्युक्त हलबी अंश के कतिपय शब्दों पर टिप्पणी कर भाषा की परीक्षा करने का यत्न किया जाता है—

मां—यह अधिकरण का चिह्न खड़ी बोली के "मे" अर्थ मे अवधी मे प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

संस्कृत—मध्य—प्राकृत—मज्झहि—पश्चिमी हिन्दी—माहि—अवधी—मां—हलबी—मां।

भयो—भूतकालिक क्रियापद। पश्चिमी हिन्दी ब्रजभाषा के कन्नौजी रूप में अत्यधिक प्रयुक्त है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार लगायी गई है—

संस्कृत—भवति—प्राकृत—भविओ—ब्रज—भयो—हलबी—भयो।

नही—खड़ी बोली का रूप है।

वोकी—संबन्धवाचक सर्वनाम है। अवधी रूप बहि कर, बहिकी—बुन्देली–ओकी, वाकी—हलबी—वोकी।

होणार—यह मराठी का भविष्यकालिक क्रियारूप है।

डरान्या—पश्चिमी हिन्दी—खड़ी बोली डरना का भूतकालिक एक वचन डरा, ब्रजभाषा "डरानो" का बहुवचन "डराने" होता है, इसीलिये हलबी में डरान्या बन गया।

लेइस—छत्तीसगढ़ी भूतकालिक क्रियारूप है। अवधी लिहिस—छत्तिसगढी—लेइस।

बरोबरच—यह 'बराबर' का मराठीकृत रूप है। इसके साथ वाक्य में 'च' प्रत्यय खड़ी बोली "ही" के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है जो दक्खिनी और नागपुरी हिन्दी में भी प्रचलित है।

---

* देखिये वही—पृष्ठ २४६।

अस्यो—खडी वोली "ऐसे" के अर्थ में प्रयुक्त है। इसका पश्चिमी हिन्दी में "ऐसो" रूप होता है। यह मराठी "असा" से अस्यो बना प्रतीत होता है।

ल—यह सम्प्रदान प्रत्यय है जो छत्तीसगढी में खूब प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति प्राकृत "ले" प्रत्यय से लगायी जा सकती है।

भाषा के व्याकरण रूप की परीक्षा से निम्न तथ्य प्रकट होते हैं —

(१) क्रियापदो के सभी भूतकालिक रूप भयो, आयो, डराया, लेईस, आदि पूर्वी या पश्चिमी हिन्दी के है।

(२) क्रियापद का भविष्यत्कालिक रूप—होणार—सर्वथा मराठी का है।

(३) बल देने के लिये "ही" के अर्थ में "च" का प्रयोग मराठी का है जिसने नागपुरी और दक्खिनी हिन्दी में प्रवेश पा लिया है।

(४) "भी" के अर्थ में मुध्दा का प्रयोग मराठी का है।

(५) सर्वनाम रूप अस्यो, उकी और "वो" प्रयुक्त हुए है। अस्यो में मराठीपन है और उकी तथा वो क्रमश खडी वोली के "उनकी" और "वह" के बोलचाल के उच्चरित रूप हैं।

(६) विभक्तियां प्राय सभी पश्चिमी हिन्दी की हैं। अपादान की 'ल' विभक्ति छत्तीसगढी की हैं।

(७) कोष्ठी हलवी के अश में चौहत्तर शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनमें 'हरकत' शब्द शुद्ध मराठी का है जो आपत्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। शेष सभी शब्द हिन्दी के हैं अर्थात् सस्कृत के तत्सम या तद्भव हैं। पार्टी, जतर और मजाक शब्द यद्यपि विदेशी हैं तो भी वे हिन्दी में इतने अधिक प्रचलित हो चुके है कि उसी के अग बन गये हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि बस्तरी हलवी में छत्तीसगढीपन और मराठीपन हैं, परन्तु मराठीपन इतना कम है कि ग्रियसन को स्पष्ट शब्दो में कहना पडा कि इसे मराठी की सच्ची उपबोली नही कहा जा सकता। नागपुरी कोष्टी में तो स्पष्ट ही हिन्दीपन अधिक हैं, परन्तु चादा, विदर्भ आदि स्थान में जो हलवी वोली जाती है उसमें हिन्दीपन बहुत कम है। सन् १९५१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार बस्तर के बाहर चादा जिले के हलवी बोलनेवालों की सख्या अधिक है। चादा में तेलुगु और मराठी भी वाली जाती हैं। अतएव चादा की हलवी पर मराठी का प्रभाव अधिक हो सकता है। परन्तु बस्तर-काकेर में इसकी सभावना नहीं दिख पडती। हलवी भाषा-भाषी तो मराठी को वैकल्पिक अथवा दूसरी भाषा के रूप में वोलते भी नही है। बस्तर-काकेर में कभी मराठी भाषा का व्यापक प्रचलन रहा है, ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। इसके विपरीत हिन्दी या हिन्दुस्तानी के व्यापक प्रचार के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। सन् १७६६ में बगाल के गवनर के निर्देश से टी मोट्टे (T Motte) ने मध्यप्रदेश के बस्तर-काकेर होते हुए यात्रा की थी। उसका वर्णन 'अर्ली यूरोपियन ट्रेवलर्स इन दि नागपुर टेरिटरीज' (नागपुर क्षेत्रों में प्रारम्भिक युरोपियन यात्री) में मुद्रित हुआ है। उसमें वह लिखता है–अप्रल ७ आज प्रात लगभग ८ बजे मुझसे कहा गया है कि काकेर का राजा सामसिंह आ रहा है। अभिवादन के पश्चात् मैने उससे उत्तरीय सरकार (नादर्न सरकार्स) के मार्ग में पडने वाले भू-भाग के सम्बन्ध में प्रश्न किए। राजा ने स्वय अनेक विविध प्रश्नों के उत्तर दिये। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि राजा हिन्दुस्तानी भाषा बडी धारा प्रवाह-गति से वोल रहा था।* काकेर और बस्तर हलबी भाषा प्रधान क्षेत्र है और वहा का राजा १८ वीं शताब्दी में हिन्दुस्तानी सहज गति से बोल सकता था। हो सकता है वह अपनी मातृभाषा हलवी बोल रहा हो जिसे मोट्टे ने हिन्दुस्तानी समझा हो। हो सकता है, वह हलवी के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी भी जानता हो। हिन्दुस्तानी उस समय भी अन्त-

---

* "I was surprised to find him speak the Hindustany Language with great fluency'
(Early European Travellers in Nagpur Territories—Page 132)

प्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। सन् १७९५ में बंगाल-सरकार ने केप्टिन ब्लंट को कुछ सिपाहियों के साथ बरार-उड़ीसा और उत्तरीय सरकार के बीच मार्ग खोजने के लिए रवाना किया था। वह कोरिया, कांकेर, खैरागढ़-सिरोचा (चांदा) होते हुए निजाम राज्य की ओर बढ़ गया था। जब वह चादा जिले मे पहुंचा तो मालेवाडा के गोंड राजा से उसकी खटपट हो गई। ब्लंट के पास मराठो का परवाना था जिसकी राजा ने जरा भी परवाह नही की। अतः ब्लंट उसे वस्तुस्थिति समझाना चाहता था। वह लिखता है " A man called his Dıwan; who spoke a little bad Hindi was the interpreter between us," एक आदमी जो उसका दीवान कहलाता था और जो तनिक गलत हिन्दी बोलता था, हमारे बीच दुभाषिए का काम करता था। (देखिये 'ब्रिटिश रिलेशन विद दि नागपुर स्टेट इन दी एट्टीन्थ सेन्चुरी'–पृष्ठ१२९)। ग्रियर्सन के पूर्व छत्तीसगढ़-रियासतो के पोलिटिकल एजन्ट इ. ए. ब्रेट आई. सी. एस्. ने "छत्तीसगढ फ्यूडेटरी स्टेट्स" नामक ग्रन्थ मे बस्तर की भाषाओं के सम्बन्ध मे लिखा है—" Chief Languages used in the State are Hindi, Halvi, Telugu, and the various dialects of Gondi. Halvi is a corrupt form of Chhatisgarhi Hindi and is spoken by over 1,00,000 people in the Northern part of the state where Hindi is also spoken by 21,000" (रियासत मे जो प्रमुख भाषाएं बोली जाती है, उनमें हिन्दी, हलवी, तेलगु, और गोंडी की विभिन्न बोलिया मुख्य हैं। हलवी छत्तीसगढ़ी हिन्दी का विकृत रूप है और उत्तर भाग के एक लाख से ऊपर व्यक्ति उसे बोलते है जहां हिन्दी बोलने वालों की संख्या भी इक्कीस हजार है)। ब्रेट ने ग्रियर्सन के भाषा-सर्वे के पूर्व बस्तर कांकेर की हलवी पर अपने विचार प्रकट किये थे।

सन् १७९६ में युरोपियन यात्री मोट्टे और सन् १९०९ में प्रकाशित छत्तीसगढ़ के पोलिटिकल एजेन्ट ब्रेट के 'छत्तीसगढी फ्यूडेटरी स्टेट्स' ग्रन्थ मे हलवी को हिन्दी के अन्तर्गत ही माना है। संभव है, उन्होंने लोगो की बोली सुनकर ही अपनी धारणा बनाई हो। पर ग्रियर्सन ने काकेर की हलवी के लिखित नमूने की छानबीन की और यह निष्कर्ष निकाला कि यह मराठी की उपभाषा तो निश्चित ही नही है पर इसे हिन्दी के अन्तर्गत भी नही रखा जा सकता क्योंकि इसमे सम्बन्धकारक 'च' और भूतकालिक " ल " प्रत्यय पाये जाते है जो मराठी भाषा की विशेषता है। हम पहले ही बतला चुके है कि भूतकालीन " ल " प्रत्यय पूर्वी हिन्दी में भी विद्यमान है, अब रह जाता है सम्बन्धकारक " च " प्रत्यय। हलवी में सम्बन्धकारक " च " (चो) प्रत्यय ही नही, 'के' प्रत्यय भी प्रचलित है, जो निश्चय हिन्दी का है। यह ".च" या " चो " प्रत्यय बस्तर-कांकेर मे कैसे और कब से प्रविष्ट हो गया, इस पर भी विचार करना उचित होगा। यदि हलवी लिखित भाषा होती तो उसके प्रवेश का समय साहित्य के अध्ययन से निश्चित हो सकता था। अत. हमे, ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही अनुमान लगाना होगा।

बस्तर और कांकेर राज्य यों तो बहुत समय तक स्वतंत्र रहे है पर जब अठारहवीं शताब्दी में मराठों का उत्कर्ष हुआ और उन्होने अपने राज्य का विस्तार किया तब ये रियासते नागपुर शासन के अन्तर्गत आ गई। छत्तीसगढ़ मे रायपुर और रतनपुर में तो मराठों का सीधा शासन रहा था। पर बस्तर और कांकेर राजाओं से उनकी वार्षिक कर और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता की ही शर्त थी।

सन् १८३० मे बस्तर के राजा ने वार्षिक कर के बदले में अपने राज्य का सिहावा परगना नागपुर के शासन को दे दिया था। ऐसी स्थिति में यदि सिहावा में मराठों की सेना के रहने से मराठी भाषा का " च " हलवाओ मे " चो " होकर पहुंच गया है तो कौनसा आश्चर्य है? बस्तर से अधिक मराठो का सम्बन्ध काकेर से रहा है। 'छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स' मे ब्रेट लिखता है "Under Maratha Kanker State was held on condition of furnishing a military contingent of 500 strong whenever needed," (पृष्ठ८) (मराठों के शासन-काल में कांकेर आवश्यकता पड़ने पर ५०० सबल सैनिक देने की शर्त में बधा हुआ था) सेना मे उत्तर और पश्चिम के हिस्से से सैनिक भर्ती होते

थे,जो (पछाहीं होते हुए भी) पुरबिया और मराठे कहलाते थे। छत्तीसगढ़ में मराठों के समय में शासन की क्या व्यवस्था थी, इसका वर्णन सन् १७९५ में ब्लन्ट नामक अंग्रेज ने किया है—"Their troops, who are chiefly composed of emigrants from the northern and western parts of Hindustan, are quartered upon the tenantry who in turn for accomodation and subsistence they offered them, require their assistance, whenever it may be necessary, for collecting the revenues (देखिये ब्रिटिश रिलेशन्स विद नागपुर स्टेट् इन दी एट्टीन्थ सेन्चुअरी, पृष्ठ १३२ और १३३) मराठा की फौजें जिनमें उत्तरी और पश्चिमी हिन्दुस्थान के जवान थे, किसानों के बीच रह कर उनसे लगान वसूल करते और कराते थे। कृषक और सैनिकों की भाषाएं स्वभावतः एक दूसरे से प्रभावित होती रही होंगी।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि—बस्तर और कांकेर जिले की हलबी मुख्यतः हिन्दी भाषा की एक उपबोली है और चांदा तथा विदर्भ के कुछ भाग में बोली जाने वाली हलबी मराठी से आक्रान्त होने के कारण मराठी की उपबोली कही जा सकती है।

बस्तर और कांकेर की हलबी में "च" या "चो" प्रत्यय को छोड़कर प्रायः सभी मुख्य प्रवृत्तियां पूर्वी हिन्दी की पाई जाती हैं। उसमें मराठी का सम्बन्धकारक का केवल "च" प्रत्यय ही नहीं है, हिन्दी का "के" प्रत्यय भी विद्यमान है। ऐसा जान पड़ता है कि उसमें "च" अथवा "चो" प्रत्यय के मराठों के सम्पर्क से प्रविष्ट हो गया है। हलबी का व्याकरणिक ढांचा पूर्वी हिन्दी का है। उसमें समीपवर्ती उड़िया, तेलगु, गोंडी आदि भाषाओं के थोड़े बहुत शब्दों के प्रवेश से उसे अहिन्दी-परिवार की नहीं कहा जा सकता।

छत्तीसगढ़ी बोली

श्री काशीप्रसाद मिश्र

किसी भी वोली का जव लिपिवद्ध रूप हो जाता है और वह काफी वड़े क्षेत्र मे एक ही ढंग पर वोली और लिखी जाने लगती है तव वह भाषा कहलाती है। यह भी कोई एकदम वंधा हुआ नियम न समझना चाहिये। एक भाषा की अनेक उपभाषाएं हो सकती है और एक वोली की अनेक उपवोलियां। फिर एक ही वोली कभी भापा भी कही सकती है कभी वोली ही। अवधी राष्ट्रभापा हिन्दी की एक वोली मात्र है परन्तु वेला परतापगढ़ी, जौनपुरी, आदि की तुलना में उसे निःसंदेह भापा मानना होगा। पूर्वी हिन्दी की दृष्टि से छत्तीसगढ़ी केवल मात्र एक वोली ही है क्योकि यह उसी की एक शाखा मात्र है परन्तु 'लरिया' (सम्वलपुर जिले के पास की छतीसगढ़ी) 'खलौटी' (वालाघाट जिले के पास की छत्तीसगढ़ी) आदि के विचार से उसे एक भापा भी कहा जा सकता है। हिन्दी के नाते तो निश्चयपूर्वक उसे हम एक वोली ही कहेंगे।

जो वोली लिपिवद्ध नही होती उसमें जल्दी-जल्दी और थोड़ी-थोडी दूर पर ही परिवर्तन हो जाया करते हैं। छत्तीसगढ़ी की अपनी कोई विशिष्ट लिपि कभी रही ही नही। वह यदि हिन्दी लिपि (देवनागरी लिपि) में लिपिवद्ध हुई भी है तो वहुत कम। इसीलिये वह उत्तर की ओर वघेली से, पूर्व की ओर उड़िया से, दक्षिण की ओर तेलगू से और पश्चिम की ओर मराठी से प्रभावित हो गई है। आज यह समस्या है कि छत्तीसगढ़ी का वह कौन सा रूप होगा जिसे हम सर्वसम्मत कह सकें।

जब कि छत्तीसगढ़ शव्द ही आधुनिक है तव उस नाम से प्रसिद्ध "छत्तीसगढी" को इस क्षेत्र की मूल वोली मानना सयुक्तिक न होगा। छत्तीसगढ़ की जातियों का इतिहास भी यह वताता है कि उनमें से अधिकांश वाहर से आई हुई है। उनमें से अनेक तो अभी भी घरो में अपनी अपनी विशिष्ट वोलियां वोला करती है। पारस्परिक व्यवहार के लिये उन्होने अलवत्ता उस वोली को अपना लिया जो कदाचित् इस महारण्य के छत्तीसगढ़ के स्वामी हैहयवंशी कलचुरियो की वोलचाल की वोली रही हो अथवा जो उत्तरप्रदेश से आई हुई वहुसंख्यक जातियों की वोली हो। उसी का नाम पड़ गया होगा छत्तीसगढ़ी।

अवधी और छत्तीसगढ़ी का इतना अधिक मेल है कि एक वोली वोलने वाला मनुष्य दूसरी वोली को बड़ी सरलता से समझ लेता है। हमने तो एक उत्तरप्रदेशीय को यह कहते सुना था कि "कावर, कसगा, तोला, मोला, सिरतोन, लवारी, गौकी, वाप की" नामक सूत्र याद रख लिया जाय तो छत्तीसगढ़ी सीखे विना ही उसे छत्तीसगढ़ी आ जायगी, क्योंकि इतने ही शव्दों का प्रयोग अवधी को सरलतापूर्वक छत्तीसगढ़ी रूप देने के लिये पर्याप्त है। नि.सदेह यह उक्ति की अतिरंजना है परन्तु फिर भी यह दोनो वोलियों के घनिष्ट सान्निध्य का पर्याप्त संकेत तो कर ही देती है।

अवधी और छत्तीसगढ़ी में पर्याप्त साम्य होते हुए भी दोनों में अव पर्याप्त वैभिन्न्य हो गया है। पूर्वकाल में कोसल तो एक ही था परन्तु वही क्रमशः उत्तर और दक्षिण कोसल मे विभक्त हो गया। इस दक्षिण कोसल मे (छत्तीसगढ में) जव उत्तर कोसल की वोली आई या पनपी तव यहां का स्वतत्र भौगोलिक वातावरण पाकर कालान्तर में वह उत्तर कोसल की वोली से पृथक् होती चली गई और आज वही इतनी पृथक् हो गई है कि उसे अवधी कहा ही नहीं जा सकता।

एक ही बोली जब दो प्रदेशों में बट जाती है तो प्रदेश-प्रदेश के अनुसार उच्चारण-सौन्दर्य या मुख-सुखता के कारण एक ही शब्द दो तरह बोला जाने लगता है। बोलियों में भेद पैदा करने का यह बहुत बडा कारण हो जाता है। संस्कृत फारसी आदि के तत्सम शब्द इसी मुख-सुखता के कारण जगह-जगह अनेकानेक तद्भव शब्दों के रूप में परिवर्तित हो गये और इसी मुख-सुखता के कारण अवधी के शब्द भी छत्तीसगढी में कहीं-कहीं अपना नया सा रूप ले बैठे हैं। कुछ सना शब्दों का मुलाहिजा हो जिनका रूप छत्तीसगढी में क्या से क्या हो गया है। पृथ्वी पिरथी बन गई और हृदय हिरदे होगया यह तो ठीक, परन्तु हृष्ठ राठ बन गया और सत्य सिरतोन बन गया है। पूछ लम्बी होकर पूछी बन गई है और मुह गोल होकर मुहु बन गया है। चरित्र चरित्तर होगया और ज्ञान हो गया है गियान। ईंट पत्थर ईंटापथरा बन गये, मूर्ति ने मुरित का रूप ले लिया, स्वयं सँवागे बन गया और गोष्ठी ने गोठ का रूप धारण कर लिया। रुमाल बढकर उरमाल बन गया और इच्छा बन गई है हिच्छा। तिसना, सीत और भाखा सरीखे अनेकानेक तद्भव शब्द अवधी और छत्तीसगढी में अपना रूप एक समान बनाए हुए है।

सभव है कि किसी एक ही 'अपभ्रश' से उस ओर अवधी (उत्तर कोसली) का और इस ओर (छत्तीसगढी' (दक्षिण कोसली) का विकास हुआ हो। यहा न तो क्रियापदों में कोई लिंगभेद माना जाता है और न सम्बन्धकारक के चिह्न में ही लिंगभेद विषयक किसी प्रकार की विकृति होती है। 'राम का बेटा' और 'राम की बेटी' के लिये एक ही प्रयोग होगा 'राम के बेटा-राम के बेटी'। 'तू जाता है' और 'तू जाती है' के लिये एक ही प्रयोग होगा 'त जात हस'। (इसीलिये तो हिन्दी के लिंगभेद के प्रयोग में कभी-कभी पढे लिखे बालक भी असावधानी से विपर्यय कर बैठते है और वह उठते है 'मेरा मा बाजार गया था और मेरी बाप घर में थी'), यह भारत की पूर्वी बोलियां का बगला, उडिया आदि का प्रभाव है। अवधी (बैसवाडी) में ऐसी गडबडी नही है। छत्तीसगढी में कर्ताकारक के चिह्न स्वरूप 'हर' का प्रयोग होता है जैसे 'मै हर जात रहेव' 'ओ हर करिस'। इसका अवधी में पता नहीं चलता। इसी प्रकार के अन्य भी कई प्रयोग मिल जायेंगे जो पूर्वोल्लिखित बात की पूर्ति कर सकते है।

उत्तर कोसली में जिस प्रकार घोडा के घोडवा और घोडवना (घोडौना—घोडउना) सरीखे रूप मिलते है उसी प्रकार छत्तीसगढी में भी मिल सकते है। टोनहा, कछेरिया, नचकार सरीखे शब्द इधर भी सना-शब्दों से बना लिये जाते है। रोना से रोआगी, तैरन से तउराक, गिजर (हसने) से गिजरा सरीखे क्रियापदों से बने शब्द यहा की बोली में भी पाय जायेंगे, परन्तु तर तम सरीखे तुलनात्मक प्रयोगों के लिये न अवधी में कोई अच्छा पर्याय मिलेगा न छत्तीसगढी में। 'सुन्दरतम' को यहा की बोली में समझाया जायगा "सब्बो ते बटियन निचट सुन्दर"।

यहा की क्रियाओं में भी द्विवचन नही होता। उनका वर्तमान कालिक रूप, 'चलना' क्रिया पद के साथ इस प्रकार होगा —मैं चलत हो, हम चलत हन, त चलत हस तुम चलत हो, ओ चलत है, उन चलत हैं। भूतकालिक रूप इस प्रकार होगा — म चलेव, हम चलेन, तैं चले तुम चलेव, ओ चलिस, उन चलिन। भविष्यकालिक रूप इस प्रकार होगा —म चलिहौं, हम चलब, तैं चलबे, तुम चलिहो, ओ चलिहैं, उन चलिहैं। सदिग्ध रूप इस प्रकार होगा — म चलत होहौं, हम चलत होब, तैं चलत होबे, तुम चलत होहो, ओ चलत होहै उन चलत होहैं। परन्तु छत्तीसगढी में एक विचित्र बात यह है कि क्रियापदों के व्यवहार में शिष्ट लोगों का प्रयोग अलग रहा करता है और अशिष्ट लोगों का अलग। देहाती चमारों की छत्तीसगढी यदि कोई शहराती दाउओं और पण्डितों के बीच बोलने लगे तो उपहास का पात्र बन जाय। अन्तर देखिये। वर्तमानकालिक रूप अशिष्ट लोगों के बीच इस प्रकार रहेगा — मैं चलत हवौं, हम चलत हवन, त चलत हवस, तुम चलत हवो, ओ चलत हवे, उन चलत हव। भविष्य कालिक रूप इस प्रकार होगा —मैं चलहू, हम चलबो या चलबोन, तैं चलबे, तुम चलहू, ओ चलही, उन चलहीं। सदिग्ध रूप इस प्रकार होगा — मै चलत होहू, हम चलत होबो, त चलत होबे, तुम चलत होहू, ओया आहर चलत हाही, उन चलत होहीं। भूतकालिक रूप अलबत्ता ज्यो का त्यो मिल जाता है।

छत्तीसगढ़ी मे कारक चिह्न प्राय. इस प्रकार होते हैं :—कर्ता में हर; कर्म मे का, खा या ला, करण मे ले या से, सम्प्रदान मे का, खा, ला या वर; अपादान मे ले, या से; सम्बन्ध में के; अधिकरण में मा, में या ऊपर, सम्वोधन मे गा, गे, हे, ए, ओ, या अओ। हीरालाल काव्योपाध्याय द्वारा लिखित तथा डाक्टर ग्रियर्सन द्वारा अनूदित छत्तीसगढ़ी के एकमात्र व्याकरण ग्रंथ में लिखा है कि "तीस वर्ष पहिले करण या अपादान कारक के चिह्न "ले" का प्रयोग अधिक होता था। अब 'से' के प्रयोग का जोर बढ रहा है।" इस व्याकरण को भी लिखे हुए ३४ से अधिक वर्ष व्यतीत होगये। बोली के विकास में तब की अपेक्षा अब और अधिक अन्तर आगया है। उदाहरणार्थ कर्म और सम्प्रदान के "का" की जगह "खा" का प्रयोग ही देख लिया जाय।

वहुवचन के लिये प्राय: "मन" का प्रयोग होता है, जैसे "वइला मन' या ओ मन' जो कभी-कभी संक्षिप्त होकर वन जाता है 'बइलन" या 'उन' (उन जात रहिन—वे लोग जाते थे)। 'हर' कभी वहुवचन मे, कभी आदरार्थ (आदरार्थे वहुवचनम्) में प्रयुक्त होता है और कभी कर्ताकारक एकवचन मे, बिना किसी खास मतलब के प्रयुक्त हो जाता है। कदाचित् इसमें कुछ वुन्देली प्रभाव भी सम्मिलित होगया है। निश्चयात्मकता के लिये ही, ठिन, ठन, ठों, ठक, ठिक आदि का प्रयोग होजाता है। वङ्गाली और उड़िया में यही बात टा-टि-टी आदि मे देखी जाती है। ही का प्रयोग दूसरे ढंग की निश्चयात्मकता के लिये हिन्दी में सर्व प्रचलित है, जैसे मै नही ही जाऊंगा। इसके लिये छत्तीसगढ़ी मे "च" का प्रयोग होता है (जो अवधी की दृष्टि मे विचित्र ही सा लगता है), जैसे मैं नहिच जावं। यही संक्षिप्त होकर वन जाता है "मैं" नीच जावं, "मी" के लिये 'हूं' का प्रयोग अवधी मे भी है और यहा भी। "महूं अर्थात् मै भी।

संज्ञा से क्रियापद बनाने के कई सुन्दर उदाहरण छत्तीसगढ़ी में भी विद्यमान है। जैसे, गोठियाइस (उसने वात की) उहरियाइस (उसने रास्ता पकड़ा), थपरियाइस ((उसने थप्पड़ लगाये), सधाइस (उसने साध की), करियाइस (वह काला पड़ गया) इत्यादि। खड़ी बोली हिन्दी मे न जाने क्यो यह प्रवृत्ति कुठित होगई है। राष्ट्रभाषा हिन्दी को चाहिय कि वह छत्तीसगढ़ी का यह गुण अपना ले।

काल-मान का बोध कराने के लिये कुछ सुन्दर शब्द-प्रयोग छत्तीसगढ़ के देहातों मे प्रचलित है। ब्राह्म मुहूर्त से लेकर निशीथ तक के भिन्न-भिन्न कालमान का संकेत इस प्रकार दिया जाता है :— पहट ढीले के बेर, कुकरा बासत वेर, पहाती, सुआरी नहाए के वेर, खरिखा मढ़ाए के बेर, आगी बारे के वेर, भइंसा अन्धियार के वेर, सोआ परे रात के बेर। वेर या वेला ही को कही खनी और कही बखत या वेरा भी कह दिया जाता है।

कुछ मजेदार, कहावतो और पहेलियों के नमूने देखिये :—मन माड़ गइस (चित्त स्थिर हो गया—प्रसन्न हो गया), मै सूत भुलाएव या सूत भुलाएं (मै इतना सो गया कि समय का भान ही न रहा), ओकर सुताई बूता तो देख (देखो तो उसने किस तरह सोने ही को मानो अपना धन्धा बना लिया है—कितना अन्धाधुन्ध सो रहा है वह)। "खस्सू बर तेल नही घोडसार वर दिया" (अपनी खाज में लगाने के लिये तो उसे तेल नहीं मिल रहा है परन्तु अश्वशाला तक मे दिया जलाने की ठसक दिखा रहा है)। "धूर मा सूतै सरग के सपना" (लेटा हुआ तो है धूल मे और कल्पना कर रहा है स्वर्ग के वैभव-विलासों की)।' हपटे बन के पथरा फोरे घर के सील" 'ठोकर तो खाता है वन के पत्थर से और झुंझलाकर बदला लेने की नीयत से फोड़ रहा है अपने ही घर की सिल को)।" "मोर ममा के नौ सौ गाय, रात चरे दिन वेड़े जाय" अथवा "पर्रा भर लाई, गने न सिराई" (इन पहेलियो का उत्तर होगा "तारागण")। माटी के बोकरा चोकरा खाय, थोरे मारे अधिक नरियाय" (उत्तर होगा "मृदंग" अथवा "मांदर बाजा")।

हम पहिले ही कह आये है कि छत्तीसगढ़ मे व्याकरण ग्रन्थ केवल एक मात्र लिखा गया है और वह भी ३४ वर्ष पूर्व। कोष ग्रन्थ तो नाम मात्र को नही है। शिलालेख या ताम्रपत्र इस बोली में लिखा हुआ एक आधा ही मिलता

है। पुराना लिखित साहित्य एकदम नही के बराबर है। हाल-हाल में कुछ लोगो ने कतिपय छोटी छोटी पुस्तकें इस बोली में लिख डाली है, जिनमें से कुछ पर्याप्त लोकप्रिय भी हुई है। जैसे छत्तीसगढी दान लीला। परन्तु स्थायी साहित्य की दृष्टि से उनका मूल्याङ्कन करना एक समस्या ही है। जनपदीय बोलियो और उनके समुचित विकास की ओर अब कतिपय विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हुआ है और समय की गति की परख कर के कुछ पत्र-पत्रिकाओ ने, तथा आकाशवाणी के सचालको ने भी, कुछ स्थान छत्तीसगढी के लिये भी सुरक्षित रखना प्रारम्भ कर दिया है। रायपुर से तो हाल-हाल ही में एक काफी अच्छी कोटि की मासिक पत्रिका विशुद्ध छत्तीसगढी ही में निकलने लगी है। अतएव वह दिन दूर नही है, जब छत्तीसगढी के सुन्दर-सुन्दर शब्द और प्रयोग समग्र हिन्दी भाषी जनता के समक्ष होगे तथा वर्तमान हिन्दी की समृद्धि लिखित छत्तीसगढी द्वारा इस भूखण्ड के साधारण जनो तक को सुलभ हो जायगी, परन्तु यह सब लिखने का यह अर्थ नही है कि छत्तीसगढी में साहित्यिक चेतना का कभी किसी प्रकार अभाव रहा है। इसमें लिखित साहित्य का अभाव भले ही रहा हो, परन्तु मौखिक साहित्य की सामग्री तो प्रत्येक काल में प्रचुर मात्रा में विद्यमान रही है। इसके ग्राम्यगीतो की प्रथा, जिसमें कई जगह नई-नई पक्तिया बना कर प्रश्नोत्तरी के ढँग पर युवको और युवतियो को तुरन्त के बनाये हुए अपने पद्य सस्वर सुनाने पडते है, देवारो द्वारा रची और गाई हुई इसकी वीर गाथाएँ, इसकी मनोरजक तथा कौतूहलवर्धक कहानिया, जिनमें प्रेम और युद्ध की अनोखी-अनोखी घटनाएँ भरी पडी है, किसी भी प्रान्त के ऐसे साहित्य से टक्कर ले सकती है।

छत्तीसगढ़ी का लोक-साहित्य

श्री प्यारेलाल गुप्त

भारतवर्ष के कोने-कोने मे शक्ति की पूजा होती है और उसके लिए नया वर्ष अर्थात् चैत्र के प्रथम नौ दिन और फिर ठीक छः माह वीतने पर कुंवार शुक्ल पक्ष के नौ दिन निश्चित है। शक्ति की यह पूजा क्या नगर, क्या गाव—सभी जगह होती है। छत्तीसगढ़ का जनजीवन भी इस अवसर पर गीतों के स्वरों मे राग-रागनियों को उतारने लगता है। भक्ति का अविराम भक्ति-धारा सारे प्रदेश मे गूज उठती है—

मैया, भुवन को अजब बनायो।

काहे न काट के भुवन बनाये मैया, काहि न काट दुआरे हो माय।
पहिरी फोरि के भुवन बनाये मैया, पाहन फोरि के दुआरे हो माय,
काहे न काटि के ईट बनाये मैया, काहे न के गिलावा हो माय,
सोनन काटि के ईट बनाये मैया, चांदिन के गिलावा हो माय,
कै कोसन के भुवन बनाये मैया, कै कोसन चहुँ फेर हो माय,
दसै कोसन के भुवन बनाये मैया, बीसे कोसन चहुँ फेर हो माय।

"आज शक्ति की स्थापना का दिन है, अतएव उसके लिए भवन बनाने की कल्पना की गई है, जिसकी नीव भरने के लिए पहाड़ फोड़ कर पत्थर निकाले जायेंगे। ईंट स्वर्ण की वनेगी और तरल चान्दी से गारा तैयार किया जायगा। चन्दन के उस चूने से उस भुवन की पोताई होगी, जिसमें अवरक का मिश्रण होगा। भुवन दस कोस का बनेगा और उसकी चौहद्दी वीस कोस की होगी।"

दिन में इस तरह नाना प्रकार की कल्पनाओं मे लगा मानव-समुदाय रात को वारह मासा मे मस्त हो जाता है। वर्षा ऋतु किसानों के जीवन-धन के रूप में प्रतिष्ठा पाती है। ऊपर मेघों से आच्छादित सघन गगनमण्डल को देख कर उसका मन-मयूर नाच उठता है और उसका कवि जाग जाता है :—

सावन बुंदिया रिमझिम बरसै, भादों गहिर गम्भीर हो माय।
कारी-कारी निसि अंधियारी, बिजुरी चमकि रहि जाय हो माय।
क्वांर महीना नौमी दसहरा, घर घर मानत हंय तिहार हो माय।
कातिक महीना धरम के हो मैया, तुलसा म दियना जलाय हो माय।
अगहन मास अगम के हो मैया, पूसे म लगत हय दुसाला हो माय।
माघ महीना मोरे अमुवा के डारी, फागुन रंग-गुलाल हो माय।
चैत मास वन टेसू फूलें मैया, बैसाखे म जुही नेवारी हो माय।
जेठ मासे घन पतिया पठोये, जावत लगे हो असाढ़े हो माय।

रामनौमी के दिन छत्तीसगढ़ के प्रत्येक गांव तथा नगर मे नेवरात का जलूस निकलता है। नवरात्र म घट-स्थापन के साथ-साथ, भूमि पर बास की आयताकार चौहद्दी वना कर अनाज भिगोये जाते है, जिन्हे "विरही" कहत है, और ये ही पौधे वढ़ कर पीले-पीले अति सुन्दर दिखाई देने लगते है, जिन्हे स्त्रिया सजा कर सिर पर रख कर तालाव या

गदी में ठडा करो जाती हैं। मग में गाव के स्त्री-पुरुष, लडके-लडकियो का जलस चलता है। नेवरात को ल "जवारा" भी कहते हैं।

प्रतिदिन हरियाना के बीच सावन सुदी नौमी आ जाती है और स्त्रियो तथा लडको मे हलचल मच जाती। आज के दिन छोटी-छोटी टोकरियो में अनाज बोया जाता है और देवी के गीत गाये जाते है —

देवी गगा, लहर तुरगा,
तुहरे लहर परभू, भीजो आठो अगा, अहो देवी गगा।
पानी बिन मछरी, पवन बिन धान,
सेवा बिन भोजली के तरसे प्रान, अहो देवी गगा।
गगा हूप गहिला, समुन्द चले लहरा,
हमरे भोजलि देवि के, लागें हवे पहरा, अहो देवी गगा।
माडी भर जोंधरी, पोरिस कुसियारे,
जल्दी जल्दी बढ़ो भोजली, होवा हुसियारें, अहो देवी गगा।

रक्षा-बन्धन के दिन जब भुजलियो का जलूस गाते हुए निकलता है, तब कई गीत गाये जाते हैं। भोजलि तालाब में ठडी कर दी जाती है और बडी रात तक गाव के युवा-युवति, लडके-लडकिया भोजली भेंट कर बडो के पैर और आशीष प्राप्त करते हैं।

भादो की गणेश चतुर्थी को गाव के पुराने गौटिया के यहा परम्परा के अनुसार गणेश जी की मूर्ति स्थापि की जाती है। इस अवसर पर विभिन्न वाद्य-यन्त्रो के साथ नृत्य और भजन होते रहते हैं। इन नाच-गानो में जो ग गाये जाते है, वे विभिन्न प्रकार के होते है, जैसे—प्रभाती, दादरा, लावनी, भजन, दोहे, आदि। कुछ गीतो का उनका अपना थाप रहता है। कुछ गवैये अपने गीतो में शास्त्रीय सगीत का भी पुट देने लगे हैं। यहा तक कि सिने गीता की भी उन पर छाया पड गई है। कुछ गीतो में राधाकृष्ण की प्रेम सम्बन्धी लीलाओ का वर्णन विशेष से रहता है। कुछ भक्तिभाव से परिपूर्ण रहते है —

सावलिया को आरति लागी हो,
लाल काहेन के दियना करो, काहेन करो बाती हो,
काहेन के तेल जराय के बारो सारी राती हो।
अरे लाल या तन के दियना, मनसा करो बाती,
प्रेम के तेल जराय के बारों सारी राती हो।
अरे लाल सावन भादों, उहे बरसा रितु आई हो,
स्याम घटा घन घोर के मेघवा झर लाई हो।

इन उत्सवो मे कई गीत तो ऐसे गाये जाते है, जो विरह-भावनाओ से परिपूर्ण रहते है, और जिनमे अन्तव्य फूटी पड़ती है —

मोरे पिया गये परदेस, मोरे गुइया, पिया गइन परदेस,
न कोउ आवें, न कोउ जावें, न भेजिए सदेस।
कारनबर मैं मेंहदी रचायों, काहे सवारो केस,
कारनबर पकवान बनावों, कइसे सहों कलेस।

पिया बिन मोला* एको न भावे सास-ससुर के देस,
खोजेवर उनला मैं जाहौं घर वैरागिन भेस।
ठेंवत रहिथें ननद जेठानी लगिस करेजवा मा ठेंस,
महुरा† खाके मैं सुतजाहौं‡, मिटही मोर कलेस।

गीत कुछ ऐसी तल्लीनता से, कुछ ऐसे करुणापूर्ण और दर्दभरे स्वरों मे गाया जाता है कि लोगों की आखे भर आती है। उनके तवले की मन्द ठनक और मंजीरे की सुरीली झनक की सम्मिलित स्वर-लहरियां सारे वातावरण को वियोग-जन्य मधुर पीड़ाओं से भर देती है।

देखते-देखते चैत्र मास समाप्त हो जाता है, पर छत्तीसगढ़ के पार्वतीय-प्रदेश मे सवेरे काफी ठंड पड़ती रहती है। महुवे के फल टपकने लगते है। उन्हे वीनने के लिए टोकनी लिए कितने नवयुवक और नवयुवतियां महुओ के पेड़ों के नीचे जा पहुँचते है। महुआ वीनते-वीनते "ददरिया" का स्वर गूंजने लगता है। ददरिया—गीतो की रानी है। इसे कुछ लोग साल्हो भी कहते है। इसे वहुधा लोग सम्वाद के रूप मे गाया करते है। पुरुष तथा स्त्री दोनों इसमें भाग लेते हैं। प्रातःकाल प्रकृति के हरित परिधान की ओट से नीली साड़ी के घूघट-पट को धीरे-धीरे खोलते हुए ऊषा के आरक्त मुखमण्डल की पहिली झलक की शोभा के साथ ही कोई नारी स्वर हृदय को छू लिया करता है—

करै मुखारी करौंदा रूख के,
एक वोली सुनादे आपन मुख के।

तत्काल उसी ढँग की लम्वी तान में दूसरी ओर से पुरुष-कण्ठ उत्तर देता है :—

एक ठिन आमा के दुई फांकी,
मोर आंखिच आंखी झुलथै तोरेच आंखी।

ददरिया मे श्रृङ्गार के अतिरिक्त राष्ट्रीय-गीतों का वाहुल्य पाया जाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और देश के लाड़ले जवाहरलाल जी को लेकर कई छत्तीसगढी-ददरियां वन गई है। ददरिया मे मानव-हृदय की स्वाभाविक वृत्तियों का मनोवैज्ञानिक आधार पर सुन्दर चित्रण होता है। वे रहस्य और जीवन के जीवित-तत्त्वो से भरे रहते है।

फागुन मास लगते ही सारे प्रदेश में मस्ती छा जाती है। आम वौर उठते है और कोयल का राग वन-प्रदेश को झंकृत करने लगता है। गांवों के आदिमवासियों में भी मस्ती छा जाती है। वे नयी धोतियां और पगड़ियां खरीदते और लकड़ी के पुराने डंडों में तेल लगाते हैं, कोई-कोई नये डंडे भी वनवाते हैं। वर्प मे दो वार वे डंडा नाचते है—पहिली वार कुंवार में और दूसरी वार फागुन मे डंडा नाच कुछ अंशों में गुजरात देश के "गरवा नृत्य" के सदृश होता है। मुख्य अन्तर यही है कि डंडा—पुरुपों का नाच है और "गरवा" स्त्रियो का। डंडा नाच में पुरुप-गण गाते जाते है और उसी की लय में अपना डंडा दूसरों के डंडों पर मारते है, जिनकी एक सी सम्मिलित ध्वनि वडी अच्छी लगती है। एक आदमी "कुही" कह कर कुहकी पाड़ता है। इस संकेत पर नाचने वाले अपनी गति वदल देते है और वे मण्डलाकार खड़े हो जाते हैं। तव मुखिया डंडों और मांदर की ध्वनि पर पहिले वन्दना करता है :—

पहिली सुमिरौं गनपति गौरा, दूसर महदेवा,
फेर लेंव गुरु के नांव।
कंठ विराजे सरसती माता भूले अच्छर देय बताय,
जो अच्छर सुधि बिसरैहौं। लइहौं गुरू के नांव।
पाटी परा ले मोती भरा ले, झुमका लू रे मज पाट,
रैया रतनपुर अनमन जनमन गौने जाय मलार।

* * * *

---

* मुझे। † विष। ‡ सो जाऊँगी।

तरिहारी नाना मोर ना ना री ना ना
कुम्हरा के बोले, भया मितनवा
मोर बर घला गढ देय (उइ) (संकेत ध्वनि)
सब बर गढवे ऐसन तैसन
मोर बर मन चित लाय (उइ)
गघरी के नांव गागर मती कइना (कन्या)
गुडरी नगमत नांव (उइ)
दहरा के नाव बिछल मत दहरा
ठमकत पनिया जाय (उइ)
गुढरी गघरिया घठौंदा मढाये, रोये डंडा पुकार।

छत्तीसगढ में, अन्य प्रान्तो की तरह होली का वडा महत्त्व है और सच पूछिये तो होली का वास्तविक मजा गाव के नैसर्गिक वातावरण में ही मिलता है। इस त्योहार के समय गावो में जो चेतना मिलती है, वह नगरो में दुर्लभ है। छत्तीसगढ मे विजयादशमी के अवसर पर नये चावल का और होली के अवसर पर नये गहूँ का नेवज या नवान खाते है। रात को "होले डाड" में गाव के वाल-युवा वृद्ध सभी लोग उपस्थित होते ह और खूब नाच-गाना होता है—

बजै नगारा दसों जोडी, हा, राधा किशन खेलय होरी।
दूनो हाथ धरे पिचकारी, धर पिचकारी, धर पिचकारी,
रग गुलाल सबै बोरी, हां, राधा
दुधुवा, दहिया बच न पाइस, ओहू मा रग दिहिन घोरी, हां, राधा
सब सखियन मिल पकड किशन ल, वही रग मा दे बोरी, हां राधा
तब राधा मुसकाय कहिन हा, अउ खेलिहा तू होरी, हां, राधा

फिर तो धुलेंडी मच जाती है। कीचड, गोबर, राख कुछ नही बचने पाता।

होली की तरह दीवाली का त्योहार भी छत्तीसगढ में वडी धूमधाम से मनाया जाता है और यहा का सारा लोक-जीवन एक साथ मुखरित हो उठता है। स्त्रिया पैरो में महावर लगा कर और रग विरगे कपडो से अपना श्रृङ्गार कर नृत्य करती है। नृत्य के समय वे दल बना कर घूमती हैं। एक स्त्री के सिर पर छोटी सी टोकरी रहती है, उसमें अनाज के ऊपर मिट्टी के दो सुये (तोते) बने रखे रहते हैं, जो कपडे से घूघट के नीचे मुख की तरह ढाक दिये जाते है। यह टोकनी बीच में रख दी जाती है और समस्त स्त्रिया दो दलो में बँट उसे मण्डलाकार घेर लेती है। अर्द्ध गोलाकार खडे होकर पहिला दल गाने लगता है और दूसरा दल अर्द्ध गोलाकार की अवस्था में ताली बजा कर नाचने लगता है। जब दूसरा दल खडा होकर गाता है तो पहिला दल झुक कर तालियाँ बजाते हुए नाचता है। गीत का एक नमूना देखिए—

जाओ रे सुअना चदन वन, नन्दनवन आमा गौद लइ आव,
नारे सुआ हो आमा गोद लइ आव।
जाये बर जाहौं आमा गौद बर, कइसे के लइहौं टोर,
गोंडन रेंगिहा पखन उडिहा, मुहे म लइहा टोर,
लाये बर लाहौं आमा गौदला, काला मं देहौं धराय,
गुडी म बठे मोर बधो रैया, पगडिन देहा अरझाय,
कैसे के चिन्हिहौं तोर वधो रैया, कैसे के देहो अरझाय,
अग ओके पातर मुह दुरदुरिया, चूहैं मेछन के रेख।

यह सुआ-गीत है और छत्तीसगढ़ के कण्ठगीतों की परम्परा में सुआ-गीत का अपना विशिष्ट स्थान है। इन गीतों मे वैसे तो विभिन्न रसों का सुन्दर परिपाक रहता है, पर विशेष रूप से इसमे करुण रस का समावेश होता है। सुआ गीत मे मिट्टी के सुये का विशेष स्थान है। एक सुआ महादेव का और दूसरा पार्वती का प्रतीक है। इसी टोकनी को लेकर आदिमवासी स्त्रियां घर-घर घूमती, गाती और नाचती है और चावल, तेल तथा पैसे एकत्र कर दीवाली में गौरा-व्याह का उत्सव मनाया जाता है। दीवाली की रात को शिव-गौरा का व्याह होता है। मांदर और मंजीरे वजने लगते है। स्त्रियां "पर्रा" में लाई और दीपक रख कर, गाती हैं—

महादेव दुलरू बन आइन, धियरी गौरा हांसिन हो,
मैना रानी रोये लागिन, भूत परेतवा नाचन हो।
चँदा कहां पाया दुलरू, गंगा कहां पाया हो,
सांप कहां पाया ईसर (ईश्वर), कावर भभूत रमाया हो।
गौरा बर हम जोगी बनेन, अंग भभूत रमायन हो,
बैला ऊपर चढ़ के हम तो, बन बन अलख जगायेन हो।
अचहर पचहर लहर पटोरना, बछवा दाइज देइन हो,
हार नौलखा पाइन गौरा, महादेव मुसकाइन हो।
आंवर होगे भांवर होगे, खाइन बरा सोंहारी हो,
गौरा महादेव सामी जी, हमर बाप महतारी हो।

और कई गीत मांदर के साथ गाये जाते हैं। उसी की धुन मे नृत्य भी चलता है। गीत और नृत्य दोनो की तर्जे वदलती रहती है। तीसरे दिन धूमधाम के साथ मूर्तियों का जलूस निकाला जाता है। इसमे मांदर की धुन पर कुछ स्त्रियां बाल खोले हुए "झूमती" हैं और कुछ मर्द भी। मर्दो के हाथ-पैर पर सांट (रस्सी) मारी जाती है, पर वे ची तक नही करते। फिर वे मूर्तिया तालाव के जल मे ठंडी (प्रवाहित) कर दी जाती हैं और सव तालाव मे स्नान कर के घर लौट आते हैं।

कार्तिकी एकादशी के दिन छत्तीसगढ़ के रावत फूले नही समाते। गांव भर के सारे रावत एकत्र होकर वाजे की धुन मे, लाठी ऊँची कर के या हवा मे घुमाते हुए एक विशेष अदा के साथ नाचने लगते हैं। इस नाच को छत्तीसगढ के कुछ भागो में "गहिरा" अर्थात् "अहिरा नाच" भी कहते हैं। रावत जाति का मुख्य व्यवसाय "गौ-पालन" है। ये अपने को श्रीकृष्ण जी का वंशज मानते है। दीपावलि के अवसर पर गोवर्द्धन की पूजा के दिन से इनका नाच आरम्भ होता है पर छत्तीसगढ के उत्तरीय भाग मे रावतों का यह महान्-उत्सव कार्तिकी-एकादशी से आरम्भ हो पूर्णिमा तक और कभी-कभी दो-एक दिन वाद तक चलता रहता है। ये रावत, जिन लोगों की गाय चराते है, उनके यहा सदल वल नाचत हुए पहुँचते है और दुधारू गायो के गलों मे "सुहई" वांध दोहा पढ़ते हैं :—

धन गोदानी भुंइया पावा, पावा हमर असीस
नाती पूत ले घर भर जावे, जीवा लाख वरीस।

"सुहई" पलास जड़ की छाल से बनती है। इसे गाय का रक्षा-बन्धन समझिए। रावत जाति का दूसरा गीत है, वास-गीत। रावत अपने को श्रीकृष्ण जी का वंशज मानते हैं और उनकी वांसुरी के प्रति अटूट श्रद्धा रखते है। इनके प्रियगीत "वांस-गीत" क गायन के साथ, करीव दो हाथ लम्वी, मोटे वांस की वनायी हुयी वांसुरी, जिसे ये "बांस" कहते है और जिससे भो-भों की आवाज वजाने पर निकलती है, वजाई जाती है। "वांस-गीत" भी विभिन्न रसो एवं भावों से भरा होता है।

छत्तीसगढ के जन-जीवन में करमा गीत का बहुत बडा स्थान है। दत कथा है कि "कम" नामक कोई राजा था, उस पर विपत्ति पडी, उसने मानता मानी और नृत्य-गान शुरू किया, जिसमे उसकी विपत्ति दूर हो गई। उसी समय से करमा-नृत्य गीत प्रचलित ह। वास्तव म यह नृत्य-गीत लोगो के हृदय का उल्लास प्रकट करता है। रात्रि के समय जब मशाल के प्रकाश में मादर की थापो के साथ करमा का गान होता है तो ऐसा लगता है कि प्रकृति के कठ से निकले हुए यही बोल सच्चे है, जो टेढे-मेढे भी ह, अटपटे भी ह, समझ में आते भी ह, नही भी आते। इन गीतो में एक मस्ती, एक तोड, एक जिन्दादिली, एक सगीत और एक अद्भुत सरसता के दर्शन होते हैं।

> ओ हो हो ऽऽऽ रे हाय ऽऽऽ रे,
> कलप कलप के धरती रोवे, झिन देखिहा मोला,
> एक दिन अवसर आही, तोप देहू तोला,
> जिनगी के नइये भरोसा रे। (इत्यादि)।

* * * *

विवाह गीतो की परम्परा में छत्तीसगढी लोक-गीतो का अपना अलग स्थान है। ये गीत वैवाहिक अवसरो के अतिरिक्त अक्ती के त्योहार के समय भी सुनने को मिलते है। उस समय छोटी-छोटी लडकिया अपने पुतरा-पुतरियो का व्याह रचाती है और लोक-जीवन की एक सुन्दर झाकी उपस्थित करती है। मडप छाते समय सारी लडकिया गा उठती है—

> नवा बन के हम कनई मगायेन, वृदावन के बासे हो।
> वही बास के हम मडवा छायेन, छ गय धरती अकासे हो।

अर्थात्—नये बन की कनई (बास की कोमल डालिया) और वृदावन से बास मगा कर हमने ऐसा मडप छाया जिसने धरती से आकाश को छू लिया।

जब बारात आने लगती है, तो कोमल कण्ठ फिर दूसरे राग उतारने लगते है। बारात के द्वार में आते ही "मण्डप-गान" आरम्भ हो जाता है—

> समधिन के टुरवा खबर लुये आइस, ओला गडगे खबर-बन के खोभा।
> लानि देबे ते भइया बसुला बो बिधना, हेरि देबे ओकर तन के खोभा।

अर्थात्—समधिन का पुत्र (दूलह) घास काटने गया तो उसकी देह में घास की फासें गड गईं। उन फासो को निकालने क लिए, ह कोई भाई, जो बसूला और बीधना (काठ छीलने और छेदने के हथियार) ले आवे और उन फासो को निकाल दे।

इस गीत में हास्य-रस का कितना सुन्दर समावेश हुआ है। जिस फास को निकालने के लिए छोटी सी सुई चाहिए, वहा बसूला और बिधना मगाये जा रहे है।

शादी की अन्य रस्में जब पूरी हो गई तो भावरे पडने लगती है। इस अवसर पर प्रश्न तथा उनके उत्तरो से भरे हुए कल्पनापूर्ण अनेक गीत गाये जाते है। विवाह का अन्तिम और सबसे करुण समय होता है—बेटी की विदा का। महात्मा कण्व से वैराग्यप्राप्त व्यक्ति भी जिस अवसर पर अपना सतुलन नही रख सके, तब अन्य समारियो का कहना ही क्या? डोल पर दूलह-दुलहिन सजा कर बिठा दिये गये और वधू पक्ष की सारी लडकिया तथा स्त्रिया सिसक-सिसक कर रो पडी।

> पाचों भाई के एक ठिन बहिनी, ओ मोरे भाई,
> मे तो जावत हों धियरी ढकेल।

दाई-ददा के इन्दरी जरत हय, भौजी के जियरा जुड़ाय,
ओ मोरे वीरम, भौजी का जियरा जुड़ाय ॥१॥
झन रो तै धियरी, तै झन रो मोर विटिया,
तोला दैइहों मै तिलरी (स्वर्ण आभूषण) गढ़ाय।
आइन कहां ले ये बटमारन जावत हंय डोलवा फंदाय,
हां मोरे दाई जांवत हंय डोलवा फंदाय ॥२॥
गोई के अंगना म एक पेड़ लिमुवा, ओ मोरे दाई,
पंछी करत हंय वसेर, ओ मोरे धियरी,
पंछी करत हंय वसेर ॥३॥
दाई के अलौरिन औ ददा के दुलौरिन।
ओ मोरे बीरम, गरब टूटत हय ससुरार,
हां मोरे दाई, गरब टूटत हय ससुरार ॥४॥

अर्थात्—कौन इसका अर्थ समझावे? सब की आंखों से गंगा-जमुना वह रही थी। उन्हे वह दृश्य स्मरण हो आया, जब उन्होने अपनी अपनी प्यारी वेटियों को विदा किया था।

वालक के जन्म पर सर्वत्र वड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया जाता है। स्त्रियां विविध प्रकार के गीतों से नवजात शिशु और उसकी माता की आयु की कामनाये करती हैं। इन गीतों को "सोहर" के नाम से पुकारा जाता है। एक उदाहरण देखिए—

पहिली महीना जब लागे, अंग फरियाये हो, ललना,
अंग पियर मुंह ढुर ढुर, गरभ केइ लच्छन हो।
दूसर महीना जब लागै, सासु गम पाइय हो, ललना
जउनी गोड़ पछुआय, जिया मतलायेय हो।
तीसर महीना जब लागे, ननंद मुसकायेय हो, ललना
होइहैं लाल कन्हैया, पंचलड़ पावब हो।
चौथे महीना जब लागै, सासु पुलकायय हो, ललना
होइहैं वंस रखवार, मोतियन माल लुटइहौं हो।
पांच महीना जब लागे, वहू माटी खायेय हो, ललना
पान वीरा न सुहाय, सिट्ठा मुख लागेयय हो।
छय महीना जब लागै, पिया के पग लागयेंय हो, ललना
आवौं न सेजिया तुम्हार, अंग मोर भारीय हो।
सात महीना जब लागै, सासु कर जोरेय हो, ललना
न अब भीतर अमांव, दारुन दुःख होवेय हो।
आठ महीना जब लागै, आठो अंग भरिआये हो, ललना
कस पहिरें पट चीर, न संभरे संभारेय हो।
नव महीना जब लागे, सासु सोवै अंगना हो, ललना
पीरा कव उठ जाय, पैंकहिन बुलवायेंय हो।
दस महीना जब लागै, जन्मैं लाल कन्हैया हो, ललना
बजत हय अनंद वधैया, सखियन मंगल गावेंय हो।

भावार्थ—पहला मास जव लगा, तव गर्भिणी के सव अग मोहक लगने लगे, मुह पीला-पीला और उतरा सा दिखाई देने लगा, जो गर्भ धारण करने के लक्षण हैं।

दूसरे मास में सास को वहू के गर्भ स्थिर हो जाने का निश्चय होगया क्योकि गर्भिणी वहू दाहिने पैर को चलते समय पीछे उठाने लगी और उसका जी मतलाने लगा था।

तीसरा महीना जव आरम्भ हुआ, तव ननद मुसकुरा उठी। सोचने लगी यदि भगवान की कृपा से लाल पैदा हो गया तो पाच लड की सोने की माला मिलेगी।

चौथा मास लगने पर सास हर्ष से पुलक उठी। कहने लगी—वश का रखवार पैदा होगा तो मोतियो की मालाएँ लुटाऊँगी।

पाचवें मास में गर्भिणी चूना मिट्टी (कैलशियम की कमी से) खाने लगी। उसे पान का वीडा भी अच्छा नही लगता था और मुह मीठा-मीठा लगता रहता था।

छठे मास में वह पति के पैर पकड कर कहने लगी—"मुझे क्षमा करना, अव मैं आपकी सेज पर नही आ सकूगी, मेरे अग मुझे भारी भारी लगते रहते ह।"

सातवें मास के लगने पर वह सास को हाथ जोड कर कहने लगी—"मा! अव मुझे भोजन वनाने में वडा कष्ट होने लगा है, अतएव मुझे इस काम से छुट्टी दीजिए।"

आठवें मास में गर्भिणी के सारे अगो में स्थूलता आ गई, उसे कपडा पहनना भी कठिन हो गया, कस कर पहनने पर भी कपडा वार-वार खिसक जाता था और सभाले नही सभलता था।

नवा मास जव लगा तव सास आगन में सोने लगी। न जाने कव प्रसव की पीडा उठ जाय और वैकहिन (दाई) वुलवानी पडे।

दसवें मास में लाल पैदा हो गया, आनन्द वधैया वजने लगी और सखिया मगल-गान गाने लगी।

किसी भी साहित्य में वहा के लोक-जीवन को प्रतिविम्वित करने वाले गीतों के वाद कथा-कहानियो और कहावतो तथा वुझौवल का नम्वर आता है। छत्तीसगढ का जन-जीवन सदा उल्लास और उमग के वातावरण में झूलता रहता है। रात को अगीठी के पास प्राय प्रत्येक घर में, वडी-वूढियो के मुह से विभिन्न प्रकार की शिक्षाप्रद और परी देश की कहानिया सुनी जा सकती ह। ये कहानिया वहा के दैनिक-जीवन और समाज का सुन्दर चित्रण करती हैं। एक छत्तीसगढी कहानी सुनिये —

"एक गाव मा एक झन मोटियारी गोडिन रहिस। ओकर वाप महतारी सव्वे मर गये रहिन, फेर वे गोडिन वड चतुरा रहे। पूजी पसरा धलो ओकर पास वने रहिस औ वोला विहाये वर कतको झन गोड आइन फेर ओहर रजु-वावें नइ करे। ओहर कहे—जौन मोला हरो देही तेकरेच सग विहाव म करिहौं। ये गोठल सुनके कतको झन ओकर इहा आइन फेर ओकर ले पार नइ पाइन।

"ओ हर का करे के जव कोनो सगा आवें तो गोड धाये वर पानी मढा दे औ कहे—"जाव दाई, पहुना आगये हँय, उन् कर खावेय पीयाये वर चाउर-कोदई उधार-वाढी माग लावो। मुरही तो आव, न कोनो कमैया न धमैया।" पहुना ल ऐसे सुना के जो वाहिर निकरे तो फेर तभेच घर लहुट के आवें जव पहुना हर असकिटिया के घर ले चल दे।

"एक दिन एक झन गोड अइसे परन करके ओकर घर आइस के ये छोकरी ल हरोइच के लहुटिहौं। गोडिन हर ओला देखिस तो झटकुन खटिया ला दसा दिहिस और एक लोटा पानी साम्हू म मढा के कहिस—"ये ला सगा, गोड धोवा औ खटिया म वैठा। मैं हर पारा परोस ले चाउर-कोदई उधार लेके आवत हव जव फेर जेवन वनाहौं।" ऐसे कहिके ओहर घर ले निकर गै औ परोस म जाके वठ गै।

"फेर वो गोंड नइच टरिस। परोस के भितिया के छेदा ले गोड़िन हर घेरी वेरी देखे तो कभू वो गोंड़ सूते दिखे, कभू भकाभक चोगी पियत दिखे, कभू ढोला मारू के गीत गावत रहे। अइसने करत करत सांझ होगय। तो गोंड़िन हर खिसिया के अपने घर लहुट आइस अउ वड़ थकता सांही अंगना म वैठ के कहे लगिस—"जर जाय ये गांव दाई, न मांगे ले एक मूठा चांउर मिले, न एक गड़ी नून। अव सगा आगये हंय तेला खंवावों तो खंवावो कहां ले।"

"गोंड़ हर ये वात ल सुनिस तो थर थर कांपे लागिस। गोड़िन पूछिस—"तूं कावर कांपथा सगा, जर ताप चढ़त का?" गोंड़ हर कांपतेच कांपत कहिस—"सगा, मोला जर जूड़ कुछू नई चढ़ै, फेर तुहर इहां के दूठन सांप ला देख के मोला डर लागत हय तेकर सेती कंपकंपासी आवत हय।"

"सांप! मोर घर एक्को ठन सांप नइये, सगा, तू लवारी मारत हा।" गोड़िन हर अकवका के कहिस।

"है सगा, तुंहर घर के भीतरी म दो ठन लम्मा लम्मा करिया कुसियार कोनहर म माढ़े हय ततके लम्मा वो सांप मन हंय, औ ओकर दांत तो तुहर पडला म पातर चांउर रखे हय तैसने उज्जर उज्जर दिखत हय, औ उन्कर आंखी तो तुहर मटकी म मसुरी दार धरे हय तैसने जुगजुग वरत हय।" ऐसे कहिके गोड़ मुसकी ढारे लागिस।

"गोड़िन, गोड़ के चलाकी ल गुन के मने मन वड़ खिसियाइस, फेर, उपरछवां हांस के कहिस—"मोर सुन्ना म मोर घर के फटिका ल उधार के मोर सव्वो जिनिस ल देख डारेय तो वने करेय। ये ल कुसियार, चूहा। तल घस मैं जेवन वना के राखत हंव।"

"गोड़िन जव रांध पसा के परुसे वर थारी मढाइस तो देखथै तो मरकी म पीये वर पानी नई रह। "पानी लेके आवत हंव" कहि के वोहर तरैया चल दिहिस औ झटकुन पानी लेके आगे। फेर दार-भात औ साग थारी म परुस के गोड़ ल खाये वर वलाइस। गोंड़ हर पिढ़वा मा वैठ के देखिस तो दार म घीव डारेच नइ रहे। तौ कहिस—"सगा, घीव विना तो मोर कौरा नइ उठय। चिटिक यक घीव हरेतिस तो दे देतेय।"

गोड़िन केंदरा के कहिस—"मोर अनाथिन इहां घीव कहां पाहा सगा, वनी भूती कर के तो जिनगी चलावत हौ।"

"गोंड कहिस—"ऐसे करा सगा, मैं ये दे आंखी मूद लेथौ और तू वो छीका के घिउहा ठेकवा ल उतार के मोर थारी ऊपर उलट देहां अउ कहि देहा—"ये दे घीव परुस दिहौं" तो फेर मैं आंखी ल उधार देहौ अउ खाये लगिहौ। का करौ सगा, विना घीव के मोर टोंटा म कौंरा नइ धंसै तौन पाय के मैं तुंहला अतका दुख देत हंव।"

"गोड़िन कहिस—"वे मा का दुख हवे सगा! ल भाई, तुंहर मन मढ़ाये वर जइस कहिहा तइसने च करिहौं।" ऐसे कहिके वोहर छीका ले घीव के ठेकवा ल उतार के गोड़ के थारी म ढरका दिहिस तौ भकभकौवन ढेकवा के जम्मा घीव थारी म लिकवा गय। गोड़िन के मूह सुख्खा परगै। वोला का गम के वो हर जव पानी लिहे वर तलैया गये रहिस तौ गोंड़ हर छीका ले घीव के ढेकवा ल आगी ऊपर मढ़ा के टछला दिहे रहिस।

"गोड़ मने मन गजव हासिस। ऊपर ले कहिस—"भइगे सगा, येदे मैं अव जेवत हंव।" अइसे कहिके वो हर भात दार घीव साने लागिस।

"गोड़िन देखिस के ये गोड़ हर तो वड़ चतुरा हय, अकेल्ले अकेल्ला अतेक सुघ्घर गाय के घीव ल दार भात म सान के खा डारिही तौ वो हर कहिस—"सुना सगा, हमर घर के रीत हवे के कोनो सगा पहुना आथै तो घर घे मनखे हर ओकर संग वैठ के खाथै।"

"गोंड़ कहिस—"ये तो वने वात आय सगा, आवा न दूनो झन संग म वैठ के खाई।"

"गोड़िन हर गोंड़ के सग म खाये वर वैठ गय तो देखिस के जम्मा घीव ओकरे उहर वोहाय गये हय तो वो हर कहिस—"सगा, हमर एक झन परोसी के हाल ल तो सुना। वो मन दू भाई रहिन। गंज झगरा लड़ाई होंय तो पंच

मन खाटा खोटा करा दिहिन ओ बीच अगा म ये दे ऐसे भितिया उठा के वोहू ल मड दिहिन।" अइसे कहिके गोंडिन हर थारी के जम्मा घीव ल अपन डहर ओहरा के भात के पार बाध दिहिस भितिया माही।

"गोंड बड चतुरा रहे। ओ हर कहिस—"सगा, त तो एग भाई के निम्नागे वद हो गइस होहय। ये दे अइसे भीतिया के बीच म दुआरी रख देतिन तो दून भन के निस्तार हो जातिस।" अइसे कहिके गोंड हर भात के पार म एक ठिन अगुरी ले दुआरी बना दिहिस तो जम्मा घीव वोहर के गोंड डहर आ गय।

"गोंडिन देखिस के ये गोंड ले पार पावब अघात मसकुल हय तो ओ हर दार-भात घीव जम्मा ल एक्के म सान के कहिस के "सगा, अब तो दूनो भन के झगरा टूट गये हम अउ दूनो भन एक्के हो गये हँय।"

"गोड हर हास के कहिस—"तो सगा, तुहर हमर झगरा घलो टूट गये हय ओ तू हम दूना चला एक्के हो जाई।" अइसे कहिके ओ गोंड हर एक कौरा भात अपना हाथ ले गोंडिन ल खवा दिहिस ओ ओ गोंडिन हर एक कौरा भात दार गोंड ल खवा दिहिस। ओ निहान भये दूनो भन के निहाव होगे।" आशा है, हिन्दी के पाठक को इस कथा के भाषान्तर की आवश्यकता न होगी।

आश्चर्य है कि इन लोक गीतो, लोक-कथाओ और कहावतो के बनाने वाले अज्ञात कवियो तथा लेखको का हम विस्मरण कर गये हैं। पुरातन काल से चला आ रहा यह लोक-साहित्य हमारे हिन्दी-साहित्य का बडा उपयोगी और मूल्यवान अग है। अनजान युग से लेकर आज तक अनेक हाथो में पड कर भी वह ज्या का त्यो बना हुआ ह, क्या यही हमारे लिए कम गौरव की बात है। छत्तीसगढ के प्रत्येक नागरिक को इस पर गर्व है और यह कहते हुए वह—अनुभव करता है "हमर कतका सुन्दर गीन, जैसे सुरुज कमल के पीत।"

बुन्देली बोली

श्री उमाशंकर शुक्ल (नागपुर)

बुन्देली भाषा की सीमा इस तरह है—पूर्व में पूर्वी हिन्दी की बघेली शाखा, उत्तर में पछांही हिन्दी की कन्नौजी और व्रजभाषा-बोलियां, पश्चिम मे राजस्थानी की मालवी या निमाड़ी बोली और दक्षिण मे मराठी का प्रभाव है। यो तो प्रदेश के मराठी जिलों मे जो उत्तरप्रदेश के निवासी बस गये है—उनकी बोलियों पर भी मराठी का खासा रग चढ़ गया है—जिसके कारण नागपुर, भंडारा, चांदा तथा विदर्भ के अचल मे नागपुरी हिन्दी चल गई है उसमे मुहावरे और शब्दों के प्रयोग मे भी स्पष्ट भिन्नता देख पड़ती है। वास्तव मे बुन्देलखण्डी हिन्दी बोली की एक मधुर शैली है उसमे सूक्ष्म से सूक्ष्म कलात्मक और भावप्रवणता करने की सुन्दर क्षमता भी है। उसका सीधा सम्बन्ध व्रजभाषा और खड़ी बोली के साथ है। पश्चिमी हिन्दी की पुत्री होने के नाते बुन्देलखण्डी ने सबसे अधिक विशेषता, आनुवंशिक रूप मे शौरसेनी प्राकृत, अपभ्रंश से तथा पश्चिमी हिन्दी से समृद्धि पायी है।

बुन्देलखण्डी की सामान्य विशेषतायें—पूर्वी भाषाओ मे जहां लघु उच्चारण वाला "ए" और "ओ" होता है वहां बुन्देलखन्डी मे "इ" और "उ" होता है। जैसे—घुड़िया, घोडिया। हिन्दी की परिभाषाओ मे संज्ञा के ५ रूप होते है—जैसे—अकारान्त, आकारान्त, ओकारन्त, वाकारान्त और अन्तमे "आना" तथा "औना" से अन्त होनेवाले शब्द जैसे घोड़, घोड़ा, घोड़ो, घुड़वा—घुड़ओवा, घुड़ोना। व्रजभाषा के समान बुन्देलखण्डी मे भी प्राय: अकारान्त पुल्लिग शब्द—ओकारान्त हो जाता है। जैसे तुमाओ। पर सम्बन्धसूचक शब्दों मे वह विकार नही होता—जैस दादा, काका, बाबा का रूप—दद्दा, कक्का, और बब्बा प्रचलित है। बोली में जो स्त्रीलिंग शब्द "इन" प्रत्यय लगाने से बनते है, वे बुन्देली में "नी" प्रत्यय लगाने से बनते है। जैसे—बरऊ से बरौनी, नाऊ से नाऊनी। ओकारान्त तद्भव संज्ञाओं का विकारी रूप ए वचन मे "ए" और बहुवचन मे "अन" होता है। जैसे पूनो का पूने और पूनन। दूसरी प्रकार की पुल्लिग संज्ञाये एक वचन में नहीं बदलती, किन्तु विकारी रूपके बहुवचन मे अन्त मे "अन" आ जाता है। जैसे—लड़का, लरकन। कुछ अकारान्त शब्दो का बहुवचन "ओ" से भी बनता है। जैसे—गाय का गैया, बात का बतियां, छांय का छैया। इया से अन्त होने वाले स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन 'इया' और विकारी बहुवचन 'इयन' लगाने से बनता है। जैसे—अमिया, अमिया, और अमियन। दूसरे प्रकार के स्त्रीलिग शब्दों का कर्त्ता बहुवचन मे 'ये' लगाने से बनता है जैसे—'बहुये'। इकारान्त शब्दो के बहुवचन मे 'ई' और विकारी बहुवचन मे 'अन' व 'इन' प्रत्यय लगता है। जैसे—लुगाई, लुगाई और लुगाइन। बुन्देली के कारक खड़ी बोली के समान ही करीब-करीब होते है।

कर्त्ता विकारी—ने, नें
कर्म सम्प्रदान—को और खो
करण अपादान—से, से, सो
सम्बन्ध—को, के, की
अधिकरण—में, मैं, मै

'हम' के लिये यहां सभी व्यक्तियों मे अपन शब्द चलता है और 'मै' के लिये हम शब्द का प्रयोग होता है।

बुन्देलखण्डी में क्रियार्थक संज्ञा (Verbal Noun) को प्रवृत्ति अधिक मिलती है। जैसे बुलौआ '(बुलाना क्रिया) बधाये (बधावा)।

बुन्देलखण्डी के अधिकाश तद्भव शब्द काल-भेद के कारण ही अनेक प्रकार के ध्वनि परिवतन से युक्त दिखाई पडते है जैसे—छवि का छब, राजति का राजत, शोभित का सोहत। स्थान भेद के कारण बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दो की ध्वनि में विशिष्ट परिवतन दिखलाई पडता है जो कि उसकी, बहिनो अर्थात् व्रज और खडी बोली में नही मिलता। जैसे—छीना, झीमना और खीब। इनका रूप खडी बोली में क्रमश छूना, भूमना और खूब मिलता है। खडी बोली के कुछ अकारान्त शब्दो को ईकारान्त करने की प्रवृत्ति बुन्देलखण्डी भाषा में स्थान-भेद के कारण दिखाई पडती ह।

विजातीय सम्पर्क के कारण बुन्देलखण्डी भाषा के कुछ शब्दो के उच्चारण में ध्वनि-परिवतन दिखाई पडता ह, जसे—मराठी जाति के सम्पर्क के कारण 'हा' का उच्चारण 'हव' होता है।

राजनीतिक परिस्थिति के परिवतन क कारण शब्दो की कुछ ध्वनियो में विशिष्ट परिवतन हो जाते ह, जसे—कालेज, कागरेस।

बुन्देलखडी में दोनो शब्दो में 'आ' की ध्वनि 'अ' और आ' के बीच की ध्वनि ह। इसी तरह की कई और नई ध्वनिया बुन्देलखडी में आई ह। मुसलमानो का यहा राजनीतिक केन्द्र नहीं रहा इसलिये यहा इस्लामी प्रभाव दिखाई नही देता ह, फलत फारसी भाषा के शब्दो का प्रवेश बुन्देलखड में बहुत कम हुआ है। उर्दू की ध्वनिया बुन्देलखडी भाषा में प्राय खटकने लगती है। ये तो खोजने पर भी न मिलेंगी।

बुन्देलखड शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही पिछडा हुआ है। इसलिये यहा के लोगो का सास्कृतिक स्तर अब तक नही उठ सका है। इसलिये यहा के लोगो ने प्रमाद, अज्ञान, असावधानी, आदि के कारण बहुत से शब्दो की ध्वनिया में विशेष प्रकार का परिवर्तन कर दिया है।

उपर्युक्त कारणो से भाषा में विशेष प्रकार का ध्वनि विकार होता है। आन्तरिक कारणो से सामान्य प्रकार का ध्वनि विकार होता ह, जिसके ऊपर आगे विचार किया जावेगा। वर्ण विपयय, वर्णलोप, वर्णागम, अक्षरलोप, असावर्ण्य, सावर्ण्य, सधि तथा एकीभाव, मिथ्या सादृश्य जनित ध्वनि परिवतन तथा वर्णविकार आदि भाषा के भीतर सामान्य प्रकार का ध्वनि परिवतन उपस्थित करते हैं। इन ध्वनि परिवर्तनो के कारण उच्चारण की शीघ्रता, असावधानी, प्रमाद, अशक्ति, अज्ञान, सुख-दुःख, मिथ्या सादृश्य आदि ह। अब इन में से एक-एक का उदाहरण आगे दिया जावेगा।

वर्ण-विपयय—वर्ण विपयय नामक ध्वनि परिवतन वक्ता के प्रभाव, अज्ञान, उच्चारणशीघ्रता, असावधानी आदि के कारण होता है। इस प्रकार का ध्वनि-परिवतन प्राय अशिक्षित लोगो में ही अधिक होता है। लोक-गीता का सम्बन्ध प्राय अनपढ जनता से है। इसलिये इसमें वर्ण विपयय के उदाहरण अधिक मिलते ह। जैसे—सुनरार, सुसर (स्वर विपयय)। हते, भुदकी (वर्ण विपयय)।

वर्ण लोप—प्रत्येक शब्द मे बल केवल एक ही वर्ण पर होता ह शेष निर्बल होते है। निर्बल वर्ण प्राय लुप्त हो जाते है। जैसे—दूलह का दूला। यहा बल 'दू' वर्ण पर है। 'ह' निर्बल वर्ण है इसलिये लुप्त हो गया।

उच्चारण की शीघ्रता अथवा असावधानी कभी कभी दो सजातीय ध्वनियो में से किसी एक को लुप्त कर देती ह। जसे—मुकुट का मुकट। कभी कभी मुख-सुख के लिये लोग नामो को सक्षिप्त कर देते ह। इसमें कुछ वर्ण लुप्त हो जाते है। जैसे—कन्हैया का कनैया। कभी-कभी अज्ञान वश भी वर्णलोप हो जाता है, जसे—अनोखे का नोखे, चाहत का चात।

अक्षर लोप—अक्षरलोप में उच्चारणशीघ्रता अथवा असावधानी के कारण दो सजातीय अक्षरो में से एक लुप्त हो जाता ह। जसे—राम ध्वाई का राम धई।

वर्णागम—प्रत्येक प्रकार के आगम मे स्वर-व्यंजन अथवा अक्षर का आगम किसी शब्द के आदि मध्य, अथवा अन्त मे मुखसुख अथवा सुविधा के कारण होता है। किसी-किसी शब्द मे कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजन आते है कि उनके उच्चारण मे जब साधारण को असुविधा प्रतीत होती है इसके निवारणार्थ स्वर व्यंजन अथवा अक्षर का आगम होता है। जैसे—

स्त्री का तिरिया। बलिवर्द का बरदा (बैल)। माता का महतारी। कीर्ति से कीरति, व्रज का वज्जुर आदि। मात्रा की कमी के निमित्त भी कभी-कभी कविता में वर्णागम होता है। इसकी प्रवृत्ति लोकगीतों मे अधिक मिलती है।

जैसे—ससुर का ससुरा, दूध का दूधा।

कभी कभी अभ्यासगत पटुता के कारण भी आगम होता है। जैसे किसी शब्द में कठिन ध्वनि का आगम उच्चारण की सुविधा के कारण नही हो सकता उसका एक मात्र कारण अभ्यासगत पड़ता है जैसे। उम्र का उम्मर।

बुन्देलखंडी व्रजभाषा के पश्चात् भारतवर्ष की दूसरी मधुरतम भाषा मानी जाती है। भाषा को मधुरतम बनाने के लिये कोमल वर्णो को शब्दो के भीतर रखने की आवश्यकता है। ये कोमल वर्ण या ध्वनि शब्द के अन्त मे प्रत्यय के रूप मे या दो संयुक्त व्यंजनो के बीच स्वर के रूप मे आती है।

जैसे—बाबा का बाबुल, आजा का आजुल, फूल से फुलवा।

असावर्ण्य—असावर्ण्य का कारण मुखसुख है। कभी-कभी जब दो या सजातीय ध्वनियां एक ही भाषणावयव से उच्चरित होती है तब उनके उच्चारण मे भाषणायवय के एक होने के कारण उलझन या थकान सी प्रतीत होती है तब उस में से एक वर्ण जो सबल होता है वह निर्बल वर्ण लुप्त कर देता है या परिवर्तन कर देता है। जैसे—मुकुल से मौर।

सावर्ण्य—सावर्ण्य का कारण मुखसुख अथवा सुविधा है। कभी-कभी विभिन्न स्थानों से उच्चरित होने वाले दो व्यंजनों के बीच इतनी अल्प विवृति रहती है कि उनके उच्चारण मे असुविधा होती है। अतः सबल ध्वनि 'पुरु' या पर ध्वनि को अपने अनुसार परिवर्तित कर लेती है। फलतः दोनो ध्वनिया एक ही अथवा अति निकटवर्ती स्थान से उच्चरित होने के कारण सुविधापूर्वक उच्चरित हो जाती है।

जैसे—बाबा से बब्बा, बज्र से बज्जुरा, लावण्य से नोनो, दादा से दद्दा।

संधि तथा एकीभाव—संधि तथा एकीभाव का मूल कारण मुखसुख है। कभी-कभी किसी शब्द के उच्चारण मे दो स्वरों के बीच की विवृति को अथवा मध्य व्यंजन को लुप्त कर देने से सुविधा होती है और कभी-कभी दो निकटवर्ती ध्वनियो मे से एक के प्रभाव से दूसरी परिवर्तित हो जाती है तत्पश्चात् दोनों संधि नियम के अनुसार मिलकर एक हो जाते हैं।

जैसे—गमन—गवन—गौना। अवगुण—अवगुन—औगुण।

मिथ्या सादृश्य—मिथ्या सादृश्य जनित ध्वनि परिवर्तन का मूल कारण अज्ञान और प्रमाद है। विदेशी शब्दों की व्युत्पत्ति अथवा वर्ण विन्यास से अपिरिचित होने के कारण उनके उच्चारण मे अशिक्षित जनता को असुविधा होती है। उस असुविधा के निवारणार्थ साधारण जनता ज्ञात वस्तुओं के आधार पर उनका उच्चारण करने लगती है। जैसे—फरफंद शब्द दंद-फंद मुहावरे के फन्द के आधार पर बना है।

वर्ण-विकार—वर्ण-विकार किसी भाषा में मुखसुख, असावधानी, प्रमाद, अशक्ति, अज्ञान आदि के कारण होता है। कभी-कभी भाषा की विशिष्ट प्रवृत्ति भी वर्ण विकार का कारण बन जाती है तथा कभी-कभी वर्ण विकार में ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारण जैसे—जलवायु, प्राकृतिक स्थिति आदि भी क्रियाशील दिखाई पड़ते है। जैसे—नर्मदा का नरबदा, व्यथा का बिथा, चिड़िया का चिरइया (भाषा की कोमलीकरण की प्रवृत्ति के कारण) काग को

बगवा, वल्लभ को बलम (भाषा की विशिष्ट प्रवृत्ति से 'भ' का 'म' हो गया है) 'य' के स्थान पर 'ज' का विकार होता है।

वर्ण का बरन होता है (इसमें ध्वनि परिवर्तन का बाह्य कारण है क्योंकि शौरसेनी प्राकृत में 'ण' पाया जाता है)।

बुन्देलखंडी में 'व' या 'ब' का 'भ' हो जाता है। जैसे—वहा का भाय और बौर का मौर।

बुन्देलखडी में अंतिम तथा मध्य के 'ह' वर्ण को लोप करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक पाई जाती है। कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति महाप्राणवर्ण को अल्पप्राण करने के रूप में दिखाई देती है।

अंतिम 'ह' का लोप करने की प्रवृत्ति—जैसे—काहू का काऊ, चाहें का चाय, रही का रई, रहें का रयें, नही का नइ।

मध्य का 'ह' लोप करने की प्रवृत्ति—पहुचीं—पौची, रहत का रेत या रात, कहत का कात, कचहरी का कचेरी, लुहरी का लौरी।

महाप्राण को अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति—सीधा का सूदो, पाहुना का पाउनो, चिहार का चितार।

बुन्देलखड में अंतिम 'ल' को 'र' करने की प्रवृत्ति है जैसे—काले को कारे, ब्यालू को ब्यार, थाली का थारी, कलेजा का करेजा, निकाल का निकार, जाल का जार। बुन्देलखडी में ध्वनि-परिवर्तन की यह विशेषता भाषा की विशिष्ट कोमलीकरण की प्रवृत्ति के कारण आ गई है।

अपश्रुति—शब्दों और रूपों की रचना में स्वर का बल कभी मूल प्रकृति (Basoroot) से प्रत्यय पर और कभी प्रत्यय से प्रकृति पर जाया करता है। इस बल के कारण स्वरो में भिन्न भिन्न प्रकार का परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन को अभिश्रुति या अपश्रुति कहते है। अपश्रुति के कई उदाहरण मिलते है। जैसे व्यथा से बिथा। इस बिथा शब्द में 'य', 'इ' में परिवर्तित हो गया है। इसका मूल कारण यही है कि बल 'य' के ऊपर है। सम्प्रसारण के नियम के अनुसार 'य' इ में परिवर्तित हो गया है। इसी नियम के अनुसार 'द्वन्द्व' शब्द 'दोदना' के रूप में परिवर्तित हो गया है। सम्प्रसारण नियम के अनुसार 'द्वन्द्व' का दुद हुआ और फिर सधिकरण के नियम के अनुसार द्वन्द्व का दोद हुआ। क्रियायक सज्ञा बनाने के लिये 'ना' जोड कर दोदना बनाया गया है। 'अमृत' शब्द में प्रधान बल 'ऋ' के ऊपर है इसलिये गुण के नियम के अनुसार अमृत से अमरत हो गया।

स्वराघात—शब्द के किसी हिस्से पर या वाक्य में किसी शब्द पर जो बल पडता है उसे स्वराघात कहते है। स्वराघात दो प्रकार के होते है सुर तथा बल। बल में श्वास की सारी शक्ति बल से बोले जाने के कारण उसी ध्वनि पर खर्च हो जाती है अत वह स्वर सबसे अधिक ध्वनि से बोला जाता है और उसका पडोसी स्वर मौन हो जाता है। बल से उच्चरित होने वाला स्वर श्वास की सभी शक्तियो को चाहता है इसलिये वह अपने पडोसी स्वर के लिये श्वास की बहुत ही न्यून अथवा नास्ति रूप में शक्ति छोडता है। बुन्देली भाषा में बलात्मक स्वराघात बहुत मिलता है। बलात्मक स्वराघात के कारण दीर्घ वर्ण ह्रस्व तथा ह्रस्व वर्ण दीर्घ रूप में उच्चरित होने लगता है। जैसे तपासी से तापसि। यहा दीर्घ वर्ण स्वराघात के कारण ह्रस्व हो गया है क्योंकि बल प वर्ण के 'अ' स्वर के ऊपर पडता है इसलिये श्वास की सारी शक्ति 'अ' पर खर्च ही जाती है। अतएव 'स' वर्ण के दीर्घ 'ई' के लिये श्वास शक्ति बहुत कम बचती है तभी उसका उच्चारण ह्रस्व रूप में होता है। इसी प्रकार मथुरा का उच्चारण मथरा, जमुना का जमना, लई का लइ, एक का इक हो जाता है अर्थात् दीर्घ स्वर ह्रस्व में परिणित हो जाते हैं। कविताओं में कभी-कभी सगीतात्मकता के लिये कभी कभी छन्दों में मात्रा की पूर्ति के लिये ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर हो जाता है। इसका मुख्य कारण स्वराघात ही है। जैसे—दूध से दूधा, ससुर से ससुरा, गल से गैला।

सुर—सुर कभी धातु, कभी प्रत्यय कभी उपसर्ग पर रहता है। सुर, प्रभाव रूप में स्वर की प्रकृति (Nature) को बदल देता है। प्राय: यह संवृत को विवृत और विवृत को संवृत कर देता है। इस सुर प्रधानता के कारण भाषा में संगीतात्मकता आजाती हैं। सुर का प्रभाव स्वरापजुति के प्रसंग मे पहले दिखाया जा चुका है। सुर के ही प्रभाव के कारण गीतो में अमृत का अमरत और व्यथा का बिथा रूप मे परिवर्तन हो गया है। इस सुर की प्रधानता से भापा में मधुरता आ जाती है।

बुन्देलखंडी लोकगीतों मे अर्थ परिवर्तन के कुछ उदाहरण-प्रत्येक भाषा मे शब्दो की शक्ति घटती-बढ़ती रहती है। इस प्रकार के परिवर्तनों का कारण भी जनता का अज्ञान, भ्रम, मिथ्या-सादृश्य, प्रचार लाक्षणिक प्रयोग, ध्वन्यात्मक प्रयोग, उपचार आदि हैं। अर्थ परिवर्तन के कुछ उदाहरण तो बुन्देलखडी मे मौलिक ही है और कुछ दूसरी भाषा में मिलते है।

अर्थापदेश—जैसे 'सुगर' शब्द 'सुथर' से बना है जिसका अर्थ दूसरी बोलियों या प्रान्तीय भाषाओं में शारीरिक गठन या शारीरिक सौंदर्य 'सुगढ़' या (Symmetrical beauty) से है। पर इन गीतों मे 'सुगर' शब्द का प्रयोग चालाक के लिये हुआ है। अर्थापदेश के सिद्धान्त के अनुसार मूल अर्थ लुप्त होकर दूसरा अर्थ हो गया है। अर्थ परिवर्तन के इसी सिद्धान्त के अनुसार 'कसकत' शब्द जोकि खड़ी बोली, भोजपुरी आदि में चुभने के लिये या पीड़ा देने के लिये होता है वही बुन्देलखंडी मे पसीजने के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इसका मूल कारण यही हो सकता है कुछ शब्द एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे प्रयुक्त होने पर अपना अर्थ बदल देते है।

कही-कही बोलियो मे अच्छे अर्थ रखने वाले शब्दो के भी बुरे अर्थ हो जाया करते है। इस प्रकार के अर्थ परिवर्तनों में अर्थापकर्ष का सिद्धान्त निहित रहता है। अर्थापकर्ष में कभी-कभी अतिशयोक्ति के कारण अपना बल कम कर देते है या गोपनीय भावों या अर्थो को व्यक्त करने के कारण अच्छे शब्द भी अपना गौरव खो बैठते है। बुन्देलखंडी में इसी प्रकार का 'राजा' शब्द है जोकि प्रिय के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है चाहे वह प्रेमी हो या प्रेयसी। इसी प्रकार महाराज पंडित, महाजन और भैया आदि शब्द भी अपने मौलिक अर्थ से च्युत हो गये है और उससे बुरे अर्थ में प्रयुक्त होते है।

प्राय: जब शब्द उत्पन्न होते हैं तो उनमे बड़ी शक्ति होती है। उनका अर्थ बड़ा सामान्य और व्यापक होता है। पर दुनियां के व्यापारो में पड़कर जनता के अज्ञान अथवा असावधानी के कारण वे संकुचित हो जाते हैं। जैसे 'सपरलो' इस मुहावरे का अर्थ उत्तर प्रदेश में निवृत्त होने से है जिसमें शौच स्नान आदि भी सम्मिलित है। बुन्देलखंड मे इसका प्रयोग केवल स्नान करने के लिये होता है। इसी प्रकार 'नोनी' शब्द भी है जो 'लावण्य' शब्द से बना है और जिसका अर्थ होता है सब नाटकीय रमणीयता या अच्छाई किन्तु गीतो मे इसका प्रयोग केवल एक देशीय अच्छाई के लिये हुआ है।

कभी-कभी वातावरण की भिन्नता के कारण भी अर्थ बदल जाता है जैसे प्रजापति का प्रयोग बुन्देलखंड मे कुम्हार के लिये होता है। कभी-कभी द्रव्य वाची शब्द जब अमूर्त्त अर्थ, भाव या गुण के लिये प्रयुक्त होता है तब उसके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। इन प्रयोगों में प्राय: लाक्षणिक शक्ति काम करती है।

जैसे 'हाथी' मूर्त्तिवाची शब्द है परन्तु यह गीतों मे विशेषण रूप में प्रयुक्त होता है इससे इसका अर्थ बदल गया है यहां हाथी शब्द का अर्थ बड़ा या महान से है।

कभी-कभी शब्दों के प्रयोग में ढिलाई के कारण अर्थ बदल जाता है। अनपढ़ जनता मे इस प्रकार की ढिलाई की सम्भावना रहती है। जैसे द्वन्द्व शब्द का अर्थ है शारीरिक या मानसिक द्वन्द्व पर बुन्देलखंडी गीतों मे दोदना शब्द शारीरिक शक्ति सम्बन्धी जबर्दस्त तथा झूठे आरोप के लिये प्रयुक्त हुआ है।

कभी-कभी व्यक्तिवाचक नाम भी अपने गुणो के कारण जनता में जाति वाचक रूप मे प्रयुक्त होने लगते है जैसे गंगा रामायण आदि। भारतवर्ष मे कोई भी पवित्र नदी गंगा के नाम से पुकारी जाती है चाहे वह कृष्णा कावेरी, गोदावरी

हो। बुन्देलखड मे किसी भी नदी तालाब या झरने में स्नान करते हुये लोग वहा गगा शब्द का ही प्रयोग करते है मानो वे गगा में ही स्नान कर रहे हो।

जैसे—मपरलो गगा जु की झिरिया हो।

इस पक्ति मे झिरिया शब्द का अर्थ छोटे-छोटे कुण्ड या झरनो से है पर गगा जी मे वह झिरिया तो नही होती।

बुन्देलखड में ही इस तरह के झरने मिलते है इसलिये यहा गगा शब्द का अर्थ विस्तृत हो गया है। भाषा के शब्द भडार में अर्थोपकर्ष के उदाहरण कम मिलते है। यही बात जन-भाषा के लिये भी कही जा सकती है। किसी शब्द का अर्थ उत्कर्ष की अवस्था को अपने भीतर छुपे हुये किसी अर्थांश को उत्कृष्ट करके प्राप्त होता है जैसे—मुग्ध शब्द सस्कृत मे सुन्दर या मूढ अर्थ को पहले देता है। किन्तु अब हिन्दी में मुग्ध शब्द में तनिक भी बुराई नही रह गई है, केवल अच्छाई रह गई है। बुन्देलखडी गीतो में 'छैला' शब्द अर्थोपकर्ष के उदाहरण को बहुत ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत करता है। 'छैला' शब्द का अर्थ पहले छलने वाले से था किन्तु बुन्देलखडी गीतों में नायिका अपने सजे हुये नायक के लिये करती है। इसी प्रकार बतराना शब्द भी अर्थोपकर्ष का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। 'बतराना' शब्द का अर्थ बातचीत करना है जिसे हम लोग भाषा में गप्प करना कहते है किन्तु गीतो में 'बतराना' शब्द बातचीत करके समझाने या प्रसन्न करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

बुन्देलखंड का लोक साहित्य

श्री शिवसहाय चतुर्वेदी

बुन्देलखंड नाम का कोई पृथक् प्रदेश नही है और न पूर्व काल मे ही कोई राजनैतिक इकाई के रूप मे कभी उसका जुदा अस्तित्व रहा है। इतिहास प्रसिद्ध 'यजुर्होति प्रदेश' जो गुप्त काल मे 'जेजाकभुक्ति' नाम से '(जुझौती) प्रसिद्ध था और जो विशेषत: विन्ध्याटवी मे स्थित होने के कारण विन्ध्याचल खंड के नाम से भी सम्वोधित हुआ है तथा जिस कवि कुलगुरु कालिदास ने दशार्ण-देश (धसान नदी का देश) वर्णित किया है—वही प्रदेश अब लगभग चार-पांच सौ वर्षो से बुन्देलखंड कहलाने लगा है। यह भूभाग भारत के मध्यभाग मे स्थित यमुना, नर्मदा, चम्वल तथा टौंस नदियों द्वारा वेष्टित तथा उसके उन समीपवर्ती जिलों तक विस्तृत है जहां बुन्देलखंडी वोली वोलने वाले लोग वसते हैं। भाषा ही जनपदों की खरी कसौटी है। एक बुन्देलखंडी वुझौवल मे इस प्रदेश की सीमा का निर्धारण किया गया है—

भैंस बंधी है ओरछा पड़ा हुशंगावाद।
लगवैया* है सागरे, चपिया † रेवापार।

इस वुझौवल का उत्तर 'बुन्देलखण्डी' ही हो सकता है। इस भू-भाग की संस्कृति समान है। व्रत-उत्सव, तीज-त्योहार, सभी जगह एक से मनाये जाते हैं। जो कजलियां महोवा, चंदेरी, ग्वालियर और कालिजर मे बोई जाती है वही सागर, मंडला और सिगौरगढ़ मे भी। कजली की लडाइयाँ सभी जगहों मे ढोलक की आवाज़ के साथ पूर्ण उत्साह के साथ गाई जाती है। ददरी, फागे, दिवारी; भगते, भजन और वैवाहिक गीत सभी जगह एक ही से सुनने को मिलते हैं। बरात चाहे झासी मे लगे या सागर मे, दमोह मे लगे या होशंगावाद मे सभी जगह वरात लगाते समय "कहना के बड़े कोटिया जिन कोट उठाये" गीत आपको सुनने को मिलेगा। आल्हा भी आप सब जगह सुनेगे। आल्हा, ऊदल, छत्रसाल और महारानी दुर्गावती की स्मृति आज भले ही धुधली पड़ गई हो पर हरदौल लाला के चबूतरे हमारे गाँव-गाँव मे बने हुए हैं—जो हमारी सास्कृतिक एकता को एक सूत्र में बाधे हुए हैं।

इस भूखंड ने वैदिक तथा पौराणिक काल से लेकर बौद्ध, गुप्त, नाग, चंदेल, बुन्देला, यवन और अंग्रेजी राज्य के उत्थान तथा पतन को देखा है।

बृहत्तर बुन्देलखंड की सीमा समय-समय पर राजाओ की सत्ता के अनुसार घटती-बढ़ती रही है। महाराज छत्रसाल के समय की बुन्देलखंड की सीमा इन पद्यों द्वारा दरशाई गई है।

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस।।

* * *

उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सुवहति है।
प्राची दिशि कैमूर सोन काशी सुलसति है।
दक्खन रेवा विन्ध्याचल तन शीतल करनी।
पश्चिम में चम्बल चंचल सोहति मन हरनी।
तिन मधि राजे गिरि, वन सरिता सहित मनोहर।
कीर्ति स्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड बर।।

---

* लगवैया—दुहनेवाला। † चपिया—दूध देने का पात्र।

उपरि लिखित सीमाओं के अनुसार वर्तमान उत्तरप्रदेश के झांसी, जालौन, बांदा और हमीरपुर जिले, ग्वालियर राज्य के भिंड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ, तथा भेलसा जिले, ओरछा, दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी, बिजावर, अजयगढ, छतरपुर आदि बुन्देलखण्डी ३६ रियासतें (जो अब विन्ध्यप्रदेश में विलीन हो चुकी है)। मध्यप्रदेश के उत्तर के जिले सागर, जबलपुर, मंडला, होशंगाबाद तथा भोपाल राज्य का अधिकांश भाग बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आता है।

बुंदेलखण्डी भाषा और उसका साहित्य—

बुन्देलखण्डी तथा ब्रजभाषा दोनों की उत्पत्ति शूरसेनी या पश्चिमी हिन्दी से हुई है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली से बुन्देली का निकट सम्बन्ध है। इसी कारण इन दोनों भाषाओं का उस पर प्रभाव भी अधिक पड़ा है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा के अनुसार जनपदों का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया है। (१) शूरसेन (ब्रज तथा बुन्देली का क्षेत्र) (२) पांचाल (कन्नौजी भाषा का क्षेत्र) (३) कोशल और काशी (भोजपुरी क्षेत्र) (४) कुरुक्षेत्र (कुरुभाषा का क्षेत्र) इन सब भाषाओं को बुन्देली की सगी बहनें कहना अनुचित न होगा, क्योंकि उनमें अपने अपने भूभाग की प्राकृतिक दशा, सांस्कृतिक भेद, जाति तथा भाषा विशेष के सम्पर्क के कारण उत्पन्न होने वाली निजी विशेषताओं के सिवा बहुत कुछ सादृश्य है। विशुद्ध रूप में बुन्देलखंडी झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओरछा, छतरपुर, पन्ना, चरखारी, दतिया, बिजावर, सागर, दमोह जिलों में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप नरसिंहपुर, जबलपुर, मंडला, बालाघाट और भोपाल में पाये जाते है। आजकल जनपदीय बोलियों के विशुद्ध रूप के दर्शन शहरों में नहीं हो सकते हैं। सहज दर्शन तो देहात ही में होते है। बुंदेलखण्डी का विशुद्ध रूप आज भी उसके प्राचीन लोक साहित्य—लोकवार्ताओं, ग्राम गीतों, सोहर, बधाये, फागा, भजनों, रसिया, लोकोक्तियों, मुहावरे आदि में पाया जाता है। बोल-चाल की प्राचीन तथा वर्तमान बुन्देलखण्डी में काफी हेरफेर होगया है। ब्रज के सम्पर्क में आनेवाली बुन्देलखण्डी पर स्वाभाविक रूप से ब्रजभाषा का प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार दक्षिण प्रान्त से सम्पर्क स्थापित होने से वहां की भाषाओं का प्रभाव बुन्देलखण्डी पर पड़े बिना नहीं रहा। बांदा जिले से आगे बढ़ो तो बघेली शुरू हो जाती है। अतएव बांदा और उसके आसपास की बुंदेलखण्डी पर बघेली का प्रभाव अनिवार्य है। कई अवस्थाओं में क्रियायें वही रही है परन्तु शब्दों के अर्थ और उनके उपयोग में बहुत हेरफेर हो गया है। भीतर के ऐसे क्षेत्रों में जहां अन्य भाषाओं का प्रभाव नहीं पड़ा वहां उसका विशुद्ध रूप आज भी मौजूद है।

ब्रजभाषा और बुंदेलखण्डी दोनों यमल बहनें हैं। अतएव उनमें बहुत कुछ सादृश्य रहने पर भी वे अपनी विशेषताएं, निजी शैली तथा अपना जुदा अस्तित्व रखती हैं। "चौरे छोरा नाय मान्तु" और 'कायरे मोड़ा मानत नया' में ब्रज भाषा और बुंदेली का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है।

बुन्देलखण्डी भाषा बहुत ही श्रुति मधुर और सरस है। बोली की मिठास के लिये लोग ब्रजभाषा की सराहना करते है, परन्तु बुन्देलखण्डी शब्दों में जो विनम्रता, लोच तथा सुकुमारता है उसके सामने ब्रजभाषा का लालित्य फीका पड़ जाता है। बुन्देली भाषा का लालित्य अनूठा है। उसके शब्द बहुत ही कोमल, श्रुति-मधुर तथा शिष्टता बोधक होते है। कविवर सत्यनारायण जी ने ब्रजभाषा के लालित्य के बारे में लिखा है —

> बरनन को करि सकत भला तेहि भाषा कोटी।
> मचलि मचलि जामें मांगी हरि माखन-रोटी।

पर, बुन्देलखंडी भाषा के अन्यतम विद्वान् श्री कृष्णानंद जी गुप्त लिखते हैं कि "बुन्देली गीता में जो भाषा का लालित्य प्रकट हुआ है उसके सामने ब्रजभाषा पानी भरती है।" यह व्यर्थ अभिमान की बात नहीं है। जो सज्जन बुन्देली लोक-साहित्य का अध्ययन करेंगे वे इस तथ्य को स्वीकार किये बिना नहीं रहेंगे।

लोगों की धारणा है कि कविता में प्रौढ तथा उच्च भावों का लाना प्रबुद्ध कवियों का काम है, देहात के अपढ गंवार उसे क्या जानें? पर जिन लोगों ने बुन्देली लोक-गीतों का अध्ययन किया है या करेंगे उनकी उपरिलिखित धारणा

अवश्य निर्मूल सिद्ध होगी। सुशिक्षित लोग यदि नाना प्रकार के छंदों द्वारा रचित जगत प्रसिद्ध महाकवियों के काव्यों को पढ़ कर आनंदानुभूति उपलब्ध करते हैं तो हमारे ग्रामीण स्त्री पुरुष अनगढ किन्तु भावपूर्ण गीतों द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं। उनके गीतो मे भले ही शब्दाडम्बर तथा अलंकारों की वहुलता न हो परन्तु वे वड़े ही मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी अवश्य होते हैं, क्योंकि भाषा तो भावो का परिधान मात्र है। भाषा-भेद से भावों की व्यंजना मे कोई वाधा नही पहुंचती।

बुन्देली भाषा में लोकवार्ताओं, लोक-गीतों, मुहावरों, कहावतों, अनुभव-वाक्यो आदि का अटूट भंडार भरा पड़ा है। इसका कारण यह है कि बुन्देलखन्ड का अतीत वड़ा गौरवमय रहा है। यहा की भूमि अनादि काल से कवि प्रसविनी रही है। इस भूमि को विश्व विख्यात वाल्मीकि, व्यास, तुलसी, केशव सरीखे भारत के श्रेष्ठतम कवियों को उत्पन्न करने का गौरव प्राप्त हुआ है। आल्हा, ऊदल, छत्रसाल, हरदौल जैसे वीर-शिरोमणि भी यहां पैदा हुए हैं। इनकी वीर गाथाएं आज भी घर-घर गाई जाती हैं। यही कारण है कि इन नर-पुगवो की कीर्ति ग्राम्य-गीतो आदि रूप मे परम्परा से चली आ रही है।

स्थानाभाव के कारण यहां बुन्देली लोक साहित्य के अन्य विषयों की चर्चा न करके ग्राम गीतो के कुछ उदाहरण पाठकों के मनोरंजनार्थ दिये जाते हैं।

सूरदास जी ने श्री कृष्ण की मुरली के विषय में अनेक ललित पद लिखे हैं। सूर के कृष्ण की मुरली ध्वनि सुनकर सारी प्रकृति स्तंभित रह जाती है पर यहा किसी देहाती अपढ़ कवि के कृष्ण की मुरली की टेर भी अपना कम प्रभाव नही रखती है। उसे सुन कर राधा का अचकना देखिये :—

सुन मुरली के टेर अचक रईं राधा सुन मुरली की टेर।
होत भोर राधा पनियां खों निकरीं गउअन ढिलन की वेर।
छोड़ो कन्हैया प्यारे बांह हमारी हम घर सास कठोर।
कहा करै सास कहा करै ननदी, चलो कदम की ओट।

एक स्त्री जिसका पति रात्रि भर अपनी प्रेमिका के पास रहा है, उसके प्रातः काल घर आने पर यह बुन्देली राधिका अपने मुरलियावारे पति को देखिये कैसी करारी फटकार वतलाती है :—

ओई घरै जाव मुरलिया वारे, जहां रात रये प्यारे।
अब आवे को काम तुमारो, का है भवन हमारे।
हेरें बाट मुनैयां हुइये, करै नैन कजरारे।
खासी सेज सजाय महल में दियला धरें उजयारे।
भोर भये आ गए ईसुरी, जरे पै फोला पारे।

श्री कृष्णजी द्वारका मे अपने महल मे रुक्मनी जी के पास वैठे है। इस समय उन्हे सहसा अपनी जन्मभूमि व्रज की याद आ जाती है। वे कहते हैं :—

सखी री मोय ब्रज बिसरत नैयां।
सोने सरुये की बनी द्वारका गोकुल कैसी छबि नैयां।
सखी री मोय ब्रज बिसरत नैयां।
उत्तम जल जमना की धारा बाकी भांत जल नैयां।
रुक्मनी मोय ब्रज बिसरत नैया।
जो सुख कहिये माय जसोदा, सो सुख सपने नैयां।
सखी री मोय ब्रज बिसरत नैयां।

कवि ने अपने सीधे सादे शब्दों में मातृभूमि के प्रति कैसा उत्कट प्रेम दरशाया है। द्वारका भले ही सोने की बनी हो परन्तु वह जन्मभूमि के साधारण मिट्टी के बने घरों के समक्ष सदा फीकी ही दिखेगी। यशोदा मैया की गोद में जो सुख पाया है वह त्रलोक्य में दुर्लभ है।

नेक पठै दो गिरधारी जू कों मैया।
जे गिरधारी मोरे हिरदे बसत ह— सो उनई के हात लगे मोरी गया।
इतनी सुन के जसोदा मुसक्यानी। जाग्रो जाग्रो लाल लगा ग्राग्रो गैया।
कछु कारे कछु ग्रोढे कमरिया, उनखों देख बिचक गई मोरी गैया।
कछु देखें वहु सेंट चलावें, मुख प दूध गिरे मोरी मैया।
तू तो गुग्रालिन मद की माती। ग्रबै तो हमारो प्यारो वारो है कनैया।

इस गीत का प्रत्येक पद कितना भावपूर्ण है, उसमें अनन्त प्रेम तथा अडिग विश्वास की कितनी गहरी छाप लगी है, उसका लेखा-जोखा करना असंभव है। 'नेक पठै दो गिरधारी जू को मैया' में गोपियों ने अपने हृदय की आकांक्षा तथा अनुनय विनय को कितनी सरसता के साथ उडेल कर यशोदा के हृदय को प्लावित कर दिया है, यह दर्शनीय है। 'सो उनई के हाथ लगे मोरी गैया" में तो उनके परम विश्वास तथा चिरन्तन भावनाओं का परम सत्य प्रकट होता है।

अब रित ग्राई वसत बहारन, पान फूल पत भारन।
तपसी कुटी कदरन माहीं, गई बैराग बिरागन।
हारन हद्द पहारन अगरन धाम धवल जल धारन।
चाहत हती प्रीत प्यारे की, हा हा करत हजारन।

देखिये, वसन्त ऋतु का कैसा सजीव चित्र खींचा है। वसंत की बहार वन-पर्वत, खेत-खलिहान, नदी की धाराओं तथा धवल धामों में सर्वत्र फैल गई है। देखो, वह पहाड की गुफाओं में छिपे रहने वाले साधुओं के वैराग्य को बिगाडने के लिये वहा भी जा पहुची। कंदराओं में छिपे साधु भी उससे नही बच सके।

गाडी वारे मसक्दि बैल ग्रबै पुरवैया के बादर ऊन ग्राए।
कौना वदरिया ऊनई रसिया, कौना बरह गए मेह।
ग्रबै पुरवैया के वादर ऊन ग्राए।
ग्रगम वदरिया ऊनई रसिया, पच्छम बरस गए मेह।
ग्रबै पुरवैया के बादर ऊन ग्राए।
घुघटा बदरिया ऊनई रसिया, गलुग्रा बरस गए मेह।
ग्रबै पुरवैया के बादर ऊन ग्राए।

पुरवाई हवा से बादल आकाश में छा गए ह। इस बुन्देली बाला को इस बात का ज्ञान है कि पुरवाई हवा चलने पर पानी शीघ्र बरसता है। इसलिये वह अपने गाडीवान को ताकीद करती है कि बैलो को जल्दी भगाओ, पानी आने वाला ह। पर बादल भी बडे हठी हैं। उसके घुघटो पर उनहे बादल गलुओ पर बरस ही गए।

सदा तुरया फूले नहीं, सदा न साहुन होय।
सदा नै कसा रन खों चढ़, सदा न जीवे कोय।
असढा तो गरजे अब सहुना लगे हो, वनमें कुहक रई मोर।
वीरन लुवोग्रा ग्रब ग्राये नहीं, भोरो सोंय साय जो होय।

अपने भाई के आगमन की प्रतीक्षा में किसी रमणी ने असाढ तथा श्रावण मास के प्राकृतिक सौन्दर्य का कैसा मनोहर चित्र खींचा है।

चलतन परत पैंजना छमके, पाँउन गोरी धन के।
सुनतन रोम रोम उठ आवत, धीरज रहत न मन के।
छूटे फिरत गैल खोरन में सुर मुखत्यार मदन के
करवे जोग भोग कछु नाते, लुट गए बाला पन के
'ईसुर' कौन कसाइन डारे, जे ककरा कसकन के।

जब यह वुन्देली नायिका घर से निकलती है तो उसके पैंजनों के छमाके से मुहल्ले के लोग चौंक पड़ते हैं। उन्हे ऐसा मालूम पड़ने लगता है मानों उन्हें तंग करने के लिये मदन महीपति के कारिंदे गलीखोरों में छूट पड़े हों। यह भी सभी जानते है कि लम्वरदार के कारिन्दे गरीवों को वेहद सताते हैं।

गांव का कैसा सच्चा चित्र खीचा है। यह तो ठीक, पर वह कौन कसाई है जिसने उसके पैंजनो में ये कसक के कंकड़ रखे हैं ?

जो तन बाग बलम को नीको, सिचों सुहाग अमी को।
श्रीफल फरे धरे चोली में मदरस चुअत लली को।
लेत पराग अधर पै मधुकर विकसी कमल-कली को।
'ईसुर' कहत बचाएं रहियो छुए न छैल गली को।

कोई स्त्री अपने शरीर को वलम का वाग घोषित करती है। सचमुच मे इस 'वलम के वाग' ने काश्मीर के निशात वाग को भी मात कर दिया है। वड़ा अजूवा वाग है। इस बाग के फलों से मदरस टपकता है। पर गली के छैलों से इसकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है।

गोरी कठिन होत है; जितने ई रंग वारे।
कारे रंग के काटखात जव, जहर न जात उतारे।
कारे रंग के भंवर होत हैं, कलियन पर गुंजारे।
कारे रंग के काग पखौआ, पटियन जात उनारे। *
ककरिजिया खों ओढ़ इसुरी, खकल कलेजे डारे।

सचमुच मे काले रंग के वड़े भयंकर होते हैं। उनके काटे का कोई इलाज नही। काली काकरेजी ओढ़नी ओढ़ने वाली भी तो दर्शको का कलेजा हिला जाती है। सूरदास के समान ईसुरी कवि ने भी काले रंग पर खूव फवतियां कसी है।

सपनन दिखाय परे मोय सैयां, सुनो परोसन गुइँयाँ।
आपुन आय उसीसे † ठाड़े झपट परी मैं पैयां।
उनके दृग दोऊ भर आये, मोरी भरी डवैयां।
'ईसुर' आंख दगा में खुल गई, हतो उतै कोऊ नैयां।

अहा! कैसा मधुर स्वप्न था। स्वप्न मे चिर विरही पति से भेंट हुई। पर दईमार दैव से वह भी न सहा गया। उसने धोखे मे उसकी आंख खोल दी।

---

* उनारे—उपमा दिये जाते।

† उसीसे;–सिरहाने।

जो कऊ छैल छला हो जाते, तो उगरन बिच राते* ।
मों पोंछत गालन खों लगते, कजरा देत दिखाते ।
घरी घरी घूंघट खोलत में, नजर सामने राते ।
म चाहत तो लख में बिदते हात जाईं खों जाते ।
'ईसुर' दूर दरस के लानें†, ऐसे काय ‡ ललाते ?

अपने प्रेमी के प्यार की प्यासी एक नायिका कहती है कि यदि मेरा प्रेमी छल्ला बना कर मेरी उंगलियों के बीच में रहता तो कितना अच्छा होता । फिर मैं उनके दर्शन को क्या तरसती ? मुंह पोंछते समय हमेशा मेरे कपालों से लगता, काजल लगाते समय भी दिखता और घूंघट खोलते समय भी हर दम नजर के सामने रहता । कैसी मधुर कल्पना है ।

हम प बैरन बरसा आई,
हमें बचा लेव भाई ।
चढ़ के अटा घटा न देखें, पटा देव अण नाईं ।
बारादरी दौरियन में हो, पवन न जानें पाई ।
जे द्रुम कटा छटा फुलबगिया, हटा देव हर याईं ।
पिय जस गाय सुनाओ 'ईसुर' जो जिय चाव भलाई ।

यह विरहणी नायिका है । पति के विरह में वर्षा ऋतु उसे वैरिन सी प्रतीत होती है । इसलिये वह उससे वैरिन जैसा ही व्यवहार करती है । वर्षा के सभी सुख तथा मंगलदायक उपादानों को वह हटा देना चाहती है । वह तो उसी को अपना हितू मानती है जो उसके पिया का यश उसे सुनावें । ×

---

* रातें—रहते ।

† लानें—लिये ।

‡ काय—क्यों ।

× इस लेख के लिखने में मैंने 'मधुकर' में प्रकाशित अनेक बुन्देलखण्ड सम्बन्धी लेखों से सहायता ली है । अतएव म उन सबके लेखकों का आभार मानता हू—लेखक ।

निमाड़ी–बोली

श्री कृष्णलाल 'हंस'

'निमाड़ी' मध्यप्रदेश के उत्तर-पश्चिम और मध्यभारत के दक्षिण-पश्चिम भू-भाग से निर्मित एक ६४,३५ वर्गमील के क्षेत्रफल में स्थित भू-प्रदेश की लोक-भाषा है। यह भाग २१.४ और २२.५ उत्तर अक्षांश तथा ७४.४ और ७७.३ पूर्व देशांश के बीच स्थित है। विन्ध्य महाशैल इस प्रदेश की उत्तरी और सप्तपुडा इसकी दक्खिन सीमा के अडिग प्रहरी हैं। नर्मदा और ताप्ती के समान पुराणप्रसिद्ध ऐतिहासिक सरिताएं इस निमाड़ी-भाषी क्षेत्र को पावन और उर्वरा बनाती है। इस क्षेत्र की पूर्व-पश्चिम लम्बाई १५६.८ मील और उत्तर पश्चिम अधिक से अधिक चौडाई ६३.६ मील हैं। गत जन-गणना के अनुसार मध्यप्रदेशीय निमाड़ की जनसंख्या ५,२३,४९६ और मध्यभारतीय निमाड़ की जनसंख्या ६,६६,२९७ है। इस प्रकार सम्पूर्ण निमाड़ की जनसंख्या ११,८९,७९३ हैं, किन्तु यह सम्पूर्ण जन-संख्या निमाड़ी भाषी नही हैं। मध्यप्रदेशीय निमाड़ में १,१०,४०६ व्यक्तियों की मातृभाषा निमाडी हैं। मध्यप्रदेश के अन्य जिलों में भी १,१७१ निमाड़ी -भाषी निवास करते हैं। मध्यभारत के निमाड़ जिले मे १,५७,८६९ व्यक्तियों की मातृभाषा निमाड़ी है। इसके अतिरिक्त धार जिले में १५,९२०, देवास में ३,३४२ झाबुआ मे २,९९१ और इन्दौर जिले में ४५३ व्यक्ति निमाड़ी-भाषी हैं। कुछ निमाड़ी-भाषी अन्यत्र भी वसते हैं। इस प्रकार सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार निमाड़ी-भाषियों की कुल संख्या २,९२,२९१ है।

मध्यप्रदेश और मध्यभारत मे स्थित उपर्युक्त क्षेत्र राजकीय दृष्टि से दो भागों में विभाजित है, किन्तु भाषा, वेश-भूषा, संस्कृति, धार्मिक प्रवृत्ति, सामाजिक संगठन और भौगोलिक दृष्टि से यह समस्त एक ही भू-प्रदेश है। इसके उत्तर में मालवी, दक्षिण में मराठी और खानदेशी, पूर्व में निमाड़ी प्रभावित मालवी और पश्चिम में भीली-भाषी क्षेत्र है। निमाड़ की इस स्थिति का इस लोक-भाषा के स्वरूप-निर्माण पर बहुत वडा प्रभाव पड़ा है।

निमाड़ी का स्वरूप

डाक्टर ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' नामक विशाल ग्रन्थ के ९ वें खण्ड के द्वितीय भाग मे 'राजस्थानी' पर विचार करते हुए इसे पांच भागों में विभाजित कर निमाड़ी को 'दक्षिणी राजस्थानी' लिखा है। इस तरह निमाड़ी ग्रियर्सन के मतानुसार राजस्थानी की एक लोक-भाषा है। इस लोक-भापा के अध्ययन की ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान आकर्षित न होने के कारण भाषा-विज्ञान के अन्य लेखक भी डा. ग्रियर्सन के अनुसार निमाड़ी को राजस्थानी के ही अन्तर्गत स्थान देते आ रहे है। केवल डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने उदयपुर विद्यापीठ मे 'राजस्थानी' पर दिये अपने भाषण में डा. ग्रियर्सन से सहमत न होते हुए निमाड़ी के राजस्थानी की बोली होने में सन्देह व्यक्त कर विद्वानों द्वारा इस पर विचार होने का संकेत किया है।

ऐसा जान पड़ता है कि डा. ग्रियर्सन ने निमाड़ी को राजस्थानी का दक्षिणी रूप तो कह दिया, पर वे स्वयं ही किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुंच सके। उन्होंने राजस्थानी की शाखाओं का विभाजन करते समय मालवी को राजस्थानी की दक्षिण पूर्वी शाखा और निमाड़ी को दक्षिणी शाखा कह दिया, पर जहां वे निमाड़ी पर पृथक् विचार करते हैं, वहां वे पहिले मालवी को राजस्थानी की बोली कहकर निमाड़ी को मालवी का ही एक रूप कहते हैं और अपना पूर्व विभाजन भूल जाते है। इसके पश्चात् फिर वे कहते है कि–"निमाड़ी राजस्थानी के एक रूप मालवी का ही परिवर्तित रूप है, पर इसकी कुछ अपनी विशेषताएं है, जिससे हमे इसे मालवी से पृथक् एक स्वतंत्र लोकभाषा ही मानना पड़ेगा।"*

---

* लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, जिल्द १, भाग २, पृष्ठ ६०।

डा ग्रियसन ने अपने इसी ग्रथ के प्रथम खण्ड में 'निमाडी' पर जो मत व्यक्त किया है, वह और भी भिन्न है। यहा वे कहते ह –"उत्तरी निमाड और उससे लगे हुए मध्यभारत के भोपाल राज्य में मालवी, खानदेशी और भीली से इस प्रकार मिल गई ह कि वह एक नई वोली का ही रूप धारण कर निमाडी कहलाती है, जिसकी अपनी विशेषताएँ ह । जिस अर्थ में मेवाडी जयपुरी, मेवाती और मालवी का वास्तविक रूप में राजस्थानी की वोली कहा जा सकता है उस अर्थ में निमाडी कठिनाई से एक वोली कही जा सकती है। यह वास्तव में मालवी पर आधारित अनेक भाषाओ का एक मिश्र रूप है।" *

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा ग्रियसन ने ही अपने ग्रथ के तीन स्थानो में निमाडी पर तीन मत व्यक्त किये हे। इससे उनका किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर न पहुचना स्पष्ट है। अब एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान फोर्सिथ का मत देखिये। उनके कथनानुसार "निमाडी मालवा और नमदा के उत्तर में वोली जानेवाली सामान्य हिन्दी के साथ मराठी और फारसी शब्दो का एक मिश्रण है।" † इससे फोर्सिथ का डा ग्रियर्सन के अनुसार इसे राजस्थानी की एक वोली न मानकर सामान्य हिन्दी का एक रूप मानना स्पष्ट है।

स्व बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपने "भाषा विज्ञान" ग्रथ में निमाडी के सम्बन्ध में लिखा है —

"इन्दौर के आसपास मालवा प्रान्त में और उसके चारों ओर दूर-दूर तक मालवी वोली जाती है। इसका मारवाडी से मिलता-जुलता एक रूप है जो रागडी कहलाता है। उत्तर निमाड आदि में इसने खानदेशी के साथ एक विलक्षण और नया रूप धारण कर लिया है। इसी को निमाडी कहते है। निमाडी कोई स्वतत्र वोली नही है। वह मुख्यत मालवी के आधार पर वनी हुई एक सकर भाषा है।"

यहा बाबू श्यामसुन्दरदास डा ग्रियसन से कुछ सीमा तक सहमत जान पडते है, पर उन्होंने "हिन्दी भाषा और साहित्य" नामक पुस्तक में मालवी के सम्बन्ध में जो स्पष्टीकरण दिया है, उसमें वे कहते है कि "भिन्न भिन्न वोलियों की वनावट पर ध्यान देने से यह प्रकट है कि जयपुरी और मारवाडी गुजराती से, मेवाती ब्रज भाषा से और मालवी बुन्देली से बहुत मिलती है।"

हम बाबू साहब के इस मत से पूर्णत सहमत है। निमाडी पर अनुसधान करते समय हम मालवी के स्वरूप का जितना अध्ययन कर सके, उसमें हमने देखा कि मालवी की प्रवृत्ति जितनी बुन्देली की प्रवृत्तियो से साम्य रखती है, उतनी वह राजस्थानी की किसी भी शाखा-वोली से साम्य नहीं रखती। यह देखते हुए ऐसा लगता है कि मालवी भाषा के सम्बन्ध में अधिक अनुसधान होने पर हमें उसे राजस्थानी की एक शाखा न मानकर उसे ब्रज, बुन्देली की तरह पश्चिम हिन्दी की एक स्वतत्र लोकभाषा ही स्वीकार करना पडेगा। हमें निमाडी में अनेक भाषाओ के शब्दो का मिश्रण देखकर तथा उसका मालवी से अधिक साम्य पाकर उसे मालवी के आधार पर बनी एक सकर लोक-भाषा स्वीकार करने से कोई आपत्ति नही जान पडती, किन्तु हम उसे डा ग्रियसन के अनुसार राजस्थानी भाषा-परिवार में स्थान न दे पश्चिमी हिन्दी की एक भिन्न लोक-भाषा मालवी के अन्तर्गत ही स्थान देना अधिक युक्तिसगत मानते हैं।

हमने निमाडी के स्वरूप का अध्ययन करने के लिये इसके विभिन्न कालों की गद्य और पद्य सामग्री प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इसमें सबसे प्राचीन सामग्री सन्त सिंगा के दादा गुरु ब्रह्मगिरि का साहित्य है। हमें सन्त सिंगा के जीवन पर प्रकाश डालने वाली जो हस्तलिखित पुस्तक "सिंगाजी की परचुरी" प्राप्त हुई है, तदनुसार सन्त सिंगा की मृत्यु ९० वष की अवस्था में सम्वत् १६६४ वि में हुई थी। अत इनका जन्म सम्वत् १५७४ वि होना चाहिये। इनके गुरु मनरगीर स्वभावत ही अवस्था में उनसे बडे होने चाहियें और उनके गुरु ब्रह्मगिरि उनसे भी बडे होने चाहियें। यदि

---

* वही देखिये, जिल्द १, भाग १, पृष्ठ १७२।

† फोर्सिथ, निमाड प्रान्त की सैटलमैण्ट रिपोट १८६५, पैरा १।

हम इस गुरु-परम्परा की एक-एक पीढ़ी केवल २५ वर्ष की मान लें, तो ब्रह्मगिरि सिंगाजी से ५० वर्ष बड़े होते है और इस प्रकार उनका जन्म सम्वत् १५२४ वि. के लगभग होना चाहिये। यदि उन्होने ३५ वर्ष की अवस्था में भी पद्य-रचनायें आरंभ की हो, तो उनकी रचना आज से कम से कम ४५० वर्ष पूर्व की होनी चाहिये। इनके वहुत कम पद उपलब्ध हैं। इनके एक पद की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :—

"निरगुन ब्रह्म को चीना, जद भूल गया सब कीना।।
सोहं सबद है सार, सब घटमूं संचरा चार।
जहां लाग रहा एकतार, सब घटमूं श्री उंकार।।
कोई मीन-मारग ढूंढ लीना ।।"

ब्रह्मगिरि सन्त कवीर के समकालीन है। इनकी उपर्युक्त पंक्तियो में भी हम कवीर की विचार-धारा देखते है। भाषा की दृष्टि से इस पंक्तियो में खड़ी वोली की प्रधानता स्पष्ट है। कीना, लीना ब्रजभाषा से प्रभावित शब्द है। इसमें केवल जद और घटमू ही ऐसे शब्द है, जो निमाड़ी कहे जा सकते है। ये शब्द भी हिन्दी के क्रमशः 'यदि' और 'घट मे' शब्द के ही विकृत रूप है। यह निमाड़ी का आज से लगभग साढ़े चार सौ वर्ष का पद्य-रूप है।

इसके पश्चात् हमें मनरंगीर, सिगाजी, दलूदास, धनजीदास आदि के निमाड़ी पद्य मिलते है। ये निमाड़ी के एक दूसरे के पश्चात् के लोक-गायक संत है। मैंने सभी लोकगायकों की रचना पर अपने "निमाड़ी और उसका लोक-साहित्य" विषय पर प्रस्तुत ग्रन्थ में सविस्तर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यह निमाड़ी भाषी संतों की शृंखला ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई, त्यों-त्यो उनकी रचना पर से सामान्य हिन्दी का प्रभाव कम होता गया और उसमे अधिकाधिक निमाड़ीपन आता गया। यही निमाड़ी के रूप का विकास-क्रम है।

मुझे अपनी मध्यभारतीय निमाड़ की यात्रा में कुछ ऐसे प्राचीन कागज-पत्र भी मिले है, जो निमाड़ी में लिखे गये है। इनमें सवसे प्राचीन पत्र श्रावण कृष्णा सप्तमी सं. १८५५ वि. का लिखा हुआ है। इस पत्र मे हम निमाड़ी का आज से लगभग १५७ वर्ष पूर्व का निमाड़ी का गद्य-रूप देख सकते है। मैंने अपने उर्द्धोल्लेखित अनुसधान-ग्रन्थ (थीसिस) मे इस पत्र से आरंभ कर आज तक क निमाड़ी के विभिन्न कालों के गद्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन से भी मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि आरंभ मे वोलचाल की हिन्दी और निमाड़ी के रूप में नाममात्र का ही अन्तर था। ज्यों-ज्यो समय आगे वढ़ता गया, त्यों-त्यों उसमे सीमावर्ती वोलियों तथा निमाड़ी क्षेत्र मे वाहर से आकर वसी जातियों के मातृभाषा के शब्द स्थान पाते गये और सामान्य हिन्दी अथवा वोलचाल की हिन्दी को एक नया रूप प्राप्त होता गया और इस तरह आज निमाड़ी मूलतः हिन्दी पर आधारित होते हुए भी गुजराती, राजस्थानी, मालवी, मराठी, भीली, वुन्देली और ब्रजभाषा के शब्दों का एक मिश्रण बन गई है। इसमे मालवी शब्दों का वाहुल्य है, किन्तु मालवी, जैसा कि हम पूर्व संकेत कर चुके है, कोई भिन्न भाषा नही, वरन पश्चिमी हिन्दी कीं ही एक रूप है। अतः हम कह सकते है कि निमाड़ी मूलतः हिन्दी पर और पर्याय से मालवी पर आधारित एक मिश्र वोली है।

व्याकरणिक रूप—किसी भी भाषा अथवा वोली के अध्ययन मे उसके व्याकरणिक रूप का प्रधान स्थान होता है। विभिन्न भाषाओं अथवा वोलियों से समानता अथवा भिन्नता देखने के लिये उनके संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया के रूपो तथा कारक-रचना और काल-रचना पर तुलनात्मक विचार करना आवश्यक होता है। निमाड़ी के व्याकरणिक रूप पर प्रकाश डालने की दृष्टि से भी हमे यही करना पड़ेगा। इस दृष्टि से मैंने अपने अनुसंधान-ग्रन्थ मे विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है, जो यहाँ सम्भव नहीं है। अतः मैं पाठको की जानकारी के लिये यहा कुछ उदाहरण देना ही पर्याप्त समझूंगा।

शब्दभेद—	हिंदी	मालवी	निमाडी
संज्ञा	पैर	पग	पाँव
	मुह	मूंठो	मूंठो
	बहिन	बेन	बहिण
	घोडा	घोरा	घोडो
	बैल	बेल	बईल
सर्वनाम	मैं	हूँ, म	हऊँ
	हम	म्हें	हम
	हमारा	हमारो	हमारो, मारो
	तुम्हारा	तमारो	तुम्हारो, तारो
	वह	ऊ	ऊ
	उनका	वनको	उनको
	कौण	कोन	कुण, कोण
क्रिया	बैठो	बठ	बठ
	म जाता हूँ	में (हूँ) जाऊँ	हऊँ जावंच्
	म गया	हूँ गयो	हऊँ गयो
	मैं मारूँगा	हूँ मारूंगो	हऊँ मारिस

उपर्युक्त उदाहरणा मे हम देखते ह कि अधिकाश निमाडी शब्द हिन्दी और मालवी शब्दो से पृथक् हैं किन्तु उनकी प्रवृत्ति प्राय मालवी के समान ही है, यद्यपि मूलत वे हिन्दी पर ही आधारित हैं। उनमें जो अन्तर देखा जाता है, उसका कारण उच्चारण-भेद ही है। निमाडी मालवी के जितने समीप है उतनी हिन्दी के समीप नही हैं, पर दोनों का मलाधार हिन्दी ही है। इसमे इन दोनो लोकभाषाओ—मालवी और निमाडी को हिन्दी की ही बोलिया कहा जा सकता है। दोनो के कुछ अपने स्थानीय शब्द भी है और उनमें सीमावर्ती बोलियो के शब्द भी मिल गये हैं। इन दोनो प्रकार के मिश्रण ने ही उन्हें स्वतन्त्र रूप प्रदान किया है।

वाक्य रचना और काल रचना में भी हम एक बहुत बडी सीमा तक हिन्दी, निमाडी और मालवी में साम्य पाते हैं। कारक-रचना में हिन्दी के कर्ताकारक की विभक्ति "ने" उच्चारण भेद से निमाडी और मालवी में 'न' होगई हैं। कर्म की विभक्ति "को" "ख" के रूप में परिवर्तित होगई है। करण कारक की विभक्ति "से" निमाडी और मालवी में "सी" होगई है। सम्प्रदान कारक की विभक्ति "के लिये" निमाडी में "कालेण" और मालवी में "वास्तऽ" होगई ह। यह अवश्य ही एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं। सम्बन्धकारक की विभक्ति में कोई विशेष अन्तर नही हैं। अधिकरण कारक की विभक्ति "में" और 'पर' निमाडी में क्रमश "में" तथा 'उप्पर' होगई ह। इसका कारण भी उच्चारण भेद ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार का नाममात्र का अन्तर हमें निमाडी की काल रचना में भी दिखाई देता है।

डा सनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानी की पृष्ठभूमि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "बारहवी शताब्दी में समग्र उत्तर भारत और पश्चिम भारत में एक प्रकार की साहित्यिक अपभ्रश प्रचलित थी। सस्कृत के पश्चात् इसी को सर्वाधिक साहित्यिक सम्मान प्राप्त था। यह पश्चिम अपभ्रश या शौरसेनी अपभ्रश भाषा थी। यह वास्तव में मध्यप्रदेश की भाषा थी, पर इसका अपभ्रश रूप उत्तर में पजाब तक, पश्चिम में सौराष्ट्र और सिंध तक तथा दक्षिण म नर्मदा तक छा गया था। यहा यह स्मरणीय है कि निमाडी नर्मदा की एक तटवर्ती भाषा है, अत निमाडी के स्वरूप निर्माण में इस शौरसेनी अपभ्रश के प्रभाव का योग स्वाभाविक है।

हमने अपने अनुसधान-ग्रंथ में सोलहवी शताब्दी की निमाडी का जो रूप दिया है, उस पर ब्रज भाषा का स्पष्ट प्रभाव है। इससे ऐसा जान पडता है कि ब्रजभाषा-काव्य के व्यापक प्रभाव के कारण ही निमाडी के सन्तकवि ब्रह्मगिरि मनगीर, सिंगाजी आदि की रचनाए अपने को इस प्रभाव से न बचा सकी। वह कबीर का युग था और उनकी निर्गुण विचारधारा बडे वेग मे नर्मदा के तटवर्ती भाग को भी प्रभावित कर रही थी, जिससे निमाडी के सन्त कवि भी उसी के

प्रवाह में प्रवाहित होगये। आगे चलकर निमाड़ी काव्य-रचना पर से कबीर की विचारधारा ही नही, पर उनकी भाषा का भी प्रभाव क्रमशः न्यून होता गया और व्रजभाषा का प्रभाव वढ़ता गया। इतना ही नही, पर भाषा के साथ ही व्रज-काव्य की सगुण धारा ने भी निमाड़ी में प्रवेश किया और परिणामस्वरूप निमाड़ी में रंकदास, दीनदास आदि सगुणोपासक भक्त लोक कवियों का आविर्भाव हुआ।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है निमाड़ी हिन्दी पर आधारित एक मिश्र लोक भाषा है। वर्तमान निमाड़ी में हमें केवल मालवी, भीली, मराठी तथा राजस्थानी के ही नहीं, वरन् फारसी और अंग्रेजी भाषा के शब्द भी अपभ्रंश रूप में मिलते हैं। उदाहरणार्थ कुछ निम्नांकित शब्द देखिये :—

मालवी के शब्द :—अड़माप, अम्मरपट्टो, आदो, कंकोतरी, चिवल्ली, चोखा (चाँवल), तीस (प्यास), फेरा, वाण्यो, मंगता (भिखारी) आदि।

भीली के शब्द :—नाना, पन (पर), कवाड़नो (कहना), दाजी, वेरू, हेड़ (निकाल), सेंगली (फली) आदि।

गुजराती के शब्द :—तमे (तुझे), तारो (तेरा), मारो (हमारा), आपसे, अमीसू, आवसे, किदी, केम, छे, जथो, जिण, जेवी, तड़ाय आदि।

मराठी के शब्द :—आन (सौगन्ध), उंदरा (चूहा), कालजी (चिन्ता), डोळा (आंख), पिवळो (पीला), काळो (काला), रड़णू (रोना), लगण (लग्न), हिरवी (हरी), सकाळू (सवेरे), लेकरू ('वच्चा) आदि।

राजस्थानी के शब्द :—कुकड़ो (मूर्गा), थारो (तेरा), विलई (विल्ली), इण, छोरी, ठेकाणू, झुलाड़सा, तई, दीथी आदि।

फारसी के शब्द :— अकल, इकरारनामो, उजर, कुदरत, जरीवाना, दरखास, दसखत, फिकर, मरज, रोजी आदि।

अंग्रेजी के शब्द :— इंजन, इनसपिट्टर, इसटाम, कोरट, ठेंचण, पुलस, वोरड, मनेजर, रजीटर आदि।

इन विभिन्न भाषाओं के शब्दों का निमाड़ी में समावेश होने का मूल कारण निमाड़ी भाषी क्षेत्र में इन भाषा-भाषियों का अधिक संख्या में आकर वसना है। मालवी शब्द मालव भूमि से आकर निमाड़ में वसे तेली, कुम्हार, अहीर, गाडरी, गूजर, लोहार, वढ़ई और कुछ मालवी ब्राह्मणों के द्वारा; भीली भीलों के द्वारा; गुजराती सौराष्ट्र से आकर निमाड़ मे वसे नागर, गूजर और गुजराती तेलियों द्वारा; मराठी मराठों और महाराष्ट्र ब्राह्मणों द्वारा; राजस्थानी राजस्थान से आये चौहान पवार, मोरी, तोमर, सोलंकी आदि राजपूतो तथा मारवाड़ से आये वैश्यों-द्वारा निमाड़ी में आये है। फारसी और अंग्रेजी शब्दों के समावेश का कारण निमाड़ी भाषी क्षेत्र में लगभग तीन-सौ वर्षो तक मुसलमानों का तथा लगभग डेढ़ सौ वर्षो तक अंग्रेजों का राज्य रहना है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी पढे-लिखे निमाड़ियों द्वारा भी अंग्रेजी के अनेक शब्दों ने निमाडी भाषा मे स्थान पाया। सरलता लोकभाषा की विशेषता है। वह अन्य भाषाओं के शब्द मूलरूप में कभी स्वीकार नही करती। उन्हे स्वीकार करने के पूर्व उन्हे अपने अनुकूल वना लेती है। यही कारण है कि फारसी और अंग्रेजी के ही शब्द नही, पर मराठी से आये शब्द भी निमाड़ी मे अपने मूलरूप में ग्रहीत न हो सके।

आरम्भ में सामान्य हिन्दी और निमाड़ी मे केवल उच्चारण भेद से ही कुछ अन्तर था, किन्तु जैसे-जैसे समय आगे वढ़ता गया, उसमें अन्य भाषा के शब्द मिलते गये और उसके स्वरूप में अन्तर होता गया, पर आज भी निमाड़ी-भाषी सम्पूर्ण भाग मे निमाड़ी का समान रूप नही है। जाति-भेद और स्थान-भेद के साथ ही उसके रूप में भी अन्तर देखा जाता है। नागर और औदीच्य ब्राह्मणों-द्वारा वोली जानेवाली निमाड़ी गुजराती से अधिक प्रभावित होती है। भीलों, भिलालों, वंजारों-द्वारा वोली जानेवाली निमाड़ी मे भीली शब्दों के अतिरिक्त कुछ मुण्डा परिवार की भाषाओं के भी शब्द रहते हैं। राजपूतों द्वारा वोली जानेवाली निमाड़ी राजस्थानी की विभिन्न वोलियो मारवाड़ी, मेवाड़ी

और खडी जयपुरी से प्रभावित होती ह। नार्मदीय ब्राह्मणो पर महाराष्ट्री जनो का अधिक प्रभाव देखा जाता है। वे महाराष्ट्र ब्राह्मणो की भाषा से ही नही, पर वेश-भूषा और उपासना विधि से भी कम प्रभावित नही हैं। उनका "सोवळा" साफा और अपने नामो के आगे "राव" शब्द का प्रयोग इसी प्रभाव का 'परिणाम' है। यही कारण ह कि उनके द्वारा बोली जानेवाली निमाडी में मराठी के शब्दो का अधिक प्रयोग मिलता ह। उत्तर भारतीय ब्राह्मण भी निमाडी भाषियो से निमाडी मे बोलते ह, पर उनकी निमाडी हिन्दी से अधिक प्रभावित रहती है। अग्रवालो के द्वारा बोली जाने वाली निमाडी भी हिन्दी से अधिक निकट होती है। गूजरो का मूलस्थान गुजरात है, पर वे निमाडी भाषी क्षेत्र म आकर बसने के वर्षो पूव मालवा मे बस गये थे और वही से निमाड में आये। अत इनके द्वारा बोली जानेवाली निमाडी मालवी से अधिक प्रभावित होती है। निमाडी भाषी क्षेत्र में बसे गुजराती कुनबियो की निमाडी गुजराती से और दक्षिण से आये कुनबियो की निमाडी मराठी से अधिक प्रभावित होती है।

स्थान-भेद के अनुसार उत्तरी निमाड की भाषा मालवी से, दक्षिणी निमाड की भाषा मराठी अथवा खानदेशी से, पूर्वी निमाड की भाषा मालवी और हिन्दी से तथा पश्चिमी निमाड की भाषा भीली और राजस्थानी (मारवाडी) से अधिक प्रभावित मिलेगी। एक तो भाषा स्वाभाविक ही परिवतनशील है, पर जब उसे लिखित रूप प्राप्त नही होता, तब लोकवाणी में उसके परिवतन की गति और भी द्रुत हो उठती है। लोकवाणी की यह परिवतनशीलता निमाडी में अधिक स्पष्ट रूप में देखी जा सकती हैं। हम खरगोन से खण्डवा तक के मध्यभाग में निमाडी का जो रूप देखते ह, उसमें कुछ साम्य और स्थिरता अवश्य है। इसी भाग की निमाडी को हम "स्टेण्डड निमाडी" कह सकते ह।

निमाडी में कुछ शब्द ऐसे भी ह, जो पूर्वोल्लेखित भाषाओ में से किसी में भी नही मिलते। इन्हें हम निमाडी की अपनी शब्द-सम्पत्ति कह सकते है। इनमें नित्योपयोगी शब्दो के अतिरिक्त कृषि-उपयोगी शब्द, मिट्टी के पात्रो के नाम तथा स्त्रियो के आभूषणो के नाम भी है। इनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं —

नित्योपयोगी शब्द – अडभग, (विचित्र, भयानक), अल्याग (इस ओर), आगळी (अगुली), एल्लोसो (छोटा सा), केडो (गाय का बच्चा), खामडा (जूता), गारडी (गोरी), ढाडा (मूर्ख), छमटी (पूछ) आदि।

कृषि उपयोगी वस्तुओ के नाम — आरवा ('मोट का मुह), कस्सी (कुदाली), गवाण (पशुओ का चारा खिलाने का स्थान), तावडा (गन्ने का रस पकाने की कडाई) तिस्याती (बीज बोने की तीफन) आदि।

मिट्टी के पात्रों के नाम — दरणी (दही जमाने का छोटा बतन), माट (बडा घडा), माथणी (दही मथने का बतन), पोट्या (छोटा बतन) आदि।

स्त्रियो के आभूषण —

सिर के आभूषण राखडी, बहेरा, झब्बा आदि।
कान क आभूषण टोडी, तागला आदि।
गले के आभूषण डुलरी, तामला, तिमण्या आदि।
बाह के आभूषण आवठघा, बाकड्या आदि।

निमाडी में कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त होते ह, जो गोरखनाथ, कबीर और मीरा की काव्य-रचनाओ में उपलब्ध है। उदाहरणाथ निम्नांकित शब्द देखिये।

गोरखनाथ द्वारा प्रयुक्त —अलूणी, आगिला, उलीचो, कीधा, साण, तुळई, दुलीचो, नरव, निवाणा, पावडिया, बालडा आदि।

कबीर द्वारा प्रयुक्त —कसुभ, कुबज, तम्बोर, दमामा, बलेण्डा, दिसटी, गैब, मुकलाई, रलिया आदि।

मीरा द्वारा प्रयुक्त —जिण, कान्हा, साझ पड्या, धणी, विण, म्हेल, सायबा, रूढो, सुरत, तई, धीहड, सोगन भागण आदि।

निमाड़ का लोक साहित्य

श्री रामनारायण उपाध्याय

मध्यप्रदेश की लोक-भाषाओ मे निमाडी का महत्वपूर्ण स्थान है। भाव, भाषा, उपमा और अलंकार सभी दृष्टियो से इसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध रहा है।

जिस तरह यहां की ऊवड-खावड धरती में भी खेती लहलहाती है और भयंकर गर्मी के दिनो में भी पलाश में फूल मुस्कराते हैं, उसी तरह यहां ऊपर से कठोर लगने वाली "निमाडी भाषा" मे भी आप मधुरतम स्वप्न, विराट कल्पनाओ, उद्यम महत्त्वाकांक्षाओ और सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वभाव-चित्रण से युक्त मनोरम स्वरूप वर्णन पायेगे।

उपमाओं की दृष्टि से इसमे एक ओर यदि मानसरोवर की तरह पिता, गंगा की तरह मा, गुलाव के फूल की तरह वच्चे और ऊगते हुए सूर्य की तरह स्वामी का जिक्र है, तो सौन्दर्य की दृष्टि से इसमे ऐसी अनिद्य सुन्दरियों का जिक्र है जिनका रूप दुश्मन की छांह से जलने लगता है और जिनके हाथ रेशम की डोर से युक्त सोने के घडे को खीचते छिलते है।

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से, यहां का सूर्य भी धरती के भाल पर लगे कुंकुम की तरह ऊगता है,और यहां के आम्र-वृक्ष मोतियों की तरह मौरते आये है।

यहां की निर्मल चांदनी रात मे चांदनी की ही तरह उज्ज्वल लोक-गीत एवं लोक-कथायें गूजती रही है।

गीत मनुष्य का स्वभाव है। हमारे जीवन मे ऐसा एक भी कार्य नही जो विना गीत के हो। किसान खेत में हल चलाता है तो गीत के साथ, मजदूर मिट्टी कूटता है तो गीत के साथ, स्त्रियां दही विलौती है तो गीत के साथ और चक्की पीसती है तो चक्की के स्वर के साथ गीत की सुमधुर कड़िया भी गूजती आई है।

गीत, ताने वानों की तरह हमारे जीवन का अभिन्न अंग वन चुके हैं। हमारे यहां वच्चे के जन्म के गीत है, नामकरण-संस्कार के गीत है, जनेऊ के गीत है, ब्याह के गीत है। और आदमी जव मर जाता है तो उसे भी गाते-वजाते हुए ले जाने की प्रथा है। सम्पूर्ण जीवन स्वयम् एक सुन्दर संगीत है।

इन गीतों मे मानव-मन की सुकोमल भावनाएं अंकित रही हैं। मनुष्य का मन जव अपने आप मे नही समाता, या वेचैन हो उठता है तो वह किसी की याद मे गाता, गुनगुनाता आया है।

इन गीतो के सहारे ही प्राचीन काल मे मनुष्य इन्द्रधनुष की तरह रंगीन स्वप्न वुनता, गिरि-शिखरों की यात्रा करता, सागर की लहरो से खेलता और वायु की लहरों पर तैरते हुए अनन्त के ओर-छोर नापता आया है। गीत, एक साथी की तरह सदा उसका साथ देते आये हैं।

जिस गीत ने मुझे लोक-गीतो की ओर आकर्षित किया वह एक गनगौर गीत है। एक दिन मैं गांव के अपने घर में बैठा हुआ था। इसी वीच स्त्रियों का एक दल गीत की निम्न पक्तिया गाते हुए वहां से निकला :—

"शक्र को तारो रें ईश्वर ऊंगी रह्चो
तेकी मख ऽ टीकी घडाव।

"हे प्रिय, वह जो आकाश में शुक्र का तारा दीख रहा है न, उसकी मुझे टीकी घडवा दो।"

गीत की इस एक पक्ति पर ही मैं मुग्ध रह गया। शिक्षा के नाम पर जिन्होने एक अक्षर नही पढा, और यात्रा के नाम पर अपने जिले की सीमा नहीं लांघी, विचार और भावनाओ की दृष्टि से उनके पास कितनी भव्य और विराट कल्पना है। उसके वाद तो मुझे अनेकों गीत मिले है, लेकिन इसकी टक्कर का गीत आज तक कही नही पा सका हूं।

पूरा गीत इस प्रकार है—

"शुक्र को तारो रे ईश्वर ऊगी रह्यो,
तेको मख ऽ टीकी घडाव ॥१॥
ध्रुव की बादल ई रे ईश्वर तुली रही,
तेको मख ऽ तहबोल रंगाव ॥२॥
सरग की बिजल ई रे ईश्वर कडकी रही,
तेको मख ऽ मगजी लगाव ॥३॥
नव लख तारा रे ईश्वर चमकी रह्या,
तेको मख ऽ अंगिया सिलाव ॥४॥
चाद सूरज रे ईश्वर ऊगी रह्या,
तेको मख ऽ टुक्की लगाव ॥५॥
वासुकी नाग रे ईश्वर देखई रह्यो,
तेको मख ऽ वेणी गुथाव ॥६॥
घडी हट वाल ई रे गोरल गोरडी ॥

अर्थ है—

"हे पतिदेव, यह जो आकाश में तेजस्वी 'शुक्र का तारा' चमक रहा है न, उसकी मुझे 'बिन्दी' घडवा दो।
"और वह जो ध्रुव की ओर (उत्तर में) बरसने योग्य बदली छाई हुई है उसकी मुझे चूनर रंगवा दो।
"और सुनो, स्वर्ग में कडकने वाली 'बिजली' की उसमें 'मगजी' लगवा देना।
"साथ ही आकाश में चमकनेवाले 'लाखों तारों', की मुझे 'कंचुकी' सिलवा देना कि जिसके अग्रभाग में सूर्य और चन्द्र जडे हो।"

इस तरह बादल और बिजली से रंगाकर, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र से युक्त अपनी चूनर और कंचुकी बनवाने का आग्रह करने के बाद वह एक चीज की और माग करती है। और वह है अपने केशों में गूंथने के लिये चोटी का आग्रह। लम्बे चिकने केश स्त्री के सौंदर्य के साथ ही साथ सौभाग्य के सूचक भी रहे है।

वह कहती है "हे पतिदेव, वह जो इठलाता और बल खाता हुआ वासुकी नाग दीख रहा है उसकी मुझे वेणी गुथवा दो।"

इस पर उसका पति कहता है "हे गौर वर्ण स्त्री, तू बडी हठ वाली है!"

इस गीत के सबंध में हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि "निमाडी गनगौर का यह गीत अकेला ही लाख गीतो के बराबर है। इसकी विराट कल्पना को देखकर मैं स्तब्ध रह गया। आकाश, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, शुक्र, मेघ, विद्युत, भारतीय आकाश के इन चिरन्तन उपकरणों से लोक-गीत की भावात्मा का शृंगार हुआ है, जो साहित्य में कहीं कहीं ही देखने में आता है। सचमुच यह निमाडी गीत, गीतो का राजा है।"

रूप-वर्णन की दृष्टि से गनगौर का एक गीत अद्वितीय है।

संस्कृत रीति ग्रंथो में स्त्री सौंदर्य के लिये जिन उपमाओं का जिक्र किया है, उनमें से अधिकाश इस गीत में ज्यो की त्यो मिलती है।

गोवर्धनाचार्य के मत से स्त्री शरीर में निम्नलिखित गुण होने चाहिये —

"सौंदर्य, मृदुता, कृशता, अति कोमलता, कान्ति, उज्ज्वलता और सुकुमारिता।"

नासा के दोनों पुट समान होने चाहिये। इसके सिवा "सुग्गे की चोच" से भी इसकी उपमा देने की रीति है।

"दातों में श्वेतता, अधर भाग में लालिमा और अत्यन्त दीप्ति वर्णनीय गुण माने गये है। इन गुणों के लिये मुक्ता, माणिक्य, नारगी, 'दाडिम', कुन्दकली और तारा की उपमा देते है।"

सामुद्रिक लक्षणो मे हाथ की अंगुलियों की कृषता को सौभाग्य का लक्षण बताया है। इसलिये इसकी उपमा, कभी कभी, "मूगों की टहनियो" से दी गई है।

अब देखिये निमाड़ी के इस एक गीत में ये ही उपमाये कितनी सरल और सजीव होकर उतरी हैं।

गीत के बोल हैं—

"थारो काई काई रूप बखाणुं रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारी आंगल ई मूंग की सेंग ई रनुबाई,
सोरठ देस से आई ओ।
थारो सिर सूरज को तेज रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारी नाक सूआ की रेख रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारा डोला निंबू की फांक रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारा दांत दाड़िम का दाणा रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारा होंठ हिंगुल की रेख रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारा हाथ चम्पा की डाल रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारा पांय केल का खम्ब रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।
थारो काई काई रूप बखाणुं रनुबाई,
सोरठ देस सी आई ओ।"

अर्थ.—"हे देवी तुम्हारे किन किन स्वरुपो का वर्णन किया जाय? तुम सौराष्ट्र देश से जो आई हो। तुम्हारे हाथ की अंगुलियां मूग की फली जैसी पतली, नरम और कोमल हैं और तुम्हारा चेहरा सूर्य की तरह दैदीप्यमान है, तुम्हारी नाक सुये की चोच की भाति अत्यन्त ही नुकीली है और तुम्हारी आंखे निंबू की फाक की तरह गोल, बड़ी और चमकीली है, तुम्हारे दांत अनार के दानो की तरह सुन्दर है। तुम्हारे ओठ हिंगुल सदृश्य लालिमा लिये हुए हैं। तुम्हारे हाथ चम्पे की टहनी की तरह पतले और नाजुक हैं और तुम्हारे पांव केले के खम्ब की तरह गोल, चिकने और सीधे हैं। हे देवि! तुम्हारे किन किन स्वरूपो का वर्णन किया जाय। तुम सौराष्ट्र देश से जो आई हो।"

इन गीतों मे हमारे पारिवारिक जीवन की भी अत्यन्त ही सुन्दर कल्पनाएं पिरोई गई है। आज कल सपने लिखने की रीति है, लेकिन लोक-गीतो मे आज से जाने कितने समय पूर्व ही एक ऐसे स्वप्न की कल्पना की गई है जिसमें सुन्दर प्रतीको के सहारे हमारे पारिवारिक जीवन का दर्शन कराया गया है। बात यह होती है कि रनु एक दिन स्वप्न में १४ वस्तुएं देखती है और सुबह उठने पर अपने पति से उनका अर्थ पूछती है। वह पूछती है कि "हे प्रिय, रात सपने में मैंने मानसरोवर देखा और भरा-पूरा भण्डार देखा, बहती हुई गंगा देखी और भरी-पूरी बावडी देखी, सावन की हरियाली तीज देखी और कडकती हुई बिजली देखी, गोकुल का कन्हैया देखा और तरवरता बिच्छू देखा, गुलाब का फूल देखा और झिलमिलाता हुआ दीप देखा। केले का वृक्ष देखा और बांझ गन्ने का खेत देखा, पीला ओढे हुए स्त्री देखी और ऊगता हुआ सूर्य देखा।

हे पतिदेव, मुझे सपने का अर्थ बताइये।"

इस पर पति कहता है कि "हे रनु, मानसरोवर तुम्हारे पिता है और बहती हुई गगा की तरह निर्मल तुम्हारी मा है। भरा हुआ भण्डार तुम्हारे ससुर है और भरी हुई बावडी तुम्हारी सास है। सावन की तीज तुम्हारी बहिन है और कड-कती हुई बिजली तुम्हारी ननद है। गोकुल का कन्हैया तुम्हारा भाई है और तरवरता बिच्छू तुम्हारा देवर है। गुलाब का फूल तुम्हारा पुत्र है और चमकता हुआ दीप तुम्हारा जवाई है। आगन की केल तुम्हारी कन्या है और बाझ गन्ने का खेत तुम्हारी दासी है। पीला वस्त्र ओढे हुए स्त्री तुम्हारी सौत है और ऊगते हुए सूर्य की तरह दैदीप्यमान तुम अपने पति को समझो।"

इस पर रनु कहती है कि "हे मेरे पतिदेव तुमने सपने का सही अर्थ बता दिया।"

हमारे यहा विवाह के अवसर पर जो गीत गाये जाते है वे भी अपने पीछे बडा ही गहरा अर्थ लिये रहते है। यद्यपि नई पीढी के साथ इनका लोप होता जा रहा है और इनका स्थान हल्के, ओछे और उथले सिनेमा के गीत लेते जा रहे है, लेकिन हमारे विवाह गीतो में जो भाव है, वह और कहा मिल सकता है ? उनमे विश्वास और मान्यताओ का भी पता चलता है।

विवाह में मण्डप के दिन स्त्रियो के द्वारा रोने का रिवाज है। इस पर आज के लोगो द्वारा एतराज किया जाता है। लेकिन दर असल बात यह है कि जब बच्चे का ब्याह रचाया जाता है तो उस समय पूर्वजो की याद आना स्वाभाविक है। इस याद को लेकर एक गीत की रचना की गई है। इसमें मण्डप के दिन स्वर्ग तक उडने वाली एक गीधनी के जरिये अपने पूर्वजो के पास विवाह में पधारने का निमत्रण भेजा जाता है। इस पर वे वहा से सदेशा भेजते है कि—

"जेम सर ऽ ओम ऽ सारजो, हमारो तो आवणो नी होय,
जडी दिया बज्र किंवाड, अग्गल जडी लूहा की जी।"

अर्थ है—"आप जिस तरह भी हो इस कार्य को निपटा लेना। हमारा तो आना नहीं हो सकता, कारण हमारे आने की राह मौत रूपी दरवाजो से बन्द है जिस पर लोहे की बडी बडी अरगलायें लगी हुई है।"

जीवन की लाचारी का कैसा करुण चित्र है। यदि इस अवसर पर भी मनुष्य को रोना न आवे तो और कब आवेगा।

ये लोक-गीत अपने साथ सुन्दर हास्य और शृगार भी लिये है। एक उदाहरण उसका भी लीजिये —

विवाह के अवसर पर एक गीत में वर अपनी अतुल सम्पत्ति का जिक्र करते हुए वधू से अपनी चादनी पर चौसर खेलने के लिये आने का आमन्त्रण देता है तो वधू कहती है —

"बना म्हारो हलदी भर्यो अग,
म्हारी पाटी म ऽ गुलाल
म्हारी चोटी म ऽ अत्तर,
बना म्हारी चादनी पर चौसर खेलण आवजो।"

"हे प्रिय, अभी मेरा हल्दी से भरा हुआ अग है, माग में सिंदूर लगा है, चोटी इत्र से भीगी हुई है, भला मैं तुम्हारे यहा कैसे आ सकती हू आज तो तुम ही मेरी चादनी पर चौसर खेलने आ जाओ।"

इस पर भी जब उसकी सहेलिया उसीसे वहा जाने का आग्रह करती है तो वह कहती है—

"थारा रगमहल कसी आऊ रे बना,
म्हारा झाझरिया जो बाज ऽ,
म्हारा झाझरिया की रुणक झुणुक,
म्हारा पिताजी सुणी लीसे।"

"हे प्रिय, मैं तुम्हारे रगमहल में कैसे आऊ, मेरे पावो की पजनिया जो आवाज करती है। यदि मेरे पायलो की रुनुक झुनुक ध्वनि मेरे पिताजी ने सुन ली तो ?"

इस पर 'वर' मुस्कराते हुए जवाब देता है—

थारा पिताजी की गालई सो बनी, मख बहुत ज प्यारी लाग

"हे प्रिय, तुम आ भी जावो। तुम्हारे पिताजी की गाली तो मुझे वहुत ही प्यारी लगती हैं।"

लोक-गीतों की तरह निमाडी लोक-कहावतें भी अत्यंत समृद्ध रही है। लोक-कहावतो मे मानवीय जीवन का शताब्दियों का अनुभव गुंथा हुआ हैं। अनादि काल से मनुष्य की जो जीवन-यात्रा चली आ रही है, उसमें जहां भी रुकावट आई या उसने अपने मार्ग में विजय पाई है, वही उसने अपने अनुभवों को अत्यन्त ही वारीक ढंग से काव्यमयी भाषा में संजोकर रख लिये है। उसके ये अनुभव ही सुन्दर भावो से श्रृंगार कर, कल्पना के पंखों पर सवार हो, पैनी सूझ के सहारे लोक-कहावतो के रूप में सदियो से मानव का मार्ग-दर्शन करते आये हैं। देखिये—

एक निमाडी लोक-कहावत में परदेशी की प्रति का कैसा सही चित्र उतार कर रख दिया है। कहावत ह—

**"परदेसी की प्रीत
न फूस को तापणो"**

"परदेशी की प्रीत फूस से तापने की तरह है। वह फूस की आग की तरह एक क्षण भभक कर दूसरे क्षण समाप्त हो जाती है।"

इसी तरह स्त्री-पुरुष के सम्वन्ध में वड़ी ही सुन्दर वात कही गई है। कहा है—

"लुगई ख ऽ शरम, न आदमी ख ऽ मरम।"

"स्त्री की शोभा 'शर्मीले' होने में, और पुरुष की 'मर्मीले' होने मे है। जो आदमी 'मरम' की वात न जाने वह भी क्या आदमी है ?"

व्याह सगाई के समय, काफी छान-वीन के वाद जिससे भी रिश्ता कायम कर लिया जाता है, उसके वारे में कहा जाता है—

"बिंद्या तो हुआ मोती।" जिसे चुन लिया वही मोती है।

सन्ध्या के सम्वन्ध में एक अत्यन्त ही सुन्दर कहावत है। चूकि सांझ अपनी गोद में गरीव और अमीर सवको समान विश्राम देती है इसीलिये उसके वारे में कहा गया है—

"सबकी मांय सांझ।" सन्ध्या सबकी मां है।

ये कहावतें प्रकृति-वर्णन से भी खाली नहीं है। एक वरसाती कहावत मे मां के परोसने से मघा के वरसने की तुलना की गई है। कैसी विराट स्नेहिल कल्पना है।

**"मघा को बरसणो,
न माय को परसणो।"**

यानी मघा मे मेह ऐसे वरसता है, मानो मां परोस रही हो।

इसीलिये लोक-कथायें, सदियों से मनुष्य के मनोरंजन का साधन रही है। इन कथाओं में मनुष्य ने अपनी रंगीन कल्पनाओ के सहारे सुन्दर से सुन्दर चित्र संजोये हैं। इनमें कुछ भी असम्भव नही होता। यहां मनुष्य इच्छा मात्र से सात समुन्दर को लांघता, नौ खण्ड पृथिवी की परिक्रमा करता, पशु-पक्षियों से मनुष्य की तरह वातचीत करता और स्वप्न में देखी किसी द्वीप की ऐसी अनुपम मुन्दरी से व्याह रचा लेता है जिसके समक्ष स्वर्ग की अप्सरा और पाताल-लोक की नाग-कन्याएं भी पानी भरती है।

अलंकार की दृष्टि से इनमें ऐसे वीहड़ जंगलों का वर्णन है जहां दिन मे भी "न्हार डकार ऽ न चोर पुकार ऽ" —शेर दहाडते और चोर पुकारते हैं। तथा कही-कही तो ऐसे सुनसान वियावान है जहां "चीड़ी नी चीड़ी को पूत"— "पर मारने वाले पक्षी तक" नजर नहीं आते।

इसमें ऐसे पथिकों का वर्णन भी है जो अपने उद्दश्य की पूर्ति के लिये "रात-जवं ऽ भूई स लगी जाज"—रात जव जमीन को लग जाती है—तव भी अपना मार्ग चलना नही छोडते, और कभी "सामी-रात" और कभी "पाछली-रात"—"कभी रात को सामने लेकर और कभी रात को पीछे लेकर" निरन्तर चलते रहते है।

इस तरह निमाडी लोक-साहित्य, यहां के लोक-जीवन से तदाकार हो, सतत विकासशील रहा है।

भारतीय भाषाओं का भविष्य

डॉ रघुवीर

जबसे भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की तबसे भाषा का प्रश्न जनता के सामने अनेक रूपों में आ रहा है। एक ओर हिन्दी भाषी और दूसरी ओर अहिन्दी भाषी। एक ओर उत्तर भारतीय और दूसरी ओर दक्षिणात्य। एक ओर शुद्ध भारतीयता के पक्षपाती, दूसरी ओर अंग्रेजी के पण्डित।

आज शासन अंग्रेजी पण्डितों के हाथ में है। किसी कार्यालय में यदि चपरासी का स्थान भी रिक्त हो, तो पूछा जाता है—क्या अंग्रेजी जानते हो। अभी तक अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय सेवाओं की परीक्षाओं में अंग्रेजी अनिवार्य विषय है। उच्च पाठशालाओं में भी अंग्रेजी अनिवार्य है। इतना ही नहीं भारत की राजधानी दिल्ली में सबसे महंगी बच्चों की पाठशालाएं अंग्रेजी में ही अध्यापन करती हैं।

यदि यह कहा जाए कि स्वतन्त्रता के पश्चात् अंग्रेजी का प्रसार और प्रचार अनेक दिशाओं में वेग से बढ़ रहा है, तो अत्युक्ति न होगी। अंग्रेजी समाचारपत्रों की संख्या भी पहले की अपेक्षा अधिक है। प्रातः चाय पीने से आरम्भ करके रात की काफी तक पाश्चात्य रहन-सहन की अनुकृति तथा विदेशी भाषा में वार्तालाप उच्च वर्ग के कुलों में निरंकुश रूप से दिनानुदिन वृद्धि पा रहे हैं।

फिर भी देश की आत्मा के प्रतिनिधि देशीय भाषाओं के प्रेमानुशीली नर और नारी स्वप्न देख रहे हैं कि किसी दिन भारत में भारतीय भाषाओं का सूर्य उदय होगा।

यदि भारत में एक ही साहित्यिक भाषा होती, तो उसके सूर्य के उदय होने में विशेष आभ्यन्तरिक बाधायें न पड़ती।

भारत एक राष्ट्र है, अतः इसकी एकता को बनाये रखना हमारा परम कर्तव्य है। भाषा के क्षेत्र में एकता के स्थान में वैविध्य है। संकीर्ण दृष्टि से देखते हुये अंग्रेजी भाषा भारत की भाषिक एकता का प्रतीक मानी जा रही है। सन्तोष की बात यह है कि यह दृष्टिदोष एक विशेष वर्ग तक ही सीमित है। यह वर्ग भारतीय भाषाओं के आगमन को ईर्ष्या और आशंका की दृष्टि से देखता है। यह वर्ग शक्तिमय है, इसलिये इसकी चतुराई और शासन की शक्ति प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जब तक हो सके तब तक अंग्रेजी को चालू रखने और देशीय भाषाओं को दबाए रखने में लग रही है और लगती रहेगी। अंग्रेजी को निकालने के लिये भारतीय भाषाओं का परस्पर समीप लाना अपरिहार्य है। किन्तु जब तक अंग्रेजी मार्ग में से नहीं हटेगी, तब तक हमारी अपनी भाषाएं कैसे एक दूसरे के समीप आ सकती हैं ? जब तक सभी भारतीय अंग्रेजी पढ़ेंगे और प्रयोग करेंगे तब तक हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं का स्थान नगण्य रहेगा।

हमारे दैनिक जीवन से, हमारे घर से, अंग्रेजी का बहिष्कार, देश की प्रथम आवश्यकता है। इस देश में समाचार-पत्र विदेशी भाषाओं के न होकर अपनी भाषाओं के होने चाहिए। अंग्रेजी के द्वारा उदरपूर्ति करनेवाला वर्ग, भारतीयता से अनभिज्ञ और उसकी उपेक्षा करनेवाला वर्ग इन बातों को सुनकर रुष्ट होता है। किन्तु इसमें दोष का तनिक स्थान नहीं। हिन्दी क्षेत्र में केवल हिन्दी पत्र ही चाहिए।

इस प्राक्कथन के पश्चात हम भारतीय भाषाओं पर आते हैं। हमारी भाषाओं और उपभाषाओं की संख्या दो सौ से ऊपर है। इनमें से उप भाषाओं का विचार करना हमारे आज के प्रयोजन के लिये साधक नहीं। हमारी भाषाओं की संख्या बारह समझनी चाहिए,—आठ उत्तर भारत में और चार दक्षिण में। उत्तर की भाषाओं में संविधान ने कश्मीरी को भी स्थान दिया है। किन्तु कश्मीर राज्य ने कश्मीरी को राजभाषा न मान कर उर्दू को राज्यभाषा बनाया है।

अब अन्त में रही एक भाषा संस्कृत। संविधान ने महती दूरदर्शिता से संस्कृत को आधुनिक भारतीय भाषाओं में स्थान दिया है। संस्कृत हमारी स्रोत-भाषा है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्यप्रदेश में संस्कृत हमारी मातामही धात्री, पोष्टी रही है और रहेगी। विशालता, गम्भीरता, प्राचीनता, विकास-क्षमता आदि गुणों में संस्कृत अनुपम तथा

अप्रतिद्वन्दिनी है। हमारी आधुनिक भाषाओ के साथ इसका अजर-अमर सम्बन्ध है। विदेशी भापाओं की आसक्ति तथा स्वदेश-उपेक्षा के मद मे कभी-कभी लोग संस्कृत का अपमान करते हुए दिखाई देते है। वे वास्तव में संस्कृत का नही किन्तु अपना अपमान करते है। संस्कृत का विकास स्वतत्र भारत मे हुआ। जव तक देश स्वतंत्र रहा, राजनीति मे अथवा विचारो में, तव तक संस्कृत भारत के मस्तिष्क की जाज्वल्यमान पताका रही। यह भारत के गौरव को देशदेशान्तर में ले गई। जव से भारत वीर्यहीन और विचार-शिथिल हुआ, तव से विदेशियों ने हमको पददलित किया। फारसी वोलनेवाली जातियों ने हमारी भापाओं को दवाया और यही फारसी का वलात् प्रचलन किया। अंग्रेज, फ्रांसीसी, डच और पोर्तुगाली जातियों ने हमारे समुद्री मार्ग वन्द किए और धीरे धीरे हमारे देश को हस्तगत किया। इन्होने संस्कृत और अन्य भारतीय भापाओ को और भी नीचे दवाया और अपनी सहस्रो कोस दूर की भाषाओं को यहां स्थापित किया।

एक सहस्र वर्ष के पीछे आज अवसर मिला है कि दिल्ली की भाषा भारतीय भापा हो।

आज संस्कृत लोक-भाषा नही, इसलिये यद्यपि साहित्य में इसका स्थान रहेगा किन्तु सामान्य जीवन में लोक-भाषाओं का ही स्थान होगा।

यह स्थिति उपस्थित होने पर समस्त देश की एक मुख्य भाषा संविधान ने हिन्दी घोषीत की और स्थानीय भापाओं के रूप मे अन्य ग्यारह भाषाओ को स्वीकार किया।

क्योंकि हिन्दी भारतीय भापा है इसलिये स्वाभाविक रूप से अन्य भापाओ के प्रयोक्ताओ के मन में भावना उत्पन्न होती है,—अव हमारी भाषाओ का देश में क्या स्थान होगा ?

हिन्दी-भाषियों को इस प्रश्न का समाधान करना होगा। अन्ततोगत्वा स्थिति निम्न-रूप में होगी। इस अन्तराल में अनेक प्रकार के छोटे-वड़े सघर्ष होने की संभावना है, किन्तु वस्तुस्थिति का तर्क इतना प्रवल है कि दूसरी गति सम्भव प्रतीत नहीं होती—

१. हिमाचल, दक्षिणी पंजाव, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, विहार, राजस्थान, मध्यभारत, भूपाल, अजमेर और उत्तरीय मध्यप्रदेश—इन दस प्रान्तो मे हिन्दी प्रशासन, शिक्षा तथा समस्त जनता के कार्य मे एकमात्र भापा होगी।

२. भाषानुसार आसाम, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, तेलुगु, कन्नड, तामिल और मलयालम प्रदेशों की सीमाएं निर्धारित की जाएंगी और प्रत्येक प्रान्त मे एक भाषा होने पर उसी भाषा में वहा का प्रशासन, शिक्षा और सार्वजनिक कामकाज चलेगा।

३. प्रत्येक प्रान्त मे सीमाओं पर तथा वड़े नगरों में अन्य भारतीय भाषाओ के प्रयोक्ताओं की पर्याप्त मात्रा रहेगी। इन की सुविधा के लिये यह आवश्यक होगा कि पाठशालाओं मे वच्चों के लिये अपनी-अपनी भापाएं पढने का समुचित प्रवन्ध हो तथा इन की भाषाओ के समाचारपत्र और साहित्य प्रशासन यथापेक्षित मात्रा में हों। व्यापार के क्षेत्र में भी इन को अपनी भाषा प्रयोग करने का अवसर होगा।

४. राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग समस्त भारत में होगा; हिन्दी के द्वारा ही विभिन्न प्रान्तो मं सम्पर्क की स्थापना होगी। अखिल भारतीय सेवाओ, अन्वेपणालयो, सम्मेलनों आदि की भापा हिन्दी होगी।

५. सेना की भाषा हिन्दी होगी।

६. हिन्दी-भाषी प्रान्त अनेक हैं और रहेगे। हिन्दी की सीमापर पंजावी, गुजराती, मराठी, तेलुगु, उड़िया, वंगाली और आसामी विद्यमान हैं। ये भापाएं हमारी पड़ोसी हैं। प्रत्येक प्रान्त को अपनी पडोसी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा जनता को देनी होगी।

जो नियम हिन्दी के लिये दिया है वही अन्य भापाओ को लागू होगा। उदाहरणत: मराठी प्रदेश की सीमाएं, गुजराती, हिन्दी, उड़िया, तेलुगु और कन्नड के साथ लगी हुई है तथा तामिल की सीमाएं मलयालम, कन्नड और तेलुगु से।

मातृभाषा और राष्ट्र भाषा ये दो ही भाषाएं अनिवार्य हो सकेगी, शासन मे तथा शिक्षा म। इनके अतिरिक्त अपने समीप की भापा का प्रवन्ध होगा किन्तु वह भाषा अनिवार्य नही होगी।

७. ऊपर की स्थिति लाने के लिये अंग्रेजी का अधिपत्य दूर करना ही पडेगा। प्रशासन से हटते ही शिक्षालयों में अंग्रेजी वैकल्पिक करनी होगी। अंग्रेजी की छाया हटने पर ही हमारी नन्ही भाषाओ के पौधे फलें और फूलेगे।

८ अग्रजी से समाचारपत्र चाहे राजनियम से बन्द न किए जाए किन्तु जनता को उनकी आवश्यकता नही रहगी और जो धन एव बुद्धि उनके चलान में लग रही है, वह अपनी भाषा के पत्रो के चलाने में लगेगी।

९ विश्वविद्यालयो म अग्रेजी के साथ-साथ ससार की अन्य प्रमुख भाषाओ के अध्यापन का उपयुक्त प्रबन्ध रहेगा। मध्य और दक्षिणी अमेरिका के लिए हिस्पानी (स्पेनिश) और पोर्तुगाली, युरोप के लिए जमन, फ्रामीसी, रूसी, इतार्ली, पूव देशो म मे आधुनिक उदीयमान जातियो की भाषाए, यथा जापानी, चीनी, वर्मी, लका की सिहली, तिब्बत की भोट, मगोल आदि। समुद्र के पार जावा, सुमात्रा, बाली, थाई तथा कम्बोज की भाषाए, इत्यादि-इत्यादि।

लण्डन विश्वविद्यालय मे दो सौ से अधिक भाषाओ के अध्यापन का प्रबन्ध है। हमारा राष्ट्र इग्लड से विशाल बनेगा। हमारे विश्वसम्पर्क उनकी अपेक्षा किसी भी अवस्था में सकीर्ण न होगे। केवल अग्रेजी जानना शेष देशो की ओर से आखें मीच लेना है। भोट, चीन आदि तो हमारे पडोसी है। इन भाषाओ के विज्ञ आज दस-बारह से अधिक नही। समय आने पर, चाहे यह समय समृद्धि का हो अथवा सकट का, हमें सहस्रो भोट और चीनी के जानने वालो की अपेक्षा होगी।

आज हम ससार को अग्रेजो के द्वारा देखते है। उन्ही के लिखे ग्रन्थ पढते है। यह विभिन्न देशो के साथ अन्याय है। अग्रेजो के लिखित भारत-सम्बन्धी ग्रन्थ पढकर क्या कोई जमन अथवा जापानी भारत का सच्चा परिचय प्राप्त कर सकता है? यही दशा अग्रेजो द्वारा लिखित अन्य देश विषयक ग्रन्थो की भी जाननी चाहिए। ससार के प्रत्येक देश से हमारा सपर्क सीधा होना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए भारतीय विद्वान स्वय विभिन्न विदेशो म जाकर उनकी भाषा और साहित्य का स्वय बोध करेगे और अपनी भाषा में साहित्य निर्माण करेगे जिससे वास्तव में हमारी बुद्धि और ज्ञान का विस्तार होगा और अग्रेजी की अपेक्षा अधिक उपकार होगा।

१० हमारी पाठशालाओ मे अग्रेजी का स्थान हमारी मातृभाषा, हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी स्रोत भाषा सस्कृत लेगी। फिर भी हमारे बच्चो की शक्ति और समय की इतनी बचत होगी कि अपनी भाषाओ और साहित्य के गहरे और विशाल अध्ययन के साथ-साथ वे सामान्य तथा विशेष विद्याओ में आज की अपेक्षा कही अधिक प्रवीणता प्राप्त कर सकेगे। इस विषय की विशेष व्याख्या अपेक्षित है। आज बालक अग्रेजी के बिना किसी आधुनिक विषय में वास्तविक प्रवेश के असमर्थ होता है। इसलिए बी ए और बी एस् सी के पूर्व तक भारतीय विद्यार्थी मौलिक चिन्तन के द्वार से दूर रहता है। अग्रेजी का अर्गल हटते ही भारतीय साहित्य की सृष्टि प्रारम्भ होगी और सर्वतोमुखी ज्ञान और विज्ञान के द्वार खुलने आरम्भ हो जाएगे।

अग्रेजी केवल विश्वविद्यालयो मे रह जाएगी और वहा भी विकल्प रूप मे। जैसा कि हम अभी निर्देश कर आए है, अग्रेजी का विकल्प ससार की अन्य विकसित भाषाए होगी—जापानी, रूसी, जमन तथा फ्रामीसी। भावी भारत के विद्वान तथा नेता अग्रेजो के मानसिक दास न रहेगे।

११ हमारे नवीन साहित्यसर्जन के लिए प्रथम आवश्यकता पारिभाषिक शब्दावली की है। ब्रिटिश राज्य के उत्तराधिकारी आग्ल मानसपुत्र अग्रेजी भाषा और अग्रेजी शब्दो के प्रतिस्थानी भारतीय भाषा और शब्दोको द्वेषबुद्धि से देखते है। पहले तो वे यथाशक्य असीम काल तक अग्रेजी चालू रखने का यत्न कर रहे है, किन्तु इसमें सफलता न होते देख वे अग्रेजी पारिभाषिक शब्दो के शत-सहस्रग्रीव रावण के मुह मे बालिका तपस्विनी, नन्ही हिन्दी को झोकना चाहते है—रोमन लिपि, रोमन सक्षेप, गणित और रसायन के सूत्र, फलो, फूलो और जडी-बूटियो के नाम, समासत १५-२० लाख शब्द। आधुनिक समस्त ज्ञान के साधनभूत बुद्धिगम्य भाषाग निर्माण के मार्ग में वे पत्थर की भित्ति बनकर खडे हो गए है। किन्तु यह निश्चय है कि इनके वक्ष स्थल का निश्चूर्णन करती हुई भारतीय गदा अपना मार्ग खोलेगी। रोगाणु जैसा सरल विषय, अग्रेजी और लातीनी दुरुहता के अन्धतमस से लिपटता हुआ भारतीय विद्यार्थी को अपने समीप फटकने नही देता। जिस रोगाणु विषय का श्रीगणेश केवल आयुर्विज्ञान के विद्यार्थी अठारह-बीस वर्ष की आयु में ही कर सकते है, वह विषय भारतीय पदावली म सरल वेश धारण कर अपने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा रसास्वादन चौदह पन्द्रह वर्ष के बालक को करा सकेगा।

भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली का वही स्रोत है जो भारतीय साहित्यिक शब्दावली का। वे ही धातु, वे ही उपसर्ग, वे ही प्रत्यय, वे ही सन्धि, समास तथा कृदन्त और तद्धित के नियम। घरेलू भाषा मे साहित्यिक भाषा तक पहुचने के लिये जो अन्तर है, उससे भी थोडा अन्तर साहित्यिक भाषा से वैज्ञानिक भाषा तक पहुचने में पार करना होगा। ९५ प्रतिशत वैज्ञानिक शब्द तो साहित्यिक शब्दो मे मूलत सर्वथा अभिन्न होगे। भेद केवल विषय का होगा।

भारतीय पारिभाषिक पदावली हमारी भाषाओ को एक सूत्र मे बाधेगी। हमारी भाषाएं एक दूसरे के समीपतम आ जाएंगी।

१२. आधुनिक साहित्य-सर्जन के क्षेत्रमे हमको केवल पाठ्यपुस्तको से ही संतोष न होगा। प्रत्येक विज्ञान और उसके अंगो तथा प्रत्यगो का बोध करने के लिये हमारी भाषा जापानी के समान समृद्ध होगी। मै जिस किसी भारतीय विश्वविद्यालय के बृहत् पुस्तकालय मे दृष्टि डालता हू तो प्रत्येक अलमारी मे ९० प्रतिशत ग्रन्थ वे है जो अनुसधान की दृष्टि से वीतयाम, गतप्राण और व्यर्थ हो चुके हैं।

प्रथम तो आधारभूत विश्वकोष रूपी ग्रन्थों का निर्माण, जिनमे प्रतिपादित विषय से सम्बन्धित सब सामग्री विद्यमान होगी। इन विश्वकोषो के सकलन मे अद्यावधि जो अन्वेषण हुआ है, उसकी दृष्टि से निखिल सामग्री का व्यवस्थापन और समायोजन विराट् तथा अपूर्वकृत प्रयास होगा। अन्य देशो की भी वैज्ञानिक संस्थाए हमारी ओर आदर-दृष्टि से झुकेंगी और हमारी कृतियो से लाभ उठाने की लालसा से हमारी भाषा को जानने की चेष्टा करेंगी। आज यह स्वप्न प्रतीत होता है, कल यह निष्पन्न तथ्य होगा। यह एक व्यक्ति तथा सस्था का काम नही किन्तु राष्ट्र द्वारा निष्पाद्य हमारी सामूहिक बुद्धि और प्रयास का अपूर्व फल। क्या प्राचीन भारत ने उच्चतम बौद्धिक उच्छाय की स्थापना न की थी? यदि की थी तो क्या इस युग में वह अपनी आत्मा को भूल जाएगा और नवीन ब्रह्मऋण से उऋण न होगा ?

विश्वकोषो के सर्जन के साथ-साथ गवेषणात्मक प्रत्येक मार्गानुसंधायिका पत्रिकाओं की स्थापना होगी। नवीन विचारो की अनुश्रुति, विश्व के रहस्यों का आविष्कार—यह विज्ञान का गोचर है; प्रतिभाशाली मानवका नया क्रीडा-क्षेत्र है। भारत इस क्षेत्र मे पदार्पण करेगा और अपनी सुषुप्त प्रज्ञा को जगाकर मानव को तुगतम बुद्धिशृंगो पर आरूढ करेगा।

ऐतरेय ब्राम्हण का वचन है—

पुष्पिण्यो चरंतो जंघें भूष्णुरात्मा फलेग्रहि:।
शेरे स्य सर्वे पापमानः श्रमेणप्रपथें हताः॥

ऋगवेद के पथिकृत के नए मार्ग बनाते हुए उसकी जंघाओ मे फूल विकसते हैं और आत्मा वैभवमय होकर फल-धारण करती है। मानव के सर्व पाप, विघ्न, बाधाए इस लम्बे मार्ग मे बुद्धिश्रम से हताहत होकर भूमिपर लेट जाती है और पथिकृत उनके देह को पददलित करता हुआ बढता चला जाता है।

राजनीति के जगत् में स्वतन्त्रता, स्वाभिमान, स्वावलम्वन, सर्वसम्मत, अभीष्ट और श्रेयस्कर हैं। इनके बिना राष्ट्र दबा और सिकुडा हुआ रह जाता है। इस पर आधिपत्य करनेवाला राष्ट्र, इसकी प्राणवाहिनी नाडियो के रक्तरस का दूषण कर लेता है। सर्वथा यही स्थिति भाषा स्वातन्त्र्य की है। स्वभाषा बुद्धि का मार्ग खोलनेवाली और परभाषा-बुद्धि का शोषण करनेवाली है।

यो मं अन्नं यो मे रसं
वाचं श्रेष्ठां जिघासति।

इन्द्रश्च तस्मा अग्निश्च
अस्त्रां हिंकारमस्यताम्॥

नाटक और रंगमंच

श्री गोविन्ददास

मानव का इस सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ स्थान उसकी ज्ञानशक्ति के कारण है। निसर्ग ने मानव को, जो ज्ञानशक्ति दी है, वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। मानव ने अपनी ज्ञानशक्ति से जो कुछ उपार्जित किया है, उसे मोटे रूप से दो विभागों में बाटा जा सकता है—पहिला विज्ञान और दूसरा कला। यहा मैं इन दोनों शब्दों को अत्यन्त व्यापक अर्थ में लेता हूं, विज्ञान के अन्तर्गत सारे शास्त्रीय विषय आ जाते है और कला के अन्तर्गत सब प्रकार की कलायें। इस लेख से कला का ही सम्बन्ध है। कला के मोटे रूप से दो विभाग किये जा सकते है —(१) वे सभी कलायें, जो पार्थिव संसर्ग होने पर ही आनन्द देती है यथा पाक-कला और (२) ललित कलायें, जो बिना किसी पार्थिव संसर्ग के चक्षु-इन्द्रिय अथवा श्रवणेंद्रिय से आनन्द देती है। इस लेख का सम्बन्ध ललित-कलाओ से है। ललित-कलाओ के मोटे रूप से पाच विभाग किये जाते हैं—(१) वास्तुकला, (२) मूर्तिकला, (३) चित्रकला, (४) संगीत-कला और (५) काव्यकला। इन पाचों कलाओं की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता इनके साधनों पर निर्भर है। जिस कला के निर्माण में जितने सूक्ष्म साधन होते है उस कला का स्थान उतना ही ऊचा होता है क्योंकि कलाकार को साधनों की सूक्ष्मता के कारण अपनी कल्पना में स्वच्छंदता प्राप्त रहती है। इसीलिये वास्तुकला से मूर्तिकला, मूर्तिकला से चित्रकला, चित्रकला से संगीत-कला और संगीतकला से काव्यकला ऊंची मानी जाती है।

काव्यकला के दो विभाग है —(१) श्रव्य-काव्य और (२) दृश्य-काव्य। श्रव्य-काव्य से दृश्य-काव्य एक तो इसलिये ऊचा है क्योंकि जहा श्रव्य-काव्य केवल श्रवणेंद्रिय से आनन्द देता है वहा दृश्य-काव्य श्रवणेंद्रिय और चक्षु-इन्द्रिय दोनों से। दूसरे दृश्य-काव्य में पाचों ललित-कलाओं का इकट्ठा समावेश रहता है।

संसार के विद्वान अब इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि सर्वप्रथम दृश्य-काव्य का प्रादुर्भाव और विकास भारत-वर्ष में ही हुआ था। दृश्य-काव्य पर जो सबसे प्रधान ग्रन्थ उपलब्ध है, वे हैं भरतमुनि का ग्रन्थ और यूनान के अरस्तू का ग्रन्थ। भरत मुनि ने दृश्य-काव्य के तीन प्रधान तत्त्व माने है —वस्तु, नेता और रस। आश्चर्य की बात यह है कि अरस्तू ने भी दृश्य-काव्य के इन्हीं तीन तत्त्वों को प्रधानता दी है, प्लाट, हीरो और इमोशन। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि अरस्तू ने भरत मुनि से इन तीन तत्वों को लिया है, पर दो विद्वान किस प्रकार समान रूप से विचार करते हैं, इसका यह एक उदाहरण है।

संसार में जो पाच सर्वश्रेष्ठ नाटक माने जाते है, उनमें कालिदास का "अभिज्ञान शाकुन्तल" भी है।

आधुनिक काल में पश्चिम के नार्वे देश में ईब्सन नामक एक महान नाटककार हुए। भरत मुनि और अरस्तू के उपर्युक्त तीन तत्त्वों के अतिरिक्त ईब्सन ने कुछ और तत्त्व नाटकों में जोड़े। उनमें प्रधानत समस्या है अत आधुनिक काल में नाटकों में श्रेष्ठ नाटक के लिये जो प्रधान तत्त्व माने जाते हैं उनमें पहला तत्त्व समस्या आता हैं। समस्या के विकास के लिये वस्तु अर्थात् कथा की आवश्यकता होती हैं। कथा बिना पात्रों के नहीं बन सकती। पात्रों के साथ ही चरित्र चित्रण आता हैं। चरित्र चित्रण बिना संघर्ष के नहीं हो सकता। संघर्ष बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का होता है। बिना नेता (नायक) के नाटक की सूत्रबद्धता नहीं रह सकती इसलिये नेता प्रधान हो जाता है और इस सबके उपरान्त यदि रस (इमोशन) की उत्पत्ति न हो या रसभंग हो जाय तो वह दृश्य-काव्य काव्य-मना में आ ही नहीं सकता। अत जिस नाटक में जितनी स्थायी और प्रबल समस्या होगी, जितनी मनोरंजक कथा होगी, जितना स्वाभाविक चरित्र-चित्रण होगा, जितना तीव्र संघर्ष होगा और जितनी सुन्दर रस की उत्पत्ति होगी, वह नाटक उतना ही श्रेष्ठ होगा। नाटक में जो कुछ कहा जाता है, वह लेखक के द्वारा नहीं परन्तु पात्रों के द्वारा ही। अत कथोपकथन ही नाटक का प्राण हैं। नाटक के उसके दृश्य-काव्य होने के कारण किसी प्रकार की भी छोटी से छोटी अस्वाभाविकता सारे नाटक को भ्रष्ट कर देती है। ईब्सन ने नाटक में स्वाभाविकता लाने के लिये दो बातें और की थीं एक तो उन्होंने अपने बाद के नाटकों में स्वगत-कथन को कोई स्थान नहीं दिया। दूसरे संगीत का पूर्ण बहिष्कार किया। इंग्लैण्ड के बर्नार्ड शा, गाल्सवर्दी, सर जेम्स बेरी, आयरलैण्ड के सीजे, फ्रांस के ब्रूइक्स, जर्मनी के हाप्टमन, इटली के

मेघदूत

श्री व्योहार राममनोहरसिंह

पिरेण्डलो, स्वीडन के स्ट्रिण्डबर्ग आदि आधुनिक नाटककार इब्सन के ही अनुयायी हैं परन्तु स्वगत-कथन के न रहने से आन्तरिक संघर्ष सफलतापूर्वक दिखाना सम्भव नहीं रहता, अतः अमेरिका के यू. जी ओ'नील तथा यूरोप के भी कुछ नाटककारों ने स्वगत-कथन के लिये कई नये ढंग निकाले हैं जैसे किसी चित्र के सम्मुख वार्तालाप अथवा किसी पालतू पशु-पक्षी से बातचीत अथवा टेलीफोन पर वार्त्ता। स्वगत-कथन के लिये इन में से किसी भी साधन का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। संगीत का भी पूर्ण बहिष्कार आवश्यक नहीं। हां, नाटक का हर पात्र हर परिस्थिति में गाये यह अस्वाभाविक है। पर स्वाभाविक रूप से भी व्यक्ति अनेक बार गाते हैं और इस तरह नाटक में संगीत का स्वाभाविक समावेश हो सकता है। इंग्लैण्ड के नाटककार नोएल कार्ड ने तो यहाँ तक कहा है कि बिना संगीत के नाटक अधूरा रहता है और ऐसे नाटक का कोई भविष्य नहीं है।

भारत का आधुनिक युग निर्माण का युग है। मैं उन व्यक्तियों में नहीं जो कला का काम केवल आनन्द देना मानते हैं (याने art for art sake)। हाँ, कला का कार्य व्याख्यान देना भी नहीं है। प्रत्यक्ष में मनोरंजन करते हुए परोक्ष-रीति से कला का कार्य मानव-मन में इस प्रकार की भावनाओं का प्रादुर्भाव करना है, जिनसे व्यष्टि और समष्टि का कल्याण हो सके। भारत के इस निर्माण के युग में नाटक और रंगमंच पार्थिव-निर्माण और चरित्र-निर्माण दोनों में महान कार्य कर सकते हैं। सिनेमा के इस युग में भी अमेरिका के हालीवुड सदृश स्थानों में भी नाटक का जो विकास हो रहा है, वह मैं हाल ही में देखकर आया हूँ। चीन के नवनिर्माण में नाटक और रंगमंच किस प्रकार योग दे रहे हैं, वह भी मैंने देखा है। यद्यपि मैं रूस नहीं गया तथापि चीन के देखने से रूस का बहुत सा हाल मालूम हो जाता है। रूस के नवनिर्माण में भी नाटक और रंगमंच ने बहुत बड़ा योग दिया है। एक ओर यदि हमें सिनेमा की आवश्यकता है तो दूसरी ओर नाटक और रंगमंच की भी। सच तो यह है कि तस्वीरें हाड़-मांस के शरीरों का स्थान नहीं ले सकतीं।

नाटकों का विकास रंगमंच के अभाव में जैसा होना चाहिये वैसा हो सकना सम्भव नहीं है। हमें दो प्रकार के रंगमंचों की आवश्यकता है (१) बड़े-बड़े शहरों में पूर्ण विकसित रंगमंचों की जिनमें बड़े से बड़े दृश्य दिखलाये जा सकें और (२) दूसरे देहात के लिये अत्यन्त सादे और चलते-फिरते रंगमंचों की। प्रथम प्रकार के रंगमंच मैंने फ्रांस में देखे। ये रंगमंच घूमनेवाले (रिवाल्विंग) थे और इनमें इस प्रकार के दृश्यों की व्यवस्था थी कि उनके दृश्य देखकर आश्चर्य होता था। दूसरे प्रकार के रंगमंच मैंने वाशिंगटन में देखे। एक ही दृश्य में सारा नाटक खेला जाता था। शहरों के बड़े रंगमंचों में हमें दो बातों की ओर और भी ध्यान देना आवश्यक होगा.—(१) रोशनी की व्यवस्था और (२) ध्वनिप्रसारक (माइक्रोफोन) यन्त्र की व्यवस्था। हम उषा, सन्ध्या, मध्यान्ह, ज्योत्स्ना आदि की स्वाभाविक रोशनी बिजली के द्वारा रंगमंच पर सफलतापूर्वक दिखा सकते हैं और ध्वनि-प्रसारक यन्त्र अदृश्य रहते हुए भी उसका इस प्रकार का प्रबन्ध कर सकते हैं जिससे दर्शकों को ठीक मात्रा और परिमाण में कथोपकथन और संगीत सुन पड़े। यह नहीं कि धीरे कही जानेवाली बात भी चिल्लाहट के साथ कान में पड़े और संगीत बेसुरा हो जाय।

भारतवर्ष में कलकत्ते में कुछ घूमनेवाले (रिवाल्विंग) रंगमंच हैं परन्तु वे बहुत छोटे हैं। फ्रांस के रंगमंचों से इन रंगमंचों की कुछ तुलना नहीं हो सकती। दिल्ली में एक ही दृश्य में कुछ नाटकों का अभिनय देखा पर इसमें भी अभी बहुत विकास की आवश्यकता है।

हर्ष की बात है कि भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया है और भारत सरकार ने 'संगीत-नाटक एकादमी' नामक संस्था की स्थापना की है। मेरा मत है कि हर राज्य में उस राज्य की आवश्यकता के अनुसार इस प्रकार की संस्था की स्थापना आवश्यक है।

काव्य परीक्षण

श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा

एक बार किसी जिज्ञासु का प्रश्न था—कविता क्या है? उत्तर था—यदि तुम मुझसे यह न पूछो तो मै जानता हूँ और यदि तुम मुझसे यह पूछते हो तो मै नही जानता।

यह प्रश्न और यह उत्तर सदा सनातन है, सदा अखडित है, सदा अकाट्य है। स्थूल की परिभाषा सदा सरल है और सूक्ष्म की परिभाषा सदा कठिन है। कविता को परिभाषाबद्ध किया भी कैसे जाए। "हरि अनत हरिकथा अनता" की भाति उसका प्रसार अनत और उसकी प्रकृति अगम्य है। हिमगिरि के हिम का विभव कोई ठीक-ठीक कैसे बतावे। नील कमल की सुरभि का कैसे परिचय दिया जाए। जल-ज्वार की अनगिनत लहरों के हर कपन को कैसे पढा जाए। कविता का मूल्याकन मानव के लिए सदा एक समस्या ही है। जो एक शुद्ध अनुभूति है, जो केवल एक रस-तरग है, उसकी परिभाषा कैसे हो। यदि कोई मुझ से मधुर फल का स्वाद पूछे तो मै यही कह सकूगा कि इसे तुम भी चखो। कबीर के शब्दो में—

> अकथ कहानी प्रेम की, मोपै कही न जाय।
> गूगा केरी शर्करा, खावे और मुसकाय॥

पर वह मानव जो प्रकृति की रहस्यमय पुस्तक के पाठो को अनायास ही पढ सका है, वह मानव जिसके सधे हुए हाथो ने अणु और परमाणुओ के कपन को अपनी जिज्ञासा के तुलादड पर तौल लिया है, जिस बुद्धिजीवी ने सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का परिभाषा दी है, वह कविता की परिभाषा कैसे न देता। फलस्वरूप कविता की अनेक परिभाषाए हमारे सामने आई। किसी ने उसे जीवन की आलोचना कहा, तो किसी ने उसे सगीतमय विचार माना। किसी अन्य ने उसे कल्पना की तीव्रतम अभिव्यक्ति कहा, तो किसी ने उसे रसात्मक वाक्य काव्य के स्वरूप में पहिचाना। त्रिकोणाकृति काच के टुकडे पर जब सूर्य की किरण गिरती है तब वह अनेक रगो में विभक्त हो जाती है। हर रग, किरण नही है, उस मूल श्वेत किरण का केवल एक पक्ष है। इसी प्रकार प्रत्येक परिभाषा कविता का एक पक्ष हो सकती है, स्वय सपूर्ण कविता नही।

मनुष्य की एक विशिष्ट प्रवृत्ति सदा से यह रही है कि वह अपने उपयोग की वस्तुओ का मूल्याकन करता आया है। जो वस्तु जितने अधिक उपयोग की सिद्ध होती रही वह उतनी ही सभवत मानव जीवन के लिए मूल्यवान रही है। कविता का उपयोग मानव जीवन में रहा है, यह निर्विवाद है। वह महाकवि कालिदास की अमर काव्यकृति हो अथवा किसी ग्राम के ग्रामीण कवि की मेधा की श्यामल छाया तथा बूदो की रसमयी फुहार के बीच गाई गई कोई गीत-पक्ति। दोनो आदिकाल से मानव के रस बुभुक्षित मन को आहार देती आई है। मानव-सभ्यता का वह कोई भी युग क्यो न रहा हो, कविता मानव जीवन से अलग होकर नही जी सकी है। मानव समाज में काव्य की उपयोगिता रही है और इसलिए उसके मूल्याकन के कुछ आधारभूत मापदडो की चर्चा भी आवश्यक प्रतीत होती है। मेरी दृष्टि से कविता का मूल्याकन करते समय जिन तीन तत्वों का विचार आवश्यक है, वे तीन तत्व है—(१) अनुभूति, (२) अभिव्यक्ति और (३) अनिरजना। सर्वप्रथम मै अनुभूति तत्व पर विचार कर रहा हू।

अनुभूति

अनुभूति सफल काव्य सृष्टि की पहली शर्त है। अनुभूति के अभाव में कविता सज्ञाहीन शरीर सी निश्चेष्ट रहेगी। मानव के हृदयगत भावो की यह एक बडी विशेषता रहती है कि वे अनेक हृदयखडो में अवतरित होना चाहते है। वह अपने एकत्व को अनेकत्व में बाट देना चाहता है। यह काव्य-व्यापार तभी सफल और सार्थक है जब कवि की अनुभूति तीव्र और सच्ची हो। अनुभूति जितनी सच्ची होगी कवि मानव समाज का उतना ही अधिक प्रतिनिधित्व कर सकेगा।

वह उतना ही अधिक सार्वजनीन होगा। जिस प्रकार एक छोटे ओस विंदु में आकाश का नीलप्रसार प्रतिविम्वित हो उठता है उसी प्रकार उस कवि की कविता मे व्यापक मानवता का राग सुनाई देगा। उस एक स्वर के लक्ष-लक्ष प्रति स्वर होगे। उस एक ध्वनि की लक्ष-लक्ष प्रतिध्वनियां होंगी। कवि अपनी बात कहता हुआ मानों सवकी बात कह जाएगा। सूर की सच्ची अनुभूति कविता के छंदों मे जव कृष्ण का शैशव गूथती है तव मानों यशोदा का मातृत्व विश्वमातृत्व वन जाता है और कृष्ण का शैशव, विश्व-शैशव। "भीतर ते वाहर लौ आवत। घर आंगन सव चलत सुगम भयो, देहरी में अटकावत।" वालक घर आगन सव मे क्रीड़ा करता है, दौड़ता है, किन्तु देहरी पर आकर उसकी गति मानो रुद्ध हो जाती है। शिशु का देहरी पार न कर सकना शैशव का कैसा सजीव चित्र है। मीरा के पास भी यही वैभव था। उसका प्रत्येक पद उसके भावावेश से प्रसूत अनुभूति का उज्वलतम चित्र है, जिसके चित्रण मे रंग और तूलिका की सहायता नही ली गई है। वे चित्र आसुओ की आडी-टेढ़ी रेखाओं द्वारा सहज रूप से वन गये हैं। उस कातर वियोगिनी को क्या पता था कि एक दिन उसके विकल उद्‌गारो की गणना उच्चकोटि के काव्य मे की जावेगी। "मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई" मे एक विलक्षण आत्मविस्मृति है। इस प्रकार श्रेष्ठ काव्य मे अनुभूति का तत्व प्रथम और प्रमुख गुण वन जाता है।

अभिव्यक्ति

कविता के मूल्याकन मे जो दूसरा तत्व प्रधान है वह है अभिव्यक्ति का। किसी वस्तु का सौंदर्य वहुत अंशों में इस तत्व पर निर्भर रहता है कि वह किस प्रकार प्रकट किया जाता है। कविता के संवंध मे भी यह सत्य पूर्ण रूप से घटित होता है। अभिव्यक्ति के सौंदर्य को वढ़ाने के लिए ही तो काव्यक्षेत्र के अन्तर्गत छन्द तथा अलकार विधान का समावेश किया गया है। भाषा, भाव के अनुकूल छद, शव्द-चित्र, शव्द-संगीत, शव्द-चयन ये सारे गुण अभिव्यक्ति के अन्तर्गत कविता के सौंदर्य को वढ़ाते है। एक आलोचक के अनुसार कविता केवल हृदय की कला नही है, वह श्रुति की कला भी है। प्राचीन कवियों मे नंददास अपनी इस विशेषता के लिए अत्यंत प्रसिद्ध है। उनकी रासपचाध्यायी ऐसे शव्द-चित्रो से परिपूर्ण है। यहा एक उदाहरण दे रहा हूं जिसमे कवि ने कृष्ण की मनमोहक मधुर नादमय गति-संकुल रास क्रीड़ा का चित्रण किया है। इन पक्तियो को पढ़कर वेणु-वाद्य आदि के स्वर हमारे श्रवणो मे आ पड़ते है, और नृत्य की वह चपल गति, विद्युत तरग सी दृष्टिपथ मे झूल जाती है—

नूपुर कंकण किंकिणि करतल मंजुल मुरली,
ताल मृदंग, उपंग, चंग एकै सुर जुरली।

मृदुल मधुर टंकार, ताल झंकार मिली धुनि,
मधुर जंत्र की तार भंवर गुंजार रली पुनि।

तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कटतारन की,
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।

सांवरे मोहन संग नृततया व्रज की वाला,
जनु घन मंडल खेलत मंजुल दामिनि माला।

उपर्युक्त पंक्तियो में कवि चित्रकार वन गया है। चित्र-निर्माण में उसने रंगो की सहायता नही ली। उसने वर्णो की व्यवस्था द्वारा ही काव्य-चित्र वना दिया।

अतिरंजना

कविता का मूल्याकन करते समय जिस तीसरे और अंतिम तत्व की मै यहां चर्चा कर रहा हूं, वह अतिरंजना तथा कल्पना का तत्व है। कल्पना के अभाव मे कविता संभवत एक शुष्क कथन मात्र रह जाएगी और तव वह इतनी रुचिकर प्रतीत न होगी। कल्पना ही उसे उस सौंदर्य से अभिषिक्त करती है जो सौंदर्य सहज ही अन्य उपकरणो से प्राप्त नही होता। यह जलधार है ऐसा न कह यदि हम ऐसा कहे कि—'नव उज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति। विच विच छहरति वूंद मनहुं मुक्तामनि पोहति।' यह कथन अधिक आकर्षक वन गया है। सत्य वही है पर कल्पना ने उसके सौंदर्य को अधिक निखार दिया है।

विदेहनदनी सीता का सौंदय साधारण सौंदय न था। उस असाधारण सौंदय को महाकवि तुलसी ने कैसी आकपक अतिरजना द्वारा अभिव्यक्त किया है। वैदेही के सौंदय का सादृश्य तब प्राप्त होगा—

जो छबि सुधा पयोनिधि होई, परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मदर सिंगारु, मथै पानि पकज निज मारु।
एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥

पर यह सत्य ध्यान मे रखने योग्य है कि कल्पना का भी एक अपना सत्य होता है। अति रजना भी विलक्षण तथा चमत्कृत करनेवाली होती है, पर वह विकृत नही रहती। कवि की कल्पना और एक विक्षिप्त की कल्पना में अतर यही है कि कवि-कल्पना भी एक स्वाभाविकता का सत्य अपने आप में छुपाए रहती है जब कि विक्षिप्त की कल्पना सवथा विशृखल और असबद्ध होती है। कल्पना के सहारे कवि चन्द्रमा को चादी का चक्र कह सकता है क्योंकि चादी के चक्र और चद्रमा में वर्ण और आकृति का साम्य है। वह चन्द्रमा की तुलना लोह चक्र से न कर सकेगा क्योंकि यह कल्पना ही विचित्र होगी। या तो कवि को अधिकार है कि वह अतिरजना और कल्पना के नवीन और चमत्कारित प्रयोग करे।

पर इस सत्य को वह दृष्टि से ओझल न होने दे कि उसकी कल्पना भी किसी स्वस्थ मस्तिष्क का एक रमणीय सत्य है। एक विचित्र कल्पना का उदाहरण यहा केशव की कविता से दे रहा हू। सूर्योदय पर केशव की अनोखी सी कल्पना है।—

चढ्यो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुण मुख।
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिनु॥

इस प्रकार किसी सद्काव्य के मूल्याकन में अनुभूति, अभिव्यक्ति और अतिरजना इन तीन प्रमुख तत्वो पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। इस त्रिधारा के सगम पर ही कविता का तीर्थ युगो से स्थित मानवता का कल्याण कर रहा है।

मध्यप्रदेश की संत-परम्परा

श्री प्रयागदत्त शुक्ल

धार्मिक एवं साम्प्रदायिक परम्पराओ से हमारी सामाजिक स्थिति का भी पता चलता है। एक ही धर्म के विविध सम्प्रदायो ने अपनी अपनी विभिन्नता प्रकट करके देश को कई स्वरूपो मे विभक्त कर दिया है, परतु कई सन्त ऐसे भी हुये है जिन्होने पुरातनकाल मे भी सबको एकता के सूत्र में बाधने का प्रयास किया है। मुसलमानी शासन के पूर्व इस देश मे भक्ति मार्ग के तीन प्रमुख प्रचारक हो गये है--जिनमे शकराचार्य, रामानुजाचार्य और माध्वाचार्य हैं। भगवान शंकर ने कहा है—"सृष्टि का आधार-तत्त्व एक ब्रम्ह है और अन्य सब मिथ्या है। जीव ही ब्रह्म है और उसका ब्रम्हमय हो जाना ही मोक्ष्य है"। माध्वाचार्य कहते है—"जगत सत्य ह, भेद सत्य है (आभास नही) जीवों मे ऊँच नीच का भेद नही और वे सभी हरि के सेवक है। आत्मज्ञान द्वारा आत्मानद की अनभूति ही मुक्ति है। सात्विक भक्ति उसका साधन है। अनुमान प्रत्यक्ष और आप्तवाक्य प्रमाण है"। "चतुर्थ भक्ति मार्गी सम्प्रदाय* वल्लभाचार्य का है—जो मुगल कालीन है। उनके मत से ब्रह्म माया से अलिप्त—अत: नितान्त शुद्ध है। यह माया संबंध रहित ब्रह्म ही अद्वैत तत्त्व है। अत इस मत का शुद्धाद्वैत नाम यथार्थ है।" भक्ति सम्प्रदाय के आचार्यो ने भक्ति का परमतत्त्व भगवान की शरण जाने से ही जाना है अर्थात् परमात्मा मे अनन्य विशुद्ध प्रेम का होना ही भक्ति कहलाता है। यो तो सभी सत भक्ति मार्ग के अन्तर्गत आते है और उन्होंने जनता की विचार धारा मे भी क्राति पैदा की थी। जिसका आभास हमे इस सक्षिप्त विवरण से मिल जाता है। नाथों का सम्प्रदाय इनसे भिन्न है—जो कौलाचार (शैव) के अन्तर्गत गिना जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ† इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। मराठा देश मे नाथ सम्प्रदाय का प्रचलन १२ वी सदी के से जान पडता है। विदर्भ एवं महाराष्ट्र के प्रमुख संतजन इसी सम्प्रदाय मे हो गये है। नाथ पंथ के सतो ने अपनी गुरु भाषा हिन्दी को अपनाया था। इसी से नाथ संप्रदाय के प्रत्येक मराठी साधुसंत की रचनाएं हिन्दी मे भी मिलती है। ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव, भानुदास, जनार्दनस्वामी, एकनाथ, जनी जर्नादन, श्रीधर, सोहिरोबानाथ, अमृतराय, महीपत आदि सतो के कुछ पद हिन्दी मे मिलते है।

---

* गोस्वामी श्री वल्लभाचार्य —(ई. सन १४७९—१५३१) उनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट और माता का नाम एलमागार था। इनके माता पिता जब काशी यात्रा के लिये जा रहे थे तब रास्ते मे रायपुर जिले के चपाझर (चंपारण्य) मे वैशाख कृष्ण ११, संवत् १५३५ मे इनका जन्म हुआ था। आगे चलकर अपनी प्रतिभा से ये कृष्ण के परम भक्त हुए थे। कहते है कि वृन्दावन मे आप की भक्ति से प्रसन्न हो भगवान कृष्ण ने आचार्य को बालस्वरूप की उपासना करने की आज्ञा देते हुए उपासना की विधि बतलाई थी उसी का आपने प्रचार किया—जो पुष्टी मार्ग कहलाता है।

† मत्स्येन्द्रनाथ.—(समाधिकाल सन् १२०० ई. के लगभग) आदिनाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक—श्री दत्त की कृपा से उनको ज्ञान प्राप्त हुआ था। शाबरी तंत्र-मंत्रो के ज्ञाता और गोरखनाथ के गुरु थे। ये योगी और भोगी दोनों थे।

गोरखनाथ.—ये शुद्ध योगी, मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य शिवोपासक-अद्वैतवादी थे। इनके मठ बंगाल, नेपाल, काठियावाड, राजस्थान, महाराष्ट्र और यहा तक कि सिहल द्वीप मे भी पाये जाते है। इनका जन्म अयोध्या के निकट जयश्री ग्राम मे हुआ था।

अजपा जंपे सुनि मन धरै, पांचों इन्द्री निग्रह करै।

ब्रम्ह अगनि मे जो होमे काया, तास महादेव बंदे पाया॥

महानुभाव चक्रधर —१२ वी सदी म जबकि महाराष्ट्र मे यादवो का राज्य था—विदर्भ के रिद्धपुर ग्राम में चक्रधर स्वामी न विस्तारित किया था जो आगे चलकर पजाब और अफगानिस्तान तक फैल गया था। उस सम्प्रदाय का नाम "महानुभाव" (महान अनुभावस्तेजो बल यस्य स महानुभाव) है—जिसे "जयकृष्णी" भी कहते ह। इस धर्म के प्रवर्तक स्वामी चक्रधर भडोच के निवासी सामवेदी गुजर ब्राम्हण थे। उनके गुरु गोविंद प्रभु (ई सन ११८८-१२८५) जिनको गुडाग भी कहते है—काण्वशाखीय ब्राह्मण रिद्धपुर के निकट काटसुरागव्हान ग्राम में रहते थे। बाल्यावस्था में माता पिता के मर जाने से उनका लालन पालन उनकी मौसी ने किया था। बचपने से कृष्ण भक्ति का रग लग गया और वह दिनो दिन चरमसीमा पर पहुचता गया था। वे तपस्वी और दयालु सत थे। सासारिक तापो से ग्रसित जन इनके द्वार पर पहुच कर शाति लाभ उठाते थे। चक्रधर स्वामी यात्रा करते हुए यहा पहुचे थे और उनको सदगुरु गुडोबा से महानुभाव धर्म का रहस्य प्राप्त हुआ था। जिससे उनके हृदय में शाति का अनुभव हुआ था। चक्रधर स्वामी ने सासारिक सुखो की अपेक्षा आनदमय प्रभु के स्वरूप में विलीन हो जाना ही जीवन का लक्ष्य रखा था। स्वामीजी ने कृष्ण भक्ति का रहस्य जनता के सामने रखा था और वे उस युग के सुधारक भागवत थे। वस्तुत उन्होने गीतोक्त साधन ही लोगो को समझाया था।

चक्रधरजी ने परमात्मा पर प्रतिव्रता के समान निष्ठा रखने का जनता से आग्रह किया है जिसके लिये न वर्णधर्म और न लिंगभेद ही कोई रुकावट करता है। परमात्मा का दरबार ब्राम्हण से लेकर चाण्डाल तक तथा स्त्रियो के लिये खुला हुआ है। सभी जन प्रयास करने पर उसके समीप जा सकते ह। व्यापक परमब्रम्ह नित्यमुक्त है। उनका कृष्ण विष्णु का अवतार नही है। इस सम्प्रदाय में श्री हस, दत्तात्रय, श्रीकृष्ण और चक्रधर परमात्मा के अवतार माने जाते ह। अहिंसा, सत्य, अस्पृश्यता, त्याग, स्वावलंबन, कर्म और शाति की स्वामी ने विस्तृत व्याख्या की है। गुरु से दीक्षा लेने पर प्रत्येक महानुभाव यह प्रतिज्ञा करता है—कि वह मद्य, मास, परस्त्रीगमन, शिकार, चोरी और परद्वार सेवा से विमुख रहेगा। सिद्धात और आचार की विस्तृत व्याख्या चक्रधर ने "सिद्धात सूत्र" में की ह।

चक्रधर का यह आदोलन इस प्रदेश के पश्चिमी हिस्से म खूब फला फूला। हरिजनो को भी इस सम्प्रदाय में बराबरी का स्थान दिया गया है। चक्रधरजी के उपदेशो में कुछ पद हिन्दी मे भी मिलते ह। जैसे—

सुती वयी स्थिर होई जेणे तुम्ही जाई।
सो परो मोरो वैरी आणता काई॥

नागदेवाचार्य —(ई सन १२३६—१३०२) चक्रधर का लगाया हुआ वृक्ष नागदेवाचार्य के समय में खूब फला फूला। इस सम्प्रदाय के आचार्यो ने अपने ग्रथ साकेतिक लिपियो में लिखा है। नागदेवजी की बहन उमाम्बा के कुछ पद हिन्दी-गुजराती मिली हुई भाषा में मिलते है। जैसे—

नगर द्वार हो भिक्षा करो हो बापुरे मोरी अवस्था लो।
जिहा जाओ तिहा आप सरिसा कोउ न करो मोरी चिन्ता लो।
हाट चौहट्टा पड रहू—माग पाच घर भिक्षा।
बापुड लोक मोरी अवस्था कोऊ न करो मोरी चिंता लो॥

चक्रधर स्वामी के शिष्य दामोदर पडित भी हिन्दी में कहते ह —

स्फटिक मध्ये हीरा वेध कर गया।
उजपडी लापली भिग फला॥

महानुभाव सम्प्रदाय के आचार्यो का केन्द्र स्थल इस प्रदेश म था। इनके प्रत्येक आचार्यो ने कुछ न कुछ हिन्दी में पद रचे ह। रिद्धपुर और माहूर (जो कि इस प्रदेश में है।) महानुभाओ के पवित्र स्थान है। १५ वी सदी में इस सम्प्रदाय का प्रचार पजाब में कृष्ण मुनि ने किया था—जो जाति के पजाबी थे। इनके समय से लोग इस सम्प्रदाय को "जयकृष्णी" कहने लगे थे। इस सम्प्रदाय के लोग वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता को नही मानते ह।

स्वामी मुकुन्दराज—नाथ मार्गी सम्प्रदाय के द्वारा महाराष्ट्र में भागवत सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई जिसके प्रवर्त्तक प्रसिद्ध ज्ञानेश्वर महाराज हुए हैं। उनसे पूर्व मध्यप्रदेश मे स्वामी मुकुंदराज (ई. सन् ११२८—११९६) सतपुड़ा-घाटी के प्रधान संत थे जिनका लिखा हुआ "विवेक सिधु" मराठी-काव्य ग्रंथ है। मुकुंदराज की गुरु परम्परा इस तरह है—आदिनाथ, हरिनाथ, रघुनाथ और मुकुंदराज। स्वामी हरिनाथ भडारा जिले मे वैनगंगा के तट पर आंभोरा मे रहते थे और वहां उनकी समाधि है। उसी तरह रघुनाथ स्वामी की समाधि (रामगढ) छिंदवाडा में और मुकुंदराज की समाधि वैतूल के निकट खेलड़ा के किले में है। उस समय में खेलड़ा पर राजा जैत्रपाल का राज्य था। कहते हैं कि राजा ने यह प्रतीज्ञा की थी, कि जो साधु घोड़े पर सवार होने मे जितना समय लगता है उतनी अवधि मे मुझे ईश्वर का दर्शन नही करा देगा उसे मेरे यहां जन्म भर मजदूरी करना पडेगा। विचारे अनेकों साधु इसके शिकार वने और उन सवको तालाव खुदवाने का काम दिया गया था। वह तालाव आज भी खेलड़ा के निकट रावणवाडी में है। यह समाचार काशी में मुकुंदराज स्वामी को ज्ञात हुआ था और वे स्वयं राजा को उपदेश देने के लिए खेलड़ा पहुंचे थे। उस समय में तीन सौ साधू वहां कष्टमय जीवन विता रहे थे। स्वामी के प्रभाव से राजा की प्रतीज्ञा पूरी हुई थी और सभी साधु मुक्त हुए थे। राजा जैत्रपाल उनका शिष्य हो गया था और इसी कारण से वहां मुकुन्दराज की समाधि है। यह जैत्रपाल राजा नरसिंहराय का पूर्वज था। यह जनश्रुति कहां तक सत्य है, यह कहना कठिन है।

रामानंदी-आंदोलन—१३ वी सदी मे श्री राघवानंद के शिष्य श्री रामानंद जी ने भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक वैष्णव धर्म के तत्वो को प्रसारित करने का सफल प्रयास किया था। उस समय मे यह तूती वज रही थी कि स्त्रियों और हरिजनों को दीक्षा देने का अधिकार नही है। ऐसी स्थिति मे रामानद जी सामने आये थे। रामानंद ने स्त्रियो एवं व्राम्हणेतरो को वैष्णवी दीक्षा देकर भगवन्मार्ग के अद्वितीय पथिक वनाकर एक महान राष्ट्रीय कार्य किया था। इस समय में मुसलमानो के आतंक से स्वधर्म की रक्षा करना आवश्यक था—इसलिये स्वामीजी ने यह निश्चय किया था, कि व्रम्हचर्य, शारीरिक वल, अनन्य भक्ति और त्याग के विना देश तथा धर्म की रक्षा तथा—भारतीय नारियों की सतीत्व-रक्षा नितान्त असंभव है। इसी कारण से उन्होंने एक "विरक्त दल" का सगठन किया था जो आज वैरागी कहलाते हैं। स्वामी रामानंद ने १४ वी सदी में धर्म के लिये प्राण देनेवाले वैरागी विरक्त समाज की स्थापना की थी जो शीघ्र ही सारे देश में फैल गये थे। इस युग का नारा था :—

जाति-पांति पूछे नहिं कोई—हरि को भजै सो हरि का होई।

रामानंदजी व्राम्हण और शूद्र सभी को प्रभु की अनंत लीलाओ के पात्र समझते थे। सभी को "श्रृण्वन्तुविश्वे अमृतस्य पुत्रा." भगवान के पुत्र समझते थे। अनतानंद, सुखानंद, सुरसरानंद, नरहरियानंद, पीपा, कवीर, भवानद, सेना, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी—स्वामीजी के प्रधान शिष्य थे—जिन्होंने आजीवन लोक-जागृति का कार्य इस देश में किया था। स्वामीजी ने अपने शिष्यों को वर्ण अभिमान से दूर रखा था। यदि ऐसा न होता तो उनके द्वादश शिष्य जो भिन्न-भिन्न वर्णो के थे—परस्पर प्रेमपूर्वक नही रह सकते थे। यदि स्ववर्णो का अभिमान जागृत होता तो अवश्य ही स्वामीजी के पश्चात् वह ज्वालामुखी फूट पडता कि जिससे रामानंद सम्प्रदाय का आज अस्तित्व भी न रह जाता था। आज भी रामानंदी सम्प्रदाय में चारों वर्णो का समावेश है। वेष-भूषा में भी समानता है, दण्डवत प्रणामादि में अभिन्नता है। जनश्रुति यह भी कहती है—कि केवल अयोध्या मे स्वामीजी ने १० हजार यवनों को शुद्ध किया था।

मध्यप्रदेश मे इस सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव आज तक वना हुआ है—इन वैरागी और दशनामी संन्यासियो के मठ आदि इस प्रदेश के कोने-कोने मे बिछे हुए हैं। इनमें भी गृहस्थ और विरक्त दो भेद हो गये। आज भी राजनांदगांव, और छुईखदान के राजा वैरागी है। इसी तरह प्रदेश के वर्तमान महतगण और मठ संस्था समाजोपयोगी थी।*

*उदाहरणार्थ मध्यप्रदेश के रामानन्दी मठों मे से दो प्रमुख मठों का परिचय दे रहे है :—

(१) स्वामी गरीवदासजी का मठ रायपुर—जन्म सवत् १५६०—इनका आदि मठ पौनी, जिला भंडारा में था। उनके शिष्य स्वामी वलभद्रदासजी जिन्होंने रायपुर में दूधाधारी मठ को स्थापित किया था। उस समय में राजा जैतसिह देव का राज्य रायपुर मे था। वे केवल दुग्ध-आहारी थे। मराठों के शासन-काल में शिवाजी भोसले स्वयं महतजी से मिलने गये थे और मठ के खर्च के लिये जागीर प्रदान की थी। इस मठ के वर्तमान महन्त वैष्णवदासजी है।

(२) शिवरीनारायण मठ.—यह हैहय राजाओ के समय से चला आ रहा है। इस मठ के प्रवर्त्तक स्वामी दयारामजी गवालियर राज्य से आये थे। रतनपुर के हैहय राजा इस गद्दी के शिष्य थे। इस मठ के १३ महन्त अव तक हो चुके हैं—वर्तमान महंत लालदासजी है।

सूफियो का प्रभाव—मुसलमानो के साथ-साथ उनके फकीर भी आये थे और उनमें सूफी सन्त भी थे। सूफी मत का ब्रम्ह-वेदात, ब्रह्म से भिन्न नही है। सूफीमत में ब्रह्म एक है और वह किसी भी रूप या आकार से रहित है—वह सर्वव्यापी है, किन्तु किसी वस्तु विशेष में केन्द्रीभूत नही है—वह अगोचर और अज्ञेय है—वह असीम है। उसमें कोई परिवर्तन और विनाश नही है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सत्य नही है। अत वह एकान्त रूप से एक ही है और अन्य कोई सत्ता उसके समकक्ष नही है। ऐसी स्थिति में जो ब्रम्ह का ज्ञान होता है—वह किसी भौतिक साधन से न होकर आत्मानुभूति से ही होता है। वे लोग प्रेम प्रतीक के सहारे चलते है और उनके लिये इस्लाम की विधि विधान रुकावट पैदा नही करती। हिन्दू, मुसलमानो को एक करने का प्रयास सूफी सन्तों ने भी किया है।

वर्हानपुर के निकट बहादुरपुर ग्राम में "मुहम्मदशाह दूला" की दरगाह है—दूला साहब एक प्रसिद्ध साधु पुरुष थे, जो फारुकी सुल्तान के शासन समय में वर्तमान थे। उन्होने हिन्दू और मुसलमानों को एक सरल प्रेममय मार्ग बताया था—जहा ईर्षा और द्वेष की बू बास न थी। इसी प्रेम-मार्ग के उनके वशज कालान्तर में "पीरजादा" कहलाते थे। दूला साहब विष्णु के दसवे अवतार—कल्की को निष्कल्की अवतार कहते हैं। उनके ग्रथ में हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मों की अच्छी बाते सग्रहीत है। खानदेश के गूजर और कुरमियो में उस पथ का अधिक प्रचार हो गया था और अब भी है। ऐसे लोग वर्ष में एक बार अब भी वहा पहुचते है। यो तो मुसलमानो के कई साधु सन्त इस प्रदेश में हुए हैं, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा।

सिंगाजी—सवत् १६२३ के आसपास निमाड में सिंगाजी (जाति के अहीर) प्रसिद्ध सत हो गये है। सिंगाजी जगलो में गाय चराते हुए भगवान के गीत गा-गा-कर मस्ती से रहा करते थे। सिंगाजी की मृत्यु सवत १७१६ श्रावण पौणिमा को हुई थी। लोग आज भी कुवार मास में सिंगाजी नामक स्थान में एकत्रित होते है और गुड चढाते है। सिंगाजी के प्रसिद्ध शिष्य खेमदास भी एक साधु पुरुष थे। वे कहते है—

> जहा अखण्ड ज्योति भरपूर, जहा झिलमिल बरसे नूर।
> जहा ज्ञान भरा महमूर, कोई बिला पहुचे सूर।
> निर्गुण ब्रम्ह है न्यारा कोई समझो समझणहारा ॥
> खोजत ब्रम्हा जनम सिराणा मुनिजन पर न पाया।
> खोजत-खोजत शिवजी थाके, वो ऐसा अपरपारा।
> शेष सहस मुख रटे निरतर, रैन-दिवस एक सारा ॥
> ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, वो तेंतिस कोटि पचिहारा।
> त्रिकुट महल में अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा।
> सुखमण सेज शून्य में झूले, वो सोहं पुरुष हमारा।
> वेद कथे अरु कहे निर्वाणी, श्रोता कहो विचारा।
> काम-क्रोध-मद-मत्सर त्यागो, ये झूठा सकल पसारा।
> एक बूद की रचना सारी, जाका सकल पसारा।
> सिंगा जो भर नजरा देखा, वो ही गुरु हमारा ॥

सिंगाजी जीवन के महान तत्वो के दृष्टा और अनुभूतियो के माधुर्य से पूर्ण अटपटे सरल गीतो के रचयिता थे। आज भी उन गीतो को गा-गा कर ग्रामीण-जन ससार-तापो से बचने का प्रयास करते हैं।

भीलत बाबा—नर्मदा तट के दूसरे महात्मा भील्त बाबा (जाति के अहीर) सिवनी-मालवा से ५ मील पर भमेरीदेव में रहते थे। यह जीवन मिट्टी के कलश के समान है और उसी तरह हमारा जीवन क्षण-भगुर है—इस तत्व

को भीलत वावा ने जाना था। इसीलिये तो शून्य में होनेवाले नक्कारे की आवाज को उन्होंने सुना था। वे सदा ही समाधिस्थ अवस्था मे दिखायी देते थे। लोग कहते हैं कि उनके पास सर्प-दंश द्वारा ग्रसित जो मनुष्य पहुँचता था, वह अच्छा हो जाता था। उनके फुटकर पद भी यत्र-तत्र हमे मिल जाते हैं। भमेरी मे भीलत वावा की मूर्ति भी है।

श्री रामजी वावा—आज से तीन सौ वर्ष पूर्व नर्मदा के किनारे धानावाड (जिला होशंगावाद) के गूजर वंश में रामजी वावा का जन्म हुआ था। उनके पिता किसानी करते थे। इनको वचपन से सत्संग करने का चसका लग गया, जिससे वे एकांत में जाकर प्रभु का भजन किया करते थे। कहते हैं, कि जव आपने पिता के कहने से हल चलाना प्रथम वार आरंभ किया, तव अकस्मात् चरचराहट का शव्द सुनाई दिया। उन्होंने पीछे फिरकर देखा तो सारी भूमि पर खून वह रहा था। इस तरह खेती द्वारा जीवहिंसा होती देखकर इन्होंने कृपि-कर्म त्याग दिया था। फिर भी जीविका के लिये कुछ उद्यम करना आवश्यक था, इसलिये तमाखू वेचकर जीविका चलाते थे। वे दूकान पर तमाखू और तराजू रख देते थे और भजन किया करते थे। ग्राहक दूकान पर पहुंच कर तमाखू तौल लेता और पैसा रखकर चला जाता था। एक वार किसी ने उनसे अनुचित लाभ उठाना चाहा। उसने अपनी इच्छानुसार तमाखू तौल लिया और वहुत ही कम कीमत रखकर घर चला गया। घर जाकर उन्होने फिर से तमाखू तौला—तो देखते हैं कि उसका तौल उतना ही रहा—जितना उन्होने पैसा दिया था। इससे उसे लज्जा आई और वावाजी के पास जाकर क्षमा माग ली। ऐसी अनेकों घटनाओं से लोगो पर वड़ा प्रभाव पड़ा और धीरे-धीरे वावाजी के भक्तों की सख्या वढने लगी और उन्हें भजन तथा नाम-संकीर्तन-लाभ मिलने लगा।

एक समय नर्मदा मे वाढ आयी। गांव के लोग घर-द्वार छोड भागने लगे, पर रामजी वावा अपनी झोपडी मे भजन ही करते रहे। होशंगावाद में इस समाचार से उनके शिष्यों को वडी चिन्ता हुई। वे लोग धानावाड़ गये और देखते हैं कि वावाजी ध्यान मे मग्न हैं। उनके कुटिया के चारो ओर नर्मदा का जल लहलहा रहा है किन्तु उनकी कुटिया सुरक्षित है। वावाजी को कई सिद्धिया प्राप्त थीं—जिससे उन्होने असख्यो दीन-दुखियो के दुःख दूर किये। अन्तिम समय में उन्होंने सवको एकत्रित करके समारोह के साथ समाधि ली। इस समय मे धानावाड़ मे वावाजी की समाधि वनी हुई है। उसके वाद उनके भक्तो ने होशगावाद, हतवांस और खापरखेड़ा मे भी समाधियां स्थापित कर दी हैं। *

कवीर-पंथी सत्यनामी—हमारे प्रदेश में कवीर-पंथी अधिकता से पाये जाते हैं। कवीरदासजी के प्रमुख शिष्य धर्मदासजी गद्दी के प्रथम महत थे। इसी वंश की एक गद्दी कवर्धा में है। संत रैंदासजी सम्प्रदाय के सहस्रो लोग छत्तीस-गढ़ मे हैं। यहा के सतनामी लोग प्रायः कहा करते हैं—

हरि-सा हीरा छांडि कै, करै आन की आस।

ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैंदास॥

१८ वी सदी मे इसी सम्प्रदाय की एक शाखा "सत्यनामी" कहलायी—जिसके प्रवर्त्तक जगजीवनदासजी (जन्म सवत् १७२७) वारावंकी जिले के चंदेल क्षत्रिय थे। उनका वचन है :—

सत समरथ तें राखि मन—करिय जगत को काम।

जगजीवन यह मंत्र—सदा सुक्ख—विसराम॥

---

*इसी तरह रतनपुर मे कई साधु पुरुष हो गये हैं—जिनमे युगलदास वावा और जगमोहनदास कृष्णगिरि प्रमुख थे। श्री रामजी वावा का एक भजन :—

विन देही को पूजो जासे और देव नहीं दूजो। आत्मव्रम्ह सकल से न्यारा आप माहीं सूझो॥

निरज् आगे शीष नवावे तोहे आग व्रम्हना सूझो। प्रतिमा पूजे घंट वजावै तू कहां नादान रीझो॥

तीर्थ नरक में जगत् भुलाना कोई पार व्रम्ह लख लीजो। निर्गुन स्वामी सचराचारा, जौंही लाहो लीजो॥

मानसी पूजा पूजो भाई आवागमन से रहजो। कहे रामदास सुनो भाई साधो, मोहे अखंड व्रम्ह लो सूझो॥

घासीदासजी—सतनामी धम के चलानेवाले घासीदास दुग जिले के गिरोदगाव के निवासी थे। घर में किसानी होती थी। उनके गुरु सतनामी साधु थे, जिनके द्वारा उनका सत्यनाम जपने का अनुराग उत्पन्न हो गया था। उनकी भक्ति से उनकी स्त्री ऊब उठी थी जिसके कारण वे शात चित्त से प्रभु का जाप नही कर पाते थे। स्त्री की अवहेलना से घर-द्वार छोडकर वे सोनाखान के जगल में चले गये और एक तेंदू के वृक्ष के नीचे उन्होने सत्य नाम की साधना आरभ कर दी। कई दिन इस तरह बीत गये। अन्त में उनको सत्य-ज्ञान की अनुभूति हुई। अन्त में लोग उनको घर लिवा ले गये। क्रमश उनको आश्चयजनक घटनाओ के कारण घासीदास का नाम सवत्र फैल गया और समस्त जाति वालो ने उनको अपना गुरु मान लिया जो अब सतनामी के नाम से प्रसिद्ध है। घासीदास जी की आज्ञा थी—"सत्य नाम जपा करो, देवी, देवताओ का पूजन त्याग दो। सभी मनुष्य बराबर हैं। ऊच-नीच कोई जाति नही है और न मूर्ति-पूजा में कोई सार है। अहिंसा परमधम है—इसलिये हिंसा करना पाप है।" रायपुर से १८ मील पर बगोली नामक ग्राम में घासीदासजी की समाधि है, जहा माघी पौणिमा को मेला लगता है। इसी "सतनामी" सम्प्रदाय के कुछ मठ छत्तीसगढ में है, जो आज भी चमार जाति के हरिजनो का नेतृत्व करते हैं।

बाबा प्राणनाथ—बुदेलखण्ड में प्रणामी और धामी सम्प्रदाय के माननेवाले अधिक है। उसके प्रवत्तक "प्राण नाथ प्रभु" (जन्म सवत् १६७५) जामनगर के निवासी क्षेमजी क्षत्रिय के पुत्र थे। ये मथुरावासी देवचन्दजी के शिष्य थे। महाराज छत्रसाल ने बुदेलखण्ड में जो स्वराज्य स्थापित किया था उसके प्रेरक बाबा प्राणनाथ थे। इन्होने हिन्दू और मुसलमानो म भाईचारा फैलाने का भरसक यत्न किया था। उनके विचारो का सग्रह "कुलजम स्वरूप" में ग्रथित है, जो पन्ना के मदिर में सग्रहित है। धामी मूर्तिपूजा नही करते, तथा मासाहार से दूर रहते है और न वण-व्यवस्था को ही मानते हैं। इनका स्वगवास आषाढ कृष्ण तीज सवत् १७५१ को हुआ था।

"कुलजम स्वरूप" ग्रथ में वेद और कुरान के वाक्यो को देखकर यह बताया गया है कि दोनो धर्मों में कोई अलगाव नही है। उन्होने मूर्तिपूजा, जाति-भेद और ब्राम्हणो की श्रेष्ठता हटाने का यत्न किया था। उनके पदो का एक नमूना हम नीचे दे रहे है —

खिन एक लेहु लटक भजाय—जनमत ही तेरो अग झूठो , देखत ही मिट जाय ॥टेक॥
जीव निमिष के नाटक में, तू रह्यो क्यों बिलमाय ?
देखत ही चली जात बाजी, भूलत क्यो प्रभुपाय ॥
आपको पृथ्वीपति कहावे, ऐसे केते गये बजाय ,
अमरपुर सिरदार कहिए, काल न छोडत ताय ॥
जीवरे चतुर्मुख को छोडत नाहीं, जो कर्ता सृष्टि-कहलाय ,
चारो तरफ, चौदे लोको, काल पहुच्यो आय ॥
पवन, पानी, आकाश, जमीं, जो अगिन जोत बुझाय ,
अवसर ऐसो जान के, तू प्राणपति लौ लाय ॥
देखन को ये खेल खिनको, लिये जाय लपटाय ,
"महामती" रुदे रमें तासो, उपजत जाकी इच्छाय ॥

अमृतराय—भक्ति-ज्ञान के सुन्दर कवि एव सत अमृतराय (सन १६९८-१७५६ ई) का जन्म फतखेर्डा में (विदर्भ में) हुआ था। इनका भक्ति ज्ञान पर काव्य प्रसिद्ध है। इन्होने हिन्दुओ को ज्ञानामृत पिलाकर हिन्दुत्व की रक्षा की थी और मुसलमानो को चमत्कार दिखाकर चुप किया था। इनकी समाधि औरगाबाद में है। ये तो मराठी के प्रसिद्ध कवि थे और हिंदी के बडे रसिक थे।

आज कुजनमो फूल के फूली बृजपतराज ॥
फूलन के हार रुचिर श्रृंगार बन।
फूलन के मुकुट कुडल विचित्र सकल साज ॥आजि ॥१॥
फूलन की राउटी—फूलन की चौकी।
फूलन को बीखो अनुपम से जहाज ॥आजि॥२॥
फूल रही ग्वालिन हरदम दम गावत।
आन अलापत पखवाजन की आवाज ॥आजि॥३॥
अमृतराय साहब सों आप मो अपन दपन।
आप सुर मुर नर सिरताज ॥आजि॥४॥

देवनाथ—नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध देवनाथ अंजनगांव सुर्जी (विदर्भ) के प्रमुख संत (ई. सन् १७५४-११८२१ थे। उनके पिता राजोपन्त अचलपुर रिसाले के ५ सौ सवारो के नायक थे। इनका मूल नाम देवराव था। आरंभ मे गवाभट्ट ने उनका झुकाव हनुमान-सेवा की ओर करवाया था। वाद में इन्होने गोविन्दनाथ से दीक्षा ली थी। वैराग्य की मस्ती में इन्होंने सुन्दर काव्य रचना की है—क्योकि इनको कीर्तन करने का चाव था। दूर-दूर से राजा महा-राजा इनको अपने यहां वुलवाते। पूना में पेशवा सवाई माधवराव ने आपको कई दिनों तक रखा था। राजमाता गंगावाई ने इनसे दीक्षा ली थी। वड़ोदा के गायकवाड़, नागपुर के भोंसले, गवालियर के सिंधिया आदि राजाओं ने भी इनको अपने यहां वुलवाया था। इनकी समाधि वरहानपुर मे है। ये अपने समय के एक महान संत थे।

रमते राम फकीर, कोई दिन याद करोगे ॥
कोइ दिन ओढे शाल दुशाला, कोड दिन भगवे चीर ॥१॥
कोइ दिन खावे मेवा मिठाई—कोइ दिन पीवे नीर ॥२॥
कोइ दिन हाथी कोइ दिन घोडा—कोइ दिन पांव जंजीर ॥३॥
कोइ दिन वस्ती कोइ दिन जंगल—कोइ दिन भुज पर सीर ।-४॥
कोइ दिन महलो म्याने सोते—कोइ दिन गंगा तीर ॥५॥
तुम अहो खुशाला रहो खुश हाला—फिर न मिले ये शरीर ॥६॥
देवनाथ-प्रभुनाथ गोविन्दा—तू है सच्चा पीर ॥७॥

दयालनाथ—दयालनाथजी देवनाथजी के प्रधान शिष्य (जन्म ई. सन् १७८८, समाधि १८३६) जाति के यजुर्वेदी व्राम्हण थे। उनकी स्त्री का नाम राधावाई था। एकनाथ सम्प्रदाय के १४ वे पुरुष थे। उनकी गुरु परम्परा मे गोपालनाथ, गोविन्दनाथ, देवनाथ, दयालनाथ हैं। इनकी जन्मभूमि मुर्तिजापुर थी। देवनाथ और दयालनाथ दोनो ने उस समय मे भक्ति का वड़ा प्रचार किया था। अंजनगाव मे इनकी समाधि है।

जरा हंस हंस वेनु बजावोजी—तुम्हें दुहाई नंद चरनन की ॥
लटपट पेच मुकुट पर छुटे। हंसि आवत तोरे लटकन की ॥
घूंघट खोल दरस मोंहि दीजे। चोट चलावो उन अंखियन की ॥
सव बनिता विरहन की मारी। वृत्ति विकल पल छन मन की ॥
मोर मुकुट पीतांवर सोहे। चाल चलावै जैसी मटकन की ॥
देवनाथ प्रभु दयाल तुम हो। आस लगी पद सुमरण की ॥

मराठी मध्यप्रदेश के कुछ संतजन—मराठी मध्यप्रदेश मे वहुत से योगी और संतजन हो गये है, जिनका परिचय यहां दिया जा रहा है—जिन मे हिन्दू और मुसलमान दोनो जाति के है। प्रदेश के विविध स्थानो मे कई सत्पुरुषो की पुण्यतिथियां और उत्सव मनाये जाते हैं। उनका परिचय हम यथाक्रम देना आवश्यक समझते है।

(१) विष्णुदास (स्थान माहुर)—नाथ सम्प्रदाय की दूसरी शाखा के ये प्रसिद्ध सन्त थे। वडे समदर्शी और परोपकारी थे। इन्होंने वहुतों पर अनुग्रह किया था।

(२) रगनाथ महाराज (सिंदखेड़)—वचपन से ही ये पूर्ण ज्ञानी थे। लोग इनको रंगनाथ स्वामी का अंशावतार मानते थे। राजयोगी सा इनका रहन सहन था, किन्तु इन्होंने भक्ति का वडा प्रचार किया था। कहते है कि इन्होंने अनेको के रोग हाथ फेर कर अच्छे किये थे। वहुतो को इन्होंने उपकृत किया, वहुतो पर अनुग्रह किया, अनेकों चमत्कार देखने में आये। सिदखेड मे इनकी समाधि है।

(३) गोसावी नंदन (सिदखेड)—नाथ सम्प्रदाय के संत थे। मितभाषी और वड़े विरक्त थे। स्थान-स्थान पर इनकी मढ़िया भक्तो ने वनवायी है। सिंदखेड़ में इनकी समाधि है।

(४) अप्पाजी महाराज (वणी)—इनका नाम था—श्रीनिवासराव सरमुकद्दम इजारदार। युवावस्था में इनको भगवद्भक्ति की धुन सवार हुई और विवाह होने पर भी इनका वैराग्य वढ़ता ही गया। ये वड़े संत थे और अनेको पर इन्होंने कृपा की थी।

(५) सखाराम महाराज (लोनी)—वचपन से ही इनको वैराग्य हो गया था। इन्होंने वहुतो पर अनुग्रह किया था। इनको समाधिस्थ हुए लगभग ४० वर्ष हो रहे हैं। अगहन वदी ३० को लोनी मे इनके नाम से वड़ा मेला लगता है, जहां सदावर्त का प्रवंध भी रहता है। यात्री प्रसाद लिये विना नही लौटते।

(६) रामकृष्ण बुवा (वाशिम)—ये कर्मनिष्ठ ब्राम्हण, जगदम्बा के परम भक्त और महायोगी थे। इनकी विभूति से अनेको की आधि-व्याधिया दूर हुई थी। वाशिम में इनकी समाधि है, जिसे हजारो लोग पूजते है।

(७) उमरदेव (जलगाव)—उमरदेव जलगाव से १० पर मील पहाडी स्थान है—यहा एक महान् योगी हो गये है—जो योगी शिव-भक्त थे। एक कन्दरा में बैठकर वे शिवपूजन किया करते थे। लोगो के सकट यहा पहुचने पर दूर हो जाते है—यह भावुको का विश्वास है।

(८) शहादावल (उपराई)—बरार में यह देवस्थान प्रसिद्ध है। कहते है कि यहा कोई शाह नाम के एक फकीर रहते थे, जो एक महान सिद्ध माने जाते थे। उनके निकट दावल नाम के एक महार जाति के सत रहते थे। दोनो में बडी घनिष्ठता भी थी। कहते है कि ये दोनो एक साथ ही मरे भी थे, इसलिये लोगो ने उनको एक स्थान में गाड दिया था। हजारो लोग इनकी समाधि को पूजकर अपनी कामना सफल करते है। समाधि के समीप चमेली का वृक्ष है,—जिसके फूल ठीक समाधि पर गिरा करते है।

(९) सुपेनाथ बुवा (पल्सी-जलगाव)—इनकी विशेषता यह है कि विषैले प्राणियो का विष इनकी समाधि के दर्शन से उतर जाता है। गर्मी-सुजाक के रोग भी अच्छे होते है। इन महात्मा को हुए दो पीढी बीत चुकी है।

(१०) फनेपुरी बाबा—८० वर्ष पूर्व ये सत हुये है। इनका स्थान यहाँ से ६ मील दूर पहाड के नीचे है। पशुओ के सारे रोग इनकी विभूति लगाने से अच्छे होते है। स्त्रियो के लिये यह स्थान वर्ज्य है। लोग इनको स्वामी कार्तिकेय का अवतार मानते है।

(११) महासिद्ध बाबा—वनोग ग्राम के निकट इनकी समाधि है। इनके माता-पिता भी महासिद्ध थे और उसी तरह पाचो पुत्र भी। इनके दर्शन मात्र से रोगियो के रोग अच्छे होते है। माघ शुक्ल १५ को यहाँ यात्रा होती है। इनके अन्य भ्राता बालगोविद बुआ, आनजी बुआ, सावजी बुआ, छोटे महासिद्ध बुआ और बीरोबा है।

(१२) नरहरिनाथ (देवलगाव राजा)—प्रसिद्ध सत शिवदिनकेसरी के पुत्र नरहरिनाथ की देवलगाव राजा में समाधि है। यहीं पर उनका एक मठ भी है।

(१३) सत नानासाहेब (पातूर)—मार्कीनाथ बरार के एक प्रमुख सत थे जिनके शिष्य नानासाहब पातूर (अकोला जिले) में रहते थे। उनके अनेको शिष्य सर्वत्र फैले हुये थे। माघ शुक्ल दशमी को यहा उनका जन्मोत्सव मनाया जाता है। उसी तरह सिदाजी बुआ की जयती फाल्गुन शुक्ल २ को उनके शिष्य मनाते है। पातूर में शेख बाबू की दरगाह को भी लोग पूजते है।

(१४) ब्रम्हेन्द्र स्वामी धावडशीकर (राजूर)—ये स्वामी महाराष्ट्र भर में प्रसिद्ध थे और उनका जन्मस्थान राजूर था। बाजीराव पेशवा (प्रथम) पूनावाले के गुरु थे।

(१५) भोलाराम जी (अचलपुर)—महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समर्थ रामदासजी के भोलारामजी शिष्य थे, जिनकी यहा समाधि है। उसी तरह दूल्हा रहमानशाह की मजार को बरार के मुसलमान और कुछ हिन्दू भी मनौती करते है।

(१६) सोनाजी बुआ (सानाला)—इनकी समाधि पर कार्तिक पौर्णिमा के दिन यात्रा होती है।

(१७) नरसिंगदास बाबा (अकोट)—प्रसिद्ध योगी थे। बडे प्रेमी और सदा ध्यान में मग्न रहते थे। इन्होने निजाम सरकार के अफसर के सामने पत्थर के नदी से तृण भक्षण कराया था। उसी स्थान पर उनका समाधि मन्दिर बना है।

(१८) उद्धवसुत (अजनगाव)—उद्धवसुत का यहा मठ है।

(१९) शाहबुद्दीन पीर (मगरूलपीर)—यह प्रसिद्ध पीर का स्थान है, जिसे निजाम सरकार ने जागीर दी थी।

(२०) पचपीर (मेहकर)—मुसलमानो के पीर की यहाँ दरगाह है। यही पर हयात कलदरशाह की दरगाह है।

(२१) रोकडाराम (कारजा)—यहाँ रोकडाराम की समाधि और मठ है।

(२२) नागस्वामी (बोरकी)—नागस्वामी जाति के कान्यकुब्ज ब्राम्हण थे। जिसका श्रावण तीज को मेला भी लगता है।

(२३) योगानंद (जरुड़)—४० वर्ष पूर्व जरुड़ मे प्रसिद्ध योगी योगानंद रहते थे, जो कान्यकुब्ज ब्राम्हण थे। वे दत्त के उपासक थे। प्रयाग मे जाकर इन्होने जल-समाधि ली थी।

(२४) झिंगरा (कुरहा-अचलपुर)—जाति के कुरमी—वचपनसे विरक्त थे। कुछ दिनो तक पिशाच वृत्ति से रहे थे। पूर्णा के तट पर इनकी समाधि है।

(२५) खटिया वुआ (अमरावती जिला)—ये जगल मे रहते थे और जो कोई मिलने जाता था पत्थर से मारते थे। पूर्णा के किनारे इनकी समाधि है।

(२६) कोलवाजी महाराज (धापेवाड़ा, नागपुर)—३०० वर्ष पूर्व कोलवाजी नामक संत धापेवाड़ा ग्राम में चन्द्रभागा नदी के किनारे रहते थे। ये भगवान कृष्ण के अवतार माने जाते थे। इनके रचे हुए पद भी मिलते है।

(२७) शेख फरीद (गिरड़-वर्धा)—शेख फरीद की यहाँ एक दरगाह है। मुसलमान कहते है कि यहाँ गिढोवा नामका एक हिन्दू राक्षस रहता था, जिसको कुश्ती मे शेख फरीद ने मार डाला था। इसी कारण से लोग फरीद को पूजने लगे। ब्राम्हणेत्तर हिन्दुओ और मुसलमानो की यहाँ मनौती होती है। रामनवमी और मोहर्रम मे यहाँ मेला लगता है।

(२८) वालाभाऊ (मेहकर)—इन पर नरहरि की कृपा थी। वैसाख मास में होनेवाली नृसिंह जयन्ती पर इनके शरीर मे नृसिंह भगवान का प्रवेश होता था। इन्होने जीवन भर परोपकार ही किया था। पीछे से सन्यास लेकर काशी मे रहते थे।

(२९) शिवचरण गीर (अकोला)—प्रसिद्ध सन्त की समाधि है।

(३०) गोविन्द वावा (वारशी-टाकली)—ये पटवारी थे, किन्तु वैराग्य होने से वे विरक्त की भाँति रहते थे।

(३१) गजानन महाराज (शेगाव)—ये महाराज अवधूत वृत्ति से रहते थे। अकोला मे शहर के वीच एक चवूतरे पर वैठा करते थे। ये वीच-वीच मे मौनवृत्त धारण करते थे। तव भी रामनाम की ध्वनि उनके मुख से सुनायी पडती थी। देह धर्म के विषय मे निश्चिन्त थे, चाहे जहा चाहे जो काम हो जाता था। कोई कुछ इनसे प्रश्न करता तो उसका उत्तर सदा चुने हुए गूढार्थ व्यजक शब्दो मे देते थे। वे अकोला से शेगाव चले गये थे। जहाँ उन्होंने समाधि ली थी, वही पर एक वड़ासा मन्दिर वना दिया गया है और यात्रियो के ठहरने के लिये भी प्रशस्त स्थान है। शेगाव मे चैत्र शुक्ल ९ को उनकी जयंती मनाई जाती है।

(३२) गोमाजी महाराज (नागझरी)—स्टेशन से १ मील पर इनकी समाधि है।

(३३) नानाजी महाराज (कापसी, वर्धा)—माघ मास मे नानाजी महाराज का मेला होता है।

(३४) आवाजी महाराज (सोनेगाव, वर्धा)—आवाजी की यहाँ समाधि है।

(३५) केजाजी महाराज (घोराड, वर्धा)—घोराड मे मेला लगता है।

(३६) तेलंगराव (आर्वी)—आर्वी मे तेलगराव स्वामी की समाधि है। जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो पूजते है।

मराठी मध्यप्रदेश में निम्न सन्तों की इस तरह जयन्ती मनाई जाती है

तिथि (१)	नाम (२)	स्थान (३)
चैत्र शुक्ल १ ...	... वावाजी महाराज ...	लोणीखेड़ा.
चैत्र शुक्ल ३ ...	... सेवादास जयंती ...	पोहरादेवी पुसद.
चैत्र शुक्ल ९ ..	.. गजानन महाराज उत्सव ...	शेगाव.
चैत्र कृष्ण १ ...	... गोविंद महाराज उत्सव .	वारशी-टाकली.
वैशाख कृष्ण ९ ...	... १७०००७ ..	अमरावती.
जेष्ठ कृष्ण ११ ...	... हरीवु ...	आकोट.

तिथि (१)	ग्राम (२)	स्थान (३)
आषाढ शुक्ल १	भगवतरावजी पुण्यतिथि	आर्वी
आषाढ कृष्ण ९	हरिबाबा कासार	बोरगाव-अचलपुर
श्रावण शुक्ल ११	शेवाल्कर	अचलपुर
श्रावण कृष्ण ३	गिरचरण	अकोला
श्रावण कृष्ण ८	फलसिद्ध स्वामी	सावरखेडा
आश्विन शुक्ल ८	मीरन	देवली-वर्धा
आश्विन शुक्ल १२	गोचरस्वामी	उमरखेड
कार्तिक शुक्ल १५	अडकूजी महाराज	वरखेड-अमरावती
कार्तिक कृष्ण २	सदानंद ब्रम्हचारी	चादूर
कार्तिक कृष्ण ३	नानाजी महाराज	वापशी
कार्तिक कृष्ण १४	सखाराम महाराज	लोणी
पौष शुक्ल २	नरसिंह सरस्वती	कारंजा
पौष शुक्ल ८	विष्णु कवि	माहूर
पौष शुक्ल ९	नगराजी महाराज	सुरहा-दर्यापुर
पौष कृष्ण १	श्री गुरुदासजी	माहूर
पौष कृष्ण ३०	केजाजी महाराज	घोराड-वर्धा
माघ कृष्ण ८	गोमाजी महाराज	नागझरी
फाल्गुन शुक्ल २	सिदाजी	पातूर
फाल्गुन शुक्ल १३	अप्पाजी महाराज	आर्वी

इसी तरह निम्न और भी सन्त प्रसिद्ध हैं—गुलाबराव महाराज, सैयद दाऊद (दहिहन्डा) और मदनशाह वली (चिखली)।

नर्मदा तट के कुछ संत—नर्मदा पुण्य नदी होने से उसके किनारे प्रत्येक रम्य स्थानों में अनेकों सिद्ध संतों के आश्रम आज तक वर्तमान हैं, जिन्होंने जनता को आत्मशांति और आत्मकल्याण का अनुपम मार्ग दिखाया है। नर्मदा के किनारे कई संतों की समाधियां मिलती हैं पर उनके सम्बन्ध का परिचय देनेवाले क्रमशः लुप्त होते जा रहे हैं। फिर भी हम कुछ संतों का संक्षिप्त परिचय यहां दे रहे हैं —

(१) नर्मदा की परिक्रमा करनेवालों में कमल भारती एक प्रमुख संत हो गये हैं, जिनके शिष्य गौरीशंकर महाराज थे। उन्होंने अपना आश्रम ओंकारेश्वर में बनाया था। ये एक सिद्ध महात्मा थे, जिनकी जमात में कई सिद्ध महात्मा रहते थे। कमल भारती का देहान्त संवत् १९१२ में हुआ, उस समय में उनकी आयु १०० वर्ष से अधिक थी। उनके चमत्कारों से चकित होकर कहते हैं कि मण्डला और होशंगाबाद के जिलाधीशोंने उनकी जमात को गांजा, भांग और शस्त्रों का परवाना और सनदें दी थीं। कमल भारती के शिष्य गौरीशंकर ने संवत् १९४८ को नर्मदामें सचेत समाधि ली। गौरीशंकर के पश्चात नर्मदानन्द जमात के महन्त हुए थे। उनके उत्तराधिकारी काशीनन्दजी (स्वर्गवास संवत १९९०) और उनके उत्तराधिकारी रतिनन्दजी हैं।

(२) केशवानंदजी (धूनीवाले)—आरंभ में गौरीशंकर महाराज के जमात में थे। उनका अध्ययन काशी में आचार्य तक हुआ था। गौरीशंकरजी ने उनको योग की शिक्षा दी थी, वे दुर्गापाठी थे। कुछ दिनों तक सिरसिरी घाट पर रहे थे, किन्तु साईंखेडा के माल्गुजार उनको अपने यहां लिवा लाये थे, जहां उनका निवास २० वर्षों तक था। उनका सभी जाति और सभी मतों के व्यक्तियों के साथ एक-समान व्यवहार था। यहां वे "धूनी-वाले दादा" के नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने संवत् १९८६ में साईंखेडा छोड दिया और अपने शिष्यों के साथ इन्दौर, उज्जैन, बडवाह होते हुए खण्डवा आए और संवत् १९८७ (आषाढ शुक्ल ११ सोमवार) को उनका स्वर्गवास हुआ और खडवा के समीप भवानी माता के मन्दिर के पास उनकी समाधि है। उनके उत्तराधिकारी छोटे दादाजी हुए, जो खडवा में ही समाधिस्थ हो गए। अभी इनके आश्रम में भक्तों का आवागमन होता रहता है।

(३) टेंभे स्वामी—वासुदेवानंद सरस्वती जाति के महाराष्ट्र ब्राम्हण खेड़ीघाट पर रहते थे ;—जो योग के अच्छे जानकार और संस्कृत के विद्वान थे। आपने अपनी तपस्या और भजन से असंख्य व्यक्तियो के दुःख दूर किये थे। लोग उनको "दत्त" का अवतार मानते थे। मराठी में उनका चरित्र भी छप गया है। उनके लिखे हुए संस्कृत और मराठी मे २०-२२ ग्रंथ हैं। संवत् १९७१ को नर्मदा के तट पर उनका देहान्त हुआ।

(४) सीताराम महाराज—वासुदेवानन्द सरस्वती के भ्राता थे। उनके सत्संग से हजारों ने लाभ उठाया था।

(५) योगानन्दजी—श्री वासुदेवानंदजी के शिष्य थे। उनका पहला नाम कल्याणजी था। उन्होंने संवत् १९५२ में संन्यास लिया और स्वर्गवास संवत् १९८५ मे गोदावरी के तटपर हुआ।

(६) मायानंदजी चैतन्य—(जन्म सं. १९२५) जाति के महाराष्ट्र ब्राम्हण और काशी के प्रसिद्ध विशुद्धानंद के शिष्य थे। संवत् १९६६ को सन्यास लेने पर उन्होंने नर्मदा की परिक्रमा की थी—जिसका विवरण उनकी एक पुस्तकमें अंकित है। आपने हिन्दी और मराठी में कविताएं लिखी है। ये अधिकतर ओंकारेश्वर में रहते थे। शिष्य लोग उनको वुद्ध का अवतार मानते थे। सन १९३४ में आप परमधाम को सिधार गए।

(७) दामोदरराव लघाटे—दमोह और जवलपुर के स्कूलों में आप अध्यापक थे। संवत् १९६५ से आप विरक्त होकर नर्मदा के किनारे रहने लगे। सन १९१९ में उन्होंने नर्मदा परिक्रमा पुस्तक लिखी थी।

(८) मौनी महाराज—जवलपुर-मन्डला सडक पर चिरई डोंगरी में नर्मदा किनारे रहते थे। वे महान योगी थे। लोग कहते है कि वे पक्षिओंकी भाषा जानते थे। उनका देहान्त सन १९२२ को हुआ।

(९) रामफलजी—ये होशंगावाद मे वहुत दिनों तक पागल अवस्थामे थे। उनको वाक्‌सिद्धि थी। उनका स्वर्गवास ब्राम्हण घाट पर हुआ था।

(१०) फलहारी महाराज (ब्रम्हाणघाट)—वे मंत्र, यंत्र और योग द्वारा रोगों को अच्छा करते है।

(११) गोपालानंदजी—सोहागपुर से १२ मील नर्मदा के किनारे वगलवाडा में रहते है। आपने नर्मदा किनारे कई यज्ञ किये है।

(११) श्रीमती रामवाई (वुर्हानपुर की रहने वाली)—नर्मदा के किनारे खेडीघाट पर रहती थीं। उन्होने नर्मदा की परिक्रमा की थी। परोपकार के कई कार्य उन्होंने किये थ। सन १९३० मे उनका स्वर्गवास हुआ।

(१२) ओझा महाराज—उन्नाव जिले के रहनेवाले ब्रम्हचारी थे। ४० वर्षो में इन्होंने नर्मदा की ३ वार परिक्रमा की थी। ये भजनानंदी गोसेवक थे। सन १९२० में ९० वर्ष का आयु में स्वर्गवासी हुए।

(१३) चन्द्रशेखरानंद—ये महात्मा खेडीघाट पर रहते थे। योग की क्रियाएं अच्छी तरह जानते थे। स्वर्गवास सन १९२८ मे हुआ था।

(१४) स्वामी रामानंदजी—(जन्म सं. १९२२)—मकडाई के रहनेवाले थे। ये हंडिया में रहते थे। संवत् १९८५ में नर्मदाजी का मन्दिर वनवाया था। आपके आश्रम में ५ विद्यार्थी अन्न-वस्त्र पाते है तथा यात्रियो को सदावर्त दिया जाता है।

कृष्णनंदजी महाराज (रंकनाथजी) नजरपुरा (होशंगावाद) जिले के रहने वाले थे। उनका देहान्त संवत् १९३२ में ८४ वर्ष की अवस्था मे हुआ था। वे एक अच्छे संत थे। उनकी कुछ रचनाएं प्रकाशित हुई है। उसी तरह रहटगांव (जिला होशंगावाद में) दीनदास महाराज हो गये है। उनका नाम सदाशिव जो रंकनाथ के शिष्य हैं। मंडला के हठयोगी सीताराम वावा प्रसिद्ध हैं, जो कभी-कभी नागपुर के निकट रामटेक में भी जाकर रहते है।

यों तो छत्तीसगढ में तो अनेकों संतों का पता हमें लगा है, जिनमें से कई तो वडे वडे मठाधीश है। केवल रायपुर में ही वैरागियो के ही चार मठ हैं, जिनकी गद्दी पर अच्छे संत हुए हैं। इनके अलावा दुर्ग, विलासपुर और रायपुर जिलों में संन्यासी और वैरागियों के पुरातन मठ है, जो अच्छे मालगुजार और साहूकार भी हैं। स्थल-संकोचवश हम परिचय देने में असमर्थ है।

नागपुर के संत—भोंसला काल के वंगाजी भुरे नागपुर के प्रमुख संत माने जाते थे। उनका स्वर्गवास सन् १८२९ में हुआ था। वे गणपति के भक्त थे। दूसरे संत मृत्युंजय कोकिल थे। जिनके शिष्य सीताराम शास्त्री और गजानन शास्त्री थे। कोकिल जी योग के अच्छे ज्ञाता थे। इसी युग के आयाचित महाराज थे जिनका प्रसिद्ध मठ नागपुर

में ह। इसी भान्ति भोसलाकालीन नागपुर के सत तेली बुआ, अवधूत बुवा, डोकेबुवा, गजानन साल्पेकर, गोपालराव ठमके, गणेवा महाराज, मुदाम बुवा, निकालस बुवा, विश्वभर आवा, दादाजी साधु, गोपालजी हरदास, नानाजी महाराज दक्षिणामूर्ति थे। उसी तरह नागपुर के समीप मोहपा के तुकाराम बुआ, पौनार के केजाजी महाराज, मोहगाव के केशवदासजी और भडारा के देवबाबा प्रमुख सत रहते थे। उसी तरह २० वी सदी में भी नागपुर के जामदार बुआ और बाबा ताजुद्दीन प्रसिद्ध सत हो गये हैं।

प्रदेश के कुछ देवता—साधु-सतो की समाधिया, पीरो की मजार और सतियो के चौरा का पूजन सवत्र होता है, किन्तु लोगाने अन्य ग्राम देवता भी निर्माण कर दिय ह। सागर और जबलपुर जिले की ओर खेरमाता, दूल्हादेव, मिडोइया, नागदेव, मगतदेव, गोंडबाबा और हरदौल लाला पूजे जाते हैं। देहाती स्त्रिया इनकी कहानिया भी सुनाती ह। खेरमाता प्रत्येक गाव में इसलिये स्थापित है कि वे रोगो से लोगो को बचाती है। हरदौल लाला हैजे से बचाते और विवाह में आधी-पानी को आने से रोकते ही हैं। हरदौल लाला जुझारसिंह बुन्देला ओडछावाले का छोटा भाई था। जिस समय में युद्ध के कारण जुझारसिंह चौरागढ में फसा था—तब घर का प्रबध भ्राता हरदौल को सौंप गया था। उसकी भावज उसे चाहती थी। जुझारसिंह को शक हो गया और उसने रानी के द्वारा हरदौल को विष दिलवाया, जिससे वह मर गया और लोग उसे पूजने लगे। दूल्हादेव भी विवाह और अन्य कार्यों में सहायता देते हैं। मिडोइया खेतो की मेडो पर रहते और खेत की उपजको नुकसान नहीं होने देते। घटोइया नदी-नालो के घाटो पर डटे रहते हैं। उनको नई दुलहनें ससुराल जाते समय सुपारी न चढायें तो बीमार हो जाय। नागदेव नागपचमी को पूजे जाते हैं। कई ग्रामो में बाघ द्वारा मृत्यु-प्राप्त गोंड बाबा मानता कराते हैं। उन्हें न मानो तो जगल म शेर का डर बना रहता ह। मगतदेव भी बुन्देला थे उन्होने बादशाही डेरा लाघ कर चदेरी के तालमें स्त्रियो की भुजलिया सिरवा दी थी, परन्तु इस काम के करने में व मारे गये। वे देव बन गये, अब अन्य देवो के समान पूजा लेते ह और भी कई स्थानीय देव-देवी ह, जो अपनी पूजा किसी न किसी प्रकार करा लेते हैं।

कालिका देवी तो सवत्र विराजमान है। औरते उन्ह गा-गाकर मनाती है।

रुप देख विकराल काप दसो दिगपाल।
अब ह्वै हैं कौन हाल—कौन नहीं घबरान।
माई काल्का की जय—माई कालिका की जय।
माई हूजे अब शात, कहे लीजे बलिदान।

हनुमान तो सकट मोचन ही कहाते हैं—इसलिये प्रत्येक गाव में तो उनकी पूजा होती ही है।

छिन्दवाडा जिला में अहीरो के देवता "मालबाबा" ह। लोग दीवाली में उनका पूजन करते हैं। अन्यत्र इस देवता का नाम "गुरैया बाबा" ह। भैंसासुर, बाघदेव, हुलेरा, मटिया अनेक नाशक, त्रासक देवो की लोग मानता करते ह और शीतला माता को मनाकर लोग शीतला का प्रकोप शात करते हैं। छत्तीसगढ में भी अनेक देवता ह—जिनमें ठाकुरदेव, बूढादेव, भसासुर, सेहटादेव प्रमुख है। मराठी मध्यप्रदेश में कुछ देवताओ के नाम विचित्र से सुनायी देते हैं—भसासुर, बाघदेव, हुलेरा, मटिया, खडोबा, म्हसोबा, होलेरादेव, आदि अनेक देवताओ की मनौती ग्रामवासी करते हैं। होली के समयमेघनाथ की पूजा होती है। उसका प्रभाव सतान प्राप्ति के लिये किया जाता है। एक स्तभ गाडकर उसपर झुलाने के लिये एक लकडी लगायी जाती है। वदना करनेवाले को रस्सी से छाती के पास बाधते है और उस ऊपर की लकडी मे हिलगाकर ७ बार घुमाते हैं। इसका दूसरा नाम गल ह। अरण्यवासियो के क्षेत्रो में भी सैकडा देवी-देवताओका पूजन होता है। अधिकाशत कई जिलो में हिन्दू और आरण्यक पूजन विधान की खिचडी हो गयी है, जिससे सवसाधारण ग्रामीणजन एक दूसरे के देवी-देवता पूजने लगे हैं। यह भी देखा जाता है कि नये-नये देवता भी पैदा होते जाते हैं और कुछ पुराने लुप्त होते जाते हैं।

ललित कला

श्री गणेशराम मिश्र

मानव ने जब से होश सम्हाला और जो कुछ भी अपना विकास किया वह प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित होकर ही किया। प्रकृति ही पुरुष की गुरु बनी और जननी भी। प्रकृति की गोद में खेल कर मानव ने उसकी अनुपम छटा से विमोहित होकर सौन्दर्य उपासना सीखी।

प्रारंभ मे शरीरावयव के संकेत ही भाव-प्रदर्शन के साधन थे। उस के बाद साकेतिक खरोष्टी लिपि का—चित्र लिपि का—आश्रय लिया गया और शनैः शनैः पाषाण ही उस चित्र-लिपि को स्थायी रूप देनेवाला साधन बन गया। विश्व के वन-गव्हर या कन्दरायें इस के प्रत्यक्ष प्रमाण है।

कालान्तर से चित्र-लिपि के दो रूप हो गये। एक लिपि, दूसरी मूर्तिकारी। वही साकेतिक लिपि आगे सुसंस्कृत रूप धारण कर लेने पर संस्कृत कहलाई। और वर्णमाला कहलायी—देव नागरी लिपि। भाषा-लिपि का यह विकास उत्तर ध्रुवीय आदि आर्यो के अतिशय शीत के कारण नीचे उतरने के पहिले आवश्य हो गया होगा। अन्यथा सस्कृत देवभाषा को विश्वभाषा-जननी बनने का श्रेय प्राप्त होना कैसे संभव हो सकता ?

आदि आर्य—देव जन—सुसंस्कृत लिपि, भाषा, और कला विज्ञ हो जाने के बाद ही उत्तर ध्रुव से रशिया—ऋषिया या ऋषि प्रदेश होकर नीचे उतरे और संसार के निवास योग्य समस्त भागों मे फैल गये। सब ने अपने अपने ढग से उन्नति की और कालान्तर मे सब बातों मे अपनी सुविधानुसार तथा स्थान विशेष के वातावरणानुसार परिवर्तन करते गये। कंदराओ की चित्र-लिपियो की सादृश्य ही इस का एक अटल प्रमाण है। आगे जैसे-जैसे खोज होती जायगी वैसे-वैसे आर्य संस्कृति-परम्परा की श्रृंखला का पता लगता चला जायगा।

इन आदि आर्य कलाकारो ने एक ओर तो साकेतिक लिपि के आधार पर चित्र संक्षिप्तीकरण करते-करते लिपि का आविष्कार किया और दूसरी ओर सांकेतिक लिपि का सुसंस्कृत वृद्धीकरण करते-करते मूर्तिकला तथा चित्र कला को जन्म दिया।

श्रृंखला-बद्ध लिखित आधुनिक ऐतिहासिक आधार पर कला विकास का, एक दूसरे विकासक्रम का भी पता लगता है और उसका आधार प्रकृति ही है। कला के नाते आदि-मानव ने सौन्दर्यमयी परिवर्तनशील प्रकृति के भिन्न-भिन्न मनमोहक परिधानो को लक्षित कर माधुर्य पान करना सीखा, वर्षा में धरणी का चोला बदलना, जगह जगह हरीतिमा की छटा का छा जाना, वसत और शरद मे लताओं तथा वृक्षो का रग-विरगे वस्त्र धारण करना, बहुरगी पुष्पों से लदकर झूमना और फिर फलों से लदकर सुन्दरता की पराकाष्टा करना। वैसे ही अंतरिक्ष का प्रात. सायं मनमोहक श्रृंगार करना आदि बातो ने मानव को आनंदातिरेक से विव्हल कर डाला। इस प्रकार इन सब मनमोहक वातावरण के मध्य रह कर मानव-मन भी सौदर्यमय हो जाने के लिये मचलने लगा।

मानव ने अज्ञानता के कारण नहीं, सुन्दरता की मादक तथा उत्कट-भावना के कारण अपने शरीरको क्षत-विक्षत कर सुन्दर बनना प्रारम्भ कर दिया। पर यह विधान उसे बहुत महगा तथा कष्टदायक पडा, कष्ट से बचने के लिय रंगो का प्रयोग प्रारम्भ किया गया और ताजियो के शेरो से भी कई दर्जे उत्कृष्ट चित्रकारी से उन्हो ने अपने शरीरोको रंगना प्रारम्भ कर दिया। पर यह सुन्दरता का साधन भी स्थायी न बन सका। वर्षा के कारण उनका यह साधन भी असफल सिद्ध हुवा।

इसके बाद रंगो को शरीर पर स्थायी रखे जाने के लिये पहिली शरीर विक्षत कला के आधार पर कम कष्ट साध्य पर स्थायी रंग प्रथा का याने गुदने की कला का जन्म हुवा। यह गुदना गूदने की कला अत्यंत लोकप्रिय और आजन्म स्थायी सिद्ध हुई।

यह शरीर को सुन्दरता युक्त बनाने की स्थायी रंगीन प्रथा अत्यंत प्राचीनतम प्रथा है। यह खास कर एशिया के देश मे स्त्रियों मे और अन्य देशों म पुरुषों मे भी आज भी विद्यमान है।

आधुनिक काल में तो इसको वैज्ञानिक आधार पर बड़े अच्छे तरीके से अपनाया जा रहा है और विश्व में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में कई जगह इस का अभी भी प्रचार ज्यादा है।

आदिकालिक यह गूदन कला (टेटोइंग) रचना के सिद्धान्तों पर पूर्णत आधारित रही है। तुलनात्मक सिद्धान्त तो इस का प्राण ही है। ज्यामिति की सर्पाकार वर्तुल रेखाओं के प्रयोग की ही इस में प्रधानता रही है। वनस्पतियों से निकाले गये केवल लाल, नीले, हरे रंग ही इस में काम में लाये जाते है।

रचना के कौन-कौन से सिद्धान्त उन की गूदन कला में निहत है यह वे पारिभाषिक शब्दो द्वारा प्रकट न कर सकते रहे हो परन्तु वे इस व्यापक सौन्दर्य के सिद्धान्तो का प्रयोग करते अवश्य थे। वे उन सिद्धान्तो से अनभिज्ञ नहीं थे।

इस बात के प्रमाण स्वरूप भी आजकल के कलाकारो की कृतियो को लिया जा सकता है। हमारे कई आधुनिक कलाकार निरक्षर भले ही रहते है, परन्तु वे कला के अनेकानेक सिद्धान्तो का, अपने अनुभव के आधार पर प्रयोग अवश्य करते रहते है।

जिस प्रकार एक ओर इस गूदने की कला का विकास हुवा उसी प्रकार दूसरी ओर सांकेतिक चित्राकन का विकास तक्षण कला के रूप में बढ़ा।

आदि कालिक विश्व के खोज कर निकाले गये चित्रो व मूर्तियो पर से ऐसा ही प्रतीत होता है कि मूल रूप में करीब करीब सब रचनाए एक ही शैली की है, यद्यपि उसी काल की भारतीय चित्र व मूर्तिया कुछ विशेषता रखती हैं और इस से प्रतीत होता है कि भारतीयो ने बहुत द्रुत गति से अपनी उन्नति की थी।

भारतीय चित्र रचना क्रम—आर्यकलाकारो मे से अंतरमुखी दृष्टि के आधार पर किसी ने मसी और लेखनी द्वारा, किसीने लौह लेखनी द्वारा तथा किसी ने केश लेखनी या तूलिका द्वारा सत्य, शिव, सुन्दरम के साकार दर्शन कराये।

कला का प्रचार आस्तिक धर्मभावना के आधार पर ही ज्यादा हुवा। आराधना के यत्नो में कवि, चित्रकार और शिल्पी अपने मानस चक्षुओ से अपने अपने आराध्य देव का या मनोगत प्रस्फुटित भावो का सुन्दरतम रूप भौतिक साधनों द्वारा या माध्यमो द्वारा करता चला आ रहा है और करता चला जायगा। जो जितना ध्यानस्थ होकर अपने आंतरिक भावो को, तीव्र वेदनाओ को साकार करता है वह उतना ही सुमधुर मंजुल साकार रूप उपस्थित कर सकता है।

परन्तु जो कलाकार आस्तिक नही रहता और केवलमात्र प्रकृति उपासक रहता है या भौतिकवादी होता है, उसकी कला भी बाहरी प्राकृतिक साधनो तथा उपकरणो तक ही सीमित रह जाती है। उसको पहिले साधन और आधार उपस्थित करना पडता है। परन्तु यह बात पौर्वात्य कलाकारो के कार्य-कलापो से बिलकुल विपरीत प्रतीत होती है।

अथ कलाकार बाहर के उपकरण अथवा साधन संजोता नही बैठता। वह तो बाह्याडंबर के कारण अपने चर्म-चक्षु बन्द कर हृदय-दीपक संजोकर मनोगत भाव को अन्तरभूमि पर ही प्रथम अंकित करता है। और पाश्चात्य कलाकार मनो-भावानुकूल भौतिक सरंजाम अपने विस्फारित नेत्रो से संकलन किये हुए उपकरणो को व्यवस्थित कर अपना कार्य प्रारम्भ करता है।

पौर्वात्य कलाकार एकान्त में चक्षु बन्द कर भावात्मक तथा रागात्मक मनोगत भावो को प्रथम अन्तर में साकार कर लेता है और पाश्चात्य कलाकार साधन जुटाने के लिये इधर-उधर दौडधूप करने लगता है।

पौर्वात्य कलाकार चिंतन में ज्यादा समय लगाता है और पाश्चात्य कलाकार माडल ढूढने में तथा अनुकूल वातावरण को उपस्थित करने में ज्यादा समय तक व्यस्त रहता है।

पहिला कलाकार कार्य प्रारम्भ कर लोकोत्तर भाव प्रधानता के पीछे पडा रहता है और दूसरा सादृश्य या तद्रूपता के पीछे। और इस झझट में वह मनोगत भावो से दूर हट जाता है।

पहिला अपनी उडान अथवा काल्पनिकतामें अलौकिक सौंदर्य, अटल सत्यता को साकार करने में मग्न हो जाता है। दूसरा सांसारिक सुन्दरता की उत्कृष्टता तथा प्रकाशजन्य परिणामो के भंवर में फँस कर चक्कर काटता रहता है।

शैली के विचार से पहिला सुन्दर वक्र रेखाओ को, जो सुन्दरता की जननी समझी जाती है, प्रधानता देता है। दूसरा सामने दिखने वाले पिंडों को—पदार्थों को या माडल को—तथा उस के ऊपर प्रस्फुटित होने वाले छाया प्रकाश के असर को प्रधानता देता है।

अपने ढंग की दोनों पद्धतियो मे अनुपम, श्रेष्ठ तथा प्रभावोत्पादक और उपादेय कौन सी है इस बात का निर्णय विज्ञ पाठक ही करे। हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ काल से वक्र रेखाओं के सौंदर्य तथा लालित्य को भारत के सिवाय अन्यत्र भी कलाकारो द्वारा प्रधानता दी जाने लगी है। और आर्य वक्र रेखांकन के लालित्य तथा महत्वपूर्ण भावाव्यक्ति की प्रतिष्ठा होने लगी है।

आर्य कलाकारो ने रागात्मक रचना (रिदिम) और रचनात्मक रूप (कनवेन्शनल फार्म) को इतनी प्रधानता आदि काल से दे रखी है कि पत्र, पुष्प, प्राणी की रचना (कम्पोजिशन) की तो बात ही अलग है पर मानवीय आकृति-युक्त रचनाये भी रागात्मक शैली से ओत-प्रोत है।

ये रचनात्मक रूप पुनरुक्तियो के लिये, रागात्मकता के लिये, कलाकारों के अनिवार्य प्रमुख सिद्धात है। अन्यथा सौन्दर्य और रागात्मकता सध ही नहीं सकती। यही कारण है कि लोकोत्तर मानव (देव) आकृतियो के प्रेमी आर्य-कलाकारो ने ये कला सिद्धात अपनी प्राचीन कला शैली में ओत प्रोत कर दिये थे। इसी कारण उन की प्रचीनतम कला कृतियां आधुनिक काल मे भी, फिर चाहे वे मूर्ति रूप मे हो चाहे चित्र रूप मे अथवा रचना (डिझाइन) रूप में हों, खरी उतरती है। अनुपम, अद्वितीय और लोकोत्तर प्रतीत होती है।

मध्यप्रदेश का शिल्प-सौन्दर्य

श्री व्योहार राममनोहर सिंह

प्राचीन भारत के महान शिल्पयोगियों की चरम शिल्प-साधना, असाधारण सृजन-क्षमता एवं रूप-दक्षता का परिचय पर्वत गात्र में खोदित गुहा मंदिरों, भित्ति-चित्रों, मूर्तियों तथा उत्तुंग शिखरयुक्त मंदिरों के रूप में आज उपलब्ध है। जड़ पाषाण में शिल्पी ने ध्यान के द्वारा रूप की उपलब्धि करके अमूर्त भावना को मूर्त रूप प्रदान किया है। उसके स्पर्श से पत्थर में प्राण और अभिनव-सौंदर्य स्पंदित हो उठा है। मूर्ति अथवा चित्र में प्राणों के छंदात्मक स्पंदन और चेतना का प्रकाशन ही कला की श्रेष्ठता का परिचायक है। भारतीय शिल्पी शिल्प-साधना को ही जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति का साधन मानते थे। ऐतरेय ब्राम्हण के अनुसार "छन्दोमयमात्मन कुरुते"—शिल्पी शिल्प के द्वारा ही स्वतः को छन्दोमय बनाता है। भारतीय शिल्प, कलाकारों की महान साधना और सौन्दर्य-भावना से छन्दोमय है, मुखरित है।

भारतवर्ष की शिल्प संस्कृति विराट और गरिमामयी है। विश्व की श्रेष्ठतम कलाकृतियों में इसका उन्नत स्थान है। अन्य प्रदेशों की तरह मध्यप्रदेश के प्राचीन शिल्पियों ने भी इस शिल्प-वैभव के निर्माण में अपूर्व योगदान किया है। प्रागैतिहासिक युग से लेकर ईसा की बारहवीं शताब्दि तक की जो कलाकृतियां उपलब्ध हुई हैं उनसे सिद्ध होता है कि पुरातत्व और कलात्मक सृष्टि की दृष्टि से यह प्रदेश ऐश्वर्यमण्डित है। रायगढ़ और सरगुजा रियासत में स्थित सिंघनपुर और जोगीमारा की प्रागैतिहासिक गुफाओं में भारतीय भित्ति चित्रों के प्राचीनतम अवशेष उपलब्ध हुए हैं जो कि इतिहास और कला की अमूल्य सम्पत्ति हैं। भारतीय स्थापत्य में ब्राम्हण शैली के मंदिर का निर्माण सर्वप्रथम गुप्तयुग में हुआ। गुप्त शैली पर निर्मित तिगवा का मंदिर पूर्वकालीन स्थापत्य के उद्भव की कहानी कह रहा है। गुप्त युग के बाद आठवीं शती की जो अनुपम कला-कृतियां प्राप्त हुई हैं उनमें सिरपुर और भद्रावती का नाम उल्लेखनीय है। सिरपुर की बौद्धकालीन धातु प्रतिमाओं और ब्राम्हण शैली के लक्ष्मण मंदिर में मनुष्य की श्रेष्ठ कलात्मक अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। सिरपुर के कलाकारों को भारत के सिद्धहस्त और उन्नत शिल्पियों की श्रेणी में रखा जा सकता है। नवमी शती से बारहवीं शती तक चेदि प्रदेश के प्रतापी शासक हैहय-वंशीय सम्राटों के राज्य-काल में निर्मित कलाकारों की शत-शत कृतियों से मध्यप्रदेश का कोना-कोना प्लावित है। यह शिल्प-सम्पदा इतनी प्रचुर संख्या में उपलब्ध है कि कल्चुरि-कलाकार की अद्भुत सृजन-क्षमता पर आश्चर्य होता है। त्रिपुरी (तेवर), भेड़ाघाट, बिलहरी आदि स्थानों में हमें कल्चुरि-भास्कर्य के जो नमूने मिलते हैं वे इस प्रदेश के महान शिल्प-वैभव को सदियों तक समृद्धिशाली और अमर बनाये रखेंगे।

भारत के प्राचीन साहित्य एवं शिल्प-शास्त्रों में भित्ति-चित्रों का उल्लेख है। ईसा-पूर्व दूसरी व तीसरी शताब्दि के बौद्ध-पाली ग्रंथों में, मगध एवं कोशल देश के राजाओं के आमोद-गृहों में भित्ति-चित्रों एवं नाना अलंकरणों से चित्रित मण्डपों का वर्णन किया गया है। पांचवीं तथा छठवीं शताब्दि के चीनी यात्रियों के वर्णन से इसकी पुष्टि होती है। श्रीकुमार रचित "शिल्परत्न", सोमेश्वर रचित "अभिलषितार्थ चिन्तामणि", मार्कण्डेय रचित "विष्णुधर्मोत्तरम्" तथा बसप्पनायक कृत "शिव तत्व रत्नाकर" आदि ग्रंथों में शिल्प-विषयक अत्यंत मूल्यवान सामग्री मिलती है। उस समय शत-शत प्रासाद एवं देव-स्थान चित्रकारों की तूलिका के स्पर्श से छन्दित हो उठे थे। इस अमूल्य निधि और परम्परा की अत्यंत अल्प कृतियां ही आज उपलब्ध हैं।

मध्यप्रदेश में जो प्राचीनतम भित्ति चित्र उपलब्ध हैं, वे प्रागैतिहासिक काल के मानव की कलात्मक अभिव्यक्ति और प्रतिभा के उत्तम निदर्शन हैं। सिंघनपुर, जोगीमारा, होशंगाबाद की आदमगढ़ गुहा तथा पचमढ़ी की बनिया-बेरी गुफाओं में भारतीय भित्ति चित्रों के जन्म की गाथा छिपी हुई है। अधिकांश चित्र आखेट विषयक हैं। जंगली पशुओं की क्षणिक भंगिमाओं के संयमित एवं यथार्थ रेखांकन की आश्चर्यजनक क्षमता का उद्घाटन इन चित्रों में मिलता है। केवल गेरुए, पीले और काले रंगों के सादे प्रयोग से ही प्रागैतिहासिक चित्रकार चित्त की अव्यक्त भावनाओं को व्यक्त करने में सफल हुआ है। आन्तरिक उल्लास के द्योतक इन चित्रों में जो सरलता, स्वच्छन्दता और वेग दिख पड़ता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सूक्ष्म प्रकृति पर्यवेक्षण एवं स्वतः सिद्ध आवेग होने के कारण चित्रकार अल्पतम स्पर्शों द्वारा अगाध भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सका है।

रायगढ के सिंघनपुर ग्राम के पास मांद नदी के पूर्व की ओर फैली उपत्यका में खोदित गुफाओं में प्रागैतिहासिक चित्र प्राप्त हुए हैं। गेरुए तथा पीले रंग से सूखी रेखाओं द्वारा रहस्यमयी मानव आकृतियों एवं वन्य-पशुओं का अंकन पत्थर की दीवार पर किया गया है। कही-कही पर ज्यामितिक आकृतियां भी अंकित है, जिनका अभिप्राय लगाना कठिन है। हिरन, हाथी और खरगोश आदि पशुओं की स्वच्छन्द स्वाभाविक गति का वास्तविक चित्रण उस्तादी और तत्परता से किया गया है। एक स्थान पर आखेट का दृश्य अंकित है जिसमे विराट भैंसे को घेरकर शिकारी उसे मारने मे तत्पर है। उसी दीवाल पर एक और प्रभावोत्पादक चित्र है। विशालकाय भैंसा तीरो-भालों से बुरी तरह घायल होकर मृत्यु की यातना से तड़प रहा है। अधिकाश चित्र मिट से गये है, अत. पहचानना मुश्किल है। फ्रान्स तथा स्पेन की अल्टामीरा आदि गुहाओ के प्रसिद्ध चित्रों के साथ सिंघनपुर के गुहा-चित्रो की तुलना की जा सकती है। इन चित्रो के निर्माण काल का पता लगाना अत्यंत कठिन है। अनुमानत. ईसा-पूर्व पांचवी शती के पूर्व ही ये चित्रित किये गये थे।

मध्यप्रदेश की महादेव पर्वत श्रेणियो मे प्रागैतिहासिक गुहा-चित्रो से युक्त अनेको स्थान है, जिनका केन्द्र पचमढ़ी है। पचमढी से पाच मील के घेरे मे डोरोथी डीप, माउन्ट रोजा, महादेव, जम्बू द्वीप, माडोदेव, वनिया वेरी और धुआधार आदि स्थानो मे मूल्यवान गुहाचित्र उपलब्ध हुए है। चित्रों का विषय है—वन्य पशुओं का आखेट, मधु-मक्खियो के छत्तो से मधु संचय, धनुष-वाणो से युक्त दो दलो का संघर्ष इत्यादि। इसके अलावा ग्रामीण जीवन संबंधी चित्र जैसे ग्वालों सहित गायों की कतारे, गोशाला, झोपड़ियो इत्यादि के चित्र भी मिलते है। वन्य और घरेलू पशुओं मे हाथी, गुलवाघ, शेर, रीछ, जंगली सुअर, हिरन और मकर तथा घोडे, वकरे एवं कही-कही कुत्तों का भी चित्रण है। डोरोथी डीप गुफा का एक चित्र विनोद प्रियता का दुर्लभ उदाहरण है। एक वन्दर पिछले पैरो पर खड़ा होकर वासुरी वजा रहा है, पास ही छोटीसी खाट पर मनुष्य लेटा हुआ वांसुरी की ताल पर दोनो हाथो से ताली वजा रहा है। वनिया-वेरी गुफा मे एक वड़े धन-चिन्हात्मक आकृति को घेरे हुए-पुरुषो का समूह खड़ा है जो कि हाथ में छत्ते जैसी वस्तु थामे हुए हैं।

सरगुजा रियासत स्थित रामगढ़ पहाड़ी की जोगीमारा गुफाओ मे भी पुरातनकालीन चित्र मिले है। अधिकांश चित्र गेरुए रंग से चित्रित है, कही-कही कपडो तथा आखो मे सफेद और वालों मे काले रगो का प्रयोग किया गया है। ये चित्र तत्कालीन सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते है। अकन पद्धति एवं विपयों की विभिन्नता ध्यान आकर्पित करती है। एक स्थान पर वृक्ष के नीचे वैठा हुआ पुरुप चित्रित है, वाये तरफ नृत्यरता कन्याओ एवं सगीत वादको का दल है, दाहिनी ओर से जलूस जा रहा है जिसमे हाथी भी है। एक और दृश्य उल्लेखनीय है—एक वैठे हुए पुरुप के पास तीन वस्त्रावृत पुरुप अर्दली की तरह खड़े है, इस तरह अर्दली सहित दो और पुरुप वैठे हुए है। निम्न भाग मे चत्याकार खिड़की युक्त घर है, जिसके सम्मुख एक हाथी तथा तीन वस्त्रावृत पुरुष खड़े है। इस समूह के पास तीन अश्वों से युक्त छत्र सहित रथ दर्शित किया गया है। दीवाल पर स्थान-स्थान पर ज्यामितिक अलकरणो का सुन्दर चित्रण है। कही-कही मछली और मकराकृति की पुनरावृत्ति की गई है। पुराने चित्रो के ऊपर वाद मे वनाये गये चित्र भी मिलते है। प्रस्तुत चित्रों की कथावस्तु का अनुमान लगाना कठिन है एवं किसी तत्कालीन धर्म से इनका संवंध द्विविधाजनक है। गुफा मे प्राप्त अभिलेख की लिपि एवं चित्रो की अंकन-शैली से, जिसका भरहुत की मूर्तियों से कुछ साम्य है, हम इन चित्रो का समय निर्धारित कर सकते है। डा ब्लाख इसे ईसा-पूर्व तीसरी शती का मानते है जवकि विंसेन्ट स्मिथ आदि कुछ पुरातत्वज्ञ इन्हे दूसरी शती ईसा-पूर्व मे निर्मित मानते है।

प्रागैतिहासिक युग से लेकर ईसा की पान्चवी शती तक हमे कोई विशिष्ट कलाकृति उपलव्ध नही हुई है। मध्यप्रदेश मे प्राप्य स्थापत्य-कला के अवशेषो में पाचवी शताब्दी मे निर्मित तिगवां का गुप्तकालीन मदिर सव से प्राचीन है। गुप्त-काल से ही भारत मे व्राम्हण शैली के मदिर-स्थापत्य का विकास आरम्भ हुआ। सपाट छत, चौकोर गर्भगृह एव सिंहो से सुशोभित वोधिका वाले सुदृढ स्तंभों से युक्त मुख-मण्डप, यही पूर्वकालीन गुप्तशैली के मंदिरो की विशिष्टता है। ये मदिर निर्माण की दृष्टि से वौद्धयुगीन गुहा मन्दिर का स्मरण दिलाते है। तिगवा के अलावा पूर्वकालीन गुप्त शैली के मदिर सांची, एरण, और उदयगिरी मे भी पाये गये है। मध्यप्रदेश के स्थापत्य मे तिगवां के मदिर का स्थान महत्व-पूर्ण है। गर्भगृह में नृसिंह मूर्ति स्थापित है। प्रवेश-द्वार की चौखट के ऊपरी दोनो कोनो पर वाहनो पर आरूढ़ गगा और यमुना की मूर्तिया उत्कीर्ण है। यहा वौद्ध तोरणो मे प्रयुक्त वृक्षिका यक्षिणी के प्रतीक का प्रभाव स्पष्ट दिखता है, किन्तु हिन्दू शैली पर निर्मित होने के कारण इनके आकार और विपय मे परिवर्तन आ गया। यहां वृक्षिका (शाल भजिका) का स्थान गगा-यमुना की मूर्तियों ने ले लिया है, यह प्रयोग हमे केवल पूर्वकालीन गुप्त शैली के मदिरो में मिलता है। उत्तरकालीन मंदिरो मे गगा-यमुना की मूर्तिया चौखट पर देहली के पास वनाई जाने लगी। मकर पर आरूढ गगा की

मूर्ति लालित्य पूर्ण है। गंगा की त्रिभंगी भंगिमा, अंग-सौष्ठव तथा आंखों की सजीवता अद्भुत छंदात्मकता की परिचायक है। अशोक-पुष्प और वल्लरियों का अंकन शिल्पी के प्रकृति-प्रेम और आलंकारिक प्रतिभा का श्रेष्ठ निदर्शन है। मण्डप की दीवाल पर दशभुजी चण्डी और शेषशायी विष्णु की मूर्तियां हैं। मण्डप चार सुदृढ़ स्तम्भों से युक्त है जिनके मस्तक पर बैठे हुए सिंह उत्कीर्णित हैं। बाधिका पर सिंहों के प्रतीक का प्रयोग प्रसिद्ध अशोक-स्तम्भों से प्रभावित है।

पर्वत गात्र में खनित गुहा मंदिरों के बाद स्थापत्य-कला का सर्वोच्च विकास विराट ऐश्वर्य-मण्डित शिखरों से युक्त मंदिरों के रूप में साकार हुआ जो कि इस प्रदेश के आध्यात्मिक केन्द्र थे एवं यहीं से धार्मिक व सामाजिक जीवन की व्यवस्था होती थी। देवताओं के आवास-स्थान मेरु पर्वत एवं हिमालय के उत्तुंग पर्वत शिखरों की कल्पना आठवीं शताब्दी में स्थापित हुई। महानदी के तट पर स्थित रायपुर जिले के अन्तर्गत सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर भारत के श्रेष्ठ कलात्मक सौंदर्य एवं वास्तुकला का सुष्ठुतम प्रतीक है। आठवीं शती में महाराज हर्षवर्धन के राज्यकाल में इस मंदिर का निर्माण हुआ था। भारत में ईंट द्वारा निर्मित मंदिरों में इसका प्रमुख स्थान है।

लक्ष्मण मंदिर के शिखर की मौलिक आकृति अधिक नष्ट नहीं हुई है। मंदिर के सम्मुख स्तम्भों से युक्त मण्डप के भग्नावशेष हैं जो बाद में निर्मित प्रतीत होते हैं। सारा मंदिर विविध प्रकार के कलात्मक अलंकरणों से सुसज्जित है। शिखर अनेक खण्डों में विभाजित है, मध्य में स्थापत्यात्मक काष्ठकार्य मण्डित विराट चैत्याकार गवाक्ष है। मण्डन-परक रचना, जालियों एवं पूर्ण सतर्कता से व्यवस्थित निम्नोन्नत अलंकरणों के कारण प्रकाश और छाया से अपूर्व एवं प्रभावोत्पादक सौंदर्य की सृष्टि होती है। प्रायः सभी अलंकरण दीवाल बनाने के बाद ही खोदे गये हैं। ईंटों के जोड़ों पर इस होशियारी और सफाई से खुदाई की गई है कि प्रतीत होता है जैसे सम्पूर्ण मंदिर एक ही वस्तु का बना हो। सतह पर आश्चर्यजनक चिकनाहट की गई है। पूर्व-मध्यकालीन मंदिरों की तरह प्रवेश-द्वार के ऊपर त्रिकोणाकार गवाक्ष है। प्रवेश-द्वार पर लाल पत्थर का बना हुआ सुन्दर तोरण मंदिर के सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है। तोरण पर वाराह, वामन, नृसिंह, राम आदि अवतारों एवं सूक्ष्म काष्ठकार्य सहित शेषशायी विष्णु की प्रतिमाएँ उत्कीर्णित हैं। मंदिर के स्थपति गण वास्तु-कला में पूर्ण निष्णात, उन्नत एवं अनुभवी थे। लक्ष्मण देवालय का सुरुचि पूर्ण निर्माण, आलंकारिक तत्वों का कलापूर्ण विभाजन और संयोजन स्थपतियों के असाधारण शास्त्रीय-ज्ञान एवं सौन्दर्य-बोध का द्योतक है।

सिरपुर (श्रीपुर) में कुछ काल तक सोमवंशीय राजाओं का प्रभुत्व था जो कि पहले बौद्ध धर्मानुयायी थे किन्तु बाद में शैव हो गये। सिरपुर के आसपास बौद्ध तथा शैव प्रतिमाएं प्रचुरता से उपलब्ध हैं। पत्थरों पर बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं का अंकन कुशलता से किया गया है। गंधेश्वर महादेव के मन्दिर में बौद्ध एवं हिन्दू प्रतिमाओं का अनुपम संग्रह है। बौद्ध मूर्तियों में बुद्ध की भूमि-स्पर्श मुद्रा, अवलोकितेश्वर एवं मार विजय की मूर्तियां अत्यंत सराहनीय हैं। सिरपुर में जो धातु प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं वे सौंदर्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं। पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, स्वर्णादित्य, मैत्रेय तथा बुद्ध के जीवन से सम्बंधित अनेकों धातु प्रतिमाएं भी मिली हैं। प्राप्त धातु प्रतिमाओं में वज्रयान की तारा की मूर्ति मध्यप्रदेश के कलात्मक-सौंदर्य की श्रेष्ठतम प्रतीक है। सुन्दर केश-विन्यास, अंगों के सुडौल-गठन, अन्तर के सौम्यभावों का प्रदर्शन एवं आभूषणों का निर्माण कुशलता से किया गया है जिससे मूर्तिकार की अविश्रांत शिल्प-साधना का परिचय मिलता है। नालंदा और कुर्किहार से प्राप्त धातु मूर्तियों से सिरपुर की प्रतिमाओं का अद्भुत साम्य है। प्रतिमाओं का निर्माण-काल आठवीं या नवमी शताब्दि निर्धारित किया गया है।

मध्यप्रदेश सरकार की ओर से हाल ही में सिरपुर में खुदाई का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ है जिसमें मूल्यवान और दुर्लभ पुरातत्व सामग्री प्राप्त हुई है। प्राप्त सामग्री से सिद्ध होता है कि आठवीं शताब्दि में सिरपुर उन्नत शिल्प-कला का केन्द्र था। आनन्द प्रभ भिक्षु द्वारा निर्मित एक विशाल बौद्ध मठ प्राप्त हुआ है जिसमें तत्कालीन दैनिक जीवन में प्रयोग होनेवाली अनेकों वस्तुएं मिली हैं। मठ के द्वार पर गंगा की आदमकद मूर्ति है। आनन्दप्रभ भिक्षु द्वारा महाशिव गुप्त बालार्जुन के राज्यकाल में लगाया हुआ आठवीं शताब्दि का शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। ईंटों से निर्मित मठ में प्राप्त भगवान बुद्ध, यक्ष, कुबेर आदि की मूर्तियां तथा धातु प्रतिमाओं में वज्रपाणि और पद्मपाणि आदि गणों से युक्त भगवान बुद्ध की व्याख्यान मुद्रा की अतीव सुंदर प्रतिमा उल्लेखनीय है। भगवान बुद्ध की भूमि-स्पर्श मुद्रा में स्थित विशाल मूर्ति असाधारण है। महिषासुर मर्दिनी, गणेश एवं शिव-पार्वती की ग्यारहवीं शताब्दि की शैव मूर्तियां भी खुदाई में उपलब्ध हुई हैं।

चांदा जिले में वरोरा से आठ मील पर भादक (भद्रावती) स्थित है जो बौद्ध, जैन, और हिन्दू मास्कृत्य का अनुपम संगम स्थल है। भद्रावती में बौद्ध धर्मानुयायी सोमवंशी राजा के राज्यकाल में सौ संघाराम थे जिनमें चौदह सौ भिक्षु रहते थे। पास ही पहाड़ी पर बीजासन नामक तीन गुफाएं हैं जिनमें बुद्ध भगवान की विशाल प्रतिमाएं खुदी हुई हैं।

यक्ष दम्पति दशवां शती

(शहीद स्मारक जबलपुर मे संग्रहीत)

परिचारिका बारहवी शती

(शहीद स्मारक मे संग्रहीत)

शाल भंजिका — दसवीं शती।
(प्राप्ति स्थान बिलहरी)

उमा महेश्वर — ग्यारहवीं शती
(शहीद स्मारक जबलपुर में संग्रहीत)

वौद्ध पुरातत्व के अनेको मूल्यवान अवशेष यत्र-तत्र विखरे पड़े है। भद्रनाग का मंदिर स्थापत्य का अनुपम उदाहरण है। मंदिर के विमान एवं जंघा पर सूक्ष्म कारुकार्य दर्शनीय है। अनन्तशायी विष्णु और चरणसेविका लक्ष्मी के भावों की व्यंजना सूक्ष्मता से की गई है। मदिर तेरहवी शती का प्रतीत होता है।

नवमी शताब्दि से वारहवी शताब्दि तक चेदि प्रान्त मे कलचुरि राजाओ ने राज्य किया। कलचुरि शासक शिल्प और संस्कृति के उन्नायक थे एव उनके सरक्षण मे स्थापत्य और भास्कर्य कला सर्वोच्चि शिखर पर पहुंच सकी। त्रिपुरी (आधुनिक तेवर) कलचुरि साम्राज्य की राजधानी होने के कारण अपार वैभव का केन्द्र थी। लिंग और पद्म पुराण मे त्रिपुरी का उल्लेख है एव त्रिपुरासुर से भी इसका सबध जोड़ा गया है। त्रिपुरी मे प्राप्त ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दि के सिक्कों से त्रिपुरी का ऐतिहासिक महत्व बढ़ गया है। कलचुरि वश प्रवर्त्तक महाराज कोकल्ल देव प्रथम (सन् ८७५ से ९११) ने त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाकर गौरव प्रदान किया। त्रिपुरी के समीप ही महाराज कर्णदेव ने कर्णावती (करनवेल) नगरी वसाई थी जिसके अवशेषो मे उस काल के अद्वितीय वस्तु एवं शिल्प-वैभव के दर्शन होते है। युवराज देव के समय त्रिपुरी वैभव के शिखर पर थी। कलचुरि कालीन शिल्पकला को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है। (अ) कोकल्ल देव प्रथम के नाती युवराज देव प्रथम (९३० ई), लक्ष्मणराज (९५०-९७० ई) और युवराज देव द्वितीय के राजत्वकाल मे निर्मित गुर्गी, चंद्रेही (विंध्यप्रदेश), बिलहरी, भेड़ाघाट एवं छोटी देवरी के अवशेष ; (ब) कर्णदेव (१०४१–१०७३ ई) के राजत्व-काल मे निर्मित सोहागपुर, अमरकन्टक (विंध्यप्रदेश) और त्रिपुरी (तेवर) के अवशेष ; (स) नरसिंह देव, जयसिह देव और विजयसिंह देव (११५५ से ११८० ई) के राज्यकाल मे निर्मित मूर्तियों के भग्नावशेष।

कलचुरि कालीन भास्कर्य के श्रेष्ठतम उदाहरण और प्रतीक बिलहरी, भेड़ाघाट और तेवर में संग्रहीत हैं। कटनी से नौ मील पर बिलहरी ग्राम मूर्ति-प्राचुर्य के कारण कलाप्रेमियो का ध्यान आकृष्ट करता है। लक्ष्मण सागर नामक विशाल जलाशय के पूर्वी तट पर मध्ययुगीन राजपूत द्वारा निर्मित एक गढी है जिसके पास दशवी एवं ग्यारहवी शती की मूर्तियो का बाहुल्य है। लक्ष्मण सागर कलचुरि सम्राट लक्ष्मण राजद्वारा निर्मित जान पडता है। बिलहरी में प्राप्त शिलालेखो मे नोहला देवी द्वारा निर्मित नौहलेश्वर और युवराज देव द्वारा निर्मित वैद्यनाथ मठों का उल्लेख मिलता है। कामकन्दला नाम से विख्यात, शैव मंदिर के भग्नावशेष बिलहरी की सम्पत्ति है। भग्नावशेषों से प्रतीत होता है कि यह मंदिर वास्तु नैपुण्य का अपूर्व परिचायक था। छ· अलंकरण युक्त दीर्घ स्तंभों से युक्त मुख-मण्डप का एक भाग अभी भी खड़ा है। मदिर का पाद-विन्यास प्रभावशाली है। तोरण पर नटराज एवं गणेश की आकर्षक मूर्तियां हैं। चण्डीमाई, लक्ष्मणसागर, विष्णु वाराह मंदिर आदि स्थानों पर बौद्ध, जैन और ब्राम्हण-शैली की मूर्तियां उच्च कोटि की है। गणेश और उमा-महेश्वर की मूर्तियों मे शिल्पी ने सारी प्रतिभा सचित कर दी है। एक अतीव सुन्दर कमलाकृति विशाल मधुछत्र भी यहां पडा हुआ है जिसे बिलहरी का गौरव कहना उचित होगा। यह मधुछत्र किसी प्राचीन मंदिर की छत को शोभायमान करता रहा होगा। अद्भुत कारुकार्य युक्त यह मधुछत्र शिल्पी की रूप-दक्षता और अतुलनीय आलंकारिक क्षमता का ज्वलत प्रमाण है। विष्णु वाराह मदिर की विशाल वाराह मूर्ति शिल्पी की अगाध कल्पना-शक्ति की साकार प्रतिमा है। वाराह के शरीर पर गणेश, बारह आदित्यों और ग्यारह रुद्रों की कतारे उत्कीर्णित हैं।

प्रकृति का अनुपम क्रीड़ास्थल, पुण्य सलिला नर्मदा के प्रपातो की गर्जना से मुखरित भेड़ाघाट उच्चकोटि की शिल्पकला का अभूतपूर्व केन्द्र है। भेड़ाघाट का चौसठ योगिनी (वैद्यनाथ) या गौरीशंकर मदिर अपने क्रोड में श्रेष्ठ शिल्पसम्पदा लिये हुए कलाप्रेमियों का तीर्थ बन गया है। शिलालेख के अनुसार गौरीशंकर मंदिर महाराज गयकर्ण देव की महारानी अल्हण देवी द्वारा नरसिंह देव के राज्य-काल में सन् ११५५-५६ मे निर्मित हुआ था। मंदिर का अधोभाग पुरातन प्रतीत होता है। मुख-मण्डप और विमान की निर्माण शैली से सिद्ध होता है कि यह हिस्सा बहुत बाद मे बनवाया गया है। मदिर के अधोभाग की प्राचीनता, सीढी पर लगे हुए प्राचीन मदिर के बेलबुटे, आसपास विखरे चैत्याकार खिड़कियों के टुकड़े एवं गर्भगृह की मूर्तियो के परिदर्शन से सिद्ध होता है कि आठवी शताब्दि मे इस स्थान पर स्थापत्य कौशल एवं नवीन परिकल्पना का परिचायक एक प्रकाण्ड मदिर था। मंदिर के भग्न शिखर और मण्डप का जीर्णोद्धार अल्हणदेवी ने करवाया। मूल मंदिर को प्रदक्षिण किये हुए छज्जे और स्तम्भों से युक्त वृत्ताकार घेरे में पृथक खण्डों मे ८१ मूर्तियां स्थापित है। यह वृत्ताकार दालान ही गौरीशंकर मदिर का वैशिष्ट्य है जोकि चौरासी कोठरियों मे विभक्त है। प्रत्येक कोठरी में एक एक देवी मूर्ति विराजित है। देवी मूर्तियो मे अष्ट शक्ति, गंगा-यमुना, सरस्वती, ताण्डव नृत्यरता काली तथा प्रबोध चन्द्रोदय और रुद्र उपनिषद मे वर्णित योगिनियों की मूर्तियां है। योगिनी मूर्तियों में सभी मूर्तियां भयावह, वीभत्स और विकट-दर्शना नही है। वहुतसी मूर्तिया अत्यंत सुश्री एवं सौन्दर्य मण्डित हैं।

मूर्तिकार, मुण्डमाला पहने एवं खोपडियों में रक्तपान करती हुई चण्डी और काली के भयावह और विकट कंकाल रूप को पत्थर में व्यक्त करने में जिस तरह सफल हुआ है, उसी तरह अपूर्व सुषमायुक्त, मनोरम मुखाकृति और कमनीय देह भंगिमा को रूपायित करने में दक्ष है। चण्डिका, उम्पटा, डाकिनी, भीषणी, वीभत्सा एवं छत्रधर्मिणी मूर्तियों में वीभत्स रूप का प्रदर्शन है। कलात्मकता और सौंदर्य की दृष्टि से वैष्णवी, जान्हवी, इन्द्रजाली, ऐंगिनी, तेरमवा (महिषासुर मर्दिनी), रणजिरा और रूपिणी अनुपम हैं। अठारह भुजी तेरमवा (महिषासुरमर्दिनी) की मूर्ति में सजीवता और गति है। महिषासुर का वध करती हुई दुर्गा के मुख पर अपूर्व तेज है। अज्ञान और ज्ञान के निरन्तर युद्ध एवं तामसिक प्रवृत्तियों पर विजय का लाक्षणिक अंकन किया गया है। दैत्य का कटा हुआ मस्तक पड़ा है। शक्ति का पुंज सिंह अपने पंजों से महिष के पृष्ठभाग को क्षत कर रहा है। दुर्गा के तेजोद्दीप्त नयन, सुदृढ़ गठन भंगिमा एवं अठारह भुजाओं का प्रसार प्रचण्ड शक्ति का द्योतक है। शरीर की दृढ़ता अन्तर के कठोर भावों का प्रकाशित करती है। गरुड और मकर पर आरूढ वैष्णवी और जाह्नवी की मूर्तियाँ भास्कर्य कला की अतुलनीय कृतियाँ हैं। योगिनी मूर्तियों के आसन पर अंकित अक्षरों से इनका निर्माण काल दसवीं शताब्दि निश्चित किया गया है। कुषाण शैली की लाल पत्थर पर निर्मित पांच मूर्तियाँ भी चौंसठ योगिनी मंदिर में रखी हुई हैं जो कि कला की दृष्टि से साधारण हैं।

गौरीशंकर मंदिर के गर्भगृह में प्रधान मूर्ति नन्दी पर आरूढ शिव-पार्वती की है, यह शिल्पी की अभिनव रूप-दृष्टि का उदाहरण है। शिव थोडासा पीछे झुककर पार्वती की ओर देख रहे हैं। पार्वती का दर्पणयुक्त हाथ और भावोद्दीपक मुख भंगिमा अति सुंदर है। नंदी की बायीं ओर कार्तिकेय मयूर पर आरूढ है। निम्नभाग में नृत्य करते हुए गणों का अंकन सजीव है। शिव-पार्वती की यह मूर्ति स्वर्गीय भाव, सुठाम-गठन और भाव व्यंजना के कारण मन को प्रभावित करती है। इसी गर्भ गृह में स्थित नृत्य गणेश की प्रतिमा मध्यप्रदेश में प्राप्त गणेश मूर्तियों में सर्वोत्कृष्ट है। गणेश आठ भुजाओं से युक्त है। दो हाथों से सर्प को पकड़कर सिर के ऊपर उठाये हुए हैं। हाथों में परसु, पद्म, पाश एवं लड्डुओं का पात्र सुशोभित हैं। बायां हाथ अभय मुद्रा में तथा दायां हाथ और पैर नृत्य की मुद्रा में उठा हुआ है। कटि प्रदेश के आभूषण नृत्य के कारण आंदोलित हो रहे हैं। गंधर्व गण मंजीर और मृदंग से ताल दे रहे हैं। नृत्य-मग्न होने के कारण मुख-मंडल आनन्दोल्लास से भरा है जिसका अंकन शिल्पी की बडी सफलता है। सम्पूर्ण अंग नृत्य के छंद और ताल में छंदायमान हो रहे हैं।

भेड़ाघाट की ये प्रतिमाएं लालित्यपूर्ण अंग-सौष्ठव, एवं अद्भुत शिल्प सृष्टि के कारण कला प्रेमियों में रस-संचार करती हैं। अंगों की कमनीयता, सुठाम देहश्री, कटि देश एवं वक्ष प्रदेश का सुंदर गठन, नयनों के भाव प्रकाश एवं सूक्ष्म वस्त्रालंकारों का इस कुशलता से अंकन किया गया है कि मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। मूर्तियों की लीलायित भंगिमा, अंग-विन्यास, मनोरम भाव और सुन्दर मुखाकृति के दर्शन से चित्त में अपार आनंद का उदय होता है। वस्त्रों की सिकुडन एवं विभिन्न अलंकारों व आभूषणों की सूक्ष्म खुदाई दर्शनीय है। वलय, कंकण, कंठहार, हँसुली, मुक्तादाम, तावीज, अनन्त मेखला, करधनी, चंद्रहार इत्यादि आभूषणों के निर्माण में शिल्पी ने दक्षता प्राप्त की है। हाथ तथा पैर की कमनीय अंगुलियों की खुदाई में शिल्पी ने कमाल कर दिखाया है।

भेड़ाघाट और जबलपुर के मध्य में स्थित आधुनिक तेवर ग्राम में बिखरी हुई मूर्तियों एवं शिलाखण्डों के रूपमें हमें कल्चुरियों की राजधानी त्रिपुरी के सांस्कृतिक एवं उन्नत शिल्प-ऐश्वर्य के दर्शन होते हैं। त्रिपुरी की प्राचीनता का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। तेवर ग्राम में निर्मित प्राचीन बावली के तट पर खेरमाई स्थान पर आसपास पाई गई मूर्तियों का उत्तम संग्रह है जिसमें कई मूर्तियाँ अत्यंत उच्चकोटि की हैं। रक्षा का प्रबंध न होने के कारण ये अमूल्य मूर्तियाँ धीरे धीरे गायब हो रही हैं। खेरमाई में संग्रहीत मूर्तियों में कार्तिकेय, सुरसुंदरी, अंधकासुर वध मूर्तियाँ तथा ग्राम के भीतर पाई जानेवाली मूर्तियों में नृत्य गणेश, उमा-महेश्वर तथा बोधिसत्व की मूर्तियाँ उत्कृष्ट हैं।

कार्तिकेय की मूर्ति बुरी तरह से खण्डित होते हुए भी सुंदर है। तीन सिर और बारह हाथों से युक्त देवसेनापति कार्तिकेय अभंग मुद्रा में दंडायमान हैं, उनका वाहन मयूर पीछे खड़ा है। उन्नत-वक्ष, बलिष्ठ-भुजदंड पौरुष और उत्साह के प्रतीक हैं। सुर-सुंदरी की मूर्ति में नारी का मनोहारी सौंदर्य प्रदर्शित किया गया है। मुख पर अत्यधिक कोमलता और लालित्य रूपायित है। नाना आभूषणों से बंधा बालों का जूड़ा, कानों के कुण्डल, गले की त्रिवली और ओठों पर मधुर हास्य सुरसुंदरी के सौंदर्य को द्विगुणित कर रहे हैं। ये देव कन्यायें इन्द्र द्वारा घोर तपस्या रत साधकों को तप से डिगाने के लिये भेजी जाती थीं। यह सुंदरी दाहिने हाथ से शरीर के वस्त्रावरण को हटाकर अपने देह की कमनीयता को प्रदर्शित कर रही है। उमा-महेश्वर और गणेश की अनेकों सुंदर मूर्तियाँ तेवर में मिलती

है। तेवर की बासुरीवादन मे तन्मय नारी-मूर्ति मे तो कलात्मकता फूट पड़ी है। खेरमाई में लाल पत्थर पर उत्कीर्ण एक शिलापट्ट (बेस रिलीफ) मे तत्कालीन समाज का सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया गया है जो कि अन्यत्र दुर्लभ है। वृक्ष के नीचे पलग पर एक पुरुष लेटा हुआ ह। सिरहाने की ओर बैठी हुई स्त्री उसकी ओर झुककर कान मे कुछ कह रही है एव पुरुष बड़ी तन्मयता से कान के नीचे हाथ रखे सुन रहा है। पलग के दूसरी ओर दो स्त्रिया गोल तकिये पर बैठी हुई वार्तालाप मे सलग्न हैं।

तेवर मे प्राप्त वौद्ध मूर्तियो के वाहुल्य से सिद्ध होता है कि कलचुरि राजाओ का बंगाल के पाल तथा सिरपुर के सोमवंशी वौद्ध धर्मानुयायी राजाओ से अत्यंत सद्भावपूर्ण सवध था एव कलचुरि, शैव होते हुए भी अन्य धर्मो का यथेष्ट आदर करते थे। तेवर मे उपलब्ध बुद्ध मूर्तियो मे अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, वोधिसत्व और भूमिस्पर्श मुद्रा मे स्थित बुद्ध की प्रतिमाएं भारत के श्रेष्ठतम मूर्ति-शिल्प मे स्थान पाने योग्य हैं। अवलोकितेश्वर पद्मपाणि की कल्पना विष्णु के सर्जक और रक्षक रूप की तरह ही की गई है। विष्णु के प्रतीकात्मक अलकरणो से इसका काफी साम्य है। अवलोकितेश्वर के मुकुट पर अनन्त ज्योति के अधिष्ठाता ध्यानी बुद्ध अमिताभ स्थित हैं जो कि विष्णु की ही तरह मध्यान्ह सूर्य के समान तेजस्विता के प्रतीक हैं। अवलोकितेश्वर अर्ध-पर्यक आसन मे कमल पर विराजित हैं। वे बाये हाथ से उत्फुल्ल कमल की नाल थामे है तथा दाहिना हाथ वरद मुद्रा मे शोभित है। दाहिना पैर अर्ध-योगपट्ट से कसा हुआ है। मुखमुद्रा पर स्मित हास्ययुक्त असीम गाभीर्य है। अवलोकितेश्वर करुणामयी दृष्टि से समस्त मानव जाति का अवलोकन कर रहे हैं। यह मूर्ति आध्यात्मिक सौन्दर्य की प्रतीक है। वोरोबुदूर (जावा) मे प्राप्त आठवी शती की प्रसिद्ध अवलोकितेश्वर मूर्ति से प्रस्तुत मूर्ति का अद्भुत साम्य है।

भगवान बुद्ध की भूमिस्पर्श मुद्रा मे ध्यानरत मूर्ति के निर्माण मे शिल्पी अत्यधिक सफल हुआ है। भाग्यवश यह सुन्दर मूर्ति खण्डित नही होने पायी है। चौड़ा वक्षस्थल, उन्नत ललाट, सुगठित वाहु एव हाथो की उगलियो का अकन स्वाभाविक और पूर्ण है। यह मूर्ति अत्यंत सिद्धहस्त-शिल्पी की कृति जान पडती है। चीवर की किनार सुन्दर अलंकरणो से सुशोभित है। परिकर मे भगवान बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाएं सुघड़ता से अंकित हैं।

कलचुरि कालीन भास्कर्य के क्षेष्ठतम प्रतीक विलहरी, भेडाघाट और तेवर में संग्रहीत हैं। सारा मध्यप्रदेश ही उस काल की कलात्मक कृतियों से भरा पडा है। रोहणखेड़, पौनार, कारीतलाई, केलझर, बहुरीवन्द, लखनादौन, गढा, पनागर, कामठा, रायपुर, आरंग, राजिम, रतनपुर, जाजगीर, पाली, कवर्धा, डोगरगढ और नांदगांव आदि स्थानो मे भी विविध-कालीन मूर्तिकला के सुन्दर नमूने उपलब्ध हैं।

जवलपुर के नव-निर्मित शहीद-स्मारक भवन मे आसपास के स्थानो से एकत्रित कुछ अनुपम कलाकृतियां संग्रहीत हैं। इन मूर्तियो में सपरिकर विशाल विष्णुमूर्ति, पद्मपाणि बोधिसत्व, गरुड़, कल्याण-देवी, उमा-महेश्वर, शक्ति सहित गणेश, तारा और यक्ष दम्पत्ति सहित भगवान नेमिनाथ की प्रतिमाए उच्चकोटि की हैं। इसके अलावा नारी-मूर्तियों मे वृक्षिका, चवरगृहिणी तथा परिचारिकाओ की अतीव सुन्दर मूर्तियां भी दर्शनीय हे। महाकोशल की नारी के सौदर्य, अंगसौष्ठव एवं मनोगत भावो के चित्रण मे शिल्पी की कल्पना और रस-सृष्टि छलक रही है उठी है। सौन्दर्य और रूप की उपलब्धि शत-शत पाषाणो मे मुखरित हो रही है। योगिनी मूर्तियों, उमा, गजलक्ष्मी, कल्याणीदेवी, तारा तथा यक्षिणी मूर्तियो के रूप मे नारी के अवर्णनीय सौन्दर्य को शिल्पी ने निपुणता और तन्मयता से साकार रूप प्रदान किया है। नृत्य तथा गायन-वादन करती हुई अप्सराओ की ताल से समस्त प्रकृति आन्दोलित और पुलकित हो रही है। कवियो द्वारा कल्पित नारी-अंगों की विभिन्न उपमाए शिल्पी की छेनी से रूपायित हो उठी हैं।

हमारे प्रदेश के शिल्पियों का स्थापत्य-ज्ञान, शिल्प-नैपुण्य, सौन्दर्य-वोध और सृजनात्मक-प्रतिभा आधुनिक युग के कला प्रेमियो को विस्मित करती हैं। इस प्रदेश का कलात्मक-वैभव युगो तक अपनी श्रेष्ठता, मौलिकता और उत्कृष्टता का अपूर्व परिचय देता रहेगा।

मध्यप्रदेश का संगीत और चित्रकला

श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित

भारतीय सगीत कला का आदि रूप हमें सामवेद में मिलता है। इसीलिये महाकवि रवीन्द्रनाथ ने लिखा था—"प्रथम प्रभात उदित तव गगने—प्रथम मामरव तव तपोवने"। भारतीय सगीत कला अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है और उसके द्वारा धार्मिक भावनाओ—विशेषकर वैष्णव धर्म के प्रसार में सदा सहयोग प्राप्त हुआ। अनेक मदिरो और मठो में इस कला ने प्रौढता प्राप्त की तथा अनेक कवियो ने भी इस कला को यशस्वी बनाया। भारतीय जीवन में प्रत्येक शुभ काय गायन-वादन से आरभ होता है। शतपथ ब्राम्हण ग्रथ में लिखा है—"ना सामा यनोसि", अर्थात् कोई भी सगठित काय सगीत के बिना नही आरभ होना चाहिये। ललित-कलाओ में काव्य और सगीत दोनो का ऊचा स्थान है—क्योकि इनमे अल्पतम मूत साधना की सहायता से अधिक से अधिक रस की सृष्टि की जा सकती है। राग विज्ञान ग्रथ के चतुथ भाग में लिखा है "सगीत कला में नाद की सहायता से रस का प्रकाश किया जाता है और काव्य कला में रस सृष्टि का प्रधान उपादान शब्द है"। नाद का महत्व बतलाते हुए नारद सगीत में भी लिखा है —

न नादेन विना गीत, न नादेन विना स्वर।
न नादेन विना ग्रामस्तस्मान्नादात्मक जगत ॥

काव्य और सगीत अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे के सहायक और पूरक है। काव्य में जो छद योजना की जाती है, उससे काव्य में सगीत की आवश्यकता स्पष्ट रूप से प्रकट है। भारतीय कवियो में से अधिकाश सगीत के जानकार रहे हैं और इन्होने अपनी रचनाओ में सगीत का ध्यान रखा। माघ ने शिशुपाल वध में लिखा है कि "देवर्षि नारद श्रीकृष्ण के दर्शन करने को जाते समय अपनी 'महती' नाम की वीणा को अत्यत कुतूहल से देख रहे थे, क्योकि मार्ग में वायु के आघात से पृथक-पृथक ग्रामो की छाया अपने आप ही उस वीणा से सुनायी पड रही थी।" इस कथन में स्वरो के लिये "श्रुति मण्डल" शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे यह प्रकट होता है कि वे सगीत को "स्वर कपन" (वायब्रेशन ऑफ साउड) मानते थे। काव्य में रसो की सख्या ९ है, परन्तु सगीत में शृगार, शान्त, वीर और करुण रस ही प्रधान है। हास्य, वीभत्स अथवा रौद्रादि रसो का उपयोग सगीत-शास्त्र में बहुत कम होता है।

भारतीय सगीत का आरभ भरत मुनि से माना जाता है और उनके पश्चात् काश्यप, मतग, हनुमत तथा नारदादि ऋषियो का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस प्रकार भारतीय सस्कृति एव अन्य कलाओ की भाति सगीत कला का जन्म और विकास भी वन उपवनो में होता रहा तथा इसमें समाज को उच्च भावनाओ की ओर प्रेरित करनेवाली ईश्वर-भक्ति की धारणाओ को स्थान मिला। सगीत की अतुलनीय शक्ति पर प्रकाश डालते हुए डॉ सम्पूर्णानद ने लिखा था कि "इग्लैड में केल्ट जाति के मनुष्य प्राचीन काल में रहते थे। वे कई देवताओ के उपासक थे जो प्राय पत्थरों के घेरे मात्र थे। उनमें एक पाषाण बहुत सीधा खडा है और उसके ऊपर दूसरा बडा पत्थर रखा है। यह पत्थर इस प्रकार ठहरा है कि थोडे से धक्के से गिर सकता है किन्तु एक बडी विशेषता यह है कि जब कोई उस पत्थर के निकट पचम या मध्यम स्वर अलापता है, तो यह हिलने लगता है और यदि कही गायन देर तक चलता रहे तो इसमें सदेह नही कि पत्थर गिर जाय। दूसरे स्वरो का इस पत्थर पर कोई असर नही होता।" इसी तरह की एक आश्चर्यजनक घटना स्विटजरलैड के अस्कोना गाव मे श्री ओकारनाथ के साथ घटित हुई। स्वामी विवेकानद की एक शिष्या श्रीमती परोवे एक एकान्त स्थान में निवास करती है। उन्होने एक दिन श्री ओकारनाथ का सगीत सुनने की इच्छा प्रकट की। पडित जी निमत्रण स्वीकार कर उक्त महिला के स्थान पर गये और जब आपने अपनी स्वर-लहरी छेडी तो वह ध्यान मग्न हो गयी और बाद में बताया कि ध्यानावस्थित दशा में उन्हे एक छाया-चित्र दिखलाई पडा जिसको आकर उन्होने कागज पर "ॐ" लिखकर बताया। वास्तव में समस्त सगीत शास्त्र वैज्ञानिक आधार पर विकसित हुआ है। एक इटालियन महिला का तो यहा तक कहना है कि यदि किसी रेतीले मैदान में कोई राग शुद्ध स्वरो में गाया जाय तो बालू पर एक चित्र सा बन जाता है। जब दूसरा राग गाया जायगा तो दूसरा चित्र बनेगा। इस महिला ने सितार पर जो राग बजाया उससे रेती पर वीणापाणि सरस्वती का रेखा-चित्र बन गया था।

नायिका--नाईन

चित्रकार:- सवाई चितेरा

संगीत परिवर्तनशील है—यह सिद्धांत श्री नारायणराव भातखण्डे ने भी स्वीकार किया है। अब तक अनेक परिवर्तन हुए हैं और यह क्रम आज भी जारी है। भारत मे संगीत की दो पद्धतिया प्रचलित है: (१) हिन्दुस्तानी पद्धति और (२) कर्नाटकी। इन पद्धतियों मे कुछ मुख्य अन्तर तो है ही, सबसे बडी बात यह है कि हिन्दुस्तानी पद्धति पर विदेशी यवनो का प्रभाव पडा है, किन्तु कर्नाटकी पद्धति इससे मुक्त है। इन दोनो के बीच समन्वय स्थापित करने का यत्न भी बराबर होता रहा है। १२ वी सदी मे संगीत रत्नाकर ग्रथ के कर्त्ता श्री सारगदेव ने अपने ग्रंथ के द्वारा यह प्रयत्न किया था और वर्तमान मे भी कई लोग दोनो पद्धतियों का अभ्यास करने मे गौरव अनुभव करते है। कुछ लोग दोनों को मिलाकर एक नवीनता भी पैदा करते है। मध्यप्रदेश के श्री. सुब्बाराव और श्रीमती मुटाटकर दोनों का अभ्यास रखते है। स्व. अब्दुल करीम खा यद्यपि हिन्दुस्तानी पद्धति के उस्ताद थे परन्तु उनके कुछ ग्रामोफोन रेकार्ड कर्नाटकी पद्धति के भी है। प्रसिद्ध फिल्मी पार्श्वगायिका लता मंगेशकर के पिता मास्टर दीनानाथ द्वारा गाये गये एक तेलगू गीत का रिकार्ड मिलता है। कुछ लोग कर्नाटकी राग व हिन्दुस्तानी संगीत मे अपना नया रूपरंग लेकर भी आये है। कर्नाटकी का एक राग "अभोगी"—"खरदरप्रिया" के मेल मे आ जाता है। इस मेल का नाम "थाट" है—जो अत्यंत मधुर भी है। स्व. भातखडे का कथन था कि "इन दोनो पद्धतियों का परस्पर ऐसा सुयोग करके बतलाना चाहिये कि जिससे दोनो का हित होकर सगीत को राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो।"

मध्यप्रदेश में इन पद्धतियो के बीच बहुत सौहार्द्र पाया जाता है और यह प्रान्त दोनो के समन्वय मे विशेष रूप से सहायक होगा। भारतीय संगीत पर पाश्चात्य सगीत भी अपना प्रभाव डाल रहा है, जिसके कारण "सिफनी" (Symphony) का प्रचार चल पड़ा है जिसमे दो स्वर एक साथ बजते है। आर्केस्ट्रा भी विदेशी है। विदेशी संगीत का स्वरैक्य (Hormony) और भारतीय संगीत का माधुर्य (Melody) दोनों मिलकर संगीत जगत मे एक नया क्रम उपस्थित कर रहे है।

सगीत के परिवर्तनशील होने के कारण कई नई राग-रागिनियो का भी जन्म हुआ। वेदों मे लिखा है कि "सूर्य रश्मियो के प्रभाव से मनुष्य के अन्त.करण की अवस्था बदलती है। राग भी बदलते है।" कुछ नये रागो के नाम भी उनके प्रवर्त्तको के आधार पर रखे गये है—जैसे, प्रसिद्ध तानसेन द्वारा गाया गया राग "मियां की मल्हार" कहलाया। "तुरक" या "तुरकतोडी" की भी यही बात है। आज ध्रुपद और धमार के जमाने से लोग ख़याल और ठुमरी के जमाने में आ गये हैं और चद्रनंदन, गौरी मजरी, मदनमंजरी, स्यामन्तरसिया, लगन गंधार जैसे नये रागो की सृष्टि हो चुकी है। मारू-बिहाग भी एक नया संशोधन है। यह कल्याण के थाट से गाया जाता है, परन्तु बिहास अंग से गाया जाता है। इसमे आरोह, ऋषभ, और धैवत वर्जित है एवं अवरोह सरल तथा सम्पूर्ण रहता है। तीव्र मध्यम आरोह-अवरोह मे सरल लिया जाता है—जिससे शुद्ध बिहाग इससे सर्वथा पृथक रहता है। वर्धा के अध्यापक पतकी ने इस सम्बन्ध मे खोज करने का यत्न किया है। इस विषय पर उन्होने "अप्रकाशित राग" नाम की पुस्तक भी लिखी है, जो अप्रकाशित है।

सन् १९५५ में अमरावती नगर मे मध्यप्रदेश का सगीत सम्मेलन हुआ था। उसके अध्यक्ष प्रो. बी आर. देवधर ने इस परिवर्तनशीलता का कारण संगीतशास्त्र का स्वर-शास्त्र (साइन्स आफ साउन्ड) होना माना था। संगीत-शास्त्र की एक विशेषता यह भी है कि वह साम्प्रदायिकता एव प्रान्तीयता के बंधनो को नही मानता। कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के पद सभी जगह गाये जाते है और हिन्दू तथा मुसलमान सभी इनकी रचनाओं को गाने मे आनंद का अनुभव करते है। दक्षिण भारत के कवि और संतो के गीतों का भी वही हाल है। सस्कृत श्लोको में दुर्गा की प्रशस्ति गाते हुए मुसलमानो को भी सुना गया है।

संगीत को मन्दिरो तथा मठो के अतिरिक्त राजदरबारो से भी प्रोत्साहन मिला है। मध्यप्रदेश मे जबलपुर का गढ़ा स्थान पुष्टिमार्ग के अनुयायियो का केन्द्र रहा है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी यहा पर कुछ दिन रहे थे। उस समय मे वहा की रानी प्रसिद्ध दुर्गावती थी। गढा दर्बार मे वैष्णव सगीतज्ञों को सदा प्रोत्साहन मिला था। अष्टछाप के कवि कुंभनदास और चतुरभुजदास गढ़ा के निवासी थे और दोनो गायन-कला मे निपुण थे। कुंभनदास के भक्ति-भाव पूर्ण गायन की प्रशसा सुनकर सम्राट अकबर ने उन्हे फत्तेपुर सिकरी बुलाया था और वहां उनका अच्छा सम्मान किया था। परंतु कुभनदास वैरागी होने से उन्होने एक पद मे कहा था :—

"संतन को कहां सीकरी सो काम।
आवत जात पनहियां टूटीं, बिसर गयो हरिनाम।"

गढा के पुष्टिमार्गी सेवक भी अच्छे गायक थे। श्री. सुन्दरलालजी मिश्र (जन्म सवत् १८५५) बांदा के निवासी थे, परन्तु उनका अधिकांश जीवन जबलपुर मे बीता था। वे ध्रुपद के सुन्दर गायक थे। प्रसिद्ध पखावज वादक कुदरूसिह

इनके मित्र थे। उसी तरह सागर के श्री हीरालालजी हार्मोनियम बजाने में बडे निष्णात थे। उनके साथीदार मनू असोदी (जागडा) तबला बजाने में प्रसिद्ध थे। पडित सुदरलाल के पुत्र बिहारीलालजी मिश्र जबलपुर के सगीत के अच्छे जानकार है।

नागपुर का भोसला दरबार सदा सगीतज्ञो का आश्रयदाता रहा है और जहा दूर-दूर से समय-समय पर से सगीतज्ञ दरबार में पहुचा करते थ। आज भी वतमान राजा बहादुर रघोजीराव भोसले सगीत के पूण ममज्ञ ह और वे स्वय भजन करते हुए स्वरो में अपने आपको भूल जाते है। उनके प्रपितामह रघुजी भोसले द्वितीय (सन् १८१६) सगीत शास्त्र के प्रेमी थे। उनके दरबार के सगीत समारोहो का जिक्र करते हुए तत्कालीन रेसीडेन्ट कोलब्रुक ने लिखा ह कि—"जब रघोजी द्वितीय दरबार में बठता था, तब शासकीय काम-काज की अपेक्षा गायन-वादन ही अधिक चलता था।" उनके उत्तराधिकारी रघोजी तृतीय ने कन्हान नदी के किनारे वाघोडा ग्राम म एक उत्सव किया था, जिसम नागपुर के रसिडेन्ट ने भी भाग लिया था। उत्सव का वणन करते हुए एक मराठा कवि ने लिखा ह—

वाजे सारगी सितार-लागे पखावज ताल।
भले गवैया गाणार-सुरताल धरनार॥

वाघोडा के समारभ में कई अग्रेज मेहमान भी उपस्थित थे। इसके पूव सन् १७९९ में एक समारोह का वणन रसीडेंट कोल्ब्रुक ने विस्तार के साथ किया है। नागपुर दरबार में दिल्ली, बनारस, पूना, हैदराबाद, ग्वालियर, इदौर आदि दरबार के प्रसिद्ध गवैया, तवायफें और कवि भी आया करते थे जिनका दरबार में यथोचित सत्कार होता था।

नागपुर म सगीत की वतमान परम्परा स्व कृष्णशास्त्री घुले से आरभ होती है। वे सगीत के अच्छे जानकार थे। उनके शिष्य बापूजी जोशी प्रसिद्ध थ जिनका गला बडा ही मधुर था। राजा बहादुर जानोजीराव भोसले उनको बहुत चाहते थे। राजा साहब के आश्रित हस्सूखा हद्दूखा प्रसिद्ध गायक थे जो प्रसिद्ध सगीतज्ञ मुहम्मदखा के (ग्वालियर वाले के) शिष्य थे। उनका पुत्र रहमतखा भी अच्छा गायक था। नागपुर के बाळकृष्ण बुआ ध्रुपद, खयाल, टप्पा और ठुमरी के उस्ताद माने जाते थे। उसी समय के प्रसिद्ध सगीतज्ञ बालाजी दीक्षित थे, जो कि बालासाहब वर्मा के मामा थ। वे बापूजी जोशी को गायन में साथ देते थे और स्व नारायणराव जोशी उनके साथ हारमोनियम तथा स्व दिनकर बुआ तबला बजाते थ। इसी समय में भोसले राजा के आश्रित उस्ताद वजीर अली और उनके शिष्य शिवबा उस्ताद गायन कला में निपुण थ। बापूजी के चचेरे भ्राता नानाजी जोशी पेटी बजाने में निपुण थे। इनके शिष्य स्व श्यामराव बूट थे। बापूजी के दोनो पुत्र रामभाऊ जोशी और विनायकराव जोशी अच्छे सगीतज्ञ थे। रामभाऊ बेडेकर नाटक-मण्डली में थे और विनायकराव उस्ताद फैजमुहम्मदखा के शिष्य थे। बापूजी के शिष्यो में बालासाहब दीक्षित और नागोराव जोशी प्रमुख थे जो बेडेकर नाटक-मडली में कुछ काल तक रहे थे। सन् १९०७-१० के मध्य में नागपुर में विट्ठलराव जुमले और आबाजी टाऊ दोनो सगीत के अच्छे कलाकार थे।

शारदा सगीत विद्यालय के सस्थापक बापूजी बदरकर घुले शास्त्री के शिष्य थे। आपके शिष्यो में यशवत-राव डागर और नानाजी कपलवार प्रमुख थे। नागपुर के गधव सगीत विद्यालय के स्थापनकर्ता श्री आपटे सगीत के ममज्ञ थे। उसी तरह दिनकरराव पटवधन और गोविंदराव काळे ने मिलकर सीताबर्डी में एक गायनशाला स्थापित की थी। वास्तव में शास्त्रीय पद्धति की शिक्षा का आरभ श्री शकरराव प्रवतक के द्वारा ही हुआ। इनकी शाला के प्रतिभाशाली स्नातक श्री उळाभाजे और भाऊसाहब माडखोलकर थे। सन् १९२५ में स्व शकरराव ने नागपुर में अभिनव सगीत विद्यालय स्थापित किया और उसके बाद ही हिदुस्थानी सगीत शिक्षण प्रसारक मडली की स्थापना हुई थी जिसकी परीक्षाओ को सरकार ने भी मान्य किया है। सन् १९४० में धतोली के भातखडे महा-विद्यालय की स्थापना हुई जिसके आचाय प्रभाकरराव खर्डेनवीस है। मराठी-भाषी क्षेत्र के निम्न सगीतज्ञ प्रमुख माने जाते है —

श्री शकरराव प्रवतक (जन्म सन् १८९०)—विदर्भ (लोणी) के निवासी ह। आपकी सगीत शिक्षा ग्वालियर के विष्णु बुवा के यहा हुई। भास्कर बुआ बखले तथा राजकोट के स्व अब्दुल्करीमखा के यहा आपने शिक्षा ली थी। स्व भातखडे से आपका घनिष्ट सबध था। आपके शिष्यो में यादवराव जोशी, प्रभाकर जोशी, भालेराव, देवधर, कपलवार, प्रभाकरराव खर्डेनवीस और चम्पावती तलग मुख्य है। श्री प्रवतक वास्तव में नागपुर में सगीत के प्रवतक थे (मृत्यु १९५४)।

श्री वालासाहव वक्षी (जन्म १८९६) भारत संगीत गायन शाला के संस्थापक है। इन्होंने प्रसिद्ध गंधर्व नाटक-मंडली में भी काम किया था। आप नागपुर के आकाशवाणी केंद्र के कलाकार मन्डल के सदस्य हैं। श्री. रामभाऊ पर्वीकर नागपुर के उत्तम हारमोनियम वजानेवालों में से है। तवला, पखवाज और जलतरंग के वजाने में भी निष्णात है। आपकी संगीत शाला का नाम है गुरु वादनालय। स्व. वळीरामपन्त पंडे नागपुर के अच्छे संगीतज्ञ थे। पखावज और तवला वजाने मे निपुण थे। आपके शिष्य रेडियो कलाकार वालासाहव आठवले, नीलकंठराव मूर्ते और कोलवा पिपलघरे है।

उपर्युक्त कलाकारो के अतिरिक्त रावसाहव आकांत, ध्रुपद गायन मे कुशल माने जाते थे। राघोवाजी मुठाळ तो हारमोनियम वजाने में मुख्य थे। ये वर्षो तक नार्मल स्कूल में संगीत के शिक्षक थे। श्री रघुनाथ केलकर ने नागपुर मे गधर्व महाविद्यालय स्थापित किया था। सन् १९२१ से यह विद्यालय श्री विनायकराव पटवर्धन के तत्वावधान मे चल रहा है। उसी तरह श्री गुणवतराव मध्यप्रदेश के प्रमुख हारमोनियम वादक माने जाते हैं। ये स्व. दिनकरराव पटवर्धन और पडित ओंकारनाथ के शिष्य थे। नागपुर के पुराने कलाकार जो अपनी कला से आज भी प्रात को गौरवान्वित कर रहे है उनमे श्री गोविद शिवरामपन्त विलायची और श्री वाला-साहव वक्षी मुख्य है। विलायचीजी ताल को सगीत की आत्मा मानते है। नारद कृत संगीत मकरंद में उसका समर्थन है जैसे—

दक्षिणाङगे स्थितो रुद्र उमावामे प्रतिष्ठिता।
शिवशक्तिमयो नादो मर्दले परिकीर्तितः॥

अर्थात् मृदंग या तवले मे दाहिने मे शिवजी निवास करते है और वाये मे पार्वती रहती है। अतएव दोनों की आवाज शिव और पार्वती की ध्वनि समझना चाहिए। संगीत मे समय के किसी भी भाग की समान चाल को "लय" कहते है। एक मात्रा से दूसरी मात्रा-वहन मे जो समय लगता है उसे लय कहते है। विलायची और वक्षी के अलावा श्री सुब्वा-राव जी वीणा वजाने में सिद्धहस्त हैं। आप दोनो पद्धतियों के जानकार है। आपने प्रसिद्ध वीणावादक विश्वनाथ शास्त्री से वीणावादन और स्व. वामनराव जोशी से हिन्दुस्थानी सगीत पद्धति का अभ्यास किया। श्री शंकरराव सप्रे श्रीराम संगीत विद्यालय के चालक है। आपने पं. विष्णु दिगवर पलुसकर से संगीत की शिक्षा पायी थी। वाला-साहव आठवले ३४ वर्षो से तवले पर लय का अभ्यास कर रहे हैं। आपने नागपुर में, दिल्ली और आगरा तवला-वादन शैली का आविष्कार किया है। दिल्ली के जुगनखा तथा मेरठ के हवीवुद्दीनखा से सगीत का अध्ययन किया है। आपका संवंध कई नाटक कपनियों से भी था। नागपुर के पुराने संगीत-प्रेमी श्री लालजी हकीम है। उन्होन सगीता-चार्य तानसेन के गीतों तथा रागों पर खोजपूर्ण वृहत ग्रथ भी लिखा है जो कि संगीतशास्त्र की अनुपम देन होगी। आर्थिक कारणो से यह वृहत ग्रथ अव तक अमुद्रित अवस्था मे है पर पाडुलपि देखने योग्य है। इसी तरह अमृतराव निस्तोन, प्रभाकरराव जोशी, राजाभाऊ देव, शकर नारायण कोल्हटकर, प्रभाकरराव खर्डेनवीस, राजाभाऊ कोकजे, श्रीधरराव ढगे, दत्तात्रय माधव वोधनकर, श्रीधरराव कोठेकर, डाक्टर सुमति मुटाटकर, श्रीमती उपात्राई और श्रीमती विजया नायक (मलकापुर) आदि प्रदेश के सगीत-कला मे तज्ञ प्रमुख विद्वान माने जाते है।

विदर्भ की संगीत साधना—विदर्भ की राजनीतिक परिस्थितियो ने वहां की जनता को सगीत की ओर अग्रसर होने का वहुत कम अवसर दिया है। फिर भी हमे पुराने संगीत के आचार्यो के कुछ नाम मिलते है। उनमे वाशिम के स्व. वाला शास्त्री, कारजा के स्व. पाडुरंग महाराज, वालापुर के महवूव खां, आकोट के स्व. आनंदराव देशमुख तथा स्व. नामदेव वुवा के नाम मुख्य है। वडौदा के मौलावख्श से शिक्षा पाकर नामदेव वुवा ने अमरावती में सगीत का केन्द्र वनाया था। स्व दादासाहव खापर्डे के प्रोत्साहन से इनकी संस्था ने काफी प्रगति की। उससे निम्न संगीतज्ञों का लगाव था जिन्होने सर्वत्र काफी ख्याति प्राप्त की थी जैसे स्व. गोपालराव वेडेकर, स्व. मुकुंद वोवा, स्व. नत्थुजी वुवा, स्व. वामन वुवा जोशी, स्व. वापूजी वेदरकर, श्री व्यंकटराव देशमुख और स्व. मुठाळ आदि। नत्थूजी वुआ की सगीतशाला ववई और नागपुर में भी थी। भारत-प्रसिद्ध तवलची उस्ताद अलादिया खां भी अमरावती नगर के रहनेवाले थे। विदर्भ संगीत विद्यालय, मधुसूदन गायन विद्यालय, शारदा संगीत विद्यालय आदि संस्थाए भी संगीत के विकास मे अपना विशेष महत्व रखती है। विदर्भ के कुछ प्रसिद्ध कलाकारो का सक्षिप्त परिचय हम नीचे दे रहे है:—

श्री आनंदराव हरि असनारे—अभी १४ वर्ष की आयु है। इन्होंने कई अखिल भारतीय तवला-वादन प्रति-योगिता मे प्रथम पुरस्कार पाया है।

गोविन्दराव तुताड—आयु २९ वर्ष की है। अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन में इनको तबला वादन के लिये प्रथम पुरस्कार मिला था।

श्री अनाथ चौधरी—अमरावती के, जलतरंग वादन में विशेष निपुण हैं।

श्री वी श्री देशपांडे—दिग्रस के रहने वाले हैं। जबलपुर के भातखंडे संगीत विद्यालय के संचालक हैं। आपकी उपाधि संगीत विशारद की है।

कुमारी वनज आयंगर—यह बालिका कर्नाटक की संगीत का अमरावती में अध्ययन कर रही है।

श्री बलवंतराव कार्ले—वर्धा के अच्छे संगीतज्ञ हैं।

श्री एम बी वासरीकर—यवतमाल के "संगीत शेखर" उपाधिधारी संगीतज्ञ हैं। ये नागपुर महाविद्यालय में संगीत के प्राध्यापक हैं।

श्री एकनाथ कुलकर्णी—बुलढाना निवासी सारंगी बजाने में निपुण हैं।

श्री जे दे पतकी—स्वावलंबी विद्यालय, वर्धा के अध्यापक हैं। आपके कई लेख संगीत पत्र में प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने "अप्रकाशित राग" एक ग्रंथ भी लिखा है। इसी तरह डॉ व्ही पनके (यवतमाल) श्री दिनकरराव देशपांडे (अकोला), जगन्नाथराव दळवी (खामगाव), चित्तरंजन साठे (आर्वी), श्रीमती आशादेवी आयनायकम् (वर्धा), आदि मराठी भाषी प्रदेश के प्रमुख संगीत शास्त्री हैं।

छत्तीसगढ़ के कलाकार—विदर्भ के समान छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोशल) में भी संगीत के निपुण कलाकारों का पता चलता है। उनमें से कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है। मुल्मुला (बिलासपुर) के मृदंगाचार्य भानसिंह एक अच्छे संगीतज्ञ थे। ध्रुपद और धमार के ये विशेषज्ञ थे। बिलासपुर के तबला वादक श्री रामलाल आपके शिष्य हैं।

रायगढ़ के राजा स्व चक्रधरसिंह तो सारे देश में संगीत प्रेमी के नाम से प्रसिद्ध थे। संगीत और नृत्यकला के अच्छे पारखी और प्रोत्साहन देने वालों में थे। आप तबला वादन में निपुण थे। संगीत शास्त्र पर आपने देश के विद्वानों को एकत्रित करके संस्कृत में कुछ ग्रंथ लिखवाये थे। जैसे—नर्तनसर्वस्वनिधि, राग रत्नाकर। आपके शिष्यों में कार्तिक और कल्याण तो सारे देश के प्रसिद्ध कलाकार गिने जाते हैं। रायपुर के सारंगी वादक अमरसिंह अच्छे प्रसिद्ध थे और इनके लिये वे दूर-दूर से निमंत्रित किये जाते थे। इसी तरह रायपुर के तुलसीराम ठुमरी वादन में प्रसिद्ध थे। उनका स्वर्गवास सन् १९५० में हुआ। रामभरोस पाठक रायपुरवासी तबला बजाने के लिये प्रसिद्ध थे। सितार बजाने में भरेवा (रायपुर) तो प्रसिद्ध ही था जिस पर रायगढ़ नरेश की अच्छी कृपा थी। वर्तमान में भी रायपुर में कुछ अच्छे कलाकार हैं, जैसे महंत पुरुषोत्तमदास जी। ये नागरीदास मन्दिर के महन्त हैं। संगीत के इनके गुरु भृगुनाथजी थे। तबला, मृदंग, सितार, सरोद आदि बजाने में निपुण हैं, किन्तु हारमोनियम बजाने में तो अद्वितीय हैं। इसी तरह रायपुर के भरोप्रसाद श्रीवास्तव, शंकरराव देशपांडे, लक्ष्मणराव देशपांडे, प्रो नारायण-स्वामी पिल्ले, विष्णु कृष्ण जोशी (रायपुर श्रीराम संगीत विद्यालय के संचालक), मुकुंद कृष्ण जोशी (रायपुर संगीत विद्यालय के संचालक), कुमारी कमल जोशी, श्री अरुण कुमार सेन, रामानंद कनोजे, प्रेमचंद बैस, कुमारी हेमलता जनस्वामी एम ए, श्रीमती कुसुम मराठे आदि संगीत क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं।

दुर्ग के प्रसिद्ध तबला वादक श्री सिद्धिनाथजी हैं। ख्याल और ठुमरी में श्री दण्डे प्रसिद्ध हैं। राजनांदगांव के दाऊ कृष्णकिशोरदास कवि होते हुए भी संगीत के अच्छे मर्मज्ञ हैं। वहीं के स्व माधुदास बरागी सितारवादन और ध्रुपद गायन में प्रसिद्ध थे। वहीं के ठाकुर हीरासिंह गौतम अनंत संगीत मन्दिर के संचालक हैं। संगीत के साथ ही साथ आप अच्छे चित्रकार भी हैं। छुईखदान के महन्त अर्थात् राजागण संगीत के अच्छे प्रेमी थे। उनमें राजा लक्ष्मणदासजी तो कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके यहां रामलीला बड़े ठाठ से होती थी। स्वयं लक्ष्मणदासजी पद रच कर गाते भी थे। खैरागढ़ के राजा कमल नारायणसिंह तो कवि होते हुए भी सुंदर गवैया भी थे। लोग कहते हैं कि पखावज बजाते समय हाथी झूमने लगता था। इनका रचा हुआ "कमल प्रकाश रागमाला" ग्रंथ प्रसिद्ध है। राजा कमल नारायणसिंह के समान स्व राजा लालबहादुरसिंह शास्त्रीय संगीत में निष्णात थे। वे स्वयं हार-मोनियम अच्छा बजाते थे। वर्तमान रानी पद्मावती साहिबा का भी संगीत से काफी अनुराग है। उनके द्वारा स्थापित इंदिरा संगीत विद्यालय संगीत क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रहा है। उसके प्रधानाचार्य श्री नारायणरावजी पाठक हैं। ये संगीताचार्य राजाभैया पूछवाले के शिष्य हैं। यों तो ये ग्वालियर के रहने वाले हैं परन्तु रानी साहिबा

यात्रा

चित्रकार.---श्री गणेशराम मिश्र, रायपुर

गडरिया

चित्रकार —कुमारी रीता चौधरी, नागपुर

(२)

चित्रकला

भारत में अन्य कलाओं की भांति चित्रकला भी जन-जीवन का एक अंग रही है। अनेक त्यौहारों और विवाह आदि के अवसरों पर यह चित्रकला हमें चौक या रांगोली के रूप में दिखलाई पड़ती है। रांगोली का प्रचलन महाराष्ट्र में तो है ही, राजस्थान और दक्षिण भारत में भी यह किसी न किसी रूप में पाई जाती है। सन् १२७३ में भास्कर-भट्ट ने अपने मराठी-काव्य "शिशुपाल-वध" में "रांगवळी" शब्द का प्रयोग किया है और इसका "रांगोळी" रूप मराठी के मारोपन के "विराट-पर्व" में मिलता है। संस्कृत-साहित्य में भी इसका प्रयोग पाया जाता है। डाक्टर वी राघवन ने अपने एक लेख "ग्लीनिंग्स फ्राम सोमदेव सूरीज यशस्तिलक चम्पू" में भी इसका उल्लेख किया था। यह लेख डाक्टर गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद के "जर्नल" फरवरी १९४४ के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'मेघदूत' आदि संस्कृत के काव्यों में भी इस प्रकार की गृह-कलाओं का जिक्र है, जिनमें घर की स्त्रियों की कलापूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति पाई जाती है। घर के आंगन या छत इत्यादि को गोबर से लीपकर आटा, अनाज तथा शिला-चूर्ण आदि से जो चित्र बनाये जाते थे, उनमें कला का सुन्दर रूप मिलता था। 'नारद शिल्प' में इस चित्रांकन में चिड़िया, सांपों, हाथियों और घोड़ों आदि के चित्र बनाये जाने का वर्णन है। कई प्रान्तों में दीवालों पर भी विशेष त्यौहारों और विवाहादि के अवसरों पर अनेक प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं। मिट्टी के बर्तनों पर भी यह कला देखने योग्य होती है, जो मध्यप्रदेश के आदिवासियों के घरों में भी उपलब्ध है।

मध्यप्रदेश के सरगुजा, पचमढ़ी और होशंगाबाद के भित्ति-चित्र भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं और इनका समय ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व अनुमानित किया जाता है। इन भित्ति-चित्रों में पशुओं, आखेटों और मनुष्यों के चित्र बड़ी बारीक रेखाओं से खिंचे हुए मिलते हैं। पचमढ़ी की धूपगढ़ वाली पहाड़ी पर जो चित्र हैं, उनमें तत्कालीन जीवन की घटनाएँ अंकित जान पड़ती हैं।

मध्यप्रदेश में प्राचीन चित्रकला भित्ति-चित्रों के रूप में ही इधर-उधर पाई जाती है। सागर के सूबेदारों और नागपुर के भोंसलों के बाड़ों में भी पुराने चित्रकारों के कुछ चित्र उपलब्ध थे, जो अपने समय की भावनाओं की अभिव्यक्ति करने के लिए पर्याप्त थे। सूबेदारों के यहाँ के कुछ चित्रों का समावेश श्री सुन्दरलाल के ग्रन्थ "भारत में अंग्रेजी राज्य" में हुआ है। वहीं के एक चित्रकार का बनाया हुआ एक रंगीन चित्र इस ग्रन्थ में दिया गया है, जिसमें कलम की बारीकी, रंगों का समन्वय और भावों का प्रकटीकरण बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। इस चित्र पर कवि बिहारी का निम्न-लिखित दोहा बहुत उपयुक्त जान पड़ता है —

पाय महावर देन को नाइन बैठी आय।
पुनि-पुनि जानि महावरी एँड़ी मींड़त जाय॥

भोंसलों के यहां के अनेक चित्र उनके राजवाड़े में आग लगने से सन् १८६० में नष्ट हो गये। उनके यहां की कुछ प्राचीन पुस्तकों में, जैसे "दुर्गा-सप्तशती" और "रुक्मणी-हरण" आदि में सुन्दर चित्र सुरक्षित हैं। ये चित्र अनेक रंगों के मेल से बने हैं और इनमें सुनहला रंग भी दिया गया है। सैकड़ों वर्ष पुराने हो जाने पर भी इनका रंग ज्यों का त्यों है। अधिकांश पुस्तकें इस समय नागपुर संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन चित्रों की कारीगरी देखने योग्य है।

प्रान्त के प्राचीन चित्रों पर मुगल और राजपूत शैली का प्रभाव अधिक दिखलाई पड़ता है, परन्तु १९वीं शताब्दी में इन कलाओं का ह्रास होने लगा, जिसका कारण भारत पर विदेशी सत्ता का अधिकार और उसके द्वारा देश की संस्कृति एवं कला पर आघात होना था। पाश्चात्य शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने पर लोगों में भारतीय कला के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा होने लगा। सरकार की ओर से बम्बई और कलकत्ता में कला की शिक्षा देने के लिए जिन विद्यालयों की स्थापना हुई, उनके द्वारा भी पाश्चात्य कला को ही प्रोत्साहन मिला और एक वह समय था जब देश में रवि वर्मा जैसे कलाकारों के चित्र आदर पाने लगे थे। रवि वर्मा के चित्रों पर पाश्चात्य परम्पराओं और तड़कीले-भड़कीले रंगों का प्रभाव था।

स्वदेशी आन्दोलन ने देश की जनता का ध्यान केवल स्वदेशी वस्तुओं की ओर ही नही आकर्षित किया, वरन् भारतीय संस्कृति और कला के प्रति भी लोगों की अभिरुचि बढ़ने लगी। इस क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अरविन्द घोष जैसे लोगों की वाणी और कलम ने बहुत जबर्दस्त कार्य किया। भारतीय नही, पाश्चात्य-कलाकारो का ध्यान भी भारतीय चित्रकला की ओर आकर्षित हुआ और आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर तथा ई. वी. हेवले के प्रयत्नों से भारतीय चित्रकला के गौरव को पुन. प्राण-प्रतिष्ठा मिलने लगी। आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, भारतीय कला के नवप्रतिष्ठापक और अन्यतम कलाकार के रूप मे कभी भुलाये नही जा सकते। उनकी चित्रकला मे पूर्वीकला की अभिनव परम्परा प्रस्फुटित हुई जिसने श्री अरविन्द घोष, डाक्टर आनन्द कुमार स्वामी और ई. वी. हेवले जैसे विद्वानो को भारतीय कला की प्रतिष्ठा प्रकट करने मे विशेष सहयोग प्रदान किया।

नन्दलाल वसु, असित कुमार हालदार, वेंकटप्पा, समरेन्द्रनाथ और शैलेन्द्रनाथ दे आदि अवनीन्द्रनाथ के प्रमुख शिष्यो ने अपने गुरु का सन्देश भारत के कोने-कोने मे पहुँचाया। भारत के सुप्रसिद्ध चित्रकार शारदाचरण उकील और रामेश्वर प्रसाद वर्मा के चित्रों ने "इण्डिया हाउस" को शोभा बढ़ाई। नन्दलाल वसु, अवनीन्द्रनाथ के प्रमुख शिष्य हैं और आपके चित्रों में भारतीय चित्रकला की आत्मा बोलती है। आपकी शैली का प्रभाव इस समय सभी प्रान्तों के चित्रकारो पर पड़ रहा है, जिससे हमारे प्रान्त के चित्रकार भी मुक्त नही हैं और यह कहना पड़ेगा कि नन्दलाल वसु के सम्पर्क मे आने पर हमारे प्रान्त के तरुण-चित्रकारो मे नवचेतना पैदा हो गई है।

गुजरात के श्री सोमालाल शाह और कनु देसाई भी इस युग के प्रमुख चित्रकार हैं, परन्तु उनकी कला दूसरे प्रांतों पर इतना प्रभाव नही डाल सकी जितना बंगाल के कलाकारों का पड़ा। इस प्राचीन और नवीन सधिकाल के बीच हमारे यहां के कुछ चित्रकार प्रमुख रूप से सामने आते हैं। श्री गणेशराम मिश्र (रायपुर निवासी) प्रात के पुराने चित्रकार हैं। आपके चित्र 'माधुरी' और 'श्री शारदा' जैसे पत्रों मे छपते रहे हैं। किसी समय आपने राष्ट्रीय भावनाओं का भी अपने चित्रो मे अच्छा अन्कन किया।

स्व. उत्तमसिह तोमर प्रांत के शिक्षा विभाग के एक उच्च अधिकारी थे। हाल ही में आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी चित्रकला मे भावों की सुन्दर अभिव्यंजना और रंगों का संतुलित प्रयोग आकर्षक रूप में मिलता है। दृश्य चित्रण में भी आप अत्यन्त कुशल थे। आपके द्वारा बनाया गया भेड़ाघाट (जबलपुर) का एक चित्र बड़ा स्वाभाविक और हृदयग्राही है। इस ग्रंथ मे प्रकाशित आपका 'मीरा' (रंगीन चित्र) आपकी शैली और कला निपुणता पर प्रकाश डालता है।

आचार्य नन्दलाल वसु की शैली पर चित्रांकन करनेवाले कलाकारो मे जबलपुर के व्योहार राममनोहर सिंह तथा अमृतलाल वेगड, मुल्ताई के श्री दीनानाथ भार्गव, नागपुर की कुमारी रीता चौधरी और धमतरी के श्री लक्ष्मी नारायण पचौरी मुख्य हैं। इनकी कला में आचार्य वसु की कला का सुन्दर प्रतिविम्ब मिलता है।

इधर कुछ वर्षों से श्री विनायक मासोजी भी नागपुर आ गये हैं। आप बीस वर्षो तक शांतिनिकेतन कला भवन मे अध्यापक रह चुके हैं और अपने दीर्घकालीन अनुभव एवं साधना के फलस्वरूप आपने चित्रकला की शिक्षा तथा अंकन में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली है। आप एक अत्यन्त कुशल चित्रकार है और प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण मे [illegible] निपुणता रखते हैं। हिमालय की प्राकृतिक और पार्वतीय सुषमा का सजीव और कमनीय चित्रण आ[illegible] कला में मिलता है। शांतिनिकेतन के विभिन्न भवनो की दीवालो पर अंकित आपके चित्र दर्शकों को विमोहित कर देते हैं। गुरुदेव रवीद्रनाथ के 'नृत्य नाटच' तथा रंगमंच की रूपसज्जा को संवारने में मासोजी ने अपनी मौलिक सूझ एवं कलामंडित प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया है।

व्योहार राममनोहर सिंह.—शांतिनिकेतन में नन्दलाल वसु के निर्देशन में चार वर्षो की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आपने एक वर्ष तक भारत मे प्रचलित भित्ति-चित्रों की विभिन्न शैलियो तथा अंकन-पद्धतियों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। शांतिनिकेतन के छात्रावास में 'बुद्धजन्म' भित्ति-चित्र का चित्रण और भारतीय संविधान की हस्तलिखित प्रति को अलंकृत करने में आपका सहयोग रहा। एक वर्ष तक शांतिनिकेतन के भित्ति-चित्र-अंकन निपुण शिक्षको के साथ रहकर आपने जबलपुर के 'शहीद स्मारक' की दीवालों पर 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' की प्रमुख घटनाओं का चित्रण किया। अखिल भारतीय चित्र प्रदर्शनी, नयी दिल्ली, में आपको एक चित्र पर [illegible] पुरस्कार मिला। इस ग्रंथ में सम्मिलित आपके द्वारा बनाये गये रंगीन चित्र मे 'मेघदूत' का एक काल्पनिक दृश्य है, जिसमें मेघ अलकापुरी में यक्ष की विरहिणी पत्नी के पास पहुंचता है।

श्री अमृतलाल वेगड़—शांतिनिकेतन में चित्रकला की शिक्षा प्राप्त करने के बाद से आप जबलपुर के कलानिकेतन में कलाशिक्षक का कार्य कर रहे हैं। स्कूल के बच्चों में कला के प्रति उत्साह पैदा करने में आपने सफलता प्राप्त की है। 'दामोदर घाटी योजना' के बोकारो स्थित विद्युत केंद्र के लिये भित्तिचित्र तैयार करने में आपका सहयोग रहा।

श्री दीनानाथ भार्गव—शांतिनिकेतन की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आप प्रांत के मुल्ताई स्थान में मौन कला साधना कर रहे हैं और प्रचार से कोसों दूर हैं। आपके चित्रों में स्वाभाविकता और भावों की सुकुमारता विशेष रूप से पाई जाती है।

कुमारी रीता चौधरी—आप नागपुर हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री बी० के० चौधरी की सुपुत्री हैं। जनता के समक्ष अपनी कला को उपस्थित करने में आप विशेष संकोच अनुभव करती हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में दिया गया आपका चित्र 'गड़रिया' ग्रामीण जीवन का सुन्दर चित्रण करता है। आपके चित्रों में कला की अभिव्यक्ति मधुर ढंग से होती है। आपने शान्ति-निकेतन में रहकर चार वर्षों तक शिक्षा पायी। इस समय आपकी अवस्था लगभग १८-१९ वर्षों की है।

श्री लक्ष्मीनारायण पचौरी—आप गत वर्ष ही शांतिनिकेतन से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त कर अपने निवास-स्थान धमतरी आये हैं। विद्यार्थी जीवन में होनहार कलाकार के लक्षण आपमें स्पष्ट दिखलाई पड़ते थे। भविष्य में प्रांत को आपसे बहुत आशाएं हैं।

श्री रुद्रकुमार झा—शांतिनिकेतन के अतिरिक्त प्रांत के कुछ चित्रकारों ने जयपुर स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा प्राप्त की है, जिसमें आप भारतीय शैली के कलाकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आप आजकल छिंदवाड़ा के आदिवासी संग्रहालय के लिये आदिवासियों के चित्रांकन में संलग्न हैं।

श्रीमती बुलबुल मित्रा—आप जबलपुर की संगीत और मूर्तिकला के साथ साथ चित्रकला में भी दक्षता रखती हैं। आपने 'भैरवराग' के संबंध में कई चित्र बनाए, जिनमें कला का उत्कृष्ट रूप मिलता है। रागनियों का चित्रांकन भारत की प्राचीन परम्परा है और इस परम्परा का श्रीमती मित्रा ने नये ढंग और नये रूप में उपस्थित करने में सफलता प्राप्त की है।

जबलपुर के प्रांतीय शिक्षण महाविद्यालय के प्रिंसिपाल श्री दास और श्री परांडेकर—आप दोनों अच्छे चित्रकार हैं। श्री दास का एक चित्र पेरिस की प्रदर्शनी में दिखलाया गया था। आपको चित्रों पर कई बार प्रदर्शनियों में पुरस्कार भी मिल चुका है। आप की शैली पर शांतिनिकेतन का प्रभाव जान पड़ता है, जबकि श्री परांडेकर पर पाश्चात्य शैली का प्रभाव पड़ा है। पाश्चात्य शैली का प्रभाव होने पर भी इनके चित्रों में पूर्णरूप से भारतीयता का लोप नहीं होता।

श्री रजा—आप लैंडस्केप आर्टिस्ट के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और 'इम्प्रेशन एक्सपर्ट' माने जाते हैं। आपने बम्बई स्कूल आफ आर्ट से फाइनल डिप्लोमा प्राप्त किया और दो वर्ष तक नागपुर के स्कूल आफ आर्ट में उसके पूर्व विद्यार्थी रहे। पिछले चार वर्षों से आप पेरिस में हैं।

श्री एम० ए० गड—आपने साइंस कालेज, नागपुर से बी० एससी० किया और फिर बी० टी० करने के बाद नागपुर के शिक्षण महाविद्यालय में एक वर्ष तक अध्यापक रहे। आपको 'मार्डनिस्ट' कलाकार माना जाता है और इस समय बम्बई में हैं।

श्री जी० के० जागीरदार—आप अमरावती जिला के निवासी हैं। मध्यप्रदेश सरकार से आपको कला की शिक्षा के लिये छात्रवृत्ति प्राप्त हुई और सन् १९३८ में आपने बाम्बे स्कूल आफ आर्टस् से डिप्लोमा प्राप्त किया। इसके बाद भी आपने शिक्षा जारी रखी और एम० ए० तथा बी० टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९४१ से आप सरकार के राजनीतिक विभाग में चित्रकला के सहायक तथा नागपुर विश्वविद्यालय के प्रमुख के रूप में कार्य कर रहे हैं। आप 'पोर्ट्रेट' विशेषज्ञ माने जाते हैं।

श्री बसंत दहाडराय—नागपुर की पोलीटेक्निक संस्था में अध्यापक हैं। आपने चित्रकला की शिक्षा बम्बई में प्राप्त की। आप आधुनिक शैली के चित्रकार हैं और आधुनिक भारतीय चित्रकला में विशेष अभिरुचि रखते हैं।

किसान परिवार

शिल्पी श्री पंधे गुरुजी, खामगांव
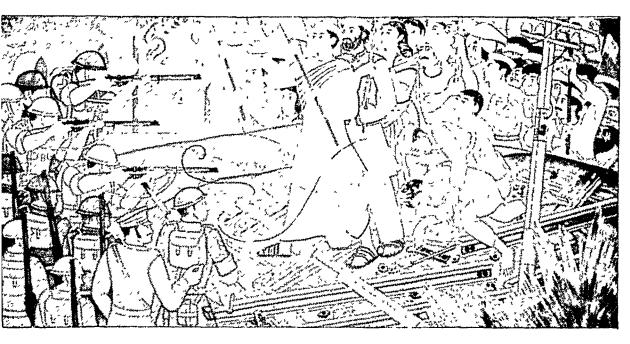
स.न् ४२ का आन्दोलन ● चित्रकार: राम मनोहरसिंह

विविध
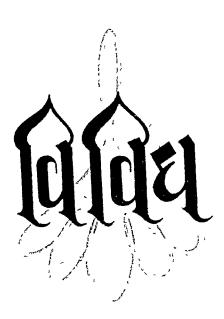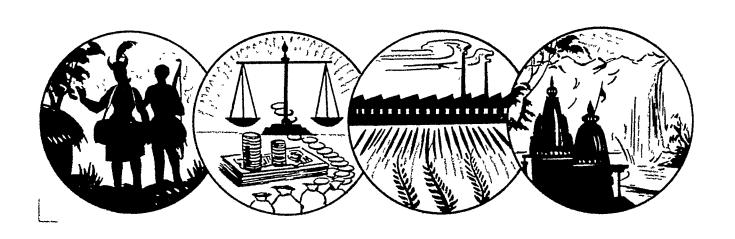
मौलिप्रान्ते यस्य विन्ध्यो विभाति
पुण्यश्लोका नर्मदा स्कन्धदेशे।
गोदावर्या धृतपादारविन्दो
भूयाद्देशोऽयं महाशक्तिपुञ्जः॥
नानाद्रव्यैः पूरिता यस्य भूमि-
रुद्योगानां यत्र भूरि प्रतिष्ठा।
यन्नेतारो लोकसेवानुरक्ता
मूर्तः स्वर्गो नः स मध्यप्रदेशः॥

—श्री शिवनाथ मिश्र

गृहजीवन

मध्यप्रदेश के प्राकृतिक और आर्थिक साधन

श्री. पन्नालाल बल्दुआ

(मध्यप्रदेश के साख्यिकी विभाग के सहयोग से)

मध्यप्रदेश देश के मध्यभाग मे स्थित होने के कारण स्वनाम की सार्थकता सिद्ध करता है। १३०,२७२ वर्ग मीलों मे फैला हुआ यह प्रदेश भारत का सबसे बड़ा राज्य है। क्षेत्रफल की दृष्टि से वह ब्रिटिश द्वीपपुज तथा इटली से बड़ा और जापान एवं जर्मनी से कुछ ही छोटा है।

गत शताब्दी के साठवें वर्ष मे प्राचीन सागर, नर्मदा तथा नागपुर विभागो के सम्मिलन से "मध्यप्रान्त" नाम के अन्तर्गत इस प्रदेश का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् सन् १९०३ मे इसमे बरार जोड़ दिया गया और तब से यह "मध्यप्रान्त और बरार" के नाम से पुकारा जाने लगा। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सन् १९४८ मे इस प्रदेश के विस्तार को एक नवीन गति मिली, जब इसमे बस्तर, काकेर, रायगढ़, सक्ती, उदयपुर, जशपुर, सरगुजा, कोरिया, चागभाकर, कवर्धा, खैरागढ़, नादगाव और छुईखदान आदि १४ देशी रजवाडे भी अन्तर्लीन कर दिये गये। प्रशासनीय दृष्टि से सन् १९४८ तक यह प्रदेश चार कमिश्नरियो तथा १९ जिलो मे विभाजित था।। किन्तु अब इसमे २२ जिले हैं जो कि १११ तहसीलों मे विभाजित किये गये हैं। गणराज्य दिवस, १९५० से अब यह सम्पूर्ण भू-भाग "मध्यप्रदेश" कहलाता है।

यह राज्य १८° उत्तर अक्षांश से २४° उत्तर अक्षाश तथा ७६° पूर्व देशाश से ८४° पूर्व देशाश तक फैला हुआ है। लम्बाई व चौड़ाई मे अधिक अन्तर न होने से इसका आकार वर्गाकार है। सन् १९४१ की जनगणना के अनुसार उसका कुल क्षेत्रफल ९८,५७५ वर्गमील था; किन्तु अब वह बढ़कर १३०,२७२ वर्गमील हो गया है जो कि सम्पूर्ण देश के क्षेत्रफल का ९.७५ प्रतिशत है।

प्राकृतिक रचना की दृष्टि से इस प्रदेश के पाच स्वाभाविक विभाग हो सकते है, यथा—विन्ध्याचल की उच्चसम-भूमि, नर्मदा का कछार, सतपुड़ा की उच्चसमभूमि, मैदानी भाग (जिसमे बरार, नागपुर व छत्तीसगढ का मैदान तथा महानदी का कछार सम्मिलित है), और दक्षिण की उच्चसमभूमि जिसमे अजता, सिहावा तथा बस्तर की पर्वत-श्रेणिया शामिल है। नर्मदा, ताप्ती, वर्धा, वैनगगा, इन्द्रावती, शिवनाथ, हसदेव तथा महानदी यहा की प्रमुख नदियां हैं, जो कि राज्य के लिये सिचाई, यातायात और जलविद्युत् के साधन प्रस्तुत करती हैं। राज्य का ४८ प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है, जो उसके विभिन्न उद्योगो और व्यवसायो को बहुमूल्य कच्चे माल की पूर्ति करता है।

वर्षा इस राज्य मे मुख्यत अरब सागर से आनेवाली मानसून हवाओ द्वारा असमान रूप से होती है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी भागों मे प्रतिवर्ष वर्षा ३०" होती है, जबकि पूर्वी भागो मे ६०" तक। राज्य के पूर्वी भागो मे थल से लौटती हुई उत्तरी-पूर्वी हवाओ द्वारा ठण्ड मे भी कुछ वर्षा हो जाती है। औसत रूप से यहां ४९" वर्षा होती है। जलवायु की दृष्टि से इस प्रदेश के स्थूलरूप से दो विभाग हो सकते है—उच्चसमभूमिया और मैदानी भाग। उच्चसम-भूमिया सामान्यत: ठण्डी रहती हैं और मैदानी भाग अपेक्षाकृत गर्म।

उपजाऊ और उपयोगी भूमि की दृष्टि से भी राज्य की स्थिति संतोषजनक है। वैसे तो यहां विभिन्न प्रकार की भूमि उपलब्ध है, किन्तु इम्पीरियल एग्रीकल्चरल रिसर्च इन्स्टीटयूट द्वारा तैयार किये गये भारत के भूमि-मानचित्र के अनुसार यहा मुख्यत: गहरी काली भूमि, काली भुरभुरी भूमि, काली चिकनी भूमि, काली रेतीली भूमि, लाल रेतीली भूमि और लाल और पीली भूमि पाई जाती है। गहरी काली भूमि (Deep Black Soil) गेहूं की फसल के लिये अत्यन्त उपयोगी होती है। यह अधिकाशत. नर्मदा और पूर्णा नदियो के कछारो मे पाई जाती है। काली भुरभुरी भूमि (Black Clay Soil), जिसे "कपास की भूमि" (Black Cotton Soil) भी कहते है, कपास तथा ज्वार की फसलो के लिये बहुत उपयोगी होती है। इस प्रकार की भूमि बरार और सागर तथा वर्धा जिले के

पश्चिमी भागों में प्राप्य है। काली चिकनी भूमि (Black Loomy Soil) सतपुड़ा पर्वत-श्रेणियों तथा उसकी उच्चसमभूमियों में पाई जाती है। यद्यपि कृषि की दृष्टि से यह विशेष उपयोगी नहीं है, तथापि प्रदेश की मूल्यवान वन-सम्पत्ति इसी भूमि द्वारा पोषण पाती है। काली रेतीली भूमि (Black Sandy Soil) जबलपुर जिले के दक्षिणी भाग और नागपुर जिले के पूर्वी भाग से लेकर छत्तीसगढ के अधिकांश भागों में उपलब्ध है। लाल रेतीली भूमि (Red Sandy Soil) अधिकांशत रायपुर जिले के दक्षिणी भाग, चांदा जिले के पूर्वी भाग तथा बस्तर और सरगुजा की उच्चसमभूमियों में पाई जाती है। इस प्रकार की भूमि में साल के सघन वन अधिक होते हैं तथा सपाट खुले मैदानी भागों में चावल की फसल पैदा की जाती है। लाल और पीली भूमि (Red and Yellow Soil) कटनी के आसपास पाई जाती है और चावल की फसल के लिये बहुत उपयुक्त होती है। अन्तिम प्रकार की भूमि मिश्रित भूमि (Mixed Soil) है जो मुख्यत रायगढ जिले के पूर्वी भाग में पाई जाती है।

*जन-सम्पत्ति की दृष्टि से भी मध्यप्रदेश भरपूर है। उसके १८२ नगरों व ४८,४४४ ग्रामों में २१,२४७,५३३ जनसंख्या निवास करती है। कुल जनसंख्या में से ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या क्रमश ८७ तथा १३ प्रतिशत है। अत स्पष्ट है कि अधिकांश मध्यप्रदेश अपने बिखरे हुए ग्रामों में ही बसा हुआ है उल्लेखनीय है कि ग्रामीण जनसंख्या में पुरुष-संख्या की अपेक्षा स्त्री-संख्या अधिक है किन्तु नगरीय जनसंख्या में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है, यथा—ग्रामों में जबकि ९,१६७,८५० पुरुष व ९,२०२,३४४ स्त्रियां रहती है, तब शहरों में १,४९४,९६२ पुरुष व १,३८२,३७७ स्त्रियां हैं। किन्तु औसत रूप से राज्य में प्रति हजार पुरुष पीछे स्त्रियों की संख्या ९९३ है, अर्थात् इस दृष्टि से पुरुष-संख्या की अपेक्षा स्त्री-संख्या कम है।

राज्य में जनसंख्या वृद्धि भी काफी तेजी से हो रही है। उदाहरणार्थ विगत ५० वर्षों में उसकी जनसंख्या लगभग ७७ लाख अधिक हो गई है। निम्नतालिका गत ५० वर्षों में राज्य की जनसंख्या-वृद्धि की गति चित्रित करती है —

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या (लाखों में)	दशवार्षिक वृद्धि प्रतिशतता ह्रास (–) अथवा वृद्धि (+)
१९०१	१३५	
१९११	१५९	+१७ ७
१९२१	१५८	—० ६
१९३१	१७८	+१२ ६
१९४१	१९६	+१० १
१९५१	२१२	+८ २

राज्य की जनसंख्या के जीवनयापन के अनेक साधन हैं, किन्तु उनमें से कृषि विशेष महत्वपूर्ण है, उदाहरणार्थ उसकी १६१ ५ लाख, अर्थात ७६ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही आश्रित है। कृषि पर निर्भर करनेवालों में से अधिकांशत तो कृषक व उनके आश्रित ही है जो स्वयं चावल, ज्वार, गेहूं, चना, तिल्हन, दालें तथा कोदो व कुटकी, आदि प्रमुख फसलें पैदा कर अपनी जीविका चलाते है और कुछ भूमिहीन श्रमिक व उनपर निर्भर करनेवाले है जो कृषकों की मजदूरी कर अपना पेट पालते हैं। इसी तरह राज्य की लगभग १० ६ लाख जनसंख्या अन्य उत्पादन के साधनों पर अवलंबित है। इस श्रेणी में अधिकांशत सूती कपडा, कागज, शीशा, सीमेंट और मृच्छिल्प प्रभृति वहत् उद्योगों तथा हाथ-करघा और बीडी बनाने, चमडा पकाने व चमडे के सामान बनाने तथा मिट्टी के बर्तन बनाने

*जनसंख्या से सम्बन्धित समस्त आंकडे जनगणना, १९५१ पर आधारित हैं।

सदृश कुटीर उद्योगों में लगी हुई जनसंख्या, कोयला, मेगनीज, वाक्साइट, चूना, लोहा, अभ्रक और डोलेमाइट जैसी खानो मे काम करनेवाली जनसंख्या तथा वनोद्योग (लकड़ी काटना, वनोपजे इकट्ठी करना, इत्यादि) मे सेवायुक्त जनसख्या वाणिज्य, यातायात और अन्य सेवाओ व विविध साधनो पर निर्भर करती है। इस तरह जीविका के अनुसार राज्य की समस्त जनसंख्या का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है :—

	कुल जनसख्या (लाखो मे)	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
(अ) कृषि साधनो पर अवलम्बित—		
(१) भू-स्वामी कृषक व उनके आश्रित	१०५.२	४९.५१
(२) पूर्णत. अथवा मुख्यत. दूसरो की भूमि पर खेती करनेवाले व उनके आश्रित।	९.५	४.४७
(३) खेती करनेवाले श्रमिक व उनके आश्रित	४३.४	२०.४१
(४) खेती न करनेवाले भू-स्वामी और कृषि-भाड़ा प्राप्त करनेवाले कृषक व उनके आश्रित।	३ ४	१.६१
योग ...	१६१ ५	७६.००
(ब) गैर-कृषि साधनो पर अवलम्बित—		
(१) कृषि के अतिरिक्त अन्य उत्पादन	२२.६	१०.६०
(२) वाणिज्य	९.३	४.३९
(३) यातायात	३ १	१.४७
(४) अन्य सेवाएं व विविध साधन	१६ ०	७.५४
योग ...	५१.०	२४.००
कुल योग ...	२१२.५	१००.००

राज्य मे प्राय: सभी धर्मो और मतो के माननेवाले रहते हैं, जिनमे से प्रमुख धर्मो के अन्तर्गत यहां २०,२१५,६०७ हिन्दू, ८००,७८१ मुसलमान, ८८,८०२ ईसाई, ३३,३९६ सिख और ९६,२५१ जैन निवास करते हैं। अनुसूचित व आदिमजातियो की जनसंख्या भी यहा काफी (क्रमश. २,८९८,९६८ व २,४७७,०२४) है। इसी प्रकार राज्य मे विस्थापितो की संख्या भी वहुत वढ गई है यथा—फरवरी १९५१ तक यहा कुल ११२,७७१ विस्थापित व्यक्ति आ चुके थे, जिनमे से पुरुष तथा स्त्रियो की संख्या क्रमश: ६१,०७३ व ५१,६९८ थी। उल्लेखनीय है कि अव तक अधिकांश विस्थापित जीवन-यापन के विभिन्न साधनों में लग चुके हैं।

शिक्षा के उत्तरोत्तर विकास से मध्यप्रदेश मे साक्षर व्यक्तियो की सख्या में भी काफी वृद्धि हो रही है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार यहां कुल २८५,२१४ साक्षर है, जिनमे से साक्षर पुरुष व स्त्रियों की संख्या क्रमश: २३२,२६५ व ५२,९४६ है। दूसरे शब्दों में राज्य की प्रतिशत साक्षरता १३ ५ है जवकि पुरुष व स्त्रियों की यही प्रतिशतता क्रमश: २१ ८ व ५ १ हैं। राज्य के विभिन्न जिलों की प्रतिशत साक्षरता की तुलना मे अमरावती का स्थान सर्वप्रथम (२४ ५ प्रतिशत) आता है। तत्पश्चात् नागपुर (२४.४ प्रतिशत), अकोला (२३.२ प्रतिशत), वर्धा (२१.२ प्रतिशत) और वुलढाना (२० ८ प्रतिशत), आदि का क्रम आता है। उल्लेखनीय है कि राज्य के सरगुजा और वस्तर जिलो मे सवसे कम प्रतिशत साक्षरता (क्रमश· ३.७ व ४.३) है। किन्तु कुछ वर्षो से राज्य सरकार की वहुमुखी शिक्षा-विकास योजनाओ की कार्यान्विति के फलस्वरूप इन जिलो मे तथा राज्य के अन्य भागों में साक्षरता के क्षेत्र मे प्रगति हो रही है।

इसी सिलसिले में राज्य की भाषाओ के विषय में कुछ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। यहा लगभग ३७७ भाषाए व उपभाषाए मातृभाषा के रूप मे वोली जाती ह, तथापि हिन्दी और मराठी बोलनेवाली जनसख्या अधिक है। राज्य म कुल १०,३२०,८७५ व्यक्ति हिन्दी व ६,१८६,४३८ व्यक्ति मराठी बोलते ह, अर्थात् हिन्दी और मराठी बोलनेवाला की प्रतिशतता क्रमश ८८५७ व २९१२है। अन्य भाषाओ में कुछ हिन्दी की उपभाषाए ह। राज्य सरकार ने हिन्दी और मराठी को राज्य भाषाए घोषित कर दिया है।

मध्यप्रदेश में कृषि

सदा से ही कृषि इस देश के सम्पूर्ण आर्थिक एव सामाजिक जीवन का केन्द्र-बिन्दु रहा है। आज भी उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग सबधी हमारी समस्त आर्थिक क्रियाए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि पर आधारित है। यथार्थ म "भूमि" ही हमारी सबसे मूल्यवान सम्पत्ति है और खेती जीविका का प्रमुख साधन।

इस भू भाग को प्रकृति ने विशाल कृषि-योग्य भूमि की देन दी है। इस समय राज्य की लगभग ४० प्रतिशत भूमि पर खेती होती है और लगभग ८ प्रतिशत भूमि वैज्ञानिक कृषि पद्धतियो द्वारा कृषि-योग्य बनाई जा सकती है। *राज्य के भू-अभिलेख विभाग के अनुसार सन १९५२-५३ में उसकी कुल ८३० लाख एकड भूमि में से ३८५ लाख एकड भूमि कृषि-योग्य थी, जबकि २९९ लाख एकड भूमि पर खेती की गई। इन अको से स्पष्ट है कि इस प्रदेश में कृषि-भूमि के विस्तार के लिये अभी भी काफी क्षेत्र पडा हुआ है।

राज्य की विशेष भौगोलिक स्थिति, भूमि के प्रकार और प्रमुख फसलो के उत्पादन को दृष्टिगत रख उसे स्थूल रूप से तीन प्रकार के क्षेत्रो में विभाजित किया जा सकता है, यथा—(अ) कपास व ज्वार का क्षेत्र, (ब) चावल का क्षेत्र और (स) गेहू का क्षेत्र। इन क्षेत्रो के अन्तगत आनेवाली कृषि भूमि और प्रमुख फसलो का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

कपास व ज्वार का क्षेत्र—इस क्षेत्र में बरार के अकोला, अमरावती, बुल्डाना और यवतमाल जिलो के अतिरिक्त वर्धा, नागपुर और निमाड जिले तथा वरोरा (चादा जिला) और सौंसर (छिंदवाडा जिला) तहसीले आती है। इसका अधिकाश भाग दक्षिणी पठार मे समाविष्ट है, जिसमें अधिकतर कपास की काली भूमि पाई जाती है। यह भूमि अपनी उवरा शक्ति और कुछ विशेष गुणो के लिये प्रसिद्ध है। वर्षाकाल में वह इतनी आद्रता सचित कर लेती है कि वष भर बिना सिचाई के भी उपजाऊ बनी रहती है। कपास, ज्वार, तिल्हन और मका, आदि खरीफ फसले इस भूमि पर बहुतायत से होती है।

चावल का क्षेत्र—इसके अतगत रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, भडारा, बालाघाट और भूतपूर्व देशी रियासतो के क्षेत्र, चादा जिले का अधिकाश भाग और जबलपुर तथा सागर जिलो के कुछ भाग आते ह। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की जमीनें पाई जाती है, और इसीलिये यहा अनेक प्रकार की फसले विभिन्न कृषि-पद्धतिया द्वारा उत्पन्न की जाती ह, किन्तु चावल ही इस क्षेत्र की प्रमुख फसल है। यहा चावल की खेती के लिये अनेक पद्धतिया अपनाई जाती है, जिनम से रोपण विशेष प्रचलित है। बालाघाट, चादा और भडारा जिले मे चावल की खेती इसी पद्धति द्वारा की जाती है। किन्तु इसकी सफलता के लिये पर्याप्त जल-पूर्ति नितान्त आवश्यक है। चावल पैदा करने की "बिआसी पद्धति" भी अधिक लोकप्रिय है। विशेष तौर पर रायपुर, बिलासपुर और दुर्ग में यह बहुत प्रचलित है। इसी तरह अन्य क्षेत्रो में भूमि के प्रकार, वर्षा और सिचाई की सुविधाओ के अनुसार विभिन्न पद्धतिया अपनाई जाती ह।

गेहू का क्षेत्र—इस क्षेत्र में सागर, जबलपुर, होशगाबाद, मडला और मुलताई तथा सौंसर तहसील को छोडकर क्रमश बैतूल व छिंदवाडा जिले आते ह। चावल क्षेत्र के समान इस क्षेत्र में भी विभिन्न प्रकार की भूमि पाई जाती ह। राज्य क उत्तरी भाग म विंध्याचल की पवतश्रेणिया फैली है, जो कडी और कही कही रेतयुक्त पथरीली भूमि से बनी हुई ह। कुछ भू-क्षेत्रो के अतिरिक्त अधिकाश भाग कृषि के लिये अयोग्य ह। विंध्याचल के दक्षिण में नर्मदा नदी का कछार आता ह जिसकी काली चिकनी मिट्टी गेहू की फसल के लिये बहुत उपयुक्त है। जबलपुर और होशगाबाद जिलो के विस्तृत गेहू के क्षेत्र इसी भाग में आते ह। नर्मदा कछार के दक्षिण म सतपुडा पवत की शैलमालाए फैली हुई है, किन्तु इनकी भूमि खेती की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नही है, यद्यपि हमारे अमूल्य खनिज पदार्थों के विपुल सचय इसी क्षेत्र म भूगर्भित है। गेहू के क्षेत्र में गेहू के अतिरिक्त चना, मसूर, तेवडा और मटर, आदि रबी

---

*वन नीति समिति (मध्यप्रदेश शासन) का प्रतिवेदन।

फसलें वहुतायत से उत्पन्न की जाती है। इस समय यद्यपि इस क्षेत्र में सिचाई की सुविधाएं वहुत ही स्वल्प हैं, किन्तु वैतूल, छिदवाड़ा और सागर जिले के कुछ भागो मे सिचाई सफलतापूर्वक की जा सकती है। दो-फसली भूमि के विस्तृत क्षेत्र इस विभाग की अनोखी देन है। इस समय कुछ भू-भागो पर दो-फसली खेती की जाती है; किन्तु अपेक्षित सिचाई व सुविधाएं उपलब्ध होने पर इस दिशा मे अधिक उन्नति की जा सकती है।

सम्पूर्ण देश की तुलना मे इस राज्य की कृषि-उत्पादन सम्बन्धी स्थिति संतोषजनक है। उदाहरणार्थ, इस राज्य का प्रति-व्यक्ति दैनिक उत्पादन १७ औंस है। इस दृष्टि से दूसरे राज्यो की तुलना मे उसका दूसरा स्थान आता है। इसी तरह प्रमुख फसलो के अन्तर्गत वोये गये क्षेत्रफल और उनके उत्पादन की दृष्टि से भी राज्य की स्थिति सतोषप्रद है, यथा—चांवल के अन्तर्गत वोये गये क्षेत्र और उसके उत्पादन की दृष्टि से उसका चौथा स्थान, कपास के क्षेत्र व उत्पादन की दृष्टि से दूसरा स्थान व गेहूं के क्षेत्र व उत्पादन की दृष्टि से उसका क्रमशः तीसरा व चौथा स्थान आता है, जवकि तिलहन के उत्पादन मे उसे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है।

कृषि-विकास योजनाएं

इस राज्य में प्रति-व्यक्ति भूमि का क्षेत्रफल तथा उसका प्रति एकड उत्पादन अन्य राज्यो अथवा देशो की तुलना मे काफी कम है। उदाहरणार्थ, मध्यप्रदेश मे गेहूं का प्रति एकड उत्पादन केवल ३०५ पौड ही है, जवकि उत्तरप्रदेश, वम्वई, अमेरिका, इटली और जापान की यही मात्रा क्रमश. ७८६, ४४७, ८४६, १,३८३ और १,७१३ पौड है। इसी तरह चावल का प्रति एकड उत्पादन भी यहा केवल ४९६ ही है, जवकि उत्तरप्रदेश का यही उत्पादन ६२९ पौड, मद्रास का १,०६८ पौड, इटली का २,९६३ पौड और जापान का २,०५३ पौड है। अतः इस राज्य का भी प्रति एकड उत्पादन उपरोक्त राज्यो अथवा राष्ट्रों के समकक्ष लाने के लिये यहा आधुनिकतम एव उत्कृष्ट कृषि-पद्धतियो, पर्याप्त सिंचाई सुविधाओ, उत्तम खाद और वीज की व्यवस्था, पड़ती भूमि के कृष्यकरण, भूमि के संरक्षण, खेतो की चकवदी, कृषि-अन्वेषण और समुचित कृषि-साख की पूर्ति, आदि की व्यवस्था अनिवार्य है। राज्य की वर्तमान कृषि-विकास योजनाओ मे इन सभी कृषि विषयक कार्यो को स्थान दिया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की कृषि-विकास योजनाएं

राज्य की वर्तमान अधिकाश कृषि-विकास योजनाएं प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत आती हैं। योजना का उद्देश्य एक ओर तो राज्य मे खाद्यान्न-आत्मनिर्भरता लाना है, और दूसरी ओर सन् १९५५-५६ तक यहा २.८१ लाख टन खाद्यान्न और २,००० लाख वोझे कपास का अतिरिक्त उत्पादन वढाना है। दोनो ही उद्देश्यो से प्रेरित हो राज्य मे योजना के अन्तर्गत अनेक कृषि-विकास योजनाये वनाई गई जिन्हें सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा रहा है। इन योजनाओं के अन्तर्गत प्रस्तावित व्यय की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार है :—

कृषि-विकास योजनाये	विकास-व्यय लाख रुपयों मे (१९५१-५२ से १९५५-५६ तक)
(१) प्रशासन तथा विस्तार	८८ २७
(२) शिक्षा और प्रशिक्षण	६.४७
(३) अन्वेषण	१०.७९
(४) भूमि-सुधार और कृष्यकरण	६५३.५०
(५) गौण सिंचाई योजनाये	१६०.४०
(६) खाद और उर्वरक वितरण	२९४.४९
(७) वीज वितरण योजनाये	१७०.९२
(८) औजारों की पूर्ति	८ ५०
(९) अन्य योजनाये	२०.०६
योग	१,४१३.४०

सन् १९५३ ५४ तक इन योजनाओं पर कुल ९१६ ३७ लाख रुपये की राशि खर्च हो चुकी थी। इनके अन्तर्गत होनेवाले कार्य को स्थूलरूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(अ) स्थायी कृषि विकास के लिये सामान्य कृषि विकास कार्य और (ब) खाद्य समस्या के निवारणार्थ अधिक अन्न उपजाओ योजनाओं के अन्तर्गत किया जानेवाला कृषि विकास कार्य।

(अ) सामान्य कृषि विकास कार्य—

राज्य की कृषि व्यवस्था का पुनर्संगठन एवं स्थायी विकास करने के लिये यहा निम्नलिखित योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं —

(१) कृषि विभाग के विस्तार के लिये अतिरिक्त कर्मचारी,
(२) कृषि-सहायकों का प्रशिक्षण,
(३) कृषि अन्वेषणशाला का विस्तार,
(४) स्नातकोत्तर प्रशिक्षण,
(५) निदर्शन कामदारों का प्रशिक्षण,
(६) कृषि-अधिदर्शकों का प्रशिक्षण,
(७) उद्यानशास्त्र अनुविभाग, क्षेत्रिकी अनुविभाग तथा सांख्यिकी अनुविभाग की स्थापना,
(८) भूमि-संरक्षण तथा कृषि-भूमि का विस्तार,
(९) कृषि-यन्त्री अनुविभाग का विस्तार, और
(१०) पचमढ़ी उद्यान विकास योजना।

कृषि विकास योजनाओं की कार्यान्विति के लिये बड़ी तादाद में क्षेत्रिकी और निदर्शन कर्मचारियों की पूर्ति आवश्यक है। इस कार्य के लिये योजनावधि में ८३ ७५ लाख रुपये की राशि खर्च करने की व्यवस्था की गई है। दूसरी योजना के अन्तर्गत ३ ५३ लाख रुपये की निधि से कृषि विद्यालय का विस्तार किया जा रहा है, ताकि कृषि स्नातकों के शिक्षण व प्रशिक्षण की व्यवस्था हो सके। कृषि अन्वेषण कार्य को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से ४ लाख रुपये की लागत पर विभिन्न स्थानों में कार्यालय तथा प्रयोगशालायें खोलने का कार्य प्रगति पर है। स्नातकोत्तर प्रशिक्षण योजना का उद्देश्य भी कृषि अन्वेषण को प्रोत्साहन देना है। इस योजना के अन्तर्गत योजनावधि में १ ३४ लाख रुपये के व्यय से ५३ स्नातकों को देश की विभिन्न संस्थाओं में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण दिया जायेगा। निदर्शन कामदारों की प्रशिक्षण योजना १२० प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण देकर बन्द कर दी गई है। इसी प्रकार कृषि-अधिदर्शकों की प्रशिक्षण योजना भी इसी वर्ष ८० प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण देकर बन्द कर दी गई। सातवीं योजना के अन्तर्गत २ १६ लाख रुपये, १ ७३ लाख रुपये और १ १८ लाख रुपये की लागत पर क्रमशः उद्यानशास्त्र अनुविभाग, क्षेत्रिकी अनुविभाग और सांख्यिकी अनुविभाग खोले जाने की योजना है। इनमें से उद्यानशास्त्र अनुविभाग फलवृक्षों व सागभाजियों की खेती को प्रोत्साहन देगा व उनसे सम्बन्धित विषयों पर अनुसंधान करेगा, जबकि क्षेत्रिकी अनुविभाग फसलों का उत्पादन बढ़ाने व कृषि सम्बन्धी विभिन्न विषयों का अध्ययन करने का प्रयत्न करेगा। इसी तरह सांख्यिकी अनुविभाग कृषि-प्रयोग-क्षेत्रों के परीक्षणों से सम्बन्धित सम्यक्-सामग्री का संकलन विश्लेषण एवं निर्वचन करेगा। आठवीं योजना के अन्तर्गत ७ ४० लाख रुपये के व्यय से भूमि के कटाव को रोकने व पड़ती भूमि का कृष्यकरण करने के लिये एक अनुविभाग खोले जाने का प्रावधान किया गया है। कृषि-यन्त्री अनुविभाग की विस्तार योजना के लिये भी ७ ८६ लाख रुपये का व्यय प्रस्तावित है, ताकि वह अपने कृषि औजारों के नमूने बनाने, कुओं की बोरिंग करने व बिजली के पम्प बैठाने जैसे कार्यों को उचितरूप से सम्पन्न कर सके। अन्तिम योजना के अन्तर्गत १ ७२ लाख रुपये की निधि से पचमढ़ी को एक अच्छा स्वास्थ्य केन्द्र (हिल-स्टेशन) बनाया जा रहा है।

(ब) अधिक अन्न उपजाओ योजनाएं—

राज्य की पंचवर्षीय अधिक अन्न उपजाओ योजनाओं का उद्देश्य एक ओर तो उसकी प्रतिवर्ष बढ़नेवाली जनसंख्या का खाद्यान्न की पूर्ति करना है और दूसरी ओर अन्नाभाववाले राज्यों को खाद्यान्न का निर्यात करना है। इसी उद्देश्य से इन योजनाओं के अन्तर्गत खाद्यान्न उत्पादन सम्बन्धी वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

स्थायी योजनाएं.—स्थायी अधिक अन्न उपजाओ योजनाओं में भूमि-विकास और कृष्यकरण योजनाए आती हैं। भूमि-विकास योजनाओं के अंतर्गत रवी बन्धानों को बाधने, रवी क्षेत्रों को दो-फसली क्षेत्रों में वदलने और धान की खेती के लिये वंधान वांधने के कार्य आते हैं। इनमें से प्रथम दो कार्यो के लिये सरकार द्वारा कृषकों को ९०—९० रुपये व अंतिम कार्य के लिये ८४ रुपये प्रति एकड की दर से ऋण दिया जाता है। सन् १९४४-४५ से जून १९५३ तक ११७,३४१ एकड भूमि मे नये रवी वंधान वांधे गये व १२७,७०० एकड भूमि मे पुराने वंधानों को सुधारा गया। सन् १९५३-५४ में भी ४,१३३ एकड भूमि में वंधान बाधने का कार्य किया गया और सन् १९५४-५५ में दूसरी ३,००० एकड भूमि पर इसी कार्य को चालू किया गया। इसी तरह सन् १९५३-५४ तक २५,०११ एकड भूमि को दो-फसली भूमि में परिवर्तित किया गया जबकि सन् १९५४-५५ मे ५५,००० एकड क्षेत्र को दो-फसली भूमि बनाने के प्रयत्न जारी थे। धान की खेती के लिये भी वंधान वांधने के कार्य मे काफी प्रगति हुई है। सन् १९५३-५४ तक १०,३८४ एकड की भूमि मे ऐसे वंधान वांधे जा चुके थे।

कृष्यकरण का कार्य केन्द्रीय हलयत्र सगठन और मशीन हलयंत्र केन्द्र योजना के हलयंत्रों द्वारा किया जा रहा है। इसी उद्देश्य से कृषकों को हलयंत्र खरीदने के लिये पंचवार्षिक ऋण भी दिये जाते हैं। केन्द्रीय हलयंत्र संगठन के हल-यंत्रों द्वारा सन् १९५३-५४ तक २३६,१४४ एकड भूमि की जुताई की गई और सन् १९५४-५५ में ११०,००० एकड पर जुताई करने का कार्य किया जा रहा था। इसी तरह मशीन हलयत्र केन्द्र यो जना के हलयंत्रो द्वारा सन् १९५३-५४ तक १३१,२५० एकड भूमि जोती गई और सन् १९५४-५५ में ६४,८०० एकड भूमि पर जुताई करने का कार्य हो रहा था। साथ ही, सन् १९५३-५४ तक निजी हलयंत्रों द्वारा अपनी भूमि पर जुताई करवाने के लिये कृषकों को २१.०६ लाख रुपये के तकावी ऋण भी दिये गये।

स्थायी अधिक अन्न उपजाओ योजनाओं की दूसरी श्रेणी है छोटी सिंचाई योजनाएं जिनके अंतर्गत् तालावों और कुओं को खोदने व मरम्मत करने तथा रहटों और पानी के पम्पो को खरीदने के लिये कृषको को तकावी ऋण देने के कार्य आते हैं। इन योजनाओं के अंतर्गत् १९५१–५३ मे ५२३ तालाव व ७२४ कुएं खोदे गये तथा ६८५ रहट व ६४१ पम्प लगाये गये। इस समय इन योजनाओं का कार्य प्रगति पर है।

आवर्तक योजनाएं.—इनके अंतर्गत् खाद, उर्वरक तथा वीज वितरण योजनाएं आती हैं। सन् १९५४ मे खाद और उर्वरक वितरण योजना के अंतर्गत् १४,२६२ टन अमोनियम सल्फेट, २६,१५२ टन कम्पोस्ट, ५८८ फास्फेटिक फरटीलायजर और ७१९ टन उर्वरक मिश्रण वांटा गया। वीज वितरण योजनाओं के अतर्गत् गेरुआ निरोधक गेहूं के वीज और सुधरे हुए धान के वीज वांटे जाते हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९५४ मे १५,००० एकड भूमि के लिये गेरुवा निरोधक गेहूं के वीज व १५२,२३९ मन धान के सुधारे हुए वीज वांटे गये।

अधिक अन्न उपजाओ योजनाओं के अंतर्गत् आनेवाली दूसरी अप्रत्यक्ष योजनाओ में टिड्डियों और कीटाणुओं आदि से फसलो का संरक्षण करने और इसके लिये कृपकों को आवश्यक आर्थिक सहायता तथा सुझाव आदि देने के कार्य आते हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना और कृषि

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी राज्य के कृषि-विकास को काफी महत्व दिये जाने की आशा है। हाल ही में तैयार की गई योजना की रूपरेखा के अनुसार राज्य के कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिये ६,५१०.७८ लाख रुपये की निधि प्रस्तावित की गई है। अनुमान लगाया गया है कि उक्त व्यय से राज्य का खाद्यान्न उत्पादन ५०.६ लाख टन से ५९.६ लाख टन तक वढाया जा सकेगा। इसके लिये वर्तमान खेंती की पद्धतियों के स्थान पर उत्कृष्ट पद्धतियां अपनाई जाने की योजना है। इसी तरह राज्य मे पौष्टिक एवं संतुलित भोजन की मात्रा वढाने के लिये विशेष ध्यान दिया जाएगा। इसी उद्देश्य से गृहचान्न पक्षियो एवं अंडों के उत्पादन में २०० प्रतिशत, दुग्ध-उत्पादन मे ५० प्रतिशत, मत्स्य-उत्पादन में २०० प्रतिशत तथा साग-भाजियो के उत्पादन में ६० प्रतिशत वृद्धि करने के लक्ष्य प्रस्तावित किये गये है।

सिंचाई योजनाएं

खाद्यान्न-उत्पादन वढाने, अकालों पर नियंत्रण रखने एवं कृषकों का आर्थिक-स्तर ऊंचा उठाने के लिये "सिचाई" नितांत आवश्यक है। कृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्था तथा अपर्याप्त एवं अनियमित वर्षा को देखते हुए तो सिंचाई इस राज्य के लिये अनिवार्यता वन गई है। वैसे तो यहां सिचाई की आवश्यकता का अनुभव १७ वी शताब्दि में ही होने

लगा था, किन्तु इस ओर ठोस काय सन् १९०२ के बाद ही आरम्भ हुआ, जबकि सन् १९०१ के सिंचाई आयोग ने अकालसुरक्षार्थ विभिन्न सिंचाई-कार्य कार्यान्वित करने की जोरदार सिफारिशें की थी। इस आयोग ने ३०० लाख रुपये के व्यय की एक २० वर्षीय योजना प्रस्तुत की थी, जिसके अनुसार ४५०,००० एकड़ चावल की भूमि सींची जा सकती थी। तदनुसार, वनगंगा और महानदी नदियों से अनेक नहरें निकाली गईं और रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, भंडारा, बालाघाट, चांदा, जबलपुर और सागर (दमोह) जिलों में कई जल-संचयों का निर्माण किया गया। इन सिंचाई कार्यों पर ३०० लाख रुपये की अपेक्षा ४५० लाख रुपये खर्च हुए जिनके द्वारा १० लाख एकड़ चावल की भूमि सींची जाने का अनुमान लगाया गया। इसी तरह इस आयोग ने गेहूं की सिंचाई के लिये भी कुछ योजनाएं प्रस्तुत की थीं, किन्तु इस ओर मुख्यतः पूंजी की कमी के कारण अधिक कार्य न किया जा सका।

राज्य में सिंचाई कार्यों की विशेष प्रगति द्वितीय महायुद्ध काल और उसके बाद ही आरम्भ हुई, जबकि उसके सामने खाद्यान्न आत्मनिर्भरता के साथ ही अन्नाभाववाले राज्यों को खाद्यान्न निर्यात करने का प्रश्न खड़ा हुआ। इसके लिये राज्य में विभिन्न सिंचाई कार्यों का निर्माण कार्य तीव्र गति से आरम्भ किया गया। फलस्वरूप प्रथम पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वित होने के पूर्व यहां ३५ बड़े व ८७ छोटे सिंचाई-कार्य चालू हो चुके थे जिनमें से बड़े सिंचाईकार्यों द्वारा प्रतिवर्ष ७९४,४९५ एकड़ व छोटे सिंचाई कार्यों द्वारा प्रतिवर्ष ५०,१०३ एकड़ भूमि सींची जाती थी। इनके अतिरिक्त बड़े सिंचाई कार्यों में बालाघाट जिले की मुरम तालाब योजना और छिंदवाड़ा जिले की चीचबंद और अरी तालाब योजनाएं भी ५२.०९ लाख रुपये के व्यय से कार्यान्वित हो रही थीं। इनमें से मुरम तालाब और चीचबंद तालाब योजनाओं का कार्य सन् १९५१ के पहिले ही समाप्त हो चुका था, किन्तु अरी तालाब योजना का अपूर्ण कार्य पंचवर्षीय योजना में शामिल कर लिया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की बड़ी सिंचाई योजनाएं

राज्य की प्रथम पंचवर्षीय योजना में अरी तालाब योजना के अतिरिक्त गंगुलपारा, सरोदा, गोंदली, सापना दुधवा और डुकरीखेडा तालाब योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं *।

इन योजनाओं में से अरी तालाब योजना का कार्य समाप्त हो चुका है। और अन्य ६ योजनाओं का कार्य तीव्र गति से चल रहा है। आशा है कि गंगुलपारा तालाब योजना, डुकरीखेडा तालाब योजना और सापना तालाब योजना का कार्य जून १९५६ तक समाप्त हो जाएगा। इसी तरह सरोदा तालाब योजना का कार्य जून १९५७ तक और गोंदली तथा दुधवा तालाब योजनाओं के कार्य मार्च, १९५८ तक पूरे होने की आशा है।

छोटी सिंचाई योजनाएं

उपरोक्त बड़ी सिंचाई योजनाओं के अतिरिक्त राज्य में ३२४ लाख रुपये के व्यय से ४८ छोटी सिंचाई योजनाएं भी कार्यान्वित की जा रही हैं। इनके समाप्त होने पर १२८,३८९ एकड़ भूमि पर सिंचाई की जा सकेगी। इनके अतिरिक्त अधिक अन्न उपजाओ योजना के अन्तर्गत भी इस समय १८ ग्राम सिंचाई योजनाएं क्रियान्वित हो रही हैं, जबकि इसी तरह की ५० योजनाएं १८.७० लाख रुपये की लागत से पूरी हो चुकी हैं। इस श्रेणी की चालू योजनाओं पर १०.१७ लाख रुपये व्यय होगा। इन सभी ग्राम सिंचाई योजनाओं में २०,३३१ एकड़ भूमि सींची जा सकेगी

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सिंचाई का स्थान

प्राप्त सवेता के अनुसार प्रथम पंचवर्षीय योजना की अपेक्षा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सिंचाई को अधिक महत्त्व दिये जाने की आशा है। आगामी योजना के अन्तर्गत २१ बड़ी सिंचाई योजनाएं प्रस्तावित की गई हैं, जिनमें से १६ योजनाओं का पर्यवेक्षण हो चुका है, और अन्य ५ योजनाओं का पर्यवेक्षण कार्य प्रगति पर है। सिंचाई में अतिरिक्त जल विद्युत उत्पादन इन योजनाओं की विशेषता होगी। जिन १६ योजनाओं का पर्यवेक्षण पूर्ण हो चुका है उनका कुल अनुमानित व्यय ५,६५३.०८ लाख रुपये होगा तथा उनसे १,८८६,८२० एकड़ भूमि सींचे जाने व २०,३०० किलोवाट जल विद्युत् शक्ति के उत्पादन की आशा है। इसी तरह अन्य योजनाओं पर (जिनका पर्यवेक्षण हो रहा है) अनुमानतः ४,७५८ लाख रुपये खर्च होंगे तथा उनसे १,०२७,५०० एकड़ भूमि सींची जा सकेगी व २६,००० किलोवाट विद्युत्-उत्पादन किया जा सकेगा। * उल्लेखनीय है कि हाल ही में तैयार की गई द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा के अनुसार योजनावधि में १,११६,००० एकड़ अतिरिक्त भूमि सींचे जाने का अनुमान लगाया गया है।

---

* योजना तथा विकास विभाग, मध्यप्रदेश शासन।

भू-राजस्व व्यवस्था

प्राचीनकाल मे इस प्रदेश में जागीरदारी प्रथा प्रचलित थी, जिसमे राजा को स्वयं किसानो से भू-राजस्व वसूल करने का अधिकार होता था। यही प्रथा वहुत-कुछ अंशों मे गोंड राजाओ के राजत्वकाल तक भी प्रचलित रही किन्तु इस काल मे राजा कुछ चुने हुए मुखियो द्वारा, जो समयानुसार राज्य को सैनिक सहायता करते थे, भू-राजस्व एकत्रित करता था। तत्पश्चात् मराठाकाल मे "मौजावारी प्रथा" का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अतर्गत् परगना अधिकारी प्रतिवर्ष एक गांव विशेष का भू-राजस्व वर्ष की फसलो की दशा देखकर ही निर्धारित करता था। तत्पश्चात् गांव के मुखिये की सलाह से समस्त कृषको मे हलो की संख्यानुसार उसका वितरण कर दिया जाता था। किसानो को पट्टे पर (१ से ३ वर्ष की अवधि तक) भूमि जोतने के लिये दी जाती थी। आरंभ में अंग्रेजो ने भी इसी पद्धति को अपनाया। किन्तु किसानो को पट्टे पर दी जाने वाली भूमि की अवधि ३ से ५ वर्ष तक वढा दी गई। सन् १९३५ और १९३८ मे किये गये भूमि-वन्दोवस्तों के अंतर्गत यह अवधि २० वर्ष तक वढा दी गई थी। तत्पश्चात् समयानुसार इस प्रथा में अनेक परिवर्तन किये गये, और देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति तक यहां मालगुजारी, रैयतवारी और ठेकेदारी प्रथाएं प्रचलित रही। इनमे से मध्यप्रान्त मे मुख्यत: मालगुजारी प्रथा, वरार में मुख्यतः रैयतवारी प्रथा और विलीनीकृत देशी राज्यो में अंशत: ठेकेदारी और रैयतवारी प्रथाएं चालू थी।

इनमे से रैयतवारी गांवो का प्रवंध राज्य-सरकार करती थी और किसान पटेलों के माध्यम से सरकार को भू-राजस्व (लगान) चुकाते थे। पटेल गांव का प्रवधक होता था। किन्तु मालगुजारी, जमीदारी अथवा ठेकेदारी ग्रामों का प्रवंध मालगुजार, जमीदार अथवा ठेकेदार करते थे, और वे ही किसानो से भू-राजस्व एकत्रित कर उसका एक निश्चित भाग सरकार को चुकाते थे। किन्तु एक विशेप अधिनियम के अतर्गत् सन् १९५१ से इन प्रथाओ का अंत हो गया है (इस अधिनियम का विशेष वर्णन आगे दिया गया है)।

इस समय सम्पूर्ण राज्य से भू-राजस्व के रूप मे प्रति वर्ष लगभग ४ करोड रुपये की राशि (राज्य के कुल राजस्व का पंचमांश) एकत्रित की जाती है। इस राशि में कृपि-भूमि पर लगाई गई लगान की राशि का ही अधिकांश योग होता है। मध्यप्रान्त वन्दोवस्त अधिनियम, १९२९, और वरार भू-राजस्व संहिता, १९२८, के अतर्गत् वन्दोवस्त के समय भू-राजस्व का निर्धारण किया जाता है। राजस्व अधिकारी भू-राजस्व का सकलन करते है। राज्य में अकाल या सूखा पडने अथवा अन्य किसी कारण से फसलो के विगड जाने पर सरकार एक सुनिश्चित अनुपात मे किसानो को भू-राजस्व पर छूट दे देती है अथवा उसका निलम्वन (Suspension) कर देती है। उदाहरणार्थ, सन् १९५४ में राज्य के किसानों को भू-राजस्व मे १.१५ लाख रुपये की छूट दी गई और ५.५७ लाख रुपये की भू-राजस्व राशि निलम्वित कर दी गई।

भू-धारण व्यवस्था

राज्य के भू-धारियो को स्थूल रूप से निम्नलिखित तीन भागों मे वांटा जा सकता है :—

(अ) ऐसे कृपक जिन्हे भू-स्वामित्व और भू-स्थानान्तरण संवंधी समस्त अधिकार प्राप्त है. इस श्रेणी में क्षेत्र-भूस्वामित्वाधिकारी (Plot Proprietors) आते है,

(व) ऐसे कृपक जिन्हें भू-स्वामित्व के समस्त किन्तु भू-स्थानान्तरण के सीमित अधिकार प्राप्त है। इस श्रेणी में अधिकांशत: भूतपूर्व मध्यप्रांत के मौरूसी काश्तकार आते है, और

(स) उप-काश्तकार और पट्टेदार।

प्रथम श्रेणी के अंतर्गत् अधिकांशत. वरार के कृपक आते हैं। मालगुजारी उन्मूलन के वाद अव भूतपूर्व मध्यप्रान्त और देशी रियासतों के भू-स्वामियों को निज-जोत की भूमि पर मालिक-मकवूजा अधिकार प्राप्त हो गये हैं। अत: ये भी प्रथम श्रेणी के भू-धारियो में गिने जाते हैं। दूसरी श्रेणी के कृषक मौरूसी काश्तकार, रैयत और काश्तकार कहलाते हैं, जिन्हे अपनी जमीनों पर पैतृक अधिकारों के साथ उनमे सुधार करने के अधिकार भी प्राप्त होते है। इन कृपकों को निश्चित नजराना देने पर प्रथम श्रेणी के भू-धारणाधिकार भी प्राप्त हो सकते है।

वार्षिक पट्टेदारी और उप-काश्तकारी (शिकमी) प्रथा भूतपूर्व मध्यप्रान्त और विलीनीकृत रियासतो मे अधिक प्रचलित नही है। साथ ही, यहां कानून द्वारा इस प्रथा पर नियत्रण लगा दिया गया है। कानून के अनुसार यदि काश्तकार या मालिक मकवूजा हकदार लगातार १० वर्षो में ७ वर्ष तक अपनी भूमि को पट्टे पर देते रहे तो उप-काश्त-

कार को एक राजस्वाधिकारी द्वारा मौरूसी काश्तकार घोषित किया जा सकता है ? और तब वह राज्य का काश्तकार बन जाता है। मालिक-मकबूजा हकदार का मौरूसी काश्तकार यद्यपि मालिक-मकबूजा हकदार का ही काश्तकार रहता है, किन्तु ऐसी भूमि पर उसको लगान का १२ गुना नजराना चुका देने पर उसे अपने मालिक मकबूजा हकदार के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। पहिले बरार में भी शिकमी प्रथा (subletting) काफी प्रचलित थी। किन्तु 'बरार दोमाला ग्राम काश्तकारी कानून संशोधन अधिनियम, १९५०', के अनुगत दोमाला ग्रामो के पटटेदारा और अस्थायी काश्तकारो को स्थायी काश्तकार घोषित कर इस प्रथा पर नियत्रण लगा दिया गया। इसी तरह बरार काश्तकारी नियमन अधिनियम, १९५१, के पारित होने से भी इस प्रथा पर काफी नियत्रण लग गया है।

भूमि-सुधार

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद ही राज्य सरकार का ध्यान इस प्रदेश की भू-धारण व्यवस्था में वान्छित सुधार करने की ओर केन्द्रित हुआ। ब्रिटिश शासन काल मे चली आ रही मालगुजारी व जमींदारी प्रथा बहुत दोषपूर्ण हो गई थी। सरकार व कृषको में प्रत्यक्ष सबध न होने से और राज्य की भू-धारण एव भू-राजस्व व्यवस्था में मध्यस्थो का महत्वपूर्ण स्थान रहने से कृषक-वर्ग का काफी आर्थिक शोषण होता रहा। इसके अतिरिक्त भू-धारण व्यवस्था में भी अनेक दोष हो गये थे। अत कृषको की स्थिति और भू-धारण व्यवस्था में उचित सुधार करने के लिये राज्य सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये है, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है—

मालगुजारी व जमींदारी प्रथा का उन्मूलन

मालगुजारी व जमीदारी प्रथा का उन्मूलन करने के लिये सबसे पहिले सितम्बर १९४६ में एक प्रस्ताव पारित किया गया था, किन्तु विधान सभा में वह अक्टूबर १९४९ में ही विधेयक के रूप में आ सका। तत्पश्चात् ५ अप्रेल, १९५० को यह विधेयक 'मध्यप्रदेश स्वामित्वाधिकार (इलाके, महाल, दुमाला जमीन) उन्मूलन अधिनियम, १९५०, के नाम से पारित किया गया। इस अधिनियम के लागू होने पर राज्य के ४२,००० ग्रामो से मालगुजारा, जमींदारा, जागीरदारो और माफीदारो के सम्पूर्ण स्वामित्वाधिकार समाप्त हो गये और अब सरकार और कृषको के बीच प्रत्यक्ष सबध स्थापित हो गया है।

उक्त अधिनियम के अतगत मालगुजारा और जमींदारो की निज जात, निज घर और उससे सलग्न भूमि के अतिरिक्त अन्य सभी जमीनें, वन, घाट, तालाब, कुए, पोखर (निजी तालाब, कुए अथवा पोखर छोडकर), मत्स्य, जलधारा नौकायन, पगडंडिया, ग्राम-क्षेत्र, हाट-बाजार और खनिज पदार्थ आदि, जिनपर पहिले मध्यस्थो का अधिकार था, सरकारी हो गये है। भूतपूर्व स्वामी अपनी निज-जोत की भूमि को क्षेत्र-स्वामित्वाधिकार के अतर्गत रख सकते हैं। इसी तरह काश्तकार भी निश्चित नजराना देकर अपनी जमीनो पर क्षेत्र स्वामित्वाधिकार (Plot Proprietory Rights) प्राप्त कर सकते है।

भूतपूर्व स्वामियो या मध्यस्थो को उनके अधिकारो के उपलक्ष में मुआविजा दिया जा रहा है। छोटे छोटे स्वामियो को मुआविजे के अतिरिक्त पुनर्वास अनुदान (Rehabiltation grant) भी दिया गया है। इस प्रकार मुआविजे तथा पुनर्वास अनुदान की कुल राशि लगभग ५ करोड रुपये होगी है, जिसमें से पुनर्वास अनुदान का शोधन तत्काल कर दिया गया। मुआविजे की राशि भी सभी स्वामियो को अधिकतम ८ किश्तो में चुका दी जाएगी। अबतक ३ करोड रुपये से अधिक मुआविजा चुका दिया गया है।

निस्तार समस्याए और उनका निराकरण

मालगुजारी व जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से जनता के सभी निस्तार सबधी साधन (वन, चरोखर भूमि, तालाब, आदि) सरकारी हो गये हैं। उदाहरणार्थ लगभग १२७ लाख एकड वन-क्षेत्र जिनसे जनता की इमारती व जलाऊ लकडी व चारे का निस्तार होता था, २८,००० गावो के सभी तालाब, जो पहिले जनता के निस्तार में आते थे और लगभग १२२ लाख एकड भूमि जिसमें आबादी, पहाडिया, सडकें आदि स्थित है तथा जो जनता के निस्तारोपयोगी है, अब सभी सरकार के अधिकार में आ गये हैं। फलस्वरूप उक्त प्रथा के उन्मूलन के बाद जनता की निस्तार व चरोखर सबधी अनेक समस्याए खडी हो गइ। इनका निराकरण करने के लिये सरकार ने भू-सुधार विभाग खोला है, जिसके अन्तर्गत अनेक निस्तार अधिकारी नियुक्त किये गये है। इन अधिकारियो ने अक्टूबर १९५४ तक १७,५०० ग्रामो की

निस्तार और चरोखर संवंधी समस्याओ की जांच पडताल समाप्त कर ली थी और ५,५७० ग्रामों में चराई और ५,००० ग्रामो में इमारती व जलाऊ लकडी के कटिवंध (Zones) निर्धारित कर दिये थे, ताकि जनता की उपरोक्त समस्याओं का समाधान हो सके।

खेतों की चकवंदी

हिन्दूओ और मुसलमानों की उत्तराधिकार प्रथा ने राज्य मे खेतों के अपखन्डन और अन्तर्विभाजन की एक जटिल समस्या खडी कर दी है। इस प्रथा के फलस्वरूप खेतो के आकार वहुत ही छोटे हो गये है। निम्न तालिका से तत्संबंधी स्थिति स्पष्ट हो जाती है :—

खेतों का आकार (एकडों मे)		कुल कृषि-भूमि की तुलना में खेतो के अंतर्गत प्रतिशत क्षेत्रफल
५ से नीचे	...	५१.४६
५—१०	...	१९.५४
१०—२०	...	१४.८२
२०—५०	...	१०.६९
५०—१००	...	२.५५
१००—५००	...	०.९३२७
५०० से ऊपर	...	०.००७३
योग	...	१०० ००००

खेतों के आकार छोटे छोटे होने से न तो यात्रिक खेती ही सम्भव है और न उत्कृष्ट कृषि पद्धतिया मितव्ययिता-पूर्वक अपनाई जा सकती है। इसी तरह प्रति एकड उत्पादन व्यय भी वढ जाता है। तात्पर्य यह कि कृषि-विकास के लिये ऐसे छोटे आकार वाले खेतो की चकवंदी वहुत आवश्यक है। इस ओर राज्य मे सन् १९२८ मे खेतों की चकवदी संवधी अधिनियम (Central Provinces Consolidation of Holdings Act, 1928) पारित कर सर्वप्रथम ठोस कदम उठाया गया। पहिले यह अधिनियम केवल छत्तीसगढ में ही लागू किया गया ; किन्तु अव वह उन क्षेत्रो मे भी लागू हो गया है जहां ट्रेक्टरो द्वारा भूमि जोती गई है। इस समय रायपुर, दुर्ग और सागर जिलो मे चकवदी का काम सफलतापूर्वक चल रहा है। इस अधिनियम के अंतर्गत अव तक लगभग २६ लाख एकड भूमि की चकवदी हो चुकी है।

भूमि की सीमा निर्धारण

आजकल भू-सुधार के क्षेत्र मे भूमि की सीमा निर्धारण एक महत्वपूर्ण प्रश्न वन गया है। इस संवंध मे योजना आयोग की सिफारिशों और समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की ओर सरकारी नीतियो के झुकाव से इस प्रश्न को और भी वल मिल गया है। अभी तक यहां एक व्यक्ति द्वारा रखी जाने वाली अधिकतम भूमि के सिलसिले में कोई सीमा निर्धारित नही की गई है। किन्तु वरार मे अवश्य वरार काश्तकारी नियमन अधिनियम के अतर्गत परोक्षत. वैयक्तिक खेती के लिये अधिकतम ५० एकड़ तक भूमि रखने का प्रावधान है। इस प्रश्न की जटिलताओ का व्यापक अध्ययन करने और भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण के सिलसिले मे अपनी सिफारिशे प्रस्तुत करने के लिये राज्य सरकार ने एक भूमि सुधार समिति की स्थापना की है। आशा है कि यह समिति मई १९५६ तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकेगी।

भूमि संवंधी अधिनियमों का एकीकरण

इस प्रदेश मे लगभग गत ५० वर्षो से भू-धारण संवंधी अनेक पद्धतियां प्रचलित रही है। सन् १९५० में राज्य मे कुछ देशी रियासतों के विलीनीकरण से और भी नई भू-धारण पद्धतियो का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु स्वामित्वाधिकारों के उन्मूलन के वाद राज्य की सभी जमीनें (कुछ अनुसूचित जमीनो को छोडकर) सरकारी हो गई है। अत. यह आवश्यक हो गया कि इन विभिन्न पद्धतियो को एकीकृत किया जावे। इसी उद्देश्य से राज्य की विधान सभा में "भू-राजस्व

महिता विधेयक, १९५३" (Land Revenue Code Bill 1953) प्रस्तुत किया गया और वह गत वर्ष पारित भी हो गया है। वैसे तो विधेयक का मुख्य उद्देश्य भू-धारण संबंधी विभिन्न अधिनियमो का एकीकरण करना ही है, किन्तु उसमे भू-धारण, खेतो के वृक्षो, आबादी में मकान संबंधी जमीन के अधिकारो और बरार में पट्टाधारी अस्थायी काश्तकारो के अधिकारो जैसे भू-सुधार प्रश्नो का भी समावेश किया गया है।

भू-दान आंदोलन

राज्य के भू-सुधार कार्यों में आचार्य विनोबा भावे द्वारा आरम्भ किये गये भू-दान आन्दोलन को भी प्रोत्साहन देने का प्रयास किया गया है। यहा एवं भू-दान मडल की स्थापना करने व आन्दोलन के अतर्गत प्राप्त की गई भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में वितरित करने के कार्य को सुविधापूर्ण बनाने के लिये विधान सभा ने "मध्यप्रदेश भू-दान यज्ञ अधिनियम' पारित किया है। अधिनियमानुसार भू-दान मडल की स्थापना हो चुकी है, जिसे राज्य सरकारने १९५४-५५ के वित्तीय वर्ष में ५०,००० रुपये का अनुदान भी दिया है।

कृषि-साख की पूर्ति

कृषको की निर्धनता और उपरोक्त बहुमुखी कृषि विकास योजनाओ की अनिवार्य आवश्यकता को देखते हुए राज्य के कृषको को कृषि-कार्यों के समुचित सम्पादन के लिये पर्याप्त एवं सस्ती साख की पूर्ति की जाना जरूरी है। इस समय यहा कृषि साख की पूर्ति मुख्यत राज्य-सरकार, सहकारी संस्थाओ, भूतपूर्व मालगुजारो व जमीदारो तथा ग्रामीण साहूकारो द्वारा की जाती है। इनमें से राज्य सरकार उपरोक्त कृषि कार्यक्रमो में दी जानेवाली वित्तीय सहायता के अतिरिक्त कृषको को कृषक ऋण अधिनियम (Agriculturists Loans Act) तथा भूमि-सुधार ऋण अधिनियम (Land Improvement Loans Act) के अन्तर्गत प्रतिवर्ष लाखो रुपये के दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती है।

इन अधिनियमो के अतर्गत दिये जानेवाले दीर्घकालीन ऋणो के अतिरिक्त सरकार भू राजस्व के निलम्बन (Suspension) व छूट (Remission) के रूप में और विभिन्न कष्ट-निवारण उपायो के अतर्गत भी कृषको का प्रतिवर्ष लाखो रुपये की तत्कालीन अथवा अल्पकालीन वित्तीय सहायता देती है। उदाहरणार्थ—सरकार ने सन् १९५४ में कृषको को भू राजस्व के निलम्बन व छूट के रूप में ६ ७२ लाख रुपये तथा कष्ट-निवारण उपायो के अतर्गत कुल ७ ७५ लाख रुपये की आर्थिक सहायता दी।

इसी तरह सहकारी साख संस्थाए* भूतपूर्व मालगुजार व ग्रामीण साहूकार भी कृषि-साख की पूर्ति में काफी हाथ बटाते है। इनमें से साहूकारो का योग विशेष महत्वपूर्ण है। किन्तु विभिन्न ऋण नियमन अधिनियमों के प्रादुर्भाव से और कुछ वर्षों में राज्य-सरकार व सहकारी साख संस्थाओ के इस क्षेत्र में अधिक प्रभाव बढ जाने से कृषि साख के इस स्रोत का महत्व क्रमश घटता जा रहा है।

मध्यप्रदेश की वन-सम्पत्ति

ऋग्वेद द्वारा "वनस्पति शतवल्शो विरोह" का उद्घोष करनेवाले भारत भूमि-वासियो में वनो के महत्व की चेतनता प्रागैतिहासिक युग से ही पाई जाती है। पद्म पुराण का "अपुत्र के लिये वृक्ष ही पुत्र है और एक वृक्ष सहस्र सुपुत्रो का कार्य करता है'—सदैव युगो से गूजता आ रहा है। इस प्रकार वन सदा से हमारे राष्ट्रीय जीवन के महत्वपूर्ण अग रहे है। अपनी बहुमुखी उपादेयता के कारण हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था उनसे प्रभावित है। एक ओर तो वे भूमि की उर्वरा शक्ति बढाने तथा उसके कटाव को रोकने, फसलो के लिये अनुकूल जलवायु बनाने और वर्षा में सहायक होने के कारण 'कृषि की पोषक माता" का रूप धारण करते है, और दूसरी ओर विभिन्न प्रकार की उपयोगी वनोत्पत्ति की पूर्ति कर उनके उद्योगधधो को पनपने का विस्तृत क्षेत्र प्रदान करते हैं। ईंधन, लकडी व घास आदि दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुओ की पूर्ति कर तो वे जन-जीवन व पशु-जीवन दोनो के ही अविभाज्य अग बन गये है।

प्रकृति ने मध्यप्रदेश को भी इस अमूल्य सम्पत्ति से सम्पन्न बनाया है। सम्पूर्ण राज्य का लगभग ४८ प्रतिशत भू-भाग वनो से भरा है। अनुमानत वर्ष १९५४ में मध्यप्रदेश में लगभग ६२ हजार वर्गमील का क्षेत्र वनाच्छादित

---

*इनका विशेष वर्णन अन्यत्र किया गया है।

था। सम्पूर्ण देश के वनों के वटवारे पर औसतन प्रत्येक व्यक्ति को जब कि ०.८ एकड वन-भाग मिलेगा तब यदि मध्यप्रदेश के वन क्षेत्र को केवल मध्यप्रदेश की ही आवादी मे वाटा जावे तो प्रत्येक व्यक्ति को २ एकड वन-भाग मिलेगा। अतः स्पष्ट है कि मध्यप्रदेश वन-सम्पत्ति मे धनी है। वर्ष १९५१ मे की गई गणना के अनुसार मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों में निम्नानुसार वन-क्षेत्र पाये जाते हैं:—

	जिला	कुल वन-भूमि (एकडों मे)		जिला	कुल वन-भूमि (एकडों मे)
	(१)	(२)		(१)	(२)
१.	सागर	१९,३६,०८६	१४.	रायपुर	२४,९४,८२१
२	जवलपुर	६,९२,८८६	१५.	विलासपुर	२५,०४,३६४
३.	मंडला	१६,१९,८९९	१६.	अकोला	३,२८,८२४
४.	होशगावाद	१५,१५,८१५	१७.	अमरावती	१०,५५,५०९
५.	निमाड	१३,२८,२८२	१८.	वुलढाना	३,८४,९७२
६.	वैतूल	११,३०,१२३	१९.	यवतमाल	९,३३,२४०
७.	छिदवाडा	२२,६८,६२७	२०.	वस्तर	७६,२८,८९४
८.	वर्धा	२,२१,५८०	२१.	रायगढ	१०,०४,४६८
९.	नागपुर	६,२६,९९३	२२.	सरगुजा	३९,४५,७००
१०.	चांदा	४२,६५,९४२			
११.	भंडारा	१०,०४,४८६		योग	३,९९,७६,१७८
१२.	वालाघाट	११,२६,४११		अथवा	६२,४४१ वर्गमील।
१३.	दुर्ग	१५,४५,२५८			

इस प्रदेश का समस्त वन क्षेत्र निम्नलिखित भागो मे विभाजित है:—

(अ) सरकारी सुरक्षित वन,

(व) असुरक्षित किन्तु राज्य सरकार के नियंत्रण मे रहनेवाले वन,

(स) सरकारी स्वामित्व वाले ग्रामो के वन, और

(ड) भूतपूर्व मालगुजारो के स्वामित्व वाले ग्रामों के वन (जो कि अव राज्य सरकार ने अपने अधिकार मे ले लिये हैं)।

इस वर्गीकरण के अनुसार राज्य की कुल वन-भूमि निम्न प्रकार है:—

वन	क्षेत्रफल (वर्ग मीलों में)
(१)	(२)
(अ) सरकारी सुरक्षित वन	३२,३३६
(व) सरकारी असुरक्षित वन (जो कि राज्य सरकार के नियंत्रण मे है)	८,१८५
(स) सरकारी स्वामित्व के ग्रामो के वन	१,३८३
(ड) भूतपूर्व मालगुजारो के स्वामित्व के ग्रामों के वन	२०,५३७
कुछ क्षेत्र वर्ग मील	६२,४४१

इन वनो से सरकार को होने वाली आय पिछले ५ वर्षो मे लगभग ३।। करोड रुपये रही है तथा भविष्य मे भी उसे करोड रुपयो तक राजस्व प्राप्त होते रहने की आशा है।

वनोत्पत्ति

जहां तक वनोत्पत्ति का प्रश्न है राज्य में मिश्रित वनों, सागौन के वनों, साल के वनों व बांस के वनों के विस्तृत क्षेत्र हैं। इनसे प्राप्त होने वाली वनोत्पत्ति में इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी व अनेक प्रकार की गौण उपजें शामिल हैं। इमारती लकड़ी में सागौन, साज, सेमल, बीजा, हल्दुआ, तिनसा, शीशम, सलई आदि किस्म की लकड़ी बहुतायत से पाई जाती हैं। सागौन की मूल्यवान लकड़ी जबलपुर, होशंगाबाद, सागर, बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी, वर्धा, नागपुर, अमरावती, चांदा, यवतमाल और पश्चिमी बरार के वन-क्षेत्रों में काफी मात्रा में होती है। मंडला, बालाघाट, रायपुर, बिलासपुर, बस्तर और कांकेर के वनों में भी सागौन अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्राप्य है। इन में से बोरी (होशंगाबाद) और अलापिली (चांदा) के वनों का सागौन अपनी उत्तम किस्म के लिये प्रसिद्ध है। साल लकड़ी के लिये बालाघाट, मंडला, बिलासपुर, दक्षिणी रायपुर, रायगढ़ एवं बस्तर के वन-क्षेत्र उल्लेखनीय हैं। दूसरी किस्मों की लकड़ी भी राज्य के मिश्रित वनों में विपुल मात्रा में पाई जाती हैं। इसी तरह जलाऊ लकड़ी सभी वनों में पाई जाती है।

इमारती एवं जलाऊ लकड़ी के अलावा राज्य के वनों से गौण वनोपजें भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। इनका मूल्य वर्ष १९५२-५३ में अनुमानतः लगभग १,१०,१७,००० रुपये था। गौण वनोपजों में मुख्य रूप से बांस, लाख, हर्रा, पशु-घास, अन्य घास, गोंद, खनिज पदार्थ, तेंदू के पत्ते और जड़ी-बूटियां शामिल हैं।

वनोत्पत्ति का औद्योगिक उपयोग

यह गौण वनोत्पत्ति उद्योगधंधों के लिये अत्यंत उपयोगी होती है, बल्कि यूं कहा जाय कि कुछ उद्योग तो इन वनोपजों पर ही आधारित है तो अतिशयोक्ति न होगी। वनोत्पत्ति पर आधारित उद्योगधंधे स्थूल रूप से तीन प्रकार के होते है—(अ) रासायनिक उद्योग—जिनमें कागज उद्योग, कोयला उद्योग, चमड़ा पकाने का उद्योग, लाख व कपड़े के सामान बनाने का उद्योग, तेल व महुआ की शराब बनाने का उद्योग, वार्निश व कत्था बनाने का उद्योग, आदि शामिल है, (ब) यांत्रिक उद्योग—इनमें आरा मशीन के कारखाने, सेमल, शीशम और सागौन से प्लाईवुड बनाना, माचिस बनाना, हैंडिल व खिलौने आदि बनाना, फर्नीचर व कृषि औजार बनाना तथा टोकनियां व चटाइयां आदि बनाना शामिल है, और (स) औषधि निर्माण सम्बन्धी उद्योग—जिसके अन्तर्गत करंजी व आंवला आदि का तेल बनाना, त्रिफला बनाना व जंगली जड़ी-बूटियों से आयुर्वेदिक औषधियां बनाना शामिल है।

(अ) **रासायनिक उद्योग**—रासायनिक उद्योगों की श्रेणी में कागज उद्योग* विशेष उल्लेखनीय है। इस उद्योग के लिये आवश्यक कच्चे माल (बांस, सलाई व सबई घास आदि) की पूर्ति में यह राज्य सर्वाधिक सम्पन्न है। ईंधन व शक्ति के लिये यहां कोयला व विद्युत्-शक्ति की सुविधाएं भी प्राप्य है। इस दिशा में राज्य की साधन-सम्पन्नता को दृष्टि में रखते हुए ही भारत में सर्वप्रथम अखबारी कागज के उत्पादनार्थ नेपा मिल (निमाड़ जिला) और अन्य तरह के कागज के उत्पादन हेतु बल्लारपुर पेपर एंड स्ट्रा मिल (चांदा जिला) की स्थापना की गई।

कोयला उद्योग—कागज उद्योग के पश्चात् वनोत्पत्ति पर आधारित उद्योगों में दूसरा स्थान कोयला उद्योग को प्राप्त है। राज्य के सुरक्षित वनों द्वारा प्राप्त बड़ी लकड़ी (जो इमारती कामों के लिये अनुपयोगी होती है) द्वारा विपुल मात्रा में कोयला बनाया जाता है। इससे राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति तो होती है, किन्तु उसका अधिकांश भाग अन्य राज्यों को निर्यात कर दिया जाता है। इस समय कोयले का उत्पादन "खुली हवा पद्धति" द्वारा होता है। किन्तु यह अधिक दोषपूर्ण होने से कोयले का बहुत कुछ भाग अनुपयोगी हो जाता है। अतः कोयला उत्पादन की वैज्ञानिक एवं उत्कृष्ट पद्धति अपनाई जाना आवश्यक है।

चमड़ा पकाने का उद्योग—कच्चा चमड़ा पकाने के आवश्यक पदार्थ इस राज्य में प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। ऐसे पदार्थों में हर्रा सबसे महत्वपूर्ण है, जिसका न केवल आंतरिक व्यापार में बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बड़ा मान है। हर्रा के अतिरिक्त बबूल, कच्छ की छाल, धावड़ा के पत्ते आदि उपयोगी चीजें यहां काफी पाई जाती है। किन्तु अभी यह उद्योग असंगठित और हीन हालत में होने से इन पदार्थों का उपयोग राज्य में ही न होकर उनका अधिकांश भाग बाहर भेज दिया जाता है।

---

*इसका विशेष वर्णन अन्यत्र किया गया है।

लाख व चमडे का सामान बनाना—सम्पूर्ण देश मे लाख व चमडे के उत्पादन की दृष्टि से मध्यप्रदेश का आंशिक रूप से एकाधिकार है। लाख मुख्यत. घोट, पलास और कुसुम नामक जंगली वृक्षो से जो क्रमश दमोह, गोंदिया और धमतरी मे अधिकांशत: पाये जाते हैं, काफी मात्रा मे एकत्रित की जाती है। गोंदिया, धमतरी और रायगढ के लाख व चमडे के कारखानो मे उससे चमडा तैयार किया जाता है जिसका अधिकांश भाग कलकत्ता द्वारा अमरीका आदि देशों को निर्यात कर दिया जाता है। कुछ लाख का उपयोग चूडियां व अन्य वस्तुएं तैयार करने मे भी किया जाता है। यह उद्योग डालर-अर्जक होने से उसका अधिक विस्तार किया जाना वान्छनीय है।

इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले उद्योगो मे रूसा आदि तेल और कत्था तैयार करने जैसे उद्योग भी उल्लेखनीय है। रूसा द्वारा सुगंधित तेल तैयार करने का कुटीर उद्योग अमरावती, निमाड, बैतूल और पश्चिमी बरार में, जहा रूसा घास बहुतायत से पाई जाती है, असंगठित अवस्था मे पाया जाता है। परन्तु अधिकांश कच्चा माल इन स्थानो से निर्यात कर दिया जाता है। रूसा घास के अतिरिक्त इस राज्य के वनो मे खश, लव्हेन्डर, केवडा आदि उपयोगी वनोपजे भी प्राप्य है, जिनका औद्योगिक उपयोग काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। खैर की लकडी से कत्था बनाने का उद्योग भी आर्थिक दृष्टि से राज्य का काफी लाभदायक उद्योग है। यह उद्योग सागर, होशंगाबाद और जबलपुर जिलो मे केन्द्रित है। इन उद्योगों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वार्निश व रग बनाने तथा महुए से शराब उतारने के कुटीर उद्योग भी इस राज्य मे असगठित अवस्था मे पाये जाते है।

(ब) **यांत्रिक उद्योग**.—वनोत्पत्ति पर आधारित यांत्रिक उद्योगो मे आरा-मशीनों द्वारा लकडी चीरने व लकडी के विभिन्न सामान तैयार करने का उद्योग राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग है। राज्य मे इमारती लकडी की अपरिमित पूर्ति के कारण यह उद्योग नागपुर और जबलपुर जैसे औद्योगिक एवं व्यापारिक केन्द्रो मे काफी विकसित हो गया है। इसके अतिरिक्त सेमल, शीशम और सागौन से प्लाईवुड बनाने का उद्योग भी उल्लेखनीय है। किन्तु आवश्यक मशीनरी एवं साधनो के अभाव मे उसका अभी अपेक्षित विकास नही हो पाया है। इसी तरह सेमल की लकडी से माचिस बनाने व विभिन्न प्रकार के खिलौने तैयार करने, बास से टोकनियां व चटाइया आदि बनाने और कृषि के औजार तैयार करने के कुटीर उद्योग राज्य के हजारो विकेन्द्रित ग्रामो में पाये जाते है।

(स) **औषधि निर्माण सम्बन्धी उद्योग**—राज्य के विशाल वनों से हर्रा, बहेरा, आवला और करंजी सदृश औषधोपयोगी अनेक वनोपजे और जडी-बूटियां अपरिमित मात्रा मे प्राप्य है, जिनसे अनेक बहुमूल्य आयुर्वेदिक औषधियां तैयार की जा सकती है। किन्तु अभी तक इस उद्योग का वान्छनीय विकास नही हो पाया है। हर्ष की बात है कि राज्य सरकार ने इस उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिये रायपुर मे एक आयुर्वेदिक विद्यालय खोला है और उससे सलग्न एक आयुर्वेदिक-रसशाला की स्थापना करने पर भी विचार कर रही है जो औषधोपयोगी वनोपजों से आयुर्वेदिक औषधियां तैयार करने के सिलसिले मे अनुसंधान करेगी।

राज्य के उपरोक्त उद्योगधन्धो की वर्तमान स्थिति फिलहाल उतनी संतोषजनक नही है जितनी कि होना चाहिये अथवा हो सकती है। यहां अमूल्य वनोत्पत्ति प्रचुर मात्रा में होते हुए भी उसका वान्छनीय औद्योगिक उपयोग नही हो पाया है।

वन-विकास योजनाएं

मध्यप्रदेश सरकार भी वन-विकास के लिये जागरूक है। उसने मालगुजारों व जमीदारो के स्वामित्व से वनों को अपने अधिकार मे करने, वन्य-जीवन के रक्षार्थ उचित विधेयक बनाने और वन-विकास की बहुमुखी योजनाएं कार्यान्वित करने की ओर कदम बढाया। इनमें से वन-विकास योजनाए विशेष महत्त्व रखती है। इन योजनाओ का कार्य त्रिमुखी कहा जा सकता है.—प्रथम—प्रशासनिक, द्वितीय—शैक्षणिक एव प्रशैक्षणिक, एवं तृतीय-वन-विकास सम्बन्धी।

वन-विकास की योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित ४ योजनाये क्रियान्वित की जा रही है :—

(अ) वर्किंग प्लान सर्किलो की स्थापना,

(ब) चालू कामो को पूरा करना,

(स) वन-मार्गो और पुलो का निर्माण, और

(ड) आदर्श वन-ग्रामो की स्थापना।

वर्किंग प्लान सर्किलों की स्थापना—निश्चय किया गया है कि योजना काल में १५ वर्किंग प्लान सर्किल स्थापित किये जावेंगे। वर्ष १९५०-५१ में ७ वर्किंग प्लान सर्किलों का सर्वेक्षण पूर्ण हो चुका था तथा ६ प्लानों का सर्वेक्षण जारी था। योजना अवधि में स्थापित किये जानेवाले १५ वर्किंग प्लानों का सर्वेक्षणकार्य भी जारी है।

चालू कामों को पूरा करने की योजना—युद्धकाल में युद्ध सामग्री की पूर्ति के कारण हमारे वन काफी उपेक्षित रहे तथा उनकी आवश्यकता से अधिक क्षति हुई। निजी जंगलों के स्वामियों ने भी उनका बुरी तरह उपयोग किया। क्षतिग्रस्त वनों की स्थिति सुधारने के उद्देश्य से प्रथम पंचवर्षीय योजना में २८०,००० एकड़ वनों को सुधारने का लक्ष्य निर्धारित किया है। वर्ष १९५१ से १९५३ तक ६२,५८३ एकड़ जंगलों के सुधार का कार्य पूर्ण हो चुका था। इस अवधि में कार्य की अपेक्षित प्रगति न हो सकने का मुख्य कारण प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव रहा है। चूंकि अब प्रशिक्षण कार्य तेजी पर है, अत आशा की जाती है कि यह कार्य भविष्य में तीव्रगति से सम्पन्न किया जा सकेगा।

वन-मार्गों एव पुलों का निर्माण—राज्य के वन-क्षेत्रों में अच्छे मार्गों का न होना भी वन-विकास के लिये एक बड़ी रुकावट है। राज्य सरकार ने इस रुकावट को दूर करने के लिये वर्ष १९५६ तक २०० मील की सड़कों का निर्माण करने का निश्चय किया है। इस कार्य में वान्छनीय प्रगति हो रही है।

आदर्श वन-ग्रामों की स्थापना—राज्य में १,१३२ वनग्राम हैं जिनकी आबादी १२०,७१६ है। इनमें से मुख्य-मुख्य ग्रामों में निम्नलिखित सुधार किये गये हैं —

(अ) हस्तकला कौशल व प्राथमिक शिक्षण हेतु शालाओं की स्थापना करना,
(ब) मलेरिया निरोधक कार्यवाहियों का प्रबंध करना,
(स) बहुउद्देशीय समितियों की स्थापना करना,
(ड) मनोरंजन के साधन जुटाना एव
(इ) साप्ताहिक बाजार भराने की व्यवस्था करना।

इसके अतिरिक्त इन ग्रामों में समुचित जल-पूर्ति के लिये भी विशेष कार्य किये जा रहे हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में वन—राष्ट्र की बहुमूल्य प्राकृतिक सम्पत्ति वनों से अधिकतम लाभ लेने के उद्देश्य से आशा की जाती है कि आगामी पंचवर्षीय योजना में वनों के विकास पर काफी व्यय किया जावेगा। संभावना है कि आगामी योजना में वन विकास के लिये २० करोड़ रुपयों का प्रावधान किया जावेगा।

मध्यप्रदेश में पशुधन

सन १९५१ की पशु-गणना के अनुसार देश की कुल २,९२२ २ लाख पशु-संख्या में से मध्यप्रदेश की कुल पशु-संख्या १७८ ५८ लाख थी। किन्तु सन् १९५२-५३ में यह संख्या बढ़कर १९१ ५९ लाख हो गई। देश के 'अ' और 'ब' वर्गीय राज्यों की गोधन-संख्या संबंधी तुलना में इस राज्य का चौथा स्थान (१४८ ५९ लाख) आता है, जबकि उत्तरप्रदेश (२२५ १३ लाख), अविभाजित मद्रास (१५२ ९७ लाख) और बिहार (१५२ ९७ लाख) क्रमश पहला, दूसरा तथा तीसरा स्थान प्राप्त करते हैं। विभिन्न वर्षों में मध्यप्रदेश की पशु-संख्या संबंधी स्थिति निम्नप्रकार थी* —

(संख्या हजारों में)

वर्ष (१)	गोधन (२)	भैंस (३)	भेड़ (४)	बकरे व बकरियां (५)	अन्य पशु (६)	कुल पशुधन (७)
१९४६-४७	१०,५५३ ०	१,८९६ ७	२६४ ८	१,४९२ १	११७ ७	१४,३२३ ९
१९४८-४९	१३,३८० ४	२,३९२ ८	३०२ ६	१,९७२ ७	†१४२ ७	१८,१९९ ८
१९५०-५१	१४,८५८ ३	२,५९९ ८	३३० ४	२,३०० ४	४३१ ६	२०,५२० ५
१९५२-५३	१३,०८१ ३	२,३८७ ७	३८२ ५	२,११४ ४	३३३ ५	१९,१५९ ४

*प्राप्ति स्थान—भू-अभिलेख विभाग, मध्यप्रदेश शासन।
†इन अंकों में सुअरों की संख्या सम्मिलित नहीं है।

जनसंख्या
जनगणना १९५१

सागर
जबलपुर
सरगुजा
होशंगाबाद
मंडला
रायगढ़
छिंदवाड़ा
बिलासपुर
निमाड़
बैतूल
बालाघाट
दुर्ग
अमरावती
नागपुर
भंडारा
रायपुर
वर्धा
बुलढाना
अकोला
यवतमाल
चांदा
बस्तर
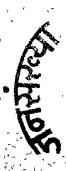
उप-जीविका के अनुसार जनसंख्या

(जनगणना १९५१)
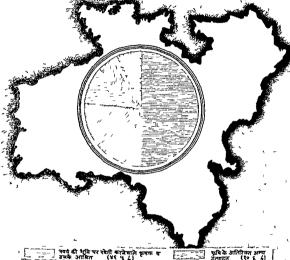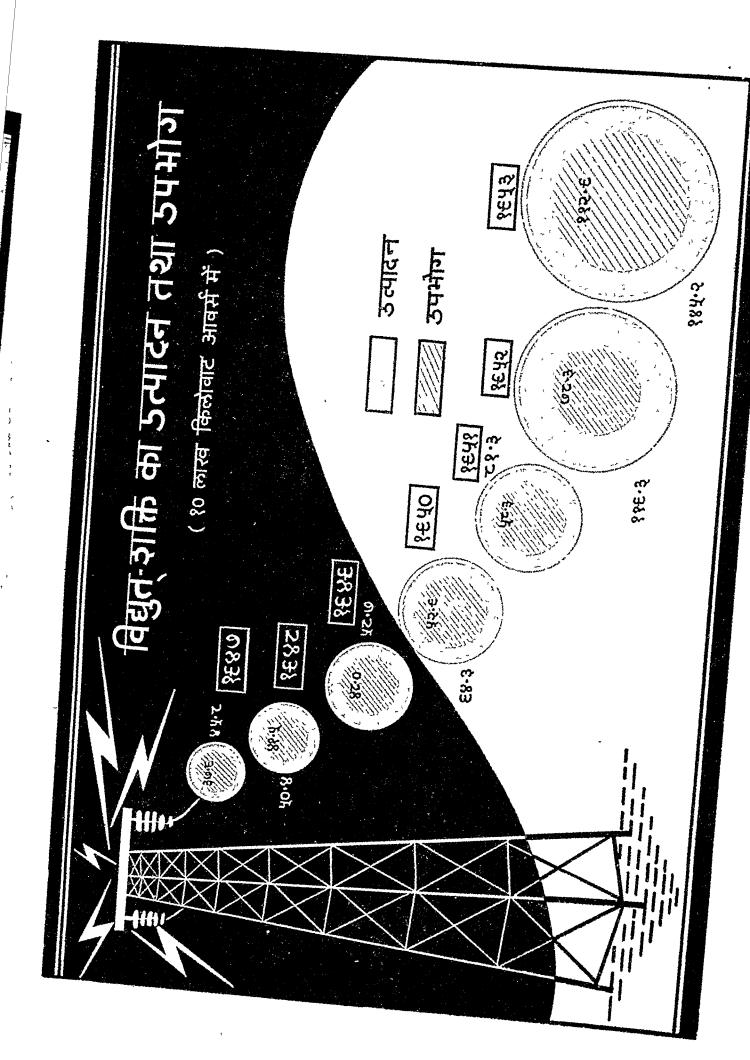
विद्युत्-शक्ति का उत्पादन तथा उपभोग
(१० लाख किलोवाट आवर्स में)
उत्पादन
उपभोग
१९४७
३७.९
५५.८
१९४८
४१.५
५०.४
१९४९
४२.०
५८.७
१९५०
५२.९
९४.३
१९५१
५८.३
८१.३
१९५२
७८.३
११९.३
१९५३
११२.९
१४५.२

औद्योगिक-उत्पादन

१५००
१०५०
७००
३५०
०

३२
२४
१६
८
०

६०
४५
३०
१५
०

१२०
९०
६०
३०
०

८
६
४
२
०

आर्थिक प्रगति के सूचक
कुल आय
कुल व्यय
पंजीयन संख्या
३२
२४
१६
८
०
६०
४८
३६
२४
१२
२०
१५
१०
५
०

मध्यप्रदेश की
आयव्ययक - स्थिति
कुल आय
कुल व्यय
१" = ७१२,४७,४०० रु.
विकास व्यय - देशनांक
(१९४७-४८ = १००.००)
७००
६००
५००
४००
३००
२००
१००
१९४७-४८
१९४८-४९
१९४९-५०
१९५०-५१
१९५१-५२
१९५२-५३
१९५३-५४
१९५४-५५
१९५५-५६
०"
१"
२"
३"
४"
५"
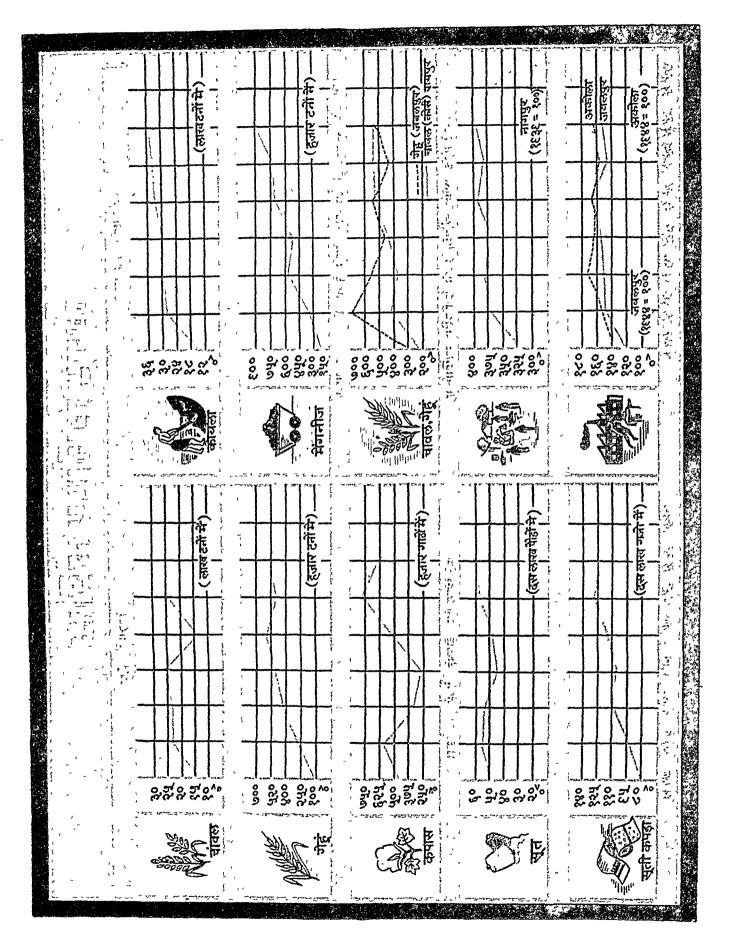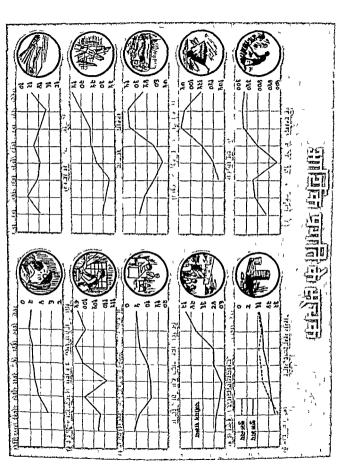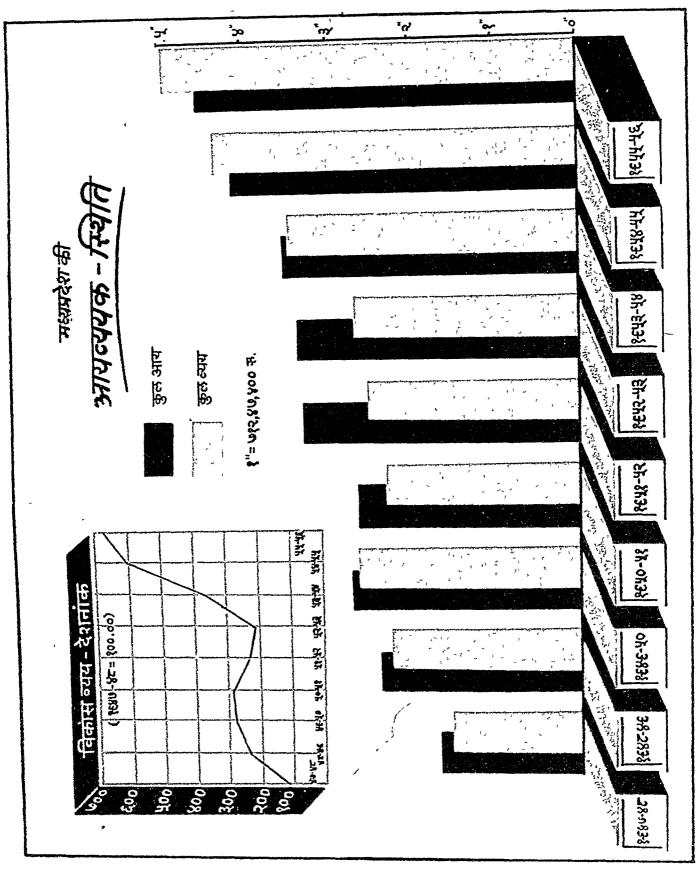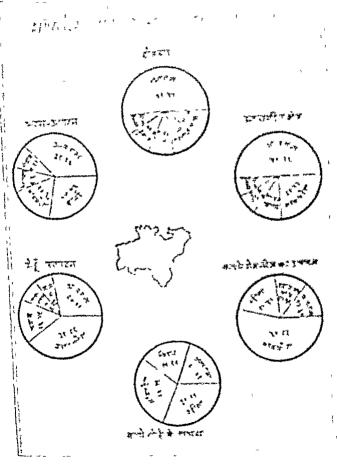
अपनी बहुमुखी उपयोगिता के कारण इन पशुओ ने राज्य की अर्थ-व्यवस्था मे गहरा स्थान प्राप्त कर लिया है। कृषि और आवागमन कार्यो में बैलों से लिये जानेवाले काम के अतिरिक्त राज्य को अन्य पशुओं से प्राप्त पदार्थो से भी काफी आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थो में दूध, घी, मक्खन, खोवा, छाना, हड्डियां सीग, खुर, चमड़ा, त्वचा व हड्डियों की खाद प्रमुख है। सन् १९५१ की पशु-गणना के अनुसार राज्य मे पशुधन से प्राप्त होनेवाले पशु-पदार्थो का मूल्य २१,४५,६४,००० रुपये आका गया है।

पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थो की मात्रा व उनका मूल्य

पशु-पदार्थ	मात्रा	मूल्य (लाख रुपयों में)
(१)	(२)	(३)
दूध—जिसका द्रव्यरूप मे उपयोग किया जाता है	४,६१८.० हजार मन	९२३.६०
घी	३६९.० हजार मन	७३८.००
मक्खन	७७.० हजार मन	११५.५०
खोवा	२७.० हजार मन	२१.६०
छाना	३.५ हजार मन	२.१०
दही	३.३ हजार मन	०.३३
अन्य दूध संबंधी उत्पत्ति	११.४ हजार मन	२.२८
मांस	१४,४४८ टन	१४४.४८
हड्डियां	७,२०० टन	१.४४
ऊन	४,०१,८४० पौड	५.५३
सीग और खुर	२६,६२० मन	२.६६
चमड़ा (वैल व भैस)	२४,२३,६०० मन	१५२.२९
त्वचा	११,९४,३०० टुकडे	३५.८३
	योग ...	२,१४५.६४

उपरोक्त पशु-पदार्थ अनेक लघु-प्रमाप व वृहत-प्रमाप उद्योगो की स्थापना व उनके विकास के लिये विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ, राज्य में चमडा पकाने व चमड़े के सामान वनाने का उद्योग और उर्वरक उद्योग वड़े पैमाने पर स्थापित किया जा सकता है। इसी तरह सीग, खुर, चमडा, ऊन, आदि से विभिन्न उपभोग्य पदार्थ वनाने वाले अनेक लघु-प्रमाप व कुटीर-उद्योग पनप सकते हैं। इस समय यहा चमड़े (चमड़ा पकाना व चमड़े का सामान वनाना) और ऊन (कताई व वुनाई) के कुटीर-उद्योगों का ही विशेष स्थान है, जिनके उपक्रमो की संख्या सन् १९५१ मे क्रमश. ७०९ और २,९४४ थी।* फिर भी हम इन पदार्थो का अपेक्षित औद्योगिक उपयोग नही कर पाये हैं। आशा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उनका वांछनीय उपयोग किया जाएगा, जिससे हजारो व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा और राज्य को लाखो रुपयो की आमदनी हो सकेगी।

पशु-संवर्धन व पशु-चिकित्सा.—उपर्युक्त विवरण से राज्य की अर्थ-व्यवस्था मे पशुओं का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी स्थिति काफी दयनीय रही है। गाओलाओ, निमाडी, उमरेधा और मालवी आदि कुछ जातियो के ढोरो के अतिरिक्त राज्य के अन्य ढोरो की हालत संतोषजनक नही है। समुचित चिकित्सा-व्यवस्था व

*प्राप्ति स्थान—जनगणना, १९५१

खुराक के अभाव में वे दुर्बल और रोगग्रस्त होते हैं। उनकी उपेक्षित एवं दयनीय स्थिति के कारण उनसे प्राप्त होने वाले पदार्थों की मात्रा भी अपेक्षाकृत कम रहती है और इस तरह राज्य में उपलब्ध पशुओं से हम उतना लाभ नहीं उठा पाते हैं जितना कि लाभ मिल सकता है अथवा मिलना चाहिये।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार व राज्य सरकार ने पशुओं की दशा सुधारने के लिये अनेक महत्वपूर्ण योजनाएं बनाई हैं, जिन्हें क्रियान्वित किया जा चुका है, किया जा रहा है अथवा किया जावेगा। इन योजनाओं में जो अधिकांशतः प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत आती हैं, पशुओं की नस्ल सुधारने एवं पशु चिकित्सा, पशु चिकित्सा शिक्षा व प्रशिक्षण आदि की सुविधाएं प्रदान करने पर विशेष जोर दिया गया है। स्पर्शजन्य रोगों पर नियंत्रण करने की दिशा में भी काफी प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसी तरह दुग्ध-उत्पादन बढ़ाने व दुग्ध पूर्ति की समुचित व्यवस्था करने के लिये भी राज्य सरकार प्रयत्नशील है।

पशुओं की नस्ल सुधारने की दिशा में राज्य में अनेक आदर्श-ग्राम केन्द्रों (Key Village Centres) की स्थापना विशेष उल्लेखनीय है। ऐसे हरएक केन्द्र में लगभग १० गांव आते हैं जिनमें ६०० से ८०० तक गायें पाई जाती हैं। प्रत्येक आदर्श ग्राम केन्द्र में अच्छी नस्ल के ६ से ८ तक प्रमाणित सांड रखे जाते हैं। राज्य सरकार इन केन्द्रों को आगे चलकर पशु-प्रजनन केन्द्रों में बदलना चाहती है, ताकि विभिन्न जातियों के सांड पर्याप्त संख्या में मिल सकें और सम्पूर्ण राज्य में नस्ल-सुधार का कार्य सम्पन्न किया जा सके। फिलहाल सरकार ने तेलनखेड़ी, बोड, गढ़ी, देवल, पथरिया और टेटीकुण्डी में ऐसे ६ पशु प्रजनन केन्द्र (Cattle Breeding Centres) भी खोले हैं, जिनका प्रमुख उद्देश्य नस्ल सुधार करना ही है। इन केन्द्रों में नस्ल-सुधार के अतिरिक्त दुग्ध-उत्पादन बढ़ाने के भी प्रयत्न किये जाते हैं।

पशु नस्ल-सुधार के हेतु सरकार द्वारा कृत्रिम रेतन केन्द्रों (Artificial Insemination Centres) की स्थापना भी महत्वपूर्ण है। अब तक राज्य में ऐसे ८ केन्द्र खुल चुके हैं तथा वे सफल भी हुए हैं। इन केन्द्रों की सफलता का आभास तो हमें इससे मिल जाता है कि केवल नागपुर कृत्रिम रेतन केन्द्र में ही सन् १९५३ में ५३२ गायें व २१४ भैंसें फलाई गईं।

इक्टेरिया, एन्थ्रेक्स, पशुमाता आदि स्पर्शजन्य रोगों से पशुओं को बचाने के लिये भी राज्य सरकार का पशु-चिकित्सा विभाग कार्यरत है। राज्य के पशुओं की चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य राज्यों से आनेवाले पशुओं के स्पर्शजन्य रोगों पर भी नियंत्रण रखने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य के लिये राज्य की सीमाओं पर २३ क्वारेंटाईन स्टेशनों की स्थापना की गई है, जहां वर्ष १९५४ में १३२,८११ पशुओं को टीके लगाये गये। क्षीणकाय एवं अलाभकारी पशुओं के लिये राज्य सरकार ने दरगा (सागर) में एक गोसदन भी बनाया है। इसके अतिरिक्त अलाभकारी गायों को हत्या से बचाने के लिये राज्य में ५२ गौशालायें व पिंजरापोल कायम हैं, जिनमें ५८,००० पशु रह रहे हैं। इन संस्थाओं द्वारा प्रतिवर्ष ३,६३,००० रुपया खर्च किया जाता है। इनके कार्यों को अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से राज्य सरकार इस प्रयत्न में है कि पशुपालन एवं चिकित्सा विभाग की सहायता से इन संस्थाओं में रहनेवाले पशुओं को अधिक स्वस्थ व अधिक दूध देनेवाला बनाया जा सके।

पशु चिकित्सा विभाग को अधिक साधन-सम्पन्न बनाने व पर्याप्त रूप से विस्तृत करने के लिये भी राज्य सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं। इस हेतु विभाग में काम करनेवाले लोगों को प्रशिक्षित करने का कार्य प्रारंभ किया गया है। पंचवर्षीय योजना के अन्त तक इस विभाग को ५०० से अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ मिलने लगेगा। इसी उद्देश्य से राज्य सरकार ने जबलपुर में एक पशु-चिकित्सा महाविद्यालय भी प्रारंभ किया है।

शहराती क्षेत्रों में दूध की कमी पूरी करने व दुधारू पशुओं की दुग्ध-उत्पादन क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से राज्य-सरकार ने विभिन्न स्थानों पर दुग्धालय खोले हैं। फिलहाल सरकार इस प्रकार के २० दुग्धालय स्थापित करना चाहती है, जिनमें से ९ दुग्धालय स्थापित हो चुके हैं। इसी तरह पशुओं की दशा सुधारने की ओर जनता का ध्यान केंद्रित करने की दृष्टि से सरकार अनेकों पशु-प्रदर्शनियों को भी अनुदान देती है। यहां यह भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि पशु-संवर्धन के लिये उक्त सभी उपायों के अतिरिक्त सरकार ने पशुओं को कानून द्वारा भी संरक्षण प्रदान किया है। सन् १९४७ से ही राज्य में कुछ अनुसूचित परिस्थितियों में ढोर आदि के वध को नियंत्रित रखने के लिये एक अधिनियम लागू किया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि मे राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यो के व्यय की रूपरेखा निम्न तालिका में दर्शाई गई है :—

विकास के शीर्षक	योजना के अन्तर्गत प्रस्तावित कुल व्यय (लाख रुपयों मे)
(१)	(२)
(अ) पशु चिकित्सा तथा पशु-संवर्धन—	
(१) प्रशासन	४१.००
(२) (क) शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान	२९.२२
(ख) पशु-निरीक्षको तथा स्वास्थ्य सहायको का प्रशिक्षण ...	३.०९
(३) पशु-चिकित्सा संबंधी सुविधाये	४ ७१
(४) (क) पशुओं की नस्ल सुधारना	१७.५४
(ख) कृत्रिम रेतन केन्द्र	०.८५
(५) अन्य योजनाये	२ ४२
(ब) दुग्धालयों की स्थापना व पूर्ति—	
(१) शहरों के लिये दुग्ध-पूर्ति	३४.९७
(२) अन्य योजनायें	१.९७
योग ...	१,३५.७७

प्रस्तावित योजना-व्यय में से अब तक पशु-सवर्धन व पशु-चिकित्स ाहेतु ४२.२ लाख रुपये तथा दुग्धालयों की स्थापना व दुग्ध-पूर्ति हेतु १८.१ लाख रुपये व्यय हो चुका है। चालू वित्तीय वर्ष मे भी पशु-चिकित्सा व सवर्धन पर २०.६ लाख व दुग्धालयो की स्थापना व दुग्ध-पूर्ति पर ९.९ लाख रुपयो के व्यय का प्रावधान रखा गया है। इस प्रकार प्रथम पचवर्षीय योजना के अंतर्गत चालू वित्तीय वर्ष के अन्त तक लगभग १ करोड रुपये की राशि उक्त मद पर व्यय हो जावेगी तथा इस बात की पूर्ण आशा है कि योजनावधि तक प्रस्तावित १,३५.७७ लाख रुपयो के व्यय से राज्य सरकार अपनी प्रत्येक योजना को क्रियान्वित कर पशुधन की स्थिति मे काफी सुधार कर सकेगी।

मध्यप्रदेश की खनिज संपत्ति

मध्यप्रदेश प्रकृति की इस बहुमूल्य देन से अन्य राज्यो की अपेक्षा कही अधिक सम्पन्न है। राज्य के विभिन्न भागों मे कोयला, मेगनीज, चूने का पत्थर, फायर-क्ले, गेरू, कच्चा लोहा, फेलसपार, ग्रेफाइट, बाक्साइट, अभ्रक, सिलिक, सेंड और फुलर्स अर्थ (सज्जीखार) आदि अनेक खनिज पदार्थ विपुल मात्रा मे पाये जाते है। कुछ स्थानो पर यूरेनियम पाये जाने का भी अनुमान किया जाता है, किन्तु अभी इसकी जाच-पड़ताल जारी है। राज्य के लिये किस खनिज पदार्थ का कितना महत्व है यह उसकी प्राप्ति, उपयोगिता व राष्ट्र अथवा विश्व मे ऐसे खनिज पदार्थ की पाई जाने वाली मात्रा में हमारे योगदान पर निर्भर करता है।

कोयला इस राज्य के प्रमुख खनिजो मे से है। राज्य मे इस खनिज पदार्थ के विपुल संचय भूगर्भित है। उदाहरणार्थ, डाक्टर फाक्स द्वारा सन् १९३२ मे किये गये अनुमान के अनुसार इस प्रदेश मे लगभग ६,००० करोड टन कोयला भूगर्भित है। इसी तरह सन् १९४६ की कोयला खान समिति (कोल माइन्स कमेटी) के अनुसार यहां अच्छी किस्म का १.४२ करोड टन कोयला संचित है। प्रतिवर्ष राज्य की खानो से काफी मात्रा मे कोयला निकाला जाता

है। वर्ष १९५२ में यहा ३,८५७,१५८ टन कोयला निकाला गया जब कि वर्ष १९५१ में यही मात्रा ३,७०८,९८८ टन थी। सम्पूर्ण देश में कोयले का वार्षिक उत्पादन लगभग ३६२ लाख टन है, जिसका ९ ५ प्रतिशत भाग राज्य की लगभग ५२ खदानों में निकाला जाता है —

कोयला क्षेत्रों के नाम	उत्पादन टनों में	
	वर्ष १९५२	वर्ष १९५१
(१)	(२)	(३)
कन्हान घाटी	५०८,८६५	८३०,२०२
पेंच घाटी	१,२८२,८७८	१,२२६,००१
वर्धा घाटी	२१०,०९८	३५३,३८७
चिरीमिरी बगडा खान	१,२५१,२०४	१,१९६,५०६
हस्दोमड	२,९८३	१,९३१
कोरबा (विश्रामपुर)	१,५३०	६४३

प्रस्तावित भिलाई इस्पात उद्योग के स्थापित हो जाने पर राज्य की कोयला उत्पादन शक्ति काफी अधिक बढ जावगी।

लोहा भी इस राज्य मे प्रचुर मात्रा म सचित है। सुप्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री डाक्टर के चटर्जी के अनुसार यहा लगभग १५० करोड टन लोहा भूगर्भित है। राज्य में लौह प्राप्ति के मुख्य क्षेत्र चादा, दुग, जबलपुर और होशगाबाद (नरसिंहपुर) जिला में स्थित हैं। चादा जिले का लोहारा नामक लौह-क्षेत्र १,९५० फुट लम्बे, ६०० फुट चौडे और ३६० फुट ऊचे टीले म फैला हुआ है। दुग के डाडी-लोहारा लौह-क्षेत्रो में भी काफी लोहा सचित है। विशेष तौर पर यहा की डली-राजहाडा पहाडिया, जो २० मील लम्बी और ४०० फुट ऊची है, लोहे से भरपूर है। राज्य में पाया जानेवाला लोहा तीन प्रकार का होता है, यथा—हेमेटाइट, मैग्नेटाइट और लेटेराइट। यहा का अधिकाश लोहा उत्तम दर्जे का माना जाता है, जिसमें आमतौर पर ६८ प्रतिशत शुद्ध लोहा, ० ०६८ प्रतिशत फास्फोरस तथा २१ प्रतिशत सिलिका का अश पाया जाता है। विगत कुछ वर्षों में राज्य की लौह उत्पादन क्षमता म अच्छी वृद्धि हुई है। १० लाख टन उत्पादन-क्षमतावाले भिलाई इस्पात उद्योग के खुल जाने पर राज्य की लौह-उत्पादन क्षमता म तीव्र गति म वृद्धि होगी।

मैंगनीज उत्पादन की दृष्टि से यह राज्य न केवल भारतवर्ष म ही वरन् समस्त विश्व में प्रख्यात है। वर्ष १९५१ म केवल मैंगनीज के निर्यात म भारत सरकार को २,५४,२०,२५७ रुपये की आय हुई थी। इस राशि म मध्यप्रदेश का हिस्सा ७२ २ प्रतिशत (१,८३,५६,८६७ रुपये) था। राज्य म अधिकाशत बालाघाट, नागपुर, भडारा और छिंदवाडा जिलो में मैंगनीज पाया जाता है। अनुमानत राज्य के समस्त मैंगनीज क्षेत्रो में १०५ लाख टन उत्तम श्रेणी का और ३० लाख टन निम्न श्रेणी का मैंगनीज भूगर्भित है। यहा वर्ष १९५१ म मैंगनीज का उत्पादन ७०७,८०७ टन था, जिसका मूल्य ६,८२,०९,११६ रुपये आका गया था। किन्तु अभी तक राज्य म ही इस मूल्यवान खनिज का औद्योगिक उपयोग न किया जाकर उसका अधिकाश भाग विदेशो को निर्यात कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, वर्ष १९५१ म देश से निर्यात किये जानेवाले मैंगनीज की कुल मात्रा में इस राज्य का लगभग ५५ प्रतिशत मैंगनीज सम्मिलित था। अभी तक अधिकतर टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी तथा इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी में ही राज्य के मैंगनीज की खपत होती रही, किन्तु अब रूरकेला (उडीसा) इस्पात उद्योग के खुल जाने तथा भिलाई इस्पात उद्योग के स्थापित होने पर इस राज्य के मैंगनीज की खपत काफी अधिक बढ जावेगी। साथ ही, इस खनिज की कीमतो में भी पुन वृद्धि हो जाने से इस उद्योग का निकट भविष्य में ही काफी विकास हो सकेगा।

बाक्साइट—मेगनीज की भांति बाक्साइट भी औद्योगिक दृष्टि से बहुत उपयोगी खनिज है। उसके भूगर्भित संचयो एवं वार्षिक उत्पादन की दृष्टि से इस राज्य की स्थिति काफी संतोषजनक है। बाक्साइट के संचय मुख्यतः जबलपुर जिले की कटनी तहसील में, बालाघाट जिले की बैहर तहसील में और कोरबा कोयला क्षेत्र के निकटवर्ती स्थानों में पाये जाते हैं। इनमे से जबलपुर एवं बालाघाट जिलो के बाक्साइट क्षेत्रो मे विपुल मात्रा मे यह खनिज भूगर्भित है। केवल जबलपुर जिले के जिन बाक्साइट संचयो की खोज हो चुकी है उनमे ५० से ६० लाख टन उत्तम श्रेणी के बाक्साइट का अनुमान किया गया है। इस समय राज्य की विभिन्न बाक्साइट खदानो से काफी बाक्साइट निकाला जाता है। उदाहरणार्थ, वर्ष १९५२ मे ११ खदानो से २२,७०८ टन बाक्साइट निकाला गया जिसकी कीमत १,९६,८६२ रुपये होती है। वर्ष १९५३ में यही मात्रा लगभग ३०.३ हजार टन तक पहुच गई थी। प्रस्तावित भिलाई इस्पात उद्योग खुल जाने पर इस उद्योग के विकास के लिये भी विस्तृत क्षेत्र खुल जायेगा।

चूने का पत्थर—मध्यप्रदेश मे चूने का पत्थर निकालने का काम मुख्यत जबलपुर, रायगढ व बिलासपुर जिलों मे होता है। जबलपुर जिले मे इस खनिज का उत्पादन वर्ष १९५१ व १९५२ मे क्रमश ६७७,९८० टन व ७२२,८५२ टन था। वर्ष १९५१ मे कुल १५ खानो से यह खनिज निकाला गया किन्तु १९५२ मे यह सख्या बढकर २७ हो गई। इसी तरह बिलासपुर एवं रायगढ जिले मे टाटा आयर्न एन्ड स्टील कम्पनी ने वर्ष १९५२ मे २८,०३० टन चूने का पत्थर निकाला, जब कि वर्ष १९५१ मे इसी कम्पनी द्वारा निकाला गया यही खनिज २३,८१२ टन था। इस तरह सन् १९५२ मे निकाले गये कुछ चूने के पत्थर का मूल्य लगभग ७५,०८,८२० रुपये आका गया।

टाल्क—निकालने का कार्य मुख्यत जबलपुर जिले मे होता है। किन्तु उसकी उत्पादन मात्रा निश्चित नहीं है। सन् १९५२ मे टाल्क का कुल उत्पादन १,३९४ टन था ; जब कि १९५१ मे २,०६० टन।

फायर-क्ले—के लिये भी जबलपुर जिला ही प्रमुख स्थान माना जाता है। वर्ष १९५२ मे इस खनिज का कुल उत्पादन लगभग ३३ हजार टन था, जब कि वर्ष १९५३ मे लगभग ३८ हजार टन।

अन्य खनिज पदार्थ—उपरोक्त खनिज पदार्थों के अतिरिक्त इस राज्य मे फेलसपार, डोलेमाइट, ग्रेफाइट, अभ्रक, सिलिका सेड और फुलर्स अर्थ आदि खनिज पदार्थ भी बहुत-कुछ मात्रा मे उपलब्ध है। इनमे से फेलसपार मुख्यत. छिदवाडा जिले मे पाया जाता है। राज्य मे प्रतिवर्ष लगभग १० हजार रुपये का फेलसपार प्राप्त किया जाता है। डोलेमाइट का उत्पादन वर्ष १९५२ मे १४,१५० टन था जिसका मूल्य अनुमानत ८५,००० रुपये होता है। उक्त दूसरे खनिज पदार्थ भी राज्य के विभिन्न भागो मे पाये जाते है। वर्ष १९५२ मे इन खनिजो का कुल उत्पादन-मूल्य लगभग ३५ हजार रुपये आंका गया।

मध्यप्रदेश के उद्योग

इस देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक औद्योगिक विकास की गति बहुत ही धीमी रही। बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति मध्यप्रदेश की भी थी। राज्य मे अटूट एव अमूल्य खनिज सम्पत्ति, वनोत्पत्ति, कृषि-उत्पत्ति और जल-शक्ति आदि की अपरिमित पूर्ति होते हुये भी उनका समुचित एव वाछनीय औद्योगिक उपयोग नही किया जा सका। परन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमने आर्थिक सयोजन का मार्ग अपनाया, जिसके अन्तर्गत देश के अन्य राज्यो के समान इस राज्य मे भी भविष्य की सम्भावनाये उज्ज्वल हुई है।

मध्यप्रदेश के औद्योगिक क्षेत्र मे अब तक जिन वृहत् प्रमाप उद्योगों का प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो उसकी अर्थ-व्यवस्था मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है, उनमे से सूती कपडे का उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, कागज उद्योग, शीशा उद्योग, मृच्छिल्प (Ceramics) उद्योग, जनरल इजीनियरिंग व इलेक्ट्रिकल इजीनियरिंग तथा शराव, पेन्ट, वार्निश और फल-संरक्षण उद्योग विशेष उल्लेखनीय है। कुछ वर्षो के बाद इन उद्योगो की श्रृखला मे भिलाई इस्पात उद्योग की भी गिनती शुरु हो जावेगी। उपरोक्त वृहत्-प्रमाप उद्योगो के अतिरिक्त इस राज्य मे अनेक कुटीर व लघु प्रमाप उद्योग भी चल रहे है, जो अपने क्षेत्र मे निजी महत्व रखते हैं।

सूती कपडे का उद्योग—सूती कपड का उद्योग मध्यप्रदेश का सब से प्रमुख उद्योग माना जाता है। यहा इस उद्योग के पनपने का सब से बडा कारण राज्य के विस्तृत कपास क्षेत्र है। सम्पूर्ण बरार, निमाड जिला, वर्धा जिला, नागपुर जिला, भण्डारा जिले का पूर्वीय क्षेत्र तथा चादा जिले का उत्तरी क्षेत्र कपास उत्पादन के लिये प्रसिद्ध है। सूती कपडे की मिलो के लिये ये स्थान कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति करते हैं। मध्यप्रदेश के इतिहास में सूती कपडे की मिलो का स्वर्णिम् अध्याय खोलने का श्रेय सर जमशेद जी टाटा को है, जिन्होने सन् १८७७ मे यहा प्रथम मिल खोली। इस समय समस्त प्रदेश मे सूती कपडे के उद्योग की १७ मिले है जो अधिकाशत कपास-क्षेत्र में ही स्थित है। सन् १९५३ में इन सभी मिलो की स्थिर पूजी २९१ लाख रुपये थी और उनमे २८,७९२ श्रमिक काम करते थे। इनके द्वारा मुख्यत मध्यम व निम्न श्रेणी के सूती कपड का उत्पादन किया जाता है। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस उद्योग की उत्पादन-शक्ति में तीव्रगति से वृद्धि हुई है।

विशाल सूत की मिलो के साथ ही मध्यप्रदेश में प्रतिवर्ष लगभग २,५२० लाख गज कपडा तैयार कर सकने वाले १६८,२०० हाथ-करघे भी है।

सीमेंट उद्योग—मध्यप्रदेश का दूसरा प्रमुख उद्योग सीमेंट उद्योग है। भारत में इस उद्योग का प्रथम प्रादुर्भाव सन् १९१२ में हुआ और तत्पश्चात् सन् १९१४ म ही मध्यप्रदेश म कटनी सीमेंट एण्ड इन्डस्ट्रियल कम्पनी की स्थापना हुई। उस समय समस्त देश में सीमेंट उद्योग की केवल तीन ही इकाइया थी जिनमे से उपर्युक्त एक इकाई हमारे राज्य म थी। अत सीमेंट उद्योग द्वारा देश की आर्थिक उन्नति मे मध्यप्रदेश ने प्रारम्भ मे ही हाथ बटाया है और आज तो सीमेंट उत्पादन में बिहार के पश्चात् इस राज्य का ही स्थान आता है। इस समय कैमोर (जबलपुर जिला) में स्थित असोसिएटेड सीमेंट कम्पनी का कारखाना समस्त देश में सीमेंट का सब से बडा कारखाना माना जाता है। इसकी वार्षिक उत्पादन-क्षमता ३५०,००० टन है। गत कुछ वर्षो मे इस उद्योग की उत्पादन-क्षमता में उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है। इस समय असोसिएटेड सीमेंट कम्पनी के समक्ष उक्त कारखाने के सुविस्तार की एक विशाल योजना है जिसके पूर्ण होने पर आशातीत सीमेंट का उत्पादन सम्भव हो सकेगा।

कागज उद्योग—"कागज की खपत देश की बौद्धिक प्रगति का परिचायक है।" ज्यो ज्यो शैक्षणिक-विकास होता जाता है, कागज की माग भी उसी गति से बढती जाती है। विगत कुछ वर्षो मे हमारे देश में ऐसी ही स्थिति परिलक्षित हो रही है। किन्तु जिस गति म यहा कागज की माग बढ रही है उतनी ही गति से उसका उत्पादन नही बढ रहा है। अत स्पष्ट है कि इस देश में कागज उद्योग के विकास के लिये काफी क्षेत्र पडा हुआ है।

कागज उद्योग के लिये मध्यप्रदेश पूर्णत साधनसम्पन्न है। कागज के लिये गूदा तयार करने में उपयोगी बास, सलई लकडी व सवई घास यहा बहुतायत से पाई जाती है। विद्युत्-शक्ति और इंधन की पूर्ति के लिये भी यहा पर्याप्त सुविधाए उपलब्ध है। इन्ही सब सुविधाओ के फलस्वरूप राज्य में बल्लारपुर पेपर एण्ड स्ट्रा बोड मिल्स (चादा जिला) और नेपा मिल्स (निमाड जिला) नामक दो बडे कागज के कारखाने खोले जा सके। इनमें से बल्लारपुर पेपर एण्ड स्ट्रा बोर्ड मिल्स का उत्पादन कार्य सन् १९५२ मे ही प्रारभ हो गया था। सन् १९५३ में इसने १,३२४ टन कागज तथा स्ट्रा बोर्ड का उत्पादन किया। पूर्ण विकसित होने पर यह कारखाना प्रतिदिन २० से २५ टन तक कागज का उत्पादन कर सकेगा। नेपा मिल्स का उत्पादन कार्य भी जनवरी १९५५ मे प्रारभ हो गया है। अखबारी कागज का उत्पादन करने वाली यह भारत की एकमात्र एव प्रथम मिल है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग ९०,००० टन अखबारी कागज की खपत होती है। यह मिल उक्त परिमाण का एक-तृतीयाश कागज उत्पादित करेगी। उल्लेखनीय है कि प्रारंभिक वर्षो में ही राज्य मे इस उद्योग की वार्षिक उत्पादनक्षमता काफी बढ गई है। उदाहरणार्थ, सन् १९५३ में इस उद्योग ने कुल १,३२४ टन कागज उत्पादित किया था, किन्तु सन् १९५४ में यही मात्रा ७,३५२ टन पहुच चुकी थी।

शीशा उद्योग—शीशे का उद्योग मध्यप्रदेश के लिये नवीन नही है। वृहत्-प्रमाप उद्योगो के प्रादुर्भाव के पूर्व भी इसके कुछ ग्रामो में काच की चूडियों आदि बनाई जाती थी। इस समय वृहत्-प्रमाप पर नागपुर जबलपुर, चादा, गोदिया इत्यादि स्थानो में बडे-बडे शीशे के कारखाने चल रहे है। शीशा उद्योग के लिये आवश्यक रेत, सोडा ऐश तथा चूना

प्रभृति कच्चे माल मे से इस प्रदेश मे जला हुआ चूना (burnt lime) वहुतायत से मिलता है। यही नही कटनी से यह पदार्थ उत्तरप्रदेश तथा वंगाल को निर्यात भी किया जाता है। किन्तु दूसरे पदार्थो का आयात करना पडता है। इस समय मध्यप्रदेश में पांच वडे शीशे के कारखाने है जिनमे से "नागपुर ग्लास वर्क्स", "सेन्ट्रल ग्लास फैक्टरी" तथा "श्री ओनामा ग्लास वर्क्स" शीशे के कुछ प्रमुख कारखानो मे से हैं। अभी इन कारखानो की स्थिति यह है कि इन्हे आवश्यकतानुसार कच्चा माल सुविधापूर्वक नही मिल पाता। यदि इन्हे कच्चा माल और रासायनिक पदार्थ इत्यादि अपनी माग के अनुसार मिल सकें तो निकट भविष्य में ही इनकी उत्पादन-क्षमता द्विगुणित हो सकती हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रारंभिक वर्षो मे राज्य के शीशा उद्योग ने काफी प्रगति की। किन्तु उसके वाद इस उद्योग की कच्चे माल की पूर्ति सम्वन्धी उपर्युक्त कठिनाइयों के फलस्वरूप आगामी वर्षो मे अधिक प्रगति न हो सकी। विगत कुछ वर्षो से राज्य के इस महत्वपूर्ण उद्योग का विकास रुका हुआ है। अत उसका पुनर्सगठन किया जाना एवं उसकी सभी आवश्यकताओ की समुचित पूर्ति करना वहुत जरूरी है।

अन्य उद्योग—राज्य के अन्य वृहत्-प्रमाप उद्योगो मे मृच्छिल्प,जनरल इजीनियरिंग व इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग, फल-संरक्षण, शराव तथा पेण्ट और वार्निश के उद्योग प्रमुख है। इन उद्योगो के लिये आवश्यक कच्चा माल राज्य के भू-गर्भित विपुल खनिज पदार्थो एवं उसके विशाल और वहुमूल्य वनो से अपरिमित मात्रा मे उपलब्ध हो जाता है। इन उद्योगों मे से सन् १९५३ में मृच्छिल्प एवं जनरल इजीनियरिंग एव इलेक्ट्रिकल इजीनियरिंग के क्रमश. ५ और १९ कारखाने कार्य कर रहे थे जिनमें २,३२४ व १,९५१ श्रमिक सेवायुक्त थे तथा ३६ व ८२ लाख रुपये की पूजी लगी हुई थी। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् उक्त विभिन्न उद्योगो के उत्पादन और विकास में आशातीत प्रगति हुई है।

भिलाई इस्पात उद्योग.—मध्यप्रदेश के उपरोक्त वृहत्-प्रमाप उद्योगों की श्रृखला मे एक विशाल उद्योग और जोडा जा सकेगा, जवकि आगामी कुछ ही वर्षो मे दुर्ग जिले के भिलाई नामक स्थान मे १० लाख टन वार्षिक उत्पादनक्षमता वाले प्रस्तावित इस्पात-उद्योग की स्थापना होगी। निस्सदेह इस विशाल उद्योग ने औद्योगिक दृष्टि से पिछडा हुआ कहे जाने वाले इस राज्य के वहुमुखी आर्थिक विकास के लिये विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया है। न केवल औद्योगिक क्षेत्र मे वरन् राज्य की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था मे, जो आज मुख्यत कृषि-प्रधान है, स्थायित्व एवं संतुलन स्थापित करने मे यह उद्योग वहुत सहायक सिद्ध होगा।

मध्यप्रदेश में इस्पात उद्योग स्थापित करने की सम्भावनाओं का सकेत उन्नीसवी शताब्दि से ही मिलता है, जवकि सन् १८८२ मे प्रसिद्ध उद्योगपति श्री. जमशेदजी टाटा ने इस प्रदेश मे अपना इस्पात उद्योग स्थापित करना चाहा था। सन् १९४४ मे भारत सरकार के योजना तथा विकास विभाग द्वारा स्थापित लोहा और इस्पात समिति (Iron and Steel Panel) ने भी वल्लारशा, तिलदा और भिलदा (विलासपुर जिला) के आसपास इस्पात उद्योग आरंभ करने के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। किन्तु इस ओर वास्तविक प्रगति स्वतत्रता प्राप्ति के वाद ही हुई, जवकि भारत सरकार ने विश्व वैन्क, जर्मनी के क्रुप्स और डेमाग आदि के प्रतिनिधियो को इस विषय की छानवीन करने के लिये आमन्त्रित किया था। इन संस्थाओ के प्रतिनिधियो ने उक्त उद्योग की स्थापना के लिये भिलाई को सर्वोत्तम वताया। तत्पश्चात् रूस की विशेषज्ञ टोलियो ने भी उक्त मत का पोषण कर भिलाई मे इस्पात उद्योग स्थापित करने का एक स्वर से निर्णय दिया। और फलस्वरूप अव इसी स्थान पर इस उद्योग की स्थापना के लिये भारत और रूस सरकार मे समझौता हो गया है।

उपर्युक्त दोनों सरकारो के वीच हुए समझौते के अनुसार यद्यपि सम्पूर्ण कारखाना ३१ दिसम्वर १९५९ तक तैयार हो सकेगा तथापि उसके कुछ महत्वपूर्ण विभाग १९५८ के अत तक तैयार हो जावेगे। प्रारंभ मे उसकी उत्पादन क्षमता ७५०,००० टन होगी, किन्तु वाद मे वह १,०००,००० टन तक वढाई जा सकेगी। कारखाने की स्थापना मे अनुमानत. ४३ करोड रुपये व्यय होगा तथा उसको उत्पादन-योग्य वनाने मे १०० करोड रुपये तक लग जावेग। तत्पश्चात् नगर वसाने, यातायात की सुविधाए प्रदान करने एवं अन्य तत्सवधी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कार्यो को मिलाकर कुल ४०० करोड रुपयो के व्यय का अनुमान लगाया गया है। कारखाने के लिये रूस से यत्रों, उपकरणों तथा तात्रिक मार्गदर्शन की प्राप्ति होगी। प्रौद्योगिक प्रशिक्षण के लिये भारत और रूस दोनों ही देशों मे समुचित व्यवस्था की

गई है। उक्त कारखाने के सर्वेक्षण का काम भी प्रगति पर है। इसी तरह प्रमुख उद्योग एवं तत्संबंधी अनेक सहायक उद्योगों के लिये आवश्यक भूमि की प्राप्ति के हेतु भी राज्य सरकार ने ५९ गावों को खाली करने के लिये सम्बन्धित ग्रामवासियों को सूचित कर दिया है।

प्रस्तावित इस्पात उद्योग की स्थापना के लिये भिलाई को ही क्यों चुना गया—जब इस प्रश्न पर हम विचार करते हैं, तो भिलाई का विशिष्ट महत्व स्पष्ट हो जाता है। किसी भी उद्योग की स्थापना के लिये कच्चे माल, सस्ता श्रम, शक्ति के साधन, जल-पूर्ति तथा यातायात और विक्रय की सुविधाएं नितांत आवश्यक होती हैं। इन दृष्टिकोणों से भिलाई का मूल्यांकन किया जाने पर उक्त क्षेत्र इस्पात उद्योग के लिये सर्वथा अनुरूप ठहरता है। इस्पात उद्योग के लिये आवश्यक खनिज पदार्थों में कच्चा लोहा, कोयला, फायर-क्ले, फ्लोरस्पार, सिलीका, टंगस्टन आदि प्रमुख हैं। उल्लेखनीय है कि भिलाई इस्पात उद्योग के लिए ये खनिज सरलता से आसपास के क्षेत्रों में ही प्राप्त हो सकेंगे। भिलाई के निकट ही दल्ली-राजहाडा, रावघाट, तथा बेलाडिला आदि क्षेत्र हैं जहां लगभग १,१५० लाख टन कच्चे लोहे के संचय भू-गर्भित हैं। इन संचयों के कच्चे लोहे में ६५ से ६९ प्रतिशत तक लौह तत्व पाये जाते हैं। इस उद्योग को कोयले की पूर्ति समीपस्थ पेंचवेली, कन्हान, कोरबा और गोरेदेवा के कोयला-क्षेत्रों से की जा सकेगी। अनुमान है कि इस राज्य में २७२ लाख टन उत्तम कोकिंग कोल और ५२.५ लाख टन उत्तम स्टील-कोल के भी संचय हैं। फायर-क्ले लखमी कन्तानाला के आसपास के प्रदेश से, जहां कि इस धातु की ५०० गज लम्बी तह जमी है, सुविधापूर्वक मिल सकता है। कायनाइट के भी विपुल संचय कटहर, कटनी, मण्डला और सिवनी के क्षेत्रों में भू-गर्भित हैं। मैंगनीज के लिये तो मध्यप्रदेश को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। यह खनिज पदार्थ बालाघाट, छिंदवाडा, भण्डारा व नागपुर जिलों के भू-क्षेत्रों में अतुल मात्रा में भरा पड़ा है। इसी तरह अन्य खनिज पदार्थ भी इस उद्योग को सुविधापूर्वक मिल सकेंगे।

इस उद्योग को भिलाई के आसपास वाले क्षेत्र से सस्ते श्रम की पूर्ति भी सरलतापूर्वक की जा सकेगी। जलपूर्ति के लिये तंदुला जलसंचय और गादली तथा दुधवा तालाब निकट ही हैं। साथ ही, मरोदा तालाब, जिसमें १,६६३ लाख घन फीट तक पानी आ सकता है, सफलतापूर्वक कूलिंग रिजरवायर बनाया जा सकता है। उद्योग को विद्युत शक्ति की पूर्ति भी रायपुर के ताप-विद्युत् केन्द्र से सरलतापूर्वक की जा सकती है। भिलाई बम्बई और कलकत्ता को जोड़ने वाले प्रमुख रेलमार्ग का एक स्टेशन है जो कि दुर्ग से ८ मील और रायपुर से १६ मील की दूरी पर स्थित है। इसी तरह विजगापटटम बंदरगाह भी यहां से अधिक दूर नहीं है। तात्पर्य यह कि इस उद्योग को अन्तराज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से भी अनुकूल स्थिति प्राप्त है। साथ ही, उपरोक्त सभी साधनों एवं सुविधाओं के सरलतापूर्वक उपलब्ध होने से इस उद्योग के अपेक्षित विकास की पूर्ण आशा है।

लघु प्रमाप व कुटीर उद्योग —वृहत-प्रमाप उद्योगों के साथ ही, मध्यप्रदेश में लघु-प्रमाप व कुटीर उद्योगों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। ग्रामीण जीवन से तो उन्होंने समरसता प्राप्त कर ली है। इन उद्योगों से राज्य के लाखों व्यक्ति अपना जीवनयापन करते हैं। मध्यप्रदेश के ऐसे उद्योगों को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा—वस्त्र संबंधी लघु प्रमाप व कुटीर उद्योग और अन्य उद्योग जो पहिली श्रेणी में नहीं आते।

मध्यप्रदेश के विभिन्न प्रकार के लघु प्रमाप व कुटीर उद्योगों के कुल उपक्रमों की संख्या लगभग १२८,००० है, जिन में से वस्त्र संबंधी उद्योगों की उपक्रम-संख्या ५२ प्रतिशत है और अन्य उद्योगों की उपक्रम-संख्या ४८ प्रतिशत। वस्त्र संबंधी उद्योगों के अंतर्गत हाथ करघे (बुनाई व कताई), ऊन व कृत्रिम रेशम की कताई व बुनाई, तथा वस्त्रों की छपाई, धुलाई और रंगाई करने व रस्सी और सुतली इत्यादि बनाने के उद्योग प्रमुख हैं। इन में से हाथ करघा उद्योग विशेष महत्वपूर्ण है। मध्यप्रदेश में हाथ करघों की कुल संख्या १६८,२६० है। दूसरी श्रेणी के उद्योगों में बीडी बनाने, तेल निकालने, चमडा पकाने व चमडे के सामान बनाने, मिट्टी के बर्तन, ईंटें व खपरैल बनाने, टोकनियां बनाने और गुड उत्पादन करने के उद्योग तथा बढई व लोहारी के व्यवसाय विशेष उल्लेखनीय हैं।

आज के मशीन युग में मशीनों द्वारा निर्मित माल की प्रतियोगिता में न टिक सकने के कारण इन उद्योगों का दिनोदिन ह्रास परिलक्षित होता है। राज्य सरकार इन उद्योगों को आर्थिक सहायता देकर, कच्चे माल की पूर्ति कर और यातायात तथा क्रय विक्रय की सुविधाएं जुटाकर इन उद्योगों के विकास के लिए यथासंभव प्रयत्न कर रही है। इन उद्योगों के विकासार्थ राज्य में ५ लाख रुपयें की एक विकास योजना भी कार्यान्वित की जा रही है, जिसके अंतर्गत

बेरोजगारो और श्रमिको के प्रशिक्षण व सेवानियोजन की व्यवस्था की गई है। इसी तरह पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नागपुर में एक औद्योगिक शाला की भी स्थापना की गई है जो वर्तमान कुटीर उद्योगों की विभिन्न समस्याओं का अनुसंधान करने, उत्पादन केंद्रों की व्यवस्था करने तथा कुटीर उद्योगों की प्रक्रियाओ के प्रदर्शन करने व तत्संबंधी व्यक्तियो को प्रौद्योगिक सलाह देने के महत्वपूर्ण कार्य करती है।

विद्युत् शक्ति का उत्पादन—उपरोक्त उद्योगो के संचालन, प्रकाश एवं सिचाई कार्यो तथा अन्य विविध आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये मध्यप्रदेश मे "विद्युत्-शक्ति का उत्पादन" उत्तरोत्तर स्वयं एक महत्वपूर्ण उद्योग बनता जा रहा है। यहा यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि विगत लगभग ५० वर्षो से राज्य मे विद्युत्-शक्ति का उत्पादन अधिकाशत. प्रकाशकार्यो के लिये अथवा जनता के उपभोग के लिये ही होता रहा है, और आज भी हमारी अनेक विद्युत् विकास योजनाएं इसी उद्देश्य से कार्यान्वित की जा रही है। किन्तु स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद यहा नेपा मिल्स, बल्लारशा पेपर एन्ड स्ट्रा बोर्ड मिल्स प्रभृति मशीनो से सचालित विशालकाय कारखानो के हेतु भी बिजली पैदा करने के लिये उत्तरोत्तर ध्यान दिया जा रहा है, और आशा है कि निकट भविष्य मे ही राज्य के बृहत्-प्रमाप औद्योगिक विकास के साथ औद्योगिक उपयोग के लिये विद्युत्-शक्ति का उत्पादन भी शीघ्रता से बढ सकेगा।

राज्य मे कोयला द्वारा विद्युत्-शक्ति का उत्पादन वैसे तो सन् १९१३ से ही आरम्भ हो गया था, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक इस ओर अधिक प्रगति न की जा सकी। उदाहरणार्थ, सन् १९४६ में राज्य की विद्युत्-उत्पादन क्षमता केवल २६,४८५ किलोवाट थी तथा यहां कुल ६५० मील लम्बी विद्युत्-पूर्ति लाइने कार्य करती थी। २० हजार किलोवाट विद्युत्-उत्पादन शक्तिवाले खापरखेडा ताप-विद्युत् केन्द्र की स्थापना से अब सम्पूर्ण राज्य मे विद्युत् जाल बिछा देने के उद्देश्य से सरकार ने राज्य को दक्षिणी, पूर्वी और उत्तरी ग्रिडो मे विभाजित कर दिया है। दक्षिणी ग्रिड योजना के अतर्गत् केन्द्रीय ताप-विद्युत् केन्द्र—खापरखेडा, पेचवेली एक्स्टेन्शन, गोदिया एक्स्टेन्शन, बल्लारशा विद्युत् केन्द्र, चादनी विद्युत् केन्द्र और नगर वितरण योजनाए आती है। इनमे से खापरखेडा विद्युत् केन्द्र, बल्लारशा विद्युत् केन्द्र और चादनी विद्युत् केन्द्र की उत्पादन-क्षमता क्रमशः ३०,०००, २२,५०० और १७,५०० किलोवाट हैं। इस समय बल्लारशा विद्युत् केन्द्र का निर्माण जारी है, किन्तु अन्य दोनो केन्द्र अपनी पूरी क्षमता से कार्य करने लगे हैं। पूर्वी ग्रिड योजना मे रायपुर का ८ हजार किलोवाट उत्पादनक्षमता वाला विद्युत् केन्द्र आता है, जिस मे ४ हजार किलोवाट वाली विस्तार योजना भी शामिल है। इसका निर्माण-कार्य अभी जारी है। उत्तरी ग्रिड मे जबलपुर की विद्युत्-प्रदाय योजना आती है जिसके अतर्गत जबलपुर के समीपवर्ती क्षेत्रो मे विद्युत्-पूर्ति की जा रही है। इन विद्युत् केन्द्रो के अतिरिक्त इटारसी मे एक ३ हजार किलोवाट उत्पादनक्षमता वाले विद्युत् केन्द्र का निर्माण कार्य भी चल रहा है।

उपरोक्त ताप-विद्युत् केन्द्रों की स्थापना एव उनकी कार्यान्विति के फलस्वरूप विगत कुछ वर्षो से राज्य के विद्युत्-उत्पादन मे तीव्रगति से वृद्धि हुई है। इसी तरह विद्युत्-उपभोग की गति मे भी काफी प्रगति परिलक्षित हुई है।

उपरोक्त विद्युत् योजनाओ के अतिरिक्त हाल ही मे १ ३५ करोड रुपये की लागत की एक दूसरी योजना कार्यान्वित हो रही हैं जिसके अतर्गत राज्य के अनेक शहरी क्षेत्रो मे विविध कार्यो के लिये विद्युत्-पूर्ति की जा सकेगी। इसी तरह अन्य ७६ शहरो व गांवो मे बिजली की पूर्ति करने के लिये एक और विद्युत् योजना स्वीकृत हो चुकी है। साथ ही राज्य की द्वितीय पचवर्षीय योजना के लिये ८ विशाल विद्युत् योजनाए प्रस्तावित की गई है जिनका कुल व्यय अनुमानतः २,९६७.११ लाख रुपये होगा। इन सभी योजनाओ की कार्यान्विति से राज्य के अधिकाश भाग मे विद्युत् जाल फैल जायगा और विभिन्न बृहत्-प्रमाप एवं लघु-प्रमाप उद्योगों एव अन्य कार्यो के लिये पर्याप्त विद्युत्-शक्ति की पूर्ति की जा सकेगी।

आर्थिक सहायता केवल कागज, पेन्टस्, फल-सरक्षण तथा साबुन उद्योग को ही दी गई है। इसका प्रमुख कारण यह था कि राज्य मे इन उद्योगो के लिये अन्य सब सुविधाएं होते हुए भी पूजी के अभाव मे उनकी यथापेक्षित प्रगति सम्भव नही हो पा रही थी।

प्रदेश में सरकार की ओर से उद्योगो को सहायता देने के लिये एक अधिनियम है। कुछ उद्योगो को उसके अन्तर्गत सहायता दी गई है। इसी सिलसिले मे राज्य के विभिन्न उद्योगों को औद्योगिक वित्त निगम

(इन्डस्ट्रियल फाइनेंस कार्पोरेशन) द्वारा दी गई आर्थिक सहायता भी उल्लेखनीय है। निगम ने ३० जून १९५४ तक सूती कपड़े के उद्योग को ३३,७५,००० रुपये व मृच्छिल्प एवं शीशा उद्योग को ६,००,००० रुपये का ऋण दिया।

मध्यप्रदेश में सहकारिता

भारतवर्ष के अन्य भागो में जब कि सहकारिता लोगो के लिये एक पहेली थी, तब मध्यप्रदेश में सहकारी समिति की स्थापना हो चुकी थी। देश में सहकारिता आन्दोलन के प्रारंभ होने (२५ मार्च १९०४) से दो वर्ष पूर्व ही होशंगाबाद जिले के पिपरिया नामक स्थान में प्रथम सहकारी समिति की स्थापना हो चुकी थी। अतएव मध्यप्रदेश को यदि सहकारिता आन्दोलन का अग्रदूत कहा जावे तो अतिशयोक्ति न होगी। ५० वर्षों से भी अधिक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिये इस आन्दोलन ने अनेकों उतार-चढाव देखे हैं और अनेकों संकटकालीन परिस्थितियों का सामना किया है।

१९ वीं सदी की अन्तिम दशाब्दि में देश में लगातार कई वर्षो तक सूखा पडने व फसलो के नष्ट होने से कृषकों की आर्थिक स्थिति क्रमश बिगडती गई। ऐसी संकटकालीन स्थिति में कृषकों को कृषि-कार्यों के लिये सुलभ और सस्ती साख की पूर्ति करना अनिवार्य हो गया। इस समय साहूकार ही कृषि-साख की पूर्ति करने वाले प्रमुख स्रोत थे। किन्तु उनके द्वारा प्रदान की गई साख एक ओर तो अपर्याप्त होती थी, और दूसरी ओर अधिक व्याज की दर के कारण महगी भी। अत इस समय एक ऐसी एजेंसी का होना आवश्यक हो गया जो कृषको की वित्तीय आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति कर सके। इस हेतु वर्ष १९०४ में देश में सहकारी समिति अधिनियम पारित किया गया। यह अधिनियम हमारे राज्य में भी लागू हुआ। साख समितिया स्थापित करने के लिये सर्व प्रथम होशंगाबाद व बतूल जिले चुन गये और तद्नुसार होशंगाबाद में व बैतूल में तीन सहकारी समितियो की स्थापना की गई। तत्पश्चात् सहकारी समितिया की शनै-शनैः प्रगति होती गई। उदाहरणार्थ, सन् १९१२ में राज्य में ऐसी समितियो की संख्या २८२ तक पहुच गई थी, जिनकी सदस्य-संख्या ७,२०३ थी व क्रियाशील पूजी २,४८,०३१ रुपये। तत्कालीन नागरिक समिति याको संख्या केवल ८ ही थी, जब कि उनकी सदस्य संख्या १,२४७ व क्रियाशील पूजी २,४८,०३१ रुपये। इसी अवधि में (वर्ष १९०४ में) सिहोरा (जबलपुर जिला) में सब से पहिले केन्द्रीय सहकारी बैंक की स्थापना हुई। इसी तरह सन् १९११ में प्रान्तीय सहकारी बैंक की स्थापना भी विशेष उल्लेखनीय है, जिसने राज्य की सम्पूर्ण सहकारी साख व्यवस्था पर नियन्त्रण रख आन्दोलन को एक नई स्फूर्ति प्रदान की। सन १९१२ तक प्रान्त में बालाघाट, होशंगाबाद, हरदा, बतूल, अकोला, सिरोंचा और मुडवारा में भी केन्द्रीय सहकारी बकों की स्थापना हो चुकी थी जिन में कुल १,७८,५१६ रुपये की पूजी लगी हुई थी।

सहकारिता आन्दोलन में वर्ष १९१२ के पश्चात् कोई विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन अथवा घटना नही हुई किन्तु वर्ष १९२० में फसलो की खराबी के फलस्वरूप ऋण एव वित्तीय सहायता की माग काफी बढ गई। इस समय तक तो यह आन्दोलन अपनी शैशवावस्था में ही था। प्रान्तीय बकों व सहकारी साख समितियो में ऋण की माग काफी बढ गई थी। जनता द्वारा जमा किये गये धन से कही अधिक की माग की गई। इस समय ऐसी स्थिति में यदि प्रान्तीय सरकार इन बकों व समितियों की सहायता न करती तो शायद सहकारी आन्दोलन मृतप्राय हो जाता। किन्तु राज्य सरकार ने प्रान्तीय सहकारी बैंक को कुल ३६ लाख रुपये की राशि प्रदान कर राज्य के सहकारिता आदोलन को बडे सकट से बचा लिया। इसी समय सहकारी आन्दोलन के सम्पूर्ण ढाचे का सिंहावलोकन करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई थी जिसकी प्राय सभी सिफारिशें मान ली गई। सन् १९११-१२ में समितियो की संख्या ५४० थी जो वर्ष १९२१ में बढ कर ४,२५० तक पहुच गई थी। अन्य सहकारी समितियो की संख्या भी ७६१ हो चुकी थी। सन १९१८ में सहकारी स्टोर खोलने का भी श्रीगणेश हुआ तथा सन् १९२०-२१ तक ३१ स्टोर खुल चुके थे।

सन् १९२० से १९२८ तक प्रदेश में सहकारी आन्दोलन ठीक ढग से चला, किन्तु सन् १९२८ के पश्चात् कृषि उत्पादनो के मूल्यों में एकदम गिरावट आने से सहकारिता आन्दोलन को पुन संकटकालीन स्थिति से गुजरना पडा। इस समय कृषकों को दिये गये ऋण की राशि वसूल करना बकों के लिये अत्यंत कठिन काम हो गया। इस पर बैंकों ने कृषकों की जमीन ऋण की अदायगी के रूप में ले ली। किन्तु बैंकों के समक्ष अब ऐसी जमीनो की व्यवस्था करने की एक नई समस्या खडी हो गई। स्वभावत इससे सहकारी आन्दोलन को एक बडा धक्का लगा। सन् १९४१ में जाकर सहकारी बकों की हालत सुधारने के लिये एक योजना क्रियान्वित की गई। साथ ही इस समय तक कृषि उत्पादनो के मूल्यों में वृद्धि के कारण इन बकों की आर्थिक स्थिति सुधर गई।

सहकारिता के इतिहास मे वर्ष १९४२ के वाद का समय विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि इस अवधि में सहकारी आन्दोलन का सम्पूर्ण ढाचा ही ऊपर से नीचे तक वदल गया। इसके पहिले केवल साख समितियों की ही स्थापना पर जोर दिया गया था तथा गैर-साख समितियो की उपेक्षा की जाती रही। गैर-साख समितियो की संख्या भी नगण्य थी। किन्तु इस अवधि मे गैर-साख समितियो की भी अच्छी प्रगति हुई। इसी समय आवश्यक वस्तुओ पर लगाये गये नियंत्रणो के कारण व्यापार-क्षेत्र मे भी प्रतिद्वन्दिता काफी कम हो गई थी। अत. गैर-साख समितियों की स्थापना के लिये यह वडा ही सुन्दर अवसर था। इस समय मे साख समितियों की अपेक्षा गैर-साख समितियों की स्थापना का कार्य काफी तेजी से हुआ।

वर्ष १९४२ व १९५३ के आंकडों की तुलनासे इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाता है:—

नाम	वर्ष १९४२ (३०-६-४२)	वर्ष १९५३ (३०-६-५३)
(१)	(२)	(३)
सहकारी साख आन्दोलन :—		
(अ) मध्यप्रदेश सहकारी वैंक	१	१
(ब) जिला अथवा तहसील सब-डिवीजन मे केन्द्रीय सहकारी वैंक.	३५	४१
(स) प्राथमिक साख समितिया	४,५४८	८,४२२
सहकारी व्यावसायिक आन्दोलन :—		
(अ) मध्यप्रदेश सहकारी विपणन (मार्केटिंग सोसायटी).	...	१
(व) कृषक संघ व उत्पादक सघ	५९	९६
(स) वहु-उद्देश्यीय समितिया	१६	८३१
सहकारी औद्योगिक आन्दोलन :—		
(अ) प्रान्तीय बुनकर सहकारी समिति ...	१	१
(व) प्राथमिक बुनकर सहकारी समितियां ...	१२७	२७६
अन्य सहकारी समितिया :—		
सहकारी स्टोर्स, गृह-निर्माण आदि, आदि ...	२१६	९४९
योग ...	५,००३	१०,६१८

वर्ष १९५१ के पश्चात् से कन्ट्रोल (नियंत्रण) शिथिल होने तथा क्रमश. समाप्त होने के कारण सहकारी आन्दोलन को काफी क्षति पहुंची है; अन्यथा १९५१ से १९५३ तक तो स्थिति और सुदृढ़ हो गई होती।

सहकारिता के विभिन्न अंगो के कार्य

सहकारी साख आंदोलन

अब तक के इतिहास में सहकारिता आन्दोलन का सबसे प्रमुख अंग सहकारी साख रहा है। वास्तव में सहकारी साख और विशेषकर कृषि क्षेत्र में सहकारी साख की आवश्यकता का अनुभव करते हुए ही इस आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया था तथा इसकी प्रगति का प्रमुख कारण भी "साख" की आवश्यकता ही रहा है। सहकारी साख के क्षेत्र में हुए कार्यों में कृषि-साख व गैर-कृषि साख दोनों ही शामिल है। दोनों ही प्रकार की साख सुविधाएं प्रदान करने के लिये राज्य में अनेक संस्थाएं है जिनमें मध्यप्रदेश सहकारी बैंक, केन्द्रीय बैंक, जमीन रहन बैंक, काश्तकार साख समितियां व गैर-काश्तकार साख समितियां प्रमुख है।

उपरोक्त संस्थाएं कृषकों को साख की सुविधाएं प्रदान करती है। इनकी व्याज की दर भी अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि कृषक इन बैंकों व सहकारी समितियों से कम व्याज की दर पर ऋण लेने के बदले सेठों व साहूकारों से अधिक दर पर ऋण लेते हैं। इसका एक कारण कृषकों की अज्ञानता तो है ही, किन्तु साथ ही, समय पर सुविधापूर्वक व सरलविधि से इन समितियों अथवा बैंकों से ऋण प्राप्त न होना भी एक प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त बैंकों से ऋण प्राप्त करने के लिये कृषक को अपनी जमीन आदि रहन रखनी पड़ती है। किन्तु वह ऐसा करने से हिचकता है क्योंकि साहूकार यद्यपि व्याज दर तो अधिक लेता है, तथापि बिना किसी वस्तु के रहन किये ही ऋण दे देता है। कृषि की वर्तमान स्थिति व सहकारी साख संस्थाओं द्वारा किये गये कार्यों को देखते हुए आज आवश्यकता इस बात की है कि कृषकों को ऋण देने के लिये सरल प्रणाली अपनाई जाय उन्हें ऋण सम्बन्धी अधिकाधिक सुविधाएं प्रदान की जाय व इन संस्थाओं को अधिक लोकप्रिय बनाया जाय। साथ ही, अभी ऐसी संस्थाएं आर्थिक दृष्टि से इतनी सम्पन्न नहीं है कि वे कृषकों को आवश्यकतानुसार पर्याप्त ऋण की पूर्ति कर सकें। अतः इन्हें अधिक साधन सम्पन्न बनाया जाना भी जरूरी है।

व्यावसायिक क्षेत्र में सहकारिता आंदोलन

व्यावसायिक क्षेत्र में सहकारिता आन्दोलन "सहकारिता" का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार कृषि-उत्पादन के लिये व कृषकों की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सहकारी साख व्यवस्था आवश्यक है, उसी प्रकार व्यावसायिक क्षेत्र में भी सहकारिता आवश्यक है। व्यावसायिक क्षेत्र में सहकारिता के अन्तर्गत उत्पादक संघ, कृषक संघ, बहुउद्देशीय समितियां व विपणन समितियां आती है। कृषक को अपने उत्पादन का उचित मूल्य मिले, उसे अपने माल को बेचने में सरलता हो, व उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो, इस हेतु ऐसी समितियां व संघ काफी उपयोगी होते है। आज स्थिति कुछ ऐसी है कि कृषक अपने उत्पादन को, रखने की उचित व्यवस्था न होने और साहूकार का ऋण चुकाने व धनाभाव के कारण, रोककर नहीं रख सकता। फलस्वरूप उसे अनिवार्य रूप से अपना माल, चाहे वह कहीं भी और किसी भी भाव में बिके, बेचना पड़ता है। अतएव कृषक को उचित दाम नहीं मिलते और साहूकार लोग उसकी निर्धनता अथवा धनाभाव का अनुचित लाभ उठाते है। यह नितान्त आवश्यक है कि कृषकों के उत्पादन को बेचने के लिये सुसंगठित विपणन समितियां हों जो कि कृषकों के हित को दृष्टि में रख उनके माल की उचित कीमत दिला सकें। ऐसे अन्न-संग्रहालय भी होना चाहिये जहां कि किसान अपना अनाज सुरक्षित रख सके। इसी तरह जब तक उनका अनाज बिक नहीं जाता तब तक उनकी वित्तीय आवश्यकताओं की भी समुचित पूर्ति होनी चाहिये। यदि इस प्रकार की विपणन समितियां, कृषक संघ व बहुउद्देशीय समितियां आवश्यकतानुसार कार्य करने लगें तो न केवल कृषि के क्षेत्र में, अपितु ग्रामीण कुटीर एवं लघु उद्योगों को भी पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सकेगा। इस दिशा में इस राज्य का अभी काफी प्रगति करना शेष है। यद्यपि राज्य सरकार भी इस ओर वाञ्छित कार्य करने के लिये प्रयत्नशील है, किन्तु यदि जनता और स्वायत्त-शासन संस्थाओं की ओर से भी सक्रिय कदम उठाये जाने लगें तो कृषकों को आशातीत लाभ होने लगेगा, मध्यस्थ वर्ग निकल जावेगें और राज्य के कृषि एवं व्यावसायिक विकास के लिये विस्तृत क्षेत्र खुल जावेगा।

औद्योगिक क्षेत्र में सहकारी आंदोलन

कृषि एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में सहकारिता की सफलता की अपेक्षा हमारे राज्य में औद्योगिक क्षेत्र में सहकारिता की सफलता अधिक रही है। यहां औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली मुख्य सहकारी संस्थाएं बुनकरों की ही है।

हाथ-करघा उद्योग के विकास मे इन संस्थाओं ने काफी सफलता प्राप्त की है और राज्य सरकार ने भी इस दिशा में काफी सहायता प्रदान की है। फलस्वरूप हाथ-करघा उद्योग मे सहकारिता की सफलता अन्य उद्योगो के लिये एक अनुकरणीय विषय बन गया है।

इनके अतिरिक्त राज्य मे गृह-निर्माण समितियो और सहकारी भान्डागारों आदि के विकास के लिये भी काफी विस्तृत क्षेत्र है। गृह-निर्माण के क्षेत्र मे सहकारी समितियो द्वारा कुछ कार्य अवश्य किया गया है; किन्तु वह उतना उत्साहवर्धक नही है जितना कि होना चाहिये। यदि इस दिशा मे भी जनता एव सरकार पारस्परिक सहयोग से कार्य करे तो निश्चय ही ठोस प्रगति की जा सकती है।

लोक-वित्त

जहां तक मध्यप्रदेश का प्रश्न है उसकी आय अथवा राजस्व मे अप्रत्यास्था (Inelasticity), अपर्याप्तता, व समाज कल्याण की दृष्टि से प्रति व्यक्ति व्यय का अल्पतम होना उसकी अपनी विशेषता रही है। किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त हमारा प्रदेश सुदृढ़ आर्थिक नीति का अनुसरण कर उत्तरोत्तर विकास एव उन्नति कर रहा है। यह तथ्य निम्नलिखित आय-व्ययको की तालिका* से भलीभाति स्पष्ट हो जाता है :—

मध्यप्रदेश की आय-व्ययक स्थिति

(लाख रुपयो मे)

विवरण	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
कुल आय	१२,२४.९३	१७,३७.९८	१९,६०.०५	१९,६४.५२	२३,५९.८१
कुल व्यय	११,३५.९०	१६,१५.७१	१९,२६.३८	१६,७३.५७	१८,२२.०९
आधिक्य (+) अथवा घाटा (—)	+८९.०३	+७८.८७	+३३.६७	+२,९०.९५	+५,३७.७२

विवरण	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६
(१)	(७)	(८)	(९)	(१०)
कुल आय	२४,१४.६४	२५,२१.१२	२९,५०.५१	३२,८०.३७
कुल व्यय	१९,४९.६४	२५,०५.७८	३१,४२.२२	३५,६२.३७
आधिक्य (+) अथवा घाटा (—)	+४,६५.००	[illegible]	—१,९१.७१	—२,८२.००

* प्राप्ति स्थान—राज्य [illegible] क (मध्यप्रदेश)।

वर्ष १९४७ से वर्ष १९५५-५६ के आय-व्ययक की तुलना एवं अध्ययन हमें यह स्पष्ट बतायेगा कि व्यय के किन मदों को हम कम कर सके हैं तथा किन मदों में अधिक व्यय किया जा रहा है —

राज्य सरकार के आय व व्यय के साधन

(लाख रुपयों में)

आय			व्यय		
विवरण	१९४७-४८	१९५५-५६ (आयव्ययक अनुमान)	विवरण	१९४७-४८	१९५५-५६ (आयव्ययक अनुमान)
(१)	(२)	(३)	(१)	(२)	(३)
केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (जिसमें १४ ०८ लाख रुपये का सपत्ति शुल्क भी शामिल है)।		१,९० २४	भूमि-कर सम्बन्धी	१,३९ ४७	३,५८ ०१
आय कर (जिसमें ५ ८९ लाख का सम्पत्ति शुल्क भी शामिल हैं)।	१,७८ ४४	३,०० ८४	सिंचाई, इत्यादि	१८ ८९	१,४४ ८९
भू-राजस्व	२,३८ ६५	५,५३ १३	ऋण सेवाएँ	३१ ४१	१,०० १८
मुद्रांक शुल्क	७१ ३७	१,०६ ९२	सामान्य प्रशासन	१,४२ ५३	३,२० ०८
राज्य उत्पाद शुल्क	१,९८ ६६	१,९० ५७	न्याय प्रशासन	३५ ३२	५४ ०९
वन	१,५१ ८१	३,५७ ५२	कारागार तथा अपराधी वसतिगृह।	१८ ६२	२७ ३५
पंजीयन	१५ ९८	२६ ६१	पुलिस	१,७८ ८९	२,५४ ०५
मोटर गाडी अधिनियम के अन्तर्गत आय।	२२ ०८	४४ ८१	वैज्ञानिक विभाग	० ६९	६ ०८
विद्युत शुल्क	० ४३	१२ ७०	शिक्षा	१,८३ ९२	६,२८ ६८
तम्बाखू कर	४ ९६	३ २४	चिकित्सा	३६ ४५	९९ ४२
मोटर स्प्रिट तथा लुब्रीकेन्ट पर बिक्री कर।	१३ २३	४५ ७५	लोक स्वास्थ्य	२४ २९	८९ १६
सामान्य बिक्री कर	६२ ४५	२,३० ००	कृषि	३३ ७७	१,१५ ६७
मनोरंजन शुल्क	२२ ५६	२५ ९७	पशु-चिकित्सा	१२ ७८	४३ १९
व्यापार व्यवसाय व सेवा नियोजन कर।	३ ६८	४ ००	सहकारिता	९ १६	१८ ८९
सिंचाई कर, आदि	१६ ७८	२५ ५१	उद्योग तथा पूर्ति	७ २९	२५ २२
ब्याज	१४ ८९	८१ ५१	विविध विभाग	३ ०८	१५ ००
लोक प्रशासन	७२ २२	९१ ९१	लोक निर्माण कार्य	१,४० ६३	६,३३ ८१
लोक निर्माण कार्य	१५ ०९	३३ ०९	अन्य शीर्षक	१,२१ ३९	३,१९ ७१
अन्य मद	२६ २६	७,०३ ७३	सामुदायिक योजनाएं		३,१० १७
केन्द्रीय शासन से अनुदान		८२ ७२	विद्युत् योजनाएँ	५ ३२	
केन्द्रीय शासन से प्राप्त धनराशि।	९९ ८३	९९ २६			
सामुदायिक विकास योजनाओं केन्द्र से प्राप्त राशि।		१,५१ ७८			
योग	१२,२४ ९३	३२,८० ३७	योग	११,३५ ९०	३५,६२ ३७

प्राप्ति स्थान—राज्य सरकार के आयव्ययक (मध्यप्रदेश)।

लोक-निर्माण एवं शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्यो पर वर्ष १९४७ मे जब कि केवल १,२१.३९ लाख रुपये व १,८३.९२ लाख रुपये व्यय होते थे तब वर्ष १९५५-५६ मे यही राशि बढ़कर ६,३३ ८१ लाख रुपये व ६,२८.६८ लाख रुपये हो जाना तथा सामान्य प्रशासन पर १,४२.५३ लाख रुपये व कारागार व अपराधी वसतिगृह पर १,७८.८९ लाख रुपये व्यय के स्थान पर अब ३,२०.०८ लाख रुपये व २,५४.०५ लाख रुपये होना राज्य सरकार की कल्याणकारी गतिविधियो की उत्तरोत्तर प्रगति का परिचायक है। उक्त अवधि मे राजस्व के साधनो मे भी काफी वृद्धि हुई है। आय-कर (Income-tax) के मद मे वृद्धिगत प्राप्तियां, सन् १९५२-५३ से राजस्व मे एक नये मद का प्रारंभ, अर्थात् केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क (Union Excise Duties), वृद्धिगत अनुदानो, केन्द्रीय सरकार से प्राप्त आर्थिक सहायताओ एव विशेष अनुदानो के फलस्वरूप हमारी राजस्व की स्थिति काफी प्रत्यास्थित (Elastic) हो गई है। वित्त आयोग (१९५२) की सिफारिशों के अनुसार प्राप्त आय-कर भाज्य समुच्चय (Divisible pool of Income-tax receipts) के ५५ प्रतिशत भाग मे से ५.२५ प्रतिशत, व तम्बाखू माचिस आदि के उत्पाद-शुल्क से प्राप्त ४० प्रतिशत शुद्ध आय वाले भाज्य समुच्चय मे से ६ १३ प्रतिशत हिस्सा राज्य के लिये निर्धारित कर दिया गया है।

भू-राजस्व का हमारे राज्य के आयव्ययक के समस्त राजस्व मदो में प्रथम स्थान है। राजस्व के अन्य मदों मे वन, बिक्री कर, उत्पाद-शुल्क एव मुद्राक-शुल्क सम्मिलित हैं। आशा है कि भविष्य मे राज्य की आय में वृद्धि की दृष्टि से वन बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे। किन्तु साथ ही मद्य-निषेध की नीति के उत्तरोत्तर क्रियान्वय से उत्पाद-शुल्क मे कमी होने की प्रवृत्ति भी नजर आने लगी है। बिक्री-कर भी हमारी कर-नीति का एक प्रमुख साधन बनकर सन् १९५४-५५ मे अपनी चरम सीमा पर पहुच चुका है। बिक्री कर मे यह वृद्धि सन् १९५४-५५ मे अधिक चीजो (विशेषत. शक्कर) पर यह कर लगाये जाने के कारण तथा पिछले कर की वसूली के फलस्वरूप ही हुई है। विगत कुछ वर्षो से मुद्राक-शुल्क से प्राप्त राजस्व स्थिरता लिये हुए है। यद्यपि फिलहाल मनोरजन शुल्क से प्राप्त राजस्व अधिक नही है फिर भी लोगो का जीवन-स्तर ऊचा उठने पर इसमें भी वृद्धि होने की पूरी आशा है। आवश्यकता पडने पर सरकार बेटरमेंट लेवी का भी सहारा ले सकती है।

राजस्व में वृद्धि के साथ साथ व्यय के भी प्राय. सभी मदो मे वृद्धि हुई है। किन्तु यह वृद्धि शिक्षा, लोक-निर्माण कार्य, उद्योग, सामान्य प्रशासन एवं ऋण सेवाओ के मदो मे विशेष रूप से परिलक्षित होती है। पुलिस पर होनेवाले व्यय में विशेष अन्तर नही पड़ा है। कर-राजस्व मे वृद्धि के साथ ही साथ उसकी वसूली करने के साधनो पर भी खर्च बढ़ गया है। भू-राजस्व सम्बन्धी व्यय सन् १९४७-४८ मे १,३९ ४७ लाख रुपये से बढकर सन् १९५५-५६ मे ३,५८.०१ लाख रुपये हो गया है। सन् १९५४-५५ मे इसी मद के अन्तर्गत व्यय हेतु की गई माग ६,२०.७७ लाख रुपये थी। इसका कारण यह था कि ३,१७.१९ लाख रुपये का खर्च भूतपूर्व जमीदारी इलाकों के सम्बन्ध मे, भू-राजस्व मद के अन्तर्गत दर्शाया गया था। इसके पूर्व यह खर्च पूजीगत लेखे के अन्तर्गत लिखा जाता था किन्तु अब फिर से राजस्व के अन्तर्गत लिखा जाने लगा है। किसी भी वर्ष प्राय सुरक्षा सेवाओ पर (इन सेवाओ के अन्तर्गत सामान्य प्रशासन, न्याय प्रशासन, कारागार तथा अभियुक्त बन्दोबस्त, पुलिस एव विभिन्न विभाग सम्मिलित है) खर्च किये जानेवाले व्यय की अपेक्षा समाज सेवाओ पर (इन सेवाओ मे वैज्ञानिक शिक्षा, औषधि, लोक स्वास्थ्य, कृषि, ग्रामविकास, पशुचिकित्सा, सहकारिता, उद्योग, आदि विभाग शामिल है) किये जानेवाले व्यय की तुलना मे हम देखेंगे कि पहले की अपेक्षा अब समाज-सेवा कार्यो पर होनेवाले व्यय की राशि मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। और ज्यो-ज्यो हम इस दिशा मे प्रगति करेंगे, हम कल्याणकारी राज्य की ओर अग्रसर होते जावेंगे।

विकास व्यय पर भी राज्य सरकार ने अपना ध्यान केन्द्रित किया है। राज्य सरकार का विकास व्यय सन् १९४७-४८ मे ३,२२.१२ लाख रुपये से बढ़कर सन् १९५५-५६ में २१,६२ ८८ लाख रुपये हो गया है,जो कि ५,७१.४५ प्रतिशत वृद्धि दर्शाता है। विकास योजनाओं को आर्थिक सहायता देने तथा मध्यप्रदेश मे जमींदारी पद्धति को समाप्त कर देने के फलस्वरूप क्षतिपूर्ति के लिये वर्ष १९५०-५१ से लगातार राज्य-विकास निधि मे से प्रत्याहरण (with-drawal) किया जा रहा है।

यातायात व व्यापार

हमारी अधिकांश जनसख्या ग्रामों मे है और जब तक ये ग्राम समुचित यातायात व्यवस्था से सुसम्बद्ध नही किये जाते, तब तक हम इस क्षेत्र मे पिछड़े हुये ही माने जावेंगे। इस दृष्टि से मध्यप्रदेश तो और भी पिछड़ा हुआ प्रान्त है।

अन्य राज्यों की तुलना में हमारा राज्य काफी पीछे है। वर्ष १९५०-५१ में राज्य की कुल सड़कों की लम्बाई ११,१७५ मील था जिसका विवरण इस प्रकार है —

सड़क	पक्की	कच्ची	योग
(१)	(२)	(३)	(४)
राष्ट्र की प्रमुख सड़कें	१,१६८		१,१६४
राज्य की सड़कें	६,८७८	२,७९३	८,६६७
स्वायत्त संस्थाओं की सड़कें	३२९	१,०१५	१,३४४
कुल योग	६,३६७	४,८०८	११,१७५

पचवर्षीय योजना में सड़कों का विकास —जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है हमारा राज्य इस दिशा में काफी पिछड़ा हुआ है अतएव राज्य सरकार ने वर्ष १९५१—५६ की अवधि के लिये २,१७ ७९ लाख रुपये की लागत की योजना बनाई है जिसमें १,२६८ मील लम्बी सड़कें बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। निर्धारित लक्ष्य में से सितम्बर १९५४ तक राज्य में १,०२४ मील लम्बी सड़कें बन चुकी हैं तथा शेष २२४ मील लम्बी सड़कें भी योजना अवधि के पूर्व ही बन जावेंगी। इनके अतिरिक्त लगभग ७५० मील लम्बी ग्राम्य सड़कें भी ग्राम-सड़क विकास योजना के अन्तर्गत बन चुकी है। इन सड़कों के बनाने में कुल सड़क निर्माण-व्यय का एक तिहाई व्यय जनता व दो-तिहाई व्यय सरकार वहन करती है। इसी दिशा में सामुदायिक विकास योजना क्षेत्र व राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड भी कायरत है, जिनके प्रयत्नों से लगभग ७८३ मील लम्बी सड़कें बन चुकी हैं। दिसम्बर १९५४ के अन्त तक बनी इन सड़कों में १९२ मील पक्की व ५९० मील कच्ची सड़कें हैं। इस प्रकार विगत चार वर्षों में ही राज्य में निर्धारित लक्ष्य की अपेक्षा लगभग दुगुनी, अर्थात २,५५६ मील लम्बी सड़कें बन चुकी है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में भी राज्य सरकार ने सड़कों के लिये १,५०९ लाख रुपयों का व्यय करने की योजना बनाई है। उक्त राशि से लगभग १ ७५० मील लम्बी सड़कों का निर्माण हो सकेगा।

सड़क यातायात के प्रमुख साधनों में बैलगाड़ी, मोटर वाहन, मोटर सायकल, टांगे, सायकल व रिक्शे आते है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश यातायात बैलगाड़ी द्वारा ही होता है। मोटर यातायात के सम्बन्ध में राज्य सरकार ने कुछ उल्लेखनीय कदम उठाये है जिनमें से राज्य के मुख्य मार्गों के मोटर यातायात का राष्ट्रीयकरण विशेष महत्वपूर्ण है। राज्य सरकार व केन्द्रीय सरकार ने मिलकर प्रदेश की दो मुख्य मोटर यातायात कम्पनियों के अधिकांश हिस्से खरीद लिये है तथा अब राज्य का अधिकांश मोटर यातायात इन त्रिपक्षीय कम्पनियों द्वारा होता है। राज्य सरकार व केन्द्रीय सरकार द्वारा चालित इन त्रिपक्षीय मोटर कम्पनियों—सी पी सी ट्रान्सपोर्ट कम्पनी लिमिटेड व प्राविन्शियल ट्रान्सपोर्ट कम्पनी लिमिटेड ने पहले की अपेक्षा काफी प्रगति कर ली है।

रेल यातायात —राज्य में रेल यातायात की सुविधायें बहुत कम है, किन्तु देश के मध्य में बसे हुए होने के कारण लगभग सभी दिशाओं से आने-जाने वाले प्रमुख रेल्मार्ग राज्य में से ही होकर जाते है। यहा कुल २,५९६ मील लम्बी रेल्वे लाइनें है। राज्य के आयात एवं निर्यात व्यापार में इन रेल मार्गों का महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु फिर भी इस प्रदेश में रेल यातायात का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। राज्य के बस्तर जैसे विशाल क्षेत्रों में तो रेल यातायात की सुविधायें नगण्य है।

हवाई यातायात —हवाई यातायात द्वारा हमारे राज्य की राजधानी नागपुर देश के प्रमुख शहरों से सम्बद्ध है। यहा से प्रतिदिन यात्रिक सेवा के अतिरिक्त हवाई डाक की व्यवस्था भी की जाती है। किन्तु इस क्षेत्र में भी अभी वांछनीय सुविधाओं की कमी है।

इस प्रकार राज्य की वर्तमान स्थिति को देखते हुये हम कह सकते है कि हमारे राज्य में यातायात की सुविधाओं की जितनी आवश्यकता है उतनी पूर्ति फिलहाल नहीं हो रही है। किन्तु राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार की भावी यातायात योजनाओं को देखते हुये आशा है कि इस विषय में शीघ्रता से पूर्ति होगी।

व्यापार

मध्यप्रदेश में कच्चे माल का विपुल भंडार है जो हमारे लिये बहुमूल्य सम्पत्ति व व्यापारिक प्रगति का मुख्य साधन है। राज्य में कच्चे माल की प्रचुरता के कारण आसपास के व्यापारीगण भी यही राज्य मे आकर बस गये है। कच्चे माल के अतिरिक्त सीमेन्ट, सूती कपडे और कांच के सामान आदि औद्योगिक उत्पादनो और तिलहन सदृश कृषि-उत्पादनों का भी राज्य की व्यापार-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रदेश से होने वाले निर्यात मे उक्त प्रमुख वस्तुओ के अतिरिक्त पशु, पशुओं के सीग व हड्डियां, रंग, हर्रा, संतरे, खाद्यान्न, दूध, लाख, चमडा, खली, घी और ऊन आदि वस्तुओ का भी काफी निर्यात होता है।

निर्यात के अलावा हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आयात भी करना पडता है। राज्य के आयात व्यापार मे जूट व जूट के सामान, शक्कर, लोहे की चादरों, तेल, तम्बाखू, कोकिंग, कोल और सूती कपडे का स्थान विशेष उल्लेखनीय है।

उपरोक्त पदार्थो के अतिरिक्त हमें पशुओं, काफी, चाय, रंग, सूखे मेवे, अनाज, चमडे के सामान, घी, रबर, ऊन और अभ्रक आदि का आयात भी आवश्यकतानुसार करना पडता है।

हमारे राज्य में आयात की अपेक्षा निर्यात की मात्रा ज्यादा है और निर्यात किये जानेवाली वस्तुओं में अधिकांशत: कच्चा माल ही रहता है। किन्तु यदि हम राज्य मे ही इसे निर्मित माल मे परिणित कर सके तो हमारी काफी आर्थिक प्रगति हो सकेगी। हमारे राज्य के व्यापार की एक और उल्लेखनीय बात यह है कि हम जिन वस्तुओं का निर्यात करते है उन्ही का आयात भी करते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि हमारे राज्य से निर्यात की जानेवाली वस्तुए या तो अपेक्षाकृत कम अच्छी किस्म की होती है अथवा कच्चे रूप में माल निर्यात करने के उपरांत हम उसी माल को पक्के अथवा सुधरे हुए रूप में आयात करते है।

कुल मिलाकर हम अपने राज्य के व्यापार के संबध में कह सकते है कि फिलहाल यद्यपि स्थिति संतोपजनक है फिर भी और अधिक विस्तृत क्षेत्र प्रगति के लिये खुला है।

सामुदायिक विकास योजनाएं एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा

हमारे देश मे राष्ट्रीय विस्तार सेवा एवं सामुदायिक विकास योजनाओं के प्रारंभ से भारतीय जन-जीवन मे स्वतंत्र भारत की कल्पना को साकार करने वाला एक क्रान्तिकारी किन्तु शातिपूर्ण युग का सूत्रपात हुआ है। इन योजनाओं द्वारा सदियों से उपेक्षित भारत के प्राण ग्राम एवं ग्रामीणों को सुख एव समृद्धि के मार्ग पर आरूढ कर उनके जीवन-स्तर मे उत्तरोत्तर वृद्धि करने का संकल्प किया जा रहा है।

देश की वर्तमान परिस्थितियो को दृष्टि में रखते हुए गत मई १९५२ को राज्य सरकारों के परामर्श से सामुदायिक विकास की योजना स्वीकृत की गई। २ अक्टूबर १९५२ को देश भर मे ५५ विकास योजनाये प्रारंभ की गई और तब से यह कार्य निरंतर प्रगति कर रहा है। पंचवर्षीय योजनावधि के अन्त तक राष्ट्रीय विस्तार सेवा योजनाओ के अन्तर्गत १,२०० सेवा खडो की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। आशा की जाती है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक संपूर्ण देश राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खंडो से आच्छादित हो जावेगा।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रारंभ की गई इस योजना का उद्घाटन मध्यप्रदेश मे भी, बापू की जन्मतिथि २ अक्टूबर (१९५२) से अमरावती, बस्तर, होशंगाबाद व रायपुर मे विकास केन्द्रों की स्थापना से हुआ। तत्पश्चात् वर्ष १९५३ मे ४ और विकास केन्द्र बालाघाट, बुलढाना, जबलपुर और मंडला जिलो मे स्थापित किये गये। सामुदायिक विकास योजना के साथ साथ राज्य म ७५ राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खंडों की भी स्थापना की गई। इस प्रकार वर्ष १९५३-५४ के अन्त तक ५८,९४ व ३४ आबादी वाले १३,०१२ ग्राम इन योजनाओं के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आ चुके है। वर्ष १९५२ मे स्थापित सामुदायिक विकास योजनाओ पर अब तक ८८.९२ लाख रुपये व्यय हो चुके है। वर्ष १९५३ मे स्थापित सामुदायिक विकास-केन्द्रो व राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खंडों पर भी क्रमश: ५.५५ लाख व ३८.८ लाख रुपये व्यय किये जा चुके है। संपूर्ण राज्य को ३२९ खंडो मे विभाजित किया गया है जोकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक स्थापित किये जा सकेंगे।

ग्रामीण जीवन से सबधित विभिन्न पहलुओ पर योजना के अ तगत किये गये कार्यों में मुख्यत कृषि विस्तार, सिंचाई, पशुपालन, शिक्षा, समाज शिक्षा, स्वास्थ्य एव सफाई, यातायात, ग्रामीण हस्तकलाकौशल आदि उल्लेखनीय हैं।

कृषि विकास कार्य —कृषि विकास के क्षेत्र मे योजनाओ के फलस्वरूप प्राप्त परिणाम लाभकारी एव उत्साह-वर्धक रहे ह। सामुदायिक योजनाओ की शुरुआत होने के पूर्व सुधरी किस्म के बीज व खाद का उपयोग करने वाला कृषि क्षेत्र अब बढकर दुगुना हो गया ह। अब कृषको में खलिहान एव खाद उपयोग करने की वृत्ति दिन दिन बढ रही है। जापानी पद्धति मे धान की खेती करने की दिशा में भी काफी सफलता मिली ह। कृमि विनाशक रसायनो का उपयोग भी बढकर ४ गुना हो गया है किन्तु आज इस सबके बावजूद अनुसधान काय बढाने की आवश्यकता महसूस होती है।

पशुपालन एवं पशु सवधन —पशुपालन एव पशु-सवधन के हेतु वृहद पैमाने पर पशु चिकित्सा सुविधायें प्रदान करने व उत्तम पशु-सन्तति प्राप्त करने के लिये सुधरी हुई नस्ल के उन्नत पशुओ के उपयोग करने की दिशा में भी सफल प्रयास किए गए हैं। कृत्रिम रेतन केन्द्रो की स्थापना, मत्स्य पालन योजना आदि और भी अनेक काय इस दिशा में किये गये हैं।

शिक्षा —योजना के अन्तगत १,२६४ नये स्कूल प्रारभ किये गये हैं जिनके लिये अधिकाश इमारतें वहा की जनता के सहयोग एव योजना की ओर से दी गई आर्थिक सहायता द्वारा बनाई गई है। अधिकाशत स्कूलो में अभी प्रायमिक शिक्षा ही दी जाती ह, न कि बुनियादी शिक्षा।

समाज शिक्षा —समाज शिक्षा के कायक्रम के अन्तगत ग्राम-क्रीडा-केन्द्र, बालक मन्दिर, महिला समाज, खेलकूद के केन्द्र आदि अनेकों प्रयास काफी सफल एव लोकप्रिय बन गये ह। समाज शिक्षा योजना ग्रामीण जीवन को एक नया मोड देने का प्रयत्न कर रही है। स्थान-स्थान पर "कला पथक" के नाम से कही जाने वाली सास्कृतिक इकाइया भी सतत कार्यशील हैं।

स्वास्थ्य एव सफाई —प्रत्यक सामुदायिक योजना खड के सदर मुकाम मे प्रारभिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किये गये ह जिनमें बालको के कल्याणाथ सुविधाए भी प्रदान की गई ह। इन स्थानो पर चिकित्सा केन्द्र की स्थापना में जनता ने भी काफी योगदान किया है। प्रसूतिका गह एव शिशु कल्याण केन्द्रो के प्रति ग्रामीण क्षेत्रो में काफी दिलचस्पी बढ रही है। छोटे-छोटे ग्रामो में प्रसूतिका गृह बनाने की माग आजकल काफी बढ रही है। इनमें जनता का सहयोग भी सराहनीय है। हाल ही मे केन्द्रीय स्वास्थ्य मत्रालय ने राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खडो में १८ प्रारभिक चिकित्सा केन्द्र खोलने की स्वीकृति प्रदान की ह। मलेरिया प्रतिबधक उपाय भी इन क्षेत्रो में काफी लाभप्रद एव महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए ह तथा सफलतापूवक प्रयोग में लाये जा रहे हैं।

हस्तकला कौशल —ग्रामीण हस्तकला कौशल व कुटीर उद्योगो को बढाने की दिशा में अधिक सफलता प्राप्त नही हुई है क्योकि इस हेतु हस्तकला द्वारा निर्मित सामग्री के विक्रय की उचित व्यवस्था का सवथा अभाव है तथा और भी अनेको अन्य कठिनाइया ह। तथापि अमरावती व बरूड में फल-सरक्षण उद्योग व २-३ खडो में वृहद् पैमाने पर ईंटें बनाने का काय भी सफलतापूवक प्रारभ किया गया है। ग्रामीण बढई व लुहारो आदि को भी प्रशिक्षण दिया जा रहा है। चर्मोद्योग सदृश कुछ और भी छोटी-छोटी योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था में मध्यप्रदेश

राष्ट्र की प्रगति उसके विभिन्न राज्यो अथवा प्रदेशो पर निभर करती है। ये राज्य राष्ट्र की ऐसी इकाइया ह कि जिनमे से एक के भी पिछडने पर सारे देश की प्रगति शिथिल हो जाती है। आज जब कि हमारा देश स्वतन्त्र हो चुका है, हम कल्याणकारी राज्य और समाजवादी अथ-व्यवस्था की स्थापना का सकल्प कर चुके ह, तब यह आवश्यक हो जाता ह कि राष्ट्र की प्रत्येक इकाई, राष्ट्रीय अथ-व्यवस्था में अपना मूल्य व स्थान आके। यहा मध्यप्रदेश को भी इसी कसौटी पर कस देखना है कि देश की एक इकाई के रूप मे उसने कहा तक अपनी जिम्मेदारी निभाई ह।

भारत-भूमि का ९ ७५ वा हिस्सा मध्यप्रदेश की सीमा में आता है और १ व १७ के अनुपात में जनसंख्या हमारे राज्य मे है। भारत कृषि-प्रधान देश है, अत प्रत्येक इकाई द्वारा कृषि के क्षेत्र मे किया गया योगदान अपना महत्त्व रखता है। वर्ष १९५१ मे हमारे राज्य मे २८,४८७,१४९ एकड का क्षेत्र विभिन्न फसलो द्वारा वोया गया था। इसी वर्ष वम्वई, उत्तर प्रदेश व मद्रास मे भी क्रमश. ४१,०८१,५८०, ३९,२९९,८०५ तथा ३१,०५८,४६९ एकड भूमि वोई गई थी। सारे देश मे फसलो के अतर्गत आने वाले क्षेत्र मे चतुर्थ स्थान प्राप्त करने का सौभाग्य हमारे राज्य को प्राप्त है। देश में जव कि खाद्यान्नो का अभाव था, मध्यप्रदेश ने इस समस्या के हल मे भी अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है। वर्ष १९४९-५० से लेकर वर्ष १९५३-५४ तक देश मे खाद्यान्न उत्पादन वढाने के अनवरत प्रयत्न किये गये। कुछ राज्यो को छोडकर प्राय. सभी राज्यो में कृषि-क्षेत्र व उत्पादन मे वृद्धि हुई है। मध्यप्रदेश ने इस अवधि मे २०.४ प्रतिशत उत्पादन वृद्धि कर समस्या के हल करने मे महत्त्वपूर्ण हिस्सा बंटाया है। देश की प्रमुख फसलों के उत्पादन में भी मध्यप्रदेश का अच्छा स्थान है। उदाहरणार्थ इसी अवधि मे गेहू व चांवल के उत्पादन की दृष्टि से मध्यप्रदेश का देश मे चौथा व कपास उत्पादन की दृष्टि से दूसरा क्रम रहा है।

औद्योगिक क्षेत्र मे भी हमारा राज्य आगे वढ रहा है। वर्ष १९५१ मे देश मे काच व कांच के सामान के निर्माण मे मध्यप्रदेश का ५ वां व मृच्छिल्प उत्पादन मे तीसरा स्थान रहा। वर्ष १९५२ मे फल-संरक्षण व सागभाजी उत्पादन मे वम्वई के पश्चात् इस राज्य का ही स्थान रहा। इसी प्रकार वर्ष १९५३ में सूती कपडे के उत्पादन मे भी हमारा स्थान ५ वा था। राज्य में वल्लारपुर पेपर मिल्स व नेपा मिल्स की स्थापना से यह प्रदेश कागज उद्योग की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गया है। भिलाई के इस्पात कारखाने मे उत्पादन प्रारभ होते ही यह प्रदेश इस्पात-उत्पादन में भी महत्त्वपूर्ण स्थान वना लेगा।

औद्योगिक विकास की दृष्टि से किये गये प्रतिशत व्यय की दृष्टि से हमारे वाद ही उत्तर प्रदेश (६३.८१), उड़ीसा (५२.२१), मद्रास (४९.२६) तथा राजस्थान (४५ ९७)आदि सव "अ" व "व" श्रेणी के राज्यो का क्रम आता है। प्रति व्यक्ति पीछे औसत व्यय के हिसाव से भी मध्यप्रदेश के पश्चात् उत्तर प्रदेश (०.६ रुपये), हैदरावाद (०.६ रुपये) व मैसूर (०.४ रुपये) का स्थान आता है। समाज सेवा के क्षेत्र मे भी मध्यप्रदेश का नाम विशेष रूप से सामने आया है। वर्ष १९५१ से १९५४ तक की अवधि मे समाज सेवा कार्यो पर किये गये प्रति व्यक्ति व्यय की औसत की दृष्टि से मध्यप्रदेश का स्थान वम्वई व पश्चिमी वंगाल के पश्चात् आता है। मध्यप्रदेश के वाद आन्ध्र, मध्यभारत व अन्य "अ" तथा "व" श्रेणी के राज्यो का क्रम है।

शिक्षा के विकास के लिये भी राज्य ने वर्ष १९५३-५४ मे अपने व्यय का १९.० प्रतिशत भाग शिक्षा पर खर्च किया है, जवकि वम्वई ने १८.९ प्रतिशत, त्रावणकोर-कोचीन ने १७.८ प्रतिशत, हैदरावाद ने १६.९ प्रतिशत, मैसूर ने १६ ८ प्रतिशत तथा विहार व पेप्सू ने क्रमशः १५.६ व १५.४ प्रतिशत व्यय किया।

खनिज पदार्थो की दृष्टि से भी मध्यप्रदेश का देश मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। कच्चा लोहा, मैंगनीज और कोयले जैसे वहुमूल्य खनिज पदार्थों का हमारे राज्य मे विपुल भंडार हैं। देश के सवसे अधिक खनिज-सचय हमारे प्रदेश मे ही भूगर्भस्थ हैं। हमारा राज्य सारे देश के मेंगनीज उत्पादन का ५५ प्रतिशत भाग पूरा करता है। मेंगनीज के क्षेत्र में हमारा उत्पादन उडीसा से ढाई गुना व आसाम से चौगुना अधिक हैं। कोयला उत्पादन की दृष्टि से भी हमारा स्थान देश मे तीसरा आता है। लोहे के उत्पादन के क्षेत्र मे यद्यपि हम कुछ पीछे हैं किन्तु इसका प्रमुख कारण उत्खनन के साधनो का अभाव ही है, तथापि भिलाई के इस्पात कारखाने के खुलने पर हम अवश्य इस क्षेत्र में भी काफी आगे वढ जावेगे। भू-गर्भस्थ लौह-संचय की दृष्टि से उड़ीसा के पश्चात् मध्यप्रदेश का ही क्रम आता है। अनुमानतः उड़ीसा मे १६५.४ करोड टन लोहा भूगर्भस्थ है। इसी प्रकार मध्यप्रदेश मे भी १५५ २ करोड टन लोहा भूगर्भस्थ होने का अनुमान लगाया गया है।

वन-सम्पत्ति की दृष्टि से हमारा राज्य सवसे प्रथम है। वनोत्पत्ति मे इमारती लकडी व जलाऊ लकडी का सर्वाधिक उत्पादन करने का श्रेय मध्यप्रदेश को है। वर्ष १९५१ मे इस राज्य ने कुल १६०,१३१,००० घनफुट लकडी का उत्पादन किया जव कि वम्वई (८२,३४२,०००) उत्तर प्रदेश (६७,४५८,०००) व पश्चिमी वगाल (३९,४४२,०००) जैसे राज्य भी काफी पीछे रहे। इसी प्रकार गौण वनोत्पत्ति मे भी हम महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है।

(**टिप्पणी.**—अन्य राज्यो से मध्यप्रदेश के तुलनात्मक अध्ययन के लिये इस लेख में दी गई संपूर्ण सांख्यिकीय जानकारी अखिल भारतीय प्रकाशनो से ली गई है। स्वभावतः अन्य लेखो मे दी गई तत्संवंधी जानकारी, जो कि राज्य सरकार के विभागीय प्रकाशनों से ली गई है, कुछ भिन्न हो सकती है।)

मध्यप्रदेश के वनवासी

श्री राजेन्द्रप्रसाद अवस्थी "तृषित"

मध्यप्रदेश में निवास करने वाले आदिमवासियों की संख्या २,४७७,०२८ है। उन्हे आदिवासी अथवा आदिम वासी के बदले में वनवासी कहना उपयुक्त समझता हू और इस कारण मैं इस लेख में इसी "वनवासी" शब्द का प्रयोग कर रहा हू। ये वनवासी किस नस्ल के हैं इस बात को निश्चित करने के लिए विद्वानो द्वारा निर्धारित नृतत्त्व शास्त्र का सहारा लेना पडता है। नृतत्त्व-शास्त्रियो ने मानव शरीर के विभिन्न अगो की रचना और उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा के आधार पर वनवासियों को द्राविड और मुण्डा (अथवा कोल)—इन दो नस्लो का बताया है। मुण्डा शब्द संथाली भाषा का "माजही" है, जिसके अन्तर्गत कोलरी (कलेरियन), शावरी और खेरवारी आदि जातियो की बोलिया आती है। कुछ विद्वानो का मत है कि मुण्डा-वंश के लोग ही भारत के आदिवासी है, द्राविड तो आर्यो के समान बाहर से आकर भारत में रहे। कुछ विद्वान् इस मत को स्वीकार नही करते, वे भारत की समस्त हिन्दू जाति को यहा की आदिमजाति मानते है और किसी तरह का वर्गीकरण करना पसन्द नही करते। यह निश्चित है कि सारे वनवासी अपने को हिन्दू मानते है और हिन्दू सस्कृति पर आस्था रखते है। अंग्रेज सरकार ने हरिजनो और वनवासियो को हिन्दुओ से अलग रखने की दृष्टि से इन जातियो की, जहा तक बन पडा है, संख्या बढाकर दिखायी थी। उनका उद्देश्य हिन्दुओ की जनसंख्या और शक्ति को क्षीण करना था, इसलिए उन्हे हिन्दुओ से अलग करके उनमें अंग्रेजो ने द्वेषभाव भरे। इसका प्रमाण सन् १९३१ और १९४१ की जनसंख्या से मिलता है। सन् १९३१ में भारत की पर्वतीय जातियो की जनसंख्या लगभग पौन करोड दिखायी गयी थी, जो सन् १९४१ में अढाई करोड से ऊपर कर दी गयी, अर्थात् जिन पौने दो करोड लोगो को उन प्रान्तो में सन् १९३१ में हिन्दू माना गया था, उनको एक ही कलम से हिन्दुओ से अलग करके वनवासियो में मिला दिया गया। अब स्वतन्त्र भारत में इस भेदभाव को मिटाना बहुत आवश्यक हो गया है। इन वनवासियों को हिन्दुओ के अधिकाधिक पास लाने की आवश्यकता है। भारत के संविधान में इस ओर प्रयत्न किये गये हैं और इसीसे सन् १९५१ की जनसंख्या मे वनवासियो की उपजातियो की अलग-अलग जनसंख्या नही दर्शायी गयी। उसमें भाषा के अनुसार जनसंख्या बतायी गयी है। मध्यप्रदेश में भाषा के अनुसार वनवासियो की जनसंख्या इस प्रकार है* —

(१) हलबी	२६२,८९४
(२) गोंडी	१,०८९,१४१
(३) माडिया	१४०,५८३
(४) परजा (धुरवा)	१९,८४७
(५) कुरुख (ओराव)	९२,५३७
(६) खरिया	१,१८०
(७) कोरवा	१५,७२०
(८) मुण्डा	१,१९०
(९) कोरकू	१६९,८८२

हमारे राज्य में ओरॉव, कँवर (कवार), कोरवा (कोरकू), कोल, कोलम, कोली, डागी, कोलोह, खडिया, खरवार, खोंट या कध, चेरो, धवर, नगसिया, पाण, परहैया, बनजारा, बिरजिया, बिरहोर, असुर, आध, बेडिया, बगा, भील, भुइहार, भुजिया, भूमिज, भोगटा, मलार, माहली, मुण्डा, लोहरा, बेदिया, शवर या सावरा और सथाल जाति के वनवासी निवास करते है।

---

*सेन्सस रिपोर्ट ऑफ इंडिया, १९५१

इनमें से मध्यप्रदेश में सबसे ज्यादा गोंड पाये जाते हैं। समस्त भारतवर्ष मे पाये जाने वाले गोडो की दो-तिहाई आबादी यहीं पर है। गोंडों के अतिरिक्त ओराँव, कँवर (कवार), कोरवा (या पांडु), कोरकू, कोल, खोंढ या कंध, नगसिया, बैगा, भील, मुडा और शवर या सँवरा (सावरा) यहा की अन्य प्रमुख वनवासी जातियां हैं। इन जातियो के कई भेद और उपभेद भी हैं। गोंडो के तो अनेक भेद हैं। बस्तर मे रहने वाले गोडो में भतरा, मारिया, मुडिया, कोया और परजा ये पांच प्रधान भेद मिलते हैं। नर्मदा घाटी के गोडो मे अगरिया, परधान और परहैया तीन भेद और भी हैं। इनके सिवाय राजगोड, राज कोरकू, राज मुडिया, नाइक गोंड, पित-भत्तरा उनकी कुछ उपजातियां हैं।

भाषा के आधार पर वनवासियो के दो प्रमुख भाग किये जा सकते हैं :—

(१) द्रविड—गोड, कोरकू, खोढ, नगसिया और बैगा इत्यादि।

(२) मुण्डा या कोल—ओराँव, कँवर, कोल, शवर, भील, मुण्डा और संथाल इत्यादि।

गोंड मध्यप्रदेश में प्राय: सर्वत्र पाये जाते हैं परन्तु प्रमुखरूप से वे बस्तर और नर्मदा की घाटी मे मिलते हैं। कोरकू छत्तीसगढ व झारखंड हिस्से मे और बरार मे, खोंढ और नगसिया, बस्तर और चादा मे, बैगा मण्डला, बालाघाट, बैतूल जिलो मे, ओराव उडिया प्रदेश से लगे क्षेत्र यथा रायगढ, सिरगुजा आदि जिलो मे, कँवर बिलासपुर और रायगढ मे, कोल बघेलखंडी क्षेत्र के जबलपुर, मडला, सागर और बिलासपुर जिलो मे, शवर बिलासपुर, रायगढ और बुदेलखड मे (बुदेलखड मे इन्हे सौर कहते हैं), मुण्डा बिलासपुर और रायगढ मे, सथाल बिहार से लगे मध्यप्रदेश के क्षेत्र मे और भील राजस्थान से लेकर निमाड जिले तक के हिस्से मे पाये जाते हैं।

बैगाओ के सम्बन्ध मे ग्रिगसन ने लिखा है कि वास्तव मे ये छत्तीसगढ के निवासी हैं। वहां से वे सतपुडा की पहाडी की ओर चले गए ओर बस गए। सर ग्रिगसन ने उनकी भाषा का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि उनकी भाषा मे छत्तीसगढी का पर्याप्त प्रभाव है अत. वे मूलरूप से छत्तीसगढी ही मालूम पडते हैं। यह तर्क कहां तक उचित होगा यह कहा नही जा सकता क्योकि छत्तीसगढी भाषा स्वत . ही अवधी का एक रूपान्तर मात्र है। वेरियर एल्विन के मतानुसार बैगा*, भूमिया जाति की ही एक शाखा है। भुइंया अथवा भूमिया का अर्थ भूमिराजा या भूमिजन होता है। बैगा भी अपने को भूमिजन मानते हैं। डॉ रसल ने बैगा का अर्थ भुइंया जाति के उन विशेष व्यक्तियो से लगाया हैं जो गुनाई-भुताई का काम करते हैं। सम्भवत : भुइया जाति का जो वर्ग दवादारू और गुनाई-भुताई का कार्य करने लगा उसे बैगा कहने लगे। छोटा-नागपुर और मध्यप्रदेश मे ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिए वनवासी जातिया बैगा शब्द का प्रयोग करती हैं जो दवादारू का काम करते हैं। एल्विन साहब ने अपना मत इस आधार पर बनाया है कि बैगा, कोल और गोडो से भी पुराने हैं। वे उन्हें गोंडों से एकदम अलग मानते हैं और उन्हें कोल अथवा मुण्डा नस्ल का बताते हैं। परन्तु बैगा अपने को गोंडों का ही एक अग मानते हैं। इसके सम्बन्ध मे एक लोक कथा प्रचलित है जो इस प्रकार है :—

"बैगाबाबा बैगा लोगोके आदि पुरुष थे। इन्हीं का दूसरा नाम है नगा बैगा। नंगा बैगा की उत्पत्ति एक तूबे मे से हुई। जब बाबा वसिष्ट ने उसे देखा तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। उन्होंने उसको उठाया और जगल मे फेक दिया। एक काली नागिन ने उसे उठाकर तीन बूंद दूध पिलाया और वह एक बामी के पीछे छुप गई। उसके बाद नागिन को एक लडकी हुयी जिसका नाम रखा गया नंगा बैगिन। नागिन ने ही नंगा बैगा और नंगा बैगिन को एक जगह पर पाला पोसा। जब वे बडे हुए तब उनका विवाह हो गया। नंगा बैगा और नगा बैगिन के दो लडके हुए। उनमे से एक जगल काटकर अपना पेट भरने लगा उसको बैगा कहने लगे और दूसरा लडका खेती का काम करने लगा उसको गोंड कहने लगे। इस प्रकार दोनों की जो प्रजा हुई वह बैगा और गोड कहलाने लगी"।

सत्य कुछ भी हो लेकिन बैगाओ का अपना व्यक्तित्व है। वे न तो गोंडों की तरह सभ्य हैं और भुइयों की तरह खेतीबारी मे उतने दक्ष ही हैं। वनवासियों की अन्य जातियो के बीच इसी तरह की कुछ और भी लोक-कथाये सुनने मिलती हैं जिनसे पता लगता है कि वनवासी अन्त मे अपने को एक मानते हैं और परोक्षरूप से भेदभाव के पक्ष मे नहीं हैं।

---

*बैगा—वेरियर एल्विन।

जनरल कनिंगहम ने गोंड शब्द की उत्पत्ति "गौड" देश से बतायी है। पश्चिमी बिहार और पूर्वी बंगाल का कुछ भाग "गौड' देश कहलाता था। कई विद्वान कनिंगहम के इस तर्क से सहमत नहीं हैं। हिस्लाप ने बड़ी लम्बी छान-बीन के पश्चात् लिखा है कि गोंड शब्द तेलगू भाषा का "कोंड" शब्द है। तेलगू में कोंड का अर्थ "पहाड" होता है। आज भी गोंडों का केन्द्र स्थल तिलगाना प्रान्त है। पहाडों के निवासी होने से समतल के लोग इन्हें "कोंड" कहते रहे होंगे। प्रसिद्ध विद्वान् टालेमी ने इनको "गोंडलोई" लिखा है। गोंड स्वयं अपने को महादेव द्वारा उत्पन्न किया बताते हैं। उनका कहना है कि महादेवने मूल पुरुष लिंगो द्वारा इस जाति को अपनी सतानों में बांट दिया। इसीसे प्रत्येक गोंड महादेव का कट्टर भक्त है और उन पर अटूट आस्था रखता है। राजगोंड अपने को रावण की सन्तान कहते हैं, कुछ लोग अपने को क्षत्रिय भी बताते हैं। गोंडों में एक किंवदन्ती प्रचलित है जिससे ज्ञात होता है कि उनका आदि स्थान "काचीकोपा-लोहागढ" है। अनेक विद्वानों के मत से पचमढी का "बडा महादेव" और "चौरागढ" ही वास्तव में "काचीकोपा-लोहागढ" है।

भील और बैंगाओं का वश बहुत पुराना है। ईसा की प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में उनके होने का उल्लेख मिलता है। भील तो पहिले राज्य भी कर चुके हैं। कहते हैं सिसोदिया वश के पहिले मेवाड में भीलों का ही राज्य था। आज भी सिसोदियों का राज्याभिषेक भील सरदार करता है। इतना ही नहीं, द्रोणाचार्य का शिष्य एकलव्य भील-युवक ही था। रामायण काल में भी "भील राजा" और "भीलनी के बेर" का उल्लेख आया है। बैंगाओं ने कभी राज्य नहीं किया। वे भीलों की तरह चतुर और चालाक नहीं रहे, वरन् हमेशा शान्त और एकान्त जीवन व्यतीत करते रहे हैं। सम्भवत अपने इसी गुण के कारण वे सब से पीछे है। भील और बैंगाओं के बीच खान-पान का व्यवहार नहीं है परन्तु दोनों की मूल भाषा मुण्डारी कही जाती है। गोंड और बैंगाओं में पुरुषों के बीच खान-पान का व्यवहार होता है। शबर लोग भी अपने प्राचीन-साहित्य में भील ही कहे गये हैं और कोल, किरात तथा शबर एक ही श्रेणी के माने गये हैं।

"भील" शब्द की उत्पत्ति तामिल शब्द "बिल" से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है—एक प्रकार का धनुष। भीलों द्वारा सदा धनुष रखे जाने के कारण ही सम्भवत उन्हें यह नाम दिया गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। भीलों को कुछ विद्वान् अनार्यों का वशज मानते हैं, कोई विशाल-मुण्डा जाति की एक शाखा बतलाते हैं और कोई उन्हें सवर्ण हिन्दू जाति की एक शाखा कहते हैं। डा हटन ने उनकी शारीरिक बनावट को ध्यान रखकर उन्हें एक मिश्रित नस्ल का बताया है। उनमें आस्ट्रेलियन और काकेशियन जाति के तत्व तथा मगोलियन जाति का प्रभाव दिखायी देता है। इनकी उत्पत्ति के सबध में हमें एक दन्त-कथा सुनने को मिली है, जिसके आधार पर उन्हें मिश्रित नस्ल का मानने पर कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। कथा इस प्रकार है—"एक बार पाच भील शकर जी से मिलने गये। उन्हें देखकर पार्वती जी ने शकर जी से कहा कि मेरे विवाह की खुशी में मेरे भाई आप को उपहार देने आ रहे हैं। शकर जी ने तत्काल उठकर भीलों का स्वागत किया और चलते समय विदाई में उन्हें एक नन्दी भेंट किया। जाते समय पार्वती जी ने बताया कि नन्दी की कूबड में अतुलनीय सम्पत्ति है। भील लालच में पड गये और घर आकर उन्होंने नन्दी का वध कर दिया परन्तु उनके हाथ निराशा ही लगी। उन्हें कुछ भी धन न मिला। इसी समय पार्वती जी वहा प्रकट हुई और कुपित होकर उन्होंने भीलों को श्राप दिया कि तुम लोग कभी सुखी न रह पाओगे और तुम्हारी गणना किसी जाति में न होगी।"

बैंगाओं के सम्बन्ध में अलग से कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण शायद यह है कि बैंगा गोंडों की ही एक जाति है। गोंडों का सब से प्रारम्भिक रूप बैंगा है, जो धीरे-धीरे सभ्य होते गये वे अपने को गोंड या अन्य उपजाति का कहने लगे।

कोरवा या कोरकुआ को मुण्डारी वश का बताया जाता है। "कोर" का अर्थ मनुष्य होता है। "कू" लगाकर उसका बहुवचन बनता है। कर्नल डाल्टन के अनुसार कोरकू और कोरवा एक ही वश के हैं। कोरकुओं के दो भेद है—

(१) राज कोरकू अपने को हिन्दू और राजपूत मानते हैं।

(२) मूल कोरकू आज भी अर्ध-सभ्यावस्था में है। इन के मुवासी, बावरिया, रूमा और बोंडोया—चार भेद हैं। हिस्लाप ने "महुवा" शब्द से मुवास शब्द की उत्पत्ति बताई है। इसी से मुवासी कोरकू बना है। ये छत्तीसगढ में, बावरिया-कोरकू बैतूल में, रूमा-कोरकू, अमरावती जिले में और बोंडोया कोरकू पचमढी के आस पास पाये जाते है।

कोल मूलतया मध्यप्रदेश ही की जाति मानी जाती है और यहीं से वे अन्य प्रातों में गए। "कोल" शब्द सथाली भाषा के "हर" शब्द से निकला है। सथाली भाषा में इस जाति को "हार-हर-हो" अथवा "कोरो" कहते हैं, जिसका अर्थ मनुष्य होता है। डा हीरालाल का कहना है कि 'कोल' शब्द सस्कृत भाषा का है। सस्कृत में उसका अर्थ शूकर होता है। सम्भवत उच्चवर्ग के लोगों ने घृणा प्रदर्शन के लिए इन्हें यह नाम दिया हो।

भुइंहार-भूमिया अथवा भुइयां एक ही जाति के पर्यायवाची शब्द हैं। भुइयां या भूमिया शब्द "भूमि" सूचक है। मध्यप्रदेश के भुइया अपने को "पाण्डुवंशी" कहते हैं और अपना सम्बन्ध पाण्डवो से बताते हैं। वे प्रतिवर्ष फाल्गुन मास में पाण्डवो की पूजा भी करते हैं।

ओराव (उरांव) अपने को कुरख या कुडुख कहते है। इस शब्द की उत्पत्ति भी मुण्डाओं के "होडो" शब्द से मानी जाती है। फादर डेहर के कथनानुसार यह जाति मूलतया कर्नाटक की है। वही से धीरे-धीरे वह आसपास के क्षेत्रो मे फैली। मध्यप्रदेश मे इनके दो भेद हैं परन्तु अन्य स्थानो में उनके पाच भेद मिलते हैं।

मुण्डा शब्द तो वहुत विस्तृत है। इस वंश के अन्तर्गत अनेक वनवासी जातियां आती है। उन्ही जातियों मे मुण्डा भी एक जाति है। मुण्डा शब्द का अर्थ "ग्रामो का मंडल" कहा जाता है। अव तो यह जातिवाचक शब्द वन गया है। संस्कृत मे "मुण्डा" का अर्थ "गांव का मुखिया" होता है। मुण्डा लोग अपने को "होडो-का" कहते हैं और मनुष्य के लिए "होडो" शब्द प्रयुक्त होता है। वनवासियो में प्रयुक्त ऐसे प्रत्येक शब्द का अर्थ एक ही होता है। आसाम के मिकिर अपने को "अर्लाग" कहते हैं। गारो अपने को "मण्डे" कहते हैं और कछारी अपने को "वोडो" कहते हैं। इन सारे शब्दों का अर्थ "मनुष्य" होता है। यही अर्थ मुण्डाओ के "होडो" शब्द का है। अव तो मुण्डा नस्ल और मुण्डा भाषा प्रसिद्ध हो गयी है।

खोड या कंध जाति के लोग अपने को कुई या कुइंजू कहते हैं, जिसका अर्थ भी मनुष्य होता है। वैसे कोड या खोंड तेलगू भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पहाड़ है। पहाड़-प्रिय होने के कारण सम्भवतः उनका यह नाम पडा होगा। कहते हैं वास्तव में ये लोग भूमिया हैं और किसी जमाने मे मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग मे शासन भी करते थे।

संथाल वास्तव मे वंगाल के निवासी हैं, वही से वे देश के अन्य क्षेत्रो मे आये। उनका नामकरण भी वंगाल के मिदनापुर जिला के अन्तर्गत सिलदा परगना मे "सावत" नामक स्थान से ही पडा। यह स्थान "सामन्त-भूमि" भी कहा जाता है।

वनवासियो की उत्पत्ति के सम्वन्ध मे संस्कृत ग्रंथो मे भी अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलते हैं। भागवत ग्रथ मे लिखा है कि ध्रुव की सातवी पीढी में जो राजा वना, उसकी जाघो से निपाद की उत्पत्ति हुई। यह उस समय की वात है जब भारत मे पुर, ग्राम आदि की कल्पना तक न थी। इससे जान पडता है कि वनवासी निपादो और पुर प्रवर्त्तक पृथु वंशजो को एक ही मूल-पुरुप की सतान माना गया है और दोनो को ही भारतीय कहा गया है। इसी तरह दूसरी कथा यह है कि सम्पूर्ण जीव-समाज की सृष्टि कश्यप से हुई जिनका स्थान कश्यप मेरु था। इन्ही से देव, मनुष्य, राक्षस आदि विविध जीव उत्पन्न हुये हैं। उनकी एक पत्नी दिति से दैत्य हुए, दूसरी पत्नी अदिति से देवता हुए, तीसरी पत्नी कद्रू से नागलोक (नागा) हुए, चौथी पत्नी विनता से गरुड (गारुड़ी) जाति के लोग हुए इत्यादि, इत्यादि। इससे भी यह पता चलता है कि इन दोनो मे मूल वन्धुत्व रहा है और दोनो ने ही अपने को भारतीय माना है। अन्य भी कई कथायें है जिनमें कहा गया है कि शंकर ने कभी किरात का वेप धारण कर लिया, कभी शवर का। यक्ष और रक्ष जातिया एक ही मूल पुरुप की सतान कही गयी है और अपने यहा देव योनियो मे मानी गयी है। न तो वनवासियों की किसी दन्तकथा में और न आर्यो की ही किसी पौराणिक कथा मे इस वात का पता चलता है कि आर्य अथवा ये वनवासी कही वाहर से आकर वसे और उन लोगो मे भारतीय स्थल की प्राप्ति के लिए कोई भयकर जातीय संघर्ष रहा हो। "देव-दानव" युद्ध की वातें अवश्य आयी है परन्तु उनमे यह सकेत नही दिया गया कि इनमे से कोई जाति वाहर से आई अथवा कोई अभारतीय करार दे दी गयी.

इस वात के पुष्ट प्रमाण उपस्थित हैं कि वैदिक काल से ही वनवासियो और शेष भारतीय आर्यो का न केवल पडोसियों का-सा ही सम्वन्ध था, किन्तु वैवाहिक सम्वन्ध भी हो जाया करता था। दोनों में सास्कृतिक आदान-प्रदान कई प्रकार से होता रहता था। लोग कहते हैं कि सौभाग्य के समय के सिन्दूर-दान की प्रथा और अर्चा पद्धति मे मूर्ति-पूजा की प्रथा यहा तक महादेव जी और उनके परिवार की कल्पना भी वनवासियो से ही ली गयी है। ये वाते उनकी भारतीय पृष्ठभूमि की अतिरिक्त प्रमाण है।

रहनसहन और पहिनावा.—वनवासी स्वभाव से वडे सीधे-सादे और सरल होते है। वे रग के काले तथा काफी हृष्ट-पुष्ट और सहिष्णु होते हैं। वस्तर के दक्षिणीभाग के कुछ गोड ऐसे भी हैं जो श्वेत रग के है। इन वनवासियों को यदि मिलाकर काम लिया जाय और सत्यता का व्यवहार किया जाय तो वे अपने प्राण न्यौछावर कर देते हैं किन्तु दुर्व्यवहार करने पर जान लेने तक को उतारू हो जाते हैं। वे स्वभाव से छरकीले होते हैं और अपनी वाते छिपाने

की व्याधि उनम अधिक है। पुरुष-वग स्वभाव से आलसी होता है किन्तु उनमें साहस, विनोदप्रियता, धैय और स्नेह की प्रचुर माना रहती है। इसीलिए अपनी निधनता को विस्मृत कर वे सदैव आन दमग्न रहते है।

ये जातिया प्राय जगलो म एक अलग "कॉलोनी" बनाकर नगरो से कोसो दूर रहती ह। हा, इनमें से गाड काफी आगे बढ चुके हैं। राजगोड अपने को क्षनिय कहते हैं। कोल और कँवर अब अ य सवण-हिन्दुओ के पास रहने लगे ह। भील, शवर और बगा तीनो जातिया घने जगलो में निवास करती ह। इन तीनों जातियो के पुरुष लज्जा-निवारण के लिए केवल एक छोटीसी लगोटी लगाते ह और सिर में बडे-बडे वाल रखते ह। वाल वनवाना उनके यहा पाप समझा जाता है। बैगा सिर खुला रखते ह पर भील सिर पर पगडी बाधते हैं। अ य व य-जातियो म बडे वाल रखने की प्रथा नही है।

स्त्रिया अलकारो के सिवाय अपने सारे शरीर को गुदाये रहती ह। शरीर गुदाना उनके यहा मगलसूचक समझा जाता है। वनवासी स्त्रिया आभूषण भी नाना तरह के पहिनती ह। ये आभूषण प्राय चादी, कासा, पीतल, कथीर अथवा तावे के बने होते हैं। वे गले में मोतिया की नाना प्रकार के नक्शे वाली मालायें पहिनती हैं, जिनको बनाने में वे अपनी नैसर्गिक कला काम में लाती हैं। गले में हसली, कठी, छूटा आदि अनेक प्रकार की मालायें (हल्बी में इन्हे "नेर" कहते हैं), कान मे भारी वजन के कणफूल और वालिया, कलाइयो में चूडा, कगना, पट्टाचूडी, अगुलियो में मुदरी, कमर मे साकरी, करडोरा या करधनी और पैर में मुडी, पैंजनिया, तोडर इत्यादि पहिना जाता है।

व्यवसाय —जगलो मे बसने के कारण वनवासियो का मुख्य व्यवसाय शिकार करना, जगली-उपज एकत्रित करना और पहाडी ढग की खेती करना है। उदर-पोषण के लिये उन्हे बडा परिश्रम करना पडता है। जीवन-रक्षा का उनका सबसे बडा साधन शिकार है। शिकार में वे बडे निपुण होते ह और धनुष-बाण सदा अपने साथ रखते ह। बाण में वे एक विशेष प्रकार के जहर का उपयोग करते हैं जिसे "माहुर" कहा जाता है। माहुर बडा जहरीला होता है और खून में उसका थोडासा भी स्पश हो जाने से ही वह समस्त शरीर मे फैल जाता है। इससे वे बडे शेरो तक का शिकार कर डालते ह। जगला में बडे-बडे फन्दे लगाकर भी ये अपना शिकार पकडते ह। वक्ष के दूध का लेप बनाकर उसे पक्षियो के नित्य बैठने की डालियो और टहनिया मे लपेट देते हैं। उन पर बैठते ही पक्षियो के पख फस जाते हैं। अ य छोटे-छोटे जगली पशुओ को वे अ य कई तरह की सूझबूझ से सरलतापूवक पकड लिया करते ह। भील और बैगा पायखाना जाने के बाद शौच नही किया करते। उनका विश्वास ह कि ऐसा करने से उन्हें शेर खा जायेगा। इसी से वे कई महीने नहाते भी नही।

वे धरती माता की छाती म कुसिया (हल की फाल) घुसेडकर पीडा नही देना चाहते इसलिए "बेवर" की खती किया करते ह। पहाड की ढालू पर दो-तीन एकड सघन जगल को "बेवर" कहते ह। मई में झाडो को काटकर आग लगा दी जाती हैं। उनके जल जाने पर राख फैला देते हैं और पानी बरसते ही कोदो-कुटकी और तूर के बीज डाल देते ह। कुछ वनवासी बेवर या पेडू के साथ डाही तरीके की खेती भी करते ह। डाही खती का तरीका भी बेवर से मिलता जुलता ह। अतर यही है कि जहा झाडिया अधिक घनी होनी ह वहा वृक्षा की डगालो को काटकर वे जलाते ह और फिर पानी वरस जाने के बाद बीज बोते हैं। भील इस प्रकार की खेती को "वालरा" खेती कहते ह। राजगोड खेती करने लगे ह। अगरिया लोहार का काम, परधान पुरोहित का, सोलाहा बढई का, गोवारी पशु चराने का काम करते हैं। ओझा तथा बैगा झाड-फूक के लिए अधिक विख्यात ह। बडे से बडे रोग का नाश केवल झाड फूक से किया जा सकता है, यह उनकी दृढ मा यता है। कुछ भील टोलिया बनाकर रहते ह और लूटने का धधा करते हैं और कुछ अब चौकीदारी, पथ-प्रदशन आदि का व्यवसाय करने लगे ह, खोडो ने अब सैनिक-वृत्ति अपना ली है। कधरा हल्दी की खेती अधिक किया करते हैं।

वनवासिया का भोजन सीधा-सादा होता है। उसमे मास की मात्रा अधिक होती है। जगली कन्दमूल, मकई, ज्वार आदि स्थानीय उपज, भात, फल और पत्ते इनके प्रमुख भोजन ह। भात से एक प्रकार का पतला पेय पदाथ तैयार किया जाता है जिसे "पेज" कहते हैं। पेज दिन मे ये ३—४ बार पीते हैं। यह सबसे सस्ता और उनका सबसे प्रिय भोजन है। मास म बाघ, गीदड से लेकर साप, मढक और पक्षियो तक को ये खा जाते ह। पहिले सवर और खाड मनुष्य बलि देने के लिये बदनाम थे। वे तारीपैन्मू देवी को प्रसन्न करने के बहाने मनुष्यो को मारकर खा जाते थे। उनका विश्वास था कि इस बलि से अच्छा अन्न उत्पन्न होता ह। अब भैसे की बलि दी जाती ह। भोजन के साथ शराब आवश्यक है, सारे वनवासी शराब के बडे शौकीन होते हैं और स्त्रिया भी शराब पीती ह।

इन जातियों में संगठन और वन्धुत्व की प्रवल भावना पाई जाती है। इतिहास साक्षी है कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे निवास करनेवाली इन जातियो मे कभी आपस मे वैर या युद्ध नही हुआ। भीलो मे तो एक प्रथा ही वन गई है कि जितनी चीज होती है सव लोग वांटकर खाते हैं। कई वस्तियों में सारा ग्राम सामूहिक रूप से टैक्स देता है। भूमि पर पूरे समाज का अधिकार होता है और खेती के लिये जो जमीन साफ होती है, वह समझौते से वांट ली जाती है। यदि किसी वर्ष एक किसान के यहां अच्छी फसल न हो तो अगले वर्ष उसे सवसे अच्छी साफ की हुई जमीन दी जाती है। गोडो मे तो घोटुलगृह या किसी दूसरे नाम की एक पंचायत ही होती है। उसमें सव अविवाहित लडके-लडकियां खेलते-कूदते और नाचते गाते तथा सोते हैं। वह समाज-सेवा का उत्तम शिक्षणकेन्द्र होता है। अपने सारे वादविवाद और फैसले वे पंचायत द्वारा निवटाते हैं। गाव का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति पचायत का मुखिया होता है।

इनमें जातीय प्रथा वड़ी प्रवल है। 'जात-भात' का उनमे चलन है किन्तु व्यक्ति की आर्थिक-स्थिति को ध्यान में रखकर ही दण्ड दिया जाता है। यहां तक कि यदि किसी के पास १ ही रोटी हुई तो सारे जातीय लोग एक-एक टुकडा वांटकर साथ ले आते हैं। इसी तरह उनमे जाति-पांति का भेदभाव तो है पर इस भेदभाव को वे इस खूबी की तरह निवटा लेते है कि कभी कोई झगडा या आपस मे मनमुटाव नही हो पाता।

रीति-रिवाज.—पहाड़ी जातियां अपने गोत्रादि को वृक्ष, लता और जीव-जन्तुओं के नाम देती है। जिस जाति का जिस वस्तु से परिचय होता है, अर्थात् जो जिसका (जाति-चिन्ह) टोटम रहे, वह उस वस्तु या जानवर को आघात नही पहुंचाती और उसका सम्मान करती है।* प्रत्येक व्यक्ति टोटम के प्रति पूज्य और उपास्य-भाव रखता है। इसी प्रथा को 'गोत्र' कहते हैं। गोत्रों के नाम प्रायः नदी, पहाड़, पौधों या जंगली जानवरों के नामो पर रखे जाते हैं। समगोत्री भाई-वहिन माने जाते हैं और उनमें आपस में विवाह निषिद्ध है।

वनवासी, अपने रीति-रिवाजों में हिन्दू समाज की अन्य आम जनता की सवसे निम्न जाति के रीति-रिवाजों से मिलते-जुलते हैं। विवाह के पूर्व उनके यहां प्रधानतया दो संस्कार ही सम्पन्न होते हैं—एक नामकरण संस्कार और दूसरा लडकियो के शरीर गुदाने का संस्कार। वच्चा पैदा होने के ६ सप्ताह के अन्दर नामकरण संस्कार होता हैं। गोंडों की कुछ उपजातियों में ३-४ सप्ताह के भीतर यह काम होता है। मुडिया ६ सप्ताह मे नाम रखते हैं, मुण्डा ८-१० दिन में ही नामकरण कर लेते हैं और भील, वैगा तथा शवर लगभग २ सप्ताह लेते हैं। नामकरण के दिन लोग घर स्वच्छ करके नवीन मिट्टी के वरतन लाते हैं। उसी दिन प्रसविनी स्त्री नहा-धोकर पवित्र होती है और अपने घर का कामकाज पूर्ववत् करने लगती है। उनके अधिकांश नाम हिन्दू नामों की तरह होते हैं। कुछ वच्चो के नाम पैदा होने वाले माह के अनुसार रखे जाते हैं, जैसे—असारू, वैसाखू, भादरू (भादो मे हुआ), फागू (फाल्गुन मे हुआ) इत्यादि। कुछ नाम सप्ताह के दिनो पर दिये जाते हैं यथा—अयतू, मंगल, शनि, आदि। इसी तरह अकाल के समय पैदा हुए लड़के का नाम अकाली या कंगालू, महुआ वीनते समय पैदा हुये शिशु का नाम इरपा, आदि रखा जाता है।

एक स्थान पर वेरियर एल्विन ने लिखा है कि गोड़ों के अधिकांश नाम गोडी भाषा के हैं और हिन्दू नाम सिर्फ ४.२५ प्रतिशत हैं।† हमें ऐसा भान होता है कि श्री. एल्विन ने घने जंगलों में वसनेवाले विशुद्ध गोड़ों के ही नामो के आधार पर यह निर्णय ले लिया है। वास्तव में गोंड ही नही, सारी वनवासी जातियों के नाम ७५ प्रतिशत से अधिक हिन्दू हैं।

इनके नामकरण में एक विशेषता होती है। इस नाम को माता-पिता कभी नही लेते। वह तो केवल पुनर्जन्म सिद्धान्त की पुष्टि के लिए रहता है। नामकरण के समय वालक के हाथ में चावल का एक दाना दे दिया जाता है और पुरोहित (सिरहा) क्रमवार परिवार के सारे मृतकों के असल नाम लेता है। जिसका नाम लेते समय वालक चावल छोड़ देता है, ऐसा समझा जाता है कि वही मृत व्यक्ति पुनर्जन्म लेकर आया है। कुछ स्थानों मे वच्चे के हाथ में मुर्गी की हड्डी देकर मृतकों के नाम दुहराये जाते हैं और जिसके नाम लेने पर वह हड्डी छोड देता है वह उसी का प्रतिरूप माना जाता है। जिस व्यक्ति का प्रतिरूप यह वालक होता है वही उसका असल नाम रखा जाता है। वाद में एक और उपनाम चालू काम के लिये रख लेते हैं।

---

*"हमारी आदिम जातियां"—भगवानदास केला।

†"मुरिया एण्ड देयर घोटुल"—वेरियर एल्विन, पृष्ठ ७५।

गुदाने की प्रथा —विवाह के पूर्व लडकिया के शरीर को गुदाना बहुत आवश्यक है। यदि किसी लडकी का शरीर गुदाया नही गया तो विवाह के समय ससुर उसके पिता से गुदाने की कीमत लेता है। उनका विश्वास है कि यदि बिना गुदाये कोई स्त्री मर गयी तो मृत्यु के बाद उसे 'महापुरुष' सजा देगा। गोदने का काम लडकी की मा या घर का कोई स्याना करता है। कई स्थानो में ओझा स्त्रिया इस काय को करती है। गुदना गुदाने के सबंध में मुरिया गाडा में एक कथा प्रचलित है।

कहते है ससार के प्रारभ में जाति-पाति का कोई भेदभाव न था। एक दिन महापुरुष ने जातियो के निर्माण का निश्चय किया। उसने जिसे जाला दिया उसका नाम मछुआ, जिसे हल दिया उसे गोड और जिसे कलम दी उसे ब्राम्हण की सज्ञा दी। अत में महापुरुष के पास एक ढोल बची। उसने वह ढोल उन व्यक्तियों को दे दी जो रास्ते से जा रहे थे। इन लोगो का नाम महापुरुष ने ओझा रखा। ये लोग इसी ढोल को पीटकर गाते-बजाते अपना जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन एक ओझा जब शाम को घर आया तो घर में रोटी नही बनी थी। उसने उस-पर अपनी पत्नी को खूब मारा और कहा—'मै तो दिन भर मिहनत करते मरा जाता हू, तू निठल्ली बैठी रहती है।" पत्नी को इस पर बडा क्रोध आया क्योकि वह वैसे ही दिन भर घर के काम-धधा मे परेशान रहती थी। उसने इसी पर ८ दिन की भूख हडताल कर दी। आठवे दिन देवी ने अपने दूतो के द्वारा उस स्त्री को अपने पास बुलाया और जगल में सरई के झाड से एक काला पदार्थ निकालकर काम की सीको से उसके गाल में गुदने बना दिये और कहा कि जाओ मैने तुम्हें गोद दिया। अब तुम इसी पद्धति से अन्य पहाडी जातिया को गोदा करो। ये गुदने ऐसे जेवर है जो मरने के बाद भी शरीर के साथ जाते है। कुछ वनवासी स्त्रिया शरीर गुदाना जीवन की एक कडी परीक्षा मानती है। इस परीक्षा में जो लडकी सफल होती है, वह सुविधापूर्वक वैवाहिक जीवन का भार ढो सकती है। गुदाने के बाद ही लडकी के विवाह की बात शुरू हो जाती है।

घोटुल —बस्तर की माडिया, मुरिया और अन्य वनवासी जातियों में घोटुल विवाह का हेतु समझा जाता है। वास्तव में घोटुल एक प्रकार का नैश्य-विहार का स्थान है। वह गाव की सामूहिक सम्पत्ति समझा जाता है, जहा गाव के सारे अविवाहित युवक और युवतिया स्वतत्रतापूर्वक इकट्ठे होकर मनोरजन, वार्तालाप और प्रेमालाप कर सकते हैं। कई स्थानो में बहुतसी जमीन घोटुल-गृह को दान में दी जाती है। इस तरह के गृह बिहार, उडीसा और आसाम में भी पाये जाते है जिन्ह 'धुमुकिया' कहते है। इन गृहो म सिर्फ एक दरवाजा होता है। गृह के भीतर नृत्यशाला के लिये एक खुला मैदान होता है। इसकी रखवाली के लिये एक कोटवार और एक अफसर होता है जिसे 'धगर महतो' कहते है। प्रत्येक तीसरे साल इन अफसरो की नयी नियुक्ति होती है।

घोटुल में प्रत्येक अविवाहित युवक और युवती प्रवेश पा सकती है। प्रवेश प्राय सरहूल त्योहार के समय प्रति वर्ष दिया जाता है। कही-कही प्रति तीन वर्ष म प्रवेश देते है। इस समय माता-पिता अपने साथ कुछ उपहार, एक छोटा-सा मिट्टी का दिया और १५ दिन तक जल सके इतना तेल उपहार में देते है।

ज्योही पृथ्वी पर सध्या की कालिमा उतरने लगती है घोटुल सारे गाव का आकर्षण केन्द्र बन जाता है। वह नगाडो की ध्वनि और कोलाहल से भर जाता है। वैसे धार्मिक उत्सव और त्योहारो को छोडकर वह दिन भर सूना पडा रहता है। पर्वों पर विभिन्न घोटुला के सदस्य एक साथ मिला करते है। गाव के युवा लडके और लडकिया साथ में बिछावन लेकर घोटुल में एकत्रित होते है। आग की धूनी के सहारे फिर काफी रात तक किस्सा, कहानिया अथवा गायन-वादन या नृत्य होता रहता है। जब रात काफी हो चलती है तब एक साथ वही सब सो जाते है। जब कोई युवक या युवती अपना जीवन-साथी चुन लेती है तो उसकी सूचना घोटुल के मुखिया को दे दी जाती है। फिर एक दिन निश्चित किया जाता है। उस दिन मोटियारी युवती अपने मगेतर को छोडकर घोटुल के सारे सदस्यो को तम्बाखू बाटती है। घोटुल की सदस्य युवतिया उसके मगेतर के बालो में कघी करती और कान में कोई सदेश देती है। इसके बाद ही फिर अपनी-अपनी प्रथाओ के अनुसार विवाह सम्पन्न होता है।

घोटुल के निमत्रण में प्रत्येक सदस्य को अनिवार्य रूप से रहना पडता है। नियमो का उल्लघन करनेवाले को दण्ड दिया जाता है। दण्ड घोटुल के सदस्यो की राय पर घोटुल का मुखिया देता है। यह दण्ड मारपीट से लेकर जुर्माने तक होता है। कठोर अपराध पर निष्कासन तक कर दिया जाता है। विशेष त्योहारो में एक घोटुल के सदस्य दूसरे गाव के घोटुल में जाकर नाचते-गाते है परन्तु शयन के लिये उन्हें अपने ही घोटुल पर आना पडता है, अन्यथा उनके चरित्र पर सदेह कर उन्हे घोटुल की सदस्यता से निकाल दिया जाता है। शादी के बाद लडकिया कभी घोटुल में नही जाती। युवक भी प्राय नही जाते परन्तु विशेष आमत्रणो के समय अथवा अपना दूसरा विवाह करने के इच्छुक युवक वहा जा सकते है।

नृत्य सज्जा में एक वनवासी युवक

तीर से निशाना साधते हुए एक कोरवा वनवासी

वस्तर की माड़िया–युवती, अलंकारों से सुसज्जित हास्य मुद्रा में

मुरियां (गोंड) युवक विवाह सज्जा में
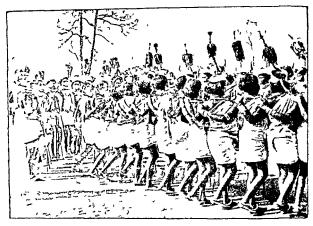
वनवासियों के 'करमा-नृत्य'

वनवासियों का 'गेंडी-नृत्य'

वनवासियों के आभूषण व कला कृतियां

भारतीय गणराज्य दिवस कला–नृत्यों में पुरस्कार प्राप्त मध्यप्रदेश का कला प।क
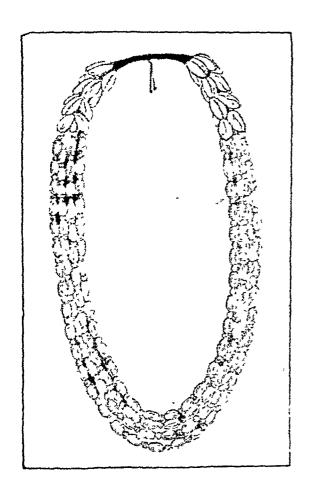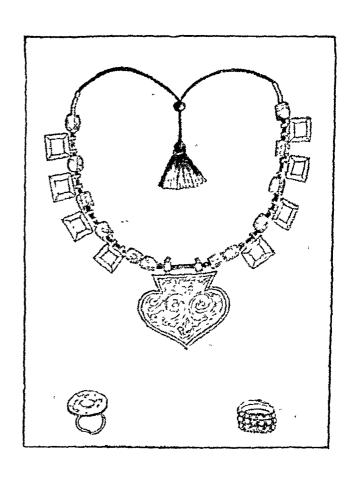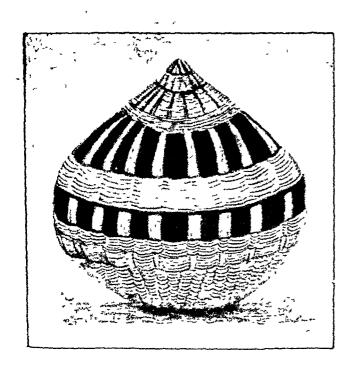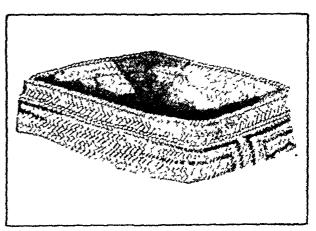
(मुख्य मंत्री प रविशंकरजी शुक्ल के साथ)

विवाह प्रथायें.—वनवासियों मे यौन सम्बन्धी सदाचार का बड़ी दृढ़ता से पालन किया जाता है परन्तु अपनी जाति मे युवक-युवतियों को मिलने और अपने वर चुनने का पूरा अधिकार होता है। विवाह के पूर्व यौन सम्बन्ध को ये लोग बुरा भी नही मानते।

वनवासियों में दो प्रकार की परिवार प्रथायें पाई जाती है: (१) पितृमूलक परिवार और (२) मातृमूलक परिवार। पितृमूलक परिवार में वश का नाम पिता से चलता है, पुत्र सम्पत्ति का अधिकारी होता है और पत्नी को पति के घर में रहना पड़ता है। दूसरी व्यवस्था है मातृमूलक परिवार की। फ्रायड का कहना है कि समाज मे सबसे पहिले मातृमूलक व्यवस्था ही प्रचलित हुई। आसाम की गारो और खासी जातियों मे तथा मद्रास की कुछ पिछड़ी जातियों में यह प्रथा अभी तक चली आ रही है। इस व्यवस्था मे स्त्री की प्रधानता होती है और विवाह के बाद पत्नी ससुराल नही जाती अपितु पति को ही पत्नी के घर मे आकर रहना पड़ता है। वश का नाम पत्नी के नाम से चलता है और बहिन की सन्तान ही माल की सम्पत्ति की अधिकारी होती है।

मध्यप्रदेश के वनवासियों में सर्वत्र पहले प्रकार की, अर्थात् पितृमूलक परिवार की ही व्यवस्था है।

विष्टी.—वनवासियो के विवाह-कृत्य बड़े मनोरंजक होते हैं। मडप के दूसरे दिन वर के घर का मुखिया वधू को लेने जाता है; इसे "विष्टी" कहते हैं। "विष्टी" अपने परिवार के कुछ सदस्यो सहित रात्रि भर वधू के घर रहता है। दूसरे दिन ये लोग मिलकर वधू के घर खाना पकाते और परिवार के समस्त व्यक्तियों को स्वयं परोसकर खिलाते हैं। पश्चात् "हल्दी" आदि के बाद "विष्टी" वधू को अपनी पीठ पर चढाकर वर के गाव ले जाता है। विष्टी के साथ वधू-परिवार के स्त्री-पुरुष दोनों जाते हैं। गाव पहुंचकर उन्हे एक अलग "जनवासा" देकर ठहराया जाता है। रात्रि को "परगौनी", "बडे परगौनी", "मुन्दरी पहिनावा" और "भांवर" आदि संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। इस अवसर पर ये खूब शराब पीते हैं, नाचते और गाते है। वर और वधू को भी नृत्य मे सम्मिलित होना पडता है।

इनकी जाति मे तलाक का आम रिवाज है। विवाह के बाद जब तक पति-पत्नी का आपस मे प्रेम रहता है, तब तक तो दोनों साथ रहते हैं, परन्तु यदि उनमे कुछ भी अनबन हो गयी तो आपस मे तलाक (छोड़-छुट्टी) दे दिया जाता है। तलाक की स्वतत्रता पुरुष और स्त्री—दोनो को समान रूप से है।

वनवासियो मे विवाह का मूल्य सन्तानोत्पत्ति और गृहकार्य चलाने तक ही सीमित होता है। गृहकार्य चलाने में पत्नी को पति की बराबरी से श्रम और मजदूरी करना पड़ती है। सन्तान का लोभ इनमे बहुत अधिक ह, इसी से गोड़ों मे, विशेषकर छत्तीसगढ के माडिया गोड़ो मे एक अजीब-प्रथा प्रचलित है। जब युवती अपने जीवन मे प्रथम बार रजोदर्शन करती है तो चार दिनो तक उसे अशुद्ध समझा जाता है। इन चार दिनो तक वह एक नकली शिशु बनाकर झूले मे झुलाती रहती है। पांचवे दिन तालाब अथवा पास के किसी जलाशय मे जाकर वह स्नान करती है और एक मुर्गी तथा पांच अडे अपने बैगा पुरोहित को दान-स्वरूप दे देती है। बैगा यह भेंट झूलनादेवी को चढ़ाता है और बदले मे उस युवती की गोद मे झूलनादेवी की आकृति दे देता है। गोडों का विश्वास है कि इससे विवाहोपरान्त शीघ्र सन्तान होती है।

लड़का और लड़की दोनो को अपना जीवन-साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता होती है। उनमें भाई और बहिन के बच्चो को आपस मे विवाह करने का अधिकार है, ऐसे विवाह को दूध को वापिस लाना कहा जाता है। सबसे पहिले इसी तरह के सम्बन्ध की खोज की जाती है। जब ऐसा कोई सम्बन्ध उपलब्ध न हो, तब बाहर वर की तलाश की जाती है। यदि विवाह के पूर्व ही कोई कन्या किसी स्वजातीय के सहवास से गर्भवती हो जाती है तो फिर उसके नियमित विवाह की आवश्यकता नही होती। वर, कन्या के पिता को "दांड" (दण्ड) स्वरूप कुछ रुपये दे देता है। यदि कन्या उस व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के साथ विवाह करना चाहती हो तो उसे इसकी भी स्वतन्त्रता होती है। वह उस व्यक्ति पर हल्दी डाल देती है और यही विवाह मान लिया जाता है।

विवाह के अवसर पर साधारणत. कन्या पक्ष के स्त्री-पुरुष कन्या को लेकर वर के गाव जाते है। वही सारे वैवाहिक-कृत्य सम्पन्न होते है और अन्त मे कन्या को वही सौपकर वे लोग लौट आते हैं। कुछ वनवासी हिन्दू समाज की अन्य जातियो की भाति वर को कन्या के यहां ले जाने लगे हैं। इस तरह के व्याह को "चढ़ व्याह" कहा जाता है। कहीं-कही "लमसेना" रखने की प्रथा प्रचलित है। विवाह के पूर्व सम्पन्न कन्या का पिता किसी वर को अपने घर मे लाकर रख लेता है। उसे वहां सभी तरह के कार्य करने पड़ते हैं। जब लड़की का पिता वर के कार्य से सन्तुष्ट

हो जाता है और यह जान लेता है कि वर परिश्रमी है तथा मिहनत कर लडकी का पेट सुगमता से भर सकता है, तब उन दोनो का विवाह कर दिया जाता है। लमसेना रखने की अवधि ३ वर्ष से लेकर ५ वर्ष तक रहती है। गन्धर्व विवाह प्रथा का भी इनमें प्रचलन है। वर जबरन कन्या को भगाकर ले जाता है और उससे विवाह कर लेता है। लेकिन ऐसा उसी स्थिति में होता है जब कन्या, वर के साथ भागने को तैयार हो जाती है। इनके समाज में विधवा विवाह का प्रचार है और बडे भाई की मृत्यु के पश्चात् विधवा भाभी पर देवर का पूरा अधिकार होता है। मृतक कृत्य सम्पन्न होने के बाद देवर भाभी को चूडी पहिना देता है और अपनी पत्नी बना लेता है।

वैसे तो इनमें प्रायः बाल-विवाह होते है और रजस्वला होने की स्थिति विवाह के बाद ही आती है। उस समय भी ऐसा ही किया जाता है। चार दिनो तक वधू के लिए वर का स्पर्श निषिद्ध है। झूलनादेवी का प्रसाद पाने के बाद समागम की छूट रहती है। माडिया गोंड गर्भवती स्त्री को अशुद्ध मानते है और प्रसव होने तक उसे गाव के बाहर एक झोपडी में रखा करते है। इस बीच वह परिवार वालो के साथ न तो बातचीत कर सकती और न उन्हे छू सकती है। पर अब यह प्रथा धीरे-धीरे उठती जा रही है।

वनवासी जादू-टोना, जन्त्र-मन्त्र, झाड-फूक इत्यादि पर बहुत आस्था रखते है इसलिये यदि कोई स्त्री गर्भवती न हो तो इनका सहारा लिया जाता है। तेज बहने वाले नाले का पानी भी गर्भाधान मे सहायक माना जाता है। इन उपायो के असफल होने पर, माता बनने की इच्छुक युवतिया मासिक धर्म के बाद बहुधा पुरुषो की छाया लाघने का यत्न करती है ताकि वह छाया उन्हे माता बना सके। जब यह उपाय भी सफल नही होता तो रविवार की अर्द्धरात्रि को उसे बिल्कुल नग्नावस्था में साज-वृक्ष के पास जाना पडता है, जहा "बूढादेव" उसे माता बना देता है। उनका दृढ विश्वास है कि इनमे से कोई न कोई उपाय अवश्य सफल होता है।

अन्त्येष्टि क्रिया —वनवासियो की अन्त्येष्टि-क्रिया बडी रोचक होती है। साधारणतया वे शव के पैरो को दक्षिण की ओर करके गाडा करते है लेकिन कुछ वनवासी अब मृतको को जलाने भी लगे है। मृत्यु के ९वे दिन आत्मा को वापिस बुलाने की उनमें एक धार्मिक प्रथा है। मृतक के रिश्तेदार, विशेषकर स्त्रिया, मृतक की राख फेंकने नदी के किनारे जाती है और मृतक के नाम को जोर जोर से चिल्लाकर पुकारती है। फिर वे नदी में प्रवेश कर एक मछली अथवा किसी कीडे को पकडकर घर ले आती है और उसे अपने परिवार के पवित्र मृतको के बीच में रख देती है। इस प्रकार उनका विश्वास है कि मृतक की आत्मा घर वापिस आ गई। कभी-कभी उस कीडे (कदाचित केकडा) को इस विश्वास से खा लिया जाता है कि इस तरह आत्मा फिर बालक के रूप में जन्म लेगी। नदी से जो स्त्री पहिले मछली या कोई कीडा पकडती है, वह मृतक उसी के गर्भ से जन्म लेगा, ऐसा उनका विश्वास है।

पुरुष मूडमुडाते है परन्तु उनके सिर के बाल नाई नही बनाता बल्कि मृतक के परिवार का ही एक व्यक्ति बनाता है। बैगाओ में मूड मूडाने की प्रथा नही है। दसवे दिन कर्म किया जाता है जिसे "कुण्डा मिलाना" कहते है। मृतक पितरो में मिला या नही यह देखने के लिए एक कटोरा भर पानी मे दो चावल के दाने डाल दिये जाते है। यदि वे बहकर मिल जायें तो समझा जाता है कि मृतक पितरो में मिल गया। यदि दाने न मिले तो एक माह तक पूजा होती है और फिर दाने डालकर परीक्षा की जाती है। जब भी दोनो चावल मिल जाते है तब गाव का पडा गाव की सीमा पर एक खूटी और त्रिशूल गाडकर आसपास पत्थर की ढेरी लगा देता है जिसे "कोर" कहते है।

गोंड मरने के तीसरे दिन "कोज्जा" मनाते है। पितरो का पूजन हो जाने पर, मेसरिया को साथ लेकर घरवाले भोजन करते है। मृतक की पूजा के समय निम्न गोंडी मन्त्र जपा जाता है —

"नरा खरवरा गुट्टाते मदाकीते कोज्जी जार-मुम कोज्जी"

कपडा बिछाकर एक पायली आटा उस पर डालकर △ यह चिन्ह बनाते है। पास में एक दीपक रखकर उसे एक टोकने से ढाक देते है। कहते है, मृतक आकर उसमें चिन्ह बनाता है। सबेरे दीपक को पानी में बहाकर आटे की रोटी पकाते है और उसका प्रसाद सभी रिश्तेदारो को बाट देते है। इसके बाद शराब पीकर सब लोग खूब नाचते, गाते और आनन्द मनाते है।

कोल अपने मुर्दों को जलाते है। जलाने के पहिले शव को गरम पानी से नहलाकर सारे शरीर में तेल और हल्दी लगाते है। चिता पर शव के साथ वस्त्र, कुछ द्रव्य, गहने और कुछ भोजन भी रखा जाता है। पुराने जमाने में कोरवा जहा मरता था वही गाड दिया जाता था, किन्तु अब मरघट में ले जाते है। पाच वर्ष से कम की अवस्था वाले बच्चो को

वट-वृक्ष या महुआ-वृक्ष के नीचे गाड़ा जाता है। उरांव (मुन्डा) जाति मे १०वे दिन सुअर या मुर्गी मारकर उसकी आख, पूछ, पैर, कान आदि अवयव काटकर गाड देते हैं और दहन-स्थान पर जाकर श्रद्धासहित भात समर्पण करते है। यह उल्लेखनीय है कि ऊपर जिन प्रथाओ का वर्णन किया गया है, उनमे से कुछ प्रथाये सवर्ण हिन्दुओ मे भी प्रचलित है।

धर्म.—अंग्रेजी जमाने मे ईसाइयो ने वनवासियो को भिन्न रखने की दृष्टि से उन्हे प्रेतवादी जातियों के रूप में माना है। उन्होंने उन्हे "विदीन" अथवा "वोंगा होडा" कहकर सवोधित किया। "विदीन" का अर्थ धर्महीन और "बोंगा होडा" का आशय प्रेत पूजा वताया जाता है लेकिन वास्तव मे ऐसा नही है। संथाल, मुण्डा, हो, आदि वनवासी जातिया केवल भूतप्रेतो को ही "वोंगा" नही कहती वल्कि देवी-देवताओ के लिए भी वोगा शव्द का प्रयोग करती है। संथालों मे "ओडाक वोगा" गृहदेवता के रूप मे और "आतो वोगा" ग्रामदेवता के रूप मे पूजा जाता है। सूर्य और चन्द्र को सारे वनवासी देवता मानते है और विभिन्न नामो से उनकी पूजा किया करते है। इससे स्पष्ट है कि वनवासियो में पूरी-पूरी आस्तिकता है और वे हिन्दुओ के ही देवताओ को विभिन्न नामों से पूजते है। इसीलिए डॉ. वेरियर एल्विन ने एक स्थान पर लिखा है—"(भारतीय) प्रायद्वीप के रहनेवाले परिवार में वनवासी जातियो का धर्म हिन्दू धर्म ही है। स्वय हिन्दू धर्म मे भी ऐसे वहुत से तत्त्व है, जिन्हे विज्ञान-वेत्ता प्रेतवादी कहेगे। इसीलिए जनगणना के समय धर्म के खाने में वनवासी जातियो को शुरू से ही हिन्दू लिखना चाहिए था।"

देवी-देवता.—प्रायः सभी वनवासी जातियां हिन्दुओ के देवी-देवताओ को मानती है और उनकी पूजा करती है। महादेव उनका प्रमुख देव है जिसकी पूजा प्रत्येक वनवासी वडी श्रद्धा से करता है। यही देवता उनके गांव का रक्षक, खेती-किसानी मे अतुलनीय सम्पत्ति का दाता और समय पर पानी लानेवाला समझा जाता ह। काली, कंकाली या माता उनकी महत्त्वपूर्ण देवी के रूप मे प्रतिष्ठा पाती है। प्राय: प्रत्येक गांव मे देवी की एक मढिया होती है। इस देवी मे रोगहरण की अद्भुत शक्ति मानी गई है। इसी से गाव को संक्रामक वीमारियो से वचाने के लिए प्रति वर्ष देवी की पूजा वडे समारोह के साथ की जाती है। मड़ई वास्तव मे देवी की ही पूजा है जिसके करने से गाव में माता, हैजा, प्लेग जैसी वीमारियों का प्रकोप नही हो पाता। वस्तर और चांदा के गोड़ पहिले देवी को प्रसन्न करने के लिए नरवलि देते थे लेकिन अव भैंसा या वकरे की वलि दी जाती है।

गोंडों का "दूल्हादेव" चूल्हे के पास का देवता है। सतान पाने के लिए उसकी पूजा होती है। परिवार मे किसी व्यक्ति की मृत्यु के वाद भोज देने के पहिले इस देवता को खाना अर्पण करना आवश्यक माना जाता है। "मुरढकी या रातमायी" कुठिया के नीचे का देवता है जिसकी पूजा गोड एकान्त मे करते है। उनके पशुओ की रक्षा "होलेराय" करता है। इसी के साथ "भैंसासुर" की भी पूजा होती है। "वूढा देव" गोडों का वड़ा देव है जो मरे हुए व्यक्तियो को पुरखो में मिलाता है। आसाढ और कुंवार मे गोड़ "खेरमाई" का पूजन करते है। गोंड़ो के देवता "देवखल्ला" मे रहते है। उनका पुरोहित उनकी नियमित पूजा करता है। "पोलो" देवता वोरे मे वन्द रखा जाता है। "झूलना देवी" मे सन्तान प्रदान करने की अद्भुत शक्ति मानी जाती है। इसी से विवाह के पूर्व गोड़ युवती उसका प्रसाद अवश्य ग्रहण करती है।*

कोल, गोड़ो के प्रायः सभी देव मानते है। साथ ही डोगरदेव, बाघदेव, मुतुवादेव और कुंवरदेव को भी पूजते है। उनका पुजारी भूमक जाति का होता है। भुइयों और वैगाओ का "वढ़ावन देव" वृक्ष के तले निवास करता है। वह उन्हें भूत-प्रेत वाधा से वचाता है। भील हिन्दू देवी-देवताओ के सिवाय "खंडोवा" को भी पूजते है। उरावो के देव "धरमा" मे संकटहरण की प्रवल शक्ति मानी जाती है। उसकी मनौती मे सफेद मुर्गी की वलि दी जाती है। कंध या कोध का प्रवान देव "चोरसी" है। शिकार जाने के पूर्व वैगा "मुसवासी" देव की अभ्यर्थना करते है। "ऋपयासन" उनका दूसरा देव है जो झाड-फूक का स्वामी समझा जाता है। कंध या कोध का प्रधान देवता चोरसी (पृथ्वी) है। प्रति ४-५ वरस मे वे चोरसी के नाम पर महिष की वलि देते है।

त्यौहार.—अन्य लोगो की तरह वनवासी भी विभिन्न त्यौहार वड़े आमोद-प्रमोद से मनाते है। जिस प्रकार हिन्दुओ मे होली, दिवाली, दशहरा आदि त्यौहार मनाये जाते है, वनवासी भी इन सभी त्यौहारो को मनाते है। त्यौहारों के अवसर पर नृत्य व गीतो की प्रधानता रहती है।

---

*"विन्ध्याटवी के जंगल में"—श्री प्रयागदत्त शुक्ल।

ऋतु सबधी त्योहारो में वसन्त एक ऐसा त्योहार है जो सारी वनवासी जातिया मनाती है। इस दिन सारे पुरुष और स्त्रिया नवीन परिधान धारण कर खूब उल्लास के साथ नाचती-गाती है। इस अवसर पर नवयुवक सुरापान कर वनविहार करते है। इस समय पुत्र पिता के सम्मुख अपनी प्रेमिका का चुम्बन लेने में भी नही सकुचाता। वसन्त के इस त्योहार को उराव *"सरहुल" कहते है और सथाल "बाहा"। मुण्डा इस मदनोत्सव को "देशौली बोगा" कहते* है। चैत मास में होने वाले पर्व को मुण्डा "सरहुल बोगा" कहते है। इसे "पुष्पोत्सव" कहना चाहिए। जेष्ठ में "डुमरिया" पर्व होता है। इस समय कृषि-रक्षा के लिए भूतप्रेतो की पूजा की जाती है। भाद्र मास में सूर्योपासना के लिए मुण्डा "सिंग बोगा" का पर्व मनाते है।

वनवासियो के जीवन मे कृषि का बडा महत्त्व है इसलिए धान पकने के पूर्व और धान बोने के पहिले एक-एक उत्सव मनाया जाता है। जब धान पक्कर तैयार हो जाता है तो नवान या नयाखाई का त्योहार बडे हर्षपूर्वक मनाया जाता है। सथाल धान बोने के पहिले "एरोव" और कुछ पौधे बढने के बाद "हरियड" का उत्सव मनाते है। नयाखाई को उराव "कन्हाकी" कहते है।

भूमिया (या भुइया) और उराव कुवार की एकादशी को करमा का त्योहार मनाते है। इस दिन लोग शराब पीकर रात भर खूब नाचते गाते है।

लोकोत्सव—वनवासियो के लोकोत्सवो में मडई नामक त्योहार की भी विशेष महत्ता है। यह त्योहार कई जातियो में कई प्रकार से मनाया जाता है। केवल वनवासी ही नहीं किन्तु अनेकानेक भूमिजन जातिया भी इसे बडे उत्साह से मनाती है। अहीर बडे उल्लास से अपने जातीय नृत्य को इसके साथ सबद्ध करते है। केवट या निषाद भी मडई की स्थापना करते है और समझते है कि इससे उनके सारे रोग दूर होंगे और धन-धान्य की समृद्धि होगी। एक बास में काले अथवा लाल रग की कई पताकायें बाधकर उसकी स्थापना की जाती है और कहा जाता है कि इस स्थापना से ककाली देवी प्रसन्न हो जायगी, *जिसकी प्रसन्नता से कुटुम्ब में भयकर सक्रामक बीमारियो का जोर कम होगा। कुछ लोग, विशेषत केवट लोग,* बास के चारो ओर रस्सिया बाधकर उसमें कदई नामकी जडी के टुकडे लपेट देते है और ऊपर मोर के पख खोसकर उसे एक भव्य रूप दे देते है। कार्तिक से लेकर फाल्गुन तक सुविधानुसार कभी भी यह त्योहार मनाया जाता है। जिसकी श्रद्धा हो वह अपने यहा मडई की स्थापना कर लेते है। जिसका सामर्थ्य होता है वह अपने गाव में मडई का सामूहिक महोत्सव मनाने का निमत्रण दे देता है। उसका निमत्रण पाकर समीप के गावों में स्थापित मडइया उस जगह लायी जाती है और वहा उनकी सामूहिक पूजा की जाती है। ऐसे अवसरो पर एक छोटा-मोटा मेला लग जाता है जो ४—६ घटे के बाद समाप्त भी हो जाता है। मडई शायद छत्तीसगढी शब्द है, जो मडाना अर्थात् स्थापित करना से बना हुआ है। इस तरह देवी की स्थापना ही मडई हुई।

मनोरजन के साधन—वनवासी स्वभाव से ही बडे विनोदी है। वे दिनरात जगल में मगल मनाया करते है। डॉ वेरियर एल्विन ने लिखा है कि "वनवासियो ने मनोरजन की कला में बहुत ऊचे दर्जे की सफलता पायी है, जब कि साधारण भारतीय गावो में वह नही पायी जाती"। वास्तव में यह सत्य है क्योकि वनवासियों के लोकनृत्य मानव जीवन के अविकसित काल की वह अविच्छिन्न कला है जिसका निर्माण मानव ने अपने जीवन के विभिन्न स्तरो पर अपनी रुचि और सामाजिक विकास के साथ किया। इसी से वे मानव-जीवन के सामाजिक विकास के विभिन्न सोपानो का आज भी प्रतिनिधित्व करते हुए मनोरजन से भरपूर है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दो में—*"यदि जीवन का स्रोत सूख नहीं गया है* तो इन लोकनृत्यो के बोल स्वय धरती के बोल बन जाते है, उनकी धुन वृक्षो और खेतों की धुन बन जाती है, लगता है जैसे सारी पृथ्वी स्वय नाच उठती है।" इनके लोकनृत्यो को बार-बार देखकर भी मन कभी तृप्त नहीं होता क्योकि युग-युग से भारतीय सस्कृति की विरासत का बोझ सम्हाले यह ग्राम-साहित्य और कला जन-जन के हाथो में पडकर भी अछूते कौमार्य सी पवित्र और निर्मल बनी रही।

वनवासियो के सारे नृत्य राग-रागनिया से सम्पन्न होते है। सगीत उन का प्राण है, उसके बिना नृत्यों का अस्तित्व ही मिट जाता है इसलिये उनके सारे नृत्यो को नृत्य-गीत की सज्ञा देना उपयुक्त होगा। नृत्य-गीतों की परम्परा में वनवासियो का "करमा" विश्व के महान लोकनृत्यो में स्थान पाने की क्षमता रखता है। इसमें युवक और युवतिया अपनी आशाओ और उमगो को इस अन्दाज से समा देती है कि बाहर से आया दर्शक अवाक रह जाता है। नृत्य में पुरुष और स्त्री दोनो भाग लेते है, ढोलिये ढोल बजाते है, ढोल का स्वर लोककला के विकास की सम्पूर्ण कथा सा कहता, दूर-दूर तक गूज उठता है, वृक्ष झूम उठते है, *खेत अगडाई लेने लगते है और ढोल की आवाज सुनकर युवक तथा युवतिया अखाडे* की ओर चल पडती है। इस ढोल में मोहन की मन-मुग्धकारी मुरली का जादू होता है, इसी से न तो किसी को 'बुलउआ'

चाहिए और न 'मनावा'। वे तो तन-मन की सुधि भूलकर अपनी आशाओं और उमंगों को व्यक्त करने के लिये दौड़ पडती है। लोक गीतों का कवि वास्तव में कवि नही किन्तु गायक होता है, इसीसे उसके गीत शास्त्रीय अथवा क्षेत्रीय वन्धनों से आवद्ध नही होते। वे तो अनन्त-आकाश में उडने वाले पक्षी की भाति स्वच्छन्द-गति से मानव-हृदयाकाश में उडते है, जिनमे जीवन की प्रत्येक क्रिया, एक पृष्ठभूमि वनकर झांक उठती है। पहिले कभी पुरुप मण्डली गीत आरम्भ करती है तो कभी महिला समुदाय। एक प्रश्न करता है तो दूसरा उत्तर देता है। वैगा, करमा नृत्य के समय एक विशेप-प्रकार की पोशाक पहिना करते है। सिर पर जगली भैंस के सीग, शरीर मे काले रंग का लहगा और पैरो में घुघरू वांधकर वे नाचते और गाते है। श्रावण की काली घटाये जव नवोदित वालिका की भाति यौवन की अंगडाई लेती गगन मण्डल मे उमड़-घुमड़कर वलखाती और लहराती आगे वढती है, तव श्रावण की घटाओ को देखकर वैगा-समुदाय "झूला" के स्वरो मे झूल उठता है।

शैला और रीना वनवासियो के दूसरे प्रधाननृत्य गीत है। शैला पुरुपो का नृत्यगीत है तो रीना स्त्रियो का। दिवाली के दिन इन दोनों नृत्यों को विशेष सुन्दरता से किया जाता है। दशहरा के अवसर पर गाया जाने वाला प्रसिद्ध "दशहरा-नृत्य", शैला नृत्य ही है। वस्तर के वनवासियों के प्रधान नृत्य-गीतो मे "परजा-नृत्य" का उल्लेखनीय स्थान है। वह पंजाब के "भंगरा" नृत्य से वहुत-कुछ मिलता है।

आश्चर्य की वात तो यह है कि जहा शास्त्रीय नृत्यों को एक लम्वे अभ्यास और शिक्षण के वाद भी पारंगत नही किया जा सकता, वहां ये वनवासी जन्म से ही विना किसी विशेप शिक्षा के इन लोकनृत्यो मे दक्ष पाये जाते है। एक-एक पग साथ गिरता और उठता है। गीत अपने एक से ताल और स्वर के साथ हवा की लहरो मे तैरता रहता है और जहां तक भी वह पहुचता है, हवा की लहरो से उसे चुपके से उठाकर कोई भी मनचली युवती उसके ताल मे थिरकने तथा गाने लगती है। वनवासियों के ये लोकनृत्य-गीत हमारी पुरातन संस्कृति के जीते-जागते प्रतीक है, इसलिए इनकी रक्षा करना नित्तान्त आवश्यक है।

वनवासियों की उन्नति.—मध्यप्रदेश मे वनवासियो की संख्या, पूरी जनसख्या की लगभग एक-अष्टमाश है। किसी भी राज्य की इतनी वडी जनसख्या की उपेक्षा सहज ही नही की जा सकती। यहां की सरकार ने उनकी उन्नति के लिए ठक्कर वाप्पा के नेतृत्व मे एक कमेटी का निर्माण कर वनवासियो की समस्याओ का अध्ययन कराया। उसी के वाद राज्य की प्रथम पंचवर्षीय योजना मे उन्हे समुचित स्थान दिया गया और शिक्षा-प्रचार, आर्थिक-सुधार, रोग-निवारण, स्वास्थ्य-संवर्धन, आवागमन की सुविधाये आदि कार्यो के लिये काफी द्रव्य व्यय किया गया। एक अलग "आदिमजाति कल्याण विभाग" की स्थापना की गई और वनवासी सेवा-मण्डलों को अधिक सुविधाये प्रदान की गईं।

भारत के सविधान मे भी वनवासियो की अनुन्नत परिस्थिति को देखते हुए उनके लिए राज्य और राष्ट्र की विधान सभाओं में १० वर्प तक रक्षित-स्थान रखे गये है। सरकारी नौकरियो की कार्यक्षमता को अवाधित रखते हुए वनवासियो को वहां उचित स्थान दिया जा रहा है। राष्ट्रपति को संविधान द्वारा इन वनवासियो के लिए विशेषाधिकारी नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। इन वनवासियों की देखरेख का भार राष्ट्रपति ने स्वयं अपने हाथ मे रखा है और संविधान मे यह भी व्यवस्था की गई है कि राज्य सरकारों को वनजातियो तथा अनुसूचित प्रदेशों के प्रशासन के सम्वन्ध मे सलाह देने के लिए एक आदिमजाति मत्रणा परिषद् स्थापित की जाय। यह परिषद् अव सगठित हो चुकी है और जिन राज्यो मे वनवासी अधिक सख्या मे है वहा वह अपना कार्य कर रही है।

वनवासियों की समस्यायें—इतना होते हुए भी अभी वनवासियो को सभ्य वनाने मे वडा प्रयत्न करना होगा। अधिकांश वनवासी ऐसी निर्धनता का जीवन व्यतीत करते है जो अन्य लोगो को अत्युक्तिपूर्ण लगता है। उनके पास न तो पहिनने को कपडे है और न दोनो जून खाने को भोजन। खेती-किसानी भी वे जो कुछ करते है, पुराने अंधविश्वासो मे पली होने के कारण, नितान्त हानिप्रद है। वे जितना जमीन में वोते है, उतना भी उन्हे जमीन नही दे पाती। इसी कारण वनवासी प्रायः कर्ज के भयंकर भार से लदे होते है। अशिक्षा के तो वे केन्द्र ही है। इस कारण आज भी वे किसी भी क्षेत्र मे उन्नति नही कर सके है। अव उन्हे प्रत्येक दृष्टि से ऊपर उठाने की आवश्यकता है, उनके गुणो की रक्षा करते हुए। वनवासियो की समस्या हमारे देश की कुछ ज्वलन्त समस्याओ मे से है, कुछ लोग उन्हे दूसरे ही राजनैतिक रंग मे रंगकर भारत मे भेद-प्रभेद और फूट की प्रवृत्तिया वढाना चाहते है। जिसका अनिष्ट स्पप्ट है। आवश्यकता इस वात की है कि ये लोग भी ऊंचे उठते हुए हमारे देश के सुदृढ नागरिक वने। हमारी शक्ति, हमारी दिशायें इसी दिशा में केन्द्रित होनी चाहिये। वनवासियो के उत्थान की विचित्र योजनाओ के द्वारा हम इस लक्ष्य की ओर वढेंगे भी।

गोंड़ों का आदिस्थान

श्री कालीचरण त्रिवेदी

यों तो इस प्रदेश का नाम ही प्राचीन काल में गोंडवाना था परन्तु कई लोगों का यह कथन है कि गोंड लोग कम से कम इस मध्यप्रदेश के मूल निवासी तो न थे। उनका जो राज्यघराना यहाँ स्थापित हुआ, उसका मूल पुरुष गोदावरी के दक्षिण से आया था, ऐसा निश्चित रूप से कहा जाता है। गोंडों को लोग द्रविड़ शाखा की जाति मानते हैं। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि गोंड लोग भी आर्यों की तरह बाहर से आये। भूगर्भवेत्ता बताते हैं कि पहिले एक ऐसा महाद्वीप था जो आफ्रिका के मदागास्कर से लगाकर मलयद्वीपसमूह तक जुड़ा हुआ था। वहीं से सम्भवत: गोंडों और कोलों का इस ओर आगमन हुआ। बलोचिस्तान की ब्राहुई जाति की बोली से उराव लोगों की बोली का कुछ सादृश्य देखकर कुछ लोगों ने यह अनुमान कर लिया कि उराव लोग द्राविड़ी जाति की उपशाखा हैं और उनका ऐसा भी अनुमान है कि समूचे द्रविड़ लोग भारत के उत्तर-पश्चिम कोने से आये होंगे, जैसे कि कोल लोग उत्तर-पूर्व से आये।

कौन बाहर से आये और कौन यहाँ के आदिनिवासी या मूलनिवासी हैं ये प्रश्न बड़े विवादास्पद हैं। अंग्रेज शासक स्वयं बाहर से आये थे इसलिये उन्हें तो यही सिद्ध करने में बहुत सुविधा थी कि भारतवर्ष के सभी लोग बाहर से आये। उनके अनुसार पहिले कोल लोग आये फिर उनको जंगल और पहाड़ों की ओर खदेड़ते हुये द्राविड़ी गोंड लोग आये, फिर उन्हें भी परास्त करते हुए उत्तरीय आर्य आये। आजकल जो नये अनुसंधान किये जा रहे हैं उनके अनुसार भारतीय विचारकों का मत इस दिशा में प्रबल होता जा रहा है कि न तो आर्य लोग कहीं बाहर से आये और न वनवासी ही बाहर से आये,—फिर चाहे वे कोल हों या गोंड हों।

भूगर्भवेत्ताओं का यह भी तो कथन है कि किसी समय उत्तरीय भारत का भाग जलमग्न था और केवल दक्षिणी अन्तरीप का भाग ही अवस्थित था। गोंड लोग इसी भाग में विशेष रूप से पाये जाते हैं। बारीकी के साथ अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि कोलों के संघर्ष की बात तो प्राचीन आर्यग्रन्थों में कहीं कहीं आई भी है किन्तु उनमें न तो गोंडों के संघर्ष की कोई कथा ही है और न उनका नाम ही है, फिर यह कैसे माना जाय कि आर्य लोग गोंडों को खदेड़ते हुये इस भारतवर्ष में आगे बढ़े। कोलों की कई उपशाखाओं ने तो आर्यभाषा हिन्दी को ही अपनी मातृभाषा बना लिया है परन्तु द्राविड़ी वनवासी जातियों की दोनों प्रधान शाखाओं—अर्थात गोंडों और उरावों ने अभी भी अपनी भाषा नहीं भुलाई है। इससे भी यही विदित होता है कि उत्तर भारतीय वास्तव्य के कारण आर्यों और कोलों का घनिष्ट सम्पर्क स्थापित हो चुका होगा परन्तु दक्षिण भारत में गोंड लोग अपना अपेक्षाकृत स्वतंत्र विकास करते रहे हैं और इसीलिये अब तक अपनी बोली को कोलों की अपेक्षा अधिक व्यापक रूप में सुरक्षित रख सके हैं।

यदि ब्राहुई लोगों की बोली इन गोंडों या उरावों से मिलती-जुलती है तो इतने पर से ही यह मान लेना युक्ति-संगत न होगा कि गोंड तथा उराव लोग बलोचिस्तान के रास्ते से भारतवर्ष में आये। भाषा-सादृश्य के आधार पर यह क्यों न मान लिया जाय कि भारतवर्ष से ही द्रविड़ लोग बलोचिस्तान की ओर आगे बढ़े। आखिर, उराव लोग दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ ही गये हैं और रांची तक फैल गये हैं। इसी प्रकार इनकी एक शाखा बलोचिस्तान की ओर भी चली गई होगी।

कोल लोगों की बोली तथा कुछ-कुछ रीति-नीति का सादृश्य तो मलय द्वीपपुञ्ज के निवासियों में मिल जाता है और आर्यों की बोली तथा उनकी रीति-नीति का सादृश्य एशिया और यूरोप के अनेक देशवासियों से मिल जाता है किन्तु द्रविड़ों की बोली का सादृश्य भारत के बाहर कहीं न मिलेगा। क्या यह पर्याप्त रूप से इंगित नहीं करता कि द्रविड़ लोग निश्चित रूप से यहीं के मूल निवासी होंगे ?

गोंडों के विषय में पूर्वोल्लिखित राजकिंवदन्ती के आधार पर लोग यह मान लेते हैं कि वे सबके सब मध्यप्रदेश में दक्षिण गोदावरी से आये परन्तु यह आश्चर्य ही है कि सौ-दो सौ साल के भीतर ही अकस्मात इनके इतने घराने दक्षिण से आ गये कि उन्होंने मध्यप्रदेश के पाण्डवों, कल्चुरियों और अन्य नरेशों को नष्ट-भ्रष्ट करके सब कुछ आत्मसात कर लिया।

उनकी न तो कोई अपनी लिपि है, न अपना विशिष्ट साहित्य। बुद्धि मे भी वे इतने प्रखर नही है कि बात की बात मे एक नये प्रदेश मे पहुचकर सभी पर अपना आतक जमा ले और खेती, मजदूरी और शासन सभी कुछ अपना बैठे। इतिहास इस विषय मे एकदम मौन है कि दक्षिण गोदावरी मे अब गोड़ लोग क्यो नहीं रह गये और दक्षिण गोदावरी का क्षेत्र छोड़कर हजारो और लाखो की सख्या मे वे कुछ वर्षो के भीतर ही उत्तर गोदावरी की ओर क्यो आ गये। इसलिये अनुमान यही करना पड़ता है कि वे वस्तुत. इसी मध्यदेश के मूलनिवासी रहे होगे। उनका पहिला राजा यादोराय पूर्वोल्लिखत किंवदन्ती के आधार पर भले ही दक्षिण गोदावरी की ओर से आया होगा।

गोंड़ों मे एक किंवदन्ती प्रचलित है कि उनका आदिस्थान काचीकोपा लोहागढ़ है। यह स्थान कई विद्वानो के मत से पचमढ़ी का ही स्थान माना जाता है जहा बड़े महादेव की कदरा और चौरागढ का क्षेत्र समग्र गोड़ जाति के लिये अब भी परमपूज्य है। इस किंवदन्ती के आधार पर भी, यदि पचमढ़ी को ही काचीकोपा लोहागढ़ मान लिया जाय तो मध्यप्रदेश ही गोड़ो का आदिस्थान सिद्ध होता है।

गोंड़ो की शाखा-प्रशाखाये बहुत हो गई है। कुछ शाखाये तो भिन्न-भिन्न व्यवसायो के कारण बन गई, जैसे--- लोहे का काम करने वाले लोग अगरिया कहलाये, ढोर चराने वाले ग्वारी कहलाये, टोना-टम्बर और भविष्य बताने वाले लोग ओझा कहलाये, पुरोहिती करने वाले परधान कहलाये, बढईगिरी वाले सोलहा कहलाये। इसी प्रकार भिन्न क्षेत्रो मे बस जाने के कारण इनके भिन्न भेद भी होते गये। काध या खोद और कोलम तथा चेचू नामक जातिया भी मूल मे गोड़ ही रही होगी, ऐसा जान पड़ता है परन्तु वर्तमान काल मे इनकी प्रधान शाखाये है---गोंड़ और उराव। ये उराव ही कही धांगर कहलाते है और कही कुरुख (स्मरण रहे कि कोरकू जाति कुरुख से भिन्न है और वह कोलो की एक उपशाखा है)। उराव लोग अपने को कभी कभी दूसरो की देखादेखी, खड़िया कह दिया करते है, यद्यपि खड़िया जाति इन से सर्वथा भिन्न है। जमीन खोदने का काम खड़ियो ने भी अपनाया और उरांवो ने भी। इसलिये चूकि दूसरो ने इन दोनो को खड़िया कहना शुरू कर दिया इसलिये इन्होने भी अपने को खड़िया मान लिया, और धागर तथा खड़िया पर्यायवाची शब्द हो गये।

सम्भव है, कुछ ऐसी ही बात इनको रावण के साथ जोडने मे सफल हो गई हो। उराव भी अपने को रावणवन्शी या रावणपूत कहते है और गोड़ भी। राची के सुप्रसिद्ध विचारक राय बाबू तो रावणपूत शब्द से ही उराव शब्द की उत्पत्ति मानते है। गोड़ो मे मेघनाथ पूजा का दृश्य इसी मध्यदेश मे ही देखा जा सकता है। उनकी अनार्य भावना के कारण सम्भव है अन्य जातियो ने उन्हे रावणवन्शी कहना प्रारभ कर दिया हो और कालान्तर मे उन्होने भी अपने को रावणवन्शी मान लिया हो, जैसे उराव लोग अपने को खड़िया मान लेते है। राय बाबू ने उरांवो लोगो को किष्किन्धा के वानरो (अर्थात् उन अर्द्ध-सभ्य मनुष्यो जिन्होने राम की सेना का कार्य किया था) का वशज कहा है। ये लोग रावण के वशज हो या बालि-सुग्रीव के वंशज हो, परन्तु इतना निश्चित है कि इनकी कोई भी शाखा भारत के बाहर उपलब्ध नही है, न इनकी बोली ही किसी अभारतीय बोली से मेल खाती है। ये गोदावरी के दक्षिण की ओर भी बहुत ही कम पाये जाते है और मध्यदेश के उत्तर की ओर भी बहुत कम क्षेत्रो मे फैले है। अतएव कोई कारण नही है कि हम मध्यदेश अथवा मध्यप्रदेश को ही गोड़ो का आदिस्थान क्यों न माने ?

वनवासियो की समाज-व्यवस्था

डॉ टी बी नायक

नागरी सम्यता से दूर प्रकृति के एकान्त और शान्तक्रोड म बसनेवाली वनवासी* जातियो का जीवन अनियमित होते हुए भी नियमित मान्यताओ और विशिष्ट सामाजिक व्यवस्थाओं से बधा हुआ है। वनवासियो का प्राय सम्पूर्ण ग्राम एक सामाजिक-बधन में गुथा होता है। बैगा लोगो के गाव देखिए, देखकर दग रह जायेंगे—कितना सामूहिक और शक्ति-सम्पन्न उनका जीवन है। प्रत्येक घर एक दूसरे से मिला हुआ होता है। गाव की सीमा अच्छी तरह से साफ की हुई रहती है। गाव के बिल्कुल बाहर एक मरघट रहता है, यहीं मेरा (सीमा) के बाहर गाव के दुःख दर्द का निकाला जाता है। इसी सरहद में एक बडा सा चौक बनाकर, उसके तीनो ओर घर बनाये जाते है और चौथी ओर से बास या केतकी की बाडी लगायी जाती है। हर एक बाजू म छ-सात झोपडिया रहती है जो एक दूसरे से छोटी सी गली में अलग रहती है। झोपडी के पास बाडी लगायी जाती है। सारे रिश्तेदार यथासम्भव पास-पास घर बनाने का यत्न करते हैं। मुसाफिरा के लिये चौक के बाहर एक छोटी सी झोपडी (चट्टी) बनी रहती है। उरॉव लोगो में भी गाव एक स्वय सम्पूर्ण इकाई के रूप में पाया जाता है। साधारण उरॉव गावा म एकाध बाहरी-परिवार, एक दो अहीरा के घर, एकाध लोहार और कहीं कहीं एक-दो कुम्हारो के कुटुम्ब पाये जाते हैं। किसी किसी गावा में घासी, जुलाहा और बसोर चमारो की बस्ती भी पायी जाती है। भीलो के गाव भी लगभग इसी तरह के होते है।

वनवासियो की ग्राम-व्यवस्था बडी सुचारु रूप म सचालित होती है। प्रत्येक गाव मे वहा का काय चलाने के लिये छोटे छोटे अधिकारी होते है। उरॉव गावा में अधिकारी इस प्रकार रहते हैं —

(१) पहान (बैगा)—जो किसी किसी गावा में तीन साल के लिये नियुक्त किया जाता है। उसका काम आधिभौतिक दुनिया के साथ गाव के लोगा का सम्बन्ध स्थापित करना होता है। वह सारे गाव में झाडाई-फुकाई का कार्य करता है और देव प्रकोपो से गाव की रक्षा करता है।

(२) महतो—इनकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिये होती है। यह गाव का भीतरी कारबार चलाता है, इसीलिये उरॉव लोग कहते हैं कि पहान गाव बनाता है और महतो गाव चलाता है। महतो को कुछ जमीन बिना महसूल दी जाती है।

(३) पुजारी—इसका मुख्य कार्य 'पहान' को उसके काय में सहायता पहुचाना है।

उरॉव-गाव के अन्य कामदारो में बाजा बजाने के लिये 'घासी', ढोर चराने को 'अहीर', हथियार बनाने के लिये 'लोहार', सदेश लाने लेजाने के लिये 'गोराईत' और बतन बनाने के लिये 'कुम्हार' मुख्य है।

भील जाति में गावा का मुखिया 'वसोवा' कहलाता है। उसको सहायता देने के लिये एक प्रधान रहता है। पुजारी देवी-देवताओ की पूजा करता है। वह रोगियो का उपचार भी किया करता है। कोतवाल, 'वसावो' के अदली के रूप में काय करता है। भडवी या बडवो गाव का गुरु है। किस रोग का कौन देव होता है, इसकी पूरी जानकारी उसे रहती है। भील-गावा का चरवाहा 'गोरी' कहलाता है और उसे अछूतो की श्रेणी में रखा जाता है।

वनवासियो की एक जाति का समुदाय दूसरी जाति के समुदाय से जुडा रहता है। उदाहरण के लिये बैगा, गोडा के पुरोहित होते हैं, यद्यपि इन दोनो के वशो में अन्तर है। बैगा मुण्डा वश के है और गोड द्रविड वश के। पुरातन-काल में जब द्रविडो ने मुण्डाओ का जीवन-सघर्ष में पराजित कर दिया तब कई मुण्डाओ का द्रविडीकरण भी हुआ, पर बैगाओ ने अपने को इस मेल से एकदम दूर रखा। मुण्डा और द्रविड वशो में जब सघर्ष की स्थिति समाप्त हुयी तब उनमें आपस में समन्वय की भावना बढी। उस समय गोडो ने मुण्डाओ के देवी-देवताओ को अपने

---

*'वनवासी' शब्द हमने आदिमजातियो अथवा आदिवासियो के लिये प्रयुक्त किया है।

धार्मिक-जगत में समाविष्ट किया। मुण्डा जाति के देवी-देवताओं के साथ साथ परम्परागत मंत्रतंत्र और जादू-टोना जाननेवाले उनके पुजारी, गोंडो के भी पुजारी, वन गये। आज भी वैगा कमर मे एक छोटासा कपडा लपेटकर गुफा-युग के वेष मे रहते हैं। वीज वोना, फसल की रक्षा करना, फसल काटना, नवाखाई का त्यौहार, करमदेव की पूजा, जादू-टोना, शादी-व्याह, जन्म तथा मृत्यु-सस्कार—इन सभी वातों मे वैगा की सहायता के विना गोंड कुछ नही कर सकते।

परधान (प्रधान), गोडों की ही एक शाखा है और इन दोनो मे गहरा सम्वन्ध है। कुरई-विछवा के गोंडों मे हमने देखा है कि वे अपने देवस्थान मे अपनी देवी के साथ अपने छोटे भाई परधान का भी एक देव रखते हैं। इतना ही नहीं जब परधान मंगेतरी के लिये निकलता है तो उसे कुछ न कुछ पाने का अधिकार होता है। नियमित रूप से मांगनेवाला परधान 'दसौंवी' कहलाता है और जिस गोड से वह मांगता है उसे 'जजमान' कहते हैं। जब परधान अपने जजमान गोंड से मागने जाता है तो वह पुरातन गोंड-राजाओं की कीर्ति वखानता है। ऐसे मांगने-वालो का गोड वहुत सत्कार करते हैं। ठाकुर की जब सबसे वडी लडकी व्याही जाती है तब परधान को 'सन्ना-दान' मिलता है, जिसमें एक रुपया और लडकी के हल्दीवाले कपडे मिलते हैं। आम शादियो मे 'विहावदान'; ठाकुर की जेष्ठ पुत्री के पुत्र जन्म के समय 'माचादान' और ठाकुर के मरणोपरान्त 'म्युआरदान' परधान को ही मिलता है।

रायपुर, दुर्ग, विलासपुर और जशपुर के अगारिया लोहे का काम करते है। उनमे भी गोडों जैसे गोत्रादि होते हैं। शायद उनका गोडो का व्यावसायिक सम्वन्ध हो। लोहे के हथियार वनाने के लिये ही सम्भवतः 'अगरिया' समुदाय वना हो। ओझा गायक का काम करते हैं। उन्हे एक प्रकार के भाट समझना चाहिये। गोंड स्त्रियो के शरीर मे गुदना गोदना उनका ही काम है। इस तरह हम देखत है कि व्यावसायिक आधार पर हर जाति के कार्य अलग अलग वँटे हैं परन्तु उन सवमे सामाजिक एकता और साम्य विद्यमान है।

एक वात ध्यान देने की है कि इन वनवासियों मे 'गोत्र' का वडा महत्व है। समगोत्री भाई-वहिन होते हैं और उनमें आपस मे विवाह नही होता। गोत्रों का विभाजन भिन्न-भिन्न देवताओं को पूजनेवालो के आधार पर होता है। देवता को पूजने वाले चार विभागों में वंटे रहते हैं —(१) येरुंगपेंग (जो सात देवता पूजता है), (२) सारुंगपेंग (छः देवता माननेवाले), (३) सयुंगपेंग (पाच देवता माननेवाले) और (४) नाळुंगपेंग (चार देवता माननेवाले)। इन चार विभागों मे १४ से लेकर २६ तक गोत्र होते हैं। सात देवतावाले गोंडो के गोत्र धुरवा, मरावी, मर्सकोला, मैषराम, पंडरा, सुड्या आदि, छ. देवतावाले गोडों के गोत्र अटराम, उगम, पेडम, उईका, वाडिवा, वकडा आदि; पांच देववालो मे इष्टाग, इरका, सैयाम, इत्यादि और चार देववालो मे चिकराम, मरकाम, पुसाम, सुखाम, टेकम आदि गोत्रों के नाम होते हैं। ऐसे ही गोत्र कोरकुओ के होते हैं, अन्तर केवल उनके नामों में रहता है। यही वात भील तथा वैगाओ के सम्वन्ध मे कही जायगी। श्री शरतचन्द्रराय ने उरॉवो के वारे में लिखा है कि उनके गोत्र वहुत कुछ शिकार किये जानेवाले पशु-पक्षी तथा फल-फलो के नाम पर होते हैं।

वनवासियों की समाज-व्यवस्था मे घोटुल का भी अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह समाज संगठन का केन्द्र होता है जहां पुरुष तथा स्त्रिया मिलकर काम करते हैं, परन्तु कही कही स्त्री तथा पुरुषो की अलग-अलग टोलियां वन जाती हैं और वे अलग-अलग शिकार आदि करने का काम करने लगते हैं। गोडों मे जब 'जेरी' मरती है तब स्त्री-पुरुषों के वीच एक उत्सव के रूप में लडाई होती है। एक वहुत ऊंचे खम्भे के ऊपर गुड, नारियल आदि वाध दिया जाता है और उसको उतारने के लिये गाव के जवान ऊपर चढने को प्रयत्नशील रहते हैं। गोंड युवतियां उन्हे मारती हैं और चढने नही देती। भीलो मे भी होली के वाद का 'गौल गघेडो' का उत्सव ऐसा ही युवा-युवतियो की कशमकश का रहता है। वस्तर मे कुमार-घरों की प्रथा है। इन कुमार-घरों के युवको को 'चेलिक' तथा युवतियों को 'मोटियारी' के नाम से पुकारा जाता है। उराँव अपने कुमार-गृहो को जोंख, एरपा या दुमकुरिया कहते हैं। ये घर समाज-शिक्षण और समाज-व्यवस्था के केन्द्र होते हैं।

वनवासियो के समाज मे परिवार और रिश्तेदारो का ज्यादा महत्व रहता है। भीलों के परिवार में, परिवार का मुखिया वाप होता है जो आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक मान्यताओ को परिवार मे वरावर चलाने का अधि-कारी रहता है। उनका परिवार पितृपक्षी होता है। परिवार के अन्तरप्रवन्ध मे स्त्री का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। उसके विना परिवार का काम नहीं चल सकता। जब तक लडके अविवाहित रहते है तब तक वे माँ-वाप के अनुशासन में रहते हैं परन्तु विवाह के वाद वे अपने माता-पिता से अलग वस जाते हैं। लगभग यही व्यवस्था अन्य पितृपक्षी वनवासियो मे पायी जाती है। मध्यप्रदेश की समस्त वनवासी जातियां पितृपक्षी ही हैं।

रिश्तेदारो को मोटे तौर से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—भाई-बन्द और समधी या 'हगा' और 'हगवाडिया'। पहिले वर्ग का इनका रक्त सम्बन्ध होने से वे परिवार के एक अग समझे जाते है। ये रिश्तेदार उनको बहुत सहयोग देते है। समधी, पत्नी की ओर से परिवार में जुडा रहता है और वह भी परिवार का दूसरा अग माना जाता है। इन्ही व्यक्तियो के सहयोग से सम्पूर्ण परिवार का गठन समझना चाहिये। परिवार के सिवाय अन्य सवर्ण हिन्दू जातियो की तरह, अपने-अपने पारम्परिक सम्बन्धो के अनुसार परिजन और पुरजन भी परिवार के प्रचलन म यथायोग्य सहायता पहुचाते ह।

इतिहास इस बात का प्रमाण देता है कि हमारी पुरातन भारतीय सस्कृति मे मेलजोल और आपसी निपटारे पर बहुत जोर दिया गया है। यह बात नही कि उस युग में लोगो मे परस्पर मनोमालिन्य नही होता था और झगडे फिसाद नही होते थे। झगडे तो होना बहुत स्वाभाविक है लेकिन उनके निपटान का काम गावो की पचायत का ही होता था। यद्यपि यह प्रथा आज के नागरी-सभ्यता मे पले व्यक्तियो में नही-सी है और हर छोटी बात के लिये अदालतो की शरण ली जाती है लेकिन आज भी वनवासियो मे पचायत का प्रमुख स्थान है। गावो के सारे झगडे एक पचायत द्वारा ही निपटाये जाते ह। फैसला करने के लिये पचायत में गाव के वयोवृद्धो की एक कमेटी होती है। गाव का मुखिया उसका सरपच होता है। इस पचायत का निर्णय आज भी वनवासियो को पूरी तरह मान्य रहता है। वे पचो को 'पच-परमेश्वर' कहा करते है। उरॉव-पचायत की कार्यविधि सुसगठित रूप से सचालित होती है। फरियादी अपनी कहानी गाव के महतो अथवा पहान को सुना देता है। वह अक्सर गाव के बुड्ढो की पचायत बुलाता है। वहा महतो, वादी द्वारा की गयी फरियाद सबके सामने प्रतिवादी को सुनाता है। प्रतिवादी को अपना मामला रखने का अवसर दिया जाता है और फिर सबकी सलाह से उचित फैसला दिया जाता ह। अग्रेज-शासन के पूर्व खूनी को पचायत मृत्युदण्ड की सजा देती थी। चोर को पीटा जाता था, परस्त्रीगामी भी चोर समझा जाता था, और गाव के अनुशासन तथा निषेधो को भग करनेवाले को जाति से बहिष्कृत किया जाता था। दण्ड स्वरूप जो पैसा आता वह पचायत की सामूहिक सम्पत्ति होती थी। उसका कुछ अश पचो को दारू पिलाने मे खर्च किया जाता था। अब भी ये मान्यताएँ बराबर चली जा रही है। बैगाओ में गाय, बिल्ली, कुत्ते को मारना, जेल जाना, पशुगमन, गोत्रगमन, जाति के बाहर विवाह करना, ऋतुनियमो का भग करना आदि अपराध माना जाता ह और इन सब अपराधो की बराबर सजा दी जाती है।

जगल मे रहनेवाले इन वनवासियो को हम असभ्य भले ही कहें परन्तु वे वास्तव म एक सुदृढ और सुसगठित सामाजिक अनुशासन में बधे रहते ह। यही कारण है कि आर्थिक दृष्टि से हीन होने और जीवन-यापन की विषमताओ को ढोने के बावजूद, उनका जीवन नियमित, सरल और सीधा होता ह। उनकी सारी समाज-व्यवस्थाएँ स्वत निर्धारित सिद्धान्तो पर आधारित रहती ह, जिनका पालन करना प्रत्येक वनवासी अपना परम कर्तव्य समझता है।

गोंडी बोली

श्री. आर. पी. नरोना

यह उत्तम होगा यदि मै पहिले ही से वता दूं कि मै न तो कोई भाषाशास्त्री हूं और न मै किसी भी भाषा का वैयाकरण ही होने का दावा कर सकता हू। सचाई तो यह है कि जव जव मैंने अपने वच्चो को अंग्रेजी या हिन्दी व्याकरण मे सहायता देने की कल्पना की है, तव तव मैंने देखा है कि उन्होने और भी कम नम्वर पाये है।

गोडी वोली से मेरा पहिला परिचय उस समय हुआ जव मैंने १९४०-४१ ईसवी में श्री. ग्रिग्सन का सहायक होकर "आदिम जातीय जाच" का कार्य किया था। मैंने रेहली तहसील के गोडो से ओर रायपुर तथा विलासपुर जिले के गोंडो से उनकी गोडी वोली सीखी। फिर, जव वस्तर मे मुझे छ साल रहना पडा था, तव मैंने वहां के स्थानीय गोडो से ही गोंडी की तीनों प्रधान उपवोलिया, जो वहा वोली जाती हैं, सीखी। मुझे मद्रास के कोया लोगों से भी, जिनकी वोली गोडी है, वात करने का अवसर मिला है।

यह जानकर कौतूहल होगा कि गोड़ी वोली मे "गोड़" अथवा "गोड़ी" नाम का कोई शब्द नही है। गोड़ लोग अपने को "कोयतूर" कहते है। जान पडता है कि उनके प्रधान साम्राज्यों का पतन हो जाने पर वे पहाड़ियों मे चले गये और वही रहने लगे। तव वे अपने को "कोण्डा दोरलू" कहने लगे। कोण्डा याने पहाडी और दोरलू याने अधिपति। "कोण्डा दोरलू" हुये "पहाडो के अधिपति"। विशाखापत्तन जिले के एजेन्सी क्षेत्रो मे वे अव भी इसी नाम से पुकारे जाते हैं। वस्तर के दक्षिणी भाग मे उन्होने इस नाम को संक्षिप्त करके केवल "दोरला" अथवा "दोरलू" रहने दिया है। मैदान के गोडो ने अपना "कोयतूर" नाम ही कायम रखा जो नाम क्रमश "कोय" में परिवर्तित हो गया। पूर्वी गोदावरी जिले और उडीसा के गोड लोग आज भी इसी नाम से पुकारे जाते हैं। पहाडी गोंडो की दूसरी शाखायें जो मध्यप्रदेश मे प्रविष्ट हुईं उन्होने "कोण्डा दोरलू" को "कोण्ड" मे संक्षिप्त कर दिया और यह "कोण्ड" ही कालान्तर मे "गोण्ड" वन गया। परन्तु यह ध्यान देने की वात है कि "गोण्ड" या गोड़ शब्द मूल कोयतूर भाषा मे कभी भी प्रविष्ट न हो पाया था। वह तो अव हिन्दी से उधार लिये हुये शब्द की तरह व्यवहार मे आने लगा है।

यदि दूसरी वोलियो या भाषाओ से लिये हुये उधार शव्दो को अलग कर दिया जाय तो मूल गोडी बोली का शव्दकोष वहुत ही स्वल्प है—मुश्किल से छः सौ शव्द होगे उसमे। वस्तुत वहुत सामान्य विषयो के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर, विना उधार लिये हुये शव्दो के सहारे विशुद्ध गोडी मे वोलना असभव व्यापार समझिये। यही कारण है कि गोडी की उपवोलिया एक दूसरे से इतनी अधिक भिन्न हो गई है। एक उपवोली दूसरी से इसलिये भिन्न है क्योकि उसने अपनी शव्दावली एक अलग ही स्वतत्र विजातीय भाषा से उधार ली है। वैतूल की गोंडी, सागर की गोडी और मण्डला की गोडी ने उन क्षेत्रों मे प्रचलित हिन्दी की वोली (वुन्देल खडी) से ढेरो शव्दावली ली, रायपुर, विलासपुर और दुर्ग की गोडी ने इसी प्रकार छतीसगढी से शव्दावली पाई; उत्तरीय वस्तर की गोडी ने हलवी वोली से (जो पूर्वी हिन्दी की एक उपवोली है) वहुत उधार लिया और दक्षिणी वस्तर की गोडी ने (जो "दोरली" कहाती है) तेलुगू से वहुत प्रभाव पाया है। नागपुर जिले के "पेच व्हेली" क्षेत्र मे जो गोडी वोली जाती है वह मराठी से मिश्रित है और उसके कुछ ही दूर आगे, छिदवाडा तथा होशंगावाद की ओर, वह लगभग ५० प्रतिशत हिन्दी है।

मेरे विचार से यही प्रधान कारण है कि गोंड लोग अभी तक भी गोंडी को जातीय या प्रान्तीय भाषा के रूप में स्वीकार करना नही चाहते। प्रदेश के एक खड से यदि वे दूसरे खंड को चले जाय तो वे वहा की वोली नही समझ पाते। उदाहरणार्थ उत्तरी वस्तर का गोंड शेर को 'दुआल' कहता है, दक्षिणी वस्तर मे उसे 'पुली' कहा जाता है, कोलितमारा (नागपुर जिले) मे उसे ही 'वाघ' कहते हैं और छिंदवाडा मे वही 'शेर या वाघ' कहाता है। पानी को कोई 'जल', कोई 'ईरु', कोई 'नीरु' और कोई 'ऐंघ' कहते है। चीते को कोई 'चीता', कोई 'तेदवा', कोई 'निराल' कहेंगे। तव वस्तुस्थिति यह है कि एक छोटे समुदाय मे गोंडी वोली की उपयोगिता भले ही हो, परन्तु ज्योही उसे देश के भिन्न भिन्न भागो में

प्रयुक्त होनें वाले विचार-माध्यम और उक्ति-माध्यम के समान उपयोग में लाने की बात सोची जाती है त्योंही उसकी निरर्थकता आप ही स्पष्ट हो जाती है। कारण है विभिन्न विशेष भाषाओं से लदी हुई उसकी बेढब वजनदारी। इसीलिये बस्तर के मेरे गाड मित्रो ने प्राथमिक शालाओं में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रखी जाने के लिये एडीचोटी का पसीना एक कर दिया। उनकी इच्छा केवल इतनी ही थी कि जो शिक्षक हिन्दी पढावे वह गोडी भी जानता हो।

ऐसे अनेक अवसर आये है जब मुझे बडे बडे जनसमूह के सामने गोडी में बोलना पडा है और ऐसे अवसरो पर बहुत ही सीधे-साधे विचारो के अतिरिक्त अन्य विचारो को गाडी में समझाना बहुत ही कठिन हो गया था। मेरे लिये तो वह और भी कठिन था क्योंकि मने यथासम्भव विशुद्ध गाडी शब्दो तक ही अपने को सीमित करना चाहा था। एक उदाहरण दखिये, जो मैं कहना चाहता था वह यह था—"बस्तर जिला प्रगति कर रहा है और बडी तीव्रगति से परिवर्तित होता जा रहा है। इन परिवर्तनो मे कुछ कठिनाइयो का प्रकट हो जाना स्वाभाविक है। मैं और मेरे कर्मचारीगण यहा इसी उद्देश्य से हैं कि इस प्रकार की कठिनाइया जहा तक कम की जा सके की जाय"। जो मैने कहा वह यह था—बस्तर जिला जप्पे बदले मात्रा, इद जप्पे बदले मात्रे के, केने दुक्खाम आना, नना आरु पोरे मूल इद जिला ता अफसर, दुक्खाम हुडनोर, मती जप्पे नेहना आयार"। इसका मतलब होता है इस प्रकार—"बस्तर जिला जल्दी बदल रहा है। इतनी जल्दी बदल रहा है कि कई दुःख आ जाते हैं। मै और इस जिले के सब अफसर उन दुखो को ठीक कर देंगे। लेकिन वे हमारे सामने जल्दी ले आये जावे"। मुझसे अधिक से अधिक इतना ही हो सकता था। इतने पर भी मुझे रेखांकित शब्दो का प्रयोग करना ही पड गया, जो गोडी नही है, क्योंकि गाडी में उनका कोई पर्यायवाची शब्द ही न था।

गाडी बोली की सादगी का एक लाभ अवश्य है। वह यह कि वह आसानी से सीखी जा सकती है। इसलिये मुझे और भी आश्चर्य होता है जब मै यह देखता हू कि सरकारी मुलाजिमो मे से तथा समाज सेवको मे से भी बहुत कम लोग ऐसे है जो गोडी बोली सीखने की इच्छा करते है। कितने प्रतिशत ऐसे मनुष्य होंगे जो गोडी जानते होंगे यह बताकर मै किसी को चिन्ता मे नही डालना चाहता। इतना ही समझ लिया जाय कि उनकी संख्या बहुत ही कम है। कही इसका कारण उनकी श्रेष्ठत्व भावना तो नही है? यदि ऐसा है तो वह भावना अब शीघ्र बदल जानी चाहिये। गोडो का कोई हितसाधन नही कर सकता जबतक कि वह श्रेष्ठत्व के सब विचारो को दूर करके उनके साथ अपना तादात्म्य न स्थापित कर ले। आदिम जातीय क्षेत्रो मे काय करने वाले प्रत्येक कार्यकर्त्ता से मेरा अनुरोध है कि वह गोडी अथवा स्थानीय आदिम जातीय बोली अवश्य सीखे। वह सीखने में उसे छ महीने से अधिक समय न लगेगा।

मध्यप्रदेश के दर्शनीय स्थल

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह

मध्यप्रदेश प्रकृति की गोद मे बसे होने के कारण प्राकृतिक दृश्यो से भरा हुआ है। प्राचीन साम्राज्यो का केन्द्रस्थल होने के कारण अनेक ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानो से परिपूर्ण है। साथ ही, धार्मिक सम्प्रदायो की उत्पत्ति तथा प्रचारस्थली होने के कारण यहा कई धार्मिक स्थान है और उसी तरह वाणिज्य और औद्योगिक नगर भी स्थित है। यहां नर्मदा, ताप्ती, महानदी, वैनगगा, शिवनाथ, वर्धा, पयोष्णी और इन्द्रावती के पावन तटो पर अनेक राज्यों तथा धार्मिक सम्प्रदायो का उदय और अस्त हो चुका है। परिणामस्वरूप उसके अवशेष, दुर्गो और राज्य-महलो, मन्दिरो और चैत्यो तथा आश्रमों और क्षेत्रो के रूप मे आज भी उसके गौरवमय भूतकाल की स्मृति दिला रहे हैं। इस प्राकृतिक स्थली की शिलाओ पर प्राचीन इतिहास और पुरातत्व की अमर कहानी अमिट अक्षरो मे अकित है। प्रकृति और मानव--दोनो के सम्मिलन से इस प्रदेश मे अनेक महत्वपूर्ण दृश्यो और स्थलो की सृष्टि हुई है। उसका चित्रण हम क्रमवार यहा अंकित कर रहे हैं।

जाहिर ठौर जिलो विच नाना, तिनको अव कछु सुनहु वखाना।
वर्णासर क्रम के अनुसारा, कहव कथा कछु कर विस्तारा ॥

अमरावती जिला

अचलपुर--यादवकालीन नगर मुगलकालीन विदर्भ की राजधानी थी। "तवारिखे अमजदी" ग्रंथ के अनुसार सन् १०५८ मे यहा ईल नामक धर्मी राजा का राज्य था जिसने इलिचपुर नगर वसवाया था। विदर्भ के इमादशाह नवावो ने इसे राजधानी वनाया था। निजाम के शासनकाल मे यही मुख्य नगर था। सन् १९०३ तक निकट ही परतवाड़ा मे फौजी छावनी थी। यहा दूला-रहमानशाह की प्रसिद्ध दरगाह है जिसका जीर्णोद्धार मुगल सम्राट अलाउद्दीन खिलजी ने करवाया था। मुसलमान शासन-समय की यहा कई प्रशस्तिया मिली है जिनकी संख्या ५० के लगभग है। यहा कई सिक्के भी मिले है। यहां भोलाराम और देवनाथ सम्प्रदाय के भी मठ है तथा मुगल-कालीन कई इमारते अपना वैभव आज भी प्रकट कर रही है। यह नगर परकोटे से घिरा हुआ विशाल द्वारो से युक्त है। यह नगर व्यापार का केन्द्र होने से यहां कपडे की मिल, जीन तथा अन्य कारखाने भी है।

अमरावती--यहा सवसे प्रसिद्ध मन्दिर अंवादेवी का था जो महाभारतकालीन कुन्डलपुर नगर की सीमा पर था। लोग इसका नाम अम्वापुर कहते है और रुक्मिणी का हरण कृष्ण ने यही के मन्दिर से किया था। भोसलो के शासन से इस नगर का महत्त्व वढा और अग्रेजी शासन मे यह विदर्भ की राजधानी थी। यहां का परकोटा निजाम ने १७ वर्षो मे वनवाया था। सन् १८१६ के हिन्दू-मुसलमानो के दगे मे यहा ७०० मनुष्य मारे गये थे। उस समय मे यहां का शासक निजाम था। यहां की जुम्मा मसजिद ३०० वर्ष की पुरानी है। वर्तमान समय मे व्यापार का केन्द्र होने से यहां कई कारखाने भी है।

आमनेर झिलपी--सतपुडा के मेलघाट अंचल मे गर्ना और ताप्ती के सगम पर यह गांव वसा है। यहां के पुराने किले से पर्वतीय दृश्य वड़ा सुहावना लगता है। कहते है कि यहां तांतिया भील का अखाड़ा था। इसी नाम का दूसरा ऐतिहासिक ग्राम मोरशी जनपद मे है। यहा की मसजिद मे एक फारसी का लेख है जिसमें यह अकित है कि सम्राट औरंगजेव के समय मे राजा किसनसिंह ने लालखां के स्मारकार्थ वनवाया था।

कुन्डलपुर--वर्धा के तट पर अमरावती से २४ मील पर महाभारतकालीन विदर्भ के महाराजा भीष्मक की राजधानी थी। नल चम्पूकार ने उसका उल्लेख किया है। लोग कहते है कि इस नगर का विस्तार अमरावती तक था। रुक्मावाई के मन्दिर के समीप कार्तिक मास मे यहा मेला लगता है।

गाविलगढ—अमरावती से ६५ मील पर सतपुडा की चोटी चिकरदा से एक मील पर पहाडी दुर्ग है। फिरिश्ता के अनुसार यहा का प्रसिद्ध किला सुलतान अहमदशाह बहामनी ने बनवाया था। यहा मुसलमान युग की कई इमारतें और प्रशस्तिया है। यह दुर्ग देखने योग्य है। इसके निकट चिखलदरा है जो कि सतपुडा के प्राकृतिक सौदर्य से परिपूर्ण पचमढी के समान दर्शनीय स्थान है। ग्रीष्म में नगर के लोग शीतल वायु के आनद के लिये पहुचते है।

देऊरवाडा—अचलपुर से ७ मील पर पूर्णा नदी के तट पर नृसिह का प्रसिद्ध मन्दिर है। हिंदू लोग पर्वों पर यहा पहुचकर शुद्धितीर्थ में स्नान करने का पुण्य मानते है। लोग कहते है कि हिरण्यकश्यप को मारकर नृसिह ने यही पर अपने हाथ शुद्ध किये थे। यहा कई मन्दिर है।

मुक्तागिरि—अचलपुर से ८ मील पर मुक्तागिरि अथवा मेंढागिरि पर जनियो का पवित्र स्थल है। कहा जाता है कि जैन सम्राट कलिंगाधिपति खारवेल के राज्य की दक्षिण सीमा पर स्थित था। यहा लगभग ५२ मदिर है। ये मदिर सुन्दर प्राकृतिक स्थल पर ऊची शिलाओ पर बने होने के कारण बहुत ही आकर्षक दिखलाई पडते है। ३०० फुट ऊपर से गिरता हुआ एक स्वच्छ सुन्दर जलप्रपात उपत्यका को अपने निरतर निनाद से मुखरित करता रहता है। जैन शास्त्रो के अनुसार यहा पुरातन काल में लाखो मुनियो ने मुक्ति पायी थी। यहा के मदिरो की मूर्तिया आध्यात्मिक कला का ज्वलत प्रमाण है।

मजिरा—मेलघाट के पर्वतीय अचल में मजिरा की गुफा देखने योग्य है।

मोर्शी—अमरावती से १८ मील पर उसी जनपद का प्रमुख नगर है। यहा एक पुरानी गढी है।

लासूर—इस जिले के लासूर ग्राम का "आनदेश्वर देवालय" हेमाडपन्त-कालीन है। इस मदिर की कला प्रेक्षणीय है।

अकोला जिला

अकोला—जिले का सदर मुकाम मोरना के तट पर अकोलसिंह ने यह नगर बसाया था। प्रशस्ति के अनुसार यहा का किला सम्राट औरगजेब के शासनकाल मे बनवाया गया था। यहा कुछ मुसलमानी शिलालेख भी है। व्यापार का केन्द्र होने से नगर की दिन पर दिन उन्नति हो रही है।

आकोट—अकोला से २८ मील पर है। भोसलो के समय मे यहा फौजी छावनी थी।

अर्नसिंग—वाशिम से वायव्य में १५ मील पर इस ग्राम में यादवकालीन मन्दिर है।

कारजा—मुर्तिजापुर जनपद मे रेल्वे स्टेशन है। गुरुचरित्र के अनुसार यहा कारज—ऋषि का आश्रम था। यहा का बिंदुतीर्थ और ऋषि तालाब प्रसिद्ध है। रोकडाराम की समाधि और मठ भी है। यहा लाड जाति के जन वैश्य अधिक रहते है।

कुटासा—अकोला से २४ मील पर। यहा यादवकालीन मदिर है।

गोरेगाव—अकोला से ८ मील पर। यहा यादवकालीन मदिर है।

नरनाला—आकोट से १२ मील पर विदर्भ का इतिहास प्रसिद्ध किला सतपुडा की एक चोटी पर है। इस किले का वर्णन अन्यत्र किया गया है। इस किले के २२ द्वार और ३६० बुर्ज है। यहा पर फारसी की चार प्रशस्तिया अकित है जिसमे किले के विषय मे विवरण प्राप्त होता है। इस किले का घेरा १८ मील में है। यहा से पहाडी सुदर दृश्य दिखायी देता है।

निरद—अकोला के उत्तर मे १४ मील पर हेमाडपती मदिर है।

पातुर—अकोला-वाशिम रोड पर अच्छा कसबा है। यही पर शातवाहन कालीन गुफा है।

पाटखेड (अकोला के दक्षिण में १८ मील पर), पारस (बालापुर से १६ मील पर), पिंजर (अकोला से २० मील पर), आदि ग्रामो में यादवकालीन हेमाडपती मन्दिर है।

बालापुर—अकोला से १६ मील पर, म्हैस और मान नदी के सगम पर बसा है। किले के निकट ही बाला देवी का मदिर है। यह मुगलकालीन प्रमुख नगर है। यहा पुराने जमाने में कागज बनता था। अब भी पगडी और दरिया बनती है।

बार्शी-टाकली—अकोला से आग्नेय में १२ मील पर पुराना कसबा है। यहा के यादवकालीन मदिर में एक शिलालेख लगा हुआ है।

बन्दरकूदनी, ...)

गाविलगढ—अमरावती से ६५ मील पर सतपुडा की चोटी चिखलदा में एक मील पर पहाडी दुर्ग है। फिरिश्ता के अनुसार यहा का प्रसिद्ध किला सुल्तान अहमदशाह बहामनी ने बनवाया था। यहा मुसल्मान युग की कई इमारतें और प्रशस्तिया है। यह दुर्ग देखने योग्य है। इसके निकट चिखलदरा है जो कि सतपुडा के प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण पचमढी के समान दर्शनीय स्थान है। ग्रीष्म में नगर के लोग शीतल वायु के आनंद के लिये पहुचते है।

देऊरवाडा—अचलपुर से ७ मील पर पूर्णा नदी के तट पर नृसिंह का प्रसिद्ध मंदिर है। हिंदू लोग पर्वों पर यहा पहुचकर शुद्धितीर्थ में स्नान करने का पुण्य मानते है। लोग कहते है कि हिरण्यकश्यप को मारकर नृसिंह ने यहीं पर अपने हाथ शुद्ध किये थे। यहा कई मन्दिर है।

मुक्तागिरि—अचलपुर से ८ मील पर मुक्तागिरि अथवा मेंढागिरि पर जैनियो का पवित्र स्थल है। कहा जाता है कि जैन सम्राट कलिंगाधिपति खारवेल के राज्य की दक्षिण सीमा पर स्थित था। यहा लगभग ५२ मंदिर है। ये मंदिर सुंदर प्राकृतिक स्थल पर ऊची शिलाओ पर बने होने के कारण बहुत ही आकर्षक दिखलाई पडते है। ३०० फुट ऊपर से गिरता हुआ एक स्वच्छ सुंदर जलप्रपात उपत्यका को अपने निरंतर निनाद से मुखरित करता रहता है। जैन शास्त्रो के अनुसार यहा पुरातन काल में लाखो मुनियो ने मुक्ति पायी थी। यहा के मंदिरो की मूर्तिया आध्यात्मिक कला का ज्वलंत प्रमाण है।

मजिरा—मेलघाट के पर्वतीय अंचल में मजिरा की गुफा देखने योग्य है।

मोरशी—अमरावती से १८ मील पर उसी जनपद का प्रमुख नगर है। यहा एक पुरानी गढी है।

लासूर—इस जिले के लासूर ग्राम का "आनंदेश्वर देवालय" हेमाडपंत-कालीन है। इस मंदिर की कला प्रेक्षणीय है।

अकोला जिला

अकोला—जिले का सदर मुकाम मोरना के तट पर अकोलसिंह ने यह नगर बसाया था। प्रशस्ति के अनुसार यहा का किला सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में बनवाया गया था। यहा कुछ मुसल्मानी शिलालेख भी है। व्यापार का केंद्र होने से नगर की दिन पर दिन उन्नति हो रही है।

आकोट—अकोला से २८ मील पर है। भोसलो के समय में यहा फौजी छावनी थी।

अर्नासिंग—वाशिम से वायव्य में १५ मील पर इस ग्राम में यादवकालीन मंदिर है।

कारंजा—मुर्तिजापुर जनपद में रेल्वे स्टेशन है। गुरुचरित्र के अनुसार यहा कारंज—ऋषि का आश्रम था। यहा का बिंदुतीर्थ और ऋषि तालाब प्रसिद्ध है। रोकडाराम की समाधि और मठ भी है। यहा लाड जाति के जैन वैश्य अधिक रहते है।

कुटासा—अकोला से २४ मील पर। यहा यादवकालीन मंदिर है।

गोरेगाव—अकोला से ८ मील पर। यहा यादवकालीन मंदिर है।

नरनाला—आकोट से १२ मील पर विदर्भ का [illegible] । सतपुडा की एक चोटी पर है। इस किले का वर्णन अन्यत्र किया गया है। इस किले के [illegible] है। यहा पर फारसी की चार प्रशस्तिया अंकित है जिससे किले के विषय में [illegible] । घेरा [illegible] है। यहा से पहाडी सुंदर दृश्य दिखायी देता है।

निरद—अकोला के उत्तर [illegible]

पातुर—अकोला [illegible] है।

पाटखड (अको[illegible] (अकोला [illegible] मील पर), [illegible]

[illegible] का म[illegible] १८ [illegible] ९ में एक

रामटेक के प्रसिद्ध मन्दिर

लांजी [बालाघाट] के मन्दिर

गौरीशङ्कर मन्दिर, भेडाघाट

त्रिविक्रम, रतनपुर
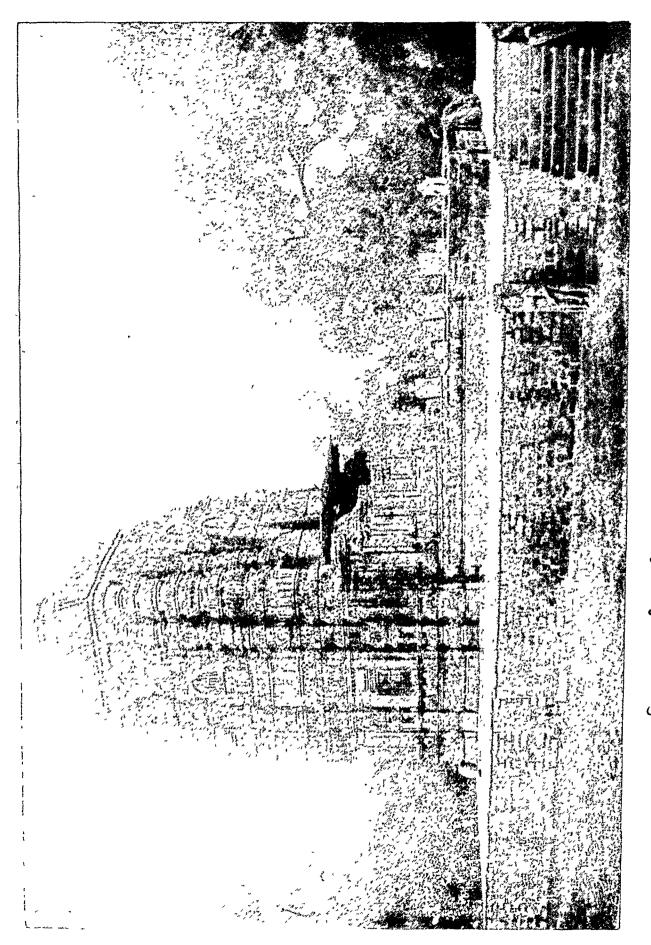
सिरपुर (प्राचीन श्रीपुर) में सोमवंशी लक्ष्मण मन्दिर

वासी टाकली स्थित यादव कालीन भवानी मन्दिर

चारुआ (हरिपुरा) का गुप्तेश्वर मन्दिर
(वि० स० १९५३ मे खुदाई मे उपलब्ध)
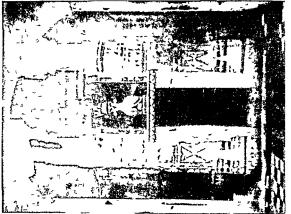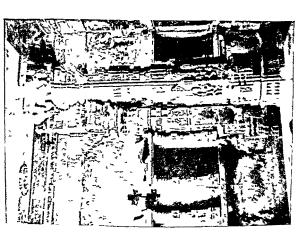
वाशिम––अकोला से ५२ मील पर जनपद का सदर मुकाम है। इस नगर का पुरातन नाम वत्सगुल्म है, यहां पर वत्स ने तपस्या की थी। यहां पद्मतीर्थ महान पवित्र माना जाता है––जिसके तट पर बालाजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। पुराने जमाने मे बरार के ज्योतिषी यही के अयनाश पर पंचाग बनाते थे। बरार के लोग यहां पर तीर्थ यात्रा के लिये पहुंचते हैं और यहा की यात्रा प्रसिद्ध है।

सिरपुर––वाशिम से वायव्य मे १२ मील पर पुरातन ग्राम है। यहां यादवकालीन मन्दिर है जो अब संरक्षित स्मारक हैं। सिरपुर के मन्दिरो की शिल्पकला और पार्श्वनाथ की मूर्ति दर्शनीय है।

सिदखेड––अकोला से दक्षिण मे ११ मील पर है। यहा पर भी हेमाडपती मन्दिर है।

यवतमाल जिला

इस जिले के कलमनेर, कुन्हाड, जवलगांव, जुगद, साडगांव, तपोना, दाभाडी, दुधगांव, नेर, पाथरोट, पांढरदेवी, यवतमाल, लाक, लारखेड, लोहारा, वरुड, सोनावरोना आदि ग्रामों मे यादवकालीन हेमाडपती मन्दिर वर्तमान है। ढोकी और परसोरा स्थानो मे प्रागैतिहासिक काल के अवशेष पाये जाते हैं।

कलंव––यवतमाल से पूर्व मे १६ मील पर है। इस नगर का प्राचीन नाम कदंव था। गणेश पुराण मे इस नगर का वर्णन है। यहा का गणेशकुन्ड महान पवित्र गिना जाता है। यहा का किला प्रसिद्ध है। यहा यादववशी राजाओं के सिक्के भी मिले हैं। यहा का देवालय गुफा मे है।

केलापुर––यवतमाल से ४२ मील पर पुराना किला है। यहा देवी और गणेश के मन्दिर भी हैं। सन् १८१८ मे अंग्रेजों ने अतिम पेशवा बाजीराव को यहां पर हराया था।

यवतमाल––जिले का सदर मुकाम है। यहां एक हेमाडपंती शैली का पुराना मन्दिर है।

बुलढाना जिला

इस जिले मे हेमाडपती मन्दिर निम्न ग्रामो मे पाये जाते है––जैसे, अमड़ापुर, अजनी, अंत्री, कोढाली, खामखेड़, गिरोली, गीर्दा, चिखली, चिंचरखेड़, देऊलघाट, दुवा, धोत्रा, नान्द्रे, ब्रम्हपुरी, मढ, मासरुल, मेहकर, लोणार, वडाली, वखंड, साकेगाव, सातगांव, सायखेडा, सिदखेडा, सेंदुरजना, सिंदखेड, सोनरी आदि। पिंपलनेर और वाढवा के दुर्ग प्रसिद्ध है।

कोथली––मलकापुर से १५ मील पर है। अजता पहाड पर चढने के लिये यहां से गुजरना पडता है। शिवगगा के तट पर दो पुराने मन्दिर हैं।

खामगांव––व्यापार का केन्द्र है।

जलगांव––यहां राजा भर्तृहरि का मन्दिर है। यहां पर मुगल काल का किला और टकसाल थी।

बुलढाना––जिले का सदर मुकाम है। मलकापुर से यहा मोटर द्वारा जाते हैं।

मलकापुर––रेल्वे स्टेशन है। मुगलकालीन प्रसिद्ध नगर है।

मेहकर––तहसील का सदर मुकाम है। इस नगर का पुराना नाम मेघंकर-क्षेत्र था। विष्णु ने मेघंकर दैत्य का वध यही पर किया था। यहा का परकोटा ४०० वर्ष का पुराना है। यहां का कसविन महल, और पंचमहल देखने योग्य है। नदी के तट पर एक मठ है जो हेमाडपती शैली का है––समीप ही नृसिंह का भी मन्दिर है।

लोनार––यह स्थान मेहकर से दक्षिण में १५ मील पर है। यह स्थान "विरज क्षेत्र" कहलाता है। यहा हेमाडपती शैली के मन्दिर है। विष्णु ने यही पर लवणासुर का वध किया था। यहां कई पवित्र तीर्थ हैं। दैत्य-सूदन का मन्दिर चालुक्यो का बनाया हुआ है। यहां पहले नमक भी बनता था क्योकि यहां के प्रसिद्ध सरोवर का जल खारा है।

सिंदखेड––मेहकर से पश्चिम मे ३२ मील पर प्रसिद्ध ग्राम है। इस ग्राम का पुरातन नाम सिद्धखेटक या सिद्धक्षेत्र था। यहा के यादवो का घराना इतिहास मे प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध शिवाजी की माता इसी वंश की थीं।

नागपुर जिला

इस जिले के प्रागैतिहासिक अवशेषों के स्थान कलमेश्वर, नवेगाव हैं। उवाली, चोगडी, कोहली, धाराद, गाडी, जूनापानी, टाकलघाट, नीलधोआ, वडगाव, जोगगाव, रायपुर, वाठोरा, सावरगाव, और हिंगना में पुरातन वृत्ताकार शवस्थान हैं। अदासा, अमोरा, केलोद, जाम्बपुर, पारसिवनी, भूगाव, कल्नी और सावनेर में हेमाडपंथी शैली के पुरातन मन्दिर हैं। पारसिवनी, रामटेक, मानुरझरी, नगरधन, नंदपुर, आदि स्थानों में पुरातत्त्व की सामग्री है। उमरेड, काटोल, गुमगाव, जलालखेडा, थापेवाडा, पाटनसावंगी, बजारगाव, भिवगढ, भिवापुर आदि स्थानों में गोंडकालीन दुर्ग आज भी हैं।

अभारा—उमरेड तहसील में वैनगंगा पर बसा हुआ है। यहाँ मेला भी लगता है। चतुर्भुज का मन्दिर और हरिहरस्वामी की समाधि दर्शनीय है।

अदासा—यहाँ गणेशजी की विशाल मूर्ति है।

काटोल—नागपुर से ३६ मील पर है। लोग उसे "कुंतलपुर" बतलाते हैं।

नगरधन—वाकाटक कालीन नंदिवर्द्धन नगर है। यहाँ कोटेश्वर का पुराना मंदिर है।

नागपुर—मध्यप्रदेश की राजधानी है। भोंसला शासन का यही केन्द्रीय नगर था।

भीमकुंड—उमरेड से २२ मील पर है। यहाँ ३ गुफाएँ हैं—जिनका सम्बन्ध पांडवों से था, ऐसा स्थानीय लोग कहते हैं। गुफा में पांडवों की मूर्तियाँ भी हैं। यहीं के एक तालाब को भीमकुंड कहते हैं।

रामटेक—नागपुर से २४ मील पर एक दर्शनीय स्थान है। इस स्थान का पुरातन नाम सिंदुरगिरि और तपागिरि है। यह स्थान नगर से ५०० फुट ऊँची पर्वतीय श्रेणी पर परकोटे द्वारा घिरा हुआ है जिसके अंदर, राम, लक्ष्मण आदि के प्रसिद्ध कई मंदिर हैं। लक्ष्मण के मंदिर में एक शिलालेख यादवकालीन है—उसके पीछे राम का मन्दिर है और समीप ही रामझरोखा स्थान है—जहाँ से बैठकर चारों ओर का सुंदर दृश्य दिखाई देता है। इस पर्वत पर पहुँचने के लिये चारों ओर से पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यहाँ के मन्दिर मध्यकालीन ब्राह्मण कला के द्योतक हैं। परकोटे के बाहर मुख्य पश्चिमी द्वार के निकट मसजिद है और वहाँ से थोड़ी दूर पर "त्रिविक्रम" का गुप्तकालीन मन्दिर का मंडप बच गया है। यह गुप्तकालीन मंदिर था।

वाकाटक सम्राज्ञी प्रभावती गुप्त की जो प्रशस्ति मिली है—उसमें इस स्थान का उल्लेख आया है। उस समय में वाकाटक वंश की राजधानी यहाँ से निकट ही नंदिवर्द्धन में थी। प्रभावती के पिता गुप्त सम्राट विक्रमादित्य चंद्रगुप्त थे। प्रशस्ति से पता चलता है कि रामगिरि पर भगवान राम के पद चिन्हों का पूजन होता था। इसी समय में महाकवि कालीदास का यहाँ आना सिद्ध होता है और तभी रामगिरि से उन्होंने मेघदूत काव्य का आरंभ किया है।

> प्रथम दिवस आषाढ़ के चूमत शिखर गिरिन्द।
> जल विहार रत गज सरिस, लखे मेघ के वृंद॥

रामगिरि के दूसरे एक पहाड़ी पर नागार्जुन का भी स्मारक है। इन पहाड़ों के मध्य में कई तालाब और पवित्र स्थल हैं। प्रमुख तालाब अंबाला है—जो पक्का बंधा हुआ मन्दिरों से सुशोभित है। उसमें स्नान करके पवित्र होकर सीढ़ियों के द्वारा यात्रीगण रामगिरि पर दर्शनार्थ चढ़ते हैं। हिन्दुओं के समान यह स्थान जैनियों के लिये भी पवित्र है। नगर से पूर्व की ओर जैन मन्दिर हैं। इस स्थल से यहाँ की लगभग १५ फुट की खड्गासन तीर्थंकर शांतिनाथ की मूर्ति के कारण शांतिनाथ कहते हैं। समस्त जैनक्षेत्र भी परकोटे के समान अहाते से घिरा हुआ है—जिसके भीतर ८-९ जैन मन्दिर हैं। जिनमें पार्श्वनाथ और चंद्रप्रभु की सुंदर मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ १,५०० वर्ष पुरातन जान पड़ती हैं।

यह स्थल अपने आध्यात्मिक एवं भौतिक सौंदर्य के लिये अप्रतिम है और मध्यप्रदेश की प्राकृतिक छटा देखने के उत्सुक यात्रियों के लिये एक सुंदर और अविस्मरणीय स्थल है।

वर्धा जिला

वर्धा जिले का पवनार—वाकाटकों की राजधानी प्रवरपुर थी। अल्लिपुर, अंजी, आष्टी, नाचनगाव, विसनुर, विरुल, रोहना, वायफल, हिंगनी आदि स्थानों में पुरातन दुर्ग हैं। पोहना और तलेगाव में यादवकालीन हेमाडपंती मन्दिर हैं।

आर्वी—वर्धा से २२ मील वर्धा नदी के तट पर है। प्रशस्ति में इस ग्राम का नाम "अरम्मी" है। यहाँ के तेलगराव की समाधि को हिन्दू और मुसलमान दोनों पूजते हैं।

केलझर—वर्धा से १४ मील पर है। यहां के किले में गणेश की प्राचीन मूर्ति है जहाँ माघ मास में मेला लगता है। लोग उसका पुराना नाम "चक्रनगर" बताते हैं।

देवली—वर्धा से ११ मील पर है। यहां पर सन् ९४० की एक प्रशस्ति मिली थी।

देवलवाड़ा—आप्टी से ६ मील पर वर्धा के तट पर बसा है। समीप ही महाभारतकालीन कुन्डनपुर था। यहां कार्तिक में मेला लगता है।

वर्धा—नागपुर से ४९ मील पर जिले का सदर मुकाम है। उसका पुराना नाम "पालकवाड़ी" है। सन् १८६६ से इस नगर को व्यापारिक महत्व प्राप्त हुआ है।

चांदा जिला

इस जिले में प्रागैतिहासिक कालीन अवशेष खैर, ढोकी और परसोरा ग्रामों में मिलते है। देवटोक में मौर्य-कालीन शिलालेख मिला है। वाकाटक कालीन प्रशस्तिया वड़गांव और देवटेक में मिली है। भद्रावती तो प्राचीन नगरी थी। घुघुस, गांवरार, झाड़ापापड़ा, देऊलवाड़ा, मारन मे तो गुहाएं है। निम्नस्थानों में हेमाड़पंती मन्दिर पाये जाते है:—आमगांव, खरवर्द, घोसरी, चुरुल, चांदपुर, नलेश्वर, पानावारस, महावाड़ी, मारोती, मार्कण्डेय (१० वीं सदी), येड्डा, आदि। केलझर, चामुर्सी, वागनाक, आदि गांवों में वृत्ताकार शवस्थान है। खटोरा, चिमूर, चंदन-खेडा, चांदा, टीपागढ़, शंकरपुर, सिरोंचा, सेगांव, मुरुमगांव, वल्लालपुर, पलसगढ आदि गांवों में गोंड़कालीन किले हैं। तड़ाली मे तो रोमन सिक्के भी मिले है।

गवरार—भद्रावती के समीप है जहां पर बुद्धकालीन गुफा, कई सुन्दर मन्दिर और तालाब है। महल में सन् ११०९ की एक प्रशस्ति भी लगा दी गयी है।

चांदा—जिले का सदर मुकाम है। प्राचीन गोंड़ राजाओं की राजधानी थी। यह नगर चारों ओर परकोटे से घिरा हुआ है। उसका विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया गया है।

वल्लारपुर—चांदा से ८ मील पर गोंड़ों की पुरानी राजधानी थी। इस स्थान से निकट सास्ती में तीन गुफाएं है जिनमे शिव की मूर्तिया है। उनमे प्रमुख लिङ्ग को केशवनाथ कहते है।

भद्रावती—कुछ दिनों के पूर्व इस गांव को लोग भादक कहते थे। भद्रावती प्राचीन नगरी है। यह सोम-वंशियों की राजधानी थी। यहा प्रचर पुरातत्त्व की सामग्री मिलती है। यहां बुद्ध और जैन-धर्म का प्रभाव रहा है। कॅनिंगहम् ने इस नगर को महाकोशल की पुरानी राजधानी कहा है।

मार्कण्डेय—चांदा से ४० मील पर वैनगंगा के तट पर बसा हुआ है। वास्तव में यह दर्शनीय स्थान है। यहां १० वी सदी के लगभग २० मन्दिरों का समूह है। प्रसिद्ध विद्वान कॅनिंगहम् ने यहां के मन्दिरो की शिल्पकला की तुलना खजुराहो के चंदेल कला से की है। यहां मार्कण्डेय का मन्दिर प्रमुख है। शिल्पकला के विद्यार्थियों को यह स्थान अध्य-यन के लिये अवश्य देखना चाहिये। माघ मास में यहां मेला लगता है।

वैरागढ़—चांदा से ८० मील पर है। ९वी सदी मे माना राजा की यह नगर राजधानी थी। लोग उसका नाम "वज्राकर" बतलाते है। 'आइने अकबरी' में लिखा है कि यहां अच्छे हीरे पाये जाते थे। यह किला घने अरण्यों से घिरा हुआ है।

भंडारा जिला

कोरंबी, कचरगढ़ और बिजली ग्राम के निकट गुहाएं है। तिलोती खैरी, पीपलगांव, और ब्रम्बी स्थानों में वृत्ताकार शवस्थान मिलते है। किलों के लिये पौनी, अबागढ, प्रतापगढ, सघरी और सोनगढ़ी प्रसिद्ध है।

अम्बागढ़—भंडारा से १८ मील पर भोंसलाकालीन प्रसिद्ध किला है। मराठा शासन मे यहां पर राजकीय कैदी रखे जाते थे जिनको प्राणदंड की सजा दी जाती थी।

भंडारा—नागपुर से ३८ मील पर जिले का सदर मुकाम है। रत्नपुर की प्रशस्ति मे इस नगर का नाम "भानारा" था। यहां पर अम्बाई और निम्बाई के हेमाड़पंती मन्दिर है। इस जिले मे व्यापार के केन्द्र गोंदिया, तुमसर, तिरोडा, पौनी, आदि नगर है।

जबलपुर जिला

जबलपुर जिले में पुरातत्व और इतिहास की सामग्री प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। कुण्डम, त्रिपुरी, जबलपुर, भेड़ाघाट, मझौली, सिहोरा, आदि स्थानों में प्रागैतिहासिक अवशेष हैं। मौर्यकालीन अशोक का लेख रूपनाथ में, गोपालपुर में बौद्ध मूर्तियों का प्राप्ति-स्थान, भरोंग में सातवाहन कालीन लेख, कुण्डा, तिगवा, बरगाव, रोण्ड, आदि ग्रामों में गुप्तकालीन मन्दिर, कारीतलाई, कूड़ा, गोपालपुर, गुर्गी, छोटी देवरी, जबलपुर, त्रिपुरी, पनागर, बहुरीबंद, बिलहरी, मझौली, मुरैया, सिमरा, आदि स्थानों में कलचुरिकालीन पुरातत्व की सामग्री है। अमाना, अमोदा, देवगढ, बरगी, मदनपुरा और सिंगौरगढ़ में पुरातन दुर्ग हैं।

कटनाग—कटनी से ९ मील पर है। यहा पुराने इमारतों के खण्डहर दो-तीन मील तक मिलते हैं।

कारीतलाई—कटनी से ३० मील दूर है। यहा प्राचीन मन्दिरों के ध्वंसावशेष हैं जो किसी समय बड़े नगर होने का प्रमाण देते हैं।

कूम्ही—सिहोरा से १० मील पर दर्शनीय स्थान है। यहा हिरन नदी की सात धाराए हो जाने से मतवारे का सा दृश्य उपस्थित होता है।

कुमोरी—यह गाव कैमोर (विंध्या की श्रेणी) की एक चोटी पर बसा है।

जबलपुर—प्राचीन नाम जाबालिपत्तन है। शहर के बीच बीच में पहाड़ी चट्टानें आगई है। अरबी में 'जबल' का अर्थ पहाड़ी होता है। शायद इसीसे इसका नाम जबलपुर रखा गया हो। इस शहर का एक मोहल्ला गढ़ा है जो गोंडों की राजधानी थी। निकट की एक पहाडी पर मदनमहल राजा संग्रामशाह का बनवाया है। यहा से शहर का सुंदर दृश्य दिखाई देता है। पास ही जलाशय भी है। निकट ही शारदा देवी का मन्दिर, बाजना का मठ, आदि गोंडकालीन भवनों के खण्डहर है। यहा के पुराने किले के स्थान पर आज लार्डगंज बसा है। यह आधुनिक काल का उदीयमान नगर है, जो कि युद्ध-सामग्री के निर्माण, प्राकृतिक स्थिति तथा शिक्षण संस्थाओं के कारण महत्त्वपूर्ण हो गया है।

तेवर (त्रिपुरी)—जबलपुर से ८ मील पश्चिम मे है। कलचुरियों की प्राचीन राजधानी त्रिपुरी को लोग अब तेवर कहते है। जहाँ आज भी त्रिपुरेश्वर महादेव विराजमान है। कलाकारों ने उस युग में इस नगर की तुलना इन्द्रपुरी से की थी। ७० वर्ष पूर्व यहा सबसे इमारतों के खंडहर थे किन्तु मालगुजार ने उनको एक लाख रुपये में ठेकेदार को बेच दिया था जिससे पुल और सड़क बनी थी। पत्थर ढोने के लिये ट्रालियो का उपयोग किया गया था। यहा की पुरातत्व की सामग्री योरप और अमरिका के संग्रहालय में पहुच गयी है।

पाली—कटनी से ८ मील दूरी पर हिरन नदी के किनारे प्राचीन मंदिरों की पंक्ति, कैमूर के सुरम्य अंचल में दृष्टिगत होती है। यहा का सहस्रकूट चैत्यालय, तथा नंदीश्वर द्वीप की बनावट देखने योग्य है। यह जैनियो का पवित्र स्थल है।

बड़गाव—मुडवारे से ४९ मील पर है, यहा गुप्तकालीन सोमनाथ का मंदिर है। निकट में जैन मंदिरों के खण्डहर है।

बहुरीबन्द—सिहोरा से १५ मील दूर है। यहा आज भी बहुत से पुरातन खण्डहर अपनी कहानी सुना रहे है। शान्तीश्वर शान्तिनाथ की मूर्ति १२ फुट ऊंची है, जिस पर १२ वी सदी का लेख अंकित है। यही से २ मील पर तिगवा गाव है। यहा भी ३० मंदिरों के खण्डहर हैं, उनमें गुप्तकालीन मंदिर भी है। प्राचीन कलाविदों के लिये यहा आज भी बहुत सी सामग्री प्राप्त हो सकती है।

बिलहरी—मुड़वारा से ९ मील पर है। किसी समय में इस नगर का घेरा २४ मील में रहा होगा। यहा अनेको मंदिर थे जो अब खण्डहर हैं। पठार पर जो शिवमंदिर है, लोग उसे "कामकन्दला" का महल कहते है। "कामकन्दला" की कहानी साहित्य में मिलती है। मुगल काल में यहा का पान प्रसिद्ध था।

भेड़ाघाट—नर्मदा के किनारे जबलपुर से १३ मील पर है। कहते हैं कि यहा भृगु ऋषि का आश्रम था। यहा पर नर्मदा बड़ी-बड़ी संगमर्मर की करीब १०० फुट ऊंची चट्टानों को काट कर बही है। नर्मदा का प्रसिद्ध प्रपात धुआंधार है, जिसे देखने के लिये विदेशों से लोग भी भेड़ाघाट पहुचते है। यहा नर्मदा दो पहाड़ी के बीच से बहती है जिसे किसी समय में बंदर कूद गया था, तबसे लोगों ने उसका नाम 'बंदर कूदनी' रख दिया। उसके आगे धार इतने सकरे स्थानों से बही है, कि लोगों ने जनेऊधारा नाम रख दिया। धुआंधार के समीप एक पहाड़ी पर कलचुरीकालीन

जलावतरण, पचमढ़ी

ओंकार-मान्धाता के प्रसिद्ध "ओंकारेश्वर-मन्दिर" का एक दृश्य

शुक्लजी सिरपुर में ७ वीं शताब्दी की बुद्ध—मूर्ति का निरीक्षण करते हुए
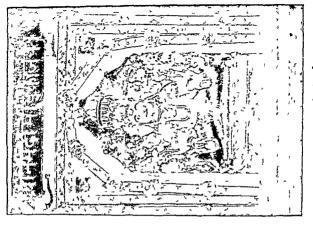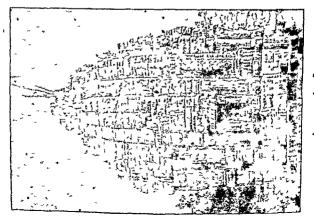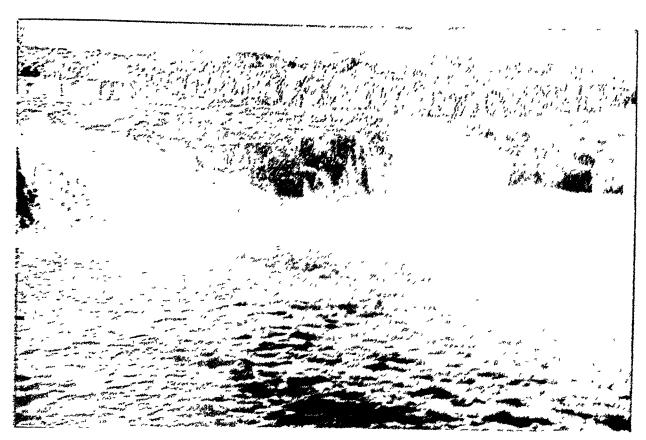
दूसरी मठ का प्राचीन मन्दिर

मण्डला में नर्मदाजी की मूर्ति
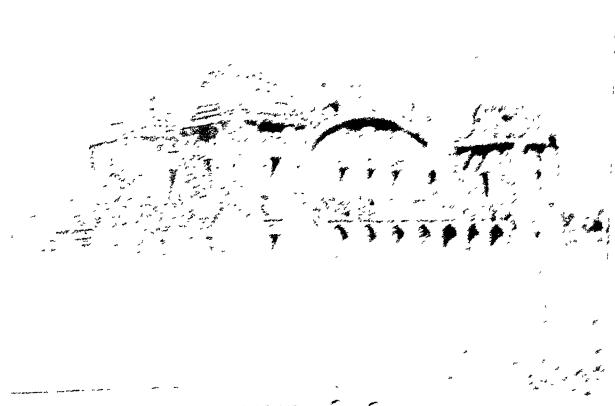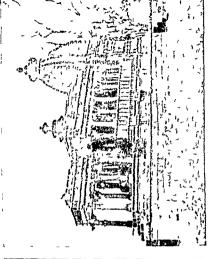
पार्वती परमेश्वर, रतनपुर

शिव मन्दिर, नोहटा
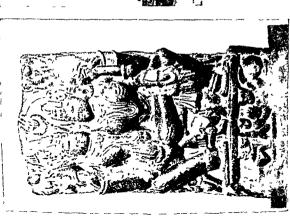
"चौसठ जोगनी" का मठ है। यह मठ गोलाकार है, और ७९ खण्ड है, जिनमे देवियों की मूर्त्तिया है और पद में नाम भी खुदा है। एक कोने पर गौरीशकर का प्रमुख मन्दिर है। यह गाव महंत हरदेवपुरी को माफ दिया गया था।

रूपनाथ—सिहोरा से १९ मील तथा वहुरीवन्द से २ मील पर है। यहां शिव पंचलिगी मन्दिर है। रूपनाथ कहते हैं। यहां के ३ कुन्डों मे सदैव पानी भरा रहता है। तिल सक्रान्ति पर यहा मेला लगता है। य चट्टान पर सम्राट अशोक का एक लेख अंकित है, जो ईस्वी सन् से २३२ वर्ष पूर्व का है।

सागर जिला

सागर जिले में प्रगैतिहासिक अवशेष केडलारी, गढी, मोरीला, देवरी, वहुतराई, वुरखेरा, वुरवाना, दमोह, वुरचेंका और संग्रामपुर मे है। एरन मे प्राचीन गणराज्य के सिक्के मिले है। यहां शातवाहन, हूण तोरमानशाह, गुप्तकालीन शिलालेख, स्तभ और मूर्त्तियां है। इसुरपुर, देवरी, वरगाव, रीठी, सलैया, सागर, व ड़ावारी, कुन्डलपुर, नादचांद, नोहटा, वादकपुर, मदनपुर, सकौर, सिमरा, आदि ग्रामों मे कलचुरि शिल्पावशे गोडकालीन सभ्यता के स्मारक कर्नेलगढ, खुरई, गरोला, गौरझामर, जयसिहनगर, देवरी, दूगह, नरयावली, रिया, वरेठा, वरोदिया कला, विनैका, विलेहरा, मालथोन, रमना, रेहली, सानोदा, हीरापुर, इटौरा, कनवारा, ग जटाशंकर, सिगोरगढ, तेजगढ, नरसिहगढ़, पचमनगर, पूरनखेडा, वालाकोरी, मरियाडोह, राजनगर, रामनगर, गीर, आदि के दुर्ग है। गढपहरा और गढाकोटा के दुर्ग दागी राजाओ के स्मारक है। मुसलमानी शासन का प्र कजिया, खिमलासा, गढ़ौला, धामोनी, मरियाडोह, राहतगढ, शाहगढ़ के किले और अन्य इमारते प्रकट करती है

एरन—सागर से ४६ मील पर जिले का सवसे पुरातन ग्राम है, जिसका पुराना नाम "ऐरकिन" था। पर विविध समय की पुरातत्त्व सामग्री है। यहा पर गुप्त संवत् १९१ का एक सतीचीरा है और भारत के अन्य चीरों से पुराना है।

कंजिया—सागर से ६९ मील पर है। यहा का किला शहजू वुन्देला ने वनवाया था। यहां पर सन् १ की ईदगाह है।

खिमलासा—सागर से ४१ मील पर मुगलकालीन नगर है। संस्कृत शिक्षा का भी केन्द्र था।

गढ़ाकोटा—सागर से २८ मील पर ऐतिहासिक स्थान है।

देवरी—सागर से ४० मील पर सुखचैन नदी पर रामगढ़ था जिसे अव देवरी कहते है।

धामोनी—सागर से २९ मील पर है। मुसलमानी युग मे जिले का प्रमुख नगर था। प्रसिद्ध मुगल स अवुल फजल के गुरु वालजतीशाह यही पर रहते थे।

वान्दा—सागर से २० मील पर है। यहां जैनियों के मन्दिर है।

राहतगढ—सागर के पश्चिम में २५ मील पर यह नगर है।

सागर—जवलपुर से ११४ मील पर है। यहां का प्रसिद्ध तालाव लाखा वंजारे ने खुदवाया था जि किनारे यह नगर वसा है। यह राज्य पेशवा की जागीर मे था। आधुनिक समय मे भी यह उन्नतिशील नगर है

कुन्डलपुर—दमोह से १८ मील दूरी पर है। यहां कुडलाकार पहाड़ी है, जहा जैनियों के ५७ मन्दिर इसमें एक मन्दिर मे महावीर की मूर्ति १२ फुट ऊंची है। वर्धमान मंदिर के सामने वर्धमान सागर तालाव है। जैनियों का सास्कृतिक स्थल है।

जटाशंकर—हटा से ८ मील वायव्य मे एक मुसलमान शैली का किला है। किले के वाहर ११-१२ वी की कुछ मूर्तियां खण्डित पड़ी है। निकट ही नाले पर एक छोटासा शिवजी का मन्दिर है, जिसमे वख्त का निम्न पद अंकित है:—

माणिक शोभ विशाल अति, स्वामि वली शिवभाल।
सेवक शंभुनाथ के, तुम वख्तेश—दयाल॥

वख्तवली १८५७ के गदर मे शाहगढ़ के राजा थे।

दमोह—जवलपुर से ६५ मील पर है। कहते है कि नल की रानी दमयंती ने इसे वसाया था। एक प्रश के अनुसार उसका पुराना नाम "दमनकपुर" था।

सिंगोरगढ—दमोह से २८ मील पर है, कहते है कि यहा का किला राजा वेनु ने बनवाया था। यहा के लेख में किले का "गजसिंह दुर्ग" था, जिसका प्राचीन नाम गौरीगढ था। या तो दमोह जनपद श्री गौरी कुमारिका क्षेत्र कहलाता था। रानी दुर्गावती यहा पर भी रहा करती थी।

हटा—दमोह के उत्तर में २४ मील पर सुनार नदी के तट पर है। यहा मगलशाह पीर की दरगाह है। १७ वी सदी म हृदेसिंह ने यहा पर किला और चण्डी का मन्दिर बनवाया था।

मण्डला जिला

इस जिले में कुकरमठ, रामनगर और मण्डला प्रमुख स्थान है।

कुकरमठ—डिंडोरी से ९ मील पर है, यहा एक पुरातन शिवमन्दिर है। यहा का दृश्य दर्शनीय है।

मण्डला—जबलपुर से २४ मील पर है। लोग कहते है कि उसका पुराना नाम "माहिष्मति" था, पुरातत्व-विद् के निगहम के अनुसार उसका नाम महेश्वरपुर था। यहा नर्मदा का फैलाव और सहस्त्रधारा दर्शनीय है। एक कवि कहता है—

> महिषासुर की भूमि सो—माहिष्मत को राज।
> परशुराम की प्रिय पुरी—धर्म भूमि सुखसाज॥
> महसबाहु याम्हत भयो—देवि नर्मदा धार।
> बहु यौरानीं नहिं पाया—महसधार बल्पार॥
> राजगोंड को गढ किला—राजेश्वरी शुक्वास॥
> माहिष्मति पश्चिम दिशा—जोजन तीन सुदूर।
> है सुखद त्रिपुरी नगर—भूमि बडी रणशूर॥

रामनगर—मण्डला नगर से १० मील पर नर्मदा के किनारे गढा-मण्डला के गोंड राजाओ की राजधानी थी। यहीं पर राजगोंड राजाओ की वंशावली प्रशस्ति है। घने जगल में नर्मदा के किनारे होने से स्थान दर्शनीय है।

होशगाबाद जिला

इस जिले के उमरिया, झासीघाट, झल्ई, तामिया, पचमढी, बरमानघाट, बूढीमाई, भुतरा, होशगाबाद, सोन-भद्र, आदि स्थानो के प्रागैतिहासिक अवशेष और चित्रान्वित गव्हरो की प्रचुरता है। खिडीया, हरदा और जमुनिया में प्राचीन मुद्राए मिली है, जो कुषाण और गुप्त काल की है। हडिया, सोहागपुर, बागरा, जोगा, चवरपाठा, चौरागढ, धिल्वार और बचई के गोंड कालीन दुर्ग प्रसिद्ध है।

पचमढी—प्रदेश के दर्शनीय स्थानो में मुख्य है। पिपरिया स्टेशन से ३१ मील दक्षिण में पहाडियो पर बसा है। तापमान और ऊचाई की दृष्टि से पचमढी अन्य प्रान्तो के पर्वतीय नगरो से तुलना नही कर सकता किन्तु प्राकृतिक दृश्यो की विपुलता, जल प्रपातो की सुन्दरता के कारण उसका एक अपना स्थान है। यहा के दर्शनीय स्थानो की सख्या सात पर पहुचती है। यहा पर सातपुडा का सर्वोच्च शिखर धूपगढ समुद्रतल से ४४ सौ फुट ऊचा है, यहा से सूर्यास्त और सूर्योदय का दृश्य बडे ही मनोरम दिखते है। धूपगढ के बाद दूसरे पहाड पर प्रसिद्ध महादेव की गुफा है, जहा शिवरात्रि में मेला लगता है। इससे भी ऊचा स्थान चौरागढ है, यात्री भगवान शिव को प्रसिद्ध शस्त्र त्रिशूल अर्पण करते है। इनके अतिरिक्त देखने के योग्य कई प्रपात है। नगर के समीपस्थ जटाशकर, पाडव गुफाए और छोटे महादेव भी दर्शनीय स्थान है। यहा पर प्रागैतिहासिक काल के गुहा चित्र कई स्थानो म मिलते है। ग्रीष्म काल में मध्यप्रदेश के धनिक और शासनकर्ता यहा आकर रहते है।

सोहागपुर—होशगाबाद से ३२ मील पर पलकमती के किनारे है। लोग कहते है कि यहा बाणासुर रहता था। उसकी पुत्री उषा के नाम से अब तक यहा एक तलाई "उषातलाई" कहाती है। यहा भोसलो के समय में एक टकसाल थी।

हडिया—हरदा नगर से १३ मील पर है, फकीर हडियाशाह ने इस ग्राम को नर्मदा के तट पर बसाया था। मुगलों के समय बुरहानपुर जाने का मार्ग (दिल्ली से) यहीं से था। नर्मदा के दूसरे तट पर प्रसिद्ध सिद्धनाथ का मन्दिर है।

हरदा—होशगाबाद से ६० मील पर प्रसिद्ध नगर और व्यापारिक केन्द्र है।

होशंगाबाद—नागपुर से १८५ मील दूर नर्मदा के किनारे पर मालवा के हुशंगशाह ने इसे बसवाया था। यहां की आदमगढ पहाडी पर प्रागैतिहासिक कालीन चित्रकारी भी है। नर्मदा के किनारे जानकी सेठानी के द्वारा बनवाये घाट दर्शनीय है।

गाड़रवारा—नरसिंहपुर से २२ मील पर है। इस नगर का पुराना नाम गड़रियाखेरा है।

चौरागढ—गाड़रवारा से २० मील पर गोंडों का प्रसिद्ध किला चौरागढ है। प्राचीन काल का यह रमणीय नगर अब जंगल के रूप मे परिवर्तित हो गया है। राजा संग्राम के समय मे उसका नाम चौकीगढ था। सतपुडा की श्रेणी पर यह किला बनवाया गया था, जहां जल का भी सुपास था।

नरसिंहपुर—नृसिंह के मन्दिर के कारण इस नगर का नाम नरसिंहपुर रखा गया था। यह मध्य-रेल्वे का स्टेशन है, जबलपुर से ४२ मील पर है।

बरहटा—नरसिंहपुर से १४ मील पर है। यहां की प्राचीन मूर्त्तियाँ योरोप के कई स्थानो मे यात्री लोग उठा-कर ले गये है। यह प्राचीन काल मे पुरातन नगर था।

बरमानघाट—नर्मदा और बदरेवा का संगम यहां पर हुआ है। मकर सन्क्रान्ति पर बडा मेला लगता है। नर्मदा के मध्य मे एक पहाडी टापू है, जहां पाच कुण्ड भी है।

निमाड जिला

असीरगढ—बुर्हानपुर से १४ मील पर निमाड का प्रसिद्ध किला है। उसकी ऊंचाई ८५० फुट है। सन् १३७० में आसा नामक अहीर ने उसका निर्माण किया था। यहां सर्व वर्मन की एक मुद्रा मिली है। यहा हिन्दू और मुगलकाल की प्रशस्तिया है। यह किला दृढता में अपना सानी नही रखता। उसकी दीवालें ३० फुट ऊंची, नीचे मैदान से आरम्भ होकर उच्च शिखरो तक चली गई है। प्राकृतिक घाटियां स्वाभाविक रूप से सुरक्षित किये हुये है। इसके अंदर पहुंचने के लिये दो ही मार्ग हैं—इनमे से मुख्य दक्षिण-पश्चिम की ओर है, जो कि ऊची सीढियों से सात द्वारो को पार करता हुआ किले में प्रवेश करता है। अंतिम द्वार सत दरवाजा कहलाता है। वह २५ फुट ऊंची दोहरी दीवालो से सुरक्षित है। किले के सबसे ऊपर कई तालाब है जिस से किले के लोगों को जल कष्ट नही होता था। दुर्ग के अन्दर प्राचीन शिवमन्दिर भी है। इसके अन्दर एक ऐसा गहरा कूप है, जिसका सम्बन्ध गुप्त द्वार से है, जहां से किले के बाहर गुप्त रूप से जाया जा सकता है। यहां के द्वारो पर मुगल सम्राटों के लेख भी है।

खन्डवा—जिले का मुख्य नगर जबलपुर से २६३ मील दूर है। यहां चार तालाब और कुछ प्राचीन मन्दिर है। प्रशस्तियों से पता चलता है कि सन् ११२८ मे यहां नगर था।

बुर्हानपुर—खन्डवा से ४२ मील पर तापी नदी के तट पर बसा हुआ है। सन् १५०० मे फारुकी वंश के सुलतान ने बुरानुद्दीन औलिया के नाम से यह नगर बसवाया था। फारुकी वंश के सुलतानों की यह राजधानी थी। ताप्ती के दूसरे तट पर जैनाबाद है। मुगलो के समय मे यह नगर दक्षिण सूबे की राजधानी थी। यहां जहांगीर, शाह-जहा और औरंगजेब सम्राट भी शासक रूप मे रहे है। उस समय मे दिल्ली के बाद दूसरा यही मुख्य नगर गिना जाता था। मुगल कालीन यहा कई इमारतें है। नगर चारो ओर से परकोटे से घिरा हुआ है। इस नगर का जल प्रबंध दर्शनीय है, ताप्ती नदी की अन्तर धारा को तीन स्थानो पर छेडा गया और तीन कूपों के द्वारा ऊपर लाने का यत्न किया गया है, जिनको सुख भंडारा कहते है। मूल भंडारा और चिन्ताहरण नामक अन्तरवर्तीय जलाशय बुर्हानपुर के उत्तर मे ५ मील पर बने हुये है और वे नगर की सतह से १०० फुट ऊंचे है। इन्ही से नगर मे भूमि के नीचे नीचे नालियो द्वारा जल पहुंचाया जाता था। यह प्रसिद्ध नगर मुगल काल में इन बातों के लिये प्रसिद्ध था:—

चार चीज अहत तोहफये बुर्हान।
गर्द, गर्म, गद ओ गुरिस्तान॥

मान्धाता—खन्डवा से ३२ मील पर नर्मदा के किनारे दर्शनीय स्थान है। सत्ययुग में सूर्यवंशी राजा मांधाता-ने यही पर शंकर को प्रसन्न करने के लिये तपस्या की थी। यहा ओंकारेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। हिन्दुओ का पवित्र स्थान—१३ ज्योतिलिंगो मे है। यहा के मन्दिरो मे सिद्धनाथ मन्दिर देखने योग्य है। पर्वो पर यहा हजारो यात्री आते हैं। लोग मांधाता का पुराना नाम, माहिष्मती, कहते है। मांधाता नर्मदा के दक्षिण तट पर एक द्वीप के रूप में

बसा हुआ है। ऊचे ऊचे पवत शिखर उसकी शोभा बढाते हैं। दक्षिण के द्वीप को शिवपुरी कहते हैं और दक्षिण तट पर ब्रम्हा और उत्तर तट पर विष्णु के नगर कहते हैं। यहा की पहाडिया वास्तव में "ओंकार" के आकार की दिखाई देती हैं।

बैतूल जिला

बतूल जिले के अन्तगत खैरी, गोपालतलाई, चापल, धानारा, नागगिरी, भोपाली, लालवाडी, में गुफाए और नौगाव, भाडियाकाफ में प्रागैतिहासिक गव्हर ह। यहा निम्नलिखित स्थाना में किले ह—अटनेर, आमला, खेरला, भैंसदेही। गुप्त और राष्ट्रकूट वश की प्रशस्तिया तिनरखेड, पट्टन, बतूल और मुल्ताई में मिली हैं।

खेरला—बतूल से चार मील पर प्रसिद्ध दुग ह। उसका प्राचीन नाम खेटकपुर रहा होगा।

बतूल—जिले का मुख्य नगर ह।

भोपाली—बतूल से १८ मील पर हैं। यहा की पहाडिया में २-३ गुफाए ह। एक गुफा में शिव की मूर्त्ति हैं, जिसके ऊपर पानी की बूद टपकती ह। यह मूर्त्ति मुख्य द्वार से २० फुट के फासले पर हैं। दूसरी गुफा में पार्वती की मूर्ति है और तीसरी गायकोठा कहलाती हैं।

मुक्तागिरी—बैतूल से ६९ मील दूर बतूल जिले में हैं, किन्तु उसका वर्णन हमने अमरावती जिले में दे दिया ह क्योंकि वह स्थान अचलपुर से समीप ह।

मुलताई—ताप्ती नदी का यह उदगम स्थान है। यहा एक कुड बना है जिसे पवित्र माना जाता है।

छिदवाडा जिला

चिचोली—छिदवाडा से ४७ मील पर है—यहा शेख फरीद की दरगाह है। यहा का वट वृक्ष इतना फैला हुआ है कि जिसकी छाया में ५०० घोडे बाधे जा सकते ह।

छिदवाडा—नागपुरसे ८१ मील पर बसा है। इस गाव का बसाने वाला रतन रघुवशी था। यह जिला अरण्यमय होने से यहा कुछ व्यापार अवश्य होता ह।

देवगढ—छिदवाडे से २४ मील पर गाड वश की राजधानी थी। गोडकालीन दुग, महल, द्वार, नौबतखाना आदि के खडहर दिखाई देते ह—अब तो यह स्थान सतपुडा का अरण्यमय भाग हो गया है।

नीलकठी—छिन्दवाडे से १४ मील पर है—जहा कई मदिरो के खडहर ह—एक स्तभ पर १० वी सदी के राष्ट्रकूट वशी कृष्ण का उल्लेख हैं।

छपारा—सिवनी से २२ मील पर जबलपुर रोड पर वैनगगा के किनारे बसा है। नदी के तट पर गोडकालीन राजा रामसिंह का किला बना हुआ है।

लखनादौन—सिवनी से ३८ मील पर है। यहा पर प्राचीन मन्दिर और इमारतो के भी अवशेष मिलते ह। इस नगर का बसाने वाला लखन कुवर था।

सिवनी—नागपुर से ८० मील पर ह। यहा व्यापार का अच्छा केन्द्र है। यह जन केन्द्र भी ह और यहा क्षत्रियों के सिक्के भी मिले ह।

बालाघाट जिला

इस जिले के तिरोडी, बालाघाट, गधोली, लाजी आदि स्थाना में वाकाटक, शैल और यादव वश की प्रशस्तिया मिली हैं। भीर गाव म एक हमाड पथी शैली का मन्दिर है। लाजी, सोनसार और हट्टा में किले भी ह। यह जिला अरण्यमय होने से बालाघाट, हट्टा, वारासिवनी और कटगी व्यापार के साधारण केन्द्र ह। दर्शनीय स्थाना में बहर और लाजी ह।

बालाघाट—नागपुरसे १०३ मील पर ह—जिले का सदर मुकाम है।

बैहर—बालाघाट से २० मील दूर घनी अरण्यमय पहाडी पर साधारण कस्बा है। यहा के दो मन्दिर पुराने हैं किन्तु पर्वतीय भाग का दृश्य देखने योग्य तथा आखेट के लिये योग्य स्थल ह।
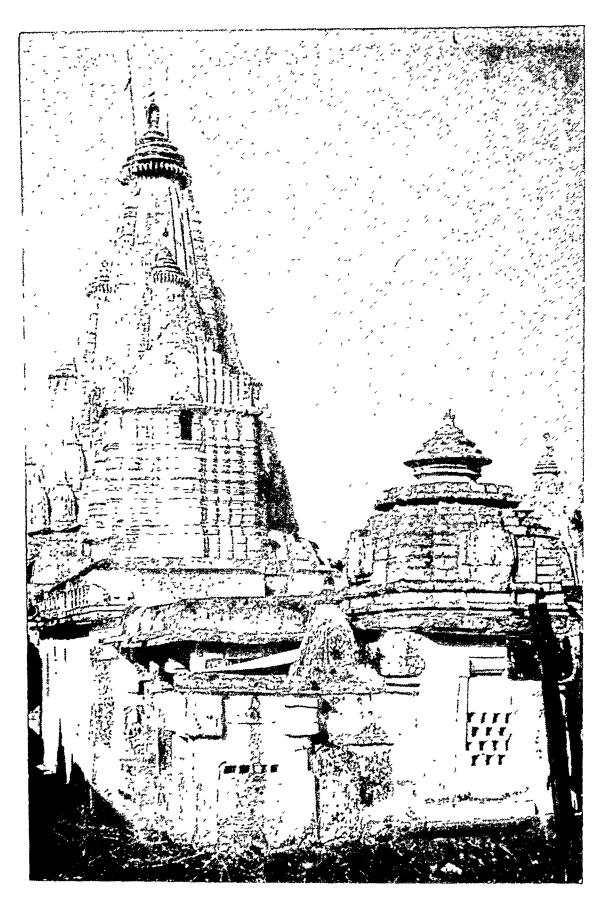
शिवरीनारायण (विलासपुर) के मन्दिर
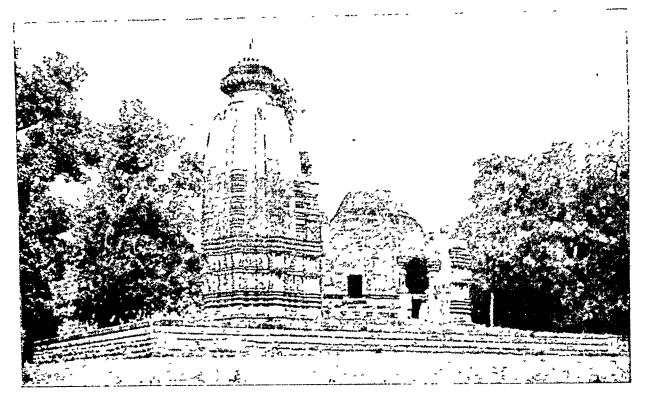
सुप्रसिद्ध जैन-तीर्थ-मुक्तागिरि के मन्दिर

शिव मन्दिर, पाली

वीरशाह का मकबरा, चांदा

तापी का किनारा, राजघाट, बुरहानपुर

पठान दरवाजा, चांदा

विष्णु मन्दिर, जांजगीर

जैन मन्दिर आरंग

धुआंधार (नर्मदा) भेड़ाघाट
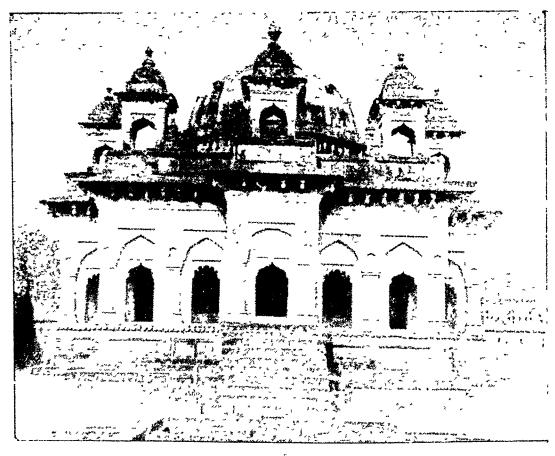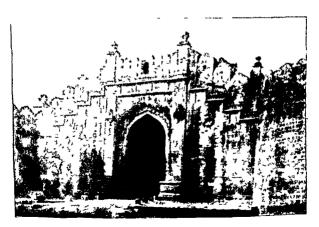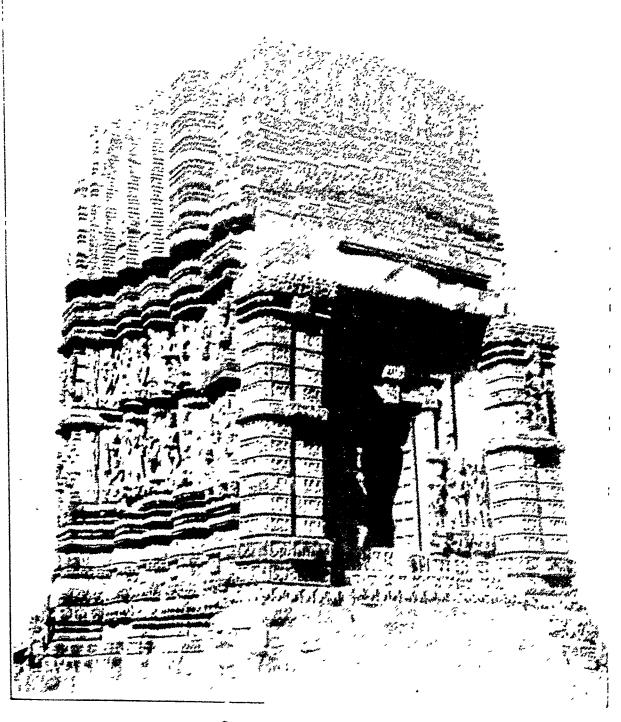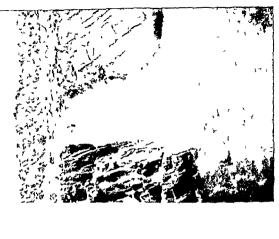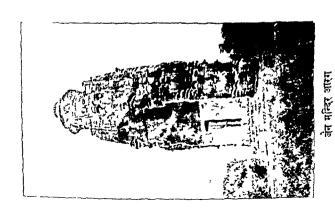
लांजी—बालाघाट से ३८ मील पर पुराना नगर है। सन् १९१४ की एक प्रशस्ति से पता चलता है कि यहां का किलेदार रत्नपुर राज्य का मान्डलिक था। सारंगढ राज्य के पूर्वज यही पर रहते थे। किले मे सबसे पुरातन मन्दिर महामाया का है। पास ही मे कोटेश्वर महादेव का भी मन्दिर प्राचीन है। मराठों के समय मे लाजी जिले का प्रमुख नगर था।

रायपुर जिला

इस जिले मे आरंग, कुर्वई, खरियार, देववलोद, तुरतुरीया, खलारी, खैरताल, नारायणपुर, बोरमदेव, राजिम, रायपुर, सिरपुर, आदि स्थानों मे जैन देवालय, शरभपुर वंश, पाण्डुवंश, नलवश और हैहयवंश की प्रशस्तिया, ९ वी सदी के बौद्ध अवशेष, मुद्राएं आदि पुरातत्त्व की सामग्री मिली है। कुरुग, कागडीह, गढफुलझरी, गिधपुरी, डमरू, दौण्डी, सरथा, भाकरा और सोरार मे दुर्ग है। सिहावा मे मध्ययुगीन गुफा, सोनाभीर में वृताकार शवस्थान हैं।

आरंग—महानदी के तट पर रायपुर से २२ मील पर सुन्दर-सुन्दर मन्दिरो एवं तालावों से परिपूर्ण नगर है। वागेश्वर का जैन मन्दिर दर्शनीय है।

खलारी—रायपुर से २८ मील पर है। जिसका प्राचीन नाम "खलवाटिका" था।

चम्पाझर—राजिम से ६ मील पर चंपाझर को लोग अब चंपारण्य कहते है। पुष्टि मार्गी वैष्णव कहते है कि यहा वल्लभाचार्य का जन्म हुआ था—इसी कारण से वैष्णवो का एक मन्दिर बन गया है जिसके कारण दूर दूर के वैष्णव आते है। यही पर पुरातन चम्पकेश्वर महादेव का मन्दिर है। माघ मे मेला भी लगता है।

तुरतुरिया—रायपुर से ५० मील पर है। लोग कहते है—यहा वाल्मिक ऋषि रहते थे। यहां के प्राकृतिक झरने को लोग सुरसरी गंगा कहते है। समीप ही बौद्ध धर्म की पुरातन मूर्तिया भी मिली है।

देवकोट—सिहावा से ८ मील पर महानदी के तट पर है—यहा ४ छोटे पुरातन मन्दिर है।

धमतरी—रायपुर से ४६ मील दूर है। यहां पर रामचंद्र का मन्दिर दर्शनीय है। जान पडता है कि मन्दिर मे लगी हुई सामग्री सिरपुर से लायी गयी है।

बंगोली—रायपुर से १८ मील पर सतनामी सम्प्रदाय के गुरु घासीदास की समाधि है। माघ में यहां हजारो सतनामी दर्शनार्थ आते हैं।

राजिम—रायपुर से २९ मील पर महानदी के तट पर है। प्राचीन काल मे यहां बहुत से मन्दिर थे किन्तु अब ९ प्रमुख मन्दिर है—जिनमे राजीवलोचन प्रमुख है। पैरी और महानदी के मध्य मे कुलेश्वर का मन्दिर है इस मन्दिर के चारों ओर परकोटा है—जिसकी ऊंचाई १६ फुट है—उसके द्वार पर निम्न दो वाक्य लिखे है :—

जाहि व्यापे अंब छूटत शिवगिरि गहि रहो।
जगतराऊ तहा खम्ब सम्भु सुखासन तहा रहो।

राजीवलोचन का मन्दिर पुरातन काल मे राजिम तेलिन से मूर्ति लेकर जगतपाल राजाने बनवाया था। (१२वी सदी) यहां पर एक प्रशस्ति भी लगी हुई है।

रायपुर—छत्तीसगढ का प्रमुख नगर है और अब प्रदेश का एक व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ १४ वी सदी का हटकेश्वर मन्दिर है। यहां भी हैहयवंश का राजा राज्य करता था—उसका महल और किले के निशान बने है—समीप ही महामाया का मन्दिर है। नगर के बाहर विशाल दूधाधारी का मठ और मन्दिर है। आधुनिक समय में भी यह नगर सभी दृष्टि से प्रगति के पथ पर है।

रुद्री—धमतरी से २ मील पर कांकेर के राजवश की पुरातन राजधानी थी। यहा पर सतनामी संप्रदाय के एक गुरु रहते थे, जिसके कारण माघ में मेला लगता है।

सिरपुर—महानदी के तट पर राजिम से ४० मील पर वीरान मौजा है। यहां के ध्वंसावशेष से जान पडता है कि यह नगर १० मील में फैला हुआ था। लोग उसका पुराना नाम सवरीपुर कहते है। यहां गधेश्वर और लक्ष्मण के सोमवंशकालीन मन्दिर आज भी खडे है। कहते है कि महाभारत के प्रसिद्ध वीर अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन यही पर रहता था। सरकार की ओर से यहां खुदाई का कार्य आरंभ किया गया है—जिसके कारण पुरातत्त्व की सामग्री प्रचुर मात्रा में मिली है।

सिहावा—रायपुर से ७६ मील पर है। कहते है कि यहां शृंगी ऋषि का आश्रम था। यहां के कर्णेश्वर मन्दिर में एक प्रशस्ति है। (शके ११११४) यहां माघ मे मेला भी लगता है।

दुर्ग जिला

दुर्ग जिले के अर्जुनी स्थान में प्रागैतिहासिक अवशेष है। वालोद में मध्ययुगीन देवालय तथा चन्द्रीभायर, वावराहा, चिरचोरी, मजगहा और सोरर गांवों में वृत्ताकार पुरातन शव स्थान है। दुर्ग में सातवाहन और वाकाटक वंश की प्रशस्तियां मिली हैं और डोंडी तथा धमधा के किले प्रमुख है। खैरागढ़, राजनांदगांव, कवर्धा और छुईखदान पुरानी रियासत नवीन विधान के अनुसार इस जिले में सम्मिलित कर ली गयी हैं।

दुर्ग—जिले का सदर मुकाम है। इस नगर का पुराना नाम शिवदुर्ग है। इस नगर से थोड़ी दूर पर सरकार एक वृहत फौलाद का कारखाना स्थापित कर रही है, जिसके कारण यह नगर औद्योगिक केन्द्र-स्थल बनेगा।

बिलासपुर जिला

इस जिले के अकलतरा, अड़भार, अमोदा, कुगदा, कोटगढ़, कोनी, कोसगई, घोटिया, जाजगीर, पाली, डेकोनी, तुम्मान, पारगांव, पेंडरवा, पौनी, बिलाईगढ़, भगोड, मलार, महामदपुर, लाफा, सरखा, रतनपुर, सिवरीनारायण, खरोद, सोनसारी आदि विविध ग्रामों में हैहय-वंश के सिक्के प्रशस्तियां और मंदिरादि प्राप्त हैं। कोटमी, अजमिरगढ़, अड़भार, पेंडरा, कच्छौद, बिलाईगढ़ आदि स्थानों में पुराने दुर्ग है। बूढ़ीखार में सातवाहन-कालीन लेख मिला है और कोरबा की गुफा देखने योग्य है।

कोटगढ़—अकलतरा नगर से ३ मील पर है। दुर्ग के पूर्व द्वार पर महामाया की मूर्ति है जहां पुराने जमाने में नर-बलि दी जाती थी।

चांपा—यह व्यापार का केन्द्र है। स्टेशन पर २ मील पर प्रसिद्ध पीथमपुर महादेव का स्थान है जहां प्रतिवर्ष शिवरात्रि पर मेला लगता है।

तुम्मान—बिलासपुर से ६० मील दूर है। हैहयवंश की पुरानी राजधानी पहाड़ियों के मध्य में है। पहाड़ियों के मध्य में होने से इस स्थान को तुम्मान-खोल कहते हैं, जहां अब १६ गांव बसे हैं। तालाब भी अनेकों हैं, जिनके १२६ नाम लोग आज भी बताते हैं। यहां के सतखंडा महल के पास पुरानी मूर्तियां और मन्दिरों के खंडहर मिलते हैं।

पाली—बिलासपुर से २७ मील पर है। यहां के प्रमुख तालाब के किनारे कई प्राचीन मन्दिरों के खंडहर हैं फिर भी एक-दो ऐसे मंदिर है, जिनकी कला देखने और अध्ययन करने योग्य है। इन मन्दिरों का निर्माता जाजल्लदेव था।

बिलासपुर—जिले का सदर मुकाम अरपा नदी के किनारे है। चार सदी पूर्व यहां की बिलासा ढीमरी प्रसिद्ध थी। सन् १७७० में मराठों ने इस नगर का रूप दिया था।

रतनपुर—बिलासपुर स्टेशन से १६ मील पर दर्शनीय नगर है। यहां के खंडहर आज भी प्रकट करते हैं कि वास्तव में यह नगर दक्षिण कोशल की राजधानी के योग्य है। सन् १८१८ तक यह छत्तीसगढ़ की राजधानी थी। यहां कई प्रशस्तियां और सिक्के मिले हैं। यह नगर ६० पारों में विभक्त था। यहां का प्राचीन किला बादलमहल कहलाता है। समीप ही एक पहाड़िया पर बिंबाजी भोंसले द्वारा बनवाया हुआ रामचन्द्र का मन्दिर है जो "रामटेक" कहलाता है। यह रामटेक नागपुर के निकट रामटेक की ही नकल है। प्रसिद्ध महामाया मन्दिर के निकट ही जैन धर्म की कई मूर्तियां हैं। यहां पर लगभग छोटे मोटे ३०० तालाब है और कई प्राचीन मन्दिरों के खंडहर स्थित हैं जिनके अवलोकन से नगर की प्राचीनता और विशालता का आभास मिल जाता है।

सिवरीनारायण—बिलासपुर से ३९ मील पर महानदी के किनारे पर बसा है। यहीं पर जोंक नदी महानदी से आकर मिली है। लोग उसका नाम "सिवरी आश्रम" बतलाते हैं। यहां पर नारायण का मन्दिर प्रसिद्ध है जिसे "शबर" राजा ने बनवाया था। चन्द्रचूडेश्वर के मन्दिर में सन् ११६५ का एक लेख लगा हुआ है। माघ में यहां मेला लगता है। यहां से २ मील पर खरोद ग्राम है जहां पर हैहय-वंश द्वारा निर्मित शिव मन्दिर है।

रायगढ़ जिला

मध्यप्रदेश की कुछ रियासतों को जोड़कर यह जिला बनाया गया है। प्रागैतिहासिक-कालीन बहुतसी सामग्री इस जिले में मिली है। प्रदेश के चित्रित गह्वरों (Rock shelters with painting) में रायगढ़ नगर के निकट कावरा पहाड़ तथा सिंगनपुर के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनको देखने के लिये देश-देशान्तरों के लोग यहां पहुंचा करते हैं। सक्ति तहसील में गुंजी नामक स्थान में कुमार वरदत्त का लेख है जो सातवाहन काल का है, उसका समय ईसवी सन् की दूसरी शताब्दि है।

बस्तर जिला

इस जिले का सदर मुकाम जगदलपुर है। सन् १९४७ के पूर्व यहां का शासन ककातीय वंशी राजाओं के आधीन था। यह जिला अरण्य और पहाड़ो से व्याप्त है जहा के अरण्यवासी आज भी जंगल मे मगल कर रहे है। जगदलपुर मे दतेश्वरी देवी का मन्दिर पुरातन है ; यह देवी राजवश की कुलदेवी है। प्रत्येक विजयादशमी के दिन वडे समारोह के साथ देवी का छत्र विशाल रथ पर निकाला जाता है। इस अवसर पर विराट मेला लगता है जिसमे कि सहस्रो की संख्या मे समस्त वस्तर के नर-नारी एकत्रित होते है।

चित्रकूट प्रपात—जगदलपुर से २४ मील दूर सघन वन्य प्रदेश में इंद्रावती नदी उच्चगिरि-शृंग से नीचे गहन खाले मे १५० फुट की ऊंचाई से गिरती है। इस प्रपात का घर-घर स्वर वहुत दूर तक सुनाई देता है। प्रपात जितना ऊचा है, उतना ही चौड़ा भी है। उसकी जलराशि का विपुल विस्तार और प्रपात का सौंदर्य जितना विराट है, उतना ही वह मनमोहक है। प्रपात से नीचे गिरता हुआ जल सहस्रो धाराओ मे विभक्त हो जाता है तथा एक रजत-पट का सृजन करता है जिस पर इन्द्र-धनुष का रगीन दृश्य सदा खेलता रहता है।

जगदलपुर पहुंचने का मार्ग रायपुर से मोटर द्वारा है।

राष्ट्रीय तीर्थ वर्धा

मध्यप्रदेश के ऐतिहासिक, धार्मिक और प्राकृतिक स्थलो के अतिरिक्त आधुनिक काल मे वर्धा नगर ने, महात्मा गाधीजी के निवास के कारण देशव्यापी महत्त्व प्राप्त कर लिया है। हमारे प्रदेश के प्रसिद्ध दानी और नेता स्वर्गीय श्री जमनालाल जी वजाज ने सावरमती आश्रम के समान आश्रम स्थापित करने के उद्देश्य से महात्माजी से प्रार्थना की कि वे वर्धा को अपना केन्द्र बनावे। पहले-पहल उनके वहुत आग्रह करने पर वापू ने आचार्य विनोवा भावे को वर्धा भेजा और उन्होने यहा पर सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। इसके वाद वापू जी भी वीच-वीच मे आकर यहा रहने लगे। वजाज जी ने ग्रामोद्योग संघ के लिये अपना वगीचा प्रदान किया और यहां मगनभाई गांधी की स्मृति मे मगन वाड़ी की स्थापना हुई। इसी स्थान पर सन् १९३५ मे मगन सग्रहालय के विशाल भवन का निर्माण किया गया जहां कि समस्त देश के विभिन्न प्रातो से ग्रामोद्योग की वस्तुओं का अपूर्व संग्रह एकत्रित किया गया। इनमें सबसे प्रधान वस्त्र-व्यवसाय है जिसे पुनरुज्जीवित करने के लिये महात्मा जी ने चरखे को ग्रामोद्योग रूपी सौर मंडल का सूर्य वनाया था। इस कारण वस्त्र-व्यवसाय से सवंधित सामग्री उसकी प्रारंभ से अत तक समस्त प्रक्रियाओ तथा उसके ऐतिहासिक भौगोलिक तथा आर्थिक महत्त्व को सिद्ध करने वाले तथ्य और अंक सग्रहीत किये गये है।

सन् १९३० में जव महात्मा जी यह प्रण करके सावरमती आश्रम से निकल पड़े कि वे स्वराज्य प्राप्ति के पहले नही लौटेंगे तव श्री वजाज जी की प्रार्थना को उन्होने स्वीकार किया कि वे वर्धा ही को अपना केन्द्र बनाये। उनके स्थायी रूप से रहने के कारण विधायक सस्थाओ की उन्नति होने लगी और महिलाश्रम, हिन्दुस्थानी प्रचार सभा, गो-सेवक चर्मालय आदि की स्थापना हुई। पहले महात्मा जी ने सत्याग्रह आश्रम (जहा आज महिलाश्रम स्थापित है) और फिर मगनवाडी को अपना निवास वनाया। जव उन्होंने सन् १९३६ में नगर को छोडकर ग्राम निवास कर ग्राम सेवा करने का निश्चय किया तव सेवाग्राम का उदय हुआ। उसके साथ सेवाग्राम का निर्माण होते ही अखिल भारतीय चरखा संघ, तालीमी संघ, कस्तूरवा स्मारक औषधालय का निर्माण हुआ।

महात्मा जी के प्रभाव से वर्धा में अन्य सस्थाओं की भी स्थापना होने लगी। हिन्दुस्थानी तालीमी संघ की नीति से मतभेद होने के कारण हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अन्तर्गत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा की स्थापना हुई और विस्तृत हिन्दी नगर वस गया। विनोवा जी की प्रेरणा से दत्त ग्राम मे महारोगी सेवा मडल के अन्तर्गत कुष्ट आश्रम की स्थापना हुई। श्री वजाज जी ने अपना अतिम समय गो-सेवा मे लगाने का निश्चय कर गो पुरी का निर्माण किया और वही रहने भी लगे। सन् १९४४ में कस्तूरवा राष्ट्रीय निधि की स्थापना वजाजवाडी मे की गई। महात्मा जी के निधन के वाद उनके सिद्धातो का अध्ययन करने के लिये गांधी ज्ञान मंदिर की स्थापना हुई तथा विधायक कार्यो की संस्थाएं सम्मिलित होकर सर्व सेवा संघ की स्थापना हुई।

श्री विनोवा जी ने ग्राम स्वावलम्वन और समग्र ग्राम सेवा की दृष्टि से पवनार आश्रम की स्थापना की जो कि वर्धा के समीप पौनार नदी के किनारे स्थित है। इस स्थान पर कुछ प्राचीन मूर्तियां निकली जिनमे से विष्णु भगवान् की सुन्दर मूर्ति मगन सग्रहालय मे स्थापित है। भरत और राम की भेट की दूसरी सुन्दर मूर्ति तथा हनुमानजी की मूर्ति पौनार ही मे स्थापित हैं। भरत-राम भेंट की मूर्ति वहुत ही भावपूर्ण है। इस प्रकार वर्धा नगर और उसके आसपास जन संस्थाओं के रूप मे वापू की पावन स्मृति और उनके प्रवर्तित आदोलनों का इतिहास विधायक संस्थाओ के रूप में सुरक्षित है जो कि राष्ट्रीय दृष्टि से मध्यप्रदेश के लिये सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इन सव ऐतिहासिक, धार्मिक, प्राकृतिक और राष्ट्रीय स्थलो के कारण मध्यप्रदेश का सिर गौरव से उन्नत है।

भारतीय संस्कृति मे मध्यप्रदेश का स्थान

श्री शिवदत्त ज्ञानी

भारतीय संस्कृति अपने मौलिक रूप में देशकाल से अप्रभावित है और उसका विकास विश्व-जनीन सनातन सिद्धांतो पर हुआ है। इसके विकसित रूप में इसे भारतीय संस्कृति न कहते हुये मानव संस्कृति कहना अधिक उपयुक्त व युक्तिसगत होगा। फिर भी मानव जीवन के विकास में भौगोलिक परिस्थितियो का अमिट सम्बन्ध रहा है। इसी तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राकृतिक व भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष सांस्कृतिक विकास के उपयुक्त ही देश है। अत्यत प्राचीनकाल से ही इस देश के सुसभ्य व सुसस्कृत निवासियो ने एक अद्वितीय देश-काल से अपरिबाधित सस्कृति का विकास किया। यहा हमें इतिहास विशारदो के विभिन्न विवादो में नही पडना है जिनके अनुसार भारत में सस्कृति के आदि-प्रणेता आर्य, सुमेर निवासी या द्रविड थे। यहा केवल इतना ही अभीष्ट है कि प्रकृति देवी की लाडली भारतभूमि अत्यत प्राचीनकाल मे ही सास्कृतिक विकास की क्रीडा-स्थली रही है।

भौगोलिक परिस्थिति के कारण ही, भारतभूमि सस्य श्यामला रहती है। यहा रोटी का सवाल बिल्कुल जटिल नही हो सकता, यदि कोई बाहरी शक्ति यहा न रहे। प्राचीनकाल में यही हाल था, अन्न, वस्त्र बहुत ही सरलता से मिलते थे। इसीलिये यहा के निवासी जीवन के अन्य पहलुओ पर भी अच्छी तरह से विचार कर सके। जीवन, मरण, जीव, ब्रह्म, जगत् आदि सम्बन्धी प्रश्न उन्हें क्षुब्ध करने लगे। परिणामत इस दिशा में अथक प्रयत्न किये गये, जिनको हम उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रथो में देख सकते है। इन्ही प्रयत्नो के परिणामस्वरूप पुनर्जन्म, ब्रह्म, जीव, योग आदि पारलौकिक तत्वो व सिद्धातो को समझा गया। भारतीय सस्कृति में जो पारलौकिक जीवन को महत्त्व दिया गया है, उसका यही कारण है। इस प्रकार भारतीय सस्कृति दार्शनिक भूमि पर स्थित है। यहा के निवासियो ने जीवन के हरेक अग का विकसित किया। अन्न, वस्त्रादि के सरलता से मिलने पर, वे आलसी व निकम्मे नही बने, किंतु उन्होने अपने आर्थिक, सामाजिक आदि जीवन को अधिक सुदर, व्यवस्थित व सुसगठित बनाया। इस प्रकार मानव हित को सामने रखकर एक सुदर सर्वांगीण सस्कृति का विकास हुआ जिसका प्रचार विदेशो में भी किया गया।

भारत की भौगोलिक परिस्थिति ने उसके सास्कृतिक विकास में पूरी सहायता दी है। प्राकृतिक दृष्टि से भारत के तीन विभाग किये जा सकते है, जैसे—उत्तरीय मैदान, दक्षिण की उच्चसमभूमि व दक्षिण भारत। प्राचीन काल से ही उत्तरीय मैदान सास्कृतिक विकास व राजनैतिक परिवर्तनो का केंद्र रहा है। आर्यो ने इसी में अपनी सस्कृति को विकसित किया, बडे बडे साम्राज्य स्थापित किये व यही से दक्षिण पर साम्राज्य जमाया। दक्षिण की उच्चसमभूमि के दोनो सिरो पर पूर्वी व पश्चिमी घाट पहाड है व विध्याचल से तुगभद्रा तक इसका विस्तार है। यह भाग उत्तरीय मैदान के समान उपजाऊ नही है। इसके मध्यभाग में घना जगल है जो कि आजकल मध्यप्रदेश के बैतूल, भण्डारा, बालाघाट, मण्डला आदि जिलो में स्थित है। प्राचीनकाल में यह "महा-कान्तार" कहलाता था जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त के स्तभ लेख में किया गया है। इस भाग ने भी प्राचीन भारत के राजनैतिक व सास्कृतिक विकास में अपना हाथ बटाया था। चद्रवशी ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु ने यही पर राज्य स्थापित कर अपना वश चलाया था। राष्ट्रिक, आध्र, वाकाटक, चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजवशो ने यहा राज्य किया व भारतीय सस्कृति के विकास में अपना हाथ बटाया। दक्षिण भारत में प्राचीनकाल मे ही पाड्य, चोल, केरल आदि राज्य स्थापित हुये थे। सास्कृतिक दृष्टि से तो यह भाग भी अत्यत ही प्राचीनकाल से भारत का एक अविकल अग बन गया था।

भारतीय सस्कृति पर भौगोलिक व आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि उसका विकास समूचे भारत से सम्बधित है। फिर भी भारतीय सस्कृति के विकास में मध्यप्रदेश का क्या स्थान रहा है यह भी विचारणीय हो जाता है। विध्याचल के दक्षिण में भारतीय सस्कृति के दक्षिण में भारतीय सस्कृति के विकास का इतिहास एक पहेली रूप है। फिर भी वैदिक व पौराणिक साहित्य की सहायता से इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है। ययाति के वशज व भृगु के वशजो ने पश्चिम भारत में सास्कृतिक विकास किया। विध्याचल

के दक्षिणवर्ती प्रदेश में जहां की विश्वामित्र के शाप से उनके ५० पुत्र आंध्र, पुलिन्द, मुतिव आदि के रूप में जंगली वन गये थे; कदाचित् सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि ने प्रवेशकर ऋपियो के आश्रम के रूप मे स्थान स्थान पर भारतीय संस्कृति के केद्र स्थापित किये थे जिसका सुदर चित्रण वाल्मीकि रामायण मे किया गया है। कदाचित् इसी समय हमारे मध्यप्रदेश ने सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति के दर्शन किये हो। इसके पश्चात् भी इस भू-भाग मे भारतीय संस्कृति का विकास उत्तरोत्तर होता ही रहा। इस विकास के परिणामस्वरूप मध्यप्रदेश ने भी भारतीय संस्कृति के विकास में अपना पूरा हाथ बटाया है।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास मे मध्यप्रदेश का अपना स्थान है। उत्तर भारत व दक्षिण भारत के मध्य मे स्थित होने से यहा पर विभिन्न सांस्कृतिक स्रोतों के सम्मिलन से भारतीय संस्कृति ने अपने परिपक्व व पूर्ण विकसित रूप को प्राप्त किया। यद्यपि वैदिक साहित्य मे इस भू-भाग का कोई उल्लेख नही आता फिर भी वैदिक साहित्य व उसके अगों व उपांगो के विकास मे इस भू-भाग मे वसनेवाले विद्वान् ऋपियो का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा हे। यजुर्वेद व उसकी आपस्तंवादि विभिन्न शाखाओ के अध्ययन, अध्यापन के केद्रो को सचालित करनेवाले ऋपि व मुनि यहां के वनों मे अपने अपने आश्रम बनाकर रहते थे। दक्षिण भारत में वैदिक साहित्य व संस्कृति का विकास यही से हुआ था। वैदिक काल के पश्चात् भी इस भू-भाग ने भारत के सास्कृतिक विकास मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित रखा था। उत्तरोत्तर सास्कृतिक विकास के परिणामस्वरूप उत्तर व मध्य भारत में विभिन्न सास्कृतिक केद्र विकसित हुये थे यथा---कुरु-पाचाल, कोशल, गौड, अवन्ती, लाट, विदर्भ, महाराष्ट्र आदि। इन केद्रो का विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन रहता था। इनका साहित्य, इनकी शैली, इनकी काव्यकलादि विशेपताओ से परिपूर्ण थी। हमारे मध्यप्रदेश की स्थिति ऐसी है कि यहा इन केद्रो मे से कितने ही केद्रों का मिलन होता है। उत्तर की ओर अवती, कोशल, पूर्व में कलिंग, पश्चिम की ओर लाट, महाराष्ट्र व दक्षिण पश्चिम की ओर विदर्भादि सांस्कृतिक केद्र स्थित थे। वाकाटको व गुप्तो द्वारा राजनैतिक एकता प्रदान किये जाने के पूर्व राजनैतिक दृष्टि से इस भू-भाग का कोई विशेष महत्त्व नही था। किंतु वैदिक काल के पश्चात् अपूर्व सांस्कृतिक विकास के युग में विभिन्न सास्कृतिक क्षत्रो के केद्र वनने का सौभाग्य इसे अवश्य प्राप्त हुआ। कलिंग व कोशल के गुरुत्व व गाभीर्य, अवती के सौष्ठव, लाट के माधुय, महाराष्ट्र के ओज व विदर्भ के प्रसाद आदि सास्कृतिक व साहित्यिक गुणो को प्राप्त करने का सौभाग्य इसे प्राप्त हुआ था। इस प्रकार विभिन्न सास्कृतिक केद्रो का यहा सम्मिलन होने से हमे इस भू-प्रदेश मे इस सम्मिलन के परिणामस्वरूप एक नये जीवन के दर्शन होते हैं। साहित्य, कला, धर्म, दर्शनादि की दृष्टि से भी हमे वैविध्य व वैचित्र्य के दर्शन होते है। इस वैविध्य व वैचित्र्य को हम कुछ अशो मे आज भी देख सकते हैं। मध्यप्रदेश के उत्तरीय भाग मे मालवा व उत्तरप्रदेश, पश्चिमी व दक्षिणी भाग मे महाराष्ट्र, व पूर्वीय भाग मे उड़ीसा के रहन-सहन, भापा, कला आदि का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। भिन्नत्व में अभिन्नत्व के दर्शन करना यह भारतीय सस्कृति की पूर्वार्जित परम्परा है। इसी परंपरा के अनुसार मध्यप्रदेश के भू-भाग ने, यद्यपि वह उस समय राजनैतिक एकता के सूत्र मे वधा नही था, विभिन्न सास्कृतिक केद्रो के सम्मिलन द्वारा सांस्कृतिक एकत्व के दर्शन किये और भारतीय संस्कृति के विकास मे अपना हाथ वटाया।

संस्कृत साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन से भारत के सांस्कृतिक इतिहास म मध्यप्रदेश के इस महत्त्वपूर्ण स्थान का स्पष्ट पता चलता है। वैदिक काल से ईसा की प्रथम शताब्दी तक भारतीय सस्कृति, धर्म, दर्शन, काव्य, कलादि के विकास के द्वारा अपनी परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। इसी परिपक्व अवस्था के समय मध्यप्रदेश को भी भारतीय सस्कृति मे अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उत्तर भारत व दक्षिण भारत का सास्कृतिक मिलन तथा भारतीय संस्कृति के विभिन्न विकास केद्रो का सम्मिलन यही पर संभव था। यही कारण है कि इस भू-भाग ने व इसके प्राकृतिक सौन्दर्य ने अच्छे-अच्छे कवि-हृदयो को प्रेरणा प्रदान की। कविकुलगुरु कालिदास ने जो कि सभवतः ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी मे हुये, इसी भू-भाग से अपने उत्कृष्ट काव्य "मेघदूत" के लिये प्रेरणा प्राप्त की। हिमालयवर्ती अलकापुरी से निष्कासित यक्ष ने प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण रामगिरी आश्रम (नागपुर के पास रामटेक) मे शरण ली। उसने वहा से मेघ के द्वारा अपनी पत्नी के लिये सदेश भेजा। मेघ को अलकापुरी का मार्ग वताने के प्रसंग पर कविश्रेष्ठ ने रामगिरि आश्रम, मालक्षेत्र, आम्रकूट, रेवा आदि मध्यप्रदेश के विभिन्न स्थान, नदी, पर्वतों का वहुत ही सुदर चित्रण किया है। कवि के मध्यप्रदेश सम्वन्धी भौगोलिक ज्ञान से पता चलता है कि उसने इस प्रदेश में भी अपने जीवन का कितना ही समय व्यतीत किया होगा। यदि इस मन्तव्य को मान लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति, काव्य व कला के महान् पुरस्कर्त्ता व प्रतिनिधिस्वरूप कविश्रेष्ठ कालिदास को मध्यप्रदेश ने अमूल्य प्रेरणा प्रदान की हैं।

ईसा की चतुर्थ शताब्दी में भारत में गुप्त साम्राज्य का सूत्रपात हुआ, जो कि भारत के सांस्कृतिक इतिहास में सुवर्ण युग माना जाता है। इसी समय मध्यप्रदेश व उसके निकटवर्ती भू-भागो में वाकाटको की सत्ता स्थापित थी। इतिहासकारो ने गुप्तो व वाकाटको के परस्पर सम्बन्ध पर अभी पर्याप्त प्रकाश नही डाला है किंतु शिला, ताम्रादि लेखो तथा तत्कालीन मुद्राओ के द्वारा उस सम्बन्ध को अच्छी तरह समझा जा सकता है। इन दोनो साम्राज्यो में वैवाहिक सम्बन्ध था व दोनो ही सांस्कृतिक विकास के मार्ग में अग्रसर हुये थे। जहा तक मध्यप्रदेश का सम्बन्ध है, हम यह कह सकते है कि वाकाटक युग सांस्कृतिक विकास का सुवर्ण युग था। इसी युग में धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान आदि की उन्नति अपनी चरम सीमा को पहुच चुकी थी। इस युग में पौराणिक धर्म का विस्तार व प्रचार हुआ था। पौराणिक देवताओ के उपलक्ष में विभिन्न स्थानो में सुदर-सुदर मंदिर बनाये गये थे। उनमें से कुछ आज भी विद्यमान है और मध्यप्रदेश की वास्तुनिर्माण कला का परिचय देते है। ६ ठी शताब्दी पश्चात् के उत्तर भारत के मंदिरों के जो दो विभाग किये जाते है, उसमें से उत्तर-पूर्व विभाग से सम्बन्धित मंदिर मध्यप्रदेश के सोहागपुर, अमरकटक व छत्तीसगढ आदि स्थानो में है। इसी प्रकार के मंदिर जगन्नाथपुरी, भुवनेश्वरादि में भी है। इनकी विशेषता यह है कि इनके शिखरो का आधार चतुर्भुज आकार का होता है। किंतु कोण अदर की ओर कमान बनाते हुये ऊपर जाकर गोलाकार बनाते है। ये मंदिर तत्कालीन धार्मिक व सांस्कृतिक विकास का स्पष्ट परिचय देते है। ये विद्या के केंद्र रहते थे जहा वेदपाठी ब्राह्मण वेदाध्ययन, यज्ञादि धार्मिक कृत्य किया करते थे। इस कार्य में राज्य की ओर से भूमि का दान देकर पर्याप्त आर्थिक सहायता भी दी जाती थी। वाकाटको व गुप्तो के प्राचीन लेखो से यह बात प्रामाणित हो जाती है। साहित्य के क्षेत्र में इसी युग के विकास के परिणामस्वरूप मध्यप्रदेश ने संस्कृत साहित्य को भवभूति व भारवी जैसे उत्कृष्ट कवि प्रदान किये। भवभूति के "मालतीमाधव" व "उत्तररामचरित" में व भारवी के "किरातार्जुनीय" में जिस काव्य-कला के दर्शन होते है उसके द्वारा हम इन कवियो के हृदय व मानस को निर्माण करने का श्रेय मध्यप्रदेश को ही दे सकते है।

ईसा की ५ वी शताब्दी के उत्तरार्ध व ६ ठी के पूर्वार्ध में हूणो के जो आक्रमण हुये और जिन्होने गुप्त साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया उनका प्रभाव मध्यप्रदेश पर भी पडे बिना नही रहा। तोरमाण व मिहिरकुल इन दो बडे नेताओ ने भारत के बहुत बडे भू-भाग पर अपना आधिपत्य जमा लिया और अपने आतक से जनता को भयभीत कर सांस्कृतिक जीवन को भय में डाल दिया। इन्ही के दूसरे भाइयो ने इतना आतक जमाया कि "हूण" नाम दुष्ट, निर्दय व राक्षस का पर्यायवाची बन गया। ये ही दुष्ट, निर्दय व राक्षसी हूण तोरमाण व मिहिरकुल के नेतृत्व में मध्यप्रदेश के सागर जिले में पहुचे तब मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक प्रेरणा से प्रभावित होकर भारतीय संस्कृति की शरण ली व उन्होने शैवमत स्वीकार किया। सागर जिले के "एरण" गाव में तोरमाण व मिहिरकुल के स्तभ-लेखो से इस मतव्य के लिये स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इस धर्म-परिवर्तन के पश्चात हूणो ने धीरे-धीरे शातिपूर्ण नागरिको के रूप में जीवन व्यतीत करना सीख लिया। इन में से कुछ हूण रघुवशी क्षत्रिय के रूप में आज भी इलाहाबाद जिले में पाये जाते है और बिस्नोई आदि के रूप में मध्यप्रदेश के होशगाबाद जिले में पाये जाते है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस कार्य को योरोप की संस्कृति नही कर सकी उसी को सांस्कृतिक विकास के केंद्र मध्यप्रदेश ने किया।

जब उत्तर भारत में हर्ष साम्राज्य विकसित हो रहा था उस समय नर्मदा के दक्षिणवर्ती प्रदेश में चालुक्य सत्ता का विकास हुआ था। हर्ष को पुलिकेशिन द्वितीय से हार मान कर नर्मदा नदी को अपने साम्राज्य की दक्षिण सीमा मानना पडा था। इस प्रकार ईसा की ७ वी शताब्दी में मध्यप्रदेश चालुक्य राज्य का अविकल अंग बन गया। इसके परिणामस्वरूप चालुक्य राज्य के सांस्कृतिक विकास का लाभ इसे भी हुआ। सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से इस समय बहुत से परिवर्तन हुये। बौद्ध मत की अवनति प्रारंभ हो गई थी। हिंदू व जैन धर्म उत्कर्ष की ओर थे। यज्ञादि से सम्बन्धित कर्मकाड का अच्छा विकास होने लगा। इस सम्बन्धी ग्रथ भी लिखे जाने लगे। पुराणों में वर्णित हिंदू धर्म का स्वरूप अधिक लोकप्रिय होने लगा व विष्णु, शिवादि पौराणिक देवताओ के कितने ही भव्य मंदिर बनाये गये। इस प्रकार चालुक्य युग में भी मध्यप्रदेश का सांस्कृतिक विकास उत्तरोत्तर वृद्धि को ही प्राप्त होता गया।

चालुक्य युग के पश्चात् ८ वी शताब्दी में मध्य व उत्तर भारत में एक प्रकार की राजनैतिक अराजकता छा गई थी। इसके कारण सांस्कृतिक विकास की गति कुछ अवरुद्ध हो गई। इस युग में मध्यप्रदेश का भू भाग विभिन्न राज्यो में बट गया था। इस राजनैतिक उथल-पुथल के कारण मध्यप्रदेश के सांस्कृतिक विकास का स्पष्ट पता नही चलता। किंतु इस युग के भग्नावशेषो के आलोचनात्मक अध्ययन से तत्कालीन धार्मिक व सांस्कृतिक विकास का कुछ ज्ञान अवश्य होता है। मध्यप्रदेश के जबलपुर, छत्तीसगढादि विभागो में इस युग का परिचय देनेवाले कितने ही

भग्नावशेष है, जहां के टूटे-फूटे मंदिरों में से कितनी ही प्राचीन मूर्तियां प्राप्त हुई ह। उनके आलोचनात्मक अध्ययन से तत्कालीन वास्तुनिर्माणकला व मूर्तिकला के विकास का पता चलता है। इसके पश्चात् जब भारत में मुस्लिम आक्रमणों का आरंभ हुआ और मुस्लिम सत्ता धीरे धीरे पैर जमाने लगी उस समय मध्यप्रदेश भी उसके प्रभाव से बच नही सका। मध्यप्रदेश के पश्चिमी व दक्षिणीय भाग पर १४ वी व १५ वी शताब्दी में फारुखी वंश का राज्य स्थापित हुआ जिसका केंद्र स्थान बुरहानपुर था। उस समय मध्यप्रदेश का यह प्राचीन नगर विश्व-विख्यात था। यहां के व्यापार व व्यवसाय ने अन्तराष्ट्रीय रूप धारण किया था। कितने ही विदेशियो ने इसे अपना केंद्र बनाया था। हिंदू-मुस्लिम संघर्ष व संसर्ग के परिणामस्वरूप इस नगर ने सामन्जस्यपूर्ण एक सुंदर सर्वग्राही संस्कृति को जन्म दिया। यहां की सुप्रसिद्ध जामा मस्जिद मे आज भी अरबी लेख के नीचे सस्कृत लेख वर्तमान है जिसमे ज्योतिष-शास्त्र व धार्मिक मन्तव्यों के अनुसार मस्जिद के निर्माणादि का वर्णन है। इसी स्वास्थ्यप्रद वातावरण में अकबर के सेनापति व परम मित्र अब्दुल रहीम खानखाना ने अपने जीवन का कितना ही समय बिताकर भारतीय संस्कृति व संस्कृत साहित्य की सेवा की। इस साहित्य निर्माता पर भारतीय सस्कृति की कितनी गहरी छाप पडी थी, यह तो रहीम के काव्य का कोई भी विद्यार्थी जान सकता है।

सारांश मे यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के विकास में मध्यप्रदेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति के विकास के विभिन्न युगों के दर्शन इस प्रदेश ने किये व उनसे प्राप्त सांस्कृतिक प्रेरणा को आत्मसात किया। ओंकार, मान्धाता, मालखेड, कौण्डिन्यपुर, रामटेक, तेवर (त्रिपुरी) आदि यदि आज भग्नप्राय अवस्था मे छोटे-छोटे ग्रामों के रूप में है फिर भी वे उस गौरवान्वित अतीत की स्मृति दिलाते है, जब मध्यप्रदेश ने सांस्कृतिक प्रेरणा प्राप्त कर विभिन्न सास्कृतिक केंद्रों का अपने में एकीकरण किया।

संस्कृत साहित्य में मध्यप्रदेश के कतिपय पक्षी

श्री करुणाशंकर दवे

हमारे प्रान्त पर प्रकृति की विशेष कृपा है। अन्य नैसर्गिक धन के साथ वनस्पति तथा वन से सम्बन्धित पशु-पक्षी रूपी सम्पत्ति भी हमको पर्याप्त मात्रा में मिली है। भारत के सारे पक्षी ८६ वर्गो में विभाजित किये गये है। इनमें से ६० से अधिक वर्गों के अन्तर्भूत ४०० से अधिक जाति-उपजाति के पक्षी मध्यप्रदेश में पाये जाते हैं जो हमारे वन, नदी, तालाब, उपवन और नगरों को सुशोभित करते है। हमारी प्राचीन सभ्यता में पक्षियों को काफी ऊँचा स्थान प्राप्त था। ऋषि अभिमन्यु के आश्रम पर पहुँचने पर स्वयं श्रीकृष्ण उनसे पूछते है कि आश्रम के पशु-पक्षी कुशल तो है। * पक्षी-प्रेम का अनुभव हमें अपने साहित्य में पद-पद पर होता है। इसका एक उत्तम और अत्यन्त प्राचीन उदाहरण हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है। कपिंजल (गोरा तीतर) हमारे प्रान्त में बहुधा खेतो के आसपास तथा छोटे घास के जंगलों में रहता है। अतएव, कृषि से इसका सम्बन्ध अतिशुभ माना गया है। नीचे दिये गये सूक्तांश में सहृदय ऋषि अपने आश्रम के निकट इसकी हर्षध्वनि सुनकर इसको सप्रेम आशीर्वाद देते है —

मात्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मात्वा विदद् इषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमंगलो भद्रवादी वदेह ।।

२-४२-२ ।।

"हे मंगल सूचक (पक्षी), तुझको न तो श्येन वा सुपर्ण मारे और न कोई धनुर्धारी। यहां दक्षिण दिशा में उच्च स्वर में हमारे भावी कल्याण की बात कह"।

वृक्षों और पक्षियों के नित्य सम्बन्ध को सूचित करते हुए नारद जी एक महान् शाल्मलि (सेमर) वृक्ष का अभिनन्दन करते है —

इदं च रमणीयं ते प्रतिभाति वनस्पते
यदिमे विहगास्तात रमन्ते मुदितास्त्वयि ।।
एषां पृथक् समस्तानां श्रूयते मधुरस्वरः
पुष्पसमोदकाले वाशतां सुमनोहरम् ।।

म. भा. १२-१५८-१७, १८ ।।

"हे वनपति, तेरी यह बात हमको बडी भली लगती है जो ये प्रमुदित पक्षी तुझमें रमण करते है। वसंत-ऋतु में जब तू फूलता है तब इन सब के मधुर स्वर अलग-अलग सुनाई पड़ते है"।

वसंत में सेमर का वृक्ष रक्तवर्ण मधुपूर्ण पुष्प-कटोरियों से भर जाता है और नाना प्रकार के मधुलोलुप पक्षी—शक्करखोरे, सारिकाएँ, भुजंग, भृंगराज इत्यादि गुंजायमान भौंरे तथा मधुमक्खियां इस पर इकट्ठा होते है और उन सब का कलरव अत्यंत मनोहर होता है। इसी दृश्य का उपरोक्त श्लोकों में वर्णन है।

हुद हुद नाम का एक सुन्दर चोटीदार पक्षी हमारे प्रान्त में होता है जो बहुधा गीली हरित भूमि पर अपने जोड़े के साथ चलता-फिरता देखने में आता है। इसको अपने डिंभ तथा नवजात शावकों से अत्यन्त प्रेम होता है। यहां तक कि यदि कोई इसकी मादा को घोंसले से निकालने का प्रयत्न करे तो उसके हाथ अक्सर उसकी पूंछ या दूसरे पर ही आते है क्योंकि मां घोंसले की पेंदी को अपने पंजो से जकड़ लेती है। यह बात प्राचीनों को भलीभांति मालूम थी और उन्होंने इसका नाम पुत्रप्रिया रख दिया। इसकी मधुर पुकार पु-पु-पु पु-पु-पु के अनुरूप होती है। नर्मदा के उत्तर तट पर शिव सम्प्रदाय का शुक्ल तीर्थ नाम का एक आश्रम था। उसके आस पास बोलनेवाले पुत्रप्रिय पक्षियों की शिवभक्तों से तुलना करते हुए कवि ने पक्षी के नाम तथा स्वर का सामंजस्य बड़ी सुन्दरता के साथ किया है —

पुत्र पुत्रेति वाशंते यत्र पुत्रप्रिया खगाः ।
यथा शिवप्रिया शैवा नित्यं शिव शिवेति च ।। स्क. पु. रे. खण्ड ।।

---

* महाभारत १३-१४-६७ ।।

मध्यप्रदेश मे अनेक प्रकार की बुलबुल होती हैं। इनमे से दो को कनेरा बुलबुल कहते हैं। दोनो देखने मे सुन्दर तथा बैठक मे रोबदार। एक के कान का भाग सफेद और तुर्रेदार चोटी सामने की ओर मुडी हुई, दूसरे की चोटी नोकदार खडी और कर्ण स्थान पर चोच के कोने से लगाकर फूल की पखुरियो के समान सफेद और लाल रंग के कुछ पर होते हैं, मानो उसने दुरगे पुष्प का कर्णाभरण पहिन रखा है। बृहत्संहिता मे इसको श्रीकर्ण और रामायण में पुष्पावतंसक कहा है। अशोकवाटिका के वर्णन में महाकवि वाल्मीकि ने इनको विशेष स्थान दिया है :—

निष्पत्र शाखां विहगै. क्रियमाणामिवासकृत् ।
विनिष्पतद्भिः शतशःचित्रैःपुष्पावतसकैः ।। ५-१५-७.

भावार्थ.—अशोक वाटिका मे सैकडो सुन्दर पुष्पावतंसक उडते फिरते थे और जिस शाखा पर जा बैठते उसे वह ऐसा ढंक देते कि मानो इसमे पत्ते हैं ही नही। यह दृश्य हनुमान जी ने कई वार (असकृत्) देखा।

जलाशयों से आहार प्राप्त करनेवाले पक्षियों मे से एक सफेद चील (शंख चिल्ल) भी है जो महाकोशल के तालावो पर मंडराती हुई अक्सर दिख जाती है। इसकी देह कुंकुम-वर्ण तथा सिर, गर्दन और छाती सफेद होती है। सस्कृत मे इसे क्षेमंकरी कहते है। एक बार शिव जी अपने आश्रम से हिमालय की सैर करने चल पडे। लौटने में विलम्ब होने से पार्वती जी के मन मे कुछ शका उत्पन्न हुई। उन्होने तुरन्त क्षेमंकरी का रूप धारण किया और आकाश मे चक्कर लगाकर उन्हे ढूढ़ निकाला, अप्सराओ को मार भगाया और शिव जी को घर ले आई। तव से क्षेमंकरी का दर्शन विघ्न का नाशक और शुभ का सूचक हो गया। कथा के अन्त मे इसके नमस्करण का मंत्र भी पद्मपुराण मे दिया है .—

कुकुमारक्त सर्वागि कुन्देन्दु धवलानने।
सर्व मगलदे देवि क्षेमकरि नमोस्तु ते ।। सृष्टि खण्ड अ. ५३

महाकवि भवभूति की जन्मभूमि विदर्भ में है। अपने नाटको मे जिन्होने जिन पक्षियो का उल्लेख किया है वे सव केवल एक चकोर को छोड़कर, मध्यप्रदेश मे मिलते हैं। उनमें वजुल और पूर्णिका दो ऐसे होते हैं जिनका पता टीका-कारो को अभीतक नही लगा। वजुल वह खदिर वर्ण छोटी-सी पनडुब्वी है जो तालावो मे रहती और किनारे पर उगनेवाले जल वेतस (व्रजुल), गोदला इत्यादि घने पौघो में अपना घोसला वनाती है। इसी कारण उसको वंजुल का नाम दिया गया है। उसका स्वर हल्का तथा मधुर होता है और अनेक पक्षी अक्सर एक साथ वोलते हैं। शबूक को दड देने के निमित्त जब रामचन्द्र जी फिर से जनस्थान गये तब उन्हे फिर से पहिले देखे हुए दृश्यो का पुन.स्मरण हुआ और गोदावरी के शात जल मे क्रीडा करते हुए वजुल पक्षियो तथा उनके निवासस्थान अर्थात् जलवेतस के घने समूहो को देखकर वे सहसा कह उठे—

आमन्जु वन्जुल रुतानि च तान्यमूनि।
नीरन्ध्र नीर निचुलानि सरित् तटानि ।। उत्तररामचरित, २-२३

"अहो! यह हैं वन्जुलो के मधुर स्वर और वही निविड निचुलादि पौधो से आवृत नदी तट"।

रामायण मे भी वंजुल पक्षी का निर्देश इसी जनस्थान के वर्णन मे मिलता है—सरितं वापि संप्राप्ता मीनवंजुल सेवितां (३-६१-१६) इसी काण्ड के ६९ वे सर्ग मे वजुल के वडे भाई वजुलक के प्रखर स्वर का वर्णन आता है। अनेक जलपक्षियो के साथ वंजुल फिर से वर्णित है (४-१३-८)। अतएव भवभूति ने भी राम को वंजुल का स्मरण कराया है, परन्तु पीछे के साहित्यिक वंजुल पक्षी को भूल गये और भ्रमवश कवि को मूल 'वजुल रुतानि' को 'वंजुल लतानि' मे वदल दिया जिससे वे वंजुल का अर्थ अशोक कर सके। परन्तु इस ओर ध्यान ही न दिया कि अशोक पच-वटी या जनस्थान के आसपास क्या, वहा से सैकडो मील के भीतर भी नही होता। भाग्यवश कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे शुद्धपाठ 'वजुल रुतानि' मिलता है जिसे सम्पादको ने पाद-टिप्पणी के रूप में रख दिया है।

हमारे प्रान्त मे नकटा नाम की एक वड़ी वदक होती है। सफेद सिर और गर्दन पर काले छीटे, नीली-काली पीठ और सीना सफेद होता है। इसे संस्कृत मे नासाच्छिन्नी (नकटी), पूर्णिका अथवा नन्दीमुखी कहते है। यह नाम वडे सार्थक है। मदकाल मे अर्थात् ग्रीष्म से वर्षा ऋतु के अन्त तक नर वदक की चोच पर एक जामुन के वरावर काली गठान सी उग आती है। तत्पश्चात् लोप हो जाती है। मद काल की अवस्था मे यह पूरी अथवा वडी

नाकवाली—पूर्णिका*, न दीमुखी† नामाच्छिनी कहलाती है। भवभूति ने ग्रीष्मऋतु के मध्याह्न-वर्णन में इसके आचरण की चर्चा की है —

तीराश्मन्तक शिम्बि चुम्बनमुखा धावन्त्यप पूर्णिका
—मालती माधव

"तट की निकटवर्ती भूमि में जो पूर्णिकाएँ अश्मन्तक की फलियो का आस्वादन कर रही थी वे अब (धूप से त्रस्त होकर) पानी में पैठ रही हैं।

हमारे तालाबो पर बनवा (मद्गु) नामका एक जलपक्षी होता है जो पानी के भीतर तेजी से तैर कर बरछी के समान अपनी पैनी चोच से मछलियो को भोकने में अत्यन्त निपुण है। शरीर की बनावट बहुत कुछ जल-कौए से मिलती है। परन्तु इसकी पीठ चितकबरी और गर्दन पतली तथा लम्बी होती है। जब पानी में तैरता है तब साप के समान उसकी केवल गर्दन ही नजर आती है। देखनेवाले को अक्सर साप का भ्रम होता है। हमारे प्राचीन ऋषि इससे भलीभाति परिचित थे। अश्वमेध में इसे मित्रदेव (सूर्य) का 'पशु' निर्वाचित किया है, क्योकि जब यह पेट भर मछली खा चुकता है तब किसी अधबूढे पेड की ठूठ पर धूप में अपने पख फैला कर बैठा रहता है। इसी दृश्य को कवि कुमारदास ने अपने जानकी हरण महाकाव्य में एक सुन्दर उत्प्रेक्षा के रूप में चित्रित किया है। सरोवर के मध्यस्थित वृक्ष के एक तरफ साफ पानी है जिसमे मद्गु शिकार करता है और दूसरी तरफ कमलवन है जिसमे एक हंस विहार कर रहा है। धूप में सुखाने के लिये मद्गु पख फैलाए ठूठ पर बैठा है। मानो वह हस को इशारे से कह रहा है—

"सरोवर का इतना भाग (हे, हस) तेरी कृपा से मेरे ही उपभोग के निमित्त अलग बचा रहे"—

इयत्प्रमाणोऽपि सर प्रदेश तव प्रसादेन ममास्तु भोग्य ।
इत्येष सदर्शयतीव मद्गु हसाय, शोषाय विसारितास ॥ ३-३०

रामायण में सीताजी ने राम की मयूर या हस से और रावण की मद्गु से तुलना कर के रावण को धिक्कारा है (३-४७-४७, ५६-२०)।

भृगराज हमारी सुपरिचित भुजगा (कोतसा, भृग) जाति के पक्षियो में सर्वश्रेष्ठ है। यह न केवल अन्य मधुर भाषी पक्षियो की सच्ची नकल करने में निपुण है वरन् इसके अपने स्वर भी जोरदार और अत्यन्त मधुर है। ऊँचे-नीचे स्वरो में सीटियो का ऐसा अद्भुत ताता बाध देता है कि सुननेवाला मुग्ध हो जाता है। अतएव कोई आश्चर्य की बात नही कि हमारे पूर्वजो ने सारी पक्षि-जाति में इसे सर्वोत्तम गायक माना है। अश्वमेध में पैगराज के नाम से इसे वाचस्पति का 'पशु' निर्दिष्ट किया है। यह हमारे प्रान्त के घने जगलो में रहता है। श्री मद्भागवत् के कवि ने इस की कमी प्रशसा की है, देखिए—

पारावतान्यभृत‡ सारस चक्रवाक दात्यूह|| हस शुक तित्तिरि बर्हिणा य §।
कोलाहलो विरमतेऽचिर मात्र मुच्चै भृगाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥ ३-१५-१८

प्रत्यक्ष में कवि कहता है कि जब भृगराज (भृगाधिप) हरिकीर्तन के समान गान आरम्भ करता है तब पारावतादि पक्षीगण शीघ्र ही चुप हो जाते है। परन्तु उसका अभिप्राय यह है कि भृगराज का गान हम इतने तन्मय होकर सुनते है कि दूसरे मधुरवाक् पक्षियो की ध्वनि हमारे कान पर कुछ भी असर नही करती।

कलविक—वालकण्ठ कलविक को हिन्दी में दहियर कहते है। भारत के गायक पक्षियो में इसका स्थान बहुत ऊचा है, विशेषकर बौद्ध साहित्य में जहा बुद्ध भगवान के मधुर भाषण की तुलना कलविक के ब्रह्म स्वरो से बार-बार की गयी है। यह गौरया से कुछ बडा होता है। सिर, पीठ और छाती काली, पूछ और पख काले और सफेद, पूछ सदा खडी और बैठक शानदार होती है। इस में रूप और गुण दोनो मौजूद है¶ मानो सोने में सुगध। बसन्त ऋतु में प्रतिदिन उष काल से ८ ९ बजे तक और सध्या समय ५ से ७ बजे तक किसी ऊचे वृक्ष की बाहरी टहनी पर बैठकर

---

* नामाच्छिनी तु पूर्णिका—कल्पद्रुकोश, त्रिकाण्डशेष।

† स्थूल कठोरा वक्ताच यस्याश्चञ्चू परिस्थिता।
गुटिका जम्बु मद्गी सेया नन्दी मुखीति सा ॥ भाव प्रकाश निघण्टु, मास वर्ग।

‡ अन्यभृत, कोयल, || दात्यूह, पपीहा, § बर्ही, मोर,

¶ 'कलविको यथा पक्षी दर्शनेन स्वरेनवा'—ललित विस्तर अध्याय १३

अपनी मधुर तान सुनाता है। यह हमारे वन, उपवन और नगरो मे भी रहता है। प्रभात वर्णन में महाकवि माघ ने कलविकों के प्रातः गान के सहयोग से दिशा-देवियो की गाती हुई पनिहारिन युवतियो से सुन्दर तुलना की है—

वितत पृथुवरत्रा तुल्य रूपैर्मयूखैः कलश इव महीयान् दिग्भिरा कृष्यमाणः।
कृत कल कलविंकालाप कोलाहलाभिः जलनिधि जल मध्याद् एष उत्तार्यतेऽर्कः॥

—सुभाषितावलि, २१८५

भावार्थ—दिशा देवियां कलविकों के मधुर सहगान के साथ, रज्जुवत् प्रसारित किरणों से कलश रूपी महान् सूर्यमण्डल को समुद्र की गहराई से ऊपर उठा रही है।

डूबते सूर्य के कषाय वर्ण प्रकाश को देखकर कवि अगले श्लोकार्द्ध मे कलविंक के समकालिक गान का स्मरण करता है—

मदकल कलविंकी काकुनान्दी करेभ्यः क्षितिरुह् शिखरेभ्यो भानुमान् उच्चिनोति॥

—अनर्घ राघव, २, ४, ५.

भावार्थ—अब सूर्य भगवान वृक्षो की चोटियों से, जिन पर बैठे गानमत्त कलविंक हर्षध्वनि कर रहे हैं, अपने कषाय वर्ण प्रकाश को समेट रहे हैं।

पण्डुक जाति के अनेक पक्षी हमारे प्रात मे होते हैं; उनमें राज पण्डुक (हारीत) सबसे सुन्दर होता है। पीठ और पंख हरे, सिर नीला-भूरा, गर्दन और छाती गहरी, ईंटिया लाल होती है। घने जंगल मे रहता है और कभी-कभी रास्ते में अपने जोड़े के साथ चुगता हुआ दिख जाता है। मत्स्य पुराण मे प्राचीन वाराणसी के एक बड़े उपवन का वर्णन है। उपवन के बीच में कमलो से सुशोभित एक सरोवर है जिसमे हंस क्रीडा कर रहे है। तटस्थित मार्ग के दोनों तरफ पुष्पित कदली वृक्षो की पंक्तियां खडी है। इस मार्ग में मयूर नृत्य कर रहा है और उसके गिराये हुए चन्द्रिका-युक्त पंखों से भूमि सुरंजित हो रही है। उपवन मे इधर उधर चलते-फिरते अनेक हारीत वृन्द भी उसकी शोभा को विशेष रूप से बढ़ा रहे है। देखिए, कितना सुन्दर वर्णन है—

हंसानां पक्षपात प्रचलित कमल स्वच्छ विस्तीर्ण तोयं
तोयानां तीरजात प्रविकच कदली वाट नृत्यम् मयूरम्।
मायूरैः पक्ष चन्द्रैः क्वचिदपि पतितैः रंजित क्ष्मा प्रदेशं
देशे देशे विकर्ण प्रमुदित विलसन् मत्त हारीत वृन्दम्॥

—अध्याय १८०.

क्या हमारे प्रान्त को भी कभी ऐसे ही एकाधिक महान वन-उपवन का सौभाग्य प्राप्त होगा जहां नाना प्रकार के पशु-पक्षी अभयदान की सुरक्षा में सुखपूर्वक रहते हुए हमारे आनन्द तथा ज्ञान की अभिवृद्धि मे सहायक हो सके ?

मध्यप्रदेश में शिक्षा तथा राज-भाषाओं की प्रगति

श्री रमाप्रसन्न नायक

किसी स्वतंत्र राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपने कर्तव्य और अधिकार भली भांति समझे। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह तभी किया जा सकता है जब कि प्रत्येक नागरिक सुशिक्षित हो। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व, यदि कहा जाए कि इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था, बल्कि उदासीनता ही बरती जाती थी तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। पिछले डेढ़ सौ वर्षों से हमारी अधिकांश शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से ही होती रही। राज-भाषा भी अंग्रेजी ही रही। फलस्वरूप हिन्दी और प्रांतीय भाषाएं पनपने नहीं पाईं। उनका उपयोग केवल ललित साहित्य के क्षेत्र में ही होता रहा। अंग्रेजी को राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण वह दिन प्रति दिन फलती फूलती रही और दूसरी तरफ हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं से हमारा संबंध अलग सा होता गया। यह राष्ट्र के सम्मान के सर्वथा प्रतिकूल ही था। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सभी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। हमारे देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए, भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना बनाई। योजना के अन्तर्गत शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। शिक्षा की उन्नति पर ही देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक उन्नति निर्भर है। साथ ही इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को भी भुलाया नहीं जा सकता कि शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा अंग्रेजी न होकर हमारी भाषा ही होना चाहिए। अंग्रेजी भाषा जनता और शासन के बीच एक ऊंची दीवार बनकर खड़ी थी। भारत के संविधान निर्माताओं को इस बात का अनुभव हुआ कि इस दीवार को गिराकर राष्ट्र की भाषा के जरिए ही जनता और शासन के बीच निकट सम्पर्क स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। यदि राष्ट्र की चेतना को बलवान बनाना है तो जीवन के समस्त क्षेत्रों में उसको अपनी भाषा के जरिए सक्रिय भाग लेने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। अतएव सन् १९४९ में संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया गया और देश के राजकाज में हिन्दी को प्रचलित करने के लिए २६ जनवरी १९५० से १५ वर्ष की अवधि निश्चित की गई। संविधान में राज्यों को इस बात की भी सुविधा दी गई कि प्रादेशिक क्षेत्रों में वहां की भाषा भी राजभाषा बनाई जा सकती है।

इस प्रकार शिक्षा और भाषा के लिए विशिष्ट योजनाएं बनाई गईं। हमारे प्रान्त की पंचवर्षीय शिक्षा योजना १० करोड़ रु० की है। उद्देश्य यह रहा है कि इस दस करोड़ की राशि से शिक्षा की वर्तमान सुविधाओं में भरसक सुधार किया जाए और देश की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा की नई सुविधाएं दी जाएं। उदाहरण के लिए जिन शालाओं और महाविद्यालयों में स्थान की संकीर्णता थी, शिक्षकों की कमी थी और शिक्षण सामग्री अपर्याप्त थी उन्हें इस योजना से सहायता देकर अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया। जिन क्षेत्रों में शिक्षा की सुविधाएं या तो बिलकुल न थीं या इतनी कम थीं कि नहीं के बराबर, उनमें से अधिकांश में नई शालाएं खोली गईं, और उन क्षेत्रों में जहां कृषि, औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएं नितांत आवश्यक थीं उनमें यथासंभव ऐसी सुविधाएं भी दी गईं।

शिक्षा की व्यवस्था पांच श्रेणियों में बंटी रहती है—पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च। पांचवीं श्रेणी को औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा का नाम दिया जा सकता है। इस प्रान्त में पूर्व माध्यमिक शालाएं बहुत कम हैं। ४ से ६ वर्ष की अवस्था के बालक-बालिकाओं की प्रवृत्ति, प्रकृति और ज्ञानेंद्रियों का सर्वांगीण विकास मनोवैज्ञानिक आधार पर होना उनकी भावी शिक्षा की नींव माना गया है। इस प्रकार की विशिष्ट शिक्षा के लिए प्रशिक्षित शिक्षिकाओं की पूर्ति हेतु जबलपुर तथा नागपुर में दो पूर्व प्राथमिक माण्टेसरी प्रशिक्षण शालाएं योजना के अन्तर्गत खोली गईं। इनसे प्रतिवर्ष १२० प्रशिक्षित शिक्षिकाएं प्राप्त होंगी।

प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। अभी तक योजना के अन्तर्गत ३,२०० नई प्राथमिक शालाएं ऐसे स्थानों में खोली गई हैं जहां अभी तक कोई शाला न थी। इस वर्ष १,००० प्राथमिक शालाएं और खोली जा रही हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी १,००० नई प्राथमिक शालाएं प्रतिवर्ष खुलेंगी। प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों का वेतन जो पहले १२ से ३० रुपये मासिक तक रहा करता था अब कम से कम ३० रुपये कर दिया गया है। महंगाई

भत्ते की दर भी वढाई गई है। इसमे स्थानीय निकायों को जो आर्थिक हानि हुई उसे योजना की निधि में से पूरा किया जा रहा है। शालाओ की वढती संख्या के साथ प्रशिक्षित शिक्षको की कमी दूर करने के लिए इस योजना के अन्तर्गत ११ नई प्रशिक्षण शालाएं खोली गई। इस वर्ष प्रान्त के प्रत्येक जिले मे एक-एक प्रशिक्षण शाला खुल जाएगी। वर्तमान शालाओ को वुनियादी शाला मे परिवर्तित करने का सुव्यवस्थित कार्यक्रम वर्तमान योजनाके अन्तर्गत आरम्भ हो चुका है। अगली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ही यह प्रयत्न किया जा सकेगा कि ६ वर्ष से लेकर १० वर्ष तक की अवस्था के सव वालक-वालिकाओ को नि.शुल्क तथा अनिवार्य वुनियादी शिक्षा मिले।

माध्यमिक शालाओ का भार इस प्रान्त मे प्रधानतः गैर-सरकारी शालाएं वहन करती है। योजना द्वारा प्राप्त निधि से उनको परिरक्षण अनुदान, भवन अनुदान तथा सज्जा-सामग्री के लिए लगभग ४१ लाख रुपये दिए गए। पूर्व माध्यमिक शालाओ के शिक्षको के प्रशिक्षण के लिए अमरावती मे दो प्रशिक्षण विद्यालय खोले गए—एक पुरुषो के लिए, दूसरा महिलाओ के लिए। खण्डवा मे तीसरा प्रशिक्षण विद्यालय पुरुषो के लिए खोला गया। प्रातीय शिक्षण महाविद्यालय, जवलपुर मे मास्टर आफ एजूकेशन तथा एम. ए. (मनोविज्ञान) की कक्षाएं खोली गई ताकि शिक्षा की उच्चतर आवश्यकताओ के लिए योग्य व्यक्ति उपलब्ध हो सके। भारत सरकार द्वारा बैठाए गए माध्यमिक शिक्षा आयोग की मुख्य-मुख्य सिफारिशो को इस प्रान्त में कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आयोग की सवसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह है कि देश मे वहुमुखी माध्यमिक-शालाएं स्थापित की जाए। इन शालाओ की विशेषता यह रहेगी कि इनमे विविध पाठ्यक्रम होगे ताकि विद्यार्थी अपनी अभिरुचि, योग्यता तथा भावी उद्देश्य को ध्यान में रख कर उचित पाठ्यक्रम चुन ले। इस कार्य के लिए विद्यार्थी को मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन की वहुत आवश्यकता होती है। इसके लिए पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एक व्यावसायिक मार्गदर्शन केन्द्र (व्होकेशनल गाइडेन्स व्युरो) जवलपुर मे स्थापित किया गया है। इस वर्ष २२ वहु-मुखी माध्यमिक शालाए, प्रत्येक जिले में एक स्थापित हो रही है। १०—१५ वर्षो मे प्रान्त की सव माध्यमिक शालाओ को वहुमुखी बनाने की योजना है। इन शालाओ से उत्तीर्ण होकर विद्यार्थी तीन वर्षो मे ही विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त कर सकेगा।

प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा के लिए योजना के अन्तर्गत अभी ४ कृषि माध्यमिक शालाए खोली गई है तथा आगे और खोली जाएंगी। व्यावसायिक शिक्षा देने के लिए औद्योगिक शालाओ को व्यावसायिक माध्यमिक शालाओ मे परिवर्तित किया जा रहा है। इस वर्ष से सव औद्योगिक शालाएं व्यावसायिक शालाओ मे परिवर्तित हो जाएगी। इनसे उत्तीर्ण हुए विद्यार्थी शाला मे सीखे हुए व्यवसायो द्वारा अपनी जीविका चला सकेगे। योजना के अन्तर्गत दो प्रौद्योगिक माध्यमिक शालाए भी खुली है जिनमे एन्जीनियरिंग की प्रथम शिक्षा दी जाएगी।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे शासकीय महाविद्यालयों को भी नए भवन, सज्जा-सामग्री तथा अतिरिक्त शिक्षक दिए गए ताकि उनकी कार्यक्षमता वढ सके। प्रान्त के दोनों विश्वविद्यालयों को—नागपुर और सागर—लगभग ३७ लाख रुपयो का अनुदान दिया गया। गैरसरकारी महाविद्यालयो को १९ लाख रु. अनुदान दिया गया। जवलपुर में एक गृह विज्ञान महाविद्यालय खोला गया। द्वितीय योजना मे ८ नए महाविद्यालयो तथा छात्रावासों की स्थापना, दोनो विश्वविद्यालयो को उनके विकास के लिए अनुदान, ग्रामीण विश्वविद्यालयो की स्थापना, विविध शिल्प कला मंदिर (पोलीटेक्निक्स), तथा एन्जीनियरिंग महाविद्यालयों की स्थापना आदि कई ऐसी योजनाए है जिनसे उच्च शिक्षा की वर्तमान सुविधाओ मे वहुत सुधार हो जाएगा और प्रान्त तथा देश की आवश्यकतानुसार नई शैक्षणिक सुविधाएं भी प्राप्त हो सकेंगी।

भारत सरकार की विशेष सहायता से जवलपुर तथा अमरावती में उत्तर वुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किए गए है। पुस्तकालय स्थापित किए गए है, जनता के सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिए कम्युनिटी सेन्टर्स स्थापित किए गए है। जवलपुर मे प्रौढ शिक्षित ग्रामीणों को ग्रामोपयोगी उच्च शिक्षा देने के लिए जनता महाविद्यालय खोला गया है। भारत सरकार की वेकारी निवारण योजना के अन्तर्गत १,५८० नान-मैट्रिक और ५०० मैट्रिक शालाओं मे शिक्षक नियुक्त किए गए है। प्रत्येक जिले मे इस वर्ष से एक चलता-फिरता पुस्तकालय स्थापित किया गया है जिसके द्वारा ग्राम-ग्राम में शिक्षित जनता के ज्ञानवर्धन और मनोरंजन के लिए पुस्तकें पहुंचाई जाएगी। योजना काल में १०० रुपये मासिक से कम वेतन पानेवाले सरकारी तथा स्थानीय निकाय के कर्मचारियो के वालकों को शाला-शुल्क मे पूरी और १०० से २०० रुपये मासिक वेतन पाने वालों को आधी छूट दी गई है। भूमि-हीन श्रमिकों के तथा पिछडी हुई जातियो के वालको की नि.शुल्क शिक्षा का प्रवन्ध किया गया। गैर-सरकारी शालाओं के शिक्षको के वालकों को भी सरकारी कर्मचारियों के वालको के समान शाला-शुल्क मे पूरी या आधी छूट दी गई है। इन योजनाओ से इतनी वडी संख्या मे वालक-वालिकाएं शिक्षा प्राप्त करने लगेगे कि हमारे सविधान के अनुसार यथा-समय ६ से १४ वर्ष के वालक-वालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा आरभ करना कुछ सरल हो जाएगा।

जिस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे हमारे प्रान्त ने अभूतपूर्व उन्नति की है उसी प्रकार भाषा के क्षेत्र में भी वह अग्रणी है। शासन और जनता के बीच खडी भाषा-रूपी दीवार को तोडने के लिए ही मध्यप्रदेश शासन ने सन् १९५० में राजभाषा अधिनियम बनाया जिसके द्वारा शासन एक निश्चित तारीख से सारे सरकारी कार्यालयों में हिन्दी और मराठी भाषाओ में काम करने के आदेश दे सकता था। परंतु इस प्रकार का आदेश देने के पहले यह अत्यंत आवश्यक था कि वर्तमान परिस्थितियो का भली भाति अध्ययन कर लिया जाए तथा कर्मचारियो को पहले हिन्दी-मराठी भाषाए सिखाई जाए, हिन्दी-मराठी शीघ्रलेखक तथा मुद्रलेखक तैयार किए जाए तथा विभिन्न विभागो में प्रतिदिन काम में आने वाली नियमावलियो के हिन्दी मराठी अनुवाद तैयार किए जाए। इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए भाषा विभाग की स्थापना की गई जिसके जरिए इन बातो के क्रमश इन्तजाम की व्यवस्था की गई। कुछ नियमावलियो और आवश्यक शब्दावली तयार करने के बाद तारीख १ सितम्बर १९५३ से, कुछ अपवादो को छोडकर, सारे मध्यप्रदेश में सभी सरकारी कामो के लिए हिन्दी और मराठी भाषाओ का उपयोग करने के आदेश दिए गए।

पिछले पाच सालो में भाषा विभाग ने प्रशासन शब्दावलियो के चार पुष्प प्रकाशित किए जिनमें विभिन्न विभागो के लगभग १० हजार शब्दो, वाक्याशो और अभिव्यक्तियो के हिन्दी-मराठी पर्याय दिए गए है। एक प्रशासन शब्द कोष भी प्रकाशित किया गया। इस कोष का सशोधित और परिवर्धित सस्करण शीघ्र ही प्रकाशित किया जा रहा है। इसके अलावा भाषा विभाग ने प्रशासन शब्दकोष का हिन्दी-मराठी से अग्रेजी का सस्करण भी तैयार किया है ताकि कर्मचारीगण हिन्दी-मराठी शब्दो के अग्रेजी रूप सरलतापूर्वक समझ सके।

जिन कर्मचारियो की भाषा हिन्दी अथवा मराठी नही थी, उन्हे ये भाषाए सिखाने के लिए शासन ने पिछले पाच वर्षों में विभिन्न जिला केन्द्रो में हिन्दी-मराठी भाषा-कक्षाए खोली। इसी प्रकार अग्रेजी शीघ्रलेखको और मुद्रलेखको को हिन्दी-मराठी शीघ्रलेखन-मुद्रलेखन सिखाने के लिए, इन विषयो की कक्षाए खोली गई।

शब्दावली एव कोष कार्य के साथ ही साथ भाषा विभाग ने भिन्न-भिन्न विभागो की तेरह नियम-पुस्तकाओ का हिन्दी-मराठी में अनुवाद कर लिया है। नियम पुस्तिकाओं का अनुवाद करना अत्यत कठिन कार्य है। जिन भाषाओ में अभी तक विधि शिल्पिक तथा वैज्ञानिक शब्दावली न हो, जिनमें आजकल की कानूनी लेखनशैली का विकास न हुआ हो, उन भाषाओ में ऐसे साहित्य का तयार करना बडा ही कठिन होना है। पहले तो नई शैली तैयार करनी होती है जिससे जनता अपरिचित होती है और दूसरे, उसमें विशेषार्थी शब्दो का प्रयोग करना पडता है। इससे कठिनाई दुगुनी हो जाती है। परतु जो अनुवाद भाषा विभाग ने किए है, उनमें प्रचलित शब्दावली के साथ ही साथ नई तात्विक शब्दावली का उचित समन्वय कर एक नई कानूनी शैली का विकास करने का यत्न किया गया है और इस बात का ध्यान रखा गया है कि भविष्य में जब अग्रेजी पुस्तिकाए काम में नही लाई जाएगी तब ये अनुवाद प्रामाणिक सिद्ध हो।

भाषा विभाग द्वारा तैयार की गई मार्गदर्शिका नामक पुस्तिका से अब यह गलतफहमी दूर हो गई है कि हिन्दी या मराठी भाषाओ में अभी अग्रेजी का स्थान ग्रहण करने की क्षमता नहीं है। आज सचिवालय और राज्य के प्राय सभी कार्यालयो में बडी आसानी से हिन्दी और मराठी में काम किया जा रहा है।

परन्तु भाषा की समस्या केवल शासन के स्तर पर ही हल नही हो सकती। नई पीढी को तैयार करने तथा उस भाषा के साहित्य-निर्माताओ को प्रोत्साहित करने से इस सपूर्ण योजना को अपूर्व बल मिलता है। इसीलिए नागपुर विश्वविद्यालय को हिन्दी और मराठी माध्यम से इटरमीडिएट और बी एससी की शिक्षा देने तथा पाठ्य पुस्तक तयार करने के लिए राज्य शासन ने १९५१ से १९५४ तक ४,६१,६०० रुपये की सहायता दी।

साहित्यकारो को प्रोत्साहित करने के लिए तथा ललित साहित्य के सर्वांगीण विकास के साथ ही साथ शिल्पिक और वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण को प्रोत्साहन देने के लिए शासन ने मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद नाम की सस्था स्थापित की। शासन साहित्य परिषद् का जनता से पर्याप्त सपर्क है। इसने गत वर्ष ११ हिन्दी और ८ मराठी साहित्यकारो को १५,७५० रुपये के पुरस्कार प्रदान किए है। इसके साथ ही जनता के लाभ के लिए भाषण मालाए आयोजित की जाती है।

शासन ने साहित्यिक और प्रचार कार्य करनेवाली सस्थाओ को अनुदान भी दिया है। अभी तक मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन को १६,८९० रुपये, विदर्भ साहित्य सघ को २२,५०० रुपये तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को ८,००० रुपये की राशि सहायता के रूप में प्रदान की गई है।

हिन्दी की लिपि में सुधार की दृष्टि से मध्यप्रदेश शासन ने लखनऊ लिपि सुधार सम्मेलन के कुछ निर्णय स्वीकार किए हैं। सम्मेलन के शेष निर्णय इसलिए अस्वीकार कर दिए गए क्योकि उनको अपनाने से हमारी परम्परागत लिपि में विकृति उत्पन्न होने की आशंका थी।

उच्च न्यायालय, राजस्व मंडल, लेखा विभाग आदि कुछ ऐसे क्षेत्र है जहा अब भी अंग्रेजी मे कार्य हो रहा है। क्योकि इन क्षेत्रो की शब्दावलिया अभी तैयार नही हैं। शब्दावलिया तैयार हो जाने पर इन विभागो की पुस्तिकाओ का अनुवाद किया जा सकेगा। पारिभाषिक शब्दों को भली-भांति समझना सरल नही है। इस कठिनाई को ध्यान मे रखकर एक ऐसा कोष बनाने की योजना है जिसमे शब्दो के अर्थो के साथ साथ उनकी व्युत्पत्तियां और प्रयोगों आदि का भी विशेष उल्लेख हो। शब्दावली का ठीक ठीक उपयोग करना भी बडा महत्व रखता है। कहां किस शब्द की आवश्यकता है, कहा पर पारिभाषिक शब्द रखना चाहिए, कहा नही, कौन सा प्रयोग शुद्ध है, किन शब्दो के कितने अर्थ होते हैं और किन किन स्थानो पर उनका उपयोग होना चाहिए, इन सब बातो का विस्तारपूर्वक निर्देश करने के लिए 'भाषा प्रयोग' नामक एक पुस्तक तैयार करने की योजना है।

सामान्य विज्ञान मे जनता की रुचि उत्पन्न करने के लिए मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् के जरिए सामान्य विज्ञान संबंधी साहित्य को अनूदित और प्रकाशित करने का भी निश्चय किया गया है।

किसी राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने के लिए उसके सांस्कृतिक सन्मान की भावना को जागृत करना आवश्यक होता है। भाषा इस क्षेत्र मे अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अपनी भाषाओं को शासन के क्षेत्रों मे लाकर शासन और जनता के बीच निकट संपर्क स्थापित किया जा सकेगा। जनता कानून को अपनी ही भाषा के जरिए समझने मे समर्थ होगी। राष्ट्र के विद्यार्थी अपनी ही भाषा के जरिए वैज्ञानिक और शैल्पिक क्षेत्रो में शिक्षा सुलभता से प्राप्त कर सकेगे और साहित्यकार अधिक प्रेरणामय, अधिक उन्नतिशील साहित्य निर्माण करने में समर्थ होंगे; तभी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास होगा। हमारा प्रान्त इस ओर सतत जागरूक रह कर उन्नति के पथ पर आरूढ होता जा रहा है। "अपनी भाषा मे अपना कार्य" ही हमारा ध्येय है।

मध्यप्रदेश में स्थानिक स्वराज्य

डॉ महादेवप्रसाद शर्मा

मध्यप्रदेश में भी भारत के अन्य भागो की भांति ही स्थानिक स्वराज्य का आधुनिक इतिहास गत शताब्दि के उत्तरार्द्ध म आरम होता है। सन १८६१ ई में मध्यप्रान्त की पृथक प्रात के रूप म स्थापना हुई। सन् १८६३ में इसके चीफ कमिश्नर ने जिलाधीशो को आज्ञा दी कि जिन-जिन नगरो में चुगी लगाई जाती है उनमें म्युनिसिपेल्टिया स्थापित की जाय। इस प्रकार ९५ म्युनिसिपल्टिया की स्थापना हुई। अभी तक इन सस्थाओ के नियमन का कोई कानून न था, सब कुछ प्रातीय सरकार के आदेशानुसार ही हुआ था। परन्तु १८६४ में ११ बडे नगरो में जिनमें नागपुर भी सम्मिलित था, लखनऊ म्युनिसिपल एक्ट, १८६४ लागू किया गया। इसके उपरात मध्यप्रान्त की म्युनिसिपल्टिया समय-समय पर पजाब म्युनिसिपल एक्ट, १८६७ मध्यप्रात म्युनिसिपल एक्ट १८७३, और मध्यप्रान्त म्युनिसिपल एक्ट १८८९ के अनुसार विनियमित होती रही। १९१९ के सुधारो के बाद मध्यप्रान्त म्युनिसिपल एक्ट १९२२ बना जो बाद के अनेक सशोधनो और परिवर्तनो सहित आज भी मध्यप्रदेश की म्युनिसिपल्टियों का विनियमन करता है। बरार सन् १९०३ ई तक एक पृथक प्रान्त था। परन्तु उक्त वर्ष वह प्रशासन के विषय में मध्यप्रान्त से जोड दिया गया। १९२४ ई तक बरार का अपना अलग म्युनिसिपल कानून १८८६ का था। परन्तु इसके बाद मध्यप्रान्त म्युनिसिपल एक्ट १९२२ वहा भी लागू कर दिया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मध्यप्रात और बरार की पृथक पृथक सत्ता का अत करके इस राज्य को मध्यप्रदेश का नाम दिया गया।

यह तो हुई नगरो की स्थानिक स्वराज्य सस्थाओ के विकास की बात। ग्रामीण क्षेत्रो के लिये सन् १८६३ ई के एक सरकारी आदेश के अनुसार प्रत्येक जिले में एक स्थानिक समिति स्थापित की गयी, जिसके सदस्यो में कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर तथा सरकार द्वारा नाम-निर्देशित अन्य व्यक्ति होते थे। १८८३ ई के लोकल सेल्फ गवनमेण्ट एक्ट के अनुसार प्रत्येक जिले म एक डिस्ट्रिक्ट काउसिल और प्रत्येक तहसील में एक लोकल बोर्ड की स्थापना हुई जिनके कुछ सदस्य सरकार द्वारा नाम निर्देशित और कुछ निर्दिष्ट योग्यता रखनेवाले मत दाताओ द्वारा निर्वाचित होते थे। १९२० ई के लोकल सेल्फ गवनमेंट ऐक्ट द्वारा डिस्ट्रिक्ट काउसिलो और लोकल बोर्डों को कुछ अधिक लोकतन्त्रात्मक रूप दिया गया और उनकी शक्तियो म भी कुछ वृद्धि की गयी। १९२० ई में एक ग्रामपचायत कानून बना जिसके अनुसार थोडे से चुने हुये गावो म ग्राम पचायतो की स्थापना हुई।

इस प्रकार सन १९२०–२२ तक मध्यप्रदेश में स्थानिक सस्थाओ के सगठन का ढाचा तो तैयार हो गया और नगरो म नगरपालिकाए, जिलो में जिला काउन्सिल, तहसील मे लोकल बोर्ड और कुछ गावो में ग्राम पचायतो की स्थापना हो गयी। परतु ये सस्थाए न तो लोकतन्त्रात्मक थी, न सशक्त और न कार्यक्षम। उनके सदस्यो में कुछ सरकार द्वारा नाम-निर्देशित होते थे। निर्वाचित सदस्य भी सकुचित मताधिकारानुसार चुने जाने के कारण जनता के वास्तविक प्रतिनिधि न थे। स्थानिक सस्थाओ के सगठन के दोषयुक्त होने के कारण उनमें दलबदी का प्राधान्य था और कार्यक्षमता की न्यूनता। उनकी आय के साधन इतने कम थे कि वे सदा आर्थिक अभाव-ग्रस्त रहा करती थी। वास्तव में विदेशी सरकार को स्थानिक स्वराज्य सस्थाओ को सबल व सक्षम बनाने की कोई परवाह न थी। उसने तो उन्हे प्रजातन्त्र और स्वराज्य के विकास के प्रति उदासीनता के अभियोग से बचने के लिये स्थापित किया था।

देश के स्वतन्त्र होने पर जब देश के वास्तविक प्रतिनिधि सत्तारूढ हुये और उनके सामने सुदृढ लोकतन्त्र के निर्माण की समस्या आई तो उन्होने इस सम्बन्ध में स्थानिक स्वराज्य के महत्व को समझा। वास्तव में स्थानिक स्वराज्य राष्ट्रीय स्वराज्य की आधारशिला है। इसके द्वारा नागरिको का स्वशासन की कला में प्रशिक्षण होकर उनमें स्वावलम्बन और आत्मविश्वास की भावना विकसित होती है जिससे राष्ट्रीय स्वराज्य और लोकतन्त्र सुदृढ तथा परिपुष्ट बनते है। अतएव, स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त काग्रेस-मन्त्रिमण्डलो के पदारूढ होते ही समस्त देश में स्थानिक स्वराज्य सस्थाओं के सुधार और पुनर्निर्माण का कार्य वेग और उत्साह से प्रारभ हुआ। इस कार्य में मध्यप्रदेश ने कई बातो में समस्त देश में अग्रसर होने का परिचय दिया और उसके द्वारा किये गये परिवर्तनो का कई राज्यो में अनुसरण

हुआ जैसे स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों का जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन, नाम-निर्देशन का अन्त इत्यादि। ग्रामीण क्षेत्रो के लिये उसकी जनपद योजना ने समस्त देश का ध्यान आकर्षित किया और एक से अधिक राज्यों को विकेन्द्रीकरण की प्रेरणा दी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के वाद के थोडे से वर्षो मे स्थानिक स्वराज्य को समुन्नत, व्यापक और प्रगतिशील वनाने के लिये जो कार्य मध्यप्रदेश शासन ने किये है उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

प्रथम स्थान मे सभी स्थानीय संस्थाओ के वयस्क मताधिकारानुसार निर्वाचन की व्यवस्था की गयी जिससे कि उन्हे सच्चा लोकतत्रात्मक रूप प्राप्त हो और उनके सदस्य जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व कर सके। अव राज्य निवासी प्रत्येक स्त्री-पुरुष, यदि उसकी आयु २१ वर्ष से कम नही है, तो अपने क्षेत्र की स्थानिक संस्थाओ के निर्वाचन मे मतदान का अधिकारी है। नाम-निर्देशित सदस्यो की प्रणाली का अन्त कर दिया गया जिससे स्थानिक संस्थाओं के सभी सदस्य निर्वाचित होते हैं।

द्वितीय स्थान मे स्थानिक संस्थाओं को अधिक व्यापक वनाने और उन्हे जनता के अधिक निकट सम्पर्क मे लाने के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्र के स्थानिक स्वराज्य-संगठन मे आमल परिवर्तन कर दिया गया। जिले में एक जिला काउन्सिल के स्थान पर प्रत्येक तहसील मे एक-एक जनपद सभा स्थापित की गई। इस प्रकार स्थानिक सत्ता का भौगोलिक विकेन्द्रीकरण होकर वह जनता के अधिक सन्निकट आ गई। इतना ही नही, जनपद योजना मे प्रशासनिक कार्यो के भी विशाल विकेन्द्रीकरण की नीति निहित है। उसके अनुसार उपयुक्त समय पर पुलिस और न्याय-प्रवन्ध को छोड-कर, राज्य शासन के लगभग अन्य सभी विषय जनपद सभाओ को हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। ऐसा होने पर अनेक विषयों के प्रवन्ध मे, जो अभी दुहरी व्यवस्था दिखलाई देती है कि कुछ काम स्थानीय कर्मचारी करें और कुछ राज्य शासन के कर्मचारी, उसका अन्त होकर समस्त शासन एकतामय हो जायेगा। जनपद योजना की एक तृतीय क्रान्तिकारी विशेषता नगर और ग्रामीण क्षेत्रो की पृथकता का अन्त करना है। इसके अनुसार किसी जनपद क्षेत्र मे स्थित नगर पालिकाए (महानगरपालिकाओ को छोड़कर) उसके अभिन्न अंग है। वे अपने क्षेत्र की जनपद सभा मे अपने प्रतिनिधि भेजती है व जनपद कोष में भी निर्दिष्ट धनराशि देने को वाध्य की जा सकती हैं। आज दिन मध्यप्रदेश मे दो महानगरपालिकाए, ११२ नगरपालिकाएं तथा ९६ जनपद सभाएं स्थापित हैं।

तृतीय स्थान मे स्वशासन को जनता के द्वार तक पहुंचा देने के लिये समस्त राज्य मे ग्राम पंचायतो का जाल सा विछा देने की व्यवस्था की गयी है। मध्यप्रदेश मे कुल ४४,९९२ गांव है। इनके लिये कुल १६,६८८ पचायतें स्थापित करने की योजना है। वड़े गावो की अपनी अलग पचायतें होती है और छोटे गावों मे दो-दो या तीन-तीन के समूह के लिये एक-एक। इनमें से लगभग सात हजार पंचायते स्थापित हो चुकी है। शेष पंचायते भी शीघ्र स्थापित हो जायेगी। ग्रामों में उठनेवाले छोटे-मोटे झगडो के निर्णयार्थ चार-चार या पांच-पांच ग्राम पंचायत क्षेत्रों के लिये एक-एक न्याय पंचायत स्थापित की गई है। इनकी संख्या १,५०० के लगभग पहुंच चुकी है।

चतुर्थ स्थान मे मध्यप्रदेश सरकार ने स्थानिक संस्थाओं के प्रशासन को सक्षम तथा समुन्नत वनाने के लिये कई महत्त्वपूर्ण आयोजन किये है। नगरपालिकाओं के अध्यक्ष का अव जनता द्वारा निर्वाचन होता है जिससे कि विख्यात, सुयोग्य और प्रभावशाली व्यक्ति ही इस पद के लिये चुने जा सके। उनकी शक्तियों मे पर्याप्त वृद्धि करके उन्हें नगर शासन का वास्तविक अध्यक्ष वना दिया गया है। नागपुर और जवलपुर के दो सव से वडे नगरों मे महानगरपालिकाए (सिटी कार्पोरेशन) स्थापित किये गये है जिनमे डिप्टी कमिश्नर के पद का अनुभव रखने वाले अधिशासी (एक्जि-क्यूटिव आफिसर) के हाथों मे शासन-सचालन का कार्य रखा गया है। इसी प्रकार जनपद सभाओं मे भी एक्स्ट्रा-असिस्टेण्ट कमिश्नर के पद वाले अनुभवी अफसरो के हाथ मे स्थानिक शासन की वागडोर सौंपी गई है। किसी भी शासन के सुचारु रूप से संचालित होने के लिये यह आवश्यक है कि उसमे सुदक्ष, कार्यपटु तथा सन्तुष्ट व स्थायी कर्मचारी हों। अतएव स्थानिक संस्थाओं के कर्मचारियों के पदों को सुरक्षित करने के लिये समुचित प्रवन्ध किया गया है। किसी प्रकार के दण्ड अथवा पदच्युति के विरुद्ध उन्हें शासन के समक्ष अपील करने का अधिकार दिया गया है। स्थानिक कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिये नागपुर विश्वविद्यालय में सार्वजनिक प्रशासन व स्थानिक स्वायत्त शासन का शिक्षण-विभाग स्थापित किया गया है, जिसमे राज्य की विभिन्न स्थानिक संस्थाओ से उनके चुने हुये कर्मचारी प्रतिवर्ष प्रशिक्षण के लिये आते हैं। उनके प्रोत्साहनार्थ शासन ने स्थानिक संस्थाओ को यह आदेश दिया है कि प्रशिक्षित कर्मचारियो को दो वर्ष की वेतनवृद्धि तुरन्त ही दे दी जाये और उच्चतर पदो की नियुक्ति मे उनका प्रथम

ध्यान रखा जाये। अभी हाल ही में शासन ने पंचायतों के लिये २,००० सचिवों की नियुक्ति की व्यवस्था की है। स्थानिक कर्मचारियों की योग्यता के आधार पर नियुक्ति हो, इसलिये अब से ३-४ वर्ष पूर्व स्थानिक सेवा आयोग अधिनियम पारित किया गया, यद्यपि कुछ कारणों से अभी उसे कार्यान्वित नहीं किया जा सका है।

पंचम और अन्तिम स्थान में स्थानिक संस्थाओं की आर्थिक-दशा को सुधारने के लिये उनकी कर लगाने की शक्ति तथा राज्य शासन से उन्हें दिये जानेवाले अनुदानों में वृद्धि की गई है। १९४६-४७ में नगरपालिकाओं को ६ ७ लाख का सरकारी अनुदान मिलता था। परन्तु, १९५१-५२ में वह बढ़कर १९ ९९ लाख अर्थात तिगुने के लगभग हो गया। जनपद सभाओं को १९५१-५२ में ९८ ९८ लाख का अनुदान प्राप्त था जो उनकी आय का ५३ ७ प्रतिशत अर्थात आधे से अधिक था। १९५३ के संशोधित अधिनियम के अनुसार जनपदों को भूमि-कर व लगान पर १८ पाई प्रति रुपये के स्थान में ३० पाई प्रति रुपये उपकर लगाने का अधिकार मिला। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार ने उन्हें भूमि-कर के १ प्रतिशत के बराबर अतिरिक्त अनुदान देने की व्यवस्था की। महानगरपालिकाओं को साधारण नगरपालिकाओं की अपेक्षा कर लगाने तथा ऋण लेने के कहीं अधिक विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये हैं।

इस संक्षिप्त विवरण से यह ज्ञात हो जायेगा कि गत कई वर्षों में मध्यप्रदेश की सरकार ने स्थानिक स्वराज्य को सर्वांगीण प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया है जिसके फलस्वरूप यहां की स्थानिक स्वायत्त शासन व्यवस्था न केवल व्यापक और सुदृढ़ किन्तु कई बातों में अन्य भारतीय राज्यों के अनुकरण की भी वस्तु बन गई है। लोक-कल्याण राज्य, जो आज हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है, अपनी जन-सेवा की योजनाओं को जनता तक स्थानीय संगठनों की सहायता से ही पहुंचा सकता है। पूर्णतया विकसित, जागरूक और सक्षम स्थानिक स्वराज्य संस्थाएं ऐसे राज्य की सफलता के लिये परमावश्यक हैं। मध्यप्रदेश ने इस सामयिक आवश्यकता का अनुभव कर उस दिशा में उल्लेखनीय कदम बढ़ाया है।

मध्यप्रदेश की न्याय-प्रणाली का विकास

श्री शिवनाथ मिश्र

जिन भू-भागों से वर्तमान मध्यप्रदेश का निर्माण हुआ है उन्हें एक शासन अथवा न्याय-व्यवस्था के नीचे आये हुये कुछ अधिक समय नही हुआ। उसके पूर्व विभिन्न भू-भागों की इतिहास-शृंखलाएं परस्पर भिन्न रही है और सामान्यत: उनमे किसी तारतम्य अथवा एकरूपता की अपेक्षा करना कठिन है। यो तो अखिल भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास ग्रथों के अनुसार यह समूचा प्रदेश सम्राट अशोक अथवा मुगल वादशाहों के साम्राज्य के अन्तर्गत था; परन्तु पाटलिपुत्र अथवा दिल्ली की सत्ताओं ने स्थानीय शासकों से यदा-कदा थोडा वहुत कर अथवा सम्मान प्राप्त करके चक्रवर्तिता का संतोष भले ही पा लिया हो, पर वे न तो यहां के विभिन्न भू-भागो के शासन अथवा न्याय प्रणाली में एकता ही ला सके और न यहां की परस्पर भिन्न परंपराओं और मान्यताओं पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव डाल सके।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यहां के अनेक भू-भागो की संस्कृतियां, सामाजिक जीवन तथा राज्य परंपराये भिन्न होते हुये भी सव कही किसी न किसी रूप मे पंचायत प्रणाली प्रतिष्ठित थी। इस प्रणाली को यदि इस प्रदेश की न्याय परपरा का मेरुदण्ड कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। प्राचीन काल मे इसकी प्रभाविता केवल नैतिकता पर आधारित थी और वह सत्ता के वल से वंचित थी। मराठो के राज्यकाल मे, जव इस प्रदेश के अधिकतर भाग में एक न्याय-प्रणाली प्रतिष्ठित हुई तव राजसत्ता द्वारा पुरस्कृत न्याय-व्यवस्था में पंचायतो को भी अंशत. स्थान प्राप्त हुआ। अंग्रेजी अमलदारी मे शासन व्यवस्था परिपुष्ट हुई तथा नियम आदि मे भी सुसवद्धता उत्पन्न हुई। परन्तु इसके साथ ही साथ अग्रेज शासक जनता को राज्य व्यवस्था से, अतश्च न्याय व्यवस्था से, अलग ही रखना चाहते थे। फलत: न्याय व्यवस्था पूर्णत: शासकीय कर्मचारियो के अधिकार मे आ गई और पचायतो का महत्व उत्तरोत्तर क्षीण होता गया। कुछ अवैतनिक दण्डाधिकारी अवश्य नियुक्त हुये, परन्तु इस पद्धति का उद्देश्य जनता की सहयोग-प्राप्ति न होकर मुख्यत: राजभक्ति का सम्मान ही था। कालातर में स्वातंत्र्य भावना के विकास तथा अन्ततोगत्वा स्वातंत्र्य प्राप्ति के फलस्वरूप पंचायत प्रणाली का पुनरुज्जीवन हुआ, उसका क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होता गया तथा पंचो के विधिवत् निर्वाचन का भी प्रवंध किया गया। परन्तु इस वीच मे विधियों (कायदो) में विपुलता के साथ जटिलता आ चुकी थी, अतएव न्याय व्यवस्था के संचालन के लिये लोक-प्रतिनिधित्व से अधिक विधि-पाण्डित्य की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। ऐसी परिस्थिति मे एक विवक्षित क्षेत्र के वाहर और एक विवक्षित स्तर के ऊपर पचायतो का विकास नही हो सकता था। तथापि पंचायत प्रणाली की परिधि के वाहर के क्षेत्र मे न्याय व्यवस्था को प्रशासकीय प्रभाव से मुक्त करने की दिशा मे प्रयत्न हो रहे हैं। संक्षेप मे इस प्रदेश की न्याय प्रणाली के विकास की यही रूप-रेखा है।

मराठों की न्याय व्यवस्था—सन् १७७६ मे माधोजी भोसले ने केवल नागपुर शहर के छोटे-छोटे फौजदारी मामलों के निर्णयार्थ एक न्यायालय स्थापित कर दिया था। इसके अतिरिक्त मराठो के राज्य काल मे कोई विशेष न्यायालय नही थे, और न कोई लिखित कानून ही था। मुसलमानों पर मुस्लिम कायदा तथा शास्त्रियों के निर्वचनानुसार हिन्दू कायदे के दायसम्वन्धी सिद्धान्त हिन्दुओं पर लागू किये जाते थे। निर्णयार्थ प्रकरणों का कोई व्यवस्थावद्ध विभाजन नही था, परन्तु सामान्यत एक हजार रुपयों से अधिक के दीवानी मामलो का स्वत. राजा द्वारा निर्णय होता था और शेष मामले उनके मूल्य अथवा महत्व के अनुरूप छोटे-वडे अधिकारियों के समक्ष लाये जाते थे।

राजा के अतिरिक्त कमाइसदार तथा पटेल न्यायदान करते थे। कमाइसदार अपनी इच्छानुसार फडनवीस, वरार के पाडे अथवा सम्वन्धित क्षेत्र के पटेल की मदद लिया करते थे। अपने-अपने क्षेत्र में जागीरदारो को भी कमाइसदारों के अधिकार प्राप्त थे। कमाइसदार या तो स्वयं निर्णय देते, अथवा यदि वे चाहते तो पंचायत वुलवाने का आदेश दे दिया करते। पटेलों को दीवानी मामलो के निर्णय के अधिकार नहीं थे। वे ऐसे मामलों मे केवल पचायत जुडा सकते थे। पचायत मे ग्राम के सम्मानित व्यक्ति यथासम्भव उभय पक्षों की सम्मति से लिये जाते थे।

प्रत्येक गांव मे पटेल तथा जनता द्वारा सयुक्त रूप से चुना हुआ एक महाजन होता था जो पटेलो के वीच के विवादों तथा ग्रामवासियो के आपसी झगडो को निपटाया करता था। कुछ जातियों के प्रमुख, जो सेठिया कहलाते थे, जातिगत विवादो का निपटारा करते थे। आवश्यकतानुसार सेठियो की पचायते भी वुलाई जाती थी और उनका

निर्णय सामान्यत अंतिम माना जाता था। ये झगडे कभी कभी राजा तक पहुच जाते थे, परन्तु ऐसे प्रसग विरले ही होते थे।

ग्रामीण पचायतो की कार्यवाही न तो सुव्यवस्थित ढग से सम्पन्न होती थी और न वह लेखबद्ध ही की जाती थी, परन्तु वरिष्ठ अधिकारियो द्वारा बुलाई हुई पचायतो का क्रमबद्ध अभिलेख बनता था और उनके निर्णय पुष्टीकरणार्थ उन अधिकारियो को भेजे जाते थे। किसी भी अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध राजा के समक्ष अपील की जा सकती थी।

छोटे-मोटे फौजदारी मामलों में पटेल हलका सा अर्थदण्ड दे सकते थे, परन्तु सभी महत्वपूर्ण अपराधिक प्रकरण शासकीय अधिकारियो द्वारा ही निर्णीत होते थे। स्वत राजा तथा कमाइसदारो द्वारा दण्ड व्यवस्था सचालित होती थी।

उन दिनो कोई लिखित दण्डविधि तो नही थी, परन्तु कुछ साधारण मान्यतायें अवश्य थी। सेंध के मामलो में यदि गृहस्वामी चोरी का माल बतला सके तो उसे उसका तीन-चतुर्थांश मिल जाता था तथा शेष भाग सरकार-जमा हो जाता था। यदि कोई चोर रगे हाथो पकडा गया तो मालधनी उसे कुछ तमाचे या जूते लगा सकता था। यदि वह थाने में पहुचाया गया तो उसे कोड लगाकर महीना-पद्रह दिन बन्द रखा जाता था और यदि वह कुछ देने योग्य हुआ तो उस पर अर्थदण्ड भी लगाया जाता था। ऐसे अपराधो पर दस बार तक उपर्युक्त प्रकार की सजा हो सकती थी। इसके बाद ऐसे अपराध की पुनरावृत्ति होने पर अपराधी की नाक, हाथ अथवा अगुलियां काट ली जाती थी।

गिरोहबन्द डकैती के मुल्जिमो को गाव के बाहर काठ मार कर तब तक कोडे लगाये जाते जब तक वे अपने साथियो तथा लूट के माल का पता न दे दें। इस प्रकार माल का पता चलने पर उसका तीन-चतुर्थांश मालधनी को तथा एक-चतुर्थांश सरकार को मिलता था। यदि धनी स्वय माल का पता लगा ले तो उसे पूरा माल मिल जाता था। यदि डकैती के साथ शारीरिक क्षति अथवा हत्या हुई हो तो अपराध के अनुरूप कोड लगाने, अग भग अथवा मृत्युदण्ड की योजना होती थी।

हत्या के लिये ब्राम्हणों तथा स्त्रियो को छोड कर अन्य अपराधियो को सामान्यत प्राणदण्ड होता था। कभी कभी पति आदि की हत्या के लिये स्त्री की नाक काट ली जाती थी। कुछ जातियो म मृत व्यक्ति के रिश्तेदारों को आर्थिक प्रतिकर दे कर हत्या के जुर्म से बरी होने की प्रथा थी। यदा-कदाचित् अपराधी की सम्पत्ति भी शासन द्वारा जब्त कर ली जाती थी।

अविवाहिता स्त्री के गर्भिणी होने पर उसे थाने पर ले जाया जाता था और जार के रूप में वह जिस-जिस का नाम ले लेती थी उस पर बिना किसी अन्य प्रमाण के भारी अर्थदण्ड लगा दिया जाता था। सामान्यत इसका कुछ अश दण्डकर्ता अधिकारी की जेब में जाता था।

जाली सिक्के बनाने वालो के हाथ कुचल दिये जाते थे। छल और प्रवचना के लिये कोडे लगाने, कारावास अथवा अर्थदण्ड की व्यवस्था थी।

इस प्रकार हमने देखा कि विशेषत दीवानी मामलो मे भोसला शासन ने पचायत प्रणाली को किसी हद तक शासकीय न्यायव्यवस्था में स्थान दिया। परन्तु न्याय के लिये सत्ता का द्वार खटखटाना एक अत्यत व्ययसाध्य प्रक्रिया थी। जीतनेवाले से शुकराना तथा हारने वाले से जुर्माना लिया जाता था। प्रतिवादी के आव्हानार्थ कमाइसदार भात-मसाला वसूल करते थे तथा आदेशिका बाहर के खर्च के लिये रोज-खुराक भी वादी को देना पडता था। राज दरबार से आदेशिका निकलने पर अश्वारोही अथवा ऊट-सवार हरकारो का खर्च देना पडता था। इन सभी खर्चों के परिमाण बहुत बढे-चढे थे, अतएव बिना राजसत्ता का आश्रय लिये पचायतो के द्वारा झगडो के निपटाने की परपरा मराठा काल में अव्याहत चलती रही।

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में भोसला दरबार के सिर पर अग्रेज रेसिडेंट आ बैठा। प्रथम रेसिडेंट रिचार्ड जेन्किन्स ने यहा की न्याय प्रणाली को सुव्यवस्थित अवश्य किया, परन्तु विदेशी होने के नाते न्याय-व्यवस्था का प्रत्येक अगोपाग शासन-व्यवस्था के साथ आबद्ध करना उसके लिये स्वाभाविक ही था। जैसा हम ऊपर कह आये है, भोसला के समय म शासकीय न्यायदान बहुत महगा था। इसके अतिरिक्त कोई सुसगठित एव विनियमित पद्धति न होने से पचायतो में पचो की मर्जी अथवा व्यक्तिगत सनक का बोलबाला था और यह मर्जी या सनक धन अथवा प्रभुता द्वारा प्रभावित भी हो सकती थी। जातीय अथवा अन्य निम्न-स्तर की पचायतो में पचो की प्रसन्नता के लिये भोजन, पान

तथा नृत्य, गीतादि की व्यवस्था भी हुआ करती थी जिससे कभी-कभी पंचायतों की कार्यवाहियों तथा निर्णयों में विकृति भी आ जाती थी। इस प्रकार जेन्किन्स को एक नवीन न्याय प्रणाली के पुरस्थापन का वहाना अथवा अवसर अनायास प्राप्त हो गया।

जेन्किन्स की न्याय प्रणाली—जेन्किन्स की न्याय प्रणाली का स्वरूप मराठा काल की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित तो था, परन्तु, जैसा कि अपेक्षित ही था, वह दो सिद्धान्तों पर आधारित थी—एक तो पंचायतों पर अंकुश और दूसरा पुलिस तथा प्रशासन का महत्व। नागपुर शहर के लिये एक दीवानी अदालत की स्थापना हुई। इसमें पांच सौ रुपयों तक के मामलो का निर्णय छोटी अदालत करती थी जो पुलिस अधीक्षक (सुपरिटन्डेट) के मातहत थी। अर्जी पुलिस सुपरिन्टेन्डेट को ही दी जाती थी। अदालत के निर्णय से यदि किसी पक्ष को असंतोष हुआ तो वह पुलिस सुपरिन्टेन्डेट के पास पुष्टीकरण के लिये भेजा जाता था। वह या तो उसे मान लेता था या कुछ अधिक प्रक्रियाओं का आदेश देता था, जिनके पूर्ण होने पर वह स्वत. निर्णय दिया करता था। वड़ी अदालत, जिसका अध्यक्ष रेसिडेंट का एक सहकारी हुआ करता था, पाच सौ रुपयों के ऊपर के मामलो का निर्णय करती थी तथा छोटी अदालत के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती थी। अन्तिम अपील रेसिडेंट के समक्ष होती थी।

शहर के वाहर कमाइसदार तीन सौ रुपयो तक के मामलो का फैसला करते थे और संवधित परगने मे पुलिस सुपरिटेडेट के दौरे पर आते ही उसके समक्ष कमाईसदार के निर्णयो के विरुद्ध अपील की जा सकती थी। पंचायतो का उपयोग या तो उलझे हुए हिसावो को सुलझाने के लिये होता था अथवा फरीको के आवेदन पर। जितने दिन मामला पचायत के पास अटका रहे उतने रुपये हारने वाले फरीक से वसूल किये जाते थे। अधिकतर नगर की छोटी अदालत तथा कमाइसदार की अदालत के मामलो मे ही पचायतो का उपयोग होता था और इसलिये उनके निर्णयो के विरुद्ध अपील पुलिस सुपरिटेडेट ही सुनता था। वैसे न्यायालय के निर्णय के वाद भी हारे हुए पक्ष के आवेदन पर मामला पंचायत के सुपुर्द किया जा सकता था। जेन्किन्स स्वीकार करता है कि पचायत प्रणाली मे अनेक दोष होते हुए तथा उपर्युक्त अकुशो के रहते हुए उसके समय मे पंचायतो का प्रचुर परिमाण मे उपयोग होता था।

नगर मे न्यायाधीश तथा दण्डाधिकारी पुलिस सुपरिटेडेट ही होता था। हत्या तथा राजद्रोह को छोड कर सभी अपराधो के मामलो के निर्णय का अधिकार उसे था। हत्या तथा राजद्रोह के मामले वड़ी अदालत के समक्ष जाते थे। देहाती क्षेत्रो मे कमाईसदार छोटे-मोटे फौजदारी मामलो का निर्णय करता था परतु तीन दिन से अधिक कैद की सजा के लिये पुलिस सुपरिटेडेट की मंजूरी आवश्यक होती थी। वडे मामलो का निर्णय स्वय पुलिस सुपरिटेडेट करता था परतु दो वर्ष से अधिक की कैद के लिये रेसिडेट की मजूरी लेनी पड़ती थी।

सामान्य अपराधो को पाच श्रेणियो मे विभक्त कर दिया गया था जिनमें क्रमश . प्राणदण्ड, आजीवन कारावास, तथा चौदह, सात और इससे कम वर्षो के कारावास का अधिकतम दण्ड दिया जा सकता था। उचित मामलो मे अर्थदण्ड, संपत्ति-ग्रहण, देशान्तर, शारीरिक दण्ड अथवा सार्वजनिक भर्त्सना के दण्ड भी दिये जाते थे।

सन् १८६१ मे एक चीफ कमिश्नर के नीचे मध्यप्रदेश का निर्माण हुआ। पहले इस मे नागपुर प्रान्त तथा सागर और नर्मदा क्षेत्रो का समावेश हुआ। दूसरे वर्ष इसमे संवलपुर क्षेत्र भी जोड़ दिया गया, जिसमें छत्तीसगढ शामिल है। वाद मे संवलपुर क्षेत्र का कुछ अंश उडीसा में सम्मिलित कर दिया गया। वरार का शासन यों तो अंग्रेजी सत्ता के नीचे सन् १८५३ से ही आ गया था, तथापि वह पूर्णतः मध्यप्रदेश की न्याय प्रणाली के नीचे सन् १९०५ में आया। वैसे सन् १८५३ से सन् १९०५ तक वरार की न्याय प्रणाली मे जैसे कुछ परिवर्तन हुए वे मध्यप्रदेश मे होने वाले तत्सम-परिवर्तनों से तत्वत. भिन्न नही थे, अतएव इस अल्प समीक्षा में उनका विशेष आकलन अनावश्यक होगा।

जेन्किन्स की न्यायपद्धति नागपुर प्रान्त में जिस पूर्णता और व्यापकता से व्यवहृत हो रही थी, वैसी अन्य क्षेत्रों में न हो पाई थी। उधर अंग्रेजी राज्य का मूल केन्द्र वंगाल था और अंग्रेजी कायदे (जो वंगाल रेगुलेशन्स के नाम से प्रख्यात थे) वही की परिस्थिति के अनुरूप वने थे। उन्हे उनके मूल रूप मे सर्वत्र लागू करना कठिन था। इस प्रकार कुछ क्षेत्र गैर-रेगुलेशन क्षेत्र माने गये। इनमें से एक क्षेत्र पंजाव था जहा की तत्कालीन न्याय-प्रणाली से जेन्किन्स की व्यवस्था वहुत कुछ मेल खाती थी। इधर नर्मदा क्षेत्र का वातावरण तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में प्रचलित प्रणाली के वहुत कुछ अनुकूल था और संवलपुर क्षेत्र के लिये तो वंगाल रेगुलेशन्स की पद्धति भी अंशतः उपयुक्त जान पड़ती थी। इन सव वातों के ऊहापोह के फलस्वरूप सन् १८६५ मे प्रथम मध्यप्रदेश कोर्टस् एक्ट प्रवर्तित हुआ।

उक्त एक्ट के अनुसार आठ प्रकार के न्यायालयों की स्थापना हुई जिनके मौलिक तथा अपील के अधिकार नीचे दर्शाये हैं —

क्रमांक (१)	न्यायालय (२)	क्षेत्राधिकार (३)	मौलिक अर्थाधिकार (४)	अपील के अधिकार (५)
(१)	तहसीलदार, द्वितीय वर्ग	तहसील	१०० रु तक के दावे	
(२)	तहसीलदार, प्रथम वर्ग	„	३०० रु तक के दावे	
(३)	सहायक आयुक्त, तृतीय वर्ग	जिले का अंश	५०० रु तक के दावे	
(४)	सहायक आयुक्त, द्वितीय वर्ग	„	१,००० रु तक के दावे	
(५)	सहायक आयुक्त, प्रथम वर्ग	„	५,००० रु तक के दावे	
(६)	उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर)	जिला	५,०००रु से ऊपर के दावे	(१) से (४) के मौलिक निर्णयों पर।
(७)	आयुक्त (कमिश्नर)	विभाग	„	(५) तथा (६) के सभी निर्णयों पर।
(८)	न्याय-आयुक्त (जुडीशियल कमिश्नर)	संपूर्ण प्रदेश	„	(७) के मौलिक निर्णयों पर तथा (६) और (७) के अपीलेट निर्णयों पर।

इसके अतिरिक्त लघु-वादों के लिये उचित स्थानों में लघु-वाद (खफीफा) न्यायालयों की व्यवस्था हुई। जिले के न्यायालय में दीवानी कार्य का वितरण उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) के जिम्मे रहा।

इस प्रकार पुलिस के हाथों से तो न्याय-दान व्यवस्था निकाल ली गयी, परंतु वह सामान्य प्रशासन के एक उपांग के रूप में ही रही आयी। गत शताब्दि के अंत में कमिश्नरों की मदद के लिये कुछ न्याय-सहायकों की नियुक्तियां हुईं। ये पूर्णतः न्यायाधिकारी थे और कमिश्नरों के अधीन नहीं थे। इन नियुक्तियों को इस प्रदेश में प्रशासन तथा न्याय व्यवस्था के वियोजन का पहला कदम मानना चाहिये। सन् १८८५ में कोर्टस एक्ट के संशोधन द्वारा शासन को यह अधिकार भी दे दिया गया था कि उपायुक्तों की मदद के लिये दीवानी न्यायाधीशों तथा तहसीलदारों की मदद के लिये मुन्सिफों की नियुक्तियां करे। सन् १९०१ में कमिश्नरों से फौजदारी अधिकार भी निकाल लिये गये तथा प्रदेश के चार विभागों में पूर्वोक्त न्याय-सहायकों को विभागीय न्यायाधीश बना दिया गया।

सन १९०४ में कोर्टस् एक्ट मे आमूलाग्र परिवर्तन हुए और इसके फलस्वरूप दीवानी न्याय-व्यवस्था सामान्य प्रशासन से पूर्णतया वियुक्त हो गयी तथा न्याय-आयुक्त के तत्वावधान में विभागीय न्यायाधीशों जिला न्यायाधीशों, उप-न्यायाधीशों (सब-जजों) तथा मुन्सिफों द्वारा ही सारे दीवानी मामले निर्णीत होने लगे। विभागीय न्यायाधीशों को सेशन (सेशन) के पूर्णाधिकार तथा दीवानी अपीलों के अधिकार दिये गये तथा अपने-अपने विभागों के न्याय कार्य का संचालन तथा निरीक्षण भी उन्हीं के जिम्मे किया गया। मुन्सिफों को पांच सौ रुपयों तक के, सब-जजों को ५,००० रुपया तक के तथा जिला न्यायाधीशों को अधिक मूल्यों के दावों के निर्णय के मौलिक अधिकार मिले। १,००० रुपया तक के दावों के निर्णयों पर जिला न्यायाधीश को, ५,००० रुपयों तक के दावों के निर्णयों पर विभागीय न्यायाधीश को तथा अधिक मूल्य के दावों के निर्णयों पर न्याय आयुक्त को अपील के अधिकार प्राप्त हुए। अपील के निर्णय पर अपील सुनने के अधिकार केवल न्याय आयुक्त को ही दिये गये।

सन् १९०५ में बरार की न्याय-व्यवस्था सदा के लिये मूल मध्यप्रदेश की न्याय-व्यवस्था में सन्निहित हो गयी। उसके पूर्व बरार की न्याय प्रणाली स्वतंत्र रूप से विकसित हो रही थी परंतु, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, इस विकास की रूपरेखा मूल प्रदेश की न्याय-प्रणाली के विकास से तत्वतः भिन्न नहीं थी।

सन १९१० में हत्या के मामलों की अपीलों तथा जटिल स्वरूप की दीवानी अपीलों के लिये न्याय आयुक्त के न्यायालय में एक से अधिक न्यायाधीशों के संयुक्त न्यायपीठ (बेंच) के निर्माण की व्यवस्था हुई। इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे उक्त न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या चार तक पहुंच गयी। सन १९३६ में इस प्रान्त में भी उच्च न्यायालय स्थापित हो गया जिसने न्याय-आयुक्त के न्यायालय का स्थान ले लिया।

सन् १९१७ में विभागीय न्यायाधीशों तथा मुंसिफों के पद समाप्त कर दिये गये। जिला न्यायाधीशों को विभागीय न्यायाधीशों के अधिकार दिये गये। द्वितीय श्रेणी के सब-जज को ५,००० रुपयों तक तथा प्रथम श्रेणी के सब-जजों को १०,००० रुपयों तक के दावों के मौलिक अधिकार दिये गये तथा जिला न्यायाधीश को ५,००० रुपयों तक के दावों के निर्णयों पर अपील सुनने तथा १०,००० रुपयों से ऊपर के दावों का निर्णय करने के अधिकार प्राप्त हुए। कुछ प्रथम श्रेणी के सब-जजों को व्यक्तिगत रूप से जिला जज के अधिकार भी दिये जाने लगे। अब अधीनस्थ न्यायाधीश (सब-जज) को व्यवहार न्यायाधीश (सिविल जज) कहा जा रहा है। अभी हाल में अपर जिला न्यायाधीशों का एक अलग वर्ग ही निर्मित हो गया है।

उपर्युक्त विकास-क्रम मुख्यत: दीवानी क्षेत्र का है। फ़ौजदारी क्षेत्र में भारतीय दण्ड विधान तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन ने शीघ्र ही व्यवस्था उत्पन्न कर दी। तद्नुसार तीन श्रेणी के दण्डाधिकारी, सत्र-न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय विहित पद्धति के अनुसार अपराधिक मामलों तथा अपीलों के निर्णय दे रहे हैं। प्रथम श्रेणी के दण्डाधिकारियों के निर्णयों पर अपीलें तथा सत्र-प्रकरण तो उच्च न्यायालय के तत्वावधान मे है परंतु निम्नतर श्रेणी के दण्डाधिकारियों के निर्णयों पर अपीलें तथा दण्डाधिकारियों द्वारा निर्णीत होनेवाले मामले जिला दण्डाधिकारियों के तत्वावधान मे ही चल रहे हैं।

इस प्रदेश के निर्माण के बाद ही विपुलता तथा व्यापकता के साथ सभी क्षेत्रों मे कायदों का निर्माण आरंभ हुआ। न्यायदान की प्रक्रिया, न्याय-शुल्क, आदि के संबध में भी कायदे बनाये गये। अतएव यह अपेक्षित ही था कि अभिवक्ता (वकील) वर्ग भी शनै. शनैः एक व्यवस्थित ढांचे पर आधारित और आकारित हो।

जहां कायदों की बारीकियों का आश्लेषण-विश्लेपण निष्णात मस्तिष्को द्वारा होता है, वहां निर्णयकर्ताओं का विधि-पण्डित होना भी आवश्यक हो जाता है। अत: स्पष्ट है कि एक विशेष स्तर के ऊपर पंचायत प्रणाली नही जा सकती थी। कुछ तो इस कारण, और कुछ विदेशी शासन की मनोवृत्ति के फल-स्वरूप, सन् १८६१ के बाद पंचायत प्रणाली इस प्रदेश की न्याय-व्यवस्था से सर्वथा वियुक्त हो गयी।

परंतु सन् १९४७ में, जब कि देश स्वातंत्र्य के सिंहद्वार पर पहुंच चुका था, ग्रामीण क्षेत्रों में न्याय पंचायतों की प्रतिष्ठा के लिये कानून द्वारा व्यवस्था की गयी। आरंभ में तो इन पंचायतो के पंचो की नियुक्ति शासन द्वारा ही की गयी तथा कुछ ही क्षेत्रों में न्याय पंचायते स्थापित हुई, परतु अंततोगत्वा समूचे प्रदेश में जनता द्वारा निर्वाचित पंचो द्वारा परिचालित पचायतो की प्रतिष्ठा होनेवाली है तथा यह अभियान बहुत कुछ आगे बढ चुका है। इन पंचायतों के अधिकार छोटे-मोटे मामलों तक ही सीमित है परंतु वे दीवानी तथा फौजदारी दोनों ही क्षेत्रो को आवेष्ठित करते हैं। इन न्यायालयों की प्रक्रियाए अत्यत सीधी-सादी हैं और इनमें वकीलों का प्रवेश नही होता। इनके निर्णयों के विरुद्ध अपील नही होती, परंतु घोर एवं स्पष्ट स्वरूप की चूकों के निराकरणार्थ उच्चतर श्रेणी के न्यायाधीशों द्वारा इन पंचायतों के निर्णयो के पुनर्विलोकन की व्यवस्था की गयी है। आज की कानूनी जटिलताओ को देखते हुए इन पंचायतों के क्षेत्र और अधिकार किस परिमाण मे विस्तृत हो सकते हैं, इस प्रश्न का उत्तर वर्तमान पंचायतों की सफलता पर ही निर्भर है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता के नीचे जो अवैतनिक दण्डाधिकारी नियुक्त होते थे वे अधिकतर विदेशी शासन के हिमायती हुआ करते थे। सन् १९४७ मे अवैतनिक दण्डाधिकारियों की इस परपरा का अंत हो गया और सन् १९४७ म नगर न्याय पंचायतो की स्थापना की व्यवस्था हुई। इनके पंच भी आरंभ में शासन द्वारा नियुक्त हुए थे, परतु अंततोगत्वा ये सब निर्वाचन द्वारा लिये जानेवाले है तथा इन पंचायतों का क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तीर्ण हो रहा है। इन्हे प्रथम वर्ग तक के दण्डाधिकार है तथा ये छोटे-मोटे दीवानी मामलों का भी निर्णय करती हैं।

इस प्रकार दीवानी क्षेत्र मे तो न्याय व्यवस्था अंशत: जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में और पूर्णत: प्रशासन व्यवस्था के बाहर आ चुकी है। फौजदारी क्षेत्र के उच्चतर स्तर मे भी वह सामान्य प्रशासन के बंधनो से मुक्त हो चुकी है, परंतु सामान्य स्तर मे वह अभी भी जिला दण्डाधिकारी द्वारा संचालित होती है। सन् १९५० मे कुछ न्याय दण्डाधिकारियों (जज-मजिस्ट्रेटो) की नियुक्तियां हुई, जो यथासंभव न्यायदान के अतिरिक्त और कोई प्रशासकीय कार्य नही करते। इनके निरीक्षण का अधिकार भी सत्र न्यायाधीशो को दे दिया गया है, यद्यपि ये जिला दण्डाधिकारी के अंकुश से सर्वथा मुक्त नही हैं। यह रहा-सहा अंकुश दूर करने तथा न्याय-व्यवस्था को प्रशासन व्यवस्था से पूर्णत: वियुक्त करने का प्रश्न भी विचाराधीन है और इसका हल निकट भविष्य मे ही हो जावेगा, ऐसी आशा की जाती है।

विकेन्द्रित शासन-व्यवस्था की कुछ समस्याएं

श्री अमरेश्वर अवस्थी

विकेन्द्रित शासन-व्यवस्था का सर्वोत्कृष्ट नमूना स्थानीय स्वशासन सस्थाओ में पाया जाता है। स्थानीय शासन की अनेक समस्याओं में सर्वाधिक पेचीदा समस्या इन समस्याओं पर केन्द्रीय नियत्रण की है।

सन् १९४७ में स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भारत के लगभग प्रत्येक राज्य में स्थानीय सस्थाओं के ढाचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। इन सस्थाओ की बनावट प्रजातात्रिक आधार पर कर दी गयी है, उनके काय बढा दिये गये है, उनके अधिकार विस्तृत हो गये है तथा उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ की जा रही है। किन्तु, साथ साथ इन सस्थाओ पर राज्य सरकार का नियत्रण कम होने के बजाय बढ गया है। इस बात को लेकर काफी आलोचना की गयी है।

किन्तु, यदि हम ब्रिटेन, अमरीका तथा अन्य देशो की स्थानीय शासन-व्यवस्था का अध्ययन करे तो पता चलता है कि भारत की तरह अन्य देशो में भी आधुनिक प्रवृत्ति स्थानीय सस्थाओ पर केन्द्रीय नियत्रण को विस्तृत करने की है। स्थानीय सस्थाओ पर केन्द्रीय नियत्रण की आवश्यकता अब सवमान्य हो गयी है। सच तो यह है कि केन्द्रीय एव स्थानीय शासन एक ही शासन व्यवस्था के अग है और स्थानीय सस्थाए अपने सीमित क्षेत्रो में जिस सत्ता का प्रयोग करती है वह केन्द्रीय सरकार द्वारा ही उनको दी जाती है। उनकी स्वत कोई सत्ता नही होती। अतएव, जब कोई स्थानीय सस्था सुगठित प्रशासन के मौलिक सिद्धान्त का उल्लघन करती है अथवा उस क्षेत्र के हितो पर किसी प्रकार आघात करती है, तब यह अनिवार्य हो जाता है कि उससे उच्च, निष्पक्ष तथा अधिक कार्यकुशल सत्ता उस मामले में हस्तक्षेप करे। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि प्रजातन्त्रात्मक राज्य में स्थानीय एव केन्द्रीय शासन के हितो में कोई विरोध नहीं होता है। प्रजातत्रीय भारतीय गणराज्य के लिए भी यही बात लागू है। अतएव, विचारणीय प्रश्न केन्द्रीय नियत्रण की सार्थकता न होकर उस नियत्रण को अमल में लाने के समुचित साधनो का है।

भारत के अन्य राज्यो के समान मध्यप्रदेश में भी राज्य सरकार स्थानीय सस्थाओ पर या तो प्रत्यक्ष रूप से स्वय नियत्रण करती है या अप्रत्यक्ष रूप से अपने पदाधिकारियो द्वारा करती है। सक्षेप में, राज्य सरकार के नियत्रण की आदेशिका इस प्रकार है —स्थानीय शासन के विभिन्न विभागो का पर्यवेक्षण और नियत्रण उस जिले के उन सरकारी विभागो के सर्वोच्च पदाधिकारी करते है। उदाहरणार्थ, लोक स्वास्थ्य एव चिकित्सा का निर्देशन एव पर्यवेक्षण सिविल सर्जन करता है, शिक्षा विभाग का स्कूलो का डिप्टी इन्सपेक्टर और लोक कर्म विभाग का एक्जिक्यूटिव इजिनियर। इनके अतिरिक्त, शक्तिशाली उपायुक्त को अनेक अधिकार प्राप्त है जिनके द्वारा वह स्थानीय सस्थाओ का पर्यवेक्षण, नियत्रण एव निर्देशन करता है। इसी प्रकार इन सस्थाओ की वित्तीय व्यवस्था का विस्तृत नियत्रण लेखा-परीक्षा विभाग द्वारा किया जाता है। इन सबसे कहीं अधिक अधिकार राज्य सरकार को प्राप्त है। वह स्थानीय सस्थाओ को निश्चित कार्य करने के लिए बाध्य कर सकती है और आपद्काल में उनको निश्चित अवधि के लिए विघटित भी कर सकती है।

किन्तु, अनुभव यह है कि स्थानीय सस्थाओं का पर्यवेक्षण तथा देखरेख समुचित रूप से नही होते। इसके कई कारण हो सकते है। सरकारी पदाधिकारी या तो अपने ही सरकारी कार्यों में इतने सलग्न रहते है कि उनके पास इतना अवकाश नहीं रहता कि वे स्थानीय निकायो की सुचारु रूप से देखरेख कर सकें अथवा वे इन विषयो के प्रति उदासीन रहते है। इसके अतिरिक्त इन पदाधिकारियो को स्थानीय स्वशासन की परम्पराओ की न तो पूरी जानकारी होती है और न स्थानीय समस्याओं के प्रति उनमें आवश्यक सहानुभूति ही पायी जाती है। साधारणत वे स्थानीय निकायो को या तो फाल्तू समझते है या आवश्यक दोषपूर्ण सस्था मानते हैं। अतएव, एक समुचित पर्यवेक्षक अभिकरण के अभाव से स्थानीय निकायो को बहुत हानि हुई है। इस बात से मध्यप्रदेश जनपद जाच समिति (१९५२) भी सहमत है।

१९२० के पहिले भी स्थानीय निकायो की देखरेख के लिए एक पर्यवेक्षक और नियत्रक अभिकरण की आवश्यकता महसूस की गई थी। इसी आशय से सी पी स्थानीय स्वशासन विधेयक (१९१९) के प्रारूप में एक "केन्द्रीय नियत्रक मडली" का आयोजन किया गया था। अन्त में यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका तथापि स्थानीय निकायो के लिए एक

पृथक पर्यवेक्षक अभिकरण की जरूरत मान ली गई और सी. पी. स्थानीय स्वशासन अधिनियम (१९२०) में पर्यवेक्षक पदाधिकारियो की नियुक्ति का आयोजन किया गय। (अनुच्छेद ६६)। इस अनुच्छेद के अनुसार पर्यवेक्षको की नियुक्ति का प्रश्न उठा। किन्तु, इस वर्ष की आयुक्तों की परिषद् ने नवीन और पृथक पर्यवेक्षको की नियुक्ति का विरोध किया तथा यह सिफारिश की कि पहिले की तरह स्थानीय निकायों के पर्यवेक्षण का कार्य सरकारी विभागों के पदाधिकारियों द्वारा ही किया जाये। अत. १९२० के अधिनियम के ६६वें अनुच्छेद को अमल मे नही लाया जा सका। किन्तु, १९४७ मे अपने राज्य की स्थानीय शासन-व्यवस्था के पुनर्गठन के अवसर पर यह प्रश्न फिर उठा और १९४८ के नवीन "स्थानीय स्वशासन अधिनियम" मे पुन. स्थानीय शासन की जांच व देखरेख के लिए पर्यवेक्षकों की नियुक्ति का आयोजन किया गया (अनुच्छेद ९८)। किन्तु अभी तक इस दिशा में कोई कार्रवाई नही हुई। जनपद जाच समिति ने भी इस ओर राज्य सरकार का ध्यान आकर्षित किया है।

यह समस्या केवल मध्यप्रदेश की ही नही है। अन्य राज्यो में भी स्थानीय स्वशासन संस्थाओ पर बाहरी नियंत्रण के उचित साधनो का विषय विचाराधीन है। इस सम्बन्ध में कई सुझाव भी पेश किये जा चुके है। इस सिलसिले मे दो प्रश्न उठते है: (१) यह नियंत्रण स्थानीय शासन विभाग के द्वारा होना चाहिये अथवा इसके लिए पृथक निकाय का संगठन आवश्यक है; और (२) पर्यवेक्षण का कार्य सरकारी पदाधिकारियो द्वारा होना चाहिये अथवा उसके लिए पृथक पदाधिकारियो की नियुक्ति की जानी चाहिये।

पहिले प्रश्न के सम्बन्ध में यू. पी स्थानीय स्वशासन समिति (१९३९) ने अपने प्रतिवेदन मे यह सुझाव दिया था कि स्थानीय निकायों पर नियत्रण का कार्य एक पृथक "स्थानीय स्वशासन मण्डली" के हाथ मे सौंपना चाहिये। वर्तमान स्थानीय शासन विभाग के विरुद्ध शिकायत यह है कि वह स्थानीय शासन की समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान नही देता। जनपद जाच समिति के समक्ष गवाही देते हुए एक उच्च सरकारी पदाधिकारी ने स्वीकार किया कि सरकारी विभाग स्थानीथ समस्याओं के निवटाने मे प्राय सुस्त एव उदासीन रहा है और स्थानीय निकायो को आवश्यक सहायता एवं निर्देशन देने मे असफल रहा है। किन्तु, यह दृष्टिकोण सर्वमान्य नही है। नागपुर विश्वविद्यालय के सार्वजनिक प्रशासन तथा स्थानीय स्वशासन विभाग के अध्यक्ष डाक्टर महादेवप्रसाद शर्मा तथा इस विषय के वेत्ता प्रोफेसर वेंकट-रंगय्या एक पृथक मण्डली के संगठन की आवश्यकता नही समझते। लेखक के मतानुसार इन दो दृष्टिकोणों का समन्वय किया जा सकता है। उसका सुझाव यह है कि स्थानीय निकायो पर राज्य सरकार के नियत्रण के प्रयोग के लिए एक "स्थानीय शासन मण्डली" की रचना होनी चाहिये। इस मण्डली का अध्यक्ष स्थानीय शासन विभाग का मत्री तथा इसके सदस्यो मे एक शिक्षा विशेषज्ञ, एक लोक स्वास्थ्य विशेषज्ञ, एक इजिनियर तथा दो या तीन ऐसे व्यक्ति हो जो स्थानीय समस्याओं की खूब जानकारी रखते हो। इस मण्डली का सेक्रेटरी "स्थानीय अधिकारियो का निर्देशक" के समान स्थानीय शासन विभाग का प्रधान हो। जनपद जाच समिति ने भी वम्बई राज्य की तरह अपने राज्य मे भी ऐसे पदाधिकारी की नियुक्ति की सिफारिश की है। इस पद पर ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति होनी चाहिये जिसने भारत और अन्य देशों मे चालू स्थानीय शासन-व्यवस्था का विशेष अध्ययन किया हो। यह मण्डली विभिन्न स्थानीय निकायों के कार्यो की देखरेख करेगी तथा उनका पर्यवेक्षण, नियंत्रण और निर्देशन करेगी। साथ ही साथ वह राज्य भर मे स्थानीय सेवाओं के विकास के लिए योजना तैयार करेगी और उसको कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी होगी।

जहां तक दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है स्थानीय शासन के विशेषज्ञो के अनुसार विशिष्ट सेवाओ की देखरेख और पर्यवेक्षण का कार्य चालू व्यवस्था के अनुसार सरकारी पदाधिकारियो के हाथो मे ही रहना चाहिये क्योंकि स्थानीय निकायों के पास उस स्तर के अधिकारियो को नियुक्त करने के साधन नही है। यदि इस कार्य के लिए सरकारी पदा-धिकारियो की संख्या पर्याप्त न हो तो सरकार उसमें वृद्धि कर सकती है। इनके अतिरिक्त, साधारण पर्यवेक्षण के लिए पृथक पर्यवेक्षको की नियुक्ति होनी चाहिए। इनकी संख्या आवश्यकता के अनुसार निर्धारित की जा सकती है। इन पर्यवेक्षकों को स्थानीय प्रशासन, कानून व वित्तीय व्यवस्था का विशेष अध्ययन व जानकारी होनी चाहिये। इन पदाधिकारियों का काम होगा—स्थानीय संस्थाओ के प्रस्तावों एव निर्णयों की जाच करना, उनके कानूनो व नियमों को लागू करना, और उनकी त्रुटियों तथा कुकृत्यों को राज्य सरकार की निगाह मे लाना। स्मरणीय है कि मद्रास राज्य में पृथक पर्यवेक्षको की नियुक्ति की जाती है।

अद्वैत वेदान्त में अनध्यस्त-विवर्त के नए सिद्धान्त का आविष्कार

श्री वा ना पंडित

ईश्वर जगत् और जीव का परब्रम्ह से कार्यकारण सम्बन्ध बतलाने के लिये भारतीय दर्शनशास्त्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के 'वाद' स्वीकृत किए गए हैं। उनमें आरम्भवाद, परिणामवाद तथा विवर्तवाद ये तीन प्रमुख हैं। अद्वैत वेदान्त के प्रणेता भगवान् श्री शंकराचार्य ने इनमें से विवर्तवाद को स्वीकार किया है। इस विवर्तवाद के दृष्टान्त रज्जु-सर्प या शुक्तिका-रजत ये हैं और इसी विवर्त को मायावाद, अज्ञानवाद, भ्रमवाद या अध्यासवाद कहते हैं। विवर्त शब्द का अर्थ है विशेष रूप से प्रतीत होना (विशेषेण वर्तते इति विवर्त)। अनध्यस्त विवर्त के इस नए सिद्धान्त का सम्बन्ध शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त से ही होने के कारण प्राधान्येन अद्वैत वेदान्त का ही विचार हमें यहां करना है।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में परब्रम्ह का स्वरूप सच्चित् और आनंद माना गया है। परब्रम्ह से ही जगत् तथा जीव की उत्पत्ति शास्त्रों में बतलाई गई है (जन्माद्यस्य यतः)। अतः सच्चित् और आनंद रूप ब्रह्म ही जगत् और जीव का कारण है। अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार कार्य नाम की कारण से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। कारण ही इस विशेष अवस्था में कार्य कहलाया जाता है। उदाहरण के लिये मिट्टी का घड़ा लीजिए। मिट्टी से ही वह तैयार किया जाता है इसलिये उस घड़े का कारण मिट्टी कहलाई जाती है। किन्तु तात्विक दृष्टि से जब घड़े का विचार किया जाता है तब यह दिखाई देता है कि मिट्टी के अतिरिक्त घड़ा नाम की कोई चीज नहीं है। मिट्टी को ही विशेष आकार तथा नाम रूप आदि देकर घड़ा हम कहते हैं और इसलिये घड़ा जब नष्ट हो जाता है तो पुनः उसकी मिट्टी बन जाती है। स्पष्ट है कि मिट्टी और घड़ा इन दोनों में एक ही वस्तु मिट्टी विद्यमान है। किन्तु विशेष नाम, रूप तथा व्यवहार के कारण मिट्टी को ही हम घड़ा कहते हैं। इस दृष्टि से यद्यपि घड़े का कारण हम मिट्टी कह सकते हैं और मिट्टी का कार्य घड़ा कह सकते हैं तथापि तात्विक दृष्टि से ये दो स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। मिट्टी का ही विशेष रूप घड़ा है और इस दृष्टि से घड़े को मिट्टी का विवर्त अथवा मिट्टी की विशेष अवस्था कही जा सकती है। यही स्थिति सोने पर प्रतीत होनेवाले अलंकारों की है। सुवर्ण और अलंकार यद्यपि शब्दभेद से भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि अलंकार नाम की सोने से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। सुवर्ण ही भिन्न नाम रूप से अलंकार कहलाया जाता है। अतः सुवर्ण के अधिष्ठान पर या आधार पर अलंकार विवर्त है। शांकर तत्त्वज्ञान में जीव तथा जगत् का परब्रम्ह से कार्यकारण सम्बन्ध बतलाने के लिये सुवर्णालंकार या मृत्तिका-कुंभ इस प्रकार के दृष्टान्त दिये गए हैं और ये सब विवर्त के दृष्टान्त हैं।

जिस प्रकार सुवर्णालंकार, मृत्तिका-घट इत्यादि दृष्टान्त जीव-जगत् का परब्रम्ह से कार्यकारण सम्बन्ध बताने के लिये दिये गये हैं उसी प्रकार से शुक्तिका-रजत् और रज्जु-सर्प इत्यादि दृष्टान्त भी दिये गये हैं। रज्जु पर भासमान होनेवाला सर्प, रज्जु से कोई भिन्न वस्तु नहीं है। रज्जु ही अपने अज्ञान के कारण सर्प रूप से अपने को प्रतीत होती है। इसी प्रकार शुक्तिका पर होनेवाले रजत् के भास में शुक्तिका का ही ज्ञान वास्तव में हमें होता है। किन्तु हम वह न जानते हुए रजत नाम की कोई अन्य वस्तु वहां समझते हैं। इन दोनों उदाहरणों में अधिष्ठान-रूप मूल वस्तु ही विशेष रूप से हमें प्रतीत होती है। इसलिये इन दोनों में प्रतीत होनेवाले सर्प या रजत् अनुक्रम में रज्जु तथा शुक्तिका के विवर्त कहलाए जाते हैं। शांकर वेदान्त में ईश्वर, जीव तथा जगत् का परब्रम्ह से कार्यकारण सम्बन्ध बतलाने के लिये इन दोनों प्रकार के उदाहरणों का उपयोग किया गया है और इन दोनों उदाहरणों में रहने वाले कार्यकारण सम्बन्ध को विवर्तरूप कार्यकारण सम्बन्ध कहा गया है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से इन दोनों प्रकार के दृष्टान्तों का विचार किया जाए तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि, यद्यपि इन दोनों प्रकार के दृष्टान्तों में अधिष्ठान की विशेष रूप से प्रतीति होने के कारण प्रतीयमान अथवा भासमान वस्तु ही विवर्त मानी गई है तथापि इन दोनों दृष्टान्तों में एक मूलभूत भेद है। वह भेद यह है कि सुवर्णालंकार के दृष्टान्त में अलंकार की प्रतीति होते समय अधिष्ठान रूप सुवर्ण का ज्ञान नष्ट नहीं होता। अधिष्ठान रूप सुवर्ण का ज्ञान कायम रखकर ही अलंकारों की प्रतीति होती है। किन्तु यह स्थिति रज्जु सर्प या शुक्तिका-रजत् के दृष्टान्तों में नहीं है। वहां तो सर्प या शुक्तिका की प्रतीति रज्जु तथा शुक्तिका के ज्ञान का लोप हुए बिना नहीं हो सकती। अतः संक्षेप में यह कहा

जा सकता है कि सुवर्णालंकार या मृत्तिका-घट इत्यादि दृष्टान्तों मे अधिष्ठान के ज्ञान का लोप होकर प्रतीति नही होती है। किन्तु रज्जु-सर्प में अधिष्ठान के ज्ञान का लोप होकर प्रतीति होती है। अतः यद्यपि यह सभी विवर्तो के उदाहरण माने जा सकते है तथापि इन दोनो मे भेद करने की दृष्टि से सामान्य रूप से उपयोग में लाए जानेवाले विवर्त शब्द में कुछ भेद दर्शक विशेषण उसमे लगाना आवश्यक है।

शांकर वेदान्त में यद्यपि इन दोनों प्रकार के दृष्टान्तों का उपयोग ईश्वर-जीव, तथा जगत् का ब्रम्ह से सम्बन्ध बतलाने के लिये किया गया है तथापि सूक्ष्म रूप से यदि उन पर विचार किया जाये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनमे से रज्जु-सर्प या शुक्तिका-रजत् इत्यादि दृष्टान्तो का प्रयोग ज्ञानपूर्वक प्रतीत होनेवाले जीव तथा जगत् के लिये किया गया है। ज्ञानोत्तर प्रतीत होनेवाले जीव तथा जगत् के लिये अर्थात दूसरे प्रकार के सुवर्णालकार या मृत्तिका-घट इत्यादि दृष्टान्तो का उपयोग किया गया है। शाकर वेदान्त का प्रसिद्ध सिद्धान्त यह है कि ब्रम्ह सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रम्ह रूप है, उससे वह दूसरा नही है (ब्रम्ह सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रम्हैव नापर.)। इस सिद्धान्त के दो भाग होते हैं। पूर्व भाग है ब्रम्ह सत्यं और दूसरा भाग है जगन्मिथ्या। सिद्धान्त तो यही है कि जो जो प्रतीयमान हैं वह सब ब्रम्ह है। इसी का अर्थ है प्रतीयमान सब सच्चिदानंद स्वरूप है। क्योकि ब्रम्ह का लक्षण सच्चित् और आनन्द है। यद्यपि सभी ब्रम्ह रूप है और इसी का अर्थ सब सच्चिदानन्द-रूप है तथापि इस प्रकार की प्रतीति जन-साधारण को नही होती। जन-साधारण तो इसके विपरीत असत् जड़ और दु.ख इत्यादि गुणो से युक्त जगत् नाम की कोई वस्तु है ऐसा समझते है और यह प्रतीति सच्चिदानन्द-रूप ब्रम्ह की विरोधी है। शकराचार्य कहते है कि सच्चिदानन्द-रूप ब्रम्ह से निकले हुए जगत् और जीव तत्त्वत. सच्चिदानन्द रूप ही होने चाहियें और सभी का अनुभव भी इसी प्रकार का होना चाहिये। यदि ऐसा अनुभव आता न हो तो हमारे ज्ञान या दृष्टिकोण मे कुछ त्रुटियां हैं। इसी को हम विपरीत ज्ञान या अज्ञान कहते है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नही है। अज्ञान का मतलब विपरीत ज्ञान है। जिन लोगों को जगत् और जीव का अनुभव सच्चित् और आनन्द रूप से आता है वे यथार्थ ज्ञानी कहलाये जाते है। शुकाचार्य इत्यादि सभी महानुभावो का अनुभव सच्चिदानन्द रूप होने के कारण शकराचार्य उन महात्माओ के ज्ञान को यथार्थ ज्ञान कहते है और उन महात्माओं को यथार्थ ज्ञानी अथवा परब्रम्ह रूप मानते है। हम जैसे लोगों का अनुभव इन महात्माओ के अनुभव से विरुद्ध होने के कारण वे हमारे अनुभव को गलत अनुभव कहते है। उसी का दूसरा नाम है अज्ञान। इस विपरीत अयथार्थ प्रतीति को हटाने के लिये उन्होने इस विपरीत धर्मो से प्रतीत होनेवाले जगत् को मिथ्या, भ्रमरूप व अज्ञानरूप कहा है। अर्थात् शकराचार्य के तत्वज्ञान मे मायावाद, भ्रमवाद, अज्ञानवाद, अध्यासवाद इत्यादि नामों से व्यवहृत होनेवाला विवर्तवाद, सच्चिदानन्द रूप के विपरीत धर्मो से प्रतीत होनेवाले जीव तथा जगत् के सम्बन्ध मे लागू किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के विपरीत ज्ञान अथवा अज्ञान की निवृत्ति के बाद केवल एक ब्रम्ह के सिवाय दूसरी कोई वस्तु अवशिष्ठ नही रहती और ज्ञानोत्तर सभी नामरूप आकार सच्चिदानन्द-रूप ब्रम्ह के वाचक होते हैं। श्री शंकराचार्य ने 'छान्दोग्यउपनिषद' मे स्पष्ट रूप से कहा है कि सद्रूप ब्रम्ह से एकरूपता से प्रतीयमान होनेवाला सभी व्यवहार और सभी विकार सत्य ही है। सद्रूप ब्रम्ह से उन्हे यदि अलग समझते हो तो वे सब मिथ्या या भ्रमरूप है। (अतः सदात्मना सर्वव्यवहाराणा सर्वविकाराणा च सत्यत्व, सतोऽन्यते चानृतत्वमिति। छान्दोग्ध ६-३-२)। स्पष्ट है कि ब्रम्ह के भिन्न धर्मो से प्रतीत होनेवाले पदार्थो के वाचक नाम रूपादि के यद्यपि मिथ्या या भ्रमरूप कहे जा सकते है, तथापि ज्ञानोत्तर ब्रम्ह के वाचक होनेवाले नाम रूपादि मिथ्या या भ्रमरूप नही कहे जा सकते। अर्थात् ज्ञानपूर्व परब्रम्ह रूप अधिष्ठान पर नाम रूपादिक जो विवर्त है वे ज्ञानोत्तर उसी प्रकार के विवर्त नही हो सकते। ज्ञानपूर्वक व ज्ञानोत्तर जो ये दो विवर्त रहते है उन्ही का भेद बतलाने के लिये इन दो प्रकार के दृष्टान्तो का शाकर तत्वज्ञान मे उपयोग किया गया है। ज्ञानपूर्वक विवर्त में अज्ञान रहने के कारण उसे अज्ञानपूर्वक विवर्त कहा जा सकता है और ज्ञानोत्तर अज्ञान की निवृत्ति होने के कारण उसे ज्ञानपूर्वक विवर्त कहा जा सके। यह ज्ञान और अज्ञान का भेद अधिष्ठान के ज्ञान अथवा अज्ञान को ध्यान मे रखकर किया गया है। अर्थात् अधिष्ठान का ज्ञान जिसमें लुप्त होकर अधिष्ठान के धर्मो के विपरीत धर्मो की प्रतीति होती है उसे अज्ञानपूर्वक विवर्त कहना होगा और इसके विरुद्ध जिसमे अधिष्ठान के ज्ञान को कायम रखकर प्रतीति होती है उसे ज्ञानपूर्वक विवर्त कहना होगा।

ज्ञान होने के बाद ज्ञानी की मुक्ति की सत्ता किस प्रकार मानी जाए यह प्रश्न शांकर वेदान्त में उपस्थित किया गया है। यदि मुक्ति की सत्ता सद्रूप मानी जाती है तो ब्रम्ह एक ही सत्य होने के कारण द्वैत निर्माण होगा। वह यदि असत्य मानी जाती है तो उसे अज्ञानरूप मानना होगा। किन्तु यह स्थिति अज्ञान का नाश कर प्राप्त हो जाने के कारण उसे अज्ञानरूप नही माना जा सकता। यदि सदसद्रूप माना जाता है तो ये दोनों धर्म विरुद्ध होने के कारण उसकी कल्पना नही की जा सकती। यदि उसे सदसद्रूप से भिन्न अनिर्वचनीय माना जाय तो वह भी संभव नही है क्योकि

अनिवचनीय सत्ता भ्रम की या अज्ञान की होती है। फिर इसे किस प्रकार माना जाए ? अद्वत वेदान्त में कई विद्वानो ने इसे पचम प्रकारक माना है। इसका कारण यह है कि चारो प्रकार के अतर्गत वह नही आ सक्ती। ज्ञानी पुरुप विदेह मुक्ति की प्राप्ति होने तक तो स्फुरणरूप रहता है। उसकी यह दशा अद्वैत रुप होने के कारण यद्यपि द्वत-मूलक नही मानी जा सक्ती तथापि स्फुरणरूप होने के कारण पूणतया अभिन भी नही मानी जा सकती। इस दशा में स्फुरण होने के कारण विदेह मुक्ति समान वह एकरुप नही हो सकती। दूसरे शब्दो में वह दशा स्फुरणरूप होने के कारण उसका अस्तित्व विवतरुप है किन्तु उसमें अधिष्ठान के ज्ञान का लोप होने का दोप न होने के कारण उसकी विवतता अज्ञानयुक्त विवतता के समान नही है। उसका स्वरूप बतलाने के लिये यदि दृष्टान्त ही देना हो तो यह कहा जा सकता है कि सुवण पर प्रतीयमान होने वाले अलकार के समान सच्चिदानदरूप ब्रम्ह पर प्रतीयमान होने वाला वह ज्ञानरूप ब्रम्ह या चतन्य का स्फुरण है। उसकी विवतता इस अवस्था में भी कायम रहती है। किन्तु अज्ञानजन्य विवतता से भेद बतलाने के लिये दूसरा कोई समपक शब्द अद्वत वेदान्त में उपयोग में नही लाया गया है। अद्वत वेदान्त के कतिपय ग्रथो में इसे पचम प्रकारक कहा गया है, लेकिन उस पचम प्रकारक की कल्पना अद्वैत वेदान्त का अध्ययन करने वाले विद्वानो को व्यवस्थित रूप से नही आ पाती। उसे समुचित शब्द से व्यक्त करना आवश्यक है।

इस स्थिति को समुचित शब्द में व्यक्त करने का पहला महान् यत्न विदभ के प्रसिद्ध जन्माध सत श्री गुलाबराव महाराज ने भारतीय दशनशास्त्र के इतिहास में पहली बार किया है। उन्होने शाकर वेदान्त का विवत शब्द लेकर उसमें अन्तर्भूत रहने वाले अज्ञान की कल्पना निकालने के लिये अनध्यस्त शब्द का प्रयोग किया। अधिष्ठान और भास में प्रतीत होने वाले भेद को मिटाकर तथा अधिष्ठान के ज्ञान को कायम रखकर जो भास रहता ह उसकी सत्ता विवतरूप है पर विक्षेप रूप प्रतीति होने के कारण विवत यह कहलाया जाता है, तथापि वह विवतता अधिष्ठान का ज्ञान लुप्त कर, न रहने के कारण उसे अध्यस्त नही कहा जा सकता। रज्जु-सप, शक्तिका-रजत् इत्यादि दृष्टान्त इसी दृष्टि से अध्यस्त कहे जाते ह और ज्ञानोत्तर रहने वाले ज्ञानी की स्थिति तथा ज्ञानोत्तर प्रतीत होने वाला नाम, रूपात्मक जगत्, ज्ञानी की ज्ञान दशा, ईश्वर तथा शरीरधारी होते हुए भी सच्चिदानद रूप रहने वाले भगवान् के अवतार, शरीर इत्यादि अनध्यस्त विवत कहे जाते ह। शाकर वेदान्त के पूणतया अनुयायी होते हुए भी अद्वैत सिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती, अप्पया दीक्षित, श्रीधराचाय इत्यादि ज्ञानियो ने ज्ञानोत्तर भक्ति को स्वीकार किया है और उनकी भक्ति का आलम्बन जो भगवद्विग्रह है, वह अनध्यस्त विवत होने के कारण उनके अद्वत ज्ञान में विरोध उत्पन्न नही हो पाया। महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के आचाय श्री ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि तथा हिन्दी के तुलसीदास इत्यादि सतो ने अद्वत तत्वज्ञान का पूणतया स्वीकार किया है। फिर भी उन्होने भक्ति का प्रतिपादन किया ह। इस प्रतिपादन को देखकर कई विद्वानो के सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि इन सतो ने अद्वैत ज्ञान तथा भक्ति का समन्वय किस किस प्रकार किया। यह समस्या एक ही पारिभाषिक शब्द से हल हो सकती थी और वह शब्द है अनध्यस्त विवत। भगवान् और भक्तो के प्रेम-व्यवहार में भगवान् और भक्तो के शरीर अनध्यस्त विवत रूप होने के कारण वे ब्रम्ह से भिन्न नही रहते, तुलसीदासजी के सगुण ब्रम्ह भगवान् श्री रामचद्रजी, इस दृष्टि से अनध्यस्त विवत होने के कारण उनका अद्वैत ज्ञान तथा श्री रामचद्रजी के आलम्बन को लेकर उनके द्वारा की गई भक्ति उनके तत्वज्ञान के विरोधी नही है। ज्ञान और भक्ति का समन्वय इस नए सिद्धान्त से तत्वज्ञान के इतिहास में श्री गुलाबराव महाराज ने किया है और इस मध्यप्रदेश की जनता की दृष्टि से एक गौरव और अभिमान की बात यह है कि इस नए सिद्धान्त के आविष्कारकर्त्ता इसी प्रान्त के है। श्री गुलाबराव महाराज का जन्म अमरावती जिले में माधान गाव में १८८७ में हुआ और १९१५ में वे ब्रम्हीभूत हो गए। वे जन्माध थे। उन्होने अपनी केवल २२ वप की आयु में वेदान्त, साहित्य, आयुर्वेद इत्यादि विविध विपयो पर २८ ग्रथ मराठी में लिखे ह। उनके सभी ग्रथो में प्राय इस अनध्यस्त विवत के सिद्धान्त का विवरण आया है जो उनकी अलौकिक बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

मध्यप्रदेश में ग्रामीण जागृति

श्री गोरेलाल शुक्ल

इस देश के जीवन मे किसी भी राजसत्ता ने गांव गाव का जीवन नियंत्रित करने का प्रयास नही किया। पुराण और इतिहास इस वात की पुष्टि करते है। गांव की व्यवस्था और नियंत्रण वही के रहनेवाले कुछ व्यक्ति किया करते थे, जिन्हे स्थानिक जनता का विश्वास और आदर प्राप्त रहता था। इसे आज हम पचायत प्रथा के नाम से जानते हैं। रामायण काल मे पाच पचों की राय से ही राजकाज चलाया जाता था, भले ही वह गांव के स्तर पर हो या राजधानी के स्तर पर। महाभारत काल मे भी यही परिपाटी थी। शरशय्या पर पडे भीष्म पितामह के पास जव पाडवगण मार्गदर्शन के लिये पहुंचे तव पितामह के कुशल प्रश्नो मे एक प्रश्न ग्रामणी के विषय में था। ये ग्रामणी वर्तमान समय के पंचो के पर्याय थे। मौर्य काल से लेकर मराठों के समय तक पचायतो का अस्तित्व इतिहास की सामग्री है।

उत्तरदायित्व देने से ही उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होती है। हमारे इतिहास मे जव तक पंचायत प्रथा सजीव रही तब तक ग्राम्य क्षेत्रों की जनता सवल, स्वावलम्बी और सुखी रही यह निर्विवाद है। गत दो तीन सौ वर्षो मे सत्ता का उत्तरोत्तर केन्द्रीकरण होता गया। सदियो से जो जिम्मेदारियां गांवों के हाथ मे थी वे क्रमशः लुप्त होती गईं और उसी अनुपात में वहां की जनता परमुखापेक्षी और अकर्मण्य वनती गई।

यह समझना वहुत वडी भूल होगी कि गांवों को स्वयंपूर्ण वना देने से ही देश सुखी और वलशाली हो जायेगा। देश एक श्रृंखला है। सात लाख गांव इसकी कडियां है। अलग अलग कडियों का कोई मूल्य नही ; उनमें कोई शक्ति नही। किन्तु जब कडिया श्रृंखलावद्ध होती है तव सशक्त वनती है और सार्थक भी। गावों का स्वायत्त शासन इस वड़ी तसवीर को सामने रखकर चले तभी देश सुखी और सवल वनेगा। जव तक देश मे शाति रही और आवागमन निरापद रहा तव तक गांवों का जीवन उन्मुख रहा और राष्ट्रीय जीवन को उनसे पोषण मिलता रहा। ग्यारहवी सदी के आसपास देश की जीवन-धारा कुठित हुई। न केवल राजनीतिक क्षेत्र मे वडे वडे उतार चढाव आने शुरू हुये वरन् सामाजिक क्षेत्र मे एक भूचाल ही आ गया। धार्मिक एकता की भावना से अनुप्रमाणित और ऊँच-नीच के भेदभाव से रहित एक विदेशी समाज का धक्का हमारा जर्जरित समाज न सह सका और उसके पैर लडखडाने लगे। अराजकता और सामाजिक संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि हमारा ग्रामीण जीवन अधिकाधिक अतर्मुखी वनता गया। वाहर की दुनिया से उसका सम्पर्क कम होता चला गया और कूपमंडूकता घर करती गई। गत तीन सौ वर्षो में गांवों पर दुहरी मार पड़ी। देश के एक सजीव अग होने की भावना तो उनमे रही ही नही ऊपर से रही सही जिम्मेदारियां भी उनसे छीन ली गई। रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि वहिरंग की दरिद्रता अनिवार्यतः अंतरंग को भी दरिद्र वना देती है। हमारे गाव धन से दरिद्र तो थे ही, मन से भी दरिद्र हो गये। अज्ञान ने अंगद के समान पाव जमाये। आशा और उमंग का स्थान नीरसता और निराशा ने ले लिया। जीवन परिश्रम और वुभुक्षा का एक शुष्क क्रममात्र रह गया।

आज से प्रायः पचीस वर्ष पूर्व ग्रामीण जीवन की अमावस्या थी, यह कहना अत्युक्ति न होगा। ऐसा गहरा अन्धकार छाया हुआ था कि कहीं से प्रकाश की एक रेखा भी दृष्टिगोचर नही होती थी। स्वयं अपने हित के लिये प्रयत्न करना तो कोसों दूर रहा, ऐसी वातों की ओर लोग कान तक नही देते थे। यह जड़भरत का वैराग्य नही था, जिससे देवता प्रसन्न होते थे। यह कुम्भकर्ण की निद्रा थी, जिस पर देश के हितचिन्तक आंसू वहाते थे। मध्यप्रदेश के गांव कोई अपवाद नही थे। सन् १९२० ई. मे एक पचायत अधिनियम द्वारा गांवों को कुछ जिम्मेदारियां दी गईं। पर इनका क्षेत्र इतना संकुचित था कि ग्रामीण जीवन पर इनका कोई प्रभाव नही पडा। योजना निष्प्राण थी अतः गतिहीन भी। २५ वर्षो मे केवल १,१०० पंचायते मध्यप्रदेश मे स्थापित हो पाईं, जवकि गांवों की संख्या ४८,००० है। तहसील के स्तर पर लोकल वोर्ड और जिले की सतह पर डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल काम कर रही थी। किन्तु उनका विधायक कार्य शिक्षा तक ही सीमित था। उनकी दो प्रमुख कमजोरियां थी जो उनकी कार्यक्षमता को अत्यधिक सीमित वनाती थी। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं और सरकार के वीच एक गहरी खाई थी। दोनो अपने तईं काम

किया करती थी और परस्पर कोई समन्वय नहीं था। इससे इन संस्थाओं को सरकारी संगठन और साधनों का कोई लाभ नहीं मिलता था। आर्थिक अवस्था अच्छी न होने के कारण ये संस्थायें न तो विभिन्न विधायक कार्य हाथ में ले सकती थीं और न उनके लिये कर्मचारी ही रख सकती थीं।

जिन क्षेत्रों में मालगुजारी प्रथा थी वहां जन जीवन का अंधकार और भी गहरा था। गांव का नेतृत्व स्वभावतः मालगुजार के हाथ में रहता था किन्तु उसे गांव के उन्नति की चिंता क्यों होने लगी? लगान वसूल कर लेने और दैनिक जीवन में तरह तरह की सुविधायें पा लेने में ही वह अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता था। एक साधारण किसान की कोई आवाज नहीं थी। अपनी बेहतरी के बारे में सोचने का या कोशिश करने का उसे कोई मौका नहीं था। उसकी आंखों के सामने कोई मंजिल नहीं थी और न उसके मन में कोई आशा या उमंग।

गांधीजी के दूसरे सत्याग्रह आंदोलन ने एक अभूतपूर्व चेतना को जन्म दिया। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक नवीन संकल्प और उत्साह की लहर दौड़ी और गांव भी इससे अछूते न बचे। इस चेतना का रूप मुख्यतः राजनीतिक था। लोगों ने समझना शुरू किया कि परतंत्रता एक अभिशाप है। स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे प्राप्त करके तब हमें विश्राम लेना है। गांधीजी जानते थे कि केवल राजनीतिक आन्दोलन से ही देश स्वतंत्रता के योग्य नहीं होगा। जहां हम कुछ नष्ट करने जा रहे हैं वहां कुछ निर्माण भी करना होगा। इसीलिये उन्होंने राजनीतिक कार्यक्रम के साथ ही साथ विधायक कार्यक्रम पर भी जोर दिया। उन्होंने "गांव की ओर" का नारा बुलन्द किया और खादी और कुटीर उद्योग को स्वतंत्रता-संग्राम के अमोघ अस्त्र घोषित किये। इस आन्दोलन से प्रभावित हो सरकार ने स्वयं ग्रामोन्नति की ओर कुछ ध्यान देना प्रारंभ किया। कुछ गांवों में ग्राम सुधार का कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। पर सार्वजनिक सहयोग न मिलने के कारण इन कार्यक्रमों का रूप सरकारी ही रहा और ये कहीं भी पनप न पाये। सरकारी कार्यकर्ताओं में एक ही व्यक्ति अपनी लगन के कारण उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सका और वह था कर्नल ब्रायन। उसने ग्राम सुधार की एक व्यावहारिक योजना तैयार की और इसके द्वारा पंजाब के कई गांवों में नया जीवन फूंका। संभवतः भारत सरकार के सैनिक विभाग की सक्रिय सहानुभूति और पंजाब के गांवों में सैनिकों का बाहुल्य उसकी सफलता के मूल में था। मध्यप्रदेश में स्थानिक परिस्थिति के अनुसार न तो कोई सर्वांगीण योजना ही बनाई गई और न किसी सरकारी कार्यकर्त्ता ने कर्नल ब्रायन के समान ग्राम सुधार को अपना "मिशन" ही बनाया।

१५ अगस्त, १९४७ से भारतवर्ष के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। जनता और शासन के बीच की खाई मिटी और पहली बार दोनों ने मिलकर देश को सुखी और समृद्ध बनाने की ठानी। मध्यप्रदेश में एक साथ ही कई उल्लेखनीय कदम उठाये गये। एक नया पंचायत एक्ट बनाया गया जिसके अनुसार गांवों की व्यवस्था और विकास का कार्य तथा न्याय दान अलग अलग कर दिये गये। गांवों की उन्नति से संबंधित सारे कार्य ग्राम पंचायतों को सौंप दिये गये और उन्हें भरपूर आमदनी के जरिये दिये गये। डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल का अन्त कर दिया गया और उनके स्थान पर जनपद सभायें स्थापित की गईं। इस प्रकार शासन की इकाई छोटी कर दी गई जिससे विकास का कार्य प्रभावशाली ढंग से चल सके और सामाजिक सेवाओं (सोशियल सर्विसेस) का लाभ अधिक से अधिक जनता को मिल सके। यह प्रयोग एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है क्योंकि उसने पहली बार नौकरशाही और जनता के प्रतिनिधियों के बीच का भेदभाव दूर करके उनका संश्लेषण (सिनथेसीस) किया। इस संस्था का जनपद के जीवन से संबंधित सारे कार्य दिये और इनके संपादन के लिये आवश्यक अर्थ और कर्मचारियों की व्यवस्था की गई। सदस्यों और मुख्य कार्यपालनाधिकारी के बीच काम का बटवारा इस चतुराई से किया गया कि जिससे जनता की इच्छानुसार नीति निर्धारण हो और नीति का परिपूरण बिना किसी बाधा के सुचारू रूपसे चले। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन संस्थाओं और शासन के बीच की दीवार टूटी, कृत्रिम भेदभाव मिटा और गांवों की जनता पर अपनी बेहतरी की जिम्मेवारी आई।

मालगुजारी प्रथा का अन्त एक आर्थिक सुधार कहा जाता है। वास्तव में यह उससे कहीं अधिक है। इससे न केवल किसान को आर्थिक लाभ हुआ वरन उसके जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया। किसी मशीन का बेकाम पुर्जा होने के बजाय वह अपने आप को एक हस्ती समझने लगा और उसे स्वयं पर विश्वास जागा। सदियों के मौन के बाद अब उसका कंठ फूटा।

स्वतंत्रता मिलते ही हैदराबाद की समस्या ने विकट रूप धारण किया। उस समय इस रियासत की सीमा पर रहने वाली जनता को बड़ी बड़ी यंत्रणाओं का सामना करना पड़ा। इस संकट ने मध्यप्रदेश में एक अभूतपूर्व आंदोलन का सूत्रपात किया। या कहिये कि अभिशाप में से वरदान जागा। गांवों की जनता सदियों के अत्याचार

के कारण दवी और सहमी हुई थी। वह अपनी मदद आप कर सकने मे असमर्थ हो चली थी और उसमें अनुशासन का अभाव था। करीव ८० सैकड़ा जनता कठिनाई के समय सहारा दे सकने के वजाय खुद ही सहारा मांगती थी। सन् १९४७ ई. के नववर मास मे शासन ने निश्चय किया कि हैदरावाद की सीमा पर स्थित गांवो के निवासियो को आत्मरक्षा के लिये तैयार किया जाए। अकोला, वुलढाणा, यवतमाल और चादा जिलो मे जो अनुभव आये उससे यह हो गया कि ग्रामीणो में वलवुद्धि या त्याग की कमी नही। ये गुण उनमे सुषुप्त है। उन्हे केवल जागृत करना है। जहां सौ आदमियो के शिक्षण की व्यवस्था थी वहा हजार आदमी सामने आये। लोणार शिविर में एक नवयुवक की एक मात्र संतान की मृत्यु हो गई पर उसने घर जाने से इन्कार कर दिया। मुझे वह दृश्य अभी तक स्मरण है जव मुख्य-मंत्री जी लोणार आये और उन्होंने गद्‌गद् होकर इस नवयुवक की पीठ ठोकी। उपयुक्त प्रयोग ने होमगार्ड की ग्रामीण शाखा को जन्म दिया और जिलो-जिलो मे सैकड़ो की संख्या मे ग्रामीण नवयुवक अनुशासन और आत्मविश्वास का पाठ सीखने लगे। एक दूसरी दिशा मे भी जन-जागरण को प्रेरणा मिली। ग्राम-सैनिको के प्रशिक्षण मे ग्राम-सुधार का भी समावेश किया गया था। प्रत्येक सैनिक के सामने यह आदर्श रखा जाता था कि उसने जनता के पैसे से जो ट्रेनिग पाई है उसका कुछ लाभ जनता को देना उसका धर्म है। यदि वह रोज आधे घंटे का समय भी अपने गांव की तरक्की के लिये देता है तो वह वहुत वड़ी देशसेवा करता है। हर जिले में एक गाव चुना गया जिसमें एक अधिकारी के निरीक्षण मे स्थानिक सैनिक ग्राम-सुधार का कार्य करते थे। इन प्रयत्नों से जो प्रत्यक्ष लाभ हुआ, वह अधिकांश स्थानों मे स्थायी नही रहा। सैनिको द्वारा सुधारी गई गलिया फिर ऊवड़-खावड़ हो गई। उनके द्वारा साफ किये गये तालाब फिर सिवार से भर गये और उनके द्वारा वनाये गये सोकपिट दुबारा नही खोले गये किन्तु इन प्रयत्नो का अप्रत्यक्ष परिणाम महत्त्वपूर्ण रहा। स्वयसेवको के द्वारा ग्राम-सुधार का प्रयत्न इतने वडे पैमाने पर और इस सुव्यवस्थित तरीके से अव तक नही किया गया था। ऊची जाति और घरो के लड़के हंसी खुशी से सड़क साफ करे और कचरे की टोकरी कंधे पर लेकर चले यह गावो के लिये एक अपूर्व दृश्य था। अधिकाश सैनिकों के निम्न मध्यम वर्ग होने के कारण सर्व साधारण पर उनका जितना प्रभाव पडना चाहिये था उतना नही पड़ा। फिर भी इन सैनिको के उदाहरण ने गाव वालो को सोचने के लिये वाध्य किया।

संविधान ने प्रत्येक वयस्क नागरिक को मताधिकार दिया है। देश का शासन किस प्रकार चलेगा इसका निर्णय वस्तुत: उन लक्षावधि लोगो के हाथ मे आ गया जो अपना नाम तक नही लिख सकते और जिन्हे गाव के बाहर की दुनिया का ज्ञान ही नही है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओ का कार्यक्षेत्र बढाया गया है और उन्हे अधिकाधिक अधिकार दिये गये है। यदि सर्वसाधारण को इन संस्थाओ की उपयोगिता विदित नही है तो इनका उद्देश्य कभी सफल नही होगा। भारत जितना विशाल है उतना ही गरीब है। ३६ कोटि जनता के जीवन-स्तर को ऊंचा करना कोई हंसी-खेल नही है। इसके लिये प्रत्येक नागरिक को प्रयत्न करना होगा। यह वह तभी करेगा जवकि उसे नये युग मे अपने कर्त्तव्यो का ज्ञान होगा और वह यह समझने लगेगा कि समष्टि के कल्याण में ही उसका कल्याण निहित है। इस विचार के प्रसार के लिये समाज शिक्षण योजना का सूत्रपात किया गया। देश मे सर्वप्रथम मध्यप्रदेश ने ही समाज शिक्षण का महत्त्व पूरी तरह आंका और इसके प्रसार के लिये धन-जन सवंधी सारी सुविधाए दी। इसकी साक्षरता योजना के अतर्गत लाखो स्त्री-पुरुप साक्षर हुए और इससे भी महत्त्व की वात तो यह हुई कि श्राव्य-साधनो द्वारा लाखो व्यक्तियो तक नागरिकता का संदेश पहुंचाया गया। फिल्म और कलापथक, रेडियो और चलते-फिरते पुस्तकालयो ने ग्रामीण जनता के लिये वह गवाक्ष खोल दिया जिससे कि वे घर वैठे देश-विदेश का दर्शन कर सकते थे।

इस राज्य में और देश के अन्य भागों मे ग्राम-सुधार के जो प्रयत्न हुए उनसे कुछ आधारभूत वाते लक्ष्य मे आई। सवसे महत्त्व की वात तो यह थी कि वाहर के कार्यकर्त्ता और पैसे से गांवो की स्थायी उन्नति नही हो सकती। जनता के लिये साथ काम करने से ही गांव आगे वढेगे। हमारे गावो की सवसे वड़ी आवश्यकता स्थानिक नेतृत्व का निर्माण है। सरकारी कर्मचारियों या सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ के सारे प्रयास इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए होने चाहिए ताकि जैसे-जैसे स्थानिक नेता सामने आये वैसे-वैसे ये पीछे हटते जाएं। दूसरी वात यह देखने मे आई कि विभिन्न सरकारी विभाग अपने-अपने क्षेत्र मे भरसक कार्य करते है किन्तु उनके कार्यो मे परस्पर समन्वय न होने के कारण [illegible] प्रभाव नगण्य-सा ही होता है। साथ ही कई कर्मचारियो के गाव मे जाने के कारण [illegible] और यह नही सोच पाता कि आखिर वह क्या

करे और क्या न करे। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार के विभिन्न विभागो की ओर से एक ही प्रतिनिधि गाव में जाए और विकास कार्यों में लगे हुए विभिन्न विभागो का परस्पर समन्वय रहे। अनुभव के इस निचोड का लाभ उठाते हुए सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा का सगठन किया गया। इनके द्वारा न केवल विकास काय तेजी से आगे बढ रहा है वरन् प्रशासन की परम्परा में भी क्रातिकारी परिवतन हो रहा है। समुचित आर्थिक सहायता और तज्ञो (टेक्निकल एक्सपर्टस्) की सुलभता से जनता का विश्वास उत्तरोत्तर बढ रहा है और वह मुक्त-हस्त से सहयोग दे रही है।

जन-जागरण में चुनाव का जो हाथ रहा है उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। वास्तव में नवीन युग का सदेश और विभिन्न क्षेत्रो में राष्ट्र का कत्तव्य चुनाव ने ही घर-घर पहुचाया है। सन् १९५१-५२ के साधारण चुनाव ने किसान किसान को विभिन्न विषयो का खडन-मडन सुनने का अवसर दिया। इसी तरह जनपदो के चुनावो में गाव-गाव और घर-घर कार्यकर्त्ता गये। चर्चा तहसील तक ही सीमित रहती थी, फिर भी गावो के लोगो ने जाना कि तहसील का कारोबार किस तरह चलता रहा है और उसमें उनकी आवाज की क्या कीमत है। कुछ छोटे पैमाने पर ग्राम-पचायतो के चुनाव भी यही कार्य कर रहे है।

आज से ३० वष पूर्व गाधीजी ने जो सपना देखा था उसकी ओर देश की भाति मध्यप्रदेश भी बढ रहा है। जनता देश की गतिविधि समझने लगी है और इसके पुनर्निर्माण के लिए कमर कस रही है। गावो पर से अधकार का आवरण उठता जा रहा है और उनमें आशा की स्वर्णिम-आभा खिलने लगी है। इस जागरण के निर्माण में निस्सदेह शासन का बहुत बडा हाथ रहा है क्योकि अपनी योजनाओ के द्वारा उसने गावो में स्वावलम्बन और आत्म-विश्वास की नीव डाली है। उच्चतम देश-प्रेम से प्रेरित हो सैकडो व्यक्तियो ने ग्रामीण जागृति के लिए जो प्रयत्न किये है उनका उल्लेख न करना सत्य के प्रति अपराध होगा। ऐसे निस्वार्थ, विधायक कार्यकर्ताओ के प्रति ग्रामीण-समाज सदा ऋणी रहेगा।

विद्यामन्दिर योजना

श्री नित्येन्द्रनाथ शील

इस प्रदेश मे शिक्षा के सुधार की अपेक्षा, शिक्षा का प्रसार अधिक महत्व का प्रश्न है। पिछडे हुए इलाकों मे हजारों ऐसे छोटे-ग्राम है जिनकी जनसख्या १००/१२५ से अधिक नही है ; वहा साधारण स्कूल चलाना अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योकि स्कूल की औसत हाजरी १५/२० के अन्दर ही रहती है। इसलिये प्रति वालक पर शिक्षा का औसत खर्च अत्यन्त अधिक पड़ जाता है। यह भी अच्छी तरह देख लिया गया है कि किसी भी स्कूल मे आसपास के गांवों के लडके वहुत कम आते है।

इस तरह के छोटे २ ग्राम इस प्रदेश मे कम से कम २०,००० होगे। प्रदेश के कुछ हिस्सों में शिक्षा का कुछ भी प्रवन्ध न किया जाय, यह एक अत्यन्त अवांच्छनीय परिस्थिति है। इन ग्रामो के वच्चो को पढाने के लिये आज हमारे पास न कोई उपाय है, और न हमारी आर्थिक परिस्थिति ही ऐसी है कि हम कुछ विशेष इस दिशा में अग्रसर हो सकें। इन ग्रामो मे स्कूल खोलने से वार्षिक खर्च ८ करोड से भी अधिक होगा।

महात्माजी ने इस कठिन समस्या को हल करने के लिये जो उपाय सोचा था वह आज की वुनियादी शिक्षा से कुछ विभिन्न था—शिक्षा विभाग के अधिकारी जव पहिले पहल उनसे मिले, उन्होंने उनसे स्पष्ट कह दिया था, कि मै स्कूल को स्वावलंवी वनाना चाहता हू। वच्चों को तीन घन्टे तक सूत कातना पड़ेगा। कताई की आमदनी से ही शिक्षक का वेतन दिया जावेगा। यही उनकी प्रथम कल्पना थी। इस योजना में धीरे २ सुधार किये गये—यहां तक कि उसका स्वरूप ही वदल गया। आज वुनियादी शिक्षा, शिक्षा सुधार की योजना वन गई है। वुनियादी स्कूलो पर खर्च दूसरे स्कूलो से अधिक हो जाता है। इसी समस्या को हल करने के लिये शुक्लजी ने एक दूसरा उपाय सोचा था और वह उनकी विद्यामन्दिर योजना थी।

इस प्रान्त मे जमीन की कीमत अधिक नही है। वडे किसान जो नौकरों के भरोसे खेती करते है जमीन से वहुत कम आमदनी पाते है। इसलिये उन्हें आशा थी कि इस तरह के वडे २ भूमिस्वामी सहज ही में अपनी कुछ जमीन शिक्षा के विस्तार के लिये दान करेंगे। मन्दिर, मठ इत्यादि संस्थाओ को चलाने के लिये भूमिदान की प्रथा इस देश में प्राचीन काल से चल रही है, इसलिये उन्होने अपनी पाठशाला का नाम विद्यामन्दिर रखा। वे चाहते थे कि दूर दूर के ग्रामो में जहां हम स्कूल नही खोल सकते, इस तरह से प्राप्त जमीन पर एक शिक्षिक युवक को ले जाकर हमेशा के लिये वसाया जावे। उसकी जीविका उस जमीन की आमदनी से चले और वह उस ग्राम के वालको को शिक्षा देवें, यह योजना केवल उन्ही ग्रामो के लिये थी, जहा स्कूल नही है।

शुक्लजी की प्रथम कल्पना वहुत सीधी सादी थी। इस देश की प्राचीन प्रथा, जिसके प्रमाण हमे पुराने शिला-लेखो से लेकर सन् १८३७ में लिखी गई एडम साहव की रिपोर्ट तक में मिलते है, उनकी योजना का आधार था। महात्माजी की तरह शुक्लजी भी केवल आर्थिक समस्या को हल करना चाहते थे।

इस योजना के लिये पहिली आपत्ति आई कि विद्यामन्दिर गुरु यदि खेती करेगा तो वह पढायगा कव? सिलेवस कैसे पूरा होगा? विद्यामन्दिर के लडके आगे चलकर मिडिल स्कूल में कैसे चल सकेंगे? इन आपत्तियों को दूर करने के लिये योजना में कई सुधार किये गये।

खेती मोहकमें से सुझाव आया कि विद्यामन्दिरो मे खेती विभाग के जमादार रखे जावें। वे वहां आदर्श तरीके से खेती करें ताकि ग्रामवासियों को शिक्षा मिले और साथ ही साथ खेती विभाग का भी काम चले। तालीमी संघ से सुझाव आया कि विद्यामन्दिरो में वुनियादी शिक्षा दी जावे।

उत्साह के आवेग में ये सारे सुझाव स्वीकार कर लिये गये। विद्यामंदिर योजना की रूपरेखा बडी सुन्दर और आकर्षक बन गई। केवल डी पी आई डॉ सेनगुप्ता ने एक दिन कुछ दबी हुई जबान से कहा था कि ये सब आभूषण ही योजना को दबाकर खतम कर देंगे। वे शीघ्र ही अवकाश लेकर चले गये, बात वही रह गई।

सन् १९३९-४० तक सारे प्रात में ८३ विद्यामंदिर खुल गये, जिनमे कुल ३,०४४ एकड जमीन मे काश्त होती थी। जब तक इनकी देखरेख ठीक से होती रही, वे चलते रहे। हर वर्ष स्वावलंबी विद्यामंदिरो की सख्या बढती गई। सन् १९४२ में केवल ५ विद्यामंदिर ऐसे रह गये जो स्वावलम्बी नही थे। उनमे कताई का काम भी खूब होता था। उन दिनो लोग विद्यामंदिर देखकर प्रसन्न होते थे। कई स्थानो म तो बडे मनोरम दृश्य दिखाई देते थे।

इस प्रदेश के देहातो में एक पुरानी कहावत है "खेती आप सेती"—खेती खेत वाले से ही चलती है। यह धधा ऐसा विचित्र है कि इसे वही चला सकता है, जिसकी जीविका उस पर निर्भर है। हमने चाहा था कि खेती मोहकमे का जमादार अथवा प्रबधकारिणी सभा के सदस्य खेती चलाकर गुरुजी का वेतन देगे। इस योजना के अदर सबसे बडी भूल यही थी। खेती जिसके हाथ गई उसी ने उसका नाजायज फायदा उठाया, गुरु को तनख्वाह नहीं मिली। जैसे जसे देखरेख में कमी होती गई वैसे वैसे विद्यामंदिर बिगडने गये और टूटने लगे।

विद्यामंदिर की सफलता के लिये जमीन बहुत अच्छी होनी चाहिये, रकबा २०-२५ एकड से अधिक नही होना चाहिये—रकबा अधिक होने से काम भी बहुत बढ जाता है। खेती का काम विद्यामन्दिर गुरु को ही सम्भालना पडेगा तब ही उसकी आमदनी से उसकी जीविका चल सकेगी। इसलिये यह हमें मजूर करना पडेगा कि विद्यामंदिरोकी पढाई दूसरे स्कूलो से कम होगी। फिर भी जहा आज घोर अधकार छाया हुआ है उन इलाको म विद्यामन्दिर टिमटिमाते हुए प्रदीपो की तरह सिद्ध हो सकते है। उनसे कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य होगा।

प्रदेश में आगे चलकर यदि भूमि वितरण का मौका आवे तो उस समय फिर एक बार इस योजना पर विचार करने का अच्छा अवसर आवेगा, क्योकि पिछडे हुए क्षेत्रो के छोटे छोटे ग्रामो में शिक्षा-विस्तार के लिये आज भी यह योजना काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

मध्यप्रदेश की वन-नीति

श्री कामताप्रसाद सागरीय

जंगल मंगल खान। जंगल जनता प्राण ।।

मनुष्य की सृष्टि गहन वनो में ही हुई थी। प्रारंभिक अवस्था मे वह अपना उदर-पोषण वन्य प्राणियों के मांस तथा वनों मे उपलब्ध कन्द-मूल, फल-फूल, आदि पर ही कर लेता था। धीरे धीरे जब उसकी वुद्धि विकसित हुई उसका ध्यान सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास तथा घातक प्राणियो से रक्षा करने के कष्टों को कम करने पर गया। उसने पशुपालन प्रारंभ किया और उनके तथा अपने रहने के लिये आश्रय वनाये। इस प्रकार गोत्रो अर्थात् गौओ के त्राताओ के रूप में समाज संगठन प्रारंभ हुआ। कालान्तर मे हमारे किसी प्रतिभावान् पूर्वज ने चुने हुए घासो के वीज स्वच्छ भूमि पर वोकर शस्योत्पादन किया। इस प्रकार कृषि का आविष्कार हुआ।

कृषिकर्म के लिये जव उसने उपजाऊ धरती पर खडे वनो को काटा और विखरी-पड़ी वनस्पति को दूर करने के श्रम को वचाने के लिये उसे जलाया तव उसे अनुभव हुआ कि राख से मिली मिट्टी पर उपज अच्छी होती ह। पर वर्षानु-वर्ष उसी भूमि पर कृषि करने पर जव उसकी उर्वरता क्षीण हो गई तव उसने स्थानान्तर कर दूसरे वनों को काटा और उस भूमि पर खेती की। इसी "दाहचा" प्रथा से जन-वन संघर्ष का श्री गणेश हुआ। समय पाकर यह प्रथा इतनी रूढ हो गई कि मनुष्य की यह धारणा सी हो गई कि उसकी उत्तरोत्तर उन्नति वनो का दाहचसंस्कार कर उनकी चिता पर ही निर्माण किया जा सकता है। ऐसे पुरुष-प्रकृति संग्राम में प्रथम विजय सर्वदा पुरुष की ही हुई क्योकि उसने वन विध्वंस का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

त्यक्त अनुर्वर भूमि स्वभावत: पुनः वनाच्छादित नही हुई जैसा कि मनुष्य का अनुमान था। फलत: आवश्यक वनोपज लकडी, ईंधन, घास आदि का अभाव हो गया। वर्षा का पानी, जिसे सोख लेने की वनतल भूमि मे क्षमता होती है, धरती में न समाने के कारण उसे काट कर वहा ले जाने लगा। इससे खेतो की शस्योत्पादन की शक्ति घटती गई। फलत: मनुष्य की जीवन समस्या क्रमश: जटिल होती गई, मानों प्रकृति ने प्रतिकार द्वारा पुरुष को चेतावनी दी कि उसकी विजय अस्थायी थी। मनुष्य का गर्व चूर्ण हुआ और उसे वोध हुआ कि प्रकृति की अवहेलना उसकी भूल थी जिसमे उसके आत्म-विनाश का विषवीज मिला हुआ था। हठात् उसका ध्यान भूक्षर-अवरोध और निकटस्थ वनों को चिरोपयुक्त वनाये रखने की ओर आकृष्ट हुआ। इस प्रकार वन-विज्ञान का जन्म हुआ। सच ही कहा है—आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।

स्वाभाविक वनों में, विशेषकर जवकि लम्वी अवधि से उनका अतिप्रयोग होता आया हो, वैज्ञानिक संवर्धन विधि सहसा लागू नहीं की जा सकती। ऐसे वनों में अनियंत्रित पातन के परिणाम स्वरूप उपयोगी वनस्पति की मात्रा घट जाती है और ऐसी अनुपयोगनीय वनस्पति का, जिसमें प्रतिकूल परिस्थिति के अवरोध की नैसर्गिक क्षमता होती है, वाहुल्य हो जाता है। अत: वन विवर्धन के लिये, पहिले उसका संरक्षण, फिर निरीक्षण, तदोपरान्त अनुसधानो द्वारा उचित उपचार का शोध और अन्त में इन अनुभवों का प्रयोग ऐसे क्रम की आवश्यकता पडती है। तव कहीं सतत उपयोगी वनस्पति का प्रादुर्भाव किया जा सकता है।

इस निर्दिष्ट ध्येय की प्राप्ति के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि वनस्वामी एक दूरदर्शी वन-व्यवस्था सम्वन्धी नीति निर्धारित करे और फिर उसे कार्यान्वित करने का प्रवंध करे।

ऐसी वन-नीति के मूल सिद्धान्त क्या होने चाहिये इसका निर्णय करने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वनों से समाज को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष क्या लाभ हो सकते हैं और वन-संवर्धन पर दुर्लक्ष्य तथा उनके प्रति उदासीनता से क्या हानि होने की संभावना है।

प्रत्यक्षत वनो मे काष्ठ, इधन, घास तथा अन्य वनोपज प्राप्त होती है जो स्थानीय वासियो की प्रधान आवश्यकतायें हैं। अतिरिक्त वन पदार्थ जसे इमारती लकडी, बास, लाख, हर्रा, आदि को बेचकर समाज हित-साधन के लिये धन प्राप्त किया जा सकता है, तथा वन व्यवस्था सबधी कार्यों में तथा वनोपज पर निर्भर उद्योगो से स्थानीय जनता को जीविकोपार्जन की सुविधा भी दी जा सकती है।

परोक्षरीति से, वन जल-वायु को समशीतोष्ण बनाते है, भूक्षर का अवरोध करते है तथा कृषिभूमि को अधिक समय तक आर्द्र रखते है जिससे सस्योत्पादन अधिक हो जाता है। वनविहार स्वास्थ्यकर होता है तथा वनश्री की शोभा मनोमोहिनी और स्फूर्तिदायिनी होती है। सच तो यह है कि सुसर्वधित वन प्रकृति की एक अत्यत कल्याणकारी देन है।

वनो से कृषि का घनिष्ट सबध है। इसीलिये किसी ने उन्हे कृषिकिंकर की सज्ञा दी है। पर वास्तव में ऐसा कहकर उनका अपमान-सा किया है। वनो से ही कृषि परिपोषित होती है, अत उन्हें कृषि-धात्री कहना ही उपयुक्त होगा।

वनो से पूरा पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है जब उनका यथाविधि अधिरक्षण, सवर्धन तथा परिपालन किया जावे। किंचित ही असावधानी या अतिप्रयोग से स्थलधर्म प्रतिकूल हो जाने पर वनो का क्रमश ह्रास होने लगता है और अन्त में वे पूर्णत नष्ट हो जाते है। फलस्वरूप कृषिभूमि तथा वनस्थली के स्थान में मरुमरीचिका का आधिपत्य हो जाता है। समाज में त्राहि त्राहि का चीत्कार प्रारभ हो जाता है। ऐसी गभीर परिस्थिति ही मनुष्य का उर्वराभूमि की प्राप्ति के लिये सघर्ष पर बाध्य करती है। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय वमनस्य तथा कलह का मूल कारण यही है।

मध्यप्रदेश एक पार्वत्य भूमिखड है जो उत्तर भारत के समतल प्रदेश और दक्षिण की उच्च समभूमि के मध्य स्थित है। प्रदेश का विस्तार १३१,००० वर्ग मील है जिसका लगभग आधा भाग वनाच्छादित है। पर वनो तथा कृषिभूमि का विभाजन सतुलित नही है। विदर्भ, नागपुर और छत्तीसगढ के मैदानी भागो में वन अपर्याप्त है, लोगो को इधन चारे की कठिनाई है जिसके कारण गोबर का खाद के लिये उपयोग न कर उसके कडे बनाकर जलाये जाते है और पेडो के पत्ते काट काट कर पशुओ को खिलाये जाते है। इसके विपरीत दूर के पहाडी भागो में वनो का बाहुल्य है और उनकी दशा भी अच्छी है, पर कही कही 'दाहैया' की कुप्रथा भी अभी तक चालू है।

औसतन प्रति १,००० व्यक्तियो पीछे १,७०० एकड कृषिभूमि, २,००० एकड वन भूमि और ७५० पशुओं का अनुपात आता है, जो यदि वन तथा कृषि भूमि का ठीक तरह उपयोग किया जावे, और पशु हृष्ट-पुष्ट रखे जावे तो बहुतही सतोषजनक होगा। पर अभी खेती की प्रति एकड उपज बहुत ही कम है और पशुओ की दशा बहुत ही गिरी हुई। वनो की दशा में भी बहुत कुछ सुधार सभव है विशेष कर उन वनो में जो कुछ समय पहिले तक निजी स्वामित्व में थे और अधाधुध कटाई और चराई के कारण नष्ट-प्राय हो गये है।

फिर भी प्रदेश में आवश्यकता से अधिक अन्न उत्पन्न होता है—विशेषकर चावल। जनता का जीवनस्तर अभी नीचा होने के कारण वनोपज की खपत कम है और भारी प्रमाण—में वृद्धि से अधिक—उसका निर्यात हो रहा है जिसे रोकना आवश्यक है। शासन द्वारा निर्धारित वन नीति का एक मात्र ध्येय यह है कि वन इस प्रकार सर्वधित किये जावे और उनका उपभोग इस तरह किया जाये कि जनता की निस्तार सबधी मागें सुविधापूर्वक पूरी होती रहे और साथ ही साथ वन स्वामी अर्थात् सरकार को वनो से अधिकाधिक आय होती रहे। इसी नीति के तत्त्वो का नीचे सक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है।

वनविशेष में परिस्थिति गुण तथा उन पर की माग के अनुकूल उपचार लागू करने के लिये वनो को चार वर्गों में विभक्त करने का अभिस्ताव नीति में किया गया है —

(१) तेज ढाल वाली पहाडियो पर के वनो में अतिप्रयोग से भूक्षर की आशका है। कुछ वन अनियत्रित कटाई और चराई से अब केवल नाममात्र के वन रह गये है। इन्हे विश्राति देना आवश्यक है जिससे वे स्वभावत पुन वनाच्छादित हो जावे। इन्हें "सरक्षण वन" कहा गया है।

(२) बडी इमारती लकडी तथा दूसरी वाणिज्यिक वनोपज उत्पन्न करने की क्षमता रखने वाले वनों मे उत्तरोत्तर अधिक आय प्राप्त करते रहने के लिए परिस्थिति के अनुकूल वैज्ञानिक विधिविशेष द्वारा सवर्धन करना आवश्यक है, जिससे उनमें उपयोगी वनस्पति का प्रादुर्भाव हो और वह ठीक तरह बढ सकें, जसे सागोन, साल, सेमल, सालई की लकडी, बास, आदि। इन्हें बृहद्वन की सज्ञा दी है।

(३) वे वन जो स्थिति तथा उनकी उत्पादन क्षमता के कारण जनता की निस्तारी मांग की पूर्ति के लिये समुपयुक्त हैं इन्हें निस्तार-वन कहा गया है।

(४) वनों के वे भाग जो वृक्षो के अतिपातन के फलस्वरूप अव नाममात्र के वन रह गये हैं पर जिनमें चराई के उपयुक्त घास उपलब्ध है, इन्हे उपवन की सज्ञा दी गई है।

संरक्षण वनों की दशा सुधारने तथा भूक्षर का अवरोध करने के लिये उनमे चराई तथा कटाई वन्द रखी जाती है। वृहद् वनों की व्यवस्था में, क्योंकि उनसे निरन्तर अधिकतम आय प्राप्त करना होता है, वहुत ही सावधानी की आवश्यकता पडती है। उनका सविस्तर पर्यवेक्षण तथा वृक्षो की परिगणना कर यह मालूम करना पडता है कि कहां किस वय के पेड समय समय पर, कितने प्रमाण मे उपलब्ध होगे। तत्पश्चात् उपयुक्त सवर्धन विधि द्वारा उनका पातन तथा परिपालन किया जाता है। वनो की व्यवस्था भी इसी प्रकार की जाती है; अन्तर केवल इतना ही है कि उनमे नई उपज वीज से या कृत्रिम वीच पैदा करने की आवश्यकता नही होती क्योकि अधिकाश उपयुक्त जाति के पेडो के ठूंठो से जो पीके निकलते है वही वढने पर उनसे छोटी लकडी प्राप्त हो जाती है।

मध्यप्रदेश के अधिकांश पशु, चारा और चराई के लिये समीप के वनों पर ही निर्भर हैं क्योकि चारे की खेती नही की जाती और खूटे पर वांध कर खिलाना वहुत महंगा पडता है। लगातार अनियत्रित चराई से वृक्षों और चराई के घासो को नुकसान होता है और क्रमशः उनका ह्रास होने लगता है। अतएव चराई पर नियंत्रण रखना आवश्यक समझा गया है। यह मध्यप्रदेश की वन-व्यवस्था की एक विशेषता है जिसकी ख्याति है। अत. उसका संक्षिप्त वर्णन अप्रासगिक न होगा।

प्रौढ पेड़ो के काट लेने पर नवजात पौधो को ठीक तरह वढने देने के लिये कुछ वर्षो तक चराई वन्द रखना आवश्यक समझा गया है। वाद मे लगातार चराई के परिणाम स्वरूप जव अच्छी घास की कमी हो जाती ह तव फिर कुछ वर्षो तक चराई वन्द कर दी जाती है जिससे घासो का वीज जमकर उससे नये पौधे आ जावे ऐसे चारण तथा सवार की अवधि वनविशेष पर निर्भर है। उदाहरणार्थ सागोन के वनो मे नई उपज की ५ वर्ष की वय तक रक्षा की जाती है। वाद मे १० साल की चराई के पश्चात् घास की उपज वढाने के लिये फिर तीन साल चराई वन्द रखना आवश्यक समझा गया है।

चराई का अधिकतम आपात भी वनविशेष के लिये निर्धारित कर दिया गया है। उतने ही पशु चराने की अनुमति दी जाती है जिससे प्रत्येक पशु को कम से कम वृहद् वनो मे तीन, निस्तार वनो मे दो तथा क्षुपवनों मे एक एकड़ भूमि उपलब्ध हो क्योकि यदि इससे कम भूमि उपलब्ध हुई तो वनो के ह्रास की आशका रहती है। साथ ही साथ जहा संभव है वहा चराई के लिये खुले वनों का आधा, एक तिहाई या चौथाई हिस्सा प्रति वर्ष वर्षा ऋतु मे वन्द रखा जाता है, जिससे उसमे घास क़े पौधो की संख्या वढ जावे।

उपयुक्त चारण-सवार की अवधि तथा आपात की अधिकतम तीव्रता अनुभवी वन-वैज्ञानकों के निरीक्षण पर आधारित है। सर्वोत्कृष्ट उपचार तो अनुसंधानो द्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है, जिसके लिये धन तथा विशेषज्ञों को सुविधा वननीति मे अभिस्तावित है।

इन नियंत्रणों के साथ ही साथ पशुस्वामियो की सुविधा के लिये और एक ही स्थान पर अधिक चराई न होने पावे, इस उद्देश्य से वनों को छोटे छोटे चराई के क्षेत्रो मे विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र मे किन किन गावों के कितने पशु चराये जा सकते हैं, यह निर्धारण करने के लिये गाव गाव मे परिपृच्छा करने के वाद एक चारण-योजना वनाई जाती है। इस योजना के अनुसार क्षेत्रो के दो प्रकार, सुगम तथा दूरस्थ, पशुस्वामियो के दो भेद, खेतिहर तथा अन्य और पशुओं के दो वर्ग, कृषिकर्म के लिये अनिवार्य तथा वाणिज्यिक माने जाते हैं। सुगम वनो मे किसानो के कृषिकर्म में उपयुक्त पशुओ को अधिमान दिया जाता है उनसे शुल्क भी कम लिया जाता है।

ऐसी विस्तृत चराई योजना का एक मात्र ध्येय यह होता है कि वनो को सतत उत्पादनशील रखते हुए आवश्यक पशुओं के चराने की अधिक से अधिक सुविधा दी जा सके।

उपरोल्लिखित वन-व्यवस्था संबंधी मूल-तत्वो का यथाविधि पालन किया जा सके इसी हेतु से जव कभी वनविशेष का वन कार्य सवंधी उपक्रम (वर्किंग प्लॉन) सशोधित किया जाता है तव वनाधिकारी द्वारा विहित वनोपचारो का एक विशेष आगम-अधिकारी द्वारा परिनिरीक्षण और फिर यथावश्यक परिवर्तन किया जाता है। उन क्षेत्रो मे जहां

वन अपर्याप्त है उपयुक्त भूमि का वन-खेती की विधि द्वारा वनीकरण किया जाना आवश्यक समझा गया है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण विदभ के "बबूल वन" है। खेती के लिये वनभूमि देना तभी उचित माना गया है जबकि ऐसा करने पर उस क्षेत्र की जनता की वनोपज सबधी माग की पूर्ति में कोई कठिनाई होने की सभावना न हो और अवनित भूमि पर स्थायी रूप से खेती की जा सके।

वन्य प्राणी वनो का ही एक अग है। अतएव वैज्ञानिक अध्ययन तथा मनोविनोद के हेतु, उपयुक्त स्थानो में उनको नैसर्गिक अवस्था में आश्रय देना तथा समीप के वनो से हिंस्र तथा हानिकारक वन्य प्राणियो का निर्मूलन आवश्यक है।

वनवासियो को जिनके बिना वन-कार्य पूरे नही किये जा सकते सुखपूर्वक बसने, तथा उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मनोविनोद की सुविधा देना भी वननीति का एक मुख्य अभिस्ताव है।

इस प्रकार की दूरदर्शी व जनहितकारी वननीति का अभिपूरण तभी सभव है जब जनता उसके उद्देश्यो को ठीक तरह समझे और उन्हें कार्यान्वित करने में शासन को योगदान दे।

जनता को यह समझाना है कि शासन का जिस पर वनो की सुव्यवस्था का भार है एक मात्र ध्येय वनो का सुधार कर उन्हें सन्तानोत्पादक तथा हितकर बनाये रखना ही है, तभी वहीं लोगो की निस्तारी मागो की सुविधापूर्वक तथा स्वल्प मूल्य में पूर्ति होना, तथा वनो से राष्ट्रहित साधन के कायो के लिये अधिकाधिक धन प्राप्त करना सभव है। यह तभी हो सकेगा जब जनता अपनी और विशेषकर भावी सन्तान की भलाई के लिये अपनी वनविध्वस तथा अतिप्रयोग की प्रवृत्ति पर निग्रह का अकुश लगावे। वास्तव में इस युग में प्रत्येक नागरिक का यही धर्म है।

उन दिनों का मध्यप्रदेश

श्री लज्जाशंकर झा

मेरे वालपन मे मध्यप्रदेश में शिक्षा का वहुत अभाव था। प्रदेशभर में कोई कॉलेज न था। सिर्फ एक सरकारी हाई स्कूल सागर में था और दो पादरियों के हाई स्कूल नागपुर और जवलपुर मे थे। जिले के सदर मुकामो मे सरकारी अँगरेजी मिडिल स्कूल देखने में आते थे और उनमें भी इने गिने विद्यार्थी। दूसरी तीसरी अंगरेजी तक वालक पढा नही कि जिला अधिकारियों के गुर्गे सरकारी नौकरी का लालच देकर वहका ले जाते थे। इस पर हेडमास्टर और जिला अधिकारियो में चक चक भी हो जाया करती थी। देशी अफसर देशी भाषाओं मे ही अपना काम करते थे और अँगरेज अफसरों को भी देशी भाषा अच्छी तरह सीखनी पडती थी। अँगरेजी जानने वाले केवल कुछ वंगाली वकील, उत्तर प्रान्त और वम्वई प्रान्त से आये हुए शिक्षा विभाग के हेडमास्टर या डिप्टी इन्स्पेक्टर या 'किरण्टे साहव' (एँग्लो इंडियन) ही मिलते थे। मध्यप्रदेश भर में केवल एक या दो वँगाली असिस्टेन्ट सर्जन पाये जाते थे, वाकी अँगरेज या किरण्टे डॉक्टर अथवा पटने मे देशी भाषा मे सीखे हुए अस्पताल डॉक्टर जिन्हें २५ से ५० रुपये तक तनख्वाह मिलती थी, देखने मे आते थे, और दस पांच को छोडकर ये भी अजीव थे। अस्पतालों से लोग वहुत घृणा करते थे, कहावत थी कि फाँसी लग जाय तो हरज नही, पर अस्पताल न जाना पडे। वैद्यो पर ज्यादा भरोसा होना स्वाभाविक था। परन्तु वैद्यो का भी इलाज कौन कराता था? झाडफूंक और जादूटोना, मंत्र जप आदि पर अच्छे से अच्छे लोग भी अधिक भरोसा करते थे। चारो तरफ इतना अन्धकार होते हुए भी यह देखने मे आता था कि सागर के महाराष्ट्र ब्राम्हणो मे संस्कृत विद्या का अधिक प्रचार था और उनमे कई अच्छे पंडित, ज्योतिषी, वैद्य और कर्मकाण्डी पाये जाते थे और देहात मे भी अनेक देशी गुणी जन मिल जाते थे। मैंने कई विद्वान देखे जो कि विहारी, केशव, तुलसी आदि हिन्दी कवियो का मार्मिक अध्ययन कर सके थे।

स्त्री शिक्षा की स्थिति तो और भी खराव थी। सागर और नरसिंहपुर जिलों को छोडकर पुत्री शालाएँ वहुत कम देखने को मिलती थी और इन जिलो मे भी उनकी स्थिति दयनीय थी। शिक्षिका को हर तरह का अपमान सहना पडता था, मदद देना तो दूर रहा, जो डिप्टी इन्स्पेक्टर स्त्रियो के नॉर्मल स्कूलो के लिये शिक्षिका भरती करते थे, वे अर्काटी के समान दुष्ट समझे जाते थे। जो स्त्री नार्मल स्कूल मे भरती हुई कि उसे गई वीती समझा जाता था। उन दिनो प्रथा थी कि जो स्त्री नार्मल स्कूल मे भरती हो, तो उसका पति कुछ पढा हो तो पुरुषो के नार्मल स्कूलो मे भरती कर दिया जाता था। यदि न पढा हो तो स्त्री की शाला मे चपरासी वना दिया जाता था। ऐसे लोगो को दम्पत्ति कहते थे। पर लोगों ने तोड मरोड कर उनका 'दमपट्टी' नाम रक्खा था इससे उस काल के सामाजिक विकृत दृष्टिकोण का भास होता है। एक कहावत उन दिनो प्रचलित थी कि "जनम की दुखिया करम की हीन, तिन्ह कहँ राम पाठिका कीन्ह"। वडे संतोप की वात है कि लोग अव स्त्री-शिक्षा का महत्त्व समझने लगे हैं और स्त्री शिक्षिकाओ को मान मिलने लगा है।

मध्यप्रदेश के नार्मल स्कूल

सन् १८६४ ई. में जव मध्यप्रान्त एक अलग प्रदेश के रूप में वना, तव सरकार को इस वात की भारी कठिनाई मालूम हुई, कि उसे केवल घर के पढे लोग शिक्षक के काम के लिये मिल सकते थे। घर के पढे लोग, कोई भाषा मे अच्छे तो गणित मे कच्चे, गणित मे अच्छे तो भाषा मे कच्चे, भाषा जानने पर भी केवल देहाती वोली वोल सकते थे। भूगोल के नाम तो पूरी सफाई रहती थी। इसलिये उनकी घरेलू शिक्षा के दोषो की पूर्ति करने के लिये सरकार ने तीन नार्मल स्कूल—दो हिन्दी जिलो के लिये जवलपुर और रायपुर मे, और एक मराठी जिलो के लिये नागपुर मे खोले। उद्देश्य केवल इतना था कि घरेलू शिक्षा की पूर्ति की जावे और रजिस्टर भरना तथा पत्रों का उत्तर देना सिखाया जावे। कुछ दिनों के वाद जव प्राथमिक शालाएँ चलने लगी तव प्रायमरी पास विद्यार्थियों को दो-तीन साल अपनी ही शाला में मानीटरी पर रखकर और काम सिखाकर नार्मल स्कूल में लेने लगे। उद्देश्य केवल यही था कि पांचवी-छठवी की पढाई हो जावे और रजिस्टर भरना, पत्रोत्तर देना, तथा गोली-यंत्र,

चार्ट, झाडन और माले तख्ता का समुचित उपयोग सीख ले। शिक्षा विज्ञान सिखाने का तत्र उद्देश्य नहीं था। एक साल की शिक्षा पाने के बाद वे प्राथमिक शालाओं में ६ रुपये पर नायब शिक्षक नियत होते थे। कुछ चुने हुए विद्यार्थियों का एक साल की शिक्षा और देकर हिन्दी मिडिल स्कूलों में ७ या ८ रुपये पर नायबी देते थे। समय ऐसा था कि जब मेरे पिता ने प सुखराम चौबे को ७ रुपये की नायबी पर मालथोन (सागर) भेजा, तब वे अपने को निहाल समझने लगे। मनीटरों को २ या ३ रुपये तनख्वाह में मिलते थे। नामल स्कूल में छात्रवृत्ति पहले साल ४ रुपये और दूसरे साल ५ रुपये दी जाती थी। कई लोग इतने में अपना गुजारा करते थे और कुछ मदद घर को भी भेज देते थे।

शिक्षा-विज्ञान की पढाई बहुत वर्षों बाद शुरू हुई, तो भी नामल स्कूलों का महत्त्व इतना अधिक माना जाता था कि जबलपुर और नागपुर नामल स्कूलों के लिये ऊँची तनख्वाह पर अगरेज निरीक्षक नियत किये जाते थे, जो कुछ साल काम करने के बाद इन्स्पेक्टर बन जाते थे। ये अगरेज अफसर देशी भाषा तो कम जानते थे पर खूब कसकर काम लेते थे। नतीजा यह हुआ कि जबलपुर नामल स्कूल में काम सिखाये शिक्षक मध्यप्रदेश के उत्तरीय जिलों में बडा अच्छा काम कर गये और हिन्दुस्थान भर की सर्वोत्तम प्राथमिक शालाओं में उत्तरीय जिलों की शालाएँ गणना में आने लगी।

मध्यप्रदेश के लोगो का जीवन

मध्यप्रदेश के जीवन में सस्तापन एक अनोखी बात थी, कारण यह था कि सिर्फ दो ही रेल की लाइनें इस प्रदेश में थी। एक लाइन भुसावल, खडवा, नरसिंहपुर, जबलपुर होती हुई प्रयाग को जाती थी और दूसरी लाइन भुसावल से बरार होती हुई वर्धा, नागपुर तक जाती थी। बाकी कही रेल का नामोनिशान न था। पक्की सडके भी इनी गिनी, फौजी हित के हेतु बनी थी। जनता के हित के लिये सडके बनती न थी, एक पक्की सडक जबलपुर से नागपुर तक गई थी, दूसरी जबलपुर से सागर को। ये सडके जबलपुर, सागर और कामठी की छावनियो को जोडती थी। वैसे ही एक फौजी सडक कामठी से रायपुर और सम्बलपुर की छावनियो को जोडती थी। पाचवी सडक नागपुर से छिंडवाडा होती हुई पचमढी को जाती थी और पीसार-पिपरिया पहुचकर रेल से सम्बध मिलाती थी। यह सडक भी अगरेज लोगो को गर्मी में पचमढी पहुचाने को बनवाई गई थी। एक प्रसिद्ध सडक, जो आमो की सडक कहलाती थी, मिर्जापुर से जबलपुर होती हुई बम्बई को जाती थी। उसके दोनो तरफ आमो के झाड लगे थे, जिससे मुसाफिरो को धूप न लगे। यह भी अगरेज अधिकारियों तथा व्यापारियो को बम्बई से कलकत्ता ले जाने के लिये बनी थी, और ऐसी चलती थी कि सडक के किनारे शहरो की आमद रफ्त देखने को मिल जाती थी। अब यह सडक टूट गई है।

देशी लोगो का आवागमन घोडा, ऊँट गाडियो पर ही होता था। माल ढोने का काम बजारे लोग करते थे। हजार पाच-सौ बैलो को एक साथ लादकर अनाज और दूसरी चीजें एक जिले से दूसरे जिले को ले जाते थे।

इन सब कारणो से देश बडा सस्ता था। छत्तीसगढ में, जोकि रेल से बहुत दूर था, बहुत ही सस्ता था। मेरे घर के पुराने आकडो से पता चलता है कि गेहू रुपये का ५०—५५ सेर, हल्का चावल १॥ मन, बढिया चावल १। मन, तिल्ली का तेल ५ सेर, घी २॥ सेर, और दाल एक मन के अन्दाज मिलती थी। नौकरो की तनख्वाह भी विस्मयकारक थी। पुरुष नौकर १॥ रुपया माहवार पर, स्त्री बारह आने पर, पखेवाले चार-आठ आने में मिल जाते थे। तुर्रा यह कि मेरे पिता ने जो नौकर वहाँ जाने पर रखे थे वे आठ बरस तक जमे रहे और बदली होने पर ही उन्होने नौकरी छोडी। सागर रेल से कुछ ज्यादा पास था, तोभी गहू रुपये का मन भर मिल जाता था। चना सवा मन, दूध सामने दुहा दो या तीन पैसे सेर, घी २॥ सेर, तेल ४—४। सेर, लकडी के गाडे ५ या ६ आने में, देशी जूते ४ या ५ आने में। नौकरो की तनख्वाहे इस प्रकार थी—सरकारी चपरासी ४ रुपये, ढीमर २॥ या ३ रुपये, बरानी १। रुपया, पुलिस कान्स्टेबिल ६ रुपये। इतने पर भी जो एक समय नौकर हो गया उसने कभी नौकरी छोडी नही और हर समय सुख-दुःख में काम आया। जब हम लोग सागर छोडकर चले तब उनका दुःख देखा न जाता था।

लोगो का जीवन भी बडा सादा देखने में आया। मोटा खाना, मोटा पहिनना और सात्विक जीवन व्यतीत करना। तमाखू, पान का शौक तो था, पर इसके सिवाय कोई दूसरी आदतें खाने पीने की न थी। सागर कस्बे को

छोडकर तरकारी भाजी भी न मिलती थी। वहां भी हम लोग कौडियो से तरकारी भाजी लेते थे। एक पैसे मे ६४ कौडी और ८ कौडी की १ दमडी। एक दमडी की एक लौकी, दो एक दमडी के कुम्हडे और दो-चार कौडियो मे भाजी मिल जाती थी। केवल आलू और गोभी खरीदने के लिये तावे का पैसा लगता था।

इनेगिने सरकारी नौकरो को छोडकर, जो हफ्ते मे एक वार हजामत वनवाते थे, लोगों को देखने से ऐसा मालूम होता था कि नाई और धोवी से दुश्मनी हो गई है। महीनों में कही भूले भटके हजामत वनवा ली तो गनीमत थी, और धोवी को कपडे देना भी एक पर्व के समान माना जाता था। लोग सव कपडे हाथ से फींचकर रस्सी माटी तथा सज्जी मिट्टी से साफ कर लेते थे। सावुन से मानो पूर्व जन्म का वैर था। एक कहावत प्रचलित थी—"सव वस्त्रो मे मनें आई मोको कमरी, धोवी साला मर जाय पर न पावे दमडी"। नाई धोवी से इतना द्वेष होते हुए भी उनकी सत्ता प्रवल थी। समय आने पर अपना हक लेने मे चूकते न थे। शादी विवाह के समय नाई यदि रूठ जाय तो मुश्किल पड जाती थी, कार्य में अनेक विघ्न आने लगते थे। गणेश जी के रूठ जाने से जो कठिनाइयां श्रीकृष्ण को भोगनी पडी, उनका दिग्दर्शन हो जाता था। इसी तरह मेहतर तक अपना प्रभाव लोगो पर जमा लेते थे। नाई ही विदाह संवध जोडते थे और उनके रूठ जाने पर अच्छे अच्छे घरो का फजीता हो जाता था। उसका काम था जिवनार के लिये पत्तल लाना, मशाल जलाना, निमंत्रण देना, आगंतुको का स्वागत करना, कर्मकाण्ड मे मदद देना। हजामत वनवाई एक पैसा ही लगती थी, पर साथ ही उसे आध घंटे तेल मालिश भी करनी पडती थी। पर समय आने पर गाव या विरादरी का वादशाह वन वैठता था।

खाने पीने तथा छुआछूत का विचार लोगो मे वहुत था और सिवाय अपनी ही विरादरी के इनेगिने घरों को छोडकर लोग कही भोजन को न जाते थे। यदि वहुत आग्रह हुआ तो फलाहरी मिठाई से काम चलाते थे। परन्तु, जाति भेदभाव वहुत होने पर भी थोडा वहुत जनतत्र का वातावरण हरजगह देखने मे आता था। गाव का चमार महतर भी यदि अवस्था मे वडा हो, तो उसे काका, दादा कहकर लोग पुकारते थे। वह भी वडे से वडे घर के वच्चो या अन्य लोगो को अनुचित कार्यवाहीं करने पर डांट लगाने मे चूकता न था। सुख-दु ख के समय गांव या मुहल्ले के लोग हर तरह मदद करते थे और अपना काम समझकर उसे सम्हाल लेते थ ; इस तरह सव लोग आपस मे सुख-दु.ख वाट लेते थे।

अतिथि सत्कार की भावना वडी प्रवल थी। कोई भी परदेशी आया कि दो-तीन रोज तक उसके खाने पीने और रहने की सुविधा गाव वाले मुफ्त कर देते थे। यहा तक देखने मे आया कि पैसा दिखाने पर अपना अपमान समझते थे। जवाव मिलता था कि क्या भगवान ने अन्न, दूध, दही, घी, पैसा लेकर दिया है, जो हम तुमसे पैसा ले ?

उन दिनो टीप, दस्तावेजे लिखने की प्रथा न थी, आदमी की जवान काफी समझी जाती थी, जवानी रुपया उधार लिया, विना गवाह के चुकाया, न लिखा न पढी—ऐसा सच्चा व्यवहार रहता था। वहुत हुआ तो पीपल का पत्ता हाथ में लेकर, जनेऊ छूकर या वच्चे का हाथ पकडकर या मदिर मे, यदि कह दिया कि हमने रुपया चुका दिया है, तो महाजन को चुप्पी साधनी पडती थी—

"कौले मर्दां जां दारद"

मर्द की जवान पक्की होती है, ऐसी फारसी में कहावत है। यही वात हरएक जगह देखने को मिलती थी। लोगो के झगडे मुहल्ले वाले या पच लोग तय कर लेते थे। अदालत जाने का काम नहीं पडता था। किसी गाव का कोई मनुष्य यदि अदालत गया, तो उस गाव के लोग लुच्चे समझे जाते थे और उनको विवाह सम्वन्ध करने मे कठिनाई पडने लगती थी। लोग अदालत मे जाना तो हीन समझते थे और जाते थे तो सच सच वात कह देते थे ; और अपना कुसूर छिपाते न थे। हरएक जिले में एक-दो वगाली वकीलो को छोडकर देशी वकील देशी भाषा मे देशी ढग से वकालत करते थे, और दद फंद का नजारा वहुत कम देखने मे आता था।

यह सव कुछ होते हुये भी उस समय इस देश में गहरे अधकार का वातावरण हर जगह देखने मे आता था। अंधविश्वास, जादू-टोना, टोटका, पुरुष-चरण, मूठ चलाना, शकुन-अपशकुन और नजर लगाना आदि का प्रचार वहुत था। वात वात पर इनका प्रयोग होता था। कोई भोजन करता हो, और उसकी तरफ कोई ध्यान से देख ले तो उसकी नजर लगाने के दोष पर आफत कर दी जाती थी। किसी के घर पर नीवू की चार फाककर सिंदूर भर दूसरे घर के द्वार पर रख देने पर लोग समझते थे कि हमारे घर की व्याधि दूसरे घर चली गई और इस पर मुहल्ले भर मे क्लेश पैदा होता था। किसी से लडाई झगड़ा हो गया कि मत्र पढकर मूठ छोड दी जाती थी। किसी ने अपकार किया कि उसका विनाश करने के लिये शाक्त धर्म की प्रथा के अनुसार पुरुष-चरण कराया जाता था। मडला जिला

शाक्त धर्म के टोटको का केन्द्र था। साप काटने पर मत्र द्वारा विष उतारने के प्रयोग बहुत चलते थे। मत्र सिद्ध लोग उडद या कौडी लेकर मत्र पढकर काटने वाले साप को पकड बुलाने की चेष्टा करते थे। दिवाली के समय तीन दिन नग्नावस्था में श्मशान म मत्र सिद्ध करते थे। छत्तीसगढ जादू-टोने का भारी केन्द्र था और उसका दर्जा बगाल और कामरूप के बाद ही आता था। प्रदेश भर में गाव गाव, मुहल्ले मुहल्ले, गली गली, भूत, प्रेत, पिशाच, डाकन, चुडलन, जिन्न आदि के निवास स्थान माने जाते थे। भय का वातावरण हर जगह देखने में आता था। सागर म एक बार अफवाह उडी कि ऊटनी ने अडा दिया है। लोगो की देखने को भीड लग गई। लोग बेवकूफ बनकर जब लौटे तो यह कहकर मन को समझाने लगे कि किसी रगरेज की माठ (रग बनाने की नाद) बिगड गई है और उसने सुधारने को गप्प छोडी है।

यह सब होते हुए भी यह देख सतोष होता था कि देशी कारीगरी कस्बे कस्बे, गाव गाव किसी न किसी रूप में प्रचलित थी, जैसे निमाड में जैनाबाद और शाहपुर के बने देशी कागज, जिनकी बहिया बनती थी। जबलपुर जिले में पनागर, बघराजी और मझगवा आदि स्थानो में लोह का सामान (तवा, कढाई, कची, करछुली आदि) तैयार होता था। वैसे ही सागर जिले में शाहगढ, देवरी आदि स्थानो में भी लोहे की चीजें तैयार होती थी। छत्तीसगढ तथा नरसिंहपुर जिलो में कोसे के कपडे इतने बढिया बनते थे कि १५—२० साल तक चलना कठिन न जाता था। नागपुर जिले में उमरेड, रामटेक, खापा, नरखेड आदि स्थानो में उम्दा सूती व रेशमी साडी, धोतिया, उपर्णे और साफे इतने अच्छे बनते थे कि उनके सामने विलायती माल फीका जचता था और ये कपडे बरसो चलते थे। जबलपुर में काच की चूडिया ढालकर लोग बहुत अच्छी बनाते थे, और हजारो मन चूडिया यहा से भेजी जाती थी। जबलपुर के पीतल ताबे के बर्तन, मडला, चौचली और हटा के कासे, फूल और रागे के बर्तन प्रसिद्ध थे। छीपो, रगरेजो और कोरी कोष्टो के हुनर भी देखने लायक थे। अग्रेजी राज्य में उनकी नीति के कारण यह सब नष्ट हो गया।

मध्यप्रदेश के ऐतिहासिक परिवर्तन

मुझे इस प्रदेश में तीन महत्त्वपूर्ण स्थितिया देखने को मिली और हरएक स्थिति में महत्त्वपूर्ण और विकृत अनुभव हुए। पहला समय तो वह था कि जब अग्रेजी सत्ता परिपूर्ण थी और देशी लोग तीन कौडी के योग्य न समझे जाते थे। यह समय बगाल विभाजन के समय तक पूर्ण रूप से रहा और १९२० ई० में असहयोग आन्दोलन के समय नष्ट हुआ।

दूसरा समय परिवर्तन काल है जो १९२० से लेकर १९४७ तक चला। इस काल में अग्रेजी राज्य की नस नस ढीली होती गई और अग्रेजो के हाथ से सत्ता निकलती गई।

तीसरा काल स्वतत्रता दिवस से शुरू होता है।

पहले काल में हिन्दुस्तानियो की ऐसी बेकदरी थी, कि सिवाय छोटी नौकरियो के उनको कही भी मानपूर्वक स्थान नही था। मैने वह समय देखा है, जबकि इस प्रदेश में एक भी हिन्दुस्तानी डिप्टी कमिश्नर, कप्तान पुलिस, सिविल सर्जन, जगल अफसर या स्कूलो का इन्सपेक्टर न था, ऐसे किसी ऊचे स्थान में हिन्दुस्तानी को जगह न थी, ऊची से ऊची जगह जो किसी हिन्दुस्तानी को मिल सकती थी वह थी एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिश्नरी (अनुवाद—जिला साहब के फालतू मददगार)। इस स्थान पर देशी आदमियो को इतने अवेरे लेते थे कि ढाई सौ, तीन सौ से अधिक मासिक तनख्वाह विरले को ही मिल पाती थी। कुछ एग्लोइडियन ही जो सुगमता से लिये जाते थे, चार सौ पाच सौ तक पहुचते थे और उनके नखरे सच्चे विलायतियो से भी अधिक होते थे। यहा तक तमाशा देखा कि जब हाईस्कूल सागर में था, तब हेडमास्टर और तीन सहकारी शिक्षक अग्रेज थे, नॉमल स्कूल के निरीक्षक तथा कामठी के हेडमास्टर तक विलायती थे और वे विशेष पढे लिखे भी न थे।

गदर के बाद जब इस प्रदेश की व्यवस्था की गई, तब फौजी अफसरो को चुन चुन कर मुख्य मुख्य स्थानो में नियत किया गया। कर्नल-मेजर हुए तो डिप्टी कमिश्नर हो गये और कप्तानो को पुलिस का निरीक्षक बना दिया। यही कारण है कि पुलिस निरीक्षक को अभी तक कप्तान पुलिस कहते है।

ये फौजी अफसर बुद्धि बल में तो मामूली रहते थे, पर निडर, शारीरिक परिश्रम खूब करने वाले और प्रजा का दु खदर्द जल्दी समझने वाले होते थे। पहाड, जगल, खतरे की जगह में निडर होकर घोडे पर सवार होकर पहुचते। घोडे पर सवार होकर गाव गाव, गली गली, मेंड मेंड का चक्कर लगाते और लोगो के दु खदर्द की छानबीन करते। उनके समय में प्रजा की पुकार सुनी जाती और दफ्तर वालो तथा छोटे मुलाजिमो की चालबाजिया अधिक न चल पाती थी।

फौजी होने के नाते जो हुकुम वे दे दें, उनकी तामील वहीं आनन फानन करा देते थे ; लिखापढी में उनका मन नहीं लगता था और शिकार के वडे प्रेमी होते थे। इतना सव होने पर भी अंग्रेजियत की वू उनमें प्रवल थी। वूढे से वूढे छोटे साहिव को एक मामूली गोरे को सलाम करना पडता था और जिसने जरा भी ऐंठ दिखाई कि कुचल दिया जाता था।

उस समय की जव याद आती है तब आत्मा कापने लगती है और रह रह कर उर्दू भाषा का एक मिसरा याद आता है कि "जमी पर किसके हों हिन्दू रहें अव, खवर ला दे कोई तह तुस्सरा की" याने हिन्दू (भारतीय) के लिये दुनियां मे जगह नही है, परलोक से वुलावा मिले तभी ठीक हो।

आजकल भी काग्रेस की किसी व्यवस्था से असंतुष्ट होकर कुछ लोग भ्रमवश यह कहते सुने गये है, कि इससे तो अंग्रेजी राज्य अच्छा था। ईश्वर न करे कि वह समय फिर देखने को आवे। हम लोगों को कितने जहर के घूट पीने पड़े, यह हमी लोग जानते है।

अंग्रेज और भारतीयो में भेदभाव के दो-एक दृष्टान्त देता हूं। पुराने जमाने में हरएक जिले मे दरवार होते थे, और चवूतरे पर चीफ कमिश्नर और उनके अंग्रेज साथियों के सिवाय डिप्टी कमिश्नर, सिविल सर्जन, और कप्तान पुलिस आदि वैठते थे। अंग्रेज अफसर ऊपर विठलाये जाते थे। एक गोखले नाम के हिन्दुस्थानी सर्जन तीन महीने के लिये चांदा में सिविल सर्जन बनाये गये। उन्होंने दरवार के समय चौतरे पर वैठने का आग्रह किया। इस कुसूर पर उसे फिर सिविल सर्जन की या कोई अच्छी जगह न मिली।

मध्यप्रदेश सरकार के प्रधान सचिव कुंजविहारीलाल सेठ के पिता श्री. मोहनलाल दमोह में हेडमास्टर थे। एक अंग्रेज इन्स्पेक्टर के वूट से किसी लडके की स्लेट फूट गई। इस पर हेडमास्टर साहिब ने इन्स्पेक्टर साहव से आग्रह किया कि लडके को नई स्लेट दे। नई स्लेट तो देनी पडी, पर मोहनलाल जी को शिक्षा विभाग छोडना पडा और पीछे से दूसरा झगडा खडा होने पर नौकरी से हाथ धोना पडा।

पंड्या शंकरनाथ नाम के देहरादून पास एक सज्जन मंडला में जंगल अफसर नियत हुए। उन्होने दो-चार फौजी अफसरो को जंगल मे विना लाइसेंस लिये नियम विरुद्ध शिकार करने पर चालान किया। 'फौजी अफसरों का तो कुछ न हुआ, पर इन्हे ऐसी डांट पडी कि दु:खी होकर सख्त वीमार पडे और अपने प्राण छोड दिये।

एक मुसलमान अफसर मंडला मे डिप्टी कमिश्नर वनाये गये और रोव मे आकर कमिश्नर से वरावरी का व्यवहार करना शुरू किया। उन्हे भी ऐसा चटाका दिया गया कि नौकरी छोडनी पडी। इस तरह के अनेक उदाहरण देखने को मिले और हिन्दुस्थानी की क्या कदर है यह समझने का मौका मिला।

जव फौजी अफसर सन् १८९० के आसपास पेन्शन पर गये तव इंडियन सिविल सर्विस के नवयुवक उनके स्थान में आने लगे और योग्यता में कही वढकर निकले। तथा फौजी अफसरो की मातहती मे रहने से दौड-धूप मे भी मुस्तैद रहे, पर पीछे से आने वाले दौड धूप कम करने लगे और कागजी घोडे अधिक चलाने लगे। परन्तु अंगरेजियत की वू फौजी अफसरो से ज्यादा ही पाई गई।

इंडियन सिविल सर्विस का एक अर्थ यह भी होता है कि "हिन्दी-विनयी सेवक"। पर इस मुहकमे के अफसर न हिन्दी, न विनयी, न सेवक थे। वे तो देश के वादशाह वन वैठे थे।

अनेक दोष होते हुए भी इन लोगों मे अनेक गुण भी थे ; एक तो रुपयो पैसो के मामले में वहुधा वेलाग रहते थे। रिश्वत शायद ही कोई लेता हो। जिसके वारे मे अफवाह उड़ जाय, उसको हिकारत से देखते थे। सवूत मिलने पर एकदम वैरंग कर विलायत भेज देते थे। जाहिरा तो कुछ कहा न जाता था ; पर भीतरी भीतर सख्ती से कार्रवाई की जाती थी। मैंने अपने समय मे इस तरह के पांच छः अंगरेज अफसरो का फजीता होते देखा है, पर क्या मजाल कि कोई अंगरेज अफसर किसी हिन्दुस्थानी के सामने यह कवूल करे कि फलाना अंगरेज वेईमान निकला।

दूसरे इनमे कर्तव्यपरायणता की बुद्धि भी प्रवल थी, और काम कसकर लेना जानते थे। देशी अफसरों की वात तो दूर रही अंगरेज अफसर भी काम में ढीला पाया गया कि उसकी शामत आ जाती थी। कर्तव्य के समय मुरव्वत करना वे जानते न थे। मैंने कई अंगरेज अफसरों को काम में गफलत करने के कारण, भगाये जाते देखा। पर तोभी व्यर्थ की वकवाद न होने पाती थी और देशी आदमी को कानोंकान खवर न पडने पाती कि फलाने साहिव को किस कारण अर्द्धचन्द्र मिला।

सन् १८५७ के विद्रोह के बाद हिन्दुस्तानियो की कुछ ऐसी कमर टूट गई थी कि उनमें आत्म-सम्मान की मात्रा प्राय लोप हो गई थी। सरकारी या गैर-सरकारी लोगो के मन में अगरेजो को खुश रखना, यही जीवन का ध्येय हो गया था। अगरेज जो कहे वही प्रमाण माना जाता था। उनकी आज्ञा का पालन आँख मीचकर किया जाता था। देश की इज्जत का लोगो को ख्याल न था। परन्तु इस वक्त भी स्वाभिमान का एकदम अभाव न था। कई अफसर अपने प्रखर स्वाभिमान का परिचय देने से न चूकते थे जिन्हे इसके लिये काफी भुगतना भी पडा। मुझे ऐसे कई उदाहरण मालूम हैं।

इस समय में अंग्रेजी राज्य का एक अच्छा प्रभाव यह भी हुआ कि देशी अफसरों में रिश्वत का बाजार ठडा पडने लगा। अगरेज अफसरो में अपना घमड था, परन्तु कई विनयी, समझदार और दूरदर्शी भी थे। कई अफसरो ने यह ध्वनि व्यक्त की कि भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा। उत्तरप्रदेश के एक गवर्नर ने प जवाहरलाल जी के स्वतत्र भारत में प्रधान-मत्री होने की बात इसी समय मेरे एक मित्र से कही थी।

परिवर्तन काल

सन् १९२० के उपरात एक परिवर्तन काल आया, जिसमें कुछ चुने हुए देशी अफसरों को ऊँचे ओहदे मिलना शुरू हुए और देशी लोगो को कुछ अधिक अधिकार दिये जाने लगे। इसी समय मैं भी आई ई एस में लिया गया।

सन् १९२०-२१ में महात्मा गाधी जी के चलाये असहयोग आन्दोलन के कारण सरकार की व्यवस्था ढीली पडने लगी। मुझे उन दिनो आई ई एस में होने के कारण भीतरी हाल जानने का मौका मिलता रहा, और विरोधी नेताओ से मेल बना रहने के कारण, आन्दोलन के विषय में थोडा बहुत परिचय होता ही रहा। इतना कहना बस है कि ब्रिटिश सरकार के राज्य की नींव वनरह हिल गई और आगे और भी कमजोर होती गई। जालियावाला बाग की घटना और पजाब मार्शल लॉ के दुरुपयोग के कारण देशी अफसरो में भीतर भीतर कडआपन आ गया। अगरेज अफसर भी समझ गये कि उनकी सत्ता अब बहुत दिन न चल सकेगी। वे भी काम में ढीले पडने लगे और अपनी सत्ता कायम रखने के लिये हल्के दर्जे की चालबाजियाँ शुरू करने लगे जैसे—हिन्दू-मुसलमानो में झगडा कराना, मुसलमानो का पक्ष लेना, लोगो में आपस में भेद उत्पन्न करना आदि। होशियार इतने थे कि स्वार्थी देशी लोगो के द्वारा उपद्रव कराकर स्वत दूर रहते थे—"भुस में आग लगाय, जमालो दूर खडी"।

जैसे ये लोग पहले कर्तव्यशील, निडर और मिहनती होते थे वैसे अब न रहे, कठिन समस्या या उलझन उत्पन्न हो या अप्रिय काम कराना हो, देशी अफसरो को सामने खडा कर देते थे। दौरे में रसद बेगार मुफ्त मिलने में कठिनाई पडने लगी कि डर से जाकर दौरा करना भी बन्द कर दिया। मोटरकार का उपयोग बढ जाने से, डॉक बँगले और सडकें बन जाने के कारण, सडक किनारे के गाँवो का ही दौरा होता था। देशी भाषा सीखने की रुचि भी निकल गई। सन् १९३०-३१ और १९४२ के आन्दोलन के बाद तो ब्रिटिश सरकार की नस-नस ढीली पड गई, और कितने दिनो में कूच होगा केवल यही प्रश्न उनके सामने रह गया।

सन् १९४७ में कई अँगरेज कहकर गये थे कि तुम लोग झख मारोगे और काम सम्हालने के लिये वापिस बुलाओगे, परतु देश के नेताओ की बुद्धिमानी से उनका स्वप्न भग हो गया। हमारे प्रदेश में स्वतत्रता मिलने के बाद कुछ सदिग्ध अग्रेज अफसरो को श्री शुक्लजी ने फौरन अलग कर दिया जो उनकी दूरदर्शिता का एक उदाहरण है।

एक निजी अनुभव

सन् १८९६ ई में कालेज से निकलने के उपरान्त मुझे जबलपुर में डिप्टी इन्सपक्टरी मिली और दौरे पर रहना पडा। सवत ५३ का अकाल शुरू हो गया था, और लोगो में भुखमरी फैल रही थी। विशेष करके आदिमजाति तथा अछूत वर्ग के लोगो में भुखमरी अधिक थी।

बुढागर (पनागर के पास) मुकाम पर कुछ नहीं तो १५० कोल गोंड आदि भख से मर रहे थे, और जब मैने उनमें लाई बँटवाने की व्यवस्था करवानी चाही तो ८-५ सेर से अधिक लाई गाँव भर में न मिली। भारी अन्न देने में जोखिम था। हवेली में कुछ अन्न पैदा हुआ था, पर पहाडी इलाको में कुछ पैदा न हुआ। लोगो की तकलीफ देखी न जाती थी। एक खूबी देखने में आई कि जहा मैं ठहरता था, वहा दरवाजे न थे, न मेरे पास कोई हथियार था, और रुपये-पैसे भी थे। पर तोभी न मेरी चोरी कहीं हुई, न गाँव वालो की। लोग भूखो मर गये, पर पाप से बचे। यह आर्य सभ्यता का नमूना था।

पाटन (शहपुरा) के दौरे के समय वहाँ के रेवन्यू इन्स्पेक्टर ने मुझसे स्वतः कहा कि फसल हवेली में केवल चार आना हुई है। जवलपुर लौटने पर जब जिला अधिकारी को यह बात बतलाई गई, तो वे विगड़े और कहने लगे कि रेवन्यू इन्स्पेक्टर ने मुझे आठ आना की फसल वतलाई है।

इस मिथ्या व्यवहार के लिये सिवाय करम ठोकने के और क्या इलाज था? पहला सबक यह मिला कि सरकारी रिपोर्ट भरोसे की नही होती।

शहर लौटने के बाद ही राजा गोकुलदास के महल में बाबू गोविन्ददास का जन्म हुआ और बड़ी बड़ी खुशियाँ मनाई जाने लगी, कई लाख रुपये खर्च किये गये, पाँच-पाँच सौ रुपये रोज पर फर्स्ट क्लास का टिकिट देकर ९-१० नाचनेवाली बुलाई गई, हजारो मन मिठाई रोज तैयार होने लगी। सब कुछ हुआ पर रह-रह कर यह प्रश्न मेरे और दूसरों के मन में उठता था कि आखिर भुखमरो के लिये क्या इन्तजाम है? शहर के रईस, सईस, दुकानदार, सरकारी नौकर, अफसर, इनिया-धनिया सब भोजनो को बुलाये गये। एक हजार से ऊपर गोरे सिपाही भी बुलाये गये, जिनके खिलाने मे प्रति मनुष्य ५—७ रुपये खर्च हुआ, बेहिसाब शराब कबाब उड़ी, मैं नया आदमी आया था तो भी हर रोज बुलौआ मिलता था और जाना भी पड़ा। पर रह रहकर यही प्रश्न मेरे और अन्य लोगो के मन मे दबी जबान से उठता था कि पुण्य तो तब होता, जब अकाल पीड़ित लोगो की इन रुपयो से रक्षा की जाती और जिला तबाही से बचता।

उसी समय रोमन कैथलिक पादरियो ने एक अनाथालय चांडालभाटे (जबलपुर) के पास खोला था और उसमे करीब ९०० कंगाल इकट्ठे किये गये थे और उनके खाने-पीने की व्यवस्था पादरी लोग करते थे, जो जीते बचे वे सब ईसाई बनाये जाते थे।

विचार करने पर ऐसा दिखता है कि ऐसे ही कारणो से नवजात बालक के मन मे भी कुछ विकार हुए होंगे और बड़े होने पर बाबू गोविन्ददास जी क्रान्तिकारी नेता बने और उन्होने अपने घर की पुरानी रूढ़ि भी बदल दी। "कर्म विपाक" का क्या अच्छा नमूना देखने मे आया?

सैंकडो वर्ष की गुलामी भोगने के उपरान्त इस देश को सन् १९४७ से स्वतंत्रता मिली है। हमारे देशवासियों को यह मौका मिला है कि अपने देश की व्यवस्था स्वयं सम्हालें और उसे धन-धान्य से परिपूर्ण कर दे। उसको हर तरह की उन्नति के मार्ग पर ले जावें। लाहौर के प्रसिद्ध कवि इकबाल ने जो स्वप्न इस सदी के आरंभ मे देखा था वह अब सत्य हुआ। उनके वचन बड़े मार्मिक थे—

इलाही वो दिन आवेगा।
जब अपना राज देखेंगे॥
अपनी ही जमीं होगी।
और अपना आसमाँ होगा॥

जमीन तो अपनी हो गई पर आसमाँ (ईश्वर की दया) अभी पूरी तरह अपना नही हुआ। यह तभी होगा जब हम सब पुरुष-स्त्री, युवक, बूढे-सयाने, सरकारी नौकर, अफसर, राजनैतिक जन, मंत्रीगण सब मिलकर एक चित्त हो, एक भाव से तल्लीन हो, देश के उत्थान का भरपूर प्रयत्न करे। यज्ञ-मडप मे यज्ञ आरम्भ करने के पहले जो ऋग्वेद मंत्र पुरोहित अवधारण के साथ कहता है उसका हर घड़ी हरएक को ध्यान देने का मेरा नम्र निवेदन हर व्यक्ति से है:—

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥
यथा वः सुसहासति॥"

—ऋ. —१०,१९१,४

अर्थात्—तुम्हारा अभिप्राय एक समान हो, और तुम्हारा मन एक समान हो, तथा तुम्हारा अन्त.करण एक समान हो, जिससे तुम्हारा सुसाहय होगा, अर्थात् संघ शक्ति की दृढ़ता होगी।

मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर

श्री मु श्री पधे

इस प्रदेश का नाम व स्थान भारत का मान चित्र देखते ही अपने नाम की सार्थकता प्रकट करता है। प्राचीन काल में यह दण्डकारण्य प्रदेश कहा जाता था। विन्ध्य पवत ने इसकी उत्तरी सीमा का निर्माण किया है। सतपुडा ने अपनी खडित पवत श्रेणिया से इस प्रदेश का मध्य भाग सजाया है। इसकी नैऋत्य दिशा जगत्प्रसिद्ध अजता पहाडियो ने घेर ली है। पूव दिशा दण्डकारण्य से भरी हुई है। नमदा विन्ध्य को स्थान स्थान पर छेदकर पश्चिम की ओर वहती ह। मध्यप्रदेश प्रागैतिहासिक काल से प्रकृति की गोद में फूला फला है। कलात्मक सृजन प्रकृति की सौंदयमयी प्रेरणा द्वारा ही होता ह। मानव और उसकी कल्पनाएँ इच्छाशक्ति प्रकृति के अतवाह्य सौंदय को हरने के लिय लालायित हो जाती ह। दो-तीन हजार वप पूव मानव की सौंदयमयी प्रेरणा इच्छा शक्ति, कल्पना, कैसी थी, यह इतस्तत विखरे हुए टूटे फूटे खण्डहर, अपनी मूक वाणी से मन को मोहित कर लेते ह। मध्यप्रदेश में पडे हुए इन्हीं भग्नावशेषो तथा मूर्तियों का परिचय इस लेख द्वारा कराने का प्रयत्न किया गया है।

ऐतिहासिक भूमिका—मध्यप्रदेश के प्रागैतिहासिक काल से आज तक इस प्रात पर अनेक राज्यवशो ने राज्य किया है। किन्तु प्रत्येक राज्यवश की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकना कठिन ही रहा है। पर, सातवी शताब्दि से लेकर मुसलमानी काल तक की जानकारी हमें प्राप्त होती है। ऐतिहासिक खोजो द्वारा पता चलता है कि आज के मध्यप्रदेश पर जब हैहय वश का राज्य विस्तार हुआ उस समय महाकोशल के एक वडे भाग पर चेदिवश के राज्य की स्थापना हो गयी थी। हैहय वश का मूल स्थान महिष्मण्डल और डाहल मे था। महिपमण्डल की राजधानी माहिष्मती, निमाड जिले के वतमान माधाता में थी। डाहल की राजधानी जवलपुर जिले में त्रिपुरी (वतमान तेवर) में थी। इन स्थाना पर प्राप्त होने वाले अवशेप अपनी विशेपता प्रकट करते हैं।

मूर्ति कला तथा वास्तु-शिल्प का विकास बौद्ध काल से १४ वी-१५ वी शताब्दि तक इस प्रदेश में जारी रहा। बौद्ध काल के हनीयान और महायान सम्प्रदायों के शिल्पावशेप वहुत कम मिलते हैं। परन्तु गुप्तकाल की कला, चालुक्यो के प्रभाव की कला और शिल्प कला के नमूने अव भी मिलते ह। भारत की वास्तु शिल्प रचना, मूर्ति, चित्र आदि कलाओं का घनिष्ट सम्बन्ध धम, पथ, उपासना पद्धति, दशन तथा शासको की रुचि से वधा हुआ रहा है। इसी भूमि के प्राकृत सादय से सजित कला द्रविड, बौद्ध, जैन, हिन्दू आदि विभागो में वट गई है। साथ ही यूनानियो एव आर्यों की कला-पद्धति के समन्वय से गाधार-कला पद्धति का जन्म हुआ। इस कला पद्धति के नमूने मध्यप्रदेश में कही भी उपलब्ध नही ह। दूसरा विभाग मुसलमानी शासन-काल का माना जाता ह। इस काल में भारत की मूर्ति तथा शिल्प कला में बहुत परिवतन हुआ। मूर्ति कला का लगभग लोप सा ही हो गया। मन्दिरो एव राज प्रासादो की रचना में भी परिवतन हुआ। इस काल के अवशेप मध्यप्रदेश में काफी मिलते हैं।

वरार प्राचीन विदभ—प्रदेश का पश्चिमी भाग विदभ है। भारत के प्रागैतिहासिक काल से यह भाग समृद्ध तथा साहित्य एव अन्य अनेक कलाओं की दृष्टि से उन्नत माना जाता रहा है। वडे वडे प्रभावशाली राजवशो ने इस पर शासन किया है। भोजकट प्रात इसी विदभ के अन्तगत था। श्री रामचन्द्र ने अपने वनवास का अधिकाश समय इसी दण्डकारण्य में विताया। नमदा के दक्षिण के अनेक स्थलो का भ्रमण श्री रामचन्द्र ने किया था। इसी काल मे नमदा के उत्तरी जगल मे सहस्रार्जुन, कात्तवीय महिष्मण्डल में राज्य कर रहा था। कात्तवीय रावण का समकालीन था। श्रीकृष्ण तथा विदर्भ के राजा भीष्मक इस प्रात से सम्वद्ध थे। भीष्मक की राजधानी कौडिण्यपुर म थी। इस काल के कलावशेप नाम मात्र को भी प्राप्य नही है। सम्भव है कि कौडिण्यपुर के आसपास के स्थानो का उत्खनन कराने पर इस स्थान के प्रागैतिहासिक काल पर कुछ प्रकाश पडे। केवल अकोला जिले के पातूर नामक गाव में पहाडी के पत्थरो में खुदी हुई गुफाए विदभ के बौद्धकालीन इतिहास पर कुछ प्रकाश डालती ह।

नाग, महाकोशल और छत्तीसगढ प्रदेश—भेडाघाट और उसके निकटस्थ त्रिपुरी (तेवर) के आसपास कई बौद्ध मूर्तिया प्राप्त हुई ह। मध्यप्रदेश के चारो कोनो में उस काल में बौद्ध धर्म का प्रचार था। भद्रावती (भद्रपत्तन—भादक) के भी क्षत्रिय राजा बौद्ध हो गये थे। कदाचित मध्यप्रदेश में भद्रावती से वडा नगर दूसरा कोई उस जमाने

मे नही रहा। जिस समय सातवीं शताब्दी मे चीनी यात्री ह्वेन सांग भारत-भ्रमण कर रहा था, उस समय वह भादक भी गया था। उसे वहा पर सौ संघाराम मिले थे जिन मे दस हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे। वहा कई बौद्ध मन्दिर भी थे। किन्तु, आज कुछ टूटे फूटे स्तम्भो एवं मूर्तियो के अलावा और कुछ नही है।

रायपुर जिले के तुरतुरिया नामक स्थान में बौद्ध भिक्षुणियो का विहार था। वहा पर भगवान बुद्ध की विशाल मूर्ति अभी तक विद्यमान है। बौद्ध धर्म का लोप हो जाने पर भी इस स्थान पर आज भी महिलाए ही पुजारिन होती है। सिरगुजा मे जिसका पूर्व नाम झारखंड था, रामगढ के पर्वतीय क्षेत्र मे बौद्ध गुफाए और नाटक-शालायें हैं।

प्रकृति की गोद में खेलने वाली आदिमजाति.—मध्यप्रदेश की आदिमजातियों का स्थान भारत की सांस्कृतिक धरोहर मे बहुत ऊचा है। इस प्रदेश मे प्रागैतिहासिक काल से आज तक इनके वश कायम है। शवर, गोड, भिल्ल, कोरकू आदि लोग घने जंगलो मे प्रकृति की गोद मे खेलने वाले है। गोंड शासक भी रहे है। इनकी चित्रकला चित्र लिपि के समान है। आदिमजातियो की नृत्य पद्धति वेशभूषा, केश रचना, कला पूर्ण है। इनके सामूहिक नृत्य की वेश-भूषा, वाद्य, गीत और अग प्रत्यंग के अभिनय से प्रकृति मे छिपा हुआ लालित्य, नाद, लय, वर्ण तथा आकार-वैचित्र्य प्रकट होता है। इनके नृत्य देश की सास्कृतिक धरोहर वन गये है। इनके नृत्य देखकर अजन्ता की गुफाओं मे चित्रित भित्ति चित्रो की याद अनायास हो आती है। इनके लोक गीत इनके वन्य जीवन की झांकी देते है। रचनाएं सीधी सादी किन्तु हृदय को भावनाओ से भर देने वाली होती है।

इस प्रकार की ऐतिहासिक पार्श्व भूमि के साथ मध्यप्रदेश मे स्थान स्थान पर प्राप्त होने वाले मूर्तियो, मन्दिरो के अवशेषो की सूची के साथ विशेष उल्लेख्य अवशेषों की कला का विवेचन करने का प्रयत्न हम आगे करेगे।

कलाव शेषों की सूची

(१) चौसष्ठ योगिनी मन्दिर.—भेडाघाट, जवलपुर, ११वी शती।
(२) शिव मन्दिर.—मार्कन्डी, जिला चांदा, १०-११वी शती।
(३) विष्णु मन्दिर, वराह, ध्वजस्तम्भ.—एरण, ५-६वी शती।
(४) सिद्धनाथ मंदिर—ओंकार-मांधाता जिला निमाड, ११–१२वी शती।
(५) विष्णु मंदिर.—जांजगीर, जिला विलासपुर, ११वी शती।
(६) जैन मंदिर.—आरंग, जिला रायपुर, १३ वी शती।
(७) शिव मन्दिर.—सातगांव, जिला वुलढाना, १२-१३वी शती।
(८) दैत्यसूदन मन्दिर.—लोणार, जिला वुलढाना, १२-१३वी शती।
(९) वालाजी की मूर्ति (सारंगपाणी).—मेहेकर, १२-१३वी शती।
(१०) शिव मन्दिर का प्रवेश द्वार.—नोहटा, जिला सागर, ११वी शती।
(११) लक्ष्मण मन्दिर.—सिरपुर, जिला रायपुर, ७वीं शती।

चौसष्ठ योगिनियों का मन्दिर.—जवलपुर के निकट भेडाघाट में नर्मदा के किनारे यह मन्दिर है। १०-११वीं शताब्दी मे कलचुरि राजवंश का यहां राज्य था। त्रिपुरी (तेवर) इसकी राजधानी थी। इतिहासकारो ने इस प्रदेश की शिल्पकला के जो कालखण्ड वनाये उसमे त्रिपुरी की कलचुरि शिल्पकला को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया है। भेड़ाघाट का चौसष्ठ योगिनी मन्दिर इस कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। पाशुपत पंथी शैव उपासको का यह प्रमुख स्थान था। इसे गोलकी मठ भी कहते है। इसके वीचोंवीच शिव मन्दिर है। उसके आसपास वर्तुलाकार वहुत कम ऊँचाई और चौडाई का दालान है। इसी दालान में योगिनियो की मूर्तियां स्थापित है।

प्राचीन काल की भारतीय मूर्तिकला केवल वाह्य-आकार प्रमाण पर आधारित नही थी। विश्व में जो अदृश्य, निराकार सत्य है, उसके प्रतीक को मूर्ति का रूप प्रदान करना ही भारतीय कलाकारों का लक्ष्य था। योगिनियों की मूर्तियो की रचना इसी सिद्धान्त पूर्ति के प्रयास का फल है। कलाकारों को सृष्टि के सृजन मे पुरुष और प्रकृति, इन दो शक्तियो का दर्शन हुआ। प्रकृति की शक्ति की उपासना करने की प्रेरणा उसे हुई। उसने प्रकृति को नारी रूप प्रदान कर उन्हें दैवी गुणो की उपमा और अलंकार प्रदान किये। नारी की मानवीय भौतिक यष्ठि-कल्पना लुप्त हो गई और

दैवी गुणो को अग-प्रत्यगो द्वारा प्रकट करने वाली सरस्वती, लक्ष्मी, शक्ति, दुर्गा, काली, पार्वती, गगा, यमुना, आदि की मूर्तिया दैवी सज्ञा पाकर प्रकट हुई। इसी सिद्धान्त के आधार पर चौंसठ योगिनिया की मूर्ति रचना हुई और उन्हें गोलकी मठ में स्थापित किया गया। दैवी गुणो के प्रतीक स्वरूप मूर्ति-निर्माण मे भारतीय कलाकारो का उस समय ससार में सर्वोत्कृष्ट स्थान था। उस काल के यूनानी कलाकार मानव देह की वास्तविकता की परमोच्च अवस्था प्रकट करके मानव आकार में देवत्व लाना चाहते थे। किन्तु वे असफल रहे। कारण, मूर्तियो में भौतिक देह की यथार्थता प्रकट करने मे मूर्तिया विकारोत्पादन का साधन बन गयी। भारत के मध्यकालीन मूर्ति एव वास्तु कला के अवशेषा में चौंसठ योगिनियो का मण्डलाकार मन्दिर एक विशिष्टता है। यह यूनानिया के मण्डलाकार एम्फी थिएटरा का बहुत कुछ स्मरण करा देती है।

चादा जिले के मार्कण्डी का मन्दिर वनगगा के किनारे खडको पर बना हुआ है। मन्दिर में स्थापित शिव के ताण्डव रूप की मूर्ति ठीक नही मालूम होती। दक्षिण भारत के मन्दिरा में शिव के ताण्डव रूप की जो प्रसिद्ध मूर्तिया है, उनके कला-कौशल का अशमात्र भी यहा की मूर्ति में नहीं आ पाया है। खजुराहो की कला के अनुसार यह मूर्ति भी है पर इसमें भी स्वाभाविकता नहीं मिलती।

सागर जिले के नोहटा स्थान पर स्थित शिव मन्दिर का प्रवेश द्वार ११वी शताब्दी के अप्रतिम पत्थर की खुदाई का नमूना है। शिव चरित्र की कुछ कथाएँ उस पर खुदी है।

एरण का विष्णु मन्दिर, वराह ध्वजस्तम्भ मध्यप्रदेश की प्राचीनतम कला का नमूना है। ५वी-६वी शताब्दी के वैष्णव पथी मन्दिर की यह रचना मन्दिर शिल्प के विकास क्रम का द्योतक है। समुद्रगुप्त के काल में सागर के निकट बीना नदी के किनारे एरण में "स्वभोग नगर" का निर्माण किया गया था, ऐसा ऐतिहासिक खोजो से पता चलता है।

विदर्भ में बुलढाना जिले के मेहकर स्थान में स्थित विष्णु की मूर्ति ई सन् १३५० की है। इस समय एक विशाल मन्दिर में इस मूर्ति की स्थापना की गई थी, ऐसा मालूम होता है। उसके स्तम्भो की विशालता और कला देख कर सहज ही अनुमान हो जाता है कि यहा के विष्णु मन्दिर का स्वरूप क्या रहा होगा। आज का मन्दिर तो सौ-दो सौ वर्ष पुराना भी न होगा। इस प्रकार की विष्णु-मूर्ति मध्यप्रदेश में और कही नही है। मेरे भ्रमण और निरीक्षण में यही एक ऐसी मूर्ति मिली, जो भारतीय मूर्ति निर्माण नियमो के अनुरूप है और साथ ही अत्यन्त सुन्दर भी।

मूर्ति, शिल्प, चित्र आदि ललित कलाएँ समाज की मनोभावना और आचार विचार का दर्पण होती है। इस का विकास ही वस्तुत प्रभावपूर्ण सस्कृति का विकास है। उपरोक्त कला-कृतियो में भारत की आन्तरिक भावनाओ का सजीव दर्शन होता है। भारतीय कला के इन सच्चे नमूनो से भारत की सत्प्रवृत्तियो की कल्पना की जा सकती है।

मध्यप्रदेश में बौद्ध संस्कृति का प्रभाव

श्री भवानीशंकर नियोगी

सर विलियम हंटर ने ई. सन् १८८२ मे "द इंडियन एम्पायर, इट्स पीपुल्स, हिस्ट्री एण्ड प्राडक्ट्स (तृतीय संस्करण)" ग्रथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथ मे उन्होने एक अध्याय भारत मे बौद्ध धर्म पर लिखा। छठी शताद्वि मे जब यह धर्म ब्राम्हण-धर्म से विकसित हुआ, तबसे लेकर १९वी शताद्वि तक के इतिहास का सिहावलोकन करने के बाद लेखक ने लिखा है :—

"बौद्ध धर्म का जीता जागता रूप किसी सस्था विशेष मे सीमित नही है, परन्तु इसका वास्तविक स्वरूप तो लोकधर्म मे निहित है। हिन्दू धर्म का प्रत्येक नया अध्याय बंधुत्व के मूलभूत सिद्धांत से प्रारंभ होता है। मानव मात्र के प्रति उदारता और नम्रता भारतवर्ष का सहज धर्म है। वह विनम्र हिन्दू का प्रमुख गुण है।"

भारत के इतिहास में सन् १८८२ का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योकि इस सन् मे लार्ड रिपन ने भारत के नगरो की नगर-पालिकाओं की व्यवस्था मे स्वायत्त शासन की नीव डाली और सर विलियम हण्टर की अध्यक्षता मे स्थापित एक आयोग ने प्राथमिक, माध्यमिक तथा कालेज की शिक्षा मे नय सुधारो की सिफारिश की। उस समय तक भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) का जन्म नहीं हुआ था।

हिन्दू धर्म के नव प्रवाह के सबध मे सर विलियम हण्टर ने जो भविष्यवाणी की थी, वह आश्चर्यजनक है। आपने लिखा कि—

"भारत की वर्तमान स्थिति मे बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान बहुत कम संभव जान पडता है। योरप और अमेरिका के धार्मिक विचारो पर भी बुद्ध के जीवन और उनके उपदेशो का नये रूप मे प्रभाव पड रहा है। बौद्ध धर्म मनुष्य की आन्तरिक प्रेरणा के रूप में सामने आयेगा। मनुष्य जो बोयेगा वह काटेगा। वह आत्मा संयम की ओर अग्रसर मानव मात्र के प्रति उसके हृदय मे दया का संचार करेगा और जीवन को उच्च एवं सुन्दर बनानेवाले धर्म के रूप मे सामने आयेगा।"

सन् १८८२ मे किसी ने स्वप्न मे भी यह ख्याल नही किया होगा कि उसके बाद की शताद्वि मे एक ऐसे महापुरुष का जन्म होगा जो "अक्रोधेन जिनेक्रोध असाधु साधुना जिने" के सिद्धात को, जो उस समय एक चमत्कार सा ही था, लेकर अवतरित होगा और वह उस सिद्धात का उपयोग ऐसे साम्राज्य को उखाड फेंकने मे करेगा जिसमे कभी सूर्य अस्त नही होता था। यह महान घटना महारानी विक्टोरिया के उस स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के पश्चात् घटित हुई जब ब्रिटिश सत्ता अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर थी।

मध्यप्रदेश मे अहिंसात्मक संग्राम की पताका फहराई गयी। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी मध्यप्रदेश की ओर क्यों आकर्षित हुए और उन्होंने अपना निवास स्थान इस प्रान्त में क्यो बनाया? इसका कारण क्या यह नही हो सकता कि भारत के हृदय मध्यप्रदेश में बुद्ध की आत्मा अदृश्य रूप से कार्य कर रही थी।

नागपुर से २४ मील दूर रामटेक के निकट एक पहाडी है जो आज की नागार्जुन पहाडी के नाम से विख्यात है। बौद्ध धर्म के माध्यमिक दर्शन के जन्मदाता के नाते नागार्जुन का बौद्ध धर्म के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। माध्यमिक दर्शन की उत्पत्ति बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय से हुई। उनका मूत्रता का सिद्धान्त निर्वावा सिद्धान्त की भांति ही गलत समझा गया। परन्तु आज यह माना जाने लगा है कि आप का तात्पर्य उस तथ्यता से था जिसकी उपलब्धि गौतम बुद्ध को हुई थी। मुख्य कठिनाई मनुष्य द्वारा आत्मतत्व के समझे जाने मे थी। एक पाश्चात्य लेखक ने लिखा था कि यदि आत्मतत्व की अपरिमित स्थिति पर जोर दिया जाता है तो लोग केवल निरर्थक मोक्ष के रूप मे बौद्ध धर्म के निर्वाणतत्व की भ्रमपूर्ण व्याख्या करते है (क्राउसेज इन ह्यूमन अफेयर्स, पृ. १८०)। नागार्जुन बाल्य-काल में ही घर से निकाल दिये गये क्योंकि ज्योतिषियो ने बताया था कि यदि वे घर में रहेगे तो मृत्यु हो जायेगी। यहां आप

की मुलाकत एक बौद्ध भिक्षु से हुई जो आप की विलक्षण बुद्धि से प्रभावित हुआ और उसने आपके उज्वल भविष्य की सूचना दी। उसने आपका नालदा विश्वविद्यालय में भरती करा दिया जहा धीरे धीरे आप इस विश्वविद्यालय के प्रमुख हो गये। गया (बिहार) से १५ मील दूर उत्तर म आप के नाम की एक पहाडी भी है।

बौद्धकालीन भग्नावशेष मध्यप्रदेश में अधिकतर छत्तीसगढ में अर्थात् राजिम, बलोदा, तथा सिरपुर में पाये जाते है। बलोदा शिवरीनारायण से तीन मील दूर जोन नदी के दाहिने किनारे पर है और जिस समय मेजर-जनरल कनिघम ने इस स्थान की यात्रा की उस समय यहा दो मदिर थे जिनमे में एक मदिर में काले पत्थर पर तीन फुट की एक मूर्ति बनी हुई थी, जो अन्य स्थानो पर पाई जानेवाली बुद्ध की मूर्तियो से मिलती-जुलती थी। जब आप रायपुर के दूधाधारीमठ में गये तो आपको वहा बौद्धकालीन अनेक अवशेष मिले, जिन्हे सिरपुर में लाया गया बताया जाता था। हाल ही में डाक्टर दीक्षित ने सिरपुर स्थान का पता लगाया और बुद्ध तथा उनके समय के अनेक अवशेषो की जानकारी प्राप्त की है जिससे सिद्ध होता है कि किसी समय सिरपुर बौद्ध धर्म के कार्य-कलापो का बहुत बडा केन्द्र रहा है।

भादक एक दूसरा स्थान है जहा पर बौद्धकालीन प्रभाव बडी अधिक मात्रा में पाया जाता है। भादक नागपुर से १०८ मील दूर चादा जिले में है और यह महाभारत तथा जैमिनी अश्वमेध यज्ञ में उल्लिखित भद्रावती नगर जान पडता है। यह गाव से थोडी दूर दक्षिण में भद्रनाथ या भद्रनाग का मदिर है। यहा प्राप्त एक शिला-लेख नागपुर म्युजियम में पहुचा दिया गया और उसका प्रकाशन डाक्टर स्टेवेन्सन द्वारा हुआ था। परन्तु इसके मूल का अनुवाद डाक्टर हीरालाल की दृष्टि से आश्चर्य का विषय था। यह एक बौद्ध शिला-लेख है, बुद्ध को "जिन" तथा "तामिन" कहा गया है और उससे पता लगता है कि राजा सूर्यघोष का पुत्र राजप्रासाद के ऊपर से गिरने के कारण मर गया था। इसके पश्चात् उदयन पाडुवशीय राजा हुआ था। इसने महाकोशल पर शासन किया जिसकी प्रथम राजधानी भादक थी। चीनी यात्री युवान चाग इस स्थान पर आया था जिसने लिखा है कि यहा १०० सघाराम और लगभग १० हजार साधु थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी थे जो जनता के बीच रहते थे। यहा पर देव मदिर भी थे। उसके मतानुसार राजा क्षत्रिय था जो बौद्ध धर्म के प्रति अत्यत श्रद्धा रखता था। उसे कलाओ के अध्ययन में भी अभिरुचि थी। जान पडता है कि युवान चाग पर उसके तर्क शास्त्रज्ञान का इतना अधिक प्रभाव पडा कि वह शास्त्रार्थ की कला सीखने के लिये एक मास तक महाकोशल में रहा।

भादक में एक शिला-लेख ब्राह्मी लिपि म लिखा हुआ मिला था। परतु पूर्व इसके कि उसका विषय पढा जाये, वह खो गया। अनेक बौद्ध गुफाओ म से केवल दो बच रही है जिनमें से एक गाव के दक्षिण मे है और दूसरी विजासन की पहाडी पर है। अतिम गुफा में एक लम्बा बरामदा है जो पहाडी म ७१ फीट तक चला गया है और उसके अत में एक बच पर बैठी हुई भगवान बुद्ध की प्रतिमा है। इस बरामदे के दाए-बाए प्रवेशस्थल पर भी दो बरामदे है और हर एक में बुद्ध की एक प्रतिमा जडित है। इन बरामदो में एक शिला-लेख है जो बहुत घिस गया है और जिसे पढना सभव नहीं। गाव के पूरब की ओर एक तालाब है जिसके बीच में एक द्वीप स्थित है। पाषाण स्तभो का एक पुल द्वीप का मुख्य भूमि से मिलाता है। इस पुल की कुल लम्बाई १३६ फीट और चौडाई ७ २ फीट है। इसम मूर्तिया सुशोभित थी, जिनम से कुछ जैन मूर्तिया भी थी। इनमें से एक मूर्ति जैन समाज द्वारा एक शानदार मदिर में स्थापित की गई है। विचित्र बात तो यह है कि यहा विष्णु और महाकाली की तीन सिर और षटभुजा वाली मूर्तिया भी है। इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भद्रावती हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म का केन्द्र रही है।

पचमढी में स्थित पाडव गुफाए भी बौद्धकालीन है और उनकी बनावट अलोरा, अजता और कन्हेरी की गुफाओ से मिलती-जुलती है। मडला जिले के डिंडोरी स्थान के आसपास भी कुछ ऐसे भग्नावशेष मिलते है जो बौद्धकालीन भिक्षुओ की गति विधि के द्योतक है।

मेजर-जनरल कनिघम ने "आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया" में १४ शिला-लेखो का जिक्र किया है जिनमें से ११ शिला-लेख गुफाओ के और ११ पाषाण स्तम्भो के है। सरगुजा जिले के रायगढ स्थान म भी एक गुफा का शिला-लेख है। इसी प्रकार के दो पहाडियो म खुदे शिला-लेख देवटेक और रूपनाथ म है। देवटेक नागभीर स्टेशन से दो या तीन मील की दूरी पर है। इस स्थान के मदिर में ९ फीट लम्बी और ३॥ फीट चौडी शिला पर खुदाई है। उसके अक्षर मिट गये है। परतु अशोक स्तम्भो पर खुदे हुए अक्षरो से मिलते-जुलते जान पडते है। रूपनाथ में प्राप्त अशोक स्तम्भ ठीक स्थिति म था और उसपर लिखे गये अक्षर पढे जा सके है।

वैदिक आर्य गोंडवाना की ओर वढ गये। परंतु बौद्ध भिक्षु वर्षा ऋतु जगलों के बीच विताकर जहां अधकार था वहा धर्म का प्रकाश करते रहे। रूपनाथ मे प्राप्त अशोक के शिला-लेख मे नीचे लिखी वाते अकित है :—

"(१) देवानाम प्रिय कहते है—दो वर्ष से कुछ अधिक हुआ, परतु मै अच्छी तरह प्रगति न कर सका। परंतु साल भर पूर्व जव मैं सघ मे सम्मिलित हो गया, तव से मै धर्म के मार्ग पर अच्छी प्रगति कर रहा हू। जो देवता अलग रहे थे, वे इस अवधि मे मेरे द्वारा मनुष्यों से मिलते रहे, यह मेरे प्रयत्नो का फल है। इसे प्राप्त करना केवल महापुरुषो के लिए भी संभव नही है क्योंकि प्रयत्न करके साधारण से साधारण व्यक्ति भी दिव्य सुख का अनुभव करता है।

(२) इसी उद्देश्य से यह घोषणा की जा रही है कि छोटो और वडो को इस आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिये। सीमाप्रांत निवासियो (अन्त अपितु जानन्ति) को भी विदित हो। प्रक्रम की यह भावना सदा-सर्वदा वनी रहे। यह प्रयत्न दिन पर दिन वृद्धि गत होता हुआ कम से कम ढाई गुना हो जायेगा।

(३) यह विषय चट्टानो पर खुदा हुआ है और उसे इस प्रकार वार वार दुहराया गया है "यहा एक पाषाण स्तंम्भ है। यह इस पाषाण स्तम्भ पर उत्कीर्ण होना चाहिये।"

उपरोक्त उद्धरण से 'जम्वू द्वीपे शुद्रश्च उदारश्च' (क्षुद्र और महान) शब्द ध्यान देने योग्य है। प्रक्रय की यह भावना चिरस्थायी वने (अयम प्रक्रमस्य किमिति ? चिरस्थिति का स्यात्) ।"

अशोक का ध्यान समस्त जम्वू द्वीप (भारत) पर था और प्रक्रम का उपदेश हर छोटे वडे को उसने दिया था, जिसे बुद्ध का अवतार कहा जा सकता है।

क्या हमारा देश अशोक चक्र-चिन्ह पर अभिमान नही कर सकता जो उस धर्मचक्र के अतिरिक्त और कुछ नही है, जिसकी स्थापना भगवान वुद्ध ने वनारस के सारनाथ मे की थी। क्या उससे हमे नवभारत के निर्माण मे सतत प्रक्रम का उपदेश नही मिलता ?

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन

३८ वर्षों की प्रवृत्तियो का सिंहावलोकन

देश के विकास के साथ अन्य उपांगो का स्वाभाविक विकास होता है। उस नियम के अनुसार सन् १९०६ की कांग्रेस ने "स्वराज्य" का राष्ट्रीय मन्त्र देश के सामने रखकर जनता से बलिदान की माग की, और तब स्वराज्य के साथ ही साथ स्वभावत राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी राष्ट्र के सम्मुख आया। मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की विचार-धाराओ से उत्तर-प्रदेश में हिन्दी और उर्दू के विवाद ने उग्र रूप धारण किया और जिसके फलस्वरूप सन् १९१० में काशी नगरी में महामना मदनमोहन मालवीय के हाथो से "अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन" की स्थापना हुई, उसके उद्देश्यो में राष्ट्रभाषा का प्रचार तथा साहित्य की भण्डार-वृद्धि मुख्य थे। इसी प्रसग पर बगाल के नेता जस्टिस शारदाचरण मित्र ने यह घोषित किया था कि "हिन्दी राष्ट्रभाषा—और देवनागरी ही राष्ट्रलिपि होगी।" सम्मेलन का कार्य दिन पर दिन देश में व्यापक होता गया। श्रेय तपस्वी बाबू पुरषोत्तमदास टण्डन जी का है जिन्होने आरम्भ से लेकर अब तक इस सस्था का सचालन किया है। भारत के स्वाधीनता के इतिहास में सन् १९१६ का वर्ष विशेष महत्त्व रखता है। इसी प्रसग पर देश के नेताओ ने विशेषत लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनी बेसट और महात्मा गाधी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया और उससे सम्मेलन के आन्दोलन को काफी बल मिला और उस गतिविधि को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो गयी।

प्रान्तीय सम्मेलन का जन्म—सम्मेलन के छ अधिवेशन देश के विभिन्न नगरो में होने के बाद सातवां अधिवेशन मध्यप्रदेश की ओर से जबलपुर में ५, ६ और ७ नवम्बर १९१७ को बिहार के प्रकाण्ड पण्डित रामावतार शर्मा की अध्यक्षता में हुआ। स्वर्गीय पण्डित विष्णुदत्तजी शुक्ल के प्रयास से यह अधिवेशन सफलता के साथ सम्पन्न हुआ, जिसके कारण प्रदेश में नयी जागृति और उत्साह का निर्माण हुआ था। प्रदेश के महाराष्ट्रीय बन्धुओं ने इस कार्य में पूरा सहयोग दिया था, जिनमे सर्वश्री स्वर्गीय मुघालकर, जी एम खापर्डे, डॉ बी एस मुजे, माधवराव अणे, स्वर्गीय गोल-वलकर, आदि, प्रमुख नेता भी थे। जबलपुर के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के कारण ही प्रदेश साहित्य सम्मेलन का जन्म हुआ। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन तीन प्रमुख अवस्थाओ मे अब तक गुजरा है। उसके उतार-चढाव की कहानिया भी कम मनोरजक नही हैं। उस समय के सम्मेलन के कार्यकर्त्ता दो विचारधारा के लोग थे—एक तो सरकारी कर्मचारी व शिक्षाधिकारी और दूसरे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता। दोनो की कार्यप्रणाली भिन्न होने से उसका असर सम्मेलन पर भी हुआ। सरकारी कर्मचारी फूक-फूक कर पाव रखते थे कि कहीं उनका गोरा अफसर रुष्ट न हो जाय और उधर कार्यकर्त्तागण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये बार-बार जेल के सीकचो में बन्द होते थे। बस इन्हीं दोनो टागो पर सम्मेलन का शरीर रुका हुआ था। यही कारण है कि सम्मेलन कभी जागृत और कभी निद्रित अवस्था में दिखायी देता था। विशुद्ध साहित्य पर जीविका चलानेवाले इस प्रदेश में थे ही नही। कुछ पत्रकार थे, जो साहित्य और राजनीति में दखल रखते थे, इसलिये वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ की श्रेणी में गिने जाते थे। राजनीति से सन्यास लेने पर पण्डित माधवराव सप्रे के समान, साहित्य पर जीविका चलानेवाले बहुत ही थोडे थे। गुलामी ने जनता को भी अज्ञानता के गर्त में ढकेल रखा था।

सन् १९१९ तक मध्यप्रदेश में हिन्दी का अच्छा साप्ताहिक पत्र तक न था, फिर दैनिक की तो कल्पना करना ही व्यर्थ है। भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन में सप्रेजी ने जनता से अपील की थी कि मध्यप्रदेश से एक सुन्दर साप्ताहिक पत्र निकालने में धनिक-बन्धु सहायता दें। उसका समर्थन पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल और डॉ मुजे ने किया था, पर ८ वर्षो तक इस सम्बन्ध में कोई प्रगति नही हुई। उसका प्रधान कारण सरकार का आतक-कारी प्रेस एक्ट था। इस विधि के द्वारा जिला मजिस्ट्रेट सबसे प्रथम नगद जमानत मागता था और वह कब जब्त कर ली जायगी, इसका ठिकाना न था।

आरम्भिक अवस्था—प्रदेश की विचित्र अवस्था में साहित्य सम्मेलन के सगठन का कार्य पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल के अनुरोध से पण्डित माधवराव सप्रे ने अपने कधे पर उठाया था। यही कारण था कि सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन रायपुर में तारीख ३० और ३१ मार्च १९१८ को टाउन हाल में बरिस्टर तथा विधान सभा के सदस्य पण्डित प्यारेलाल

मिश्र की अध्यक्षता में हुआ था। अध्यक्ष का भाषण जो नागरी प्रचारिणी सभा की त्रैमासिक पत्रिका में आज भी हमको पढ़ने के लिये मिलता है, उससे पता चलता है कि अध्यक्ष स्वयं ब्रजभाषा और खड़ी बोली के झगड़े से बेजार थे। उन्होंने भाषण मे दोनों की खूबियां बतलायी पर अपना मत निर्भीकता से प्रकट न कर सके। प्रस्तावों की भाषा में स्वावलंबन और निर्भीकता का अभाव था, क्योंकि पहले प्रस्ताव मे यह कहा गया था कि "हे प्रभु, युरोप के महायुद्ध में हमारी सरकार विजयी हो" "हमारे प्रभु पंचम जार्ज", "भूयश्च शरद : शताम्"। इस शैली के प्रस्तावों से संस्था की तत्कालीन स्थिति साफ प्रकट होती है।

सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन खण्डवा की धर्मशाला के मण्डप मे तारीख १८ और १९ अप्रैल सन् १९१९ ई. को विधान सभा के सदस्य पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल की अध्यक्षता मे हुआ था। प्रथम अधिवेशन की कार्यप्रणाली देखकर मध्यप्रदेश के चीफ कमिश्नर ने सरकारी नौकरों को भाग लेने की आज्ञा सरकारी गजट द्वारा घोषित की। विशेष बात यह थी कि मच के प्रमुख स्थान पर सम्राट् पंचम जार्ज का चित्र रखा गया था। इसका तात्पर्य यही था कि सरकार यह समझे कि यह सस्था राजनीति मे अलिप्त है। द्वितीय सम्मेलन के पाच प्रस्ताव प्रमुख थे : (१) राष्ट्र भाषा हिन्दी हो (२) शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो (३) प्रान्त मे एक ऐसा प्रेस खोला जावे, जहा से हिन्दी का दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक-पत्र निकले और प्रदेश के लेखकों की पुस्तकें उसके द्वारा प्रकाशित हो (४) नगरपालिका और जनपदों की सारी कार्यवाही हिन्दी भाषा मे हो और (५) नागपुर के भावी विश्वविद्यालय की उच्च कक्षाओ में हिन्दी अनिवार्य विषय रखा जावे, आदि।

इस समय में देश के राजकीय क्षितिज मे जो परिवर्तन हुआ उसका मूल कारण महात्मा गान्धी का असहयोग आन्दोलन था जिसके द्वारा शासन की प्रतिष्ठा हिल गयी थी। उसका असर देश की विभिन्न संस्थाओं पर भी हुआ। सम्मेलन उससे अछूता न रहा, क्योंकि उसका सभापति उन्हीं को चुना गया, जो कि असहयोगी थे। राजनैतिक प्रांतीय परिषद् के साथ मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन सागर मे मई सन् १९२० ई. को बाबू गोविन्ददास की अध्यक्षता में हुआ। अध्यक्ष ने अपने भाषण मे साहित्य की अवस्था का चित्र प्रतिनिधियों के सामन रख दिया। इसी अधिवेशन मे सम्मेलन का एक विधान और वर्ष भर तक कार्य करने वाली स्थायी समिति* का निश्चय हुआ। वही पर जबलपुर में स्थायी कार्यालय रखने का निश्चय भी हुआ था।

प्रगति का प्रथम सिंहावलोकन (१९२०)—अध्यक्ष ने कहा था कि "अब स्वतन्त्रता का युग आरम्भ हुआ है, और हमें पूर्ण विश्वास है कि अब वह समय शीघ्र आने वाला है, जब हम पूर्ण स्वराज्य का उपभोग करेंगे और हमारे साहित्य मे स्वतन्त्रता की झलक दिखने लगेगी। काव्य, नाटक, दृश्य-काव्य, उपन्यास, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति,

---

* सम्मेलन की प्रथम स्थायी समिति.—सम्मेलन का स्थायी कार्यालय जबलपुर में रखा गया था। पदाधिकारियों में से अध्यक्ष—बाबू गोविन्ददास, उपाध्यक्ष—पण्डित प्यारेलाल मिश्र, पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल, पण्डित रविशंकर शुक्ल, डॉ. बा. शि. मुंजे, मन्त्री—पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, उप-मन्त्री—श्री. बालमुकुन्द त्रिपाठी, अर्थ-मन्त्री—श्री. नर्मदा प्रसाद मिश्र, आय-व्यय परीक्षक—श्री. गणेशचन्द्र प्रामाणिक।

स्थायी समति के ३० सदस्य—

बरार से—श्री. जी. एस. खापर्डे, पण्डित अमृतलाल (अचलपुर)।

नागपुर से—श्री. जमनालाल बजाज, श्री. श्रीकृष्णदास जाजू, श्री. शिवनारायण बाजपेयी, श्री. गोवर्द्धन शर्मा, श्री. प्रयागदत्त शुक्ल।

छत्तीसगढ़ से—पण्डित माधवराव सप्रे, पण्डित लोचनप्रसाद पाडे, सैयद अमीर अली "मीर", पण्डित कुंजबिहारी अग्निहोत्री, श्री. घनश्यामसिंह गुप्त, पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र।

नर्मदा विभाग से—सेठ हरीशंकर (हरदा), पण्डित नारायण प्रसाद वकील, श्री. दौलतसिंह चौधरी, पण्डित रामलाल वद्य, श्री. देवकृष्ण बाहेती।

जबलपुर विभाग से—ब्योहार रघुवीर सिंह, श्री. केदारनाथ रोहण, पण्डित शिवदयाल मिश्र, श्री. झुन्नीलाल वर्मा, श्री. उमेशदत्त पाठक।

जबलपुर से—पण्डित मनोहर पन्त गोलवलकर, पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, पण्डित विनायकराव, पण्डित गोविन्दलाल पुरोहित, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, श्री. नाथूराम मोदी।

कला-कौशल, वीर-साहित्य, सम्पादन-कला, महिला-साहित्य, साहित्य की आलोचना आदि, में स्वतंत्रता की झलक स्पष्ट दिखेगी। गत वर्ष हमारे प्रदेश से ३२ पुस्तकें प्रकाशित हुई थी, जिनमें सार-युक्त ग्रंथ मुश्किल से दो या तीन होंगे। विगत वर्ष में ५८ ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। इस हीनता को देखकर किस हिन्दी भाषी को दुःख न होगा? गत ५ वर्षों का ब्योरा लेने पर हमारे प्रदेश के लेखकों ने जो पुस्तकें लिखी—उनमें उल्लेख योग्य केवल पण्डित माधवराव सप्रे द्वारा अनुवादित लोकमान्य तिलक का गीतारहस्य, पण्डित विनायक राव की विनायकी टीका, पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी का सदाचार दर्पण, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी का कृष्णार्जुन युद्ध, पण्डित लोचनप्रसाद पाडे कृत मेवाड गाथा, डॉ. हीरालाल के दमोह दीपक और जबलपुर ज्योति, पण्डित प्रयागदत्त शुक्ल का मध्यप्रदेश का इतिहास, श्री भगाडे साहब की ज्ञानेश्वरी का अनुवाद है।" प्रदेश की पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था कि "कर्मवीर" के द्वारा जनता में नवजीवन की शक्ति पैदा हुई है। नागपुर का "मारवाडी" अपने दायरे में अच्छा कार्य कर रहा है और उसी तरह "संकल्प" का सकल्प स्तुत्य है। "सुबोध सिन्धु" और "आयसेवक" को अपनी दशा सुधारना चाहिये। मासिक पत्रों में "श्री शारदा", प्रदेश की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। "छात्र सहोदर" ने छात्रों के साथ सहोदरता आरम्भ की है। सिवनी की "शिक्षण कौमुदी" और नरसिंहपुर का "विकास" भी साधारण उपयोगी है। शिक्षा के विषय में आपने कहा था—"हमारी शिक्षा हिन्दी के द्वारा हो। पुस्तकालयों के कार्य को आगे बढाया जाये और हमारी विधान सभा की कार्यवाही हिन्दी में हो तथा हिन्दी के प्रचार के लिये सतत उद्योग की आवश्यकता है। विधान सभा में हम ऐसे प्रतिनिधियों को भेजें, जो हिन्दी के समर्थक हों। इस सुधार से जनता में वह योग्यता और उत्साह उत्पन्न होने की आशा है, जिसके लिये अधिकारों में शासन सुधार की सृष्टि हुई है।"

प्रस्तावों के रूप में निम्न प्रस्ताव मुख्य थे—सरकार के जिला दफ्तरों में हिन्दी भाषा का व्यवहार हो। सरकार से प्रार्थना है कि वह अपनी सरकारी और कानूनी भाषा को जिसका हिन्दीपन केवल अक्षरों में है, जनता के लाभ के लिये सरल करने की कृपा करे। प्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानों में हिन्दी पुस्तकालय स्थापित हो और हिन्दी लेखकों की एक सूची तैयार की जावे। इस तरह तृतीय सम्मेलन में १६ प्रस्ताव स्वीकृत किये गये थे। प्रस्ताव नं २, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १३, १५ और १६ प्रस्ताव सरकार के पास भेजे गये थे, पर सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया। ४, ८, १३, १५, १६ ये प्रस्ताव शिक्षा विभाग से संबंध रखते थे। प्रस्ताव नं ७ हिन्दू विश्वविद्यालय के पास भेजा गया था, जिसमें यह आग्रह किया गया था कि वह अपना माध्यम हिन्दी करे। प्रस्ताव नं ११ से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से निवेदन किया गया था कि वह अपनी कार्यवाही हिन्दी में करे और उसी तरह का एक प्रस्ताव जिला बोर्डों के संबंध में था। सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन १२, १३ और १४ मार्च १९२१ को जबलपुर में पं लोचनप्रसाद पाडे की अध्यक्षता में हुआ था। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पं रघुवरप्रसाद द्विवेदी, अंग्रेजी शासन के समर्थकों में से थे, जिसके कारण अधिवेशन को सफल बनाने में कई तरह की बाधा आयी थी, किन्तु फिर भी दूसरे दिन कांग्रेस नेताओं ने भाग लेकर उसकी कार्यवाही में तेजस्विता ला दी थी। सरकार से निवेदन या प्रार्थना करने वाले प्रस्तावों को बिदाई दे दी गई थी। जैसे—श्री नाथूराम मोदी ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि "म्युनिसिपल, जनपद और कोआपरेटिव के समान अर्द्ध-सरकारी संस्थाएं कई बार प्रार्थना करने भी अपना कामकाज हिन्दी में नहीं करती, इसलिये जनता से अनुरोध है कि वे निर्वाचन में उसी को वोट दें जो हिन्दी सेवा करने की प्रतिज्ञा करे।' इस प्रस्ताव पर श्री घनश्यामसिंह गुप्त पं कुंजविहारीलाल अग्निहोत्री और श्री भैयालाल जैन के भाषण हुए थे। इसी तरह प्रान्तीय अदालतों और विधान सभा की कार्यवाही हिन्दी में न होने से सम्मेलन असंतोष व्यक्त करता है। इस प्रस्ताव पर खूब चखचख चली थी। मूल प्रस्ताव के समर्थक थे पं चन्द्रगोपाल मिश्र, श्री मनोहरपंत गोलवलकर और श्री रुद्रप्रतापसिंह, पर ठाकुर लक्ष्मणसिंह और पं द्वारकाप्रसाद मिश्र आदि ने विरोध करते हुए कहा था कि इस प्रस्ताव पर हम असंतोष व्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में उसका अर्थ होता है कि हम सरकार से यह प्रार्थना कर रहे हैं कि विधान सभा आदि का काम हिन्दी में हो। हमारी कांग्रेस ने यह निश्चय किया है कि हम कोर्ट और कौंसिलों का बहिष्कार करें। ऐसी अवस्था में विधान सभा से असंतोष प्रकट कर यह आशा न रखें कि उनका सारा कार्य हिन्दी में हो। यह विवाद उग्र हो जाने से अन्त में वह प्रस्ताव स्थगित ही कर दिया गया। तीसरे दिन की बैठक में कांग्रेस को इसलिये धन्यवाद दिया गया था कि उसने अपनी कार्यवाही हिन्दी में भी करने की अनुमति दे दी थी। इन सबमें महत्त्व का प्रस्ताव यह स्वीकृत किया गया था कि—"मध्यप्रदेश में हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित किया जावे।" पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने एक प्रस्ताव के द्वारा प्रदेश के लेखक और कवियों से आग्रह किया "कि वे लोग अपनी रचनाएं स्वाधीनता प्राप्त करने के ध्येय से लिखें, जिससे जनता में जागृति हो।" इस तरह जबलपुर का चतुर्थ अधिवेशन राष्ट्रीय भावनाओं के साथ संपन्न हुआ। उसके कारण सरकारी पदस्थ हिन्दी साहित्य सेवियों में काफी क्षोभ फैल गया था। उनके कारण सरकारी कर्मचारी संस्था से कुछ समय के लिये पृथक से हो गये।

सम्मेलन का पांचवा अधिवेशन ४ मार्च १९२२ को नागपुर में पं. रविशंकर शुक्ल की अध्यक्षता में हुआ। विधान सभा के अध्यक्ष सर गंगाधरराव चिटनवीस, डॉ. मुजे, शिक्षा मंत्री श्री नारायणराव केळकर, श्री जमनालाल वजाज, श्री दादासाहव खापर्डे, श्री मनोहरपंत गोलवलकर, रायसाहव रघुवरप्रसाद द्विवेदी, पं. कामताप्रसाद गुरु आदि ने सम्मेलन को सफल वनाने में सक्रिय योग दिया। सवसे महत्त्व की वात यह थी कि सम्मेलन मे महात्मा गांधी का पत्र भी पढा गया था।* नागपुर सम्मेलन में विधान में कई संशोधन किये गये, जिनके अनुसार स्थायी समिति के सदस्यो की सख्या ४० रखी गई। अध्यक्ष ने भाषण के अन्त में साहित्यकारो से यह अपील की—स्वतंत्रता के अभाव मे आज यह देश कितना वेचैन हो रहा है, यह आपके सामने है; अतएव हिन्दी-साहित्य-प्रेमी वर्तमान के स्वातंत्र-संग्राम से उदासीन रहते हुए उत्तम साहित्य के निर्माण का सुख देखते हों—तो इससे वढ़कर आश्चर्य की वात कोई नही हो सकती। भारत का हृदय पददलित है। दलित हृदय मे उच्च भावनाओं का संचार और सस्कार कहाँ? भारत का कठ अनिष्टकारी शक्तियो के द्वारा कुठित हो रहा है। कुंठित हृदय से सच्चे हृदयोद्गार का नि.सरण किस तरह सभव हो सकता है? हृदयोद्गार के अवरोध मे साहित्य-निर्माण की सभावना कैसी?

इस सम्मेलन मे १० प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। सम्मेलन ने तीन उप-समितियां भी वनायी जिनमे से एक राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, दूसरी समालोचना समिति और तीसरी विभक्ति निर्णय समिति। इस सम्मेलन मे विदर्भ का प्रतिनिधित्व श्री व्रिजलाल वियाणी ने किया था और उन्होंने आगामी अधिवेशन को अकोला के लिये निमत्रण दिया था, पर राजनैतिक आदोलन मे व्यस्त हो जाने से सम्मेलन का अधिवेशन १० वर्षो के लिये टल गया। इधर इसी वीच मे स्थायी मत्री पं. वालमुकुन्द त्रिपाठी के देहावसान के कारण कार्यालय अस्त-व्यस्त हो गया। सम्मेलन पुस्तकालय और सम्मेलन के कागज-पत्र भी लुप्त हो गये। सम्मेलन के जीवन की प्रथम अवस्था यही पर समाप्त हो गई।

सम्मेलन की नई चेतना.—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यो मे नवचैतन्य सन् १९३५ से फिर से आया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २४ वा अधिवेशन इन्दौर मे हुआ था। उस प्रसग पर मध्यप्रदेश की ओर से पं. प्रयागदत्त शुक्ल ने स्व. जमनालालजी वजाज की अनुमति लेकर स्थायी समिति मे यह प्रस्ताव रखा था कि सम्मेलन का २५ वा अधिवेशन नागपुर में हो। मद्रास वालों का भी आग्रह था, पर महात्मा गाधी ने नागपुर वाला प्रस्ताव मान लिया। इस अवसर पर अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन की रजत-जयती वावू राजेन्द्रप्रसादजी (हमारे वर्तमान राष्ट्र-पति) की अध्यक्षता मे मनाई गई थी। इस अधिवेशन को सफल वनाने का अकथ प्रयास स्वागताध्यक्ष श्री व्रिजलाल वियाणी ने किया। इस सम्मेलन मे महात्मा गांधी, श्रीमती कस्तूरवा, सरदार पटेल, श्री राजगोपालाचार्य, उस समय के राष्ट्रपति पं. जवाहरलाल नेहरू, श्री कन्हैयालाल मुंशी, वावू प्रेमचद, राजर्षि टडन, श्री जैनेन्द्र कुमार, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री वालकृष्ण नवीन, श्री. रामनरेश त्रिपाठी, प. लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री जयचन्द्र विद्यालकार, पं. माखनलाल चतुर्वेदी आदि अनेकानेक प्रमुख साहित्यिकों ने भाग लेकर उसे सफल वनाया था। सवसे महत्त्व की वात यह थी कि श्री काका कालेलकर के प्रयास से नागपुर में ही सम्मेलन के साथ में अखिल भारतीय साहित्य परिषद की स्थापना महात्मा गाधी की अध्यक्षता में हुई थी जिसका उद्देश्य था भारत की समस्त भाषाओ के साहित्यिक एक मच पर वठकर साहित्य-विकास का कार्यक्रम तैयार करे। श्री. कन्हयालाल मुशी और श्री काका कालेलकर उसके सचालक थे और उसका मुखपत्र "हस" (सम्पादक श्री प्रेमचद और श्री मुशी) था। नागपुर अधिवेशन से इस प्रदेश मे फिर से साहित्य का नवचैतन्य उत्पन्न हुआ।

सावरमती, २५-१-१९२२

*महाशय,

आपका पत्र महात्माजी को मिला। उनकी राय मे इस राज्यक्रांति के समय साहित्य संवंधी संस्थाओं का आगामी कर्तव्य (१) राजक्रांति मे मदद दें ऐसी कितावों का हिन्दी मे लिखा जाना, अनुवाद करके फैलाना और (२) हिन्दी को राष्ट्रभाषा वनाने का पूरा यत्न करना और उसके लिये द्राविड़ देश मे हिन्दी शिक्षको का भेजा जाना, होना चाहिये। मद्रास मे हिन्दी प्रचार का काम हो रहा है, पर इतना वस नही।

श्री प्रयागदत्त शुक्ल,
मंत्री, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
सीतावर्डी, नागपुर.

आपका—
सुरेन्द्र.

कटनी के साहित्य प्रेमियों के उत्साह से सम्मेलन का ६ वा अधिवेशन कटनी में प. माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हुआ। जिसके लिए ब्योहार राजेन्द्रसिंह ने काफी प्रयास किया था। स्वागताध्यक्ष श्री दयाशंकर माथास्कर ददे थे। इसी सम्मेलन के साथ में प्रान्तीय कवि सम्मेलन का अधिवेशन प. कामताप्रसाद गुरु की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन हो जाने के बाद भी सम्मेलन का स्थायी कार्यालय पुष्ट रीति से न जम सका। परिणाम यह हुआ कि वर्ष भर तक कोई कार्य न हुआ। फिर भी सूने हुए ठूठ पर जल-सिंचन से उसमे नवीन पल्लव अवश्य ऊग आये थे।

सप्तम अधिवेशन सागर में प. द्वारकाप्रसाद मिश्र की अध्यक्षता म हुआ जिसकी निश्चित तिथि व कार्यवाहियों का विवरण उपलब्ध नही है और इसके बाद भी सम्मेलन के स्थायी काय म कोई मजबूती नहीं आई। इसी कारण से सम्मेलन ३-४ वर्षो तक सुप्त पडा रहा। इस समय तक न तो सम्मेलन का कहीं स्थायी कार्यालय था और न उसके कार्यकर्त्ताओ का ठीक पता लगता था।

सन् १९३९ म प. बलदेवप्रसाद मिश्र को स्फूर्ति हुई कि सम्मेलन को फिर से एक गति दी जाय और उसका समर्थन ब्योहार राजेन्द्रसिंह ने किया। रायपुर के तरुण साहित्यिक श्री घनश्यामप्रसाद 'श्याम' ने सम्मेलन को सफल बनाने का भार अपने ऊपर लिया—जिसके कारण सम्मेलन का अष्टम अधिवेशन रायपुर में रायगढ के राजा चक्रधरसिंह की अध्यक्षता म हुआ। इस सम्मेलन तक सम्मेलन की यह स्थिति थी कि न तो सम्मेलन की कोई नियमावली ही थी और न किसी प्रकार की परम्परागत लिखा पढी। फिरभी अष्टम सम्मेलन पर्याप्त सफल रहा। किसी अन्य स्थल से निमत्रण के अभाव म सम्मेलन का नवम अधिवेशन फिर भी मिश्रजी के प्रयास से रायपुर म ही हुआ। यह सन् १९४१ की बात है। अध्यक्ष हुए ब्योहार राजेन्द्रसिंह और प्रधान मत्री श्री घनश्यामप्रसाद 'श्याम'। तीन वर्षों तक सम्मेलन का कार्यालय रायपुर में ही रहा। ब्योहारजी ने उद्योग करके सम्मेलन का दशम सम्मेलन सागर में करवाने की व्यवस्था की जिसके अध्यक्ष थे डॉ बल्देवप्रसाद मिश्र। सम्मेलन का काय इसी समय से सिलसिलेवार आरभ हुआ। रायपुर सम्मेलन म सम्मेलन की एक नियमावली बनायी गई थी, जो सागर अधिवेशन म स्वीकृत की गई।

इसम प्रधान मत्री श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी चुने गये। पश्चात् ११ वा अधिवेशन सन् १९४५ में नागपुर में हुआ और मनोनीत अध्यक्ष श्री कामताप्रसाद गुरु की अस्वस्थता के कारण फिर से वह भार डॉ बल्देवप्रसाद मिश्र को सौंपा गया। प्रधान मत्री श्री विश्वम्भरप्रसाद शर्मा चुने गये। नागपुर अधिवेशन में प्रदेश के प्राय सभी प्रमुख साहित्यिको ने भाग लिया था।

सम्मेलन का विकास—श्री ब्रिजलाल वियोगी के निमत्रण पर सम्मेलन का १२ वा अधिवेशन १८ दिसबर १९४७ को अकोला में बाबू गोविन्ददास की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसी दिन स्थायी समिति की प्रथम बैठक भी हुई थी। अध्यक्ष ने सम्मेलन की नयी कार्यकारिणी घोषित की जिसमे मत्री श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री थे। अकोला की श्रीमती राधादेवी गोयनका ने सम्मेलन के द्वारा प्रति वर्ष ५०० रु का पुरस्कार देने की घोषणा की। सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि सम्मेलन का स्थायी कार्यालय नागपुर में ही हो। सम्मेलन-भवन बनाने के लिये एक समिति भी बनायी गयी और सम्मेलन का वार्षिक व्यय ६ हजार रुपयो का निश्चित किया गया। अकोला सम्मेलन के पश्चात प्रति-मास एक विज्ञप्ति प्रकाशित होती थी, जिससे सम्मेलन की गतिविधि का पूरा आभास मिल जाता था। इसी समय मे प्रान्तीय सरकार ने प्रति वर्ष ५ हजार की सहायता देने का निश्चय किया, जिससे सम्मेलन के कार्यों को काफी बल मिला।

सम्मेलन का १३ वा अधिवेशन (१९४९) में राजनादगाव में श्री भदन्त आनद कौसल्यायन की अध्यक्षता में हुआ। उसी सम्मेलन में प्रधान मत्री का भार ब्योहार राजेन्द्रसिंह पर सौंपा गया। इसीके पूर्व सम्मेलन कार्यालय के द्वारा एक ग्रथमाला प्रकाशित करने का काय आरभ हुआ, जिसमें विनयकुमार के गीत, निमाडी लोकगीत और बख्शीजी के निबध, प्रमुख पुस्तके थीं। इस वर्ष म प. माधवराव सप्रे की जीवनी और नक्षत्र दो ग्रथो का प्रकाशन सम्मेलन के द्वारा किया गया। इस वर्ष भी सरकार से सम्मेलन को ५ हजार की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी।

हमारी मातृभाषा हिन्दी का भारत की राज्य-भाषा घोषित हो जाना इस वर्ष की महान घटना है। वह तो देश की स्वभावत राष्ट्रभाषा है ही। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदेशानुसार प्रान्त भर में "हिंदी दिवस" मनाया गया।

पं. जवाहरलालजी म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन के श्री फतेहचन्द मोर हिंदी भवन के शिलान्यास के अवसर पर भाषण देते हुए : मंच पर श्री शुक्लजी, प्रमुख साहित्यिक तथा दानदाता बैठे हैं।
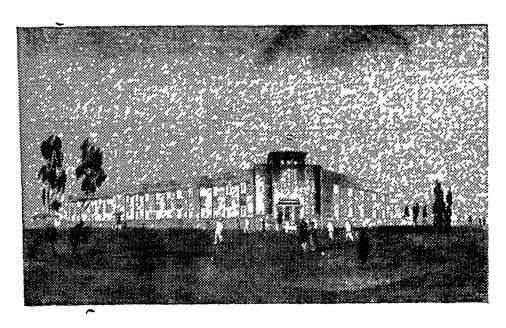
नागपुर में बन रहे उक्त भवन का दृश्य-चित्र
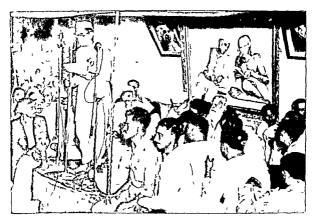
सम्मेलन के १५ वें गोंदिया अधिवेशन का एक दृश्य अध्यक्ष श्री चियाणीजी भाषण दे रहे हैं।

सम्मेलन के गत १६ वें दुर्ग अधिवेशन का दृश्य डॉ रामकुमार वर्मा उद्घाटन भाषण देते हुए दिखलाई पड़ रहे हैं।

डॉ. रघुवीर के नेतृत्व मे पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य जनवरी १९४७ मे प्रारंभ हो गया। अनेकों अध्यापको तथा विशेषज्ञो ने उसमे योगदान दिया है। उसके अनुसार अर्थ, वाणिज्य और प्रशासन शब्द-कोष प्रकाशित हुए है। साथ ही वन, शिक्षा, खनिजशास्त्र तथा कृषि की शब्दावली भी तैयार हो रही हैं। साथ ही भौतिक शास्त्र, गणित, विज्ञान, प्राणिशास्त्र तथा वनस्पति-शास्त्र पर पाठ्य-पुस्तके तैयार की गई है। पारिभाषिक शब्दावली के साथ-साथ राष्ट्र-भाषा प्रमाणीकरण का कार्य भी हमारे शासन ने अपने हाथ मे लिया है। गत ४ जनवरी तक नागपुर मे पं. रविशंकर शुक्ल की अध्यक्षता मे राष्ट्र-भाषा प्रमाणीकरण की परीक्षा हुई--उसका उद्‌घाटन राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसाद ने किया था। इसमे देश के १३ विभिन्न राज्यो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया था। असल में यह कार्य भारत सरकार को अपने हाथ मे लेना चाहिये था, जैसा कि श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने उक्त परिषद के प्रारंभिक भाषण मे कहा था। परिषद मे भिन्न-भिन्न वक्ताओ ने इसी बात पर जोर दिया था कि--

(१) यह कार्य अखिल भारतीय रूप मे केन्द्रीय शासन तथा राज्यो के सहयोग से किया जावे। इस कार्य के लिये अध्यक्ष को अधिकार दिये गये थे।

(२) शासन, शिक्षा, न्याय आदि के लिये अंग्रेजी के स्थान पर समान शब्दावली निर्माण करने के लिये, एक हिन्दी-अंग्रेजी बृहत कोष का निर्माण करना परम आवश्यक है।

परिषद ४ विभिन्न खंडो मे बंट गई थी, जिसके जिम्मे निम्न कार्य किये गये :--

(अ) हिन्दी भाषा की प्रामाणिक, व्यापक और सुकर शब्दावली बनाने के लिये तुरन्त क्रियात्मक पग बढाना।

(आ) हिन्दी के वर्ण-विन्यास तथा उच्चारण को प्रामाणिक रूप देना।

(इ) हिन्दी व्याकरण को प्रामाणिक रूप देना।

(ई) नागरी-लिपि को प्रामाणिक रूप देना।

इन चारो विषयो पर समितियो ने उपयोगी सुझाव दिये--जो उसके विवरण मे देखे जा सकते है। अब आवश्यकता यह है, कि इस कार्य को आगे बढाया जावे और अखिल भारतीय आधार पर कार्य किया जावे।

हिन्दी की शब्दावली, व्याकरण, लिपि का उच्चारण मिश्रित हो जाने के साथ हिन्दी माध्यम का प्रश्न उपस्थित होता है, जिसके लिये सम्मेलन बराबर अनुरोध कर चुका है।

इस दिशा में हमारे प्रदेश मे उपयोगी कार्य हुआ है। अक्टूबर १९४९ मे पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र ने देश के उप-कुलपतियो की एक सभा नागपुर मे बुलायी थी, जिनमे उपयोगी निर्णय किये गये। इसके बाद विश्वविद्यालय कमीशन ने भी मातृभाषा माध्यम के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण सुझाव किये। २२ जुलाई १९५० को मुख्य मत्री पं. रविशंकर शुक्ल ने फिर एक परिषद बुलाई, जिनके निर्णय इस तरह हैं :--

(१) नागपुर विश्वविद्यालय मे कला और विज्ञान मे पढ़ाई और परीक्षा के लिये बी. ए तक हिन्दी या मराठी माध्यम स्वीकार करना विद्यार्थी की इच्छा पर रहे।

(२) सागर विश्वविद्यालय के उक्त विषयो के लिये केवल हिन्दी माध्यम रहे।

(३) नागपुर की परीक्षाओं के लिये उक्त विश्वविद्यालयो ने उन्हे अंग्रेजी माध्यम का विकल्प रखा है--वह वैसा ही रहे।

(४) बी. एस. सी. परीक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तकें तुरन्त बनाई जावें।

(५) हिन्दी की एम ए कक्षाएं बनाने के बाद हिन्दी माध्यम द्वारा पढाई हो। विज्ञान संबंधी विषयों पर जब तक पाठ्य-पुस्तके तैयार नही हो जाती तब तक इसकी पढ़ाई व परीक्षा अंग्रेजी ही मे हो।

(६) मेडिकल, इंजीनियरिंग, पशु-चिकित्सा, कृषि तथा शिक्षा महाविद्यालयों में जैसे ही पाठ्य-पुस्तकें तैयार हो जावे, हिन्दी माध्यम जारी कर दिया जावे।

(७) भाषा विभाग ६ मास के भीतर रिपोर्ट दे कि उक्त पाठ्य-पुस्तकें बनने में कितना समय लगेगा? उसका साधन क्या होगा? और हिन्दी माध्यम जारी करने की तिथि कौन सी हो सकती है?

(८) माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अंग्रेजी माध्यम को बन्द करने का निर्णय शीघ्र करे।

अन्तिम प्रस्ताव पर उक्त बोर्ड ने १९ अगस्त को यह निर्णय किया कि सन् १९५२ में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी माध्यम आरंभ कर दिया जायगा। साथ ही अहिन्दी वालों के लिये हिन्दी विषय अनिवार्य कर दिया जावे।

सम्मेलन ने स्मृतिरक्षा, साहित्यकारों का अभिनंदन, साहित्यिक समारोह (तुलसी जयन्ति, वसंतोत्सव आदि) मनायें। इस वर्ष में कार्य-समिति की ५ बैठकें तथा स्थायी समिति की २ बैठकें हुई थी।

बस्तर जिले के जगदलपुर नगर में सन १९५० का सम्मेलन का १८ वां अधिवेशन खूब सफल रहा। उसके उद्घाटक पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र थे। बस्तर नरेश स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी थे। इस अधिवेशन में प्रधान मंत्री श्री स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी चुने गये।

जगदलपुर सम्मेलन के बाद सम्मेलन की गतिविधि फिर मंद हो गई। इसलिये उपाध्यक्ष पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने अध्यक्ष की अनुमति से सम्मेलन का कार्यालय नागपुर में रखने की व्यवस्था की और उसका भार श्री ललिताप्रसाद पुरोहित को सौंपा। श्री स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी ने मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। श्री पुरोहित जी ने परिश्रमपूर्वक सम्मेलन में नवचैतन्य उत्पन्न किया और सम्मेलन का अधिवेशन गोंदिया में कराने का प्रयास किया।

वर्तमान प्रवृत्तियां—सम्मेलन की नई प्रवृत्तियां गोंदिया के १५ वें अधिवेशन से आरंभ होती हैं जो ४ और ५ अक्टूबर १९५२ को श्री ब्रिजलाल बियाणी (अर्थ मंत्री, मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में हुआ। सभापति के अपने भाषण में हिन्दी के कर्तव्य का सुंदर चित्रण था। सम्मेलन की कार्यवाही के प्रसार का प्रबंध उत्तम था। पत्रकारों के अतिरिक्त, डाकुमेंटरी फिल्म व्यवस्था और रेडिओ द्वारा रिले-व्यवस्था भी की गयी थी। ललित साहित्य कार्यक्रम भी सुंदर रहा। "अंधेरी रात में दीपक जलायें कौन बैठा है"—इस गीत के स्वर लहरी के साथ ललित कला सम्बन्धी कार्यक्रम समाप्त हुआ।

इस सम्मेलन से एक नवीन प्रणाली आरंभ हुई और वह है कि प्रदेश के ख्यातिप्राप्त पुराने साहित्यकारों का सम्मान। श्री लज्जाशंकरजी झा, श्री सुखरामजी चौबे "गुणाकर", पं० मातादीनजी शुक्ल, श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी, पं० प्रयागदत्त शुक्ल, पं० हृषीकेश शर्मा, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय और पं० मुकुटधर पाण्डेय इन अष्ट साहित्यकारों का इस अधिवेशन में सम्मान सम्मेलन के द्वारा किया गया। साहित्यकारों को चांदी के "कासकेट" में एक-एक अभिनंदन-पत्र समर्पित किया गया जिसमें उनकी सेवाओं का उल्लेख था। इस अधिवेशन के प्रस्तावों में निम्न प्रस्ताव महत्त्व-पूर्ण थे, जैसे—"यह सम्मेलन पारिभाषिक शब्दावली को महत्त्व देता है। जो शब्दावली रखी जा रही है वह योग्य नहीं है। हिन्दी तथा मराठी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करने के लिये कार्य किया जाय। विदर्भ साहित्य संघ ने पारिभाषिक शब्दावली की आलोचना करते हुए एक उपसमिति बनाई है। प्रदेश के पत्रों में उस सम्बन्ध में काफी चर्चा हुई है। प्रान्त के विद्वानों से सलाह लेकर तब उन शब्दों का निर्माण किया जाय, सारे विद्वानों का संगठन किया जावे तथा अलग अलग ऐसे शब्दों को बनाये जिसे सरकार माने"। इस प्रस्ताव पर काफी चर्चा हुई और अंत में यह स्पष्टीकरण किया गया कि सरकार अधिकारी विद्वानों के द्वारा और साहित्यिक संस्थाओं का परामर्श करके शब्दावली तैयार करे।

सम्मेलन ने सरकार से यह भी आग्रह किया था कि मध्यप्रदेश सरकार साहित्यकारों को पुरस्कार देकर सम्मानित करे। परंतु यह प्रस्ताव वापिस इसलिये ले लिया गया कि सरकार इस संबंध में उचित कदम उठा रही है। गोंदिया सम्मेलन के बाद अध्यक्ष ने अपनी नवीन कार्यकारिणी की घोषणा की जिसके अनुसार श्री रामगोपाल माहेश्वरी को प्रधान मंत्री का भार सौंपा गया। अध्यक्ष बियाणीजी तथा मंत्री श्री माहेश्वरीजी के कारण सम्मेलन

के विविध कार्यो को नवचैतन्य प्रातप हुआ। नवीन कार्य समिति की प्रथम वैठक ११ जनवरी १९५३ को हुई जिसमें आगामी वर्ष का आय व्यय का अनुदान स्वीकृत किया गया, जिसके अनुसार १६ हजार रु. का व्यय होने का अंदाज किया गया था। इसी प्रसग पर श्री. माहेश्वरीजी ने नागपुर मे सम्मेलन भवन के संवध मे डेढ लाख रुपयो की योजना पेश की, जिसमें सम्मेलन द्वारा यह निधि एकत्रित किये जाने और ५० हजार रु राज्य सरकार से नियमानुसार अनुदान की अपेक्षा, यह अनुमान कूता गया था। भवन के लिये राज्य सरकार से जमीन प्राप्त करने के कार्य के सवंध मे भी जानकारी दी गई थी। इसी तरह प्रदेश के भिन्न भिन्न जिलो मे जिला अधिवेशन करने तथा जनता मे साहित्यिक जागृति के लिये भी सम्मेलन की ओर से प्रयास किया गया। सम्मेलन के आंदोलन का प्रभाव यह हुआ कि साहित्य निर्माण के लिये सरकार ने एक लाख की निधि घोषित की और उसकी विनियोग की योजना मे ९० हजार रु. की राशि अन्य भाषाओ से हिन्दी के अनुवाद-कार्य में और १० हजार रुपये हिन्दी-मराठी के योग्य ग्रथों पर पुरस्कार के लिये नियत किये।

इसी वीच, मध्यप्रदेश सरकार ने हिन्दी-मराठी को प्रांत की राज्य-भापा घोपित करने तथा कुछ अपवादो को छोडकर समस्त कार्य प्रादेशिक भापाओं मे करने की घोपणा की। सम्मेलन की एक समस्या की इस प्रकार पूर्ति हुई।

सन् १९५३ में सम्मेलन की एक चिरकालीन आवश्यकता—अपने भवन के निर्माण का स्वप्न साकार होता दिखाई पडा। अध्यक्ष महोदय के सद्प्रभाव से सम्मेलन भवन की योजना मूर्त रूप मे सामने आई। उन्हे तुमसर के प्रतिष्ठित नागरिक सर्वश्री सेठ नरसिहदासजी मोर, सेठ गोपीकिसनजी अग्रवाल एवं सेठ दुर्गाप्रसादजी सराफ से कुल मिलाकर १ लाख १ हजार रुपये की निधि से "श्री फत्तेहचद मोर हिन्दी भवन" वनाने का अभिवचन मिला।

इस वीच प्रातीय सरकार द्वारा सम्मेलन-भवन के लिये अम्वाझरी रोड पर लगभग पौन एकड़ जमीन का प्लाट प्रदान किया गया। इसके वाद सम्मेलन के लिये उपयुक्त भवन का, जिसके साथ रगमंच भी रहेगा, नक्शा तैयार कराया गया।

सम्मेलन भवन का शिलान्यास.—सम्मेलन भवन का शिलान्यास ५ जनवरी १९५४ को राष्ट्रनायक पं. जवाहरलालजी नेहरू के करकमलों द्वारा होना सम्मेलन के इतिहास में चिरस्मरणीय घटना रहेगी। अध्यक्ष श्री वियाणीजी का अनुरोध इस संवध मे आपने प्रसन्नतापूर्वक माना जो पडितजी की हिन्दी एव साहित्य के प्रति रुचि का सुन्दर प्रमाण है। इस अवसर पर पडितजी ने जो भाषण दिया वह भी वडा महत्त्वपूर्ण था। सम्मेलन भवन के शिलान्यास का समारोह एक सास्कृतिक और साहित्यिक वातावरण मे किया गया और उस समारोह की सर्वत्र सराहना हुई।

इस अवसर पर भाषण देते हुए सम्मेलन के अध्यक्ष श्री वियाणीजी ने कहा कि—"प्रांतीय हिदी साहित्य के इतिहास में आज का दिन अवश्य एक घटना वनकर रहेगा। हिन्दी के इतिहास मे भी यह एक महत्त्वपूर्ण घडी है। हिदी आज एक नये युग की देहली पर खडी है। प्रादेशिक भापा से राजभापा का स्थान उसने प्राप्त कर लिया है और अव राष्ट्रभापा मे विकसित होने जा रही है। यह उसके लिये एक नवनिर्माण वेला है। राजभापा घोपित होने के वाद एकाएक ही इसपर महान् उत्तरदायित्व आ पडा है। देश के एक छोर से दूसरे छोर तक भावो और विचारो के आदान-प्रदान का उसे माध्यम वन जाना है। राजनीति, शासन-तंत्र और विज्ञान की नित्य नई आवश्यकताओ के लिये उसे भरपूर उतरना है। उसे इतनी सर्वसुगम, लचीली और गुणग्राही होना है कि देश भर की नाना शैलियो और अंगो के हर नये पदो को आश्रय दे सके। यह सव होते हुए एक क्षण भी यह भ्रम न हो कि उसकी अन्य प्रादेशिक भापाओं से किसी तरह की स्पर्धा है। हिन्दी की तो आकाक्षा केवल इसके सिवाय और कुछ नही कि वह सही अर्थो में राष्ट्र के विभिन्न टुकड़ो के वीच की सुनहरी कड़ी वन जाय।

श्री नेहरूजी द्वारा शिलान्यास—इसके पश्चात् पं. जवाहरलालजी ने तालियों की करतल-ध्वनि के वीच शिलान्यास की विधि पूर्ण की। आपने चादी के कौचे से सीमेंट लगायी और जंजीर मे वंधा पत्थर छोड़ दिया। इस अवसर पर पृष्ठ संगीत के तौर पर आकाशवाणी केन्द्र द्वारा आयोजित सगीत की मधुर ध्वनि गूजती रही। शिलान्यास विधिवत् कराने का कार्य अकोला के सांस्कृतिक विद्यालय के संचालक पं. भवानीशंकरजी द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री. नेहरू ने जिस चांदी के घमेले व करनी से शिलान्यास किया था वे चीजे उन्हे भेट की गई, परन्तु पडितजी ने वे चीजे सम्मेलन को भेंट कर दी। इसके

पश्चात् पंडित जवाहरलालजी ने साहित्य प्रदर्शनी का निरीक्षण किया जहां मध्यप्रदेश के प्रमुख साहित्यिकों के ग्रंथ लेखकों के हाथ से लिखे गये परिचय चित्रों के साथ रखे गये थे। प्रान्त की पत्र-पत्रिकाएं, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के हिन्दी प्रचार-सम्बन्धी ग्रंथ एवं विवरण आदि सामग्री तथा राज्य के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सामग्री भी इसमें रखी गई थी। यह संग्रह देखकर पंडित जवाहरलालजी ने प्रसन्नता प्रकट की।

पं. जवाहरलालजी ने इस अवसर पर कहा कि—"साहित्य का प्रश्न मुझे बहुत प्यारा है। हर देश के लिये साहित्य का सम्बन्ध जीवन से बंधा हुआ होता है।' दुर्बल देश का साहित्य दुर्बल ही होता है। उसी प्रकार दुर्बल साहित्य देश को दुर्बल बना देता है। आपने अंग्रेजी के महाकवि मिल्टन के कथन को दुहराते हुए बतलाया कि एक देश के साहित्य से जाना जा सकता है कि यह देश कैसा है। यह कहते हुये कि साहित्य का सवाल बुनियादी सवाल है, नेहरूजी ने कहा कि साहित्य के आइने में देश को देखा जा सकता है।

प्रधान मंत्री ने कहा—अब राष्ट्रभाषा के सवाल पर बहस की कोई गुंजाइश नहीं है। श्री बियाणीजी के इस कथन का उल्लेख करते हुए कि हिन्दी किसी दूसरी भाषा के मार्ग में बाधक नहीं होगी, नेहरूजी ने कहा कि भाषा के क्षेत्र में एक के बढ़ने से दूसरी घटती नहीं बल्कि विचार विनिमय के माध्यम से उनका विकास होता है। नेहरूजी ने साहित्य की भाषा और बोलचाल की भाषा में कम से कम दूरी रखने की अपील करते हुए कहा कि साहित्य की उन्नति दफ्तर में नहीं होती। उन्होंने कहा कि ऐसे तो बोलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा में कुछ फर्क रहता ही है, पर अगर यह फर्क बहुत ज्यादा हो जावे तो फिर साहित्य दुर्बल बन जाता है।

नेहरूजी ने अपने भाषण में कविता और कहानियों की रचनाओं को वाछनीय बतलाते हुए कहा कि हिन्दी के लेखकों को उन हजारों प्रश्नों पर भी लिखना चाहिये, जो कि रोज उठा करते हैं। ऐसी रचनायें होनी चाहिये जिनसे आज की दुनिया को समझने में मदद मिले। उन्होंने साहित्य सम्मेलनों से विशेष रूप से आग्रह किया कि वे साहित्य की बदहाली हालत को भी सुधारने का प्रयत्न करें।

नेहरू जी ने आगे कहा कि हिन्दी के पीछे शक्ति है। उसे सम्मान का स्थान प्राप्त है। उसके दायें बायें दूसरी भाषायें हैं।

समारोह के अन्त में श्री बियाणीजी ने अतिथियों का आभार प्रदर्शन किया और वन्देमातरम् गायन के पश्चात् समारोह समाप्त हुआ। इस समारोह में राज्यपाल डा. पट्टाभि सीतारामय्या, मुख्य मंत्री पं. रविशंकरजी शुक्ल के अलावा अन्य मंत्रीगण, उच्च अधिकारी, प्रमुख नागरिक व साहित्यप्रेमी उपस्थित थे। बाहर से लगभग २०० प्रतिनिधि इस समारोह में भाग लेने के लिये आये थे।

सम्मेलन द्वारा सरकारी नियमानुसार राज्य सरकार से एक तिहाई अनुदान देने की प्रार्थना की गई। तदनुसार राज्य सरकार ने ५० हजार रुपयों की निधि सम्मेलन को प्रदान कर दी है।

भवन निर्माण का कार्य बहुत अग्रसर हो चुका है और उसके शीघ्र पूर्ण होने की आशा है।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १६वां अधिवेशन ११ और १२ अक्टूबर को दुर्ग नगर में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन की भी अध्यक्षता श्री ब्रिजलालजी बियाणी ने की और उसका उद्घाटन हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार, कवि एवं समालोचक डॉ. रामकुमार वर्मा के द्वारा हुआ।

पंडाल के पास ही गांधी विद्यालय के भवन में साहित्य प्रदर्शनी का आयोजन था। इस प्रदर्शनी को लगभग १५ हजार व्यक्तियों ने देखा। इससे प्रान्त की साहित्यिक गतिविधि जानने में लोगों को सहायता मिली। स्वागताध्यक्ष श्री मोहनलाल बाकलीवाल थे। तदनंतर अध्यक्ष श्री ब्रिजलाल बियाणी ने अपने भाषण में कहा कि—देश में भाषा की समस्या बहुत विचारणीय है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है। राष्ट्रभाषा का अर्थ उस भाषा से है जिसे समस्त राष्ट्र बोलता हो, राष्ट्र की शिक्षा का वह माध्यम हो और राष्ट्र का कार्य, राज्य का कारबार उस भाषा

मे चलता हो। जिस भाषा में ये तीनों गुण हों वह पूर्णतया देश की राष्ट्रभाषा कहलाने योग्य होती है। इस दृष्टि से यद्यपि हिन्दी समस्त राष्ट्र की बोलचाल की भाषा नही है तो भी व्यापक रूप में यदि समस्त राष्ट्र मे किसी भाषा द्वारा काम चल सकता है, तो वह भाषा है हिन्दी। सारे देश मे यही भाषा सबसे अधिक बोली जाती है। हमारे संविधान ने हिन्दी को राजभाषा के रूप मे और १४ अन्य प्रान्तीय भाषाओ को प्रादेशिक भाषा के रूप मे मान्यता प्रदान की है।

श्री बियाणी जी ने डॉ. रघुवीर की प्रशंसा करते हुए कहा कि अंग्रेजी की चुनौती को स्वीकार करने का सबसे बड़ा श्रेय डॉ. रघुवीर को है। उन्होंने हिन्दी के शब्दकोष में नये-नये शब्दों को जन्म देकर प्रशंसनीय वृद्धि की है, परन्तु इस चुनौती को स्वीकार करते समय यदि हम हिन्दी को क्लिष्ट बनाते है तो हमारी गति अवरुद्ध हो जायगी। इसलिए हिन्दी प्रेमियो का कर्त्तव्य है कि वे हिन्दी को सरल और जनभाषा बनावें। हिन्दी को न संस्कृत बनाया जाये और न संस्कृत को हिन्दी, अपितु उसका जनजीवन के अनुकूल नवनिर्माण किया जावे। हिन्दी का शब्दभंडार संस्कृत से तो लिया जाय परन्तु अन्य प्रादेशिक भाषाओं का दर्वाजा भी खुला रहना आवश्यक है। श्री बियाणी जी ने कहा कि भाषा रूपी शस्त्र का उपयोग साहित्यिक करता है। वह चाहे तो किसी शब्द का उपयोग विनाश के लिए कर सकता है और चाहे तो उसी शब्द को विकास के कार्य में लगा सकता है। इससे साहित्यकारो का कर्त्तव्य है कि वे भाषा मे अमृत का प्रवाह बहाये ताकि यदि हिन्दी आज अपनी व्यापकता से राष्ट्रभाषा बनी है तो कल उसकी इज्जत उसकी मधुरता तथा सरलता के कारण हो।

इस अधिवेशन में राज्य के वयोवृद्ध साहित्यिक श्री मावलीप्रसादजी श्रीवास्तव को चांदी के पात्र में एक मानपत्र सर्मपित किया गया जिसमे साहित्य के क्षेत्र में उनकी सेवाओ का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया था।

इस सम्मेलन मे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये :—

सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव

(१) "मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता है कि संविधान मे उल्लिखित काल मे हिन्दी को उसका स्थान प्राप्त होने की दृष्टि से (अ) हिन्दी शब्दसंग्रह कार्य को दो वर्ष की अवधि मे पूर्ण किया जाय, (ब) हिन्दी मे विविध साहित्य के सृजन के लिये ठोस कदम उठाये जाये, (क) हिन्दी संबधी तमाम कार्यो को जिनमे हिन्दी टेलीप्रिन्टर, तार आदि है, प्राथमिकता प्रदान की जाये और हिन्दी सबधी योजनाओ के संबंध मे हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों का अधिकाधिक सहयोग लिया जाय।"

(२) "मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन राज्य सरकार द्वारा एक लाख वार्षिक अनुदान से शासन साहित्य परिषद की स्थापना, पुस्तकालयों को खरीदी गयी पुस्तकों पर १२॥ प्रतिशत अनुदान, सम्मेलन भवन के लिये ५० हजार रुपयो का अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था आदि कार्यो के लिये धन्यवाद देता है। सम्मेलन का मत है कि, इनसे प्रांतीय साहित्य की वृद्धि और प्रोत्साहन के कार्य को अवश्य सहायता मिलेगी। तथापि सम्मेलन अनुभव करता है कि उद्दिष्ट की पूर्ति के लिये शासन साहित्य परिषद के नियमो मे कुछ संशोधन की आवश्यकता है। सम्मेलन का सुझाव है कि (१) उक्त परिषद मे सम्मेलन को अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय। (२) पुरस्कार के लिये विषयो का विभाजन, (अ) साहित्य व (ब) विज्ञान—इस रूप मे किया जाय और पुरस्कारों का वितरण श्रेष्ठ ग्रंथों के बीच प्रतिस्पर्द्धा के बजाय उन्हें प्रोत्साहन की दृष्टि से किया जाय। (३) वार्षिक अनुदान का विभाजन वर्तमान आधार पर न किया जाकर उसे (अ) अन्तर्प्रांतीय साहित्य के अनुवाद, (ब) प्राचीन वैज्ञानिक व मौलिक श्रेष्ठ ग्रंथो के प्रकाशन, (स) पुरस्कारो के लिये वर्तमान से अधिक रकम, (द) साहित्य व लोक भाषाओं की खोज, अन्वेषण, सग्रह, संपादन आदि के लिये व्यवस्था व सहायता और (इ) अत्यंत आवश्यकता की स्थिति मे मान्य साहित्यकारो को सहायता आदि मदों मे उचित प्रमाण मे विभाजित किया जाय।"

(३) "चित्रपट आधुनिक समय मे जागृति के महत्त्वपूर्ण साधन है, तथापि हिन्दी मे अभी जो अधिकांश चित्रपट तैयार हो रहे है—वे समाज के नैतिक स्तर पर आक्रमण करने वाले तथा कला, साहित्य एवं भाषा की दृष्टि से उसका स्तर गिराने वाले है। सम्मेलन का केन्द्रीय सरकार से अनुरोध है कि वह इस प्रकार के चित्रों पर शीघ्रातिशीघ्र नियन्त्रण लगाये।"

छत्तीसगढ के साहित्यसेवियो द्वारा इसी अधिवेशन में श्री शुक्ल जी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया, जो आगामी कार्यकारिणी को विचारार्थ सौंपा गया। कार्यकारिणी ने अगली सभा में विचार कर श्री रविशकरजी शुक्ल को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का निर्णय किया, जिसके अनुसार सम्मेलन की ओर से इस अभिनन्दन-ग्रन्थ के निर्माण का कार्य पूर्ण हो रहा है।

भविष्य के लिये अनेक योजनाएँ सम्मेलन के विचारार्थ है। प्रान्त की इस प्रतिनिधि सस्था को प्रान्त के समस्त साहित्यकारो का लगनपूर्ण सहयोग प्राप्त है और यही इस सस्था की सुदृढ नीव भी है।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की वर्तमान कार्यसमिति इस प्रकार है —

अध्यक्ष—श्री ब्रिजलाल जी बियाणी। उपाध्यक्ष—(१) पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी और (२) डॉ॰ बल्देवप्रसाद जी मिश्र। प्रधान मन्त्री—श्री रामगोपाल जी माहेश्वरी। सयुक्त मन्त्री—श्री प्रभुदयाल जी अग्निहोत्री। साहित्य मन्त्री—श्री नर्मदाप्रसाद जी खरे। मन्त्री, नर्मदा विभाग—श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह जी। मन्त्री, छत्तीसगढ विभाग—श्री केदारनाथ जी झा "चन्द्र"। मन्त्री, विदर्भ विभाग—श्रीजगन्नाथ सिंह जी बस। मन्त्री, नागपुर विभाग—श्री नरेंद्र विद्यावाचस्पति।

सदस्य—(१) डॉ॰ हीरालाल जैन, (२) श्री विनयमोहन शर्मा, (३) श्री रामेश्वर शुक्ल "अचल", (४) श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, (५) श्री नरसिंहदास मोर, (६) श्री हृषीकेश शर्मा, (७) श्री शालिग्रामप्रसाद दीक्षित "कुसुमाकर", (८) श्री घनश्यामप्रसाद "श्याम", (९) श्री गोविन्दप्रसाद शर्मा, (१०) श्री उमाशकर शुक्ल और (११) श्री छदीलाल गुप्त।